ॐ अर्हं

2568

श्री फतह-प्रताप- गुरुदेव स्मृति पुष्प
आगम अनुयोग ग्रन्थ २

धम्मकहाणुओगो

[हिन्दी अनुवाद सहित—तृतीय से षष्ठ स्कन्ध]

[भाग २]

संकलन एवं सम्पादन
आगमरत्नाकर, अनुयोगप्रवर्तक

मुनिश्री कन्हैयालाल जी 'कमल'
दलसुखभाई मालवणिया

अनुवादक
देवकुमार जैन

प्रबन्ध सम्पादक
श्रीचन्द सुराना 'सरस'

प्रकाशक
आगम अनुयोग ट्रस्ट
अहमदाबाद-१३

2569

❋ प्रकाशकीय ❋

धर्मकथानुयोग द्वितीय भाग पाठकों की सेवा में प्रस्तुत करते हुए हमें हार्दिक प्रसन्नता और सन्तोष अनुभव हो रहा है कि हम जिस लक्ष्य तक पहुँचने का संकल्प लेकर बढ़ रहे हैं उसके चार सोपानों में से प्रथम सोपान पार कर चुके हैं।

गत वर्ष अक्षय तृतीया पर धर्मकथानुयोग (हिन्दी अनुवाद सहित) प्रथम भाग, पाठकों की सेवा में पहुँचा था और अब लगभग दस मास के बाद ही दूसरा भाग तैयार हो गया है।

गणितानुयोग का नव संस्करण भी प्रेस में चल रहा है और आशा है वह भी बहुत शीघ्र पाठकों की सेवा में पहुँच जायेगा। चार अनुयोग में से दो अनुयोग का प्रकाशन होने पर हम अपने लक्ष्य के बहुत समीप पहुँच सकेंगे और फिर दृढ़ विश्वास हो जायेगा कि अब दो सोपानों पर भी यथाशीघ्र पहुँचकर अपना एक चिर संकल्प तथा जैन साहित्य का एक महान चिर प्रतीक्षित स्वप्न पूरा हो सकेगा।

इसी के साथ धर्मकथानुयोग का गुजराती भाषा में भी अनुवाद हो गया है और वह भी प्रेस में जाने की तैयारी में है।

पूज्य गुरुदेव मुनिश्री कन्हैयालाल जी म० सा० के स्वास्थ्य की प्रतिकूलता रहते हुए भी आपश्री अनुयोग सम्पादन-कार्य में, द्रव्यानुयोग तथा चरणानुयोग के संकलन, संशोधन, सम्पादन में लगे हुए हैं। प्रसिद्ध विद्वान श्री दलसुखभाई मालवणिया भी अन्यान्य बहुविध दायित्वों का वहन करते हुए भी हमें यथायोग्य मार्गदर्शन, सहयोग कर रहे हैं, यह भी हमारा सद्भाग्य है।

पूज्य मुनिश्री के साथ आपश्री के अन्तेवासी श्री विनय मुनिजी 'वागीश' एवं श्री महेन्द्र ऋषिजी म० भी इस कार्य में सहयोगी हैं, यह हमारे लिए विशेष उत्साह तथा आनन्द का विषय है।

श्री हिम्मतलाल भाई भी अनुयोग प्रकाशन में विशेष रुचि लेकर सभी व्यवस्था संभालने में मेरा पूरा सहयोग कर रहे हैं और बराबर पत्र-व्यवहार आदि करके कार्य को आगे बढ़ा रहे हैं।

श्रीयुत श्रीचन्द जी सुराना भी धर्मकथानुयोग के संशोधन तथा मुद्रण में बड़ी निष्ठा और सावधानीपूर्वक सहयोगी हैं।

इस प्रकार श्रुत-सेवा के इस महान कार्य में उक्त सभी महानुभावों का सहकार प्राप्त हो रहा है, मैं ट्रस्ट की ओर से सभी का हार्दिक आभार मानता हूँ और आशा करता हूँ कि आप सभी सुहृदयों के सहयोग के बल पर अनुयोग प्रकाशन कार्य हम इसी प्रकार आगे बढ़ाते हुए जिन शासन की महान् सेवा करने में सफल हो सकेंगे।

अहमदाबाद

—बलदेव भाई डोसा भाई पटेल
(ट्रस्ट प्रमुख)

अनुयोग की सार्थकता : एक चिन्तन

जैन आगमों की विषय-सम्बद्ध (विषय का अनुगमन करने वाली) व्याख्या शैली को 'अणुओग' कहा गया है।

'अणु' का अर्थ 'सूक्ष्म' है, 'सूत्र' सूक्ष्म होता है, अतः तात्पर्य यह हुआ कि सूत्र का अभिधेय (अर्थ) के साथ योग—सम्बन्ध जोड़ना, सूत्रानुसारी अर्थ की व्याख्या, अन्वेषणा तथा अनुयोजना करना 'अनुयोग' कहा जाता है।

प्राचीन समय में शास्त्र-स्वाध्याय की एक विशेष परिपाटी थी, कि गुरु-गम से जो शास्त्र पढ़े जाते थे, उनका अर्थ विशेष नय, निक्षेप शैली (अनेकान्तशैली) से समझाया जाता था। दृष्टिवाद (बारहवाँ अंग) की व्याख्या करते समय सातों नयों की योजना की जाती थी, प्रत्येक नय-दृष्टि से उसकी व्याख्या या चिन्तन किया जाता था। कालिक श्रुतों (११ अंग आगम) की व्याख्या करते समय भी कम से कम नैगम, संग्रह एवं व्यवहार—इन तीन नय शैलियों से विचार किया जाता था।

काल प्रभाव से, मतिज्ञान श्रुतज्ञान की विशेष निर्मलता कम होने लगी, शास्त्र के अर्थ अनुसन्धान में प्रमाद होने लगा तो महान् श्रुतधर आर्य वज्र के शिष्य आर्यरक्षितसूरि ने आगमों की व्याख्या में अनुयोग शैली का समवतार किया। अनुयोग बीज रूप में तो मूल सूत्रों में विद्यमान है ही, किन्तु जब तक नय-निक्षेप शैली का प्रवर्तन रहा अनुयोग का विशेष प्रचलन नहीं हो सका, आर्यरक्षितसूरि ने आने वाले आगम अभ्यासियों की बौद्धिक क्षमता (क्षयोपशम) को ध्यान में रखकर अनुयोग शैली से आगमों की व्याख्या की; उस युग में यह शैली बहुत ही सुगम मानी गई, इसलिए अधिक जनप्रिय हुई।

आर्यरक्षितसूरि ने सूर्यप्रज्ञप्ति आदि खगोल-भूगोल विषयक आगमों का 'गणितानुयोग' में समावेश किया।

आत्मा, द्रव्य, पुद्गल, कर्म आदि गहन वर्णन वाले आगमों को 'द्रव्यानुयोग' में; तथा श्रमणाचार, श्रावकाचार सम्बन्धी विषयों को चरण-करणानुयोग में समाविष्ट किया। इन सबके पश्चात् जो धर्मकथा, रूपक, दृष्टान्त आदि विषय बचे वे सब 'धम्मकहाणुओग' में संकलित समझे गये।

वर्तमान मानव की बौद्धिक क्षमता, ज्ञान का क्षयोपशम तथा आगम विषयों की रुचि देखते हुए यह 'वर्गीकरण' बहुत ही सरल तथा उपयोगी प्रतीत होता है। इसकी विशेष उपयोगिता होने पर ही 'अनुयोग वर्गीकरण' का संकल्प मेरे मन में दृढ़ हुआ और मैं इस श्रुत-समुपासना में प्रवृत्त हुआ।

सर्वप्रथम गणितानुयोग के कार्य में जुटा। कुछ तो मार्गदर्शकों का अभाव, साधनों की अल्पता तथा स्वयं को नया-नया अनुभव होने से उस कार्य में अनेक कठिनाइयाँ आईं, श्रम बहुत अधिक और कार्य अल्प, बहुत अधिक श्रम करने के बाद भी जब लगता कि यह कार्य ठीक नहीं हुआ या इसमें यह कमी रह गई तो उस सबको रद्दी करके पुनः नये सिरे से संकलन प्रारम्भ करता, इस प्रकार प्रथम कार्य में बहुत अधिक श्रम हुआ, समय भी बहुत लगा, किन्तु कार्य जब मूर्त रूप लेकर विद्वानों के समक्ष आया तो सभी ने उसको पसन्द किया और मुक्तकंठ से उसकी उपयोगिता स्वीकार की।

'धर्मकथानुयोग' का कार्य प्रारम्भ किये भी लगभग ५ वर्ष हो गये, सर्वप्रथम मूल मात्र तैयार हुआ। मूल सम्पादन में भी अनेक बाधाएँ, समस्याएँ आईं जिनकी चर्चा मैंने 'धम्मकहाणुओग मूल' के अपने वक्तव्य में की है। सबसे विकट समस्या यही थी कि आगम पाठों का सर्वसम्मत या शुद्ध संस्करण अब तक उपलब्ध नहीं, सर्वत्र पाठ भिन्नता, सूत्रांक भिन्न तथा पाठों की विविधता, 'जाव' आदि प्रयोगों की विचित्रता आदि। इन समस्याओं का शार्टकट रास्ता यही सोचा गया कि किन्हीं एक-दो संस्करणों को मान्य कर उनके मूल पाठ ले लिये जाय, ताकि कार्य करने में अनावश्यक दीर्घ विलम्ब न हो। इस निर्णय के अनुसार श्री पुप्फ भिक्खू के सुत्तागमे, तथा आचार्य श्री तुलसी के 'अंगसुत्ताणि' के पाठ 'धर्मकथानुयोग' के आधारभूत मान लिये गये, यद्यपि इन दोनों ही संस्करणों की पूर्ण शुद्धता, तथा एकरूपता के विषय में मुझे व अन्य विद्वानों को पूर्ण सन्तोष नहीं है, किन्तु 'नहीं से कुछ भला' की नीति का अनुगमन कर यह स्वीकार कर लिया गया।

धर्मकथानुयोग का प्रथम भाग, जिसके दो स्कन्ध है, गतवर्ष प्रकाशित हो चुका है," उस पर श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने विद्वत्तापूर्ण प्रस्तावना लिखी है। अब यह द्वितीय भाग, जिसमें ३ से ६ स्कन्ध है, पाठकों के समक्ष है। इसमें धर्मकथानुयोग सम्पूर्ण हो गया है। इसकी विस्तृत जानकारी पाठक विषय सूची देखकर प्राप्त कर लेवें।

इस भाग की सुन्दर प्रस्तावना जैन कथा साहित्य के विशेषज्ञ डा० प्रेम सुमन जैन ने लिखी है, जिसमें अनेक ज्ञानवर्धक तथा अनुसन्धान-परक चर्चा है, पाठक उसे मनोयोगपूर्वक पढ़ें। पं० श्री दलसुखभाई मालवणिया का सौजन्य-पूर्ण सहयोग मार्गदर्शक रहा है, अनुवाद किया है श्री देवकुमारजी जैन ने। तथा मुद्रण आदि की दृष्टि से सभी व्यवस्था श्रीचन्द जी सुराना ने संभाली है।

शारीरिक अस्वस्थता के कारण मैं अनुवाद आदि का पूर्ण निरीक्षण नहीं कर सका हूँ अतः यदि कहीं कोई शंकास्पद या विवादास्पद प्रसंग लगे तो पाठक हंस-बुद्धि से उसका सम्यग् अनुसंधान करने का प्रयास करें।

मेरे अन्तेवासी श्री विनय मुनि 'वागीश' का शारीरिक एवं मानसिक सहयोग मेरे इस कार्य में आधारभूत रहा है। श्री महेन्द्र ऋषि जी का सहकार भी मुझे मिल रहा है। अतः मैं सभी सहयोगदाताओं का प्रमोद भावपूर्वक स्मरण करता हूँ और आशा करता हूँ पाठक इन महान ग्रन्थों का स्वाध्याय कर जीवन को सफल बनायेंगे।

—मुनि कन्हैयालाल 'कमल'

श्री वर्धमान महावीर केन्द्र
आबू पर्वत

धर्मकथानुयोग की सांकेतिक शब्दसूची

अ०	अध्ययन
अणु०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र
अणुत्त०	अनुत्तरौपपातिक सूत्र
आया०	आचारांगसूत्र
आया० सु०	आचारांग श्रुतस्कन्ध
आव०	आवश्यक सूत्र
उ०	उद्देशक
उत्त०	उत्तराध्ययनसूत्र
उत्तर०	उत्तराध्ययन सूत्र
उवा०	उपासकदशांग सूत्र
उवं०	उपांग
ओव०	औपपातिक सूत्र
अंत०	अन्तकृद्दशा सूत्र
अंत० व०	अन्तकृतदशा वर्ग
कप्प०	कल्पसूत्र
कप्पव०	कल्पावतंसिका (कप्पवडंसिया)
गा०	गाथा
चु०	चूणि
जीवा०	जीवाभिगमसूत्र
जम्बु०	जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति
जम्बु० व०	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति वक्षस्कार
ठा०	स्थानांग सूत्र
ठाणं०	स्थानांग सूत्र
णाया०	ज्ञाताधर्मकथांग सूत्र
दस०	दशवैकालिक सूत्र
दस सुय०	दशाश्रुतस्कन्ध सूत्र
द्वा०	द्वार
नि०	निर्युक्ति
निर०	निरयावलिका सूत्र
प०	पद, पर्व
पडि०	प्रतिपत्ति
पण्ण०	प्रज्ञापना
पण्ण प०	प्रज्ञापना पद
पा०	पाहुड (प्राभृत)
पुप्फि०	पुप्फिया (पुष्पिका)
प्रव०	प्रवचनसारोद्धार
भा०	भाग
भग०	भगवती सूत्र
भग० स०	भगवती सूत्र शतक
महा० प०	महावीरचरियं पर्व
रायप०	राजप्रश्नीय सूत्र
व०	वर्ग, वक्षस्कार
वण्हि०	वण्हिदसा सूत्र (वृष्णिदशा सूत्र)
विवाग सु०	विपाक सूत्र श्रुतस्कन्ध
विशे०	विशेषावश्यक भाष्य
श०	शतक
स०	समवाय, शतक
सम०	समवायांग सूत्र
सु०	सुयखन्ध (श्रुतस्कंध), सुत्त (सूत्र)
सम० स०	समवायांग समवाय
सत्त० स्था०	सप्ततिस्थानप्रकरणम्
सप्त० स्था०	,, ,, ,,
संव०	संवरद्वार
सुय० सु०	सूत्रकृतांग श्रुतस्कन्ध
सूरि०	सूर्यप्रज्ञप्ति
ज्ञाता०	ज्ञाताधर्मकथांग

□□□□

प्रस्तावना

आगम कथा-साहित्य मीमांसा

डा० प्रेमसुमन जैन
(अध्यक्ष—जैन विद्या एवं प्राकृत विभाग,
सुखाड़िया विश्वविद्यालय, उदयपुर)

आगम परिचय—

प्राकृत भाषा में जो साहित्य लिखा गया है, उसमें आगम साहित्य का महत्त्वपूर्ण स्थान है। जैन परम्परा में भगवान महावीर द्वारा उपदिष्ट शिक्षाओं के लिए आगम शब्द अधिक प्रचलित हो गया है, जिसे प्राचीनकाल में श्रुत अथवा सम्यक्श्रुत कहा जाता था। आप्तवचन, प्रवचन, जिनवचन, उपदेश आदि अनेक शब्द आगम के लिए प्रयुक्त हुए हैं।[1] महावीर के उपदेश तत्कालीन लोक भाषा अर्धमागधी में प्रचलित हुए थे। अतः आगमों की भाषा भी प्रमुख रूप से अर्धमागधी है।[2] महावीर से उनके शिष्य गणधरों ने जैसा सुना था, उस अर्थ को अपने शब्दों में निबद्ध कर दिया था। फिर उस शब्द एवं अर्थरूप उपदेश को अपने शिष्यों को सुना दिया था। इस प्रकार श्रुत परम्परा से महावीर के उपदेशों को आगम के रूप में सुरक्षित रखा गया है। वर्तमान में उपलब्ध आगमों में केवल महावीर के ही शब्द नहीं हैं, अपितु उनमें गणधरों और उनके शिष्यों का प्रस्तुतीकरण भी सम्मिलित है। फिर भी आगमों की विषय वस्तु के अवलोकन से यह स्पष्ट है कि आगमों के मूल रूप में बहुत कम परिवर्तन हुआ है। आगम वर्तमान युग को महावीर की वाणी से जोड़ने में एक सेतु का काम करते हैं।

आगमों के संकलन में एवं उनको सुनिश्चित स्वरूप प्राप्त करने में लगभग १००० वर्षों का समय लगा है।[3] इस सम्बन्ध में दिगम्बर एवं श्वेताम्बर परम्परा में दो विचारधाराएँ प्रचलित हैं। दिगम्बर परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के निर्वाण के दो सौ वर्ष बाद श्रुतकेवली भद्रबाहु थे। वे महावीर के समस्त श्रुतज्ञान के अंतिम उत्तराधिकारी थे। चन्द्रगुप्त मौर्य के समय में भीषण अकाल के कारण मुनियों का संघ अव्यवस्थित हो गया। अतः देश-काल की परिस्थितियों के कारण महावीर द्वारा कथित आगमों का ज्ञान क्रमशः क्षीण हो गया। वीर-निर्वाण के ६८३ वर्ष पश्चात् बारहवें अंग दृष्टिवाद आगम का कुछ अंश ही शेष रह गया था। उसी के आधार पर धरसेन आचार्य के तत्त्वावधान में षट्खण्डागम और गुणधर आचार्य के तत्त्वावधान में कषायपाहुड नामक आगम सूत्र-ग्रन्थ लिखे गये।[4] इन ग्रन्थों की भाषा शौरसेनी प्राकृत है। आगे चलकर इन्हीं ग्रन्थों के आधार

---

१. सुयसुत्तगंथ सिद्धंतपवयणे आणवयण उवएसे।
पण्णवण आगमे या एगट्ठा पज्जवासुत्ते ॥ —अनुयोगद्वार ४, विशेषावश्यकभाष्य, गाथा ८/९७

२. भगवं च णं अद्धमागहीए भासाए धम्ममाइक्खइ। —समवायांगसूत्र, पृ० ६०

३. दोशी, पं० बेचरदास : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, पृ० ५१

४. जैन, डा० हीरालाल : भारतीय संस्कृति में जैनधर्म का योगदान।

पर आचार्य कुन्दकुन्द आदि दिगम्बर परम्परा के आचार्यों ने जैन-दर्शन के स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे। इन ग्रन्थों को शौरसैनी आगम कहा जाता है।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय की परम्परा के अनुसार भगवान महावीर के उपदेशों को मूल रूप से सुरक्षित रखने के लिए जैन मुनियों ने अनेक वाचनाएँ की हैं। महावीर के निर्वाण के १६० वर्ष बाद पाटलिपुत्र में स्थूलभद्र आचार्य के स्मरण के आधार पर ग्यारह आगमों का संकलन किया गया। किन्तु वहाँ उपस्थित आचार्यों को बारहवें अंग ग्रन्थ दृष्टिवाद का स्मरण न होने से उसका स्वरूप संकलित नहीं किया जा सका। इस प्रथम वाचना में व्यवस्थित आगम साहित्य जब पुनः छिन्न-भिन्न होने लगा तब वीर-निर्वाण के ८२७-८४० वर्ष के बीच में आचार्य स्कंदिल ने मथुरा में मुनिसंघ का एक सम्मेलन बुलाया, जिसमें उन्हीं ग्यारह आगमों को पुनः व्यवस्थित किया गया। वीर-निर्वाण ९८० वर्ष में वल्लभीनगर में देवर्द्धिगणी की अध्यक्षता में एक मुनि-सम्मेलन पुनः बुलाया गया। इस सम्मेलन में विभिन्न वाचनाओं का समन्वय करके आगमों को पहली बार लिपिबद्ध किया गया। श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य वर्तमान में उपलब्ध अर्धमागधी आगम इसी सम्मेलन के प्रयत्नों का परिणाम है।[१] इस समय तक ग्यारह प्रमुख अंग ग्रन्थों के अतिरिक्त आगम साहित्य के अन्य ग्रन्थ भी संकलित किये गये थे। कुल आगमों की संख्या ४५ तय की गयी थी। इस तरह मोटे तौर पर तो आगमों का रचनाकाल महावीर का समय है। किन्तु उनका लेखन-काल ईसा की ४-५वीं शताब्दी है। इस एक हजार वर्ष के अन्तराल की संस्कृति आगमों में समायी हुई है।[२]

अर्धमागधी आगम साहित्य को कई भागों में विभक्त किया गया है। अंग ग्रन्थ ११ हैं, जिनमें आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग-सूत्र आदि है। १२ उपांग ग्रन्थ हैं—औपपातिकसूत्र, राजप्रश्नीय आदि। छेद-सूत्र ६ हैं—निशीथसूत्र, आवश्यकसूत्र आदि। मूल सूत्र ४ हैं—उत्तराध्ययनसूत्र, दशवैकालिकसूत्र आदि। तथा १० प्रकीर्णक और २ चूलिका ग्रन्थ हैं। आगम ग्रन्थों का यह विभाजन एक ही समय में निश्चित नहीं हुआ है, अपितु ईसा की ५वीं शताब्दी से १५वीं शताब्दी तक विषयवस्तु के अनुसार यह विभाजन होता रहा है। किन्तु आगम साहित्य का प्रमुख विषयों की दृष्टि से अनुयोगों में भी विभाजन हुआ है। यह विभाजन प्राचीन है। आर्यरक्षितसूरि ने आगम-साहित्य के जो चार भाग किये हैं वे इस प्रकार हैं:[३]—

१. चरणकरणानुयोग —आचार, व्रत, चारित्र, संयम आदि का विवेचन।
२. धर्मकथानुयोग —धर्म को प्रकल्पित करने वाली कथाओं का विवेचन।
३. गणितानुयोग —गणित सम्बन्धी विषयों का विवेचन।
४. द्रव्यानुयोग —छह द्रव्यों एवं नौ पदार्थों का विवेचन।

दिगम्बर परम्परा में आगम साहित्य के अनुयोगों के नाम कुछ भिन्न हैं।[४] यथा—

१. प्रथमानुयोग—महापुरुषों के जीवन चरित्र आदि।

२. करणानुयोग—लोक का स्वरूप एवं गणित आदि।

३. चरणानुयोग—आचारशास्त्र का निरूपण।

४. द्रव्यानुयोग—द्रव्य एवं पदार्थों का विवेचन।

आगम-साहित्य की विषयवस्तु का यह मोटा-मोटा विभाजन है क्योंकि करणानुयोग के ग्रन्थों में भी धर्मकथा एवं द्रव्यों का विवेचन मिल जाता है। तथा द्रव्यानुयोग के ग्रन्थों में भी कुछ दृष्टान्त एवं कथाओं के संकेत प्राप्त होते हैं। फिर भी विषय के अध्ययन के लिए इस विभाजन में सुविधा है। इस वर्गीकरण के आधार पर अर्धमागधी आगम साहित्य के ग्रन्थों का विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

---

१. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ० ३५
२. जैन, डा० जगदीशचन्द्र : जैन आगमों में भारतीय समाज
३. आवश्यकनिर्युक्ति, ३६३-३७७
४. रत्नकरण्ड श्रावकाचार, अधिकार १, श्लोक ४३-४६।

१. **चरणकरणानुयोग**—इसमें आचारांगसूत्र, प्रश्नव्याकरण, दशवैकालिकसूत्र, निशीथ, व्यवहार, बृहत्कल्प तथा आवश्यकसूत्र आदि ग्रन्थों को रखा जा सकता है।

२. **धर्मकथानुयोग**—इसमें ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, विपाकसूत्र, औपपातिक, राजप्रश्नीय, निरयावलिका, कल्पावतंसिका, पुष्पिका तथा उत्तराध्ययनसूत्र आदि आगम ग्रन्थों को रखा जा सकता है।

३. **गणितानुयोग**—इसमें जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति, सूर्यप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ हैं।

४. **द्रव्यानुयोग**—इसमें सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, प्रज्ञापना, नन्दी, अनुयोगद्वार आदि ग्रन्थ सम्मिलित हैं।

अनुयोगों में आगम ग्रन्थों का यह विभाजन भी मोटे तौर पर ही है। क्योंकि एक ग्रन्थ में कई विषय पाये जाते हैं। आगम साहित्य के विषयों को इन चार अनुयोगों में विभाजित करने के लिए प्रत्येक आगम का अन्तरंग अध्ययन करने के उपरान्त उसके विषय को इन चार अनुयोगों में विभाजित करना होगा। प्रत्येक ग्रन्थ की विभाजित सामग्री को अलग-अलग अनुयोगों में संकलित करनी होगी तभी आगम-ग्रन्थों की सामग्री का विभाजन अनुयोगों के अनुसार हो सकेगा। आगम साहित्य के मर्मज्ञ मुनि कन्हैयालाल जी "कमल" ने यह महत्त्वपूर्ण तथा ऐतिहासिक कार्य सम्पन्न किया है। उन्होंने अपने ग्रन्थ गणितानुयोग में आगम साहित्य की गणित सम्बन्धी सभी सामग्री एकत्र करदी है।[1] इस गणितानुयोग ग्रन्थ का विद्वत्-जगत में अच्छा आदर हुआ है।

पंडितरत्न मुनि कमल जी ने विगत वर्षों में आगम साहित्य से धर्मकथानुयोग की सामग्री संकलित की है, जिसे उन्होंने "धम्मकहाणुओगो" नाम दिया है। इस संकलन में निम्नांकित आगम ग्रन्थों से सामग्री ली गयी है—

अंग-ग्रन्थ—आचारांगसूत्र, सूत्रकृतांग, स्थानांग, समवायांग, भगवतीसूत्र, ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग, अन्तकृत्, अनुत्तरोपपातिक, विपाकसूत्र।

उपांग-ग्रन्थ—औपपातिक, राजप्रश्नीय, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति, निरयावलिका, पुष्पिका, वृष्णिदशा, पुष्पचूलिका।

मूलसूत्र—उत्तराध्ययनसूत्र, नन्दीसूत्र।

छेदसूत्र—दशाश्रुतस्कन्ध, कल्पसूत्र।

इस तरह "धम्मकहाणुओगो" में आगम साहित्य के प्रायः उन सभी ग्रन्थों से सामग्री संकलित कर ली गयी है, जिनमें धर्मकथा विद्यमान हैं। इन धर्मकथाओं पर विवेचन करने से पूर्व प्रयुक्त ग्रन्थों का परिचय प्राप्त कर लेना आवश्यक है।

आचारांगसूत्र—

अर्धमागधी आगम साहित्य में अंग ग्रन्थों में आचारांगसूत्र प्रथम अंगग्रन्थ है। जैन परम्परा की मान्यता एवं आगम-साहित्य के गवेषक विद्वानों की खोज के अनुसार यह प्रायः निश्चित है कि भगवान महावीर ने सर्वप्रथम आचारांग में संग्रहीत विषय का ही उपदेश दिया था। अतः उनकी वाणी इसमें सुरक्षित है। जैन आचारशास्त्र का यह आधारभूत ग्रन्थ है।[2] इसमें प्रकारान्तर से सम्यक्दर्शन, ज्ञान एवं चारित्र की मूलभूत शिक्षाएँ संकलित हैं। भगवान महावीर की साधना-पद्धति के ज्ञान के लिए आचारांग सबसे प्राचीन ग्रन्थ है। इसमें अर्धमागधी भाषा के प्राचीन रूप सुरक्षित हैं। इसकी सूत्रशैली ब्राह्मण ग्रन्थों की सूत्र-शैली से मिलती-जुलती है। आचारांगसूत्र के वाक्य कई स्थानों पर परस्पर सम्बन्धित नहीं हैं तथा कुछ पद एवं पद्य उद्धृत अंश जैसे भी प्रतीत होते हैं।[3] इससे विद्वानों ने अनुमान लगाया है कि आचारांग के पहले भी जैन परम्परा का कोई साहित्य रहा है, जिसे पूर्व-साहित्य के नाम से जाना जाता है।

---

१. मुनि श्री कन्हैयालाल 'कमल' : "गणितानुयोग", आगम अनुयोग प्रकाशन, सांडेराव।
(नोट—अब इसका संशोधित परिवर्द्धित द्वितीय संस्करण मुद्रित हो रहा है।)

२. आचारांगसूत्र : सं० श्रीचन्द सुराना "सरस", आगम प्रकाशन समिति ब्यावर, १६८०।

३. हर्मन जैकोबी : द सेक्रेड बुक्स ऑफ द ईस्ट, भा० २२, भूमिका, पृ० ४८।

आचारांगसूत्र कथा-साहित्य की दृष्टि से भी उपयोगी है। इसमें ऐसे कई उपमान या रूपक दृष्टिगोचर होते हैं, जो प्राकृत कथाओं के लिए कथा-बीज हैं। छठवें अध्ययन के प्रथम उद्देशक में एक कच्छप का उदाहरण दिया गया है।[1] उस कछुए को शैवाल (काई) के बीच में रहने वाले एक छिद्र से चांदनी का सौंदर्य दिखायी दिया। उस मनोहर दृश्य को दिखाने के लिए जब वह कछुआ अपने साथियों को बुलाकर लाया तो उसे वह छिद्र ही नहीं मिला, जिसमें से चांदनी दिख रही थी। यह रूपक आत्मज्ञान के निजी अनुभव के लिए प्रयुक्त किया गया है। यथा—

एवं पेगे महावीरा विप्परक्कमंति।

पासह एगेवसीयमाणे अणत्तपण्णे।

से बेमि—से जहा वि कुम्मे हरए विणिविट्ठचित्ते पच्छण्णपलासे उम्मुग्गं से णो लभति। भंजगा इव संनिवेसं णो चयंति।

एवं पेगे अणेगरूवेहि कुलेहिं जाता।

रूवेहिं सत्ता कलुणं थणंति णिदाणतो ते ण लभंति मोक्खं।

इस रूपक को आचारांग के व्याख्या साहित्य में समझाया गया है।[2]

बौद्ध आगमों में भी कच्छप के रूपक के आधार पर भगवान बुद्ध ने भिक्षुओं को मनुष्य जन्म की दुर्लभता का उपदेश दिया है।[3] इस रूपक ने परवर्ती प्राकृत कथा-साहित्य को भी अनुप्राणित किया है। गीता में भी "स्थितप्रज्ञ" का स्वरूप कछुए के रूपक द्वारा प्रकट किया गया है।[4]

आचारांग में इसी प्रकार के अन्य रूपक भी खोजे जा सकते हैं। एक स्थान पर कहा गया है कि जैसे बलशाली योद्धा युद्धभूमि में सबसे आगे रहकर शत्रुओं के साथ घमासान युद्ध कर विजय प्राप्त करता है, उसी प्रकार साधक को महान् उपसर्ग सहन करते हुए भी आत्म-चिन्तन में अंतिम समय तक स्थिर भाव से लीन रहना चाहिए।[5] इस ग्रन्थ के नवें अध्ययन में महावीर की तपश्चर्या का वर्णन है। महावीर स्वामी का यह चरित्र भी अपने में कई कथातत्त्व समेटे हुए है, जिनसे महापुरुषों के चरित्र लिखने का आधार मिला है।

सूत्रकृतांग—

सूत्रकृतांग में जैन दर्शन एवं अन्य दार्शनिक मतों का प्रतिपादन है। अन्य दर्शनों के लिए सिद्धान्तों की समीक्षा के उपरान्त जैन दर्शन के तत्त्वों आदि का निरूपण करना इस ग्रन्थ का मुख्य विषय है।[6] छठे अध्ययन में भगवान महावीर की स्तुति का वर्णन है। इसमें विभिन्न उपमानों का प्रयोग किया है। ऐरावत, सिंह, गंगा, गरुड़ आदि की तरह महावीर भी लोक में सर्वोत्तम थे।[7] इस तरह की उपमाओं ने कथा के नायक के स्वरूप निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका प्रदान की है।

इसी सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध के छठे सातवें अध्ययनों में आर्द्रककुमार और गोशालक तथा उदक और गौतम स्वामी के बीच हुए संवादों का उल्लेख है। इन संवादों ने परवर्ती कथाओं के कथोपकथनों के गठन में सहयोग किया है।

इसी सूत्र के द्वितीय श्रुतस्कन्ध में पुण्डरीक का दृष्टान्त दिया हुआ है। आगमिक कथाओं का यह अनुपम उदाहरण है।

---

१. आचारांगसूत्र, सं० जम्बूविजय जी, बम्बई, अ० ६, उ० १
२. आचारांग चूर्णि एवं टीका।
३. मज्झिमनिकाय, भाग ३, बालपण्डितसुत्त, पृ० २३९-४०
४. यदा संहरते चायं कूर्मोऽङ्गानीव सर्वशः। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यस्तस्य प्रज्ञा प्रतिष्ठिता। —श्रीमद्भगवद्गीता, २.५८
५. कायस्स वियावाए एस संगामसीसे वियाहिए। से हु पारंगमे मुणी। —आचारांग, ६.५
६. सूत्रकृतांगसूत्र, सं० अमरमुनि, मानसामण्डी, १९७९, भूमिका।
७. सूत्रकृतांगसूत्र, अ० ६, गाथा १५-२४।

एक सरोवर जल और कीचड़ से भरा हुआ है। उसके बीच में कई कमल खिले हैं। बीच में एक श्वेत कमल है। चारों दिशाओं से आने वाले मोहित पुरुष उस सफेद कमल को प्राप्त करने के प्रयास में कीचड़ में फंस जाते हैं। किन्तु वीतरागी पुरुष सरोवर के किनारे खड़ा रहकर ही कमल को अपने पास बुला लेता है।[1] यथा—

से जहाणामए पोक्खरणी सिया बहुउदगा बहुसेया बहुपुक्खला लद्धट्ठा पुण्डरीगिणी पासादिया दरिसणीया अभिरूवा पडिरूवा।

से बेमि-लोयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो।

से उप्पाते बुइते, एवमेयं च खलु मए अप्पाहट्टु समणाउसो।..........

से एवमेयं बुइतं।

इस रूपक में सरोवर संसार के समान है। उसमें जल कर्मरूप है तथा कीचड़ विषय-भोग का प्रतीक। साधारण कमल जनपद के प्रतीक हैं और श्वेत कमल राजा का। चारों मोहित पुरुष चार मतवादी हैं और वीतरागी श्रमण सद्धर्म का प्रतीक है। सूत्रकृतांग के इस रूपक का विश्लेषण करते हुए डा० ए० एन० उपाध्ये ने कहा है—"इस रूपक में निहित आशय के अतिरिक्त भी एक बात मुझे बिलकुल स्पष्ट यह प्रतीत होती है कि राजा की छत्रछाया में ही धर्म प्रचार पाते हैं और इसलिए राजाश्रय प्राप्त करने में पूरी-पूरी प्रतिद्वन्द्विता होती थी।[2] सूत्रकृतांग के सन्दर्भ में इस रूपक के अध्ययन में विशेष प्रयत्न की आवश्यकता है क्योंकि राजा और कमल भारतीय कथा-साहित्य में प्रसिद्ध प्रतीक रहे हैं।

सूत्रकृतांग में शिशुपाल, द्वैपायन, पाराशर आदि के प्रासंगिक उल्लेख हैं। किन्तु आर्द्रककुमार की कथा विस्तृत है। इस कथा का परवर्तीकाल में पर्याप्त विकास हुआ है। इसी तरह पेढालपुत्र उदक और गौतम स्वामी का संवाद भी मनोरंजक है। इस तरह यह ग्रन्थ ऐतिहासिक एवं दार्शनिक कथातत्वों की दृष्टि से महत्व का है।[3]

स्थानांगसूत्र--

स्थानांगसूत्र में तत्वों एवं लोकस्थिति आदि का वर्णन संख्या की प्रधानता से किया गया है। अतः इसमें कथातत्व कम है। महापद्म भावी तीर्थंकर की कथा इस ग्रन्थ में उपलब्ध है।[4] श्रमणी पोट्टिला की कथा इसमें आयी है।[5] तथा सात निन्हवों का वर्णन भी इस ग्रन्थ में है। इस सामग्री से तथा कुछ उपमाओं और प्रतीकों से कथाबीजों की खोज इसमें की जा सकती है।

समवायांग—

समवायांगसूत्र में दार्शनिक तत्वों का निरूपण संख्या के क्रम से किया गया है।[6] जैसे—लोक एक है, दण्ड और बन्ध दो हैं। शल्य तीन हैं। चार कषाय हैं। पांच क्रियाएँ, व्रत, समिति आदि हैं। इसके साथ ही तीर्थंकरों, गणधर, चक्रवर्ती, वासुदेव, आदि धार्मिक महापुरुषों की जीवनियों की कुछ घटनाएँ इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। अतः इस ग्रन्थ में कथातत्वों की अपेक्षा चरिततत्वों का समावेश अधिक है।

व्याख्याप्रज्ञप्ति (भगवतीसूत्र)--

भगवतीसूत्र विशालकाय ग्रन्थ है। इसमें सैकड़ों विषय हैं। धर्म, दर्शन के अतिरिक्त आधुनिक विज्ञान से सम्बन्धित सामग्री भी इसमें पर्याप्त है। इस ग्रन्थ में महावीर के साथ वार्ता करने वाले कई पुरुषों और स्त्रियों की कथाएँ हैं। शिवराज

---

१. सूत्रकृतांग, द्वितीय श्रुतस्कन्ध, प्रथम अध्ययन, सूत्र ६३८ से ६४४।
२. उपाध्ये, डा० ए० एन०, बृहतकथा कोश, भूमिका।
३. सूत्रकृतांग सं० श्रीचन्द सुराना 'सरस', ब्यावर, १९८२
४. स्थानांगसूत्र, स्थान ८, ६२५ सूत्र
५. वही, स्थान ८, ६२६ सूत्र
६. समवायांग—गुजराती रूपान्तर पं० दलसुख मालवणिया, अहमदाबाद।

ऋषि, जामालि, उदयनराजा, जयन्ती श्रमणोपासिका, शंख, सोमिल, सुदर्शन आदि कई व्यक्तियों के जीवन की महत्वपूर्ण घटनाएँ इस ग्रन्थ में वर्णित हैं। "सूत्र २.१ में आयी हुई कात्यायन स्कन्द की कथा सुन्दर है। इसकी घटनाओं में रसमत्ता है। और ये घटनाएँ कथातत्व का सृजन करने में पूर्ण सक्षम हैं।"[1] सामान्य व्यक्तियों की कथाओं के लिए तथा महावीर के साथ उनके सम्पर्क की जानकारी के लिए भगवतीसूत्र में अच्छी सामग्री है। गोशालक के सम्बन्ध में सर्वाधिक प्रामाणिक जानकारी इसी ग्रन्थ में है। राजा चेटक और कूणिक के महायुद्धों का वर्णन इसमें है। मंगलाचरण की परम्परा का निर्वाह इसी आगम ग्रन्थ में है।[2] महामन्त्र नवकार का सर्वप्रथम उल्लेख इसी ग्रन्थ में मिलता है।[3] वस्तुतः यह ग्रन्थ जिज्ञासाओं और उनके समाधानों का ग्रन्थ है। इसे तत्कालीन संस्कृति का विश्वकोश कहा जा सकता है।[4]

ज्ञाताधर्मकथा—

आगम ग्रन्थों में कथातत्व के अध्ययन की दृष्टि से ज्ञाताधर्मकथा में पर्याप्त सामग्री है। इसमें विभिन्न दृष्टान्त एवं धर्मकथाएं हैं, जिनके माध्यम से जैन तत्व-दर्शन को सहज रूप में जन-मानस तक पहुँचाया गया है। ज्ञाताधर्मकथा आगमिक कथाओं का प्रतिनिधि ग्रन्थ है।[5] इसमें कथाओं की विविधता और प्रौढ़ता है। मेघकुमार (प्र० अ०) थावच्चापुत्र (५), मल्ली (८) तथा द्रौपदी (१६) की कथाएं ऐतिहासिक वातावरण प्रस्तुत करती हैं। प्रतिबुद्ध राजा, अर्हन्नक व्यापारी, राजा रुक्मी, स्वर्णकार की कथा, चित्रकार कथा, चोक्खा परिव्राजिका आदि कथाएं मल्ली की कथा की अवान्तर कथाएं हैं। मूल कथा के साथ अवान्तर कथा की परम्परा की जानकारी के लिए ज्ञाताधर्मकथा आधारभूत स्रोत है। ये कथाएं कल्पनाप्रधान एवं सोद्देश्य हैं। इसी तरह जिनपाल एवं जिनरक्षित की कथा (९), तेतलीपुत्र (१४), सुषमा की कथा (१८), पुण्डरीक एवं पुण्डरीक कथा (१९), कल्पना-प्रधान कथाएँ हैं।

ज्ञाताधर्मकथा में दृष्टान्त और रूपक कथाएँ भी हैं। मयूरी के अण्डों के दृष्टान्त से श्रद्धा और संशय के फल को प्रकट किया गया है (३)। दो कछुओं के उदाहरण से संयमी और असंयमी साधक के परिणामों को उपस्थित किया गया है (४)। तुम्बे के दृष्टान्त से कर्मवाद को स्पष्ट किया गया है (६)। चन्द्रमा के उदाहरण से आत्मा की ज्योति की स्थिति स्पष्ट की गयी है (१०)। दावद्रव नामक वृक्ष के उदाहरण द्वारा आराधक और विराधक के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है (११)। ये दृष्टान्त कथाएं परवर्ती कथा साहित्य के लिए प्रेरणा प्रदान करती हैं। इनकी मौलिकता असंदिग्ध है।

इस ग्रन्थ में कुछ रूपक कथाएं भी हैं।[6] दूसरे अध्ययन की कथा धन्ना सार्थवाह एवं विजय चोर की कथा है। यह आत्मा और शरीर के सम्बन्ध का रूपक है (२)। सातवें अध्ययन की रोहिणी कथा पाँच व्रतों की रक्षा और वृद्धि को रूपक द्वारा प्रस्तुत करती है। उदकजात नामक कथा संक्षिप्त है किन्तु इसमें जल शुद्धि की प्रक्रिया द्वारा एक ही पदार्थ के शुभ एवं अशुभ दोनों रूपों को प्रकट किया गया है। अनेकान्त के सिद्धान्त को समझाने के लिए यह बहुत उपयोगी कथा है (१२)। नन्दीफल की कथा यद्यपि अर्थ कथा है किन्तु इसमें रूपक की प्रधानता है। धर्मगुरु के उपदेशों के प्रति आस्था रखने का स्वर इस कथा से तीव्र हुआ है (१५)। समुद्री अश्वों के रूपक द्वारा लुभावने विषयों के स्वरूप को स्पष्ट किया गया है (१७)।

ज्ञाताधर्मकथा पशु कथाओं के लिए भी उद्गम ग्रन्थ माना जा सकता है। इस एक ही ग्रन्थ में हाथी, अश्व, खरगोश, कछुए, मयूर, मेंढक, सियार आदि को कथाओं के पात्र के रूप में चित्रित किया गया है। मेरुप्रभ हाथी ने अहिंसा का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह भारतीय कथासाहित्य में अन्यत्र दुर्लभ है। ज्ञाताधर्मकथा के द्वितीय श्रुतस्कंध में यद्यपि २०६ साध्वियों की कथाएं हैं। किन्तु उनके ढांचे, नाम, उपदेश आदि एक से हैं। केवल काली की कथा पूर्ण कथा है। नारी-कथा की दृष्टि से यह कथा महत्वपूर्ण है।

---

१. शास्त्री, डा० नेमिचन्द्र, हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का परिशीलन, वैशाली, पृ० ७
२. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ० १२५
३. भगवतीसूत्र, मंगलपद।
४. सिकदर, जे०सी०, ए क्रिटिकल स्टडी आफ भगवतीसूत्र, वैशाली
५. ज्ञाताधर्मकथा, सं० पं० शोभाचन्द्र भारिल्ल, ब्यावर, १९८२
६. ज्ञाताधर्मकथा (गुजराती अनुवाद, गोपालदास) भूमिका

उपासकदशा—

उपासकदशांग में महावीर के प्रमुख दश श्रावकों का जीवन-चरित्र वर्णित है ।[1] इन कथाओं में यद्यपि वर्णकों का प्रयोग है फिर भी प्रत्येक कथा का स्वतन्त्र महत्व भी है । व्रतों के पालन में अथवा धर्म की आराधना में उपस्थित होने वाले विघ्नों, समस्याओं का सामना साधक कैसे करे इसको प्रतिपादित करना ही इन कथाओं का मुख्य प्रतिपाद्य है । कथातत्वों का बाहुल्य न होते हुए भी इन कथाओं के वर्णन पाठक को आकर्षित करते हैं । समाज एवं संस्कृति विषयक सामग्री उवासगदसाओ की कथाओं में पर्याप्त है ।[2] ये कथाएं आज भी श्रावक-धर्म के उपासकों के लिए आदर्श बनी हैं । किन्तु उन श्रावकों की साधना-पद्धति के प्रति पाठकों का आकर्षण कम है, उनकी वर्णित समृद्धि के प्रति उनका अधिक लगाव है ।

अन्तकृद्दशासूत्र—

जन्म-मरण की परम्परा का अपनी साधना से अन्त कर देने वाले दश व्यक्तियों की कथाओं का इसमें वर्णन होने से इस ग्रन्थ को अन्तकृद्दशांग कहा गया है ।[3] इस ग्रन्थ में वर्णित कुछ कथाओं का सम्बन्ध अरिष्टनेमि और कृष्ण-वासुदेव के युग से है । गजसुकुमाल की कथा लौकिक कथा के अनुरूप विकसित हुई है । द्वारिका नगरी के विनाश का वर्णन कथा-यात्रा में कौतूहल तत्व का प्रेरक है । ग्रन्थ के अन्तिम तीन वर्गों की कथाओं का सम्बन्ध महावीर तथा राजा श्रेणिक के साथ है । इनमें अर्जुन मालाकार की कथा तथा सुदर्शन सेठ की अवान्तर-कथा ने पाठकों का ध्यान अधिक आकर्षित किया है । अतिमुक्तकुमार की कथा बालकथा की उत्सुकता को लिए हुए है । इन कथाओं के साथ राजकीय परिवारों के व्यक्तियों का सम्बन्ध जुड़ा हुआ है । साधना के अनुभवों का साधारणीकरण करने में ये कथाएं कुछ सफल हुई हैं ।

अनुत्तरोपपातिकदशा—

इस ग्रन्थ में उन लोगों की कथाएं हैं, जिन्होंने तपःसाधना के द्वारा अनुत्तर विमानों (देवलोकों) की प्राप्ति की है ।[4] कुल ३३ कथाएं हैं, जिनमें से २३ कथाएं राजकुमारों की हैं और १० कथाएं सामान्य पात्रों की । इनमें धन्यकुमार सार्थवाह-पुत्र की कथा अधिक हृदयग्राही है ।

विपाकसूत्र—

विपाक सूत्र में कर्म-परिणामों की कथाएं हैं ।[5] पहले स्कन्ध में बुरे कर्मों के दुखदायी परिणामों को प्रकट करने वाली दश कथाएं हैं । मृगापुत्र की कथा में कई अवान्तर कथाएं गुम्फित हैं । उद्देश्य की प्रधानता होने से कथातत्व अधिक विकसित नहीं हुआ है किन्तु वर्णनों का आकर्षण बना हुआ है । अति-प्राकृत तत्वों का समावेश इन कथाओं को लोक से जोड़ता है । व्यापारी, कसाई, पुरोहित, कोतवाल, वैद्य, धीवर, रसोइया, वेश्या आदि पात्रों से सम्बन्ध होने से इन प्राकृत कथाओं में लोकतत्वों का समावेश अधिक हुआ है । दूसरे स्कन्ध की कथाएं अच्छे कर्मों के परिणाम को बताने वाली हैं । सुबाहु की कथा विस्तृत है । अन्य कथाओं में प्रायः वर्णक हैं । इस ग्रन्थ की कथाएं कथोपकथन की दृष्टि से अधिक समृद्ध हैं । उनकी इस शैली ने परवर्ती कथा साहित्य को भी प्रभावित किया है । हिंसा, चोरी, मैथुन के दुष्परिणामों को ये कथाएं व्यक्त करती हैं । किन्तु इनमें असत्य एवं परिग्रह के परिणामों को प्रकट करने वाली कथाएं नहीं हैं । सम्भवतः इस ग्रन्थ की कुछ कथाएं लुप्त भी हुई हों । क्योंकि नन्दी और समवायांगसूत्र में विपाकसूत्र की जो कथावस्तु वर्णित है उसमें असत्य एवं परिग्रह के दुष्परिणामों की कथाएं होने के उल्लेख हैं ।[6]

---

१. उवासगदसाओ—सं० डा० छगनलाल शास्त्री, ब्यावर, १९८१
२. उपासकदशासूत्रम्—(अंग्रेजी अनुवाद) डा० ए० एफ० हार्नले, कलकत्ता
३. अन्तकृद्दशा—सं० डा० साध्वी दिव्यप्रभा, ब्यावर, १९८१
४. अनुत्तरोपपातिकदशा—सं० डा० साध्वी मुक्तिप्रभा, ब्यावर, १९८१
५. विपाकसूत्र, सं० डा० पी० एल० वैद्य, पूना
६. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि, जै० आ० सा०, पृष्ठ १९२

उपांग आगम साहित्य—

औपपातिकसूत्र में भगवान महावीर की विशेष उपदेश विधि का निरूपण है। गौतम इन्द्रभूति के प्रश्नों और महावीर के उत्तरों में जो संवादतत्त्व विकसित हुआ है, वह कई कथाओं के लिए आधार प्रदान करता है। नगर-वर्णन, शरीर-वर्णन, आदि में आलंकारिक भाषा व शैली का प्रयोग इस ग्रन्थ में है। राजप्रश्नीयसूत्र में राजा प्रदेशी और केशी श्रमण के बीच हुआ संवाद विशेष महत्व का है। इसमें कई कथासूत्र विद्यमान हैं। इस प्रसंग में धातु के व्यापारियों की कथा मनोरंजक है। उसे लोक से उठाकर प्रस्तुत किया गया है।

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में यद्यपि भूगोल सम्बन्धी विवरण है किन्तु इसमें नाभि कुलकर, ऋषभदेव तीर्थंकर एवं भरत चक्रवर्ती की कथाओं का विवरण भी है। पौराणिक कथा तत्वों के लिए इस ग्रन्थ की सामग्री उपयोगी है। निरयावलिया एवं कप्पिया आदि सूत्रों में राजा श्रेणिक, रानी चेलना, राजकुमार कूणिक की कथा विस्तार से है। इसमें सोमिल ब्राह्मण एवं सार्थवाह-पत्नी सुभद्रा की जो प्रभावक कथाएं दी हैं। अधिक संतान की चाह और उससे प्राप्त होने वाले दुःख को इस कथा ने रेखांकित किया है। पुष्पिका उपांग में अपने सिद्धान्त के महत्व को प्रतिपादित करने की कथाएं हैं। इनमें कौतूहल तत्व की प्रधानता है। पुष्पचूला में दश देवियों का वर्णन है। उनमें पूर्वभव भी वर्णित है। वृष्णिदशा में कृष्ण-कथा का विस्तार है। इसमें निषध कुमार की कथा आकर्षक है।

मूलसूत्र—

मूलसूत्रों में कथा-साहित्य की दृष्टि से उत्तराध्ययनसूत्र विशेष महत्व का है। इसमें शिक्षाप्रद एवं भावनाप्रद कथाओं का समावेश है। राजर्षि संजय (१८), मृगापुत्र (१९), रथनेमि (२१) आदि इसमें वैराग्यप्रधान कथाएं हैं। नमि-करकण्डु, द्विमुख आदि (१८) प्रत्येकबुद्धों की कथाएं हैं। कुछ दृष्टान्त कथाएँ इसमें दी गई हैं। कुलिया, सूअर, मृग, बकरा, बिडाल आदि के दृष्टान्त पशु-कथाओं की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं। चोर, गाड़ीवान, ग्वाला आदि के दृष्टान्त लोक कथाओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। इसी तरह के अन्य कई दृष्टान्त कथा-बीज के रूप में प्रस्तुत हुए हैं। उत्तराध्ययन सूत्र में यद्यपि प्राकृत गाथाओं में कथा-संकेत ही अधिक हैं, किन्तु उनका विकास इस ग्रन्थ के व्याख्या साहित्य में अच्छी तरह हुआ है। अतः कथाओं के विकास को समझने की दृष्टि से उत्तराध्ययन सूत्र का विशेष महत्व है। इस ग्रन्थ की कथाओं की समानता बौद्ध साहित्य और ब्राह्मण साहित्य के प्राचीन आख्यानों से भी होती है। अतः कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन को भी इस ग्रन्थ की सामग्री आगे बढ़ाती है।

धम्मकहाणुओगो—

धम्मकहाणुओगो में मुनि श्री कमलजी ने आगम साहित्य के प्रायः इन सभी ग्रन्थों से कथात्मक सामग्री का चयन कर उसे एक स्थान पर एकत्र कर दिया है। इस चयन में यह भी दृष्टि देखने को मिलती है कि किसी एक कथा की सामग्री यदि भिन्न-भिन्न आगम ग्रन्थों में प्राप्त है तो पुनरावृत्ति से बचते हुए उसे एक साथ ही संकलित कर दिया गया है। यह भी ध्यान रखा गया है कि इससे कथा-क्रम भी न टूटे। इस तरह "धम्मकहाणुओग" आगम साहित्य का व्यवस्थित कथा-कोश कहा जा सकता है। इस ग्रन्थ में कथाओं का पात्रों की प्रधानता की दृष्टि से इस प्रकार विभाजन किया गया है—

(क) उत्तम पुरुषों के कथानक (मूल पृ० १—१४४) (हिन्दी संस्करण—पृ० १-२५७) प्रथम स्कन्ध

१. कुलकर, २. ऋषभचरित, ३. मल्ली-चरित, ४. अरिष्टनेमि, ५. पार्श्वचरित ६. महावीरचरित, ७. महापद्म चरित, ८. तीर्थंकरों की दीक्षा, ९. भरत चक्रवर्ती-चरित १०. चक्रवर्ती-दीक्षा, ११. बलदेव-वासुदेव।

(ख) श्रमण कथानक (मूल पृ० १-१७६) (हिन्दी संस्करण द्वितीय स्कन्ध पृ. १-३७६)

१. महाबल, २. कार्तिक श्रेष्ठि आदि के कथानक, ३. गंगदत्त ४. चित्त सम्भूति, ५. निषध, ६. गौतम एवं अन्य श्रमण, ७. अनीयश कुमार आदि, ८. गजसुकुमाल, ९. सुमुख आदि १०. जालि आदि श्रमण, ११. थावच्चापुत्र आदि १२. रथनेमि १३. अंगती, पूर्णभद्र आदि १४. जितशत्रु एवं सुबुद्धि कथानक १५. नमिराजर्षि, १६. ऋषभदत्त एवं देवानन्दा का चरित, १७. मोरियपुत्र तपस्वी, १८. आर्द्रक एवं अन्यतीर्थिक, १९. अतिमुक्तककुमार, २०. अलक्षराजा, २१. मेघकुमार, २२. मकाति श्रमण,

२३. अर्जुन मालाकार, २४. कश्यप श्रमण, २५. श्रेणिकपुत्र जालक आदि, २६. धन्ना सार्थवाह, २७. सुनक्षत्र, २८. सुबाहुकुमार, २९. भद्रनन्दी आदि श्रमण, ३०. पद्म श्रमण, ३१. हरिकेशबल, ३२. जयघोष-विजयघोष, ३३. अनाथी महा-निर्ग्रन्थ ३४. समुद्रपालीय, ३५. मृगापुत्र, ३६. संजय राजा ३७. इषुकार राजा, ३८. स्कान्दक, ३९. मोद्गल, ४०. शिवराजर्षि, ४१. उदायन राजा, ४२. जिनपाल-जिनरक्षित, ४३, कालासवेसियपुत्र, ४४. उदक पेढाल पुत्र, ४५. नंदीफलज्ञात, ४६. धन्य सार्थवाह, ४७. कालोदाई, ४८. पुण्डरीक-कण्डरीक एवं ४९. स्थविरावली।

(ग) **श्रमणी कथानक** (मूल पृ० १७७-२४०) हिन्दी संस्करण, भाग २, तृतीय स्कन्ध, पृ० १ से १२४

१. द्रौपदी कथानक, २. पद्मावती आदि, ३. पोट्टिला कथानक, ४. काली श्रमणी आदि, ५. राजी श्रमणी ६. भूता श्रमणी, ७. सुभद्रा कथानक, ८. नन्दा आदि श्रमणी एवं ९. जयन्ती कथानक।

(घ) **श्रमणोपासक कथानक** (मूल पृ० २४१-३७८) हिन्दी संस्करण, भाग २, चतुर्थ स्कन्ध

१. सोमिल ब्राह्मण, २. प्रदेशी कथानक, ३. तुंगिया नगरी के श्रमणोपासक, ४. नन्द मणिकार, ५. आनन्द गाथापति, ६. कामदेव, ७. चूलनीपिता, ८. सुरादेव, ९. चुल्लशतक, १०. कुण्डकोलिय, ११. सद्दालपुत्र, १२. महाशतक, १३. नन्दिनीपिता, १४. सालिहीपिता, १५. ऋषिभद्रपुत्र, १६. शंख श्रमणोपासक, १७. वरुण-नाग, १८. सोमिल ब्राह्मण, १९. श्रमणोपासकों की देवलोक में स्थिति, २०. कूणिक, २१. अम्बड परिव्राजक, २२. उदाई, भूतानन्द एवं हस्ति राजा तथा २३. मद्दुय श्रमणोपासक।

(ङ) **निन्हव-कथानक** (मूल पृ० ३७९-४१८) हिन्दी संस्करण, भाग २, पंचम स्कन्ध, पृ० १ से ८०

१. सात निन्हव, २. जमालि, ३. गोशालक।

(च) **धर्मकथानुयोग के प्रकीर्णक कथानक** (मूल पृ० ४१९-५०२) हिन्दी संस्करण, भाग २, षष्ठ स्कन्ध

१. श्रेणिक-चेलना, २. रथमुसल-संग्राम, ३. काल आदि की मरणकथा, ४. महाशिलाकंटक-संग्राम, ५. विजय-चोर, ६. मयूरी अंडक, ७. कूर्मकथा, ८. रोहिणीकथा, ९. अश्वकथा, १०. मृगापुत्र, ११. उज्झितक कथा, १२. अभग्नसेन, १३. शकटकथा, १४. बृहस्पतिदत्त कथा, १५. नंदीवर्धन कुमार, १६. अम्बरदत्तकथा, १७. सोरियदत्त, १८. देवदत्ता कथानक, १९. अंजू कथानक, २०. बाल तपस्वी पूरण एवं २१ महाशुक्ल देव की कथा।

इस प्रकार धम्मकहाणुओगो के मूल संस्करण के लगभग ६५० पृष्ठों में आगमों के मूल ग्रन्थों में प्राप्त धर्मकथाओं के मूल प्राकृत पाठ का संकलन है। कथाओं का कौन-सा अंश किस आगम से लिया गया है, उसके सन्दर्भ भी दिये गये हैं। कथाओं को विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत रखा गया है, ताकि मूल पाठ से ही कथा के कथानक को समझा जा सके। इस सामग्री के संकलन, संशोधन एवं उसे व्यवस्थित कर इस रूप में प्रस्तुत करने में मुनिश्री का अथक परिश्रम एवं आगम-अध्ययन में अगाध ज्ञान स्पष्ट रूप से झलकता है। (अब इसका मूल एवं हिन्दी अनुवाद भी प्रकाशित हो रहा है, प्रथम भाग छप चुका है तथा द्वितीय भाग पाठकों के हाथों में है। इसमें मूल प्राकृत पाठ के सामने ही हिन्दी अनुवाद दिया गया है। जिससे हिन्दी पाठकों को मूलानुसार भाव समझने में बहुत ही सुविधा हो गई है।)

कथानकों का मूल्यांकन—

अर्धमागधी के आगम साहित्य में जो कथा-बीज, रूपक अथवा सूक्ष्म कथाएं प्राप्त हैं, उनका विश्लेषण एवं विस्तार आगम के व्याख्या साहित्य में हुआ है। जिस प्रकार रामायण और महाभारत परवर्ती संस्कृत साहित्य के लिए आधारभूत ग्रन्थ रहे हैं उसी प्रकार संस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओं में लिखे गये जैन साहित्य ने आगम साहित्य से प्रेरणा प्राप्त की है। आगम साहित्य में उपलब्ध कथाओं के मूल रूप को यद्यपि श्रद्धेय 'कमल' मुनि जी ने धम्मकहाणुओगो में व्यवस्थित किया है। किन्तु फिर भी इसमें अभी कई रूपक, दृष्टान्त, लौकिक कथाओं आदि का संकलन करना रह गया है। वह सब एक साथ सम्भव भी नहीं है। किन्तु आगे ऐसा एक संकलन होना चाहिए।

आगमों में जो ये कथाएं उपलब्ध हैं, उनको पूरी तरह से यहाँ देना तथा उनके उत्स और विकास पर विस्तार से यहाँ विश्लेषण करना सम्भव नहीं है। यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। डा० जगदीशचन्द्र जैन ने प्राकृत कथाओं के उद्भव एवं विकास पर महत्त्वपूर्ण प्रकाश डाला है।[1] उस अध्ययन में उन्होंने आगम की कथाओं पर भी कुछ विचार प्रकट किये हैं। डा० ए० एन० उपाध्ये ने भी अपनी प्रस्तावनाओं में इस सम्बन्ध में कुछ सामग्री दी है।[2] आगम ग्रन्थों के भारतीय एवं कुछ विदेशी विद्वान सम्पादकों ने भी अपनी भूमिकाओं में कथाओं की कुछ तुलना की है। किन्तु जैन आगमों में प्राप्त सभी कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन अभी तक नहीं हो पाया है। शोध-कार्य के लिए यह उपयोगी और समृद्ध क्षेत्र है। धम्मकहाणुओगो की कुछ कथाओं की संक्षिप्त कथावस्तु देते हुए उनके सम्बन्ध में कुछ तुलनात्मक टिप्पणी प्रस्तुत करने से आगे के अध्ययन के लिए कुछ मार्ग निकल सकता है।

कुलकर—

भारतीय इतिहास की पौराणिक परम्परा में कुलकर-संस्था का वर्णन है। मानव सभ्यता के प्रारम्भिक चरण में जीवनवृत्ति का निर्देश एवं मनुष्यों को कुल की तरह इकट्ठे रहने का उपदेश देने वालों को कुलकर कहा गया है।[3] आगम ग्रन्थों में ऐसे १५ कुलकरों का उल्लेख है—इमे पण्णरस कुलगरा समुप्पज्जित्था—(जंबु. व. २, सु. २८)। कुछ ग्रन्थों में इनकी संख्या १४ है।[4] मरुदेव, नाभि, ऋषभदेव इन्हीं कुलकरों में से थे। इन कुलकरों ने समाज और राजनीति दोनों क्षेत्रों को व्यवस्थित किया था। इनकी हाकार, माकार और धिक्कार की नीति में समाज के सभी नियम समाहित थे।[5] आज के संविधान की कुञ्जी कुलकरों की इस नीति में है। जैन परम्परा के कुलकरों और वैदिक परम्परा के मनुओं के कार्य प्रायः समान हैं।[6] समवायांग एवं स्थानांग-सूत्र में केवल कुलकरों के नामों का उल्लेख है। किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति में कुलकरों की नीतियों का भी संकेत है।[7] कुलकरों की इसी परम्परा में ऋषभदेव हुए हैं।[8]

ऋषभ—

ऋषभदेव जैन परम्परा में प्रथम तीर्थंकर हुए हैं। इनके जीवन के सम्बन्ध में विशाल साहित्य लिखा गया है।[9] किन्तु आगमों में ऋषभदेव का जीवन बहुत संक्षिप्त और सरल है। इनमें उनके पूर्व-जन्मों का उल्लेख नहीं है। स्थानांगसूत्र आदि में विभिन्न प्रसंगों में ऋषभ का उल्लेख मात्र है। किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति-सूत्र में उनका विस्तृत विवरण है। उनके चरितबिन्दु इस प्रकार हैं—

१. जन्ममहिमा, २. देवों द्वारा अभिषेक, ३. राज्यकाल, ४. कलाओं का उपदेश, ५. प्रव्रज्या-ग्रहण, ६. तपश्चर्या, ७. साधु-स्वरूप, ८. संयमी जीवन की उपमाएं, ९. केवलज्ञान, १०. तीर्थ प्रवर्तन, ११. आध्यात्मिक परिवार (गण, गणधर आदि) १२. निर्वाण की महिमा।[10]

---

१. जैन, डा० जगदीश चन्द्र : प्राकृत नेरेटिव लिटरेचर, ओरिजिन एण्ड ग्रोथ, दिल्ली, १९८१

२. उपाध्ये, डा० ए० एन० : बृहत्कथाकोश की भूमिका

३. प्रजानां जीवनोपायमननान्मनवो मताः। आर्याणां कुलसंस्त्यायकृतेः कुलकरा इमे ॥
—आदिपुराण (जिनसेन) सर्ग ३, श्लोक २११

४. हरिवंशपुराण, सर्ग ७, श्लोक १२४ आदि।

५. शास्त्री, डा० नेमिचन्द्र : आदिपुराण में प्रतिपादित भारत, पृ. १२६

६. डा० फतेहसिंह : भारतीय समाजशास्त्र के मूलाधार, पृ० १३७

७. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ४

८. शास्त्री, देवेन्द्र मुनि : ऋषभदेव—एक परिशीलन, पृ० ११८ आदि।

९. देखें, वही।

१०. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ६-२३

ऋषभदेव का कथानक जैन, बौद्ध एवं वैदिक—तीनों परम्पराओं में पर्याप्त प्रचलित रहा है। वैदिक परम्परा के शिव एवं जैन परम्परा के ऋषभ का व्यक्तित्व प्रायः एकसा है। दोनों ही आदिदेव के रूप में सर्वमान्य हैं। इनके जीवन की घटनाओं में कई समानताएँ हैं।[1] बहुत सम्भव है कि शिव और ऋषभ का स्वरूप किसी आदिम लोकदेवता के स्वरूप से विकसित हुआ हो। [illegible] से शिव उनमें भिन्नता मानी गयी। ऋषभ के संयमी जीवन की जो उपमाएं दी गयी हैं वे बड़ी सटीक हैं और काव्य-जगत् में बहु-प्रचलित भी। यथा—

१. कमल के पत्ते की तरह निर्लिप्त

२. पृथ्वी की तरह सहनशील

३. शरदकाल के जल की तरह शुद्ध हृदय

४. आकाश की तरह निरावलम्ब

५. पक्षी की तरह सब तरफ से मुक्त, इत्यादि।

इन उपमाओं को ध्यान से देखने से प्रतीत होता है कि इनका घनिष्ठ सम्बन्ध प्रकृति के मुक्त वातावरण से है। जन-जीवन से है। ऋषभ प्रकृति की ही देन थे और जन-जीवन के लिए उनका व्यक्तित्व समर्पित था।

मल्ली-चरित—

श्वेताम्बर-परम्परा के अनुसार स्त्री भी तीर्थंकर हो सकती है—इस मान्यता का मूल आधार ज्ञातधर्मकथा में वर्णित मल्ली-चरित है। कथात्मक दृष्टि से इस कथा के प्रमुख तत्त्व इस प्रकार हैं—

१. महाबल एवं उसके अचल आदि छह मित्रों की घनिष्टता तथा उनके द्वारा सुख-दुःख एवं धर्मसाधना में भी साथ रहने का निश्चय।

२. सातों में महाबल की अधिक तपस्या होना और उसके फलस्वरूप उसे तीर्थंकर-नामकर्म का बन्ध।

३. मिथिला नगरी में महाबल का राजकुमारी मल्ली के रूप में जन्म। उसके छह साथियों की भी विभिन्न प्रदेशों में राजकुमारों के रूप में उत्पत्ति।

४. विभिन्न निमित्त पाकर उन छह राजकुमारों की मल्ली राजकुमारी के सौन्दर्य पर आसक्ति और विवाह के लिए एक साथ मिथिला पर सैन्य सहित आगमन।

५. मल्ली के पिता राजा कुम्भ इन छहों राजकुमारों के आक्रमण से दुखी। उनकी इस चिन्ता को पुत्री मल्ली द्वारा निवारण करने की प्रतिज्ञा और पिता को दिलासा।

६. मल्ली द्वारा पहले से तैयार की गयी अपनी स्वर्ण प्रतिमा से सड़े भोजन की दुर्गन्ध के द्वारा उन छहों राजकुमारों को प्रतिबोधन देना।

७. प्रतिबोधन से जाति-स्मरण ज्ञान एवं वैराग्य प्राप्ति के द्वारा मल्ली के साथ ही छहों राजकुमारों की भी दीक्षा।

८. मल्ली द्वारा चैत्र शुक्ला चतुर्थी को निर्वाण की प्राप्ति।

भारतीय कथा-साहित्य के सन्दर्भ में देखा जाय तो इस मल्ली कथा में मूल अभिप्राय है—'स्त्री के रूप पर आसक्त पुरुषों को किसी प्रभावशाली उपाय के द्वारा प्रतिबोधन देना।' यह अभिप्राय प्राचीन समय से कथा-साहित्य में प्रयुक्त होता रहा है।[2] बौद्ध साहित्य में भिक्षुणी शुभा की कथा भी इसी प्रकार की है। उस पर एक व्यक्ति आसक्त हो गया। वह शुभा के नेत्रों की बहुत

१. शास्त्री, पं० कैलाशचन्द्र : जैन साहित्य के इतिहास की पूर्व पीठिका

२. देखें, पेन्जर : 'द ओसन आफ स्टोरी' भूमिका।

प्रशंसा करता था। एक दिन उससे परेशान होकर शुभा ने अपने नाखूनों से अपने नेत्र निकालकर उस कामुक व्यक्ति के हाथ पर रख दिये और कहा कि जिन आँखों पर तुम मोहित थे, उन्हें ले जाओ। इसी तरह की अन्य भी कथाएं प्राप्त हैं।[1]

उत्तराध्ययनसूत्र में राजीमती ने रथनेमि को वमन के उदाहरण द्वारा प्रतिबोधित किया।[2] आख्यानमणिकोश की रोहिणी नामक कथा में रोहिणी शीलवती ने अपने ऊपर आसक्त राजा को विभिन्न दृष्टान्त सुनाकर प्रतिबोधित किया।[3] रयणचूडरायचरियं में भी इस प्रकार की कथाएं हैं।[4] कथासरित्सागर में भी इस अभिप्राय को व्यक्त करने वाली कथाएं प्राप्त हैं। किन्तु इन कथाओं के अवलोकन से स्पष्ट है कि मल्ली की कथा अधिक व्यापक और प्रभावशाली है। इसमें प्रतीकों की योजना अधिक संवेदनशील है। स्वर्णप्रतिमा का रूप नारी-सौन्दर्य एवं उसकी अभिजात्य स्थिति का प्रतीक है। प्रतिमा के ऊपर छेद पर ढका हुआ कमल बाहरी सौन्दर्य के आकर्षण को व्यक्त करता है तथा प्रतिमा के भीतर भोजन की सड़ांध नारी-शरीर की भीतरी अशुचिता को व्यक्त करने के साथ साथ कमल के नीचे रहने वाले कीचड़ को भी उद्घाटित कर देती है।[5] इस दुर्गन्ध से राजाओं के द्वारा मुँह ढककर, मुँह फेरकर खड़े हो जाने की घटना[6] संयमित होकर आसक्ति से विमुख हो जाने की वृत्ति को प्रकट कर देती है।

तीर्थंकरचरित—

आगम ग्रन्थों में चौबीस तीर्थंकरों के सम्बन्ध में उनकी जीवनी सम्बन्धी कोई विशेष सामग्री नहीं है। परवर्ती ग्रन्थों में तीर्थंकरों के चरितों का विकास हुआ है। 'अरिट्ठनेमि' और पार्श्वनाथ का संक्षिप्त चरित कल्पसूत्र में है।[7] अरिष्टनेमि के इस चरित में राजीमती से विवाह का प्रसंग एवं पशुहिंसा के प्रति करुणा वाला प्रसंग कल्पसूत्र में नहीं है। उत्तराध्ययन सूत्र में इसकी संक्षिप्त जानकारी है।[8] किन्तु व्याख्या साहित्य में इसका विस्तार है।[9] यही स्थिति पार्श्वनाथ के चरित के साथ है। इनके सम्बन्ध में पर्याप्त लिखा जा चुका है।[10]

भगवान महावीर का चरित कुछ विस्तार से आगम ग्रंथों में प्राप्त है। आचारांग के द्वितीय श्रुतस्कन्ध और कल्पसूत्र में महावीर के जीवन का अधिकांश भाग वर्णित है। कुछ घटनाएं भगवतीसूत्र और औपपातिक सूत्र से ज्ञात होती है।[11] स्थानांगसूत्र से ज्ञात होता है कि महावीर के निर्वाण के अवसर पर देवताओं द्वारा प्रकाश किया गया था,[12] जो वर्तमान में दीपावली उत्सव का आधार है। महावीर की जीवनी पर विस्तृत प्रकाश पड़ चुका है।[13]

भरत चक्रवर्ती—

आगम ग्रन्थों में भरत चक्रवर्ती की कथा जम्बुद्दीवपण्णत्ति में कुछ विस्तार से है। स्थानांग एवं समवायांगसूत्र में इस

---

१. जैन, शिवचरणलाल : आचार्य बुद्धघोष और उनकी अट्ठकथाएं, दिल्ली, १९६९।
२. उत्तराध्ययनसूत्र, अ० २२, गा० ४१-४२
३. आख्यानमणिकोश, कथानक संख्या १५, पृ० ६१
४. रयणचूडरायचरियं, सं० श्री विजयकुमुदसूरि, पृ० ५४
५. तीसे कणगपडिमाए, मत्थयाओ तं पउमं अवणेइ। —धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ४३
६. पिहेत्ता परम्मुहा चिट्ठंति। —धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ४३
७. कल्पसूत्रम्—सं. म. विनयसागर, जयपुर
८. उत्तराध्ययनसूत्र, अध्ययन २२वां
९. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : भगवान अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण : एक अनुशीलन
१०. वही, भगवान पार्श्व—एक समीक्षात्मक अध्ययन
११. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ५४-८५
१२. वही, पैराग्राफ ३५८; स्थानांग, अ. १, सू. ७६
१३. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : भगवान महावीर—एक अनुशीलन, आदि पुस्तकें।

कथा के छिटपुट सन्दर्भ ही आये हैं।[1] भरत चक्रवर्ती के सम्बन्ध में यद्यपि समवायांग एवं परवर्ती जैन साहित्य में यह उल्लेख है कि वे ऋषभदेव के पुत्र थे तथा बाहुबली उनका भाई था जिनसे उनका युद्ध भी हुआ था।[2] किन्तु जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति के इस अंश में यह कहीं उल्लेख नहीं है कि भरत, ऋषभदेव के पुत्र थे तथा उन्हें ऋषभदेव ने अपना राज्य सौंपा था। इसी तरह बाहुबली के साथ भी भरत का जो अहिंसक युद्ध हुआ था उसका वर्णन भी आगम के इस कथांश में नहीं है। ३-४थी शताब्दी के विमलसूरिकृत 'पउमचरियं' नामक प्राकृत ग्रन्थ में भी भरत और बाहुबली को दो प्रतिपक्षी राजाओं के रूप में चित्रित किया है, दो भाइयों के रूप में नहीं।[3] अतः यहाँ यह चिंतन करने की गुंजाइश है कि ऋषभ, भरत और बाहुबली इन तीन प्रभावशाली व्यक्तियों का आपसी सम्बन्ध सम्भवतः चौथी शताब्दी के बाद साहित्य जगत में स्थापित किया गया है।[4] वैदिक साहित्य में ऋषभ एवं भरत के पारिवारिक सम्बन्ध की सूचनाएँ भी पौराणिक युग के साहित्य में ही मिलती हैं। प्राचीन बौद्ध साहित्य में इस प्रकार के उल्लेख ही नहीं हैं। अतः यह गवेषणा का विषय है कि ऋषभ, भरत और बाहुबली का पारिवारिक सम्बन्ध कब से और किन कारणों से भारतीय साहित्य में प्रविष्ट हुआ है।[5]

'धम्मकहाणुओगो' में भरत चक्रवर्ती का वर्णन चक्ररत्न की उत्पत्ति से प्रारम्भ होता है। आगे उसकी दिग्विजय का विस्तार से इसमें वर्णन है। मागधतीर्थ, दक्षिण दिशा, प्रभासतीर्थ (पश्चिम) तक सिन्धु नदी के तटवर्ती प्रदेशों तक भरत ने विजय यात्रा की। वैताढ्य पर्वत पर भरत की किरातराज के साथ जो मुठभेड़ हुई उसका इसमें विस्तार से वर्णन है। किरात और नागकुमार के आपसी सहयोग का भी इसमें वर्णन है। वापिस अयोध्या लौटते समय नमि-विनमि के साथ घमासान युद्ध का वर्णन साहित्यिक प्राकृत में किया गया है। अयोध्या लौटने पर भरत का महाराज्याभिषेक किया गया[6] और विजय-महोत्सव मनाया गया।[7] इसके बाद भरत के शासन करने का वर्णन है। तदुपरान्त दीक्षा प्राप्त कर निर्वाण प्राप्त करने का।[8] यहाँ भी भरत ने ऋषभ से दीक्षा प्राप्त की अथवा उनसे कहीं जाकर वह मिला, ऐसा कोईउल्लेख नहीं है। जबकि परवर्ती साहित्य में भरत की कथा बहुत विकसित हो चुकी है।[9] इस देश का नाम इसी भरत चक्रवर्ती के नाम पर भारतवर्ष प्रचलित हुआ है, इस सम्बन्ध में प्रायः विद्वान सहमत हैं।[10] क्योंकि प्राचीन समय से ही इस प्रकार के उल्लेख प्राप्त हैं। भरत चक्रवर्ती की दिग्विजय यात्रा का ऐतिहासिक और राजनैतिक दृष्टि से भी महत्व है। कालिदास द्वारा वर्णित राजा रघु की दिग्विजय यात्रा के साथ इस प्रसंग का तुलनात्मक अध्ययन कई सांस्कृतिक तथ्य उजागर कर सकता है।

श्रमण कथानक—

आगम ग्रन्थों की सामग्री के आधार पर धम्मकहाणुओगो में लगभग ४८ श्रमणों के कथानक संगृहीत हैं। यद्यपि हजारों की संख्या में व्यक्तियों ने दीक्षाएँ लेकर श्रमण-जीवन अंगीकार किया था। किन्तु आगम ग्रन्थों में कुछ प्रमुख श्रमणों की कथाएँ ही उदाहरण के रूप में प्रस्तुत की गयी हैं। इनमें अरिष्टनेमि और महावीर तीर्थंकर के तीर्थ में दीक्षा प्राप्त श्रमणों की कथाएँ अधिक

---

१. धम्मकहाणुओगो, मूल, पृ० ११४-१३८
२. आवश्यकचूर्णि, पृ० २१० आदि एवं त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित आदि में
३. पउमचरियं, ४.३५-५५ गाथा एवं द्रष्टव्य लेखक का निबन्ध 'बाहुबली स्टोरी इन प्राकृत लिटरेचर' गोम्मटेश्वर कोमेमोरेशन वोल्यूम, १९८१ में प्रकाशित, पृ० ७६-८२।
४. वसुदेवहिण्डी, प्रथम खण्ड, पृ० १८६
५. मालवणिया, पं. दलसुख, 'द स्टोरी ऑफ बाहुबली' सम्बोधि, पार्ट ६, भा. ३-४, १९७८
६. धम्मकहाणुओगो, मूल पैराग्राफ ५७०-५७२ पृ० १३४
७. वही, पैरा०, ५७८ पृ० १३६ तथा जैनागम-निर्देशिका पृ० ६८५ आदि।
८. वही, पैरा० ५८३, ५८४ पृ० १३७
९. देखें—शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : ऋषभदेव—एक परिशीलन, पृ० १८१-२२४
१०. देखें—मुनि महेन्द्र कुमार 'प्रथम' : तीर्थंकर ऋषभ और चक्रवर्ती भरत, कलकत्ता, १९७४ पृ० १४१ आदि।

मात्रा में अंकित हुई हैं। ये कथाएं विभिन्न आगमों में प्राप्त हैं, जिन्हें मुनि 'कमल' जी ने तीर्थंकर क्रम से व्यवस्थित किया है। इन सभी श्रमणों की कथाओं का गहराई से मूल्यांकन कर पाना यहाँ सम्भव नहीं है। कुछ कथानकों पर दृष्टिपात किया जा सकता है।

विमलनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में बलराजा और प्रभावती रानी के महाबल नामक पुत्र का जन्म होता है। स्वप्नदर्शन, गर्भरक्षा, जन्मोत्सव, महाबल की शिक्षा आदि का वर्णन वर्णकों के अनुसार है। धर्मघोष साधु से दीक्षा लेकर महाबल अगले जन्म में वाणिग्राम में सेठ कुल में जन्म लेता है, जहाँ उसका नाम सुदर्शन रखा जाता है। यह सुदर्शन समय आने पर महावीर तीर्थ में दीक्षित होता है और तपश्चर्या के उपरान्त मुक्ति प्राप्त करता है।[1] सुदर्शन नामक सेठ की कथा जैन साहित्य में बहुत प्रचलित है। णायाधम्मकहा में सुदर्शन गृहस्थ एक जैनाचार्य से दीक्षा ग्रहण करता है।[2] स्थानांगसूत्र में पाँचवें अन्तकृत केवली के रूप में सुदर्शन का उल्लेख है।[3] प्राकृत एवं अपभ्रंश के कथाग्रन्थों में भी सुदर्शन नाम नायक के रूप में प्रसिद्ध रहा है।[4]

मुनिसुव्रतनाथ तीर्थंकर के तीर्थ में कार्तिक सेठ एवं गंगदत्त गाथापति की दीक्षा का कथानक सामान्य ढंग से प्रस्तुत किया गया है। एक हजार आठ वणिक पुत्रों के साथ कार्तिक सेठ की दीक्षा का वर्णन प्रभावोत्पादक है।[5]

अरिष्टनेमि के तीर्थ में चित्त एवं संभूति की कथा का वर्णन उत्तराध्ययन में हुआ है। कुल ३५ गाथाओं में यह कथा संक्षेप में कही गयी है। इस कथा का विस्तार उत्तराध्ययनसूत्र की सुखबोधा टीका में हुआ है। यह दो भाइयों के अटूट प्रेम की कथा है। परस्पर इस अनुराग के कारण वे दोनों ६ भवों तक एक-दूसरे के हित की चिन्ता करते रहते हैं। वाराणसी में भूतदत्त चाण्डल के चित्त और सम्भूति नामक दो पुत्र थे। वे संगीतकला में निष्णात थे तथा रूप और लावण्य के भी धनी थे किन्तु चाण्डाल जाति का होने के कारण उन्हें समाज में तिरस्कृत होना पड़ता है। अन्त में वे दीक्षा धारण कर स्वर्ग प्राप्त करते हैं। तब उनके अगले भव की परम्परा चलती है।

दो भाइयों के स्नेह और निम्न जाति में उत्पन्न होने से निरादर—इन बिन्दुओं को लेकर प्राचीन समय से ही कथाएँ कहा-सुनी जाती रही हैं। उत्तराध्ययन में इस कथा को जिस संक्षिप्त शैली में कहा गया है, उससे प्रतीत होता है कि यह कथा जनमानस में अतिप्रचलित थी। बौद्ध कथाओं में भी इस कथा को स्थान प्राप्त है। चित्त-सम्भूत नामक जातक कथा में यह कथा वर्णित है।[6] दोनों कथाओं की तुलना की दृष्टि से निम्न बिन्दु द्रष्टव्य हैं—

उत्तराध्ययनसूत्र	जातक कथा
१—कथा मूलतः पद्य में थी, जिसे टीका में गद्य में लिखा गया है।	गद्य-पद्य मिश्रित शैली में कथा है।
२—दोनों भाइयों में अटूट प्रेम	वही
३—पूर्वभव में समानता	वही
(क) युगल मृग	वही
(ख) हंस युगल	बाज युगल
(ग) चित्त-सम्भूत	चित्त-सम्भूत
(घ) देवलोक प्राप्ति	ब्रह्मलोक प्राप्ति
(ङ) सेठ-पुत्र एवं राजपुत्र के रूप में जन्म	पुरोहितपुत्र एवं राजपुत्र के रूप में जन्म।

---

१. भगवतीसूत्र, शतक ११, उ० ११
२. णायाधम्मकहा, १४वाँ अध्ययन
३. स्थानांगसूत्र, स्थान १०, सू. ११३
४. जैन, डा० हीरालाल : सुदंसणचरिउ, भूमिका, पृ० २४-२५
५. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमण कथानक, पृ० १३ पैरा ५८
६. जातक, खण्ड ४ (हिन्दी अनुवाद), सं० ४९८

४—सम्भूत के जीव ब्रह्मदत्त को नरक का निदान (यह कर्म-सिद्धान्त की परम्परा में भेद के कारण है)	सम्भूत के जीव ब्रह्मलोकगामी

५—केवल कथानक में ही नहीं गाथाओं में भी पर्याप्त समानता है।[1] यथा—

उवणिज्जई जीवियमप्पमायं, वण्णं जरा हरइ नरस्स रायं। पंचालराया! वयणं सुणाहि, मा कासि कम्माइं महालयाइं॥ (उत्त० १३/२६)	उपनीयती जीवितं अप्पमायु, वण्णं जरा हन्ति नरस्स जीवितो। करोहि पंचाल मम एत वाक्यं, मा कासि कम्मं निरयूप पत्तिया॥ (जातक ४९८, गा. २०)

उत्तराध्ययनसूत्र की कथा-वस्तु का गठन जातक की कथावस्तु की अपेक्षा अधिक संक्षिप्त है तथा उत्तराध्ययन की भाषा भी प्राचीन है। अतः विद्वानों ने यह निष्कर्ष निकाला है कि उत्तराध्ययन की यह कथा प्राचीन है,[2] भले ही उसने इसे लोक प्रचलित कथा में से ग्रहण किया हो। इस कथा का मूल अभिप्राय तो प्रारम्भ में निम्न जाति के लोगों को भी धर्म और शिक्षा का अधिकार देना था। किन्तु बाद में कथा का विस्तार होने से इसमें कई उद्देश्य सम्मिलित हो गये हैं।

अरिष्टनेमि के तीर्थ में दीक्षा लेने वाले श्रमणों में श्रीकृष्ण के लघुभ्राता गजसुकुमार का कथानक बहुत रोचक है। देवकी छह श्रमणों को अपने यहाँ देखकर उनकी सुन्दरता के सम्बन्ध में जिज्ञासा करती है। उसे पता चलता है कि वे उसके ही पुत्र हैं, जिन्हें अपहरण कर हरिणेगमेषी नामक देव ने सुलसा गाथापत्नी को दे दिया था। इससे देवकी के मन में पुनः बालक्रीड़ा देखने की लालसा होती है। हरिणेगमेषी देव की आराधना से देवकी को गजसुकुमार नामक पुत्र प्राप्त होता है।

गजसुकुमार की युवावस्था में श्रीकृष्ण उसका विवाह सोमिल ब्राह्मण की कन्या से करना चाहते हैं। किन्तु अरिष्टनेमि की धर्मदेशना से गजसुकुमार मुनि बन जाते हैं। तब अपमानित सोमिल ब्राह्मण द्वारा गजसुकुमार मुनि पर उपसर्ग किया जाता है। किन्तु वे मुनि उपसर्ग सहन कर मुक्ति प्राप्त करते हैं।[3] गजसुकुमार की यह कथा बौद्ध साहित्य में वर्णित यश की प्रव्रज्या से तुलनीय है।[4] इस कथा में कई कथा तत्त्व सम्मिलित हैं। यथा—

(१) हरिणेगमेषी द्वारा सन्तान का अपहरण एवं प्रदान।
(२) माता द्वारा पुत्र-प्राप्ति की आकांक्षा और उसके लिए प्रयत्न।
(३) पुत्र का जन्म एवं उसका लालन-पालन।
(४) धर्मदेशना द्वारा गृहस्थ-जीवन का त्याग।
(५) पूर्वजीवन के वैरी द्वारा मुनि-जीवन में उपसर्ग।
(६) उपसर्गों को सहन करते हुए मुक्ति।

सन्तान-प्राप्ति एवं उसके अपहरण के सम्बन्ध में हरिणेगमेषी नामक देव का भारतीय साहित्य में पर्याप्त उल्लेख है।[5] डा० जगदीशचन्द्र जैन ने इस सम्बन्ध में विशेष प्रकाश डाला है।[6] भगवान महावीर की जीवनी में भी यह घटना प्राप्त है। देवकी

---

१. सरपेन्टियर, 'द उत्तराध्ययनसूत्र' पृ० ४५१
२. घाटगे; ए. एम. : 'ए फ्यू पेरेलल्स इन जैन एण्ड बुद्धिस्ट वर्क्स' नामक निबन्ध, एनल्स आफ द भंडारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, भाग १७ (१९३५-३६) पृ० ३४२
३. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमण कथा, पृ० २३ आदि।
४. महावग्ग पब्बज्जा कथा, नालन्दा संस्करण, पृ० १८-२१
५. कुमारस्वामी, ए. के. : द यक्षाज्, पृ० १२
६. जैन, डा० जगदीशचन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ४४०

के पुत्रों का अपहरण महाभारत की उस घटना से प्रभावित है, जिसमें कंस द्वारा उसके पुत्रों का हरण कर उनका वध किया जाता है।[१] जैन कथा में वध की घटना को महत्व नहीं दिया गया।

पूर्व-जीवन के वैरी द्वारा मुनि-जीवन में उपसर्ग किये जाने की घटना कई प्राकृत कथाओं में प्राप्त है। पार्श्वनाथ के जीवन के साथ भी कमठ का उपसर्ग जुड़ा हुआ है। किन्तु कल्पसूत्र में इसका उल्लेख नहीं है, बाद के ग्रन्थों में है।[२] अवन्ति सुकुमाल नामक कथा में सुकुमाल मुनि के साथ उसके पूर्वजन्म की भाभी ने सियारनी के रूप में घोर उपसर्ग उपस्थित किया है।[३] गजसुमाल के उपसर्ग की घटना का यह विकास प्रतीत होता है।[४]

थावच्चापुत्र की कथा के दो उद्देश्य प्रतीत होते हैं। प्रथम तो इसमें यह घोषित किया गया है कि यदि कोई व्यक्ति घर-बार छोड़ कर दीक्षा लेता है तो श्रीकृष्ण उसके परिवार का भरण-पोषण करेंगे। यह बात अपने आप में बड़ी महत्वपूर्ण है। राजा का धर्म के प्रचार के लिए इससे बड़ा योगदान क्या होगा? इस कथा में दूसरी बात सुदर्शन के शौचमूलक धर्म की समीक्षा प्रस्तुत करना है। ऐसी कथाओं से जैन धर्म के प्रति रुझान पैदा करने का प्रयत्न किया गया है।

उत्तराध्ययनसूत्र (२२ अ०) में वर्णित रथनेमि-राजीमती कथा अरिष्टनेमि के जीवन का महत्वपूर्ण अंग है। यद्यपि यह कथा अत्यन्त संक्षिप्त शैली में कही गयी है, किन्तु इसका सम्प्रेषण तीव्र है। इस कथा में निम्न उद्देश्य स्पष्ट हैं—

(१) अरिष्टनेमि की पशुओं के प्रति अपार करुणा को प्रकट करना। मांसाहार का प्रकारान्तर से निषेध।
(२) अरिष्टनेमि की वैराग्य भावना एवं अनासक्ति को प्रकट करना।
(३) राजीमती का भावी पति के प्रति प्रेम एवं अटूट सम्बन्ध स्थापित करना। प्रकारान्तर से शीलव्रत को दृढ़ करना।
(४) रथनेमि को ब्रह्मचर्य भाव से च्युत होने की स्थिति में राजीमती द्वारा उसे प्रतिबोधन देकर पुनः श्रमणचर्या में दृढ़ करना।

इस कथानक का परवर्ती साहित्य में पर्याप्त विकास हुआ है।[५] इसमें श्रीकृष्ण की भूमिका महत्वपूर्ण है।[६] किन्तु आगम ग्रन्थ के इस कथानक में श्रीकृष्ण का नामोल्लेख भी नहीं है और न ही अरिष्टनेमि की किसी क्रिया में उनके सहयोग का उल्लेख है।

जितशत्रु राजा और सुबुद्धि मन्त्री की कथा स्पष्टतः उपदेश कथा है।[७] कथाकार को यहाँ जैन दर्शन की दृष्टि से वस्तु के नानात्मक रूप का प्रतिपादन करना था। सम्यक्दृष्टि और मिथ्यादृष्टि के अन्तर को स्पष्ट करना है। इस कथा में प्रकारान्तर से यह भी कहा गया है कि जिस प्रकार मन्त्री ने अशुद्ध जल को विशेष शोधन की प्रक्रिया द्वारा शुद्ध जल बना दिया उसी प्रकार जैन दर्शन की दृष्टि से नाना कर्मों से दूषित आत्मा भी विशेष तपश्चर्या द्वारा शुद्ध आत्मा होकर अनुपम सुख को प्राप्त कर सकता है अतः यह कथा एक रूपक कथा का भी उदाहरण है।

नमि राजर्षि की कथा उत्तराध्ययनसूत्र की एक महत्वपूर्ण कथा है।[८] यद्यपि इस कथा में नमि प्रव्रज्या के निर्णय की पूर्वकथा वर्णित नहीं है, किन्तु नमि और इन्द्र के बीच हुए संवाद का विवरण है। नमि प्रव्रज्या की कथा भारतीय साहित्य में

---

१. श्रीमद्भागवत, १०-३४
२. पासणाहचरियं, ३, ६, १६४; उत्तरपुराण ७३, १३६-३७ आदि।
३. सुकुमालसामिचरिउ (श्रीधर) अप्रकाशित पाण्डुलिपि (लेखक द्वारा सम्पादित एवं प्रकाश्य।)
४. द्रष्टव्य, लेखक का निबन्ध—'सुकुमाल स्वामी कथा—एक अध्ययन,' प्राच्य विद्या सम्मेलन, धारवाड़, १६७६ में प्रस्तुत।
५. त्रिषष्टिशलाकापुरुषचरित एवं सुखबोधा टीका आदि।
६. हरिवंशपुराण, सर्ग ५५, श्लोक २६-४४ आदि।
७. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमणकथा, पृ० ५१
८. उत्तराध्ययनसूत्र २२वां अध्ययन।

पर्याप्त प्रचलित थी। सम्भवतः इसलिए उसके उपदेशात्मक अंश को ही उत्तराध्ययनसूत्र में अधिक उजागर किया गया है। टीका साहित्य में यह पूरी कथा दी गयी है।[1] उससे ज्ञात होता है कि—

१. मदनरेखा के पुत्र को जंगल से ले जाकर पद्मरथ राजा ने उसका नाम 'नमि' रखा। वह मिथिला का राजा बना।

२. नमि एक बार दाहज्वर से ग्रस्त हुआ। उस समय उसने रानियों के हाथों के कंगनों के द्वन्द्व से शिक्षा ग्रहण कर एकाकी जीवन जीने का निश्चय किया।

३. नमि जब प्रव्रज्या-ग्रहण के लिए निकल रहा था तब इन्द्र ने ब्राह्मण का रूप धारणकर उसके निश्चय की परीक्षा ली।

४. 'मिथिला का वैभव जल रहा है।' इस सूचना से भी नमि राजा अनासक्त रहे।

उत्तराध्ययनसूत्र की यह कथा बौद्ध साहित्य में भी प्राप्त है। महाजनक जातक में इसी प्रकार की कथा है।[2] यद्यपि उसमें कथावस्तु की कुछ भिन्नता है, फिर भी दोनों कथाओं का प्रतिपाद्य एक है। कुछ समानताएँ द्रष्टव्य हैं—

उत्तराध्ययन सूत्र	**महाजनक जातक**
१—प्रतिबुद्ध होने के कारण	
(क) कंगनों की द्वन्द्वता के दुःख से शिक्षा	(क) फलयुक्त वृक्ष की दुर्दशा से शिक्षा
	(ख) कंगन के द्वन्द्व से शिक्षा
	(ग) दोनों आँख से देखने में भ्रम होने की शिक्षा
२—'अकेले में सुख है' की स्वीकृति	वही
३—समृद्ध मिथिला को त्याग कर प्रव्रज्या लेने का निर्णय	वही
४—नमि के निश्चय की परीक्षा लेना	वही
(क) इन्द्र द्वारा	देवी सीवली द्वारा
५—"मिथिला जल रही है" के द्वारा राजा को प्रलोभन देना	वही
६—मिथिला के जलने पर भी नमि का कुछ नहीं जलता।[3]	वही
७—जैन कथानक में उपदेशतत्त्व अधिक है।	कुछ कम है।

सोनक जातक (सं० ५२६) में इस कथा का कुछ साम्य है। प्रत्येकबुद्ध सोनक यही कहता है कि साधु के लिए नगर में यदि आग भी लग जाय तो उसका उसमें कुछ नहीं जलता है।[4] महाभारत में माण्डव्यमुनि और जनक के संवाद में भी राजा जनक ने यही कहा है कि मिथिला के प्रदीप्त होने पर भी मेरा कुछ नहीं जलता है।[5] इससे ज्ञात होता है कि मिथिला के राजा नमि अथवा जनक का अनासक्ति भाव प्राचीन भारत की विचारधाराओं में प्रचलित था। विष्णुपुराण में भी कहा गया है कि मिथिला के सभी राजा आत्मवादी होते हैं।[6] नमि राजा के कथानक की इन तीनों परम्पराओं में जातक कथा अधिक प्राचीन प्रतीत होती है। क्योंकि उसमें कथातत्त्व अधिक है, उपदेशतत्त्व कम है। जबकि जैन कथानक में कथा का निर्माण टीका साहित्य में हुआ है।

---

१. उत्तराध्ययन सूत्र : सुखबोधा टीका।

२. महाजनक जातक (हिन्दी अनुवाद, सं० ५३९)।

३. सुहं वसामो जीवामो जेसिं मो नत्थि किंचण।
मिहिलाए डज्झमाणीए न मे डज्झई किंचण॥ —उत्त० ९.१४
यही—महाजनक जातक में भी गाथा १२५।

४. पंचम भद्दं अधनस्स अनागारस्स भिक्खुनो।
नगम्हि डय्हमानम्हि नास्स किंचि अडय्हथ॥—सोनकजातक ५२९

५. महाभारत, शान्तिपर्व, अ० २७६, श्लोक ४

६. आचार्य तुलसी : उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ३५५

उत्तराध्ययनसूत्र में दो नमि राजाओं की प्रव्रज्या का वर्णन है। एक नमि तीर्थंकर हैं, दूसरे नमि प्रत्येकबुद्ध हैं।[1] ९वें अध्ययन की कथा प्रत्येकबुद्ध नमि से सम्बन्धित है। यह आश्चर्यजनक है कि जैन परम्परा में ऋषिभाषित प्रकीर्णक में ४५ प्रत्येक-बुद्धों का जीवन संकलित है।[2] किन्तु इनमें नमि प्रत्येकबुद्ध का नाम नहीं है। इससे भी संकेत मिलता है कि यह कथा बौद्ध-परम्परा से जैन साहित्य में गृहीत हुई है।

श्रमण कथानकों में मेघकुमार की कथा बहुत प्रसिद्ध है। यह कथा सांस्कृतिक दृष्टि से महत्व की है।[3] ज्ञाताधर्मकथा में मेघकुमार की प्रव्रज्या आदि का जो वर्णन है, उससे कथा के निम्न प्रमुख भाग[4] ज्ञात होते हैं—

१—राजा श्रेणिक, रानी धारिणी और अभयकुमार की कथा।

२—मेघकुमार का जन्म, शिक्षा, विवाह आदि।

३—महावीर के उपदेश से वैराग्य भावना।

४—माता-पिता एवं मेघकुमार के बीच वैराग्य के सम्बन्ध में वार्तालाप।

५—मेघ की दीक्षा का महोत्सव।

६—मेघमुनि को रात्रि में शय्या-परीषह एवं उससे श्रमण-जीवन के प्रति उदासीनता।

७—महावीर द्वारा मेघकुमार के पूर्वभव सुनाकर उसे पुनः दीक्षा में दृढ़ करना।

८—पूर्वभवों में सुमेरुप्रभ हाथी और खरगोश की कथा।

यह कथा कुछ अंशों में गजसुकुमाल की कथा से मिलती-जुलती है, जिसे इसका विकसित रूप माना जा सकता है। जो कार्य इस कथा में अभयकुमार ने किये हैं, उसमें श्रीकृष्ण द्वारा किये जाते हैं। वैराग्य-प्राप्ति के लिए माता-पिता की आज्ञा लेना एवं उनके बीच संवाद होना यह एक प्रचलित अभिप्राय है।[5] बौद्ध साहित्य में भी इसके उल्लेख हैं।[6] मेघकुमार की कथा की भाँति बौद्ध साहित्य में नन्द की दीक्षा का विवरण प्राप्त है।[7] यद्यपि कथा के गठन में दोनों में कुछ भिन्नता है। यथा—

१—मेघकुमार अपने गृहस्थ जीवन की प्रतिष्ठा और सुख-सुविधा को ध्यान में रखते हुए मुनिसंघ में रात्रि में हुए अपमान और सोने के कष्ट के कारण श्रमणचर्या से उदासीन होता है। जबकि नन्द को अपनी सुन्दर पत्नी जनपद कल्याणी की बहुत याद आती है और वह भिक्षु-जीवन से उदासीन हो जाता है।

२—महावीर मेघकुमार को उसके पूर्व-जन्म में सहन किये गये कष्ट की याद दिलाते हुए उसे पुनः श्रमण जीवन के प्रति आश्वस्त करते हैं। जबकि बुद्ध नन्द को एक कुरूप बन्दरिया तथा स्वर्ग की अप्सराओं के सौन्दर्य को दिखाकर उसे भिक्षु जीवन में पुनः प्रतिष्ठित करते हैं। इस तरह साधना से विचलित होने और उसमें पुनः प्रतिष्ठित होने का अभिप्राय इन दोनों कथाओं में है।

३—इन कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि समाज के प्रतिष्ठित वर्ग के युवकों को मुनिसंघ में दीक्षित करना महावीर और बुद्ध दोनों के लिए आवश्यक हो गया था ताकि अन्य वर्ग के लोग भी इस ओर आकृष्ट हो सकें।

---

१. दुन्निवि नमी विदेहा रज्जाइं पयहिऊण पव्वइया।
एगो नमितित्थयरो एगो पत्तेयबुद्धो अ॥ —उत्तराध्ययननिर्युक्ति गाथा २६७

२. इसिभासियं, प्रथम संग्रहिणी, गाथा

३. ज्ञाताधर्मकथासूत्र, ब्यावर, १९८१ में भूमिका, पृ० १४ आदि।

४. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमणकथा पृ० ६३ आदि।

५. जैन, जगदीशचन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज, पृ० ३८५-८६

६. महावग्ग १'४६'१०५, पृ० ८६

७. सुत्तनिपात—अट्ठकथा, पृ० २७२. जातककथा (सं० १८२) धम्मपदअट्ठकथा, खण्ड १, पृ० ५६-१०५ तथा थेरगाथा, १५७

४—दोनों कथाओं के नायकों की तुलना करने पर मेघकुमार का जीवन अधिक प्रभावित करता है। क्योंकि उसमें पूर्वजन्म में भी असीम करुणा और सहनशीलता थी तथा मुनि-जीवन में भी वह प्रतिष्ठा और घमण्ड से ऊपर उठ चुका था। यद्यपि नन्द भी अपने पूर्वजन्मों में हाथी था तथा उसकी घटना भी लगभग समान है।[1]

अर्जुन मालाकार मूलतः एक यक्षकथा है। यक्ष की आराधना एवं उसके प्रभाव के साथ-साथ क्रूर से क्रूर व्यक्ति कैसे संयम एवं अध्यात्म के मार्ग में आ सकता है, इस बात को उजागर करना ही कथा का मूल उद्देश्य है।[2] जंगल में रहने वाले क्रूर दस्यु बाल्मीकि के हृदय परिवर्तन की घटना रामायण में प्राप्त है।[3] बौद्ध साहित्य में अंगुलिमाल का कथानक व्यापक था।[4] उसी कोटि का यह अर्जुन मालाकार का कथानक है। इस कथानक में जो परकाया में प्रवेश करके अपने प्रभाव को दिखाने की बात यक्ष ने की है, वह अभिप्राय भारतीय कथा साहित्य में बहुत लोकप्रिय हुआ है।[5] विद्वानों ने इस मोटिफ का विशेष अध्ययन किया है।[6] इस कथा के अन्तर्गत सुदर्शन नामक साधक की दृढ़ता को भी प्रकट किया गया है।

सार्थवाहपुत्र धन्य अनगार की कथा उत्कृष्ट तपस्या का उदाहरण है। तपश्चर्या में शरीर की अवस्था का वर्णन अनेक उपमाओं एवं रूपकों के द्वारा किया गया है। बौद्ध साहित्य में भगवान् बुद्ध की तपश्चर्या का भी इसी प्रकार वर्णन प्राप्त है।[7] किन्तु जैन कथा का यह वर्णन अधिक सजीव है।

उत्तराध्ययनसूत्र में वर्णित हरिकेशी मुनि की कथा तत्कालीन जातिवाद की उग्रता के प्रति विरोध को प्रकट करने के लिए प्रस्तुत की गयी है।[8] चाण्डाल एवं ब्राह्मण इन दोनों जातियों का श्रमण जीवन में कोई महत्त्व नहीं होता है। महत्त्व होता है वहाँ साधना का। इसी तरह इस कथा में हिंसक यज्ञों की व्यर्थता को उजागर किया गया है। इसके लिए एक यक्ष को माध्यम बनाया गया है। प्रकारान्तर से दान की महिमा और उसके उपयुक्त क्षेत्र का प्रतिपादन भी इस कथा के माध्यम से हुआ है।[9] इसी प्रकार की कथा मातंग जातक में भी वर्णित है।[10] दोनों कथाओं का तुलनात्मक अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि ब्राह्मणों द्वारा यज्ञ का आयोजन, चाण्डाल मुनियों की उपेक्षा एवं उनसे घृणा, जातिवाद का निरसन तथा दान की वास्तविक उपयोगिता दोनों में समान है।[11] फिर भी कथा की संघटना में अन्तर है। विद्वानों का मत है कि बौद्ध कथा में दो कथाएँ मिली हुई हैं तथा वह मिश्रित है अतः वह बाद की है। जैन कथा प्राचीन है।[12] जैन कथा में ब्राह्मणों के प्रति उतना कटु एवं उग्र दृष्टिकोण नहीं है, जितना बौद्ध कथा में है।

धम्मकहाणुओगो के श्रमण कथानक खण्ड में इन कथाओं के अतिरिक्त अन्य भी कई कथाएं संकलित हैं। उनमें शिवराज-ऋषि (पृ० १३३) जिनपालित जिनरक्षित[13] (पृ० १४०), उदक पेढाल पुत्र (पृ० १४८), धन सार्थवाह कथानक (पृ० १५६) आदि

१. संगमावतार जातक सं० १०२ (हिन्दी अनुवाद)
२. ध० क०, मूल, पृ० ९३ आदि।
३. रामायण, (बाल्मीकि) में क्रौञ्च पक्षी के वध की घटना।
४. मज्झिमनिकाय, २, पृ० १०२ आदि।
५. पेन्जर, कथासरित्सागर, जिल्द १, अध्याय ४, पृ० ३७
६. ब्लूमफील्ड, "आन द आर्ट आफ ऐन्टरिंग एन अदर्स बाडी" नामक निबन्ध प्रोसीडिंग्स अमेरिकन फिलोसोफिकल सोसायटी, ५६।
७. मज्झिमनिकाय—महासिंहनादसुत्त आदि।
८. ध० क० श्रमणकथा, पृ० ११०
९. उत्तराध्ययनसूत्र- सुखबोधा टीका पत्र १७३-७५
१०. मातंग जातक (सं० ४९७) खण्ड ४, पृष्ठ ५८३-९७
११. उत्तराध्ययन : एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० २८०
१२. घाटगे ए० एम०, का "ए फ्यू पैरेलल्स इन जैन्स एण्ड बुद्धिस्ट वर्क्स" नामक निबन्ध
१३. तुलना के लिए देखें—बलाहस्स जातक (सं० १९६) एवं दिव्यावदान आदि।

महत्वपूर्ण कथानक हैं। इनसे प्राकृत कथा साहित्य के कई रूप प्रकट होते हैं। ये श्रमण कथानक जैन परम्परा में श्रमणों की दीक्षा, परीषह-जय, तपश्चर्या एवं ज्ञान-ध्यान तथा चारित्र आदि के कई पक्षों को प्रकट करते है। किन्तु इसके साथ ही इनका कथात्मक महत्व भी कम नहीं है। उस पर अभी बहुत कम अध्ययन किया गया है। इन कथाओं के उद्गम स्थल तथा विकास क्रम को खोजने की भी आवश्यकता है। बौद्ध कथाओं के साथ इनकी तुलना करना जरूरी है।[1]

श्रमणी कथानक—

धम्मकहाणुओगो में प्रमुख ३० श्रमणियों के कथानक सम्मिलित हैं। इनमें द्रौपदी का कथानक सबसे बड़ा है। उसमें निम्न कथा-घटनाएं सम्मिलित हैं—

१—नागश्री ब्राह्मणी की कथा (मुनि आहार में दोष)।
२—धर्मरुचि अनगार की करुणा।
३—सुकुमालिका का दुर्भाग्य एवं निदान।
४—द्रौपदी की कथा (पांच पाण्डवों से विवाह)।
५—कच्छुल्ल नारद की भूमिका।
६—श्रीकृष्ण और पाण्डव मैत्री।
७—पाण्डवों का युद्ध।
८—द्रौपदी-पुत्र पाण्डुसेन का राज्य।
९—द्रौपदी की प्रव्रज्या एवं साधना द्वारा निर्वाण।

इस कथानक में महत्वपूर्ण बात निदान की है। जहरीला आहार मुनि को देने से नागश्री अगले जन्म में सुकुमालिका होती है, जहाँ उसे परिवार, पति आदि सबकी उपेक्षा सहनी पड़ती है। सुकुमालिका को साधक जीवन का अवसर मिला तो भी उसने भौतिक सुखों के आकर्षण में ऐसा निदान किया कि अगले जन्म (द्रौपदी) में पांच पतियों का दासत्व स्वीकारना पड़ा। किंतु फिर भी वह साधना में जुटी रही। जिसकी अन्तिम परिणति निर्वाण में हुई। अतः यह कथा स्त्री की सतत साधना द्वारा अंतिम लक्ष्य प्राप्त करने की कथा है। इस कथा का परवर्ती जैन साहित्य में काफी विकास हुआ है। डा० हीरालाल जैन ने इस कथा के उद्गम एवं विकास पर प्रकाश डाला है।[2] प्रकारान्तर से इस कथा में श्रीकृष्ण के नरसिंहावतार का भी वर्णन है।[3] यह शोध का विषय है कि श्रीकृष्ण के साथ यह प्रसंग कब और किस आधार पर जुड़ा है।

सुभद्रा श्रमणी की कथा के प्रसंग में ज्ञात होता है कि उसके मन में अनेक बालकों की माँ होने की लालसा थी। उसका बहुपुत्रिका नाम ही प्रचलित हो गया था। सोमा नामक युवति के जन्म में उसने १६ बार के प्रसव में ३२ बालकों को जन्म दिया। किन्तु वह उन बालकों की सम्हाल करते-करते दुखी हो गयी। अन्ततः उसने प्रव्रज्या धारण कर इस दुख से छुटकारा प्राप्त किया और साधना करके सिद्धि प्राप्त की।[4] श्रमणी-कथाओं में जयन्ती का कथानक भी ध्यान आकर्षित करता है। भगवान् महावीर को प्रथम वसति प्रदान करने वाली यही जयन्ती श्रमणोपासिका थी। महावीर और जयन्ती के बीच तत्वचर्चा भी हुई है।

आगम ग्रन्थों में श्रमणी कथानकों के विवरण को देखने से ज्ञात होता है कि उनका अंकन अपेक्षाकृत आगमों में कम हुआ है। महावीर की शिष्य परम्परा में साध्वियों की संख्या अधिक मानी जाती है। उस दृष्टि से कथानकों में उनका प्रतिनिधित्व कम हुआ है। साध्वीसंघ की प्रमुखा एवं महावीर की प्रथम शिष्या चन्दना सती का तो आगम ग्रन्थों में कथा के रूप में

---

१. जैन जगदीशचन्द्र : प्राचीन भारत की श्रेष्ठ कहानियाँ (बौद्ध कहानियाँ), दिल्ली १९७७
२. जैन, डा० हीरालाल : सुगन्धदशमी कथा, भूमिका, पृ० ८
३. ध० क०, मूल, श्रमणी कथा, पृ० २०२, पैरा ११६
४. वही, पृ० २३३

उल्लेख भी नहीं है। केवल प्रथम शिष्या के रूप में नाम अंकित है।[1] जबकि व्याख्या साहित्य से ज्ञात होता है कि चन्दना का महावीर के जीवन में महत्वपूर्ण स्थान है। चन्दना का कथानक आगमों में क्यों छूट गया इस पर चिन्तन किया जाना आवश्यक है। वर्णनों में "जाव" की परम्परा रही है। कहीं इस संक्षेपीकरण में चन्दना का कथानक लुप्त न हो गया हो, यह देखने की बात है। आगमों में वर्णित श्रमणी-कथाओं की बौद्ध भिक्षुणियों के जीवन के साथ तुलना करने से दोनों के उज्ज्वल चरितों पर प्रकाश पड़ सकता है।[2]

श्रमणोपासक कथानक—

आगम ग्रन्थों में पार्श्वनाथ के तीर्थ में दो श्रमणोपासकों एवं महावीर के तीर्थ में २१ श्रमणोपासकों के कथानक अंकित हुए हैं। यद्यपि इन तीर्थंकरों के अनुयायियों की संख्या हजारों में थी। किन्तु जिन श्रावकों ने अपनी किसी साधना व चिन्तनधारा द्वारा प्रभाव उत्पन्न किया था, उनके उदाहरण तीर्थंकरों द्वारा अपने उपदेशों में दिये गये हैं। अतः ये आदर्श श्रमणोपासक हैं, जिनके जीवन से अन्य लोग भी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं।

पार्श्वनाथ के तीर्थ में सोमिल ब्राह्मण ने उनसे शिक्षा ग्रहण की। किन्तु अन्य तीर्थिकों के प्रभाव से वह फिर जैन धर्म से च्युत हो गया। तापस-चर्या की वह साधना करने लगा। तब एक देव ने आकर सोमिल को सही प्रव्रज्या का अर्थ बताया। सोमिल ने फिर से अणुव्रत आदि ग्रहण किये।[3] पार्श्वनाथ के तीर्थ में प्रदेशी राजा द्वारा श्रावकधर्म स्वीकार करने की कथा विस्तार से वर्णित है।[4] इस कथानक के प्रारम्भ में सूर्याभ नामक देव भगवान महावीर के समक्ष उपस्थित होकर नृत्य आदि की व्यवस्था करता है। तदुपरान्त राजा प्रदेशी का परिचय है। प्रदेशी और केशी कुमार श्रमण के बीच जीव के अस्तित्व एवं नास्तित्व के सम्बन्ध में विशद चर्चा है।[5] कथा में संवादतत्व के अध्ययन के लिए यह कथा उपयोगी है। इस कथा का तुलनात्मक अध्ययन मिलिन्दपन्हो की कथावस्तु के साथ किया जा सकता है।[6] आत्मा के अस्तित्व की समस्या पार्श्व, महावीर एवं बुद्ध के समय में प्रमुख समस्या थी।

महावीर के तीर्थ में हुए कई श्रमणोपासक प्रसिद्ध थे। ज्ञाताधर्मकथा, उपासकदशांग एवं भगवतीसूत्र आदि में कुछ श्रमणोपासकों के कथानक प्राप्त हैं। नंद मणिकार ने एक सार्वजनिक वापी का निर्माण कराया था। उस वापी में नंद की बहुत आसक्ति थी। फलतः मृत्यु के बाद वह वापी में मेंढक बना। मेंढक होते हुए भी उसने महावीर के वन्दन करने के भाव किये। किन्तु घोड़े की टाप से घायल होकर वह मेंढक मृत्यु को प्राप्त हुआ। वंदन-भावना के कारण वह देव बना।[7] यह कथा जंतु-कथा के अध्ययन के लिए उपयोगी है।

उपासकदशांगसूत्र में दश उपासकों के कथानक वर्णित हैं। आनन्द उपासक की भांति ही बाकी ९ उपासकों की कथा को प्रस्तुत किया गया है। इन कथाओं से ज्ञात होता है कि ये उद्देश्यपूर्ण कथाएँ हैं। इन कथाओं के माध्यम से महावीर के धर्म-शासन के प्रति लोगों को आकर्षित करना तथा गृहस्थ-जीवन भी साधना की भूमि है इस बात को उजागर करना इन वर्णनों का

---

१. (क) अंगसुत्ताणि (आचार्य तुलसी), प्रथम, पृ० ९४६

जक्खिणी पुप्फचूला य चंदणज्जा य आहिया। —समवायांग, सू० २३३

(ख) अज्जचंदणा—भगवती, ९।१५३

२. जैन, डा० कोमलचन्द : बौद्ध एवं जैन आगमों में नारी जीवन, बनारस, १९६७

३. पंचाणुव्वए सत्तसिक्खावए दुवालसविहे सावयधम्मे पडिवन्ने। —ध० क० मूल, पृ० २४७-४८

४. राजप्रश्नीयसूत्र।

५. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : जैन आगम साहित्य : मनन और मीमांसा, पृ० २०९ आदि

६. देखें, रायपसेणयसुत्त आदि का सार, पं० बेचरदास दोशी।

७. ध० क०, मूल, पृ० २९०-९४

प्रतिपाद्य है। आनन्द के प्रसंग से ही ज्ञात होता है कि एक गृही साधक भी अच्छा तत्व-चिन्तक हो सकता है। गौतम जैसे श्रमण भी उसके सामने अपने अज्ञान के प्रमाद के लिए क्षमा-याचना करते हैं। महावीर की निष्पक्षता का उद्घोष भी इस प्रसंग से होता है। इन दशों कथानकों का कथा-तन्त्र प्रायः एक जैसा है।[1] अतः कथातत्व का इनमें अभाव है। इससे यह ज्ञात पड़ता है कि उपासकदशांग की कथाएँ संभवतः अपने मूलरूप में नहीं हैं। ग्रन्थ के विषय का ध्यान रखकर बाद में गढ़ दी गयी हैं।

औपपातिकसूत्र में महावीर के दो श्रावकों का प्रमुखरूप से वर्णन है। कुणिक राजा ने महावीर के उपदेश सुनने के लिए चंपानगरी को सजाया था तथा उनके उपदेश सुनने को गया था। इस प्रसंग में चंपा नगरी और महावीर का जो वर्णन किया गया है, वह साहित्यिक वर्णनों के लिए आदर्श है। कथा में काव्यात्मक वर्णन किस प्रकार उपस्थित किये जाते हैं, इसका यह प्रमुख उदाहरण है।[2] कुणिक राजा जैन एवं बौद्ध दोनों ही परम्परा में पर्याप्त चर्चित है।[3] दूसरी कथा अंबड परिव्राजक की है, जिसने अपने शिष्यों सहित महावीर का उपदेश सुना था। अंबड के दृढ़ सम्यक्त्व का प्रतिपादन इस कथा की विशेषता है।

आगम ग्रन्थों से श्रमण, श्रमणी एवं श्रमणोपासकों के कथानकों के साथ ही श्रमणोपासिकाओं के कथानक धम्मकहाणुओगो में अलग से संग्रहीत नहीं किये गये हैं। सम्भवतः श्रमणोपासकों के कथानकों के साथ ही उनकी पत्नियों के उल्लेख हो जाने से आगम ग्रन्थों में अलग से उनके कथानक कम अंकित हुए हैं। हो सकता है कि नारियों के प्रति सामाजिक दृष्टिकोण भी इसमें एक कारण रहा हो। अन्यथा उस समय की शीलवती एवं धार्मिक महिलाओं का महावीर के शासन को समुन्नत करने में कम योगदान नहीं रहा है।

निण्हव कथानक—

भगवती सूत्र में वर्णित जामालि एवं गोशालक आदि सात निण्हवों के कथानक भी आगम कथा-साहित्य में अपना विशेष महत्व रखते हैं। क्योंकि प्रतिपक्ष का प्रतिनिधित्व इन्हीं के द्वारा होता है। महावीर की जीवनी एवं चिन्तन को समझने के लिए इन निण्हवों की कथा को समझना आवश्यक है।[4] बौद्ध साहित्य में भी गोशालक का कथानक है। वहाँ उसे मक्खली गोशाल कहा गया है।[5] विद्वानों ने इस सम्बन्ध में पर्याप्त गवेषणा की है, जिससे यह प्रमाणित है कि गोशालक आजीवक सम्प्रदाय का नेता था।[6]

प्रकीर्णक कथानक—

धम्मकहाणुओगो के षष्ठ प्रकीर्णक खण्ड में आगमों में प्राप्त फुटकर कथाएं संकलित हैं। इनमें से अधिकांश ज्ञाताधर्म कथा एवं विपाकसूत्र में प्राप्त हैं। इन कथाओं को दृष्टान्त-कथाएं कहा जा सकता है। विभिन्न अवसरों पर इन कथाओं के उदाहरण देकर कर्मसिद्धान्त एवं अन्य तत्वदर्शन को स्पष्ट किया गया है। रथमूसलसंग्राम के वर्णन द्वारा युद्ध में नरसंहार से होने वाली क्षति को स्पष्ट किया गया है। और सचेत किया गया है कि युद्ध में मरने से सभी को स्वर्ग नहीं मिलता है।[7] इस कथा में राजा श्रेणिक, रानी चेलना एवं कुणिक के जीवन की प्रमुख घटनाओं का वर्णन है।[8]

विजय चोर की कथा एक प्रतीक कथा है। इसमें दो विरोधी शक्तियों का एकीकरण दिखाकर जैन दर्शन के अनेकान्तवाद को प्रकारान्तर से स्पष्ट किया गया है। आत्मा और शरीर के सम्बन्ध को भी कथाकार ने प्रतीकों के माध्यम से प्रकट किया

---

१. तुलनात्मक चार्ट के लिए देखें—उवासगदसाओ, ब्यावर, सं०—डा० छगनलाल शास्त्री, पृ० १६४-१६५
२. ध० क०, मूल, पृ० ३६३ आदि।
३. मुनि नगराज : आगम और त्रिपिटक : एक अनुशीलन, पृ० ३३० आदि।
४. शास्त्री, देवेन्द्रमुनि : भगवान महावीर : एक अनुशीलन, पृ० ३२५ आदि
५. मज्झिमनिकाय-अट्ठकथा, १·४२२ आदि
६. डा० बरुआ—"द आजीवकाज" द्रष्टव्य।
७. ध० क०, मूल, पृ० ४२५, पैरा ६५
८. निरयावलीकहा, अ० २·१०

है। मयूरी-अंडक नामक कथा कौतूहल-वर्धक कथा है। श्रद्धा एवं शंकाशील मन के स्वरूप को प्रकट करने के लिए यह कथा विशेष महत्व की है। पशु-पक्षी के प्रशिक्षण की सूचना भी इस कथा से मिलती है। दो कछुओं की कहानी से चंचल प्रकृति एवं संयमित प्रकृति वाले साधकों के परिणामों का पता चलता है। श्रृगाल की चालाकी अवसरवादी व्यक्तियों की मनोवृत्ति को प्रकट करती है।

ज्ञाताधर्मकथा की रोहिणी कथा आगम कथा-साहित्य की श्रेष्ठ कथाओं में से है। परिवार के सदस्यों के विभिन्न स्वभावों को इसमें प्रकट किया गया है। चार बहुओं की कथा के नाम से इस कथा ने परवर्ती कथा साहित्य में पर्याप्त स्थान पाया है। इस कथा ने विदेशी कथा साहित्य को भी प्रभावित किया है। अश्वों को पकड़ने की कथा भी एक प्रतीक कथा है। जो अश्व लुभावने पदार्थों की ओर आकृष्ट हुए वे पराधीन हो गये, शेष स्वाधीन बने रहे। विषयों की आसक्ति के प्रति सजग रहने की बात इस कथा में कही गयी है। इसी विषय से सम्बन्धित कथा कुवलयमाला में भी आयी है।[1]

विपाकसूत्र की कथाएँ कर्मफल को प्रतिपादित करने वाली कथाएँ हैं। किन्तु इनकी विषयवस्तु के आधार पर इन्हें सामाजिक कथाएँ कहा जा सकता है। इनमें समाज के उन सभी प्रकार के व्यक्तियों की वृत्तियों का वर्णन है, जो हिंसा, मांसाहार, क्रूर शासन, मद्यपान, वेश्यागमन, चोरी, मांस-विक्रय, कठोर दंड, दोषयुक्त चिकित्सा, ईर्ष्या द्वेष आदि अनेक समाज विरोधी व्यापारों में लीन थे। उन्होंने उसके दुष्परिणाम जन्मों तक भोगे, यही संप्रेषण देना इन कथाओं का उद्देश्य है। इन कथाओं में एक बात समान रूप से देखने को मिलती है कि हर अपराधी पात्र विभिन्न प्रकार के फलों को भोग कर अन्त में जब सद्गति की ओर गमन करता है तब उसे सेठ के घर जन्म अवश्य लेना होता है। उसके बाद ही उसकी दीक्षा आदि सम्पन्न होती है।[2] इस प्रकार के वर्णनों से कथातत्व में रूढ़िता आ जाती है, किन्तु इससे कथाओं की समकालीन मान्यताओं की भी जानकारी मिलती है। विपाकसूत्र के द्वितीय श्रुत-स्कन्ध की कथाओं में केवल सुबाहु की कथा वर्णित है। शेष कथाएँ संक्षिप्त हैं। इनमें दान का फल एवं पाँच सौ कन्याओं से विवाह सब में समान हैं।

आगमिक कथाओं का वैशिष्ट्य—

जैन आगमों में उपलब्ध उपर्युक्त सभी प्रकार की कथाओं के अवलोकन से ज्ञात होता है कि किसी बात को समझने के लिए कथा कान्ता-सम्मत पद्धति है। इसीलिए छोटी-छोटी कथाएँ कई गहरी बातें कह जाती हैं। आगमों के सिद्धान्त के गूढ़ विषयों को समझने के लिए प्रतीक, दृष्टान्त, रूपक एवं कथा का सहारा लिया गया है। उपमानों, प्रतीकों आदि से कथा का विकास होने की परम्परा वेदों, महाभारत एवं बौद्ध साहित्य के ग्रन्थों में भी रही है। किन्तु जैन साहित्य ने इसमें विशेष रुचि ली है।

आगमिक कथाओं का विकास मनोवैज्ञानिक ढंग से हुआ है। कथा के विकास का प्रथम स्तर असम्भव से दुर्लभ की ओर जाने का है। आगम कथा कहती है कि संसार में रहते हुए मुक्ति का अनुभव असम्भव है। इससे मुक्ति के प्रति उत्कंठा जागृत होती है। तब कथाश्रोता पूछता है कि क्या सचमुच संसारी को मुक्ति नहीं है? इसके उत्तर में कथावाचक कहता है—नहीं, उस व्यक्ति (तीर्थंकर) जैसे कोई तप करे तो उसे मुक्ति का अनुभव हो सकता है। इससे मुक्ति असम्भव से दुर्लभ की कोटि में आ जाती है। यह जिनों का आदर्शमय जीवन प्रस्तुत करने की भूमिका है।

इसके उपरान्त अपूर्व वैभव का त्याग, कठिन व्रतों का पालन, तपश्चर्या, ध्यान, योग द्वारा केवलज्ञान की प्राप्ति की कथा मुक्ति के मार्ग को दुर्लभ से संभव की कोटि में लाती है। यह कथा के विकास की दूसरी अवस्था है। इसे मुनिधर्म विवेचन के लिए धरातल की संज्ञा दी जा सकती है।

मुक्ति तपश्चर्या से सम्भव है, यह बात समझ में आने के बाद उस तपश्चर्या को सम्भव से सुलभ बनाने के लिए और कथाएं कही जाती हैं। नैतिक आचरण, श्रावकधर्म, दैनिक अनुष्ठान, कर्म-सिद्धान्त आदि की कथाएं मुक्ति को सम्भव से सुलभ बनाकर उसमें जन-सामान्य की रुचि उत्पन्न कर देती हैं। इसे कथा के विकास की तीसरी अवस्था कह सकते हैं।

---

१. द्रष्टव्य, लेखक का शोध प्रबन्ध—"कुवलयमाला कहा" का सांस्कृतिक अध्ययन, वैशाली, पृ० २१०

२. सेट्ठिकुलंसि पुत्तताए पच्चाइस्सइ,—विपाक० १, ध० क० मूल, पृ० ४६५

कथा के विकास की चौथी अवस्था प्रतिपाद्य को सुलभ से अनुकरणीय बनाने की प्रवृत्ति से सम्बन्धित है। इस धरातल पर कथाकार कहता है कि तुम देखो, उस श्रावक ने ऐसा-ऐसा किया और उसका यह फल पाया। तुम यदि ऐसा करोगे तो तुम्हें भी वह फल मिलेगा। जैन आगमों की अधिकांश कथाएँ इसी कोटि की हैं। इस विकास क्रम में अन्य कथा साहित्य एवं समकालीन जन-जीवन ने भी प्रभाव डाला है।

आगमकालीन कथाओं की प्रवृत्तियों के विश्लेषण के सम्बन्ध में डा० ए० एन० उपाध्ये का यह कथन ठीक ही प्रतीत होता है—"आरम्भ में, जो मात्र उपमाएँ थीं, उनको बाद में व्यापक रूप देने और धार्मिक मतावलम्बियों के लाभार्थ उनसे उपदेश ग्रहण करने के निमित्त उन्हें कथात्मक रूप प्रदान किया गया है। इन्हीं आधारों पर उपदेशप्रधान कथाएँ वर्णात्मक रूप में या जीवन्त वार्ताओं के रूप में पल्लवित की गयी हैं।"[1] अतः आगमिक कथाओं की प्रमुख विशेषता उनकी उपदेशात्मक और आध्यात्मिक प्रवृत्ति है। किन्तु क्रमशः इसमें विकास होता गया है। उपदेश, अध्यात्म, चरित, नीति से आगे बढ़कर कुछ आगमों की कथाएं शुद्ध लौकिक और सार्वभौमिक हो गयी हैं। यही कारण है कि इन कथाओं को यदि स्वरूप-मुक्त कहा जाय तो उनके साथ अधिक न्याय होगा। आल्सडोर्फ ने आगमिक कथाओं की शैली को "टेलिग्राफिक-स्टाइल" कहा है।[2] किन्तु यह शैली सर्वत्र लागू नहीं होती है।

आगम ग्रन्थों की कथाओं की विषय-वस्तु विविध है। अतः इन कथाओं का सम्बन्ध परवर्ती कथा-साहित्य से बहुत समय से जुड़ा रहा है।[3] साथ ही देश की अन्य कथाओं से भी आगमों की कथाओं का सम्बन्ध कई कारणों से बना रहा है। डा० विन्टरनित्स ने कहा है कि "श्रमण साहित्य का विषय मात्र ब्राह्मण, पुराण और चरित कथाओं से ही नहीं लिया गया है, अपितु लोक कथाओं एवं परी कथाओं आदि से भी गृहीत है।"[4] प्रो० हर्टेल भी जैन कथाओं के वैविध्य से प्रभावित हैं। उनका कहना है कि "जैनों का बहुमूल्य कथा साहित्य पाया जाता है। इनके साहित्य में विभिन्न प्रकार की कथाएँ उपलब्ध हैं। जैसे—प्रेमाख्यान, उपन्यास, दृष्टान्त, उपदेशप्रद पशु कथाएँ आदि। कथाओं के माध्यम से इन्होंने अपने सिद्धान्तों को जन साधारण तक पहुँचाया है।[5]

आगम ग्रन्थों की कथाओं की एक विशेषता यह भी है कि वे प्रायः यथार्थ से जुड़ी हुई हैं। उनमें अलौकिक तत्वों एवं भूतकाल की घटनाओं के कम उल्लेख हैं। कोई भी कथा वर्तमान के कथानायक के जीवन से प्रारम्भ होती है। फिर उसे बताया जाता है कि उसके वर्तमान जीवन का सम्बन्ध भूत एवं भविष्य से क्या हो सकता है। ऐसी स्थिति में श्रोता की कथा के पात्रों से आत्मीयता बनी रहती है। जबकि वैदिक कथाओं की अलौकिकता चमत्कृत तो करती है, किन्तु उससे निकटता का बोध नहीं होता है।[6] बौद्ध कथाओं में भी वर्तमान की कथा का अभाव खटकता है। उनमें बोधिसत्व के माध्यम से बौद्ध सिद्धान्त अधिक हावी है।[7] यद्यपि इन तीनों परम्पराओं में किसी प्राचीन सामान्य स्रोत से भी कथाएँ ग्रहण की गयी हैं, जिसे विन्तरनित्स ने "श्रमणकाव्य" कहा है।[8]

सांस्कृतिक मूल्यांकन—

प्राकृत आगम ग्रन्थों में प्राप्त कथाएँ केवल तत्व-दर्शन को समझने के लिए ही नहीं, अपितु तत्कालीन समाज और संस्कृति को जानने के लिए भी महत्वपूर्ण है। यद्यपि आगम ग्रन्थों का कोई एक रचनाकाल निश्चित नहीं है। महावीर के निर्वाण के

---

१. उपाध्ये, ए० एन० : बृहत्कथा-कोश भूमिका, पृ० ८
२. प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ० १६८ (फुटनोट)
३. जैन, जगदीशचन्द्र : "दो हजार वर्ष पुरानी कहानियाँ"।
४. "द जैनस् इन द हिस्ट्री आफ इण्डियन लिटरेचर;' सं०—मुनि जिनविजय, पृ० ५
५. प्रो० हर्टेल, "आन द लिटरेचर आफ द श्वेताम्बराज् आफ गुजरात" पृ० ६
६. जैन, जगदीशचन्द्र : प्राकृत जैन कथा-साहित्य, पृ० ८
७. प्रो० हर्टेल, वही, पृ० ७-८
८. देखें—'सम प्रोब्लम्स आफ इण्डियन लिटरेचर' पृ० २१-४०

बाद वलभी में सम्पन्न आगम-वाचना के समय तक इन आगमों का स्वरूप निश्चित हुआ है।[1] अतः ईसा पूर्व छठी शताब्दी से ईसा की ५वीं शताब्दी तक लगभग एक हजार वर्षों का जन-जीवन इन आगमों में अंकित हुआ है। आगमों के व्याख्या साहित्य में विभिन्न सांस्कृतिक सन्दर्भों को और अधिक स्पष्ट किया गया है।[2] आगम ग्रन्थों में प्राप्त समाज, संस्कृति एवं राजनीति आदि की सामग्री का महत्व इसलिए और अधिक है कि इस युग के अन्य ऐतिहासिक साक्ष्य कम उपलब्ध हैं। अतः इन्हीं साहित्यिक साक्ष्यों पर निर्भर होना पड़ता है। जैन-मुनियों द्वारा लिखे गये अथवा संकलित किये गये इन आगम ग्रन्थों में अतिशयोक्तियाँ होते हुए भी यथार्थ चित्रण अधिक है, जो संस्कृति के मूल्यांकन के लिए आवश्यक होता है। इन आगमिक कथाओं में प्राप्त सांस्कृतिक सामग्री के मूल्यांकन के लिए सूक्ष्म अध्ययन की आवश्यकता है तथा समकालीन अन्य परम्परा के साहित्य की जानकारी रखना भी जरूरी है। यहाँ पर कुछ सांस्कृतिक सन्दर्भों का मात्र दिग्दर्शन ही किया जा सकता है।

भाषात्मक-दृष्टि—

महावीर के उपदेशों की भाषा को अर्धमागधी कहा गया है।[3] अतः उनके उपदेश जिन आगमों में संकलित हुए हैं उनकी भाषा भी अर्धमागधी प्राकृत है। किन्तु इस भाषा में महावीर के समय की ही अर्धमागधी भाषा का स्वरूप सुरक्षित नहीं है। अपितु ईसा की ५वीं शताब्दी तक प्रचलित रहने वाली सामान्य प्राकृत महाराष्ट्री के रूप भी इसमें मिल जाते हैं। कुछ आगम ग्रन्थों में अर्धमागधी में वैदिक भाषा के तत्व भी सम्मिलित हैं। 'पच्छंसु' आदि क्रियाओं में 'इंसु' प्रत्यय एवं ग्रहण के अर्थ में 'घेप्पइ' क्रियाओं का प्रचलन आदि आगमों में वैदिक भाषा का प्रभाव है।[4] मागधी एवं शौरसेनी प्राकृत के भी कुछ छुटपुट प्रयोग इसमें प्राप्त हैं।[5] सम्भवतः अर्धमागधी भाषा के गठन की प्रवृत्ति के कारण यह हुआ है। आगमों की भाषा को समझने के लिए कुछ भाषात्मक सूत्र आगमों में ही प्राप्त हैं। उन्हें समझने की आवश्यकता है।[6]

इन आगमिक कथाओं की भाषा के स्वरूप एवं उसके स्तर को तय करने के लिए व्याख्या साहित्य में की गई व्युत्पत्तियों को भी देखना आवश्यक है। प्रकाशित संस्करणों के साथ ही ग्रन्थों की प्राचीन प्रतियों पर अंकित टिप्पण भी आगमों की भाषा को स्पष्ट करते हैं। पाठ-भेदों का तुलनात्मक अध्ययन भी इसमें मदद करेगा।

इन कथाओं के कई नायकों को बहुभाषाविद् कहा गया है। ज्ञाताधर्मकथा में मेघकुमार की कथा में अठारह विविध प्रकार की देशी भाषाओं का विशारद उसे कहा गया है।[7] किन्तु इन भाषाओं के नाम आगम ग्रन्थों में नहीं मिलते। व्याख्या साहित्य में हैं। कुवलयमालाकहा में इन भाषाओं के नामों के साथ-साथ उनके उदाहरण भी दिये गये हैं।[8] इन कथाओं में विभिन्न प्रसंगों में कई देशी शब्दों का भी प्रयोग हुआ है। आगम शब्द कोश[9] में ऐसे शब्दों का संकलन कर स्वतन्त्र रूप से विचार किया जाना चाहिए।

णिबु उल्लपडसाडया, वरड, सासुवणा, रसयंकुजोवत, सरस, महेलियावज्जं, थंडिल्लं, अवओडय-बंधगयं, डिंभय, इंवट्ठाण आदि शब्द अन्तकृद्दशा की कथाओं में आये हैं।[10] इसी तरह अन्य कथाओं में भी खोजे जा सकते हैं। कुछ शब्द व्याकरण की दृष्टि

---

१. मालवणिया, पं० दलसुख : जैन साहित्य का बृहद् इतिहास, भाग १, भूमिका पृ० ५१
२. जैन, जगदीशचन्द्र : जैन आगम साहित्य में भारतीय समाज।
३. बाटगे : इन्ट्रोडक्शन टू अर्धमागधी।
४. पिशेल : प्राकृत भाषाओं का व्याकरण।
५. मिश्रा, एस० एन० : द ग्रामर आफ अर्धमागधी, वाराणसी।
६. महाप्रज्ञ नथमल मुनि : "आर्ष प्राकृत, स्वरूप और विश्लेषण" नामक निबन्ध, संस्कृत-प्राकृत जैन व्याकरण और कोश की परम्परा, छापर १९८१
७. अट्ठारसविहिप्पगारदेसीभासा विसारए—ध० क० श्रमणकथा, मूल, पृ० ७८, पैरा ३२९
८. जैन, प्रेम सुमन : "कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन", पृ० २५६
९. आचार्य तुलसी : आगम शब्द-कोश, लाडनूं, १९८२
१०. साध्वी दिव्यप्रभा : अन्तकृद्दशा, ब्यावर (विवेचन)

से नियमित नहीं हैं तथा उनमें कारकों की व्याख्या नहीं है ।[1] ये सब दृष्टियाँ इन कथाओं के भाषात्मक अध्ययन में प्रवृत्त होने को हो सकती हैं । पालि, संस्कृत के शब्दों का इन कथाओं में प्रयोग भी उपयोगी सामग्री प्रस्तुत करेगा ।

काव्यतत्त्व—

आगम ग्रन्थों की कथाओं में गद्य एवं पद्य दोनों का प्रयोग हुआ है । कथाकारों के अधिकांश वर्णन यद्यपि वर्णक के रूप में स्थिर हो गये थे । नगर वर्णन, सौंदर्य-वर्णन आदि विभिन्न कथाओं में एक से प्राप्त होते हैं अतः स्मरण की सुविधा के कारण उनकी पुनरावृत्ति न करके "जाव" पद्धति द्वारा उनका उपयोग किया जाता रहा है । किन्तु कुछ वर्णन विशुद्ध रूप से साहित्यिक हैं । संस्कृत के गद्य साहित्य की सौन्दर्य-सुषमा उनमें देखी जा सकती है । प्राचीन भारतीय गद्य साहित्य के उद्‌भव एवं विकास के अध्ययन के लिए इन कथाओं के गद्यांश मौलिक आधार माने जा सकते हैं ।

मेघकुमार की कथा में अंकित यह प्रासाद-वर्णन द्रष्टव्य है—

अब्भुग्गयमूसियपहसिए विव मणि-कणग-रयणभत्ति-चित्ते वाउद्धयविजय-वेजयंती-पडाग-छत्ताइछत्त कलिए तुंगे गगणतल-मभिलंघमाणसिहरे जालंतर-रयणपंजरुम्मिलिएव्व मणि-कणगथूभियाए वियसिय-सतवत्त-पुण्डरीए तिलय-रयणद्ध चंदच्चिए नानामणि-मय-दामालंकिए अंतो बहिं च सण्हे तवणिज्ज-रुइल-वालुया-पत्थरे सुहफासे सस्सिरीयरूवे पासाइए-जाव-पडिरूवे ।

प्रा० क० श्रमणकथा, मूल, पृ० ७८

उत्प्रेक्षाओं का इसमें सटीक प्रयोग हुआ है । इसी प्रकार धन्य मुनि की तपश्चर्या के वर्णन में भी काव्यत्व संजोया हुआ है । कठोर तपश्चर्या से धन्यमुनि का शरीर इतना सूख गया था कि उनकी पसलियों को रुद्राक्ष की माला के मनकों की तरह गिना जा सकता था, उनके वक्षस्थल की हड्डियाँ गंगा की तरंगों की तरह स्पष्ट दिखायी देती थीं । सूखे सर्प की तरह भुजाएं एवं घोड़े की लगाम की तरह काँपने वाले उनके अग्रहस्त थे तथा कम्पन वातरोग के रोगी की तरह उनका सिर काँपता रहता था । यथा—

अक्खसुत्तमाला ति व गणेज्जमाणेहि पिट्ठकरंडगसंधीहिं, गंगातरंगभूएणं उरकडगदेस-भाएणं, सुक्कसप्पसमाणाहि बाहाहिं, सिढिल-कडाली विवलंबंतेहि य अग्गहत्थेहिं, कंपणवाइओ विव वेवमाणीए सीसघडीए । —प्रा० क० श्रमणकथा, पृ० १०२ पैरा० ४१२

इन कथाओं में उपमाओं का बहुत प्रयोग हुआ है । ऋषभदेव के मुनिरूप का वर्णन बहुत ही काव्यात्मक है । उसमें २९ उपमाएँ दी गयी हैं । यथा—शुद्ध सोने की तरह रूप वाले, पृथ्वी की तरह सब स्पर्शों को सहने वाले, हाथी की तरह वीर, आकाश की तरह निरालम्ब, हवा की तरह निर्द्वन्द्व आदि ।[2]

इन कथाओं के गद्य में जितना काव्य तत्व है, उतना ही पद्य-भाग भी काव्यात्मक है । उत्तराध्ययनसूत्र की कथाएँ पद्य में ही वर्णित है । उसमें अनेक अलंकारों का प्रयोग हुआ है ।[3] कुछ उपमाएं एवं दृष्टान्त यहाँ प्रस्तुत हैं[4]—

उपमाएँ	दृष्टान्त
आसीविसोवमा (९·५३)	दावाग्नि का दृष्टान्त (१४·४२)
जहेह सीहो व मियं गहाय (१३·२२)	पक्षी का दृष्टान्त (१४·४६)
पंखा विहूणो व्व जहेह पक्खी (१४·३०)	मृग (१९·७७)
विवन्तसारो वणिओ व्व पोए (१४·३०)	गोपाल (२२·४५)
गुरुओ लोह भारोव्व (१९·३५)	पाथेय (१९·१८)
सत्थं जहा परमतिक्ख (२०·२०)	जलता हुआ घर (१९·२२)
सिरे चूडामणी जहा (२२·१०)	तीन वणिक (७·१४)

---

१. मुनि नथमल : उत्तराध्ययन—एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ४७८ आदि ।

२. प्रा० क० उत्तम० कहा० पृ० २०-२९

३. जैन, सुदर्शन लाल : उत्तराध्ययनसूत्र—एक परिशीलन ।

४. विस्तार के लिए देखें—"उत्तराध्ययन—एक समीक्षात्मक अध्ययन", पृ० ४६१

इसी तरह की उपमाएँ आदि यदि सभी कथाओं की एकत्र कर उनका तुलनात्मक अध्ययन किया जाय तो भारतीय काव्य-शास्त्र के इतिहास के लिए कई नए उपमान एवं बिम्ब प्राप्त हो सकते हैं।

कथानक रूढ़ियाँ एवं मोटिफ्स

कथाओं के तुलनात्मक अध्ययन के लिए उनके मोटिफ्स एवं कथानक रूढ़ियों का अध्ययन करना बहुत आवश्यक है। इससे कथा के उत्स एवं विकास को खोजा जा सकता है।[1] पालि-प्राकृत कथाओं में कई समान कथानक रूढ़ियों का प्रयोग हुआ है।[2] यह एक स्वतन्त्र अध्ययन का विषय है। यद्यपि विदेशी विद्वानों ने इस क्षेत्र में पर्याप्त कार्य किया है। किन्तु भारतीय कथाओं की पृष्ठभूमि में अभी काम किया जाना शेष है।

धम्मकहाणुओगो में यद्यपि कई कथाएँ प्रयुक्त हुई हैं। उनके व्यक्तिवाचक नामों की संख्या हजार भी हो सकती है। किन्तु उनमें जो मोटिफ्स प्रयुक्त हुए हैं वे एक सौ के लगभग होंगे। उन्हीं की पुनरावृत्ति कई कथाओं में होती रहती है। इन कथाओं के कुछ अभिप्राय द्रष्टव्य हैं—

१. शिष्य की जिज्ञासा का गुरु द्वारा समाधान
२. माता द्वारा स्वप्नदर्शन और पुत्रजन्म
३. गर्भिणी स्त्री का दोहद
४. मुनि-उपदेश से वैराग्य
५. माता-पिता और पुत्र के बीच वैराग्य सम्बन्धी संवाद
६. पूर्वभव-कथन एवं जाति-स्मरण
७. दीक्षा एवं उसके बाद सद्गति
८. साधना से स्खलन और पुनः स्थिरता
९. दो प्रतिपक्षी चरित्रों का द्वन्द्व
१०. वैराग्य की परीक्षा में खरा उतरना
११. अन्य धर्मों से अपने धर्म की श्रेष्ठता
१२. पुत्र-पुत्रियों की बुद्धि परीक्षा
१३. मित्रों के बीच मायाचार की घटना
१४. हिंसा टालने के लिए युक्ति
१५. रूप-वर्णन आदि सुनकर आसक्ति
१६. दूसरों द्वारा सन्देश और उनका अपमान
१७. सागर यात्रा में नौका-भग्न
१८. निषिद्ध वस्तु के प्रति आकर्षण
१९. असम्भव को सम्भव कर दिखाना
२०. सन्तान की अदला-बदली
२१. पुरुष को नारी द्वारा उद्बोधन
२२. सार्थवाह का व्यापार
२३. मुनि के प्रति घृणा व निन्दा से जन्मान्तर में कलंक और क्लेश
२४. आपत्‌ काल में नियमों की छूट

---

१. सत्येन्द्र, लोक साहित्य विज्ञान।
२. देखें, लेखक का निबन्ध—"पालि-प्राकृत कथाओं में प्रयुक्त अभिप्राय—एक अध्ययन" राजस्थान भारती, १९६९

२५. परिवार के सदस्यों का एक दूसरे के लिए त्याग[1]
२६. अतिवैभव वाले नायक का त्याग
२७. गुरु की न्याय-प्रियता से धर्म-प्रभावना
२८. तपश्चर्या में दैवी शक्तियों द्वारा विघ्न
२९. साधक की अडिगता
३०. गुणी एवं साधक की पत्नी का विपरीत आचरण
३१. नारी-हठ के दुष्परिणाम[2]
३२. कठिनता से प्राप्त पुत्र का गृह-त्याग
३३. पूर्व वैरी द्वारा साधना में उपसर्ग
३४. सामूहिक अनाचार के प्रति विद्रोह
३५. आराधक की निष्क्रियता के प्रति आक्रोश
३६. हिंसक प्रवृत्ति की अति से आतंक
३७. साधारण नायक का साहसी होना
३८. क्रूर व्यक्ति का हृदय-परिवर्तन[3]
३९. तपश्चर्या में शरीर का सूखना
४०. साधना की पराकाष्ठा से भव-छेदन[4]
४१. वर्तमान जन्म के दुख को पूर्वजन्मों के कर्मों का फल मानना
४२. बड़ी संख्या वाले शिष्यों के नायक को अपनी ओर झुकाना
४३. राजा द्वारा अपराधी को दण्ड देना
४४. दण्ड पाये हुए अपराधी के प्रति दण्डक की करुणा
४५. वध्यपुरुष के पूर्वभव का कथन
४६. भाई-बहन में पति-पत्नी का सम्बन्ध
४७. मित्र की पत्नी के साथ अनुचित सम्बन्ध
४८. संतान प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न
४९. सौतों के प्रति दुर्व्यवहार
५०. सास-बहू में डाह[5]

इस प्रकार यदि आगमिक कथाओं का एक प्रामाणिक मोटिफ्स-इन्डेक्स तैयार किया जाय तो इन कथाओं की मूल भावना को समझने में तो सहयोग मिलेगा ही, उनके विकास-क्रम को भी समझा जा सकेगा।

सामाजिक जीवन—

आगम-ग्रन्थों की इन कथाओं में मौर्य-युग एवं पूर्व-गुप्तयुग के भारतीय जीवन का चित्रण हुआ है। तब तक चतुर्वर्ण-व्यवस्था व्यापक हो चुकी थी। इन कथाओं में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य एवं शूद्रों के भी कई उल्लेख हैं। ब्राह्मण के लिए माहण शब्द का प्रयोग अधिक हुआ है। महावीर को भी माहण और महामाहण कहा गया है। उत्तराध्ययन में ब्राह्मणों के यज्ञों का भी उल्लेख

---

१. ज्ञाताधर्मकथा की कथाओं के प्रमुख मोटिफ्स (अभिप्राय) (१-२५)
२. उवासगदसाओ की कथाओं के प्रमुख अभिप्राय (२६-३१)।
३. अन्तकृद्दशा की कथाओं के प्रमुख अभिप्राय (३२-३८)।
४. अनुत्तरौपपातिक दशा के कुछ अभिप्राय (३९-४०)।
५. विपाकसूत्र की कथाओं के प्रमुख मोटिफ्स (४१-५०)।

है, जिन्हें आध्यात्मिक यज्ञों में बदलने की बात इन जैन कथाकारों ने कही है।[1] क्षत्रियों के लिए 'खत्तिय' शब्द का यहाँ प्रयोग हुआ है। इन कथाओं में अनेक क्षत्रिय राजकुमारों की शिक्षा एवं दीक्षा का भी वर्णन है। वैश्यों के लिए इब्भ, श्रेष्ठी, कौटुम्बिक, गाहावइ आदि शब्दों का प्रयोग हुआ है।[2] हरिकेश चांडाल एवं चित्त-सम्भूत मातंगों की कथा के माध्यम से एक ओर जहाँ उनके विद्या पारंगत एवं धार्मिक होने की सूचना है वहाँ समाज में उनके प्रति अस्पृश्यता का भाव भी स्पष्ट होता है।[3] चाण्डालों के कार्यों का वर्णन भी अन्तकृद्दशा की एक कथा में मिलता है।[4]

इन कथाओं के अध्ययन से ज्ञात होता है कि तत्कालीन पारिवारिक जीवन सुखी था। रोहिणी की कथा संयुक्त परिवार के आदर्श को उपस्थित करती है, जिसमें पिता मुखिया होता था (ज्ञाता० ७)। पिता को ईश्वर तुल्य मानकर प्रातः उसकी चरण वंदना की जाती थी (ज्ञाता० १)। संकट उपस्थित होने पर पुत्र अपने प्राणों की आहुति भी पिता के लिए देने तैयार रहते थे (ज्ञाता० १८)। अपनी संतान के लिए माता के अटूट प्रेम के कई दृश्य इन कथाओं में है। मेघकुमार की दीक्षा की बात सुनकर उसकी माता अचेत हो गयी थी। राजा पुष्यनन्दी की कथा से ज्ञात होता है कि वह अपनी माँ का अनन्य भक्त था।[5] चूलनीपिता की कथा में मातृ-वध का विघ्न उपस्थित किया है। उसमें माता भद्रा सार्थवाही के गुणों का वर्णन है।[6]

आगमों की कथाओं में विभिन्न सामाजिक जनों का उल्लेख है। यथा—तलवर, मांडलिक, कौटुम्बिक, इब्भ,[7] श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, महासार्थवाह, महागोप, सांयात्रिक, नौवणिक्, सुवर्णकार, चित्रकार, गाहावइ, सेवक[8] आदि। गजसुकुमार की कथा से ज्ञात होता है कि परिवार के सदस्यों के नामों में एकरूपता रखी जाती थी। यथा—सोमिल पिता, सोमश्री माता एवं सोमा पुत्री। जन्मोत्सव मनाने की पुरानी प्रथा है, जिसमें उपहार भी दिया जाता था। राजकुमारी मल्ली की जन्मगांठ पर श्रीदामकाण्ड नामक हार दिया गया था। जन्मगांठ को वहाँ 'संवच्छरपडिलेहणयं' कहा गया है इसी प्रकार स्नान आदि करने के उत्सव भी मनाये जाते थे। चातुर्मासिक स्नान-महोत्सव प्रसिद्ध था।[9]

इन कथाओं से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय समाज सेवा के अनेक कार्य किये जाते थे। नंद मणिकार की कथा से स्पष्ट है कि उसने जनता के लिए एक ऐसी प्याऊ (वापी) बनवायी थी, जहाँ छायादार वृक्षों के वनखण्ड, मनोरंजक चित्रसभा, भोजनशाला, चिकित्सा-शाला, अलंकार-सभा आदि की व्यवस्था थी।[10] समाज-कल्याण की भावना उस समय विकसित थी। राजा प्रदेशी ने भी श्रावक बनने का निश्चय करके अपनी सम्पत्ति के चार भाग किये थे। उनमें से परिवार के पोषण के अतिरिक्त एक भाग सार्वजनिक हित के कार्यों के लिए था, जिससे दानशाला आदि स्थापित की गयी थीं।[11] इन कथाओं में पात्रों के अपार वैभव का वर्णन है। देशी व्यापार के अतिरिक्त विदेशों से व्यापार भी उन्नत अवस्था में था। अतः समाज की आर्थिक स्थिति अच्छी थी। वाणिज्य-व्यापार एवं कृषि आदि के इतिहास के लिए इन कथाओं में पर्याप्त सामग्री प्राप्त है।[12] समुद्र यात्रा एवं सार्थवाह-

---

१. उत्तराध्ययन १२-४४
२. जैन, जगदीशचन्द्र : जैं० आ० सा० में भा० समाज, पृ० २२६
३. उत्तरा० अ० १२ एवं १३
४. अन्तकृद्दशा, ४
५. विपाकसूत्र, ६
६. उवासगदशा (३, डा० छगनलाल शास्त्री, पृ० १०८)।
७. अन्तकृद्दशा (विवेचन, पृ० १२)
८. ज्ञाताधर्मकथा (विवेचन, पृ० २३०, २३२, २४६ आदि)
९. ज्ञाताधर्मकथा (मल्ली कथा, पृ० २३०, २४४ आदि)
१०. वही, पृ० ३४२-४५ आदि।
११. रायपसेणिय, सूत्र, ५८ (ध० क० मूल, श्रमणोपासक कथा, पृ० २८६)
१२. जैन, जगदीशचन्द्र : जैन आगम सा० में भा० समाज, पृ० ११६ आदि।

जीवन के सम्बन्ध में भी इन जैन कथाओं से ऐसी जानकारी मिलती है, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।[1] बुद्धकालीन समाज से तुलना के लिए भी यह सामग्री महत्त्वपूर्ण है।[2]

राज्य व्यवस्था—

प्राकृत की इन कथाओं में राज्य-व्यवस्था सम्बन्धी विविध जानकारी उपलब्ध है। चम्पा के राजा कूणिक (अजातशत्रु) की कथा से उसकी समृद्धि और राजकीय गुणों का पता चलता है।[3] राज्यपद वंश परम्परा से प्राप्त होता था। राजा दीक्षित होने के पूर्व अपने पुत्र को राज्य-गद्दी पर बैठाता था। किन्तु उदायण राजा की कथा से ज्ञात होता है कि उसने अपने पुत्र के होते हुए भी अपने भानजे को राजपद सौंपा था।[4] नन्दीवर्धन राजकुमार की कथा से ज्ञात होता है कि वह अपने पिता के विरुद्ध षड्यन्त्र करके राज्य पाना चाहता था।[5] राजभवनों एवं राजा के अन्तःपुरों के भीतरी जीवन के दृश्य भी इन कथाओं में प्राप्त हैं।[6] अन्तकृद्दशा में कन्या-अन्तःपुर का भी उल्लेख है। राज्य-व्यवस्था में राजा, युवराज, मन्त्री, सेनापति, गुप्तचर, पुरोहित, श्रेष्ठी आदि व्यक्ति प्रमुख होते थे। डा० जगदीश चन्द्र जैन ने आगम कथा-साहित्य के आधार पर प्राचीन राज्य-व्यवस्था पर अच्छा प्रकाश डाला है।[7] अपराध एवं दण्ड व्यवस्था के लिए इस साहित्य में इतनी सामग्री उपलब्ध है कि उससे प्राचीन दण्ड व्यवस्था पर स्वतन्त्र ग्रन्थ लिखे जा सकते हैं। जैन कथाकारों ने राजकुलों एवं राजाओं का अपनी कथाओं में उल्लेख प्रभाव उत्पन्न करने के लिए किया है। किन्तु कई स्थानों पर तो उनका ऐतिहासिक महत्त्व भी है।

धार्मिक मत-मतान्तर—

आगमों की इन कथाओं में जैन धर्म एवं दर्शन के विविध आयाम तो उद्घाटित हुए ही हैं, साथ ही अन्य धर्मों एवं मतों के सम्बन्ध में इनसे विविध जानकारी प्राप्त होती है। आर्द्रककुमार की कथा से शाक्य श्रमणों के सम्बन्ध में सूचना मिलती है। धन्ना सार्थवाह की कथा में विभिन्न विचारधाराओं को मानने वाले परिव्राजकों के उल्लेख हैं। यथा—चरक, चीरिक, चर्मखंडिक, भिच्छुण्ड, पण्डुरंग, गौतम, गोव्रती गृहधर्मी, धर्म-चिन्तक, अविरुद्ध, वृद्ध, श्रावक, रक्तपट आदि।[8] व्याख्या साहित्य में जाकर इनकी संख्या और बढ़ जाती है।[9] इन सबकी मान्यताओं को यदि व्यवस्थित रूप से प्रस्तुत किया जाय तो कई नयी धार्मिक और दार्शनिक विचारधाराओं का पता चल सकता है। संकट के समय में कई देवताओं को लोग स्मरण करते थे। उनके नाम इन कथाओं में मिलते हैं।[10] आगे चलकर तो एक ही प्राकृत कथा में विभिन्न धार्मिक एवं उनके मत एकत्र मिलने लगते हैं।[11] प्राकृत की इन कथाओं का लोक-जीवन से घनिष्ठ सम्बन्ध था। अतः इनमें लोक देवताओं और लौकिक धार्मिक अनुष्ठानों की भी पर्याप्त सामग्री प्राप्त है।[12] यद्यपि आगम साहित्य में प्राप्त जैन दर्शन के स्वरूप पर पं० मालवणिया जी ने प्रकाश डाला है।[13] किन्तु इन कथाओं की भी धर्म और दर्शन की दृष्टि से समीक्षा की जानी चाहिए।

---

१. मोतीचन्द्र : सार्थवाह, अध्याय ९, पृ० १५८ आदि।
२. सिंह, मदनमोहन : बुद्धकालीन समाज और धर्म, पटना, १९७२
३. औपपातिक सूत्र, ६
४. व्याख्याप्रज्ञप्ति, १३·६
५. विपाक सूत्र, ६
६. जैन आगम सा० में भा० समाज, पृ० ५२-५३
७. वही, पृ० ६०-६२ आदि
८. ज्ञाताधर्मकथा (भूमिका, पृ० ३५-३८)
९. डा० जैन : वही, पृ० ४१३-२० आदि।
१०. ज्ञाताधर्मकथा, पृ० २३७
११. कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन, पृ० ३८२
१२. डा० जैन : वही, पृ० ४२१ आदि।
१३. (क) आगमयुग का जैन दर्शन, आगरा, १९६६   (ख) जैन दर्शन का आदिकाल, अहमदाबाद, १९८०

स्थापत्य एवं कला—

आगमों की इन कथाओं में कुछ कथा-नायकों की गुरुकुल-शिक्षा के वर्णन हैं। मेघकुमार की कथा में ७२ कलाओं के नामोल्लेख हैं। अन्य कथाओं में भी इनका प्रसंग आया है। श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने इन सभी कलाओं का परिचय अपनी भूमिका में दिया है।[1] इन ७२ कलाओं के अन्तर्गत भी संगीत, वाद्य, नृत्य, चित्रकला, आदि प्रमुख कलाएं हैं, जिनका जीवन में बहुविध उपयोग होता था। इस दृष्टि से राजा प्रदेशी की कथा अधिक महत्वपूर्ण है। उसमें बत्तीस प्रकार की नाट्यविधियों का वर्णन है।[2] टीका साहित्य में उनके स्वरूप आदि पर विचार किया गया है।[3] ज्ञाताधर्मकथा में मल्ली की कथा चित्रकला की प्रभूत सामग्री उपस्थित करती है। मल्ली की स्वर्णमयी प्रतिमा का निर्माण मूर्तिकला का उत्कृष्ट उदाहरण है। स्थापत्यकला की प्रचुर सामग्री राजा प्रदेशी की कथा में प्राप्त है। राजाओं के प्रासाद-वर्णनों एवं श्रेष्ठियों के वैभव के दृश्य उपस्थित करने आदि में भी प्रासादों एवं क्रीडागृहों के स्थापत्य का वर्णन किया गया है। इस सब सामग्री को एक स्थान पर एकत्र कर उसको प्राचीन कला के सन्दर्भ में जाँचा-परखा जाना चाहिए।[4] यक्ष-प्रतिमाओं और यक्ष-गृहों के सम्बन्ध में तो जैन कथाएं ऐसी सामग्री प्रस्तुत करती हैं, जो अन्यत्र उपलब्ध नहीं है।

भौगोलिक विवरण—

प्राकृत की इन कथाओं का विस्तार केवल भारत में ही नहीं, अपितु बाहर के देशों तक रहा है। इन कथाओं के कथाकार स्वयं सारे देश को अपने पदों से नापते रहे हैं। अतः उन्होंने विभिन्न जनपदों, नगरों, ग्रामों, वनों एवं अटवियों की साक्षात् जानकारी प्राप्त की है। उसे ही अपनी कथाओं में अंकित किया है। कुछ पौराणिक भूगोल का भी वर्णन है, किन्तु अधिकांश देश की प्राचीन राजधानियों, प्रदेशों, जनपदों एवं नगरों आदि से सम्बन्धित वर्णन ही हैं।[5] अंगदेश, काशी, इक्ष्वाकु, कुणाल, कुरु, पांचाल, कौशल आदि जनपदों, अयोध्या, चम्पा, वाणारसी, श्रावस्ती, हस्तिनापुर, द्वारिका, मिथिला, साकेत, राजगृह आदि नगरों के उल्लेखों को यदि सभी कथाओं से एकत्र किया जाय तो प्राचीन भारत के नगर एवं नागरिक जीवन पर नया प्रकाश पड़ सकता है। आधुनिक भारत के कई भौगोलिक स्थानों के इतिहास में इससे परिवर्तन आने की गुंजाइश है। इस दिशा में कुछ विद्वानों ने कार्य भी किया है। किन्तु उसमें इन कथाओं की सामग्री का भी उपयोग होना चाहिए।[6] जैन कथाओं के भूगोल पर स्वतन्त्र पुस्तक भी लिखी जा सकती है।

जैन आगम कथा-कोश-योजना—

श्रद्धेय मुनि श्री कन्हैयालाल जी 'कमल' द्वारा संकलित 'धम्मकहाणुओगो' की कथाओं के माध्यम से आगम कथा-साहित्य के मूल्यांकन की यह भूमिका मात्र है। श्री मुनिजी ने इस कथाकोश में जो परिश्रम किया है उसकी तुलना में इस भूमिका के लेखन में कोई विशेष श्रम नहीं हो पाया है अन्यथा इन कथाओं का आन्तरिक पक्ष और अधिक उजागर हो सकता था। किन्तु यह संतोष है कि इस बहाने आगमों की कथाओं को एक साथ पढ़ने का अवसर प्राप्त हुआ और उनसे बहुत कुछ बातें सीखने को मिलीं। अध्ययन करने की कई दिशाएँ ये कथाएँ उद्घाटित करती हैं। उनमें से कुछ की ओर इस भूमिका में संकेत करने का विनम्र प्रयास किया गया है। कथा-साहित्य के विद्यार्थी होने के नाते कथात्मक पक्ष पर ही दृष्टि अधिक रखी गयी है। यद्यपि वह भी सूक्ष्म अध्ययन तक नहीं पहुँच पायी है। कथाओं के अन्य पक्ष क्रमशः उद्घाटित किये जा सकेंगे। प्राकृत एवं जैन विद्या पर शोध-कार्य करने वाले शोध-छात्रों एवं विद्वानों के लिए 'धम्मकहाणुओगो' महत्वपूर्ण सामग्री प्रस्तुत करता है। 'जैन विद्या' के अन्य मनीषियों ने भी इस दिशा में आधारभूत अध्ययन प्रस्तुत किये हैं। उनके मार्ग-दर्शन से आगमिक कथा-साहित्य, व्याख्या कथा-साहित्य एवं

---

१. ज्ञाताधर्मकथा (भूमिका, पृ० १४ आदि)

२. धम्मकहाणुओगो, मूल, श्रमणोपासक कथा, पृ० २५३, पैं० २१,२३ आदि

३. डा० जैन : वही, पृ० ३२५ आदि।

४. डा० घोष : जैन स्थापत्य एवं कला (भाग १-३)

५. डा० जैन : वही, पृ० ४५६-४६०

६. उत्तराध्ययनसूत्र— एक समीक्षात्मक अध्ययन, पृ० ३७१ आदि।

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश आदि भाषाओं के स्वतन्त्र कथा-साहित्य पर विशद् अध्ययन होना चाहिए। जैन कथा-कोश के कई भागों के प्रकाशन की योजना इस कार्य को आगे बढ़ा सकेगी।

हमारे जैनविद्या एवं प्राकृत विभाग में प्रमुख रूप से अभी दो ही प्रवृत्तियों पर अधिक जोर दिया जा रहा है। प्राकृत भाषा का स्वतन्त्र भाषा के रूप में आधुनिक शैली में शिक्षण एवं पठन-पाठन की व्यवस्था करना विभाग का पहला कार्य है। इस दिशा में कुछ प्रकाशन भी किये गये हैं। दूसरा कार्य जैन कथा-साहित्य के अध्ययन और शोध-कार्य को गति देने का है। विभाग के शोध-छात्र अभी प्राकृत कथा-ग्रन्थों एवं आगम ग्रन्थों पर कार्यरत हैं। कुछ विद्वान् तैयार हो जाने पर जैन कथा-कोश के निर्माण के कार्य को विभाग अपने हाथ में लेना चाहेगा। यह बहुत लम्बा और श्रमसाध्य कार्य है। किन्तु श्रद्धेय 'कमल' मुनि जी जैसे व्यक्ति जब धम्मकहाणुओगो जैसे विशाल और महत्वपूर्ण कार्य में अकेले ही जुट सकते हैं और उसमें सफल हो सकते हैं; तब यदि उनके मार्ग-दर्शन में विद्वानों की एक टीम इस कार्य में प्रवृत्त हो तो जैन कथा-कोश निर्मित हो सकता है। यद्यपि कई विद्वान मुनियों ने इस दिशा में प्रयत्न प्रारम्भ भी कर दिये हैं।[1] किन्तु इसमें आधुनिक शैली और व्यवस्थित रूपरेखा की नितान्त आवश्यकता है।

इस भूमिका में प्रारम्भ से अन्त तक गुरुवर्य श्रद्धेय पं० दलसुखभाई मालवणिया, अहमदाबाद का मुझे पूरा मार्ग-दर्शन प्राप्त रहा है। कार्य को शीघ्र पूरा करने के लिए वे मुझे निरन्तर प्रेरित करते रहे हैं। इसके लिए मैं उनका हृदय से कृतज्ञ हूँ। किन्तु उनसे क्षमाप्रार्थी भी हूँ कि मैं उनकी इच्छा के अनुरूप इस भूमिका को उतनी सार-गर्भित नहीं बना सका जितनी वे चाहते थे। इसमें कुछ तो मेरा अज्ञान कारण है और कुछ उदयपुर में आगमिक सामग्री का अभाव भी है। इस भूमिका को मैं समय पर भी लिखकर पूरा न कर सका। अतः इसके कारण पुस्तक के प्रकाशन में जो विलम्ब हुआ है, उसके लिए मैं मुनि श्री एवं श्रद्धेय पंडित जी से पुनः क्षमा चाहता हूँ। उनका स्नेह एवं मार्ग-दर्शन इस दिशा में निरन्तर मिलता रहेगा, ऐसी आशा है।

भूमिका के लेखन में आगम ग्रन्थों के विभिन्न सम्पादकों की भूमिकाओं और विवेचनों का भी उपयोग किया गया है। कुछ स्वतन्त्र ग्रन्थ भी देखे गये हैं। उन सबके लेखकों का मैं आभारी हूँ। विशेषकर श्रद्धेय डा० जगदीश चन्द्र जैन, बम्बई का मैं आभारी हूँ, जिनसे व्यक्तिगत रूप से कई बार मुझे प्राकृत कथा साहित्य के लेखन आदि पर मार्ग-दर्शन प्राप्त होता रहा है। उनकी विद्वत्तापूर्ण पुस्तकों ने भी इस कार्य में मेरी मदद की है। उदयपुर के मेरे अग्रजतुल्य डा० कमल चन्द सोगाणी सा० का भी इस अवसर पर मैं आभार मानता हूँ कि उन्होंने मुझे और मेरे इस विभाग को प्राकृत भाषा तथा साहित्य के आधुनिक मूल्यांकन की दिशा में निरन्तर दिशा-दान किया है और कर रहे हैं। विभाग के सभी सहकर्मी विद्वानों एवं शोध-छात्रों के प्रति मैं धन्यवाद ज्ञापन करता हूँ कि मुझे उनका सहयोग हमेशा सुलभ रहता है। 'धम्मकहाणुओगो' के सूक्ष्म अध्ययन के प्रति यदि विद्वानों का ध्यान आकर्षित हुआ तथा जैन कथाओं के अध्ययन-प्रकाशन की प्रवृत्ति में समाज सक्रिय हुआ तो मैं अपनी इस भूमिका को सार्थक समझूँगा। साधु पुरुष को क्षेत्र, काल, व्यक्ति तथा अपनी सामर्थ्य को समझ-बूझकर प्राकृत की निर्दोष कथाएं कहते रहना चाहिए—

खेत्तं कालं पुरिसं सामत्थं अप्पणो वियाणंत्ता।
समणेण उ अणवज्जा पगयंमि कहा कहेयव्वा॥ —दशवैकालिक निर्युक्ति गा० २१५

□□

---

१. (क) उपाध्याय पुष्कर मुनि : जैन कथाएं, भाग १-६०, उदयपुर
(ख) मुनि महेन्द्र कुमार : जैन कहानियाँ, भाग १-३०, दिल्ली
(ग) युवाचार्य श्री मधुकर मुनि : जैन कथामाला, भाग १-३८, ब्यावर
(घ) मुनि छत्रमल : जैन कथा-कोश, नई दिल्ली, १९८१

विषय-सूची

धर्मकथानुयोग : तृतीय स्कन्ध

	सूत्रांक	पृष्ठांक
तृतीय स्कन्ध [श्रमणी कथानक]	१-२८४	१-१२४
१. अरिष्टनेमितीर्थ में द्रौपदी कथानक	१-१४६	४-६४
द्रौपदी के पूर्वभव	१	४
नागश्री कथानक	२	४
नागश्री द्वारा तिक्त तुम्बे को पकाना और एकान्त में छिपाना	३	४
धर्मरुचि को तिक्त तुम्बे का दान	४	५
धर्मरुचि द्वारा तिक्त तुम्बे का परिनिष्ठापन और चींटियों का मरण	८	६
धर्मरुचि का समाधिमरण	११	७
साधुओं द्वारा धर्मरुचि की गवेषणा	१२	८
श्रमणों द्वारा धर्मरुचि का समाधिमरण निवेदन	१३	८
धर्मरुचि का अनुत्तर देव के रूप में उत्पाद और नागश्री की गर्हा	१४	९
नागश्री का गृह-निर्वासन	१६	१०
नागश्री का भवभ्रमण	१८	११
नागश्री का सुकुमालिका भव	२०	१२
सुकुमालिका का सागर के साथ विवाह	२१	१२
सागर का पलायन	२७	१५
सुकुमालिका को चिन्ता	३१	१६
सागरदत्त द्वारा जिनदत्त को उपालंभ	३३	१७
जनापवाद होने पर भी सागर का सुकुमालिका सहवास का निषेध	३४	१७
सुकुमालिका का एक दरिद्र भिखारी के साथ पुनर्विवाह	३५	१८
द्रमक (दरिद्र भिखारी) का विपलायन	३९	१९
सुकुमालिका को पुनः चिन्ता	४२	२०
सुकुमालिका के लिए दानशाला का निर्माण	४४	२१
सुकुमालिका द्वारा सागर-प्रसादोपाय पृच्छा	४६	२२
आर्या संघाटक द्वारा धर्मोपदेश	४७	२३
सुकुमालिका का श्रमणोपासकत्व	४८	२३
सुकुमालिका द्वारा प्रव्रज्याग्रहण	४९	२३
सुकुमालिका की चंपानगरी से बाहर आतापना	५०	२४
सुकुमालिका का गणिका-भोग देखकर निदान	५१	२५
सुकुमालिका का बकुश-निर्ग्रन्थित्व	५३	२५
सुकुमालिका का पृथक् विहार और देवलोक में उत्पाद (जन्म)	५५	२६

धर्मकथानुयोग तृतीयस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
द्रौपदीभव कथानक में द्रौपदी का तारुण्य भाव	५७	२७
द्वारवती को दूतप्रेषण	६०	२८
कृष्ण का प्रस्थान	६२	२६
हस्तिनापुर में दूत प्रेषण	६४	३१
चंपा आदि नगरों में दूत प्रेषण	६६	३१
सहस्रों राजाओं का प्रस्थान	६७	३२
द्रुपदकृत वासुदेव आदि का सत्कार	६८	३२
द्रौपदी का स्वयंवर	७०	३३
द्रौपदी द्वारा पांडव-वरण	७७	३६
पाणिग्रहण	७८	३७
पांडु राजा द्वारा वासुदेव आदि को निमन्त्रण	७६	३७
पांडु राजा द्वारा वासुदेव आदि का सत्कार	८१	३७
कल्याणकारी उत्सव	८३	३८
नारद का आगमन	८४	३६
द्रौपदी का नारद के प्रति अनादर	८६	४०
नारद का अपरकंकागमन और पद्मनाभ राजा से मिलना	८७	४०
कूपदर्दुर दृष्टान्तकथनपूर्वक नारदकृत द्रौपदी रूप-प्रशंसा	६०	४१
पद्मनाभ के लिए द्रौपदी का देवकृत अपहरण	६२	४२
द्रौपदी की चिन्ता	६५	४३
पद्मनाभ द्वारा आश्वासन	६६	४४
युधिष्ठिर द्वारा पांडु राजा के समक्ष द्रौपदी-अपहरण निरूपण	६८	४४
पांडु राजा द्वारा प्रेषित कुन्ती का कृष्ण को द्रौपदी-अन्वेषण हेतु कथन	६६	४५
कृष्ण का द्रौपदी-गवेषणा-आदेश	१०२	४६
नारद से द्रौपदी के समाचार की प्राप्ति	१०३	४७
पांडव सहित कृष्ण का द्रौपदी के लाने के लिए धातकीखंड की ओर प्रयाण	१०४	४७
कृष्ण का देवाराधन	१०५	४८
कृष्ण के निर्देश से सुस्थितदेवकृत लवणसमुद्र के मध्य मार्ग	१०६	४६
पद्मनाभ के समीप कृष्ण द्वारा दूत प्रेषण	१०८	४६
पद्मनाभ द्वारा दूत का अपमान	११०	५०
दूत का कृष्ण के समीप आगमन	१११	५१
पद्मनाभ का पांडवों के साथ युद्ध	११२	५१
पांडवों की पराजय	११४	५१
कृष्ण द्वारा पराजय हेतु कथनपूर्वक युद्ध	११५	५२
पद्मनाभ का पलायन	११८	५३
कृष्ण का नरसिंह रूप विकुर्वण	११६	५३
पद्मनाभ की कृष्ण शरण प्रतिपत्ति	१२०	५४

धर्मकथानुयोग तृतीयस्कन्ध—विषय-सूची		सूत्रांक	पृष्ठांक
	द्रौपदी सहित पांडव और कृष्ण का प्रत्यागमन	१२२	५४
	धातकीखंड के भरतक्षेत्र के कपिल-कृष्ण-वासुदेव युगल का शंख शब्द द्वारा मिलन	१२३	५५
	कपिल द्वारा पद्मनाभ का निर्वासन-निष्कासन	१२८	५६
	अपरीक्षणीय कृष्ण की पांडवकृत परीक्षा	१२९	५७
	कृष्ण द्वारा पांडवों का निर्वासन	१३३	५८
	पांडुमथुरा निवेशन	१३८	६०
	पांडुसेन का जन्म	१३९	६०
	पांडवों और द्रौपदी की प्रव्रज्या	१४०	६१
	अरिष्टनेमि का निर्वाण	१४२	६२
	पांडवों का निर्वाण	१४४	६३
	द्रौपदी की देवगति	१४५	६४
२.	**अरिष्टनेमि तीर्थ में पद्मावती आदि श्रमणियों के कथानक**	**१४७-१६०**	**६४-७१**
	कृष्ण वासुदेव की रानी पद्मावती	१४७	६५
	अर्हत अरिष्टनेमि द्वारा चातुर्याम धर्मदेशना	१४८	६५
	कृष्ण द्वारा द्वारावती विनाश-कारण पृच्छा	१४९	६५
	निदान के कारण सभी वासुदेव प्रव्रज्या नहीं लेते, इसका स्पष्टीकरण	१५१	६६
	अनन्तर भव में कृष्ण की नरकगति	१५२	६६
	अन्यों के प्रव्रज्या ग्रहण करने पर कृष्ण द्वारा सहाय घोषणा	१५४	६७
	पद्मावती रानी का प्रव्रज्या संकल्प	१५५	६८
	पद्मावती की प्रव्रज्या	१५६	६९
	पद्मावती की सिद्धि	१५८	७०
	गौरी आदि कथानकों का संक्षेप	१५९	७०
	मूलश्री, मूलदत्ता के कथानक	१६०	७१
३.	**पोट्टिला का कथानक**	**१६१-१९३**	**७१-८७**
	तेतलीपुर में तेतलीपुत्र अमात्य	१६१	७१
	कलाद की पुत्री पोट्टिला	१६२	७२
	तेतलीपुत्र की पोट्टिला में आसक्ति	१६३	७२
	पोट्टिला का वरण	१६४	७२
	पोट्टिला का पाणिग्रहण	१६७	७३
	कनकरथ की राज्यासक्ति और पुत्रांगछेदन	१६८	७४
	पद्मावती-पुत्र संरक्षणार्थ तेतलीपुत्र की अनुमति	१६९	७४
	पद्मावती दारक—पोट्टिला दारिका का जन्मान्तर परस्पर परिवर्तन	१७०	७५
	दारिका के मृतकृत्य	१७१	७६
	अमात्यपुत्र का जन्मोत्सव और कनकध्वज नामकरण	१७२	७६
	अमात्य का पोट्टिला के प्रति विराग	१७३	७६
	पोट्टिला का दानशालाकरण	१७४	७७
	आर्या संघाटक का भिक्षाचर्यार्थ आगमन	१७५	७७

धर्मकथानुयोग तृतीयस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
पोट्टिला द्वारा अमात्य-प्रसादोपाय पृच्छा	१७६	७७
आर्या संघाटक का धर्मोपदेश	१७७	७८
पोट्टिला द्वारा श्राविकाधर्म-ग्रहण	१७८	७८
पोट्टिला का प्रव्रज्याग्रहण संकल्प	१७९	७९
तेतलीपुत्र के प्रति धर्मबोधकरण प्रतिबद्धतापूर्वक पोट्टिला का प्रव्रज्याग्रहण और देवलोक में उत्पत्ति	१८०	७९
कनकरथ की मृत्यु	१८२	८०
कनकध्वज का राज्याभिषेक	१८३	८१
तेतलीपुत्र का सम्मान	१८४	८१
तेतलीपुत्र के लिए पोट्टिल देवकृत धर्मसंबोधोपाय	१८५	८२
तेतलीपुत्र का मरण चेष्टा का विफल प्रयास	१८७	८३
तेतलीपुत्र का विस्मयकरण	१८८	८४
पोट्टिलदेव का संवाद	१८९	८५
तेतलीपुत्र द्वारा जातिस्मरण के अनन्तर प्रव्रज्या ग्रहण	१९०	८६
तेतलीपुत्र अनगार को केवलज्ञान	१९१	८६
कनकध्वज का श्रावकधर्मग्रहण	१९२	८६
तेतलीपुत्र केवली का सिद्धिगमन	१९३	८७
४. पार्श्वनाथतीर्थ में श्रमणी काली का कथानक	१९४-२०७	८७-९५
चमरचंचा में काली देवी	१९५	८७
कालीदेवी द्वारा भगवान महावीर के समीप नृत्यविधि	१९६	८८
गौतम द्वारा कालीदेवी के पूर्वभव की पृच्छा	१९८	८९
कालीदेवी का पूर्वभव में काली नाम	१९९	८९
काली का पार्श्वदर्शन और धर्मश्रवण	२००	८९
काली का प्रव्रज्या संकल्प	२०२	९१
काली की प्रव्रज्या	२०३	९२
काली का बाकुशिकत्व	२०४	९३
काली का पृथक् विहार	२०५	९४
काली की मृत्यु और देवित्व	२०६	९४
कालीदेवी की स्थिति और सिद्धि	२०७	९५
५. पार्श्वनाथतीर्थ में राजी आदि के कथानक	२०८-२३२	९५-१०१
राजी कथानक में राजीदेवी का नृत्य	२०८	९५
राजीदेवी का पूर्वभव	२०९	९५
रजनी कथानक	२१०	९६
विद्युत कथानक	२११	९६
मेघा कथानक	२१२	९७
शुम्भा कथानक	२१३	९७

	धर्मकथानुयोग तृतीयस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
	निशुम्भा, रंभा, निरमा, मदना के कथानक	२१४	९७
	इला कथानक	२१५	९७
	सेतरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता के कथानक	२१६	९८
	शेष दाक्षिणात्य इन्द्र की अग्रमहिषी-कथानक की सूचना	२१७	९८
	रूपा आदि उत्तरार्द्ध इन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	२१९	९८
	दाक्षिणात्य पिशाचकुमारेन्द्र की कमला आदि अग्रमहिषियों के कथानक	२२२	९८
	महाकाली आदि उत्तरार्ध पिशाचेन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक	२२५	९९
	सूर्य की अग्रमहिषियों के कथानक	२२६	९९
	चन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	२२८	९९
	पद्मावती आदि शक्र की अग्रमहिषियों के कथानक	२३०	१००
	कृष्णा आदि ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	२३१	१००
६.	**पार्श्वतीर्थ में भूता आदि श्रमणियों के कथानक**	**२३३-२४०**	**१०१-१०५**
	महावीर समवसरण में श्रीदेवी की नाट्यविधि	२३४	१०१
	श्रीदेवी के पूर्वभव के रूप में भूता का कथानक	२३५	१०१
	भूता का पार्श्व समवसरण में गमन	२३६	१०२
	भूता की प्रव्रज्या	२३७	१०२
	भूता निर्ग्रन्थिनी का शरीर प्राद्व षिकत्व-बाकुशत्व	२३८	१०४
	भूता का देवित्व	२३९	१०४
	पार्श्व की ह्री आदि श्रमणियों के कथानक	२४०	१०४
७.	**पार्श्वस्था श्रमणी सुभद्रा का कथानक**	**२४१-२६३**	**१०५-११६**
	महावीर समवसरण में बहुपुत्रिका देवी की नाट्यविधि	२४१	१०५
	बहुपुत्रिका देवी का पूर्वभव रूप सुभद्रा कथानक	२४२	१०५
	सुभद्रा को अपने वंध्यत्व की चिन्ता	२४३	१०६
	आर्या समीप पुत्रोपाय पृच्छा	२४४	१०६
	आर्याओं द्वारा धर्मकथन	२४५	१०७
	सुभद्रा का श्रावकधर्मग्रहण	२४६	१०७
	सुभद्रा का प्रव्रज्या संकल्प	२४७	१०८
	सुभद्रा की प्रव्रज्या	२४८	१०८
	बाल आसक्त सुभद्रा निर्ग्रन्थिनी का विविध प्रकार से बाल-क्रीड़न	२४९	१०९
	आर्याओं का सुभद्रा को बालक्रीड़न निषेधकरण	२५०	११०
	सुभद्रा का पृथक्वास	२५१	११०
	सुभद्रा की संलेखना और बहुपुत्रिका देवी के रूप में उपपात	२५२	१११
	बहुपुत्रिका, इस नामकरण का रहस्य	२५३	१११
	बहुपुत्रिका देवी का स्थिति कथन और भावी जन्म कथन	२५४	११२
	बहुपुत्रिका देवी का सोमा भव	२५५	११२
	बत्तीस बालकों के कारण सोमा की मनोपीड़ा	२५६	११२
	सोमा द्वारा वन्ध्यत्व प्रशंसा	२५७	११३

धर्मकथानुयोग तृतीयस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
सोमा का धर्म श्रवण	२५८	११३
सोमा का प्रव्रज्या संकल्प	२५९	११४
राष्ट्रकूट द्वारा प्रव्रज्या निषेध	२६०	११४
सोमा का श्रावकधर्मग्रहण	२६१	११४
सोमा की प्रव्रज्या	२६२	११५
सोमा का देवित्व और तदनन्तर सिद्धि	२६३	११५
८. महावीरतीर्थ में नन्दादिक के कथानक	२६४-२६५	११६
संग्रहणी गाथा	२६४	११६
श्रेणिक राजा की नन्दा आदि देवियों का श्रमणित्व और सिद्धि	२६५	११६
९. महावीरतीर्थ में काली आदि श्रमणियों के कथानक	२६६-२८०	११७-१२०
संग्रहणी गाथा	२६६	११७
कोणिक राजा की विमाता काली	२६७	११७
काली की प्रव्रज्या और रत्नावली तप	२६८	११७
काली की संलेखना और सिद्धि	२६९	११८
सुकाली का कनकावली तप और सिद्धि	२७०	११८
महाकाली का क्षुद्र सिंह निष्क्रीड़ित तप और सिद्धि	२७१	११९
कृष्णा का महासिंह निष्क्रीड़ित तप और सिद्धि	२७२	११९
सुकृष्णा द्वारा भिक्षु प्रतिमा और सिद्धि	२७३	११९
महाकृष्णा द्वारा क्षुल्लक सर्वतोभद्र प्रतिमा और सिद्धि	२७५	११९
वीरकृष्णा द्वारा महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा और सिद्धि	२७६	११९
रामकृष्णा द्वारा भद्रोत्तर प्रतिमा और सिद्धि	२७७	१२०
पितृसेनकृष्णा द्वारा मुक्तावली तप और सिद्धि	२७८	१२०
महासेनकृष्णा द्वारा आयंबिल वर्द्धमान तप और सिद्धि	२७९	१२०
संग्रहणी गाथा	२८०	१२०
१० महावीरतीर्थ में जयन्ती का कथानक	२८१-२८४	११७-१२२
कौशाम्बी नगरी में उदयनादिक का धर्मश्रवण	२८१	१२१
परिशिष्ट १ : तपोविधि		१२३-१२४
रत्नावली तप		१२३
कनकावली तप		१२३
मुक्तावली तप		१२४
लघुसिंह निष्क्रीड़ित तप		१२४
महासिंह निष्क्रीड़ित तप		१२४
लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा तप		१२४
महासर्वतोभद्र प्रतिमा तप		१२४
भद्रोत्तर प्रतिमा तप		१२४
आयंबिल वर्द्धमान तप		१२४

□□□

धर्मकथानुयोग : चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची

		सूत्रांक	पृष्ठांक
चतुर्थ स्कन्ध [श्रमणोपासक कथानक]		१-३४६	१-३१८
१.	पार्श्वतीर्थ में सोमिल माहण कथानक	१-१२	३-११
	शुक्रमहाग्रहदेव द्वारा महावीर समवसरण में नृत्य विधि	१	३
	शुक्रदेव के पूर्वभव के वर्णन में सोमिल माहण का कथानक	२	३
	पार्श्वनाथ के समीप सोमिल का श्रावकधर्मग्रहण	३	३
	सोमिल का मिथ्यात्व	४	४
	सोमिल द्वारा आश्रम का निर्माण	५	४
	नाना प्रकार के तापसों का वर्णन और सोमिल का दिशाप्रोक्षक तापसत्व	६	४
	दिशाप्रोक्षक तापसचर्या	७	५
	सोमिल का काष्ठमुद्रा द्वारा मुखबन्धन करके महाप्रस्थान	८	७
	'तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है' ऐसा देव के कहने पर भी सोमिल का असंबोध	९	८
	देव के द्वारा पुनः पुनः संबोधित सोमिल द्वारा अणुव्रतादि ग्रहण	—	९
	सोमिल को संबोध	१०	९
	सोमिल की संलेखना, शुक्रमहाग्रह-देवत्व	११	१०
	शुक्र देवलोक से च्यवनानन्तर सोमिल जीव का सिद्धिगमन प्ररूपण	१२	१०
२.	पार्श्वतीर्थ में प्रदेशी कथानक	१३-६१	११-१२५
	आमलकप्पा में महावीर समवसरण	१३	११
	सूर्याभदेव का महावीर वंदनार्थ संकल्प और उचित कार्य करणार्थ आभियोगिक देवप्रेषण	१४	११
	आभियोगिक देवों द्वारा महावीर की वंदना आदि	१६	१३
	आभियोगिक देवकृत महावीर-समवसरण भूमि की संप्रमार्जनादि	१८	१४
	सूर्याभदेव के आदेश से तत्विमानवासी देव-देवियों का उसके निकट आगमन	१९	१६
	सूर्याभदेव के आदेश से आभियोगिक देव कृत दिव्ययान विमान निर्माण और दिव्ययान विमान का वर्णन	२०	१८
	सूर्याभदेव का महावीर के समीप आगमन और दिव्य विमानारोहण आदि का वर्णन	२१	२५
	सूर्याभदेव द्वारा नृत्यविधि का उपदर्शन	२२	२८
	नृत्यविधि का वर्णन	२३	३१
	नृत्य की समाप्ति और सूर्याभ का लौटना	२४	३५
	सूर्याभ की देवऋद्धि आदि का शरीरान्तर्गतत्व निरूपण	२५	३६
	सूर्याभ विमान के स्थान आदि का विस्तार से वर्णन	२६	३७
	विस्तार से सूर्याभ देव का अभिषेक वर्णनादि	२७	५६
	सूर्याभदेव और उसके सामानिक देवों की स्थिति का प्ररूपण	२८	७१
	प्रदेशी राजा—दृढ़प्रतिज्ञचरित्र—सूर्याभदेव का पूर्वभव—अनन्तर भव प्ररूपण। प्रदेशीराजा, सूर्यकान्ता देवी, सूर्यकान्तकुमार और चित्त सारथी नाम निरूपण	२९	७१
	प्रदेशी राजा द्वारा जितशत्रु राजा के समीप चित्त सारथी का प्रेषण	३०	७३
	श्रावस्ती नगरी में केशी कुमारश्रमण का आगमन	३१	७६

धर्मकथानुयोग : चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
सेयविया नगरी को जाते हुए चित्तसारथी द्वारा केशी कुमारश्रमण से सेयविया नगरी में आगमन की प्रार्थना और केशी कुमारश्रमण की अनुमति	३६	८०
चित्त सारथी का सेयविया नगरी में आगमन	३७	८३
उद्यानपाल-निवेदित वृत्तान्तानुसार चित्त सारथी का केशी कुमारश्रमण के वन्दनार्थ गमन और धर्मश्रवण	३६	८४
धर्म के लाभ-अलाभ विषयक चार स्थान	४२	८६
अश्व-परीक्षार्थ निर्गत प्रदेशी राजा का चित्त सारथी सहित केशी कुमारश्रमण के समीप आगमन	४३	८८
प्रदेशी राजा के प्रतिबोधनार्थ केशी मुनि की प्ररूपणा में पंचविध ज्ञान निरूपण	४४	९१
केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव-शरीर का अन्यत्व निरूपण	**४५-५२**	**९२-१०६**
१. अधुनोत्पन्न नैरयिक के मनुष्य लोकागमन के विषय में निषेध प्ररूपक चार स्थान—कारण	४५	९२
२. अधुनोत्पन्न देव के मनुष्यलोकागमन के विषय में निषेध प्ररूपक चार स्थान—कारण	४६	९५
३-४. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव की अप्रतिहत गति का समर्थन	४७	९८
५-६. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव-शरीर के अन्यत्व समर्थन में अपर्याप्तोपकरण हेतु निरूपण	४९	१००
७. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव का अगुरुलघुत्व	५१	१०३
८. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में काष्ठगत अग्नि दृष्टान्त द्वारा जीव का अदर्शनीयत्व समर्थन	५२	१०४
केशी कुमारश्रमण द्वारा निर्दिष्ट प्रदेशी राजा का अव्यावहारिकत्व	५३	१०६
केशी कुमारश्रमण निर्दिष्ट जीव का अदर्शनीयत्व	५४	१०८
केशी कुमारश्रमण द्वारा निर्दिष्ट जीव प्रदेशों का शरीर प्रमाणावगाहित्व	५५	१०९
केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में अयोहारक दृष्टान्त द्वारा पश्चात्ताप निषेध प्ररूपण	५६	१११
प्रदेशी राजा की गृही-धर्म प्रतिपत्ति और रमणीय-अरमणीय के विषय में वनखण्ड का दृष्टान्त	५७	११३
सूर्यकान्ता द्वारा विष-प्रयोग, प्रदेशी राजा का समाधिमरण और सूर्याभ देवत्व के रूप में उपपाद	५९	११७
सूर्याभदेव भवान्तर प्रदेशी राजा के जीव का दृढ़प्रतिज्ञ भव में मोक्ष-गमन का निरूपण	६१	११९
३. **महावीरतीर्थ में तुंगियानगरी निवासी श्रमणोपासक**	**६२-६४**	**१२५-१२८**
श्रमणोपासकों का वर्णन	६२	१२५
तुंगिका में पार्श्वापत्नीय स्थविरों का आगमन	६३	१२६
श्रमणोपासकों द्वारा स्थविरों की पर्युपासना	६४	१२७

		सूत्रांक	पृष्ठांक
४.	महावीरतीर्थ में नन्द मणियार कथानक	६५-८३	१२८-१३८
	दर्दु रदेव द्वारा महावीर समवसरण में नाट्यविधि	६१	१२८
	गौतम के पूछने पर महावीर द्वारा दर्दु रदेव का पूर्वभवनिबद्ध नंदमणियार कथानक प्ररूपण	६६	१२८
	नंद को धर्म-प्राप्ति	६८	१२६
	नंद को मिथ्यात्व-प्राप्ति	६६	१२६
	नंद द्वारा पुष्करिणी निर्माण	७०	१३०
	नंद द्वारा वनखण्ड निर्माण	७१	१३१
	नंद द्वारा चित्रसभा का निर्माण	७२	१३१
	नंद द्वारा महानसशाला का निर्माण	७३	१३२
	नंद द्वारा चिकित्साशाला का निर्माण	७४	१३२
	नंद द्वारा अलंकार सभा का निर्माण	७५	१३२
	बहुजनकृत नंद की प्रशंसा और नंद का प्रमोद	७६	१३२
	नंद को रोगोत्पत्ति	७७	१३३
	नंद के रोगों की वैद्यकृत-चिकित्सा की विफलता	७८	१३३
	नंद मणियार का दर्दु रभव	७६	१३५
	दर्दु र को जातिस्मरण ज्ञान और श्रावकव्रत पालन	८०	१३५
	भगवान का राजगृह में समवसरण	८१	१३६
	दर्दु र का समवसरण प्रतिगमन	८२	१३६
	दर्दु र का महाव्रत संकल्प	८३	१३७
	दर्दु र की देव पर्याय में उत्पत्ति		१३७
५.	महावीरतीर्थ में आनन्द गाथापति कथानक	८४-१०८	११८-१५८
	वाणिज्यग्राम में आनन्द गाथापति	८४	१३८
	महावीर समवसरण	८५	१३६
	आनन्द का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	८६	१३६
	आनन्द का गृहस्थधर्म स्वीकार करना	८७	१४०
	आनन्द गाथापति के गृहस्थधर्म—श्रावकधर्म का विवरण	८८	१४०
	सम्यक्त्व आदि के अतिचार	८६	१४३
	आनन्द का अभिग्रह और शिवानन्दा को श्राविकाधर्म-अनुपालन विषयक प्रेरणा	६०	१४६
	शिवानन्दा का भगवन्त वन्दनार्थ गमन और धर्मश्रवण	६१	१४७
	शिवानंदा का गृहीधर्म—श्राविकाधर्म ग्रहण करना	६२	१४८
	आनन्द का प्रव्रज्या ग्रहण करने के विषय में गौतम पृच्छा और भगवान का समाधान	६३	१४८
	भगवान का जनपद विहार	६४	१४६
	आनन्द की श्रमणोपासक चर्या	६५	१४६
	शिवानंदा की श्रमणोपासिका चर्या	६६	१४६
	आनन्द की धर्म-जागरिका और गृही व्यवहार का त्याग	६७	१४६
	आनन्द द्वारा उपासक प्रतिमा-ग्रहण	१००	१५१

धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध — विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
आनन्द का अनशन	१०१	१५१
आनन्द को अवधिज्ञानोत्पत्ति	१०२	१५२
गोचरचर्या हेतु निर्गत गौतम का आनन्द के समक्ष गमन	१०३	१५२
अवधिज्ञान विषयक आनन्द-गौतम संवाद	१०४	१५४
भगवान द्वारा गौतम की शंका का निराकरण	१०५	१५५
गौतम द्वारा क्षमा-याचना	१०६	१५७
भगवान का जनपद विहार	१०७	१५७
आनन्द का समाधिमरण, देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	१०८	१५८
६. कामदेव गाथापति कथानक	१०९-१२९	१५८-१७७
चंपा में कामदेव गाथापति	१०९	१५८
महावीर समवसरण	११०	१५९
कामदेव का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	१११	१५९
कामदेव की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	११२	१६०
भगवान का जनपद विहार	११३	१६१
कामदेव की श्रमणोपासक चर्या	११४	१६१
भद्रा की श्रमणोपासिका चर्या	११५	१६१
कामदेव की धर्मजागरिका और गृहव्यवहार त्याग	११६	१६१
कामदेव द्वारा पिशाचरूपकृत मारणांतिक उपसर्ग का सम्यक् प्रकार से सहन करना	११७	१६२
कामदेव द्वारा हस्तीरूपकृत उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	११८	१६५
कामदेव का सर्परूपकृत उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	११९	१६७
स्वाभाविक रूप करके देव द्वारा कामदेव की प्रशंसा और क्षमायाचना	१२०	१६८
कामदेव का प्रतिमा पारण	१२१	१७०
कामदेवकृत भगवान की पर्युपासना	१२२	१७०
भगवान द्वारा कामदेव के उपसर्ग का विवेचन	१२३	१७१
भगवान द्वारा कामदेव की प्रशंसा	१२४	१७५
कामदेव का प्रतिगमन	१२५	१७५
भगवान का जनपद विहार	१२६	१७५
कामदेव द्वारा उपासक प्रतिमा ग्रहण	१२७	१७५
कामदेव का अनशन	१२८	१७६
कामदेव का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति तदनन्तर सिद्ध गति निरूपण	१२९	१७६
७. चुलनीपिता गाथापति कथानक	१३०-१४७	१७७-१८७
वाराणसी का चुलनीपिता गाथापति	१३०	१७७
भगवान महावीर का समवसरण	१३१	१७८
चुलनीपिता गाथापति का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	१३२	१७८
चुलनीपिता की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	१३३	१७८
भगवान का जनपद विहार	१३४	१७९

धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
चुलनीपिता की श्रमणोपासक चर्या	१३५	१७६
श्यामा की श्रमणोपासिका चर्या	१३६	१७९
चुलनीपिता की धर्म जागरणा और गृही व्यवहार त्याग	१३७	१८०
चुलनीपिता द्वारा देवकृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारणरूप उपसर्ग को समभावपूर्वक सहन करना	१३८	१८०
चुलनीपिता का देवकृत निज मध्यमपुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१३९	१८१
चुलनीपिता द्वारा देवकृत निज कनिष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन	१४०	१८२
चुलनीपिता का देवकथित निज माता भद्रा मारण वचन श्रवणरूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और माया विकुर्वित देव का आकाश में उड़ना	१४१	१८३
भद्रा का प्रश्न	१४२	१८४
चुलनीपिता का उत्तर	१४३	१८४
चुलनीपिता का प्रायश्चित्त करना	१४४	१८६
चुलनीपिता का उपासक प्रतिमाओं को ग्रहण करना	१४५	१८६
चुलनीपिता का अनशन	१४६	१८७
चुलनीपिता का समाधिमरण, देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	१४७	१८७
८. **सुरादेव गाथापति कथानक**	**१४८-१६५**	**१८८-१९९**
वाराणसी में सुरादेव गाथापति	१४८	१८८
भगवान महावीर का पदार्पण	१४९	१८८
सुरादेव गाथापति का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	१५०	१८८
सुरादेव की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	१५१	१८९
भगवान का जनपद विहार	१५२	१९०
सुरादेव की श्रमणोपासक चर्या	१५३	१९०
धन्ना भार्या की श्रमणोपासिका चर्या	१५४	१९०
सुरादेव की धर्म जागरिका और गृही व्यापार त्याग	१५५	१९०
सुरादेव का देवकृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१५६	१९१
सुरादेव का देवकृत निज मंझले पुत्र मारण रूप उपसर्ग का सम्यक् प्रकार से सहन करना	१५७	१९२
सुरादेव का देवकृत निज कनिष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१५८	१९३
सुरादेव का देवकथित रोगातंक उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और माया विकुर्वित देव का आकाश में उड्डयन	१५९	१९४
धन्ना का प्रश्न	१६०	१९५
सुरादेव का उत्तर	१६१	१९६

धर्मकथानुयोग चतुर्थ स्कन्ध-विषय-सूची		सूत्रांक	पृष्ठांक
	सुरादेव का प्रायश्चित्तकरण	१६२	१९७
	सुरादेव की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	१६३	१९८
	सुरादेव का अनशन	१६४	१९८
	सुरादेव का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगति निरूपण	१६५	१९९
९	**चुल्लशतक गाथापति कथानक**	**१६६-१८४**	**१९९-२१०**
	आलभिका में चुल्लशतक गाथापति	१६६	१९९
	भगवान महावीर का समवसरण	१६७	२००
	चुल्लशतक का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	१६८	२००
	चुल्लशतक की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	१६९	२०१
	भगवान का जनपद विहार	१७०	२०१
	चुल्लशतक की श्रमणोपासक चर्या	१७१	२०१
	बहुला की श्रमणोपासिका चर्या	१७२	२०२
	चुल्लशतक की धर्मजागरिका	१७३	२०२
	चुल्लशतक का देवकृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१७४	२०२
	मध्यम पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१७६	२०३
	कनिष्ठ पुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	१७७	२०४
	देवकथित निज सर्व हिरण्य कोटियों को विकीर्ण करने रूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और मायाविकुर्वित देव का आकाश में उड़ना	१७८	२०५
	बहुला का प्रश्न	१७९	२०६
	चुल्लशतक का उत्तर	१८०	२०६
	चुल्लशतक कृत प्रायश्चित्त	१८१	२०८
	चुल्लशतक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	१८२	२०८
	चुल्लशतक का अनशन	१८३	२०९
	चुल्लशतक का समाधिमरण, देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	१८४	२०९
१०	**कुण्डकौलिक गाथापति कथानक**	**१८५-२०४**	**२१०-२१८**
	कांपिल्यपुर में कुण्डकौलिक गाथापति	१८५	२१०
	भगवान महावीर का समवसरण	१८६	२१०
	कुण्डकौलिक गाथापति का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	१८७	२११
	कुण्डकौलिक की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	१८८	२११
	भगवान का जनपद विहार	१८९	२१२
	कुण्डकौलिक की श्रमणोपासक चर्या	१९०	२१२
	पूषा की श्रमणोपासिका चर्या	१९१	२१२
	देवद्वारा नियतिवाद-समर्थन	१९२	२१३
	कुण्डकौलिक द्वारा नियतिवाद-निरसन	१९३	२१३
	देवद्वारा नियतिवाद-समर्थन	१९४	२१३

धर्मकथानुयोग चतुर्थ स्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
कुण्डकौलिक द्वारा नियतिवाद-निरसन	१९५	२१४
देव का प्रतिगमन	१९६	२१४
महावीर समवसरण में कुण्डकौलिक का गमन और धर्मश्रवण	१९७	२१४
महावीर द्वारा पूर्ववृत्तान्त-प्ररूपण	१९८	२१५
महावीर द्वारा कुण्डकौलिक की प्रशंसा	१९९	२१६
भगवान का जनपद विहार	२००	२१६
कुण्डकौलिक की धर्मजागरिका	२०१	२१६
कुण्डकौलिक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	२०२	२१७
कुण्डकौलिक का अनशन	२०३	२१७
कुण्डकौलिक का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	२०४	२१८
११ सद्दालपुत्र कुम्भकार कथानक	२०५-२३१	२१९-२३९
पोलासपुर में सद्दालपुत्र	२०५	२१९
सद्दालपुत्र के आगे देवकृत महावीर प्रशंसा	२०६	२१९
सद्दालपुत्र का गोशालक वन्दन संकल्प	२०७	२२०
भगवान महावीर का समवसरण और सद्दालपुत्र का धर्मश्रवण	२०८	२२०
महावीर द्वारा देवकृत प्रशंसा निरूपण	२०९	२२१
सद्दालपुत्र का निवेदन	२१०	२२२
महावीर द्वारा सद्दालपुत्र-संबोधन	२११	२२३
सद्दालपुत्र की गृही-धर्म प्रतिपत्ति	२१२	२२४
अग्निमित्रा का महावीर वन्दनार्थ गमन और धर्मश्रवण	२१३	२२५
अग्निमित्रा की गृही-धर्म प्रतिपत्ति	२१४	२२६
भगवान का जनपद विहार	२१५	२२७
सद्दालपुत्र की श्रमणोपासक चर्या	२१६	२२७
अग्निमित्रा की श्रमणोपासिका चर्या	२१७	२२७
गोशालक का आगमन	२१८	२२७
गोशाल द्वारा महावीर का गुण कीर्तन	२१९	२२७
महावीर के साथ विवाद करने में गोशाल का असामर्थ्य एवं प्रतिगमन	२२०	२३०
सद्दालपुत्र की धर्मजागरिका	२२१	२३१
सद्दालपुत्र का देवरूपकृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	२२२	२३२
सद्दालपुत्र का देवकृत निज मध्यम पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहना	२२३	२३३
सद्दालपुत्र का देवकृत निज कनिष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना	२२४	२३४
सद्दालपुत्र का देवकथित निज भार्या मारण रूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और माया विकुर्वित देव का आकाश में उड़ना	२२५	२३५

धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
अग्निमित्रा का प्रश्न	२२६	२३६
सद्दालपुत्र का उत्तर	२२७	२३६
सद्दालपुत्र कृत प्रायश्चित्त	२२८	२३८
सद्दालपुत्र श्रमणोपासक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	२२९	२३८
सद्दालपुत्र का अनशन	२३०	२३८
सद्दालपुत्र का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन प्ररूपण	२३१	२३९
१२ महाशतक गाथापति कथानक	२३२-२५६	२४०-२५०
राजगृह में महाशतक गाथापति	२३२	२४०
भगवान महावीर का समवसरण	२३३	२४०
महाशतक का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	२३४	२४०
महाशतक की गृही धर्म प्रतिपत्ति	२३५	२४१
महाशतक की श्रमणोपासक चर्या	२३६	२४२
भगवान का जनपद विहार	—	२४२
भोगाभिलाषिणी रेवती की चिन्ता	२३७	२४२
रेवती द्वारा सपत्नी विनाश	२३८	२४३
रेवती का मांस-मद्य आदि सेवन	२३९	२४३
अमारि घोषणा होने पर भी रेवती द्वारा मांस-मद्य आसेवन	२४०	२४३
महाशतक की धर्मजागरिका	२४१	२४३
महाशतक को रेवतीकृत अनुकूल उपसर्ग	२४२	२४४
महाशतक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	२४३	२४५
महाशतक का अनशन	२४४	२४५
महाशतक को अवधिज्ञानोत्पत्ति	२४५	२४६
महाशतक को पुनः रेवतीकृत अनुकूल उपसर्ग	२४६	२४६
महाशतक को विक्षेप और उससे रेवती को मरणान्तर नरक गमन कथन	२४७	२४७
भगवान महावीर का समवसरण	२४८	२४७
महाशतक के निकट गौतम-प्रेषण	२४९	२४७
गौतम का महाशतक के समक्ष आगमन	२५०	२४९
महाशतक कृत गौतम-वन्दन	२५१	२४९
महाशतक के समक्ष गौतम का प्रायश्चित्त करने रूप भगवान के कथन का निरूपण	२५२	२४९
महाशतक का प्रायश्चित्त करना	२५३	२४९
गौतम का प्रतिनिष्क्रमण	२५४	२५०
भगवान का जनपद विहार	२५५	२५०
महाशतक की देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	२५६	२५०
१३ नन्दिनीपिता गाथापति कथानक	२५७-२६८	२५०-२५५
श्रावस्ती में नन्दिनीपिता गाथापति	२५७	२५०
भगवान महावीर का समवसरण	२५८	२५१

	धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
	नन्दिनीपिता का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	२५६	२५१
	नन्दिनीपिता की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	२६०	२५२
	भगवान का जनपद विहार	२६१	२५३
	नन्दिनीपिता की श्रमणोपासक चर्या	२६२	२५३
	अश्विनी की श्रमणोपासिका चर्या	२६३	२५३
	नन्दिनीपिता की धर्मजागरिका	२६४	२५३
	नन्दिनीपिता की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	२६६	२५४
	नन्दिनीपिता का अनशन	२६७	२५४
	नन्दिनीपिता का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	२६८	२५५
१४	लेतिकापिता गाथापति कथानक	२६६-२७६	२५५-२६०
	श्रावस्ती में लेतिकापिता गाथापति	२६६	२५५
	भगवान महावीर का समवसरण	२७०	२५६
	लेतिकापिता का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण	२७१	२५६
	लेतिकापिता की गृहीधर्म प्रतिपत्ति	२७२	२५७
	भगवान का जनपद विहार	२७३	२५८
	लेतिकापिता की श्रमणोपासक चर्या	२७४	२५८
	फाल्गुनी की श्रमणोपासिका चर्या	२७५	२५८
	लेतिकापिता की धर्मजागरिका	२७६	२५८
	लेतिकापिता की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति	२७७	२५६
	लेतिकापिता का अनशन	२७८	२५६
	लेतिकापिता का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण	२७६	२६०
१५	ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक	२८०-२८४	२६१-२६४
	आलभिका के ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक	२८०	२६१
	देवस्थिति विषयक विवाद	२८१	२६१
	भगवान महावीर का पदार्पण	२८२	२६१
	महावीर द्वारा समाधान	२८३	२६२
	ऋषिभद्रपुत्र विषयक गौतम के प्रश्न और महावीर का उत्तर	२८४	२६३
१६	शंख और पुष्कली श्रमणोपासक	२८५-२९७	२६४-२७१
	श्रावस्ती में शंख और पुष्कली	२८५	२६४
	भगवान महावीर का पदार्पण	२८६	२६५
	शंख का पौषध	२८७	२६५
	शंख कथनानुसार श्रावस्ती के श्रमणोपासकों द्वारा पौषध हेतु विपुल अशनादि करण	२८८	२६६
	अशनादि भोगार्थ पुष्कली का शंख को निमंत्रण	२८६	२६६
	शंख द्वारा निषेध	२६०	२६७
	अन्य श्रमणोपासकों द्वारा पौषध निमित्तक अशनादि का भोग	२६१	२६७
	शंख द्वारा पारणार्थ महावीर-पर्युपासना	२६२	२६७
	श्रमणोपासकों द्वारा शंख का तिरस्कार	२६३	२६८
	महावीर द्वारा शंख-हीलना निवारण	२६४	२६६

धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची

		सूत्रांक	पृष्ठांक
	महावीर-कृत जागरिका विवरण	२९५	२६९
	कषाय का फल कर्मबन्धन जानकर श्रमणोपासकों का शंख से क्षमायाचन	२९६	२६९
	शंख की देवगति और सिद्धि	२९७	२७०
१७	**नागपौत्र वरुण श्रमणोपासक**	२९८-३००	२७१-२७५
	संग्राम में मरण होने पर देवत्व विषयक गौतम का प्रश्न	२९८	२७१
	महावीर द्वारा उत्तर में वरुण कथानक		२७१
	वरुण का रथ मूसल संग्राम में गमन		२७२
	संग्राम में वरुण का अभिग्रह		२७२
	वरुणकृत संलेखना		२७३
	नागपौत्र वरुण के मित्र का भी वरुणानुसरण		२७४
	वरुण के मरने पर देवकृत वृष्टि		२७४
	वरुण की देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धगति निरूपण	२९९	२७५
	वरुण के मित्र की भी सुकुल उत्पत्ति आदि	३००	२७५
१८	**सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक**	३०१-३०४	२७६-२८०
	वाणिज्यग्राम में सोमिल ब्राह्मण और भगवान महावीर का समवसरण	३०१	२७६
	सोमिल ब्राह्मण का समवसरण में गमन	३०२	२७६
	सोमिल के यात्रादि प्रश्नों का भगवान द्वारा समाधान	३०३	२७६
	सोमिल की श्रावक धर्म प्रतिपत्ति		२७९
	सोमिल की देवगति—सिद्धगति गमन निर्देश	३०४	२८०
१९	**भगवान महावीर के श्रमणोपासकों की देवलोक स्थिति का प्ररूपण**	३०५	२८०
	श्रमणोपासकों की सौधर्मकल्प में स्थिति	३०५	२८०
२०	**कोणिक का महावीर समवसरण-गमन धर्मश्रवण प्रसंग**	३०६-३२७	२८०-३०५
	चंपानगरी का वर्णन	३०६	२८०
	पूर्णभद्र चैत्य	३०७	२८१
	वन खण्ड	३०८	२८२
	उत्तम अशोक वृक्ष	३०९	२८४
	पृथ्वी शिला पट्टक	३१०	२८५
	चंपा में कोणिक राजा	३११	२८५
	कोणिक की रानी धारिणी देवी	३१२	२८६
	कोणिक का निरंतर भगवन्त प्रवृत्ति निवेदक पुरुष	३१३	२८७
	कोणिक का सुखपूर्वक विचरण	३१४	२८७
	भगवन्त प्रवृत्तिवादक पुरुष द्वारा कोणिक के समक्ष महावीर का चम्पानगरी में आगमन-निवेदन	३१५	२८७
	भगवान के प्रति कोणिक का नमस्कार आदि	३१६	२८८
	चम्पा में भगवान महावीर का समवसरण	३१७	२८९
	चम्पानगरी निवासी जनों का समवसरण-गमन और पर्युपासना	३१८	२९०
	भगवन्त प्रवृत्तिव्यापृत पुरुष द्वारा कोणिक के समक्ष भगवदागमन का निवेदन	३१९	२९३

	धर्मकथानुयोग चतुर्थस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
	कोणिक का महावीर के दर्शनार्थ संकल्प और सर्वऋद्धि सहित समवसरण की ओर गमन	३२०	२९४
	कोणिक का समवसरण के प्रति गमन	३२१	२९८
	कोणिक का समवसरण में आगमन और पर्युपासना	३२२	३०१
	सुभद्रा आदि कोणिक भार्याओं का समवरण में आगमन और पर्युपासना	३२३	३०३
	भगवान महावीर की धर्मदेशना	३२४	३०४
	परिषदा की धर्म प्रतिपत्ति और स्वगृह गमन	३२५	३०४
	सुभद्रा आदि कोणिक भार्याओं की धर्मदेशना प्रशंसा और स्वगृह गमन	३२७	३०५
२१	**अम्बड परिव्राजक कथानक**	**३२८-३३६**	**३०६-३१४**
	सात सौ अम्बड शिष्यों का ग्रीष्म में संग्रहीत उदक क्षय	३२८	३०६
	अदत्त-अग्रहण व्रत पालक सात सौ परिव्राजकों का संलेखना पूर्वक समाधिमरण और देवलोकोत्पत्ति	३२९	३०६
	अम्बड का शतगृहवास और आहार निरूपण	३३०	३०८
	अम्बड का श्रमणोपासकत्व	३३१	३०८
	अम्बड का देवभव	३३२	३१०
	अम्बड के दृढ़प्रतिज्ञभव-निरूपण में दृढ़प्रतिज्ञ का जन्म	३३३	३१०
	अम्बड का दृढ़प्रतिज्ञभव	३३३	३१०
	दृढ़प्रतिज्ञ का कला ग्रहण	३३४	३११
	प्राप्त यौवन दृढ़प्रतिज्ञ का वैराग्य	३३५	३१२
	दृढ़प्रतिज्ञ की प्रव्रज्या—सिद्धिगमन निरूपण	३३६	३१३
२२	**हस्तिराज उदाइ और भूतानन्द**	**३३७-३३८**	**३१४-३१५**
	राजगृह में हस्तिराज उदायी और भूतानन्द	३३७	३१४
	हस्तीराज भूतानन्द	३३८	३१४
२३	**मद्दुक श्रमणोपासक कथा**	**३३९-३४६**	**३१५-३१८**
	राजगृह में अन्यतीर्थिक और मद्दुक श्रमणोपासक	३३९	३१५
	भगवान महावीर का राजगृह में समवसरण	३४०	३१५
	समवसरण में जाते हुए अन्य तीर्थिकों के साथ अस्तिकाय के विषय में संलाप	३४१	३१५
	भगवान महावीर द्वारा मद्दुक की प्रशंसा आदि करना	३४२	३१७
	मद्दुक का भव निरूपण	३४६	३१८
	परिशिष्ट : श्रावक प्रतिमा और संलेखना विधि		**३१९-३२०**

धर्मकथानुयोग : पंचम स्कन्ध—विषय-सूची

		सूत्रांक	पृष्ठांक
पंचम स्कन्ध [निन्हव कथाएँ]		१-११७	१-७६
१.	सात प्रवचन निन्हवों के नाम-धर्माचार्य-नगर निर्देश	१	३
२.	**जमालि निन्हव कथानक**	१-४३	३-२७
	क्षत्रियकुण्ड में जमालिकुमार	२	३
	माहणकुण्ड में महावीर का विहार	३	४
	जमालिकुमार द्वारा महावीर पर्युपासना	५	५
	महावीर की धर्मकथा	६	६
	जमालिकुमार का प्रव्रज्या संकल्प	७	६
	माता-पिता द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण निवारण और जमालि द्वारा समर्थन	८	७
	माता-पिता द्वारा प्रव्रज्या अनुमोदन	१३	१२
	प्रव्रज्या के पूर्वकृत्य	१४	१२
	माता-पिता द्वारा भगवान महावीर को शिष्य भिक्षा दान	२६	१६
	जमालि की प्रव्रज्या	२७	१९
	जमालि द्वारा जनपद विहार की प्रार्थना : भगवान महावीर का मौन	२९	२१
	जमालि का जनपद विहार और श्रावस्ती आगमन	३०	२१
	भगवान महावीर का चंपा में आगमन	३१	२२
	जमालि को रोगात्मक पीड़ा और शैय्या संस्तारण की आज्ञा	३२	२२
	जमालि और उसके शिष्यों का शैय्या करने में 'कृत क्रियमाण' के विषय में प्रश्नोत्तर	३३	२२
	'चलमान चलित' इत्यादि भगवंत की प्ररूपणा में जमालि की विपरिणामता	३४	२२
	जमालि की प्ररूपणा का श्रद्धान नहीं करने वाले श्रमणों का भगवान के समीप आगमन	३५	२३
	जमालि द्वारा चम्पा में महावीर के समक्ष अपना केवलित्व घोषण	३६	२३
	गौतमकृत लोक-जीव विषयक प्रश्न पर मौन	३७	२४
	भगवंत प्ररूपित लोक-जीव का शाश्वतत्व-अशाश्वतत्व	३८	२४
	जमालि का अश्रद्धान और मरणान्त में लांतक कल्प में किल्विषिक देवत्व	३९	२५
	किल्विषिक देवों के भेद आदि का निरूपण	४१	२५
	जमालि के अन्य भव और सिद्धि	४३	२७
३.	**आजीवक तीर्थंकर—गोशाल कथानक**	४४-७९	२७-११७
	श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्भकारापण में गोशाल	४४	२७
	दिशाचरों का पूर्वगत निर्यूहण	४५	२८
	गोशालकृत छह अनतिक्रमणीय की प्ररूपणा	४६	२८
	गोशाल का जिनत्व	४७	२८
	भगवान महावीर का समवसरण और गौतम का गोचर चर्या के लिए गमन	४८	२९

धर्मकथानुयोग पंचम स्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
गौतम का गोशाल चरित्र जाननार्थ प्रश्न	४९	३१
महावीर द्वारा गोशाल चरित्र वर्णन का पूर्वभाग	५०-७०	३०-४३
मंखलि-भद्रा का गोशाला में निवास	५१	३१
मंखलि-भद्रा द्वारा निज पुत्र का 'गोशाल' नामकरण	५२	३१
गोशाल की मंखचर्या	५३	३२
भगवान का नालंदा की तन्तुशाला में विहरण	५४	३२
गोशाल का भी तन्तुशाला में आगमन	५५	३२
भगवान के प्रथम मासक्षमण के पारणे में पाँच दिव्य	५६	३२
गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान की उदासीनता	५७	३३
भगवान के द्वितीय मासक्षमण के पारणे पर पंच दिव्य	५८	३४
पुनः भी गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान की उदासीनता	५९	३४
भगवान के तीसरे मासक्षमण के पारणे के अवसर पर पंच दिव्य	६०	३५
पुनः भी गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान की उदासीनता	६१	३५
भगवान के चतुर्थ मासक्षमण पर पाँच दिव्य	६२	३६
पुनः गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना पर भगवान की अनुमति और गोशाल का साथ में विहरण	६३	३७
तिलस्तम्भ निष्पत्ति विषयक भगवान के वचन में गोशाल की अश्रद्धा	६४	३८
गोशाल के वचन से क्रुद्ध बाल तपस्वी वैश्यायन द्वारा गोशाल के ऊपर तेजोलेश्या निस्सरण	६५	३९
महावीर द्वारा गोशाल रक्षणार्थ शीतलेश्या निःसृजन	६६	३९
तेजोलेश्या संपादनोपाय	६७	४०
महावीर द्वारा कथित तिलस्तम्भ की निष्पत्ति जानकर गोशाल का अपक्रमण	६८	४१
गोशाल को तेजोलेश्या की संप्राप्ति	६९	४२
महावीर कथित गोशाल का अजिनत्व	७०	४२
गोशाल का अमर्ष	७१	४३
गोशाल का आनन्द स्थविर के समक्ष अर्थलुब्ध वणिक् दृष्टान्त कथनपूर्वक आक्रोश प्रदर्शन	७२	४४
आनन्द स्थविर का भगवान से समक्ष गोशाल-वचन निवेदन और भगवान का समाधान	७५	४७
महावीर सूचित गोशाल प्रतिचोदना (निर्भर्त्सना) निषेध	७६	४९
गोशाल का भगवान के प्रति आक्रोशपूर्वक स्वसिद्धान्त निरूपण	७७	४९
भगवान द्वारा गोशाल के वचन का प्रतिवाद	७८	५३
भगवान के प्रति गोशाल का पुनः आक्रोश	७९	५३
गोशाल द्वारा सर्वानुभूति मुनि का भस्मराशिकरण	८०	५४
गोशाल द्वारा सुनक्षत्र मुनि का परितापन	८२	५४
गोशाल को भगवान की शिक्षा, प्रतिक्रुद्ध गोशाल द्वारा मुक्त निष्फल तेज से गोशालक का ही अनुदहन	८३	५५

धर्मकथानुयोग पंचमस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
गोशाल—महावीर का परस्पर मरणकाल मर्यादा का निरूपण	८४	५६
श्रावस्ती में जनप्रवाद	८५	५६
भगवंतादिष्ट निर्ग्रन्थों द्वारा गोशाल की प्रतिचोदना	८६	५६
गोशाल संघ का भेद	८७	५७
समुद्भूत दाह वाले गोशाल की मद्यपान आदि चेष्टाएँ	८८	५७
भगवान द्वारा गोशाल तेजोलेश्या की सामर्थ्यपूर्वक गोशाल-सिद्धान्त की स्वरूप प्ररूपणा	८९	५८
आजीवक स्थविरों द्वारा अयंपुल का आजीवक-उपासकत्व में स्थिरीकरण	९०	५९
अयंपुल आजीवकोपासक		
गोशाल का अपने मरणानन्तर नीहरण निर्देश	९४	६२
गोशाल का सम्यक्त्व-परिणामपूर्वक कालधर्म	९५	६२
गोशाल के शरीर का नीहरण	९६	६३
भगवान के शरीर में रोगातंक प्रादुर्भाव	९७	६४
सिंह मुनि को मानसिक दुःख	९८	६५
भगवान द्वारा सिंह को आश्वासन	९९	६५
सिंह मुनि द्वारा रेवती से भैषज आनयन	१०१	६६
भगवान का आरोग्य	१०५	६८
सर्वानुभूति-सुनक्षत्र मुनियों की देवलोक में उत्पत्ति, तदनन्तर सिद्धिगमननिरूपण	१०६	६८
गोशाल जीव की देवलोकोत्पत्ति	१०८	६९
गोशाल का महापद्म भव में जन्म और राज्याभिषेक	१०९	६९
महापद्म के देवसेन—विमलवाहन नामद्विक	११०	७०
विमलवाहन का निर्ग्रन्थों के प्रतिकूलाचरण	११२	७१
सुमंगल अनगार के प्रति विमलवाहनकृत उपसर्ग	११३	७१
सुमंगल मुनि के तेज द्वारा विमलवाहन का मरण	११४	७३
सुमंगल मुनि का देवलोक—सिद्धिगमन निरूपण	११५	७३
गोशाल जीव विमलवाहन के अनेक दुःख, प्रचुर भव, तदनन्तर देवभव	११६	७४
गोशाल जीव का दृढ़प्रतिज्ञ भव में सिद्धिगमन निरूपण	११७	७८

□□

धर्मकथानुयोग : षष्ठस्कन्ध—विषय-सूची

		सूत्रांक	पृष्ठांक
षष्ठ स्कन्ध [प्रकीर्णक कथानक]		१-३५९	१-१७२
१.	श्रेणिक-चेलना के अवलोकन से साधु-साध्वियों द्वारा कृत निदान प्रसंग	१-१३	४-१०
	राजगृह में श्रेणिक राजा	१	४
	भगवान महावीरागमन वृत्तान्त जानने के लिए श्रेणिक राजा का कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश	२	४
	भगवान महावीर का समवसरण	४	५

धर्मकथानुयोग षष्ठस्कन्ध—विषय-सूची		सूत्रांक	पृष्ठांक
	महत्तरकों द्वारा श्रेणिक के समक्ष भगवदागमन निवेदन	५	५
	श्रेणिक का राजगृह नगर शोभाकरण आदेश और यानादि आनयन आदेश	६	६
	चेलना सहित श्रेणिक का समवसरण में गमन और भगवद् पर्युपासना	७	७
	भगवान की धर्मदेशना और श्रेणिक आदि परिषद् का प्रतिगमन	१०	८
	साधु-साध्वियों का निदानकरण	११	८
	भगवान द्वारा निदानकरण निषेधरूप उपदेश को सुनकर साधु-साध्वियों का प्रायश्चित्तकरण	१२	९
२.	**रथमूसल संग्राम**	१४-२०	१०-१२
	रथमूसल में वज्जी (राजाओं) का 'जय' ग्रह निरूपण	१४	१०
	कोणिक का युद्ध प्रस्थान	१५	१०
	कोणिक को इन्द्र साहाय्य	१६	११
	कोणिक राजा की जय	१७	११
	रथमूसल संग्राम का स्वरूप	१८	११
	संग्राम में मनुष्यों की मरण संख्या और गति	१९	१२
	कोणिक को इन्द्र साहाय्य में हेतु	२०	१२
३.	**रथमूसल संग्राम में कालादि की मरण कथा**	२१-६४	१३-३२
	कालादिक दस का नाम निर्देश	२१	१३
	चम्पा में श्रेणिक-पुत्र काल	२२	१३
	कोणिक के साथ काल का रथमूसल संग्राम में गमन	२३	१३
	महावीर समवसरण में काली ने पूछा	२४	१३
	काली के पूछने पर भगवान द्वारा निरूपण, काली-पुत्र कालकुमार का मरण और काली का स्वस्थान गमन	२७	१४
	काल की नरक गति	२९	१५
	कालकुमार नरकगति-गमन हेतु निरूपण कोणिक चरित्रान्तर्गत भगवान का प्ररूपण	३०	१६
	चेलना को मांसभक्षण करने का दोहद, श्रेणिक को चिन्ता	३१	१६
	अभयकुमार की युक्ति से चेलना के दोहद की पूर्ति	३२	१८
	चेलना द्वारा गर्भपात का निष्फल प्रयास	३३	१९
	चेलना का उकरड़े पर दारक उज्झन	३४	२०
	श्रेणिक के उपालम्भ देने पर चेलना का अपने पुत्र का संरक्षण-पालन	३५	२०
	श्रेणिक द्वारा दारक की वेदना निवारण	३६	२१
	दारक का कोणिक नामकरण और कोणिक तारुण्य आदि	३७	२१
	श्रेणिक को गुप्तिबंधन करके कोणिक का राज्यश्री संप्राप्ति करना	३८	२१
	कोणिक का चेलना से अपने प्रति श्रेणिक के स्नेह का ज्ञान	३९	२२
	कोणिक का श्रेणिक के बंधन छेदनार्थ गमन	४०	२३
	श्रेणिक का तालपुट विषभक्षण और मरण	४१	२३
	कोणिक का शोक; शोकापगम और निज भ्राताओं में राज्य का विभाजन	४२	२३

	धर्मकथानुयोग षष्ठ स्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
	कोणिक के सहोदर वेहल्ल की सेचनक गन्धहस्तिक्रीड़ा का वर्णन	४३	२४
	निज भार्या पद्मावती के अनुरोध से कोणिक का पुनः पुनः वेहल्ल से हाथी और हार माँगना	४४	२४
	कोणिक से भीत वेहल्ल का वैशाली में चेटक के आश्रय में अवस्थान	४५	२५
	कोणिक द्वारा चेटक के समीप सेचनक गंधहस्ती आदि प्रेषणार्थ दूत प्रेषण	४६	२६
	चेटक द्वारा वेहल्लार्थ अर्द्ध राज्यमार्गण—माँगना	४८	२६
	कोणिक द्वारा पुनः दूत प्रेषण	४९	२७
	चेटक द्वारा पुनः अर्द्ध राज्य माँगना	५०	२७
	संग्रामार्थं कोणिक द्वारा पुनः दूत प्रेषण	५१	२८
	चेटक द्वारा युद्ध-सज्जा	५२	२८
	कोणिक के अनुचित संग्रामार्थ काल आदि कुमारों का सम्मिलन	५३	२८
	काल आदि कुमार सहित कोणिक का युद्धार्थ वैशाली के प्रति प्रस्थान	५५	२९
	मल्लकी-लेच्छकि आदि सहित चेटक का युद्धार्थ निज देश सीमा पर अवस्थान	५६	३०
	कोणिक-चेटक संग्राम	५९	३१
	संग्राम में काल का मरण	६१	३२
	नरकभवान्तर काल का सिद्धिगमन निरूपण	६२	३२
	काल के अनुरूप सुकाल आदि नौ कुमारों की वक्तव्यता का निर्देश	६३	३२
४.	महाशिला कंटक संग्राम कथानक	६५-७०	३३-३४
	भगवान द्वारा कोणिक की जय प्ररूपणा	६५	३३
	शक्र सहित कोणिक संग्राम में आगमन	६६	३३
	मल्लकि-लेच्छकि की पराजय	६८	३४
	महाशिला-कंटक संग्राम का शब्दार्थ एवं संग्राम निहत मनुष्यों की गति	६९	३४
५.	विजय तस्कर ज्ञात आख्यान	७१-१०५	३४-५१
	राजगृह में धन्य सार्थवाह और भद्राभार्या	७१	३५
	राजगृह में विजय तस्कर	७२	३६
	भद्रा का सन्तान प्राप्ति सम्बन्धी मनोरथ	७४	३७
	भद्राकृत नागादिकों की पूजा	७५	३९
	भद्रा की दोहदपूर्ति	७६	३९
	पुत्र जन्म और 'देवदत्त' यह नामकरण	७८	४१
	देवदत्त की क्रीड़ा	७९	४१
	देवदत्त का विजय तस्कर द्वारा अपहरण	८०	४१
	देवदत्त की गवेषणा	८१	४२
	विजय तस्कर का निग्रह	८४	४३
	देवदत्त का नीहरण	८५	४४
	धन्य का निग्रह	८६	४४
	धन्य के घर से भोजन का आना	८७	४४

		सूत्रांक	पृष्ठांक
	विजय तस्कर द्वारा संविभाग की मांग	८८	४५
	धन्य का निषेध	८९	४५
	आबाधित धन्य की विजय तस्कर से अपेक्षा	९०	४५
	विजय चोर द्वारा उसका निषेध	९१	४६
	धन्य के पुनः कहने पर विजय द्वारा संविभाग की मांग	९२	४६
	धन्य द्वारा विजय को संविभाग दान	९३	४६
	पंथक का भद्रा से कहना—निवेदन करना	९४	४७
	भद्रा का कोप	९५	४७
	धन्य की कारागार से मुक्ति	९६	४७
	धन्य का सम्मान	९७	४७
	भद्रा के कोप का उपशमन, सम्मान	९८	४८
	विजय ज्ञात का निगमन	१००	४८
	धन्य ज्ञात का निगमन	१०१	४९
	राजगृह में स्थविरागमन	१०२	४९
	धन्य की प्रव्रज्या	१०३	४९
	धन्य की महाविदेह में सिद्धि	१०४	५०
	धन्य ज्ञात का पुनः निगमन	१०५	५०
६.	**मयूरी अण्ड ज्ञात**	१०६-१२१	५१-५८
	चंपा में मयूरी का अण्ड-सेवन	१०६	५१
	चंपा में जिनदत्त-सागरदत्त नामक सार्थवाह के पुत्र	१०७	५१
	चंपा में देवदत्ता गणिका	१०८	५२
	सार्थवाह-पुत्रों की गणिका के साथ उद्यान क्रीड़ा	१०९	५२
	सार्थवाह-पुत्रों द्वारा मयूरी अंडकों का लेना	११३	५४
	सन्देहग्रस्त सागरदत्त-पुत्र अंडक विनाश और उपनय	११५	५५
	श्रद्धायुक्त जिनदत्त-पुत्र को मयूर-संप्राप्ति और उपनय	११८	५६
७.	**कूर्मज्ञात**	१२२-१३१	५८-६२
	वाराणसी के मृतगंगा तीर द्रह के समीप मालुका कच्छ के किनारे के पाप शृगाल	१२२	५८
	मृतगंगा तीर के कूर्म	१२४	५९
	पापशृगालों की आहार गवेषणा	१२५	५९
	शृगालों को देखकर कछुओं का काय-संहरण	१२६	५९
	शृगालों द्वारा अगुप्त कूर्म का मारण	१२७	६०
	अगुप्त कूर्म विषयक उपनय	१२९	६१
	गुप्तकूर्म को सौख्य	१३०	६१
	गुप्त कूर्म सम्बन्धी उपनय	१३१	६२

धर्मकथानुयोग षष्ठस्कन्ध—विषय-सूची

		सूत्रांक	पृष्ठांक
८	रोहिणी ज्ञात	१३२-१५३	६२-७२
	राजगृह में धन्य सार्थवाह	१३२	६२
	धन्य सार्थवाह कृत चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा	१३३	६३
	उज्झिता द्वारा शालि का उज्झण	१३४	६४
	भोगवती द्वारा शालि का भोग	१३५	६४
	रक्षिता द्वारा शालि का रक्षण	१३६	६४
	रोहिणी द्वारा शालिरोहण और वर्द्धन	१३७	६५
	पाँच संवत्सर के अनन्तर धन्य द्वारा शालि माँगना	१४२	६७
	उज्झिता को बाह्य प्रेषण कार्य करने का आदेश	१४३	६८
	उज्झिता प्रत्ययिक उपनय	१४५	६९
	भोगवती को आभ्यन्तर प्रेषण कार्य-करण आदेश	१४६	६९
	भोगवती प्रत्ययिक उपनय	१४७	६९
	रक्षिता को भांडागार रक्षण आदेश	१४८	७०
	रक्षिता प्रत्ययिक उपनय	१५०	७०
	रोहिणी को सर्वाधिकारकरण आदेश	१५१	७०
	रोहिणी प्रत्ययिक उपनय	१५३	७२
९.	अश्व ज्ञात	१५४-१७२	७३-८२
	हस्तिशीर्ष नगर में सांयात्रिक नौका वणिक	१५४	७३
	सांयात्रिक नौका वणिकों को समुद्र के मध्य में उपद्रव	१५५	७३
	नौका निर्यामक का मूढ़त्व और लब्ध संज्ञत्व	१५६	७३
	सांयात्रिक नौका वणिकों का कालिक द्वीप में अश्वप्रेक्षण	१५८	७४
	सांयात्रिक वणिकों का पुनरागमन	१६०	७५
	कनककेतु के आदेश से अश्वों का आनयन	१६१	७६
	अमूच्छित अश्वों का स्वायत्त विहार	१६४	७८
	अमूच्छित अश्व विषयक उपनय	१६५	७९
	मूच्छित अश्वों का परायत्त विहार	१६६	७९
	मूच्छित अश्व प्रत्ययिक उपनय	१७१	८०
	सम्यग्दृष्टान्त की उपनय गाथाएँ	१७२	८०
१०.	मृगापुत्र कथानक	१७३-२०२	८२-९४
	मृगाग्राम में विजयराज पुत्र मृगापुत्र	१७३	८२
	मृगापुत्र जन्मान्धत्व आदि	१७४	८२
	महावीर समवसरण में गौतम की जन्मान्ध पुरुष विषयक पृच्छा	१७५	८३
	भगवान द्वारा मृगापुत्र का स्वरूप निरूपण	१८०	८४
	गौतम का मृगापुत्र दर्शन	१८१	८५
	गौतम द्वारा मृगापुत्र की पूर्वभव पृच्छा	१८६	८७
	मृगापुत्र की एकादि नामक राष्ट्रकूट कथा	१९०	८८

धर्मकथानुयोग षष्ठस्कन्ध—विषय सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
एकादि नामक राष्ट्रकूट द्वारा प्रजा पीड़न	१६१	८८
एकादि को असाध्य रोगातंक	१६२	८९
एकादि का नरक गमन	१६४	९०
मृगापुत्र का वर्तमान भव वर्णन : मृगादेवी को वेदना और गर्भ-शातन विचारणा	१६५	९०
गर्भगत मृगापुत्र के रोगातंक	१६७	९१
मृगापुत्र का जात्यन्ध रूप देखकर मृगावती का उकरड़े पर फेंकने का संकल्प	१६८	९२
मृगापुत्र का भूमिगृह में स्थापन	२००	९२
मृगापुत्र का आगामी भव वर्णन	२०२	९३
११. उज्झितक कथानक	२०३-२२९	९४-१०६
वाणिजग्राम में सार्थवाहपुत्र उज्झितक	२०३	९४
भगवान महावीर का समवसरण	२०६	९५
गौतम द्वारा उज्झितक के पूर्वभव की पृच्छा	२०७	९६
उज्झितक का गोत्रास भव कथानक	२१०	९८
हस्तिनापुर में भीम कूटग्राह	२११	९८
भीम की भार्या उत्पला को मांसभक्षण दोहद	२१३	९८
भीम द्वारा दोहद पूर्ति	२१५	१००
दारक का जन्म	२१६	१००
दारक का गोत्रास नामकरण	२१७	१०१
भीम के मरणानन्तर गोत्रास को कूटग्राहकत्व	२१८	१०१
गोत्रास का मांसभक्षण और नरकादि भव	२१९	१०१
उज्झितक का वर्तमान भव वर्णन	२२०	१०२
बालक का उज्झितक नामकरण	२२१	१०२
विजयमित्र का लवण समुद्र में मरण	२२२	१०२
सुभद्रा सार्थवाही के मरने पर उज्झितक का घर से निष्कासन	२२३	१०३
उज्झितक का गणिका सहवास	२२४	१०३
गणिकासक्त मित्रराजा कृत उज्झितक विडंबना	२२५	१०४
उपसंहार	२२६	१०४
उज्झितक का आगामी भव वर्णन	२२७	१०५
१२. अभग्नसेन कथानक	२३०-२५५	१०६-११८
पुरिमताल में चोर सेनापति विजयपुत्र अभग्नसेन	२३०	१०६
महावीर समवसरण में गौतम द्वारा अभग्नसेन के पूर्वभव की पृच्छा	२३४	१०८
अभग्नसेन की निर्णय भव कथा	२३६	१०९
निर्णय का अण्डवाणिज्य अंडादिभक्षण और नरकोपपात	२३८	११०
अभग्नसेन का वर्तमान भव वर्णन	२३९	११०
स्कन्दश्री का दोहद	२४०	१११
विजय द्वारा दोहद-पूर्ति	२४१	१११

धर्मकथानुयोग षष्ठ स्कन्ध विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
दारक का अभग्नसेन नामकरण और यौवन	२४३	११२
विजय का मरण, अभग्नसेन को चोर सैनापतित्व	२४४	११२
महाबल राजा की अभग्नसेन को जीवित पकड़ने की आज्ञा	२४५	११३
अभग्नसेन द्वारा राजसेना का निवारण	२४६	११५
राजा द्वारा दस रात्रिक प्रमोद घोषणा	२५०	११६
अभग्नसेन का पुरिमताल नगर में राज-अतिथि रूप में गमन	२५१	११७
राजा द्वारा जीवित ही अभग्नसेन को पकड़ना	२५२	११८
उपसंहार	२५४	११८
अभग्नसेन की आगामी भव कथा	२५५	११८
१३. शकट कथानक	२५६-२६९	११९-१२३
साहंजनी में सार्थवाहपुत्र शकट	२५६	११९
महावीर समवसरण में शकट की पूर्वभव कथा	२५७	११९
शकट का छण्णिक छागलिक भव वर्णन	२५८	१२०
छण्णिक का मांसभक्षण एवं मांसवाणिज्य	२६०	१२०
छण्णिक का मरण और नैरयिक उपपाद	२६१	१२०
शकट की वर्तमान भव कथा	२६२	१२१
बालक का शकट नामकरण, गृह से निष्कासन और वेश्यादि व्यसनित्व	२६३	१२१
गणिका के गृह से निष्कासित शकट की अमात्यकृत विडम्बना	२६५	१२१
उपसंहार	२६८	१२२
शकट की आगामी भव कथा	२६९	१२२
१४. बृहस्पतिदत्त कथानक	२७०-२७९	१२४-१२७
कौशाम्बी में पुरोहित-पुत्र बृहस्पतिदत्त	२७०	१२४
महावीर समवसरण में गौतम द्वारा बृहस्पतिदत्त के पूर्वभव की पृच्छा	२७१	१२४
बृहस्पतिदत्त की महेश्वरदत्त भव कथा	२७२	१२४
महेश्वरदत्तकृत शांतिहोम में ब्राह्मणादि के बालकों की हिंसा	२७३	१२५
महेश्वरदत्त का नरक उपपाद	२७४	१२५
बृहस्पतिदत्त का वर्तमान भव वर्णन	२७५	१२५
बृहस्पतिदत्त का उदयन राजा की राजमहिषी के साथ भोग भोगना	२७६	१२६
राजा द्वारा बृहस्पतिदत्त की विडम्बना	२७७	१२६
उपसंहार	२७८	१२७
बृहस्पतिदत्त की आगामी भव कथा	२७९	१२७
१५. नंदीवर्धनकुमार कथानक	२८०-२८९	१२७-१३३
मथुरा में नंदीवर्धन कुमार	२८०	१२७
भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा नन्दीवर्धन की पूर्वभव पृच्छा	२८१	१२८
नंदीवर्धन की दुर्योधन भव कथा	२८२	१२९
चारकपाल दुर्योधन	२८३	१२९
दुर्योधन की चर्या	२८४	१३०

धर्मकथानुयोग षष्ठस्कन्ध—विषय-सूची	सूत्रांक	पृष्ठांक
नन्दीवर्धन की वर्तमान भव कथा	२८५	१३१
नन्दीवर्धन का पितृमारण संकल्प	२८६	१३१
राजा द्वारा नन्दीवर्धन को दण्ड	२८७	१३२
उपसंहार	२८८	१३२
नन्दीवर्धन का आगामी भव निरूपण	२८९	१३३
१६. उम्बरदत्त कथानक	२९०-३०६	१३३-१४१
पाटलिखंड में उम्बरदत्त	२९०	१३३
भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा उम्बरदत्त के पूर्वभव विषयक पृच्छा	२९१	१३४
उम्बरदत्त की धन्वन्तरि वैद्यभव कथा	२९६	१३५
धन्वन्तरि वैद्य द्वारा मांसाशन चिकित्सा	२९७	१३६
नरकोपपात	२९८	१३६
उम्बरदत्त की वर्तमान भव कथा	२९९	१३६
गंगदत्ता द्वारा उम्बरदत्त यक्षपूजा	३००	१३८
गंगदत्ता का दोहद	३०१	१३८
दारक का उम्बरदत्त नामकरण और यौवन	३०३	१४०
पितृ मातृ मरणानन्तर उम्बरदत्त का गृह से निष्कासन	३०४	१४०
उपसंहार	३०५	१४०
उम्बरदत्त का आगामी भव निरूपण	३०६	१४०
१७. शौरिकदत्त कथानक	३०७-३१७	१४१-१४५
शौरिकपुर में शौरिकदत्त	३०७	१४१
भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा शौरिकदत्त की पूर्वभव पृच्छा	३०८	१४१
शौरिकदत्त की श्रीयक भव कथा	३०९	१४२
शौरिकदत्त की वर्तमान भव कथा	३१३	१४३
शौरिकदत्त की दुश्चर्या	३१४	१४४
उपसंहार	३१६	१४५
शौरिकदत्त का आगामी भव निरूपण	३१७	१४५
१८. देवदत्ता कथानक	३१८-३३४	१४६-१५५
रोहीतक में देवदत्ता	३१८	१४६
भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा देवदत्ता के पूर्वभव की पृच्छा	३१९	१४६
देवदत्ता की सिंहसेन भव कथा	३२०	१४६
सिंहसेन राजा की श्यामा में मूर्च्छा (आसक्ति)	३२१	१४७
श्यामा का कोप गृह-प्रवेश	३२२	१४७
सिंहसेन द्वारा श्यामा की सपत्नियों की माताओं का अग्नि द्वारा वध	३२३	१४८
सिंहसेन का नरकोपपात	३२४	१४९
देवदत्ता के रूप में वर्तमान भव	३२५	१५०
वैश्रमणदत्त राजा द्वारा युवराजार्थ देवदत्ता की मंगनी	३२६	१५०

धर्मकथानुयोग षष्ठस्कन्ध—विषय-सूची		सूत्रांक	पृष्ठांक
	देवदत्ता पुष्यनन्दी युवराज का पाणिग्रहण	३२९	१५२
	पिता का मरण और पुष्यनन्दी का राज्यारोहण	३३०	१५३
	देवदत्ता द्वारा पुष्यनन्दी की माता को मारना	३३१	१५३
	पुष्यनन्दीकृत देवदत्ता को दण्ड	३३२	१५४
	उपसंहार	३३३	१५४
	देवदत्ता का आगामी भव निरूपण	३३४	१५५
१९.	**अंजू कथानक**	**३३५-३४१**	**१५५-१५८**
	वर्धमानपुर में अंजू	३३५	१५५
	अंजू के पूर्वभव की पृच्छा	३३६	१५५
	अंजू की पृथ्वीश्री भव कथा	३३७	१५६
	अंजू की वर्तमान भव कथा	३३८	१५६
	उपसंहार	३४०	१५७
	अंजू के आगामी भव की कथा	३४१	१५७
२०.	**पूरण बाल तपस्वी कथानक**	**३४२-३५६**	**१५८-१७०**
	सन्निवेश में पूरण गाथापति	३४२	१५८
	पूरण की दानामा प्रव्रज्या	३४३	१५८
	पूरण की संलेखना	३४४	१६०
	महावीर का छद्मस्थ काल में सुंसुमार में विहार	३४५	१६०
	पूरण का चमरचंचा में असुरेन्द्र के रूप में उपपात	३४६	१६१
	चमरेन्द्र को शक्रेन्द्र भोगदर्शन से अमर्ष—क्रोध	३४७	१६१
	चमरेन्द्र द्वारा महावीर की निश्रा में शक्रेन्द्र का अपमान	३४८	१६२
	शक्रेन्द्र द्वारा वज्र निस्सारण	३४९	१६४
	चमरेन्द्र का भगवान महावीर के पैरों में गिरना	३५०	१६४
	शक्रेन्द्र का भी भगवान महावीर के समीप आगमन और वज्र प्रतिसंहरण	३५१	१६४
	शक्रेन्द्र द्वारा क्षमायाचना और असुरेन्द्र निर्भयकरण	३५२	१६५
	शक्रादि विषयक गौतम स्वामी के प्रश्नों का भगवान द्वारा समाधान	३५३	१६६
	चमरेन्द्र का भगवान महावीर के समीप पुनरागमन	३५४	१६८
२१.	**महाशुक्र देवों का भगवान महावीर के समीप आगमन प्रसंग**	**३५७-३५९**	**१७०-१७२**
	देवों का मन द्वारा प्रश्न पूछना और महावीर का मन से उत्तर देना	३५७	१७०
	भगवान द्वारा गौतम मनोगत कथन		१७१
	गौतम का देवों के समीप गमन	३५९	१७१

● **परिशिष्ट :—**

☐ दोनों भाग की सम्पूर्ण चरित सन्दर्भ-सूची

☐ दोनों भाग की सम्पूर्ण शब्द-सूची

☐☐

३

धम्मकहाणुओगो

धर्मकथानुयोग

तइओ खंधो - तृतीयस्कन्ध

श्रमणी कथानक

धम्मकहाणुओगो

(तइओ खंधो)

धर्मकथानुयोग–तृतीयस्कन्ध

प्राथमिक

- धर्मकथानुयोग—आगमों में विकीर्ण चरित्र, कथानक, इतिवृत्त आदि चरितानुयोग की समस्त सामग्री का एकत्र विशाल संकलन है।

- धर्मकथानुयोग छह स्कन्धों (दो खंड) में विभक्त है। प्रथम स्कन्ध में (खंड प्रथम) उत्तम पुरुष—तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलदेव वासुदेव आदि का वर्णन तथा द्वितीय स्कन्ध में—तीर्थंकर तीर्थ-कालक्रमानुसार श्रमणों के चरित संकलित हैं।

- तृतीय स्कन्ध (दूसरा खंड) में तीर्थंकर तीर्थ-काल के अनुक्रम से श्रमणी आदि के चरित संकलित किये गये हैं।

- चतुर्थ स्कन्ध में उक्त क्रमानुसार श्रमणोपासक (श्रावक-श्राविका) चरित संकलित है। इसी प्रकार पंचम स्कन्ध में सात प्रवचन-निन्हवों का वर्णन, जमाली प्रकरण एवं आजीवक-आचार्य गोशालक का प्रकरण संकलित है।

- छठा स्कन्ध प्रकीर्णक कथानक संग्रह है। इसमें भगवान महावीर तीर्थ के तथा अन्य उपदिष्ट/घटित लगभग २१ कथा चरित संकलित है।

इस प्रकार धर्मकथानुयोग की यह संकलना तृतीय स्कन्ध से षष्ठ स्कन्ध तक प्रस्तुत खण्ड २ में समायोजित है।

तईओ खंधो

समणीकहाणगाणि

अज्झयणा		अध्ययन	
१. अरिट्ठनेमितित्थे—	दोवईकहाणयं	१. अरिष्टनेमि तीर्थ में—	द्रौपदी कथानक
२. अरिट्ठनेमितित्थे—	पउमावई-आईणं समणीणं कहाणगाणि	२. अरिष्टनेमि तीर्थ में—	पद्मावती आदि श्रमणियों के कथानक
३. अरिट्ठनेमितित्थे—	पोट्टिलाकहाणयं	३. अरिष्टनेमि तीर्थ में—	पोट्टिला कथानक
४. पासनाहतित्थे—	समणीणं काली-आईणं कहाणगाणि	४. पार्श्वनाथ तीर्थ में—	काली श्रमणी का कथानक
५. पासनाहतित्थे—	राई-आईणं कहाणगाणि	५. पार्श्वनाथ तीर्थ में—	राजी आदि के कथानक
६. पासनाहतित्थे—	समणीणं भूयाईणं कहाणगाणि	६. पार्श्वनाथ तीर्थ में—	भूता आदि श्रमणियों के कथानक
७. पासनाहतित्थे—	समणीसुभद्दाकहाणयं	७. पार्श्वनाथ तीर्थ में—	श्रमणी सुभद्रा का कथानक
८. महावीरतित्थे—	नंदाईणं कहाणगाणि	८. महावीर तीर्थ में—	नन्दादिक का कथानक
९. महावीरतित्थे—	काली आईसमणीणं कहाणगाणि	९. महावीर तीर्थ में—	काली आदि श्रमणियों के कथानक
१०. महावीरतित्थे—	जयन्तीकहाणयं	१०. महावीर तीर्थ में—	जयन्ती का कथानक

अरिट्ठनेमितित्थे दोवईकहाणयं

दोवईपुव्वभवा

१ तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था।

तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे होत्था।

नागसिरी-कहाणगं—

२ तत्थ णं चंपाए नयरीए तओ माहणा भायरो परिवसंति, तं जहा—सोमे, सोमदत्ते, सोमभूई—अड्ढा-जाव-अपरिभूया रिउव्वेय-जउव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेय-जाव-बंभण्णएसु य सत्थेसु सुपरिनिट्ठिया।

तेसि णं माहणाणं तओ भारियाओ होत्था, तं जहा—

नागसिरी, भूयसिरी, जक्खसिरी—सुकुमालपाणिपायाओ-जाव-तेसि णं माहणाणं इट्ठाओ, तेहिं माहणेहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणीओ विहरंति।

नागसिरीए तित्तालाउयस्स उवक्खडणं एगंते गोवणं च—

३ तए णं तेसिं माहणाणं अण्णया कयाइ एगयओ समुवागयाणं-जाव-इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमे विउले धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्जे, अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं; तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! अण्णमण्णस्स गिहेसु कल्लाकल्लिं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेउं परिभुंजेमाणाणं विहरित्तए। अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, कल्लाकल्लिं अण्णमण्णस्स गिहेसु विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेंति, परिभुंजेमाणा विहरंति।

अरिष्टनेमितीर्थ में द्रौपदी कथानक

द्रौपदी के पूर्वभव

१. उस काल और उस समय में चंपा नामक नगरी थी। उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में सुभूमिभाग नामक उद्यान था।

नागश्री कथानक—

२. उस चंपानगरी में तीन ब्राह्मण भाई निवास करते थे, उनके नाम इस प्रकार हैं—सोम, सोमदत्त और सोमभूति. वे सब धनाढ्य थे—यावत्—किसी से भी पराभूत नहीं होने वाले अर्थात् सर्वजनमान्य—ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद—यावत्—ब्राह्मणधर्म एवं शास्त्रों में अत्यन्त प्रवीण थे।

उन तीनों ब्राह्मणों की तीन पत्नियां थीं, जिनके नाम ये हैं—

नागश्री, भूतश्री, यक्षश्री. जो सुकुमाल हाथ पैर वाली—यावत्—उन ब्राह्मणों को इष्ट-प्रिय थीं। उन ब्राह्मणों के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों को भोगती हुई—अनुभव करती हुई विचरण करती थीं।

नागश्री द्वारा तिक्त तुम्बे को पकाना और एकान्त में छिपाना

३. तत्पश्चात् किसी एक दिन एकत्रित हुए उन ब्राह्मणों में परस्पर वार्तालाप करते हुए यावत्—इस प्रकार का कथा समुल्लाप (वार्तालाप, विचार) उत्पन्न हुआ—'हे देवानुप्रियो! हमारे पास यह विपुल धन, स्वर्ण, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, माणिक आदि श्रेष्ठ सारभूत धन विद्यमान है, जो सात पीढ़ियों तक भी खूब दिया जाये, खूब भोगा जाये और खूब बांटा जाये तब भी पर्याप्त है। अर्थात् वह समाप्त होने वाला नहीं है, इसलिए हे देवानुप्रियो! हम लोगों को यह उचित है कि हम प्रतिदिन एक दूसरे के घर में बारी-बारी से विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चतुर्विध आहार बनवा-बनवा कर भोजन करें। तीनों ब्राह्मणों ने एक दूसरे के इस विचार को स्वीकार किया और प्रतिदिन एक दूसरे के घर में विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन बनवाने लगे और बनवाकर भोजन करने लगे।

४ तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए अण्णया कयाइ भोयणवारए जाए यावि होत्था।

तए णं सा नागसिरी विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेइ, एगं महं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंजुत्तं नेहावगाढं उवक्खडेइ, एगं बिंदुयं करयलंसि आसाएइ, तं खारं कडुयं अखज्जं विसभूयं जाणित्ता एवं वयासी —

"धिरत्थु णं मम नागसिरीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं मए सालइए तित्तालाउए बहुसंभारसंभिए नेहावगाढे उवक्खडिए, सुबहुदव्वक्खए नेहक्खए य कए। तं जइ णं ममं जाउयाओ जाणिस्संति तो णं मम खिंसिस्संति। तं जाव ममं जाउयाओ न जाणंति ताव मम सेयं एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंते गोवित्तए, अण्णं सालइयं महुरालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं उवक्खडित्तए"।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंते गोवेइ, गोवेत्ता अण्णं सालइयं महुरालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं उवक्खडेइ, उवक्खडेत्ता तेसिं माहणाणं ण्हायाणं भोयणमंडवंसि सुहासणवरगयाणं तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं परिवेसेइ।

तए णं ते माहणा जिमियभुत्तुत्तरागया समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

तए णं ताओ माहणीओ ण्हायाओ-जाव-विभूसियाओ तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आहारेंति, जेणेव सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ताओ जायाओ।

धम्मरुइस्स तित्तालाउय-दाणं—

५. तेणं कालेणं तेणं समएणं धम्मघोसा नामं थेरा-जाव-बहुपरिवारा जेणेव चंपा नयरी जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति। परिसा निग्गया।

४. तदनन्तर किसी एक दिन जब उस नागश्री ब्राह्मणी के यहाँ भोजन की बारी आई।

तब उस दिन उस नागश्री ने विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन पकाया, भोजन बनाकर एक बड़ा सा शरद ऋतु में—उत्पन्न- सारयुक्त (रसयुक्त) तिक्त—कड़ुवे तुम्बे का बहुत से मसाले डालकर और तेल से व्याप्त (छोंक) कर शाक तैयार किया। शाक बनने पर उसमें से एक बूंद हथेली पर लेकर चखा तो उसको खारा, कड़वा, अखाद्य और विष जैसा जानकर इस प्रकार (मन ही मन) कहने लगी —

'मुझ अधन्या, पुण्यहीना, अभागिनी, भाग्यहीन सत्ववाली निम्बोली के समान अनादरणीय नागश्री को धिक्कार है जिस (मैं) ने शरदऋतु सम्बन्धी सरस तुम्बे को बहुत से मसालों से युक्त और स्नेह-तेल घी से व्याप्त किया—छौंका और पकाया इसके लिए बहुत-सा द्रव्य बिगाड़ा और स्नेह-घी तेल का विनाश किया। सो यदि मेरी देवरानियाँ जानेंगी तो वे मेरी बहुत निन्दा करेंगी। अतएव जब तक मेरी देवरानियाँ न जान पायें, तब तक मेरे लिये यही उचित होगा कि शरदऋतु सम्बन्धी सरस, बहुत मसालेदार और स्नेह से व्याप्त इस कड़वे तुम्बे के शाक को किसी एकान्त स्थान में छिपा दिया जाये और दूसरे शरदऋतुजन्य सरस, मधुर तुम्बे को बहुत से मसाले डालकर तेल से व्याप्त कर पकाया जाये।'

उस नागश्री ने ऐसा विचार किया और विचार करके उस शरदऋतु जन्य सरस कड़ुवे तुम्बे के मसालेदार और स्नेह-तेल, घी से व्याप्त शाक को एकान्त में छिपा दिया। छिपाकर एक-दूसरे सरस मधुर तुम्बे का बहुत से मसाले डालकर और स्नेह से व्याप्त कर शाक बनाया। शाक तैयार हो जाने पर स्नान करके भोजन मंडप में सुखासन पर बैठे हुए उन ब्राह्मणों को वह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन परोसा गया।

तत्पश्चात् वे ब्राह्मण भोजन करने के पश्चात् आचमन (कुल्ला) करके स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर अपने-अपने कार्य में संलग्न हो गये।

तत्पश्चात् स्नान की हुई- यावत्-सुन्दर वेश-भूषा से विभूषित उन ब्राह्मणियों ने उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को खाया, खाने के बाद वे जहाँ अपने-अपने घर थे वहाँ चली गईं और वहाँ जाकर अपने-अपने कामों में लग गईं।

धर्मरुचि को तिक्त तुम्बे का दान--

५. उस काल और उस समय में धर्मघोष नामक स्थविर-यावत्-बहुत बड़े शिष्य समुदाय परिवार के साथ जहाँ चम्पानगरी थी जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था, वहाँ आये, वहाँ आकर यथा प्रतिरूप कल्पानुसार अवग्रह को अवधारित करके संयम और तप से आत्मा

धम्मो कहिओ। परिसा पडिगया।

को भावित करते हुए विचरने लगे। दर्शनार्थ परिषदा निकली उस स्थविर ने धर्म का उपदेश दिया। परिषदा वापस लौटी।

तए णं तेसिं धम्मघोसाणं थेराणं अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से मासं मासेणं खममाणे विहरइ।

तदनन्तर उन धर्मघोष स्थविरके अंतेवासी— शिष्य उदार-प्रधान घोर अत्यन्त गुणवान, विकट तपस्वी प्रगाढ़ रूप से ब्रह्मचर्य में लीन, शरीर के त्यागी, सघन रूप से शरीर में व्याप्त तेजोलेश्या से सम्पन्न धर्मरुचि नामक अनगार मास-मास का तप करते हुए विचरते थे।

६. तए णं से धम्मरुई अणगारे मासक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, एवं जहा गोयमसामी तहेव भायणाइं ओगाहेइ, तहेव धम्मघोसं थेरं आपुच्छइ-जाव-चंपाए नयरीए उच्च-नीअ-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे जेणेव नागसिरीए माहणीए गिहे तेणेव अणुपविट्ठे।

६. तदनन्तर उन धर्मरुचि अनगार ने मासखमण के पारणे के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय किया, दूसरी पौरुषी में ध्यान किया, इत्यादि- सब गौतम स्वामी के वर्णन के समान यहाँ कहना चाहिये कि पात्रों को ग्रहण किया, उसी प्रकार धर्मघोष स्थविर से आज्ञा प्राप्त की—यावत्-चंपानगरी के उच्च नीच और मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या से भ्रमण करते हुए जहाँ नागश्री ब्राह्मणी का घर था; उसी में प्रवेश किया।

तए णं सा नागसिरी माहणी धम्मरुइं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स एडणट्ठयाए हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ।

तत्पश्चात् उस नागश्री ब्राह्मणी ने उन धर्मरुचि अनगार को आते देखा, देखकर उस शरदऋतुजन्य कड़वे तुम्बे के बहुत से मसालों वाले और स्नेह से युक्त शाक को निकाल देने के लिए हर्षित एवं संतुष्ट होती हुई आसन से उठी, उठकर जहाँ भोजन-शाला थी, वहाँ आई; वहाँ आकर वह शरदऋतुजन्य तिक्त तुम्बे के बहुत मसालेदार स्नेह से व्याप्त शाक, सबका सब धर्मरुचि अनगार के पात्र में डाल दिया।

७. तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छइ, धम्मघोसस्स अदूरसामंते अन्नपाणं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता अन्नपाणं करयलंसि पडिदंसेइ।

७. तत्पश्चात् वे धर्मरुचि अनगार यह आहार पर्याप्त है ऐसा जानकर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बाहर निकले, निकलकर चम्पानगरी के बीचों बीच होकर निकले निकलकर जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था, जहाँ धर्मघोष स्थविर विराज रहे थे, वहाँ आये धर्मघोष स्थविर के निकट अन्न-पान की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके अन्न-पानी को हाथ में लेकर दिखाया।

धम्मरुइणा तित्तालाउय-परिट्ठावणं पिपीलिगामरणं य—

धर्मरुचि द्वारा तिक्त तुम्बे का परिनिष्ठापन और चींटियों का मरण—

८. तए णं धम्मघोसा थेरा तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स गंधेणं अभिभूया समाणा तओ सालइयाओ तित्तालाउयाओ बहुसंभारसंभियाओ नेहावगाढाओ एगं बिंदुयं गहाय करयलंसि आसादेंति, तित्तगं खारं कडुयं अखज्जं अभोज्जं विसभूयं जाणित्ता धम्मरुइं अणगारं एवं वयासी—

८. तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने उस शरदऋतु सम्बन्धी सरस तिक्त-तुम्बे के बहुत मसाले वाले और स्नेह—तेल से व्याप्त शाक की गंध से पराभूत होकर, आकर्षित होकर उस शरदऋतुजन्य तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले वाले और तेल से व्याप्त शाक की एक बूँद हथेली पर लेकर चखा और तिक्त, खारा, कटुक, अखाद्य, अभोज्य और विष के सदृश जानकर धर्मरुचि अनगार से इस प्रकार कहा-

"जइ णं तुमं देवाणुप्पिया! एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं आहारेसि तो णं तुमं अकाले चेव जीवि-

"हे देवानुप्रिय! यदि तुम इस शारदीय तिक्त तुम्बे के मसालों और तेल से व्याप्त शाक को खाओगे तो अकाल में ही जीवन

याओ ववरोविज्जसि । तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं आहारेसि, मा णं तुमं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि । तं गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं एगंतमणावाए अचित्ते थंडिले परिट्ठवेहि, अण्णं फासुयं एसणिज्जं असण-पाण-खाइम-साइमं पडिगाहेत्ता आहारं आहारेहि ।"

रहित हो जाओगे । अतः हे देवानुप्रिय ! तुम इस शरदऋतुजन्य अनेक मसालों और तेल से व्याप्त तिक्त तुम्बे के शाक को मत खाना । ऐसा न हो कि अकाल-असमय में ही तुम जीव रहित हो जाओ । इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और इस शरदऋतु में उत्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मात्रा में मसाले वाले और स्नेह से व्याप्त शाक को एकान्त आवागमन से रहित अचित्त स्थंडिल भूमि में परठ दो और परठकर दूसरे प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार को ग्रहण करके उसका आहार करो ।"

९. तए णं से धम्मरुई अणगारे धम्मघोसेणं थेरेणं एवं वुत्ते समाणे धम्मघोसस्स थेरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सुभूमिभागाओ उज्जाणाओ अदूरसामंते थंडिलं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता तओ सालइयाओ तित्तालाउयाओ बहुसंभारसंभियाओ नेहावगाढाओ एगं बिंदुगं गहाय थंडिलंसि निसिरइ ।

९. तदनन्तर वे धर्मरुचि अनगार उन धर्मघोष स्थविर की बात को सुनकर धर्मघोष स्थविर के पास से बाहर निकले, बाहर निकलकर सुभूमिभाग उद्यान से न तो अधिक दूर और न अधिक निकट अर्थात् कुछ दूरी पर स्थंडिल भूभाग की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके उस शरदऋतु में उत्पन्न तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसाले वाले और स्नेह-तेल से व्याप्त शाक की एक बूंद लेकर उस स्थंडिल भूमिभाग पर डाली ।

तए णं तस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स गंधेणं बहूणि पिपीलिगासहस्साणि पाउब्भूयाणि । जा जहा य णं पिपीलिगा आहारेइ, सा तहा अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जइ ।

तत्पश्चात् उस प्रचुर मसालेवाले और स्नेह से व्याप्त शरदऋतु में उत्पन्न तिक्त तुम्बे के शाक की गंध से बहुत सी हजारों चींटियाँ वहाँ प्रादुर्भूत एकत्रित हो गईं । उनमें से जिस किसी भी चींटी ने उसको खाया वैसे ही वह असमय में जीवन रहित हो गई अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हुई ।

अहिंसट्ठं धम्मरुइणा तित्तालाउय-भक्खणं—

१०. तए णं तस्स धम्मरुइस्स अणगारस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—जइ ताव इमस्स सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स एगंमि बिंदुगंमि पक्खित्तंमि अणगाइं पिपीलिगासहस्साइं ववरोविज्जंति, तं जइ णं अहं एयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं थंडिलंसि सव्वं निसरामि तो णं बहूणं पाणाणं-जाव-सत्ताणं वहकरणं भविस्सइ ।

धर्मरुचि द्वारा अहिंसार्थ तिक्त तुम्बे का भक्षण—

१०. तत्पश्चात् उन धर्मरुचि अनगार को इस प्रकार का आध्यात्मिक-यावत् मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—'यदि जब इस शारदिक तिक्त तुम्बे के प्रचुर मसालों और स्नेह से व्याप्त शाक की एक बूंद डालने पर अनेक हजारों चींटियाँ मर गई हैं तब यदि मैं इस शारदिक तिक्त तुम्बे के बहुत मसालेवाले और स्नेह-तेल से व्याप्त सबका सब शाक डाल दूंगा तो अनेकों—बहुत से प्राणियों यावत् सत्वों के वध का कारण होगा ।

तं सेयं खलु ममेयं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं सयमेव आहारित्तए, ममं चेव एएणं सरीरएणं निज्जाउ त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहेत्ता मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, ससीसोवरियं कायं पमज्जेइ, तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं सव्वं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवइ ।

अतएव मेरे लिये यही उचित होगा कि इस शरदऋतु में उत्पन्न तिक्त-तुम्बे के अधिक मसालों वाले और स्नेह से युक्त शाक को स्वयं खा जाऊँ; यह मेरे इस शरीर के द्वारा ही जीर्ण नष्ट हो जाये, इस प्रकार का विचार किया, विचार करके मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, मस्तक सहित ऊपर के शरीर का प्रमार्जन किया और प्रमार्जन करके उस शारदिक तिक्त तुम्बे के बहुत से मसाले वाले और स्नेह से युक्त सबके सब शाक को बिल में सर्प प्रवेश की भाँति अपने शरीर के कोठे में डाल दिया ।

धम्मरुइस्स समाहिमरणं—

११. तए णं तस्स धम्मरुइस्स तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभार-

धर्मरुचि का समाधिमरण—

११. तत्पश्चात् उन धर्मरुचि अनगार के उस शरदऋतु में उत्पन्न

संभियं नेहावगाढं आहारियस्स समाणस्स मुहुत्तंतरेणं परिणम-माणंसि सरीरगंसि वेयणा पाउब्भूया— उज्जला-जाव-दुरहियासा।

बहुत से मसालों और स्नेह से युक्त कटुक तुम्बे के शाक को खाने के साथ ही एक मुहूर्त के अनन्तर अर्थात् थोड़ी सी देर में वेदना प्रादुर्भूत हुई, यह वेदना उत्कट-यावत्-दुस्सह थी।

तए णं से धम्मरुई अणगारे अथामे अबले अवीरिए अपुरि-सक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु आयारभंडगं एगंते ठवेइ, थंडिलं पडिलेहेइ, दब्भसंथारगं संथरेइ, दब्भसंथारगं दुरुहइ, पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

उस शाक को पेट में डालने के पश्चात् वे धर्मरुचि अनगार स्थाम (उठने-बैठने की शक्ति) से रहित, बलहीन, वीर्यरहित, पुरुषाकार पराक्रम से हीन हो गये, अब यह शरीर धारण करना अशक्य होता जा रहा है, ऐसा जानकर उन्होंने अपने आचार भाण्डों—संयम-साधना में सहायक वस्त्र पात्रादि को एकान्त में रख दिया, रखकर स्थंडिल भूमिभाग की प्रतिलेखना की, दर्भ का संस्तारक बिछाया, उस दर्भ संस्तारक पर आसीन हुए और पूर्व दिशा की ओर मुख करके पर्यंकासन से बैठकर दोनों हाथों को जोड़कर मस्तक पर आवर्तन करके अंजलिपूर्वक इस प्रकार कहा—

"नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं धम्मघोसाणं थेराणं मम धम्मायरियाणं धम्मोवएसगाणं। पुव्विं पि णं मए धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए सव्वे पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-जाव-परिग्गहे पच्चक्खाए, इयाणिं पि णं अहं तेसिं चेव भगवंताणं अंतियं सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि-जाव-परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवाए जहा खंदओ-जाव-चरिमेहिं उस्सासेहिं वोसिरामि" त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालगए।

"अरिहंतों यावत् सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो। मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक धर्मघोष स्थविर को नमस्कार हो। पहले भी मैंने धर्मघोष स्थविर के पास समस्त प्राणातिपात यावत् परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान किया था, इस समय भी मैं उन्हीं भगवन्तों के समीप समस्त प्राणातिपात-यावत्-परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ आदि जैसा स्कन्दक मुनि का वर्णन है, शेष वर्णन उसी प्रकार जानना चाहिए—यावत् चरम श्वासोच्छ्वास तक इस अपने शरीर का भी परित्याग करता हूँ।" ऐसा कहकर आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधि में तल्लीन होकर मरण को प्राप्त हुए।

साहूहिं धम्मरुइस्स गवेसणा—

१२. तए णं ते धम्मघोसा थेरा धम्मरुइं अणगारं चिरगयं जाणित्ता समणे निग्गंथे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी— एवं खलु देवाणुप्पिया! धम्मरुई अणगारे मासक्खमण,पारणगंसि सालइयस्स तित्तालाउयस्स बहुसंभारसंभियस्स नेहावगाढस्स निसि-रणट्ठयाए बहिया निग्गए चिरावेइ। तं गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेह।

साधुओं द्वारा धर्मरुचि की गवेषणा—

१२. तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने धर्मरुचि अनगार को बहुत देर का गया हुआ जानकर श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! धर्मरुचि अनगार को आज मासखमण के पारणे में प्राप्त शरदऋतु में उत्पन्न बहु संभार-संभृत—प्रचुर मसालों से युक्त और स्नेह-तेल से व्याप्त तिक्त तुम्बे के शाक को परठने के लिये गये काफी समय हो गया है। अतएव हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और धर्मरुचि अनगार की सब ओर चारों दिशाओं में मार्गणा-गवेषणा (तलाश) करो।

साहूहिं धम्मरुइस्स समाहिमरण-निवेदणं—

१३. तए णं ते समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं-जाव-तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता धम्मघोसाणं थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिले तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता धम्मरुइस्स अणगारस्स सरीरगं

श्रमणों द्वारा धर्मरुचि का समाधि-मरण निवेदन—

१३. तत्पश्चात् उन श्रमण निर्ग्रन्थों ने धर्मघोष स्थविर की—यावत्-तथैव कहकर आज्ञावचनों को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके वे धर्मघोष स्थविर के पास से बाहर निकले, बाहर निकलकर धर्मरुचि अनगार की सब ओर चारों दिशाओं में मार्गणा-गवेषणा करते हुए जहाँ स्थण्डिल भूमि थी, वहाँ आये,

निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो ! अकज्जमिति कट्टु धम्मरुइस्स अणगारस्स परिनिव्वाणवत्तियं काउस्सग्गं करेंति, धम्मरुइस्स आयारभंडगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव धम्मघोसा थेरा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता गमणागमणं पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एवं वयासी—

वहाँ आकर धर्मरुचि अनगार के निष्प्राण निश्चेष्ट और जीव-रहित शरीर को देखा देखकर 'हा हा ! अहो ! यह अकार्य हुआ अनिष्ट हुआ ऐसा कहकर धर्मरुचि अनगार के परिनिर्वाण प्रत्ययिक-कालधर्म को प्राप्त होने के निमित्त कायोत्सर्ग किया, धर्मरुचि के आचार भाण्डों (उपकरणों) को ग्रहण किया, ग्रहण करके जहाँ धर्मघोष स्थविर विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया और प्रतिक्रमण करके इस प्रकार कहा—

"एवं खलु अम्हे तुब्भं अंतियाओ पडिनिक्खमामो, सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स परिपेरंतेणं धम्मरुइस्स अणगारस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा जेणेव थंडिले तेणेव उवागच्छामो-जाव-इहं हव्वमागया। तं कालगए णं भंते ! धम्मरुई अणगारे। इमे से आयारभंडए ॥"

"हे आर्य ! आपका आदेश प्राप्त कर हम आपके पास से निकले; निकलकर सुभूमिभाग उद्यान की चारों दिशाओं में फिरते-फिरते धर्मरुचि अनगार की सब ओर भलीभाँति मार्गणा-गवेषणा करते हुए जहाँ स्थंडिल भूमि थी, वहाँ गये—यावत्-अभी यहीं से लौटकर आये हैं। सो हे भगवन् ! वे धर्मरुचि अनगार कालधर्म को प्राप्त हुए हैं। ये उनके आचार भांड हैं।"

धम्मरुइस्स अणुत्तरदेवत्तेण उववाओ नागसिरिगरहा य—

धर्मरुचि का अनुत्तर देव के रूप में उपपाद और नागश्री की गर्हा

१४. तए णं ते धम्मघोसा थेरा पुव्वगए उवओगं गच्छंति, समणे निग्गंथे निग्गंथीओ य सद्दावेंति एवं वयासी—

१४. तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर ने पूर्वगत उपयोग लगाया, उपयोग लगाकर श्रमण निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थियों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"एवं खलु अज्जो ! मम अंतेवासी धम्मरुई नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे-जाव-नागसिरीए माहणीए गिहं अणुपविट्ठे। तए णं सा नागसिरी माहणी-जाव-तं सालइयं तित्तालाउयं बहुसंभारसंभियं नेहावगाढं धम्मरुइस्स अणगारस्स पडिग्गहंसि सव्वमेव निसिरइ।

'हे आर्य ! इस प्रकार मेरा अंतेवासी धर्मरुचि नामक अनगार प्रकृति-स्वभाव से भद्र-यावत्-विनीत था और निरंतर मासखमण की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए—यावत्-नागश्री ब्राह्मणी के घर में गया था। तब उस नागश्री ब्राह्मणी ने—यावत्-वह शरदऋतु में उत्पन्न बहुत मसाले वाले तेल से व्याप्त तिक्त तुम्बे का शाक धर्मरुचि अनगार के पात्र में सबका सब उँडेल दिया।

तए णं से धम्मरुई अणगारे अहापज्जत्तमिति कट्टु नागसिरीए माहणीए गिहाओ पडिनिक्खमइ-जाव-समाहिपत्ते कालगए।

तत्पश्चात् वह धर्मरुचि अनगार क्षुधा-निवृत्ति के लिये पर्याप्त है—मानकर नागश्री ब्राह्मणी के घर से बाहर निकले—यावत्-समाधि में लीन होकर कालगत हुए—मरण को प्राप्त हुए।

से णं धम्मरुई अणगारे बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं-जाव-सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं धम्मरुइस्स वि देवस्स तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। से णं धम्मरुई देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

वह धर्मरुचि अनगार बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर और आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि में तल्लीन होकर काल-मास में काल करके ऊपर—यावत्-सर्वार्थसिद्धि महाविमान में देवरूप से उत्पन्न हुए हैं। वहाँ अजघन्य-अनुत्कृष्ट अर्थात् जघन्य उत्कृष्ट भेद से रहित एक ही समान तेतीस सागरोपम की आयु स्थिति होती है, वहाँ धर्मरुचि देव की भी तेतीस सागरोपम की स्थिति है। वह धर्मरुचि देव आयु क्षय, स्थिति क्षय और भव क्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगा यावत्-सम्पूर्ण दुःखों का अन्त करेगा।

१५. तं धिरत्थु णं अज्जो ! नागसिरीए माहणीए अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं तित्तालाउएणं बहुसंभारसंभिएणं नेहावगाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।"

तए णं समणा निग्गंथा धम्मघोसाणं थेराणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चंपाए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुहमहा-पहपहेसु बहुजणस्स एवमाइक्खंति एवं भासंति एवं पण्णवेंति एवं परूवेंति

—"धिरत्थु णं देवाणुप्पिया ! नागसिरीए-जाव-दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे सालइएणं तित्तालाउएणं बहुसंभारसंभिएणं नेहावगाढेणं अकाले चेव जीवियाओ ववरोविए।"

तए णं तेसिं समणाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ "धिरत्थु णं नागसिरीए माहणीए-जाव-जीवियाओ ववरोविए।"

नागसिरीए गिहनिक्कासणं—

१६. तए णं ते माहणा चंपाए नयरीए बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ता-जाव-मिसिमिसेमाणा जेणेव नागसिरी माहणी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता नागसिरिं माहणिं एवं वयासी—

"हंभो नागसिरी ! अपत्थियपत्थिए ! दुरंतपंतलक्खणे ! हीणपुण्णचाउद्दसे ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्तिपरिवज्जिए धिरत्थु णं तव अधन्नाए अपुण्णाए दूभगाए दूभगसत्ताए दूभगनिंबोलियाए, जाए णं तुमे तहारूवे साहू साहुरूवे धम्मरुई अणगारे मासखमणपारणगंसि सालइएणं तित्तालाउएणं-जाव-जीवियाओ ववरोविए।"

उच्चावयाहिं अक्कोसणाहिं अक्कोसंति, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेंति, उच्चावयाहिं निब्भंच्छणाहिं निब्भंच्छेंति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेंति, तज्जेंति तालेंति, तज्जित्ता तालित्ता सयाओ गिहाओ निच्छुभंति।

१५. हे आर्यो ! उस अधन्या पुण्यहीना अभागिनी निर्भागी सत्ववाली निम्बोली के समान अनादरणीय नागश्री ब्राह्मणी को धिक्कार है, जिसने तथारूप साधु, साधुरूप धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणे में शारदिक बहुसंभार संभृत और तेल से व्याप्त तिक्त तुम्बे का शाक देकर असमय में ही जीवन रहित कर दिया।

तत्पश्चात् धर्मघोष स्थविर से यह वृत्तांत सुनकर और समझकर उन निर्ग्रन्थ श्रमणों ने चम्पानगरी के शृंगाटकों त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों और राजमार्गों में जाकर बहुत से लोगों से इस प्रकार कहा, बोला, प्ररूपण किया, प्रतिपादन किया

—'हे देवानुप्रियो ! उस नागश्री को धिक्कार है—यावत्—निम्बोली के समान अनादरणीय को ! जिसने तथारूप साधु, साधुरूप धर्मरुचि अनगार को शरदऋतु में उत्पन्न बहुत से मसाले वाला और स्नेह-तेल से व्याप्त कड़वे तुम्बे का शाक देकर अकाल में ही जीवन से रहित कर दिया अर्थात् मार डाला।

तत्पश्चात् उन श्रमणों से इस वृत्तांत को सुनकर और समझकर बहुत से व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, बातचीत करने लगे, प्ररूपण करने लगे और प्रतिपादित करने लगे कि 'धिक्कार है—नागश्री ब्राह्मणी को—यावत् जिसने साधु को जीवन से विवर्जित कर दिया।

नागश्री का गृह निर्वासन

१६. तत्पश्चात् वे ब्राह्मण चम्पानगरी में बहुत से लोगों से यह वृत्तान्त सुनकर और समझकर कुपित हुए—यावत्—क्रोध से दांत मिसमिसाते हुए जहाँ नागश्री ब्राह्मणी थी, वहाँ आये और वहाँ आकर नागश्री ब्राह्मणी से इस प्रकार कहा—

'अरी नागश्री ! अप्रार्थित (मरण) की प्रार्थना करने वाली ! दुष्ट और कुलक्षणि ! निकृष्ट कृष्ण चतुर्दशी में जन्मी हुई ! श्री-ह्री ! धृति कीर्ति से परिवर्जित ! धिक्कार है तुझ अधन्या, पुण्य-हीना, अभागिनी, दुर्भागी सत्ववाली और निम्बोली के समान कटुक होने से अनादरणीय को; जो तूने तथारूप, साधुरूप, साधु धर्मरुचि अनगार को मासखमण के पारणे में शरदऋतु में उत्पन्न तिक्त तुम्बे के—यावत्-जीवन से विवर्जित कर दिया—मार डाला।"

इस प्रकार कहकर उन ब्राह्मणों ने ऊँचे नीचे आक्रोश भरे निन्दा वचनों से आक्रोश किया अर्थात् उसे फटकारा, गालियां दीं, ऊँचे-नीचे भर्त्सना भरे (तू नीच कुल की है आदि) वचनों से उसकी उद्धंसना-भर्त्सना की, ऊँचे-नीचे तिरस्कार-अपमान भरे वचनों (निकल जा हमारे घर से इत्यादि) को कहकर उसका तिरस्कार किया, ऊँचे-नीचे धमकी भरे वचनों (हमारे गहने-कपड़े उतार दे इत्यादि) से उसे धमकाया और हे पापिनी तुझे इस कुकर्म का फल भुगतना पड़ेगा इत्यादि वचनों से उसकी तर्जना की, थप्पड़ आदि मारकर उसे ताड़ना दी और इस प्रकार से तर्जित ताड़ित करके घर से बाहर निकाल दिया।

१७. तए णं सा नागसिरी सयाओ गिहाओ निच्छूढा समाणी चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणेणं हीलिज्जमाणी खिंसिज्जमाणी निंदिज्जमाणी गरहिज्जमाणी तज्जिज्जमाणी पव्वहिज्जमाणी धिक्कारिज्जमाणी थुक्कारिज्जमाणी कत्थइ ठाणं वा निलयं वा अलभमाणी दंडीखंड-निवसणा खंडमल्लय-खंडघडग-हत्थगया फुट्ट-हडाहड-सीसा मच्छिया-चडगरेणं अन्निज्जमाणमग्गा गेहंगेहेणं देहबलियाए वित्तिं कप्पेमाणी विहरइ।

१७. तत्पश्चात् अपने घर से निष्कासित वह नागश्री चम्पानगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों और राजमार्गों में बहुत से जनों द्वारा अवहेलना का पात्र होती हुई तिरस्कार निन्दा और गर्हा की जाती हुई, तर्जना की जाती हुए, व्यथित-पीड़ित की जाती, धिक्कारी जाती हुई, थूंकी जाती हुई और कहीं भी ठहरने के लिए स्थान एवं रहने के लिए आश्रय प्राप्त न करती हुई फटे-पुराने जीर्ण-शीर्ण चीथड़ों को लपेटे-उघाड़ी जैसी, भोजन के लिये सिकोरे के टुकड़े और पानी के लिये घड़े के टुकड़े को हाथ में लिये हुए, सिर पर जटाजूट जैसे अत्यन्त बिखरेबालों को धारण किये हुए मैली-कुचैली होने के कारण, जिसके चारों ओर मक्खियाँ भिनभिनाती रहती हैं, ऐसी वह नागश्री घर-घर से भीख माँगकर अपनी भूख मिटाते हुए इधर-उधर भटकने लगी।

नागसिरीए भवभमणं—

नागश्री का भवभ्रमण—

१८. तए णं तीसे नागसिरीए माहणीए तब्भवंसि चेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया। तं जहा—

सासे कासे जरे दाहे जोणिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुद्धसूले अकारए॥
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे॥१॥

१८. तत्पश्चात् उस नागश्री ब्राह्मणी को उसी भव में ही सोलह रोगातंक—भयंकर रोग उत्पन्न हो गये। जिनके नाम हैं—

१. श्वास, २. कास (खांसी), ३. ज्वर, ४. दाह, ५. योनिशूल, ६. भगंदर, ७. अर्श, ८. अजीर्ण, ९. नेत्रशूल, १०. शिरोवेदना, ११. अरुचि, १२. अक्षिवेदना, १३. कर्णवेदना, १४. कंडु (खुजली), १५. जलोदर और १६. कोढ़।

१९. तए णं सा नागसिरी माहणी सोलसेहिं रोगायंकेहिं अभिभूया समाणी अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा कालमासे कालं किच्चा छट्ठाए पुढवीए उक्कोसं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नरएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

१९. तत्पश्चात् वह नागश्री ब्राह्मणी इन सोलह रोगातंकों से अत्यन्त पीड़ित होती हुई, अतीव दुख से वशीभूत एवं शारीरिक और मानसिक व्यथाओं से व्यथित होती हुई कालमास में—मरणावसर प्राप्त—होने पर काल—मरण करके छठी पृथ्वी (नरकभूमि) में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप में उत्पन्न हुई,

सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववण्णा। तत्थ णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीससागरोवमट्ठिईएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

तत्पश्चात् उस नरक से निकलकर वह मत्स्य योनि में उत्पन्न हुई। वहाँ भी शस्त्र से वध की जाती हुई दाह वेदना की उत्पत्ति से कालमास में—काल करके नीचे सप्तम पृथ्वी (सातवें नरक) में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप में उत्पन्न हुई।

सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जइ। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसं तेत्तीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जइ। सा णं तओहिंतो उव्वट्टित्ता तच्चं पि मच्छेसु उववण्णा।

तदनन्तर पुनः दूसरी बार भी वह मत्स्य पर्याय में उत्पन्न हुई। वहाँ भी शस्त्र से विद्ध होकर और दाह वेदना से पीड़ित होकर कालमास में काल करके पुनः दूसरी बार भी नीचे सातवीं पृथ्वी में उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चंपि छट्ठाए पुढवीए उक्कोसं बावीस-सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर पुनः तीसरी बार भी वह मत्स्य पर्याय में उत्पन्न हुई और वहाँ भी शस्त्र से विद्ध होती हुई दाह वेदना से पीड़ित होकर कालमास में काल करके दूसरी बार पुनः छठवीं पृथ्वी में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

तओणंतरं उव्वट्टित्ता उरगेसु एवं जहा गोसाले तहा नेयव्वं-जाव-रयणप्पभाओ पुढवीओ उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववण्णा।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर उरग पर्याय में उत्पन्न हुई इत्यादि जैसा वर्णन गोशालक के विषय में किया गया है, वही सब वृत्तान्त यहाँ—समझना चाहिये—यावत्—रत्नप्रभा आदि पृथ्वियों में उत्पन्न होने के पश्चात् संज्ञी जीवों में उत्पन्न हुई।

तओ उव्वट्टित्ता असण्णीसु उववण्णा। तत्थ वि य णं सत्थवज्झा दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठिइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

वहाँ से निकलकर असंज्ञी जीवों में उत्पन्न हुई। वहाँ भी शस्त्र से विद्ध होकर दाह से पीड़ित होती हुई कालमास में काल करके पुनः दूसरी बार भी रत्नप्रभापृथ्वी में पल्योपम के असंख्यातवें भाग जितनी स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

तओ उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहयरविहाणाइं-जाव-अदुत्तरं च खरबायरपुढविकाइयत्ताए, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो।

वहाँ से निकलकर जो खेचर—आकाश में उड़ने वाली—पक्षियों की—योनियां हैं उनमें उत्पन्न हुई—यावत्—तत्पश्चात् खर (कठिन) बादर पृथ्वीकाय के रूप में अनेक लाख बार उत्पन्न हुई।

नागसिरीए सूमालिया भवो—

२०. सा णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया।

नागश्री का सुकुमालिका भव—

२०. तत्पश्चात् वह पृथ्वीकाय से निकलकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप—के भारतवर्ष में, चंपानगरी में सागरदत्त सार्थवाह की भद्रा नामक भार्या की कुक्षि में बालिका के रूप में उत्पन्न हुई।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारियं पयाया—सुकुमालकोमलियं गयतालुयसमाणं।

तदनन्तर उस भद्रा सार्थवाही ने परिपूर्ण नौ मास पूर्ण होने पर बालिका—का प्रसव किया—जो हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकुमाल और कोमल थी।

तए णं तीसे णं दारियाए निव्वत्तबारसाहियाए अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं एसा दारिया सुकुमालकोमलिया गयतालुयसमाणा, तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जं सुकुमालिया-सुकुमालिया।

इसके बाद उस बालिका के बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता-पिता ने यह इस प्रकार का गुणवाला और गुण निष्पन्न नाम रखा— क्योंकि हमारी यह बालिका हाथी के तालु के समान अत्यन्त सुकुमाल कोमल है, अतएव हमारी इस बालिका का नाम सुकुमालि का हो—सुकुमालिका हो।

तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति सूमालिय त्ति।

तब उस बालिका के माता-पिता ने उस बालिका का सुकुमालिका ऐसा नामकरण किया।

तए णं सा सूमालिया दारिया पंचधाईपरिग्गहिया तंजहा-खीरधाईए, मज्जणधाईए, मंडावणधाईए, खेल्लावणधाईए, अंकधाईए अंकाओ अंकं साहरिज्जमाणी रम्मे मणिकोट्टिमतले गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपगलया निवाय-निव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

तत्पश्चात् पांच धाय माताओं ने ग्रहण किया; यथा १—दूध पिलाने वाली धाय, २—स्नान कराने वाली धाय, ३—आभूषण पहनाने वाली धाय, ४—गोद में लेने वाली धाय, ५—खेलाने वाली धाय द्वारा और एक गोद से दूसरी गोद में ली जाती हुई वह सुकुमालिका बालिका जैसी मणियों से खचित प्रदेश वाली रमणीय पर्वत की गुफा में रही हुई चंपकलता— वायुविहीन प्रदेश में व्याघात रहित होकर बढ़ती है, उसी प्रकार सुखपूर्वक बढ़ने लगी।

सूमालियाए सागरेण सद्धिं विवाहो—

२१. तए णं सा सूमालिया दारिया उम्मुक्कबालभावा विण्णय-

सुकुमालिका का सागर के साथ विवाह—

२१. तत्पश्चात् वह सुकुमालिका बालिका बाल्यावस्था का

परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

अतिक्रमण कर संज्ञान अवस्था के प्राप्त होने पर—किशोरावस्था के प्राप्त होने पर यौवनावस्था के कारण रूप से, यौवन से और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली हो गई—सर्वांग सुन्दरी बन गई।

२२. तत्थ णं चंपाए नयरीए जिणदत्ते नामं सत्थवाहे—अड्ढे-जाव-अपरिभूए।

तस्स णं जिणदत्तस्स भद्दा भारिया—सूमाला इट्ठा माणुस्सए कामभोगे पच्चणुब्भवमाणा विहरइ।

२२. उसी चंपानगरी में जिनदत्त नामका एक सार्थवाह रहता था—जो धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत था—सर्वजन-मान्य था।

उस जिनदत्त की भद्रा नामक पत्नी थी—जो सुकोमल, इष्ट और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का भोग—आस्वादन—अनुभव करती हुई विचरती थी। उस जिनदत्त का पुत्र भद्रा भार्या का आत्मज सागर नामक लड़का था—जो हाथ पैरों से सुकोमल—यावत्—सुन्दर रूप सम्पन्न था।

२३. तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स अदूर-सामंतेणं वीईवयइ। इमं च णं सूमालिया दारिया ण्हाया चेडिया-चक्कवाल-संपरिवुडा उप्पिं आगासतलगंसि कणग-तिंदूसए कीलमाणी-कीलमाणी विहरइ।

तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं पासइ, पासित्ता सूमालियाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया? किं वा नामधेज्जं से?"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया! सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स धूया भद्दाए भारियाए अत्तया सूमालिया नामं दारिया—सुकुमालपाणिपाया-जाव-रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा।"

२३. तत्पश्चात् किसी एक समय वह जिनदत्त सार्थवाह अपने घर से निकला, निकलकर सागरदत्त सार्थवाह के घर के निकट से जा रहा था। इधर सुकुमालिका लड़की स्नानादि करके दासियों के समूह से घिरी हुई—अपने आवास गृह के ऊपर छत पर स्वर्ण की गेंद से क्रीड़ा करती हुई विचर रही थी।

तब जिनदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका कन्या को देखा, देखकर सुकुमालिका कन्या के रूप, यौवन और लावण्य से आश्चर्यान्वित होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार पूछा—

'हे—देवानुप्रियो! यह किसकी लड़की है और उसका क्या नाम है?

तब वे कौटुम्बिक पुरुष जिनदत्त सार्थवाह के इस कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट होकर दोनों हाथों को जोड़ शिर पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक इस प्रकार बोले—

'हे देवानुप्रिय! यह सागरदत्त सार्थवाह की पुत्री भद्राभार्या की आत्मजा सुकुमालिका नामक लड़की है—जो सुकुमाल हाथ पैर अवयवों वाली—यावत्—रूप यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट है।

२४. तए णं जिणदत्ते सत्थवाहे तेसिं कोडुंबियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाए मित्तनाइ-परिवुडे चंपाए मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागए।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतेत्ता आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी—"भण देवाणुप्पिया! किमागमणपओयणं?"

२४. तत्पश्चात् जिनदत्त सार्थवाह उन कौटुम्बिक पुरुषों के पास से इस अर्थ—को सुनकर जहाँ अपना आवास था, वहाँ चला आया, वहाँ आकर स्नान किया और मित्रों, जाति बंधुओं को साथ लेकर चंपानगरी के—मध्यभाग में से होते हुए जहाँ सागरदत्त का घर था, वहाँ आया।

तब उस सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह को आते हुए देखा, देखकर अपने आसन से उठा, उठकर जिनदत्त को आसन ग्रहण करने के लिये निमंत्रित किया, निमंत्रित करके विश्रान्त एवं विश्वस्त होने—अर्थात् कुछ विश्राम आराम लेने के पश्चात् सुख पूर्वक आसन पर बैठे हुए जिनदत्त से पूछा—हे देवानुप्रिय! कहिये, किस प्रयोजन से आज आगमन हुआ है—पधारे है?

तए णं से जिणदत्ते सागरदत्तं एवं वयासी—"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तव धूयं भद्दाए अत्तियं सूमालियं सागरस्स भारियत्ताए वरेमि। जइ णं जाणह देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो, ता दिज्जउ णं सूमालिया सागरदारगस्स। तए णं देवाणुप्पिया। भण किं दलयामो सुक्कं सूमालियाए ?"

तत्पश्चात् उस जिनदत्त ने सागरदत्त से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि आपकी पुत्री भद्रा की आत्मजा सुकुमालिका को सागरदत्त की भार्या के रूप में मंगनी करता हूँ। हे देवानुप्रिय ! यदि आप यह युक्त उचित समझें, पात्र समझें, श्लाघनीय समझें कि यह संयोग—समान है तो सुकुमालिका के लिये क्या शुल्क देवें ?'

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह ने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सूमालिया दारिया एगा एगजाया इट्ठा-जाव-मणामा-जाव-उंबरपुप्फं व दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तं नो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं। तं जइ णं देवाणुप्पिया। सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ, तो णं अहं सागरस्स सूमालियं दलयामि।"

'हे देवानुप्रिय ! बात ऐसी है कि सुकुमालिका पुत्री हमारी इकलौती सन्तान है एक ही उत्पन्न हुई है इसलिये हमें प्रिय है—यावत्—मणाम—यावत्—उदुम्बर पुष्प के समान (गूलर के फूल के समान) जिसका नाम सुनना ही दुर्लभ है तो फिर देखने की बात ही क्या है ? अतएव—हे देवानुप्रिय ! मैं क्षणमात्र के लिये भी सुकुमालिका पुत्री का वियोग नहीं चाहता। हे देवानुप्रिय ! यदि सागर पुत्र हमारा घर जमाई बन जावे तो मैं सागर को सुकुमालिका को दे दूंगा।"

२५. तए णं से जिणदत्ते सत्थवाहे सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरगं दारगं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

२५. तत्पश्चात् वह जिनदत्त सार्थवाह सागरदत्त सार्थवाह के इस प्रकार कहे जाने पर जहाँ अपना घर था, वहाँ आया, वहाँ आकर पुत्र को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"एवं खलु पुत्ता ! सागरदत्ते सत्थवाहे ममं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! सूमालिया दारिया—इट्ठा-जाव-मणामा-जाव-उंबरपुप्फं व दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तं नो खलु अहं इच्छामि सूमालियाए दारियाए खणमवि विप्पओगं। तं जइ णं सागरए दारए मम घरजामाउए भवइ, तो णं दलयामि।"

'हे पुत्र ! बात यह है कि सागरदत्त सार्थवाह ने मुझसे इस प्रकार कहा है हे देवानुप्रिय ! सुकुमालिका कन्या मुझे इष्ट प्रिय यावत् मणाम है यावत्—गूलर के फूल के समान नाम का सुनना ही जिसका दुर्लभ है तो फिर देखने की बात तो कहना ही क्या ? इसलिये मैं एक क्षण के लिये भी सुकुमालिका पुत्री का वियोग सहन नहीं कर सकता हूं। तब यदि सागरपुत्र घर जमाई बन जाये तो मैं अपनी लड़की दे सकता हूं।"

तए णं से सागरए दारए जिणदत्तेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए [संचिट्ठइ]।

तत्पश्चात् वह सागरपुत्र जिनदत्त सार्थवाह के ऐसा कहने पर मौन भाव से बैठा रहा।

२६. तए णं जिणदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्तनाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ,-जाव-सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता सागरं दारगं ण्हायं-जाव-सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं दुरुहावेइ, मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं परिवुडे सव्विड्ढीए सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव सागरदत्तस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सागरगं दारगं सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स उवणेइ।

२६. तत्पश्चात् जिनदत्त सार्थवाह ने किसी एक दिन शुभ तिथि-करण—नक्षत्र और मुहूर्त में विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन तैयार करवाया, तैयार करवा के मित्र-जाति—निजी स्वजन संबन्धी—परिजनों आदि को निमंत्रित किया—यावत्—सत्कार—सन्मान करके सागरपुत्र को स्नान कराया—यावत्—समस्त अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका—पालखी में चढ़ाया मित्रों, ज्ञाति बंधुओं, स्वजन-संबन्धियों और परिजनों को साथ लेकर समस्त ऋद्धि—वैभव पूर्वक अपने घर से निकला,—निकलकर चंपानगरी के मध्यातिमध्य भाग में से होते हुए जहाँ सागरदत्त का घर था, वहाँ आया, वहाँ आकर शिविका से नीचे उतरा, और उतरकर सागरपुत्र को सागरदत्त सार्थवाह के पास ले गया।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता-जाव-सम्माणेत्ता सागरं दारगं सूमालियाए दारियाए सद्धिं पट्टयं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं करावेइ, करावेत्ता सागरं दारयं सूमालियाए दारियाए पाणिं गेण्हावेइ।

तदनन्तर सागरदत्त सार्थवाह ने विपुल अशन—पान—खादिम—स्वादिम—भोजन बनवाया, भोजन बनवाकर मित्रों, ज्ञातिबंधुओं आदि का सम्मान करके सागरपुत्र को सुकुमालिका पुत्री के साथ पाट पर बिठलाया, बिठलाकर चांदी और सोने के कलशों से स्नान कराया, स्नान करवाकर अग्नि होम करवाया, होम करवा के सागरपुत्र से सुकुमालिका पुत्री का पाणिग्रहण करवाया अर्थात् विवाह विधि सम्पन्न करवाई।

सागरस्स पलायणं—

२७. तए णं सागरए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं पाणिफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए—असिपत्ते इ वा करपत्ते इ वा खुरपत्ते इ वा कलंबचीरियापत्ते इ वा सत्तिअग्गे इ वा कोंतग्गे इ वा तोमरग्गे इ वा भिंडिमालग्गे इ वा सूचिकलावए इ वा विच्छुयडंके इ वा कविकच्छू इ वा इंगाले इ वा मुम्मुरे इ वा अच्ची इ वा जाले इ वा अलाए इ वा सुद्धागणी इ वा

सागर का पलायन—

२७. उस समय सागरपुत्र सुकुमालिका पुत्री के हस्तस्पर्श का इस प्रकार का ऐसा अनुभव करने लगा कि मानो जैसे कोई तलवार का स्पर्श हो, अथवा करपत्र—करवत का स्पर्श हो, अथवा क्षुरपत्र—छुरा—उस्तरा का स्पर्श हो अथवा कदम्बचीरिकापत्र—छुरिका घास विशेष, जिसका अग्र भाग अत्यन्त तीव्र होता है—का स्पर्श हो अथवा शक्ति—त्रिशूल के अग्रभाग का स्पर्श हो अथवा कुन्ताग्र—भाले के अग्रभाग का स्पर्श हो अथवा तोमराग्र—बाण के अग्रभाग का स्पर्श हो अथवा भिंडिपालाग्र—शस्त्र विशेष के अग्रभाग का स्पर्श हो अथवा सूचीकलाप—सूई के समूह का स्पर्श हो अथवा बिच्छू के डंक का स्पर्श हो अथवा कपिकच्छू—करेंच का स्पर्श हो अथवा धधकती अग्नि का स्पर्श हो अथवा गरम-गरम राख का स्पर्श हो अथवा अग्नि ज्वाला का स्पर्श हो अथवा अग्निशिखाओं का स्पर्श हो अथवा अंगारों का स्पर्श हो अथवा शुद्धाग्नि—चमचमाती उज्ज्वल अग्नि का स्पर्श हो।

भवे एयारूवे ?

क्या वह स्पर्श इस प्रकार का था ?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराएणं चेव अकंततराएणं चेव अप्पियतरागं चेव अमणुण्णतरागं चेव अमणामतरागं चेव पाणिफासं संवेदेइ।

नहीं, इन पदार्थों का स्पर्श भी उस—हस्तस्पर्श के अनुभव का वर्णन करने में समर्थ नहीं है। इनसे भी अधिक अनिष्टतर, एकान्त रूप से अकांततर, अप्रियतर, अमनोज्ञतर, अमणामतर हस्तस्पर्श का वह अनुभव करने लगा।

तए णं से सागरए अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।

जिससे वह सागर अनिच्छापूर्वक विवश होकर उस हस्तस्पर्श का अनुभव करते हुए मुहूर्तमात्र—क्षणभर के लिये बैठा रहा।

तए णं सागरदत्ते सत्थवाहे सागरस्स अम्मापियरो मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह ने सागरपुत्र के माता-पिता, मित्रों, जाति-बंधुओं निजी स्वजन संबन्धियों और परिवार जनों को विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गन्ध, माला और अलंकारों से सत्कार सम्मान करके विदा किया।

२८. तए णं सागरए सूमालियाए सद्धिं जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं तलिमंसि निवज्जइ। तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए—असिपत्ते इ वा-जाव-एत्तो अमणामतरागं चेव अंगफासं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

२८. तत्पश्चात् सागर सुकुमालिका के साथ जहां वासगृह (शयनागार) था, वहां आया, वहां आकर सुकुमालिका पुत्री के साथ शैया पर सोया। तदनन्तर उस सागरपुत्र ने सुकुमालिका पुत्री के अंग स्पर्श का इस प्रकार का ऐसा अनुभव किया, जैसे कोई तलवार का स्पर्श हो अथवा—यावत् इससे भी अमणामतर—अमनोज्ञतर अंगस्पर्श का अनुभव—करता रहा।

तए णं से सागरए दारए सूमालियाए दारियाए अंगफासं असहमाणे अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।

२९. तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निवज्जइ।

तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपस्समाणी तलिमाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरस्स पासे णुवज्जइ।

तए णं से सागरदारए सूमालियाए दारियाए दोच्चं पि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ-जाव-अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।

३०. तए णं से सागरदारए सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता वासघरस्स दारं विहाडेइ, विहाडेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

सूमालियाए चिंता—

३१. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—गए णं से सागरए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।

३२. तए णं सा भद्दा सत्थवाही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! वहूवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि।"

तए णं सा दासचेडी भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता मुहधोवणियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव वासघरे उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वह सागरपुत्र सुकुमालिका पुत्री के अंगस्पर्श को सहन न करता हुआ विवश होकर मुहूर्तमात्र—कुछ क्षण तक वहाँ रहा।

२९. तत्पश्चात् वह सागरपुत्र सुकुमालिका पुत्री को सुखपूर्वक सोई हुई जानकर सुकुमालिका पुत्री के पास से उठा, उठकर जहाँ अपनी शैया थी, वहाँ आया और वहाँ आकर अपनी शैया पर सो गया।

इसके बाद वह पतिव्रता पति में अनुराग वाली सुकुमालिका पुत्री मुहूर्तमात्र—कुछ ही क्षणों में जागने पर पति को अपने पास न देखकर—शैया से उठी, उठकर जहाँ उसकी शैया थी वहाँ आई वहाँ आकर वह सागर के पास सो गई।

तत्पश्चात् उस सागरपुत्र ने सुकुमालिका पुत्री का पुनः दूसरी बार भी इसी प्रकार के ऐसे अंगस्पर्श का अनुभव किया... यावत्—अनिच्छा पूर्वक विवश होकर एक मुहूर्तमात्र के लिये वहाँ रुका रहा।

३०. तत्पश्चात् वह सागरपुत्र सुकुमालिका पुत्री को सुखपूर्वक सोई हुई जानकर शैया से उठा, उठकर उसने वासगृह (शयनकक्ष) का द्वार उघाड़ा, द्वार उघाड़कर वधस्थान से मुक्ति पाये हुए काक—आदि पक्षियों की तरह वह जिस ओर से आया था, उसी दिशा में भाग निकला—लौट गया।

सुकुमालिका की चिन्ता—

३१. तदनन्तर वह पतिव्रता पति में अनुरक्त सुकुमालिका पुत्री कुछ क्षणों के बाद जागी तो पति को अपने पास न देखकर शैया से उठी और उठकर सागरपुत्र की सब तरफ चारों दिशाओं में मार्गणा—गवेषणा करते हुए वासगृह के द्वार को खुला हुआ देखकर इस प्रकार बोली वह सागर तो चल दिया—भाग निकला और ऐसा जानकर अपहृत मनःसंकल्पवाली—निरुत्साहित उदासीन—होकर हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यान में डूब गई।

३२. तत्पश्चात् उस भद्रासार्थवाही ने कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रगट होने पर सहस्र रश्मि सूर्य के उदय होने और जाज्वल्यमान तेज के साथ दिन करके प्रकाशमान होने पर दास चेटिका को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिये! तुम जाओ और वर-वधू के लिये मुखधावन की सामग्री (दतौन-पानी आदि) ले आओ।

तत्पश्चात् उस दास चेटी ने भद्रा सार्थवाही के इस प्रकार कहे जाने पर इस बात को बहुत अच्छा कहकर अंगीकार किया, अंगीकार करके मुखधावन की सामग्री ली, सामग्री लेकर जहाँ वासगृह था, वहाँ आई, वहाँ आकर सुकुमालिका दारिका को निरुत्साहित होकर हथेली पर—मुँह को टिकाये आर्तध्यान में डूबे हुए देखा, देखकर इस प्रकार कहा—पूछा—

"किण्णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायसि ?"

'हे देवानुप्रिये ! क्या कारण है कि जो तुम भग्न मनोरथा होकर हथेलीपर मुंह को टिकाये आर्तध्यान में डूबी हुई हो ?'

तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडिं एवं वयासी—

तब उस सुकुमालिका दारिका ने दास चेटी से इस प्रकार कहा—

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! सागरए दारए ममं सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, वासघरदुवारं अवंगुणेइ अवंगुणेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं अहं तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेमि सागरस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासामि गए णं से सागरए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायामि।"

'हे देवानुप्रिये ! बात यह है कि सागरपुत्र मुझे सुखपूर्वक सोता हुआ जानकर मेरे पास से उठा, उठकर वासगृह का द्वार खोला, द्वार खोलकर—उघाड़कर बंध स्थान से मुक्त काक आदि पक्षियों की तरह जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में लौट गया है—तत्पश्चात् कुछ समय के बाद मैं जागी, तब पतिव्रता पति में अनुरक्त मैं पति को—पास में न देख शैया से उठी और सभी तरफ चारों दिशाओं में सागरदारक की मार्गणा-गवेषणा करते हुए मैंने वासगृह के द्वार को उघड़ा हुआ देखा, देखकर मैंने सोचा कि सागर चला गया, इसी कारण—मैं भग्नमनोरथ वाली होकर हथेली पर मुंह को टिकाये आर्तध्यान में डूबी हुई हूं।"

तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ।

तत्पश्चात् वह दास चेटी सुकुमालिका दारिका के इस—अर्थ—वृत्तान्त को सुनकर और समझकर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था वहां आई, वहां आकर उसने सागरदत्त से यह वृत्तान्त निवेदन किया।

सागरदत्तेण जिणदत्तस्स उवालंभणं—

सागरदत्त द्वारा जिनदत्त को उपालंभ

३३. तए णं से सागरदत्ते दासचेडीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे जेणेव जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—

"किण्णं देवाणुप्पिया ! एयं जुत्तं वा पत्तं वा कुलाणुरूवं वा कुलसरिसं वा जण्णं सागरए दारए सूमालियं दारियं अदिट्ठदोसवडियं पइव्वयं विप्पजहाय इहमागए ?" बहूहिं खिज्जणियाहि य रुंटणियाहि य उवालभइ।

३३. तत्पश्चात् दास चेटी से इस वृत्तान्त को सुन और समझकर सागरदत्त कुपित—यावत्—दांतों को मिसमिसाते हुए जहाँ जिनदत्त सार्थवाह का घर था, वहाँ आया, वहाँ आकर जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! क्या यह योग्य है ? उचित है ? कुल के अनुरूप है ? कुल के सदृश है ? कि जो सागर दारक जिसका कोई दोष नहीं, देखा गया है और जो पतिव्रता है ऐसी सुकुमालिका दारिका को छोड़कर यहाँ आ गया है ? इस प्रकार अनेक खेद पूर्ण वचनों से और रोते हुए उसने उपालंभ-उलाहना दिया।

जणओवरोहे वि सागरस्स सूमालियासहवासनिसेहो—

जनापवाद होने पर भी सागर का सुकुमालिका-सहवास का निषेध—

३४. तए णं जिणदत्ते सागरदत्तस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरयं दारयं एवं वयासी—दुट्ठु णं पुत्ता ! तुमे कयं सागरदत्तस्स गिहाओ इहं हव्वमागच्छंतेणं। तं गच्छह णं तुमं पुत्ता ! एवमवि गए सागरदत्तस्स गिहे।

३४. तत्पश्चात् जिनदत्त सागरदत्त सार्थवाह के वृत्तान्त—उपालंभ को सुनकर जहाँ सागर था, वहाँ आया, वहाँ आकर सागरदारक से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! तुमने यह बुरा किया जो सागरदत्त के घर से एकदम अकस्मात् यहाँ चले आये। अतएव हे पुत्र ! ऐसा होने पर भी अब तुम वापस सागरदत्त के घर चले जाओ।

तए णं से सागरए दारए जिणदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—

तब उस सागर दारक ने जिनदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—

"अवि याइं अहं ताओ ! गिरिपडणं वा तरुपडणं वा मरुप्पवायं वा जलप्पवेसं वा जलणप्पवेसं वा विसभक्खणं वा सत्थोवाडणं वा वेहाणसं वा गिद्धपट्ठं वा पव्वज्जं वा विदेसगमणं वा अब्भुगच्छेज्जामि, नो खलु अहं सागरदत्तस्स गिहं गच्छेज्जामि।"

सूमालियाए दमगेण सद्धिं पुणव्विवाहो—

३५. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कुड्डंतरियाए सागरस्स एयमट्ठं निसामेइ, निसामेत्ता लज्जिए विलीए विड्डे जिणदत्तस्स सत्थवाहस्स गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुकुमालियं दारियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—

"किण्णं तव पुत्ता ! सागरएणं दारएणं ? अहं णं तुमं तस्स दाहामि, जस्स णं तुमं इट्ठा-जाव-मणामा भविस्ससि" त्ति सूमालियं दारियं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता पडिविसज्जेइ।

३६. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे अण्णया उप्पिं आगासतलगंसि सुहनिसण्णे रायमग्गं आलोएमाणे-आलोएमाणे चिट्ठइ।

तए णं से सागरदत्ते एगं महं दमगपुरिसं पासइ—दंडिखंड-निवसणं खंडमल्लग-खंडघडग-हत्थगयं फुट्ट-हडाहड-सीसं मच्छिया-सहस्सेहिं अन्निज्जमाणमग्गं।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! एयं दमगपुरिसं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पलोभेह, गिहं अणुप्पवेसेह, अणुप्पवेसेत्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च से एगंते एडेह, एडेत्ता अलंकारियकम्मं करेह, ण्हायं कयबलिकम्मं कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं करेह, करेत्ता मणुण्णं असण-पाण-खाइम-साइमं भोयावेह, भोयावेत्ता मम अंतियं उवणेह।"

३७. तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव से दमगपुरिसे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं दमगं असण-पाण-खाइम-साइमेणं उवप्पलोभेंति, उवप्पलोभेत्ता सयं गिहं

'हे तात ! आपकी आज्ञा से मुझे पर्वत से गिरना, वृक्ष से गिरना, मरुप्रदेश में जाना, जल में डूब जाना, अग्नि में प्रवेश करना, शस्त्र से शरीर का विदारण कर लेना, फांसी लगाकर मर जाना, गृद्ध पृष्ठमरण—स्वीकार है, इसी प्रकार दीक्षा ले लेना अथवा परदेश में जाना स्वीकार कर लूंगा किन्तु निश्चय ही मैं सागरदत्त के घर नहीं जाऊंगा।"

सुकुमालिका का एक दरिद्र भिखारी के साथ पुनर्विवाह—

३५. तब दीवार की ओट में खड़े हुए सागरदत्त सार्थवाह ने सागर के इस कथन को सुना, सुनकर लज्जित लोकापवाद से शर्मिन्दा होता हुआ वह जिनदत्त सार्थवाह के घर से बाहर आया, बाहर निकलकर जहाँ अपना घर था, वहाँ आया और आकर सुकुमालिका पुत्री को बुलाया, बुलाकर गोदी में बैठाया, बैठाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे पुत्री ! सागर दारक ने तुझे त्याग दिया है तो क्या हो गया ? अब मैं तुम्हें उस पुरुष को दूंगा जिसको तुम इष्ट यावत् मणाम—मनोज्ञ होगी'—इस प्रकार कहकर सुकुमालिका दारिका को इष्ट—यावत्—प्रिय वाणी से आश्वासन दिया—आश्वासन देकर उसे विदा किया।

३६. तत्पश्चात् किसी एक समय ऊपर भवन की छत पर सुखपूर्वक बैठा हुआ सागरदत्त सार्थवाह बार-बार राजमार्ग को देख रहा था।

तब उस—सागरदत्त ने एक अत्यन्त निर्धन पुरुष को देखा, जो जीर्ण शीर्ण—चिथड़ों को पहने हुए था और जिसके हाथ में सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा था, जिसके सिर के बाल जटा-जूट से बिखरे हुए थे और मैला कुचैला तो इतना था कि चारों ओर हजारों मक्खियां भिनभिना रही थीं।

तत्पश्चात् उस सागरदत्त सार्थवाह ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा-

'हे देवानुप्रिय ! तुम इस निर्धन पुरुष को विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन द्वारा प्रलोभित करो, प्रलोभित करके घर के अन्दर लाओ, अन्दर लाकर सिकोरे का टुकड़ा और घड़े का टुकड़ा एकान्त में एक ओर फेंक दो, फेंककर अलंकारिक कर्म (हजामत आदि) कराओ और फिर स्नान करवाकर, बलिकर्म करवाकर, कौतुक—मंगल प्रायश्चित्त आदि करवाकर सर्व अलंकारों से विभूषित करो, विभूषित करके मनोज्ञ अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन कराओ और भोजन कराने के बाद मेरे पास लाना।

३७. तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—आज्ञा अंगीकार की, अंगीकार करके जहाँ वह भिखारी पुरुष था, वहाँ गये, वहाँ जाकर उस भिखारी को अशन, पान, खादिम स्वादिम

अणुप्पवेसेत्ता तं खंडमल्लगं खंडघडगं च तस्स दमग-पुरिसस्स एगंते एडेंति।

तए णं से दमगे तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एडिज्जमाणंसि महया-महया सद्देणं आरसइ।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे तस्स दमगपुरिसस्स तं महया-महया आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी--"किन्नं देवाणुप्पिया! एस दमगपुरिसे महया-महया सद्देणं आरसइ?"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा एवं वयंति—"एस णं सामी! तंसि खंडमल्लगंसि खंडघडगंसि य एडिज्जमाणंसि महया-महया सद्देणं आरसइ।"

३८. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे ते कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी —"मा णं तुब्भे देवाणुप्पिया! एयस्स दमगस्स तं खंडमल्लगं खंडघडगं च एगंते एडेह, पासे से ठवेह जहा अपत्तियं न भवइ।"

ते वि तहेव ठवेंति, ठवेत्ता तस्स दमगस्स अलंकारियकम्मं करेंति, करेत्ता सयपागसहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगेंति, अब्भंगिए समाणे सुरभिणा गंधवट्टएणं गायं उव्वट्टेंति, उव्वट्टेत्ता उसिणोदग-गंधोदएणं ण्हाणेंति, सीओदगेणं ण्हाणेंति, पम्हल-सुकुमालाइए गंध-कासाईए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता हंसलक्खणं पडगसाडगं परिहेंति, सव्वालंकारविभूसियं करेंति, विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं भोयावेंति, भोयावेत्ता सागरदत्तस्स उवणेंति।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे सूमालियं दारियं ण्हायं-जाव-सव्वालंकारविभूसियं करेत्ता तं दमगपुरिसं एवं वयासी---

"एस णं देवाणुप्पिया! मम धूया इट्ठा-जाव-मणामा। एयं णं अहं तव भारियत्ताए दलयामि, भद्दियाए भद्दओ भवेज्जासि।"

दमगस्स विपलायणं—

३६. तए णं से दमगपुरिसे सागरदत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडि-सुणेत्ता सूमालियाए दारियाए सद्धिं वासघरं अणुपविसइ सूमा-लियाए दारियाए सद्धिं तलिमंसि निवज्जइ।

भोजन का प्रलोभन दिया, प्रलोभन देकर उसे अपने घर पर लाये, घर पर लाकर उस भिखारी के सिकोरे के टुकड़े और घड़े के ठीकरे को एकान्त स्थान में एक तरफ डाल दिया।

तब वह भिखारी अपने सिकोरे के टुकड़े और ठीकरे को एक ओर डालते देखकर जोर-जोर से आवाज करके रोने-चिल्लाने लगा।

तत्पश्चात् उस सागरदत्त सार्थवाह ने उस भिखारी के जोर-जोर से ऊँचे स्वर में रोने-चिल्लाने को सुन और समझकर कौटुम्बिक पुरुषों से पूछा— 'हे देवानुप्रियो! यह भिखारी पुरुष जोर-जोर से क्यों रो रहा है, चिल्ला रहा है?

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! यह अपने फूटे सिकोरे और घड़े के ठीकरे को एकान्त स्थान में एक ओर डालते देखकर जोर-जोर से चिल्ला रहा है।'

३८. तब उस सागरदत्त सार्थवाह ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम उस भिखारी के फूटे सिकोरे और घड़े के ठीकरे को एकान्त में मत डालो, उसके पास रखदो, जिससे उसे अप्रतीति—अविश्वास न हो।'

यह सुनकर उन्होंने उन ठीकरों को उसके पास रख दिया, ठीकरों को उसके पास रखकर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उस भिखारी का अलंकार कर्म (हजामत आदि) किया, अलंकार कर्म करके शतपाक सहस्रपाक तेल से अभ्यंगन-मर्दन, मालिश—किया, अभ्यंगन हो जाने के बाद—सुवासित गंध द्रव्यों के उबटन से शरीर का उबटन किया, उबटन करके उष्णोदक, गंधोदक और शीतोदक से स्नान कराया और फिर पद्म के समान सुकोमल गंधकाषाय वस्त्र से शरीर को पोंछा, शरीर को पोंछकर हंस-लक्षण—हंस जैसा श्वेतपट्टशाटक क्षौम-वस्त्र पहनाया, सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप चारों प्रकार का भोजन कराया और फिर भोजन कराने के बाद वे उसे सागरदत्त के समीप ले गये।

तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह ने सुकुमालिका दारिका को स्नान करवाकर—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित करके उस भिखारी पुरुष से इस प्रकार कहा

'हे देवानुप्रिय! यह मेरी पुत्री मुझे इष्ट-प्रिय—यावत्—मणाम—मनोज्ञ है। इसको मैं तुम्हारी भार्या के रूप में देता हूं जिससे तुम भी इस कल्याणरूपा के कारण भाग्यशाली हो जाओगे।'

द्रमक (दरिद्र भिखारी) का विपलायन—

३६. तत्पश्चात् उस द्रमक (भिखारी) पुरुष ने सागरदत्त की बात को स्वीकार किया और स्वीकार करके सुकुमालिका दारिका के साथ वासगृह में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके सुकुमालिका दारिका के साथ एक शैया पर सोया।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए इमेयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ, से जहानामए– असिपत्ते इ वा जाव-एत्तो अमणामतरागं चेव अंगफासं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् उस निर्धन-दरिद्र पुरुष ने सुकुमालिका के अंग-स्पर्श का इस प्रकार का अनुभव किया कि जैसे कोई तलवार हो अथवा—यावत्—उससे भी अमनोज्ञतर अंगस्पर्श को अनुभव करता रहा।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए दारियाए अंगफासं असहमाणे अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।

तदनन्तर वह द्रमकपुरुष सुकुमालिका दारिका के उस अंगस्पर्श को सहन न करता हुआ विवश होकर कुछ क्षणों के लिये वहाँ पड़ा रहा।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सूमालियाए दारियाए पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव सए सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निवज्जइ।

इसके बाद वह द्रमक पुरुष सुकुमालिका दारिका को सुखपूर्वक सोई हुई जानकर सुकुमालिका दारिका के पास से उठा और उठकर जहाँ अपनी शैया थी, वहाँ आया, आकर शैया पर सो गया।

४०. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी पइव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपस्समाणी तलिमाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव से सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दमगपुरिसस्स पासे णुवज्जइ।

४०. उसके बाद वह पतिव्रता और पति में अनुरक्त सुकुमालिका दारिका कुछ समय के बाद जागने पर पति को अपने पास न देखकर शैया से उठी, शैया से उठकर जहाँ उसकी शैया थी; वहाँ आई और वहाँ आकर उस द्रमक पुरुष के पास सो गई।

तए णं से दमगपुरिसे सूमालियाए दारियाए दोच्चंपि इमं एयारूवं अंगफासं पडिसंवेदेइ-जाव-अकामए अवसवसे मुहुत्तमेत्तं संचिट्ठइ।

तत्पश्चात् उस दरिद्र पुरुष ने सुकुमालिका दारिका का दुबारा भी यह और इस प्रकार का अंगस्पर्श का अनुभव किया यावत्—विवश होकर एक मुहूर्त भर तक वैसा ही पड़ा रहा।

४१. तए णं से दमगपुरिसे सूमालियं दारियं सुहपसुत्तं जाणित्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता वासघराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता खंडमल्लगं खंडघडगं च गहाय मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

४१. तत्पश्चात् वह द्रमक पुरुष सुकुमालिका पुत्री को सुखपूर्वक सोई हुई जानकर शैया से उठा और उठकर वासगृह से निकला, निकलकर खंडमल्लक—फूटा हुआ भिक्षापात्र और घड़े के ठीकरे को लेकर वध स्थल से अथवा वधिक के हाथ से छूटे हुए काक आदि पक्षियों की तरह जिस ओर से आया था उसी ओर निकल भागा।

सूमालियाए पुणो चिंता—

४२. तए णं सा सूमालिया दारिया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेइ, दमगपुरिसस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'गए णं से दमगपुरिसे' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।

सुकुमालिका को पुनः चिन्ता—

४२. तत्पश्चात् पतिव्रता और पति में अनुरक्त वह सुकुमालिका कुछ समय के बाद जब जागी तो पति को अपने पास न देखकर शैया से उठी, उठकर द्रमक पुरुष की सब तरफ चारों दिशाओं में मार्गणा—करते-करते उसने वासगृह के द्वार को उघड़ा हुआ देखा,—द्वार को खुला हुआ देखकर इस प्रकार बोली— वह द्रमक पुरुष तो चला गया और ऐसा समझकर भग्न मनोरथ वाली होकर हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यान में डूब गई।

४३. तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी— गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए ! बहूवरस्स मुहधोवणियं उवणेहि।

४३. तत्पश्चात् उस भद्रा ने कल रात्रि को प्रभात रूप में बदलने पर और सहस्ररश्मि सूर्य के उदित होने पर और जाज्वल्यमान दिनकर के प्रकाशमान होने पर दास चेटिका— दासी को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम जाओ और वर-वधू के लिये मुखधावन की सामग्री ले जाओ।'

तए णं सा दासचेडी भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ता समाणी एयमट्ठं तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता मुहधोवणियं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं

तत्पश्चात् उस दास चेटी ने भद्रासार्थवाही के इस प्रकार कहने पर बहुत अच्छा कहकर इस बात को अंगीकार किया, अंगीकार— स्वीकार करके मुखधावन की सामग्री ग्रहण की, ग्रहण

ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"किण्णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि ?"

तए णं सा सूमालिया दारिया तं दासचेडिं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! दमगपुरिसे ममं सुहपसुत्तं जाणित्ता मम पासाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता वासघरदुवारं अवंगुणेइ, अवंगुणेत्ता मारामुक्के विव काए जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं हं तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा पतिव्वया पइमणुरत्ता पइं पासे अपासमाणी सयणिज्जाओ उट्ठेमि, दमगपुरिसस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणी-करेमाणी वासघरस्स दारं विहाडियं पासामि, पासित्ता गए णं से दमगपुरिसे त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायामि।"

तए णं सा दासचेडी सूमालियाए दारियाए एयमट्ठं सोच्चा जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सागरदत्तस्स एयमट्ठं निवेदेइ।

सूमालियाए दाणसाला निम्माणं—

४४. तए णं से सागरदत्ते तहेव संभंते जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सूमालियं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता एवं वयासी—

"अहो णं तुमं पुत्ता ! पुरापोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं कडाणं पावाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणी विहरसि। तं मा णं तुमं पुत्ता ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि। तुमं णं पुत्ता ! मम महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य परिभाएमाणी विहराहि।"

तए णं सा सूमालिया दारिया एयमट्ठं पडिसुणइ, पडिसुणेत्ता कल्लाकल्लिं महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य परिभाएमाणी विहरइ।

करके जहाँ वासगृह (शयनागार) था वहाँ पहुँची, वहाँ पहुँचकर सुकुमालिका दारिका को उदासीन होकर हथेली पर मुँह को टिकाये आर्तध्यान में डूबा हुआ देखा, देखकर इस प्रकार बोली—

'हे देवानुप्रिये ! किस कारण भग्न मनोरथा होकर हथेली पर मुँह को टिकाये आर्तध्यान में मग्न बैठी हो ?

तब उस सुकुमालिका दारिका ने उस दासचेटी से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिये ! बात यह है कि द्रमक पुरुष मुझे सुखपूर्वक सोया हुआ जानकर मेरे पास से उठा, उठकर वासगृह का द्वार खोला, द्वार खोलकर भारमुक्त काक पक्षी की तरह जिस ओर से आया था, उसी ओर भाग गया। तत्पश्चात् पतिव्रता पत्यनुरागी मैं थोड़ी देर बाद जागी तो पति को पास में न देखकर शैया से उठी और उस द्रमक पुरुष की सब तरफ चारों दिशाओं में मार्गणा—गवेषणा करते-करते—वासगृह के द्वार को उघड़ा देखा, देखकर मैंने सोचा—भाग गया वह द्रमक पुरुष, इसलिये भग्न मनोरथा होकर हथेली पर मुँह को टिकाये आर्तध्यान में मग्न होकर मैं बैठी हूँ।"

तत्पश्चात् वह दास चेटिका सुकुमालिका दारिका की इस बात को सुनकर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ आई और वहाँ आकर सागरदत्त से यह वृत्तान्त निवेदन किया।

सुकुमालिका के लिये दानशाला का निर्माण—

४४. तत्पश्चात् वह सागरदत्त उसी प्रकार (पूर्ववत्) संभ्रान्त होकर जहाँ वासगृह था, वहाँ आया; वहाँ आकर सुकुमालिका दारिका को गोद में बैठाया, गोद में बैठाकर उससे इस प्रकार कहा

'हे पुत्री ! तू पूर्वकृत दुष्पराक्रांत (—बिना भोगे नहीं छूटने वाले) पाप कर्मों के अशुभफल को भोग रही है। इसलिये हे पुत्री ! तू भग्नमनोरथा होकर—हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यान में मग्न न हो। हे बेटी ! तुम मेरी भोजनशाला में विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाओ और तैयार करवाकर बहुत से श्रमणों, माहणों, अतिथियों, कृपणों और भिखारियों को देती हुई, दिलाती हुई और बांटती हुई विचरण करो।

तब उस सुकुमालिका दारिका ने इस बात को स्वीकार किया, स्वीकार करके प्रतिदिन रसोई घर में विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम तैयार करवाती और तैयार करवा के बहुत से श्रमण, माहण, अतिथि, कृपण और भिखारियों को देती हुई, दिलाती हुई, बांटती हुई विचरने लगी।

अज्जा-संघाडगस्स भिक्खायरियाए सागरदत्तगिहागमणं—

४५. तेणं कालेणं तेणं समएणं गोवालियाओ अज्जाओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ जेणेव चंपा नयरी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।

तए णं तासिं गोवालियाणं अज्जाणं एगे संघाडए जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोवालियाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए चंपाए नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेह।"

तए णं ताओ अज्जाओ गोवालियाहिं अज्जाहिं अब्भणुण्णायाओ समाणीओ भिक्खायरियं अडमाणीओ सागरदत्तस्स गिहं अणुप्पविट्ठाओ।

सूमालियाए सागरपसायोवाय-पुच्छा—

४६. तए णं सूमालिया ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अज्जाओ! अहं सागरस्स अणिट्ठा-जाव-अमणामा! नेच्छइ णं सागरए दारए मम नामं गोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा? जस्स-जस्स वि य णं देज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा-जाव-अमणामा भवामि।

तुब्भे य णं अज्जाओ! बहुनायाओ बहुसिक्खियाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडह, बहूणं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईणं गिहाइं अणुपविसह।

तं अत्थि याइं भे अज्जाओ! केइ कहिंचि चुण्णजोए वा मंतजोगे वा कम्मणजोए व कम्मजोए वा हियउड्डावणे वा काउड्डावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूइकम्मे वा मूले वा कंदे वा छल्ली वल्ली सिलिया वा गुलिया वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे, जेणं अहं सागरस्स दारगस्स इट्ठा कंता-

आर्या संघाटक का भिक्षाचर्यार्थ सागरदत्त के गृह में आगमन—

४५. उस काल और उस समय में गोपालिका नामक बहुश्रुत आर्या का बहुत-सी शिष्याओं के परिवार के साथ क्रमानुक्रम से ग्रामानुग्राम में विचरण करते हुए जहाँ चंपानगरी थी, वहाँ आगमन हुआ। वहाँ आकर यथा प्रतिरूप अवग्रहों को ग्रहण किया, ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगीं।

तत्पश्चात् उन गोपालिका आर्या का एक सिंघाड़ा जहाँ गोपालिका आर्या थीं, वहाँ आया, आकर गोपालिका आर्या को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमन करके इस प्रकार कहा—

'आपकी आज्ञा प्राप्त करके हम चंपानगरी के ऊंच—नीच—मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या से परिभ्रमण करना चाहते हैं'।

'हे देवानुप्रियो! जैसा अनुकूल प्रतीत हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो'।

तत्पश्चात् वे आर्यायें गोपालिका आर्या से आज्ञा प्राप्त करके भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करती हुई सागरदत्त के घर में प्रविष्ट हुई।

सुकुमालिका द्वारा सागर-प्रसादोपाय पृच्छा—

४६. तत्पश्चात् सुकुमालिका ने उन आर्याओं को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट होती हुई आसन से उठी, वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम आहार से प्रतिलाभित किया; प्रतिलाभित करके इस प्रकार कहा—

'हे आर्याओ! बात यह है कि मैं सागर के लिये अनिष्ट—अप्रिय हूं यावत्—अमणाम—अमनोज्ञ हूं। सागरपुत्र मेरा नाम और गोत्र भी नहीं सुनना चाहता है तो फिर दर्शन या परिभोग की बात ही कहाँ रही? जिस-जिस को भी मैं दी गई, उसी-उसी को भी अनिष्ट—यावत्—अमणाम हुई हूं।'

हे आर्याओ! आप तो बहुत ज्ञानवाली हैं—बहुत अनुभवी हैं, बहुत पढ़ी हुई हैं, आप तो बहुत से सैंकड़ों ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पट्टन—पत्तन, आश्रम, निगम, संबाह और सन्निवेशों में परिभ्रमण करती हैं, बहुत से राजा ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक इभ्य श्रेष्ठी, सेनापति सार्थवाह आदि के घरों में प्रवेश करती हैं।

हे आर्याओ! इसका कोई जानकार है? कहीं पर चूर्णयोग अथवा मंत्रयोग अथवा उच्चाटन संमोहन, योग अथवा अनुष्ठान अथवा हृदयाकर्षक योग अथवा शरीराकर्षण योग, अथवा अंतर-मंतर करने वाला, अथवा वशीकरण योग अथवा कौतुककर्म अथवा भूतिकर्म अथवा मूलकन्द, छाल, लता, शिलिका-तृण

जाव-मणामा-भवेज्जामि ?"

अज्जा-संघाडगेण धम्मोवएसो—

४७. तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियाए एवं वुत्ताओ समणीओ दोवि कण्णे ठएंति, ठएत्ता सूमालियं वयासी—

"अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ-जाव-गुत्तबंभचारिणीओ नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पगारं कण्णेहिं वि निसामित्तए, किमंग पुण उवदंसित्तए वा आयरित्तए वा अम्हे णं तव देवाणुप्पिए ! विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहिज्जामो ।"

तए णं सा सूमालिया ताओ एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए ।"

तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियाए विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेंति ।

सूमालियाए समणोवासियत्तं—

४८. तए णं सा सूमालिया धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठा एवं वयासी—

"सद्दहामि णं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं-जाव-से जहेयं तुब्भे वयह । इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिए !"

तए णं सा सूमालिया तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं सा सूमालिया समणोवासिया जाया-जाव-समणे निग्गंथे फासुएणं एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ ।

सूमालियाए पव्वज्जापडिवज्जणं—

४९. तए णं तीसे सूमालियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं सागरस्स पुव्विं इट्ठा-जाव-मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा-जाव-अमणामा । निच्छइ णं सागरए

आदि गुटिका, औषधि अथवा भेषज पूर्व में प्राप्त की हो, देखी सुनी हो, जिससे मैं सागरदारक को इष्ट, कांत यावत्—मणाम हो जाऊँ ।'

आर्या संघाटक द्वारा धर्मोपदेश—

४७. इसके बाद उन आर्याओं ने सुकुमालिका के इस कथन को सुनकर अपने दोनों कान आच्छादित कर लिये—कानों को अंगुली डालकर बंद कर लिया और कान बंद करके सुकुमालिका से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिये ! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणियाँ को इस प्रकार के शब्दों को कान से भी सुनना कल्पता नहीं है तो फिर— उपदेश देने या प्रवृत्ति करने की बात तो दूर ही रही, इसलिये हे देवानुप्रिये ! हम तुम्हें केवली प्ररूपित विचित्र (विविध प्रकार के) धर्म का व्याख्यान करते हैं ।

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका ने आर्याओं से इस प्रकार कहा—'हे आर्याओ ! मैं आपसे केवली प्ररूपित धर्म का श्रवण करना चाहती हूँ ।'

तब उन आर्याओं ने सुकुमालिका को केवली प्रज्ञप्त विचित्र धर्म का कथन किया—उपदेश दिया ।

सुकुमालिका का श्रमणोपासकत्व—

४८. तत्पश्चात् वह सुकुमालिका धर्म श्रवणकर और अवधारित कर हर्षित होते हुए इस प्रकार बोली—

'हे आर्याओ ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करती हूँ यावत्—वह वैसा ही है, जैसा आपने प्ररूपित किया है । मैं आपके पास पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के गृहस्थधर्म—श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहती हूँ ।'

'हे देवानुप्रिये ! जैसा उचित प्रतीत हो, वैसा करो ।

तत्पश्चात् उस सुकुमालिका ने उन आर्याओं के पास पांच अणुव्रत यावत्—श्रावकधर्म को स्वीकार किया, उसके बाद आर्याओं को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके विदा किया ।

तत्पश्चात् वह सुकुमालिका श्रमणोपासिका हो गई यावत्—श्रमण—निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खाद्य स्वाद्य, रूप आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादपुंछण, औषध भैषज, प्रातिहारिक वापस लौटाने योग्य पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विचरने लगी ।

सुकुमालिका द्वारा प्रव्रज्याग्रहण—

४९. तत्पश्चात् उस सुकुमालिका को किसी एक दिन मध्यरात्रि के समय अपने कौटुम्बिक जीवन के विचारों में लीन होकर जागते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक मानसिक यावत् संकल्प उत्पन्न हुआ—मैं सागर को पूर्व में इष्ट थी यावत्—

मम नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा ? जस्स-जस्स वि य णं देज्जामि तस्स-तस्स वि य णं अणिट्ठा-जाव-अमणामा भवामि । तं सेयं खलु ममं गोवालियाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए ।"

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव सागरदत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए गोवालियाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया पव्वइत्तए-जाव-गोवालियाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइया ।

तए णं सा सूमालिया अज्जा जाया इरियासमिया-जाव-गुत्तबंभयारिणी बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमास-खमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

सूमालियाए चंपानयरीए बहिं आतावणा—

५०. तए णं सा सूमालिया अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव गोवालियाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी चंपाए नयरीए बाहिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुही आयावेमाणी विहरित्तए ।"

तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी—

"अम्हे णं अज्जे ! समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ-जाव-गुत्तबंभचारिणीओ । नो खलु अम्हं कप्पइ बहिया गामस्स वा-जाव-सण्णिवेसस्स वा छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सूराभिमुहीणं आयावेमाणीणं विहरित्तए । कप्पइ णं अम्हं अंतो-उवस्सयस्स वइपरिक्खित्तस्स संघाडिबद्धियाए णं समतलपाइयाए आयावित्तए ।"

तए णं सा सूमालिया गोवालियाए एयमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणी अपत्तियमाणी अरोय-

मणाम थी, किन्तु अभी अनिष्ट अप्रिय—यावत् अमणाम—अमनोज्ञ हो गई हूं । सागर मेरा नाम और गोत्र भी सुनना पसन्द नहीं करता है तो फिर देखने और परिभोग की बात ही कहाँ रही ? जिस-जिस को भी मैं दी गई हूँ उस-उसको भी अनिष्ट—यावत्—अमणाम हुई हूँ । इसलिये गोपालिका आर्या के पास मुंडित प्रव्रजित होना श्रेयस्कर है ।

उस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में प्रगट होने पर यावत् सहस्ररश्मि सूर्य के उदित होने और जाज्वल्यमान तेज सहित दिन करके प्रकाशित होने पर जहाँ सागरदत्त था, वहाँ आई, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली—

'हे देवानुप्रिय ! मैंने गोपालिका आर्या के पास धर्म श्रवण किया है, वह धर्म मुझे इच्छित, प्रतिच्छित और अत्यन्त रुचिकर है । इसलिये आपकी आज्ञा प्राप्त करके प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहती हूँ—यावत् गोपालिका आर्या के पास दीक्षित हो गई ।"

तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या—साध्वी हो गई—जो ईर्यासमिति से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी होकर बहुत सी चतुर्थ, षष्ठ, अष्ट, दशम, द्वादश, मास और अर्धमास की तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

सुकुमालिका की चंपानगरी के बाहर आतापना—

५०. तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या अन्य किसी एक समय जहाँ—गोपालिका आर्या विराज रही थी, वहाँ आई, वहाँ आकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार कहा—

'हे आर्ये ! आपकी अनुज्ञा प्राप्त करके चंपानगरी के बाहर सुभूमिभाग उद्यान से न अतिनिकट और न अतिदूर किन्तु समीप ही निरन्तर षष्ठ-षष्ठ (बेला-बेला) तपोकर्म द्वारा सूर्य के सन्मुख आतापना लेती हुई विचरना चाहती हूँ ।'

तब उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—

'हे आर्ये ! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ ईर्यासमिति से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं । अतएव गांव बाहर अथवा—यावत्—सन्निवेश से बाहर निरंतर बेले-बेले तपोकर्म द्वारा सूर्य के सन्मुख आतापना लेते हुए विचरना नहीं कल्पता है किन्तु बाड़ से घिरे हुए उपाश्रय के भीतर ही संघाटी से वस्त्र से शरीर को आच्छादित कर अथवा साध्वियों के बीच रहकर समतल भूमि पर पैर रखकर आतापना लेना कल्पता है ।'

तब उस सुकुमालिका आर्या को गोपालिका आर्या की इस बात पर श्रद्धा नहीं हुई, प्रतीति—विश्वास नहीं हुआ, रुचि नहीं

माणी सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं सुराभिमुही आयावेमाणी विहरइ।

हुई और इस कथन पर श्रद्धा, प्रतीति एवं रुचि न करते हुए सुभूमिभाग उद्यान के समीप निरंतर बेले-बेले तपोकर्म के द्वारा सूर्य के सन्मुख आतापना लेते हुए विचरण करने लगी।

सूमालियाए गणियाभोगं दट्ठूण नियाणं—

५१. तत्थ णं चंपाए ललिया नाम गोट्ठी परिवसइ नरवइ-दिन्न-पयारा अम्मापिइ-नियग-निप्पिवासा वेसविहार-कय-निकेया नाणाविह-अविणयप्पहाणा अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया।

तत्थ णं चंपाए देवदत्ता नामं गणिया होत्था—सूमाला जहा अंड-नाए।

तए णं तीसे ललियाए गोट्ठीए अण्णया कयाइ पंच गोट्ठिल्लगपुरिसा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरंति।

तत्थ णं एगे गोट्ठिल्लगपुरिसे देवदत्तं गणियं उच्छंगे धरेइ, एगे पिट्ठओ आयवत्तं धरेइ, एगे पुप्फपूरगं रएइ, एगे पाए रएइ, एगे चामरुक्खेवं करेई।

५२. तए णं सा सूमालिया अज्जा देवदत्तं गणियं तेहिं पंचहिं गोट्ठिल्लपुरिसेहिं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणिं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे संकप्पे समुप्पज्जित्था— अहो णं इमा इत्थिया पुरापोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं कडाणं कल्लाणाणं कम्माणं कल्लाणं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणी विहरइ। तं जइ णं केइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेरवासस्स कल्लाणे फलवित्ति-विसेसे अत्थि, तो णं अहमवि आगमिस्सेणं भवग्गहणेणं इमेयारूवाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरिज्जामि त्ति कट्टु नियाणं करेइ, करेत्ता आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ।

सुकुमालिका का गणिका भोग देखकर निदान—

५१. उस चंपानगरी में ललिता नामक एक गोष्ठी (बदमाशों की टोली)—निवास करती थी, राजा ने जिसे इच्छा अनुसार विचरण करने की छूट दे रखी थी, वह गोष्ठी माता-पिता आदि स्वजनों की भी उपेक्षा करती थी, वेश्या का आवास ही उसका निवास स्थान था, अनेक प्रकार के—अनाचार करना ही जिसका मुख्य कार्य था, वह धनाढ्य थी—यावत् बहुत से मनुष्यों से भी अपरिभूत थी, पराजित होने वाली नहीं थी।

उसी चंपानगरी में देवदत्ता नाम की एक गणिका रहती थी—जो सुकुमाल थी; उसका शेष वर्णन अंडकज्ञात—कथानक के समान जानना चाहिये।

तत्पश्चात् किसी एक समय उस ललिता गोष्ठी के पाँच गोष्ठिक पुरुष देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव—अवलोकन करते हुए विचरण कर रहे थे।

तब उनमें से एक गोष्ठिक पुरुष ने देवदत्ता गणिका को अपनी गोदी में बैठाया, एक ने पीछे से आतपत्र—छत्र धारण किया, एक ने उसके सिर पर पुष्पजाल—फूलों का मुकुट रचा, एक उसके पैर रंगने लगा और एक उस पर चामर ढोरने लगा।

५२. तब उस सुकुमालिका आर्या ने देवदत्ता गणिका को उन पाँच गोष्ठिक पुरुषों के साथ उदार मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगते हुए देखा, देखकर उसके मन में इस प्रकार का संकल्प—विचार उत्पन्न हुआ—'अहो यह स्त्री पूर्व में सुआचरित, सुपराक्रान्त कल्याणरूप पुरातन शुभ कर्मों के शुभ विपाक का अनुभव कर रही है। इसलिये अच्छी तरह से आचरण किये गये इस तप, नियम, ब्रह्मचर्यवास का यदि कुछ भी कल्याणरूप फल विशेष हो तो मैं भी आगामी भव में इसी प्रकार के उदार कामभोगों का भोग करते हुए विचरण करूँ।' इस प्रकार का उसने निदान किया और निदान करके आतापना भूमि से वापस लौटी।

सूमालियाए बउसनियंठित्तं—

५३. तए णं सा सूमालिया अज्जा सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था—अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराइं धोवेइ, कक्खंतराइं धोवेइ, गुज्झंतराइं धोवेइ, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।

सुकुमालिका का बकुश निर्ग्रन्थित्व—

५३. तत्पश्चात् वह सुकुमालिका आर्या शरीर बाकुशिका भी हो गई—जो प्रतिक्षण बार-बार हाथ धोती, पैर धोती, मस्तक धोती, मुख धोती, स्तनान्तर (छाती) धोती, कक्षांतर (बगल) धोती और गुप्त अंगों को धोती, जिस स्थान पर खड़ी होती अथवा बैठती, सोती, स्वाध्याय करती, वहाँ पहले ही जमीन पर जल छिड़कती और फिर उसके बाद खड़ी होती, बैठती, सोती या स्वाध्याय करती थी।

५४. तए णं ताओ गोवालियाओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं एवं वयासी—

"एवं खलु अज्जे ! अम्हे समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ-जाव-बंभचेरधारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरबाउसियाए होत्तए। तुमं च णं अज्जे ! सरीरबाउसिया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेसि, पाए धोवेसि, सीसं धोवेसि, मुहं धोवेसि, थणंतराइं धोवेसि, कक्खंतराइं धोवेसि, गुज्झंतराइं धोवेसि, जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएसि तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएसि। तं तुमं णं देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि-जाव-अकरणयाए अब्भुट्ठेहि, अहारिहं तवोकम्मं पायच्छित्तं पडिवज्जाहि।"

तए णं सा सूमालिया गोवालियाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणी अपरियाणमाणी विहरइ।

तए णं ताओ अज्जाओ सूमालियं अज्जं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलेंति निंदेंति खिंसेंति गरिहेंति परिभवंति, अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।

सूमालियाए पुढोविहारो देवलोगुप्पाओ य—

५५. तए णं तीसे सूमालियाए समणीहिं निग्गंथीहिं हीलिज्जमाणीए-जाव-निवारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—

"जया णं अहं अगारमज्झे वसामि, तया णं अहं अप्पवसा। जया णं अहं मुंडा भवित्ता पव्वइया, तया णं अहं परवसा। पुव्विं च णं ममं समणीओ आढंति परिजाणंति, इयाणिं णो आढंति नो परिजाणंति। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोवालियाणं अज्जाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं सा सूमालिया अज्जा अणोहट्टिया अनिवारिया सच्छंदमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ-जाव-जत्थ णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ वि य णं पुव्वामेव उदएणं अब्भुक्खेत्ता तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।

५४. तदनन्तर उन गोपालिका आर्या ने सुकुमालिका आर्या से इस प्रकार कहा—

'हे आर्ये ! हम निर्ग्रन्थ साध्वियाँ हैं, ईर्यासमिति से समित—सम्पन्न—यावत्—ब्रह्मचर्य धारिणी हैं। हमें शरीर बाकुशिक होना नहीं कल्पता है। किन्तु हे आर्ये ! तुम शरीर बाकुशिक हो गई हो जो प्रतिक्षण बार-बार हाथ धोती हो, पैर धोती हो, कक्षान्तर (कांख) धोती हो और जिस स्थान पर बैठती, सोती या स्वाध्याय करती हो उस पर भी पहले जल से छिड़काव करती हो, तब उसके बाद बैठती, सोती या स्वाध्याय करती हो। अतएव हे देवानुप्रिये ! तुम इस बकुशचारित्र रूप स्थान की आलोचना करो—यावत् अकरणीय कार्य के लिये यथायोग्य तपोकर्म का प्रायश्चित लो—अंगीकार करो।

तब उस सुकुमालिका ने गोपालिका आर्या के इस कथन का आदर नहीं किया, उसे सुना नहीं—अंगीकार नहीं किया, किन्तु अनादर करती हुई और अस्वीकार करती हुई उपेक्षा भाव में—विचरण करने लगी।

तब दूसरी आर्यायें सुकुमालिका आर्या की बार-बार अवज्ञा, निन्दा, खिंसा (तुच्छ कहना), गर्हा, तिरस्कार करने लगीं और बार-बार इस कार्य (अनाचार) को करने से रोकने लगीं।

सुकुमालिका का पृथक् विहार और देवलोक में उत्पाद (जन्म)—

५५. तत्पश्चात् उस सुकुमालिका के श्रमणनिर्ग्रन्थियों के द्वारा अवज्ञा—यावत्—तिरस्कार किये जाने पर इस प्रकार का मानसिक विचार—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—

'जब मैं गृहस्थवास में बसती थी, तब स्वाधीन थी। जब मैं मुंडित होकर प्रव्रजित हुई तब से पराधीन हो गई हूं। पूर्व यह श्रमणियाँ मेरा आदर करती थीं और मुझे मानती थी—कुछ समझती थीं किन्तु अब न तो मेरा आदर करती हैं और न मानती हैं। अतएव कल रात्रि के प्रभातरूप में बदलने, सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशमान होने पर गोपालिका आर्या के पास से निकलकर अलग उपाश्रय में जाकर रहना मेरे लिये श्रेयस्कर होगा' ऐसा विचार किया और विचार करके कल रात्रि को प्रभातरूप में परिवर्तित होने, सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशमान होने पर गोपालिका आर्या के पास से निकली—निकलकर पृथक् उपाश्रय में जाकर रहने लगी।

तब वह सुकुमालिका आर्या कोई हटकने—मना करने वाला न होने से एवं रोकने वाला न होने से स्वच्छन्दमति होकर बार-बार हाथ धोने लगी—यावत्—जिस स्थान पर बैठती, सोती अथवा स्वाध्याय करती उस स्थान को पहले की तरह पानी से सींचती और उसके बाद बैठती, सोती या स्वाध्याय करती।

५६. तत्थ वि य णं पासत्था पासत्थविहारिणी ओसन्ना ओसन्नविहारिणी कुसीला कुसीलविहारिणी संसत्ता संसत्तविहारिणी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झोसेत्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएत्ता, तस्स ठाणस्स अणालोइयऽपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा ईसाणे कप्पे अण्णयरंसि विमाणंसि देवगणियत्ताए उववण्णा। तत्थेगइयाणं देवीणं नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं सूमालियाए देवीए नवपलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

५६. तिस पर भी अब वह पासत्था—शिथिलाचारिणी हो गई, पासत्थ-विहारिणी हो गई, वह अवसन्न—संयम साधना में शिथिल, आलसी हो गई और आलस्यमय विहार वाली हो गई, कुशीला अर्थात् अनाचार का सेवन करने वाली हो गई और कुशीलों जैसा आचार-व्यवहार करने वाली हो गई, संसक्त विहारिणी हो गई, और इस प्रकार से बहुत वर्षों तक श्रामण्य-पर्याय का पालन किया, पालन करके अर्धमासिक संल्लेखना द्वारा आत्मा की आराधना कर अनशन द्वारा तीस भक्तों—भोजनों का छेदन कर उस स्थान—अनुचित आचरण की आलोचना और प्रतिक्रमण किये बिना ही कालमास में काल करके ईशानकल्प के किसी विमान में देवगणिका के रूप में उत्पन्न हुई। वहां उत्पन्न होने वाली किन्हीं-किन्हीं देवियों की नौ पल्योपम की स्थिति होती है। अतः सुकुमालिका देवी की भी नौ पल्योपम की स्थिति कही गई है।

दोवईभवकहाणगे दोवईए तारुण्णभावो—

५७. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नामं नयरे होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं दुवए नामं राया होत्था—वण्णओ।

तस्स णं चुलणी देवी। धट्ठज्जुणे कुमारे जुवराया।

तए णं सा सूमालिया देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पंचालेसु जणवएसु कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो चुलणीए देवीए कुच्छिंसि दारियत्ताए पच्चायाया।

तए णं सा चुलणी देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमाल-पाणिपाय-जाव-दारियं पयाया। तए णं तीसे दारियाए निव्वत्तबारसाहियाए इमं एयारूवं नामं—जम्हा णं एसा दारिया दुवयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया, तं होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जे दोवई।

तए णं तीसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—दोवई-दोवई।

तए णं सा दोवई दारिया पंचधाईपरिग्गहिया-जाव-गिरिकंदरमल्लीणा इव चंपगलया निवाय-निव्वाघायंसि सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

द्रौपदीभव कथानक में द्रौपदी का तारुण्य भाव—

५७. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में पांचाल जनपद में काम्पिल्यपुर नामक नगर था—वर्णन करना।

वहां द्रुपद नामक राजा था—वर्णन करना।

उसकी चुलनी नामक पटरानी थी और धृष्टद्युम्न नामक कुमार युवराज था।

वह सुकुमालिका देवी आयुक्षय होने, स्थितिक्षय होने और भवक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप में भरत क्षेत्र में, पांचाल जनपद में कांपिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की चुलनी रानी की कुक्षि में लड़की के रूप में अवतरित हुई—उत्पन्न हुई।

तत्पश्चात् उस चुलनी रानी ने नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन पूर्ण होने पर सुकुमाल हाथ पैर वाली—यावत्—पुत्री का प्रसव किया—जन्म दिया। इसके बाद बारह दिन व्यतीत हो जाने पर उस बालिका का यह इस प्रकार का नामकरण किया गया—क्योंकि यह बालिका—द्रुपद राजा की पुत्री और चुलनी रानी की आत्मजा है, अतएव हमारी इस बालिका का नाम द्रौपदी हो।

तत्पश्चात् उसके माता पिता ने इस प्रकार का यह गुणवाला और गुणनिष्पन्न नाम द्रौपदी रखा।

उसके बाद पांच धाय माताओं द्वारा ग्रहण की गई वह द्रौपदी बालिका—यावत्—पर्वत की गुफा में स्थित चम्पकलता के समान वायु आदि के व्याघात से रहित होकर सुखपूर्वक बढ़ने लगी—उसका लालन-पालन होने लगा।

५८. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा उम्मुक्कबालभावा विण्णय-

५८. तत्पश्चात् वह श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी बाल्यावस्था को

परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था।

पार करके किशोरावस्था को प्राप्त कर युवावस्था से संपन्न होती हुई रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई।

तए णं तं दोवइं रायवरकण्णं अण्णया कयाइ अंतेउरियाओ ण्हायं—जाव—सव्वालंकारविभूसियं करेंति, करेत्ता दुवयस्स रण्णो पायवंदियं पेसेंति।

तदनन्तर किसी एक दिन अन्तःपुर की रानियों ने उस राजवर कन्या द्रौपदी को स्नान कराया—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके द्रुपद राजा के पाद वंदन के लिये भेजा।

तए णं सा दोवई रायवरकण्णा जेणेव दुवए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दुवयस्स रण्णो पायग्गहणं करेइ।

तब वह श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी जहाँ द्रुपद राजा थे, वहाँ आई, वहाँ आकर उसने द्रुपद राजा के चरणों का स्पर्श किया।

दुवयरण्णा दोवईए सयंवरसंकप्पो—

५९. तए णं से दुवए राया दोवइं दारियं अंके निवेसेइ, निवेसेत्ता दोवईए रायवरकण्णाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए दोवइं रायवरकण्णं एवं वयासी—

द्रुपद राजा का द्रौपदी के स्वयंवर का संकल्प—

५९. तब द्रुपद राजा ने उस द्रौपदी बालिका को अपनी गोद में बैठाया, बैठाकर राजवर कन्या द्रौपदी के रूप, यौवन और लावण्य को देखकर विस्मित हो उस श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी से इस प्रकार कहा—

"जस्स णं अहं तुमं पुत्ता! रायस्स वा जुवरायस्स वा भारियत्ताए सयमेव दलइस्सामि, तत्थ णं तुमं सुहिया वा दुहिया वा भवेज्जासि। तए णं मम-जावज्जीवाए हिययदाहे भविस्सइ। तं णं अहं तव पुत्ता! अज्जयाए सयंवरं वियरामि। अज्जआए णं तुमं दिन्नसयंवरा। जं णं तुमं सयमेव रायं वा जुवरायं वा वरेहिसि, से णं तव भत्तारे भविस्सइ" त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं आसासेइ, आसासेत्ता पडिविसज्जेइ।

'हे पुत्री! यदि मैं स्वयं ही किसी राजा या युवराज की भार्या के रूप में तुझे दूंगा और वहाँ तू सुखी अथवा दुखी होगी तो मुझे यावज्जीवन के लिये हृदय में दाह होगा—दुख बना रहेगा। अतएव हे पुत्री! मैं आज से ही स्वयंवर रचता हूँ। आज से ही मैंने तुझे स्वयंवर में दी। इसलिये तुम अपनी इच्छा से जिस किसी राजा अथवा युवराज का वरण करोगी वही तुम्हारा भरतार (पति) होगा। इस प्रकार की इष्ट—यावत्—मनोज्ञ वाणी से उसे आश्वासन दिया और आश्वासन देकर विदा कर दिया।

बारवईए दूयपेसणं—

६०. तए णं से दुवए राया दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

द्वारवती को दूत प्रेषण—

६०. तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने दूत को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं। तत्थ णं तुमं कण्हं वासुदेवं समुद्दविजयपामोक्खे दस दसारे, बलदेवपामोक्खे पंच महावीरे, उग्गसेणपामोक्खे सोलस रायसहस्से, पज्जुण्णपामोक्खाओ अद्धुट्ठाओ कुमारकोडीओ, संबपामोक्खाओ सट्ठि दुद्दंतसाहस्सीओ, वीरसेणपामोक्खाओ एक्कवीसं वीरपुरिससाहस्सीओ, महासेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ, अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभिईओ करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावेत्ता एवं वयाहि—

'हे देवानुप्रिय! तुम द्वारवती (द्वारिका) नगरी जाओ। वहाँ तुम कृष्ण वासुदेव को, समुद्रविजय आदि दस दसारों को, बलदेव आदि पाँच महावीरों को उग्रसेन आदि सोलह हजार राजाओं को, प्रद्युम्न आदि साढ़े तीन कोटि (करोड़) कुमारों को, शाम्ब आदि साठ हजार दुर्दान्त (महाबलवान) वीरों को, वीरसेन आदि इक्कीस हजार वीरों को, महासेन आदि छप्पन हजार बलवानों को तथा और दूसरे भी राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति को दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक जय-विजय शब्दों द्वारा बधाना—अभिनन्दन करना, बधाकर उनसे इस प्रकार कहना—

एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुण-कुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

'हे देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी रानी की आत्मजा और धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी राजवर कन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतएव हे देवानुप्रियो! आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करके काल का विलम्ब किये बिना—अविलम्ब उचित समय पर कांपिल्यपुर नगर में पधारें।

तए णं से दूए करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु दुवयस्स रण्णो एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् दूत ने दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त करके मस्तक पर अंजलिकरण पूर्वक द्रुपद राजा के इस अर्थ—कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके अपने घर आया, और आकर कौटुम्बिक पुरुषों को—बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेह।" ते वि तहेव उवट्ठवेंति।

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटाओं वाला अश्वरथ जोतकर लाओ। उन्होंने भी उसी प्रकार के रथ को लाकर उपस्थित किया।

तए णं से दूए ण्हाए-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं—सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवएहिं उप्पीलिय-सरासण-पट्टिएहिं पिणद्ध-गेविज्जेहिं आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टेहिं गहियाउहपहरणेहिं—सद्धिं संपरिवुडे कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसत्ता जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं ठावेइ, ठावेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायचारविहारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हं वासुदेवं समुद्दविजय-पामोक्खे य दस दसारे-जाव-छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ करयल-परिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयइ—

तत्पश्चात् दूत ने स्नान किया—यावत्—अल्प (भार) किन्तु महामूल्यवान आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया अलंकृत करके चार घंटाओंवाले अश्वरथ पर आरूढ हुआ—बैठा, आरूढ़ होकर जिन्होंने शरीर पर कवच आदि धारण किया हुआ है, और शरासन पट्टिका कसकर बांधी हुई है, जो ग्रैवेयक पहने हैं, अपने-अपने पद के बोधक संकेत पट्ट धारण किये हुए हैं, और हाथों में प्रहरण लिये हुए हैं ऐसे बहुत से पुरुषों से संपरिवृत होकर कांपिल्यपुर नगर के बीचोंबीच से निकला, और पांचाल जनपद के मध्य में से होते हुए जहाँ सीमान्त था, वहाँ आया, वहाँ आकर सौराष्ट्र-जनपद के मध्यभूभाग को पार करके जहाँ बारवती नगरी थी, वहाँ आया, वहाँ आकर बारवती नगरी के मध्य में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके जहाँ कृष्णवासुदेव की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर चार घंटाओंवाले अश्वरथ को खड़ा किया, रोका, रोककर रथ से नीचे उतरा; रथ से उतरकर मनुष्यों के समूह से परिवृत होकर पद विहार करके जहाँ कृष्णवासुदेव थे, वहाँ आया वहाँ आकर कृष्णवासुदेव को समुद्रविजय आदि दस दसारों—यावत्—छप्पन हजार बलवान वर्ग को दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे अत्थि। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

'हे देवानुप्रियो ! बात यह है कि काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी रानी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर है। इसलिये आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करते हुए समय का विलम्ब न करके—अविलम्ब काम्पिल्यपुर नगर में पधारें'।

६१. तए णं से कण्हे वासुदेवे तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-हियए तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

६१. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव उस दूत के मुख से इस वृत्तान्त को सुनकर और समझकर हृष्ट-तुष्ट एवं चित्त में आनन्दित हुए—यावत्—हृदय हर्षोल्लास से व्याप्त हो गया, और दूत का सत्कार सम्मान किया, सत्कार सम्मान करने के पश्चात् दूत को विदा किया।

कण्हस्स पत्थाणं—

कृष्ण का प्रस्थान

६२. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता

६२. तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया,

एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! सभाए सुहम्माए सामुदाइयं भेरिं तालेह।"

बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सुधर्मासभा में—स्थित सामुदानिक भेरी को बजाओ।'

तए णं कोडुम्बियपुरिसे करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव सभाए सुहम्माए सामुदाइया भेरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामुदाइयं भेरिं महया-महया सद्देणं तालेंति।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने दोनों हाथ जोड़ शिरपर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कृष्ण वासुदेव की इस आज्ञा को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ सुधर्मा सभा में सामुदानिक भेरी थी, वहाँ आये और वहाँ आकर सामुदानिक भेरी को जोर-जोर शब्द घोष से ताड़ित किया—बजाया।

तए णं ताए सामुदाइयाए भेरीए तालियाए समाणीए समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा-जाव-महासेणपामोक्खाओ छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ ण्हाया-जाव-सव्वालंकारविभूसिया जहाविभव-इड्ढिसक्कारसमुदएणं अप्पेगइया हयगया एवं गयगया रह-सीया-संदमाणीगया अप्पेगइया पायविहारचारेणं जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कण्हं वासुदेवं जएणं विजएणं वद्धावेंति।

तत्पश्चात् उस सामुदानिक भेरी को ताड़ित किये जाने—बजाये जाने पर समुद्रविजय प्रमुख दसों दसार—यावत्—महासेन आदि छप्पन हजार बलवान नहाये—यावत्—सर्वालंकारों से विभूषित होकर यथावैभव—अपने-अपने वैभव, ऋद्धि, सत्कार और समुदाय के साथ कोई-कोई अश्व पर एवं हाथी पर, रथ, शिबिका, स्यन्दमानिका—बग्घी पर बैठकर और कितने ही पाद विहार द्वारा चलकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कृष्ण वासुदेव को बधाया—बधाई दी।

६३. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

६३. तदनन्तर कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।" ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य—पट्टाभिषेक किये हुए—हस्तिरत्न को सजाओ, अश्व, हस्ती, रथ और प्रवर—श्रेष्ठ योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो, सेना को तैयार करके आदेशपूर्ति की सूचना दो।' वे भी तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापस लौटाते हैं।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समत्तजालाकुलाभिरामे विचित्तमणि-रयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयण-भत्ति-चित्तंसि ण्हाणपीढंसि सुहनिसण्णे सुहोदएहिं गंधोदएहिं सुद्धोदएहिं पुणो-पुणो कल्लाणग-पवर-मज्जणविहीए मज्जिए-जाव-अंजणगिरिकूडसन्निभं गयवइं नरवई दुरूढे।

इसके बाद कृष्ण वासुदेव जहाँ मज्जनघर (स्नानगृह) था, वहाँ आये, वहाँ आकर मोतियों की मालाओं से सुशृंगारित होने से मनोहर और जिसका भूमितल—फर्श मणि रत्नों से खचित है ऐसे रमणीय स्नान मंडप में अनेक प्रकार की मणियों और रत्नों से रचित चित्रामों वाली स्नान पीठ पर सुखपूर्वक बैठकर शुभोदक से, गंधोदक से, पुष्पोदक से और शुद्धोदक से पुनः पुनः मंगलरूप श्रेष्ठ स्नानविधि से स्नान किया—यावत्—अंजनगिरि कूट सदृश गजपति पर वे नरपति आरूढ़ हुए—अर्थात् अंजन पर्वत के शिखर के समान (श्याम और ऊँचे) श्रेष्ठ हस्तीरत्न पर नरपति - कृष्ण वासुदेव आसीन हुए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे समुद्दविजयपामोक्खेहिं दसहिं-दसारेहिं-जाव-अणंग-सेणापामोक्खाहिं अणेगाहिं गणियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-दुंदुहिनिग्घोसनाइयरवेणं बारवइं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुरट्ठाजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव देसप्पंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचालजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव समुद्रविजय प्रमुख दसों दसारों—यावत्—अनंगसेना प्रमुख अनेक हजारों गणिकाओं के साथ परिवृत होकर समस्त ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभिघोष ध्वनिपूर्वक बारवती—द्वारिका नगरी के मध्यभाग में निकले, निकलकर सौराष्ट्र जनपद के मध्य में से चलते हुए जहाँ देश का सीमान्त प्रदेश था वहाँ आये और वहाँ आकर पांचाल जनपद के मध्य में से होकर जहाँ काम्पिल्यपुर नगर था, उसी ओर गमन करने के लिये उद्यत हुए।

हत्थिणाउरे दूयपेसणं—

६४. तए णं से दुवए राया दोच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरं नयरं। तत्थ णं तुमं पंडुरायं सपुत्तयं—जुहिट्ठिल्लं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं, दुज्जोहणं भाइसय-समग्गं, गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं सउणिं कीवं आसत्थामं करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेहि, वद्धावेत्ता एवं वयाहि—एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

६५. तए णं से दूए जेणेव हत्थिणाउरे नयरे जेणेव पंडुराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुरायं सपुत्तयं—जुहिट्ठिल्लं भीमसेणं अज्जुणं नउलं सहदेवं दुज्जोहणं भाइसय-समग्गं, गंगेयं विदुरं दोणं जयद्दहं कीवं आसत्थामं एवं वयइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणकुमारस्स भइणीए दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे अत्थि, तं णं तुब्भे दुवयं रायं अणुगिण्हेमाणा अकालपरिहीणं चेव कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

तए णं से पंडुराया जहा वासुदेवे नवरं भेरी नत्थि-जाव-जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

चंपाइनयरे दूयपेसणं—

६६. एएणेव कमेणं—

तच्चं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! चंपं नयरिं। तत्थ णं तुमं कण्हं अंगरायं, सल्लं नंदिरायं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

चउत्थं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सोत्तिमइं नयरिं। तत्थ णं तुमं सिसुपालं दमघोससुयं पंचभाइसय-संपरिवुडं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

पंचमं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! हत्थिसीसं नयरिं। तत्थ णं तुमं दमदंतं रायं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

छट्ठं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया!

हस्तिनापुर में दूत प्रेषण—

६४. तदनन्तर द्रुपद राजा ने दूसरे दूत को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! तुम हस्तिनापुर नगर जाओ। वहाँ तुम पांडुराज को उनके पुत्रों युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित तथा सौ भाइयों सहित दुर्योधन को, गांगेय, विदुर द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, क्लीब (कर्ण) और अश्वत्थामा को दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाई देना, बधाकर इस प्रकार कहना—हे देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी रानी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतएव आप द्रुपद राजा पर अनुग्रह—कृपा करके और काल का विलम्ब किये बिना—अविलम्ब काम्पिल्यपुर नगर में पधारें।'

६५. तत्पश्चात् वह दूत जहाँ हस्तिनापुर नगर था, जहाँ पांडुराजा थे, वहाँ आया, वहाँ आकर पांडुराजा को उनके पुत्रों—युधिष्ठिर, भीमसेन, अर्जुन, नकुल, सहदेव सहित तथा सौ भाईयों समेत दुर्योधन को, गांगेय, विदुर, द्रोण, जयद्रथ, शकुनि, क्लीब—कर्ण, अश्वत्थामा को इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! काम्पिल्यपुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न कुमार की भगिनी राजवर कन्या द्रौपदी का स्वयंवर है, अतएव आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करके बिना विलम्ब किये तत्काल ही काम्पिल्यपुर नगर में पधारें।'

तब पांडुराजा ने वैसा ही किया। जैसा कृष्ण वासुदेव ने किया था, लेकिन अंतर इतना है कि भेरी नहीं है—यावत्—जहाँ काम्पिल्यपुर नगर था, उसी ओर गमन के लिये उद्यत हुए।

चम्पा आदि नगरों में दूत प्रेषण—

६६. इसी क्रम से—

तीसरे दूत से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम चम्पानगरी जाओ। वहाँ तुम कृष्ण अंगराज को, शैल्लक राजा को और नंदिराज को इस प्रकार कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारें।'

चौथे दूत से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम शुक्तिमती नगरी जाओ। वहाँ तुम दमघोष के पुत्र और पाँच सौ भाइयों से परिवृत शिशुपाल से यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारें।'

पंचम दूत से यह कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम हस्तिशीर्ष नगर को जाओ। वहाँ तुम दमदंत राजा से यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारें।'

छठे दूत से यह कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम मथुरा नगरी

महुरं नयरिं। तत्थ णं तुमं धरं रायं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

सत्तमं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! रायगिहं नयरिं। तत्थ णं तुमं सहदेवं जरासंधसुयं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

अट्ठमं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कोडिण्णं नयरं। तत्थ णं तुमं रुप्पिं भेसगसुयं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

नवमं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! विराटं नयरं। तत्थ णं कीयगं भाउसय-समग्गं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

दसमं दूयं एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! अवसेसेसु गामागर-नगरेसु। तत्थ णं तुमं अणेगाइं रायसहस्साइं एवं वयाहि—कंपिल्लपुरे नयरे समोसरह।"

जाओ। वहाँ तुम धर राजा से इस प्रकार कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारिये।'

सातवें दूत से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम राजगृह नगरी में जाओ। वहाँ तुम जरासंध के पुत्र सहदेव को यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर पधारिये।'

आठवें दूत से यह कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम कौंडिन्य नगर जाओ। वहाँ तुम भीष्मक पुत्र रुक्मि से यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारिये।

नौवें दूत से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम विराट नगर जाओ और वहाँ सौ भाईयों सहित कीचक राजा से यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारिये।

दसवें दूत से कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम अब शेष रहे ग्राम आकर—नगरों में जाओ। वहाँ-वहाँ तुम अनेक हजारों राजाओं से यह कहना—काम्पिल्यपुर नगर में पधारने की कृपा करें।

रायसहस्साणं पत्थाणं—

६७. तए णं ते बहवे रायसहस्सा पत्तेयं-पत्तेयं ण्हाया सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया हत्थिखंधवरगया हय-गय-रह—पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता। सएहिं-सएहिं नगरेहिंतो अभिनिग्गच्छंति, अभिनिग्गच्छित्ता जेणेव पंचाले जणवए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

सहस्रों राजाओं का प्रस्थान—

६७. तत्पश्चात् आमंत्रित किये गये उन बहुसंख्यक हजारों राजाओं में से प्रत्येक ने स्नान किया और शरीर रक्षा के लिये कवच आदि से सुसज्जित होकर वे श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ हुए एवं अश्व, हाथी, रथ, और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से घिरे हुए होकर महान् सुभटों, रथों, पदातिवृन्द से परिवृत्त होकर अपने-अपने नगरों से निकले, निकलकर जहाँ पांचाल जनपद था, उसी ओर गमन करने के लिये उद्यत हुए।

दुवयकओ वासुदेवाईणं सक्कारो—

६८. तए णं से दुवए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे नयरे बहिया गंगाए महानईए अदूरसामंते एगं महं सयंवरमंडवं करेह—अणेगखंभ-सयसन्निविट्ठं लीलाट्ठिय-सालभंजियागं-जाव-पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।

द्रुपदकृत वासुदेव आदि का सत्कार—

६८. तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और काम्पिल्यपुर नगर के बाहर गंगा महानदी से न अधिक दूर और न अधिक निकट अर्थात् योग्य समीप स्थान पर एक विशाल स्वयंवर मंडप बनाओ जो अनेक सैकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट हो—बना हुआ हो और जिन पर लीला करती हुई पुतलियां हों—यावत्—प्रासादीय—हर्षजनक श्रेष्ठ—दर्शनीय अभिरूप, प्रतिरूप निर्मित करके मेरी आज्ञा को वापस लौटाओ आदेशानुकार्य हो जाने की सूचना दो। उन्होंने भी तदनुसार कार्य करके आज्ञा वापस सौंपी अर्थात् स्वयंवर मंडप बन जाने की सूचना दी।

तए णं से दुवए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे करेह, करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। ते वि तहेव पच्चप्पिणंति।

तदनन्तर द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजाओं के लिये आवास स्थान बनाओ, बनाकर मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ। वे भी वैसा करके आज्ञा वापस लौटाते हैं।

तए णं से दुवए राया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आगमणं जाणेत्ता पत्तेयं-पत्तेयं हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं

तत्पश्चात् द्रुपद राजा वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजाओं का आगमन जानकर प्रत्येक का स्वागत करने के लिये

छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते अग्घं च पज्जं च गहाय सव्विड्ढीए कंपिल्लपुराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताइं वासुदेवपामोक्खाइं अग्घेण य पज्जेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं पत्तेयं-पत्तेयं आवासे वियरइ।

श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर—आरूढ होकर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण करके, श्रेष्ठ श्वेत चामरों के ढोरे जाते हुए, अश्वों, हाथियों, रथों और प्रवर-योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के द्वारा परिवृत्त होकर महान् सुभटों, रथों, पदातिसैन्य दल के साथ अर्घ्य (पूजा सम्मान योग्य सामग्री) और पाद्य (पादप्रक्षालन के लिये जल) लेकर समस्त ऋद्धि—वैभव के साथ काम्पिल्यपुर नगर से बाहर निकला, निकलकर जहाँ वे वासुदेव—प्रभृति हजारों राजा थे, वहाँ आया, वहाँ आकर उन वासुदेव प्रमुख राजाओं का अर्घ्य और पाद्य से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके उन वासुदेव प्रभृति राजाओं को पृथक्-पृथक् आवास दिये।

६९. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा जेणेव सया-सया आवासा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिखंधेहिंतो पच्चोरुहित्ता पत्तेयं-पत्तेयं खंधावारनिवेसं करेंति, करेत्ता सएसु-सएसु आवासेसु अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता सएसु-सएसु आवासेसु आसणेसु य सयणेसु य सन्निसण्णा य संतुयट्टा य बहूहिं गंधव्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवनच्चिज्जमाणा य विहरंति।

६९. तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रमुख राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ आये, वहाँ आकर हाथी के स्कन्ध से नीचे उतरे, उतरकर अलग-अलग अपने-अपने स्कन्धावार बनाये, स्कन्धावारों को बनाकर अपने-अपने आवासों में प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट होकर अपने-अपने आवासों में आसनों और शैयाओं पर बैठे और सोये हुए, बहुत से गंधर्वों (गवैयों) से गान कराते हुए और नटों से नाटक करवाते हुए विचरने लगे।

तए णं से दुवए राया कंपिल्लपुरं नयरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता कोडुम्बियपुरिसे, सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तदनन्तर द्रुपद राजा ने काम्पिल्यपुर नगर में वापस प्रवेश किया, प्रवेश करके विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन बनवाया, बनवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं च वासुदेवपामोक्खाणं रायसहस्साणं आवासेसु साहरह।" ते वि साहरंति।

'हे देवानुप्रियो! तुम यह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, सुरा, मद्य, मांस सीधु और प्रसन्ना तथा प्रचुर मात्रा में पुष्प, वस्त्र, गंध, माला एवं अलंकार आदि वासुदेव प्रभृति हजारों राजाओं के आवास में लेकर जाओ। वे आदेशानुसार लेकर गये।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं सुरं च मज्जं च मंसं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परमसुइभूया सुहासणवरगया बहूहिं गंधव्वेहि य नाडएहि य उवगिज्जमाणा य उवनच्चिज्जमाणा य विहरंति।

तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि राजा उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, सुरा, मद्य, मांस, सीधु और प्रसन्ना का आस्वादन करते हुए, खाते हुए, एक दूसरे को परोसते हुए और सेवन करते हुए विचरने लगे। भोजन करने के पश्चात् आचमन करके स्वच्छ, परम शुचिभूत होकर सुखासनों पर बैठाकर बहुत से गंधर्वों और नटों से संगीत और नाटक कराते हुए विचरने लगे।

दोवईए सयंवरो—

७०. तए णं से दुवए राया पच्चावरण्ह-कालसमयंसि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कंपिल्लपुरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु वासुदेवपामोक्खाण य रायसहस्साणं आवासेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया! कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते –

द्रौपदी का स्वयंवर—

७०. तत्पश्चात् द्रुपद राजा ने अपराह्न काल के समय कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा –

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ होकर काम्पिल्यपुर नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में तथा वासुदेव प्रभृति हजारों राजाओं के आवास में जाकर उच्चातिउच्च स्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'हे देवानुप्रियो! कल रात्रि

दुवयस्स रण्णो धूयाए, चुलणीए देवीए अत्तयाए, धट्ठज्जुणस्स भगिणीए, दोवईए रायवरकण्णाए सयंवरे भविस्सइ। तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! दुवयं रायाणं अणुगिण्हेमाणा ण्हाया-जाव-सव्वालंकारविभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामराहिं वीइज्जमाणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगि-णीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महया भड-चडगर-रह-पहकर-विंद-परिक्खित्ता जेणेव सयंवर-मंडवे तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता पत्तेयं-पत्तेयं नामंकिएसु आसणेसु निसीयह, निसीइत्ता दोवइं राय-वरकण्णं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह त्ति घोसणं घोसेह, घोसेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

के प्रभात रूप में प्रत्यावर्तित होने, सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी रानी की आत्मजा, धृष्टद्युम्न की भगिनी राजवर कन्या द्रौपदी का स्वयंवर होगा। अतएव हे देवानुप्रियो! आप सब द्रुपद राजा पर अनुग्रह करके स्नान आदि करके—यावत्—समस्त अलंकारों से विभूषित होकर कोरंट पुष्प की मालाओं सहित छत्र को धारण करके श्रेष्ठ धवल चामरों से विजाते हुए घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त होकर, सुभटों रथों, पदातिसैन्य वृन्द को साथ लेकर जहाँ स्वयंवर मंडप है, वहाँ पधारें और वहाँ पधारकर प्रत्येक अपने-अपने नामांकित आसन पर विराजें और विराजकर राजवर कन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करते हुए ठहरें—प्रतीक्षा करें। इस प्रकार की घोषणा करें, घोषणा करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् घोषणा करके मुझे सूचना दो।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा तहेव-जाव-पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष वैसी घोषणा करते हैं—यावत् आज्ञा वापस लौटाते हैं।

७१. तए णं से दुवए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सयंवरमंडवं आसिय-संमज्जि-ओवलित्तं पंचवण्णपुप्फोवयारकलियं कालागरु-पवरकुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभिमघमघेंत-गंधुद्धुयाभिरामं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं मंचाइमंचकलियं करेह कारवेह, करेत्ता कारवेत्ता वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं पत्तेयं-पत्तेयं नामंकियाइं आसणाइं अत्थुयपच्चत्थुयाइं रएह, रएत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पि-णह। ते वि-जाव-पच्चप्पिणंति।

७१. तत्पश्चात् पुनः द्रुपद राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और स्वयंवर मंडप को आसिक्त करो—जल से सींचो, प्रमार्जित करो—झाड़कर—बुहार कर साफ करो और लीपो, फिर पंच वर्ण के—रंग बिरंगे फूलों से उप-चरित—व्याप्त करो, कृष्ण अगर श्रेष्ठ कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-लोबान, धूप को जलाकर सुगंध से महका दो, गंध के फैलने से चित्ताकर्षक करो, श्रेष्ठ सुगंध की गंध से गंधायमान करके गंध की वर्ती जैसा बना दो, उसे मंचातिमंचों से युक्त करो और करवाओ, करके और कराके वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजाओं के नामों से अंकित अलग-अलग आसनों को एक श्वेत स्वच्छ वस्त्र से आच्छादित करो, आच्छादित करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ। वे भी वैसा करके—यावत्—वापस आज्ञा लौटाते हैं।

७२. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा कल्लं पाउप्प-भायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाया-जाव-सव्वालंकारविभूसिया हत्थिखंधवरगया सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरि-वुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-निग्घोस-नाइयरवेणं जेणेव सयंवरमंडवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता पत्तेयं-पत्तेयं नामंकिएसु आसणेसु निसीयंति, दोवइं रायवरकण्णं पडिवालेमाणा चिट्ठंति।

७२. तदनन्तर वे वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजा कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने, सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशित होने पर नहाये—यावत्—समस्त अलंकारों से विभूषित हुए, फिर श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ हुए, कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर, श्वेत धवल—चामरों से विजाते हुए अश्व, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं वाली चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त होकर महान सुभटों, रथों और पदाति सैन्य समूह को साथ लेकर समस्त ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभिघोष, वाद्य ध्वनिपूर्वक जहाँ स्वयंवर मंडप था, वहाँ आये, वहाँ आकर मंडप में प्रवेश किया, प्रवेश करके पृथक्-पृथक् अपने-अपने नामांकित आसन पर आसीन हुए, आसीन होकर राजवर कन्या द्रौपदी की प्रतीक्षा करने लगे।

७३. तए णं दुवए राया कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए-जाव-सव्वालंकार-विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंद-परिक्खित्ते कंपिल्लपुरं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, जेणेव सयंवरामंडवे जेणेव वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स सेयवरचामरं गहाय उववीयमाणे चिट्ठइ।

७३. तत्पश्चात् द्रुपद राजा कल रात्रि के प्रभात रूप में होने, सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशित होने पर नहाये—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित होकर, कोरंट-पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर श्वेत धवल चामरों से विंजाते, अश्व, हाथी, रथ, प्रवर योद्धाओं से सज्जित चतुरंगिणी सेना से परिवृत्त होकर महान सुभटों रथों और पदाति सैन्य वृन्द को साथ लेकर कांपिल्यपुर नगर के मध्य भाग में से निकला, और जहाँ स्वयंवर मंडप था, जहाँ वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजा थे, वहाँ आया, वहाँ आकर उन वासुदेव आदि राजाओं का दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय शब्दों से वधाया, बधाकर कृष्ण वासुदेव पर श्रेष्ठ श्वेत चामर को लेकर ढोरने लगा।

७४. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जिणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जिणपडिमाणं अच्चणं करेइ, करेत्ता जिणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंतेउरे तेणेव उवागच्छइ।

७४. उसके बाद वह राजवर कन्या द्रौपदी कल रात्रि के प्रभात रूप होने, सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशित होने पर जहाँ मज्जनगृह—स्नान-गृह था, वहाँ आई, आकर मज्जनगृह में प्रविष्ट हुई, प्रविष्ट होकर स्नान किया, मसीतिलक आदि कौतुक, मंगल प्रायश्चित्त किया, शुद्ध, प्रवेश्य-प्रवेश करने योग्य, मांगलिक श्रेष्ठ वस्त्रों को धारण करके मज्जनगृह से बाहर निकली, निकलकर जहाँ जिन-गृह था, वहाँ आई, आकर जिनगृह में प्रविष्ट हुई, प्रविष्ट होकर जिनप्रतिमा की अर्चना-पूजा की, अर्चना करके जिनगृह से वापस निकली, निकलकर जहाँ अंतःपुर था, वहाँ आई।

७५. तए णं तं दोवइं रायवरकण्णं अंतेउरियाओ सव्वालंकार-विभूसियं करेंति। किं ते? वरपायपत्तणेउरा-जाव-चेडिया-चक्कवाल-महयरगविंद-परिक्खित्ता अंतेउराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं चाउग्घंटं आसरहं दुरूहइ।

७५. तत्पश्चात् उस राजवर कन्या द्रौपदी को अन्तःपुरवासिनियों ने सर्व अलंकारों से विभूषित किया। किस प्रकार? पैरों में श्रेष्ठ नूपुर पहनाये—यावत्—चेटिकाओं—दासियों के समूह से परिवृत होकर अन्तःपुर से बाहर निकली, निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी, जहाँ चार घंटाओंवाला अश्वरथ था, वहाँ आई, वहाँ आकर क्रीड़ा कराने वाली धाय माता और लेखिका के साथ चातुर्घंटिक अश्वरथ पर आरूढ़ हुई।

तए णं से धट्ठज्जुणे कुमारे दोवईए रायवरकण्णाए सारत्थं करेइ।

तब धृष्टद्युम्नकुमार ने उन राजवर कन्या द्रौपदी का सारथ्य—रथ चालकत्व किया, सारथी बनाया।

तए णं सा दोवई रायवरकण्णा कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सयंवरामंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता किड्डावियाए लेहियाए सद्धिं सयंवरामंडवं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं रायवर-सहस्साणं पणामं करेइ।

तत्पश्चात् वह राजवर कन्या द्रौपदी काम्पिल्यपुर नगर के मध्य भाग में से होती हुई जहाँ स्वयंवर मंडप था, वहाँ आई, आकर रथ को खड़ा किया, रथ से नीचे उतरी, उतरकर क्रीड़ा कराने वाली धाय और लेखिका के साथ स्वयंवर मंडप में प्रविष्ट हुई, प्रविष्ट होकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उन वासुदेव आदि बहुत से हजारों राजाओं को प्रणाम किया।

७६. तए णं सा दोवई रायवरकण्णा एगं महं सिरिदामगंडं—

७६. तत्पश्चात् उस राजवर कन्या द्रौपदी ने एक बड़े भव्य श्री

किं ते ? पाडलमल्लिय-चंपय-जाव-सत्तच्छयाईहिं गंधद्धणिं मुयंतं परमसुहफासं दरिसणिज्जं गेण्हइ ।

दामकांड (गुलदस्ता, मालाओं का समूह) को ग्रहण किया, वह कैसा था ? पाटल-मल्लिका, चंपक—यावत्—सप्तपर्ण आदि पुष्पों से गुंथा हुआ और तृप्तिकारक गंध को फैलानेवाला, परम सुखद स्पर्शवाला एवं दर्शनीय था ।

तए णं सा किड्डाविया सुरूवा सामावियघंस चोद्दहजणस्स उस्सुयकरं विचित्तमणि-रयण-बद्धच्छरुहं वामहत्थेणं चिल्लगं दप्पणं गहेऊण सललियं दप्पणसंकंतबिंब-संदंसिए य से दाहिणेणं दरिसए पवररायसीहे । फुडविसय-विसुद्ध-रिभिय-गंभीर-महुरभणिया सा तेसिं सव्वेसिं पत्थिवाणं अम्मापिउवंस-सत्त-सामत्थ-गोत्त-विक्कंति-कंति-बहुविह आगम-माहप्प-रूव-कुलसीलजाणिया कित्तणं करेइ ।

उसके बाद उस सुन्दर रूपवाली क्रीड़ा धाय माता ने—स्वाभाविक रूप से घिसा हुआ—चिकना, चोद्दह—युवा तरुण जनों को उत्सुक बनानेवाला अपने को देखने की अभिलाषा का जनक, चित्र-विचित्र मणियों और रत्नों से निर्मित हत्थेवाला एक चमचमाता दर्पण अपने बांये हाथ में लिया, उस दर्पण में सिंह के समान शूरवीर श्रेष्ठ सुन्दर जिस राजा का प्रतिबिम्ब पड़ता है उसे दाहिने हाथ से दिखाती । दिखलाते समय वह धात्री स्फुट, विशद, विशुद्ध, रिभित, गंभीर मधुर वाणी से भाषण करती हुई, बोलती हुई उन-उन राजाओं के माता-पिता के वंश, सत्व-धीरता, दृढ़ता, सामर्थ्य, गोत्र, पराक्रम, कांति नाना प्रकार के ज्ञान माहात्म्य रूप कुलशील को जानने वाली होने के कारण कीर्तन-बखान करती ।

पढमं ताव वण्हिपुंगवाणं दसारवरवीरपुरिस-तेलोक्कबल-वगाणं, सत्तु-सयसहस्स-माणावमद्दगाणं भवसिद्धिय-वरपुण्डरीयाणं चिल्लगाणं बल-वीरिय रूव-जोव्वण-गुण-लावण्णकित्तिया कित्तणं करेइ ।

सर्वप्रथम उसने वृष्णि (यादव) पुंगव-प्रधान, तीनों लोकों में बलवान, शतसहस्र—लाखों शत्रुओं का मान मर्दन करनेवाले, भव्य जीवों में श्रेष्ठ पुंडरीक—श्वेत कमल के समान, तेज से देदीप्यमान दसार वंश के वीर पुरुष (समुद्र विजय) के बल, वीर्य, रूप, यौवन, गुण, लावण्य का बखान करते हुए कीर्तन-वर्णन किया ।

तओ पुणो उग्गसेणमाईणं जायवाणं भणइ—सोहग्गरूवकलिए वरेहि वरपुरिसगंधहत्थीणं जो हु ते होइ हियय-दइओ ।

तत्पश्चात् उस क्रीडन धाय ने उग्रसेन आदि यादवों के बल, वीर्य आदि का वर्णन किया और कहा 'ये सब सौभाग्य और रूप से सुशोभित हैं, एवं श्रेष्ठ पुरुषों में गंध हस्ती के समान हैं, इनमें से यदि कोई तेरे हृदय को प्रिय हो तो उसका वरण करो ।

दोवईए पंडव-वरणं—

७७. तए णं सा दोवई रायवरकण्णगा बहूणं रायवरसहस्साणं मज्झं-मज्झेणं समइच्छमाणी-समइच्छमाणी पुव्वकयनियाणेणं चोइज्जमाणी-चोइज्जमाणी जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते पंच पंडवे तेणं दसद्ध-वण्णेणं कुसुमदामेणं आवेढिय-परिवेढिए करेइ, करेत्ता एवं वयासी—एए णं मए पंडवा वरिया ।

द्रौपदी द्वारा पांडव वरण—

७७. तदनन्तर वह राजवर कन्या द्रौपदी बहुत से हजारों श्रेष्ठ राजाओं के मध्य में से गमन करती-करती पूर्वकृत निदान से प्रेरित होती-होती जहाँ पाँच पांडव थे, वहाँ आई, वहाँ आकर उसने उन पाँचों पांडवों को रंग-बिरंगी कुसुमदाम—फूलों की माला से चारों ओर से आवेष्टित परिवेष्टित कर दिया, परिवेष्टित करके बोली—'मैंने इन पाँचों पांडवों का वरण किया है ।'

तए णं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूणि रायसहस्साणि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणाइं-उग्घोसेमाणाइं एवं वयंति—सुवरियं खलु भो ! दोवईए रायवरकण्णाए त्ति कट्टु सयंवरमंडवाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सया-सया-आवासा तेणेव उवागच्छंति ।

तत्पश्चात् उन वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजाओं ने ऊँचे-ऊँचे शब्दघोषों से बार-बार उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—'अहो ! राजवर कन्या द्रौपदी ने अच्छा वरण किया है', इस प्रकार कह कर स्वयंवर मंडप से बाहर निकले और जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ चल दिये ।

तए णं धट्ठज्जुणे कुमारे पंच पंडवे दोवइं च रायवरकण्णं चाउग्घंटं आसरहं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयं भवणं अणुपविसइ ।

तत्पश्चात् धृष्टद्युम्न कुमार ने पाँचों पांडवों और श्रेष्ठ राजकन्या द्रौपदी को चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ़ किया, आरूढ़ करके काम्पिल्यपुर नगर के मध्य भाग में से निकला, निकलकर अपने भवन में प्रवेश किया ।

पाणिग्गहणं—

७८. तए णं से दुवए राया पंच पंडवे दोवइं च रायवरकण्णं पट्टयं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता सेयापीयएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं करावेइ, पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य पाणिग्गहणं करावेइ।

तए णं से दुवए राया दोवईए रायवरकण्णाए इमं एयारूवं पीइदाणं दलयइ, तं जहा- अट्ठ हिरण्णकोडीओ-जावपेसणकारीओ दासचेडीओ, अण्णं च विपुलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सारसावएज्जं अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं दलयइ।

तए णं से दुवए राया ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूइं राय-सहस्साइं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडि-विसज्जेइ।

पंडुरायकयं वासुदेवाइनिमंतणं—

७९. तए णं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं राय-सहस्साणं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी- एवं खलु देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं दोवईए य देवीए कल्लाणकारे भविस्सइ, तं तुब्भे णं देवाणुप्पिया! ममं अणुगिण्हमाणा अकालपरिहीणं चेव समो-सरह।

८०. तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा पत्तेयं-पत्तेयं ण्हाया सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया हत्थिखंधवरगया-जाव-जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

पंडुकओ वासुदेवाईणं सक्कारो—

८१. तए णं से पंडू राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे पंचण्हं पंडवाणं पंच पासायवडिंसए कारेह—अब्भुग्गयमूसिय-जाव-पडिरूवे।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा पडिसुणेंति-जाव-कारवेंति।

तए णं से पंडू राया पंचहिं पंडवेहिं दोवईए देवीए सद्धिं हय-गय-रह-पवर-जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया-भडचडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते कंपिल्लपुराओ पडि-निक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए।

पाणिग्रहण—

७८. उसके बाद द्रुपद राजा ने पाँचों पांडवों और राजवर कन्या द्रौपदी को पट्ट पर आसीन किया, आसीन करके श्वेत और पीत (चाँदी-सोने के) कलशों से स्नान कराया, स्नान करवाकर अग्नि होम करवाया और पाँचों पांडवों एवं द्रौपदी का पाणिग्रहण कराया।

तत्पश्चात् उस द्रुपद राजा ने राजवर कन्या द्रौपदी को यह इस प्रकार का प्रीतिदान दहेज दिया, यथा- आठ हिरण्य कोटियां—यावत्—प्रेषणकारिणी दासचेटियां तथा और दूसरा भी विपुल मात्रा में धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, मूंगा, रक्त-रत्न-माणेक आदि सब सारभूत स्वापतेय धन दिया, जो सात पीढ़ी तक यथेच्छा देने, इच्छानुसार भोगने और इच्छानुरूप बाँटने के लिये पर्याप्त था।

तदनन्तर उस द्रुपद राजा ने वासुदेव आदि बहुत से हजारों राजाओं का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम पुष्प, वस्त्र, माला अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके विदाई दी।

पंडुराज कृत वासुदेव आदि का निमन्त्रण—

७९. तत्पश्चात् उस पांडुराजा ने उन वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजाओं से दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! हस्तिनापुर नगर में पांचों पांडवों और द्रौपदी देवी का कल्याण-कारी उत्सव होगा, अतएव आप देवानुप्रियो! मुझ पर अनुग्रह करके बिना विलम्ब किये—अविलम्ब यथा समय वहां पधारने की कृपा करें।

८०. तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजा नहाकर, शरीर पर कवच बांध तैयार होकर श्रेष्ठ हाथी स्कन्ध पर आरूढ़ होकर—यावत्—जिस ओर हस्तिनापुर था, उस ओर गमन करने के लिये उद्यत हुए।

पांडुक द्वारा वासुदेव आदि का सत्कार

८१. उसके बाद उस पांडुराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा- 'हे देवानुप्रियो! तुम हस्तिनापुर नगर में जाओ, वहां पांचों पांडवों के पांच प्रासादा-वतंसकों को बनाओ—जो बहुत ऊंचे—यावत्—प्रतिरूप हों।'

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आदेश स्वीकार किया—यावत्—बनवाये।

उसके बाद पांडुराजा पांचों पांडवों और द्रौपदी देवी के साथ अश्व, गज, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से सज्जित चतुरंगिणी सेना द्वारा परिवृत होकर महान् सुभटों, रथों और पदातिसैन्य वृन्द के साथ काम्पिल्यपुर नगर से निकला, निकलकर जहां हस्तिनापुर नगर था, वहां आया।

तए णं से पंडू राया तेसिं वासुदेवपामोक्खाणं आगमणं जाणित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छहं णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरस्स नयरस्स बहिया वासुदेवपामोक्खाणं बहूणं रायसहस्साणं आवासे—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठे करेह, करेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । ते वि तहेव पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् उस पांडुराजा ने उन वासुदेव आदि का आगमन जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और हस्तिनापुर नगर के बाहर वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजाओं के लिये अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त आवास तैयार करवाओ, तैयार करवाकर मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् आवास तैयार हो जाने की मुझे सूचना दो । वे भी उसी प्रकार आवास बनाकर आवास बनाकर आज्ञा वापस लौटाते हैं ।

८२. तए णं वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव हत्थिणाउरे तेणेव उवागए ।

८२. तदनन्तर वे वासुदेव आदि बहुत से हजारों राजा जहाँ हस्तिनापुर नगर था वहाँ आये ।

तए णं से पंडू राया ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से उवागए जाणित्ता हट्ठ-तुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे जहा दुवए-जाव-जहारिहं आवासे दलयइ ।

तत्पश्चात् उस पांडुराजा ने उन वासुदेव प्रभृति बहुत से हजारों राजाओं का आगमन जानकर हृष्ट-तुष्ट होकर स्नान किया, बलिकर्म किया और द्रुपद राजा के समान सत्कार-सम्मान आदि किया—यावत्—यथायोग्य आवास दिये ।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा जेणेव सया-सया आवासा तेणेव उवागच्छंति तहेव-जाव-विहरंति ।

तत्पश्चात् वे वासुदेव आदि बहुत से हजारों राजा जहाँ अपने-अपने आवास थे, वहाँ आये और उसी प्रकार—यावत्—विचरने लगे ।

तए णं से पंडू राया हत्थिणाउरं नयरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवणेह । तेवि तहेव उवणेंति ।

तत्पश्चात् पांडुराजा ने हस्तिनापुर नगर में प्रवेश किया, प्रवेश करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम आवासों में ले जाओ । वे उसी प्रकार ले जाते हैं ।

तए णं ते वासुदेवपामोक्खा बहवे रायसहस्सा कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणा तहेव-जाव-विहरंति ।

तदनन्तर उन वासुदेव आदि बहुत से हजारों राजाओं ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित करके उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम का आस्वादन करते हुए—यावत्—उसी प्रकार (पूर्व में किये गये वर्णन के अनुसार) विचरण करने लगे ।

कल्लाणकारुस्सवो—

८३. तए णं से पंडू राया ते पंच पंडवे दोवइं च देविं पट्टयं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ, ण्हावेत्ता कल्लाणकारं करेइ, करेत्ता ते वासुदेवपामोक्खे बहवे रायसहस्से विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

कल्याणकारी उत्सव—

८३. उसके बाद पांडुराजा ने पांचों पांडवों और द्रौपदी देवी को पट्ट पर आसीन करवाया, आसीन करवाकर श्वेत-पीत कलशों से स्नान कराया, स्नान करवाकर कल्याणकारक उत्सव किया, उत्सव करके उन वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजाओं का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार किया, सम्मान किया और सत्कार सम्मान करके विदा किया ।

तए णं ताइं वासुदेवपामोक्खाइं बहूइं रायसहस्साइं पंडुएणं रण्णा विसज्जियाइं समाणाइं जेणेव साइं-साइं रज्जाइं जेणेव साइं-साइं नगराइं तेणेव पडिगयाइं ।

तत्पश्चात् वे वासुदेव प्रमुख बहुत से हजारों राजा पांडुराजा से विदा होकर जहाँ अपने-अपने राज्य थे, जहाँ अपने-अपने नगर थे, वहाँ लौट गये ।

तए णं ते पंच पंडवा दोवईए सद्धिं कल्लाकल्लिं वारंवारेणं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरंति ।

तत्पश्चात् वे पांचों पांडव द्रौपदी देवी के साथ प्रतिदिन बारी-बारी से भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरने लगे ।

नारदस्स आगमणं—

८४. तए णं से पंडू राया अण्णया कयाइं पंचहिं पंडवेहिं कोंतीए देवीए दोवईए य सद्धिं अंतो अंतेउरपरियालसद्धिं संपरिवुडे सीहासण-वरगए यावि विहरइ।

इमं च णं कच्छुल्लनारए—दंसणेणं अइभद्दए विणीए अंतो-अंतो य कलुसहियए मज्झत्थ उवत्थिए य अल्लीण-सोमपियदंसणे सुरूवे अमइल-सगलपरिहिए कालमियचम्म-उत्तरासंग-रइयवच्छे दंड-कमंडलु-हत्थे जडामउडदित्तसिरए जन्नोवइय-गणेत्तिय-मुंज-मेहला-वागल-धरे हत्थकय-कच्छभीए पियगंधव्वे धरणिगोयरप्पहाणे संवरणावरणि-ओवयणुप्पयणि-लेसणीसु य संकामणि-आभिओगि-पण्णत्ति-गमणि-थंभिणीसु य बहुसु विज्जाहरीसु विज्जासु विस्सुय-जसे इट्ठे रामस्स य केसवस्स य पज्जुन्न-पईव-संब-अनिरुद्ध-निसढ-उम्मुय-सारण-गय-सुमुह-दुम्मुहाईण जायवाणं अद्धुट्ठाण य कुमार-कोडीणं हियय-दइए संथवए कलह-जुद्ध-कोलाहलप्पिए भंडणा-भिलासी बहुसु य समर-सयसंपराएसु दंसणरए समंतओ कलहं सदक्खिणं अणुगवेसमाणे असमाहिकरे दसारवर-वीरपुरिस-तेलोक्क-बलवगाणं आमंतेऊणं तं भगवइं पक्कमणिं गगणगमणदच्छं उप्पइओ गगणमभिलंघयंतो गामागर-नगर-खेड कब्बड-मडंब-दोणमुह-पट्टण-संबाह-सहस्समंडियं थिमियमेइणीयं निब्भर-जणपदं वसुहं ओलोइंते रम्मं हत्थिणाउरं उवागए पंडुरायभवणंसि अइवेगेण समोवइए।

नारद का आगमन—

८४. तत्पश्चात् किसी एक समय पांडुराजा पांचों पांडवों, कुन्ती रानी द्रौपदी तथा अन्तःपुर के पारिवारिक जनों के साथ संपरिवृत होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन थे।

इधर उसी समय देखने में अतिभद्र और विनीत किन्तु अंतरंग में कलुषित हृदय वाले ऊपर से माध्यस्थ भाव से संपन्न जैसे, दर्शकों और आश्रित जनों को जिनका दर्शन आह्लादक और प्रीतिकारक प्रतीत होता, सुन्दररूप सम्पन्न, जिनका परिधान अमलिन—उज्ज्वल अखंड वस्त्र था अर्थात् जिन्होंने श्वेत स्वच्छ वस्त्र पहना हुआ था, वक्षस्थल काले मृगचर्म के उत्तरासंग—दुपट्टे से सुशोभित था, हाथों में दंड और कमंडलु लिये थे, जिनका मस्तक जटारूपी मुकुट से दीप्तमान हो रहा था, जिन्होंने यज्ञोपवीत—जनेऊ, गणेत्रिका—कलाई में पहनने की रुद्राक्ष की माला, मूंज की कटिमेखला और वल्कल वस्त्र धारण कर रखे थे, जिनके हाथ में कच्छपी नाम की वीणा थी, जो संगीत के प्रेमी थे और भूमिगोचरियों में प्रधान थे, संचरणी (चलने की) आवरणी (ढंकने की) अवतरणी (नीचे उतारने की) उत्पतनी (ऊँचे उड़ने की) श्लेषणी (चिपट जाने की) संक्रामणी (दूसरे के शरीर में प्रवेश करने की) अभियोगिनी (सोना चांदी बनाने की) प्रज्ञप्ति (परोक्ष वृत्तान्त को बतला देने की) गमनी (दुर्गम स्थान में जा सकने की) और स्तंभिनी (स्तब्ध कर देने की) आदि विद्याओं सम्बन्धी—बहुत सी विद्याओं में प्रवीण होने से जिनकी कीर्ति विख्यात थी, बलदेव और वासुदेव के प्रेमपात्र थे तथा प्रद्युम्न प्रदीप, शंब, अनिरुद्ध, निषध, उन्मुख, सारण, गजसुकुमाल सुमुख दुर्मुख आदि साढ़े तीन करोड़ यादव कुमारों के हृदय के प्रिय थे, अत्यधिक प्रिय थे और उनके द्वारा प्रशंसनीय थे, कलह, युद्ध और कोलाहल जिन्हें अधिक प्रिय था, भंडन—चुगली करने के अभिलाषी अथवा चुगली करने के लिये उत्सुक, अनेक प्रकार के समर और संपराय (युद्ध विशेष) अथवा तू-तू-मैं-मैं देखने के रसिक, दक्षिणा देकर भी सर्वत्र कलह, लड़ाई-झगड़े की गवेषणा करने वाले, दूसरों को असमाधि पैदा करने में तत्पर ऐसे कच्छुल्ल नारद तीन लोक में बलवान् श्रेष्ठ दसार वंश के वीर पुरुषों से वार्तालाप करके आकाश में गमन कराने में दक्ष—उस भगवती (पूज्य) प्राकाम्य नामक विद्या का आह्वान करके उड़े और आकाश को उलांघते हुए हजारों ग्राम, आकर, नगर, खेड़, कर्बट, मडंब, द्रोणमुख, पट्टन, संवाह से सुशोभित और भरपूर देशों से व्याप्त वसुधा पृथ्वी का अवलोकन करते हुए रमणीय हस्तिनापुर में आये और बड़े वेग के साथ पांडुराजा के महल में उतरे।

८५. तए णं से पंडू राया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ पासित्ता पंचहिं पंडवेहिं कुंतीए य देवीए सद्धिं आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भु-

८५. उस समय पांडुराजा ने अपनी तरफ आते हुए कच्छुल्ल नारद को देखा। देखकर पांचों पांडवों और कुन्तीदेवी के साथ

उट्ठेत्ता कच्छुल्लनारयं सत्तट्ठपयाइं पच्चुग्गच्छइ, पच्चुग्गच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता निमंसित्ता महरिहेणं अग्घेणं पज्जेणं आसणेण य उवनिमंतेइ ।

आसन से उठे, उठकर सात-आठ पैर कच्छुल्ल नारद के सामने गये, सामने जाकर तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके अर्घ्य और पाद्य से सम्मानित कर—महान् पुरुषों के योग्य आसन ग्रहण करने के लिये आमंत्रित किया ।

तए णं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता पंडुरायं रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य कुसलोदंतं पुच्छइ ।

तत्पश्चात् उन कच्छुल्ल नारद ने जल छिड़ककर और दर्भासन बिछाकर उस पर अपना आसन बिछाया और वे उस पर बैठे, बैठकर—पांडुराजा से राज्य, राष्ट्र, कोष, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्तःपुर की क्षेम कुशल के समाचार पूछे ।

तए णं से पंडू राया कोंती देवी पंच य पंडवा कच्छुल्लनारयं आढंति परियाणंति अब्भुट्ठेंति पज्जुवासंति ।

उस समय पांडुराजा ने, कुन्ती देवी ने और पांचों पांडवों ने कच्छुल्ल नारद का आदर-सत्कार किया, आगमन की अनुमोदना की और उनके सम्मान में खड़े होकर पर्युपासना (सेवा) करने लगे ।

दोवईए नारयं पइ अणायरो—

८६. तए णं सा दोवई देवी कच्छुल्लनारयं अस्संजयं अविरयं अप्पडिहयपच्चक्खाय-पावकम्मंति कट्टु नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ ।

द्रौपदी का नारद के प्रति अनादर—

८६. उस समय द्रौपदी देवी ने कच्छुल्ल नारद को असंयमी, अविरती और अप्रतिहत अप्रत्याख्यात पापकर्म (पापकर्मों—सावद्य कार्यों का प्रायश्चित और प्रत्याख्यान न करने वाला) जानकर न तो उनका आदर किया न उनके आगमन की अनुमोदना की, न सम्मानार्थ खड़ी हुई और न उसने उनकी उपासना-भाव-भक्ति की ।

तए णं तस्स कच्छुल्ल-नारयस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था —

तब उन कच्छुल्ल नारद को इस प्रकार का अध्यवसाय, चिन्तन-विचार प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ ।

"अहो णं दोवई देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य पंचहिं पंडवेहिं अवत्थद्धा समाणी ममं नो आढाइ नो परियाणइ नो अब्भुट्ठेइ नो पज्जुवासइ, तं सेयं खलु मम दोवईए देवीए विप्पियं करेत्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पंडुरायं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए विज्जाहरगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं पुरत्थाभिमुहे वीईवइउं पयत्ते यावि होत्था ।

'अहो ! इस द्रौपदी देवी ने अपने रूप, यौवन, लावण्य और पांचों पांडवों के कारण अभिमानिनी होकर न तो मेरा आदर किया, न मेरे आगमन की अनुमोदना की, न मेरे सम्मान में खड़ी हुई और न मेरी सेवा भक्ति की, इसलिये द्रौपदी देवी का अनिष्ट करना—विपत्ति में फँसाना मेरे लिये श्रेयस्कर है' —इस प्रकार का विचार किया, विचार करके पांडुराजा से जाने की आज्ञा ली, आज्ञा लेकर फिर उत्पतनी विद्या (ऊपर उड़ने की विद्या) को आह्वान किया, आह्वान करके उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, चंड, शीघ्र—उत्कट वेग से उड़ते हुए पत्ते के समान विद्याधर गति से लवण समुद्र के मध्यभाग में से होकर पूर्वदिशा के सन्मुख चलने के लिये प्रवृत्त हुए ।

नारयस्स अवरकंका-गमणं पउमनाभरण्णा मिलणं च—

८७. तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्ध-दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंका नामं रायहाणी होत्था ।

नारद का अपरकंका गमन और पद्मनाभ राजा से मिलना—

८७. उस काल और उस समय में धातकीखंड नामक द्वीप में पूर्व दिशा में स्थित दक्षिणार्ध भरतक्षेत्र में अपरकंका (अवरकंका, अमरकंका) नाम की राजधानी थी ।

तत्थ णं अवरकंकाए रायहाणीए पउमनाभे नामं राया होत्था —महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ ।

उस अपरकंका राजधानी में पद्मनाभ नामक राजा रहता था—जो महाहिमवन् महन्तमलय—मंदर पर्वत और इन्द्रों में महेन्द्र के समान अन्य राजाओं की अपेक्षा गुणों, वैभव एवं ऐश्वर्य से सम्पन्न था—वर्णन करो ।

तस्स णं पउमनाभस्स रण्णो सत्त देवीसयाइं ओरोहे होत्था।

उस पद्मनाभ राजा के अन्तःपुर—निवास में सात सौ रानियाँ थीं।

तस्स णं पउमनाभस्स रण्णो सुनाभे नामं पुत्ते जुवराया वि होत्था।

उस पद्मनाभ राजा का सुनाभ नामक पुत्र था, जो युवराज भी था।

तए णं से पउमनाभे राया अंतोअंतेउरंसि ओरोह-संपरिवुडे सीहासणवरगए विहरइ।

उस समय वह पद्मनाभ राजा अन्तःपुर में अपनी रानियों के साथ घिरा हुआ श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन होकर बैठा था।

८८. तए णं से कच्छुल्लनारए जेणेव अवरकंका रायहाणी जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स रण्णो भवणंसि झत्ति-वेगेण समोवइए।

८८. तत्पश्चात् वे कच्छुल्ल नारद जहाँ अपरकंका राजधानी थी, जहाँ पद्मनाभ राजा का महल था, वहाँ आये, वहाँ आकर अत्यन्त वेग के साथ—शीघ्रता से पद्मनाभ राजा के महल में उतरे।

तए णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अग्घेणं पज्जेणं आसणेणं उवनिमंतेइ।

तब पद्मनाभ राजा ने कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा. देखकर आसन से उठा, उठकर अर्घ्य और पाद्य से सत्कार करके आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया।

तए णं से कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता पउमनाभं रायं रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य कुसलोदंतं आपुच्छइ।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जल से सींचे और दर्भ के ऊपर बिछाये गये आसन पर बैठे, बैठकर पद्मनाभ राजा से राज्य, राष्ट्र, कोश, कोष्ठागार, बल, वाहन, पुर और अन्तःपुर की कुशलता के समाचार पूछे।

पउमणाभस्स नियओरोहविसओ गव्वो—

पद्मनाभ का निज अन्तःपुरविषयक गर्व—

८९. तए णं से पउमनाभे राया नियगओरोहे जायविम्हए कच्छुल्लनारयं एवं वयासी—

तुमं देवाणुप्पिया! बहूणि गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडसि, बहूण य राईसर-तलवर-माडंबिय कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप-भिईणं गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिंचि देवाणुप्पिया! एरिसए ओरोहे दिट्ठपुव्वे, जारिसए णं मम ओरोहे?

तत्पश्चात् उस पद्मनाभ राजा ने अपने अन्तःपुर के बारे में विस्मित होकर कच्छुल्ल नारद से पूछा—

८९. हे देवानुप्रिय! आप बहुत से ग्राम, आकर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह और सन्निवेशों में भ्रमण करते हैं तथा बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति के घरों में प्रवेश करते हैं, तो हे देवानुप्रिय! जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा अन्तःपुर आपने पहले कभी कहीं देखा है?

कूवदद्दुरदिट्ठन्तकहणपुव्वं नारदकया दोवईरूवपसंसा—

कूपदर्दुर दृष्टान्त कथन पूर्वक नारदकृत द्रौपदी रूप-प्रशंसा—

९०. तए णं से कच्छुल्लनारए पउमनाभेणं एवं वुत्ते समाणे ईसिं विहसियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—

सरिसे णं तुमं पउमनाभा! तस्स अगडदद्दुरस्स।

के णं देवाणुप्पिया! से अगडदद्दुरे?

पउमनाभा! से जहानामए अगडदद्दुरे सिया। से णं तत्थ जाए तत्थेव वुड्ढे अण्णं अगडं वा तलागं वा दहं वा सरं वा सागरं वा अपासमाणे मण्णइ—अयं चेव अगडे वा तलागे वा दहे वा सरे वा सागरे वा।

९०. तब पद्मनाभ के इस कथन को सुनकर कच्छुल्ल नारद थोड़े से मुस्कराये और मुस्कराकर इस प्रकार कहा—

'हे पद्मनाभ! तुम तो कुए के उस मेंढक के सदृश हो।'

'हे देवानुप्रिय! कौन सा वह कुए का मेंढक?'

'हे पद्मनाभ! यथानामक अर्थात् कुछ भी नाम वाला एक कुए का मेंढक था। वह मेंढक वहीं—उसी कुए में उत्पन्न हुआ, उसी में बड़ा हुआ, उसने दूसरे किसी कुए, तालाब, द्रह, सरोवर अथवा समुद्र को नहीं देखा था, जिससे वह समझता था कि यही कूप है, तालाब है, द्रह है, सरोवर है अथवा समुद्र है।

तए णं तं कूवं अण्णे सामुद्दए दद्दुरे हव्वमागए। तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी—"से के तुमं देवाणुप्पिया! कत्तो वा इह हव्वमागए?"

तत्पश्चात् उस कुए में दूसरा कोई एक समुद्री मेंढक आया। तब उस कुए के मेंढक ने उस समुद्री मेंढक से पूछा—'हे देवानुप्रिय! तुम कौन हो और कहाँ से एकदम यहाँ आये हो?'

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अहं सामुद्दए दद्दुरे।

तए णं से कूवदद्दुरे तं सामुद्दयं दद्दुरं एवं वयासी—के महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?

तए णं से सामुद्दए दद्दुरे तं कूवदद्दुरं एवं वयासी—महालए णं देवाणुप्पिया ! समुद्दे।

तए णं से कूवदद्दुरे पाएणं लीहं कड्ढेइ, कड्ढेत्ता एवं वयासी—ए महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?

नो इणट्ठे समट्ठे। महालए णं से समुद्दे।

तब उस समुद्र के मेंढक ने कुए के मेंढक से कहा—'हे देवानुप्रिय ! मैं सामुद्रिक—समुद्र में रहने वाला मेंढक हूँ।'

तब उस कूपमंडूक ने समुद्री मेंढक से पूछा—'हे देवानुप्रिय ! वह समुद्र कितना बड़ा है ?'

तब उस समुद्र के मेंढक ने कुए के मेंढक से कहा—'देवानुप्रिय ! समुद्र बहुत बड़ा है।'

तब कुए के मेंढक ने पांव से एक लकीर खींची और खींचकर कहा—'हे देवानुप्रिय ! वह समुद्र क्या इतना बड़ा है ?'

'यह अर्थ समर्थ नहीं है—अर्थात् इससे समुद्र का माप नहीं लगाया जा सकता है। वह समुद्र इससे भी बड़ा है।' समुद्री मेंढक ने उत्तर दिया।

तए णं से कूवदद्दुरे पुरच्छिमिल्लाओ तीराओ उप्फिडित्ता णं पच्चत्थिमिल्लं तीरं गच्छइ, गच्छित्ता एवं वयासी—ए महालए णं देवाणुप्पिया ! से समुद्दे ?

नो इणट्ठे समट्ठे।

एवामेव तुमं पि पउमनाभा ! अण्णेसिं बहूणं राईसर-जाव-सत्थवाहप्पभिईणं भज्जं वा भगिणिं वा धूयं वा सुण्हं वा अपासमाणे जाणसि जारिसए मम चेव णं ओरोहे, तारिसए णो अण्णेसिं।

जब वह कूपमंडूक पूर्व दिशा के किनारे से उछलकर पश्चिमी किनारे पर आया, और आकर इस प्रकार कहा—'क्या वह समुद्र इतना बड़ा है ?'

'यह अर्थ भी समर्थ नहीं है'—समुद्री मेंढक ने कहा।

'हे पद्मनाभ ! इसी प्रकार के तुम भी हो। दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति की भार्या, भगिनी, पुत्री अथवा पुत्रवधू को न देखने के कारण तुम ऐसा समझते हो कि जैसा मेरा अन्तःपुर है, वैसा दूसरे किसी का नहीं है।

६१. एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नयरे दुपयस्स रण्णो धूया, चुलणीए देवीए अत्तया, पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई नामं देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा। दोवईए णं देवीए छिन्नस्स वि पायंगुट्ठस्स अयं तव ओरोहे सयं पि कलं न अग्घइ त्ति कट्टु पउमनाभं आपुच्छइ आपुच्छित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

६१. हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारत क्षेत्र में—हस्तिनापुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री चुलनी रानी की आत्मजा, पांडु की पुत्रवधू, पाँचों पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी, रूप से, यौवन से, लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली है। तुम्हारा यह अन्तःपुर तो उस द्रौपदी देवी के कटे हुए पैर के अंगूठे की सौवीं कला (शतांश) की भी बराबरी नहीं कर सकता है—ऐसा कहकर पद्मनाभ से जाने की अनुमति ली और अनुमति लेकर जिस दिशा से आये थे उसी ओर वापस चल दिये।

पउमणाभट्ठं दोवईए देवकयं साहरणं—

६२. तए णं से पउमनाभे राया कच्छुल्लनारयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म दोवईए देवीए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता पुव्वसंगइयं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ।

पद्मनाभ के लिये द्रौपदी का देवकृत अपहरण—

६२. तत्पश्चात् वह पद्मनाभ राजा कच्छुल्ल नारद के इस अर्थ-वृत्तान्त को सुनकर और मन में विचार कर द्रौपदी देवी के रूप, यौवन और लावण्य में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त, तल्लीन होकर जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर अपने पूर्व के साथी देव का मन में ध्यान करते हुए बैठ गया।

तए णं पउमनाभस्स रण्णो अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि पुव्वसंगइओ देवो-जाव-आगओ।

'भणंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए कायव्वं।'

तए णं से पउमनाभे पुव्वसंगइयं देवं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणा-

तत्पश्चात् उस पद्मनाभ राजा का अष्टम भक्त (तेला) पूर्ण हुआ तब पूर्व परिचित देव—यावत्—आया।

'हे देवानुप्रिय ! मेरे योग्य जो कार्य हो बतायें।'

तब पद्मनाभ ने अपने पूर्व के साथी देव से यह कहा—

'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि जम्बूद्वीप नामक द्वीप के

वरे नयरे दुपयस्स रण्णो धूया चुलणीए देवीए अत्तया पंडुस्स सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई नामं देवी रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! दोवइं देविं इह हव्वमाणीयं।"

भारतवर्ष में हस्तिनापुर नगर में द्रुपद राजा की पुत्री, चुलनी रानी की आत्मजा पांडु की पुत्रवधू, पांचों पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी रूप से, यौवन से और लावण्य से उत्कृष्ट है और उत्कृष्ट शरीर वाली है। तो हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि शीघ्र ही उस द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया जाये।

९३. तए णं से पुव्वसंगइए देवे पउमनाभं एवं वयासी—

"नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं दोवई देवी पंच पंडवे मोत्तूणं अण्णेणं पुरिसेणं सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरिस्सइ। तहा वि य णं अहं तव पियट्ठयाए दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमि" त्ति कट्टु पउमनाभं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-देवगईए लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

९३. तत्पश्चात् उस पूर्व के साथी देव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि द्रौपदी देवी पांचों पांडवों को छोड़कर और किसी दूसरे पुरुष के साथ उदार मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरण करे। तथापि मैं तुम्हारे प्रियार्थ—इष्ट प्रयोजन के लिये द्रौपदी देवी को अभी शीघ्र यहां ले आता हूँ।' ऐसा कहकर उस देव ने पद्मनाभ से अनुमति ली और अनुमति लेकर उस उत्कृष्ट—यावत्—देवगति से लवण समुद्र के बीचों-बीच से गमन करते हुए जहाँ हस्तिनापुर नगर था उसी ओर गमन करने के लिये उद्यत हुआ।

९४. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिणाउरे नयरे जुहिट्ठिल्ले राया दोवईए देवीए सद्धिं उप्पिं आगासतलगंसि सुहप्पसुत्ते यावि होत्था। तए णं से पुव्वसंगइए देवे जेणेव जुहिट्ठिल्ले राया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवईए देवीए ओसोवणिं दलयइ, दलइत्ता दोवइं देविं गिण्हइ, गिण्हित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-देवगईए जेणेव अवरकंका जेणेव पउमनाभस्स भवणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमनाभस्स भवणंसि असोगवणियाए दोवइं देविं ठावेइ, ठावेत्ता ओसोवणिं अवहरइ, अवहरित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

"एस णं देवाणुप्पिया ! मए हत्थिणाउराओ दोवई देवी इहं हव्वमाणीया तव असोगवणियाए चिट्ठइ। अओ परं तुमं जाणसि" त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

९४. उस काल और उस समय हस्तिनापुर नगर में युधिष्ठिर राजा द्रौपदी देवी के साथ ऊपर अगासी-महल की ऊपरी छत पर सुखपूर्वक सोया हुआ था। तब वह पूर्व का साथी देव जहाँ युधिष्ठिर राजा था, जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ आया, वहाँ आकर द्रौपदी देवी को अवस्वापिनी निद्रा में सुला दिया, सुलाकर द्रौपदी देवी को ग्रहण करके उस उत्कृष्ट—यावत्—देवगति से जहाँ अपरकंका नगरी थी; जहाँ पद्मनाभ का महल था, वहाँ आया, वहाँ आकर पद्मनाभ के महल की अशोकवाटिका में द्रौपदी देवी को रखा; रखकर अवस्वापिनी निद्रा का संहरण किया—अपहरण किया—समेट लिया, संहरण करके जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ आया, वहाँ आकर इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रिय ! मैं हस्तिनापुर से द्रौपदी देवी को शीघ्र ही यहाँ ले आया हूँ, जो तुम्हारी अशोक वाटिका में है। इसके बाद आगे तुम जानो'— ऐसा कहकर वह देव जिस ओर से आया, उसी दिशा में लौट गया।

दोवईए चिंता—

९५. तए णं सा दोवई देवी तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धा समाणी तं भवणं असोगवणियं च अपच्चभिजाणमाणी एवं वयासी—

"नो खलु अम्हं एसे सए भवणे, नो खलु एसा अम्हं सगा असोगवणिया। तं न नज्जइ णं अहं केणइ देवेण वा दाणवेण वा किंपुरिसेण वा किन्नरेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा अण्णस्स रण्णो असोगवणियं साहरिय" त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।

द्रौपदी की चिन्ता

९५. तत्पश्चात् कुछ क्षणों के बाद जागने पर उस भवन और अशोक वाटिका को अपरिचित जानकर वह द्रौपदी देवी मन-ही-मन विचार करने लगी—

'यह मेरा अपना भवन नहीं है और यह अशोक वाटिका भी मेरी अपनी नहीं है। मालूम होता है कि किसी देव या दानव या किन्नर या किंपुरुष या महोरग या गंधर्व द्वारा किसी दूसरे राजा की अशोक वाटिका में मेरा संहरण किया गया है।' ऐसा विचार करके वह भग्नमनोरथा होकर हथेली पर मुँह को रखकर आर्त-ध्यान में डूब गई।

पउमनाभेण आसासणं—

९६. तए णं से पउमनाभे राया ण्हाए-जाव-सव्वालंकारविभूसिए अंतेउर-परियाल-संपरिवुडे जेणेव असोगवणिया जेणेव दोवई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दोवइं देविं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

"किन्नं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि ? एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मम पुव्वसंगइएणं देवेणं जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहरिया । तं मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि । तुमं णं मए सद्धिं विपुलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहराहि ।"

पद्मनाभ द्वारा आश्वासन

९६. तत्पश्चात् पद्मनाभ राजा ने स्नान किया—यावत्—समस्त अलंकारों से विभूषित होकर, अन्तःपुर के परिवार से परिवृत्त होकर जहाँ अशोक वाटिका थी, जहाँ द्रौपदी देवी थी, वहाँ आया, वहाँ आकर द्रौपदी देवी को भग्नमनोरथ हो, हथेली पर मुँह को रखकर आर्तध्यान में मग्न देखा, देखकर उसने कहा—

'हे देवानुप्रिये ! तुम संकल्प-विकल्पों में लीन होकर, हथेली पर मुँह को रखकर आर्तध्यान में क्यों मग्न हो ? देवानुप्रिये ! तुम मेरे पूर्व के साथी देव द्वारा जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र से, हस्तिनापुर नगर से और युधिष्ठिर राजा के भवन से संहरित करके—उठाकर यहाँ लायी गई हो। अतएव हे देवानुप्रिये ! तुम हतमन संकल्प होकर हथेली पर मुख को रखकर आर्तध्यान में मग्न न होओ। किन्तु मेरे साथ विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए विचरण करो।

९७. तए णं सा दोवई देवी पउमनाभं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे बारवईए नयरीए कण्हे नामं वासुदेवे मम पियभाउए परिवसइ। तं जइ णं से छण्हं मासाणं मम कूवं नो हव्वमागच्छइ, तए णं अहं देवाणुप्पिया ! जं तुमं वदसि तस्स आणा-ओवाय-वयणनिद्देसे चिट्ठिस्सामि।

तए णं से पउमनाभे दोवईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ पडिसुणेत्ता दोवइं देविं कण्णंतेउरे ठवेइ।

तए णं सा दोवई देवी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं आयंबिल-परिग्गहिएणं तवो-कम्मेणं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

९७. तब उस द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि जम्बू द्वीप के भारतवर्ष की द्वारवती नगरी में मेरे पति के भाई कृष्ण नामक वासुदेव रहते हैं। सो यदि छह महीने तक वे मुझे वापस लेने के लिये नहीं आते हैं तो फिर हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम कहते हो, तुम्हारी आज्ञा, उपाय और वचन निर्देश में रहूँगी अर्थात् आप जो कहेंगे वही करूँगी।

तत्पश्चात् पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के इस कथन को स्वीकार किया और स्वीकार करके द्रौपदी देवी को अन्तःपुर में रख दिया—भेज दिया।

इसके बाद वह द्रौपदी देवी निरन्तर षष्ठभक्त और पारणे में आयंबिल के तपःकर्म से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

जुहिट्ठिलेण पंडुरायं पइ दोवईअवहरणनिरूवणं—

९८. तए णं से जुहिट्ठिले राया तओ मुहुत्तंतरस्स पडिबुद्धे समाणे दोवइं देविं पासे अपासमाणे सयणिज्जाओ उट्ठेइ, उट्ठेत्ता दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेइ, करेत्ता दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा अलभमाणे जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु ताओ ! ममं आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा नीया वा अवक्खित्ता वा। तं इच्छामि णं ताओ ! दोवईए देवीए सव्वओ

युधिष्ठिर द्वारा पांडुराजा के समक्ष द्रौपदी—अपहरण निरूपण

९८. तत्पश्चात्—द्रौपदी का अपहरण हो जाने के पश्चात्—युधिष्ठिर राजा कुछ देर में जागने पर द्रौपदी देवी को अपने पास न देखकर शैया से उठे, उठकर सब तरफ चारों दिशाओं में द्रौपदी देवी की मार्गणा-गवेषणा की, गवेषणा करके जब कहीं भी द्रौपदी देवी की श्रुति (भनकार) क्षुति (छींक वगैरह) या प्रवृत्ति (खबर) न पाकर जहाँ पांडुराजा थे, वहाँ आये और वहाँ आकर पांडुराजा से इस प्रकार बोले—

'हे तात ! बात यह है कि अगासी पर सुखपूर्वक सोये हुए मेरे पास से द्रौपदी देवी का न जाने किसी देव या दानव या किन्नर या किंपुरुष या महोरग या गंधर्व ने हरण कर लिया, पकड़ लिया अथवा कुए आदि में पटक दिया है। अतएव हे तात !

समंता मग्गण-गवेसणं करित्तए।"

मैं चाहता हूँ कि द्रौपदी देवी की सब तरफ चारों दिशाओं में सब प्रकार से मार्गणा गवेषणा की जाय।'

तए णं से पंडू राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी –

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! हत्थिणाउरे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयह एवं खलु देवाणुप्पिया! जुहिट्ठिलस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा णीया वा अवक्खित्ता वा। तं जो णं देवाणुप्पिया! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा परिकहेइ, तस्स णं पंडू राया विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसावेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तब पाडुराजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और हस्तिनापुर नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग और मार्ग आदि में बड़े जोर-जोर से उद्घोषणा करते-करते इस प्रकार कहो- 'हे देवानुप्रियो! आकाशतल—अगासी पर सुखपूर्वक सोते हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी को न जाने किसी देव, दानव, किन्नर, किंपुरुष, महोरग अथवा गंधर्व ने हरण कर लिया है, पकड़ लिया है अथवा कुए आदि में पटक दिया है, धकेल दिया है। इसलिए हे देवानुप्रियो! जो कोई भी द्रौपदी देवी की श्रुति अथवा क्षुति अथवा प्रवृत्ति बतलायेगा उसे पाडुराजा विपुल अर्थ संपदा पारितोषिक के रूप में देंगे, इस प्रकार की घोषणा करो, घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ अर्थात् घोषणा करने की मुझे सूचना दो।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-पच्चप्पिणंति।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा करके—यावत्—आज्ञा वापस लौटाई, आदेश पूर्ति की सूचना दी।

पंडुरायपेसियाए कोंतीए कण्हं पइ दोवइअन्नेसणत्थनिरूवणं—

पांडुराजा द्वारा प्रेषित कुन्ती का कृष्ण को द्रौपदी-अन्वेषण हेतु कथन

६६. तए णं से पंडू राया दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा अलभमाणे कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एयमट्ठं निवेदेहि - कण्हे णं वासुदेवे दोवईए मग्गण-गवेसणं करेज्जा, अण्णहा न नज्जइ दोवईए देवीए सुई वा खुई वा पवत्ती वा।

६६. तत्पश्चात्—घोषणा करने के पश्चात्—भी जब पाडुराजा कहीं भी द्रौपदी देवी की श्रुति, अथवा क्षुति अथवा प्रवृत्ति के समाचार न जान सके तब उन्होंने कुन्ती देवी को बुलाया और बुलाकर कुन्ती देवी से इस प्रकार बोले—हे देवानुप्रिये! तुम द्वारवती नगरी जाओ और कृष्ण वासुदेव से ये अर्थ—समाचार निवेदन करो—कृष्ण वासुदेव ही द्रौपदी देवी की मार्गणा—गवेषणा कर सकेंगे, अन्यथा द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति अथवा प्रवृत्ति का पता नहीं लग सकता है।

१००. तए णं सा कोंती देवी पंडुणा एवं वुत्ता समाणी-जाव-पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा हत्थिखंधवरगया हत्थिणाउरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निगच्छित्ता कुरुजणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सुरट्ठाजणवए जेणेव बारवई नयरी जेणेव अग्गुज्जाणे जेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थिखंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

१००. तत्पश्चात् कुन्ती देवी ने पांडुराजा की इस बात को सुनकर—यावत्—स्वीकार किया, स्वीकार करके स्नान किया और बलिकर्म आदि करके श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर बैठ कर हस्तिनापुर नगर के मध्य भाग से निकली, निकलकर कुरुजनपद के मध्य भाग में से चलते-चलते जहाँ सौराष्ट्र जनपद था, द्वारवती नगरी थी, और जहाँ उस नगरी का अग्र उद्यान था वहाँ आई, वहाँ आकर हाथी से नीचे उतरी, उतर कर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और उन्हें बुलाकर इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवइं नयरिं, जेणेव कण्हस्स वासुदेवस्स गिहे तेणेव अणुपविसह, अणुपविसित्ता कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयह --एवं खलु सामी! तुब्भं पिउच्छा कोंती देवी हत्थिणाउराओ

'हे देवानुप्रियो! तुम द्वारवती नगरी में जाओ, जहाँ कृष्ण वासुदेव का प्रासाद है, उसमें प्रवेश करो, प्रवेश करके कृष्ण वासुदेव को दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहना—हे स्वामिन्! आपके पिता की

नयराओ इहं हव्वमागया तुब्भं दंसणं कंखइ।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-कहेंति।

तए णं कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे हत्थिखंधवरगए बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोंती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हत्थि-खंधाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता कोंतीए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता कोंतीए देवीए सद्धिं हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता सयं गिहं अणुप्पविसइ।

१०१. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं देविं ण्हायं कयबलिकम्मं जिमियभुत्तुत्तरागयं वि य णं समाणिं आयंतं चोक्खं परमसुइभूयं सुहासणवरगयं एवं वयासी—

संदिसउ णं पिउच्छा! किमागमणपओयणं?

तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु पुत्ता! हत्थिणाउरे नयरे जुहिट्ठिलस्स रण्णो आगासतलए सुहप्प-सुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ अवहिया निया अवक्खित्ता वा। तं इच्छामि णं पुत्ता! दोवईए देवीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं पिउच्छं एवं वयासी—"जं नवरं—पिउच्छा! दोवईए देवीए कत्थइ सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा लभामि, तो णं अहं पायालाओ वा भवणाओ वा अद्धभरहाओ वा समंतओ दोवइं देविं साहत्थिं उवणेमि" त्ति कट्टु कोंतिं पिउच्छं सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तए णं सा कोंती देवी कण्हेणं वासुदेवेणं पडिविसज्जिया समाणी जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

कण्हस्स दोवईगवेसणाएसो—

१०२. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया-महया सद्देणं

बहिन-फूफी, भुआ—कुन्तीदेवी हस्तिनापुर नगर से शीघ्र अभी यहाँ आई हैं और आपके दर्शन की इच्छुक हैं—आपसे मिलना चाहती हैं।'

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—कृष्ण से कुन्ती के आगमन के समाचार कहे।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव कौटुम्बिक पुरुषों से इस संवाद को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट होते हुए श्रेष्ठ हाथी पर बैठकर द्वारिका नगरी के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ कुन्तीदेवी थीं वहाँ आये, वहाँ आकर हस्तीस्कन्ध से नीचे उतरे, नीचे उतर-कर कुन्तीदेवी का चरणस्पर्श किया, चरणस्पर्श करके कुन्तीदेवी को साथ लेकर हाथी पर आसीन हुए, आसीन होकर द्वारवती नगरी के बीचोंबीच से होते हुए जहाँ अपना महल था, वहाँ आये और वहाँ आकर अपने महल में प्रविष्ट हुए।

१०१. तत्पश्चात् जब कुन्तीदेवी स्नान बलिकर्म और भोजन कर चुकने के अनन्तर आचमन करके पूर्ण रूपेण स्वच्छ परम शुचिभूत होकर श्रेष्ठ सुखासन पर बैठ गई तब कृष्ण वासुदेव ने पूछा—

'हे पितृभगिनी (भुआ)! कहिये, आपके यहाँ आने का क्या प्रयोजन है?'

तब कुन्ती देवी ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र! बात यह है कि हस्तिनापुर नगर में अगासी पर सुखपूर्वक सोये हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किसी ने अपहरण कर लिया है, उसे पकड़ लिया है अथवा कुएँ आदि में पटक दिया है। अतएव—हे पुत्र! मैं चाहती हूँ कि तुम सब तरफ चारों दिशाओं में सब तरह से द्रौपदी देवी की मार्गणा—गवेषणा करो।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कुन्ती भुआ से कहा—'हे भुआजी! मैं और अधिक तो कुछ नहीं कहता किन्तु द्रौपदी देवी की यदि कहीं पर भी श्रुति, क्षुति अथवा प्रवृत्ति का पता पा लेता हूँ तो चाहे वह पाताल हो अथवा भवन हो अथवा अर्धभरत क्षेत्र हो, कहीं पर भी क्यों न हो, सब जगह से द्रौपदी देवी को अपने हाथ से ले आऊँगा।'—इस प्रकार कहकर अपनी भुआ कुन्तीदेवी का सत्कार किया, सम्मान किया और सत्कार सम्मान करके विदा किया।

इसके बाद कुन्तीदेवी कृष्णवासुदेव से विदा होकर जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापस लौट गई।

कृष्ण का द्रौपदी गवेषणा—आदेश

१०२ तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और द्वारवती नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथ आदि

उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया ! जुहिट्ठिलस्स रण्णो आगासतलगंसि सुहपसुत्तस्स पासाओ दोवई देवी न नज्जइ केणइ देवेण वा दाणवेण वा किण्णरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा हिया वा निया वा अवक्खित्ता वा। तं जो णं देवाणुप्पिया ! दोवईए देवीए सुइं वा खुइं वा पवत्तिं वा परिकहेइ, तस्स णं कण्हे वासुदेवे विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु घोसणं घोसावेह, घोसावेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-पच्चप्पिणंति।

तए णं से कण्हे वासुदेवे अण्णया अंतोअंतेउरगए ओरोहे-संपरिवुडे सीहासणवरगए विहरइ।

नारयाओ दोवइउदंतलंभो—

१०३. इमं च णं कच्छुल्लनारए-जाव-झत्ति-वेगेण समोवइए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता अग्घेणं पज्जेणं आसणेणं उवनिमंतेइ।

तए णं कच्छुल्लनारए उदगपरिफोसियाए दब्भोवरिपच्चत्थुयाए भिसियाए निसीयइ, निसीइत्ता कण्हं वासुदेवं कुसलोदंतं पुच्छइ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एवं वयासी—तुमं णं देवाणुप्पिया ! बहूणि गामागर-जाव-गिहाइं अणुपविससि, तं अत्थि याइं ते कहिंचि दोवईए देवीए सुई वा खुई वा पवित्ती वा उवलद्धा?

तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अण्णया धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धं दाहिणड्ढ-भरहवासं अवरकंका-रायहाणिं गए। तत्थ णं मए पउमनामस्स रण्णो भवणंसि दोवई-देवी जारिसिया दिट्ठपुव्वा यावि होत्था।

तए णं कण्हे वासुदेवे कच्छुल्लनारयं एवं वयासी—"तुब्भं चेव णं देवाणुप्पिया ! एवं पुव्वकम्मं।"

तए णं से कच्छुल्लनारए कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे उप्पयणिं विज्जं आवाहेइ, आवाहेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

सपंडवस्स कण्हस्स दोवई आणयणट्ठं धायइसंडं पइ पयाणं

१०४. तए णं से कण्हे वासुदेवे दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं

में जोर-जोर से शब्दों में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'हे देवानुप्रियो ! अगासी पर सुखपूर्वक सोये हुए युधिष्ठिर राजा के पास से द्रौपदी देवी का न जाने किसी देव ने, दानव ने, किन्नर ने, किंपुरुष ने अथवा गंधर्व ने अपहरण कर लिया है, उसे पकड़ लिया है अथवा कुए आदि में पटक दिया है। इसलिए हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी द्रौपदी देवी की श्रुति, क्षुति अथवा प्रवृत्ति के बारे में बतलायेगा, उसे कृष्ण वासुदेव विपुल अर्थ संपत्ति पारितोषिक के रूप में भेंट देंगे, इस प्रकार की घोषणा करो और घोषणा करके मेरी यह आज्ञा वापस लौटाओ।

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उसी प्रकार घोषणा करके यावत्—आज्ञा वापस लौटाई।

तत्पश्चात् किसी एक समय कृष्ण वासुदेव अन्तःपुर के अन्दर अन्तःपुर वासिनी रानियों से परिवृत्त होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो बैठे थे।

नारद से द्रौपदी के समाचार की प्राप्ति

१०३. इधर उसी समय कच्छुल्ल नारद—यावत्—तीव्र वेग से उतरे।

तब कृष्णवासुदेव ने कच्छुल्ल नारद को आते हुए देखा, देखकर आसन से उठे, उठकर अर्घ्य और पाद्य से सत्कार करके आसन ग्रहण करने के लिए उन्हें आमन्त्रित किया।

तत्पश्चात् कच्छुल्ल नारद जल से सींचकर दर्भ पर बिछाये गये आसन पर बैठे, बैठकर कृष्ण वासुदेव से क्षेम कुशल के समाचार पूछे।

तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से कहा—हे देवानुप्रिय आप तो बहुत से ग्राम, आकर—यावत्—घरों में जाते हैं, तो कहीं किसी जगह द्रौपदी की श्रुति, क्षुति अथवा प्रवृत्ति आदि का कोई समाचार सुना है?

तब उन कच्छुल्ल नारद ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा

'हे देवानुप्रिय ! किसी एक समय मैं धातकीखंड द्वीपवर्ती पूर्व दिशा के दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र की अमरकंका नामक राजधानी में गया था। वहाँ मैंने पद्मनाभ राजा के भवन में द्रौपदी देवी जैसी पूर्व में देखी हुई किसी देवी को देखा था।'

तब कृष्ण वासुदेव ने कच्छुल्ल नारद से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! यह सब तुम्हारी ही कृति है अर्थात् तुम्हारी ही करतूत है।'

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव के इस प्रकार से कहने पर कच्छुल्ल नारद ने उत्पातिनी विद्या का आह्वान किया, आह्वान करके जिस दिशा से आये थे, उसी दिशा को लौट गये।

पांडव सहित कृष्ण का द्रौपदी के लाने के लिए धातकीखंड की ओर प्रयाण

१०४. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने दूत को बुलाया, बुलाकर उससे

वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! हत्थिणाउरं णयरं पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं निवेएहि—एवं खलु देवाणुप्पिया ! धायइसंडदीवे पुरत्थिमद्धे दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंकाए रायहाणीए पउमनाभ-भवणंसि दोवईए देवीए पउत्ती उवलद्धा, तं गच्छंतु पंच पंडवा चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा पुरत्थिम-वेयालीए ममं पडिवालेमाणा चिट्ठंतु ।

इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम हस्तिनापुर नगर में जाओ और वहाँ पांडुराजा से यह संदेश निवेदन करना—'हे देवानुप्रिय ! धातकीखंड द्वीप के पूर्व दिशावर्ती दक्षिणार्ध भारतवर्ष में अपरकंका राजधानी में पद्मनाभ के भवन में द्रौपदी देवी की प्रवृत्ति की जानकारी मिली है अर्थात् वहाँ द्रौपदी देवी के होने का पता लगा है, इसलिए पाँचों पांडव चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर पूर्व दिशा के वेतालिक—समुद्री किनारे पर मेरी प्रतीक्षा करें ।

तए णं से दूए भणइ-जाव-पडिवालेमाणा चिट्ठह । तेवि-जाव-चिट्ठंति ।

तत्पश्चात् दूत ने जाकर कहा—यावत्—प्रतीक्षा करें । वे भी उसी प्रकार—अर्थात् पाँचों पांडव वहाँ जाकर—यावत्—कृष्ण की प्रतीक्षा करने लगे ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सन्नाहियं भेरिं तालेह । तेवि तालेंति ।

तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और सान्नाहिक (युद्ध सम्बन्धी) भेरी ताड़ित करो—बजाओ । वे कौटुम्बिक पुरुष भेरी बजाते हैं ।

तए णं तीए सन्नाहियाए भेरीए सद्दं सोच्चा समुद्दविजयपामोक्खा दस दसारा-जाव-छप्पन्नं बलवगसाहस्सीओ सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलिय-सरासण-पट्टिया पिणद्ध-गेविज्जा आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टा गहियाउहपहरणा अप्पेगइया हयगया अप्पेगइया गयगया-जाव-पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति ।

तदनन्तर उस सान्नाहिक भेरी के शब्द को सुनकर समुद्र-विजय प्रमुख दसों दशार्ह—यावत्—छप्पन हजार बलवान योद्धा सन्नद्ध—युद्ध के लिये तैयार होकर कवच बाँधकर, हाथों में शरासन चर्मपट्टका को धारण कर, वक्ष-स्थल आदि की रक्षा के लिये ग्रैवेयक को पहनकर, विमल—वर—श्रेष्ठ संकेत पट्टकों को लगाकर और हाथों में प्रहरणों प्रहार करने के शस्त्रों को लेकर कोई घोड़े पर सवार होकर, कोई हाथी आदि पर सवार होकर—यावत्—सुभटों के समूह के साथ जहाँ सुधर्मा सभा थी, जहाँ कृष्णवासुदेव थे, वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्त पूर्वक अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया ।

कण्हस्स देवाराहणं—

कृष्ण का देवाराधन—

१०५. तए णं से कण्हे वासुदेवे हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं वीइज्जमाणे हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ते बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव पुरत्थिमवेयाली तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं एगयओ मिलइ, मिलित्ता खंधावारनिवेसं करेइ, करेत्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सुट्ठियं देवं मणसीकरेमाणे-मणसीकरेमाणे चिट्ठइ ।

१०५. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव श्रेष्ठ हाथी पर आरूढ़ होकर मस्तक पर कोरंट—पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र धारण कर श्वेत धवल चामरों से विंजाते हुए अश्व, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के द्वारा परिवृत्त होकर महान् सुभटों के समूह, रथ और पदाति सैन्यवृन्द को साथ लेकर द्वारवती नगरी के मध्यभाग में से निकले, निकलकर जहाँ पूर्व दिशा का वेतालिक था वहाँ आये, वहाँ आकर पाँचों पांडवों के साथ—इकट्ठे हुए—मिले, मिलकर स्कन्धावार निवेश किया—पड़ाव डाला, पड़ाव डालकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट होकर सुस्थित देव का मन में चिन्तन-स्मरण करते हुए स्थित हो गये ।

तए णं कण्हस्स वासुदेवस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि सुट्ठिओ-जाव-आगओ—"भणंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए कायव्वं ।"

तदनन्तर कृष्ण वासुदेव के अष्टम भक्त के परिणमित—पूर्ण होने पर सुस्थित देव—यावत्—आया—'हे देवानुप्रिय ! कहिये, जो मुझे करना है—अथवा मुझे क्या करना है ?'

कण्हनिद्देसेण सुट्ठियदेवकओ लवणसमुद्दमज्झमग्गो—

१०६. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी— एवं खलु देवाणुप्पिया ! दोवई देवी धायईसंडदीवे पुरत्थिमद्धे दाहिणड्ढ-भरहवासे अवरकंकाए रायहाणीए पउमनाभभवणंसि साहिया, तण्ण तुमं देवाणुप्पिया ! मम पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियराहि, जेणाहं अवरकंकं रायहाणिं दोवईए कूवं गच्छामि।

तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी— किण्णं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई देवी जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ अवरकंकाओ राय-हाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ हत्थिणाउरं साहरामि ? उदाहु-पउमनाभं रायं सपुरबलवाहणं लवणसमुद्दे पक्खिवामि ?

१०७. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं देवं एवं वयासी—मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! जहा चेव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं दोवई देवी जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणा-उराओ नयराओ जुहिट्ठिलस्स रण्णो भवणाओ साहिया, तहा चेव दोवइं देविं धायईसंडाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ अवरकंकाओ रायहाणीओ पउमनाभस्स रण्णो भवणाओ हत्थिणाउरं साहराहि। तुमं णं देवाणुप्पिया ! मम लवणसमुद्दे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्प-छट्ठस्स छण्हं रहाणं मग्गं वियराहि। सयमेव णं अहं दोवईए कूवं गच्छामि।

तए णं से सुट्ठिए देवे कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं होउ। पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठस्स छण्हं रहाणं लवणसमुद्दे मग्गं वियरइ।

पउमनाभसमीवे कण्हेण दूयपेसणं—

१०८. तए णं से कण्हे वासुदेवे चाउरंगिणिं सेणं पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जेत्ता पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवण-समुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयइ, वीईवइत्ता जेणेव अवरकंका रायहाणी जेणेव अवरकंकाए रायहाणीए अग्गुज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता दारुयं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! अवरकंकं रायहाणिं अणुप्पविसाहि, अणुप्पविसित्ता पउमनाभस्स रण्णो वामेणं पाएणं पायपीढं अक्कमित्ता कुन्तग्गेणं लेहं पणामेहि, पणामेत्ता तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमि-

कृष्ण के निर्देश से सुस्थितदेवकृत लवणसमुद्र के मध्य मार्ग—

१०६. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! अपहरण करके द्रौपदी देवी को ले जाकर धातकीखंड द्वीप के पूर्व दिशावर्ती दक्षिणार्ध भरत क्षेत्र में अपरकंका राजधानी में पद्मनाभ राजा के भवन में रखा गया है, इसलिये हे देवानुप्रिय ! पाँचों पाण्डवों और छठे मेरे इस प्रकार छहों रथों के पार होने के लिये लवणसमुद्र में मार्ग बनाओ जिससे मैं अपरकंका राजधानी में द्रौपदी को वापस छीनने के लिये जा सकूं।'

तत्पश्चात् उस सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्व परिचित देव द्वारा जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में स्थित हस्तिनापुर नगर में से राजा युधिष्ठिर भवन से द्रौपदी देवी का अपहरण किया गया है, उसी प्रकार से क्या मैं भी धातकीखंड द्वीप के भारत वर्ष में स्थित अपरकंका राजधानी में से पद्मनाभ राजा के भवन से हस्तिनापुर में संहरित कर दूं—वापस ले आऊँ ? अथवा पद्मनाभ राजा को उसके नगर, बल-सेना और वाहन-रथ आदि सहित लवणसमुद्र में फैंक दूं ?

१०७. तब कृष्ण वासुदेव ने सुस्थित देव से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! जैसे पद्मनाभ राजा के पूर्व संगतिक देव ने जम्बूद्वीप में स्थित भरतक्षेत्र के हस्तिनापुर नगर में से युधिष्ठिर राजा के भवन से द्रौपदी देवी का अपहरण किया है, उसी प्रकार धातकीखंडद्वीप के भारतवर्ष में स्थित अपरकंका राजधानी के पद्मनाभ राजा के भवन से द्रौपदी देवी को हस्तिनापुर में संहरित मत करो किन्तु हे देवानुप्रिय ! तुम तो पाँचों पाण्डवों सहित छठे मेरे—कुल छह रथों को जाने के लिये लवणसमुद्र में मार्ग बना दो। मैं स्वयं ही द्रौपदी देवी को वापस लाने के लिये जाऊँगा'

तब सुस्थित देव ने कृष्ण वासुदेव से कहा—'ऐसा ही हो' और यह कहकर उसने पाँचों पाण्डवों सहित छठे वासुदेव के इस प्रकार छह रथों को जाने के लिये लवणसमुद्र में मार्ग बनाया।

पद्मनाभ के समीप कृष्ण द्वारा दूत प्रेषण—

१०८. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने चतुरंगिणी सेना को विदा करके पाँचों पाण्डवों के साथ और छठे स्वयं छह रथों में बैठकर लवणसमुद्र के मध्यभाग में से होकर चले और चलकर जहाँ अपरकंका राजधानी थी, जहाँ अपरकंका राजधानी का अग्र उद्यान था, वहाँ आये, वहाँ आकर रथ को रोका, रथ को रोककर दारुक नामक सारथी को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और अपरकंका राजधानी में प्रवेश करो, प्रवेश करके पद्मनाभ राजा के पादपीठ को अपने बायें पैर से आक्रान्त करके भाले की नोंक के द्वारा यह

सेमाणे एवं वयासि—हंभो पउमनाभा ! अपत्थियपत्थिया ! दुरंत-पंतलक्खणा ! हीणपुण्णचाउद्दसा ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! अज्ज न भवसि । किण्णं तुमं न याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स भगिणिं दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमाणे ? तं एवमवि गए पच्चप्पिणाहि णं तुमं दोवइं देविं कण्हस्स वासुदेवस्स, अहव णं जुद्धसज्जे निग्गच्छाहि । एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए ।

पत्र (लेख) देना, लेख देकर कपाल पर तीन बल डाल भृकुटी तानकर—चढ़ाकर क्रोध से आँखें लाल करके, रुष्ट होकर, कुपित होकर चंडिका जैसा रूप बनाकर मिसमिसाते हुए ऐसा कहना—अरे ओ पद्मनाभ ! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले - मौत की कामना करने वाले ! दुरन्त प्रान्त लक्षण वाले पुण्यहीन—अभागे ! चातुर्दशिक—चतुर्दशी को जन्मे हुए (अथवा हीन पुण्य वाली चतुर्दशी कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को जन्मे हुए) ! श्री ह्री धृति कीर्ति से हीन अब तू नहीं रहेगा । क्या तू नहीं जानता है कि तू कृष्ण वासुदेव की बहिन द्रौपदी देवी को यहाँ ले आया है—हरण करवा के यहाँ मँगवाया है ? खैर, जो हुआ सो हुआ, लेकिन अब भी तू द्रौपदी देवी को वापस कृष्ण वासुदेव को लौटा दे अथवा युद्ध के लिये तैयार होकर बाहर निकल । वे कृष्ण वासुदेव पाँचों पांडवों के साथ छठे आप स्वयं द्रौपदी देवी को वापस छीनने के लिये अभी-अभी यहाँ आ पहुँचे हैं ।'

१०९. तए णं से दारुए सारही कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—एस णं सामी ! मम विणयपडिवत्ती, इमा अण्णा मम सामिस्स समुहाणत्ति त्ति कट्टु आसुरुत्ते वामपाएणं पायपीढं अक्कमइ, अक्कमित्ता कुन्तग्गेणं लेहं पणामेइ, पणामेत्ता तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे एवं वयासी—हंभो पउमणाभा ! अपत्थियपत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीणपुण्णचाउद्दसा ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! अज्ज न भवसि । किण्णं तुमं न याणासि कण्हस्स वासुदेवस्स, अहव णं जुद्धसज्जे निग्गच्छाहि । एस णं कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए ।

१०९. तत्पश्चात् उस दारुक सारथी ने कृष्णवासुदेव के इस कथन को हृष्ट-तुष्ट होते हुए स्वीकार किया, स्वीकार करके अपरकंका राजधानी में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ पद्मनाभ था, वहाँ आया, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ शिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! यह मेरी अपनी विनय प्रतिपत्ति (शिष्टाचार) है, किन्तु मेरे स्वामी के मुख से कही गई आज्ञा दूसरी है,' इस प्रकार कहकर क्रोध से आँखें लाल करके बायें पैर से पादपीठ को आक्रांत किया, आक्रान्त करके भाले की नौंक से लेख दिया, लेख देकर भाल में तीन बल डाल, भृकुटि तानकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंड रूप हो, मिसमिसाते हुए बोला—'अरे ओ पद्मनाभ ! अकालमरण का इच्छुक ! दुरन्त प्रान्त लक्षण वाला, भाग्यहीन, चातुर्दशिक ! श्री ह्री, धृति, कीर्ति से विहीन ! आज तू नहीं रहेगा । क्या तू नहीं जानता है कि कृष्ण वासुदेव की भगिनी द्रौपदी देवी को तू यहाँ ले आया है ? खैर, ऐसा करने के बाद भी अब भी तू वापस कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी देवी लौटा दे अथवा युद्ध के लिये तैयार होकर नगर से बाहर निकल । वे कृष्ण वासुदेव पाँचों पांडवों के साथ, छठे आप स्वयं द्रौपदी देवी को वापस छीनने के लिये अभी तत्काल ही यहाँ आ पहुँचे हैं ।'

पउमनाभेण दूयस्स अवमाणणं—

११०. तए णं से पउमनाभे दारुएणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलिं भउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी—

"णप्पिणामि णं अहं देवाणुप्पिया ! कण्हस्स वासुदेवस्स

पद्मनाभ द्वारा दूत का अपमान

११०. तत्पश्चात् वह पद्मनाभ दारुक सारथी के इस कथन को सुनकर क्रोध से लाल होकर, रुष्ट, कुपित और चंड रूप हो, दाँतों को मिसमिसाते हुए कपाल पर तीन बल डाल, भृकुटि तानकर कर इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रिय ! मैं कृष्ण वासुदेव को द्रौपदी वापस नहीं

बोवइं । एस णं अहं सयमेव जुज्झसज्जे निग्गच्छामि" त्ति कट्टु दारुयं सारहिं एवं वयासी—

"केवलं भो ! रायसत्थेसु दूए अवज्झे"-त्ति कट्टु असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं निच्छुभावेइ ।

लौटाऊँगा—किन्तु मैं स्वयं ही युद्ध के लिये सज्जित होकर निकलूँगा—ऐसा कहकर पुनः दारुक सारथी से बोला—

'हे दूत ! राजनीति में दूत अवध्य है' (अतः मैं तुझे नहीं मारता हूँ) इस प्रकार कहकर सत्कार सम्मान न करके अपमान करके पिछले द्वार से उसे बाहर निकाल दिया ।

दूयस्स कण्हसमीवे आगमणं—

१११. तए णं से दारुए सारही पउमणाभेणं रण्णा असक्कारिय असम्माणिय अवद्दारेणं निच्छूढे समाणे जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

एवं खलु अहं सामी ! तुब्भं वयणेणं अवरकंकं रायहाणिं गए-जाव-अवद्दारेणं निच्छुभावेइ ।

दूत का कृष्ण के समीप आगमन

१११. तत्पश्चात् वह दारुक सारथी पद्मनाभ राजा के द्वारा असत्कारित असम्मानित एवं पिछले द्वार से निकाला गया होकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आया, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया और बधाकर कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार बोला—

हे स्वामिन् ! आपके आदेश से मैं अपरकंका राजधानी में गया—यावत्—पिछले द्वार से निकाला गया ।

पउमनाभस्स पंडवेहिं जुद्धं—

११२. तए णं से पउमनाभे बलवाउयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह ।" तयाणंतरं च णं छेयायरिय-उवदेस-मइ-कप्पणा-विकप्पेहिं सुणिउणेहिं उज्जल-णेवत्थि-हव्व-परिवत्थियं सुसज्जं-जाव-हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडिकप्पेत्ता उवणेति ।

तए णं से पउमनाभे सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए-जाव-आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरुहइ, दुरुहित्ता हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंद-परिक्खित्ते जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

११३. तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमनाभं रायं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता ते पंच पंडवे एवं वयासी—हंभो दारगा ! किण्णं तुब्भे पउमनाभेणं सद्धिं जुज्झिहिह उदाहु पेच्छिहिह ?

तए णं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—अम्हे णं सामी ! जुज्झामो, तुब्भे पेच्छह ।

तए णं ते पंच पंडवा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-जाव-पहरणा रहे दुरुहंति, दुरुहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी—अम्हे वा, पउमनाभे वा राय त्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था ।

पद्मनाभ का पांडवों के साथ युद्ध

११२. तत्पश्चात् पद्मनाभ ने बलव्यापृत—सेनानायक को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सज्जित करो उसके बाद छेकाचार्य—कलाचार्य के उपदेश से उत्पन्न हुई बुद्धि की कल्पना से जन्य विकल्पों में निपुण पुरुषों ने आभिषेक्य हस्तिरत्न को उज्ज्वल निर्मल वेष-भूषा से परिवस्त्रित-सुसज्जित—यावत्—सुशोभित किया, सुशोभित करके पद्मनाभ के सामने उपस्थित किया ।

उसके बाद पद्मनाभ युद्ध के लिये तैयार हो, कवच आदि बाँधकर—यावत्—आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ हुआ, आरूढ होकर अश्व, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना के द्वारा परिवृत्त हो महान सुभटों, रथों आदि के समूह को साथ लेकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ जाने के लिये उद्यत हुआ ।

११३. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ राजा को आते देखा, देखकर वह पाँचों पांडवों से बोले—'अरे बालको ! तुम पद्मनाभ के साथ युद्ध करोगे अथवा देखोगे ?'

तब उन पाँचों पांडवों ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! हम युद्ध करेंगे, आप युद्ध को देखिये ।'

तत्पश्चात् वे पाँचों पांडव युद्ध के लिये सन्नद्ध—तैयार होकर, कवच आदि बाँध—यावत्—प्रहरणों-शस्त्रों को हाथ में लेकर रथों में आरूढ हुए, आरूढ होकर जहाँ पद्मनाभ राजा था, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँच कर 'आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है' ऐसा कहकर वे पद्मनाभ के साथ युद्ध करने में संलग्न हो गये—अर्थात् युद्ध के लिये भिड़ गये ।

पंडवाणं पराजओ—

११४. तए णं से पउमनाभे राया ते पंच पंडवे खिप्पामेव हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे

पांडवों की पराजय

११४. तत्पश्चात् उस पद्मनाभ राजा ने पाँचों पांडवों को शीघ्र ही आहत कर, अभिमान गर्व को मथित कर अर्थात् निरुत्साही

दिसोदिसिं पडिसेहेइ ।

बनाकर, श्रेष्ठ वीरों को घायल कर अथवा मारकर, संकेत ध्वज और पताका को गिराकर—छिन्न-भिन्न कर कंठगत प्राण जैसा करके दिशा-विदिशा में इधर-उधर भगा दिया ।

तए णं ते पंच पंडवा पउमनाभेणं रण्णा हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागा किच्छोवगयपाणा दिसोदिसिं पडिसेहिया समाणा अत्थामा अबला अवीरिया अपुरिसक्कारपरक्कमा अधारणिज्जमिति कट्टु जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छंति ।

तब वे पाँचों पांडव पद्मनाभ राजा द्वारा आहत, मथित प्रवर वीरों के घायल हुए, पतित संकेत ध्वज और पताका वाले, कंठगत प्राण वाले और इधर-उधर दिशा-विदिशा में भगाये हुए होकर शत्रु-सेना का सामना करने में असमर्थ, बल-वीर्य विहीन, पुरुषार्थ-पराक्रमहीन होकर और रुकना असम्भव समझ कर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आये ।

कण्हेण पराजय-हेउ-कहणपुव्वं जुज्झं—

११५. तए णं से कण्हे वासुदेवे ते पंच-पंडवे एवं वयासी—कहण्णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं संपलग्गा ?

तए णं ते पंच पंडवा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया-जाव-रहे दुरुहामो, दुरुहेत्ता जेणेव पउमनाभे तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एवं वयामो—अम्हे वा पउमनाभे वा रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गा । तए णं से पउमनाभे राया अम्हे खिप्पामेव हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहेइ ।

कृष्ण द्वारा पराजयहेतुकथनपूर्वक युद्ध

११५. तब कृष्ण वासुदेव ने उन पाँचों पांडवों से पूछा—"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग क्या कहकर पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध में संलग्न हुए ?"

तब पाँचों पांडवों ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! हम आपकी आज्ञा प्राप्त कर अथवा आपसे आज्ञा लेकर युद्ध के लिये तैयार हो, कवच बाँध—यावत्—रथ पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर जहाँ पद्मनाभ था, उसके सामने गये, सामने जाकर इस प्रकार कहा—'आज हम हैं या पद्मनाभ राजा है', ऐसा कहकर युद्ध करने में भिड़ गये । तब उस पद्मनाभ राजा ने हमें शीघ्र ही आहत, मथित गर्व वाले, प्रवर वीरों के घायल किये गये वाले और पतित संकेत ध्वज-पताका वाले एवं कंठगत प्राण वाले बनाकर दिशा-विदिशा में इधर-उधर भगा दिया ।

११६. तए णं से कण्हे वासुदेवे ते पंच पंडवे एवं वयासी—"जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! एवं वयंता—अम्हे, णो पउमनाभे रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं सद्धिं संपलग्गंता तो णं तुब्भे नो पउमनाभे हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं पडिसेहित्था ।

११६. तब कृष्ण वासुदेव ने उन पाँचों पांडवों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! यदि तुम ऐसा बोले होते कि 'हम हैं, पद्मनाभ राजा नहीं' और ऐसा कहकर पद्मनाभ के साथ युद्ध में भिड़ते तो पद्मनाभ तुम्हें आहत, मथित, विनाशित श्रेष्ठ वीरों वाला, पतित संकेत ध्वज पताका वाला और कंठगत प्राण वाला बनाकर दिशा-विदिशा में नहीं भगा सकता था ।

तं पेच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! अहं, णो पउमनाभे रायत्ति कट्टु पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं जुज्झामि ।" त्ति रहं दुरुहइ दुरुहित्ता जेणेव पउमनाभे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेयं गोखीरहार-धवलं तणसोल्लिय-सिंदुवार-कुन्देंदु-सण्णिगासं निययस्स बलस्स हरिस-जणणं रिउसेण्ण-विणासणकरं पंचजण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ ।

हे देवानुप्रियो ! अब तुम देखना कि 'मैं हूँ पद्मनाभ राजा नहीं है' कहकर पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करता हूँ ।' ऐसा कहने के बाद कृष्ण वासुदेव रथ पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर जहाँ पद्मनाभ राजा था उसके सामने पहुँचे और वहाँ पहुँचकर श्वेत, गौ दुग्ध के फेन और मोतियों के हार के समान धवल, मल्लिका-पुष्प, निर्गुण्डी-पुष्प, कुन्द-पुष्प चन्द्रमा के समान उज्ज्वल श्वेत, अपनी सेना में हर्ष उत्पन्न करने वाले और शत्रुसैन्य का विनाश करने वाले पाँचजन्य शंख को हाथ में लिया, हाथ में लेकर मुख की वायु से पूरित किया अर्थात् फूंका ।

तए णं तस्स पउमनाभस्स तेणं संखसद्देणं बल-तिभाए हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे

तब उस शंख के ध्वनि-घोष से उसे पद्मनाभ की सेना का तिहाई भाग आहत-मथित-विनाशित प्रवर वीर वाला, पतित

दिसोदिसिं पडिसेहिए ।

संकेत ध्वज-पताका वाला और कंठगत प्राणवाला होकर इधर-उधर दिशा-विदिशा में भाग गया ।

११७. तए णं से कण्हे वासुदेवे—

अइरुग्गयबालचन्द-इंदधणु-सण्णिगासं,

वरमहिस-दरिय-दप्पिय-दढघणसिंगग्गरइयसारं,

उरगवर-पवरगवल-पवरपरहुय-भमरकुल-नीलि-निद्ध-धंत-धोय-पट्ठं,

निउणोविय-मिसिमिसिंत-मणिरयण-घंटियाजालपरिक्खित्तं,

तडितरुणकिरण-तवणिज्जबद्धचिंधं,

दद्दरमलयगिरिसिहर-केसरचामरवाल-अद्धचंदचिंधं,

काल-हरिय-रत्त-पीय-सुक्किल-बहुण्हारुणि-संपिणद्धजीवं,

जीवियंतकरं धणुं परामुसइ, परामुसित्ता धणुं पूरेइ, पूरेत्ता धणुसद्दं करेइ ।

तए णं तस्स पउमनाभस्स दोच्चे बल-तिभाए तेणं धणुसद्देणं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगय-पाणे दिसोदिसिं पडिसेहिए ।

११७. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने—

तत्काल उदित अतिशय शोभा वाले बाल चन्द्रमा और इन्द्रधनुष के सदृश आकार वाले,

अहंकार से गर्विष्ठ श्रेष्ठ महिष—भैंस के निबिड़ पुद्गलों से निष्पन्न सघनछिद्र रहित शृंग के समान मजबूत,

उरगवर—श्रेष्ठ नाग, प्रधान महिष, श्रेष्ठ कोकिल, भ्रमर समूह एवं नीली गुटिका की जैसी स्निग्ध काली कांति वाले,

तेज से जाज्वल्यमान एवं निर्मल पृष्ठ भाग वाले, निपुण शिल्पियों द्वारा निर्मित देदीप्यमान मणिरत्नों की घंटिकाओं के समूह से परिवेष्टित,

बिजली की जैसी रक्तवर्णी नवीन किरणों वाले तपनीय स्वर्ण से निर्मित चिन्हों वाले,

दर्दर (सघन) मलयगिरि के शिखर के वासी सिंह के स्कन्ध केश, चामर गाय की पूंछ के केश एवं अर्धचन्द्र के जिस पर चिह्न बने हुए हैं,

कृष्ण, हरित, रक्त, पीत, शुक्ल वर्ण की स्नायुओं से जिसकी प्रत्यंचा बँधी है, ऐसे शत्रुओं के,

जीवन का अन्त करने वाले धनुष को हाथ में लिया, हाथ में लेकर उस पर प्रत्यंचा चढ़ाई, प्रत्यंचा चढ़ाकर टंकार की ।

तब उस पद्मनाभ की सेना का दूसरा विभाग उस धनुष टंकार से हत, मथित, नष्ट श्रेष्ठ वीरों वाला, पतित संकेत चिह्न ध्वज पताका वाला और कंठोपगत प्राण वाला होकर इधर-उधर दिशा-विदिशाओं में भाग निकला ।

पउमनाभस्स पलायणं—

११८. तए णं से पउमनाभे राया तिभागबलावसेसे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमित्ति कट्टु सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेइयं जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अवरकंकं रायहाणिं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता बाराइं पिहेइ, पिहेत्ता रोहासज्जे चिट्ठइ ।

पद्मनाभ का पलायन

११८. तत्पश्चात् सेना का एक तिहाई भाग शेष रह जाने से वह पद्मनाभ राजा सामर्थ्यहीन, बलहीन, वीर्यहीन, पुरुषार्थ-पराक्रमहीन होकर अब प्राण बचना सम्भव नहीं है, ऐसा सोचकर शीघ्र, त्वरित, चपल, प्रचंड वेग से चलते हुए जहाँ अपरकंका राजधानी थी वहाँ आया, राजधानी में आकर प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके द्वारों को बन्द करवाया और द्वारों को बन्द करवाकर नगररोध—नगर की रक्षा के लिये सज्ज—तैयार होकर स्थित हो गया अर्थात् अपने बचाव की पूरी तैयारी की ।

कण्हस्स नरसिंहरूवविउव्वणं—

११९. तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव अवरकंका तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ एगं महं नरसीह-रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता महया-महया सद्देणं पायदद्दरियं करेइ ।

कृष्ण का नरसिंह रूप विकुर्वण

११९. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहाँ अपरकंका नगरी थी, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँचकर रथ को रोककर खड़ा किया, रथ को खड़ा कर रथ से नीचे उतरे, रथ से नीचे उतर कर वैक्रिय समुद्घात किया और एक विशाल नरसिंह रूप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके भयंकर गर्जना के साथ जमीन पर पैरों को पटका ।

तए णं कण्हेणं वासुदेवेणं महया-महया सद्देणं पायदद्दरएणं कएणं समाणेणं अवरकंका रायहाणी संभग्ग-पागार-गोउराट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय-पवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवइया।

तब कृष्ण वासुदेव के उस भयंकर गर्जना के साथ पैरों को पटकने से अपरकंका राजधानी के प्राकार (परकोटा), गोपुर (फाटक), अट्टालिकायें (झरोखे), चारिक (परकोटा और नगर के बीच का भाग), तोरण गिर गये और श्रेष्ठ भवन एवं श्रीगृह (भंडार) तहस-नहस होकर सरसराहट करते हुए धरती पर आ पड़े।

पउमनाभस्स कण्हसरणपडिवत्ती—

१२०. तए णं से पउमनाभे राया अवरकंकं रायहाणिं संभग्ग-पागार–गोउराट्टालय–चरिय-तोरण–पल्हत्थियपवरभवण–सिरिघरं सरसरस्स धरणियले सण्णिवइयं पासित्ता भीए दोवइं देविं सरणं उवेइ।

तए णं सा दोवई देवी पउमनाभं रायं एवं वयासी—

"किण्णं तुमं देवाणुप्पिया! न जाणसि कण्हस्स वासुदेवस्स उत्तमपुरिसस्स विप्पियं करेमाणे ममं इहं हव्वमाणेमाणे? तं एवमवि गए गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! ण्हाए-उल्लपडसाडए ओचूलगवत्थनियत्थे अंतेउर-परियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय ममं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु पायवडिए सरणं उवेहि। पणिवइयवच्छला णं देवाणुप्पिया! उत्तमपुरिसा।"

पद्मनाभ की कृष्णशरण प्रतिपत्ति

१२०. तत्पश्चात् वह पद्मनाभ राजा अपरकंका राजधानी के प्राकार, गोपुर, अट्टालिकाओं, चारिक, तोरण, आसन आदि को पूर्ण रूपेण भग्न और श्रेष्ठ भवनों एवं श्रीगृहों को सरसराहट करते हुए जमीन पर गिरे हुए देखकर भयभीत हो द्रौपदी देवी की शरण में आया।

तब द्रौपदी देवी ने पद्मनाभ राजा से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! क्या तुम नहीं जानते थे कि पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव का विप्रिय—अनिष्ट करते हुए तुम मुझे यहाँ लाये हो? अस्तु! जो हुआ, सो हुआ; अब हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और स्नान करो और पहनने ओढ़ने के गीले वस्त्र धारण करके और उन पहने हुए वस्त्रों का छोर नीचे रखकर तथा अन्तःपुर की रानियाँ आदि परिवार को साथ में लेकर भेंट के लिये श्रेष्ठ रत्नों को हाथ में लेकर और मुझे आगे कर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके चरण में गिर कर कृष्ण वासुदेव की शरण में जाओ। हे देवानुप्रिय! पुरुषोत्तम प्रणिपतित वत्सल होते हैं अर्थात् शरणागत के रक्षक होते हैं।' (ऐसा करने से ही तुम्हारी नगरी की रक्षा होगी।)

१२१. तए णं से पउमनाभे दोवईए देवीए एवं वुत्ते समाणे ण्हाए उल्लपडसाडए ओचूलगवत्थनियत्थे अंतेउर-परियालसंपरिवुडे अग्गाइं वराइं रयणाइं गहाय दोवइं देविं पुरओ काउं कण्हं वासुदेवं करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु पायवडिए सरणं उवेइ, उवेत्ता एवं वयासी "दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे। तं खामेमि णं देवाणुप्पिया! खमंतु णं देवाणुप्पिया! खंतुमरहंति णं देवाणुप्पिया! नाइ भुज्जो एवंकरणयाए" त्ति कट्टु पंजलिउडे पायवडिए कण्हस्स वासुदेवस्स दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ।

१२१. उसके बाद पद्मनाभ ने द्रौपदी देवी के उस कथन को सुनकर स्नान किया और गीले वस्त्र धारण कर पहने हुए वस्त्रों के छोरों को नीचे लटकाया हुआ रख अन्तःपुर परिवार से परिवेष्टित हो, भेंट के लिये श्रेष्ठ रत्नों को हाथ में लेकर, द्रौपदी देवी को आगे कर, दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कृष्ण वासुदेव के चरणों में गिरकर शरण ली और शरण लेकर इस प्रकार कहने लगा—'हे देवानुप्रिय! मैंने आप देवानुप्रिय की ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम के दर्शन कर लिये हैं। हे देवानुप्रिय! मैं क्षमा मांगता हूँ, आप देवानुप्रिय मुझे क्षमा करें। हे देवानुप्रिय! क्षमा चाहता हूँ, पुनः ऐसा नहीं करूँगा'—ऐसा कहकर नतमस्तक हो अंजलिपूर्वक चरणों में गिरकर कृष्ण वासुदेव के हाथों में द्रौपदी देवी को सौंप दिया।

सदोवइ पंडवस्स कण्हस्स पडिआगमणं—

१२२. तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमनाभं एवं वयासी—"हंभो पउमनाभा! अपत्थियपत्थिया! दुरंतपंतलक्खणा! हीणपुण्णचाउ-

द्रौपदी सहित पांडव और कृष्ण का प्रत्यागमन

१२२. उसके बाद कृष्ण वासुदेव ने पद्मनाभ से इस प्रकार कहा—'अरे ओ पद्मनाभ! अप्रार्थित (मृत्यु) की प्रार्थना करने वाले!

दूसा ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! किण्णं तुमं न जाणसि मम भगिणि दोवइं देविं इहं हव्वमाणेमाणे ? तं एयमवि गए नत्थि ते ममाहितो इयाणिं भयमत्थि" त्ति कट्टु पउमनाभं पडिविसज्जेइ, दोवइं देविं गेण्हइ, गेण्हित्ता रहं दुरुहेइ, दुरुहित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंचण्हं पंडवाणं दोवइं देविं साहत्थिं उवणेइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं जेणेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

धायइसंडिल्ल-भरहखेत्तिल्लस्स कविल-कण्ह-वासुदेवजुयलस्स संखसद्देणं मिलणं —

१२३. तेणं कालेणं तेणं समएणं धायइसंडे दीवे पुरत्थिमद्धे भारहे वासे चंपा नयरी होत्था । पुण्णभद्दे चेइए ।

तत्थ णं चंपाए नयरीए कविले नामं वासुदेवे राया होत्था महताहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मुणिसुव्वए अरहा चंपाए पुण्णभद्दे चेइए समोसढे । कविले वासुदेवे धम्मं सुणेइ ।

१२४. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयस्स अरहओ अंतिए धम्मं सुणेमाणे कण्हस्स वासुदेवस्स संखसद्दं सुणेइ ।

१२५. तए णं तस्स कविलस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किं मण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे, जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवायपूरिए वियंभइ ? कविले वासुदेवे सद्दाइं सुणेइ ।

मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—से नूणं कविला वासुदेवा ! ममं अंतिए धम्मं निसामेमाणस्स [ते ?] संखसद्दं आकण्णित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—किमण्णे धायइसंडे दीवे भारहे वासे दोच्चे वासुदेवे समुप्पण्णे, जस्स णं अयं संखसद्दे ममं पिव मुहवायपूरिए वियंभइ ? से नूणं कविला वासुदेवा ! अट्ठे समट्ठे ?

हंता ! अत्थि ।

तं नो खलु कविला ! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं एगखेत्ते एगजुगे एगसमए णं दुवे अरहंता वा चक्कवट्टी वा बलदेवा वा वासुदेवा वा उप्पज्जिंसु वा उप्पज्जंति वा उप्पज्जिस्संति वा ।

दुरन्तप्रान्त लक्षणा ! हीन पुण्य चातुर्दशिका ! श्री ह्री धृति कीर्ति विहीन ! क्या तू मुझे नहीं जानता था, जोकि मेरी बहिन द्रौपदी देवी को शीघ्र यहाँ ले आया ? तो ऐसा करने के बाद भी अब ऐसा नहीं है कि तुझे मुझसे भय हो'—ऐसा कहकर पद्मनाभ को विदा किया और द्रौपदी देवी को ग्रहण कर लिया, ग्रहण करके रथ पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर जहाँ पाँचों पडव थे वहाँ आये, वहाँ आकर द्रौपदी देवी को पडवों को सौंप दिया ।

तत्पश्चात् पाँचों पडवों के साथ छठे स्वयं कृष्ण वासुदेव छह रथों में बैठकर लवण समुद्र के बीचों-बीच होकर जहाँ जम्बूद्वीप का भरत क्षेत्र था उधर जाने के लिये उद्यत हुए ।

धातकीखंड के भरत क्षेत्र के कपिल-कृष्ण-वासुदेव युगल का शंख शब्द द्वारा मिलन

१२३. उस काल उस समय में धातकीखंड के द्वीप के पूर्वार्ध भाग में, भरत क्षेत्र में चम्पा नाम की नगरी थी । पूर्णभद्र चैत्य था ।

उस चंपा नगरी में कपिल नामक वासुदेव राजा था जो राजाओं में महा हिमवन्, मलय, मंदर पर्वत के समान श्रेष्ठतर था इत्यादि राजा का वर्णन करना चाहिये ।

उस काल उस समय में अर्हन्त मुनिसुव्रत प्रभु का चंपा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पदार्पण हुआ । कपिल वासुदेव ने धर्म श्रवण किया ।

१२४. उस समय मुनिसुव्रत अर्हन्त से धर्मश्रवण करते हुए कपिल वासुदेव ने कृष्ण वासुदेव के शंख का शब्द सुना ।

१२५. तब उस कपिल वासुदेव के मन में इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—क्या धातकीखंड द्वीप के भारतवर्ष में दूसरा वासुदेव उत्पन्न हुआ है ? जिसके शंख का शब्द ऐसा मालूम पड़ता है जैसे मेरे मुख की वायु से पूरित हुआ हो, अर्थात् मैंने ही बजाया हो ? कपिल वासुदेव ने शंख का ऐसा शब्द सुना ।

तब मुनिसुव्रत अर्हन्त ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार पूछा—'हे कपिल वासुदेव ! मेरे पास धर्मश्रवण करते हुए तुम्हें उस शंख शब्द को सुनकर इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ कि धातकीखंड द्वीप के भारतवर्ष में क्या कोई दूसरा वासुदेव उत्पन्न हो गया है, जिसका यह शंख शब्द मेरी मुख की वायु से पूरित होकर जैसा फैल रहा रहा है ? तो हे कपिल वासुदेव ! मेरा यह अर्थ—कथन सत्य है ?'

हाँ, सत्य है ।—कपिल वासुदेव ने उत्तर दिया ।

तब मुनिसुव्रत अर्हन्त ने पुनः कहा—हे कपिल वासुदेव ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि एक क्षेत्र में, एक युग में और एक ही समय में दो अरिहंत, दो चक्रवर्ती, दो बलदेव और दो वासुदेव उत्पन्न हुए हों, उत्पन्न होते हों या उत्पन्न होंगे ।

एवं खलु वासुदेवा ! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ हत्थिणाउराओ नयराओ पंडुस्स रण्णो सुण्हा पंचण्हं पंडवाणं भारिया दोवई देवी तव पउमनाभस्स रण्णो पुव्वसंगइएणं देवेणं अवरकंकं नयरिं साहरिया। तए णं से कण्हे वासुदेवे पंचहिं पंडवेहिं सद्धिं अप्पछट्ठे छहिं रहेहिं अवरकंकं रायहाणिं दोवईए देवीए कूवं हव्वमागए। तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स पउमनाभेणं रण्णा सद्धिं संगामं संगामेमाणस्स अयं संखसद्दे तव मुहवायपूरिए इव वियंभइ।

परन्तु बात यह है कि हे वासुदेव ! जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र के हस्तिनापुर नगर से पांडुराजा की पुत्रवधू, पांच पांडवों की भार्या द्रौपदी देवी को तुम्हारा पद्मनाभ राजा अपने पूर्व के साथी देव के द्वारा अपहृत कराके अपरकंका नगरी में ले आया था। इसीलिये कृष्ण वासुदेव पांचों पांडवों सहित और छठे स्वयं रथों पर आरूढ़ होकर वापस द्रौपदी देवी को छीनने के लिये अपरकंका राजधानी में आये हैं। तब पद्मनाभ राजा के साथ युद्ध करते समय उन कृष्ण वासुदेव द्वारा किया गया यह शंख शब्द तुम्हारी मुख-वायु से पूरित हुआ जैसा प्रतीत हो रहा है—फैल रहा है।

१२६. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—गच्छामि णं अहं भंते ! कण्हं वासुदेवं उत्तमपुरिसं सरिसपुरिसं पासामि।

१२६. तत्पश्चात् कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत अर्हन्त को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—'हे भदन्त ! मैं जाऊं और पुरुषोत्तम और समान पुरुष कृष्ण वासुदेव के दर्शन करूं।'

तए णं मुणिसुव्वए अरहा कविलं वासुदेवं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! एवं भूयं वा भव्वं वा भविस्सं वा जण्णं अरहंता वा अरहंतं पासंति, चक्कवट्टी वा चक्कवट्टिं पासंति, बलदेवा वा बलदेवं पासंति, वासुदेवा वा वासुदेवं पासंति। तहवि य णं तुमं कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेया-पीयाइं धयग्गाइं पासिहिसि।

तब मुनिसुव्रत अर्हन्त ने उस कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! ऐसा कभी हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं कि जब एक तीर्थंकर दूसरे तीर्थंकर को देखे, चक्रवर्ती, चक्रवर्ती को देखे, बलदेव, बलदेव को देखें, वासुदेव, वासुदेव को देखें। तब भी तुम लवणसमुद्र के मध्यभाग में से जाते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत एवं पीत ध्वजा के अग्रभाग को देख सकोगे।'

१२७. तए णं से कविले वासुदेवे मुणिसुव्वयं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता हत्थिखंधं दुरुहइ, दुरुहित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेइयं जेणेव वेलाउले तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कण्हस्स वासुदेवस्स लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणस्स सेया-पीयाइं धयग्गाइं पासइ, पासित्ता एवं वयइ—एस णं मम सरिस-पुरिसे उत्तमपुरिसे कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीई-वयइ त्ति कट्टु पंचयण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुहवायपूरियं करेइ।

१२७. उसके बाद उस कपिल वासुदेव ने मुनिसुव्रत अर्हन्त को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर शीघ्र, त्वरित, चपल, प्रचंड वेग से वहाँ आया, वहाँ आकर लवणसमुद्र के मध्यभाग में से गमन करते हुए कृष्ण वासुदेव की श्वेत-पीत ध्वजा के अग्रभाग को देखा, देखकर कहा—'यह मेरे समान पुरुषोत्तम कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्र के बीचोंबीच होकर जा रहे हैं।'' ऐसा कहकर पांचजन्य शंख हाथ में लिया और हाथ में लेकर—मुखवायु से पूरित किया अर्थात् बजाया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कविलस्स वासुदेवस्स संखसद्दं आयण्णेइ, आयण्णेत्ता पंचयण्णं संखं परामुसइ, परामुसित्ता मुह-वायपूरियं करेइ।

तए णं दोवि वासुदेवा संखसद्द-सामायारिं करेंति।

तब कृष्ण वासुदेव ने कपिल वासुदेव के शंख शब्द को सुना—जाना, सुनकर पांचजन्य शंख को हाथ में लिया और लेकर मुख-वायु से पूरित किया, बजाया।

तब दोनों वासुदेवों ने शंख शब्द की समाचारी की अर्थात् शंखशब्द के माध्यम से दोनों मिले।

कविलेण पउमनाभस्स निव्वासणं—

कपिल द्वारा पद्मनाभ का निर्वासन—निष्कासन—

१२८. तए णं से कविले वासुदेवे जेणेव अवरकंका रायहाणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अवरकंकं रायहाणिं संभग्ग-पागार-गोउरट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थियपवर-भवण-सिरिघरं सरसरस्स धरणियले सण्णिवइयं पासइ, पासित्ता पउमनाभं एवं वयासी—

१२८. तत्पश्चात् कपिल वासुदेव जहाँ अपरकंका राजधानी थी, वहाँ आया, वहाँ आकर अपरकंका राजधानी के पूर्णरूप से ध्वस्त प्राकार, गोपुर, अट्टालिकाओं, चारिका, तोरण, आसन और श्रेष्ठ भवन श्रीगृह आदि को सरसराहट करके जमीन पर गिरा हुआ

किण्णं देवाणुप्पिया ! एसा अवरकंका रायहाणी संभग्ग-पागार-गोउरट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थियपवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवइया ?

तए णं से पउमनाभे कविलं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु सामी ! जंबुद्दीवाओ दीवाओ भारहाओ वासाओ इहं हव्वमागम्म कण्हेणं वासुदेवेणं तुब्भे परिभूय अवरकंका रायहाणी संभग्ग-गोउरट्टालय-चरिय-तोरण-पल्हत्थिय-पवरभवण-सिरिघरा सरसरस्स धरणियले सण्णिवाडिया।

तए णं से कविले वासुदेवे पउमनाभस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा पउमनाभं एवं वयासी—हंभो पउमनाभा ! अपत्थियपत्थिया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हीण-पुण्णचाउद्दसा ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! किण्णं तुमं न जाणसि मम सरिसपुरिसस्स कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणे ?—आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु पउमनाभं निव्विसयं आणवेइ, पउमनाभस्स पुत्तं अवरकंकाए रायहाणीए महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

अपरिक्खणीयकण्हस्स पंडवकया परिक्खा—

१२९. तए णं से कण्हे वासुदेवे लवणसमुद्दं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे गंगं उवागए ते पंच पंडवे एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! गंगं महानइं उत्तरह-जाव-ताव अहं सुट्ठियं लवणाहिवइं पासामि।

तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा जेणेव गंगा महानदी तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गण-गवेसणं करेंति, करेत्ता एगट्ठियाए गंगं महानइं उत्तरंति, उत्तरित्ता अण्णमण्णं एवं वयंति—पहू णं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगं महानइं बाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहु नो पहू उत्तरित्तए ? त्ति कट्टु एगट्ठियं णूमेंति, णूमेत्ता कण्हं वासुदेवं पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठन्ति।

१३०. तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं पासइ, पासित्ता जेणेव गंगं महानई तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, करेत्ता एगट्ठियं अपासमाणे एगाए बाहाए रहं सतुरंगं ससारहिं गेण्हइ, एगाए बाहाए गंगं महानइं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णं उत्तरिउं पयत्ते यावि होत्था।

देखा, गिरा हुआ देखकर पद्मनाभ ने इस प्रकार कहा - 'हे देवानुप्रिय ! यह अपरकंका राजधानी भग्न प्राकार, गोपुर, अट्टालिका, चारिका, तोरण, आसन, श्रेष्ठ भवन, श्रीगृह आदि—सरसराहट करके जमीन पर गिरे हुए, ऐसी हो गई है ?

तब पद्मनाभ राजा ने कपिल वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! जम्बूद्वीप नाम के द्वीप के भरतक्षेत्र से कृष्णवासुदेव ने यहाँ शीघ्र आकर आपका पराभव-अपमान करके अपरकंका राजधानी के गोपुर, अट्टालय, चारिका, तोरण, आसन, श्रेष्ठ भवन, श्रीगृह आदि को ध्वस्त करके सरसराहट ध्वनिपूर्वक जमीन पर गिरा दिया अर्थात् उसे भग्नावस्था में पहुँचा दिया है।

तत्पश्चात् कपिल वासुदेव पद्मनाभ के इस उत्तर को सुनकर बोला—'अरे ओ पद्मनाभ ! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाले ! दुरन्तप्रांतलक्षणा ! हीनपुण्य चातुर्दशिक ! श्री, ह्री, धृति, कीर्ति से परिवर्जित ! क्या तू नहीं जानता है कि तूने मेरे समान पुरुष कृष्णवासुदेव का अनिष्ट किया है ?' और क्रोधित, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् दांतों को मिसमिसाते हुए ललाट पर तीन बल डाल भृकुटि चढ़ाकर—पद्मनाभ को देश निष्कासन की आज्ञा दी एवं पद्मनाभ के पुत्र का अपरकंका राजधानी में महान् राज्याभिषेक से अभिषेक किया, अभिषेक करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

अपरीक्षणीय कृष्ण की पांडवकृत परीक्षा—

१२९. तदनन्तर कृष्ण वासुदेव लवण समुद्र के मध्य भाग में से चलते-चलते गंगा महानदी के पास आये तब उन्होंने पांचों पांडवों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग चलो और जब तक गंगा महानदी को उतरो पार करो, तब तक मैं लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिल लेता हूँ।'

तब वे पाँचों पांडव कृष्ण वासुदेव की इस बात को सुनकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये, आकर एक नौका की मार्गणा-गवेषणा-खोज की, खोज करके उस नौका से गंगा महानदी को पार किया, पार करके परस्पर एक-दूसरे से इस प्रकार कहा — 'हे देवानुप्रियो ! कृष्णवासुदेव अपनी भुजाओं से गंगा महानदी को पार करने में प्रभु—समर्थ हैं अथवा नहीं हैं ?' (इस बात की परीक्षा करें) ऐसा कहकर उन्होंने नौका छिपा दी, और नौका छिपाकर कृष्ण वासुदेव की प्रतीक्षा करते हुए बैठ गये।

१३०. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव लवणसमुद्राधिपति सुस्थित देव से मिले, मिलने के बाद जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये, वहाँ आकर सर्व प्रकार से सब ओर चारों दिशाओं में नौका की मार्गणा—गवेषणा की, गवेषणा करने पर नौका को नहीं देखकर एक भुजा पर घोड़े और सारथी सहित रथ को लिया और दूसरी एक भुजा से साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को पार करने के लिये उद्यत हुए।

तए णं से कण्हे वासुदेवे गंगाए महानईए बहुमज्झदेसभाए संपत्ते समाणे संते तंते परितंते बद्धसेए जाए यावि होत्था ।

१३१. तए णं तस्स कण्हस्स वासुदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—अहो णं पंच पंडवा महाबलवगा जेहिं गंगा महानई बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा । इच्छंतएहिं णं पंचहिं पंडवेहिं पउमनाभे हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडिय-चिंध-धय-पडागे किच्छोवगयपाणे दिसोदिसिं नो पडिसेहिए ।

तए णं गंगादेवी कण्हस्स वासुदेवस्स इमं एयारूवं अज्झत्थियं-जाव-जाणित्ता थाहं वियरइ ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे मुहुत्तंतरं समासासेइ, समासासेत्ता गंगं महानदिं बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णं बाहाए उत्तरइ उत्तरित्ता जेणेव पंच पंडवा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच पंडवे एवं वयासी—अहो णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! महाबलवगा, जेहिं णं तुब्भेहिं गंगा महानई बासट्ठिं जोयणाइं अद्धजोयणं च वित्थिण्णा बाहाहिं उत्तिण्णा । इच्छंतएहिं णं तुब्भेहिं पउमनाहे हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय-पडागे किच्छोवगय-पाणे दिसोदिसिं नो पडिसेहिए ।

१३२. तए णं ते पंच पंडवा कण्हेणं वासुदेवेणं एवं वुत्ता समाणा कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे तुब्भेहिं विसज्जिया समाणा जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छामो, उवागच्छित्ता एगट्ठियाए मग्गण-गवेसणं करेमो, करेत्ता एगट्ठियाए गंगं महानइं उत्तरेमो, उत्तरेत्ता अण्णमण्णं एवं वयामो—पहू णं देवाणुप्पिया ! कण्हे वासुदेवे गंगं महानइं बाहाहिं उत्तरित्तए, उदाहु नो पहू उत्तरित्तए ? त्ति कट्टु एगट्ठियं णूमेमो, तुब्भे पडिवालेमाणा चिट्ठामो ।"

कण्हेण पंडवाणं निव्वासणं—

१३३. तए णं से कण्हे वासुदेवे तेसिं पंच पंडवाणं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु एवं वयासी—

"अहो णं जया मए लवणसमुद्दं दुवे जोयणसयसहस्सवित्थिण्णं वीईवइत्ता पउमनाभं हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंध-धय पडागं किच्छोवगयपाणं दिसोदिसिं पडिसेहित्ता अवरकंका संभग्गा, दोवई साहत्थिं उवणीया, तया णं तुब्भेहिं मम माहप्पं न विण्णायं, इयाणिं जाणिस्सह त्ति कट्टु लोहदंडं परामुसइ, परामुसित्ता

तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव जब गंगा महानदी के मध्य भाग में पहुँचे तो श्रांत—थक गये, नौका की इच्छा करने लगे, खेदखिन्न हो गये और उन्हें पसीना आ गया ।

१३१. तब उस समय कृष्णवासुदेव को इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'अहो ये पाँचों पांडव बड़े बलवान् हैं कि जिन्होंने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को भुजाओं से पार किया । पाँचों पांडवों ने चाहकर—जानबूझकर ही पद्मनाभ को हत, मथित, घातित, श्रेष्ठ वीर पतित संकेत ध्वज पताका और कंठोपगत प्राणवाला करके दिशा-विदिशा में नहीं खदेड़ा है ।'

तब गंगादेवी ने कृष्णवासुदेव के इस प्रकार के आध्यात्मिक यावत्—(संकल्प उत्पन्न) जानकर थाह दे दी—नदी में ठहरने के लिये थल कर दिया ।

तत्पश्चात् कुछ समय के लिये कृष्णवासुदेव ने विश्राम किया, विश्राम करके साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को पार किया, पार करके जहाँ पाँचों पांडव थे, वहाँ आये, वहाँ आकर पाँचों पांडवों से इस प्रकार कहा—'अहो देवानुप्रियो ! तुम लोग बड़े बलवान हो, जो तुमने साढ़े बासठ योजन विस्तार वाली गंगा महानदी को भुजाओं से पार किया । जान बूझकर ही तुम लोगों ने पद्मनाभ को हत, मथित, घातित, प्रवरवीर, पतित संकेत ध्वज पताका, कंठोपगत प्राणवाला करके दिशा विदिशा में नहीं भगाया ।'

१३२. तब उन पाँचों पांडवों ने कृष्णवासुदेव की इस बात को सुनकर कृष्णवासुदेव से कहा—

'हे देवानुप्रिय ! आप से विदा लेकर—आज्ञा प्राप्त कर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये, वहाँ आकर नौका की मार्गणा-गवेषणा की, गवेषणा करके नौका से गंगा महानदी पार की, पार करके हमने परस्पर यह विचार किया कि 'देवानुप्रिय कृष्णवासुदेव भुजाओं से गंगा महानदी पार करने में प्रभु-समर्थ हैं अथवा नहीं हैं ?' ऐसा विचार कर नौका छिपा दी और आपकी प्रतीक्षा करते हुए यहाँ ठहर गये ।'

कृष्ण द्वारा पांडवों का निर्वासन—

१३३. तब कृष्ण वासुदेव पाँचों पांडवों के इस उत्तर को सुनकर और समझकर क्रोधित—यावत्—दांतों को मिसमिसाते हुए ललाट पर तीन बल डाल भृकुटि तानकर बोले—

'अहो ! जब मैंने दो लाख योजन विस्तीर्ण लवण समुद्र को पार करके—पद्मनाभ को हत, मथित, घातित, श्रेष्ठवीर, घातित, पतित चिह्न ध्वजा पताका कंठगत प्राणवाला करके इधर उधर दिशा-विदिशा में खदेड़कर अपरकंका को ध्वस्त कर दिया और अपने हाथों से द्रौपदी को लाकर तुम्हें सौंप दी, तब तुम्हें मेरा माहात्म्य

पंचण्हं पंडवाणं रहे चूरेइ, चूरेत्ता पंच पंडवे निव्विसए आणवेइ। तत्थ णं रहमद्दणे नामं कोट्टट्ठे निविट्ठे।

मालूम नहीं हुआ, अब तुम मेरा माहात्म्य जान लोगे।' इस प्रकार कहकर उन्होंने एक लोह दंड हाथ में लिया, हाथ में लेकर पाँचों पांडवों के रथों को चूर-चूर कर दिया और रथों को चूर-चूर करके पाँचों पांडवों को देश निष्कासन—निर्वासन की आज्ञा दी। फिर उस स्थान पर रथ मर्दन नामक कोट स्थापित किया।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव सए खंधावारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सएणं खंधावारेणं सद्धिं अभिसमन्नागए यावि होत्था।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव जहाँ अपना स्कन्धावार—सेना का पड़ाव था, वहाँ आये और वहाँ आकर अपनी सेना से मिले।

तए णं से कण्हे वासुदेवे जेणेव बारवई नयरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अणुप्पविसइ।

तत्पश्चात् कृष्णवासुदेव जहाँ द्वारिका नगरी थी वहाँ आये, और आकर नगरी में प्रविष्ट हुए।

१३४. तए णं ते पंच पंडवा जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता जेणेव पंडू राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—एवं खलु ताओ! अम्हे कण्हेणं निव्विसया आणत्ता।

१३४. तत्पश्चात् वे पाँचों पांडव जहाँ हस्तिनापुर नगर था, वहाँ आये, वहाँ आकर जहाँ पांडुराजा थे, उनके पास पहुँचे और पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके बोले—'हे तात! बात यह है कि कृष्ण ने हमें देशनिर्वासन की आज्ञा दी है।'

तए णं पंडू राया ते पंच पंडवे एवं वयासी—"कहण्णं पुत्ता! तुब्भे कण्हेणं वासुदेवेणं निव्विसया आणत्ता?"

तब पांडुराजा ने उन पाँचों पांडवों से पूछा—'हे पुत्रो! किस कारण कृष्णवासुदेव ने तुम्हें देशनिर्वासन की आज्ञा दी है?'

तए णं ते पंच पंडवा पंडुरायं एवं वयासी—"एवं खलु ताओ! अम्हे अवरकंकाओ पडिनियत्ता लवणसमुद्दं दोण्णि जोयणसयसहस्साइं वीईवइत्था। तए णं से कण्हे वासुदेवे अम्हे एवं वयइ—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! गंगं महानइं उत्तरह-जाव-ताव अहं सुट्ठियं लवणाहिवइं पासामि, एवं तहेव-जाव-चिट्ठामो।

तत्पश्चात् उन पाँचों पांडवों ने पांडुराजा से यह कहा—'हे तात! जब हम लोग अपरकंका से वापस लौटे और दो लाख योजन विस्तीर्ण—लवणसमुद्र को पार कर चुके तब कृष्णवासुदेव ने हमसे कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग चलो और गंगा महानदी उतरो तब तक मैं लवणाधिपति सुस्थित देव से मिललूं और वहीं—यावत् मेरी प्रतीक्षा करते हुए ठहरना।" [हम लोग गंगा महानदी पार करके नौका छिपाकर उनकी राह देखते ठहरे।]

तए णं से कण्हे वासुदेवे सुट्ठियं लवणाहिवइं दट्ठूण जेणेव गंगा महानई तेणेव उवागच्छइ तं चेवं सव्वं नवरं कण्हस्स चिंता न वुज्झइ-जाव-निव्विसए आणवेइ।"

तदनन्तर कृष्णवासुदेव लवणसमुद्र के अधिपति सुस्थित देव से मिलकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ आये, शेष सभी वर्णन पूर्व के समान करना चाहिये किन्तु कृष्ण के मन में जो विचार आये वे नहीं कहना—यावत्—कुपित होकर हमें देश निर्वासन की आज्ञा दी।"

१३५. तए णं से पंडू राया ते पंच पंडवे एवं वयासी—"दुट्ठु णं पुत्ता! कयं कण्हस्स वासुदेवस्स विप्पियं करेमाणेहिं।"

१३५. तब पांडुराजा ने पाँचों पांडवों से कहा—'हे पुत्रो! तुमने कृष्णवासुदेव का विप्रिय—अनिष्ट करके बुरा कार्य किया है।"

तए णं से पंडुराया कोंतिं देविं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् पांडुराजा ने कुन्ती देवी को बुलाया और बुलाकर कहा—

"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिए! बारवइं नयरिं कण्हस्स वासुदेवस्स एवं निवेएहि—एवं खलु देवाणुप्पिया! तुमे पंच पंडवा निव्विसया आणत्ता। तुमं च णं देवाणुप्पिया! दाहिणड्ढभरहस्स सामी। तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा गच्छंतु?

'हे देवानुप्रिये! तुम द्वारवती नगरी जाओ और कृष्णवासुदेव से निवेदन करो—'हे देवानुप्रिय! आपने पाँचों पांडवों को देश निर्वासन की आज्ञा दी है। किन्तु आप देवानुप्रिय समग्र दक्षिणार्ध भरत के स्वामी हैं, इसलिये हे देवानुप्रिय! आप ही आदेश दीजिये कि वे पाँचों पांडव किस देश में अथवा किस दिशा—विदिशा में जायें?

१३६. तए णं सा कोंती पंडुणा एवं वुत्ता समाणी हत्थिखंधं दुरूहइ, जहा हेट्ठा—जाव—संदिसंतु णं पिउच्छा ! किमागमणपओयणं ?

तए णं सा कोंती देवी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—एवं खलु तुमे पुत्ता ! पंचपंडवा निव्विसया आणत्ता । तुमं च णं दाहिणड्ढ-भरहस्स सामी । तं संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! ते पंच पंडवा कयरं देसं वा दिसिं वा विदिसिं वा गच्छंतु ?

१३६. तब पांडुराजा के इस कथन को सुनकर कुन्ती हाथी के स्कन्ध पर बैठी—आरूढ हुई, आरूढ होकर द्वारका पहुँची शेष वर्णन पहले कहे अनुसार जानना चाहिये—यावत्—हे पितृभगिनी भुआ ! आज्ञा दीजिये, किस प्रयोजन से आप पधारी हैं—आपके आने का क्या प्रयोजन है ?

तब कुन्तीदेवी ने कृष्णवासुदेव से कहा—हे पुत्र ! बात यह है कि तुमने पाँचों पांडवों को देशनिर्वासन की आज्ञा दी है। किन्तु तुम समग्र दक्षिणार्द्ध भरत के अधिपति हो। अतएव हे देवानुप्रिय ! यह बताओ कि वे पाँचों पांडव किस देश अथवा किस दिशा—विदिशा में जायें ?

१३७. तए णं से कण्हे वासुदेवे कोंतिं देविं एवं वयासी—

"अपूइवयणा णं पिउच्छा ! उत्तमपुरिसा—वासुदेवा बलदेवा चक्कवट्टी । तं गच्छंतु णं पंच पंडवा दाहिणिल्लं वेयालिं तत्थ पंडु-महुरं निवेसंतु, ममं अदिट्ठसेवगा भवंतु" त्ति कट्टु कोंतिं देविं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं सा कोंती देवी जेणेव हत्थिणाउरे नयरे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता पंडुस्स एयमट्ठं निवेएइ ।

तए णं पंडू राया पंच पंडवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे पुत्ता ! दाहिणिल्लं वेयालिं । तत्थ णं तुब्भे पंडु-महुरं निवेसेह ।"

१३७. तदनन्तर कृष्णवासुदेव ने कुन्तीदेवी से कहा—

'हे पितृभगिनी भुआ ! उत्तम पुरुष अर्थात् वासुदेव, बलदेव, चक्रवर्ती के अपूतिवचन होते हैं—उनके वचन मिथ्या नहीं होते, अतएव वे पाँचों पांडव दक्षिण दिशा के वेलातट—समुद्र के किनारे पर जायें और वहाँ जाकर पांडु मथुरा नामक नई नगरी को बसायें एवं मेरे अदृष्ट सेवक होकर रहें अर्थात् मेरे सामने न आयें, मुझे मुँह न दिखायें।' ऐसा कहकर कुन्ती देवी का सत्कार-सम्मान किया और सत्कार सम्मान करके विदा किया।

तत्पश्चात् कुन्तीदेवी वापस द्वारावती नगरी से लौटी और जहाँ हस्तिनापुर नगर था, वहाँ आई, वहाँ आकर पांडुराजा को सब वृत्तान्त सुनाया—निवेदन किया।

तदनन्तर पांडुराजा ने पाँचों पांडवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे पुत्रो ! तुम लोग दक्षिण वेलाली—समुद्री किनारे—तट पर—जाओ और वहाँ तुम पांडुमथुरा नगरी को बसाओ।

पंडुमहुरा निवेसणं—

१३८. तए णं ते पंच पंडवा पंडुस्स रण्णो एयमट्ठं तहत्ति पडि-सुणेंति, पडिसुणेत्ता सबलवाहणा हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडा महयाभड-चडगर-रह-पहकर-विंदपरिक्खित्ता हत्थिणाउराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव दक्खिणिल्ले वेयाली तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पंडु-महुरं नगरिं निवेसंति । तत्थ वि णं ते विपुलभोग-समिति-समण्णा-गया यावि होत्था ।

पांडुमथुरा निवेशन—

१३८. तत्पश्चात् उन पाँचों पांडवों ने पांडुराजा के कथन को 'अच्छा, ठीक है !' कहकर स्वीकार किया, स्वीकार करके बल, वाहन, अश्व, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवेष्टित हो, महान्—सुभटों और रथों के समूह को साथ लेकर हस्तिनापुर नगर से निकले, निकलकर जहाँ दक्षिणी वेलातट था, वहाँ आये, वहाँ आकर पांडुमथुरा नगरी की स्थापना की और वहाँ वे विपुल भोगों के समूह से युक्त हो गये अर्थात् उन्होंने वहीं विपुल भोगोपभोगों की सामग्री प्राप्त कर ली।

पंडुसेणजम्म—

१३९. तए णं सा दोवई देवी अण्णया कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था ।

तए णं सा दोवई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सुरूवं दारगं पयाया—सूमालकोमलयं गयतालुसमाणं ।

पांडुसेन का जन्म—

१३९. तत्पश्चात् किसी समय द्रौपदी देवी गर्भवती हुई।

उसके बाद उस द्रौपदी देवी ने नौ मासपूर्ण होने पर—यावत्—सुन्दर रूप वाले सुकुमार हाथी के तालु के समान कोमल बालक को जन्म दिया।

तए णं तस्स णं दारगस्स निव्वत्तबारसाहस्स अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति जम्हा णं अम्हं एस दारए पंचण्हं पंडवाणं पुत्ते दोवइए देवीए अत्तए, तं होउ णं इमस्स णं दारगस्स नामधेज्जं 'पंडुसेणे-पंडुसेणे'।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति पंडुसेणत्ति।

तए णं तं पंडुसेणं दारयं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं चेव सोहणंसि तिहि-करण-मुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेंति।

तए णं से कलायरिए पंडुसेणं कुमारं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहावेइ सिक्खावेइ-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए। जुवराया-जाव-विहरइ।

पंडवाणं दोवईए य पव्वज्जा—

१४०. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा समोसढा। परिसा निग्गया। पंडवा निग्गया। धम्मं सोच्चा एवं वयासी—जं नवरं—देवाणुप्पिया! दोवइं देविं आपुच्छामो। पंडुसेणं च कुमारं रज्जे ठावेमो। तओ पच्छा देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता णं अगाराओ अणगारियं पव्वयामो।

अहासुहं देवाणुप्पिया!

तए णं ते पंच पंडवा जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दोवइं देविं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिए! अम्हेहिं थेराणं अंतिए धम्मे निसंते-जाव-पव्वयामो। तुमं णं देवाणुप्पिए! किं करेसि?"

तए णं सा दोवई ते पंच पंडवे एवं वयासी—

"जइ णं तुब्भे देवाणुप्पिया! संसार-भउव्विग्गा-जाव-पव्वयह, मम के अण्णे आलंबे वा आहारे वा पडिबंधे वा भविस्सइ? अहं पि य णं संसारभउव्विग्गा देवाणुप्पिएहिं सद्धिं पव्वइस्सामि।"

१४१. तए णं ते पंच पंडवा कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! पंडुसेणस्स कुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायाभिसेहं उवट्ठवेह।" पंडुसेणस्स अभि-

तत्पश्चात् उस बालक के माता पिता ने बारह दिन व्यतीत हो जाने पर यह इस प्रकार का गुणयुक्त और गुणनिष्पन्न नामकरण किया कि हमारा यह बालक पाँचों पांडवों का पुत्र और द्रौपदी देवी का आत्मज है, इसलिये इस बालक का नाम "पांडुसेन" हो।

तब उस बालक के माता-पिता ने उसका नाम पांडुसेन रखा।

तत्पश्चात् पांडुसेन पुत्र जब कुछ अधिक आठ वर्ष का हो गया तब माता-पिता शुभ तिथिकरण और मुहूर्त में उसे कलाचार्य के पास ले गये।

तब कलाचार्य ने पांडुसेन कुमार को लेख—अक्षर विन्यास लिपि आदि गणित प्रधान शकुनिरुत-पर्यन्त बहत्तर कलायें सूत्र से अर्थ से—और करण से पढ़ाईं, सिखाईं—यावत्—यथासमय पांडुसेन भोग भोगने में समर्थ हो गया और युवराज होकर—यावत्—विचरने लगा।

पांडवों और द्रौपदी की प्रव्रज्या—

१४०. उस काल और उस समय में धर्मघोष स्थविर पधारे। दर्शनार्थ परिषदा निकली। पांडव भी निकले। धर्म श्रवण कर उन्होंने स्थविर से कहा (हम दीक्षा लेना चाहते हैं) हे देवानुप्रिय! केवल द्रौपदी देवी से अनुमति ले लें और पांडुसेन कुमार को राज्य में स्थापित कर दें अर्थात् उसका राज्याभिषेक कर दें, उसके बाद आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास त्याग कर आनगारिक दीक्षा ग्रहण करेंगे।'

'हे देवानुप्रियो! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो!'—स्थविर भगवन्त ने कहा।

तत्पश्चात् पाँचों पांडव जहाँ अपना आवासगृह था, वहाँ आये, आकर द्रौपदी देवी को बुलाया और बुलाकर उससे कहा—

'हे देवानुप्रिये! हम लोगों ने स्थविर भगवन्त के पास धर्म श्रवण किया है—यावत्—हम प्रव्रज्या ग्रहण करना चाहते हैं। देवानुप्रिये! तुम्हें क्या करना है?'

तब द्रौपदी ने उन पाँचों पांडवों से कहा—

'हे देवानुप्रियो! यदि तुम संसार के भय से उद्विग्न होकर प्रव्रज्या ग्रहण कर रहे हो तो मेरा दूसरा कौन अवलम्बन यावत् आहार—आश्रय और प्रतिबन्ध—स्नेहस्थान होगा? अतएव मैं भी संसारभय से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रियों के साथ ही दीक्षा अंगीकार करूँगी।'

१४१. तत्पश्चात् उन पाँचों पाण्डवों ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही पांडुसेन कुमार के राज्याभिषेक के लिये महान् अर्थ—गुण सम्पन्न, महर्घ्य और श्रेष्ठ पुरुषों के

सेओ-जाव-राया जाए-जाव-रज्जं पसाहेमाणे विहरइ ।

तए णं ते पंच पंडवा दोवई य देवी अण्णया कयाइ पंडुसेणं रायाणं आपुच्छंति ।

तए णं से पंडुसेणे राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! निक्खमणाभिसेयं करेह-जाव-पुरिससहस्स-वाहिणीओ सिबियाओ उवट्ठवेह"-जाव-सिबियाओ पच्चोरुहंति, जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरं भगवंतं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं भंते ! लोए-जाव-समणा जाया, चोद्दस पुव्वाइं अहिज्जंति, अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि छट्ठट्ठम-दसम दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति ।

तए णं सा दोवई देवी सीयाओ पच्चोरुहइ-जाव-पव्वइया । सुव्वयाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयंति, एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि छट्ठट्ठमदसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं ते थेरा भगवंतो अण्णया कयाइ पंडुमहुराओ नयरीओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरंति ।

अरिट्ठनेमिस्स निव्वाणं—

१४२. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठनेमी जेणेव सुरट्ठाजणवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुरट्ठाजणवयंसि संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, भासइ पण्णवेइ परूवेइ— एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरहा अरिट्ठनेमी सुरट्ठाजणवए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

१४३. तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अरहा अरिट्ठनेमी पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे सुरट्ठाजणवए संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं सेयं खलु अम्हं थेरे

योग्य राज्याभिषेक की—सामग्री उपस्थित करो—लाओ ।' पांडुसेन का अभिषेक किया—यावत्—पांडुसेन राजा हो गया—यावत्—राज्य का पालन करते हुए विचरने लगा ।

तत्पश्चात् किसी एक समय पाँचों पांडवों और द्रौपदी देवी ने पांडुसेन राजा से पूछा ।

तब पांडुसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही निष्क्रमणाभिषेक की सामग्री लाओ—यावत्—पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका उपस्थित करो—' (शेष वर्णन पूर्ववत् जानना) यावत्—वे शिविका से नीचे उतरे, उतरकर जहाँ स्थविर भगवन्त विराजमान थे, वहाँ आये, वहाँ आकर स्थविर भगवन्त की तीन बार आदक्षिणा—प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके निवेदन किया—'हे भदन्त ! यह संसार आदीप्त है, जल रहा है आदि—यावत्—पाँचों पांडव श्रमण हो गये, चौदह पूर्वो का अध्ययन किया, अध्ययन करके बहुत वर्षों तक षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मासखमण, अर्धमासखमण आदि तप कर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

तत्पश्चात् द्रौपदी देवी पालखी से उतरी—यावत्—प्रव्रजित हुई । सुव्रता आर्या की शिष्या रूप में दी गई, ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत वर्षों तक षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश भक्त, मासखमण अर्धमासखमण से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी ।

तत्पश्चात् एक बार किसी समय स्थविर भगवन्त पांडु मथुरा नगरी के सहस्राम्रवन नामक उद्यान से निकले, निकलकर बाह्य जनपदों में विहार करते हुए विचरने लगे ।

अरिष्टनेमि का निर्वाण—

१४२. उस काल और उस समय अर्हत् अरिष्टनेमि जहाँ सुराष्ट्र [सौराष्ट्र] जनपद था, वहाँ पधारे, वहाँ पधारकर सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

उस समय बहुत से व्यक्ति परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, भाषण करने लगे, प्रतिपादन करने लगे, प्ररूपणा करने लगे कि 'हे देवानुप्रियो ! अर्हत् अरिष्टनेमि सुराष्ट्र जनपद में विचर रहे हैं ।'

१४३. तब युधिष्ठिर प्रमुख उन पाँचों अनगारों ने बहुत से व्यक्तियों से इस वृत्तान्त को सुनकर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर कहा—

'हे देवानुप्रियो ! अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए सुराष्ट्र जनपद में संयम और तप से आत्मा को

भगवंते आपुच्छित्ता अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए।" अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी –

भावित करते हुए विचर रहे हैं। अतएव स्थविर भगवन्त से पूछकर—अनुमति—आज्ञा लेकर अर्हत अरिष्टनेमि की वंदना करने के लिये जाना हमारे लिये श्रेयस्कर है।' परस्पर में एक दूसरे ने इस कथन—बात को स्वीकार किया। स्वीकार करके जहाँ स्थविर भगवन्त विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर स्थविर भगवान को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उनसे निवेदन किया—

"इच्छामो णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहं अरिट्ठनेमिं वंदणाए गमित्तए।"

अहासुहं देवाणुप्पिया!

'हे भगवन्! आपकी आज्ञा लेकर हम अर्हत् अरिष्टनेमि की वंदना करने के लिये जाने की इच्छा करते हैं।'

'हे देवानुप्रियो! जैसे सुख हो, वैसा करो।' स्थविर भगवान् ने आज्ञा दी।

तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा थेरेहिं अब्भणुण्णाया समाणा थेरे भगवंते वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता थेराणं अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता मासंमासेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव हत्थिकप्पे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिकप्पस्स बहिया सहस्संबवणे उज्जाणे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर प्रमुख उन पाँचों अनगारों ने आज्ञा प्राप्त होने के बाद स्थविर भगवान् को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करने के बाद वे स्थविर भगवान् के पास से निकले, निकलकर निरन्तर मासखमण तपःकर्म से आत्मा को भावित करते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम जाते हुए सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ हस्तीकल्प नगर था, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँचकर हस्तिकल्प नगर के बाहर सहस्राम्रवन नामक उद्यान में संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तए णं ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा मासक्खमणपारणए पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेंति, बीयाए झाणं झायंति एवं जहा गोयमसामी, नवरं—जुहिट्ठिलं आपुच्छंति-जाव-अडमाणा बहुजणसद्दं निसामेंति—एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जंत-सेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर के सिवाय शेष चारों अनगार मासखमण के पारणे के दिन प्रथम पोरसी में स्वाध्याय करते हैं, दूसरी पोरसी में ध्यान करते हैं इसी प्रकार शेष वर्णन गौतमस्वामी के वर्णन के समान जानना चाहिये, लेकिन इतना विशेष है कि वे युधिष्ठिर अनगार से पूछते हैं—यावत्—परिभ्रमण करते हुए बहुत से व्यक्तियों से सुना कि—हे देवानुप्रियो! अर्हन् अरिष्टनेमि प्रभु उर्जयन्त शैल—गिरनार पर्वत के शिखर पर एक मास का निर्जल उपवास करके पांच सौ छत्तीस अनगारों के साथ कालधर्म को प्राप्त हुए हैं—यावत्—सर्व दुखों का अन्त करके मुक्त हो गये हैं।

पंडवाणं निव्वाणं—

१४४. तए णं ते जुहिट्ठिलवज्जा चत्तारि अणगारा बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हत्थिकप्पाओ नयराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव जुहिट्ठिले अणगारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता भत्तपाणं पच्चुवेक्खंति, पच्चुवेक्खित्ता गमणागमणस्स पडिक्कमंति, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएंति, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेंति, पडिदंसेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! अरहा अरिट्ठनेमी उज्जंतसेलसिहरे मासिएणं भत्तेणं अपाणएणं पंचहिं छत्तीसेहिं अणगारसएहिं सद्धिं कालगए। तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया! इमं पुव्वगहियं भत्तपाणं परिट्ठवेत्ता सेत्तुज्जं पव्वयं सणियं-सणियं दुरूहित्तए, संले-

पांडवों का निर्वाण—

१४४. तब युधिष्ठिर के सिवाय वे चारों अनगार बहुत से व्यक्तियों के मुख से इस समाचार को सुनकर और हृदय में अवधारित कर हस्तिकल्प नगर से बाहर निकले, निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, जहाँ युधिष्ठिर अनगार थे, वहाँ आये, वहाँ आकर भक्तपानी की प्रत्युपेक्षणा की—प्रत्यवेक्षण किया, प्रत्युपेक्षणा करके गमनागमन का प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणा—अनेषणा की आलोचना की, आलोचना करके भक्तपान आहार-पानी दिखलाया, आहार-पानी दिखलाकर इस प्रकार कहा 'हे देवानुप्रिय! अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु उर्जयन्त गिरि के शिखर पर एक मास का निर्जल उपवास करके पांच सौ

हणा-झूसणा-झोसियाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए त्ति" कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तं पुव्वगहियं भत्तपाणं एगंते परिट्ठवेंति, परिट्ठवेत्ता जेणेव सेत्तुञ्जे पव्वए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सेत्तुज्जं पव्वयं सणियं-सणियं दुरुहंति, दुरुहित्ता संलेहणा-झूसणा-झोसिया कालं अणवकंखमाणा विहरंति।

छत्तीस अनगारों सहित कालगत हुए हैं। अतएव हे देवानुप्रिय! हमारे लिये यही श्रेयस्कर है कि इस वृत्तान्त को सुनने से पहले ग्रहण किये हुए आहार-पानी को परठकर धीरे-धीरे शत्रुंजय पर्वत पर चढ़कर—संलेखनापूर्वक झोषणा का सेवन करके और काल—मरण की आकांक्षा न रखते हुए विचरण करें।" ऐसा कहकर एक दूसरे ने इस अर्थ (विचार) को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस पूर्वगृहीत भक्तपान को एकान्त स्थान में परठ दिया, परठकर जहाँ शत्रुंजय पर्वत था, वहाँ आये, वहाँ आकर शनैः-शनैः शत्रुंजय पर्वत पर आरूढ़ हुए—चढ़े, आरूढ़ होकर संलेखनापूर्वक झोषणा का सेवन करते और मरण की आकांक्षा न रखते हुए विचरने लगे।

तए णं ते जुहिट्ठिलपामोक्खा पंच अणगारा सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जित्ता, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता, दोमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे-जाव-तमट्ठमाराहेंति, आराहेत्ता अणंतं केवलवरनाणदंसणं समुप्पाडेत्ता तओ पच्छा सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

तत्पश्चात् युधिष्ठिर प्रमुख वे पाँचों अनगार सामायिक से लेकर चौदह पूर्वों का अभ्यास—अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर दो मास की संलेखना द्वारा आत्मा की झोषणा करके—जिस प्रयोजन के लिये नग्न भाव—निर्ग्रन्थता ग्रहण की थी, उस अर्थ की आराधना की, आराधना करके अनन्त श्रेष्ठ केवलज्ञान—केवलदर्शन उत्पन्न करके उसके बाद सिद्ध हुए—यावत्—सर्व दुखों का क्षय किया।

दोवईए देवगए—

१४५. तए णं सा दोवई अज्जा सुव्वयाणं अज्जियाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसित्ता आलोइय पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए उववण्णा। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं दुवयस्स वि देवस्स दससागरोवमाइं ठिई।

द्रौपदी की देवगति—

१४५. तत्पश्चात्—दीक्षा अंगीकार करने के पश्चात् उस द्रौपदी आर्या ने सुव्रता आर्या के पास सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन—अभ्यास किया, अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर आलोचना प्रतिक्रमण करके काल मास में काल करके ब्रह्मलोक में उत्पन्न हुई। वहाँ कितने ही देवों की दस सागरोपम की स्थिति कही गई है। वहाँ (द्रौपदी देवी) द्रुपद देव की भी दस सागरोपम की स्थिति कही गई है।

१४६. से णं भंते! दुवए देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता-जाव-महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।[1]

णाया. सु. १, अ. १६।

१४६. हे भदन्त! वह द्रुपद देव उस देवलोक से आयुक्षय, स्थिति-क्षय और भवक्षय के अनन्तर च्यवित होकर कहाँ जन्म लेगा? गौतमस्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से प्रश्न किया। तब भगवान ने कहा—वहाँ से च्यव कर—यावत्—महाविदेह वर्ष में जन्म लेकर सिद्ध होगा—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

---

१. वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

सुबहू वि तव-किलेसो, नियाण-दोसेण दूसिओ संतो।
न सिवाय दोवईए, जह किल सूमालिया-जम्मे ॥१॥

अथवा—

अमणुण्णमभत्तीय, पत्ते दाणं भवे अणत्थाय।
जह कडुय-तुम्ब-दाणं, नागसिरि-भवम्मि दोवईए ॥२॥

२. अरिट्ठनेमितित्थे पउमावई-आईणं समणीणं कहाणगाणि—

२. अरिष्टनेमि-तीर्थ में पद्मावती आदि श्रमणियों के कथानक—

संगहणी-गाहा—

१४७. पउमावई य गोरी, गंधारी, लक्खणा, सुसीमा य।
जंबवइ, सच्चभामा, रुप्पिणी, मूलसिरि, मूलदत्ता वि ॥१॥

संग्रहणी गाथा—

१४७. १. पद्मावती, २. गौरी, ३. गंधारी, ४. लक्ष्मणा, ५. सुसीमा, ६. जाम्बवती, ७. सत्यभामा, ८. रुक्मिणी, ९. मूलश्री और १० मूलदत्ता।

कण्हवासुदेवस्स देवी पउमावई—

तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी।

कण्हे वासुदेवे आहेवच्चं-जाव-कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावई नाम देवी होत्था—वण्णओ।

कृष्णवासुदेव की रानी पद्मावती—

उस काल और उस समय में द्वारिका नाम की नगरी थी।

जिसका कृष्ण वासुदेव आधिपत्य—यावत्—पालन करते हुए विचर रहे थे।

उन कृष्ण वासुदेव की पद्मावती नाम की रानी थी—वर्णन करो।

अरहया अरिट्ठनेमिणा चाउज्जामधम्मदेसणा—

१४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं अरहा अरिट्ठणेमी समोसढे-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। कण्हे वासुदेवे निग्गए-जाव-पज्जुवासइ।

तए णं सा पउमावई देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठा जहा देवई देवी-जाव-पज्जुवासइ।

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हस्स वासुदेवस्स पउमावईए य देवीए तीसे महतिमहालियाए महच्चपरिसाए चाउज्जामं धम्मं कहेइ, तं जहा— सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसा-वायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिण्णादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ परिग्गहाओ वेरमणं। परिसा पडिगया।

अर्हन्त अरिष्टनेमि द्वारा चातुर्याम धर्मदेशना—

१४८. उस काल और उस समय में अर्हत् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ—यावत्—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे। कृष्ण वासुदेव दर्शनार्थ निकले—यावत्—पर्युपासना—सेवा करने लगे।

उस समय वह पद्मावती देवी इस संवाद को सुनकर हृष्ट तुष्ट होती हुई जैसे देवकी रानी वंदनार्थ निकली थी, वैसे ही पद्मावती देवी भी—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

तब अरिष्टनेमि अर्हत् प्रभु ने कृष्ण वासुदेव, पद्मावती रानी और उस—महदतिमहत्—विशाल परिषदा को चातुर्याम धर्म का उपदेश दिया, यथा—सर्वतः प्राणातिपातविरमण, सर्वतः मृषावादविरमण, सर्वतः अदत्तादानविरमण और सर्वतः परिग्रह (मैथुन एवं धन से) विरमण। परिषदा वापस लौट गई।

कण्हेण बारवईविणासकारणपुच्छा—

१४९. तए णं कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इमीसे णं भंते! बारवईए नयरीए नवजोयण-वित्थिण्णाए-जाव-देवलोगभूयाए किंमूलाए विणासे भविस्सइ।"

कण्हा! ई अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"एवं खलु कण्हा! इमीसे बारवईए नयरीए नवजोयणवित्थिण्णाए-जाव-देवलोगभूयाए सुरग्गिदीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ।

कृष्ण द्वारा द्वारावती विनाश-कारण पृच्छा—

१४९. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदन—नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—हे भदन्त! (बारह योजन लम्बी और) नौ योजन विस्तारवाली यावत्—देवलोक के समान इस द्वारिका नगरी का किस कारण से विनाश होगा? अथवा देवलोक सदृश इस द्वारिका नगरी के विनाश का मूल कारण क्या होगा?

हे कृष्ण!, इस प्रकार कृष्ण वासुदेव को संबोधित करके अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे कृष्ण! निश्चय ही इस नौ योजन विस्तार वाली—यावत्—देवलोक जैसी इस द्वारावती नगरी का सुरा, अग्नि और द्वैपायन के निमित्त से विनाश होगा।

कण्हस्स बारवइविणाससवणेण चिंता—

१५०. कण्हस्स वासुदेवस्स अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयं सोच्चा निसम्म अयं अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे-समुप्पज्जित्था—धण्णा णं ते जालि-मयालि-उवयालि-पुरिससेण-वारिसेण-पज्जुण्ण-संब-अणिरुद्ध-दढणेमि-सच्चणेमिप्पभियओ कुमारा जे णं चइत्ता हिरण्णं-जाव-दाणं दाइयाणं परिभाएत्ता अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतियं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया। अहण्णं अधण्णे अकयपुण्णे रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य पुरे य अंतेउरे य माणुस्सएसु य कामभोगेसु मुच्छिए-जाव-अज्झोववण्णे नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

द्वारावती के विनाश को सुनकर कृष्ण को चिन्ता—

१५०. अर्हत् अरिष्टनेमि के मुख से इस अर्थ (द्वारिका के नाश) को सुनकर कृष्ण वासुदेव को यह अध्यवसाय—यावत् संकल्प समुत्पन्न हुआ—'धन्य हैं वे जालि, मयाली, उपयाली, पुरुषसेन, वारिषेण, प्रद्युम्न, शांब, अनिरुद्ध, दृढ़नेमि, सत्यनेमि प्रभृति कुमार जिन्होंने स्वर्ण आदि सम्पत्ति का त्याग करके दायकों—याचकों—को दान देकर, अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुण्डित होकर, गृहवास छोड़कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की। मैं अधन्य हूँ, अकृतपुण्य हूँ जो राज्य में, राष्ट्र में, कोष में, कोष्ठागार में, बल-सेना में, वाहन में, पुर में, अन्तःपुर में और कामभोगों में मूर्च्छित हो रहा हूँ—यावत्—आसक्त होकर अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुण्डित हो गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूँ।

निदाणकरणेणं सव्वेसिं वासुदेवाणं ण पव्वज्जेत्ति फुडीकरणं

१५१. कण्हा ! ई अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"से नूणं कण्हा ! तव अयं अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—धण्णा णं ते जालिप्पभिइकुमारा-जाव-पव्वइया, अहण्णं अधण्णे-जाव-नो संचाएमि अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। से नूणं कण्हा ! अत्थे समत्थे ?

हंता अत्थि।

तं नो खलु कण्हा ! एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं-जाव-पव्वइस्संति।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ 'न एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं-जाव-पव्वइस्संति ?'

कण्हा ! ई अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—

"एवं खलु कण्हा ! सव्वे वि य णं वासुदेवा पुव्वभवे निदाण-कडा। से एतेणट्ठेणं कण्हा ! एवं वुच्चइ न एवं भूतं वा भव्वं वा भविस्सइ वा जण्णं वासुदेवा चइत्ता हिरण्णं-जाव-पव्वइस्संति।"

निदान के कारण सभी वासुदेव प्रव्रज्या नहीं लेते, इसका स्पष्टीकरण—

१५१. हे कृष्ण ! इस प्रकार अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को सम्बोधित करके कहा—'हे कृष्ण ! निश्चय ही तुम्हें यह मानसिक विचार—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ है—'वे जालि आदि कुमार धन्य हैं—यावत्—प्रव्रजित हुए हैं, किन्तु मैं अधन्य हूँ—यावत्—अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहत्याग करके अनगार प्रव्रज्या धारण करने में समर्थ नहीं हूं। तो हे कृष्ण ! मेरा यह कथन सत्य यथार्थ है ?'

'हां भगवन् ! यह कथन यथार्थ है'—कृष्ण वासुदेव ने उत्तर दिया।

"हे कृष्ण ! न तो ऐसा हुआ है, न ऐसा होता है और न होगा ही कि स्वर्ण आदि धन संपत्ति का त्याग करके वासुदेव प्रव्रज्या अंगीकार करें।

(कृष्ण वासुदेव ने पूछा) 'हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण से कहते हैं कि ऐसा न कभी हुआ है, न होता है और न होगा जो वासुदेव हिरण्यादि का त्याग करके—यावत्—प्रव्रजित हों ?'

'कृष्ण !' इस प्रकार अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को संबोधित करके कहा—

'हे कृष्ण ! बात यह है कि सब वासुदेव पूर्वजन्म में निदानकृत (निदान किये हुए) होते हैं—निदान करने वाले होते हैं। इसलिये हे कृष्ण ! ऐसा कहा जाता है कि कभी ऐसा हुआ नहीं, होता नहीं और कभी ऐसा होगा नहीं कि वासुदेव अपनी स्वर्ण आदि संपत्ति का त्यागकर—यावत् प्रव्रज्या अंगीकार करें।'

कण्हस्स अणंतरभवे निरयगई—

१५२. तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहं अरिट्ठणेमिं एवं वयासी—

अनन्तर भव में कृष्ण की नरकगति—

१५२. तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने अर्हत् अरिष्टनेमि से इस प्रकार प्रश्न पूछा

"अहं णं भंते ! इतो कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिस्सामि ? कहिं उववज्जिस्सामि ?"

तए णं अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी —

"एवं खलु कण्हा ! तुमं बारवईए नयरीए सुरग्गि-दीवायण-कोव-निद्दड्ढाए अम्मापिइ-नियग-विप्पहूणे रामेण बलदेवेण सद्धिं दाहिणवेयालिं अभिमुहे जुहिट्ठिलपामोक्खाणं पंचण्हं पंडवाणं पंडुरायपुत्ताणं पासं पंडुमहुरं संपत्थिए कोसंबवणकाणणे नग्गोहवरपायवस्स अहे पुढविसिलापट्टए पीयवत्थ-पच्छाइय-सरीरे जराकुमारेणं तिक्खेणं कोदंड-विप्पमुक्केणं उसुणा वामे पादे विद्धे समाणे कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उज्जलिए नरए नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि ।"

'हे भदन्त ! मैं यहां से काल के समय काल करके कहां जाऊंगा, कहां उत्पन्न होऊंगा ?'

तब अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—

'हे कृष्ण ! बात यह है कि तुम सुरा, अग्नि और द्वैपायन के क्रोध से द्वारिका नगरी के भस्म होने पर माता-पिता और स्वजनों से वियुक्त होकर राम बलदेव के साथ दक्षिण समुद्र तट की ओर पांडुराज के पुत्र युधिष्ठिर आदि पांचों पांडवों के पास पांडु मथुरा की ओर जाते हुए कोशाम्बवन नामक कानन में श्रेष्ठ न्यग्रोध—वट-वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्टक पर तुम पीताम्बर वस्त्र को ओढ़े हुए—शरीर को आच्छादित किये हुए लेटे होओगे तब जराकुमार के द्वारा धनुष से छोड़े गये तीक्ष्ण बाण से बायें पैर में बींधे हुए होकर काल के समय काल करके तीसरी वालुकाप्रभा पृथ्वी के उज्ज्वलित नरक में नारक रूप से उत्पन्न होओगे ।'

तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियाइ ।

तब वे कृष्ण वासुदेव अर्हत् अरिष्टनेमि के पास से इस बात को सुनकर एवं अवधारित कर भग्न मनोरथ होकर—उदासमना होकर हथेली पर मुख को रखकर आर्तध्यान करने लगे ।

कण्हस्स आगामिणीए उस्सप्पिणीए अममभवे तित्थयरत्तं—

१५३. कण्हा ! ई अरहा अरिट्ठणेमी कण्हं वासुदेवं एवं वयासी —

"मा णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पे-जाव-झियाहि । एवं खलु तुमं देवाणुप्पिया ! तच्चाओ पुढवीओ उज्जलियाओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए पंडेसु जणवएसु सयदुवारे नगरे बारसमे अममे नामं अरहा भविस्ससि । तत्थ तुमं बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणेत्ता सिज्झिहिसि-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिसि ।"

आगामी उत्सर्पिणी के अममभव में कृष्ण का तीर्थंकरत्व —

१५३. 'हे कृष्ण !' इस प्रकार अर्हत् अरिष्टनेमि ने कृष्ण वासुदेव को संबोधित करके कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम उदासमना होकर—यावत्—आर्तध्यान मत करो । क्योंकि हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि तुम उस तीसरी पृथ्वी के उज्ज्वलित नामक नरक से निकलने के अनन्तर ही यहां जम्बूद्वीप में, भरत क्षेत्र में आने वाली उत्सर्पिणी में पौंड्र जनपद के शतद्वार नामक नगर में बारहवें अमम नामक अरिहंत (तीर्थंकर) होओगे । तब वहां पर तुम बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन कर सिद्ध होओगे यावत्—सर्व दुखों का अन्त करोगे ।

कण्हेण अण्णेसिं पव्वज्जागहणे सहायघोसणं—

१५४. तए णं से कण्हे वासुदेवे अरहओ अरिट्ठणेमिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-अप्फोडेइ, अप्फोडेत्ता वग्गइ, वग्गित्ता तिवई छिंदइ, छिंदित्ता सीहणायं करेइ, करेत्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव अभिसेक्कं हत्थिं दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए । आभिसेयहत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव सए सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयति, निसीइत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी —

अन्यों के प्रव्रज्या ग्रहण करने पर कृष्ण द्वारा सहाय घोषणा—

१५४. तदनन्तर उन कृष्ण वासुदेव ने अर्हन्त अरिष्टनेमि के पास से इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो—यावत्—ताल ठोकी, ताल ठोककर हुंकार की, हुंकार करके त्रिपदी का छेदन किया—तीन बार पृथ्वी पर पैरों को रखा, तीन बार पादन्यास करके सिंहनाद किया, सिंहनाद करके अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसी आभिषेक्य—अभिषेक योग्य—हाथी पर आरूढ़ हुए—आरूढ़ होकर जहाँ द्वारावती नगरी थी जहाँ अपना आवास प्रासाद था, वहां आये । आभिषेक्य हस्तीरत्न से नीचे उतरे, नीचे उतरकर जहां बाहरी उपस्थानशाला थी, बाहरी सभा मंडप था, उसमें जहां अपना सिंहासन था, वहां आये और वहां आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की तरफ मुख करके बैठ गये, बैठकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु हत्थिखंधवरगया महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया ! बारवईए नयरीए नवजोयणविच्छिण्णाए-जाव-देवलोगभूयाए सुरग्गि-दीवायणमूलाए विणासे भविस्सइ; तं जो णं देवाणुप्पिया ! इच्छइ बारवईए नयरीए राया वा जुवराया वा ईसरे वा तलवरे वा माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठी वा देवी वा कुमारो वा कुमारी वा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए, तं णं कण्हे वासुदेवे विसज्जेइ। पच्छातुरस्स वि य से अहापवित्तं वित्तिं अणुजाणइ। महया इड्ढि-सक्कारसमुदएणं य से निक्खमणं करेइ। दोच्चं पि तच्चं पि घोसणयं घोसेह, घोसेत्ता ममं एयं पच्चप्पिणह।

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और द्वारावती नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग और सामान्य मार्गों में हाथी पर बैठकर जोर-जोर से घोषणा करते हुए इस प्रकार घोषणा करो—'हे देवानुप्रियो ! निश्चय ही नौ योजन विस्तार वाली—यावत्—देवलोक के समान इस द्वारावती नगरी का सुरा, अग्नि और द्वैपायन के कोप के कारण नाश होगा, अतएव हे देवानुप्रियो ! इस द्वारावती नगरी में जो कोई भी राजा, युवराज, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, रानी, कुमार अथवा कुमारी अर्हत् अरिष्टनेमि के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करेगा, उसे कृष्ण वासुदेव विदाई देंगे और उन दीक्षार्थियों के पश्चात्वर्ती पारिवारिक जनों की भी यथायोग्य जीवनवृत्ति की व्यवस्था करेंगे एवं महान् ऋद्धि-वैभव, सत्कार-सम्मान के साथ उनका निष्क्रमण (दीक्षा-संस्कार) करायेंगे। इसी तरह दूसरी बार, तीसरी बार भी घोषणा करो और घोषणा करके मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे अर्पित करो -आज्ञानुसार कार्य करने की मुझे सूचना दो।'

तए णं ते कोडुम्बिया-जाव-पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—आज्ञा वापस लौटाई।

पउमावईदेवीए पव्वज्जासंकप्पो—

१५५. तए णं सा पउमावई देवी अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं—देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि। तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।"

पद्मावती रानी का प्रव्रज्या संकल्प—

१५५. तत्पश्चात् उस पद्मावती रानी ने अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास धर्मकथा श्रवणकर और अवधारित कर—समझकर हृष्ट, तुष्ट आनन्दित मना—यावत्—हर्षवशात् विकासमान हृदयवाली होकर अर्हत् अरिष्टनेमि को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—'हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा रखती हूँ वह वैसा ही है, जैसा आप कहते हैं। विशेष यह है कि हे देवानुप्रिय ! मैं कृष्ण वासुदेव से पूछूँगी। तदनन्तर मैं आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूँगी।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

'हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो, वैसा करो किन्तु विलम्ब मत करो।' अर्हत् अरिष्टनेमि ने कहा।

तए णं सा पउमावई देवी धम्मियं जाणप्पवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव बारवई नयरी जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव कण्हे वासुदेवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कण्हं वासुदेवं एवं वयासी—"इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणा अरहओ अरिट्ठनेमिस्स अंतिए मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।"

तदनन्तर वह पद्मावती रानी धार्मिक श्रेष्ठ रथ पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर जहाँ द्वारावती नगरी थी, और उसमें जहाँ अपना आवासगृह था, वहाँ आई, वहाँ आकर धार्मिक यान प्रवर से नीचे उतरी, नीचे उतरकर जहाँ कृष्ण वासुदेव थे, वहाँ आई, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कृष्ण वासुदेव से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आपकी अनुमति प्राप्त करके मैं अर्हत् अरिष्टनेमि प्रभु के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ।'

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

तए णं से कण्हे वासुदेवे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! पउमावईए देवीए महत्थं महग्घं महरिहं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह ।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

पउमावईपव्वज्जा

१५६. तए णं से कण्हे वासुदेवे पउमावइं देविं पट्टयं दुरुहेइ, अट्ठसएणं सोवण्णकलसाणं-जाव-महाणिक्खमणाभिसेएणं अभिसिंचइ, अभिसिंचित्ता सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सिवियं दुरुहावेइ, दुरुहावेत्ता बारवईए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रेवयए पव्वए जेणेव सहसंबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयं ठवेइ, पउमावइं देविं सीयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एस णं भंते ! मम अग्गमहिसी पउमावई नामं देवी इट्ठा-जाव-मणाभिरामा-जाव-उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए, किमंगपुण पासणयाए ? तण्णं अहं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं दलयामि । पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं ।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं सा पउमावई उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणालंकारं ओमुयइ, ओमुयित्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ करेत्ता जेणेव अरहा अरिट्ठणेमी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अरहं अरिट्ठणेमिं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"आलित्ते णं भंते ! लोए-जाव-तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं धम्ममाइक्खियं ।"

१५७. तए णं अरहा अरिट्ठणेमी पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ,

'हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।' कृष्ण वासुदेव ने उत्तर दिया ।

तत्पश्चात् कृष्ण वासुदेव ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही पद्मावती देवी के लिये महा मूल्यवान्, महर्घ्य और महापुरुषों के योग्य अभिनिष्क्रमण अभिषेक की सामग्री उपस्थित करो और उपस्थित करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ—आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो ।'

तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—उस आज्ञा को वापस लौटाते हैं ।

पद्मावती की प्रव्रज्या—

१५६. तत्पश्चात् उन कृष्ण वासुदेव ने पद्मावती रानी को पट्ट (पाटे) पर बैठाया, बैठाकर एक सौ आठ स्वर्ण कलशों से—यावत्—महानिष्क्रमण अभिषेक से अभिषिक्त किया, अभिषिक्त करके सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके पुरुष सहस्रवाहिनी शिबिका में बैठाया, बैठाकर द्वारावती नगरी के मध्य भाग में से निकले, निकलकर जहाँ रैवतक पर्वत था, जहाँ सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, वहाँ आये, वहाँ आकर शिबिका को खड़ा किया—ठहराया, पद्मावती देवी को शिबिका से नीचे उतारा, नीचे उतारकर जहाँ अर्हन् अरिष्टनेमि प्रभु विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर अर्हन् अरिष्टनेमि की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! यह मेरी अग्रमहिषी—प्रधान रानी पद्मावती नाम की देवी जो मुझे इष्ट—यावत्—मनोभिराम है—यावत्—उदम्बर पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर देखने की तो बात ही क्या है ? ऐसी उसको मैं आप देवानुप्रिय को शिष्याभिक्षा के रूप में देता हूँ । अतएव हे देवानुप्रिय ! आप इसे शिष्या-भिक्षा के रूप में ग्रहण करें—स्वीकार करें ।'

"हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध-विलम्ब मत करो ।" प्रभु ने उत्तर दिया ।

तत्पश्चात् वह पद्मावती रानी उत्तर पूर्व दिग्भाग्—ईशान कोण में गई, वहाँ जाकर उसने स्वयं ही अपने आभरण अलंकारों को उतारा, उतारकर अपने आप ही पंच मुष्टिक लोच किया लोच करके जहाँ अर्हन् अरिष्टनेमि विराजमान थे, वहाँ आई वहाँ आकर अर्हन् अरिष्टनेमि प्रभु को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! यह लोक (संसार) दुःखों से आलिप्त है—यावत्—हे देवानुप्रिय ! मैं आपसे धर्म श्रवण करना चाहती हूँ ।'

१५७. तदनन्तर अर्हन् अरिष्टनेमि ने स्वयं पद्मावती रानी को

पव्वावेत्ता सयमेव जक्खिणीए अज्जाए सिस्सिणित्ताए दलयइ ।

तए णं सा जक्खिणी अज्जा पउमावइं देविं सयमेव पव्वावेइ सयमेव मुण्डावेइ सयमेव सेहावेति धम्ममाइक्खइ— एवं देवाणुप्पिए ! गंतव्वं-जाव-संजमेणं संजमियव्वं ।

तए णं सा पउमावई देवी तमाणाए तह चिट्ठइ-जाव-संजमेणं संजमइ ।

तए णं सा पउमावई अज्जा जाया । इरियासमिया-जाव-गुत्तबंभयारिणी ।

तए णं सा पउमावई अज्जा जक्खिणीए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठ-अट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

पउमावईए सिद्धी—

१५८. तए णं सा पउमावई अज्जा बहुपडिपुण्णाइं वीसं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुण्डभावे-जाव-तमट्ठं आराहेइ, चरिमुस्सासेहिं सिद्धा-जाव-सव्व-दुक्खप्पहीणा ।

गोरि -पभितीणं कहाणगसंखेवो—

१५९. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवई नयरी । रेवयए पव्वए । उज्जाणे नंदणवणे ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हे वासुदेवे ।

तस्स णं कण्हस्स वासुदेवस्स गोरी देवी—वण्णओ ।

अरहा समोसढे । कण्हे णिग्गए । गोरी जहा पउमावई तहा निग्गया । धम्मकहा । परिसा पडिगया । कण्हे वि ।

तए णं सा गोरी जहा पउमावई तहा निक्खंता-जाव-सिद्धा-जाव सव्व-दुक्खप्पहीणा ।

एवं—गन्धारी, लक्खणा, सुसीमा, जंबवई, सच्चभामा, रुप्पिणी । अट्ठ वि पउमावईसरिसाओ ।[1]

प्रव्रजित किया, प्रव्रजित करके स्वयमेव यक्षिणी आर्या को शिष्या रूप में प्रदान किया ।

तत्पश्चात् उन यक्षिणी आर्या ने स्वयमेव पद्मावती देवी को प्रव्रजित किया; स्वयमेव मुण्डित किया और स्वयमेव धर्मकथन की शिक्षा दी—"हे देवानुप्रिय ! इस प्रकार चलना चाहिये—यावत्—संयम में यत्न करना चाहिये ।

तब वह पद्मावती रानी उनकी आज्ञानुसार उसी प्रकार यत्न करने लगी—यावत्—संयम में प्रवृत्ति करने लगी ।

तत्पश्चात् वह पद्मावती आर्या हो गई, और ईर्यासमिति आदि पाँच समितियों से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई ।

उसके बाद उस पद्मावती आर्या ने यक्षिणी आर्या के पास सामायिक आदि से प्रारम्भ करके ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास एवं अर्ध मास खमण रूप विविध प्रकार के तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी ।

पद्मावती देवी की सिद्धि—

१५८. तत्पश्चात् उस पद्मावती आर्या ने पूरे बीस वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया, पालन करके आत्मा को शुद्ध निर्मल बनाया, निर्मल करके साठ भक्तों—भोजनों का अनशन द्वारा छेदन किया, छेदन करके जिस अर्थ की आराधना के लिये नाग्न्य भाव, मुण्डभाव स्वीकार किया था—यावत्—उस अर्थ की आराधना की और चरम उश्वास में सिद्ध हो गई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया ।

गौरी आदि के कथानकों का संक्षेप—

१५९. उस काल और उस समय में द्वारावती नाम की नगरी थी । रैवतक नामक पर्वत था । उद्यान का नाम नन्दनवन था ।

उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव राज्य करते थे ।

उन कृष्ण वासुदेव की गौरी नामक रानी थी—वर्णन करो ।

अर्हत् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ । कृष्ण निकले । पद्मावती की तरह गौरी भी दर्शनार्थ निकली । अर्हत् प्रभु ने धर्म प्रवचन दिया । परिषदा वापस लौटी और कृष्ण भी वापस आये ।

तत्पश्चात् वह गौरी भी पद्मावती की तरह दीक्षित हुई—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—समस्त दुःखों का क्षय किया ।

इसी प्रकार—गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा, जाम्बवती, सत्यभामा और रुक्मिणी के लिये भी जानना चाहिये । ये आठों अध्ययन पद्मावती के समान समझना चाहिये ।

---

१. **कण्ह-अग्गमहिसी**

कण्हस्स णं वासुदेवस्स अट्ठ अग्गमहिसीओ अरहतो णं अरिट्ठणेमिस्स अंतिते मुण्डा भवेत्ता अगाराओ अणगारितं पव्वइया सिद्धाओ बुद्धाओ मुत्ताओ अंतगडाओ परिणिव्वुडाओ सव्वदुक्खप्पहीणाओ, तं जहा— **संगहणी-गाहा**—

पउमावती य गोरी, गंधारी लक्खणा सुसीमा य । जंबवती सच्चभामा, रुप्पिणी अग्गमहिसीओ ॥१॥—ठाणं० अ० ८, सु० ६२६ ।

मूलसिरीमूलदत्ताणं कहाणगाइं—

१६०. तेणं कालेणं तेणं समएणं बारवईए नयरीए रेवयए पव्वए नंदणवणे उज्जाणे कण्हे वासुदेवे ।

तत्थ णं बारवईए नयरीए कण्हस्स वासुदेवस्स पुत्ते जंबवईए देवीए अत्तए संबे नामं कुमारे होत्था—अहीणपडिपुण्णपंचेंदिय-सरीरे ।

तस्स णं संबस्स कुमारस्स मूलसिरी नामं भारिया होत्था—वण्णओ ।

अरहा समोसढे । कण्हे निग्गए । मूलसिरी वि निग्गया, जहा पउमावई । जं नवरं—देवाणुप्पिया ! कण्हं वासुदेवं आपुच्छामि-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा ।

एवं मूलदत्ता वि ।

—अंत० व० ५, अ० १–१०

मूलश्री, मूलदत्ता के कथानक—

१६०. उस काल और उस समय में द्वारवती नाम की नगरी थी, रैवतक पर्वत था, नन्दनवन नामक उद्यान था और कृष्ण वासुदेव नामक राजा थे ।

उस द्वारावती नगरी में कृष्ण वासुदेव का पुत्र, जाम्बवती रानी का आत्मज शाम्ब नामक राजकुमार था—जो प्रतिपूर्ण पंच इन्द्रिय युक्त शरीरवाला था ।

उस राजकुमार की मूलश्री नाम की भार्या थी वर्णन करो ।

वहाँ पर अर्हत् अरिष्टनेमि का पदार्पण हुआ । दर्शनार्थ कृष्ण निकले । पद्मावती के समान मूलश्री भी वंदनार्थ निकली किन्तु यहाँ जो विशेष है वह इस प्रकार है—हे देवानुप्रिय ! कृष्ण वासुदेव से पूछती हूँ (पूछकर दीक्षित हुई)—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुखों का क्षय किया ।

इसी प्रकार मूलदत्ता का कथानक भी जानना चाहिये ।

३. पोट्टिलाकहाणयं

तेयलिपुरे तेयलिपुत्ते अमच्चे—

१६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं तेयलिपुरे नामं नयरे होत्था । तस्स णं तेयलिपुरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसिभाए एत्थ णं पमयवणे नामं उज्जाणे होत्था । तत्थ णं तेयलिपुरे णयरे कणगरहे णामं राया होत्था ।

तस्स णं कणगरहस्स रण्णो पउमावई णामं देवी होत्था ।

तस्स णं कणगरहस्स रण्णो तेयलिपुत्ते नामं अमच्चे—साम-दंड-भेय-उवप्पयाण-नीति-सुपउत्त-नयविहिण्णू विहरइ ।

तत्थ णं तेयलिपुरे कलादे नामं मूसियारदारए होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए ।

तस्स णं भद्दा नामं भारिया होत्था ।

३. पोट्टिला का कथानक

तेतलीपुर में तेतलीपुत्र अमात्य—

१६१. उस काल और उस समय में तेतलीपुर नामक नगर था । उस तेतलीपुर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा—ईशान कोण में प्रमद-वन नामक उद्यान था । उस तेतलीपुर नगर में कनकरथ नामक राजा था ।

उस कनक रथ राजा के पद्मावती नामक देवी रानी थी ।

उस कनकरथ राजा के तेतली पुत्र नामक अमात्य था—जो साम, दंड, भेद, उपप्रदान-दान नीति का समुचित रूप से भलीभांति प्रयोग करने वाला था, न्याय-नीति का ज्ञाता था ।

उस तेतलीपुर में कलाद नामक मुद्रिकार (स्वर्णकार) दारक था, जो धनाढ्य—यावत्—किसी से भी पराभूत होने वाला नहीं था ।

उसकी भार्या—पत्नी का नाम भद्रा था ।

कलायस्स पुत्ती पोट्टिला—

१६२. तस्स णं कलायस्स मूसियारदारगस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया होत्था—रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।

तए णं सा पोट्टिला दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया सव्वालंकारविभूसिया चेडिया-चक्कवाल-संपरिवुडा उप्पिं पासायवरगया आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी-कीलमाणी विहरइ।

कलाद की पुत्री पोट्टिला—

१६२. उस मूषिकारदारक कलाद की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नामक दारिका लड़की थी जो रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट एवं शरीर से भी उत्कृष्ट थी।

तत्पश्चात् किसी एक समय वह पोट्टिला दारिका स्नान करके सर्व अलंकारों से विभूषित होकर चेटिकाओं—दासियों के समूह से परिवेष्टित होकर श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर रही हुई अगासी की भूमि में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई—खेलती हुई विचर रही थी।

तेयलिपुत्तस्स पोट्टिलाए आसत्ती—

१६३. इमं च णं तेयलिपुत्ते अमच्चे ण्हाए आसखंधवरगए महया-भड-चडगर-आसवाहणियाए निज्जायमाणे कलायस्स मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ।

तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे मूसियारदारगस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे पोट्टिलं दारियं उप्पिं पासायवरगयं आगासतलगंसि कणग-तिंदूसएणं कीलमाणिं पासइ, पासित्ता पोट्टिलाए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य-जाव-अज्झोववण्णे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एस णं देवाणुप्पिया! कस्स दारिया किं नामधेज्जा वा?"

तए णं कोडुम्बियपुरिसा तेयलिपुत्तं एवं वयासी—"एस णं सामी! कलायस्स मूसियारदारयस्स धूया भद्दाए अत्तया पोट्टिला नामं दारिया—रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा।"

तेतलीपुत्र की पोट्टिला में आसक्ति—

१६३. इधर तेतलीपुत्र अमात्य स्नान करके उत्तम अश्व के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर बड़े सुभटों के समूह के साथ घुड़सवारी के लिये निकलता हुआ कलाद मूषिकारदारक के घर के समीप से होकर गुजर रहा था।

तब उस समय तेतलीपुत्र अमात्य ने मूषिकारदारक के घर के समीप से जाते हुए प्रासाद की ऊपरी भूमि छत पर अगासी में सोने की गेंद से क्रीड़ा करती हुई पोट्टिला दारिका को देखा, देखकर पोट्टिला दारिका के रूप, यौवन और लावण्य में आसक्त होकर—यावत्—अत्यन्त आसक्त होकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! यह किसकी लड़की है और इसका क्या नाम है?'

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने तेतलीपुत्र से कहा—'हे स्वामिन्! यह कलाद स्वर्णकार दारक की पुत्री, भद्रा की आत्मजा पोट्टिला नामक लड़की है—यह रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली है।'

पोट्टिलाए वरणं

१६४. तए णं से तेयलिपुत्ते आसवाहणियाओ पडिणियत्ते समाणे अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! कलायस्स मूसियारदारयस्स धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं मम भारियत्ताए वरेह।"

तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा तेयलिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा-जाव-करयल परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी! तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तेयलिस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहे तेणेव उवागया।

पोट्टिला का वरण—

१६४. तत्पश्चात् वह तेतलीपुत्र घुड़सवारी से वापस लौटा तो उसने अभ्यन्तर स्थानीय (खानगी निजी काम करने वाले) पुरुष को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और कलाद मूषिकार दारक की पुत्री भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका को मेरी भार्या के रूप में मंगनी करो।'

तब वह अभ्यन्तर स्थानीय पुरुष तेतली पुत्र की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हुआ—यावत्—दोनों हाथों को जोड़ सिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे स्वामिन्! तथैव' ऐसा कहकर विनय पूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके तेतली के पास से निकला और निकलकर जहाँ कलाद मूषिकार दारक का घर था, वहाँ आया।

१६५. तए णं से कलाए मूसियारदारए ते पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता आसणेणं उवणिमंतेइ, उवणिमंतेत्ता

१६५. तत्पश्चात् उस कलाद स्वर्णकार दारक ने उस पुरुष को आते देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट होते हुए अपने आसन से उठा, उठकर सात-आठ पैर सामने जाकर अगवानी की, आसन

आसत्थं वीसत्थं सुहासणवरगयं एवं वयासी—"संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणपओयणं ?"

करके आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया, आमंत्रित करके उस पुरुष के स्वस्थ होने और विश्राम लेकर सुखासन पर बैठने के बाद इस प्रकार पूछा—'हे देवानुप्रिय ! आज्ञा दीजिये, आपके आने का क्या प्रयोजन है ?

तए णं ते अब्भितरठाणिज्जा पुरिसा कलायं मूसियारदारयं एवं वयासी—"अहं णं देवाणुप्पिया ! तव धूयं भद्दाए अत्तयं पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स भारियत्ताए वरेमो । तं जइ णं जाणसि देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा सरिसो वा संजोगो वा दिज्जउ णं पोट्टिला दारिया तेयलिपुत्तस्स । तो भण देवाणुप्पिया ! किं दलामो सुंकं ।"

तब उस अभ्यन्तर स्थानीय पुरुष ने कलाद मूषिकार दारक से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मैं तुम्हारी पुत्री और भद्रा की आत्मजा पोट्टिला दारिका की तेतलीपुत्र की भार्या के रूप में मंगनी करने के लिये आया हूँ । यदि आप देवानुप्रिय ! यह समझते हों कि यह सम्बन्ध उचित है, पात्र है, प्रशंसनीय है, दोनों का संयोग सदृश है तो पोट्टिला दारिका को तेतलीपुत्र के लिये प्रदान करो । प्रदान करते हो तो—'हे देवानुप्रिय ! बताओ कि इसके लिये क्या शुल्क (मूल्य धन) देवें ।'

तए णं कलाए मूसियारदारए ते अब्भितरठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी—"एस चेव णं देवाणुप्पिया ! मम सुंके जण्णं तेयलिपुत्ते मम दारियानिमित्तेणं अणुग्गहं करेइ ।" ते अब्भितरठाणिज्जे पुरिसे विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्ला-लंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तब कलाद मूषिकार दारक ने उस अभ्यन्तर स्थानीय व्यक्ति से यह कहा—'हे देवानुप्रिय ! यही मेरे लिये शुल्क है, जो तेतलीपुत्र मेरी दारिका के निमित्त मुझ पर अनुग्रह कर रहे हैं । तत्पश्चात् उस अभ्यन्तर पुरुष का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गंध-इत्र, अलंकारों आदि से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उसे विदा किया ।

१६६. तए णं ते अब्भितरठाणिज्जा पुरिसा कलायस्स मूसियारदारयस्स गिहाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं एयमट्ठं निवेदंति ।

१६६. तत्पश्चात् वह अभ्यन्तर स्थानीय पुरुष कलाद मूषिकार दारक के घर से निकला और निकलकर जहाँ तेतली पुत्र अमात्य था, वहाँ आया, आकर तेतलीपुत्र अमात्य से वह वृत्तान्त निवेदन किया ।

पोट्टिलाए पाणिग्गहणं—

१६७. तए णं कलाए मूसियारदारए अण्णया कयाइ सोहणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि पोट्टिलं दारियं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं-सीयं दुरुहइ दुरुहेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सव्विड्ढीए तेयलिपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव तेयलिस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं दारियं तेयलिपुत्तस्स सयमेव भारियत्ताए दलयइ ।

पोट्टिला का पाणिग्रहण

१६७. तदनन्तर कलाद मूषिकार दारक ने अन्यदा किसी एक समय शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में पोट्टिला दारिका को स्नान कराके सर्वअलंकारों से विभूषित करके पालखी में बैठा, बैठकर मित्रों, ज्ञातिजनों, अपने स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों को साथ लेकर अपने घर से निकला, निकलकर सर्व ऋद्धि वैभव सहित तेतलीपुर नगर के मध्य में से होता हुआ जहाँ तेतलीपुत्र का आवास गृह था, जहाँ आया और आकर पोट्टिला दारिका को स्वयमेव तेतलीपुत्र की भार्या-पत्नी के रूप में प्रदान किया ।

तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं दारियं भारियत्ताए उवणीयं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठे पोट्टिलाए सद्धिं पट्टयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सेयापीएहिं कलसेहिं अप्पाणं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता अग्गिहोमं करेइ, करेत्ता पाणिग्गहणं करेइ, करेत्ता पोट्टिलाए भारियाए मित्त-नाई-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने पोट्टिला दारिका को भार्या के रूप में आई हुई देखा, देखकर पोट्टिला के साथ पट्ट पर बैठा, बैठकर श्वेत-पीत (चांदी सोने के) कलशों से उसने स्वयं स्नान किया, स्नान करके अग्निहोम किया, अग्निहोम करके पाणिग्रहण किया, पाणिग्रहण करके पोट्टिला भार्या के मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार आदि से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्हें प्रतिविसर्जित—विदा किया ।

तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए भारियाए अणुरत्ते अविरत्ते उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

कणगरहस्स रज्जासत्ती पुत्तंगछेयणं च—

१६८. तए णं से कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए जाए पुत्ते वियंगेइ—अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगोवंगाइं वियत्तेइ।

पउमावइपुत्तसंरक्खणत्थं तेयलिपुत्तस्स अणुमई—

१६६. तए णं तीसे पउमावईए देवीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे-समुप्पज्जित्था—"एवं खलु कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए जाए पुत्ते वियंगेइ—अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगमंगाइं वियत्तेइ। तं जइ णं अहं दारयं पयायामि, सेयं खलु मम तं दारगं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया! कणगरहे राया रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे जाए जाए पुत्ते वियंगेइ—अप्पेगइयाणं हत्थंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं हत्थंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुलियाओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं पायंगुट्ठए छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णसक्कुलीओ छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासापुडाइं फालेइ, अप्पेगइयाणं अंगोवंगाइं वियत्तेइ। तं जइ णं अहं देवाणुप्पिया! दारगं पयायामि, तए णं तुमं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे संवड्ढेहि। तए णं से दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ।"

तदनन्तर वह तेतलीपुत्र पोट्टिला भार्या में अनुरक्त होकर अविरक्त—आसक्त होकर उदार—उत्तम मानवीय भोगोपभोगों का भोग करते हुए विचरने लगा।

कनकरथ की राज्यासक्ति और पुत्रांगछेदन—

१६८. तदनन्तर वह कनकरथ राजा राज्य, राष्ट्र, बल-सेना, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में गाढ़ रूप से मूर्च्छित, गृद्ध, अत्यन्त आसक्त होता हुआ जो भी पुत्र उत्पन्न होते उन्हें विकलांग कर देता था—किन्हीं की हाथ की अंगुलियों को काट देता था, किन्हीं के हाथ के अंगूठों का छेदन कर देता, किन्हीं के पैर की अंगुलियों को काट देता, किन्हीं के पैर के अंगूठे काट डालता, किन्हीं की कर्णशष्कुली और किन्हीं का नासिकापुट काट देता था, किन्हीं के अंगोपांग विकल कर देता था।

पद्मावती पुत्र संरक्षणार्थ तेतलीपुत्र की अनुमति—

१६६. तत्पश्चात् उस पद्मावती देवी को किसी एक दिन मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का मानसिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'कनकरथ राजा निश्चय ही राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में गाढ़ रूप से मूर्च्छित, गृद्ध और अत्यन्त आसक्त होकर उत्पन्न होने वाले पुत्र को अंग विकल कर देता है, किसी के हाथ की अंगुलियों को काट देता है, किसी के पैर के अंगूठे को काट देता है, किसी की कर्णशष्कुली-कान का छेदन कर देता है, किसी की नाक काट देता है, किसी के अंगोपांगों को काट देता है। इसलिये यदि अब मैं पुत्र का प्रसव करूँ तो मेरे लिये यह श्रेयस्कर होगा कि उस दारक शिशु को कनकरथ से छिपाकर संरक्षण करूँ, गुप्त रखूं, ऐसा विचार किया, विचार करके तेतलीपुत्र अमात्य को बुलाया और बुलाकर उससे यह कहा—

'हे देवानुप्रिये! बात यह है कि कनकरथ राजा राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर में प्रगाढ़ रूप से मूर्च्छित, गृद्ध और अत्यासक्त होकर पैदा होते ही पुत्रों को अपंग कर देता है, किसी के हाथ की अंगुलियों को काट देता है, किसी के हाथ के अंगूठे को काट देता है, किसी की पैर की अंगुलियां काट देता है, किसी के पैर का अंगूठा काट देता है, किसी की कर्णशष्कुली को और किसी की नाक काट देता है और किसी को विकलांग कर देता है। इसलिये यदि मैं पुत्र का प्रसव करूं तो हे देवानुप्रिये! तुम कनकरथ से छिपाकर ही अनुक्रम से उसका संरक्षण, संगोपन करते हुए संवर्धन—पालन-पोषण करना। ऐसा करने से वह बालक बाल्यावस्था पार करके सज्ञान-समझदार युवा होने पर तुम्हें और हमें—हम दोनों के लिये भिक्षा का भाजन बनेगा अर्थात् वह तुम्हारा हमारा भरण-पोषण का आधार बनेगा।

तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे पउमावईए देवीए एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता पडिगए।

तब उस तेतलीपुत्र अमात्य ने पद्मावती देवी के इस अर्थ मनोभावना को अंगीकार किया और अंगीकार करके वापस लौट गया।

पउमावइदारग-पोट्टिलादारियाणं जम्माणंतरं परोप्परं परावत्तणं—

पद्मावती दारक—पोट्टिला दारिका का जन्मानन्तर परस्पर परावर्तन—

१७०. तए णं पउमावई देवी पोट्टिला य अमच्ची सममेव गब्भं गेण्हंति, सममेव गब्भं परिवहंति सममेव गब्भं परिवड्ढंति।

१७०. तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने और पोट्टिला अमात्यी ने एक साथ ही गर्भधारण किया, एक ही साथ-समान काल तक गर्भ वहन किया और साथ-साथ ही गर्भ की वृद्धि की।

तए णं सा पउमावई देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-पियदंसणं सुरूवं दारगं पयाया। जं रयणिं च णं पउमावई देवी दारयं पयाया तं रयणिं च णं पोट्टिला वि अमच्ची नवण्हं मासाणं विणिहायमावन्नं दारियं पयाया।

तत्पश्चात् उस पद्मावती देवी ने परिपूर्ण नौ मास के बीतने के बाद—यावत्—देखने में प्रिय अर्थात् जिसका दर्शन प्रिय रूप है और सुन्दर है ऐसे दारक पुत्र को जन्म दिया। जिस रात्रि में पद्मावती देवी ने पुत्र प्रसव किया, उसी रात्रि में पोट्टिला अमात्यी ने भी नौ मास व्यतीत होने पर मृत बालिका का प्रसव किया।

तए णं सा पउमावई देवी अम्मधाइं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं अम्मो! तेयलिपुत्तं रहस्सिययं चेव सद्दावेहि।"

तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने अपनी धाय माता को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'हे मां! तुम जाओ और तेतलीपुत्र को गुप्त रूप से यहां बुला लाओ।'

तए णं सा अम्मधाई तह त्ति पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता अंतेउरस्स अवदारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव तेयलिस्स गिहे जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! पउमावई देवी सद्दावेइ।"

तदनन्तर उस धाय माता ने 'बहुत अच्छा' इस प्रकार कहकर पद्मावती का आदेश स्वीकार किया, स्वीकार करके अन्तःपुर के पिछले द्वार से निकली, निकलकर जहां तेतलीपुत्र का घर था, जहां तेतलीपुत्र था, वहां आई, वहां आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! आपको पद्मावती देवी ने बुलाया है।'

तए णं तेयलिपुत्ते अम्मधाईए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे अम्मधाईए सद्धिं साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अंतेउरस्स अवदारेणं रहस्सिययं चेव अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"संदिसंतु णं देवाणुप्पिए! जं मए कायव्वं।"

तब तेतलीपुत्र धाय माता से इस संवाद को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ धाय माता के साथ अपने घर से निकला, निकलकर अन्तःपुर के पिछले द्वार से गुप्त रूप में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहां पद्मावती देवी थी, वहां आया, वहां आकर हस्तयुगल को जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोला—'हे देवानुप्रिये! मेरे करने योग्य जो हो, उसके लिये आज्ञा दीजिये।'

तए णं पउमावई देवी तेयलिपुत्तं एवं वयासी—एवं खलु कणगरहे राया-जाव-पुत्ते वियंगेइ। अहं च णं देवाणुप्पिया! दारगं पयाया। त तुमं णं देवाणुप्पिया! एयं दारगं गेण्हाहि-जाव-तव मम य भिक्खाभायणे भविस्सइ त्ति" कट्टु तेयलिपुत्तस्स हत्थे दलयइ।

तदनन्तर पद्मावती देवी ने तेतलीपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! कनकरथ राजा—यावत्—पुत्र को विकलांग कर देता है तो हे देवानुप्रिये! मैंने पुत्र का प्रसव किया है। इसलिये हे देवानुप्रिये! तुम इस बालक को ग्रहण करो-संभालो—यावत्—जो तुम्हारे और हमारे लिये भिक्षा का भाजन बनेगा' ऐसा कहकर नवजात पुत्र को तेतलीपुत्र के हाथ में सौंपा।

तए णं तेयलिपुत्ते पउमावईए हत्थाओ दारगं गेण्हइ, उत्तरिज्जेणं पिहेइ, अंतेउरस्स रहस्सिययं अवदारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव पोट्टिला भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोट्टिलं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए!

तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने पद्मावती के हाथ से बालक को लिया, और अपने उत्तरीय वस्त्र-दुपट्टे से ढंक लिया एवं गुप्त रूप से अन्तःपुर के पिछले द्वार से निकला, निकलकर जहां अपना घर था, जहां पोट्टिला भार्या थी, वहां आया, आकर पोट्टिला

कणगरहे राया-जाव-पुत्ते वियंगेइ। अयं च णं दारए कणगरहस्स पुत्ते पउमावईए अत्तए। तन्नं तुमं देवाणुप्पिए! इमं दारगं कणगरहस्स रहस्सिययं चेव अणुपुव्वेणं सारक्खाहि य संगोवेहि य संवड्ढेहि य। तए णं एस दारए उम्मुक्कबालभावे तव य मम य पउमावईए य आहारे भविस्सइ'' त्ति कट्टु पोट्टिलाए पासे निक्खिवइ, निक्खिवित्ता पोट्टिलाए पासाओ तं विणिहायमावण्णियं दारियं गेण्हइ, गेण्हित्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहेत्ता अंतेउरस्स अवदारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव पउमावई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पउमावईए देवीए पासे ठावेइ-जाव-पडिनिग्गए।

भार्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! बात यह है कि कनकरथ राजा—यावत्—पुत्र का अंग-भंग कर देता है। यह शिशु कनकरथ का पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज है। अतएव हे देवानुप्रिये! तुम इस बालक को कनकरथ से गुप्त रखकर अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन पालन-पोषण करो। तत्पश्चात् जब यह बालक बाल्यावस्था से मुक्त होगा तब तुम्हें, हमें और पद्मावती देवी के लिये आधार भूत होगा' ऐसा कहकर पोट्टिला के पास रखा और रखकर पोट्टिला के पास से मरी हुई बालिका उठाली, उठाकर उसे उत्तरीय वस्त्र से ढंक लिया, ढंककर पिछले द्वार से अन्तःपुर में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ पद्मावती देवी थी वहाँ पहुँचा और पहुँचकर पद्मावती देवी के पास उसे रखा—यावत्—वापस लौट आया।

दारियाए मयकिच्चं—

१७१. तए णं तीसे पउमावईए देवीए अंगपडियारियाओ पउमावइं देविं विणिहायमावण्णियं च दारियं पयायं पासंति, पासित्ता जेणेव कणगरहे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—''एवं खलु सामी! पउमावई देवी मएल्लियं दारियं पयाया।''

तए णं कणगरहे राया तीसे मएल्लियाए दारियाए नीहरणं करेइ, बहूइं लोगियाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता कालेणं विगयसोए जाए।

दारिका के मृतकृत्य—

१७१. तत्पश्चात् उस पद्मावती देवी की अंगपरिचारिकाओं ने पद्मावती देवी को और विनिघात को प्राप्त अर्थात् मृत जन्मी हुई बालिका को देखा, देखकर जहाँ कनकरथ राजा था, वहाँ आई और वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! पद्मावती देवी ने मरी हुई बालिका का प्रसव किया है।'

तत्पश्चात् कनकरथ राजा ने उस मरी हुई बालिका का नीहरण किया अर्थात् उसे श्मशान में ले गया और बहुत से मृतक सम्बन्धी लौकिक कृत्य किये, लौकिक कृत्यों को करने के बाद कुछ समय के पश्चात् शोक रहित हो गया।

अमच्चपुत्तस्स जम्मुस्सवो कणगज्झयनामकरणं य—

१७२. तए णं से तेयलिपुत्ते कल्लं कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—''खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चारगसोहणं करेह-जाव-ठिइपडियं दसदेवसियं करेह, कारवेह य, एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।''

तेवि तहेव करेंति, तहेव पच्चप्पिणंति।

जम्हा णं अम्हं एस दारए कणगरहस्स रज्जे जाए तं होउ णं दारए नामेणं कणगज्झए-जाव-अलंभोगसमत्थे जाए।

अमात्यपुत्र का जन्मोत्सव और कनकध्वज नामकरण—

१७२. तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने कल आगामी दिन कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा 'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चारक शोधन करो अर्थात् कैदियों को कारागवास से मुक्त करो—यावत्—दस दिनों की स्थितिपतिका करो अर्थात् पुत्र जन्मोत्सव करो—कराओ और ऐसा करके मेरी आज्ञा मुझे वापस लौटाओ।

वे भी आज्ञानुसार करते हैं, और उसी प्रकार वापस आज्ञा लौटाते हैं।

'क्योंकि हमारा यह दारक कनकरथ के राज्य में उत्पन्न हुआ है इसलिये इस बालक का नाम कनकध्वज हो' (बालक बड़ा हुआ)—यावत्—भोग भोगने में समर्थ हो गया।

अमच्चस्स पोट्टिलं पइ विरागो—

१७३. तए णं सा पोट्टिला अण्णया कयाइ तेयलिपुत्तस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया यावि होत्था—नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलाए नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा?

अमात्यका पोट्टिला के प्रति विराग

१७३. तत्पश्चात् वह पोट्टिला अन्यदा किसी एक समय तेतलीपुत्र को अनिष्ट, अकान्त, अमनोज्ञ, अमणाम हो गई—तेतलीपुत्र जब पोट्टिला का नाम और गोत्र सुनना ही पसन्द नहीं करता था तो फिर दर्शन और परिभोग की बात ही कहाँ रही?

तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था —"एवं खलु अहं तेयलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया। नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नाम गोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा ?" (त्ति कट्टु ?) ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियायइ।

तत्पश्चात् किसी एक समय उस पोट्टिला को मध्य रात्रि के समय इस प्रकार का मानसिक, चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि निश्चय ही पूर्व में मैं तेतलीपुत्र को इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ और मणाम थी, लेकिन इस समय अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम हो गई हूँ। तेतलीपुत्र जब मेरा नाम और गोत्र भी सुनना पसन्द नहीं करता है तो फिर दर्शन और परिभोग की बात ही कहाँ रही ? ऐसा सोचकर भग्न मनोरथा हो, हथेली पर मुँह को टिकाकर आर्तध्यान में डूब गई।

पोट्टिलाए दाणसालाकरणं—

१७४. तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया झियाहि। तुमं णं मम महाणसंसि विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेहि, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहराहि।"

पोट्टिला का दानशालाकरण—

१७४. तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने भग्न मनोरथा होकर पोट्टिला को हथेली पर मुँह को टिकाये आर्तध्यान में निमग्न देखा, और देखकर उससे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिये ! तुम भग्न मनोरथा होकर हथेली पर मुँह को टिकाये हुए आर्तध्यान मत करो। तुम मेरी भोजनशाला में विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार को तैयार करवाओ और तैयार करवाकर बहुत से श्रमण, ब्राह्मण, अतिथि, कृपण और भिखारियों को दान देती-दिलाती हुई विचरण करो।"

तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तेणं अमच्चेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ तुट्ठा तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कल्लाकल्लिं महाणसंसि विपुलं असणपाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-माहण-अतिहि किवण-वणीमगाणं देयमाणी य दवावेमाणी य विहरइ।

तदनन्तर उस पोट्टिला ने तेतलीपुत्र अमात्य के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो तेतलीपुत्र के इस अर्थ-मनोभाव को स्वीकार किया, स्वीकार करके प्रतिदिन भोजनशाला में विपुल मात्रा में अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाने लगी और तैयार करवाके बहुत से श्रमण, ब्राह्मण अतिथि, कृपण और भिखारियों को देती और दिलाती हुई विचरने लगी।

अज्जा-संघाडगस्स भिक्खायरियाए आगमणं—

१७५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ नामं अज्जाओ इरियासमियाओ-जाव-गुत्तबंभचारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ जेणामेव तेयलिपुरे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हंति, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणीओ विहरंति।

आर्या संघाटक का भिक्षाचर्यार्थ आगमन—

१७५. उस काल और उस समय में ईर्या आदि समितियों से युक्त—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुत और बहुत सी शिष्याओं के परिवार वाली सुव्रता नाम की आर्या क्रमानुक्रम से विहार करती हुई जहाँ तेतलीपुर नगर था, वहाँ आई, वहाँ आकर यथा प्रतिरूप—यथोचित अवग्रहों को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरण करने लगीं।

तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए पढमाए पोरिसीए सज्झायं-जाव-करेइ। अडमाणीओ तेयलिस्स गिहं अणुपविट्ठाओ।

तत्पश्चात् उन सुव्रता आर्या के एक संघाड़े ने प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया—यावत्—भ्रमण करती हुई वे साध्वियाँ तेतलीपुत्र के घर में प्रविष्ट हुईं।

पोट्टिलाए अमच्चपसायोवाय-पुच्छा—

१७६. तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, पडिलाभेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अहं अज्जाओ ! तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स पुव्विं

पोट्टिला द्वारा अमात्य-प्रसादोपायपृच्छा—

१७६. तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओं को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट होती हुई आसन से खड़ी हुई, वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार से प्रतिलाभित किया, प्रतिलाभित करके इस प्रकार कहा—

"हे आर्याओ ! निश्चय ही पूर्व में मैं तेतलीपुत्र अमात्य को

इट्ठा-जाव-मणामा आसि, इयाणिं अणिट्ठा-जाव-अमणामा जाया। नेच्छइ णं तेयलिपुत्ते मम नामगोयमवि सवणयाए, किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा ? तं तुब्भे णं अज्जाओ बहुनायाओ बहुसिक्खियाओ बहुपढियाओ बहूणि-गामागर-जाव-आहिंडह, बहूणं राईसर-जाव-गिहाइं अणुपविसह। तं अत्थि याइं भे अज्जाओ ! केइ कहिंचि चुण्णजोए वा मंतजोगे वा कम्मणजोए वा हियउड्डावणे वा काउड्डावणे वा आभिओगिए वा वसीकरणे वा कोउयकम्मे वा भूइकम्मे वा मूले वा कंदे वा छल्ली वल्ली सिलिया वा गुलिया वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धपुव्वे, जेणाहं तेयलिपुत्तस्स पुणरवि इट्ठा-जाव-मणामा भवेज्जामि ?"

इष्ट—यावत्—मणाम थी, लेकिन अभी अनिष्ट—यावत्—अमणाम हो गई हूँ। तेतलीपुत्र जब मेरा नाम और गोत्र भी सुनना पसंद नहीं करता है तब फिर दर्शन और परिभोग की बात तो दूर रही ? आप आर्याओं बहुत जानकार हो, बहुत शिक्षित हो, बहुत पढ़ी-लिखी हो, बहुत से ग्रामों, आकरों में—यावत्—भ्रमण करती हो, बहुत से राजाओं, ईश्वरों के—यावत्—घरों में प्रवेश करती हो। तो हे आर्याओं ! यदि तुमने किसी से कहीं पर कोई चूर्णयोग, मंत्रयोग, कामणयोग, हृदयोड्डायन—हृदय को हरण करने वाला, कायोड्डायन—शरीर का आकर्षण करने वाला, आभियोगिक—पराभव करने वाला, वशीकरण, कौतुककर्म, भूतिकर्म—भभूत का प्रयोग, मूल, कन्द, छाल, बेल, शिलिका (घास विशेष) गुलिका—गोली, औषधि अथवा भेषज पूर्व में कहीं जानी देखी और प्राप्त की हो तो बताओ, जिससे मैं पुनः तेतलीपुत्र को इष्ट—यावत्—मणाम हो सकूं ?'

अज्जा-संघाडगेण धम्मोवएसो—

१७७. तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए एवं वुत्ताओ समाणीओ दोवि कण्णे ठएंति, ठवेत्ता पोट्टिलं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिए ! समणीओ निग्गंथीओ-जाव-गुत्तबंभचारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं एयप्पगारं कण्णेहिं वि निसामित्तए, किमंग पुण उवदंसित्तए वा आयरित्तए वा ? अम्हे णं तव देवाणुप्पिए ! विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहिज्जामो।"

आर्या संघाटक द्वारा धर्मोपदेश—

१७७. तब उन आर्याओं ने पोट्टिला की इस बात को सुनकर अपने दोनों कान में अंगुली डालकर बंद कर लिये और बंद करके पोट्टिला से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! हम निर्ग्रन्थ श्रमणियां—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी हैं। इसलिये हमें ऐसे वचन कानों से सुनना भी नहीं कल्पता है, तब फिर इस विषय में उपदेश देना या आचरण करना कैसे कल्प सकता है ? इसलिये हे देवानुप्रिये ! हम तुम्हें विचित्र केवली प्ररूपित धर्म का उपदेश दे सकते हैं।'

तए णं सा पोट्टिला ताओ अज्जाओ एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ ! तुब्भं अंतिए केवलिपण्णत्तं धम्मं निसामित्तए।"

तए णं ताओ अज्जाओ पोट्टिलाए विचित्तं केवलिपण्णत्तं धम्मं परिकहेंति।

तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओं से यह कहा—'हे आर्याओं ! मैं आपके पास केवलिप्ररूपित धर्म सुनना चाहती हूँ।'

तब उन आर्याओं ने पोट्टिला को विचित्र केवलिप्ररूपित धर्म का उपदेश दिया।

पोट्टिलाए सावियाधम्मगहणं—

१७८. तए णं सा पोट्टिला धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठा तुट्ठा एवं वयासी—"सद्दहामि णं अज्जाओ ! निग्गंथं पावयणं-जाव-से जहेयं तुब्भे वयह। इच्छामि णं अहं तुब्भं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जित्तए।

पोट्टिला द्वारा श्राविका धर्मग्रहण—

१७८. तत्पश्चात् धर्मश्रवण कर और हृदय में धारण कर वह पोट्टिला हृष्ट-तुष्ट होती हुई बोली—'हे आर्याओ ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ—यावत्—वह वैसा ही जैसा आपने प्ररूपित किया है। अतः मैं आपके पास पंच अणुव्रत, सप्त शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार करना चाहती हूँ।'

अहासुहं देवाणुप्पिए !

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो।' आर्याओं ने उत्तर दिया।

तए णं सा पोट्टिला तासिं अज्जाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं-जाव-गिहिधम्मं पडिवज्जइ, ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् उस पोट्टिला ने उन आर्याओं के पास से पंच अणुव्रत—यावत्—श्रावक धर्म अंगीकार किया और फिर उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उन्हें विदा किया।

तए णं सा पोट्टिला समणोवासिया जाया-जाव-पडिलाभेमाणी विहरइ ।

पोट्टिलाए पव्वज्जागहणसंकप्पो—

१७९. तए णं तीसे पोट्टिलाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था— एवं खलु अहं तेयलिपुत्तस्स पुव्विं इट्ठा-जाव-मणामा आसि इयाणिं अणिट्ठा-जाव-अमणामा जाया । नेच्छइ णं तेयलीपुत्ते मम नामगोयमवि सवणयाए किं पुण दंसणं वा परिभोगं वा ? तं सेयं खलु ममं सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए पव्वइत्तए—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव तेयलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी "एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए । तं इच्छामि णं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया पव्वइत्तए ।"

तेयलिपुत्तं पइ धम्मबोहकरणपडिबद्धाए पोट्टिलाए पव्वज्जागहणं देवलोगुववाओ य—

१८०. तए णं तेयलिपुत्ते पोट्टिलं एवं वयासी—"एवं खलु तुमं देवाणुप्पिए ! मुण्डा पव्वइया समाणी कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववज्जिहिसि । तं जइ णं तुमं देवाणुप्पिए ! ममं ताओ देवलोगाओ आगम्म केवलिपण्णत्ते धम्मे बोहेहि, तोऽहं विसज्जेमि । अह णं तुमं ममं न संबोहेसि, तो ते न विसज्जेमि ।"

तए णं सा पोट्टिला तेयलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

१८१. तए णं तेयलिपुत्ते विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ-जाव-सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पोट्टिलं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पुरिससहस्स-वाहिणीयं सीयं दुरुहित्ता मित्तनाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहिनिग्घोसनाइय-रवेणं तेयलिपुरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं उवस्सए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीयाओ पच्चो-

अब वह पोट्टिला श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—साधु साध्वियों को प्रतिलाभित करती हुई विचरने लगी ।

पोट्टिला का प्रव्रज्या ग्रहण संकल्प—

१७९. तत्पश्चात् एक बार किसी समय उस पोट्टिला को मध्य रात्रि के समय कुटुम्ब विषयक चिन्ता में जागरण करते हुए इस प्रकार का यह आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ— 'पहले मैं तेतलीपुत्र को इष्ट—यावत्—मणाम थी लेकिन इस समय अनिष्ट—यावत्—अमणाम हो गई हूँ । तेतलीपुत्र मेरा नाम और गोत्र भी सुनना पसंद नहीं करता है तब दर्शन और परिभोग की बात ही कहाँ रही ? इसलिये मेरे लिये सुव्रता आर्या से दीक्षाग्रहण करना ही श्रेयस्कर है'—ऐसा विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज से सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर जहाँ तेतलीपुत्र था, वहाँ पहुँची और वहाँ पहुँचकर दोनों हाथों को जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली —'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि सुव्रता आर्या से मैंने धर्मश्रवण किया है, और उस धर्म को मैं इच्छा करती हूँ आकांक्षी हूँ, उसको ग्रहण करना चाहती हूँ और वह मुझे पसन्द है, रुचा है । इसलिये आपकी आज्ञा अनुमति प्राप्त करके मैं प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ ।'

तेतलीपुत्र के प्रति धर्मबोध करण प्रतिबद्धता पूर्वक पोट्टिला का प्रव्रज्या ग्रहण और देवलोक में उत्पत्ति—

१८०. तब तेतलीपुत्र ने पोट्टिला से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम मुण्डित और प्रव्रजित होकर काल मास में काल करके किसी भी देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होओगी, सो हे देवानुप्रिये ! यदि तुम उस देवलोक से आकर मुझे केवलिप्ररूपित धर्म का बोध कराओ तो मैं तुम्हें आज्ञा दे सकता हूँ । अगर तुम मुझे प्रतिबोध न दो तो मैं आज्ञा नहीं दे सकता ।'

तब उस पोट्टिला ने तेतलीपुत्र के इस अर्थ मनोभाव को स्वीकार किया ।

१८१. तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम और स्वादिम आहार बनवाया, आहार बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजीस्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया—यावत्—सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके पोट्टिला को स्नान कराया, और सर्व अलंकारों से विभूषित करके सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली पालखी में बैठाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजीस्वजन सम्बन्धियों और परिजनों से परिवेष्टित होकर समस्त ऋद्धि-वैभव पूर्वक यावत्—दुन्दुभि निर्घोष और वाद्यों की ध्वनि के साथ तेतलीपुर नगर के मध्य भाग में से गमन करता हुआ जहाँ सुव्रता आर्या का उपाश्रय था, वहाँ

रुहइ, पच्चोरुहित्ता पोट्टिलं पुरओ कट्टु जेणेव सुव्वया अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पोट्टिला भारिया इट्ठा-जाव-मणामा। एस णं संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-जर-मरणाणं इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।"

आया, वहाँ आकर वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! यह मेरी पोट्टिला भार्या मुझे इष्ट—यावत्—मणाम है। यह संसार के भय से उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर जन्म, जरा और मरण की इच्छा न करते हुए आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास त्याग करके प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती है। हे देवानुप्रिये ! इस शिष्यणी भिक्षा को अंगीकार करें।'

अहासुहं, मा पडिबंधं करेहि।

आर्या ने कहा—'जैसे सुख उपजे, वैसा करो, लेकिन प्रतिबन्ध-विलम्ब मत करो।'

तए णं सा पोट्टिला सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठा उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरण-मल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—आलित्ते णं अज्जा ! लोए एवं जहा देवाणंदा-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झोसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणेणं छेएत्ता आलोइय-पडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववण्णा।

तत्पश्चात् वह पोट्टिला सुव्रता आर्या के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होती हुई उत्तर पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में गई, वहाँ जाकर अपने आप आभरण माला और अलंकारों को उतारा, उतारकर अपने हाथों से पंचमुष्टिक केशलोच किया और फिर जहाँ सुव्रता आर्या विराज रही थीं, वहाँ आई, वहाँ आकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे आर्ये ! यह संसार आदीप्त है—चारों ओर से जल रहा है, इत्यादि देवानन्दा की दीक्षा के समान वर्णन करना चाहिये—यावत्—दीक्षा लेने के अनन्तर पोट्टिला ने ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत वर्षों तक संयम पर्याय का पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध करके साठ भक्तों का अनशन द्वारा छेदन करके, आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक कालमास में काल करके किसी देवलोक में देवता रूप में उत्पन्न हुई।

कणगरहस्स मच्चू—

१८२. तए णं से कणगरहे राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते यावि होत्था।

तए णं ते राईसर-जाव-नीहरणं करेंति, करेत्ता अण्णमण्णं एवं वयासी ···

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे य-जाव-मुच्छिए पुत्ते वियंगित्था। अम्हे णं देवाणुप्पिया ! रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा। अयं च णं तेयली अमच्चे कणगरहस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए दिण्णवियारे सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था। तं सेयं खलु अम्हं तेयलिपुत्तं अमच्चं कुमारं जाइत्तए'! त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव तेयलिपुत्ते अमच्चे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तेयलिपुत्तं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! कणगरहे राया रज्जे

कनकरथ की मृत्यु—

१८२. तत्पश्चात् किसी समय कनकरथ राजा कालधर्म से युक्त हो गया, मर गया।

तब उन राजा, ईश्वर आदि ने उसका नीहरण किया अग्नि संस्कार आदि मरणोत्तर कालीन कृत्य किये, उन मृतक कृत्यों को करके उन्होंने परस्पर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! कनकरथ राजा ने राज्य—यावत्—अन्तःपुर में मूर्च्छित होकर, अपने पुत्रों को विकलांग कर दिया है। 'हे देवानुप्रियो ! हम लोग तो राजा के अधीन हैं, राजा से अधिष्ठित होकर रहने वाले हैं और राजा के अधीन होकर कार्य करने वाले हैं और यह तेतलीपुत्र अमात्य कनकरथ राजा का सब स्थानों में और सब भूमिकाओं में विश्वासपात्र रहा है, विचार परामर्श देने वाला रहा है और सब काम-काज करने वाला रहा है। अतएव हमें तेतलीपुत्र अमात्य से कुमार की याचना करना श्रेयस्कर उचित है,' इस प्रकार विचार करके परस्पर इस बात को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ तेतलीपुत्र अमात्य था, वहाँ आये, वहाँ आकर तेतलीपुत्र से इस प्रकार कहा—हे

य-जाव-मुच्छिए पुत्ते वियंगित्था । अम्हे णं देवाणुप्पिया ! रायाहीणा रायाहिट्ठिया रायाहीणकज्जा । तुमं च णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो सव्वठाणेसु सव्वभूमियासु लद्धपच्चए विइण्णवियारे रज्जधुराचिंतए होत्था । तं जइ णं देवाणुप्पिया ! अत्थि केइ कुमारे रायलक्खणसंपण्णे अभिसेयारिहे तण्णं तुमं अम्हं दलाहि जण्णं अम्हे महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचामो ।''

देवानुप्रिये ! बात यह है कि कनकरथ राजा ने राज्य—यावत्—अन्तःपुर में मूर्च्छित होकर पुत्रों को विकलांग कर दिया है और हे देवानुप्रिये ! हम लोग तो राजा के अधीन होकर राजा से अधिष्ठित होकर रहने वाले हैं और राजा के अधीन होकर कार्य करने वाले हैं । हे देवानुप्रिये ! आप कनकरथ राजा के सभी स्थानों में और सब भूमिकाओं में विश्वासपात्र रहे हो, विचार देने वाले रहे हो, [illegible] करने वाले रहे हो, राजधुरा के चिन्तक हो । अतएव हे देवानुप्रिये ! यदि कोई राजलक्षणों से युक्त कुमार हो और अभिषेक के योग्य हो तो हमें दीजिये, जिससे हम महान् राज्याभिषेक से उसका अभिषेक करें ।'

कणगज्झयस्स रायाभिसेओ—

१८३. तए णं तेयलिपुत्ते तेसिं ईसरपभिईणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कणगज्झयं कुमारं ण्हायं-जाव-सस्सिरीयं करेइ, करेत्ता तेसिं ईसरपभिईणं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी— एस णं देवाणुप्पिया ! कणगरहस्स रण्णो पुत्ते पउमावईए देवीए अत्तए कणगज्झए नामं कुमारे अभिसेयारिहे रायलक्खणसंपण्णे, मए कणगरहस्स रण्णो रहस्सियं संवड्ढिए । एयं णं तुब्भे महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचह ।'' सव्वं च से उट्ठाणपरियावणियं परिकहेइ ।

तए णं ते ईसरपभिइओ कणगज्झयं कुमारं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति ।

तए णं से कणगज्झए कुमारे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे-जाव-रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

कनकध्वज का राज्याभिषेक—

१८३. तत्पश्चात् तेतलीपुत्र ने उन ईश्वर आदि के इस कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके कनकध्वज कुमार को स्नान कराया—यावत्—सश्रीक विभूषित किया, विभूषित करके उन ईश्वर आदि के पास लाया और पास लाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! यह कनकरथ राजा का पुत्र और पद्मावती देवी का आत्मज कनकध्वज नामक कुमार अभिषेक के योग्य एवं राजलक्षणों से सम्पन्न है, कनकरथ राजा से छिपाकर मैंने इसका संवर्धन पालन-पोषण किया है । तुम लोग महान्-महान् राज्याभिषेक से इनका अभिषेक करो' और उसके बाद उसने कुमार के जन्म का और लालन-पालन आदि का समस्त वृत्तान्त उन्हें कह सुनाया ।

तत्पश्चात् उन ईश्वर आदि ने कनकध्वज कुमार को महान्-महान् राज्याभिषेक से अभिषिक्त किया ।

तब वह कनकध्वज कुमार राजा हो गया—महाहिमवान्, मलयपर्वत, मंदर-सुमेरुपर्वत श्रेष्ठ इन्द्र के समान (इत्यादि राजा का वर्णन यहाँ कर लेना चाहिये)—यावत्—वह राज्य का प्रशासन, पालन करते हुए विचरने लगा ।

तेयलिपुत्तस्स सम्माणं—

१८४. तए णं सा पउमावई देवी कणगज्झयं रायं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'एस णं पुत्ता ! तव रज्जे य रट्ठे य बले य वाहणे य कोसे य कोट्ठागारे य पुरे य अंतेउरे य, तुमं च तेयलिपुत्तस्स अमच्चस्स पभावेणं । तं तुमं णं तेयलिपुत्तं अमच्चं आढाहि परिजाणाहि सक्कारेहि सम्माणेहि, इंतं अब्भुट्ठेहि, ठियं पज्जुवासेहि, वच्चंतं पडिसंसाहेहि, अद्धासणेणं उवणिमंतेहि, भोगं च से अणुवड्ढेहि ।''

तए णं से कणगज्झए पउमावईए तहत्ति वयणं पडिसुणेइ,

तेतलीपुत्र का सम्मान—

१८४. तत्पश्चात् पद्मावती देवी ने कनकध्वज राजा को बुलाया, और बुलाकर उससे कहा—'हे पुत्र ! तुम्हारा यह राज्य, बल, वाहन, कोष, कोष्ठागार, पुर और अन्तःपुर तथा स्वयं तुम भी तेतलीपुत्र अमात्य के प्रभाव से सुरक्षित रहे हो । अतएव तुम तेतलीपुत्र अमात्य का आदर करना, उन्हें अपना हितैषी जानना, उनका सत्कार सम्मान करना, उन्हें आते देखकर खड़े होना, आकर खड़े होने पर उनकी उपासना-सेवा करना और उनके वापस जाने पर पीछे-पीछे चलना, बोलने पर उनके वचनों की प्रशंसा करना, उन्हें अपने समीप आधे आसन पर बैठाना और उनके भोगों (वेतन जागीर आदि) की वृद्धि करना ।'

तब उस कनकध्वज राजा ने 'बहुत अच्छा' कहकर पद्मावती

पडिसुणेत्ता तेयलिपुत्तं अमच्चं आढाइ परिजाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ, इंतं अब्भुट्ठेइ, ठियं पज्जुवासेइ, वच्चंतं पडिसंसाहेइ, अद्धासणेणं उवणिमंतेइ, भोगं च से अणुवड्ढेइ ।

देवी के कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके तेतलीपुत्र अमात्य का आदर करता है, उन्हें अपना हितैषी जानता है, उनका सत्कार सम्मान करता है, आते हुए देखकर आसन से उठता है और वापस जाते समय पीछे-पीछे चलता है, खड़े होने पर उनकी पर्युपासना सेवा करता है, उनके वचनों की प्रशंसा करता है, अपने निकट आधे आसन पर बैठाता है और उनके भोगों में वृद्धि करता है ।

तेयलिपुत्तस्स पोट्टिलदेवकओ धम्मसंबोहोवाओ—

तेतलीपुत्र के लिये पोट्टिल देवकृत धर्मसंबोधोपाय—

१८५. तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अभिक्खणं-अभिक्खणं केवलिपण्णत्ते धम्मे संबोहेइ, नो चेव णं से तेयलिपुत्ते संबुज्झइ ।

१८५. तत्पश्चात् उस पोट्टिलदेव ने तेतलीपुत्र को बारंबार केवलिप्ररूपित धर्म से सम्बोधित किया, परन्तु तेतलीपुत्र को प्रतिबोध हुआ ही नहीं ।

तए णं तस्स पोट्टिलदेवस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु कणगज्झए राया तेयलिपुत्तं आढाइ-जाव-भोगं च से अणुवड्ढइ, तए णं से तेयलिपुत्ते अभिक्खणं-अभिक्खणं संबोहिज्जमाणे वि धम्मे नो संबुज्झइ । तं सेयं खलु ममं कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामित्तए" त्ति कट्टु संपेहेइ, संपेहेत्ता कणगज्झयं तेयलिपुत्ताओ विप्परिणामेइ ।

तब उस पोट्टिलदेव को इस प्रकार का यह मानसिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'कनकध्वज राजा तेतलीपुत्र का आदर करता है—यावत्—उनके भोगों में वृद्धि कर दी है, जिससे वह तेतलीपुत्र बारंबार सम्बोधित किये जाने पर भी धर्म में प्रतिबुद्ध नहीं होता है । अतएव मेरे लिये यह श्रेयस्कर उचित होगा कि कनकध्वज को तेतलीपुत्र से विमुख कर दिया जाये' यह विचार किया और विचार करके कनकध्वज को तेतलीपुत्र से विरुद्ध—विमुख कर दिया ।

तए णं तेयलिपुत्ते कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते आसखंधवरगए बहूहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कणगज्झए राया तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तदनन्तर दूसरे दिन रात्रि के प्रभातरूप होने—यावत्—सूर्योदय होने पर और जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर तेतलीपुत्र स्नान करके, बलिकर्म पूजा करके और कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके श्रेष्ठ घोड़े पर सवार होकर बहुत से पुरुषों को साथ लेकर अपने घर से निकला, और निकलकर जहाँ कनकध्वज राजा था उसी ओर जाने के लिये उद्यत हुआ ।

तए णं तेयलिपुत्तं अमच्चं जे जहा बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ सत्थवाहपभियओ पासंति ते तहेव आढायंति परियाणंति अब्भुट्ठेंति, अंजलिपग्गहं करेंति, इट्ठाहिं कंताहिं-जाव-वग्गूहिं आलवमाणा य संलवमाणा य पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गतो य समणुगच्छंति ।

तब (मार्ग में चलते हुए) तेतलीपुत्र अमात्य को जो-जो बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य सेठ सेनापति, सार्थवाह प्रभृति देखते थे उसी तरह—सदैव पूर्व की भांति आदर करते, जानते, खड़े होते, अंजलि करते, हाथ जोड़ते और हाथ जोड़कर इष्ट, कान्त—यावत्—मधुर वाणी का उच्चारण करते एवं आलाप संलाप करते हुए आगे पीछे और अगल-बगल में अनुसरण करके साथ चलते हैं ।

१८६. तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव कणगज्झए तेणेव उवागच्छइ ।

१८६. तत्पश्चात् वह तेतलीपुत्र जहाँ कनकध्वज राजा था, वहाँ आया ।

तए णं से कणगज्झए तेयलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भुट्ठेमाणे परम्मुहे संचिट्ठइ ।

तब उस कनकध्वज ने तेतलीपुत्र को अपने समीप आते हुए देखा, किन्तु देखकर उसका आदर नहीं किया, उसकी ओर ध्यान नहीं दिया, खड़ा नहीं हुआ बल्कि आदर न करता हुआ न जानता हुआ और खड़ा न होता हुआ पराङ्मुख होकर (पीठ फेरकर) बैठा रहा ।

तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे कणगज्झयस्स रण्णो अंजलिं करेइ। तओ य णं से कणगज्झए राया अणाढायमाणे अपरियाणमाणे अणब्भुट्ठेमाणे तुसिणीए परम्मुहे संचिट्ठइ।

तए णं तेयलिपुत्ते कणगज्झयं रायं विप्परिणयं जाणित्ता भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए एवं वयासी—"रुट्ठे णं मम कणगज्झए राया। हीणे णं मम कणगज्झए राया। अवज्झाए णं मम कणगज्झए राया। तं न नज्जइ णं मम केणइ कु-मारेण मारेहिइ" त्ति कट्टु भीए तत्थे जाव-सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता तमेव आसखंधं दुरूहइ, दुरूहित्ता तेयलिपुरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं तेयलिपुत्तं जे जहा ईसर-जाव-सत्थवाहपभियओ पासंति ते तहा नो आढायंति नो परियाणंति नो अब्भुट्ठेंति नो अंजलि-पग्गहं करेंति, इट्ठाइं-जाव-वग्गूहिं नो आलवंति नो संलवंति नो पुरओ य पिट्ठओ य पासओ य मग्गओ य समणुगच्छंति।

तए णं तेयलिपुत्ते अमच्चे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागए। जा वि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तं जहा—दासे इ वा पेसे इ वा भाइल्लए इ वा, सा वि य णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ। जा वि य से अब्भिंतरिया परिसा भवइ, तं जहा—पिया इ वा माया इ वा भाया इ वा भगिणी इ वा भज्जा इ वा पुत्ता इ वा धूया इ वा सुण्हा इ वा, सा वि य णं नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ।

तेयलिपुत्तस्स मरणचेट्ठाए विहलीकरणं—

१८७. तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव वासघरे जेणेव सयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सयणिज्जंसि निसीयइ, निसीइत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अहं सयाओ गिहाओ निग्गच्छामि तं चेव-जाव-अब्भिंतरिया परिसा नो आढाइ नो परियाणाइ नो अब्भुट्ठेइ। तं सेयं खलु मम अप्पाणं जीवियाओ ववरोवित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तालउडं विसं आसगंसि पक्खिवइ। से य विसे नो कमइ।

तए णं से तेयलिपुत्ते अमच्चे नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासं खुरधारं असिं खंधंसि ओहरइ। तत्थ वि य से धारा ओएल्ला।

तब उस तेतलीपुत्र अमात्य ने कनकध्वज राजा को अंजलि की, नमस्कार किया, फिर भी वह कनकध्वज राजा आदर न करते हुए ध्यान न देते हुए और खड़े न होते हुए मौन धारण करके पराङ्मुख होकर बैठा रहे।

तब तेतलीपुत्र कनकध्वज राजा को विरुद्ध हुआ जानकर भयभीत, त्रस्त, तृषित, उद्विग्न और भयाकान्त होता हुआ (मन ही मन में) बोला—'कनकध्वज राजा मुझ से रुष्ट हो गया है। कनकध्वज राजा के मन में मैं हीन हो गया हूँ। कनकध्वज राजा ने मेरा बुरा सोचा है। अतएव न मालूम वह मुझे किस कुमौत से मारेगा।' ऐसा विचार कर भीत, त्रस्त होता हुआ—यावत्—धीरे धीरे वहाँ से वापस लौट पड़ा, वापस लौटकर उसी घोड़े पर सवार होकर तेतलीपुर नगर के मध्य में से जहाँ अपना आवासगृह था, उसी ओर चलने के लिये उद्यत हुआ।

तत्पश्चात् वे ईश्वर—यावत्—सार्थवाह आदि जैसे ही तेतलीपुत्र को देखते तो वे पहले की तरह उसका आदर नहीं करते हैं, उसकी ओर ध्यान नहीं देते हैं, सामने खड़े नहीं होते हैं, अंजलि नहीं करते हैं, इष्ट यावत् मधुर वचनों से आलाप-संलाप नहीं करते हैं और न आगे, पीछे एवं अगल बगल में अनुगमन करते हुए साथ-साथ चलते हैं।

तत्पश्चात् तेतलीपुत्र अमात्य जहाँ अपना घर था, वहाँ आया। वहाँ भी जो बाहर की परिषद थी जैसे कि दास प्रेष्य—बाहर आने-जाने वाले नौकर, भाइल्ल खेती का काम करने वाले नौकर आदि उन्होंने भी आदर नहीं किया, ध्यान नहीं दिया और न खड़ी हुई और जो आभ्यन्तर परिषद थी, जैसे कि पिता, माता, भाई, बहिन, पत्नी-पुत्र, पुत्री और पुत्रवधु आदि, उसने भी आदर नहीं किया, ध्यान नहीं दिया और न खड़ी हुई।

तेतलीपुत्र का मरण-चेष्टा का विफल प्रयास—

१८७. तत्पश्चात् वह तेतलीपुत्र जहाँ अपना शयनागार था, और जहाँ शैया थी, वहाँ आया, वहाँ आकर शैया पर बैठा, बैठकर (मन ही मन) इस प्रकार कहने लगा—'जब मैं अपने घर से निकला और राजा के पास गया इत्यादि पूर्व के समान वर्णन करना चाहिये—यावत्—वापस आते समय आभ्यन्तर परिषद ने आदर नहीं किया, ध्यान नहीं दिया और न उठकर खड़ी हुई। इसलिये इस दशा में मुझे अपने को जीवन से रहित कर लेना ही श्रेयस्कर है—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके तालपुट विष को मुख में डाला। किन्तु वह विष परिणत नहीं हुआ अर्थात् उसका असर नहीं हुआ।

तब उस तेतलीपुत्र अमात्य ने नील कमल के समान, भैंस के सींग की गुटिका-गोली और अलसी के फूल के रंग के समान श्यामल वर्ण और तीक्ष्ण धारवाली तलवार को कंधे पर वहन किया—प्रहार किया किन्तु वहाँ भी वह धार निरर्थक कुंठित हो गई।

तए णं से तेयलिपुत्ते जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासगं गीवाए बंधइ, बंधित्ता रुक्खं दुरुहइ, दुरुहित्ता पासगं रुक्खे बंधइ, बंधित्ता अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना।

तत्पश्चात् तेतलीपुत्र जहाँ अशोकवाटिका थी वहाँ गया। वहाँ जाकर उसने अपने गले में पाश बाँधा—फाँसी लगाई। फिर वृक्ष पर चढ़ा। चढ़कर वह पाश वृक्ष से बाँधा, फिर अपने शरीर को छोड़ा अर्थात् लटका दिया—किन्तु रस्सी टूट गई, फाँसी न लगी।

तए णं से तेयलिपुत्ते महइमहालियं सिलं गीवाए बंधइ, बंधइ, बंधित्ता अत्थाहमतारमपोरिसीयंसि उदगंसि अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि से थाहे जाए।

तत्पश्चात् उस तेतलिपुत्र ने एक बहुत बड़ी शिला अपनी गर्दन में बाँधी, बाँधकर अथाह न तिरने योग्य और अपौरुष (जिसकी गहराई कितने पुरुष प्रमाण है, यह ज्ञात न हो) जल में अपने शरीर को पटक दिया। किन्तु वहाँ पर भी वह जल थाह वाला—छिछला हो गया।

तए णं से तेयलिपुत्ते सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अप्पाणं मुयइ। तत्थ वि य से अगणिकाए विज्झाए।

तत्पश्चात् उस तेतलिपुत्र ने सूखे घास के ढेर में आग लगाई, आग लगाकर अपने शरीर को उसमें होम दिया—डाल दिया। किन्तु वहाँ भी वह अग्नि बुझ गई—शांत हो गई।

तेयलिपुत्तस्स विम्हयकरणं—

तेतलिपुत्र का विस्मय करण—

१८८. तए णं से तेयलिपुत्ते एवं वयासी—"सद्धेयं खलु भो! समणा वयंति। सद्धेयं खलु भो! माहणा वयंति। सद्धेयं खलु भो! समण-माहणा वयंति। अहं एगो असद्धेयं वयामि। एवं खलु—

१८८. तदनन्तर वह तेतलिपुत्र (मन ही मन) इस प्रकार बोला—"अरे मन! निश्चय ही श्रमण श्रद्धा करने योग्य ही वचन बोलते हैं, माहन श्रद्धा करने योग्य ही वचन बोलते हैं, श्रमण और माहण श्रद्धा करने योग्य वचन ही बोलते हैं। लेकिन एक मैं ही ऐसा हूँ जो अश्रद्धेय वचन कहता हूँ। वह इस प्रकार—

अहं सह पुत्तेहिं अपुत्ते। को मेदं सद्दहिस्सइ?

मैं पुत्रों सहित होने पर भी पुत्रहीन हूँ, कौन मेरे इस कथन पर श्रद्धा करेगा?

सह मित्तेहिं अमित्ते। को मेदं सद्दहिस्सइ?

मैं मित्रों सहित होने पर भी मित्रहीन हूँ, कौन मेरी इस बात पर विश्वास करेगा?

सह अत्थेणं अणत्थे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

मैं अर्थ—धन सहित होने पर भी अनर्थ—निर्धन हूँ, कौन मेरी इस बात पर श्रद्धा करेगा?

सह दारेणं अदारे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

स्त्री सहित होने पर भी स्त्री रहित हूँ, कौन मेरी इस बात पर विश्वास करेगा?

सह दासेहिं अदासे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

दास—नौकरों सहित होने पर भी दास रहित हूँ, कौन मेरी इस बात पर विश्वास करेगा?

सह पेसेहिं अपेसे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

प्रेष्य—सेवकों सहित होने पर भी सेवक रहित हूँ, कौन मेरी इस बात का विश्वास करेगा?

सह परिजणेणं अपरिजणे। को मेदं सद्दहिस्सइ?

परिवार सहित होने पर भी परिवार रहित हूँ, कौन मेरी इस बात पर श्रद्धा करेगा?

एवं खलु तेयलिपुत्तेणं अमच्चेणं कणगज्झएणं रण्णा अवज्झाएणं समाणेणं तालपुडगे विसे आसगंसि पक्खित्ते। से वि य नो कमइ। को मेयं सद्दहिस्सइ? तेयलिपुत्तेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासे खुरधारे असी खंधंसि ओहरिए। तत्थ वि य से धारा ओएल्ला। को मेयं सद्दहिस्सइ?

इसी प्रकार कनकध्वज राजा के द्वारा जिसका बुरा विचारा गया है, ऐसे तेतलिपुत्र अमात्य के द्वारा अपने मुख में तालपुट विष डाला गया, किन्तु उस विष ने भी अपना परिणाम—प्रभाव नहीं दिखाया, मेरे इस कथन पर कौन विश्वास करेगा? तेतलिपुत्र ने नीलकमल भैंसे के सींग की गोली और अलसी के फूल के सदृश चमचमाती प्रभा—कांति और तीक्ष्ण धार वाली तलवार से गर्दन पर प्रहार किया, किन्तु वह धार भी खंडित हो गई, कौन मेरी इस बात पर विश्वास करेगा?

तेयलिपुत्तेणं पासगं गीवाए बंधित्ता रुक्खं दुरूहे, पासगं रुक्खे बंधित्ता अप्पा मुक्के । तत्थ वि य से रज्जू छिन्ना । को मेयं सद्दहिस्सइ ?

तेयलिपुत्तेणं महइमहालियं सिलं गीवाए बंधित्ता अत्थाहम-तारमपोरिसीयंसि उदगंसि अप्पा मुक्के । तत्थ वि य णं से थाहे जाए । को मेयं सद्दहिस्सइ ?

तेयलिपुत्तेणं सुक्कंसि तणकूडंसि अगणिकायं पक्खिवित्ता अप्पा मुक्के । तत्थ वि य से अग्गी विज्झाए । को मेयं सद्दहिस्सइ ?" —ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायइ ।

तेतलीपुत्र गले में रस्सा बाँधकर वृक्ष पर चढ़ा, रस्से को वृक्ष से बाँधकर पटक दिया, किन्तु वहां भी रस्सा टूट गया, मेरी इस बात पर कौन विश्वास करेगा ?

तेतलिपुत्र ने एक बहुत बड़ी शिला गर्दन में बाँधकर अथाह, अतार और अपौरुष पानी में अपने को पटक दिया, किन्तु वहां भी वह थाह वाला छिछला हो गया, मेरी इस बात पर कौन श्रद्धा करेगा ?

तेतलिपुत्र ने सूखे घास के ढेर में आग लगाकर अपने को पटक दिया किन्तु वहाँ भी वह आग बुझ गई, कौन इस बात पर विश्वास करेगा ?" इस प्रकार तेतलिपुत्र भग्नमनोरथ होकर हथेली पर मुख को टिकाकर आर्तध्यान में निमग्न हो गया ।

पोट्टिलदेवस्स संवादो—

१८९. तए णं से पोट्टिले देवे पोट्टिलारूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता तेयलिपुत्तस्स अदूर-सामंते ठिच्चा एवं वयासी—

"हंभो तेयलिपुत्ता ! पुरओ पवाए, पिट्ठओ हत्थिभयं दुहओ अचक्खुफासे मज्झे सराणि वरिसंति । गामे पलित्ते रण्णे झियाइ, रण्णे पलित्ते गामे झियाइ । आउसो तेयलिपुत्ता ! कओ वयामो ?"

तए णं से तेयलिपुत्ते पोट्टिलं देवं एवं वयासी—'भीयस्स खलु भो ! पव्वज्जा सरणं, उक्कंठियस्स सदेसगमणं, छुहियस्स अन्नं, तिसियस्स पाणं, आउरस्स भेसज्जं, माइयस्स रहस्सं, अभिजुत्तस्स पच्चयकरणं, अद्धाणपरिसंतस्स वाहणगमणं, तरिउकामस्स पवहण-किच्चं, परं अभिओजिउकामस्स सहायकिच्चं । खंतस्स दंतस्स जिइंदियस्स एत्तो एगमवि न भवइ ।

तए णं से पोट्टिले देवे तेयलिपुत्तं अमच्चं एवं वयासी—

"सुट्ठु णं तुमं तेयलिपुत्ता ! एयमट्ठं आयाणाहि" त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

पोट्टिल देव का संवाद

१८९. तत्पश्चात् उस पोट्टिल देव ने पोट्टिला के रूप की विक्रिया की, विक्रिया करके तेतलिपुत्र से न अतिदूर और न अतिनिकट अर्थात् योग्य स्थान पर स्थित होकर इस प्रकार कहा—

हे तेतलिपुत्र ! आगे प्रपात है और पीछे हाथी का भय है । आजू-बाजू में ऐसा घोर अँधेरा है कि आँखों से दिखाई नहीं पड़ता है और मध्य में बाणों की वर्षा हो रही है । गाँव में आग लगी है और वन धधक रहा है । वन में आग लगी है और गाँव धधक रहा है । तो हे आयुष्मन् तेतलिपुत्र ! हम कहाँ जायें, कहाँ भागें, कहाँ शरण लें ?'

तब उस तेतलिपुत्र ने पोट्टिलदेव से इस प्रकार कहा—अहा ! जैसे उत्कंठित व्यक्ति के लिये स्वदेश गमन, भूखे को अन्न-भोजन, प्यासे को पानी, रोगी को औषधि, मायावी को गुप्तता, अभियुक्त को प्रतीति कराना—विश्वास उपजाना, थके-माँदे पथिक को वाहन पर बैठकर गमन करना, तिरने के इच्छुक को नौका, शत्रु का पराभव करने के इच्छुक को सहायकृत्य—मित्रों की सहायता शरणभूत है, इसी प्रकार सर्वतः भयग्रस्त व्यक्ति के लिये प्रव्रज्या-दीक्षा ही शरणभूत है । क्योंकि क्रोध का निग्रह करने वाले क्षमा-शील, दान्त इन्द्रियों और मन का दमन करने वाले तथा जितेन्द्रिय —इन्द्रियों के विषयों में राग न करने वाले व्यक्ति को इनमें से एक भी भय नहीं है, अर्थात् ऐसे व्यक्ति सर्वत्र निर्भय हैं ।"

तत्पश्चात् उस पोट्टिलदेव ने तेतलिपुत्र अमात्य से इस प्रकार कहा—

'हे तेतलीपुत्र ! तुम ठीक कहते हो—तुम्हारा कथन सत्य है, अतएव इस अर्थ को तुम भलीभांति जानो, अर्थात् इस समय तुम स्वयं भयग्रस्त हो रहे हो, अतः दीक्षा ग्रहण कर लो ।' इस प्रकार कहकर देव ने दुबारा और तिबारा भी ऐसा ही कहा और कहकर जिस दिशा से प्रगट हुआ था, उसी दिशा में वापस लौट गया ।

तेयलिपुत्तस्स जाईसरणाणंतरं पव्वज्जागहणं—

१९०. तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स सुभेणं परिणामेणं जाईसरणे समुप्पन्ने।

तए णं तेयलिपुत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं इहेव जंबुद्दीवे दीवे महाविदेहे वासे पोक्खलावईए विजए पोंडरीगिणीए रायहाणीए महापउमे नामं राया होत्था। तए णं हं थेराणं अंतिए मुण्डे भवित्ता पव्वइए सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं अहिज्जित्ता बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए महासुक्के कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

तए णं हं ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता इहेव तेयलिपुरे तेयलिस्स अमच्चस्स भद्दाए भारियाए दारगत्ताए पच्चायाए। तं सेयं खलु मम पुव्वदिट्ठाइं महव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए"—एवं संपेहेइ संपेहेत्ता सयमेव महव्वयाइं आरुहेइ आरुहेत्ता जेणेव पमयवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिला पट्टयंसि सुहनिसण्णस्स अणुचिंतेमाणस्स पुव्वाहीयाइं सामाइयमाइयाइं चोद्दसपुव्वाइं सयमेव अभिसमण्णागयाइं।

तेतलीपुत्र द्वारा जातिस्मरण के अनन्तर प्रव्रज्या ग्रहण—

१९०. तत्पश्चात् उस तेतलीपुत्र को शुभ परिणामों—अध्यवसायों के उत्पन्न होने से जाति स्मरण ज्ञान की प्राप्ति हुई।

तब तेतलीपुत्र को इस प्रकार का मानसिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ 'निश्चय ही मैं इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के महाविदेह क्षेत्र में, पुष्कलावती विजय में पुण्डरीकिणी राजधानी में महापद्म नामक राजा था। वहाँ मैंने स्थविर मुनिराज के पास मुण्डित होकर प्रव्रज्या अंगीकार की थी और सामायिक आदि से प्रारम्भ कर चौदह पूर्वों का अध्ययन करके बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करके और अंत में एक मास की संलेखना करके महाशुक्र कल्प में देवरूप में जन्म लिया था।

तत्पश्चात् आयुक्षय भवक्षय, और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवकर इसी तेतलीपुर में तेतली अमात्य की भद्रा भार्या से पुत्र के रूप में उत्पन्न हुआ। तो मेरे लिये पूर्व में ग्रहण स्वीकार किये हुए महाव्रतों को स्वयं ही अंगीकार करके विचरना श्रेयस्कर है।'—ऐसा विचार किया, विचार करके स्वतः स्वयं ही महाव्रतों को अंगीकार किया, अंगीकार करके जहां प्रमदवन नामक उद्यान था, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिलापट्टक पर सुखपूर्वक बैठे हुए और अनुचिन्तन-विचारणा करते हुए उसे पूर्वअधीत अर्थात् पहले अध्ययन किये हुए—चौदह पूर्व स्वयं ही स्मरण हो आयें।

तेयलिपुत्ताणगारस्स केवलणाणं—

१९१. तए णं तस्स तेयलिपुत्तस्स अणगारस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं कम्मरयविकरणकरं अपुव्वकरणं पविट्ठस्स केवलवरनाणदंसणे समुप्पण्णे।

तए णं तेयलिपुरे नयरे अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं देवीहि य देवदुंदुहीओ समाहयाओ, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए, चेलुक्खेवे दिव्वे गीयगंधव्वनिनाए कए यावि होत्था।

तेतलीपुत्र अनगार को केवल ज्ञान—

१९१. तत्पश्चात् उस तेतलीपुत्र अनगार को शुभ परिणाम प्रशस्त अध्यवसाय और विशुद्धमान लेश्या से तदावरणीय कर्मों के क्षयोपशम से कर्मरज का नाश करने वाले अपूर्वकरण में प्रवेश करने के प्रसंग में अर्थात् क्षपकश्रेणी पर आरोहण करने पर चार घनघाति कर्मों का क्षय होने से उत्तम केवलज्ञान और केवल दर्शन, उत्पन्न हुए।

तब तेतलीपुर नगर के समीप में रहे हुए वाणव्यंतर देवों और देवियों ने देव दुन्दुभियां बजाई, पांच वर्ण के पुष्पों की वर्षा की, वस्त्र बरसाये और दिव्य गीत-गंधर्व का निनाद किया अर्थात् केवल ज्ञान सम्बन्धी महोत्सव किया।

कणगज्झयस्स सावगधम्म-गहणं—

१९२. तए णं से कणगज्झए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे एवं वयासी—"एवं खलु तेयलिपुत्ते मए अवज्झाए मुण्डे भवित्ता पव्वइए। तं गच्छामि णं तेयलिपुत्तं अणगारं वंदामि नमंसामि, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेमि" एवं संपेहेई, संपेहेत्ता ण्हाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं जेणेव पमयवणे उज्जाणे जेणेव तेयलिपुत्ते अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

कनकध्वज का श्रावक धर्म-ग्रहण—

१९२. तत्पश्चात् कनकध्वज राजा ने इस वृत्तान्त को जानकर (मन ही मन) इस प्रकार कहा—'निस्सन्देह मेरे द्वारा अपमानित होने से तेतलीपुत्र ने मुण्डित होकर दीक्षा अंगीकार की है। अतएव मैं जाऊँ और तेतलीपुत्र अनगार को वंदन-नमस्कार करूँ, वंदन-नमस्कार करके इस कार्य के लिये बार-बार विनयपूर्वक खमाऊँ—क्षमा माँगूं'—ऐसा विचार किया, विचार करके स्नान किया और चतुरंगिणी सेना के साथ जहाँ प्रमदवन उद्यान था,

तेयलिपुत्तं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं च णं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेइ, खामेत्ता नच्चासण्णे-जाव-पज्जुवासइ।

जहाँ तेतलीपुत्र अनगार को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके अपने द्वारा किये गये कार्य के लिये विनय पूर्वक बारंबार क्षमा माँगी, क्षमा याचना करके न अधिक दूर और न अधिक समीप यथायोग्य स्थान पर बैठकर उपासना-सेवा करने लगा।

तए णं से तेयलिपुत्ते अणगारे कणगज्झयस्स रण्णो तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ।

तत्पश्चात् तेतलीपुत्र अनगार ने कनकध्वज राजा और उस उपस्थित विशाल परिषद् को धर्मोपदेश दिया।

तए णं से कणगज्झए राया तेयलिपुत्तस्स केवलिस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं— दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे।

तत्पश्चात् उस कनकध्वज राजा ने तेतलीपुत्र केवली से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारणकर पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को अंगीकार किया, अंगीकार करके वह जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया।

तेयलिपुत्तकेवलिस्स सिद्धिगमणं—

तेतलीपुत्र केवली का सिद्धिगमन—

१६३. तए णं तेयलिपुत्ते केवली बहूणि वासाणि केवलिपरियागं पाउणित्ता-जाव-सिद्धे।[1] —णाया० सु० १, अ० १४

१६३. तत्पश्चात् तेतलीपुत्र केवली बहुत वर्षों तक केवली अवस्था में रहकर—यावत्—सिद्ध हुए।

१. वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

जाव न दुक्खं पत्ता, माणब्भंसं च पाणिणो पायं।
ताव न धम्मं गेण्हंति भावओ तेयलिसुय व्व ॥१॥

४. पासनाहतित्थे समणीए कालीए कहाणगं—

४. पार्श्वनाथ तीर्थ में श्रमणी काली का कथानक—

१६४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। चेल्लणा देवी। सामी समोसढे। परिसा निग्गया-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

१६४. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था—गुणशिलक नामक चैत्य था। श्रेणिक राजा था और रानी का नाम चेलना था। स्वामी—भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वन्दना करने के लिये परिषद निकली—यावत्—परिषदा पर्युपासना-सेवा करने लगी।

चमरचंचाए कालीदेवी—

चमरचंचा में कालीदेवी—

१६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं काली देवी चमरचंचाए रायहाणीए कालवडेंसगभवणे कालंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महयरियाहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं सत्तहिं अणिएहिं सत्तहिं अणियाहिवईहिं सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अण्णेहि य बहूहिं कालवडिंसय-भवणवासीहिं असुरकुमारेहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडा महया हय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-

१६५. उस काल और उस समय में चमरचंचा राजधानी के कालावतंसक भवन में काल नामक सिंहासन पर काली नामक देवी आसीन थी। जो चार हजार सामानिक देवियों, सपरिवार चार महत्तरिका देवियों, तीनों परिषदों, सात अनिकों-सेनाओं, सात अनीकाधिपतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों से परिवेष्टित होकर जोर-जोर से बजने वाले नाट्य, गीत, वाद्य, तंत्री

घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी-आभोएमाणी पासइ।

तल, ताल, त्रुटित, घन, मृदंग आदि के उस समय हो रहे शब्दध्वनि के साथ दिव्य भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरण कर रही थी और इस केवलकल्प-संपूर्ण जम्बूद्वीप को अपने विशुद्ध अवधिज्ञान से उपयोग लगाती हुई देख रही थी।

कालीदेवीए भगवओ महावीरस्स समीवे नट्ट विही—

कालीदेवी द्वारा भगवान महावीर के समीप नृत्यविधि—

१६६. एत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण-हियया सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता तित्थगराभिमुही सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणियलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणियलंसि निवेसेइ, ईसिं पच्चुन्नमइ, पच्चुन्नमित्ता कडग-तुडिय-थंभियाओ भुयाओ साहरइ, साहरित्ता करयल परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

१६६. तब उसने जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरतक्षेत्र में, राजगृह नगर के गुणशिलक चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर को देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट आनंदित चित्ता प्रीतिमना परम सौमनसा और हर्षवशात् विकासमान हृदया होती हुई सिंहासन से उठी, उठकर पादपीठ से नीचे उतरी, उतरकर पादुकाओं को उतारा और फिर तीर्थंकर भगवान के अभिमुख सात-आठ पग आगे चली, चलकर बायें घुटने को ऊँचा किया, ऊँचा करके दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाकर तीन बार मस्तक को भूतल पर नमित किया और फिर कुछ ऊँचा उठाया, ऊँचा करके कड़ों और बाजूबन्दों से स्तंभित भुजाओं को संकुचित किया-मिलाया, मिलाकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

"नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं।

'अरिहंतों को—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो।'

नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स।

श्रमण भगवान महावीर—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की इच्छा वालों को नमस्कार हो।

वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगया, पासउ मे समणे भगवं महावीरे तत्थगए इहगयं" त्ति कट्टु वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा निसण्णा।

यहाँ रही हुई मैं वहाँ विराजमान भगवान को वंदन करती हूँ। तत्रस्थ श्रमण भगवान महावीर यहाँ रही हुई मुझको देखें।' ऐसा करके वंदन नमस्कार करती है, वंदन नमस्कार करके पूर्व दिशा की ओर मुख करके पुनः उस श्रेष्ठ सिंहासन पर आसीन हो गई।

१६७. तए णं तीसे कालीए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था— 'सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं वंदित्तए नमंसित्तए सक्कारित्तए सम्माणित्तए कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासित्तए' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे विहरइ एवं जहा सूरियाभो तहेव आणत्तियं देइ-जाव-दिव्वं सुरवराभिगमणजोग्गं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

१६७. तत्पश्चात् उस कालीदेवी को इस प्रकार का मानसिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ 'मेरे लिये कल्याण, मंगल, देव, चैत्य, रूप श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार, सत्कार-सम्मान करके पर्युपासना करना श्रेयस्कर है'— इस प्रकार का उसने विचार किया, विचार करके आभियोगिक देवों को बुलाया, और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! श्रमण भगवान महावीर (राजगृह में) विराज रहे हैं इत्यादि जैसे सूर्याभदेव ने अपने आभियोगिक देवों को आज्ञा दी थी, उसी प्रकार इस कालीदेवी ने भी आज्ञा दी—यावत्—दिव्य और श्रेष्ठ देवों के गमनयोग्य विमान बनाकर तैयार करो, और तैयार करवाओ, तैयार करके और कराके शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ।'

ते वि तहेव करेंता-जाव-पच्चप्पिणंति, नवरं—जोयणसहस्स-वित्थिण्णं जाणं। सेसं तहेव। तहेव नामगोयं साहेइ, तहेव नट्टविहिं उवदंसेइ-जाव-पडिगया।

गोयमेण कालीदेवीए पुव्वभवपुच्छा—

१९८. भंते! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभागे कहिं गए? कहिं अणुप्पविट्ठे?"

गोयमा! सरीरं गए सरीरं अणुप्पविट्ठे। कूडागारसाला दिट्ठंतो।

अहो णं भंते! काली देवी महिड्ढिया महज्जुइया महब्बला महायसा महासोक्खा महाणुभागा।

कालीए णं भंते! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे? किण्णा पत्ते? किण्णा अभिसमण्णागए?

कालीदेवीए पुव्वभवो कालीनामेणं—

१९९. गोयमा! त्ति समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे आमलकप्पा नामं नयरी होत्था—वण्णओ। अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया।

तत्थ णं आमलकप्पाए नयरीए काले नामं गाहावई होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए।

तस्स णं कालस्स गाहावइस्स कालसिरी नामं भारिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया-जाव-सुरूवा।

तस्स णं कालस्स गाहावइस्स धूया कालसिरीए भारियाए अत्तया काली नामं दारिया होत्था—वड्ढा वड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी निव्विण्णवरा वरगपरिवज्जिया वि होत्था।

कालीए पासदंसणं धम्मसवणं य—

२००. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे

उन्होंने भी आज्ञानुसार कार्य करके वापस आज्ञा लौटाई—कार्य सम्पन्न होने की सूचना दी। लेकिन यहाँ इतनी विशेषता जानना चाहिये कि एक हजार योजन विस्तार वाला विमान बनाया। शेष वर्णन सूर्याभदेव के वर्णन के समान ही समझना चाहिये। सूर्याभदेव की तरह अपना नाम गोत्र कहा, उसी की तरह नृत्यविधि दिखलाई—यावत्—फिर वापस लौट गई।

गौतम द्वारा कालीदेवी के पूर्वभव की पृच्छा—

१९८. 'हे भगवन्!' इस प्रकार संबोधन करके भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

'हे भदन्त! कालीदेवी की वह दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य-देवद्युति, दिव्य देव अनुभाग, प्रभाव कहाँ चला गया? कहाँ प्रविष्ट हो गया?'

'हे गौतम! शरीर में चला गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया—समा गया। यहाँ कूटाकार शाला का दृष्टान्त समझना चाहिये।'

'अहो भदन्त! काली देवी महान् ऋद्धि, महान् द्युति, महान् बल, महान् यश, महान् प्रभाव वाली है।'

'हे भगवन्! कालीदेवी को वह दिव्य देव-ऋद्धि, द्युति, प्रभाव कैसे मिला? कैसे प्राप्त हुआ? कैसे अधिगत हुआ?'

कालीदेवी का पूर्वभव में काली नाम—

१९९. 'हे गौतम!' इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने गौतम को सम्बोधित करके इस प्रकार कहा—'हे गौतम! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आमलकल्पा नाम की नगरी थी—वर्णन करना चाहिये। आम्रशालवन नामक चैत्य था। जितशत्रु नाम का राजा था।

उस आमलकल्पा नगरी में काल नामक गाथापति रहता था जो धनाढ्य था—यावत्—किसी से भी पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था।

उस काल गाथापति की कालश्री नामक भार्या पत्नी थी जो सुकुमाल अंगोपांगवाली—यावत्—सुरूप सुन्दर थी।

उस काल गाथापति की पुत्री और कालश्री भार्या की आत्मजा काली नामक लड़की थी जो (उम्र से) बड़ी थी और बड़ी होकर भी कुमारी (अविवाहिता) थी, जीर्ण (वृद्ध जैसे शरीर वाली) थी और जीर्ण होते हुए भी कुमारी थी, उसके स्तन नितम्ब तक लटक गये थे, विरक्त वर वाली होने से वह वर रहित थी। अर्थात् अविवाहिता रह रही थी।

काली का पार्श्वदर्शन और धर्मश्रवण—

२००. उस काल और उस समय में (धर्म की) आदि करने वाले,

तित्थगरे सहसंबुद्धे पुरिसोत्तमे पुरिससीहे पुरिसवरपुण्डरीए पुरिसवरगंधहत्थी अभयदए चक्खुदए मग्गदए सरणदए जीवदए दीवो ताणं सरणं गई पइट्ठा धम्मवरचाउरंत-चक्कवट्टी अप्पडिहय-वर-नाण-दंसणधरे वियट्टछउमे अरहा जिणे जाणए तिण्णे तारए मुत्ते मोयए बुद्धे बोहए सव्वण्णू सव्वदरिसी नवहत्थुस्सेहे समचउरंस-संठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे जल्लमल्लकलंकसेयरहिय-सरीरे सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तगं सिद्धिगइ-णामधेज्जं ठाणं संपाविउकामे सोलसहिं समणसाहस्सीहिं अट्ठतीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे आमलकप्पाए नयरीए बहिया अंबसालवणे समोसढे । परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासइ ।

तीर्थंकर, स्वयंबुद्ध, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक-श्वेत कमल के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ, गंधहस्ती के समान, अभय देने वाले, ज्ञान रूप नेत्रों को देने वाले, मुक्ति मार्ग का उपदेश देने वाले, शरण देने वाले, जीवन (संयमी) को देने वाले, भवसागर में द्वीपरूप, त्राण-रक्षा रूप, शरणरूप, आश्रयरूप, आधाररूप, चातुरन्तक श्रेष्ठ धर्म चक्रवर्ती, अप्रतिहत वर ज्ञान-दर्शन (केवलज्ञान, केवलदर्शन) के धारक, विनष्टछद्म-घाति कर्मों का क्षय करने वाले, अर्हत् जिन केवली रागद्वेष आदि आत्म शत्रुओं को जीतने वाले और दूसरों को जिताने वाले, संसार सागर से तिरे हुए, पारगामी और दूसरों को तारनेवाले, मुक्त और दूसरों को संसार से मुक्त करने वाले, स्वयंबोध को प्राप्त और दूसरों को बोध देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, नौ हाथ शरीर की ऊँचाई वाले, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित, वज्रऋषभ-नाराच संहनन वाले, जल्ल, मल, कलंक और स्वेद-पसीना से विहीन शरीर वाले, शिवरूप (मंगलरूप), अचल स्थिररूप, अरुज-निरोग, अनन्त, अक्षय-क्षयरहित, अव्याबाध—बाधा-पीड़ा रहित, अपुनरावर्तक ऐसे सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर उत्सुक पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् सोलह हजार श्रमण निर्ग्रन्थों और अड़तीस हजार आर्याओं से परिवेष्ठित हो क्रमानुक्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए सुखपूर्वक विहार करते हुए आमलकल्पा नगरी के बाहर आम्रशाल वन में पधारे । दर्शनार्थ परिषदा निकली—यावत्—वह पर्युपासना करने लगी ।

२०१. तए णं सा काली दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु अम्मयाओ ! पासे अरहा पुरिसादाणीए आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव आमलकप्पाए नयरीए अंबसालवणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तं इच्छामि णं अम्मयाओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स णं अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवंदिया गमित्तए ।"

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि ।

२०१. तब वह काली दारिका इस समाचार को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्तवाली, प्रीतिमना, परमसौमनसिका और हर्षवशात् विकसित हृदया होती हुई जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आई, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार बोली—'हे मात-तात ! धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् यहाँ आये हैं, यहाँ समागत हुये हैं, यहाँ पधारे हैं और यहीं आमलकल्पा नगरी के आम्रशाल वन में यथा प्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं ।

अतएव हे मात-तात ! आपकी आज्ञा—अनुमति लेकर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की चरण वंदनार्थ जाना चाहती हूँ ।'

'हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रमाद—विलंब मत करो'—माता पिता ने उत्तर दिया ।

तए णं सा काली दारिया अम्मापिईहिं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठ-तुट्ठ-चित्त-माणंदिया पीइमाणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाण हियया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घा-

तत्पश्चात् उस काली दारिका ने माता-पिता की आज्ञा प्राप्त होने पर हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त, प्रीतिमना, परमसौमनसिका और हर्षवश-विकसित हृदयवाली होते हुए स्नान किया, कौतुक मंगल और प्रायश्चित किया और शुद्ध, योग्य, मांगलिक श्रेष्ठ

मरणालंकियसरीरा चेडिया-चक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणपवरं दुरूढा।

वस्त्र पहने तथा अल्प किन्तु महा मूल्यवान् आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और करके दासियों के समूह से परिवेष्ठित हो अपने घर से निकली, निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी, जहाँ धार्मिक श्रेष्ठ यान रथ था, वहाँ आई और वहाँ आकर उस श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ़ हुई।

तए णं सा काली दारिया धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा समाणी एवं जहा दोवई तहा पज्जुवासइ।

तत्पश्चात् वह काली दारिका श्रेष्ठ धार्मिक यान पर आरूढ़ होकर द्रौपदी के समान—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालीए दारियाए तीसे य महइमहालियाए परिसाए धम्मं कहेइ।

तत्पश्चात् पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् ने काली दारिका और उस विशाल परिषदा को धर्मोपदेश दिया।

कालीए पव्वज्जासंकप्पो—

काली का प्रव्रज्या संकल्प—

२०२. तए णं सा काली दारिया पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-हियया पासं अरहं पुरिसादाणीयं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं,-जाव-से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं—देवाणुप्पिया! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयामि।"

२०२. तत्पश्चात् उस काली दारिका ने पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् के पास धर्मश्रवण कर और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनंदितचित्ता—यावत्—विकसितहृदया होकर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ—यावत्—वह वैसा ही है जैसा आप कथन करते हैं। लेकिन यहाँ विशेष यह है कि—'हे देवानुप्रिय! माता-पिता से आज्ञा लूंगी, तत्पश्चात् मैं आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण करूँगी।'

अहासुहं देवाणुप्पिए!

'हे देवानुप्रिये! जैसा उचित समझो' (वैसा करो)—पार्श्वप्रभु ने उत्तर दिया।

तए णं सा काली दारिया पासेणं अरहया पुरिसादाणीएणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हियया पासं अरहं वंदइ नमंसइ,

तत्पश्चात् उस काली दारिका ने पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, आनंदितचित्ता—यावत्—विकसित हृदय वाली होकर अर्हत् पार्श्वप्रभु को वंदन-नमस्कार किया,

वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ,

दुरुहित्ता पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अंतियाओ अंबसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ,

पडिनिक्खमित्ता जेणेव आमलकप्पा नयरी तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता आमलकप्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ,

पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

वंदन नमस्कार कर उसी धार्मिक यान प्रवर पर आरूढ़ हुई,

आरूढ़ होकर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् के पास से और आम्रशाल वन चैत्य से बाहर निकली,

निकलकर जहाँ आमलकल्पा नगरी थी—वहाँ आई,

वहाँ आकर आमलकल्पा नगरी के मध्य भाग में से होती हुई जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ पहुँची,

वहाँ पहुँचकर धार्मिक यान प्रवर को ठहराया, ठहराकर उस धार्मिक श्रेष्ठ यानरथ से नीचे उतरी,

नीचे उतरकर जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आई,

वहाँ आकर हस्तयुगल को जोड़कर सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा

"एवं खलु अम्मयाओ! मए पासस्स अरहओ अंतिए धम्मे निसंते। से वि य धम्मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं अम्मयाओ! संसारभउव्विग्गा भीया जम्मण-मरणाणं इच्छामि णं

'हे मात-तात! बात यह है कि मैंने पार्श्व अर्हत् के पास धर्मश्रवण किया है। उस धर्म की मैं इच्छा करती हूँ, पुनः पुनः इच्छा करती हूं और वह धर्म मुझे रुचा है। इसलिये हे माता-

तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी पासस्स अरहओ अंतिए मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि।

कालीपव्वज्जा—

२०३. तए णं से काले गाहावई विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ,

उवक्खडावेत्ता मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए-जाव-विपुलेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ कालिं दारियं सेयापीएहिं कलसेहिं ण्हावेइ, ण्हावेत्ता सव्वालंकार-विभूसियं करेइ, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेइ,

दुरुहेत्ता मित्तणाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-निग्घोस-नाइयरवेणं आमलकप्पं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अंबसालवणे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थगराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठवेइ, ठवेत्ता कालिं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ।

तए णं तं कालिं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! काली दारिया अम्हं धूया इट्ठा कंता-जाव-उंबरपुप्फं पिव दुल्लहा सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? एस णं देवाणुप्पिया ! संसार-भउव्विग्गा इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। तं एयं णं देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिभिक्खं दलयामो। पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं सा काली कुमारी पासं अरहं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ,

पिता ! संसार भय से उद्विग्न और जन्म-मरण से भयभीत हो मैं आपकी आज्ञा—अनुमति प्राप्त करके अर्हत् पार्श्वप्रभु के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती हूँ।'

'हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख उपजे, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध-प्रमाद विलम्ब मत करो।' माता-पिता ने उत्तर दिया।

काली की प्रव्रज्या—

२०३. तत्पश्चात् उस काल नामक गाथापति ने विपुल अशन पान, खादिम, स्वादिम भोजन बनवाया,

भोजन बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करने के बाद स्नान किया—यावत्—विपुल अशन आदि भोजन, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्रों, ज्ञाति बंधुओं, अपने स्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों के सामने काली दारिका को श्वेत-पीत (चाँदी-सोने के) कलशों से नहलाया, नहलाकर सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके सहस्र पुरुषों द्वारा वहन की जाने योग्य शिविका पर आरूढ़ किया,

आरूढ़ करके मित्रों, ज्ञाति बन्धुओं, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों को साथ लेकर सर्व ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभिघोष और वाद्य ध्वनि पूर्वक आमलकल्पा नगरी के मध्य में से निकला, निकलकर जहाँ आम्रशाल वन चैत्य था, वहाँ आया, वहाँ आकर छत्रादि तीर्थंकर के अतिशयों को देखा, देखकर शिविका को ठहराकर काली दारिका को शिविका से नीचे उतारा।

तत्पश्चात् माता पिता काली दारिका को आगे करके जहाँ पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् विराजमान थे, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—'हे देवानुप्रिये ! बात यह है कि काली नाम की दारिका जो हमारी पुत्री है, हमें इष्ट, कांत-प्रिय—यावत्—उदुम्बर पुष्प के समान जिसका नाम सुनना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन का क्या ? तो हे देवानुप्रिये ! यह संसार से उद्विग्न होकर आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहती है। अतएव हम आप देवानुप्रिय को यह शिष्यनी भिक्षा प्रदान करते हैं। हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्यनी भिक्षा को स्वीकार करें।'

'हे देवानुप्रिये ! जैसे सुख हो वैसा करो, लेकिन प्रतिबंध-विलम्ब मत करो' —भगवान पार्श्व अर्हद् ने कहा।

तत्पश्चात् काली कुमारी ने पार्श्व अर्हद् को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशान कोण में गई,

अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव लोयं करेइ,

करेत्ता जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता पासं अरहं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ,

वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"आलित्ते णं भंते ! लोए-जाव-तं इच्छामि णं देवाणुप्पिएहिं सयमेव पव्वाविय-जाव-धम्म माइक्खियं।

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए कालिं सयमेव पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए दलयइ।

तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं कुमारिं सयमेव पव्वावेइ-जाव-उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं सा काली पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए इमं एयारूवं धम्मियं उवएसं सम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं सा काली अज्जा जाया— इरियासमिया-जाव-गुत्तबंभयारिणी।

तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

कालीए बाउसियत्तं—

२०४. तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था। अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराणि धोवेइ, कक्खंतराणि धोवेइ, गुज्झंतराणि धोवेइ, जत्थ-जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयइ वा, सयइ वा।

तए णं सा पुप्फचूला अज्जा कालिं अज्जं एवं वयासी— *"नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिए !* समणीणं निग्गंथीणं सरीरबाउसियाणं होत्तए। तुमं च णं देवाणुप्पिए ! सरीरबाउसिया जाया अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवसि, पाए धोवसि, सीसं धोवसि, मुहं धोवसि, थणंतराणि धोवसि, कक्खंतराणि धोवसि, गुज्झंतराणि धोवसि, जत्थ-जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं निसीहियं वा चेएसि, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयसि वा सयसि वा। तं तुमं देवाणुप्पिए ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि-जाव-पायच्छित्तं-पडिवज्जाहि।"

वहाँ जाकर स्वयं ही आभरण-वस्त्र माला और अलंकारों को उतारा, उतारकर स्वयं ही लोच किया,

लोच करके जहाँ पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् विराजमान थे, वहाँ आई,

वहाँ आकर पार्श्व अर्हत् की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया,

वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा— 'हे भदन्त ! यह लोक आदीप्त है अर्थात् जन्म-मरण आदि के संताप वेदना से जल रहा है, व्याप्त है—यावत्—मैं चाहती हूँ कि आप देवानुप्रिय स्वयमेव मुझे दीक्षा दें—यावत्—धर्म का बोध करावें।'

तत्पश्चात् पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् ने स्वयं ही काली कुमारी को पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप में प्रदान किया।

तब पुष्पचूला आर्या ने काली कुमारी को स्वयमेव प्रव्रजित किया—यावत्—धर्म का उपदेश दिया।

तत्पश्चात् वह काली पुष्पचूला आर्या से इस प्रकार का धार्मिक उपदेश सम्यक् प्रकार से भली भाँति, पूर्णरूप से अधिगत—प्राप्त करके विचरने लगी।

तब वह काली आर्या ईर्यासमिति आदि समितियों से युक्त—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हो गई।

तत्पश्चात् उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या के निकट सामायिक से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया और बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश, मास और अर्धमास के तपो-कर्म से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

काली का बाकुशिकत्व —

२०४. तत्पश्चात् अन्यदा किसी एक समय वह काली आर्या शरीर बाकुशिका हो गई। जिससे वह क्षण-क्षण में बार-बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुख धोने लगी स्तनान्तर धोने लगी, कक्षान्तर धोने लगी, गुह्यान्तर धोने लगी, और जहाँ-जहाँ भी वह कायोत्सर्ग, शैया अथवा स्वाध्याय करती थी, उस स्थान पर पहले जल छिड़ककर बाद में बैठती अथवा सोती थी।

तब पुष्पचूला आर्या ने काली आर्या से कहा— 'हे देवानुप्रिये ! निर्ग्रन्थ श्रमणियों को शरीर बाकुशिका होना नहीं कल्पता है और *हे देवानुप्रिये ! तुम शरीर बाकुशिका होकर क्षण-क्षण में बार* बार हाथ धोती हो, पैर धोती हो, सिर धोती हो, मुख धोती हो, स्तनान्तर धोती हो, कक्षान्तर धोती हो, गुह्यान्तर धोती हो और जिस किसी भी स्थान पर उठती-बैठती, सोती अथवा स्वाध्याय करती हो, उस स्थान पर पहले जल छिड़ककर बाद में बैठती, सोती अथवा स्वाध्याय करती हो। अतएव हे देवानुप्रिये ! तुम इस पाप स्थान की आलोचना करो—यावत्—प्रायश्चित्त अंगीकार करो।'

तए णं सा काली अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ तुसिणीया संचिट्ठइ।

तब उस काली आर्या ने पुष्पचूला आर्या की इस बात का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया और मौन धारण कर चुपचाप बैठी रही।

तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ कालिं अज्जं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलेंति निंदंति खिंसंति गरहंति अवमन्नंति अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेंति।

तत्पश्चात् वे पुष्पचूला आदि आर्यायें काली आर्या की बार-बार अवहेलना करने लगीं, निन्दा करने लगीं, खिंसा करने लगीं, चिढ़ाने लगीं, गर्हा करने लगीं, अवमानना—अवज्ञा करने लगीं और बार-बार यह निषिद्ध कार्य करने से रोकने लगीं।

कालीए पुढोविहारो—

२०५. तए णं तीसे कालीए अज्जाए समणीहिं निग्गंथीहिं अभिक्खणं-अभिक्खणं हीलिज्जमाणीए-जाव-निवारिज्जमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"जया णं अहं अगारमज्झे वसित्था तया णं अहं सयंवसा, जप्पभिइं च णं अहं मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया तप्पभिइं च णं अहं परवसा जाया। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पाडिक्कयं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पाडिक्कयं उवस्सयं गेण्हइ। तत्थ णं अणिवारिया अणोहट्टिया सच्छंदमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवेइ, पाए धोवेइ, सीसं धोवेइ, मुहं धोवेइ, थणंतराणि धोवेइ, कक्खंतराणि धोवेइ, गुज्झंतराणि धोवेइ, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तं पुव्वामेव अब्भुक्खित्ता तओ पच्छा आसयइ वा सयइ वा।

काली का पृथक् विहार—

२०५. तत्पश्चात् निर्ग्रन्थ श्रमणियों द्वारा बार-बार अवहेलना किये जाने पर—यावत्—रोके जाने पर उस काली आर्यिका को यह इस प्रकार का अध्यवसाय—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ 'जब मैं गृहवास में बसती थी, तब मैं स्वतन्त्र थी, लेकिन जबसे मैंने मुण्डित होकर गृहवास छोड़कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार की है, तबसे मैं परतंत्र-पराधीन हो गई हूँ। अतएव कल रात्रि के प्रभात रूप हो जाने, सूर्योदय होने पर और जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अलग उपाश्रय ग्रहण करके विचरण करना मेरे लिए श्रेयस्कर है, इस प्रकार का उसने विचार किया और ऐसा विचार करके कल रात्रि को प्रभात रूप में परिवर्तित हो जाने, सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर उसने पृथक् उपाश्रय ग्रहण कर लिया अर्थात् अकेली एक दूसरे उपाश्रय स्थान में रहने लगी। वहाँ पर बिना किसी रोक टोक के निरंकुश और स्वच्छन्दमति होकर बार बार हाथ धोने लगी, पैर धोने लगी, सिर धोने लगी, मुख धोने लगी, स्तनान्तर धोने लगी, कक्षान्तर धोने लगी, गुह्यान्तर धोने लगी, जिस किसी भी स्थान पर बैठती, सोती अथवा स्वाध्याय करती, उसको पहले पानी से छिड़ककर बाद में बैठने और सोने लगी।

कालीए मच्चू देवीत्तं च—

२०६. तए णं सा काली अज्जा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी अहाछंदा अहाछंदविहारी संसत्ता संसत्तविहारी बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेएत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए कालिवडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगुलस्स असंखेज्जाइभागमेत्ताए ओगाहणाए कालीदेवित्ताए उववण्णा।

काली की मृत्यु और देवित्व—

२०६. तत्पश्चात् वह काली आर्या पासत्था, पासत्थ विहारिणी, अवसन्ना प्रमादी, अवसन्न विहारिणी, कुशीला, कुशील विहारिणी, यथेच्छया मनचाहा आचार व्यवहार करने वाली, यथाच्छन्द-विहारिणी, संसक्ता—व्रतादिकी विराधक तथा संसक्त विहारिणी होकर बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालनकर अर्धमास की संलेखना द्वारा अपने को क्षीणकर और तीस भक्तों—तीस बार के भोजन को अनशन से छेदन कर उस पाप स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण न करके कालमास में काल करके चमरचंचा राजधानी में कालावतंसक भवन में उपपात सभा में, देवशैया में देवदूष्य से अवतरित होकर अंगुल के असंख्यातवें भाग की अवगाहना द्वारा कालीदेवी के रूप में उत्पन्न हुई।

तए णं सा काली देवी अहुणोववण्णा समाणी पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तभावं गच्छंति।

तत्पश्चात् वह कालीदेवी तत्काल उत्पन्न होकर पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तभाव को प्राप्त हुई।

तए णं सा काली देवी चउण्हं सामाणिय-साहस्सीणं-जाव-सोलसण्हं आयरक्ख-देवसाहस्सीणं अण्णेसिं च बहूणं कालिवडेंसय-भवणवासीणं असुरकुमाराणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं कारेमाणी-जाव-विहरइ।

एवं खलु गोयमा ! कालीए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए।

तत्पश्चात् वह कालीदेवी चार हजार सामानिक देवों—यावत्—सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे भी बहुत से कालावतंसक भवन के वासी असुरकुमार देवों और देवियों का आधिपत्य करती हुई—यावत्—विचरने लगी।

इस प्रकार हे गौतम ! उस कालीदेवी को वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव मिला है, प्राप्त हुआ है और अभिसमन्वित हुआ है।

कालीदेवीए ठिई सिद्धी य—

२०७. कालीए णं भंते ! देवीए केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! अड्ढाइज्जाइं पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

काली णं भंते ! देवी ताओ देवलोगाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिइ।

—णाया० सु० २, व० १, अ० १

कालीदेवी की स्थिति और सिद्धि—

२०७. 'हे भगवन् ! कालीदेवी की कितने काल की स्थिति कही गई है ?' गौतम स्वामी ने प्रश्न पूछा।

'हे गौतम ! अढ़ाई पल्योपम की स्थिति कही है।' भगवान ने उत्तर दिया।

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न पूछा 'हे भगवन् ! कालीदेवी उस देवलोक से च्यवन करने के अनन्तर कहाँ जायेगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?'

भगवान् ने उत्तर में कहा—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि को प्राप्त करेगी—यावत्—समस्त दुःखों का अंत करेगी।

५. पासनाहतित्थे राई-आईणं कहाणगाणि—

राईकहाणगे राईदेवीए नट्टं—

२०८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं राई देवी चमरचंचाए रायहाणीए एवं जहा काली तहेव आगया, नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया।

राईदेवीए पुव्वभवो—

२०९. भंते ! ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा।

५. पार्श्वनाथ तीर्थ में राजी आदि के कथानक—

राजी कथानक में राजीदेवी का नृत्य—

२०८. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था और गुणशिलक नामक चैत्य था। स्वामी—महावीर स्वामी पधारे। दर्शनार्थ परिषदा निकली—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में राजी नामक देवी चमरचंचा राजधानी से कालीदेवी के समान भगवान की सेवा में आई और नृत्यविधि दिखलाकर वापस लौट गई।

राजीदेवी का पूर्वभव—

२०९. 'हे भदन्त !' इस प्रकार संबोधन कर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसके पूर्वभव के बारे में पूछा।

गोयमा ! त्ति समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमलकप्पा नयरी अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया। राई गाहावई। राइसिरी भारिया। राई दारिया। पासस्स समोसरणं। राई दारिया जहेव काली तहेव निक्खंता।

तए णं सा राई अज्जा जाया।

तए णं सा राई अज्जा पुप्फचूलाए अज्जाए अंतिए सामाइय-माइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ।

तए णं सा राई अज्जा अण्णया कयाइ सरीरबाउसिया जाया यावि होत्था।

तए णं सा राई अज्जा पासत्था तस्स ठाणस्स अणालोइय-पडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए राय-वडिंसए भवणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसंतरिया अंगु-लस्स असंखेज्जाए भागमेत्ताए ओगाहणाए राईदेवित्ताए उववण्णा-जाव-अंतं काहिइ।

—णाया० सु० २ व० १ अ० २

'हे गौतम ! इस प्रकार के सम्बोधन द्वारा श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम को अपनी ओर केन्द्रित कर कहा—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में आमलकल्पा नगरी थी, आम्रशाल वन नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा था। राजी नामक गाथापति था, राजीश्री उसकी भार्या थी। उनकी राजी पुत्री थी। किसी समय पार्श्व प्रभु वहाँ पधारे। राजी दारिका भी काली की भाँति भगवान के दर्शन करने के लिये निकली।

तत्पश्चात् वह राजी आर्यिका हो गई।

तब उस राजी आर्या ने पुष्पचूला आर्या के पास सामायिक से प्रारम्भ कर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया।

तत्पश्चात् वह राजी आर्या अन्यदा किसी समय शरीरबकुशा हो गई।

तदनन्तर वह पासत्था राजी आर्या उस पाप स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण न करके कालमास में काल करके चमरचंचा राजधानी में राजअवतंसक भवन में, उपपात सभा में, देव शैया में देवदूष्य से अंतरित होकर अंगुल के असंख्यातवें भाग की अव-गाहना द्वारा राजीदेवी के रूप में उत्पन्न हुई—यावत्—दुःखों का अंत करेगी।

रयणीकहाणगं—

२१०. रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रयणी देवी चमरचंचाए रायहाणीए। आगया।

भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पुव्वभवपुच्छा।

गोयमा ! त्ति समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमंतेत्ता एवं वयासी—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं आमल-कप्पा नयरी अंबसालवणे चेइए। जियसत्तू राया। रयणे गाहावई। रयणसिरी भारिया। रयणी दारिया। सेसं तहेव-जाव-अंतं काहिइ।

—णाया० सु० २ व० १ अ० ३

रजनी कथानक—

२१०. राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। स्वामी भगवान महावीर पधारे।

उस काल और उस समय में रजनी देवी चमरचंचा राजधानी से आई।

'हे भदन्त !' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके रजनीदेवी का पूर्वभव पूछा।

'हे गौतम !' इस प्रकार से श्रमण भगवान महावीर ने भग-वान गौतम को आह्वान करके कहा—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में आमलकल्पा नगरी थी, आम्रशाल वन नामक चैत्य था। जितशत्रु राजा था। रजनी नामक गाथापति था। उसकी रजनश्री नाम की भार्या थी। उसकी दारिका का नाम रजनी था। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिये—यावत्—समस्त दुःखों का अंत करेगी।

विज्जूकहाणगं—

२११. एवं विज्जू वि—आमलकप्पा नयरी। विज्जू गाहावई। विज्जूसिरी भारिया। विज्जू दारिया। सेसं तहेव।

—णाया० सु० २ व० १ अ० ४

विद्युत कथानक—

२११. इसी प्रकार विद्युतदेवी का भी कथानक जानना चाहिये आमलकल्पा नगरी थी। विद्युत नामक गाथापति था। उसकी विद्युतश्री नाम की भार्या थी। उनकी पुत्री का नाम विद्युत था। शेष सब वृत्तान्त पूर्ववत् समझना चाहिये।

मेहाकहाणगं—

२१२. एवं मेहा वि—आमलकप्पाए नयरीए मेहे गाहावई। मेहसिरी भारिया। सेसं तहेव।

—णाया० सु० २ व० १ अ० ५

मेघा कथानक—

२१२. इसी प्रकार मेघादेवी का कथानक जानना चाहिये—आमलकल्पा नगरी में मेघ गाथापति था। मेघश्री भार्या थी। उसकी मेघा नाम की पुत्री थी। शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये।

सुम्भाकहाणगं—

२१३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सुम्भा देवी बलिचंचाए रायहाणीए सुम्भवडेंसए भवणे सुम्भंसि सीहासणंसि विहरइ। काली गमएणं-जाव-नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।

पुव्वभवपुच्छा।

सावत्थी नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया। सुम्भे गाहावई। सुम्भसिरी भारिया। सुम्भा दारिया। सेसं जहा कालीए नवरं अद्धुट्ठाइं पलिओवमाइं ठिई।

—णाया० सु० २ व० २ अ० १

सुम्भा कथानक—

२१३. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। वंदना के लिये परिषद् निकली—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में शुम्भादेवी बलिचंचा राजधानी में शुम्भावतंसक भवन में शुम्भ नामक सिंहासन पर विचरण कर रही थी। शेष वर्णन कालीदेवी के अध्ययन के समान जानना चाहिये—यावत्—नृत्यविधि का प्रदर्शन कर वापस लौट गई।

गौतम स्वामी ने शुम्भादेवी के पूर्वभव के विषय में पूछा।

भगवान ने बताया—श्रावस्ती नगरी थी। कोष्ठक चैत्य था। जितशत्रु राजा था। शुम्भ गाथापति था। उसकी शुम्भश्री नामक भार्या थी और दारिका का नाम शुम्भा था। शेष वर्णन कालीदेवी के वर्णन के जैसा समझना चाहिये। किन्तु विशेष यह है कि इस शुम्भा देवी की साढ़े तीन पल्योपम की स्थिति है।

निसुम्भा-रंभा-निरंभा मयणा कहाणगाणि—

२१४. एवं—सेसा वि चत्तारि अज्झयणा। सावत्थीए। नवरं—माया पिया धूया-सरिसनामया।

—णाया० सु० २ व० २ अ० २-५

निशुम्भा, रंभा, निरंभा, मदना के कथानक—

२१४. इसी प्रकार शेष चार अध्ययन कहना चाहिये। इन सबकी श्रावस्ती नगरी जानना चाहिये। विशेष यह है कि इन देवियों के नामों के समान इनके पूर्वभव के माता-पिता के नाम और स्वयं के नाम समझ लेना चाहिये।

इलाकहाणगं—

२१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सामी समोसढे। परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं इला देवी धरणीए रायहाणीए इलावडेंसए भवणे इलंसि सीहासणंसि एवं कालीगमएणं-जाव-नट्टविहिं उवदंसेत्ता पडिगया।

पुव्वभवपुच्छा।

वाणारसीए नयरीए काममहावणे चेइए। इले गाहावई। इलसिरी भारिया। इला दारिया। सेसं जहा कालीए, नवरं—धरणअग्गमहिसित्ताए उववाओ। साइरेगं अद्धपलिओवमं ठिई। सेसं तहेव।

—णाया० सु० २ व० ३ अ० १

इला-कथानक—

२१५. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। स्वामी भगवान महावीर का आगमन हुआ। परिषदा निकली—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में इला नामक देवी धरणी राजधानी में इलावतंसक भवन में इला नामक सिंहासन पर आसीन थी इत्यादि शेष वर्णन कालीदेवी के गम—अध्ययन के समान जानना चाहिये—यावत्—नृत्यविधि दिखलाकर वापस लौट गई।

गौतम स्वामी ने उसका पूर्वभव पूछा।

भगवान ने उत्तर दिया—'वाणारसी नगरी में काममहावन नामक चैत्य था। इल नामका गाथापति था। इलश्री नाम की उसकी भार्या थी। इला नामक पुत्री थी। शेष वर्णन कालीदेवी के अध्ययन के समान जानना चाहिये। किन्तु विशेष यह है कि (इला भार्या शरीर त्याग कर) धरणेन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में उत्पन्न हुई। उसकी कुछ अधिक अर्धपल्योपम की स्थिति है। शेष कथन पूर्ववत् जानना चाहिये।

कमा-सतेरा-सोयामणी-इंदा-घणविज्जुयाणं कहाणगाणि—

२१६. एवं—कमा, सतेरा, सोयामणी, इंदा, घणविज्जुया वि सव्वाओ एयाओ धरणस्स अग्गमहिसीओ।

—णाया० सु० २ व० ३ अ० २–६

सेसदाहिणिल्लइंदअग्गमहिसीकहाणगसूयणा—

२१७. एए छ अज्झयणा वेणुदेवस्स वि अविसेसिया भाणियव्वा।

—णाया० सु० २ व० ३ अ० ७–१२

२१८. एवं—हरिस्स अग्गिसिहस्स पुण्णस्स जलकंतस्स अमियगतिस्स वेलंबस्स घोसस्स वि एए चेव छ-छ अज्झयणा। एवमेते दाहिणिल्लाणं इंदाणं चउप्पण्णं अज्झयणा भवंति। सव्वाओ वि वाणारसीए काममहावणे चेइए।

—णाया० सु० २ व० ३ अ० १३–५४

रूयाईणं उत्तरिल्लइंदऽग्गमहिसीणं कहाणगाइं—

२१९. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं रूया देवी रूयाणंदा रायहाणीए, रूयगवडेंसए भवणे रूयगंसि सीहासणंसि जहा कालीए तहा, नवरं—पुव्वभवे चंपाए पुण्णभद्दे चेइए रूयगगाहावई रूयगसिरी भारिया रूया दारिया। सेसं तहेव, नवरं—भूयाणंदअग्गमहिसित्ताए उववाओ। देसूणं पलिओवमं ठिई।

—णाया० सु० २ व० ४ अ० १

२२०. एवं—सुरूयावि, रूयंसा वि, रूयगावई वि, रूयकंता वि, रूयप्पभा वि।

२२१. एयाओ चेव उत्तरिल्लाणं इंदाणं वेणुदालिस्स हरिस्सहस्स अग्गिमाणवस्स विसिट्ठस्स जलप्पभस्स अमितवाहणस्स पभंजणस्स महाघोसस्स भाणियव्वाओ।

—णाया० सु० २ व० ४ अ० २–५४

दाहिणिल्लपिसायकुमारिंदग्गमहिसीणं कमलाईणं कहाणगाणि—

२२२. गाहाओ-
कमला कमलप्पभा चेव, उप्पला य सुदंसणा।
रूववई बहुरूवा, सुरूवा सुभगा वि य ॥१॥
पुण्णा बहुपुत्तिया चेव, उत्तमा भारिया वि य।
पउमा वसुमती चेव, कणगा कणगप्पभा ॥२॥
वडेंसा केउमई चेव, वइरसेणा रइप्पिया।
रोहिणी नवमिया चेव, हिरीपुप्फवती ति य ॥३॥
भुयगा भुयगवई चेव, महाकच्छाऽपराइया।
सुघोसा विमला चेव, सुस्सरा य सरस्सई ॥४॥

—णाया० सु० २ व० ५ अ० ३२

सेतरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता के कथानक—

२१६. इसी क्रम से सेतरा, सौदामिनी, इन्द्रा और घना और विद्युता के भी कथानक जानना चाहिये। ये सभी धरणेन्द्र की अग्रमहिषियां हैं।

शेष दाक्षिणात्य इन्द्र की अग्रमहिषी-कथानक की सूचना—

२१७. इसी प्रकार से छह अध्ययन बिना किसी विशेषता के वेणुदेव के भी कहना चाहिये।

२१८. इसी प्रकार से यही छह-छह अध्ययन हरि, अग्निशिख, पूर्ण, जलकांत, अमितगति, वेलम्ब और घोष इन्द्र के भी जानना चाहिये इस प्रकार दक्षिण दिशा के इन्द्रों के ये चौवन अध्ययन होते हैं। इन सबमें वाणारसी नगरी के काम महावन नामक चैत्य कहना चाहिये।

रूपा आदि उत्तरार्ध इन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक—

२१९. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में भगवान महावीर पधारे—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय रूपा नामक देवी रूपानन्दा नामक राजधानी में रूपकावतंसक भवन में रूपक नामक सिंहासन पर आसीन थी। इत्यादि शेष वर्णन काली देवी के अध्ययन के समान जानना चाहिये किन्तु विशेष यह है कि पूर्वभव में चम्पा नगरी थी, पूर्णभद्र चैत्य था, रूपक नाम का गाथापति था, उसकी रूपक श्री नाम की पत्नी थी और उसकी रूपा नाम की लड़की थी। शेष वृत्तान्त पूर्ववत् कहना चाहिये, लेकिन विशेषता यह है—भूतानन्दा नामक इन्द्र की अग्रमहिषी के रूप में उपपात हुआ। कुछ कम एक पल्योपम की स्थिति है।

२२०. इसी प्रकार सुरूपा, रूपांशा, रूपकावती, रूपकान्ता और रूपप्रभा नामक देवियों के अध्ययन कहना चाहिये।

२२१. इसी प्रकार से छह-छह देवियां वेणुदाली, हरिस्सह, अग्निमाणवक विशिष्ट जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन और महाघोष इन उत्तर दिशा के इन्द्रों की अग्रमहिषियां कहना चाहिए।

दाक्षिणात्य पिशाच कुमारेन्द्र की कमला आदि अग्रमहिषियों के कथानक—

२२२. गाथायें—१. कमला, २. कमलप्रभा, ३. उत्पला, ४. सुदर्शना, ५. रूपवती, ६. बहुरूपा, ७. सुरूपा ८. सुभगा। ९. पूर्णा, १०. बहुपुत्रिका, ११. उत्तमा, १२. भारिका, १३. पद्मा, १४. वसुमती, १५. कनका, १६. कनकप्रभा। १७. अवतंसा, १८. केतुमती, १९. वज्रसेना २०. रतिप्रिया, २१. रोहिणी, २२. नवमिका, २३. ह्री, २४. पुष्पवती। २५. भुजगा, २६. भुजगवती, २७. महाकच्छा, २८. अपराजिता, २९. सुघोषा, ३०. विमला, ३१. सुस्वरा और ३२. सरस्वती ये बत्तीस अध्ययन हैं।

२२३. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कमला देवी कमलाए रायहाणीए कमलवडेंसए भवणे कमलंसि सीहासणंसि सेसं जहा कालीए तहेव, नवरं—पुव्वभवे नागपुरे नयरे सहसंबवणे उज्जाणे कमलस्स गाहावइस्स कमलसिरीए भारियाए कमला दारिया पासस्स अंतिए निक्खंता। कालस्स पिसायकुमारिंदस्स अग्गमहिसी। अद्धपलिओवमं ठिई।

—णाया० सु० २ व० ५ अ० १

२२३. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था, स्वामी भगवान महावीर पधारे—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में कमला नाम की देवी कमला राजधानी में कमलावतंसक भवन में कमल नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष सब वृत्तान्त कालीदेवी के समान समझना चाहिये, लेकिन यहाँ विशेष यह है कि पूर्वभव में नागपुर नगर था, सहस्राम्रवन नामक उद्यान था, कमल गाथापति की, कमलश्री भार्या की कमला नामक दारिका पार्श्वप्रभु के निकट दीक्षित हुई। पिशाच कुमारेन्द्र काल की अग्रमहिषी हुई। उसकी अर्ध पल्योपम की स्थिति है।

२२४. एवं सेसा वि अज्झयणा दाहिणिल्लाणं वाणमंतरिंदाणं। भाणियव्वाओ सव्वाओ नागपुरे सहसंबवणे उज्जाणे। मायापियरो धूया— सरिसनामया। ठिई अद्धपलिओवमं।

—णाया० सु० २ व० ५ अ० २–३२

२२४. इसी प्रकार शेष रहे अन्य दक्षिण दिशा के वाणव्यन्तर इन्द्रों की अग्रमहिषियों के अध्ययन कहना चाहिये। सभी ने नागपुर नगर में सहस्राम्रवन उद्यान में दीक्षा ली। सब के माता-पिता के नाम कन्याओं के नाम के समान जानना चाहिये। सब की अर्धपल्योपम की स्थिति जाननी चाहिये।

महाकालाइ-उत्तरिल्लपिसाय-इंदग्गमहिसीणं कहाणगाणि—

महाकाली आदि उत्तरार्ध पिशाचेन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक—

२२५. छट्ठो वि वग्गो पंचमवग्ग-सरिसो, नवरं—महाकालाईणं उत्तरिल्लाणं इंदाणं अग्गमहिसीओ। पुव्वभवे। सागेए नयरे। उत्तरकुरु-उज्जाणे। माया पियरो धूया सरिसनामया। सेसं तं चेव।

—णाया० सु० २ व० ६ अ० १–३२

२२५. छठा वर्ग भी पाँचवें वर्ग के समान है। विशेषता यह है कि महाकाल आदि उत्तर दिशा के आठ इन्द्रों की बत्तीस अग्रमहिषियां थीं। पूर्वभव में साकेत नगर में उत्पन्न हुई और उत्तर कुरु नामक उद्यान में दीक्षित हुई थीं। उन कुमारियों के नाम के समान ही माता-पिता के नाम जानना चाहिये। शेष वर्णन पूर्ववत्।

सूरऽग्गमहिसीणं कहाणगाणि—

सूर्य की अग्रमहिषियों के कथानक—

२२६. तेण कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरप्पभा देवी सूरंसि विमाणंसि सूरप्पभंसि सीहासणंसि। सेसं जहा कालीए तहा, नवरं—पुव्वभवो अरक्खुरीए नयरीए सूरप्पभस्स गाहावइस्स सूरसिरीए भारियाए सूरप्पभा दारिया। सूरस्स अग्गमहिसी। ठिई अद्धपलिओवमं पंचहिं वाससएहिं अब्भहियं। सेसं जहा कालीए।

—णाया० सु० २ व० ७ अ० १

२२६. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में भगवान पधारे—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय सूर्यप्रभादेवी सूर्य विमान में सूर्यप्रभ सिंहासन पर आसीन थी। शेष सब वर्णन कालीदेवी के समान है, किन्तु विशेषता यह है कि पूर्वभव में अरक्खुरी नगरी के सूर्यप्रभ गाथापति की सूर्यश्री भार्या से सूर्यप्रभा नाम की पुत्री हुई थी। पश्चात् सूर्य की अग्रमहिषी हुई। उसकी पाँच सौ वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की स्थिति है। शेष वर्णन पूर्ववत् काली के समान जानना चाहिये।

२२७. एवं —आयवा, अच्चिमाली, पभंकरा। सव्वाओ अरक्खुरीए नयरीए।

—णाया० सु० २ व० ७ अ० २–४

२२७. इसी प्रकार आतपा, अर्चिमाली और प्रभंकरा इन तीन अग्रमहिषियों का भी वर्णन जानना चाहिये। ये सभी अरक्खुरी नगरी में उत्पन्न हुई थी इत्यादि।

चंदऽग्गमहिसीणं कहाणगाणि—

चन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक—

२२८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं चंदप्पभा देवी चंदप्पभंसि विमा-

२२८. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ—यावत्—परिषदा पर्युपासना करती है।

उस काल और उस समय में चन्द्रप्रभा नामक देवी चन्द्रप्रभ

णंसि चंदप्पभंसि सीहासणंसि। सेसं जहा कालीए, नवरं—पुव्वभवो महुराए नयरीए चंदवडेंसए उज्जाणे। चन्दप्पभे गाहावई। चन्दसिरी भारिया। चन्दप्पभा दारिया। चन्दस्स अग्गमहिसी। ठिई अद्धपलिओवमं पण्णासवाससहस्सेहिं अब्भहियं। सेसं जहा कालीए।

—णाया० सु० २ व० ८ अ० १

विमान में चन्द्रप्रभ नामक सिंहासन पर आसीन थी। शेष कथानक कालीदेवी के समान समझना चाहिये, लेकिन यह विशेष है कि वह पूर्वभव में मथुरा नगरी की निवासिनी थी। वहाँ चन्द्रावतंसक नाम का उद्यान था। चन्द्रप्रभ नामक गाथापति रहता था। उसकी भार्या का नाम चन्द्रश्री था। उनके चन्द्रप्रभा नाम की पुत्री थी। वह (अगले भव में) चन्द्र की अग्रमहिषी हुई। पचास हजार वर्ष अधिक अर्धपल्योपम की उसकी स्थिति है। शेष सब वृत्तान्त काली के समान जानना चाहिये।

२२९. एवं—दोसिणाभा, अच्चिमाली, पभंकरा। महुराए नयरीए। मायापियरो धूया-सरिसनामा।

—णाया० सु० २ व० ८ अ० २–४

२२९. इसी प्रकार दोशीनाभा, अर्चिमाली और प्रभंकरा के अध्ययन जानना चाहिये। ये तीनों भी मथुरा नगरी में उत्पन्न हुई थीं। पुत्री के नाम के समान ही उनके माता-पिता के नाम थे।

पउमावईआईणं सक्कऽग्गमहिसीणं कहाणगाइं—

२३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासई।

तेणं कालेणं तेणं समएणं पउमावई देवी सोहम्मे कप्पे पउमवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए पउमंसि सीहासणंसि जहा कालीए।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-गमएणं नायव्वा, नवरं—सावत्थीए दो जणीओ। हत्थिणाउरे दो जणीओ। कंपिल्लपुरे दो जणीओ। साएए दो जणीओ। पउमे पियरो विजया मायराओ। सव्वाओ वि पासस्स अंतियं पव्वइयाओ। सक्कस्स अग्गमहिसीओ। ठिई सत्त पलिओवमाइं। महाविदेहे वासे अंतं काहिंति।

—णाया० सु० २ व० ९ अ० १–८

पद्मावती आदि शक्र की अग्रमहिषियों के कथानक—

२३०. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में स्वामी-महावीर स्वामी का समवसरण हुआ—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

उस काल और उस समय में पद्मावती देवी सौधर्मकल्प में पद्मावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में पद्म नामक सिंहासन पर बैठी हुई थीं। शेष वृत्तान्त कालीदेवी के समान कहना चाहिये।

इसी प्रकार कालीदेवी के गम के समान आठों अध्ययन जानना चाहिये, किन्तु विशेष यह कि पूर्वभव में दो जनी श्रावस्ती में, दो जनी हस्तिनापुर नगर में, दो जनी काम्पिल्यपुर नगर में और दो जनी साकेत नगर में उत्पन्न हुई थीं। सब के पिता का नाम पद्म और माता का नाम विजया था। सभी पार्श्वनाथ अर्हत् के पास प्रव्रजित हुई थीं। सभी शक्र की अग्रमहिषियाँ हुई। इनकी स्थिति सात पल्योपम की है। सभी महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सर्व दुःखों का अन्त करेंगी।

कण्हाआईणं ईसाणऽग्गमहिसीणं कहाणगाणि—

२३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे समोसरणं-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं कण्हा देवी ईसाणे कप्पे कण्हवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए कण्हंसि सीहासणंसि, सेसं जहा कालीए।

एवं अट्ठ वि अज्झयणा काली-गमएणं नायव्वा, नवरं—पुव्वभवो वाणारसीए नयरीए दो जणीओ। रायगिहे नयरे दो जणीओ। सावत्थीए नयरीए दो जणीओ। कोसंबीए नयरीए दो जणीओ। रामे पिया धम्मा माया। सव्वाओ वि पासस्स अरहओ अंतिए पव्वइयाओ। पुप्फचूलाए अज्जाए सिस्सिणियत्ताए। ईसाणस्स

कृष्णा आदि ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक—

२३१. उस काल और उस समय में राजगृह नगर में श्रमण भगवान महावीर पधारे—यावत्—परिषदा पर्युपासना करती है।

उस काल और उस समय कृष्णादेवी ईशानकल्प में कृष्णावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में कृष्ण नामक सिंहासन पर बैठी हुई थी। शेष वृत्तान्त कालीदेवी के समान जानना चाहिये।

इसी प्रकार आठों ही अध्ययन कालीदेवी के गम—अध्ययन के अनुरूप जानना चाहिये, लेकिन जो विशेषता है, वह इस प्रकार है—पूर्वभव में दो जनी वाणारसी नगरी में, दो जनी राजगृह नगर में दो जनी श्रावस्ती नगरी में और दो जनी कौशाम्बी नगरी में उत्पन्न हुई थीं। इन सभी के पिता का नाम राम था और

अग्गमहिसीओ। ठिई नवपलिओवमाइं। महाविदेहे वासे सिज्झिहिंति। बुज्झिहिंति मुच्चिहिंति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिंति।

माता का नाम धर्मा था। ये सभी पार्श्व अर्हन् के पास प्रव्रजित हुई थीं और पुष्पचूला आर्या को शिष्यनी के रूप में दी गई। ये सभी ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियां हुई। इनकी स्थिति नौ पल्योपम की है। सब महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगी, बुद्ध होंगी, मुक्त होंगी और सर्व दुःखों का अन्त करेंगी।

२३२. गाहा—कण्हा य कण्हराई, रामा तह रामरक्खिया।
वसूया वसुगुत्ता वसुमित्ता, वसुन्धरा चेव ईसाणे ॥१॥
—णाया० सु० २ व० १० अ० १–८

२३२. गाथा—१. कृष्णा, २. कृष्णराजी, ३. रामा, ४. रामरक्षिता, ५. वसु, ६. वसुगुप्ता, ७. वसुमित्रा और वसुन्धरा—ये आठ ईशान देवेन्द्र की अग्रमहिषियां हैं।

६. पासनाहतित्थे भूयाईणं समणीणं कहाणगाणि—

६. पार्श्वनाथ तीर्थ में भूता आदि श्रमणियों के कथानक—

२३३. सिरि हिरि धिइ कित्तीओ बुद्धी लच्छी, य होइ बोद्धव्वा।
इलादेवी सुरादेवी रसदेवी गंधदेवी य।

२३३. १. श्रीदेवी, २. ह्रीदेवी, ३. धृतिदेवी, ४. कीर्तिदेवी, ५. बुद्धिदेवी, ६. लक्ष्मीदेवी, ७. इलादेवी, ८. सुरादेवी, ९. रसदेवी और १०. गंधदेवी ये दस अध्ययन जानना चाहिये।

महावीरसमोसरणे सिरिदेवीए नट्टविही—

२३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, सेणिए राया। सामी समोसढे, परिसा निग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सिरिदेवी सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सिरिंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं, सपरिवाराहिं जहा बहुपुत्तिया,-जाव-नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगया। नवरं दारियाओ नत्थि। पुव्वभवपुच्छा।

महावीर समवसरण में श्रीदेवी की नाट्यविधि—

२३४. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था, गुणशिलक नामक चैत्य था, श्रेणिक राजा था। स्वामी—श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे, परिषदा दर्शनार्थ निकली। उस काल, उस समय में श्रीदेवी सौधर्मकल्प के श्री अवतंसक विमान में, सुधर्मसभा में श्री सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवियां और सपरिवार बहुपुत्रिका देवी के समान दर्शनार्थ आई—यावत्—नाट्यविधि दिखाकर वापस चली गई। किन्तु इतना विशेष है कि बहुपुत्रिका देवी के समान इसने कुमार-कुमारिकाओं की विकुर्वणा नहीं की। गौतम स्वामी ने इसके—श्रीदेवी के पूर्वभव के बारे में पूछा।

सिरिदेवीपुव्वभवे भूयाकहाणगं—

२३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे, गुणसिलए चेइए, जियसत्तू राया। तत्थ णं रायगिहे नयरे सुदंसणे नामं गाहावई परिवसइ अड्ढे-जाव-अपरिभूए। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स पिया नामं भारिया होत्था सोमाला। तस्स णं सुदंसणस्स गाहावइस्स धूया, पियाए गाहावइणीए अत्तिया भूया नामं दारिया होत्था,

श्रीदेवी के पूर्वभव के रूप में भूता का कथानक—

२३५. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था, गुणशिलक चैत्य था, जितशत्रु राजा था। उस राजगृह नगर में सुदर्शन नामक गाथापति निवास करता था, जो धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत था, किसी से भी पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था। उस सुदर्शन गाथापति की भार्या का नाम प्रिया था, जो

वुड्ढा वुड्ढकुमारी जुण्णा जुण्णकुमारी पडियपुयत्थणी वरग-परिवज्जिया यावि होत्था।

अत्यन्त सुकुमार थी। उस सुदर्शन गाथापति की पुत्री, प्रिया गाथापति की आत्मजा भूता नाम की दारिका लड़की थी, जो वृद्धा और वृद्धकुमारी (अधिक उम्र वाली कन्या) जीर्णा और जीर्णकुमारी, शिथिल नितम्ब और स्तनवाली और वर रहित अर्थात् अविवाहित थी।

भूयाए पाससमोसरणे गमणं—

२३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासे अरहा पुरिसादाणीए-जाव-नवरयणीए वण्णओ सो चेव। समोसरणं परिसा निग्गया।

तए णं सा भूया दारिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"एवं खलु, अम्मताओ पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे-जाव-गणपरिवुडे विहरइ। तं इच्छामि णं अम्मताओ, तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स पायवन्दिया गमित्तए।" "अहासुहं, देवाणुप्पिए!, मा पडिबंधं करेह।"

तए णं सा भूया दारिया ण्हाया-जाव-सरीरा चेडीचक्कवाल-परिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता, धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तए णं सा भूया दारिया नियगपरिवारपरिवुडा रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव गुणसिलए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्ताईए तित्थयरातिसए पासइ, पासित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुभित्ता चेडी-चक्कवाल-परिकिण्णा जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो-जाव-पज्जुवासइ।

तए णं पासे अरहा पुरिसादाणीए भूयाए दारियाए य महइ....। धम्मकहा। धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ० वंदइ नमंसइ, वंदित्ता० नमंसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं, भंते निग्गंथं पावयणं,-जाव-अब्भुट्ठेमि णं, भंते निग्गंथं पावयणं, से जहेयं तुब्भे वयह, जं नवरं, भंते! अम्मा-पियरो आपुच्छामि, तए णं अहं-जाव-पव्वइत्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिए।"

भूता का पार्श्व समवसरण में गमन—

२३६. उस काल और उस समय में पुरुषादानीय (पुरुषों में श्रेष्ठ) नौ हाथ की अवगाहना वाले अर्हत् पार्श्वप्रभु पधारे, पूर्ववत् वर्णन करना चाहिये। दर्शनार्थ परिषदा निकली।

तत्पश्चात् वह भूता दारिका इस वृतान्त (पार्श्व अर्हत् के आगमन) को सुनकर हृष्ट-तुष्ट होती हुई जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आई, आकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे मात-तात! पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् क्रमानुक्रम से गमन करते हुए—यावत्—गण से परिवृत्त होकर विचर रहे हैं। अतएव हे मात तात! आपकी अनुमति लेकर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् की चरण-वंदना के लिये जाना चाहती हूँ।' माता-पिता ने कहा—'हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध—विलम्ब मत करो।

तत्पश्चात् उस भूता दारिका ने स्नान किया—यावत्—अलंकृत होकर चेटिकाओं के समूह से परिवेष्टित हो अपने घर से निकली, निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आई, वहाँ आकर धार्मिक श्रेष्ठ यान—रथ पर आरूढ़ हुई।

तत्पश्चात् वह भूता दारिका अपने चेटिका परिवार से परिवेष्टित होकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से निकली, निकलकर जहाँ गुणशिलक चैत्य था, वहाँ आई, वहाँ आकर छत्रादि तीर्थंकर के अतिशयों को देखा देखकर धार्मिक यान प्रवर से नीचे उतरी, उतरकर चेटिका चक्रवाल दासी समूह से परिवृत होकर जहाँ पर पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् विराज रहे थे वहाँ आई, वहाँ आकर तीन बार आदक्षिणा की—यावत् पर्युपासना करने लगी।

इसके बाद पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु ने उस महती परिषदा और भूता दारिका को धर्मोपदेश दिया। जिसको सुनकर और हृदय में अवधारित कर उस भूता दारिका ने हृष्ट-तुष्ट होकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करती हूँ—यावत्—उद्यत हूँ, हे भगवन् आपने जिस निर्ग्रन्थ प्रवचन का निरूपण किया है, वह वैसा ही है, लेकिन हे भगवन्! मैं अपने माता-पिता से पूछूँगी—आज्ञा लूँगी, तदनन्तर मैं आपके पास प्रव्रज्या लेना चाहती हूँ।'

'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो वैसा करो'—पार्श्व अर्हत् ने कहा।

भूयाए पव्वज्जा—

२३७. तए णं सा भूया दारिया तमेव धम्मियं जाणप्पवरं-जाव-

भूता की प्रव्रज्या—

२३७. तत्पश्चात् वह भूता दारिका उसी धार्मिक यान प्रवर-

दुरुहइ, दुरुहित्ता जेणेव रायगिहे नयरे, तेणेव उवागया । रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया । रहाओ पच्चोरुहित्ता जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागया । करयल० जहा जमाली, आपुच्छइ ।

श्रेष्ठ रथ पर बैठी, बैठकर जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आई । राजगृह नगर के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ अपना घर था, वहाँ आई । रथ से नीचे उतरकर जहाँ माता-पिता थे, उनके पास पहुँची और जमाली की तरह दोनों हाथ जोड़ माता-पिता से प्रव्रज्या की अनुमति माँगी ।

"अहासुहं, देवाणुप्पिए !"

आज्ञा देते हुए माता पिता ने कहा— 'हे देवानुप्रिये ! जैसी तुम्हारी इच्छा हो ।'

तए णं से सुदंसणे गाहावई विउलं असणं-जाव-साइमं उवक्खडावेइ, मित्तनाइ आमंतेइ, आमंतित्ता-जाव-जिमियभुत्तुत्तरकाले सुइभूए निक्खमणमाणेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव, भो देवाणुप्पिया, भूयादारियाए पुरिससहस्सवाहिणीयं सीयं उवट्ठवेह-जाव-उवट्ठवित्ता पच्चप्पिणह ।" तए णं ते-जाव-पच्चप्पिणन्ति ।

उसके बाद उस सुदर्शन गाथापति ने विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य इन चारों प्रकार के भोजन को तैयार करवाया, तैयार करवाकर मित्रों, जातिबंधुओं को आमंत्रित किया, आमंत्रित करके—यावत्—भोजन करने के बाद शुचिभूत होकर, पवित्र, स्वच्छ होकर दीक्षा की तैयारी करने के लिये कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा— 'हे देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही भूता दारिका के लिये पुरुष सहस्रवाहिनी हजार पुरुषों द्वारा उठाई जाने वाली शिविका-पालखी तैयार करके लाओ— यावत्—तैयार कर लाने के बाद मेरी आज्ञा को वापस लौटाओ । उसके बाद वे पालखी ले आये—यावत्—वापस आज्ञा लौटाते हैं-सूचना देते हैं ।

तए णं से सुदंसणे गाहावई भूयं दारियं ण्हायं विभूसियसरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता । मित्तनाइ-जाव-रवेणं रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं, जेणेव गुणसिलए चेइए, तेणेव उवागए छत्ताईए तित्थयराइसए पासइ, पासित्ता सीयं ठावेइ, ठावित्ता भूयं दारियं सीयाओ पच्चोरुहेइ ।

तत्पश्चात् उस सुदर्शन गाथापति ने स्नान कराके सभी अलंकारों से विभूषित शरीरवाली भूता दारिका को पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका में बैठाया, बैठाकर मित्रों, जातिबंधुओं सहित—यावत्—वाद्यघोषों के साथ राजगृह नगर के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ गुणशिलक चैत्य था, वहाँ आया, और छत्रादि तीर्थंकरों के अतिशयों को देखा, देखकर शिविका को ठहराया, ठहराकर भूता दारिका को शिविका से नीचे उतारी ।

तए णं तं भूयं दारियं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव पासे अरहा पुरिसादाणीए, तेणेव उवागए तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! भूया दारिया अम्हं एगा धूया इट्ठा । एस णं, देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गा भीया-जाव-देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा-जाव-पव्वयाइ । तं एयं णं, देवाणुप्पियाणं सिस्सिणिभिक्खं दलयामो । पडिच्छन्तु *णं देवाणुप्पिया ! सिस्सिणिभिक्खं ।"*

तत्पश्चात् माता-पिता ने उस भूता बालिका को आगेकर जहाँ पुरुषादानीय अर्हत् पार्श्वप्रभु विराज रहे थे, वहाँ आये और तीन बार आदक्षिणा- प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा 'हे देवानुप्रिय ! यह भूता बालिका हमारी एकली—इकलौती बेटी है, जो हमें अत्यन्त इष्ट-प्रिय है । हे देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्विग्न है *—यावत्—आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित* होना चाहती है । इसलिये हे देवानुप्रिय ! हम आपको इसे शिष्या *भिक्षा के रूप में अर्पित करते हैं । हे देवानुप्रिय ! आप इस शिष्या* रूप भिक्षा को स्वीकार कीजिये ।

"अहासुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।"

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो किन्तु प्रतिबन्ध—विलम्ब मत करो ।' अर्हत् पार्श्वप्रभु ने उत्तर दिया ।

तए णं सा भूया दारिया पासेणं अरहया... एवं वुत्ता समाणी हट्ठा उत्तरपुरत्थिमं सयमेव आभरणमल्लालंकारं उम्मुयइ, जहा देवाणन्दा, पुप्फचूलाणं अंतिए-जाव-गुत्तबंभयारिणी ।

तत्पश्चात् अर्हत् पार्श्वप्रभु के इस प्रकार कहे जाने पर वह भूता दारिका हृष्ट-तुष्ट होती हुई ईशान कोण में जाकर अपने ही हाथों से आभरण, माला, अलंकारों आदि को उतारती है, उसके बाद देवानन्दा के समान पुष्पचूला आर्या के समीप प्रव्रजित हो —यावत्—गुप्तब्रह्मचारिणी हो गई ।

भूयाए निग्गंथिणीए सरीरपाओसियत्तं—

२३८. तए णं सा भूया अज्जा अन्नया कयाइ सरीरपाओसिया जाया यावि होत्था। अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवइ, पाए धोवइ, एवं सीसं धोवइ, मुहं धोवइ, थणगन्तराइं धोवइ, कक्खन्तराइं धोवइ, गुज्झंतराइं धोवइ, जत्थ जत्थ वि य णं ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ, तत्थ तत्थ वि य णं पुव्वामेव पाणएणं अब्भुक्खेइ, तओ पच्छा ठाणं वा सेज्जं वा निसीहियं वा चेएइ।

तए णं ताओ पुप्फचूलाओ अज्जाओ भूयं अज्जं एवं वयासी—"अम्हे णं, देवाणुप्पिए, समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ-जाव-गुत्तबंभचारिणीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं सरीरपाओसियाणं होत्तए। तुमं च णं, देवाणुप्पिए! सरीरपाओसिया अभिक्खणं अभिक्खणं हत्थे धोवसि-जाव-निसीहियं चेएसि। तं णं तुमं, देवाणुप्पिए! एयस्स ठाणस्स आलोएहि" त्ति। सेसं जहा सुभद्दाए, -जाव-पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा भूया अज्जा अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छन्दमई अभिक्खणं-अभिक्खणं हत्थे धोवइ-जाव-चेएइ।

भूता निर्ग्रन्थिनी का शरीर प्राद्वेषिकत्व-बाकुशत्व—

२३८. तत्पश्चात् वह भूता आर्या शरीर-प्राद्वेषिका-बाकुशिका हो गई। जिससे वह बारम्बार अपने हाथों को धोती, पैरों को धोती, इसी प्रकार सिर, मुख, स्तनान्तर, कक्षान्तर-कांख-बगल और गुह्यान्तर को धोती, जहाँ कहीं भी बैठती अथवा सोती अथवा स्वाध्याय करने का स्थान नियत करती वहाँ-वहाँ उस उस स्थान पर पहले पानी छिड़कती और उसके बाद वहाँ बैठती, सोती और स्वाध्याय करती।

इस प्रकार करते देखकर पुष्पचूला आर्या ने भूता आर्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! हम लोग ईर्यासमिति से समित—यावत्—गुप्तब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थ श्रमणी हैं। इसलिये हमें शरीर बाकुशिक होना नहीं कल्पता है। लेकिन हे देवानुप्रिये! तुम शरीर बाकुशिक होकर बारम्बार हाथ धोती हो—यावत्—स्वाध्याय करती हो। अतएव हे देवानुप्रिये! तुम इस स्थान (सावद्यकार्य) की आलोचना करो। शेष वर्णन सुभद्रा आर्या के समान जानना चाहिये—यावत्—अलग अकेली उपाश्रय में रहकर विचरण करने लगी। उसके बाद वह भूता आर्या निरंकुश, अनिवारित और स्वच्छन्द होकर बारम्बार हाथों को धोती—यावत्—पानी छिड़क कर बैठती थी।

भूयाए देवित्तं—

२३९. तए णं सा भूया अज्जा बहूहिं चउत्थछट्ठ० बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सिरिवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि-जाव ओगाहणाए सिरिदेवित्ताए उववन्ना पच विहाए पज्जत्तीए-जाव-भासामणपज्जत्तीए पज्जत्ता। एवं खलु, गोयमा! सिरीए देवीए एसा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता। एगं पलिओवमं ठिई।

"सिरी णं भंते, देवी-जाव-कहिं गच्छिहिइ?"

"महाविदेहेवासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।"

—पुप्फचूलियाओ अ० १

भूता का देवित्व—

२३९. तत्पश्चात् वह भूता आर्या बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम आदि तप कर्म से आत्मा को भावित करती हुई बहुत वर्षों की श्रामण्य पर्याय का पालन कर और अपने उन पापस्थानों की आलोचना—प्रतिक्रमण किये बिना ही काल मास में काल करके सौधर्मकल्प के श्री अवतंसक नामक विमान में उपपात सभा के अन्दर देवशयनीय शैया में—यावत्—तत्सम्बन्धी अवगाहना से श्रीदेवी के रूप में उत्पन्न हुई और पाँच पर्याप्तियों—यावत्—भाषा-मनः पर्याप्ति से पर्याप्त हुई। इस प्रकार हे गौतम! श्री देवी ने यह दिव्य देवऋद्धि उपलब्ध प्राप्त की है। यहाँ उस देवलोक में उसकी एक पल्योपम की स्थिति आयु है।

'हे भगवन्! यह श्रीदेवी यहाँ से च्यवकर कहाँ जावेगी, कहाँ उत्पन्न होगी?' गणधर गौतम स्वामी ने पूछा।

'महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगी—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगी। प्रभु महावीर ने उत्तर दिया।

पासस्स समणीणं हिरि-आईणं कहाणगाणि—

२४०. एवं सेसाण वि नवण्हं भाणियव्वं। सरिसनामा विमाणा। सोहम्मे कप्पे। पुव्वभवो नयरचेइयपियमाईणं अप्पणो य नामादि जहा संगहणीए। सव्वा पासस्स अंतिए निक्खंता। ताओ पुप्फचूलाणं सिस्सिणीयाओ, सरीरपाओसियाओ सव्वाओ अणंतरं चयं

पार्श्व की ह्री आदि श्रमणियों के कथानक—

२४०. इसी प्रकार शेष नौ अध्ययनों का कथन जानना चाहिये। इन नौओं के भी विमानों के नाम इनके समान हैं। सभी सौधर्म कल्प में उत्पन्न हुईं। इनके पूर्वभव के नगर, चैत्य, पिता आदि तथा अपने नाम आदि संग्रहणी गाथा में आये हुए नाम के समान

चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहन्ति-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिंति।

—पुप्फचूलियाओ अ० २-१०

जानना चाहिये। ये सभी पार्श्वप्रभु के पास प्रव्रजित हुई। पुष्पचूला आर्या की शिष्या हुई और सभी शरीर-बाकुशिका हो गई और ये सभी देवलोक से च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगी—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करेंगी।

७. पासत्थाए समणीसुभद्दाए कहाणयं—

महावीरसमोसरणे बहुपुत्तियादेवीए नट्टविही—

२४१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं बहुपुत्तिया देवी सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तिए विमाणे सभाए सुहम्माए बहुपुत्तियंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं महत्तरियाहिं, जहा सूरियाभे,-जाव-भुंजमाणी विहरइ, इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणी-आभोएमाणी पासइ, पासित्ता समणं भगवं महावीरं, जहा सूरियाभो-जाव-नमंसित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहा संनिसण्णा। आभियोगा जहा सूरियाभस्स, सूसरा घंटा, आभियोगियं देवं सद्दावेइ। जाणविमाणं जोयणसहस्सवित्थिण्णं। जाणविमाण-वण्णओ। -जाव-उत्तरिल्लेणं निज्जाणमग्गेण जोयणसाहस्सिएहिं विग्गहेहिं आगया, जहा सूरियाभे। धम्मकहा सम्मत्ता। तए णं सा बहुपुत्तिया देवी दाहिणं भुयं पसारेइ, पसारेत्ता देवकुमाराणं अट्ठसयं देवकुमारियाण य वामाओ भुयाओ अट्ठसयं, तयणन्तरं च णं बहवे दारगा य दारियाओ य डिम्भए य डिम्भियाओ य विउव्वइ। नट्टविहिं, जहा सूरियाभो, उवदंसित्ता पडिगए।

७. पार्श्वस्था श्रमणी सुभद्रा का कथानक—

महावीर समवसरण में बहुपुत्रिका देवी की नाट्यविधि—

२४१. उस काल और उस समय राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक चैत्य था। श्रेणिक राजा था। स्वामी—महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ। दर्शनार्थ परिषदा निकली।

उस काल और उस समय बहुपुत्रिका देवी सौधर्मकल्प में बहुपुत्रिक विमान में सुधर्मा सभा के अन्दर बहुपुत्रिक नामक सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवियों और चार महत्तरिकाओं से परिवेष्टित हो सूर्याभ देव के समान—यावत्—विचरण कर रही थी, वह इस सम्पूर्ण जम्बूद्वीप नामक द्वीप को निर्मल अवधिज्ञानोपयोग से देखती हुई भगवान महावीर को देखती है, देखकर—यावत्—सूर्याभदेव के समान श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार करके अपने श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व दिशा की ओर मुख करके बैठी। सूर्याभदेव के समान आभियोगिक देवों को बुलाया, सुस्वर घंटा बजवाया, पुनः आभियोगिक देवों को बुलाया। उसका यान विमान एक हजार योजन का विस्तीर्ण था। यान विमान का वर्णन करना चाहिये—यावत्—सूर्याभदेव के समान वह बहुपुत्रिका देवी उत्तर दिशावर्ती निर्याण मार्ग से एक हजार योजन का वैक्रिय शरीर बनाकर उतरी और भगवान के समीप आई। धर्म कथा समाप्त हुई। तब उस बहुपुत्रिका देवी ने अपनी दाहिनी भुजा फैलाई, फैलाकर एक सौ आठ देवकुमारों को और बायीं भुजा फैलाकर एक सौ आठ देवकुमारियों को निकाला। तदनन्तर बहुत सी किशोर किशोरियों की और छोटी-छोटी बालक-बालिकाओं की विकुर्वणा की। फिर सूर्याभदेव के समान नाट्यविधि को दिखलाकर वापस लौट जाती है।

बहुपुत्तियादेवीपुव्वभवरूवं सुभद्दाकहाणयं—

२४२. "भंते" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ। कूडागारसाला।

बहुपुत्रिका देवी का पूर्वभव रूप सुभद्रा कथानक—

२४२. 'हे भदन्त!' इस प्रकार संबोधन कर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया और फिर पूछा—'हे भगवन्! इस बहुपुत्रिका देवी की दिव्य ऋद्धि दिव्य

द्युति और दिव्य देवानुभाव किसमें समा गया ?' 'हे गौतम ! वह ऋद्धि·······उसी के शरीर से निकली और उसी में विलीन हो गई' कूटागार शाला के समान (जैसे कि किसी उत्सव आदि में एकत्रित हजारों स्त्री-पुरुषों का समूह पर्वत शिखर के समान ऊँचे और विशाल घर में समा जाता है, उसी प्रकार) बहुपुत्रिका देवी की यह सब ऋद्धि आदि उसी में अन्तर्लीन हो गई। श्रमण भगवान महावीर ने समाधान किया।

"बहुपुत्तियाए णं, भंते ! देवीए सा दिव्वा देविड्ढी"....पुच्छा, "-जाव-अभिसमन्नागया ?"

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी, अम्बसालवणे चेइए। तत्थ णं वाणारसीए नयरीए भद्दे नामं सत्थवाहे होत्था अड्ढे-जाव-अपरिभूए। तस्स णं भद्दस्स सुभद्दा नामं भारिया सुउमाला वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था।

गौतम स्वामी ने पुनः पूछा—'हे भदन्त ! बहुपुत्रिका देवी को यह सब ऋद्धि आदि कैसे प्राप्त हुई ?

प्रत्युत्तर में भगवान ने फरमाया—हे गौतम ! उस काल और उस समय में वाराणसी नाम की नगरी थी, आम्रशाल नामक चैत्य था। उस वाराणसी नगरी में भद्र नामक सार्थवाह था जो धन-धान्य से समृद्ध था—यावत्—दूसरों से अपरिभूत था। उस भद्र की सुभद्रा नाम की भार्या पत्नी थी, जो सुकुमाल हाथ पैर वाली थी किन्तु वह वन्ध्या थी जिससे उसने एक भी संतान को जन्म नहीं दिया, केवल जानुकूर्पर की माता थी अर्थात् उसके स्तनों को केवल घुटने और कोहनियां स्पर्श करती थी न कि संतान अथवा दूसरे की संतान को ही उसके घुटने और हाथ लाड़ प्यार करने में समर्थ थे।

सुभद्दाए अप्पणो वंझत्त चिंता—

२४३. तए णं तीसे सुभद्दाए सत्थवाहीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयाया। तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-सुलद्धे णं तासिं अम्मयाणं मणुयजम्मजीवियफले, जासिं मन्ने नियकुच्छिसंभूयगाइं थणदुद्धलुद्धगाइं महुरसमुल्लावगाणि मम्मणप्पजम्पियाणि थणमूलकक्खदेसभागं अभिसरमाणगाणि पण्हयन्ति, पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छङ्गनिवेसियाणि देन्ति, समुल्लावए सुमहुरे पुणो पुणो मम्मणप्पभणिए। अहं णं अधन्ना अपुण्णा एत्तो एगमवि न पत्ता।" ओहय-जाव-झियाइ।

सुभद्रा को अपने वंध्यत्व की चिन्ता—

२४३. तत्पश्चात् उस सुभद्रा सार्थवाही को किसी एक समय मध्य रात्रि के समय कुटुम्ब जागरणा में जागरण करते हुए इस प्रकार का—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल—उत्तम भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरती हूँ किन्तु आज तक मैंने एक भी बालक या बालिका का प्रसव नहीं किया है। वे मातायें धन्य हैं—यावत्—उन माताओं ने अपने मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह पाया है, जिन माताओं ने अपनी कुक्षि से उत्पन्न, स्तन के दूध के लोभी, मधुर कर्णप्रिय वाणी का उच्चारण करने वाली माँ !—माँ ! बोलने वाली स्तन-मूल और कक्ष के बीच भाग में अभिसरण करने वाली संतान जिनके स्तनों को दूध से परिपूर्ण करती है, फिर वह संतान कोमल कमल के समान हाथों से लेकर गोद में बैठाई जाने पर माँ !—माँ ! जैसे मधुर शब्दों को सुना-सुना कर प्रसन्न करती है। किन्तु मैं हतभागिनी हूँ, पुण्यहीन हूँ कि जिसने एक भी पुत्र को जन्म नहीं दिया।' इस प्रकार भग्न मनोरथा होकर—यावत्—आर्त-ध्यान करने लगी।

अज्जासमीवे पुत्तोवायपुच्छा—

२४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ अज्जाओ इरियासमियाओ-जाव-गुत्तबम्भयारिणीओ बहुस्सुयाओ बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणीओ गामाणुगामं दूइज्जमाणीओ जेणेव वाणारसी

आर्या समीप पुत्रोपायपृच्छा—

२४४. उस काल और उस समय में ईर्या समिति आदि समितियों से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी, बहुश्रुता और बहुत सी शिष्याओं के परिवार वाली सुव्रता आर्या पूर्वानुपूर्वी परम्परा से

नयरी, तेणेव उवागयाओ। उवागच्छित्ता अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा विहरंति।

तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए वाणारसी-नयरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे भद्दस्स सत्थवाहस्स गिहं अणुपविट्ठे। तए णं सुभद्दा सत्थवाही ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता। हट्ठ.... खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अहं, अज्जाओ, भद्देणं सत्थवाहेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयायामि। तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-एत्तो एगमवि न पत्ता। तं तुब्भे, अज्जाओ, बहुणायाओ बहुपढियाओ बहूणि गामागरनगर-जाव-सन्निवेसाइं आहिंडह, बहूणं राई-सर-तलवर-जाव-सत्थवाहप्पभिईणं गिहाइं अणुपविसह, अत्थि से केइ कहिंचि विज्जापओए वा मन्तप्पओए वा वमणं वा विरेयणं वा वत्थिकम्मं वा ओसहे वा भेसज्जे वा उवलद्धे, जेणं अहं दारगं वा दारियं वा पयाएज्जा ?"

विचरण करती हुई, ग्रामानुग्राम में विहार करती हुई जहाँ वाराणसी नगरी थी, वहाँ आई। वहाँ आकर यथाप्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

तत्पश्चात् उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाड़ा वाराणसी नगरी के उच्च मध्यम और नीच कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा चर्या से भ्रमण करती हुई भद्र सार्थवाह के घर में प्रविष्ट हुआ। तब सुभद्रा सार्थवाही ने उन आर्याओं को आते हुए देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट होती हुई शीघ्र ही आसन से उठी, उठकर सात आठ पैर उनके सामने गई, सामने जाकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उत्तम अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन से प्रतिलाभित करती हुई, बहराती हुई, उनसे इस प्रकार कहा—'हे आर्याओं! बात यह है कि मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरण करती हूँ, किन्तु अभी तक मैंने एक भी बालक या बालिका का प्रसव नहीं किया है। वे मातायें धन्य हैं—यावत्—मैं एक भी संतान को नहीं पा सकी। अतएव आप आर्यायें तो बहुत ज्ञानवाली हैं, बहुत जानकार हैं और बहुत से ग्राम आकर नगर—यावत्—सन्निवेशों में परिभ्रमण करती हैं, बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति के घरों में प्रविष्ट होती हैं, तो क्या कहीं कोई विद्या प्रयोग अथवा मंत्रप्रयोग अथवा वमन, विरेचन, वस्तिकर्म, औषधि अथवा भैषज्य आपको मिला है जिससे मैं लड़का या लड़की को प्राप्त कर सकूं—जन्म दे सकूं?'

अज्जाहिं धम्मकहणं—

२४५. तए णं ताओ अज्जाओ सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—"अम्हे णं, देवाणुप्पिए, समणीओ निग्गंथीओ इरियासमियाओ-जाव-गुत्तबंभयारीओ। नो खलु कप्पइ अम्हं एयमट्ठं कण्णेहिं वि निसामेत्तए किमंग पुण उद्दिसित्तए वा समायरित्तए वा। अम्हे णं, देवाणुप्पिए! नवरं तव विचित्तं केवलिपन्नत्तं धम्मं परिकहेमो।"

आर्याओं द्वारा धर्म कथन—

२४५. तत्पश्चात् वे साध्वी सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार बोली—हे देवानुप्रिये! हम ईर्या आदि समितियों से समित—यावत् गुप्त ब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थी श्रमणियाँ हैं। इस प्रकार के अर्थ को बातों को हमें कान से सुनना भी नहीं कल्पता है तो फिर हम उनका उपदेश अथवा आचरण कैसे कर सकती हैं? किन्तु हे देवानुप्रिये! हम तो विशेषता के साथ मात्र केवली प्ररूपित नाना प्रकार के धर्म का कथन करती हैं।'

सुभद्दाए गिहिधम्मगहणं—

२४६. तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा ताओ अज्जाओ तिक्खुत्तो वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी "सद्दहामि णं अज्जाओ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि रोएमि णं अज्जाओ निग्गंथं पावयणं एवमेयं तहमेयं अवितहमेयं"-जाव-सावगधम्मं पडिवज्जइ।

सुभद्रा का श्रावक धर्मग्रहण—

२४६. तत्पश्चात् उस सुभद्रा सार्थवाही ने उन आर्याओं के पास से धर्म श्रवण कर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट होते हुए उन आर्याओं को तीन बार वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—हे आर्याओं मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करती हूँ, विश्वास करती हूँ, रुचि रखती हूँ तथा आप आर्याओं ने जैसा उपदेश दिया है, निर्ग्रन्थ प्रवचन वैसा ही है, सत्य है, सर्वथा सत्य है—यावत्—मैं श्रावक धर्म को स्वीकार करती हूँ। 'हे देवानुप्रिये! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो' आर्याओं ने कहा।

"अहासुहं, देवाणुप्पिए, मा पडिबंधं करेह।" तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तासिं अज्जाणं अंतिए-जाव-पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता ताओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जइ। तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही समणोवासिया जाया-जाव-विहरइ।

सुभद्दाए पव्वज्जासंकप्पो—

२४७. तए णं तीसे सुभद्दाए समणोवासियाए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं भद्देणं सत्थवाहेणं विउलाइं भोगभोगाइं-जाव-विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा ..। तं सेयं मम खलु ममं कल्लं-जाव-जलन्ते भद्दस्स आपुच्छित्ता सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए अज्जा भवित्ता अगाराओ-जाव-पव्वइत्तए," एवं संपेहेइ, संपेहित्ता जेणेव भद्दे सत्थवाहे तेणेव उवागया करयल-जाव-एवं वयासी—"एवं खलु अहं, देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं सद्धिं बहूहिं वासाइं विउलाइं भोगभोगाइं-जाव-विहरामि, नो चेव णं दारगं वा दारियं वा पयायामि। तं इच्छामि णं, देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी सुव्वयाणं अज्जाणं-जाव-पव्वइत्तए।"

तए णं से भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—"मा णं तुमं, देवाणुप्पिए, मुण्डा-जाव-पव्वयाहि। भुंजाहि ताव, देवाणुप्पिए! मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं, तओ पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं-जाव-पव्वयाहि।"

तए णं सुभद्दा सत्थवाही भद्दस्स एयमट्ठं नो परियाणाइ। दोच्चं पि सुभद्दा सत्थवाही भद्दं सत्थवाहं एवं वयासी—"इच्छामि णं देवाणुप्पिया! तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया समाणी-जाव-पव्वइत्तए।"

तए णं से भद्दे सत्थवाहे, जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य, एवं पन्नवणाहि य सन्नवणाहि य विन्नवणाहि य आघवित्तए वा-जाव-विन्नवित्तए वा, ताहे अकामए चेव सुभद्दाए निक्खमणं अणुमन्नित्था।

सुभद्दाए पव्वज्जा—

२४८. तए णं से भद्दे सत्थवाहे विउलं असणं-जाव-साइमं उवक्खडावेइ। मित्तनाइ....तओ पच्छा भोयणवेलाए-जाव-मित्तनाइ....

तदनन्तर वह सुभद्रा सार्थवाही उन आर्याओं के पास से—यावत्—श्रावक धर्म स्वीकार किया, स्वीकार करके उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके विदा किया। उसके बाद सुभद्रा सार्थवाही श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—विचरने लगी।

सुभद्रा का प्रव्रज्या संकल्प—

२४७. तदनन्तर उस सुभद्रा श्रमणोपासिका को किसी एक दिन मध्य रात्रि में कौटुम्बिक जागरण में जागरमाण होते हुए परिवार के विषय में विचार करते हुए यह इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"मैं भद्र सार्थवाह के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई—यावत्—विचरती हूँ, किन्तु मैंने एक भी बालक अथवा बालिका का प्रसव नहीं किया है। इसलिये मुझे यही श्रेयस्कर है कि कल—यावत्—सूर्य प्रकाशमान होने पर भद्र से अनुमति लेकर सुव्रता आर्या के पास आर्या होकर आगार का त्यागकर—यावत्—प्रव्रज्या ग्रहण कर लूं।—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ भद्र सार्थवाह था, वहाँ आई और दोनों हाथ जोड़—यावत्—इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम्हारे साथ बहुत वर्षों तक विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई—यावत्—विचरण कर रही हूँ, किन्तु मैंने एक दारक या दारिका को जन्म नहीं दिया है। अतएव आपकी आज्ञा प्राप्त कर सुव्रता आर्या के पास मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित होना चाहती हूँ।'

तब उस भद्र सार्थवाह ने सुभद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम अभी मुण्डित मत होओ—यावत्—प्रव्रजित मत होओ। किन्तु देवानुप्रिये भोगोपभोगों को भोगो। मेरे साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगने के पश्चात् भुक्तभोगी होकर सुव्रता आर्या के पास—यावत्—प्रव्रजित होना।'

भद्र सार्थवाह के द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर भी उस सुभद्रा सार्थवाही ने भद्र के इस अर्थ वचन का आदर नहीं किया। किन्तु दूसरी बार और तीसरी बार भी उस सुभद्रा सार्थवाहीने भद्र सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुमसे आज्ञा—अनुमति पाकर—यावत्—प्रव्रज्या—अंगीकार करना चाहती हूं।"

उसके बाद वह भद्र सार्थवाह जब बहुत प्रकार की आख्यापनाओं, प्रज्ञापनाओं, संज्ञापनाओं और विज्ञापनाओं द्वारा कहने सुनने—यावत्—समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुआ तब उसने अनिच्छापूर्वक सुभद्रा को दीक्षा लेने की अनुमति दे दी।

सुभद्रा की प्रव्रज्या—

२४८. तत्पश्चात् उस भद्र सार्थवाहने विपुल अशन—यावत्—स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन बनवाया और फिर मित्रों, ज्ञाति-बंधुओं को आमंत्रित किया......उसके बाद भोजन बेला

सक्कारेइ संमाणेइ । सुभद्दं सत्थवाहिं ण्हायं-जाव-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेइ । तओ सा सत्थवाही मित्तनाइ-जाव-संबन्धिसंपरिवुडा सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं वाणारसी नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, सुभद्दं सत्थवाहिं सीयाओ पच्चोरुहेइ ।

में—यावत्—मित्रों, जाति बंधुओं का सत्कार-सम्मान किया । सुभद्रा सार्थवाही स्नान कर—यावत्—प्रायश्चित्त करके, सर्व अलंकारों से—विभूषित होकर पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर बैठी । उसके बाद वह—सुभद्रा सार्थवाही मित्रों, जाति बांधवों—यावत्—सम्बन्धीजनों से परिवेष्ठित होकर सर्वऋद्धि—यावत्—वाद्य नादों के साथ वाराणसी नगरी के मध्यभाग में से होती हुई सुव्रता आर्याओं के उपाश्रय में आई आकर पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका खड़ी की, सुभद्रा सार्थवाही शिविका से नीचे उतरी ।

तए णं भद्दे सत्थवाहे सुभद्दं सत्थवाहिं पुरओ काउं जेणेव सुव्वया अज्जा, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया, सुभद्दा सत्थवाही ममं भारिया इट्ठा कन्ता-जाव-मा णं वाइया पित्तिया सिम्भिया संनिवाइया विविहा रोयातंका फुसन्तु । एस णं, देवाणुप्पिया, संसार-भउव्विग्गा, भीया जम्ममरणाणं, देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ता-जाव-पव्वयाइ । तं एयं अहं देवाणुप्पियाणं सीसिणिभिक्खं दलयामि । पडिच्छन्तु णं, देवाणुप्पिया ! सीसिणिभिक्खं ।"

उसके बाद वह भद्र सार्थवाह सुभद्रा सार्थवाही को आगे करके—जहाँ सुव्रता आर्या थी वहाँ आया, सुव्रता आर्या को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! मेरी भार्या पत्नी सुभद्रा सार्थवाही मुझे इष्ट और कान्त है—यावत्—वात-पित्त-कफजन्य, सन्निपातिक विविध रोग और आतंक इसको स्पर्श न कर सकें, इसके लिये प्रयत्नशील रहा हूं । अब यह देवानुप्रिया संसार के भय से उद्विग्न और जन्म मरण से डरकर आप देवानुप्रियों के पास मुण्डित होकर—यावत्—दीक्षित होने को तत्पर है । अतएव मैं इसको आप देवानुप्रियों को शिष्यणी भिक्षा के रूप में देता हूं । आप देवानुप्रियो ! इस शिष्यणी भिक्षा को स्वीकार कीजिये ।

"अहासुहं, देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।"

भद्र सार्थवाह के कथन को सुनकर सुव्रता-आर्या ने कहा—'हे देवानुप्रिये ! जैसा उचित प्रतीत हो वैसा करो, किन्तु प्रमाद मत करो ।'

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही सुव्वयाहिं अज्जाहिं एवं वुत्ता समाणी हट्ठा सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ, ओमुइत्ता सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करित्ता जेणेव सुव्वयाओ अज्जाओ, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणेणं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"आलित्ते णं भंते !" जहा देवाणन्दा तहा पव्वइया-जाव-अज्जा जाया गुत्तबम्भयारिणी ।

तत्पश्चात् सुव्रता आर्या के इस कथन को सुनकर वह सुभद्रा सार्थवाही हर्षित हो स्वयं अपने हाथों से आभरण, माला अलंकारों को उतारती है, उतारकर स्वयं ही पंचमुष्टिक लोच करती है, लोच करके जहाँ सुव्रता आर्या थी, वहाँ आई, वहाँ आकर सुव्रता आर्या की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा कर वंदन-नमस्कार करती है, वंदन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! यह संसार आदीप्त हो रहा है जल रहा है । अतः मुझे दीक्षित करें ।' इस प्रकार वह देवानन्दा के समान प्रव्रजित हुई—यावत्—आर्या हो गई, समितियों से समित और गुप्त ब्रह्मचारिणी हो गई ।

बाल-आसत्ताए सुभद्दाए निग्गंथिणीए विविहप्पयारेण बालकीलावणं—

२४६. तए णं सा सुभद्दा अज्जा अन्नया कयाइ बहुजणस्स चेडरूवे संमुच्छिया-जाव-अज्झोववन्ना अब्भङ्गणं च उव्वट्टणं च फासुयपाणं च अलत्तगं च कंकणाणि य अंजणं च वण्णगं च चुण्णगं च खेल्लणगाणि य खज्जल्लगाणि य खीरं च पुप्फाणि य गवेसइ, गवेसित्ता

बाल आसक्त सुभद्रा निर्ग्रन्थिनी का विविध प्रकार से बाल क्रीडन—

२४६. तत्पश्चात् वह सुभद्रा आर्या किसी एक समय गृहस्थों के बालक-बालिकाओं में सम्मोहित—यावत्—प्रेमासक्त होकर उन बालकों के शरीर पर लगाने के लिए तेल, उबटन, पीने के लिए प्रासुक जल, उन बच्चों के हाथ पैरों को रंगने के लिये रंजक द्रव्य, हाथों में पहनाने के लिये कंकण, अंजन-काजल, वर्णक-चंदन आदि, चूर्णक सुगन्धित द्रव्य, खिलौने, खाने के लिये खाजे

बहुजणस्स दारए वा दारियाओ वा कुमारे य कुमारियाओ य डिम्भए डिम्भियाओ य, अप्पेगइयाओ अब्भङ्गेइ, अप्पेगइयाओ उव्वट्टेइ, एवं फासुयपाणएणं ण्हावेइ, पाए रयइ, ओट्ठे रयइ, अच्छीणि अञ्जेइ, उसुए करेइ, तिलए करेइ, दिगिंदलए करेइ, पन्तियाओ करेइ, छिज्जाइं करेइ, वण्णएणं समालभइ, चुण्णएणं समालभइ, खेल्लणगाइं दलयइ, खज्जलगाइं दलयइ, खीर-भोयणं भुंजावेइ, पुप्फाइं ओमुयइ, पाएसु ठवेइ, जंघासु करेइ, एवं ऊरूसु उच्छङ्गे कडीए पिट्ठे उरसि खन्धे सीसे य करयलपुडेणं गहाय हलउलेमाणी-हलउलेमाणी आगायमाणी-आगायमाणी परि-हायमाणी पुत्तपिवासं च धूयपिवासं च नत्तुयपिवासं च नत्तिपिवासं पच्चणुभवमाणी विहरइ।

आदि मिष्ठान्न, दूध और अचित्त फूल आदि की गवेषणा करने लगी, गवेषणा करके गृहस्थों के लड़के लड़कियों में से, कुमार कुमारिकाओं में से और बच्चे बच्चियों (शिशुओं) में से किसी एक के तेल का मालिश करती, किसी के शरीर पर उबटन मसलती, किसी को प्रासुक जल से नहलाती, किसी के पैरों को रंगती, किसी के ओठों को रंगती, किसी की आँखों में काजल लगाती, किसी के ललाट पर तिलक लगाती, किसी के ललाट पर केशर आदि से टीकी आदि बनाती, किसी को हिंडोले में झुलाती, कभी बच्चों को एक पंक्ति में खड़ा करती, कभी अलग-अलग खड़ा करती, किसी के शरीर पर वर्णक—सुगन्धित पाउडर आदि मिलती, चूर्णक-चन्दन आदि मसलती, किसी को खिलौना देती, किसी को खाने के लिये खाजे देती, किसी को दूध पिलाती, किसी के गले से फूलों की माला उतार लेती, किसी को अपने पैरों पर बैठाती, किसी को जांघ पर बैठाती, इसी प्रकार किसी को उरु पर, किसी को गोदी में किसी को कमर पर, किसी को पीठ पर, किसी को छाती पर, किसी को कंधों पर, किसी को मस्तक पर रखती, किसी को हथेलियों में रखकर दुलराती हुई गाती हुई, उच्च स्वर में गाती हुई पुत्र की लालसा, पुत्री की लालसा, पोते और दौहित्र की लालसा और पोती—दौहित्री की लालसा का अनुभव करते हुए विचरती।

अज्जाणं सुभद्दं पइ बालकीलावणनिसेहकरणं—

२५०. तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ सुभद्दं अज्जं एवं वयासी—"अम्हे णं, देवाणुप्पिए, समणीओ निग्गंथीओ इरिया-समियाओ-जाव-गुत्तबम्भयारिणीओ। नो खलु अम्हं कप्पइ जातक-कम्मं करेत्तए। तुमं च णं, देवाणुप्पिए! बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया-जाव-अज्झोववन्ना। अब्भङ्गणं-जाव नत्तिपिवासं वा पच्चणुभवमाणी विहरसि। तं णं तुमं, देवाणुप्पिए, एयस्स ठाणस्स आलोएहि-जाव-पच्छित्तं पडिवज्जाहि।"

आर्याओं का सुभद्रा को बालक्रीडन निषेधकरण—

२५०. ऐसा करते देखकर सुव्रता आर्या ने सुभद्रा आर्या से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिये! हम लोग ईर्यासमिति आदि समितियों से समित—यावत्—गुप्तब्रह्मचारिणी निर्ग्रन्थ—श्रमणी हैं। इसलिये हम लोगों को शिशुक्रीड़ा आदि लौकिक कार्य करना नहीं कल्पता है। हे देवानुप्रिये! तुम गृहस्थों के बच्चों में सम्मोहित—यावत्—प्रेमासक्त होकर अभ्यंगन—तेल आदि का मालिश—यावत्—पौत्रादि की लालसा का अनुभव करते हुए विचर रही हो। अतएव हे देवानुप्रिये! तुम इस स्थान सावद्यकार्य की विशुद्धि के लिये आलोचना करो—यावत्—प्रायश्चित्त लो।"

तए णं सा सुभद्दा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी विहरइ। तए णं ताओ समणीओ निग्गन्थीओ सुभद्दं अज्जं हीलेन्ति, निन्दन्ति, खिंसन्ति, गरहन्ति, अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं निवारेन्ति।

सुव्रता आर्या के द्वारा इस प्रकार से निषेध किये जाने के बाद भी उस सुभद्रा आर्या ने सुव्रता आर्या के कथन का आदर नहीं किया और न उस पर कुछ ध्यान दिया, किन्तु अनादर करते हुए, उपेक्षा करते हुए विचरने लगी। तब वे निर्ग्रन्थ श्रमणियाँ सुभद्रा आर्या की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा करती हैं और बार-बार यह कार्य करने से रोकती हैं।

सुभद्दाए पुढोवासो—

२५१. तए णं तीए सुभद्दाए अज्जाए समणीहिं निग्गन्थीहिं हीलि-ज्जमाणीए-जाव-अभिक्खणं-अभिक्खणं एयमट्ठं निवारिज्जमाणीए

सुभद्रा का पृथक्वास—

२५१. तत्पश्चात् उन निर्ग्रन्थी श्रमणी सुव्रता आदि आर्याओं के द्वारा इस प्रकार से हीलना—यावत्—बारबार इस कार्य से

अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"जया णं अहं अगारवासं वसामि, तया णं अहं अप्पवसा, जप्पभिइं च णं अहं मुण्डा भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइया, तप्पभिइं च णं अहं परवसा, पुव्विं च समणीओ निग्गन्थीओ आढेन्ति, परिजाणेन्ति, इयाणिं नो आढएन्ति नो परिजाणन्ति; तं सेयं खलु मे कल्लं-जाव-जलन्ते सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तियाओ पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए," एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं-जाव-जलन्ते सुव्वयाणं अज्जाणं अन्तियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पाडिएक्कं उवस्सयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सा सुभद्दा अज्जा अज्जाहिं अणोहट्टिया अणिवारिया सच्छन्दमई बहुजणस्स चेडरूवेसु मुच्छिया-जाव-अब्भङ्गणं च जाव-नत्तिपिवासं च पच्चणुभवमाणी विहरइ।

रोके जाने पर उस सुभद्रा आर्या को यह इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प हुआ—'जब मैं आगारवास में निवास करती थी तब मैं स्वाधीन—स्वतंत्र थी, लेकिन जब से मैं मुंडित होकर गृहत्याग कर अनगारित्व में प्रव्रजित हुई हूँ तब से मैं परवश–पराधीन हो गई हूँ पहले ये श्रमणी निर्ग्रन्थिनी मेरा आदर करती थीं, मेरी ओर ध्यान देती थीं किन्तु आज–अब ये न मेरा आदर करती हैं और न प्रेम का वर्ताव करती हैं, इसलिये मुझे यही श्रेयस्कर होगा कि कल—यावत्—प्रकाशमान होने पर—सुव्रता आर्या के पास से निकलकर अलग अकेली उपाश्रय में जाकर रहूँ'—इस प्रकार विचार किया, विचार करके कल—यावत्—सूर्य प्रकाशित होने पर सुव्रता आर्या के पास से निकलकर अलग उपाश्रय में जाकर अकेली ही विचरने लगी। उसके बाद वह सुभद्रा आर्या निरंकुश, अनिवारित, स्वच्छन्दमति होकर गृहस्थों के बालकों में सम्मोहित—यावत्—अभ्यंगन आदि और—यावत् दौहित्री-लालसा को पूर्ण करती हुई विचरने लगी।

सुभद्दाए संलेहणा बहुपुत्तियादेवीरूवेण उववाओ—

२५२. तए णं सा सुभद्दा पासत्था पासत्थविहारी ओसन्ना ओसन्नविहारी कुसीला कुसीलविहारी संसत्ता संसत्तविहारी अहाछन्दा अहाछन्दविहारी बहूइं वासाइं सामण्ण-परियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं"'तीसं भत्ताइं अणसणेणं छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कन्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे बहुपुत्तियाविमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि देवदूसन्तरिया अंगुलस्स असंखेज्जभागमेत्ताए ओगाहणाए बहुपुत्तियादेवित्ताए उववन्ना।

सुभद्रा की संलेखना और बहुपुत्रिका देवी रूप में उपपात—

२५२. उसके बाद वह सुभद्रा पार्श्वस्था और पार्श्वस्थ विहारिणी अवसन्न समाचारी पालन करने में खेद खिन्न होने वाली और अवसन्न विहारिणी, कुशीला और कुशील विहारिणी, संसक्ता और संसक्त विहारिणी, यथाच्छन्दा और यथाच्छन्द विहारिणी स्वच्छन्द आचरण करने वाली हो गई और बहुत वर्षों तक उसने श्रमण पर्याय का पालन किया, पालन करने के बाद अन्त में अर्द्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा को सेवित कर, तीस भक्तों का अनशन द्वारा छेदन कर उस स्थान की–सावद्य प्रवृत्ति की आलोचना और प्रतिक्रमण नहीं करके कालमास में काल करके सौधर्म कल्प के बहुपुत्रिका विमान में उपपात सभा में देवदूष्य से आच्छादित देवशयनीय शैया में अंगुल के असंख्यातवें भाग मात्र जघन्य अवगाहनावाली बहुपुत्रिका देवी रूप उत्पन्न हुई।

तए णं सा बहुपुत्तिया देवी अहुणोववन्नमेत्ता समाणी पञ्चविहाए पज्जत्तीए"'जाव-भासा-मण-पज्जत्तीए। एवं खलु, गोयमा! बहुपुत्तियाए देवीए सा दिव्वा देविड्ढी-जाव-अभिसमन्नागया।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुई वह बहुपुत्रिकादेवी शरीर पर्याप्ति—यावत्—भाषामन रूप पांच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्त हो गई। इस प्रकार हे गौतम! बहुपुत्रिका देवी ने इन दिव्य देव ऋद्धि को—यावत्—अभिसमन्वित प्राप्त किया है।

बहुपुत्तिय त्ति णामरहस्सं—

२५३. "से केणट्ठेणं, भंते, एवं वुच्चइ, बहुपुत्तिया देवी देवी?" गोयमा! बहुपुत्तिया णं देवी जाहे जाहे सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो उवत्थाणियणं करेइ, ताहे ताहे बहवे दारए य दारियाओ य डिम्भए डिम्भियाओ य विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव सक्के देविन्दे देवराया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सक्कस्स देविन्दस्स देवरन्नो दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुइं दिव्वं देवाणुभावं उवदंसेइ।

बहुपुत्रिका इस नामकरण का रहस्य—

२५३. हे भदन्त! किस कारण से इसको बहुपुत्रिका देवी नाम से कहते हैं? 'हे गौतम! यह बहुपुत्रिका देवी जब-जब देवेन्द्र देवराज शक्र इन्द्र के पास उपस्थित होती है, तब-तब वह बहुत से लड़के और लड़कियों की बच्चे और बच्चियों की विकुर्वणा करती है, विकुर्वणा करके जहाँ देवेन्द्र देवराज शक्र है, वहाँ आती है, वहाँ आकर देवेन्द्र देवराज शक्र को दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देव–अनुभव तेज दिखलाती है।

से तेणट्ठेणं, गोयमा ! एवं वुच्चइ बहुपुत्तिया देवी देवी ॥"

इसी कारण हे गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी कहलाती है।'

बहुपुत्तिया देवीठिइकहणं भावीजम्मकहणं य—

२५४. बहुपुत्तियाणं, भन्ते ! देवीणं केवइयं कालं ठिई पन्नत्ता ?" "गोयमा चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पन्नत्ता"।

"बहुपुत्तिया णं भन्ते ! देवी ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणन्तरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा, इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे विञ्झगिरिपायमूले वेभेलसंनिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिइ।"

बहुपुत्रिका देवी का स्थिति कथन और भावी जन्मकथन—

२५४. 'हे भदन्त ! बहुपुत्रिका देवी की कितने काल की स्थिति कही है ?' 'हे गौतम ! बहुपुत्रिका देवी की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है।'

'हे भगवन् ! वह बहुपुत्रिका देवी आयुक्षय, स्थितिक्षय और भवक्षय के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगी, कहाँ उत्पन्न होगी ?'

'हे गौतम ! वह बहुपुत्रिका देवी इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में विन्ध्यगिरि के पादमूल—तलहटी में वेभेल सन्निवेश में ब्राह्मण कुल में कन्या रूप से जन्म लेगी।"

बहुपुत्तियादेवीए सोमाभवो—

२५५. तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते-जाव-बारसेहिं दिवसेहिं वीइक्कंतेहिं अयमेयारूवं नामधेज्जं करेंति—"होउ णं अम्हं इमीसे दारियाए नामधेज्जं सोमा।"

तए णं सोमा उम्मुक्कबालभावा विन्नयपरिणयमेत्ता जोव्वणगमणुपत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठ-सरीरा-जाव-भविस्सइ।

तए णं तं सोमं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं विन्नयपरिणयमेत्तं जोव्वणगमणुप्पत्तं पडिकूविएणं सुक्केणं पडिरूवएण नियगस्स भाइणेज्जस्स रट्ठकूडस्स भारियत्ताए दलयिस्सइ। सा णं तस्स भारिया भविस्सइ इट्ठा कन्ता-जाव-भंडकरण्डगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया चेलपेडा इव सुसंपरिहिया रयणकरण्डगो विय सुसारक्खिया सुसंगोविया, मा णं सीयं-जाव-विविहा रोगातंका फुसंतु।

बहुपुत्रिका देवी का सोमा भव—

२५५. तत्पश्चात् उस बालिका के माता-पिता ग्यारह दिन बीतने पर—यावत्—बारहवें दिन यह इस प्रकार का नामकरण करेंगे— 'हमारी इस बालिका का नाम 'सोमा' हो।

तत्पश्चात् वह सोमा बालभाव को छोड़ सज्ञान अवस्था के साथ यौवन भाव को प्राप्त होकर रूप, यौवन और लावण्य से उत्कृष्ट यावत्—उत्कृष्ट शरीर वाली होगी।

उसके बाद माता पिता बाल्यावस्था को पारकर यौवनावस्था में प्रविष्ट और विषय सुख से अभिज्ञ जानकर उस सोमा दारिका को यथायोग्य शुल्क दहेज और यथायोग्य प्रिय वचन के साथ अपने भानजे राष्ट्रकूट को भार्या के रूप में देंगे। अर्थात् राष्ट्रकूट के साथ उसका विवाह कर देंगे। वह सोमा उसकी इष्टा कान्ता—वल्लभा—यावत्—आभूषण के करंडक के समान, तेल के सुन्दर बर्तन के समान, सुरक्षित वस्त्रों की पेटी के समान, सुपरिगृहीत, रत्नकरंडक के समान सुरक्षित और सुसंगोपित भार्या होगी और वह ध्यान रखेगा कि उसको शीत यावत्—विविध रोग और आतंक स्पर्श न कर सकें।

दारगकारणा सोमाए मणोपीडा—

२५६. तए णं सा सोमा माहणी रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणी संवच्छरे संवच्छरे जुयलगं पयायमाणी सोलसेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयायइ।

तए णं सोमा माहणी तेहिं बहूहिं दारगेहि य दारियाहि य कुमारेहि य कुमारियाहि य डिम्भएहि य डिम्भियाहि य अप्पेगइ-एहिं उत्ताणसेज्जएहि य अप्पेगइएहिं थणियाएहिं, अप्पेगइएहिं पीहगपाएहिं अप्पेगइएहिं परंगणएहिं, अप्पेगइएहिं परक्कममाणेहिं, अप्पेगइएहिं पक्खोलणएहिं अप्पेगइएहिं थणं मग्गमाणेहिं, अप्पेगइ-एहिं खीरं मग्गमाणेहिं, अप्पेगइएहिं खेल्लणयं मग्गमाणेहिं, अप्पेगइएहिं खज्जगं मग्गमाणेहिं अप्पेगइएहिं कूरं मग्गमाणेहिं,

बत्तीस बालकों के कारण सोमा की मनोपीड़ा—

२५६. तत्पश्चात् वह सोमा माहणी राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई प्रत्येक वर्ष में संतान युगल को जन्म देकर सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों का प्रसव करेगी।

तब वह सोमा माहणी बहुत से पुत्रों और पुत्रियों, कुमारों कुमारियों बच्चों और बच्चियों में से किसी के उत्तान शयन से, किसी के चीत्कार मारकर रोने से, किसी के चलने की चेष्टा करने से, किसी के इधर-उधर लुढ़कने से, किसी के खड़े होने की चेष्टा करने से, किसी के गिरने से, किसी के स्तनपान की इच्छा करने से, किसी के दूध मांगने से, किसी के खिलौने मांगने से, किसी के खाजे मांगने से, किसी के खाना मांगने से, किसी के

एवं पाणियं मग्गमाणेहिं हसमाणेहिं रूसमाणेहिं अक्कोसमाणेहिं अक्कुस्समाणेहिं हणमाणेहिं विप्पलायमाणेहिं अणुगम्ममाणेहिं रोयमाणेहिं कंदमाणेहिं विलवमाणेहिं कूवमाणेहिं उक्कूवमाणेहिं निद्दायमाणेहिं पलंबमाणेहिं दहमाणेहिं वममाणेहिं छेरमाणेहिं मुत्तमाणेहिं मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता मइलवसणपुव्वडा-जाव-असुइबीभच्छा परमदुग्गन्धा नो संचाएइ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए।

सोमाए वंझत्तपसंसा—

२५७. तए णं तीसे सोमाए माहणीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरियमाणीए अयमेयारूवे-जाव समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं इमेहिं बहूहिं दारगेहि य-जाव-डिम्भियाहि य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं य-जाव-अप्पेगइएहिं मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं दुज्जम्मएहिं हयविप्पहयभग्गेहिं एगप्पहारपडिएहिं जेणं मुत्तपुरीसवमियसुलित्तोवलित्ता-जाव-परमदुब्भिगन्धा नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं-जाव-भुंजमाणी विहरित्तए।

तं धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-जीवियफले जाओ णं वंझाओ अवियाउरीओ जाणुकोप्परमायाओ सुरभिगंधगंधियाओ विउलाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणीओ विहरंति। अहं णं अधन्ना अपुण्णा अकयपुण्णा नो संचाएमि रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं-जाव-विहरित्तए।"

सोमाए धम्मसवणं—

२५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सुव्वयाओ नाम अज्जाओ ईरियासमियाओ-जाव-बहुपरिवाराओ पुव्वाणुपुव्विं ··· जेणेव बेभेले संनिवेसे ··· अहापडिरूवं उग्गहं-जाव-विहरंति।

तए णं तासिं सुव्वयाणं अज्जाणं एगे संघाडए बेभेले संनिवेसे उच्चनीय-जाव-अडमाणे रट्ठकूडस्स गिहं अणुपविट्ठे।

तए णं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ एज्जमाणीओ पासइ, पासित्ता हट्ठ-जाव-खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता विउलेणं असणं-जाव-साइमं पडिलाभेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अहं, अज्जाओ रट्ठकूडेणं सद्धिं विउलाइं-जाव-संवच्छरे संवच्छरे जुगलं पयामि, सोलसहिं संवच्छरेहिं बत्तीसं दारगरूवे पयाया। तए णं अहं तेहिं बहूहिं दारएहिं य-जाव-डिम्भियाहि य अप्पेगइएहिं उत्ताणसेज्जएहिं-जाव-मुत्तमाणेहिं दुज्जाएहिं-जाव-नो

पानी माँगने से, किसी के हँसने, रूठने, क्रोधित होने, लड़ने, मारने मार खाते रहने से, अंटसंट बकने, पीछे-पीछे भागने, रोने, विलाप करने, छीना-झपटी करने, सोने, नींद लेने, अंचल पकड़कर लटकने आग आदि से जलने, वमन करने, घेरने, दस्त आदि करने, पेशाब करने से, मूत्र, टट्टी, वमन से भरी हुई और मैले कपड़ों से कांतिहीन—यावत् अशुचि, बीभत्स, अत्यन्त दुर्गन्धित हो—राष्ट्रकूट के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरने में समर्थ नहीं हो सकेगी।

सोमा द्वारा वन्ध्यत्व प्रशंसा—

२५७. तत्पश्चात् उस सोमा माहणी को मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब जागरणा में जागरण करते हुए इस प्रकार का यह संकल्प यावत्—विचार उत्पन्न होगा कि—"मैं इन दुर्जात, दुर्जन्मा हतभागी और अल्पकाल में उत्पन्न होने वाले बहुत से लड़कों और—यावत्—बच्चियों में से किसी के उत्तान शयन और—यावत् पेशाब के कारण मलमूत्र और वमन से लिप्त—अतिलिप्त—लिपी—पुती—यावत्—अत्यन्त दुर्गन्धित हो राष्ट्रकूट के साथ यावत्—भोगते हुए—विचरण करने में समर्थ नहीं हो पाती हूँ अर्थात् सुख का अनुभव नहीं कर पाती हूँ।

वे मातायें धन्य हैं—यावत्—उन्होंने जीवन का फल पाया है, जो वन्ध्या हैं, जिन्हें बच्चा नहीं होता है, जो जानूकूर्पर माता हैं और सुगंधित गंध द्रव्यों से सुवासित हो, मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरण कर रही है। मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीना हूँ, अकृतपुण्या हूँ जो राष्ट्रकूट के साथ विपुल—यावत्—भोगों को भोग नहीं सकती हूँ।"

सोमा का धर्मश्रवण—

२५८. उस काल और उस समय ईर्या समिति आदि से समित—यावत्—बहुत सी शिष्याओं के परिवार वाली सुव्रता नाम की आर्या पूर्वानुपूर्वी के क्रम से विचरण करती हुई बेभेल सन्निवेश में पधारी और यथारूप अवग्रह धारण कर विचरने लगीं।

उसके बाद उन सुव्रता आर्याओं का एक संघाड़ा बेभेल सन्निवेश में उच्च-नीच यावत्—मध्यम कुलों में परिभ्रमण करता हुआ राष्ट्रकूट के गृह में प्रविष्ट हुआ।

तब उस सोमा माहणी ने आर्याओं को आते हुए देखा. देखकर हृष्ट तुष्ट हुई—यावत्—शीघ्र ही आसन से उठी, उठ कर सात-आठ पैर सामने आई, आकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके विपुल अशन—यावत्—स्वादिम से प्रतिलाभित करके इस प्रकार कहा—"हे आर्याओं! मैंने राष्ट्रकूट के साथ—विपुल—यावत्—प्रतिवर्ष संतान युगल का प्रसव किया है और सोलह वर्ष में बत्तीस बालकों को जन्म दिया है। जिससे मैं उन दुर्जात छोटी-छोटी उम्र के बहुत से पुत्र यावत् पुत्रियों के

संचाएमि……विहरित्तए। तं इच्छामि णं अहं, अज्जाओ, तुम्हं अंतिए धम्मं निसामेत्तए।"

तए णं ताओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं-जाव-केवलि-पन्नत्तं धम्मं परिकहेंति।

सोमाए पव्वज्जासंकप्पो—

२५९. तए णं सा सोमा माहणी तासिं अज्जाणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-जाव-हियया ताओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"सद्दहामि णं, अज्जाओ निग्गंथं पावयणं-जाव-अब्भुट्ठेमि णं अज्जाओ, निग्गंथं पावयणं, एवमेयं, अज्जाओ-जाव-से जहेयं तुब्भे वयह। जं नवरं, अज्जाओ, रट्ठकूडं आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतिए-जाव-मुण्डा पव्वयामि।"

"अहासुहं, देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेह।"

तए णं सा सोमा माहणी ताओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पडिविसज्जेइ।

रट्ठकूडेणं पव्वज्जानिसेहो—

२६०. तए णं सा सोमा माहणी जेणेव रट्ठकूडे, तेणेव—उवागया करयल" एवं वयासी—"एवं खलु मए, देवाणुप्पिया! अज्जाणं धम्मे निसंते। से वि य णं धम्मे इच्छिए-जाव-अभिरुइए। तए णं अहं, देवाणुप्पिया, तुब्भेहिं अब्भणुन्नाया सुव्वयाणं अज्जाणं-जाव-पव्वइत्तए।"

तए णं से रट्ठकूडे सोमं माहणिं एवं वयासी—"मा णं तुमं, देवाणुप्पिए, इयाणिं मुण्डा-भवित्ता-जाव-पव्वयाहि। भुंजाहि ताव देवाणुप्पिए, मए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं तओ पच्छा भुत्तभोई सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए मुण्डा-जाव-पव्वयाहि।"

सोमाए सावगधम्मगहणं—

२६१. तए णं सा सोमा माहणी ण्हाया-जाव-सरीरा चेडियाचक्क-वालपरिकिण्णा साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता बेभेलं संनिवेसं मज्झंमज्झेणं जेणेव सुव्वयाणं अज्जाणं उवस्सए, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ पज्जुवासइ। तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ सोमाए माहणीए विचित्तं केवलिपन्नत्तं धम्मं परिकहेंति जहा जीवा बज्झन्ति।

कारण—यावत्……राष्ट्रकूट के साथ मनोनुकूल विचरण नहीं कर पाती हूँ। इसलिये हे आर्याओ! मैं आपसे धर्म श्रवण करना चाहती हूँ।

उसके बाद उन आर्याओं ने सोमा माहणी को विविध भाँति के—यावत्—केवलि प्ररूपित धर्म का उपदेश दिया।

सोमा का प्रव्रज्या संकल्प—

२५९. तत्पश्चात् उस सोमा ब्राह्मणी ने उन आर्याओं के पास से धर्मश्रवण कर और उसे हृदय में अवधारित कर हृष्ट तुष्ट यावत्- हर्षित हृदया होकर उन आर्याओं को वंदन-नमस्कार किया, वंदना-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे आर्याओ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखती हूँ,—यावत्—सम्मान करती हूँ। हे आर्याओ! निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार है, हे आर्याओ! जो आप कहती हैं, निर्ग्रन्थ प्रवचन वैसा ही है। लेकिन हे आर्याओ! मैं राष्ट्रकूट से पूछ लूं उसके बाद आप देवानुप्रियों के पास मुंडित हो—यावत्—प्रव्रजित होऊंगी।"

'हे देवानुप्रिये! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो, लेकिन प्रतिबन्ध- प्रमाद मत करो।' आर्याओं ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् उस सोमा ब्राह्मणी ने उन आर्याओं को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके विदा किया।

राष्ट्रकूट द्वारा प्रव्रज्या निषेध—

२६०. उसके बाद वह सोमा ब्राह्मणी जहाँ राष्ट्रकूट था वहाँ आई और दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार बोली—हे देवानुप्रिय! मैंने आर्याओं के पास से धर्म श्रवण किया है। वह धर्म मैं चाहती हूँ—यावत्—मुझे रुचा है- पसंद आया है। इसलिये हे देवानुप्रिय! मैं तुमसे आज्ञा—अनुमति प्राप्त करके सुव्रता आर्या के पास—यावत्—प्रव्रजित होना चाहती हूँ।'

तदनन्तर उस राष्ट्रकूट ने सोमा ब्राह्मणी से इस प्रकार कहा -'हे देवानुप्रिये! अभी तुम मुण्डित होकर—यावत्—प्रव्रजित मत होओ किन्तु हे देवानुप्रिये! मेरे साथ विपुल भोगोप-भोगों को भोगने के पश्चात् भुक्तभोगी होकर सुव्रता आर्या के पास मुण्डित—यावत्—प्रव्रजित होना।'

सोमा का श्रावक धर्म ग्रहण—

२६१. तत्पश्चात् उस सोमा ब्राह्मणी ने स्नान किया—यावत्—शरीर को अलंकारों से अलंकृत कर चेटिकाओं के समूह से घिरी हुई होकर अपने घर से निकली, निकलकर बेभेल संनिवेश के मध्य भाग में से होती हुई जहाँ सुव्रता आर्या का उपाश्रय था, वहाँ आई, वहाँ आकर सुव्रता आर्या को वन्दन-नमस्कार किया, और पर्युपासना करने लगी। उसके बाद उन सुव्रता आर्या ने सोमा माहणी को विविध केवलि प्ररूपित धर्म का उपदेश दिया—जिस प्रकार से जीव कर्म से बद्ध होते हैं और मुक्त होते हैं।

तए णं सा सोमा माहणी सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए-जाव-दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता सुव्वयाओ अज्जाओ वंदइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

तए णं सा सोमा माहणी समणोवासिया जाया अभिगय-जाव-अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अन्नया कयाइ बेभेलाओ संनिवेसाओ पडिनिक्खमंति, बहिया जणवयविहारं विहरंति।

सोमाए पव्वज्जा—

२६२. तए णं ताओ सुव्वयाओ अज्जाओ अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्वि-जाव-विहरंति।

तए णं सा सोमा माहणी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठा ण्हाया तहेव निग्गया-जाव-वंदइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता धम्मं सोच्चा-जाव-नवरं "रट्ठकूडं आपुच्छामि, तए णं पव्वयामि।"

"अहासुहं।"

तए णं सा सोमा माहणी सुव्वयं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता सुव्वयाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव सए गिहे जेणेव रट्ठकूडे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल तहेव आपुच्छइ-जाव-पव्वइत्तए। "अहासुहं, देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेह।"

तए णं रट्ठकूडे विउलं असणं०।

तहेव-जाव-पुव्वभवे; सुभद्दा-जाव-अज्जा जाया इरियासमिया-जाव-गुत्तबम्भयारिणी।

सोमाए देवत्तं तयणंतरं सिद्धी य—

२६३. तए णं सा सोमा अज्जा सुव्वयाणं अज्जाणं अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ अहिज्जित्ता बहूइं छट्ठट्ठम-दसम-दुवालस-जाव-भावेमाणी बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदत्ता आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा सक्कस्स देविंदस्स देवरन्नो सामाणियदेवत्ताए उववज्जिहिइ।

तत्पश्चात् उस सोमा ब्राह्मणी ने सुव्रता आर्या के पास से—यावत्—बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार किया, स्वीकार करके सुव्रता आर्या को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आई थी, उसी दिशा में वापस लौट गई—चली गई।

तदनन्तर वह सोमा ब्राह्मणी श्रमणोपासिका हो गई और जीवाजीव आदि तत्वों की ज्ञाता होकर आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

सोमा की प्रव्रज्या—

२६२. तत्पश्चात् वे सुव्रता आर्या किसी समय पूर्वानुपूर्वी क्रम से विहार करती हुई—यावत्—फिर वापस वहाँ आई।

तब उस सोमा ब्राह्मणी ने यह संवाद सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो स्नान किया, पूर्ववत् घर से निकली—यावत्—वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके, धर्म श्रवण कर—यावत्—प्रतिबुद्ध हुई इतना विशेष है कि राष्ट्रकूट से आज्ञा—अनुमति लूंगी, उसके बाद दीक्षा लेना चाहती हूँ।'

"जिस प्रकार सुख हो, वैसा करो।" सुव्रता आर्या ने कहा।

उसके बाद उस सोमा ब्राह्मणी ने सुव्रता आर्या को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके सुव्रता आर्या के समीप से निकली, निकलकर जहाँ अपना घर था, जहाँ राष्ट्रकूट था, वहाँ आई, आकर दोनों हाथ जोड़ राष्ट्रकूट से पूछा—मैंने धर्म सुना है—यावत्—प्रव्रजित होना चाहती हूँ। 'जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रमाद मत करो'—राष्ट्रकूट ने उत्तर दिया।

तत्पश्चात् राष्ट्रकूट ने विपुल परिमाण में अशन आदि चार प्रकार का भोजन बनवाया और मित्रों आदि को भोजन कराया आदि पूर्व वर्णन पहले के समान जानना।

जिस प्रकार से पूर्वभव में सुभद्रा आर्या हुई थी, उसी प्रकार यह भी ईर्यासमिति आदि समितियों से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारिणी आर्या हुई।

सोमा का देवत्व और तदनन्तर सिद्धि—

२६३. उसके बाद उस सोमा आर्या ने सुव्रता आर्या के पास सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, द्वादश आदि तपः कर्म से आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन किया, पालन करके मासिक संलेखना से साठ भक्तों का अनशन से छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, समाधि को प्राप्त कर कालमास में काल करके देवेन्द्र देवराज शक्र के सामानिक देवरूप में उत्पन्न हुई।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता। तत्थ णं सोमस्स वि देवस्स दो सागरोवमाइं ठिई पन्नत्ता।

'से णं, भंते, सोमे देवे तओ देवलोगाओ आउक्खएणं-जाव-चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे-जाव-अन्तं काहिहि।"

—पुप्फियाओ अ० ४

वहाँ कितने ही देवों की दो सागरोपम की स्थिति कही गई है। उस देवलोक में सोमदेव की भी दो सागरोपम की स्थिति है।

गौतम स्वामी ने पूछा—'हे भदन्त ! वह सोमदेव उस देवलोक से आयुक्षय होने—यावत्—च्यवित होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?'

'हे गौतम ! महाविदेह वर्ष में उत्पन्न होगा—यावत्—दुःखों का अन्त करेगा।' भगवान ने उत्तर दिया।

८. महावीरतित्थे नंदाईणं कहाणगाणि—

८. महावीर तीर्थ में नन्दादिक के कथानक—

संगहणी गाहादुगं—

२६४. नंदा तह, नंदवई, नंदुत्तर, नंदिसेणिया चेव।
मरुता, सुमरुता महमरुता मरुदेवा य अट्ठमा ॥१॥
भद्दा य, सुभद्दा य, सुजाया, सुमणाइया।
भूयदिण्णा य बोधव्वा सेणियभज्जाणं नामाइं ॥२॥

संग्रहणी गाथाद्विक—

२६४. ……१ नन्दा, २ नन्दवती, ३ नन्दोत्तरा, ४ नन्दश्रेणिका, ५ मरुता, ६ सुमरुता, ७ महामरुता, ८ मरुदेवा, ९ भद्रा, १० सुभद्रा, ११ सुजाता, १२ सुमनायिका और १३ भूतदत्ता—ये सब श्रेणिक राजा की भार्याओं—रानियों के नाम जानने चाहिये।

सेणियरण्णो नंदाइदेवीणं समणित्तं सिद्धी य—

२६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया—वण्णओ।

तस्स णं सेणियस्स रण्णो नंदा नाम देवी होत्था—वण्णओ। सामी समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं सा नंदा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा हट्ठतुट्ठा कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता जाणं दुरुहइ, जहा पउमावई-जाव-एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता वीसं वासाइं परियाओ-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

एवं तेरस वि देवीओ नंदागमेण नेयव्वाओ।

—अंत० व० ७, अ० १–१३

श्रेणिक राजा की नन्दा आदि देवियों का श्रमणित्व और सिद्धि—

२६५. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। गुणशिलक नाम का उद्यान था। श्रेणिक राजा था वर्णन करना चाहिये।

उस श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की रानी थी—वर्णन करना चाहिये। स्वामी महावीर प्रभु पधारे। परिषदा वंदनार्थ निकली।

तब वह नन्दा महारानी इस संवाद को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हुई और कौटुम्बिक पुरुषों—सेवकों—को बुलाया, बुलाकर यान—रथ पर आरूढ़ हुई—बैठी, पद्मावती की तरह दीक्षा ली—यावत्—ग्यारह अंगों का अध्ययन कर बीस वर्ष तक संयम पर्याय का पालन किया—यावत्—सिद्ध हुई यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुई।

इसी प्रकार से, तेरहों रानियों के अध्ययन नन्दा के गम—अध्ययन के समान जानने चाहिये।

९. महावीरतित्थे कालीआइसमणीणं कहाणगाणि—

संगहणी गाहा—

२६६. काली, सुकाली, महाकाली, कण्हा, सुकण्हा, महाकण्हा।
वीरकण्हा बोधव्वा, रामकण्हा तहेव य।
पिउसेणकण्हा नवमी, दसमी महसेणकण्हा य ॥१॥

कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली—

२६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था। पुण्णभद्दे चेइए।

तत्थ णं चंपाए नयरीए कोणिए राया—वण्णओ।

तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया, काली नामं देवी होत्था—वण्णओ।

कालीए पव्वज्जा रयणावली तवो य—

२६८. जहा नंदा-जाव-सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ। बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा काली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं तवं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।

अहासुहं देवाणुप्पिए! मा पडिबंधं करेहि।

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणी रयणावलिं[1] तवं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं सा काली अज्जा रयणावली-तवोकम्मं पंचहिं संवच्छरेहिं दोहि य मासेहिं अट्ठावीसाए य दिवसेहिं अहासुत्तं-जाव-आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-जाव-अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा काली अज्जा तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्ग-

१. रयणावलिआइतवविसेसाणं वित्थरो खंधन्ते दट्ठव्वो।

९. महावीर तीर्थ में काली आदि श्रमणियों के कथानक—

संग्रहणी गाथा—

२६६. ……१ काली, २ सुकाली, ३ महाकाली, ४ कृष्णा, ५ सुकृष्णा और ६ महाकृष्णा, ७ वीरकृष्णा, ८ रामकृष्णा, ९ पितृसेनकृष्णा और १० महासेनकृष्णा ये दस अध्ययन जानना चाहिये।

कौणिक राजा की विमाता काली—

२६७. उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था।

वहाँ चम्पानगरी में कौणिक नाम का राजा था—वर्णन करो।

उस चम्पानगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कौणिक राजा की विमाता (छोटी माँ) काली नाम की देवी– रानी थी– वर्णन करो।

काली की प्रव्रज्या और रत्नावली तप—

२६८. नन्दा देवी के समान ही काली रानी ने दीक्षा ली – यावत् – सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन किया। बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्ट, दशम, बारह मासखमण, अर्धमासखमण आदि विविध प्रकार के तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करती है।

तत्पश्चात् वह काली आर्या अन्य किसी एक दिन जहाँ चंदना आर्या विराज रही थीं, वहाँ आई, आकर उसने इस प्रकार कहा "हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त करके रत्नावली तप स्वीकार कर विचरण करना चाहती हूँ।"

'हे देवानुप्रिये! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।'

तदनन्तर वह काली आर्या चन्दना आर्या की आज्ञा प्राप्त हो जाने पर रत्नावली तप को अंगीकार करके विचरने लगी।

तत्पश्चात् उस काली आर्या ने पाँच वर्ष, दो मास और अट्ठाईस दिन में सूत्रानुसार रत्नावली तपोकर्म की आराधना की—यावत्—करके जहाँ आर्या चन्दना आर्या थी, वहाँ आई, वहाँ आकर आर्या चन्दना आर्या को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके बहुत से चतुर्थ—यावत्—अनशन तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

तत्पश्चात् (तपस्या के बाद) वह काली आर्या उस उदार-

१ रत्नावली आदि तप की विशेष विधि का वर्णन स्कन्ध के अन्त में पृष्ठ १२३ पर देखें।

हिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धण्णेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं उदारेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्का लुक्खा निम्मंसा अट्ठिचम्मावणद्धा किडकिडियाभूया किसा धमणिसंतया जाया यावि होत्था जीवंजीवेण गच्छइ-जाव-हुहुयहुयासणे इव भासरासिपलिच्छण्णा तवेणं, तेएणं, तवतेयसिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी-उवसोहेमाणी चिट्ठइ।

प्रधान विपुल, श्रेष्ठ, गम्भीर विधिसम्मत, सम्यक् प्रकार से स्वीकार किये गये, कल्याणरूप, शिवरूप, धन्य मंगलरूप, सश्रीक, उदग्र, उदार, उत्तम, मुख्य और महाप्रभावक तपोकर्म से शुष्क, रूक्ष, मांसरहित, चर्म से आवृत हड्डियों वाली, चलने पर किट-किटाहट की ध्वनि करने वाली कृश और लुहार की धोंकनी जैसी दिखने लगी, आत्मशक्ति के सहारे चलती थी—यावत्—भस्म से आच्छादित अग्नि के समान तप से, तेज से और तपस्तेजश्री (दीप्ति) से अत्यधिक शोभायमान हो रही थी।

कालीए संलेखणा सिद्धी य—

२६९. तए णं तीसे कालीए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले अयमज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था, जहा खंदयस्स चिंता-जाव-अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छित्ता अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णायाए समाणीए संलेहणा-झूसणा-झूसियाए भत्तपाण-पडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अज्जचंदणं अज्जं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जो! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा-झूसणा-झूसियाए भत्तपाण-पडियाइक्खियाए कालं अणवकंखमाणीए विहरित्तए।"

काली की संलेखना और सिद्धि—

२६९. तत्पश्चात् उस काली आर्या को अन्य किसी एक दिन मध्यरात्रि के समय यह आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ, 'स्कन्दक के समान चिन्तन हुआ कि जब तक शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार—पुरुषार्थ, पराक्रम है तब तक मुझे यही योग्य है कि रात्रि के प्रभातकाल रूप होने पर कल—यावत्—सूर्योदय होने पर और सहस्ररश्मि दिनकर सूर्य को जाज्वल्यमान तेज से प्रकाशित होने पर आर्या चंदना आर्या से पूछकर, आर्या चंदना आर्या की आज्ञा प्राप्त होने पर प्रीतिपूर्वक संलेखना का सेवन करती हुई भक्तपान का त्याग करके, मृत्यु की आकांक्षा न करती हुई विचरण करूँ, ऐसा विचार किया, विचार करके कल सूर्योदय होने पर जहाँ आर्या चंदना आर्या विराज रही थी, वहाँ आई, वहाँ आकर आर्या चंदना आर्या को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उनसे इस प्रकार कहा—'हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त करके प्रीतिमना होकर संलेखना का सेवन करते हुए, भक्तपान का प्रत्याख्यान करके और काल-मरण की आकांक्षा न रखते हुए विचरण करना चाहती हूँ।'

अहासुहं०।

आर्या चन्दना ने कहा—'हे देवानुप्रिये! जैसे सुख हो वैसा करो।'

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अब्भणुण्णाया समाणा संलेहणा-झूसणा-झूसिया-जाव-विहरइ।

तत्पश्चात् वह काली आर्या चंदना आर्या की आज्ञा प्राप्त होने पर संलेखना झूसणा को सेवन करती हुई—यावत्—विचरने लगी।

तए णं सा काली अज्जा अज्जचंदणाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता बहुपडिपुण्णाइं अट्ठ संवच्छराइं सामण्ण-परियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे-जाव-चरिमुस्सासेहिं सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

—अंत० व० ८, अ० १

तदनन्तर वह काली आर्या चंदना आर्या के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन कर पूरे आठ वर्ष तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को झूसित कर, साठभक्त-पान का अनशन द्वारा त्याग कर जिस हेतु के लिये नाग्न्यभाव—अपरिग्रहत्व अंगीकार किया था, यावत्—अंतिम श्वासोच्छ्वास तक पूर्ण कर सिद्ध हुई—यावत्—समस्त दुःखों से मुक्त हो गई।

सुकालीए कणगावलितवो सिद्धी य—

२७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी।

पुण्णभद्दे चेइए। कोणिए राया।

सुकाली का कनकावली तप और सिद्धि—

२७०. उस काल, उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी।

पूर्णभद्र नामक चैत्य था। कोणिक राजा था।

तत्थ णं सेणियस्स रण्णो भज्जा, कोणियस्स रण्णो चुल्लमाउया, सुकाली नामं देवी होत्था। जहा काली तहा सुकाली वि निक्खंता-जाव-बहूहिं-जाव-तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तए णं सा सुकाली अज्जा अण्णया कयाइ जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं अज्जाओ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी कणगावली-तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए। नव वासा परियाओ-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

—अंत० व ८, अ० २

महाकालीए खुड्डागसीहनिक्कीलियतवो सिद्धी य—

२७१. एवं—महाकाली वि, नवरं—खुड्डागं सीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। सेसं तहेव-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

—अंत० व० ८, अ० ३

कण्हाए महासीहनिक्कीलियतवो सिद्धी य

२७२. एवं—कण्हा वि, नवरं—महासीहनिक्कीलियं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। सेसं तहेव-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

—अंत० व० ८, अ० ४

सुकण्हाए भिक्खुपडिमा सिद्धी य—

२७३. एवं—सुकण्हा वि, नवरं—सत्तसत्तमियं भिक्खुपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। एवं खलु दसदसमियं भिक्खुपडिमं एक्केणं राइंदियसएणं अद्धछट्ठेहि य भिक्खासएहिं अहासुत्तं-जाव-आराहेइ, आराहेत्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

२७४. तए णं सा सुकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं तवोकम्मेणं-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा। —अंत० व० ८, अ० ५

महाकण्हाए खुड्डागसव्वओभद्दपडिमा सिद्धी य—

२७५. एवं महाकण्हा वि, नवरं—खुड्डागं सव्वओभद्दं पडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। सेसं तहेव-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा। —अंत० व० ८, अ० ६

वीरकण्हाए महालयसव्वओभद्दपडिमा सिद्धी य—

२७६. एवं—वीरकण्हा वि, नवरं—महालयं सव्वओभद्दं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, सेसं तहेव-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

—अंत० व० ८, अ० ७

वहाँ श्रेणिक राजा की भार्या, कोणिक राजा की विमाता सुकाली नाम की रानी थी। काली की तरह सुकाली भी दीक्षित हुई—यावत्—बहुत से उपवास—यावत्—तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगी।

तत्पश्चात् वह सुकाली आर्या अन्य किसी एक दिन जहाँ आर्या चंदना विराज रही थीं, वहाँ आई, वहाँ आकर उसने इस प्रकार कहा—"हे आर्ये! आपकी आज्ञा प्राप्त कर कनकावली-तपोकर्म को अंगीकार करके विचरण करना चाहती हूं।" नौ वर्ष तक संयम-पर्याय का पालन कर—यावत्—सिद्ध हुई यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया।

महाकाली का क्षुद्र सिंहनिष्क्रीडित तप और सिद्धि—

२७१. इसी प्रकार से महाकाली का भी वर्णन करना चाहिये, विशेष यह कि क्षुद्र (लघु) सिंह निष्क्रीडित तपोकर्म को अंगीकार करके विचरने लगी। शेष कथन पूर्ववत्—यावत्—सिद्ध हुई यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया।

कृष्णा का महासिंह निष्क्रीडित तप और सिद्धि—

२७२. इसी प्रकार से कृष्णा रानी का वर्णन करना चाहिये, विशेष इतना है कि महासिंह निष्क्रीडित तपोकर्म को स्वीकार करके विचरने लगी। शेष वर्णन पूर्ववत् यावत् सिद्ध हुई यावत् सर्व दुःखों का नाश किया।

सुकृष्णा द्वारा भिक्षु प्रतिमा और सिद्धि—

२७३. इसी प्रकार से सुकृष्णा का भी वर्णन करना चाहिये, विशेष यह है कि सात—सप्तमिका भिक्षु प्रतिमा ग्रहण करके विचरने लगी। इसी प्रकार दश दशमिका भिक्षु प्रतिमा की एक सौ रात्रि-दिवसों में पाँच सौ पचास भिक्षा दत्तियों से सूत्रानुसार—यावत्—आराधना की, आराधना करके बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम, दशम, बारह, मासखमण, अर्धमासखमण आदि विविध तपःकर्म से आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगी।

२७४. तत्पश्चात् वह सुकृष्णा आर्या उस उदार श्रेष्ठ तपःकर्म से—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया।

महाकृष्णा द्वारा क्षुल्लक सर्वतोभद्र प्रतिमा और सिद्धि—

२७५. इसी प्रकार से महाकृष्णा का भी वर्णन करना चाहिये, लेकिन इतना विशेष है लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा को अंगीकार करके विचरने लगी। शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुई।

वीरकृष्णा द्वारा महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा और सिद्धि—

२७६. इसी प्रकार वीरकृष्णा का वर्णन जानना चाहिये किन्तु विशेषता यह है कि महत्सर्वतोभद्र प्रतिमा को अंगीकार करके विचरने लगी, शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया।

रामकण्हाए भद्दोत्तरपडिमा सिद्धी य—

२७७. एवं—रामकण्हा वि, नवरं भद्दोत्तरपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ, सेसं-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा ।

—अंत० व० ८, अ० ८

रामकृष्णा द्वारा भद्रोत्तर प्रतिमा और सिद्धि—

२७७. इसी प्रकार रामकृष्णा का अध्ययन जानना चाहिये, किन्तु यह विशेष है कि भद्रोत्तर प्रतिमा को अंगीकार करके विचरने लगी. शेष वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिये—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया ।

पिउसेणकण्हाए मुत्तावलितवो सिद्धी य—

२७८. एवं—पिउसेणकण्हा वि, नवरं—मुत्तावलिं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ, सेसं-जाव-सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा ।

—अंत० व० ८, अ० ९

पितृसेनकृष्णा द्वारा मुक्तावली तप और सिद्धि—

२७८. इसी प्रकार पितृसेनकृष्णा का अध्ययन भी समझना चाहिये, किन्तु यह विशेष है—मुक्तावली तपःकर्म अंगीकार करके विचरने लगी. शेष वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिये—यावत्—सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया ।

महासेणकण्हाए आयंबिलवड्ढमाणतवो सिद्धी य—

२७९. एवं—महासेणकण्हा वि, नवरं—आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा आयंबिलवड्ढमाणं तवोकम्मं चोद्दसहिं वासेहिं तिहि य मासेहिं वीसहि य अहोरत्तेहिं अहासुत्तं-जाव-आराहेत्ता जेणेव अज्जचंदणा अज्जा तेणेव उवागया, उवागच्छित्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विविहेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा तेणं ओरालेणं-जाव-तवेणं तेएणं तवतेय-सिरीए अईव-अईव उवसोहेमाणी चिट्ठइ ।

तए णं तीसे महासेणकण्हाए अज्जाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले चिंता जहा खंदयस्स-जाव-अज्जचंदणं अज्जं आपुच्छइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अब्भणुण्णाया समाणी संलेहणा-झूसणा-झूसिया भत्तपाण-पडियाइक्खिया कालं अणवकंखमाणी विहरइ ।

तए णं सा महासेणकण्हा अज्जा अज्जचंदणाए अज्जाए अंतिए सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जित्ता, बहुपडिपुण्णाइं सत्तरस वासाइं परियायं पालइत्ता, मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे-जाव-तमट्ठं आराहेइ, आराहेत्ता चरिमउस्सासनिस्सासेहिं सिद्धा-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा ।

महासेनकृष्णा द्वारा आयंबिल वर्धमान तप और सिद्धि—

२७९. इसी प्रकार महासेन कृष्णा का भी अध्ययन जानना चाहिये किन्तु इतनी विशेषता है कि आयंबिल वर्धमान तपःकर्म को अंगीकार करके विचरने लगी ।

तत्पश्चात् उस महासेन कृष्णा आर्या ने चौदह वर्ष, तीन मास और बीस अहोरात्रि—दिन-रात तक सूत्रानुसार आराधना की—यावत्—आराधना करके जहाँ आर्या चन्दना थीं, वहाँ आई, वहाँ आकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके बहुत से चार, छह, आठ, दस, बारह, मास, अर्धमास की विविध तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करती हुई विचरने लगीं ।

तदनन्तर वे महासेन कृष्णा आर्या उस प्रधान—श्रेष्ठ—यावत्—तप, तेज, तप—तेजोश्री से अतीव अतीव शोभायमान होकर रहने लगीं ।

तत्पश्चात् उन महासेन कृष्णा आर्या को अन्य किसी एक दिन मध्यरात्रि में स्कन्दक के समान चिन्तन उत्पन्न हुआ—यावत्—आर्या चन्दना से पूछा ।

तत्पश्चात् वे महासेन कृष्णा आर्या आर्या चन्दना से आज्ञा प्राप्त करके संलेखना द्वारा प्रीतिपूर्वक आत्मा की साधना करके भक्तपान का प्रत्याख्यान—त्याग करके काल की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगी ।

तत्पश्चात् वे महासेन कृष्णा आर्या—आर्या चन्दना के पास सामायिक आदि ग्यारह अंगों का अध्ययन करके, परिपूर्ण सत्तरह वर्ष तक चारित्र संयम पर्याय का पालन करके, मासिक संलेखना द्वारा आत्म साधना करके, अनशन द्वारा साठ भोजन-पान का त्याग करके जिस प्रयोजन के लिये नाग्न्यभाव—संयम अंगीकार किया था—यावत्—उसकी आराधना की, आराधना करके चरम—अंतिम श्वास-निःश्वास से सिद्ध हुई—यावत्—सर्व दुःखों का क्षय किया ।

संग्रहणी गाहा—

२८०. अट्ठ य वासा आई, एक्कोत्तरयाए-जाव-सत्तरस ।
एसो खलु परियाओ, सेणियभज्जाणं नायव्वो ॥१॥

—अंत० व० ८, अ० १

संग्रहणी गाथा—

२८०. श्रेणिक राजा की भार्याओं में से आदि की—काली की आठ वर्ष की—दीक्षा पर्याय जानें और शेष की एक-एक वर्ष बढ़ाते हुए—यावत्—अंतिम की सत्तरह वर्ष दीक्षा पर्याय जानना चाहिये ।

१०. महावीरतित्थे जयन्तीकहाणयं

कोसंबीए उदयणादीणं धम्मसवणं—

२८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नाम नगरी होत्था—वण्णओ। चंदोवतरणे चेइए—वण्णओ।

तत्थ णं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो पोत्ते, सयाणीयस्स रण्णो पुत्ते, चेडगस्स रण्णो नत्तुए, मिगावतीए देवीए अत्तए, जयंतीए समणोवासियाए भत्तिज्जए उदयणे नामं राया होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो सुण्हा, सयाणीयस्स रण्णो भज्जा, चेडगस्स रण्णो धूया, उदयणस्स रण्णो माया जयंतीए समणोवासियाए भाउज्जा मिगावती नामं देवी होत्था वण्णओ—सुकुमालपाणिपाया-जाव सुरूवा समणोवासिया अभिगय-जीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तत्थ णं कोसंबीए नगरीए सहस्साणीयस्स रण्णो धूया, सयाणीयस्स रण्णो भगिणी, उदयणस्स रण्णो पिउच्छा, मिगावतीए देवीए नणंदा, वेसालियसावयाणं अरहंताणं पुव्वसेज्जातरी जयंती नामं समणोवासिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया-जाव-सुरूवा अभिगय-जीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

२८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

तए णं से उदयणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कोसंबिं नगरिं सब्भिंतर-बाहिरियं आसित्त-सम्मज्जिओवलित्तं करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।" एवं जहा कूणिओ तहेव सव्वं-जाव-पज्जुवासइ।

२८३. तए णं सा जयंती समणोवासिया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणी हट्ठतुट्ठा जेणेव मिगावती देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मिगावतिं देविं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए! समणे भगवं महावीरे आदिगरे-जाव-सव्वण्णू सव्वदरिसी आगासगएणं चक्केणं-जाव-सुहंसुहेणं विहरमाणे चंदोवतरणे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे

१०. महावीर तीर्थ में जयन्ती का कथानक

कौशाम्बी नगरी में उदयनादिक का धर्म-श्रवण—

२८१. उस काल और उस समय में कौशाम्बी नामक नगरी थी—वर्णन करो। चन्द्रावतरण चैत्य था—वर्णन करो।

उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा का पौत्र, शतानीक राजा का पुत्र, चेटक राजा का दौहित्र, मृगावती देवी का आत्मज (पुत्र), जयन्ती श्रमणोपासिका का भ्रातृज—भतीजा उदयन नामक राजा था—वर्णन करो।

उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा की पुत्रवधू, शतानीक राजा की पत्नी, चेटक राजा की पुत्री, उदयन राजा की माता, जयन्ती श्रमणोपासिका की भौजाई मृगावती नाम की देवी रानी थी, वर्णन करो, जो सुकुमाल हाथ पैर वाली—यावत्—सुरूप, श्रमणोपासिका, जीवाजीव आदि तत्वों की ज्ञाता थी—यावत्—यथाविधि ग्रहण किये गये तप-विधान से आत्मा को भावित करती हुई विचरती थी।

उस कौशाम्बी नगरी में सहस्रानीक राजा की पुत्री, शतानीक राजा की भगिनी-बहिन, उदयन राजा की बुआ (पिता की बहिन) मृगावती रानी की ननद और श्रमण भगवान महावीर के श्रमणों की प्रथम शैय्यातर (वसतिका देने वाली) जयन्ती नाम की श्रमणोपासिका—श्राविका—थी—जो सुकुमाल हाथ पैर वाली—यावत्—सुन्दर रूप वाली और जीवाजीव आदि तत्त्वों की ज्ञाता—यावत्—यथाविधि तपोकर्म से आत्मा को भावित करती हुई विचरण करती थी।

२८२. उस काल और उस समय में भगवान महावीर स्वामी का पदार्पण हुआ—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

तत्पश्चात् वह उदयन राजा इस संवाद को सुनकर हर्षित एवं संतुष्ट हुआ और कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र ही कौशाम्बी नगरी के बाहर—भीतर पानी का छिड़काव कर, बुहारकर साफ-स्वच्छ करो और करवाओ, स्वच्छ करके और कराके आज्ञानुसार कार्यसम्पन्न होने की सूचना दो।' इत्यादि कोणिक राजा की तरह समग्र कथन करना—यावत् वह पर्युपासना करने लगा।

२८३. तदनन्तर इस वृत्तान्त को सुनकर वह जयन्ती श्रमणोपासिका हृष्ट-तुष्ट होती हुई जहां मृगावती रानी थी, वहाँ आई, वहाँ आकर मृगावती देवी से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तीर्थ की आदि करने वाले—यावत्—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर आकाश में रहे हुए चक्र द्वारा—यावत्—सुखपूर्वक विहार करते हुए चन्द्रावतरण चैत्य में यथायोग्य अवग्रह को ग्रहण करके

विहरइ। तं महप्फलं खलु देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए-जाव-एयं णे इहभवे य, परभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ।"

तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जयंतीए समणोवासियाए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

तए णं सा मिगावती देवी कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइय-जाव-धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा मिगावतीए देवीए एवं वुत्ता समाणा धम्मियं जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेंति, उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं—जाव—चेडियाचक्कवालवरिसधर थेरकंचुइज्ज-महत्तरगवंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ निग्गच्छइ. निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा।

तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं धम्मियं जाणप्पवरं दुरूढा समाणी नियगपरियालसंपरिवुडा जहा उसभदत्तो-जाव-धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ।

तए णं सा मिगावती देवी जयंतीए समणोवासियाए सद्धिं बहूहिं जहा देवाणंदा-जाव वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उदयणं रायं पुरओ कट्टु ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणी नमंसमाणी अभिमुहा विणएणं पंजलिकडा पज्जुवासइ।

२८४. तए णं समणे भगवं महावीरे उदयणस्स रण्णो मिगावतीए देवीए जयंतीए समणोवासियाए तीसे य महतिमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया. उदयणे पडिगए. मिगावती वि पडिगया।

और संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करते है। हे देवानुप्रिये ! इस प्रकार के अर्हन्त भगवन्तों के नाम और गोत्र का श्रवण करना ही महाफल देने वाला है—यावत्—इहभव और परभव में –हितकारी, सुखकारी, शांतिकारी, निःश्रेयस एवं शुभ अनुबंध के लिये श्रेयस्कर होगा।

तत्पश्चात् उस मृगावती रानी ने जयन्ती श्रमणोपासिका के इस संवाद को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त वाली, प्रीतिमना, परम सौमनस, हर्षातिरेक से विकासमान हृदयवाली होती हुई दोनों हाथों को जोड़ मस्तक पर आवर्त करके अंजलिपूर्वक जयन्ती श्रमणोपासिका के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तदनन्तर उस मृगावती देवी ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! अतिशीघ्र ही तुम वेगवान अश्वों से युक्त—यावत्— धार्मिक श्रेष्ठ यान जोतकर लाओ और लाकर इसकी मुझे सूचना दो।

इसके बाद कौटुम्बिक पुरुष मृगावती रानी की इस आज्ञा को सुनकर धार्मिक श्रेष्ठ यान-रथ को जोड़कर लाये. लाकर उस आज्ञा को वापस लौटाया अर्थात् आज्ञानुसार रथ लाने की सूचना दी।

तत्पश्चात् उस मृगावती रानी ने जयन्ती श्रमणोपासिका के साथ स्नान किया, बलिकर्म किया—पूजा की—यावत् अल्प किन्तु महा मूल्यवान वस्त्राभूषणों से शरीर को अलंकृत करके बहुत सी कुब्जा दासियों—यावत्—चेटिकाओं, अन्तःपुर रक्षकों, वृद्ध कंचुकियों, महत्तरकों के समूह से परिवेष्टित होकर वह अन्तःपुर से बाहर निकली, निकलकर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, जहाँ धार्मिक यान प्रवर खड़ा था, वहाँ आई, वहाँ आकर उस धार्मिक श्रेष्ठ यान रथ पर बैठी।

तत्पश्चात् मृगावती देवी जयन्ती श्रमणोपासिका के साथ धार्मिक श्रेष्ठ यान पर आरूढ़ हुई वह मृगावती रानी अपने परिवार से युक्त होकर—यावत्—ऋषभदत्त की तरह उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ से नीचे उतरी।

तदनन्तर जयन्ती श्रमणोपासिका के साथ उस मृगावती रानी ने बहुत सी कुब्जा आदि दासियों सहित देवानन्दा की तरह—यावत् —वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके वहीं खड़ी रहकर देखती हुई, नमस्कार करती हुई, सामने विनयपूर्वक अंजलिपूर्वक पर्युपासना करती है।

२८४. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उदयन राजा को, मृगावती देवी को, जयन्ती श्रमणोपासिका को और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश दिया—यावत्—परिषदा वापस लौटी, उदयन राजा और मृगावती भी वापस लौटी। (जयन्ती ने भगवान से जीव के गुरुत्व-लघुत्व, परित्त-संसारित्व, दीर्घ-संसारित्व, सुप्त-जागृत, बलित्व-दुर्बलत्व आदि अनेक प्रश्न किये जिनका समाधान प्राप्त कर वह प्रतिबुद्ध हुई।)

तए णं सा जयंती समणोवासिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा सेसं जहा देवाणंदा तहेव पव्वइया-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणा।

सेवं भंते ! सेवं भंते त्ति।

—भग० स० १२, उ० २

तत्पश्चात् वह जयन्ती श्रमणोपासिका श्रमण भगवान महावीर से इस बात को सुनकर और हृदय में अवधारित कर हर्षित एवं सन्तुष्ट हुई, शेष सभी कथन देवानन्दा की तरह जानना चाहिए, उसी प्रकार से प्रव्रजित हुई—यावत्—सर्व दुःखों से मुक्त हुई।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है।

परिशिष्ट १ : तपोविधि

[काली आदि श्रमणियों द्वारा आराधित रत्नावली आदि तपश्चरण की आगम विहित विधि निम्न प्रकार है]

रत्नावली तप –

'रत्नावली तप' की विधि इस प्रकार है—

गले में पहनने के हार-विशेष को रत्नावली कहते हैं। हार की बनावट के आधार पर उतार-चढ़ाव होने के कारण इस तप का नाम रत्नावली पड़ा है। वह हार ऊपर दोनों ओर पतला होता है। थोड़ा आगे बढ़ने पर दोनों तरफ फूल होते हैं। नीचे मध्य भाग में यह हार बड़ी-बड़ी मणियों से संयुक्त पान के आकार वाला होता है। इस तप में—

सर्वप्रथम एक उपवास, एक बेला और एक तेला करके फिर एक साथ आठ बेले किये जाते हैं। इसके बाद उपवास, बेले-तेले आदि करते हुए सोलह उपवास तक चढ़ा जाता है। फिर एक साथ चौंतीस बेले करने चाहिए।[1] चौंतीस बेले के बाद सोलह उपवास[2] पन्द्रह उपवास यावत् क्रमशः घटाते हुए एक उपवास तक करने होते हैं। तत्पश्चात् एक साथ आठ बेले, और अन्त में एक तेला, एक बेला, और एक उपवास करके साधक रत्नावली तप को पूर्ण करता है।

इस तप की चार परिपाटी होती हैं। पहली परिपाटी में पारणे के दिन दूध, दही, आदि विगयों का त्याग नहीं होता। साधक इच्छानुसार इसका प्रयोग कर सकता है। दूसरी परिपाटी में कोई भी विगय नहीं लिया जाता। तीसरी परिपाटी में निर्लेप (जिसका लेप भी न लगे) आहार लिया जाता है। चौथी परिपाटी में आयंबिल[3] करना होता है। इसकी एक परिपाटी में पन्द्रह महीने और बाईस दिन अर्थात् ४७२ दिन लगते हैं। उनमें अठासी पारणे होते हैं और ३८४ दिन का तप होता है। चारों परिपाटियां ५ वर्ष, २ मास और २८ दिन में पूर्ण होती हैं।

कनकावली तप—

इस तप की विधि इस प्रकार है—

यह तप लगभग रत्नावली तप के समान ही है। रत्नावली तप में दोनों फूलों की जगह आठ-आठ बेले और मध्य में पान के आकार के चौंतीस बेले किये जाते हैं और कनकावली तप में आठ-आठ एवं चौंतीस तेले करने होते हैं। इसकी एक परिपाटी में सत्रह मास बारह दिन लगते हैं। उसमें अठासी पारणे और ४३४ दिन का तप होता है। चारों परिपाटियाँ पांच वर्ष, नौ मास और अठारह दिन में पूर्ण होती हैं। पारणे की विधि पूर्ववत् ही है।

---

१ चौंतीस बेले करने से हार का मध्य भाग मोटा बन जाता है।

२ सोलह का थोकड़ा।

३ किसी एक प्रकार का भुंजा हुआ धान्य पानी के साथ खाना आयंबिल कहलाता है।

मुक्तावली तप—

इस तप की विधि इस प्रकार है—

इस तप में एक उपवास से पन्द्रह उपवास तक किये जाते हैं, बीच-बीच में एक-एक उपवास होता है तथा मध्य में सोलह उपवास करके फिर क्रमशः उतरते हुए एक उपवास तक किया जाता है, जैसे—एक उपवास, उसके पारणे पर बेला, बेले के पारणे पर उपवास, फिर तेला एवं उपवास, इस प्रकार पन्द्रह तक चढ़कर एक उपवास एवं उसके पारणे पर फिर सोलह का थोकड़ा किया जाता है। फिर पूर्व विधि से तप को घटाते हुए उतारा जाता है। इस तपश्चर्या की एक परिपाटी में ग्यारह महीने, पन्द्रह दिन—कुल ३४५ दिन लगते हैं। इनमें उनसठ दिन पारणे एवं २८६ दिन तपस्या होती है। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में तीन वर्ष, दस मास लगते हैं। पारणे की विधि पूर्ववत् है।

लघुसिंह-निष्क्रीडित तप—

इस तप की विधि इस प्रकार है—

जैसे क्रीडा करता हुआ सिंह अतिक्रान्त स्थान देखता हुआ आगे बढ़ता है, अर्थात् दो कदम आगे रखकर एक कदम वापस पीछे रखता हुआ चलता है, उसी प्रकार इस तप में साधक पूर्व-पूर्व आचरित तप का पुनः सेवन करते हुए आगे बढ़ता जाता है। इस तप में एक से लगाकर नौ उपवास तक किये जाते हैं और बीच में आचरित तप का पुनः सेवन करते हुए आगे बढ़ा जाता है और इसी तरह वापस श्रेणी उतारी जाती है, जैसे उपवास के पारणे पर बेला, बेले के पारणे पर उपवास एवं उसके पारणे पर तेला एवं तेले के पारणे पर बेला। इस प्रकार नौ उपवास तक चढ़कर पुनः उतरना होता है। इस तप की परिपाटी में छह महीने सात दिन (१८७ दिन) लगते हैं। इनमें ३३ दिन पारणे के और १५४ दिन की तपस्या होती है। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में दो वर्ष अट्ठाईस दिन लगते हैं। पारणे की विधि पूर्ववत् है।

महासिंह-निष्क्रीडित तप—

इस तप की विधि इस प्रकार है—

यह तप लघुसिंह-निष्क्रीडित-तप के समान ही है। लघुसिंह में नौ उपवास तक बढ़ा जाता है, जबकि इसमें सोलह उपवास तक बढ़ना होता है। शेष विधि और साधना क्रम पूर्ववत् है। इसकी एक परिपाटी में अठारह महीने और अठारह दिन—कुल ५५८ दिन लगते हैं। इसमें ६१ पारणे होते हैं। ४९७ दिन की तपस्या होती है। चारों परिपाटियों को पूर्ण करने में छह वर्ष दो मास और बारह दिन लगते हैं।

लघु सर्वतोभद्र प्रतिमा तप—

इसमें पाँच-पाँच पदों की पाँच पंक्तियाँ बनती हैं, अर्थात् पच्चीस कोष्ठकों के यन्त्र की स्थापना होती है। इसकी एक परिपाटी में सौ दिन लगते हैं। पच्चीस पारणे और पचहत्तर दिन की तपस्या होती है। चारों परिपाटियों में चार सौ दिन, अर्थात् तेरह मास दस दिन लगते हैं।

महासर्वतोभद्र प्रतिमा तप—

इस तप की विधि इस प्रकार है—

इसकी एक परिपाटी में आठ मास, पाँच दिन लगते हैं। १९६ दिन तपस्या में एवं ४९ दिन पारणे के होते हैं। चार परिपाटियों में दो वर्ष, आठ मास और बीस दिन लगते हैं। इसमें सात-सात पदों की सात पंक्तियाँ बनती हैं, यानी ४९ कोठों का यन्त्र बनता है।

भद्रोत्तर प्रतिमा तप—

इसकी विधि इस प्रकार है—

इसकी स्थापना भी २५ कोठों में होती है। यह तप पाँच उपवास से शुरू होता है और सात उपवास में सम्पन्न होता है। इसकी एक परिपाटी में छह मास, बीस दिन—कुल दो सौ दिन लगते हैं। उनमें पच्चीस पारणे होते हैं व १७५ दिन का तप होता है।

आयंबिल वर्द्धमान तप—

इसकी विधि इस प्रकार है—

इस तप में क्रमशः आयंबिल बढ़ाये जाते हैं, जैसे—एक आयंबिल करके उपवास करना, फिर दो आयंबिल, फिर एक उपवास। इस प्रकार बीच-बीच में उपवास करते हुए सौ आयंबिल तक बढ़ा जाता है। इस तप में सौ उपवास एवं ५०५० आयंबिल होते हैं। चौदह वर्ष, तीन मास एवं बीस दिन में यह तप सम्पन्न होता है।

४

धम्मकहाणुओगो

धर्मकथानुयोग

चउत्थो खंधो - चतुर्थस्कन्ध

श्रमणोपासक कथानक

धम्मकहाणुओगे

चउत्थो खंधो

धर्मकथानुयोग—चतुर्थ स्कन्ध

चउत्थो खंधो

समणोवासगकहाणगाणि

		अज्झयणा
१.	पासतित्थे	सोमिलमाहणकहाणगं
२.	पासतित्थे	पएसिकहाणगं
३.	महावीरतित्थे	तुंगियाणगरिनिवासिणो समणोवासगा
४.	महावीरतित्थे	नंदमणियारकहाणगं
५.	महावीरतित्थे	आणंदगाहावइकहाणगं
६.	महावीरतित्थे	कामदेवगाहावइकहाणगं
७.	महावीरतित्थे	चुलणीपियगाहावइकहाणगं
८.	महावीरतित्थे	सुरादेवगाहावइकहाणगं
९.	महावीरतित्थे	चुल्लसययगाहावइकहाणगं
१०	महावीरतित्थे	कुण्डकोलियगाहावइकहाणगं
११.	महावीरतित्थे	सद्दालपुत्त-कुम्भकारकहाणगं
१२.	महावीरतित्थे	महासतयगाहावइकहाणगं
१३.	महावीरतित्थे	नंदणीपियगाहावइकहाणगं
१४.	महावीरतित्थे	लेतियापियगाहावइकहाणगं
१५.	महावीरतित्थे	इसिभद्दपुत्ताइणो समणोवासगा
१६.	महावीरतित्थे	संखे पोक्खली य समणोवासगा
१७.	महावीरतित्थे	वरुणे-नागनत्तुए समणोवासए
१८.	महावीरतित्थे	सोमिलमाहणे समणोवासए
१९.	महावीरतित्थे	भगवओ महावीरस्स समणोवासगाणं देवलोगट्ठिईए परूवणं
२०.	महावीरतित्थे	कूणियस्स महावीरसमोसरण-गमण-धम्मसवणपसंगो
२१.	महावीरतित्थे	अम्मड-परिव्वायगकहाणयं
२२.	महावीरतित्थे	उदाई भूयाणंदे य हत्थिराया
२३.	महावीरतित्थे	मद्दुयसमणोवासयकहा

चतुर्थ स्कन्ध

श्रमणोपासक कथानक

		अध्ययन
१.	पार्श्वतीर्थ में	सोमिल माहण कथानक
२.	पार्श्वतीर्थ में	प्रदेशी कथानक
३.	महावीरतीर्थ में	तुङ्गियानगरी निवासी श्रमणोपासक
४.	महावीरतीर्थ में	नंदनमणियार कथानक
५.	महावीरतीर्थ में	आनन्दगाथापति कथानक
६.	महावीरतीर्थ में	कामदेव गाथापति कथानक
७.	महावीरतीर्थ में	चुलनीपिता गाथापति कथानक
८.	महावीरतीर्थ में	सुरादेव गाथापति कथानक
९.	महावीरतीर्थ में	चुल्लशतक गाथापति कथानक
१०.	महावीरतीर्थ में	कुण्डकौलिक गाथापति कथानक
११.	महावीरतीर्थ में	सद्दालपुत्र कुम्भकार कथानक
१२.	महावीरतीर्थ में	महाशतक गाथापति कथानक
१३.	महावीरतीर्थ में	नन्दिनीपिता गाथापति कथानक
१४.	महावीरतीर्थ में	लेतिकापिता गाथापति कथानक
१५.	महावीरतीर्थ में	ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक
१६.	महावीरतीर्थ में	शंख और पुष्कली श्रमणोपासक
१७.	महावीरतीर्थ में	नागपौत्र वरुण श्रमणोपासक
१८.	महावीरतीर्थ में	सोमिल माहण श्रमणोपासक
१९.	महावीरतीर्थ में	भगवान महावीर के श्रमणोपासकों की देवलोक स्थिति का प्ररूपण
२०.	महावीरतीर्थ में	कोणिक का महावीर समवसरण में गमन और धर्मश्रवण प्रसंग
२१.	महावीरतीर्थ में	अम्बड परिव्राजक कथानक
२२.	महावीरतीर्थ में	उदायी और भूतानन्द हस्तीराज
२३.	महावीरतीर्थ में	मद्दुक श्रमणोपासक कथा

१. पासतित्थे सोमिलमाहणकहाणगं

सुक्कमहग्गहदेवेण महावीरसमोसरणे नट्टविही—

१. रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया। सामी समोसढे। परिसा निग्गया। तेणं कालेणं तेणं समएणं सुक्के महग्गहे सुक्कवडिंसए विमाणे सुक्कंसि सीहासणंसि चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं जहेव चन्दो तहेव आगओ, नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगओ। "भन्ते" त्ति० कूडागारसाला०। पुव्वभवपुच्छा। एवं खलु गोयमा—

सुक्कदेवस्स पुव्वभववण्णणे सोमिलमाहणकहाणगं—

२. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था। तत्थ णं वाणारसी नयरीए सोमिले नामं माहणे परिवसइ अड्ढे-जाव-अपरिभूए रिउव्वेय-जाव-सुपरिनिट्ठिए। पासे समोसढे। परिसा पज्जुवासइ।

पासनाहसमीवे सोमिलस्स सावगधम्मगहणं—

३. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था "एवं पासे अरहा पुरिसादाणीए पुव्वाणुपुव्विं-जाव-अम्बसालवणे विहरइ। तं गच्छामि णं पासस्स अरहओ अन्तिए पाउब्भवामि, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं०" जहा पण्णत्तीए। सोमिलो निग्गओ खण्डियविहूणो-जाव-एवं वयासी—"जत्ता ते, भन्ते? जवणिज्जं च ते?" पुच्छा "सरिसवया, मासा, कुलत्था, एगे भवं?" -जाव-संबुद्धे सावगधम्मं पडिवज्जित्ता पडिगए।

१. पार्श्वतीर्थ में सोमिल माहण कथानक

शुक्र महाग्रहदेव द्वारा महावीर-समवसरण में नृत्य-विधि—

१. राजगृह नगर था। गुणशिलक चैत्य था। उस नगर में श्रेणिक नाम के राजा थे। वहाँ स्वामी—महावीर स्वामी पधारे। परिषदा धर्मश्रवण करने के लिए निकली। उस काल और उस समय में शुक्र नामक महाग्रह शुक्रावतंसक विमान में शुक्र सिंहासन पर चार हजार सामानिक देवों के साथ बैठा हुआ था। वह शुक्रमहाग्रह चन्द्रग्रह के समान भगवान के पास आया और नृत्यविधि दिखाकर वैसे ही वापस लौट गया। 'हे भदन्त!' इस प्रकार से सम्बोधित कर गौतम स्वामी ने भगवान से शुक्र महाग्रह के अन्तर्हित होने के बारे में पूछा। भगवान ने कूटाकारशाला के दृष्टांत द्वारा उनका समाधान किया। पुनः गौतम स्वामी ने शुक्रग्रह के पूर्वभव के लिए पूछा। उत्तर में भगवान ने कहा—हे गौतम!

शुक्रदेव के पूर्वभव के वर्णन में सोमिल माहण का कथानक—

२. उस काल और उस समय में वाराणसी नाम की नगरी थी। उस नगरी में धनाढ्य यावत्—अपरिभूत सोमिल नामक एक माहण—ब्राह्मण रहता था, जो ऋग्वेद—यावत्—अथर्ववेद परिनिष्ठित था। पार्श्व अर्हत पधारे। परिषदा पर्युपासना करने लगी।

पार्श्वनाथ के समीप सोमिल का श्रावक धर्म ग्रहण –

३. तत्पश्चात् भगवदागमन के वृत्तान्त को सुनकर उस सोमिल ब्राह्मण को इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ कि पुरुषादानीय अर्हत पार्श्व प्रभु क्रमानुक्रम से गमन करते हुए—यावत्—आम्रशाल वन में विचर रहे हैं। अतः मैं जाऊँ और पार्श्व अर्हत् के समीप उपस्थित होऊँ इन और इस प्रकार के अर्थों और हेतुओं को पूछूँ इत्यादि जैसा भगवती सूत्र में वर्णन है, वह सब यहाँ समझ लेना चाहिए। शिष्यों को साथ लिये बिना सोमिल निकला—यावत्—इस प्रकार प्रश्न पूछा—हे भदन्त! आपके यात्रा है? आपके यापनीय है? और सरिसवय—सर्षप, मास—माष, कुलत्थ—कुलस्थ इत्यादि द्वयर्थक शब्दों; और आप एक हैं! आदि कूट प्रश्नों को पूछा—यावत्—बोध प्राप्त कर श्रावक धर्म को अंगीकार करके वापस लौट गया।

सोमिलस्स मिच्छत्तं—

४. तए णं पासे णं अरहा अन्नया कयाइ वाणारसीओ नयरीओ अम्बसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवय-विहारं विहरइ।

तए णं से सोमिले माहणे अन्नया कयाइ असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणयाए य मिच्छत्तपज्जवेहिं परिवड्ढमाणेहिं परिवड्ढमाणेहिं सम्मत्तपज्जवेहिं परिहायमाणेहिं परीहायमाणेहिं मिच्छत्तं च पडिवन्ने॥

सोमिल का मिथ्यात्व—

४. तत्पश्चात् किसी एक समय अर्हत् पार्श्वप्रभु वाराणसी नगरी के आम्रशाल वन चैत्य से निकले, निकलकर बाहरी जनपदों में विहार करने लगे।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण किसी एक समय असाधुओं के दर्शन और सुसाधुओं की पर्युपासना नहीं करने से एवं मिथ्यात्व पर्याय के बढ़ने से और सम्यक्त्व पर्यायों के हीन हो जाने से मिथ्यात्व दशा को प्राप्त हो गया।

सोमिलेणं अम्बारामाइनिम्माणं—

५. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं, वेया य अहीया, दारा आहूया, पुत्ता जणिया, इड्ढीओ समाणीयाओ, पसुवन्धा कया, जन्ना जट्ठा, दक्खिणा दिन्ना, अतिही पूइया, अग्गी हूया, जूवा निक्खित्ता। तं सेयं खलु मम इयाणिं कल्लं-जाव-जलन्ते वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अम्बारामा रोवावित्तए एवं माउलिंगा बिल्ला कविट्ठा चिञ्चा पुप्फारामा रोवावित्तए" एवं संपेहेइ। संपेहित्ता कल्लं-जाव-जलन्ते वाणारसीए नयरीए बहिया अम्बारामे-जाव-पुप्फारामे य रोवावेइ। तए णं बहवे अम्बारामा य-जाव-पुप्फारामा य अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा आरामा जाया किण्हा किण्होभासा-जाव-रम्मा महामेहनिकुरम्बभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियगरेरिज्जमाणा सिरीए सस्सिरीया अईव अईव उवसोभेमाणा उवसोभेमाणा चिट्ठन्ति।

सोमिल द्वारा आम्रारामों का निर्माण—

५. तत्पश्चात् उस सोमिल को किसी एक समय मध्यरात्रि के समय कुटुम्ब जागरण में जागते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"निश्चय ही वाराणसी नगरी का रहने वाला मैं सोमिल नामक ब्राह्मण अत्यन्त उच्च ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। तब मैंने व्रत ग्रहण किये, वेदाध्ययन किया, विवाह कर पत्नी लाया, पुत्रवान बना, समृद्धियों को एकत्रित किया, पशु वध किया, यज्ञ किया, दक्षिणा दी, अतिथि की पूजा की, अग्नि में हवन किया, स्तूप यज्ञ का स्तम्भ रोपा। अब मुझे उचित है कि कल—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम्र के बगीचे लगाऊँ एवं मातुलिंग—बिजोरा, बेल, कपित्थ—कबीठ, चिन्चा—इमली और फूलों के बगीचे लगाऊँ,—ऐसा विचार किया। विचार करके कल—यावत्—प्रकाशित होने पर वाराणसी नगरी के बाहर आम के बगीचे—यावत्—फूलों के बगीचे लगवाये। तत्पश्चात् वे बहुत से आम के बगीचे—यावत्—फूलों के बगीचे यथा योग्य रीति से संरक्षित हो, संगोपित हो पूर्णरूप से वृद्धि को प्राप्त बगीचे हो गये, तब वे श्यामल और श्यामल कांति वाले—यावत्—रम्य महामेघों की छटा वाले पत्रित, पुष्पित, फलित होकर हरे-भरे होने के कारण शोभा सम्पन्न होते हुए अत्यन्त शोभायमान दिखते थे।

नाणाविहतावसवण्णओ सोमिलस्स य दिसापोक्खिय-तावसत्तं—

६. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणे अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं-जाव-जूवा निक्खित्ता। तए णं मए वाणारसीए नयरीए बहिया बहवे अम्बारामा-जाव-पुप्फारामा य रोवाविया। तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं-जाव-जलन्ते सुबहुं लोहकडाह-कडुच्छुयं तम्बियं तावसभण्डं घडावेत्ता विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं....मित्तनाइ० आमन्तेत्ता;

नाना प्रकार के तापसों का वर्णन और सोमिल का दिशा-प्रोक्षिक तापसत्व—

६. तत्पश्चात् किसी दूसरे समय मध्यरात्रि में कुटुम्ब जागरण में जागरण करते हुए उस सोमिल ब्राह्मण को इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प समुत्पन्न हुआ—'मैं सोमिल नामक ब्राह्मण, वाराणसी नगरी का अत्यन्त उच्च कुल में प्रसूत ब्राह्मण हूँ। मैंने व्रत आदि किये—यावत्—यूप यज्ञ स्तम्भ में गाड़े और उसके बाद वाराणसी नगरी के बाहर बहुत से आम के बाग—यावत्—फूलों के बगीचे लगवाये। अब मुझे उचित है, कि कल—यावत्—सूर्य के प्रकाशमान होने पर बहुत सी लोहे की कड़ाहियाँ, कुड़छियाँ और तांबे के तापस पात्रों को घड़ाकर—बनवाकर विपुल मात्रा में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन को बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों आदि को आमन्त्रित कर और उन

तं मित्तनाइ-नियग० विउलेणं असण-जाव-संमाणेत्ता तस्सेव मित्त-जाव-जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवेत्ता तं मित्तनाइ-जाव-आपुच्छित्ता सुबहुं लोहकडाहकडुच्छुयं तम्बियं तावस-भण्डगं गहाय जे इमे गंगाकूला वाणपत्था तावसा भवन्ति, तं जहा—होत्तिया पोत्तिया कोत्तिया जण्णई सड्ढई थालई हुम्बउट्ठा दन्तुक्खलिया उम्मज्जगा संमज्जगा निमज्जगा संपक्खालगा दक्खिणकूला उत्तरकूला संखधमा कूलधमा मियलुद्धया हत्थितावसा उद्दंडा दिसापोक्खिणो वक्कवासिणो बिल-वासिणो जलवासिणो रुक्खमूलिया अम्बुभक्खिणो वाउभक्खिणो सेवालभक्खिणो मूलाहारा कन्दाहारा तयाहारा पत्ताहारा पुप्फा-हारा फलाहारा बीयाहारा परिसडियकन्दमूलतयपत्तपुप्फफलाहारा जलाभिसेयकढिणगायभूया आयावणाहिं पंचग्गितावेहिं इंगाल-सोल्लियं कन्दुसोल्लियं पिव अप्पाणं करेमाणा विहरन्ति ।

तत्थ णं जे ते दिसापोक्खिया तावसा तेसिं अन्तिए दिसा-पोक्खियत्ताए पव्वइत्तए, पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—"कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठं-छट्ठेणं अणिक्खित्तेणं दिसाचक्कवालेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता कल्लं-जाव-जलन्ते सुबहुं लोह-जाव-दिसापोक्खियतावसत्ताए पव्वइए । पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं-जाव-अभिगिण्हित्ता पढमं छट्ठ-क्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

दिसापोक्खियतावसचरिया—

७. तए णं सोमिले माहणे रिसी पढमछट्ठक्खमणपारणंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वागलवत्थनियत्थे जेणेव सए उडए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयं गेण्हइ, गिण्हित्ता पुरत्थिमं दिसिं पुक्खेइ, "पुरत्थिमाए दिसाए सोमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ, सोमिलं माहणरिसिं

मित्रों, जाति बन्धुओं, निजी सम्बन्धियों आदि का विपुल अशन यावत्—खाद्य द्वारा सम्मान करके उन्हीं मित्रों—यावत्—ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर उन मित्रों, जाति बन्धुओं से—यावत्—पूछकर—अनुमति लेकर बहुत सी लोहे की कड़ाइयां, कुड़छियां, और तापसों को तांबे के पात्रों को लेकर जो ये गंगातटवासी वान-प्रस्थ हैं, तापस जैसे—होत्रिक—अग्निहोत्री, पोत्रिक—वस्त्रधारी, कौत्रिक—भूमिशायी, यज्ञयाजी—यज्ञ करने वाले, श्राद्धकी—श्राद्ध करने वाले, स्थालकी—पात्र धारक, हुण्डिका श्रमण—वान-प्रस्थ तापस विशेष, दन्तोदूखलिक—केवल दांत से चबाकर खाने वाले, उन्मज्जक, सम्मज्जक, निम्मज्जक, सम्प्रक्षालक, दक्षिणकूल-उत्तरकूलवासी, शंखध्मा—शंख बजाकर भोजन करने वाले, कूलध्मा—तट पर स्थित होकर भोजन करने वाले, मृगलुब्धक, हस्ती तापस, उद्दण्डा—दण्डे को ऊँचा उठाकर चलने वाले, दिशाप्रोक्षी, वल्कवासी, बिलवासी, जलवासी, वृक्षमूलक—वृक्ष के मूल में रहने वाले, अम्बु—जलभक्षी, वायुभक्षी, शैवालभोजी, मूलभोजी, कन्दभोजी, त्वचाभोजी, पत्रभोजी, पुष्पभोजी, फला-हारी, बीजाहारी, सड़े गले कन्दमूल त्वचा पत्र पुष्प फल भोजी, जल के अभिषेक से कठिन शरीर वाले, सूर्य की आतापना और पंचाग्नि ताप से अंगार शौल्य (अंगारे में शूल पर रखकर पकाये हुए मांस) और कन्दुशौल्य (चावल आदि भूंजने का पात्र—कन्दु, उसमें घी डालकर शूल पर पकाया हुआ मांस) के समान अपने शरीर को कष्ट देते विचरते हैं ।

इनमें से जो दिक्प्रोक्षक तापस हैं उनके पास दिशाप्रोक्षक के रूप में प्रव्रजित होऊं, प्रव्रजित होकर भी यह इस प्रकार का अभि-ग्रह (प्रतिज्ञा) ग्रहण करूँ—"यावज्जीवन निरंतर षष्ठ-षष्ठ दिक्चक्रवाल तपस्या करता हुआ सूर्य के अभिमुख भुजा उठाकर आतापना—भूमि में आतापना लेता हुआ विचरण करूँगा"—इस प्रकार का विचार किया । विचार करके कल (आगामी दिन)—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत सी लोहे की कड़ाहियाँ—यावत्—तांबे के पात्र लेकर दिशाप्रोक्षक तापस के रूप में प्रव्रजित हो गया और प्रव्रजित होकर इस प्रकार का अभिग्रह धारण करके प्रथम षष्ठक्षपण-तप स्वीकार करके विचरने लगा ।

दिशाप्रोक्षक तापसचर्या—

७. तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि प्रथम षष्ठक्षपण के पारणे के दिन आतापना भूमि से नीचे आया, नीचे आकर वह वल्कल वस्त्रधारी तापस जहाँ अपनी कुटिया थी वहाँ पहुँचा, पहुँचकर उसने किढिण संकायिक कावड ली, कावड लेकर पूर्व दिशा को जल से सींचा और कहा—हे पूर्व दिशा के अधिपति सोम महाराज ! प्रस्थान मार्ग—परलोक की साधना के मार्ग पर प्रस्थित—चलने के लिए उद्यत मुझ सोमिल ब्राह्मण ऋषि की

अभिरक्खउ। जाणि य तत्थ कन्दाणि य मूलाणि य तयाणि य पत्ताणि य पुप्फाणि य फलाणि य बीयाणि य हरियाणि य ताणि अणुजाणउ'' त्ति कट्टु पुरत्थिमं दिसिं पसरइ, पसरित्ता जाणि य तत्थ कन्दाणि य-जाव-हरियाणि य ताइं गेण्हइ, गिण्हित्ता किढिण-संकाइयगं भरेइ, भरित्ता दब्भे य कुसे य पत्तामोडं च समिहाओ कट्ठाणि य गेण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव सए उडए, तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयगं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थगए जेणेव गंगा महा-णई, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गंगं महाणइं ओगाहइ, ओगा-हित्ता जलमज्जणं करेइ, करित्ता जलकिड्डं करेइ, करित्ता जलाभि-सेयं करेइ, करित्ता आयन्ते चोक्खे परमसुइभूए देवपिउ-कयकज्जे दब्भकलस-हत्थगए गंगाओ महाणईओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सए उडए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भे य कुसे य वालुयाए य वेइं रएइ, रइत्ता सरयं करेइ, करित्ता अरणिं करेइ, करित्ता सरएणं अरणिं महेइ, महित्ता अग्गिं पाडेइ, पाडित्ता अग्गिं संधुक्केइ, संधुक्कित्ता समिहाकट्ठाणि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता अग्गिं उज्जालेइ, उज्जालित्ता अग्गिस्स दाहिणे पासे सत्तंगाइं समादहे। तं जहा—

रक्षा करो, रक्षा करो। वहाँ जो कुछ भी कन्द, मूल, छाल, पत्र, पुष्प, फल, बीज और हरी वनस्पतियाँ हैं, उनको लेने की आज्ञा दो'—ऐसा कहकर पूर्व दिशा में गया, वहाँ जाकर जो कुछ भी कन्द—यावत्—हरितवनस्पतियाँ थीं उनको लिया, लेकर कावड़ भरी, भरकर दर्भ, कुश, वृक्ष के तोड़े हुए पत्ते और समिध काष्ठ को लिया, लेकर जहाँ अपनी कुटिया थी, वहाँ आया, वहाँ आकर कावड़ को रखा, रखकर वेदिका बनाने का स्थान निश्चय किया, निश्चय करके उपलेपन और संमार्जन किया। संमार्जन करके दर्भ और कलश हाथ में लेकर जहाँ गंगा महानदी थी, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर गंगा महानदी में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जलमज्जन—पानी में डुबकी लगाई, फिर जलक्रीड़ा की और उसके बाद जलाभिषेक किया। अभिषेक करके अत्यन्त स्वच्छ एवं परमशुद्ध होकर देव और पितरों का कृत्य करके दर्भ और कलश को हाथ में लेकर गंगा महानदी से बाहर निकला, निकलकर जहाँ अपनी कुटिया थी वहाँ आया। आकर दर्भ, कुश और बालुका से वेदी बनाई, बनाकर शर—मथन काष्ठ बनाया, बनाकर अरणि—घिसाजाने वाला काष्ठ बनाया। फिर शर से अरणि को घिसा, घिसकर अग्नि निकाली, अग्नि निकालकर अग्नि को धौंका, धौंककर समिध काष्ठ डाले, काष्ठ डालकर अग्नि को प्रज्वलित किया, प्रज्वलित करके अग्नि की दाहिनी ओर सात अंगों—वस्तुओं की स्थापना की, यथा—

सकत्थं वक्कलं ठाणं सेज्जभण्डं कमण्डलुं।
दंडदारुं तहप्पाणं अह ताइं समादहे ॥१॥

सकत्थ—तापसों का उपकरण विशेष, वल्कल, स्थान, शैयाभांड, कमण्डलु, लकड़ी का डण्डा और स्वयं को स्थापित किया।

महुणा य घएण तन्दुलेहि य अग्गिं हुणइ, हुणित्ता चरुं साहेइ, साहित्ता बलिं वइस्सदेवं करेइ, करित्ता अतिहिपूयं करेइ, करित्ता तओ पच्छा अप्पणा आहारं आहारेइ।

उसके बाद मधु, घृत और तण्डुल—चावल से अग्नि में हवन किया, हवन करके चरु—घी से लिप्त हवन के योग्य चावल को सिझाया—पकाया, पकाकर बलिवैश्वदेव (नित्ययज्ञ) किया, करके अतिथि पूजा की और उसको करने के बाद स्वयं भोजन किया।

तए णं सोमिले माहणरिसी दोच्चं छट्ठक्खमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं सोमिले माहणरिसी दोच्चे छट्ठक्खमण-पारणगंसि, तं चेव सव्वं भाणियव्वं-जाव-आहारं आहारेइ। नवरं इमं नाणत्तं—''दाहिणाए दिसाए जमे महाराया पत्थाणे पत्थियं अभिरक्खउ सोमिलं माहणरिसिं, जाणि य तत्थ कन्दाणि य-जाव-अणुजाणउ'' त्ति कट्टु दाहिणं दिसिं पसरइ।

तत्पश्चात् सोमिल ब्राह्मण ऋषि द्वितीय षष्ठक्षमण को ग्रहण करके विचरने लगा। तब उस सोमिल ब्राह्मण ऋषि ने द्वितीय षष्ठक्षमण के पारणे पर पूर्वोक्त प्रकार से सब कार्य किये —यावत्—भोजन किया। लेकिन यहाँ यह विशेष है, कि 'हे दक्षिण दिशा के अधिपति यम महाराज! प्रस्थान के लिये प्रस्थित मुझ सोमिल ब्राह्मण ऋषि की रक्षा करना और उस दिशा में कंदादि हैं—यावत्—पुष्प हैं, उन्हें लेने की आज्ञा प्रदान करें', ऐसा कहकर दक्षिण दिशा में गया।

एवं पच्चत्थिमेणं वरुणे महाराया-जाव-पच्चत्थिमं दिसिं पसरइ।

इसी प्रकार से पश्चिम दिशा के वरुण महाराज की प्रार्थना की—यावत्—पश्चिम दिशा में गया।

उत्तरेणं वेसमणे महाराया जाव-उत्तरं दिसिं पसरइ।

इसी प्रकार उत्तरदिशा के वैश्रमण महाराज की प्रार्थना की—यावत्—उत्तरदिशा में गया।

पुव्वदिसागमेणं चत्तारि वि दिसाओ भाणियव्वाओ-जाव-आहारं आहारेइ।

इसी प्रकार पूर्व आदि चारों दिशाओं के समान चारों विदिशाओं के लिये भी जानना चाहिए—यावत्—उसी प्रकार आचरण किया और भोजन किया।

सोमिलस्स कट्ठमुद्दाए मुहबंधणेण महापत्थाणं—

८. तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए सोमिले नामं माहणरिसी अच्चन्तमाहणकुलप्पसूए। तए णं मए वयाइं चिण्णाइं-जाव-जूवा निक्खित्ता। तए णं मम वाणारसीए-जाव-पुप्फारामा रोविया। तए णं मए सुबहुं लोह-जाव-घडावेत्ता-जाव-जेट्ठपुत्तं ठवेत्ता-जाव-जेट्ठपुत्तं आपुच्छित्ता सुबहुं लोह-जाव-गहाय मुण्डे-जाव-पव्वइए। पव्वइए वि य णं समाणे छट्ठंछट्ठेणं-जाव-विहरिए। तं सेयं खलु ममं इयाणिं कल्लं-जाव-जलन्ते बहवे तावसे दिट्ठाभट्ठे य पुव्वसंगए य परियायसंगइए य आपुच्छित्ता आसमसंसियाणि य बहूइं सत्तसयाइं अणुमाणइत्ता वागलवत्थनियत्थस्स किढिणसंकाइयगहियसभंडोवगरणस्स कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहस्स महापत्थाणं पत्थावेत्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कल्लं-जाव-जलन्ते बहवे तावसे य दिट्ठाभट्ठे य पुव्वसंगइए य, तं चेव-जाव-कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ। मुहं बन्धित्ता अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—"जत्थेव णं अम्हं जलंसि वा एवं थलंसि वा दुग्गंसि वा निन्नंसि वा पव्वतंसि वा विसमंसि वा गड्डाए वा दरीए वा पक्खलिज्ज वा पवडिज्ज वा, नो खलु मे कप्पइ पच्चुट्ठित्तए" त्ति अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ।

सोमिल का काष्ठमुद्रा द्वारा मुखबन्धन करके महाप्रस्थान—

८. तत्पश्चात् किसी एक समय मध्यरात्रि में अनित्य जागरणा में जागरण करते हुए उस सोमिल ब्राह्मण ऋषि को इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'वाराणसी नगरी का मैं सोमिल नामक ब्राह्मण ऋषि अत्यन्त कुलीन ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुआ हूँ। तब मैंने व्रतादि की आराधना की—यावत्—यज्ञ स्तम्भ गाड़ा। तत्पश्चात् मैंने वाराणसी नगरी के बाहर—यावत्—पुष्पों के बगीचे लगाये। उसके बाद बहुत सी कड़ाइयाँ—यावत्—पात्र बनवाकर—यावत्—ज्येष्ठ पुत्र को घर सौंपकर—यावत्—ज्येष्ठ पुत्र से पूछकर बहुत सी लोहे की कड़ाइयाँ—यावत्—पात्र लेकर मुण्डित हो—यावत्—प्रव्रजित हुआ हूँ और प्रव्रजित होकर षष्ठ-षष्ठभक्त से तप करता हुआ—यावत्—विचरता हूँ। अब मुझे उचित है कि कल—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर बहुत से दृष्टिभ्रष्ट, पूर्वसांगतिक—पूर्वकाल के मित्र और पर्यायसांगतिक तापस पर्याय के परिचित तापसों से पूछकर एवं आश्रमसंश्रित—आश्रम में रहने वाले बहुत से सैकड़ों व्यक्तियों—प्राणियों को सन्तुष्ट करके, वल्कल वस्त्रों को पहनकर, कावड़ में अपने भंडोपकरणों को रखकर काष्ठमुद्रा से मुख को बांधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में महाप्रस्थान के लिये (मरण के लिये) जाऊँ'—ऐसा विचार किया, विचार करके कल—यावत्—सूर्य प्रकाशित होने पर बहुत से तापसों दृष्टिभ्रष्ट, पूर्व परिचित आदि से पूछकर, संतुष्ट करके—यावत्—काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधा। मुख बाँधकर इस प्रकार का अभिग्रह लिया—'जहाँ कहीं भी चाहे वह जल हो, थल हो, दुर्ग—विकृत स्थान हो, नीचा स्थान हो, पर्वत हो, विषम स्थान हो, गड्ढा हो, गुफा हो, इनमें से कहीं पर भी प्रस्खलित होऊँ अथवा गिर पड़ूँ तो वहाँ से मुझे उठाना नहीं कल्पता है' इस प्रकार का यह अभिग्रह ग्रहण किया।

उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहपत्थाणं पत्थिए से सोमिले माहणरिसी पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागए, असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता उवलेवणसंमज्जणं करेइ, करित्ता दब्भकलसहत्थ-

तत्पश्चात् उत्तर दिशा की ओर मुख करके उत्तर दिशा की ओर महाप्रस्थान के प्रस्थित वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि अपराह्नकाल (तीसरे प्रहर) में जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, वहाँ आया, उस उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे कावड़ उतार कर नीचे रख दी, रखकर उसने वेदिका के लिये स्थान देखा, स्थान देखकर उपलेपन और संमार्जन किया, संमार्जन करके दर्भ और कलश को हाथ में

गए तेणेव, गंगा महाणई जहा सिवो-जाव-गंगाओ महाणईओ पच्चुत्तरइ। जेणेव असोगवरपायवे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दब्भेहि य कुसेहि य वालुयाए वेइं रएइ, रयित्ता सरगं करेइ, करित्ता-जाव-बलि वइस्सदेवं करेइ, करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ। मुहंबंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठइ।

लेकर जहाँ गंगा महानदी थी वहाँ आया और शिवराजर्षि के समान वहाँ सब कार्य करके—यावत्—गंगा महानदी से ऊपर आया, बाद में उस उत्तम अशोक वृक्ष के स्थान पर आया, वहाँ आकर दर्भ, कुश और बालुका से यज्ञ वेदिका की रचना की, वेदिका की रचना करके—यावत्—बलि-वैश्वदेव (नित्य पूजा) की पूजा करके काष्ठ मुद्रा से मुख को बाँधा। मुख बाँधकर मौन हो गया।

'ते पव्वज्जा दुप्पव्वज्जा' इति देवकहणे वि सोमिलस्स असंबोहो—

६. तए णं तस्स सोमिलमाहणरिसिस्स पुव्वरत्तावरत्त-काल-समयंसि एगे देवे अन्तियं पाउब्भूए। तए णं से देवे सोमिलमाहणं एवं वयासी—"हंभो सोमिलमाहणा! पव्वइया! दुप्पव्वइयं ते"।

'तुम्हारी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है' ऐसा देव के कहने पर भी सोमिल का असंबोध—

६. तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण ऋषि के समक्ष मध्यरात्रि के समय एक देव प्रकट हुआ। तब उस देव ने सोमिल ब्राह्मण से इस प्रकार कहा—'हे प्रव्रजित सोमिल ब्राह्मण! यह तेरी दुष्प्रव्रज्या है।' तत्पश्चात् उस सोमिल ने उस देव के दुबारा और तिबारा भी इसी प्रकार कहने पर भी इस बात का आदर नहीं किया, ध्यान नहीं दिया—यावत्—मौन धारण किये ही बैठा रहा।

तए णं से सोमिले तस्स देवस्स दोच्चं पि तच्चं पि वयमाणस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणाइ,-जाव-तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं से देवे सोमिलेणं माहणरिसिणा अणाढाइज्जमाणे जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव-जाव-पडिगए। तए णं से सोमिले कल्लं-जाव-जलन्ते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयगहियग्गिहोत्त-भण्डोवगरणे कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, मुहं बंधित्ता उत्तराभिमुहे संपत्थिए। तए णं से सोमिले बिइयदिवसम्मि पुव्वावरण्हकाल-समयंसि जेणेव सत्तिवण्णे तेणेव उवागए, सत्तिवण्णस्स अहे किढिण-संकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढित्ता जहा असोगवर-पायवे-जाव-अग्गिं हुणइ, कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अन्तियं पाउब्भूए। तए णं से देवे अन्तलिक्खपडिवन्ने जहा असोगवरपायवे-जाव-पडिगए। तए णं से सोमिले कल्लं-जाव-जलन्ते वागलवत्थनियत्थे किढिणसंकाइयं गेण्हइ, गिण्हित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, मुहं बंधित्ता उत्तरदिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

तदनन्तर उस सोमिल ब्राह्मण द्वारा अनादृत वह देव जिस दिशा से आया था, उसी दिशा में वापिस लौट गया—चला गया। उसके बाद उस सोमिल ब्राह्मण ने कल—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर वल्कल वस्त्रों को पहनकर, कावड़ को उठाकर, अपने अग्निहोत्र के भंड उपकरणों को लेकर काष्ठमुद्रा को मुख पर बाँधा, मुख पर बाँधकर उत्तर दिशा की ओर प्रस्थान किया। तदनन्तर दूसरे दिन अपराह्न काल में उस सोमिल ने जहाँ सप्तपर्ण वृक्ष था, वहाँ आकर सप्तपर्ण वृक्ष के नीचे अपना कावड़ रखा, कावड़ रखकर वेदिका के योग्य स्थान को देखा, स्थान को देखकर पहले जैसे अशोक वृक्ष के नीचे कार्य किये थे, वे सब करके—यावत्—अग्नि हवन किया, काष्ठमुद्रा से मुख को बाँधकर चुपचाप होकर बैठ गया। उसके बाद पुनः उस सोमिल ब्राह्मण के समक्ष मध्यरात्रि के समय एक देव प्रकट हुआ। तब आकाश में स्थित होकर उस देव ने जिस प्रकार पहले अशोक वृक्ष के नीचे कहा था उसी प्रकार कहा—यावत्—अनादृत देव वापस लौट गया। उसके बाद कल—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर उस सोमिल ने वल्कल वस्त्रों को पहनकर कावड़ ली, कावड़ लेकर काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा, मुख बाँधकर उत्तर दिशा में उत्तराभिमुख होकर प्रस्थित हो गया।

तए णं से सोमिले तइयदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोग-वरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ-जाव-गंगं महाणइं पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव असोगवरपायवे तेणेव

तत्पश्चात् तीसरे दिन अपराह्नकाल में जहाँ श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था, सोमिल ब्राह्मण वहाँ आया, वहाँ आकर उस अशोक वृक्ष के नीचे कावड़ रखी, कावड़ रखकर वेदिका योग्य स्थान देखा—यावत्—गंगा महानदी से ऊपर आया, ऊपर आकर जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था वहाँ आया, वहाँ आकर वेदिका की रचना की,

उवागच्छइ, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं रएइ, रयित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, मुहं बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्था, तं चेव भणइ-जाव-पडिगए। तए णं सोमिले-जाव-जलन्ते वाउल-वत्थनियत्थे किढिण-संकाइय-जाव-कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ, मुहं बंधित्ता उत्तराए दिसाए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

वेदिका रचकर अग्नि हवन किया, हवन कर काष्ठमुद्रा से मुख बाँधकर मौन होकर बैठ गया। उसके बाद मध्यरात्रि के समय उस सोमिल के पास एक देव ने प्रकट होकर पूर्व की तरह कहा—यावत्—वापस चला गया। तत्पश्चात् वल्कलवस्त्रधारी उस सोमिल ने—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर कावड़ उठाई—यावत्—काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा, मुख बाँधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में प्रस्थान किया।

देवेण पुणो पुणो संबोहणे सोमिलेण अणुव्वयाइग्गहणं—

तए णं से सोमिले चउत्थदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव वडपायवे तेणेव उवागए, वडपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं संठवेइ, संठवित्ता वेइं वड्ढेइ, वड्ढेत्ता उवलेवसंमज्जणं करेइ -जाव-कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ,तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तस्स सोमिलस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे अन्तियं पाउब्भवित्था, तं चेव भणइ-जाव-पडिगए। तए णं से सोमिले-जाव-जलन्ते वागलवत्थ-नियत्थे किढिण-संकाइयं-जाव-कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ,....उत्तराए उत्तराभिमुहे संपत्थिए।

देव के द्वारा पुनः-पुनः सम्बोधित सोमिल द्वारा अणुव्रतादि ग्रहण—

तत्पश्चात् सोमिल चौथे दिन के अपरान्हकाल में जहाँ वट वृक्ष था, वहाँ आया, वट वृक्ष के नीचे कावड़ रखी, रखकर वेदिका बनाई, वेदिका बनाकर उपलेपन, संमार्जन किया—यावत् काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा, मौन होकर बैठ गया। तदनन्तर मध्य रात्रि के समय उस सोमिल के समीप एक देव ने प्रकट होकर पुनः पूर्ववत् कहा—यावत्—वापस लौट गया। अन्तर्हित हो गया। तत्पश्चात् वल्कल वस्त्रधारी उस सोमिल ने—यावत्—सूर्य के प्रकाशित होने पर कावड़ ले—यावत्—काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा मुख बाँधकर उत्तराभिमुख होकर उत्तर दिशा में प्रस्थान किया।

तए णं से सोमिले पंचमदिवसम्मि पुव्वावरण्हकालसमयंसि जेणेव उम्बरपायवे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उम्बरपायवस्स अहे किढिणसंकाइयं ठवेइ, ठवित्ता वेइं वड्ढेइ-जाव-कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धइ-जाव-तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तस्स सोमिलमाहणस्स पुव्वरत्तावरत्तकाले एगे देवे,-जाव-एवं वयासी—"हंभो सोमिला! पव्वइया, दुप्पव्वइयं ते", पढमं भणइ, तहेव तुसिणीए संचिट्ठइ। देवो दोच्चं पि तच्चं पि वयइ—"सोमिला! पव्वइया! दुप्पव्वइयं ते।"

तत्पश्चात् सोमिल पाँचवें दिन के अपरान्ह समय में जहाँ उदुम्बर का वृक्ष था वहाँ आया, आकर उदुम्बर वृक्ष के नीचे कावड़ रखी, रखकर वेदिका बनाई—यावत्—काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा—यावत्—चुपचाप मौन होकर बैठ गया। उसके बाद मध्यरात्रि के समय उस सोमिल ब्राह्मण के पास एक देव आया—यावत्—इस प्रकार कहा—'हे प्रव्रजित सोमिल! तुम्हारी यह दुष्प्रव्रज्या है' इस प्रकार पहली बार उस देववाणी को सुनकर पूर्ववत् मौन होकर बैठ गया। देव ने दुबारा भी और तिबारा भी कहा—'हे प्रव्रजित सोमिल! तुम्हारी यह दुष्प्रव्रज्या है।'

सोमिलस्स संबोहो—

१०. तए णं से सोमिले तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे तं देवं एवं वयासी—"कहं णं, देवाणुप्पिया! मम दुप्पव्वइयं?" तए णं से देवे सोमिलं माहणं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! तुमं पासस्स अरहओ पुरिसादाणीयस्स अन्तियं पंचाणुव्वए सत्तसिक्खावए दुवालसविहे सावयधम्मे पडिवन्ने। तए णं तव अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं.... -जाव-पुव्वचिन्तियं देवो उच्चारेइ-जाव-जेणेव असोगवरपायवे तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता किढिणसंकाइयं-जाव-तुसिणीए संचिट्ठसि।

सोमिल को सम्बोध—

१०. तत्पश्चात् उस सोमिल ने उस देव द्वारा दुबारा और तिबारा भी इसी प्रकार कही गई बात को सुनकर उस देव ने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! मेरी प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या क्यों और कैसे है? तब उस देव ने सोमिल ब्राह्मण से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! बात यह है, कि तुमने पुरुषादानीय पार्श्व अर्हत् से पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रतरूप, बारह व्रतरूप श्रावक धर्म स्वीकार किया था। उसके बाद किसी एक दिन मध्य रात्रि में कुटुम्ब जागरण में जागरण करते हुए तुम्हें.......—यावत्—पूर्व चिन्तित सब विचारों को देव ने उससे कहा और फिर उससे आगे कहा.......—यावत्—मौन होकर बैठे।

तए णं पुव्वरत्तावरत्तकाले तव अन्तियं पाउब्भवामि, 'हंभो सोमिला! पव्वइया! दुप्पव्वइयं ते,' तह चेव देवो नियवयणं भणइ-जाव-पंचमदिवसम्मि पुव्वावरण्ह कालसमयंसि जेणेव उम्बरपायवे, तेणेव उवागए किढिणसंकाइयं ठवेसि वेइं वड्ढेसि, उवलेवणं करेसि करित्ता कट्ठमुद्दाए मुहं बन्धेसि, मुहं बंधित्ता तुसिणीए संचिट्ठसि।

तं एवं खलु देवाणुप्पिया, तव दुप्पव्वइयं।"

तब मध्यरात्रि के समय तुम्हारे सामने प्रकट होकर—उपस्थित होकर मैंने कहा—'हे प्रव्रजित सोमिल! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है' इत्यादि देव ने सब कथन दोहराया—यावत्—पाँचवें दिन अपराह्न काल में इस उदुम्बर वृक्ष के नीचे आये, कावड़ रखी, वेदिका बनाई, उपलेपन किया, उपलेपन करके काष्ठमुद्रा से मुख बाँधा और मुख बाँधकर मौन होकर बैठ गये।

इस प्रकार हे देवानुप्रिय! तुम्हारी यह प्रव्रज्या दुष्प्रव्रज्या है'।

तए णं से सोमिले तं देवं एवं वयासी—"कहं णं, देवाणुप्पिया, मम सुपव्वइयं?" तए णं से देवे सोमिलं एवं वयासी—"जइ णं तुमं, देवाणुप्पिया, इयाणिं पुव्वपडिवन्नाइं पंच अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरसि, तो णं तुज्झ इयाणिं सुपव्वइयं भवेज्जा।" तए णं से देवे सोमिलं वन्दइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए। तए णं सोमिले माहणरिसी तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे पुव्वपडिवन्नाइं पंच अणुव्वयाइं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तत्पश्चात् सोमिल ने उस देव से कहा—'हे देवानुप्रिय! अब आप ही बताओ कि मैं कैसे सुप्रव्रजित बनूँ'? तब उस देव ने सोमिल से इसप्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! यदि तुम पहले ग्रहण किये हुए पंच अणुव्रतादि को स्वयमेव स्वीकार करके विचरण करोगे तो तुम्हारी यह प्रव्रज्या सुप्रव्रज्या हो जायेगी। तत्पश्चात् उस देव ने सोमिल को वन्दन—नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था, उसी दिशा में अन्तर्धान हो गया—वापस चला गया। तब वह सोमिल ब्राह्मण ऋषि उस देव के इस कथन को सुनकर पूर्व प्रतिपन्न पंच अणुव्रतादि को स्वीकार करके विचरण करने लगा।

सोमिलस्स संलेहणा, सुक्कमहागहदेवत्तं—

११. तए णं से सोमिले बहूहिं चउत्थछट्ठट्ठम-जाव-मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोवहाणेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसित्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेएइ, छेइत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कन्ते विराहियसम्मत्ते कालमासे कालं किच्चा सुक्कवडिंसए विमाणे उववायसभाए देवसयणिज्जंसि-जाव-ओगाहणाए सुक्कमहग्गहत्ताए उववन्ने।

सोमिल की संलेखना, शुक्रमहाग्रह-देवत्व—

११. उसके बाद वह सोमिल बहुत से चतुर्थ, षष्ठ, अष्टम—यावत्—मासार्धमासक्षमणरूप विचित्र तप उपधानों से अपनी आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय (श्रावक धर्म) का पालन करता है, पालन करके अर्धमासिक संलेखना द्वारा आत्मा को आसेवना करता है और तीस भक्त (भोजन) का अनशन द्वारा छेदन करता है—त्याग करता है। त्याग करके उस पूर्वकृत पापस्थान की आलोचना—प्रतिक्रमण नहीं करते हुए और सम्यक्त्व की विराधना से कालमास में काल करके शुक्रावतंसक विमान में उपपातसभा के अन्दर देव-शयनीय शैया में—यावत्—अवगाहना युक्त शुक्रमहाग्रह रूप से उत्पन्न हुआ।

सुक्कदेवलोगच्चवणाणतरं सोमिलजीवस्स सिद्धिगमण-परूवणं—

१२. तए णं से सुक्के महग्गहे अहुणोववन्ने समाणे-जाव-भासामणपज्जत्तीए.....। "एवं खलु, गोयमा! सुक्केणं सा दिव्वा-जाव-अभिसमन्नागया। एगं पलिओवमं ठिई।"

शुक्र देवलोक से च्यवनानन्तर सोमिल जीव का सिद्धिगमन प्ररूपण—

१२. उसके बाद शुक्र महाग्रह में अभी उत्पन्न होकर वह भाषा पर्याप्ति, मनःपर्याप्ति आदि पाँचों पर्याप्तियों से पूर्ण होकर पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ। हे गौतम! इस कारण उस शुक्र महाग्रह ने वह दिव्य देव ऋद्धि—यावत्—अधिगत की है। इस शुक्रमहाग्रह की एक पल्योपम की स्थिति है।'

"सुक्के णं, भन्ते, महग्गहे तओ देवलोगाओ आउक्खएणं० कहिं गच्छिहिइ ?"

"गोयमा, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।"

—पुप्फिया अ० ३

॥ सोमिलमाहणकहाणगं समत्तं ॥

'हे भदन्त ! वह शुक्रमहाग्रह आयुक्षय—भवक्षय और स्थिति-क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर कहाँ जायेगा ?' गौतम स्वामी ने पूछा।

'हे गौतम ! यह शुक्रमहाग्रह महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा।' इस प्रकार भगवान ने गौतम स्वामी की जिज्ञासा का समाधान किया।

॥ सोमिलमाहण कथानक समाप्त ॥

□□

२. पासतित्थे पएसिकहाणगं

आमलकप्पाए महावीरसमोसरणं—

१३. तेणं कालेणं, तेणं समएणं आमलकप्पा नामं नयरी होत्था, रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा-जाव-पासादीया, दरिसणिज्जा, अभिरूवा, पडिरूवा ॥

तीसे णं आमलकप्पाए नयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसी-भाए अम्बसालवणे नामं चेइए होत्था, चिराती-जाव-पडिरूवे। असोयवरपायवे-पुढविसिलापट्टयवत्तव्वया उववाइय-गमेणं नेया। सेओ राया, धारिणी देवी, सामी समोसढे, परिसा निग्गया-जाव-राया पज्जुवासइ।

२. पार्श्वतीर्थ में प्रदेशी कथानक

आमलकप्पा में महावीर समवसरण—

१३. उस काल उस समय में आमलकप्पा नाम की नगरी थी। जो धन-जन आदि ऋद्धि से परिपूर्ण स्तिमित-स्वचक्र परचक्र आदि के भय से विवर्जित, समृद्धि से परिपूर्ण—यावत्—प्रासादिक दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप थी।

उस आमलकप्पा नगरी के बाहर उत्तर-पूर्व दिग्भाग—ईशान्य-कोण में अंबसालवन नामक चैत्य था, जो बहुत प्राचीन—यावत्—प्रतिरूप था। श्रेष्ठ अशोक वृक्ष के पादमूल में एक विशाल पृथ्वीशिलापट्ट था, जिसका वर्णन औपपातिक सूत्रगत वर्णन के अनुसार जानना चाहिए। उस नगरी के राजा का नाम सेय था, धारिणी रानी थी, श्री महावीर स्वामी पधारे, वन्दना करने और धर्म श्रवणार्थ परिषदा निकली—यावत्—राजा भी निकला और पर्युपासना—सेवा करने लगा।

सूरियाभदेवस्स महावीरवंदणत्थं संकप्पो, उचियकज्ज-करणट्ठं आभिओगियदेवपेसणं च—

१४. तेणं कालेणं, तेणं समएणं सूरियाभे देवे सोहम्मे कप्पे, सूरियाभे विमाणे, सभाए सुहम्माए, सूरियाभंसि सिंहासणंसि चउहिं सामाणिय-साहस्सीहिं, चउहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं, तिहिं परिसाहिं, सत्तहिं अणिएहिं, सत्तहिं अणियाहिवईहिं, सोलसहिं आयरक्ख-देव-साहस्सीहिं, अन्नेहिं बहूहिं सूरियाभ-विमाण-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे, महयाऽऽहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडु-प्पवाइय-रवेणं दिव्वाइं भोग-भोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ, इमं च णं केवल-कप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे आभोएमाणे पासइ।

सूर्याभदेव का महावीर वंदनार्थ संकल्प और उचित कार्य करणार्थ आभियोगिक देवप्रेषण—

१४. उस काल और उस समय में सौधर्मकल्प के सूर्याभ विमान की सुधर्मा नामक सभा में सूर्याभ सिंहासन पर आसीन सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों, अपने अपने परिवार सहित चार अग्रमहिषियों-पटरानियों, तीन परिषदाओं, सात सेनाओं, सात सेनापतियों, सोलह हजार आत्मरक्षक देवों एवं और दूसरे भी सूर्याभ विमानवासी देवों एवं देवियों से परि-वेष्ठित होकर जोर-जोर से दक्षपुरुषों द्वारा बजाये जा रहे—किये जा रहे नाट्य, गीत, वाद्य, तन्त्री, तल, ताल त्रुटित, घन मृदंग के स्वरों को सुनते हुए, दिव्य भोगों को भोगते हुए विचर रहा था, तब इस केवल कल्प जम्बूद्वीप नामक द्वीप को विपुल-विमल अवधिज्ञान से निरखते-निरखते देखा।

तत्थ समणं भगवं महावीरं जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, आमलकप्पाए नयरीए, बहिया, अम्बसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिए, पीइमणे, परम-सोमणस्सिए, हरिसवस-विसप्पमाण-हियए, वियसिय-वरकमल-णयणे, पयलिय-वरकडग-तुडिय-केऊर-मउड० कुंडल-हार-विरायंत-रइय-वच्छे, पालंब-पलंबमाण-घोलंत-भूसण-धरे ससंभमं तुरियं-चवलं सुरवरे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ पच्चोरुहित्ता, पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एग-साडियं उत्तरासंगं करेइ, करित्ता तित्थयराभिमुहे सत्तट्ठ-पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणि-तलंसि णिहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणि-तलंसि निमेइ, निमित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडय-तुडिय-थंभिय-भुयाओ साहरइ साहरित्ता करयल-परिग्गहियं, दस-णहं, सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"णमोऽत्थु णं अरिहंताणं, -जाव-सिद्धिगइ-नामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-संपाविउ-कामस्स, वंदामि णं भगवन्तं तत्थगयं इह-गए, पासइ मे भगवं तत्थ गए इह-गयं ति कट्टु वंदइ, णमंसइ, वंदित्ता, णमंसित्ता सीहासणवरगए पुव्वाभिमुहं सण्णिसण्णे।

तब उसने जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में आमलकप्पा नगरी के बाहर अम्बसालवन चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह का ग्रहणकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर को देखा, देखकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्तवाला, प्रीतिमनवाला, परमसौमनस्—हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला, विकसित श्रेष्ठ कमल जैसे नेत्रवाला, आनन्द के वेग से चलायमान, उत्तम कटक—कड़ा, त्रुटित—बाजूबन्द, केयूर, मुकुट—कुण्डल और सुन्दर हारों से सुशोभित वक्षवाला हो गया और नीचे तक लटकते हुए प्रलंब सूत्र और कंपायमान हुए और दूसरे दूसरे आभूषणों को धारण करने वाला वह श्रेष्ठ देव संभ्रम के साथ, त्वरा और चपलता के साथ सिंहासन से उठा, उठकर पादपीठ से नीचे उतरा, नीचे उतरकर पादुकाओं को उतारा, उतारकर एक शाटकाका उत्तरासंग—दुपट्टा किया, उत्तरासंग करके तीर्थंकर के अभिमुख सात-आठ पग अनुगमन किया, अनुगमन करके बायां घुटना ऊँचा किया, ऊँचा करके दाहिना घुटना भूमि पर टिकाकर तीनबार मस्तक को पृथ्वीतल पर नमाया, नमाकर फिर मस्तक को कुछ ऊँचा किया, ऊंचा करके कटक, त्रुटित से स्तंभित भुजाओं को मिलाया, मिलाकर दोनों हाथों को जोड़कर दसों नखों को परस्पर, स्पर्शित कर शिरसावर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि कर इस प्रकार बोला—अरिहंतों को—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त हुओं को नमस्कार हो,—यावत्—सिद्धस्थान को प्राप्त करने वाला श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो, वहाँ विराजित भगवान को यहाँ रहा हुआ मैं वन्दना करता हूँ, तत्र विराजित भगवान यहाँ रहे मुझे देखें ऐसा कहकर वन्दना-नमस्कार करता है, वन्दना नमस्कार करके पूर्वाभिमुख होकर श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

१५. तए णं तस्स सूरियाभस्स इमे एयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था।

'एवं खलु—समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे, दीवे, भारहे वासे, आमलकप्पाणयरीए बहिया, अंबसालवणे उज्जाणे अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं महाफलं खलु तहा-रूवाणं भगवंताणं णाम-गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? ; एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए; किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि, णं समणं भगवं महावीरं वंदामि-जाव-पज्जुवासामि,

१५. तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव को यह इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—

'योग्य अवग्रह पूर्वक संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में आमलकप्पा नगरी के बाहर अम्बसालवन नामक उद्यान में विचरण कर रहे हैं। तथारूप भगवंतों का नाम-गोत्र का श्रवण करना भी महाफलरूप है, तो फिर उनके सामने जाना, वन्दन-नमन करना, प्रश्नों का समाधान करना और उनकी पर्युपासना करने का तो कहना ही क्या है ? आर्यपुरुष का मात्र एक धार्मिक सुवचन का सुनना ही उत्तम है तो फिर उनके पास से विपुल अर्थ—उपदेश प्राप्त करने के प्रसंग का तो कहना ही क्या है ? इसलिए मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर की वन्दना करूँ—यावत्—पर्युपासना करूँ'।

एवं मे पेच्चा हियाए-जाव-आणुगामियत्ताए भविस्सइ-त्ति-" कट्टु एवं संपेहेइ, एवं संपेहित्ता आभिओगे देवे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

'एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, आमलकप्पाए नयरीए बहिया, अम्बसालवणे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं गच्छह णं तुमे देवाणुप्पिया ! जंबुद्दीवे दीवं, भारहं वासं, आमलकप्पं णयरिं, अंबसालवणं चेइयं। समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेह, करेत्ता वंदह णमंसह, वंदित्ता णमंसित्ता साइं-साइं नाम-गोयाइं साहेह, साहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समंता जोयण-परिमण्डलं जं किंचि तणं वा पत्तं वा कट्ठं वा सक्करं वा असुइं अचोक्खं वा पूइअं दुब्भिगंधं, तं सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेह, एडेत्ता णच्चोदगं, णाइमट्टियं, पविरल-पप्फुसियं, रय-रेणु-विणासणं, दिव्वं सुरभिगंधोदयवासं वासह, वासित्ता णिहय-रयं, णट्ठ-रयं, भट्ठ-रयं, उवसंत-रयं, पसंत-रयं करेह, करित्ता, जल-थलय-भासुर-प्पभूयस्स, बिंटट्ठाइस्स, दसद्ध-वण्णस्स कुसुमस्स जाणुस्सेह-पमाणमित्तं ओहिं वासं वासह, वासित्ता कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं, सुगंध-वर-गंधियं, गंधवट्टि-भूयं, दिव्वं, सुरवराभिगमण-जोग्गं करेह कारवेह य, करित्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह'।

यह मेरे लिए प्रेत्य-जन्म-जन्मान्तर में हितकर-यावत्-अनुगामी रूप से होगा' इसप्रकार का विचार किया, ऐसा विचार करके आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'बात यह है कि हे देवानुप्रियो ! यथा प्रतिरूप अवग्रह को अवधारितकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आमलकप्पा नगरी के बाहर अम्बसालवन चैत्य में विचरण कर रहे हैं। इसलिए हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आमलकप्पा नगरी के अम्बसालवन चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करो, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार करो, वंदन-नमस्कार करके अपना अपना नाम और गोत्र उनको कह सुनाओ, सुनाकर श्रमण भगवान महावीर के उपाश्रयस्थान के आसपास चारों ओर एक योजन प्रमाण क्षेत्र में जो कुछ भी तृण अथवा पत्र अथवा काष्ठ अथवा कचरा अथवा अपवित्र सड़े-गले अथवा घिनौने अथवा दुर्गंधयुक्त जो कोई भी पदार्थ पड़े हुए हों, बिखरे हों, उन सबको उठा-उठाकर एकान्त में ले जाकर फेंक दो, फेंककर पानी छिड़ककर, भूमि को स्वच्छकर और उस पर सुगन्धित जल का इस प्रकार से सिंचन करो कि जिसमें वहाँ उड़ती धूल बैठ जाय, पानी पानी न हो जाय, न कीचड़ ही हो और रजकणों का उड़ना रुक जाये, सिंचन करके जिसकी धूलि निहित हो गयी है, नष्ट हो चुकी है—उपशांत हो चुकी है, प्रशांत हो चुकी है, ऐसी कर दो और ऐसा करके उस पर जलज और स्थलज ऐसे पंचवर्णी सुगन्धित पुष्पों की वर्षा इस प्रकार से करो, कि वे सीधे ही पड़ें, उनको डंडियाँ नीचे हों रहें और वे पुष्प सर्वत्र जमीन में एक जानु-हाथ प्रमाण ऊँचाई तक खचाखच व्याप्त रहें, इस प्रकार से व्याप्त करके उस जमीन को काले अगर, उत्तम कुन्दरुक्क और तुरुष्क की सुगन्धित धूप से महकती हुई कर दो, जिसकी गंध मनमोहक हो, उत्तम सुगंध से सुगंधायमान हो और गंधवर्तिका के समान हो और उस भूमि को सर्वप्रकार से दिव्य कर दो कि जो उत्तम देवों के आगमन के योग्य हो, इस प्रकार से करो और दूसरों से करवाओ, करवाकर शीघ्र ही मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् कार्य होने का समाचार दो।

आभिओगियदेवकयं महावीरवंदणाइ—

१६. तए णं ते आभिओगिया देवा सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा, हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया, करयल-परिग्गहियं दस-नहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु, एवं देवो तह त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, 'एवं देवो तह' त्ति आणाए विणएणं

आभियोगिक देवों द्वारा महावीर की वंदना आदि—

१६. तत्पश्चात् वे आभियोगिक देव सूर्याभदेव के इस कथन को सुनकर हृष्ट—तुष्ट—यावत्—विकासमान हृदय वाले होकर दोनों हाथ जोड़ परस्पर स्पर्शित दसनखों से शिर पर आवर्त-पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके आप जो कहते हैं वह बराबर है' कहकर आज्ञा वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार करते हैं,

वयणं पडिसुणेंति उत्तर-पुरत्थिमं दिसि-भागं अवक्कमंति, उत्तर-पुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरन्ति, तं जहा-रयणाणं, वयराणं, वेरुलियाणं, लोहियक्खाणं, मसारगल्लाणं, हंसगब्भाणं, पुलगाणं, सोगंधियाणं, जोइरसाणं, अंजणाणं, अंजणपुलगाणं, रययाणं, जायरूवाणं, अंकाणं, फलिहाणं, रिट्ठाणं अहा-बायरे पुग्गले परिसाडंति, परिसाडित्ता अहा-सुहुमे पुग्गले परियायंति, परियाइत्ता दोच्चंपि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता उत्तर-वेउव्वियाइं रूवाइं विउव्वंति, विउव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-दिव्वाए देवगईए तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झं-मज्झेणं वीईवयमाणा वीईवयमाणा जेणेव जंबुद्दीवे दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव आमलकप्पा णयरी, जेणेव अंबसालवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—

'अम्हे णं भंते ! सूरियाभस्स देवस्स आभिओगा देवा देवाणुप्पियाणं वंदामो, णमंसामो, सक्कारेमो, सम्माणेमो, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं पज्जुवासामो' ।

१७. देवा ! इ समणे भगवं महावीरे ते देवे एवं वयासी—

'पोराणमेयं देवा ! जीयमेयं देवा !, किच्चमेयं देवा !, करणिज्जमेयं देवा !, आइन्नमेयं देवा !, अब्भणुण्णायमेयं देवा ! जण्णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइसिय-वेमाणिया देवा अरहंते भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता तओ साइं-साइं णामगोयाइं साहिंति । तं पोराणमेयं देवा ! जाव-अब्भणुण्णायमेयं देवा !'।

आभिओगियदेवकयं महावीरसमोसरणभूमिसंमज्जणाइ—

१८. तए णं ते आभिओगिया देवा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा, हट्ठ-जाव-हियया, समणं भगवं महावीरं वंदंति, णमंसंति, वंदित्ता, णमंसित्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमंति, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं दंडं निसिरंति, तंजहा—रयणाणं-जाव-रिट्ठाणं अहा-बायरे पोग्गले परिसाडेंति, परिसाडित्ता दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता, संवट्टय-वाए विउव्वंति,

विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार करके उत्तरपूर्व दिग्भाग में गये, उत्तरपूर्व दिग्भाग में जाकर वैक्रियसमुद्घात करते हैं, समुद्घात करके संख्यात योजन लम्बा दंड निकाला, वह इस प्रकार का था कि रत्न, वज्र, वैडूर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ल, हंसगर्भ, पुलक सौगंधिक, ज्योतिरस, अंजन, अंजनपुलक, रजत, जातरूप, अंक, स्फटिक और रिष्ट के यथा बादर पुद्गलों को दूर किया, दूर करके यथा सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके दुबारा वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके वे आभियोगिक देव उत्कृष्ट—यावत्—दिव्य देवगति से तिरछे असंख्यातों द्वीप समुद्रों के बीच में से चलते हुए—पार होते हुए जहाँ जम्बूद्वीप था, जहाँ भरतक्षेत्र था, जहाँ आमलकप्पा नगरी थी, जहाँ अम्बसालवन चैत्य था, और उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त ! हम सूर्याभदेव के आभियोगिक देव आप देवानुप्रिय को वन्दना करते हैं, नमस्कार करते हैं, सत्कार-सम्मान करते हैं और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप एवं चैत्य-रूप आपकी पर्युपासना करते हैं।'

१७. 'हे देवो !' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने उन देवों से इस प्रकार कहा—

'हे देवो ! यह पुरातन है, हे देवो ! यह जीत—परम्परागत व्यवहार है, हे देवो ! यह कृत्य रूप है, हे देवो ! यह करणीय रूप है, हे देवो ! यह आचीर्ण है, हे देवो ! यह सम्मत माना हुआ है, कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क और वैमानिक देव अरिहंत भगवन्तों को वंदन करते हैं, नमन करते हैं तथा वन्दन और नमन करके अपने नाम और गोत्रों को सुनाते हैं, हे देवो ! यह पुरातन परम्परा है—यावत्—यह सम्मत हुई पद्धति है।'

आभियोगिक देवकृत महावीर-समवसरण भूमि की संप्रमार्जनादि—

१८. तत्पश्चात् (श्रमण भगवान महावीर ने जिनको उपर्युक्त रीति से कहा था) उन आभियोगिक देवों ने श्रमण भगवान महावीर के कथन को सुनकर हृष्ट तुष्ट—यावत्—प्रफुल्लित हृदय वाले होकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके उत्तर पूर्वदिक्कोण में गये, वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन विस्तार वाला दंड निकाला यथा—रत्नों वाला—यावत्—रिष्टों का और यथा बादर पुद्गलों को दूर किया और सूक्ष्म पुद्गलों को लिया, पुनः दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात किया और संवर्तक-

से जहा—नामए भइय-दारए सिया तरुणे, बलवं, जुगवं, जुवाणे अप्पायंके, थिर-संघयणे, थिरग्गहत्थे, दढ-पाणि-पाय-पिट्ठंतरोरु-संघाय-परिणए, घण-निचिय-वलिय-वट्ट-खंधे, चम्मेट्ठग-दुघण-मुट्ठिय-समाहय-गत्ते, उरस्स-बल-समन्नागए, तल-जमल-जुयल-फलिह-निभ-बाहू, लंघण-पवण-जवण-पमद्दण-समत्थे, छेए, दक्खे, पट्ठे, कुसले, मेहावी, णिउण-सिप्पोवगए एगं महं सलागा-हत्थगं वा दंड-संपुच्छणिं वा वेणु-सलाइयं वा गहाय, रायंगणं वा रायंतेउरं वा देव-कुलं वा सभं वा पवं वा आरामं वा उज्जाणं वा अतुरियमचवलमसंभंते निरंतरं सुनिउणं सव्वओ समंता संपमज्जेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा संवट्टय-वाए विउव्वंति, विउव्वित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समंता जोयण-परिमण्डलं जं किंचि तणं वा पत्तं वा तहेव सव्वं आहुणिय आहुणिय एगंते एडेंति एडित्ता खिप्पामेव उवसमंति-उवसमेत्ता दोच्चं-पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता अब्भ-वद्दलए विउव्वंति।

वायु की रचना की और जैसे कोई तरुण, बलवान, युगवान—समय-असमय होने वाली शारीरिक पीड़ा से रहित युवा, ज्वरों आदि रोगों से विवर्जित—निरोग मजबूत अस्थि-पंजर—काठीवाला निश्चल पंजोंवाला, सुदृढ़ बाहु, पैर, पीठ—पृष्ठान्तर—नितम्ब—कटिप्रदेश वाला, अत्यन्त सघन—ठोस गोल वलयों—कड़ों जैसे स्कन्ध—कंधोंवाला, बारम्बार मुष्टि प्रहारों से निचित (नीचिड़, अत्यन्त मजबूत) शरीरवाला, बल वीर्य और पराक्रम पुरुषार्थ संपन्न महोत्पन्न तालवृक्ष के समान लम्बी पुष्ट भुजाओं वाला, लम्बे-लम्बे डग भरनेवाला, पवन के समान चपल, कठिन से कठिन कार्य को करने के सामर्थ्यवाला, कलानिपुण, दक्ष, चतुर, कार्य कुशल, मेधावी श्रमिक भली प्रकार से बनाई हुई सींकों की अथवा मूंठ वाली अथवा बांस के सींकों की झाडू हाथ में लेकर राज प्रांगण को, राजान्तःपुर, देवालय को, सभा को, प्याऊ को, बाग को, उद्यान को, बिना किसी उतावली के, आकुलता के, घबराहट के, भलीभांति चतुराई से सर्व दिशाओं में चारों ओर पूरी तरह से साफ कर देता है, उसी प्रकार से उन सूर्याभदेव के आभियोगिक देवों ने संवर्तक वायु की विकुर्वणा करके श्रमण भगवान महावीर के विराजने के स्थान के आसपास चारों ओर एक योजन के परि-मण्डल में जो कुछ भी तृण, काष्ठ अथवा पत्ते आदि थे उनको उठा उठाकर एकान्त स्थान में फेंक दिया और फेंककर शीघ्र ही उस भूमण्डल को स्वच्छ, शांत कर दिया, उपशमित करके पुनः वैक्रिय समुद्घात किया और उसके द्वारा जलबहुल बादलों की रचना की।

से जहा-णामए भइग-दारए सिया, तरुणे-जाव-सिप्पोवगए एगं महं दग-वारगं वा दग-कुम्भगं वा दग-थालगं वा दग-कलसगं, वा गहाय, आरामं वा-जाव-पवं वा अतुरिय-जाव-सव्वओ समंता आवरिसेज्जा, एवामेव तेऽवि सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा अब्भ-वद्दलए विउव्वंति, विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणा-यन्ति, पतणतणायित्ता खिप्पामेव विज्जुयायंति, विज्जुयायित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स सव्वओ समंता जोयण-परिमंडलं णच्चोदगं, णाइमट्टियं तं पविरल-पप्फुसियं, रय-रेणुविणासणं, दिव्वं, सुरभि-गंधोदगं वासं वासंति, वासेत्ता णिहयरयं, णट्ठरयं, भट्ठरयं, उवसंत-रयं, पसंत-रयं करेंति, करित्ता खिप्पामेव उवसामंति। उवसामेत्ता पुप्फवद्दलए च तच्चं पि वेउव्विय समुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता पुप्फ-वद्दलए विउव्वंति।

जैसे कोई तरुण—यावत्—कार्य कुशल श्रमिक (छिड़काव करने वाला भिश्ती) एक बड़े पानी से भरे हुए सामान्य घड़े को अथवा जलकुम्भ को, अथवा थाल को अथवा जलकलश को हाथ में लेकर बगीचे को—यावत्—प्याऊ को बिना किसी उतावली के—यावत्—चतुरता से सब ओर चारों दिशाओं में छिड़काव करता है, उसी प्रकार उन सूर्याभदेव के आभियोगिक देवों ने जलबहुल की विकुर्वणा करके चारों ओर फैलाया, फैलाकर विद्युत—बिजली चमकाई और श्रमण भगवान महावीर के विराजने के स्थान से चारों ओर एक योजन विस्तार में रिम-झिम-रिमझिम मेघ बरसाया, कि जिससे कीचड़ नहीं हुआ और उस फुआर से धूलि का उड़ना रुक गया, फिर दिव्य गंधोदक की वर्षा की, वर्षा करके भूमण्डल को निहित रज, नष्ट रज, भ्रष्ट रज—धूल रहित, उपशांतरज, प्रशांतरज वाला किया, और वैसा करके शीघ्र ही मेघवर्षा को उपशमित किया—समेट लिया।

से जहा-णामए मालागार-दारए सिया तरुणे-जाव-सिप्पोवगए,

मेघवर्षा को उपशमित करके तीसरी बार पुनः वैक्रिय समुद्-

एगं महं पुप्फ-छज्जियं वा पुप्फ-पडलगं वा पुप्फ-चंगेरियं वा गहाय रायंगणं वा-जाव-सव्वओ समंता कयग्गह-गहिय-करयल-पब्भट्ठ-विप्पमुक्केणं दसद्ध वन्नेणं कुसुमेणं मुक्क-पुप्फ-पुंजोवयार-कलियं करेज्जा, एवामेव ते सूरियाभस्स देवस्स आभिओगिया देवा पुप्फ-वद्दलए विउव्वंति, विउव्वित्ता खिप्पामेव पतणतणायन्ति-जाव-जोयण-परिमण्डलं जल-थलय-भासुर-प्पभूयस्स बिंट-ट्ठाइस्स दसद्ध-वन्न-कुसुमस्स जाणुस्सेह-प्पमाण-मेत्तिं ओहि-वासं वासंति वासित्ता कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क धूव-मघमघंत-गंधुद्धुयाभिरामं, सुगंध-वर-गंधियं, गंधवट्टि-भूयं, दिव्वं, सुरवराभिगमण-जोग्गं करेंति कारयंति, करेत्ता य कारवेत्ता य खिप्पामेव उवसामंति ।

घात किया और समुद्घात करके पुष्प बादलों की और पुष्पाकृति जैसे धूपदानों की रचना की और जैसे कोई तरुण—यावत्—कुशल मालाकारपुत्र—माली फूलों से भरी एक छाबड़ी को अथवा पुष्प पटलक—पोटली को अथवा पुष्प चंगेरिका को हाथ में लेकर राजप्रांगण को—यावत्—सब तरफ चारों दिशाओं में कामिनी के केशपाश की तरह करतल से मुक्त पचरंगी पुष्पों से परिव्याप्त कर देता है, उसी प्रकार उन सूर्याभ देव के आभियोगिक देवों ने पुष्प मेघों की रचना की और रचना करके पुष्पों की वर्षा की—यावत्—एक योजन प्रमाण भूमण्डल को दीप्तिमान जलज, थलज नमित डंडीवाले पचरंगी पुष्पों से जमीन से ऊपर एक हाथ प्रमाण खचाखच भर दिया और फिर काले अगर, उत्तम कुन्दरुष्क, तुरुष्क की सुगंधित धूप जलाकर महकता हुआ कर दिया, जिसकी उड़ती हुई गंध मनमोहक थी, उत्तम सुगंध से गंधायमान हो रहा था और गंधवतिका सा प्रतीत हो रहा था और देवों के आगमन योग्य किया, करवाया, ऐसा करके और करवाके शीघ्र उन पुष्पमेघों को शमित किया, समेट लिया ।

जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो-जाव-वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ अम्बसालवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-वीइवयमाणा वीइवयमाणा जेणेव सोहम्मे कप्पे, जेणेव सूरियाभे विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव सूरियाभे देवे, तेणेव उवागच्छंति । देवं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति वद्धावित्ता समाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तत्पश्चात् जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वन्दना, नमस्कार किया—यावत्—वन्दना नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर के पास से, अम्बसालवन चैत्य से निकले, निकलकर अपनी उत्कृष्ट—यावत्—तेजगति से चलते हुए जहाँ सौधर्मकल्प था, जहाँ सूर्याभ विमान था जहाँ सुधर्मासभा थी और जहाँ सूर्याभदेव था, वहाँ आये । सूर्याभदेव को दोनों हाथ जोड़कर शिरसावर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय विजय उनकी शब्दों से बधाया और बधाकर आज्ञा पालन की सूचना दी—आज्ञा वापस लौटाई ।

सूरियाभदेवादेसेण तव्विमाणवासिदेव-देवीण सस्संतिय-मागमणं—

१९. तए णं से सूरियाभे देवे तेसिं आभिओगियाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए पायत्ताणियाहिवई देवं सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सूरियाभे विमाणे, सभाए सुहम्माए, मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुर-सद्दं जोयण-परिमण्डलं सुसर-घंटं तिक्खुत्तो उल्लालेमाणे उल्लालेमाणे महया महया सद्देणं उग्घोसेमाणे उग्घोसेमाणे एवं वयाहि—आणवेइ णं भो सूरियाभे देवे, गच्छइ णं भो सूरियाभे देवे जंबुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, आमलकप्पाए णयरीए, अंबसालवणे चेतिए समणं भगवं महावीरं अभिवंदए । तुब्भेऽवि णं भो देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढीए-जाव-

सूर्याभदेव के आदेश से तद्विमानवासी देव-देवियों का उसके निकट आगमन—

१९. तदनन्तर उस सूर्याभदेव ने उन आभियोगिक देवों से इस अर्थ—बात को सुनकर, अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रफुल्ल हृदयवाले होकर पदात्यनीकाधिपति सेनापति देव को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही सूर्याभविमान की सुधर्मा सभा में टंगे हुए मेघगर्जना की तरह गम्भीर, मधुर झंकार और एक योजन परिमण्डल वाले सुस्वर-घंटे को तीन बार बजा-बजाकर उच्चस्वर घोष में उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'हे देवो ! सूर्याभदेव आज्ञा देता है, कि हे देवो सूर्याभदेव जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में आगत आमलकप्पा नगरी के अम्बसालवन में विद्यमान श्रमण भगवान महावीर के वन्दन हेतु जा रहे हैं । इसलिए हे देवानुप्रियो ! तुम लोग भी समस्त ऋद्धि—यावत्—

णाइय-रवेणं, णियग-परिवाल-सद्धिं संपरिवुडा, साइं-साइं-जाण-विमाणाइं दुरूढा समाणा अकाल-परिहीणं चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवह।"

तए णं से पायत्ताणियाहिवई देवे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए 'एवं देवा ! तह' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ. पडिसुणित्ता जेणेव सूरियाभे विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा, जेणेव मेघोघ रसिय-गम्भीर-महुर-सद्दा, जोयण-परिमंडला, सु-स्सरा घंटा, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता तं मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुर-सद्दं, जोयण-परिमंडलं, सु-स्सरं घंटं तिखुत्तो उल्लालेइ।

तए णं तीसे मेघोघ-रसिय-गंभीर-महुर-सद्दाए, जोयण-परिमण्डलाए, सु-स्सराए घंटाए तिक्खुत्तो उल्लालियाए समाणीए, से सूरियाभे विमाणे पासायविमाणणिक्खुडावडिय-सद्द-घंटा-पडिसुया-सय-सहस्स-संकुले जाए यावि होत्था।

तए णं तेसिं सूरियाभ-विमाण-वासीणं बहूणं वेमाणियाणं देवाण य देवीण य एगंत-रइ-पसत्त-निच्च-प्पमत्त-विसय-सुह-मुच्छियाणं सुस्सर-घंटारव-विउल-बोल-तुरिय-चवल-पडिबोहणे कए समाणे, घोसण-कोउहल-दिन्न-कन्न-एगग्ग-चित्त-उवउत्त-माणसाणं से पायत्ताणि-याहिवई देवे तंसि घंटा-रवंसि णिसंत-पसंतंसि महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणे-उग्घोसेमाणे एवं वयासी—

'हंत सुणंतु भवंतो सूरियाभविमाणवासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सूरियाभ-विमाण-वइणो वयणं हिय-सुहत्थं आणवेइ णं भो ! सूरियाभे देवे, गच्छइ णं भो सूरियाभे देवे जंबुद्दीवं दीवं, भारहं वासं, आमलकप्पं नयरिं, अंबसालवणं चेइयं, समणं भगवं महावीरं अभिवंदए। तं तुब्भेऽवि णं देवाणुप्पिया ! सव्विड्ढीए अकाल-परिहीणा चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवह' ॥

तए णं ते सूरियाभ-विमाण-वासिणो बहवे वेमाणिया देवा देवीओ य पायत्ताणियाहिवइस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, णिसम्म, हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियया, अप्पेगइया वंदण-वत्तियाए, अप्पेगइया नमंसण-वत्तियाए, अप्पेगइया सक्कार-वत्तियाए एवं संमाणवत्तियाए, कोउहल-वत्तियाए, अप्पे० 'असुयाइं सुणिस्सामो, सुयाइं अट्ठाइं, हेऊइं, पसिणाइं, कारणाइं, वागरणाइं पुच्छिस्सामो,' अप्पेगइया सूरियाभस्स देवस्स वयणमणुयत्तमाणा अप्पेगइया असुयाइं सुणेस्सामो, अप्पेगइया सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो

वाद्यध्वनिपूर्वक अपने अपने पारिवारिक जनों से परिवेष्ठित होकर, अपने अपने यान—विमान में बैठकर अविलम्ब—देरी नहीं करके सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित होओ।'

तदनन्तर उस पदात्यनिकाधिपति देव ने सूर्याभदेव की आज्ञा सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रफुल्लहृदय होकर 'हे देव ! आपके वचन प्रमाण' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा स्वीकार की स्वीकार करके सूर्याभ विमान में जहाँ सुधर्मा सभा थी, जहाँ मेघगर्जना के समान गम्भीर मधुर शब्द ध्वनि और एक योजन परिमण्डलवाला सुस्वर घंटा था, वहाँ आया और वहाँ आकर उस मेघगर्जना के समान गम्भीर मधुर शब्द ध्वनि और एक योजन परिमण्डल वाले सुस्वर घंटे को तीन बार बजाया।

तत्पश्चात् उस मेघगर्जना के समान गम्भीर मधुर ध्वनि और एक योजन परिमण्डल वाले सुस्वर घंटे के तीन बार बजाये जाने पर उस सूर्याभ विमान के प्रासाद विमानों के कोने-कोने घंटा ध्वनि की सहस्रों प्रतिध्वनियों से परिव्याप्त हो गये।

उसके बाद उस सुस्वर घंटा की ध्वनि के विपुलघोष से एकान्त रति-क्रीड़ा में लीन, मदोन्मत्त और विषयसुख में मूर्च्छित उस सूर्याभ विमानवासी बहुत से देवों और देवियों के तत्काल अतिशीघ्र प्रतिबोधित होने पर और घोष कौतूहल से कान देकर, मन को केन्द्रित कर, दत्तचित्त होने पर उस पदात्य-निकाधिपति देव ने उस घंटास्वर के शांत प्रशांत होने पर बड़े जोर-जोर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहा—

'ओ सूर्याभ विमानवासी देवों और देवियों ! आप लोग सूर्याभविमान के अधिपति सूर्याभदेव के हितप्रद और सुखकर आज्ञावचनों को सुनें, कि सूर्याभदेव जम्बूद्वीप के भारतवर्ष की आमलकप्पा नगरी के अम्बसालवन चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान महावीर की वन्दना के लिए जा रहे हैं। इसलिए हे देवानुप्रियों ! आप लोग समस्त ऋद्धि वैभव सहित अविलम्ब, समय पर सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हो जायें।'

तब उस सूर्याभ विमानवासी बहुत से देव और देवियाँ पदात्यनिकाधिपति देव के इस कथन को सुनकर और अवधा-रितकर हर्षित, संतुष्ट—यावत्—प्रफुल्ल हृदय हुए और उनमें से कितने ही देव-देवियाँ वन्दना की भावना से, कितने ही नमन करने के विचार से, कितने ही सत्कार करने के विचार से और सम्मान करने के विचार से, कितने ही कौतूहलवृत्ति से, कितने ही अश्रुतपूर्व सुनने की भावना से और कितने ही पहले सुने हुए अर्थ का निर्णय करने हेतु, प्रश्न, कारण और विवेचन जानने के विचार से, कितने ही सूर्याभदेव के वचनों का अनुसरण करने के विचार से, कितने ही अश्रुतपूर्व को सुनेंगे, कितने ही जो सुना है, उस सम्बन्धी शंकाओं का समाधान करके निःशंक होने की भावना

अप्पेगइया अप्पमन्नमणुयत्तमाणा, अप्पेगइया जिण-भत्ति-रागेणं, अप्पेगइया धम्मो त्ति, अप्पेगइया जीयमेयं ति कट्टु सव्विड्ढीए-जाव-अकाल-परिहीणा चेव सूरियाभस्स देवस्स अंतियं पाउब्भवंति।

से, कितने ही परस्पर एक दूसरे का अनुकरण करके, कितने ही जिनभक्ति के अनुराग से, कितने ही यह हमारा धर्म-कर्तव्य है के विचार से, कितने ही यह हमारा परम्परागत व्यवहार है के विचार से सर्वऋद्धि-वैभव सहित—यावत्—अविलम्ब यथासमय सूर्याभदेव के समक्ष उपस्थित हुए।

सूरियाभदेवाएसेण आभिओगियदेवकय दिव्वजाणविमाणनिम्माणं, दिव्वजाणविमाणवण्णओ य—

सूर्याभदेव के आदेश से आभियोगिक देवकृत दिव्ययान विमान निर्माण और दिव्ययान विमान का वर्णन—

२०. तए णं से सूरियाभे देवे ते सूरियाभ-विमाण-वासिणो बहवे वेमाणिये देवे य देवीओ य अकाल-परिहीणे चेव अंतियं पाउब्भवमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए आभिओगियं देवं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

'खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! अणेग-खंभ-सय-संनिविट्ठं, लील-ट्ठिय-सालभंजियागं, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किंनर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्तं, खंभुग्गय-वर-वइर-वेइया-परिगयाभिरामं, विज्जाहर-जमल-जुयल-जंत-जुत्तं-पिव अच्ची-सहस्स-मालणीयं, रूवग-सहस्स-कलियं, भिसमाणं, भिब्भिसमाणं, चक्खुल्लोयण-लेसं, सुह-फासं, सस्सिरीय-रूवं, घंटावलि-चलिय-महुर-मणहर-सरं, सुहं, कंतं, दरिसणिज्जं, णिउणोविय-मिसिमिसित-मणि-रयण-घंटिया-जाल-परिक्खित्तं, जोयण-सय-सहस्स-विच्छिण्णं, दिव्वं गमण-सज्जं, सिग्घगमणं णाम दिव्वं जाण-विमाणं विउव्वाहि, विउव्वित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि'।

२०. तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने यथा समय अविलम्ब उपस्थित हुए देव और देवियों को देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रफुल्लहृदय हो आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र ही एक लाख योजन प्रमाण विस्तारवाला एक विशाल यान विमान तैयार करो, जो सैंकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट हो, जहाँ तहाँ जिसमें हाव-भाव विलासलीला करती हुई काष्ठपुतलियाँ बनी हुई हों और ईहा—मृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर....सरभ, चामर गाय, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम बने हुए हों, वज्र, वैडूर्य मणि आदि से बनी हुई स्तम्भों की सुन्दर वेदिकायें (चित्र कोरनी) हों, जिसमें बने हुए विद्याधर युगल यंत्र चलित जैसे दिखते हों, अपनी हजारों किरणों से सूर्य के समान जगमगाहट करने वाले ऐसे हजारों रूपकों से युक्त हों, जो दीप्यमान, देदीप्यमान, नेत्राकर्षक, सुखद स्पर्शवाला, सश्रीक-रूपसंपन्न, चंचल घंटावाली से मधुर मनहर स्वर संपन्न, शुभ कांत, दर्शनीय, प्रमाणोपेत अथवा निपुणता से बनाया गया, चमचमाती मणि रत्नों की मालाओं से परिवेष्ठित, दिव्यगति में संपन्न और वेगवाली गति से युक्त हो, ऐसे यान विमान की रचना करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ अर्थात् विमान रचना की सूचना दो।

तए णं से आभिओगिए देवे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-जाव-हियए, करयल-परिग्गहियं-जाव-पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं-जाव-अहाबायरे पोग्गले परिसाडेइ, परिसाडित्ता अहासुहुमे पोग्गले परियाएइ परियाइत्ता दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणित्ता अणेग-खंभ-सय-सन्निविट्ठं-जाव-दिव्वं जाण-विमाणं विउव्विउं पवत्ते यावि होत्था।

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने सूर्याभदेव की आज्ञा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत् प्रफुल्लहृदय हो दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—स्वीकार की, स्वीकार करके उत्तर पूर्व दिक्-कोण में गये वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन विस्तार वाला दण्ड निकाला—यावत्—स्थूल बादर पुद्गलों को हटाया और हटाकर यथा सूक्ष्म पुद्गलों को ग्रहण किया, ग्रहण करके पुनः दूसरी बार भी वैक्रिय समुद्घात करके वे सैकड़ों स्तम्भों से सन्निविष्ट—यावत्—दिव्य विमान की रचना में प्रवृत्त हो गये।

तए णं से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाण-विमाणस्स ति-दिसिं ति-सोवाण-पडिरूवए विउव्वइ, तं जहा-पुरत्थिमेणं

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने उस दिव्य विमान की तीनों बाजुओं में तीन सुन्दर सोपानों की रचना की, यथा—

दाहिणेणं उत्तरेणं, तेसिं ति-सोवाण-पडिरूवगाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा-वइरामया णिम्मा, रिट्ठामया पइट्ठाणा, वेरुलियामया खंभा, सुवण्ण-रुप्पमया फलगा, लोहियक्खमईओ सूईओ, वयरामया संधी, णाणामणिमया अवलंबणा अवलंबणबाहाओ य पासादीया-जाव- पडिरूवा।

पूर्व, दक्षिण और उत्तर में, उन सुन्दर सोपानों का वर्णन इस प्रकार है:—जिनकी नींव वज्रों से बनाई गई थी, उनके प्रतिष्ठान—पगथिया रिष्ठ रत्नों से बनाये गये थे, स्तम्भ वैडूर्य रत्नों से रचे गये थे, सोपानों के फलक—पटिया स्वर्ण-चाँदी से रचे गये थे, कटकड़े के सरिये लोहिताक्ष रत्नों से बनाये गये थे, संधिस्थान वज्रों से जोड़े गये थे, अवलंबनबाहा अनेक प्रकार की मणियों से रचे गये थे, और जो प्रासादिक—यावत्—प्रतिरूप थे।

तेसि णं ति-सोवाण-पडिरूवगाणं पुरओ पत्तेयं-पत्तेयं तोरणं पण्णत्ते।

उन तीनों सुन्दर सोपानों में से प्रत्येक के आगे तोरण बंधे हुए थे।

तेसि णं तोरणाणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा-तोरणा णाणा-मणिमया, णाणा-मणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठ-संणिविट्ठ-विविह-मुत्तंतरारूवोवचिया, विविह-तारारूवोवचिया-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों का इस प्रकार वर्णन है:—कि वे तोरण अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए थे, विविध प्रकार के मणिमयी स्तम्भों पर इस तरह से बाँधे गये थे कि हिलते नहीं थे—निश्चल थे, विविध प्रकार के मोतियों से भाँति-भाँति के बेलबूटे बनाये गये थे, विविध प्रकार के तारारूपों से उपचित—व्याप्त थे—यावत्—प्रतिरूप थे।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं अट्ठट्ठ-मंगलगा पण्णत्ता, तं जहा-सोत्थिय-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणा-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों के ऊपर अष्ट मंगल स्थापित किये गये थे, उनके नाम इस प्रकार हैं:— १. स्वास्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्द्यावर्त, ४. वर्द्धमानक, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७. मत्स्य और ८. दर्पण जो स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप थे।

तेसि च णं तोरणाणं उप्पिं बहवे किण्हचामरज्झए-जाव-सुक्किलचामरज्झए अच्छे-जाव-पडिरूवे विउव्वइ।

उन तोरणों के ऊपर बहुत से कृष्ण चामर—यावत्—श्वेत चामर आदि अनेक रंग-बिरंगी ध्वजाएँ लटकाई हुई थीं, जो स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप थीं।

तेसि णं तोरणाणं उप्पिं बहवे छत्ताइच्छत्ते, पडागाइपडागे, घंटाजुयले, उप्पलहत्थए, कुमुय-णलिण-सुभग-सोगंधिय-पोंडरीय-महापोंडरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-हत्थए, सव्व-रयणामए, अच्छे-जाव-पडिरूवे विउव्वइ।

उन तोरणों के ऊपर बहुत से छत्रों के ऊपर छत्र, पताकाओं पर पताकाएँ, घंटायुगल, उत्पल, कुमुद, नलिन, सुन्दर, सौगंधिक-पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र सहस्रपत्र कमलों के झूमके लटकाये गये थे जो सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, स्वच्छ—निर्मल—यावत्—प्रतिरूप रचे गये थे।

तए णं से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाण-विमाणस्स अंतो बहु-सम-रमणिज्जं भूमि-भागं विउव्वइ। से जहा-णामए आलिंगपुक्खरे इ वा मुइंग-पुक्खरे-इ वा सर-तले इ वा चंद-मंडले इ वा सूर-मंडले इ वा आयंस मंडले इ वा उरब्भ-चम्मे इ वा, वसह-चम्मे इ वा वराह चम्मे इ वा सीह-चम्मे इ वा वग्घ-चम्मे इ वा छगल-चम्मे इ वा दीविय-चम्मे इ वा अणेगसंकु-कीलग-सहस्सवियए, णाणाविह-पंच-वण्णेहिं

तत्पश्चात् (सोपानों आदि बाहर की रचना करने के बाद) उन आभियोगिक देवों ने उस दिव्ययान-विमान के अन्दर के भूमि भाग की बहुत ही रमणीय रचना की। जैसे कि वह—मुरज (किले का बुरज) के ऊपर का भाग हो अथवा मृदंग के ऊपर का भाग हो अथवा सरोवर के ऊपर का भाग हो अथवा हाथ की हथेली का भाग हो अथवा चन्द्रमंडल के ऊपर का भाग हो अथवा सूर्यमंडल के ऊपर का भाग हो अथवा दर्पण के ऊपर का भाग हो अथवा बड़े-बड़े खीलों को ठोककर चारों ओर से खींच खींचकर सम बनाये गये भेड़ के, बैल के, वराह-सूअर के, सिंह के, बाघ के, बकरे के, चीते के, चमड़े का ऊपरी भाग हो, इस प्रकार से उस विमान के अन्दर का भूमिभाग सम बनाया गया था तथा उस भूभाग में काली, नीली, लाल, पीली और श्वेतवर्ण की जो

मणीहिं उवसोभिए, आवड-पच्चावड-सेढिप्पसेढि-सोत्थिय-पूसमाणग-वद्धमाणग-मच्छंडग-मगर-मार-फुल्लावलि-पउमपत्त-सागर-तरंग-वसंतलय-पउमलय-भत्ति-चित्तेहिं, सच्छाएहिं, सप्पभेहिं, समरीइएहिं, सउज्जोएहिं, णाणाविह-पंचवण्णेहिं मणीहिं उवसोभिए, तं जहा—किण्हेहिं, णीलेहिं, लोहिएहिं, हालिद्देहिं, सुक्किल्लेहिं;

मणि जुड़ी हुई थीं, उनमें से कितनी ही आवर्तवाली, प्रत्यावर्तवाली और श्रेणी प्रश्रेणी वाली थीं तथा कितनी ही मणि स्वस्तिक जैसी, सौवस्तिक जैसी, पुष्य माणव जैसी, वर्द्धमानक—शरावसंपुट जैसी, मछली के अंडे जैसी, मगर के अण्डे जैसी आकृति की मालूम होती थीं और कितनी ही मणियों में फूलबेल, कमलपत्र, समुद्रतरंग, वासंतीलता, पद्मलता आदि के चित्राम बने हुए हों ऐसी दीखती थीं, इस प्रकार उस भूभाग में जुड़ी हुई वे पंचरंगी मणि अपनी निर्मलता, प्रभा, चमचमाहट और उद्योत ओज तेज से शोभायमान हो रही थीं।

तत्थ णं जे ते किण्हा मणी तेसि णं मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा नामए, जीमूतए इ वा अंजणे इ वा खंजणे इ वा कज्जले इ वा गवले इ वा गवल-गुलिया इ वा भमरे इ वा भमरावलिया इ वा भमर-पतंग-सारे इ वा जंबू-फले इ वा अद्दारिट्ठे इ वा परपुट्ठे इ वा गए इ वा गय-कलभे इ वा किण्ह-सप्पे इ वा किण्ह-केसरे इ वा आगास-थिग्गले इ वा किण्हासोए इ वा किण्ह-कणवीरे इ वा किण्ह-बंधुजीवे इ वा, भवे एयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे। ओवम्मं समणाउसो ! ते णं किण्हा मणी इत्तो इट्ठतराए चेव कंततराए चेव मणुण्णतराए चेव मणामतराए चेव वण्णेणं पण्णत्ता।

उनमें जो काले रंग की मणि थी उनका रंग इस प्रकार का था कि जैसे मेघघटायें हों, अंजन हो, खंजन हो, काजल हो, भैंसे का सींग हो, भैंसे के सींग से बनाई गई गोली हो, भ्रमर हो, भ्रमरपंक्ति हो, भ्रमरपंख का सार भाग हो, जामुन का फल हो, कौए का बच्चा हो, कोयल हो, हाथी हो, हाथी का बच्चा हो, काला सांप हो, काला बकुल वृक्ष हो, शारदीय मेघ हो, काला अशोकवृक्ष हो, काली कनेर हो, काला बंधुजीवक हो, इस प्रकार उन काली मणियों का रंग था। क्या वे कालीमणि यथार्थ में ऐसे ही वर्ण की थीं ? यह अर्थ उनका वर्णन करने में समर्थ नहीं है। हे आयुष्यमान श्रमणों ! ये तो मात्र उपमायें हैं, वे मणि तो इन उपमाओं से भी अधिक इष्टतर, कान्ततर मणुण्णतर और मणामतर कृष्ण वर्ण वाली थीं।

तत्थ णं जे ते नीला मणी तेसि णं मणीणं इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा—नामए भिंगे इ वा भिंग-पत्ते इ वा सुए इ वा सुय-पिच्छे इ वा चासे इ वा चास-पिच्छे इ वा णीली इ वा णीली-भए इ वा णीली-गुलिया इ वा सामा इ वा उच्चन्तगे इ वा वणराई इ वा हलधर-वसणे इ वा मोरग्गीवा इ वा अयसि-कुसुमे इ वा बाण-कुसुमे इ वा अंजणकेसिया-कुसुमे इ वा नीलुप्पले इ वा णीलासोगे इ वा णील-बंधुजीवे इ वा णील-कणवीरे इ वा, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे। ते णं णीला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-वण्णेणं पण्णत्ता।

उन मणियों में जो नीलवर्ण की मणि थीं उनका वर्ण इस प्रकार का था—जैसा कि भृंग का, भृंगपत्र का, तोते का, तोते के पत्र का, चाषपक्षी का, चाषपक्षी की पूँछ का, नील का, नील के भीतरी भाग का, नीलगुटिका का, सांवा का, उच्चंतक का, वनराजिका का, बलदेव के पहिनने के कपड़ों का, मोर की गर्दन का, अलसी के फूल का, बाण के फूल का, अंजनकेशी के फूल का, नीलकमल का, नीले अशोकवृक्ष का, नीले बंधुजीवक (कौड़ा) का, नीली कनेर का होना है। क्या वे नीली मणि पूर्वोक्त उपमाओं जैसी नीली थीं ? यह अर्थ उनके वर्णन करने में समर्थ नहीं है। वे नीली मणि इन उपमेय पदार्थों से अधिक इष्टतर—यावत्—वर्ण वाली थीं।

तत्थ णं जे ते लोहियगा मणी तेसि णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, से जहा—णामए उरब्भ-रुहिरे इ वा ससरुहिरे इ वा नर-रुहिरे इ वा वराह-रुहिरे इ वा महिस-रुहिरे इ वा बालिंदगोवे इ वा बाल-दिवायरे इ वा संझब्भ-रागे इ वा गुंजद्ध-रागे इ वा जासुमण-कुसुमे इ वा किंसुय-कुसुमे इ वा पालियाय-कुसुमे इ वा जाइ-हिंगुलए इ वा सिल-प्पवाले इ वा पवाल-अंकुरे इ वा लोहियक्ख मणी इ वा लक्खा-रसगे इ वा किमिराग-कंबले इ वा चीण-पिट्ठरासी इ वा रत्तुप्पले इ वा रत्ता

इन मणियों में जो लालवर्ण की मणि थीं उनका वर्ण इस प्रकार था—भेड़ के रक्त जैसी, खरगोश के खून जैसी, मनुष्य के लोहू जैसी, सूअर के लोहू जैसी भैंस के लोहू जैसी, बाल इन्द्रगोप जैसी, उदय होते प्रभातकालीन सूर्य जैसी, संध्या के रक्तवर्ण जैसी, गुंजाफल के आधे भाग जैसी, जपापुष्प जैसी, पलाशपुष्प जैसी, पारिजात पुष्प जैसी, जातिमान श्रेष्ठ हिंगुलुक जैसी, शिलाप्रवाल—मूंगे जैसी, प्रवाल अंकुर जैसी, लोहिताक्षमणि जैसी, लाक्षारस जैसी, कृमि के रंग से रंगे कंबल जैसी, चीण (धान्य विशेष) के आटे के ढेर

सोगे इ वा रत्त-कणवीरे इ वा रत्त-बंधुजीवे इ वा, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं लोहिया मणी इत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-वण्णेणं पण्णत्ता ।

तत्थ णं जे ते हालिद्दा मणी तेसि णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहा-णामए चंपए इ वा चंप-छल्ली इ वा चंपग-भेए इ वा हलिद्दा इ वा हलिद्दा-भेए इ वा हलिद्दा-गुलिया इ वा हरियालिया इ वा हरियाल-भेए इ वा हरियाल-गुलिया इ वा चिउरे इ वा चिउरंगराए इ वा वर-कणगे इ वा वर-कणग-निघसे इ वा [सुवण्ण-सिप्पाए इ वा] वर-पुरिस-वसणे इ वा अल्लई-कुसुमे इ वा चंपा-कुसुमे इ वा कुहंडिया-कुसुमे इ वा तड-वडा-कुसुमे इ वा घोसेडिया-कुसुमे इ वा सुवण्ण-जूहिया-कुसुमे इ वा सुहिरण्ण-कुसुमे इ वा कोरंटग-वर-मल्लदामे इ वा बीयय-कुसुमे इ वा पीयासोगे इ वा पीय-कणवीरे इ वा पीय-बंधुजीवे इ वा, भवेया-रूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं हालिद्दा मणी एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-वण्णेणं पण्णत्ता ।

तत्थ णं जे ते सुक्किल्ला मणी तेसि णं मणीणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते । से जहा—नामए अंके इ वा संखे इ वा चंदे इ वा कुमुदोदक-दगरय-दहि-घणक्खीर-क्खीरपूरे इ वा कोंचावली इ वा हारावली इ वा हंसावली इ वा बलागावली इ वा चंदावली इ वा सारइय-बलाहए इ वा धंत-धोय-रुप्प-पट्टे इ वा सालि-पिट्ठ-रासी इ वा कुन्द-पुप्फ-रासी इ वा कुमुय-रासी इ वा सुक्क-छिवाडी इ वा पिहुण-मिंजिया इ वा भिसे इ वा मुणालिया इ वा गय-दंते इ वा लवंग-दलए इ वा पोंडरिय-दलए इ वा सेयासोगे इ वा सेय-कणवीरे इ वा सेय-बन्धुजीवे इ वा, भवेया-रूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं सुक्किल्ला मणी एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-वन्नेणं पण्णत्ता ।

तेसि णं मणीणं इमेयारूवे गंधे पण्णत्ते, से जहा—नामए कोट्ठ-पुडाण वा तगर-पुडाण वा एला-पुडाण वा चोय-पुडाण वा चंपा-पुडाण वा दमणा-पुडाण वा कुंकुम-पुडाण वा चंदण-पुडाण वा उसीर-पुडाण वा मरुआ-पुडाण वा जाति-पुडाण वा जूहिया-पुडाण वा मल्लिया-पुडाण वा ण्हाण-मल्लिया-पुडाण वा केयइ-पुडाण वा पाडलि-पुडाण वा णोमालिया-पुडाण वा अगुरु-पुडाण वा लवंग-पुडाण वा वास-पुडाण वा कप्पूर-पुडाण वा अणुवायंसि वा ओभिज्जमाणाण वा कुट्टिज्जमाणाण वा भंजिज्जमाणाण वा

जैसी, रक्तकमल जैसी, लाल अशोकवृक्ष जैसी, रक्त कनेर जैसी, रक्त बंधुजीवक जैसी लाल रंग वाली थीं । क्या वे लालमणि पूर्वोक्त पदार्थों के रंग जैसी लाल थीं ? यह अर्थ पदार्थ उन मणियों की लालिमा का वर्णन करने में समर्थ नहीं है । वे रक्त मणि तो इनसे भी इष्टतर—यावत्—वर्ण वाली थीं ।

इन मणियों में जो पीली मणि थीं उनका वर्णन इस प्रकार का था—कि जैसा कि चंपा का, चंपा की छाल का, चंपावृक्ष के भीतरी भाग का, हल्दी का, हल्दी के अन्दर के भाग का, हल्दी की गोली का, हरताल का, हरताल के भीतरी भाग का, हरतालगुटिका का, चिकुर का, चिकुर के रंग का, उत्तम शुद्ध स्वर्ण का, उत्तम स्वर्ण की रेखा का (सुनहली धाम का) वासुदेव के वस्त्रों का, अल्लकी पुष्प का, चंपापुष्प का, कद्दू के फूल का, आंवले के फूल का, घोषातिकी पुष्प का, सुनहली जूही के फूल का, पीत अशोकवृक्ष का, पीली कनेर का, पीले बंधुजीवक का होता है । क्या वे पीलीमणि पूर्वोक्त पदार्थों के पीले रंग जैसी पीतवर्ण की थीं ? यह अर्थ उन मणियों के पीतरंग का वर्णन करने में अर्थ समर्थ नहीं है, क्योंकि वे पीलीमणि इनसे भी इष्टतर—यावत्—वर्णवाली थीं ।

इन मणियों में जो श्वेत वर्ण की मणि थीं, उन मणियों का वर्णन इस प्रकार था, कि जैसा अंकरत्न का, शंख का, चन्द्र का, कमल के ऊपर के जल का, शुद्ध जलबिन्दु का, दही का, कपूर का, गोदुग्ध का, क्रौंचपंक्ति का, मुक्ताहार पंक्ति का, हंसपंक्ति का, बकपंक्ति का, चन्द्रपंक्ति का, शरदऋतु के मेघों का, स्वच्छ चांदी के पतरे का, चावल के आटे के ढेर का, कुन्दपुष्पराशि का, कुमुदराशि का, वाल की सूखी फलियों का, मयूरपिच्छ के अन्दर की डंडी का, मृणालतंतु का, मृणाल का, हाथी के दांत का, लवंगफूल के गुच्छे का, पुण्डरीक कमल का, श्वेत अशोक का, श्वेत कनेर का, श्वेत बंधुजीवक का होता है । क्या उन श्वेतमणियों का रंग पूर्वोक्त पदार्थों के वर्ण जैसा धवल—श्वेत था ? नहीं, यह अर्थ उन मणियों के श्वेतरंग का वर्णन करने में ये पदार्थ समर्थ नहीं हैं, वे श्वेतमणि तो इनसे भी इष्टतर—यावत्—श्वेतवर्ण वाली थीं ।

उन मणियों की इस प्रकार की गंध थी, कि जैसी कि कोष्ठों के, तगर के, इलायची के, चोये के, चंपा के, दमणा के, कुंकुम के, चन्दन के, खस के, मरुआ के, जाई पुष्प, जूही, मल्लिका, स्नानमल्लिका, केतकी, पाटल, नवमल्लिका के पुष्पों, अगर, लवंग, वासकपूर, और कपूर के पुडों के अनुकूल बह रही वायु की दिशा में खोलने, कूटने, तोड़ने, उत्कीर्ण करने,

उक्किरिज्जमाणाण वा विक्किरिज्जमाणाण वा परिभुज्जमाणाण वा पडिसाहरिज्जमाणाण वा भंडाओ भंडं साहरिज्जमाणाण वा ओराला, मणुण्णा, मणहरा घाण-मण-निव्वुइ-करा, सव्वओ समंता गंधा अभिनिस्सवंति, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं मणी एत्तो इट्ठतराए चेव गंधेणं पन्नत्ता ।

बिखेरने, उपभोग करने, वितरित करने, पात्र से दूसरे पात्र में रखने पर जैसी उदार, आकर्षक, मनोज्ञ, मनमोहक, घ्राण और मन को तृप्तिदायक गंध सभी दिशाओं में फैलती है । क्या वह गंध इस प्रकार की थी ? नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है, ये सब तो मात्र उपमायें हैं । वे मणियाँ तो इनसे भी अधिक इष्टतर सुरभि गंध वाली बताई गई हैं ।

तेसि णं मणीणं इमेयारूवे फासे पण्णत्ते, से जहा—नामए आइणेइ वा रूए इ वा बूरे इ वा णवणीए इ वा हंस-गब्भ-तूलिया इ वा सिरीस-कुसुम-निचए इ वा बाल-कुमुय-पत्त-रासी इ वा, भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे । ते णं मणी एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-फासेणं पन्नत्ता ।

उन मणियों का इस प्रकार का यह स्पर्श कहा गया है—जैसे कि मृगछाला, रुई, बूर, हंसगर्भ नामक रुई विशेष, शिरीष पुष्पों का समूह, अथवा नवोत्पन्न कुमुदपत्रराशि का होता है । क्या उनका स्पर्श इस प्रकार है ? नहीं यह अर्थ समर्थ नहीं है । वे मणियाँ तो इससे भी अधिक इष्टतर प्रिय—यावत्—कोमल स्पर्शवाली बताई गई हैं ।

तए णं से आभिओगिए देवे तस्स दिव्वस्स जाण-विमाणस्स बहु-मज्झ-देस-भागे एत्थ णं महं पिच्छाघर-मंडवं विउव्वइ-अणेग-खंभ-सय-संनिविट्ठं अब्भुग्गय-सुकय-वर-वेइया-तोरण-वर-रइय-सालभंजियागं, सुसिलिट्ठ-विसिट्ठ-लट्ठ-संठिय-पसत्थ-वेरुलिय-विमल-खंभं, णाणामणि-कणग-रयण-खचिय-उज्जल-बहु-सम-सुविभत्त-भूमिभागं, ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्तं, खंभुग्गयवइरवेइयापरिगयाभिरामं, विज्जाहर-जमल-जुयल-जंत-जुत्तं पिव अच्चीसहस्स मालणीयं रूवगसहस्स-कलियं भिसमाणं भिब्भिसमाणं चक्खुल्लोयणलेसं सुहफासं सस्सिरीयरूवं कंचण-मणि-रयण-थूभियागं, णाणाविह-पंचवण्णा-घंटा-पडाग-परि-मंडियग्ग-सिहरं, चवलं, मरीइ-कवयं विणिम्मुयंतं, लाउल्लोइयमहियं, गोसीस-सरस-रत्तचंदण-दद्दर-दिन्न-पंचंगुलि-तलं, उवचिय-चंदण-कलसं, चंदण-घड-सुकय-तोरण-पडिदुवार-देस-भागं, आसत्तोसत्त-विउल-वट्ट-वग्घारिय-मल्ल दाम-कलावं, पंचवण्ण-सरस-सुरभि-मुक्क-पुप्फ-पुंजोवयार-कलियं, कालागुरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-

तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने उस दिव्ययान-विमान के अतीव मध्य भाग में एक विशाल प्रेक्षागृह-मंडप की रचना की । वह प्रेक्षागृह—मंडप अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट बना हुआ था, उसमें ऊँची और सुघड़ता से निष्पादित वेदिकायें, तोरण और सुन्दर पुत्तलिकायें बनी हुई थीं । वह सुन्दर, विशिष्ट, रमणीय आकार वाली, प्रशस्त और विमल वैडूर्य मणियों से निर्मित स्तम्भों से सुशोभित तथा उसका भूमिभाग विविध प्रकार की उज्ज्वल मणियों से खचित, सुविभक्त और अत्यन्त सम था, उसमें ईहामृग, वृषभ, अश्व, नर, मगर, पक्षी-सर्प, किन्नर, कस्तूरीमृग, अष्टापद, चामरगाय, हाथी, वन-लता, पद्मलता आदि के चित्राम बने हुए थे, स्तम्भों के शिरोभाग में बनी हुई वज्ररत्नों की वेदिकाओं से मनोहर दिखता था, यंत्रचलित जैसे विद्याधर युगलों से उपशोभित था, सूर्य के सदृश हजारों किरणों से देदीप्यमान था, एवं हजारों सुन्दर रूपकों से युक्त था, दीप्तमान अतीव दीप्तिमान, नेत्रों को आकृष्ट करने वाला, सुखप्रद स्पर्शवाला और रूप-शोभा-सम्पन्न था, उस पर स्वर्ण, मणि और रत्नमयी स्तूपिकायें बनी हुई थी, शिखर का शिरोभाग नाना प्रकार की घंटिकाओं और पचरंगी पताकाओं से परिमंडित था और अपनी चमचमाहट एवं चारों दिशाओं में फैल रही किरणों से चंचल-सा दिख रहा था, उसका आँगन, दीवारें गोबर और सफेद मिट्टी से लिपी-पुती थीं, स्थान-स्थान पर सरस गोशीर्ष रक्त चन्दन के थापे लगे हुए थे, और चन्दन कलश रखे थे, प्रत्येक द्वार चन्दन के कलशों और तोरणों से शोभित थे, दीवालों पर ऊपर से नीचे तक लम्बी-लम्बी सुगंधित गोल मालायें लटक रही थीं, स्थान-स्थान पर सरस सुगंधित पंचरंगी पुष्पों के मांडने किये हुए थे, उत्तम कृष्ण-अगर, कुन्दरुष्क, तुरुष्क (लोबान) और धूप की मनमोहक सुगंध से महक रहे थे, एवं उस सुरभिगंध से गंध-

सयमवंत-गंधद्धुयाभिरामं, सुगंध-वर-गंधियं, गंधवट्टि-भूयं, अच्छर-गण-संघ-संविकिण्णं, दिव्वं, तुडिय-सद्द-संपणाइयं, अच्छं-जाव-पडिरूवं ।

वर्तिका जैसा प्रतीत हो रहा था, अप्सराओं के समुदाय से व्याप्त था, दिव्यवाद्यनिनादों से गूँज रहा था, तथा वह स्वच्छ—यावत्—अतीव मनोहर था।

तस्स णं पिच्छाघर-मंडवस्स अंतो बहु-सम-रमणिज्ज-भूमि-भागं विउव्वइ-जाव-मणीणं फासो ।

उस प्रेक्षागृह मंडप के भीतर अत्यन्त समरमणीय भूमिभाग की विकुर्वणा की—यावत्—मणियों के स्पर्श पर्यन्त उस भूमि भाग का समस्त वर्णन पूर्ववत् यहाँ समझ लेना—कर लेना चाहिए।

तस्स णं पेच्छाघर-मंडवस्स उल्लोयं विउव्वइ पउमलय-भत्ति-चित्तं-जाव-पडिरूवं ।

उस सम एवं रमणीय प्रेक्षागृह मंडप के ऊपरी भाग—छत में पद्मलता आदि के चित्रामों से चित्रित, दर्शनीय—यावत्—असाधारण सुन्दर चन्देवा बंधा था।

तस्स णं बहु-सम-रमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहु-मज्झ-देस-भाए एत्थ णं एगं महं वइरामयं अक्खाडगं विउव्वइ ।

उस प्रेक्षागृह मंडप के अत्यन्त समरमणीय भूमिभाग के मध्यभाग में वज्ररत्नों से बने हुए एक विशाल अक्षपाट (अखाड़े—क्रीडामंच) की रचना की।

तस्स णं अक्खाडयस्स बहु-मज्झ-देस-भागे एत्थ णं महेगं मणिपेढियं विउव्वइ-अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्व-मणिमयं, अच्छं, सण्हं-जाव-पडिरूवं ।

उस अक्षपाट में मध्य भाग में आठ योजन लम्बी चौड़ी और चार योजन ऊँची पूर्णतया मणियों से बनी हुई एक विशाल मणि-पीठिका की विकुर्वणा की; वह स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप थी।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगं सिहासणं विउव्वइ, तस्स णं सीहासणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—तव-णिज्जमया चक्कला, रययामया सीहा, सोवण्णिया पाया, णाणा-मणिमयाइं पायसीसगाइं, जंबूणयमयाइं गत्ताइं, वइरामया संधी, णाणा-मणिमए वेच्चे । से णं सीहासणे ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर--कुञ्जर-वणलय-पउम-लय-भत्ति-चित्तं [सं]सार-सारोवचिय-मणि-रयण-पायवीढे, अत्थरग-मिउ-मसूरग-णव-तयकुसंत-लिम्ब-केसर-पच्चत्थुयाभिरामे, आईण-ग-रूय-बूर-णवणीय-तूल-फास-मउए, सुविरइय-रयत्ताणे, उव-चिय-खोम-दुगुल्ल-पट्ट-पडिच्छायणे, रत्तंसुय-संवुए, सुरम्मे, पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन बनाया। वह सिंहासन इस प्रकार का कहा गया है—उस सिंहासन के चक्कला (पायों के नीचे के गोलभाग) तपनीय—स्वर्ण विशेष के थे, सिंहाकृति वाले हत्थे रत्नों के, पाये सोने के, पादशीर्षक (कंगूरे) विविध प्रकार की मणियों के, बीच के गात्र जाम्बूनद—स्वर्ण के थे, उसकी संधि वज्ररत्नों से भरी हुई थीं, और उसके मध्यभाग में बुना गया बान (निवार) विविध प्रकार की मणियों से बना हुआ था। उस सिंहासन पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सर्प, किन्नर, कुंजर, (हाथी) वनलता, पद्मलता, आदि की आकृतियाँ बनी हुई थीं, सिंहासन के सामने रखा पादपीठ सर्वश्रेष्ठ मूल्यवान मणियों और रत्नों का बना हुआ था, उस पादपीठ पर नवतृण, कुशाग्र और केसर तंतुओं के सदृश अत्यन्त सुकोमल-सुन्दर मसूरक (गोल आसन) बिछा हुआ था, बैठने का स्थान मृगचर्म (मृगछाला) रुई, बूर, मक्खन और आक की रुई जैसे सुकोमल स्पर्शवाले रजस्त्राण से आच्छादित था और वह रजस्त्राण भी रुई से बने अत्यन्त रमणीय दूसरे रक्तांशुक वस्त्र से ढका हुआ था, जिससे वह अत्यन्त रमणीय, प्रासादिक—यावत्—प्रतिरूप दिखता था।

तस्स णं सिहासणस्स उवरिं एत्थ णं महगं विजय-दूसं विउव्वइ-संखंक-कुन्द—दगरय—अमय—महिय—फेण—पुञ्ज-संनिगासं, सव्व-रयणामयं, अच्छं, सण्हं, पासाईयं, दरिसणिज्जं, अभिरूवं पडिरूवं ।

उस सिंहासन के ऊपरी भाग में शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, ओसकण, मथे हुए क्षीरोदधि के फेन पुंज के सदृश प्रभावाले, सर्वात्मनारत्नमय स्वच्छ, स्निग्ध, प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप, एवं प्रतिरूप एक विजयदूष्य की विकुर्वणा की।

तस्स णं सीहासणस्स उवरिं विजय-दूसस्स य बहु-मज्झ-देस-भागे एत्थ णं महं एगं वयरामयं अंकुसं विउव्वइ ।

उस सिंहासन के ऊपरी भाग में लगे हुए विजयदूष्य के बीचों बीच एक महान वज्ररत्नमयी अंकुश की रचना की।

तंसि च णं वयरामयंसि अंकुसंसि कुम्भिक्कं मुत्ता-दामं विउव्वइ। से णं कुम्भिक्के मुत्ता-दामे अन्नेहिं चउहिं अद्ध-कुम्भिक्केहिं मुत्ता-दामेहिं तदद्धुच्चत्त-पमाणेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा, सुवण्ण-पयरग-मंडियग्गा, णाणा-मणि-रयण विविह-हारद्धहार-उवसोभिय-समुदया ईसिं अण्णमण्णमसंपत्ता, वाएहिं पुव्वावर-दाहिणुत्तरागएहिं मंदायं-मंदायं एइज्जमाणाणि, एइज्जमाणाणि, पलंबमाणाणि पलंब-माणाणि, वंदमाणाणि वंदमाणाणि, उरालेणं, मणुन्नेणं, मणहरेणं, कण्ण-मण-णिव्वुइ-करेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

उस वज्ररत्नमयी अंकुश में कुम्भ प्रमाण आकार जैसे मुक्तादाम (झूमर) को लटकाया। वह कुम्भ प्रमाण वाला मुक्तादाम भी अन्य चार अर्धकुंभ प्रमाण वाले मुक्तादामों से परिवेष्ठित था। वे सभी मुक्तादाम सोने के लंबूसकों और स्वर्णपत्रों से परिमंडित थे, विविध प्रकार की मणियों, रत्नों, हारों और अर्धहारों के समुदाय से शोभित हो रहे थे, परस्पर में किंचितमात्र स्पर्शित होने जैसे लटक रहे थे, अतः जब पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर की हवा के झोंकों से मन्द-मन्द हिलते-डुलते तो एक दूसरे से टकराने पर बजने पर अपनी विशिष्ट मनोज्ञ, मनोहर, कान और मन को शांति प्रदान करने वाली रुनझुन-रुनझुन शब्दध्वनि से समीपवर्ती समस्त प्रदेश को व्याप्त करते हुए अपनी श्री-शोभा से अतीव-अतीव उपशोभित होते थे।

तए णं से आभिओगिए देवे तस्स सिंहासणस्स अवरुत्तरेणं उत्तरेणं उत्तर-पुरच्छिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स-देवस्स चउण्हं सामाणिय-साहस्सीणं चत्तारि भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ।

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने सिंहासन के पश्चिमोत्तर, उत्तर और उत्तरपूर्व दिक्कोण में सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देवों के लिए चार हजार भद्रासनों की विकुर्वणा की।

तस्स णं सीहासणस्स पुरच्छिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चउण्हं अग्ग-महिसीणं सपरिवाराणं चत्तारि भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ।

उस सिंहासन की पूर्वदिशा में सूर्याभदेव के परिवार सहित चार अग्रमहिषियों के लिए चार हजार भद्रासनों की रचना की।

तस्स णं सीहासणस्स दाहिण-पुरच्छिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स अब्भितरपरिसाए अट्ठण्हं देव-साहस्सीणं अट्ठ भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ।

उस सिंहासन के दक्षिण-पूर्व दिक्कोण में सूर्याभदेव की आभ्यन्तर परिषदा के आठ हजार देवों के लिए आठ हजार भद्रासनों की विकुर्वणा की।

एवं दाहिणेणं मज्झिम-परिसाए दसण्हं देव-साहस्सीणं दस भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ।

इसी प्रकार दक्षिण दिशा में मध्यम परिषदा के दस सहस्र देवों के लिए दस सहस्र भद्रासनों की विकुर्वणा की।

दाहिण-पच्चत्थिमेणं बाहिर-परिसाए बारसण्हं देव-साहस्सीणं बारस भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ।

दक्षिण-पश्चिम दिशा में बाह्य परिषदा के बारह सहस्र देवों के लिए बारह सहस्र भद्रासनों की रचना की।

पच्चत्थिमेणं सत्तण्हं अणियाहिवईणं सत्त भद्दासणे विउव्वइ।

पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपतियों के सात भद्रासनों की रचना की।

तस्स णं सीहासणस्स चउ-दिसिं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सोलसण्हं आयरक्ख-देव-साहस्सीणं सोलस भद्दासण-साहस्सीओ विउव्वइ, तं जहा—

पुरच्छिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, दाहिणेणं चत्तारि साहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं चत्तारि साहस्सीओ, उत्तरेणं चत्तारि साहस्सीओ।

उस सिंहासन की चारों दिशाओं में सूर्याभ देव के सोलह हजार आत्मरक्षक देवों के लिए सोलह हजार भद्रासनों की विकुर्वणा की। जो इस प्रकार है—

पूर्व दिशा में चार हजार, दक्षिण दिशा में चार हजार, पश्चिम दिशा में चार हजार एवं उत्तर दिशा में चार हजार।

तस्स दिव्वस्स जाण-विमाणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—से जहा—नामए अइरुग्गयस्स वा हेमंतिय-बालिय-सूरियस्स वा खयरिंगालाण वा रत्तिं पज्जलियाण वा जवा-कुसुम-वणस्स वा किंसुय-वणस्स वा पारियाय-वणस्स वा सव्वओ समंता संकुसुमियस्स,

उस दिव्ययान-विमान के रूप सौंदर्य का वर्णन यह और इस प्रकार किया गया है—जैसे कि उसका वर्ण (रंग) तत्काल उदित हेमन्त ऋतु के बालसूर्य के समान, अथवा रात्रि में धधक रहे खैर की लकड़ी के अंगारों के समान अथवा पूरी तरह से विकसित हुए जपापुष्पवन अथवा पलाशवन अथवा पारिजातवन के समान लाल था। यान-विमान इस प्रकार के—

भवेयारूवे सिया ? णो इणट्ठे समट्ठे ? तस्स णं दिव्वस्स जाण-विमाणस्स एत्तो इट्ठतराए चेव-जाव-वण्णेणं पण्णत्ते, गंधो य फासो य जहा मणीणं ।

रूप सौन्दर्य वाला था ? यह अर्थ समर्थ नहीं है । उस दिव्ययान-विमान का वर्ण तो इससे भी इष्टतर—यावत्—रमणीय वर्ण-वाला कहा गया है, इसी प्रकार उसका गंध और स्पर्श भी पूर्व में किये गये मणियों के गंध और स्पर्श के वर्णन से भी अधिक इष्टतर, रमणीय था ।

तए णं से आभिओगिए देवे दिव्वं जाण-विमाणं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं-जाव-पच्चप्पिणइ ।

ऐसे दिव्ययान-विमान की विकुर्वणा करने के पश्चात् वे आभियोगिक देव जहाँ सूर्याभदेव था, वहाँ आये और आकर सूर्याभदेव को दोनों हाथ जोड़—यावत्—आज्ञा वापस लौटाते हैं ।

सूरियाभस्स महावीरसमीवमागमणं, दिव्वविमाणारुहणाइ-वण्णओ य-

सूर्याभदेव का महावीर के समीप आगमन और दिव्य विमानारोहण आदि का वर्णन—

२१. तए णं से सूरियाभे देवे आभिओगस्स देवस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-जाव-हियए दिव्वं जिणिंदाभिगमण-जोग्गं उत्तर-वेउव्विय-रूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता चउहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीएहिं, तं जहा—गंधव्वाणीएण य णट्टाणीएण य सद्धिं संपरिवुडे तं दिव्वं जाणविमाणं अणुपयाहिणी-करेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूवएणं दुरूहइ, दुरूहित्ता जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासण-वर-गए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे ।

२१. तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों से उस दिव्ययान-विमान के निर्माण होने के समाचार को सुनकर और हृदय में धारण कर उस सूर्याभदेव ने हृष्ट तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होकर जिनेन्द्र के सन्मुख जाने योग्य दिव्य उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके सपरिवार चार अग्रमहिषियों और दो अनीकों—सेनाओं, गंधर्वानीक और नाट्यानीक से परिवेष्टित हो उस यान विमान की अनुप्रदक्षिणा करते हुए पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपान पंक्ति से उस पर आरूढ़ हुआ—चढ़ा, और आरूढ़ होकर जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठ गया ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स चत्तारि सामाणिय-साहस्सीओ तं दिव्वं जाण-विमाणं अणुपयाहिणीकरेमाणा उत्तरिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूवएणं दुरूहंति, दुरूहित्ता पत्तेयं-पत्तेयं पुव्व-णत्थेहिं भद्दासणेहिं णिसीयंति, अवसेसा देवा य देवीओ य तं दिव्वं जाण-विमाणं-जाव दाहिणिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूव-एणं दुरूहंति, दुरूहित्ता पत्तेयं-पत्तेयं पुव्व-णत्थेहिं भद्दासणेहिं निसीयंति ।

तत्पश्चात् सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव उस दिव्ययान-विमान की अनुप्रदक्षिणा करते हुए उत्तर दिशा की त्रिसोपान पंक्ति से आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर प्रत्येक पहले से ही निश्चित अपने भद्रासनों पर आसीन हुए और इनसे शेष रहे देव और देवियाँ उस दिव्ययान-विमान को—यावत्—दक्षिणदिशा-वर्ती त्रिसोपान-प्रतिरूपक से उस पर आरूढ़ हुए और प्रत्येक अपने लिए पूर्व निर्धारित भद्रासनों पर बैठे ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स तं दिव्वं जाण-विमाणं दुरूढस्स समाणस्स अट्ठट्ठ मंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-जाव-दप्पणा ।

तत्पश्चात् उस दिव्ययान-विमान पर उस सूर्याभदेव के आरूढ़ हो जाने पर उसके आगे यथानुपूर्वी के क्रम से आठ-मंगल थे, उन मंगलों के नाम इस प्रकार हैं:—स्वस्तिक, श्रीवत्स,—यावत् दर्पण ।

तयणंतरं च णं पुण्ण-कलस-भिंगारा दिव्वा य छत्त-पडागा, सचामरा दंसण-रइया, आलोय-दरिसणिज्जा, वाउद्धुय-विजय-वेजयंती-पडागा ऊसिया, गगण-तलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया ।

तदनन्तर पूर्ण कलश, भृंगार (झारी), दिव्य छत्र-पताका, चामर सहित देखने पर रति-अनुराग उत्पन्न करने वाली, आलोक दर्शनीय, और वायु से फहराती हुई एक बहुत ऊँची गगनतल का स्पर्श करने वाली विजय वैजयन्ती नामक पताका अनुक्रम से उसके आगे चली ।

तयणंतरं च णं वेरुलिय-भिसंत-विमल-दण्डं, पलम्ब-कोरंट-मल्ल-दामोवसोभियं, चंद-मंडल-निभं, समुस्सियं, विमलमायवत्तं

तदनन्तर वैडूर्य रत्नों से निर्मित, दीप्यमान, निर्मल दंडवाले, लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से शोभित, चन्द्रमण्डल

पवर-सीहासणं च मणि-रयण-भत्ति-चित्तं, सपायपीढं, सपाउया-जोय-समाउत्तं, बहु-किंकरामर-परिग्गहियं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थियं।

तयणंतरं च णं वइरामय-वट्ट-लट्ठ-संठिय-सुसिलिट्ठ-परिघट्ठ-मट्ठ-सुपइट्ठिए, विसिट्ठे, अणेग-वर-पंचवण्ण-कुडभी-सहस्सुस्सिए, परिमंडियाभिरामे, वाउद्धुय-विजय-वेजयंती-पडागा-छत्ताइच्छत्त-कलिए, तुंगे, गगणतलमणुलिहंत-सिहरे, जोयण-सहस्समूसिए, महइ-महालए महिंद-ज्झए पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिए।

तयणंतरं च णं सुरूव-णेवत्थ-परिकच्छिया, सुसज्जा, सव्वालंकार-भूसिया, महया भड-चडगर-पहगरेणं पंच अणीयाहिवइणो पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया।

तयणंतरं च णं बहवे आभिओगिया देवा देवीओ य सएहिं-सएहिं रूवेहिं, सएहिं सएहिं विसेसेहिं, सएहिं सएहिं विंदेहिं, सएहिं सएहिं णेज्जाएहिं, सएहिं सएहिं णेवत्थेहिं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपत्थिया।

तयणंतरं च णं सूरियाभ-विमाण-वासिणो बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं सूरियाभं देवं पुरओ पासओ य मग्गओ य समणुगच्छंति।

तए णं से सूरियाभे देवे तेणं पंचाणीय-परिक्खित्तेणं, वइरामय-वट्ट-लट्ठ-संठिएणं-जाव-जोयण-सहस्समूसिएणं, महइ-महालएणं महिंदज्झएणं पुरओ कड्ढिज्जमाणेणं, चउहिं सामाणिय-सहस्सेहिं-जाव-सोलसहिं आयरक्ख-देवसाहस्सीहिं, अन्नेहिं य बहूहिं सूरियाभ-विमाण-वासीहिं वेमाणिएहिं, देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे, सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं, सोहम्मस्स कप्पस्स मज्झंमज्झेणं, तं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं उवलालेमाणे-उवलालेमाणे, उवदंसेमाणे-उवदंसेमाणे, पडिजागरेमाणे-पडिजागरेमाणे, जेणेव सोहम्मस्स कप्पस्स उत्तरिल्ले णिज्जाणमग्गे, तेणेव उवागच्छइ, जोयण-सय-साहस्सिएहिं विग्गहेहिं ओवयमाणे, वीईवयमाणे ताए उक्किट्ठाए-जाव-तिरियं असंखिज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीइवयमाणे-वीइवयमाणे, जेणेव नंदीसरवरे दीवे, जेणेव दाहिण-पुरत्थिमिल्ले रतिकर-पव्वए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दिव्वं देविड्ढिं-जाव-दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरेमाणे पडिसाहरेमाणे, पडिसंखेवेमाणे पडिसंखेवेमाणे, जेणेव जम्बुद्दीवे, दीवे, जेणेव भारहे वासे, जेणेव—

के समान निर्मल, श्वेत, निर्मल ऊँचे आतपत्र-छत्र से युक्त, मणि-रत्नों से बना हुआ, बेल-बूटों से उपशोभित, पादुकाद्वययुक्त पाद-पीठ सहित और अनेक किंकर देवों द्वारा वहन किया जा रहा एक श्रेष्ठ सिंहासन (उत्तम सिंहासन) अनुक्रम से आगे चला।

तदनन्तर वज्ररत्नों से निर्मित, दीप्तमान, चिकने, कमनीय, मनोज्ञ, वर्तुलाकार दांडेवाला, शेष ध्वजाओं की अपेक्षा विशिष्ट एवं अन्यान्य हजारों छोटी-बड़ी अनेक प्रकार की मनोरम रंग-बिरंगी-पंचरंगी ध्वजाओं से परिमंडित, सुन्दर, वायुवेग से फहराती हुई विजय वैजयन्ती पताका छत्रातिछत्र से युक्त, आकाशमण्डल का स्पर्श करने वाला, हजार योजन ऊंचा, एक बहुत विशाल इन्द्रध्वज नामक ध्वज अनुक्रम से उसके आगे चला।

तदनन्तर सुन्दर वेशभूषा से सुसज्जित, आभरण-अलंकारों से विभूषित और अत्यन्त प्रभावशाली सुभटों के समुदाय के साथ पाँच अनीकाधिपति अनुक्रम से उसके आगे चले।

तदनन्तर अपनी-अपनी योग्य विशिष्ट वेशभूषाओं एवं अपने अपने विशेषतादर्शक—प्रतीक चिन्हों से सुसज्जित होकर, अपने अपने परिवार, अपने-अपने नेजा और कार्योपयोगी साधनों को साथ लेकर बहुत से आभियोगिक देव और देवियां अनुक्रम से उसके आगे चले।

तदनन्तर उस सूर्याभ विमान में रहने वाले बहुत से वैमानिक देव और देवियाँ अपनी-अपनी सर्वप्रकार की ऋद्धि—यावत्—वाद्यनिनादों सहित उस सूर्याभदेव के आगे-पीछे, आजू-बाजू में साथ-साथ चले।

इसके पश्चात् पाँच अनीकाधिपतियों द्वारा परिवेष्टित वज्ररत्नमयी गोल मनोज्ञ संस्थान-आकारवाले—यावत्—एक हजार योजन ऊँचे अतिविशाल महेन्द्रध्वज को आगे करके वह सूर्याभदेव चार हजार सामानिक देवों—यावत्—सोलह सहस्र आत्मरक्षक देवों एवं दूसरे भी सूर्याभ विमानवासी देवों और देवियों को साथ लेकर समस्त ऋद्धि—यावत्—वाद्यनिनादों सहित दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव-प्रभाव का अनुभव, प्रदर्शन और अवलोकन करते हुए जहाँ सौधर्मकल्प का उत्तर दिशावर्ती निर्याण मार्ग—निकलने का मार्ग था, वहाँ आया एवं एक लाख योजन प्रमाण वेगवाली गति से नीचे उतर कर और उसी उत्कृष्ट गति से गमनकर तिर्यग्‌रूप में स्थित असंख्यात द्वीप-समुद्रों के मध्यातिमध्य भाग में से चलता हुआ जहाँ नन्दीश्वर द्वीप था, जहाँ उसके दक्षिणपूर्व दिक्कोण (आग्नेय कोण) में स्थित रतिकर पर्वत था, वहाँ आया, आकर उस दिव्य देवऋद्धि—यावत्—दिव्य देवप्रभाव को संकुचित तथा संक्षिप्त कर जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप में जहाँ भारतवर्ष था, उस भारत-

आमलकप्पा नयरी, जेणेव अम्बसालवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवन्तं महावीरं तेणं दिव्वेणं जाण-विमाणेणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स उत्तर-पुरत्थिमे दिसि-भाए तं दिव्वं जाण-विमाणं ईसिं चउरंगुलमसंपत्तं धरणि-तलंसि ठवेइ, ठवित्ता चउहिं अग्ग-महिसीहिं सपरिवाराहिं, दोहिं अणीएहिं—तं जहा—गंधव्वाणिएण य नट्टाणिएण य, सद्धिं संपरिवुडे ताओ दिव्वाओ जाण-विमाणाओ पुरत्थिमिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूवएणं पच्चोरुहइ।

वर्ष में जहाँ आमलकप्पा नगरी थी, आम्रशालवन चैत्य था और चैत्य में जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, वहाँ आकर उस दिव्ययान-विमान से श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके श्रमण भगवान महावीर से उत्तर-पूर्व दिक्कोण में उस दिव्ययान-विमान को भूमि से चार अंगुल ऊपर—अधर रखकर खड़ा किया और खड़ा करके सपरिवार चार अग्रमहिषियों, दो अनीकों—गन्धर्वानीक एवं नाट्यानीक—को साथ लेकर पूर्वदिशावर्ती त्रिसोपान पंक्ति द्वारा उस दिव्ययान-विमान से नीचे उतरा।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स चत्तारि सामाणिय-साहस्सीओ ताओ दिव्वाओ जाण-विमाणाओ उत्तरिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूवएणं पच्चोरुहंति। अवसेसा देवा य देवीओ य ताओ दिव्वाओ जाण-विमाणाओ दाहिणिल्लेणं ति-सोवाण-पडिरूवएणं पच्चोरुहन्ति।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के चार हजार सामानिक देव उत्तर-दिग्वर्ती त्रिसोपान पंक्ति द्वारा उस दिव्ययान-विमान से नीचे उतरे और इनके अतिरिक्त शेष रहे अन्यान्य देव एवं देवियाँ दक्षिण दिशावर्ती त्रिसोपान पंक्ति द्वारा उस दिव्ययान-विमान से नीचे उतरे।

तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं अग्गमहिसीहिं-जाव-सोलसहिं आयरक्ख-देव-साहस्सीहिं, अण्णेहिं य बहूहिं सूरियाभ-विमाण-वासीहिं वेमाणिएहिं, देवेहिं देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे, सव्विड्ढीए-जाव-णाइयरवेणं जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तदनन्तर वह सूर्याभदेव चार अग्रमहिषियों—यावत्—सोलह सहस्र आत्मरक्षक देवों तथा अन्य बहुत से सूर्याभ विमान-वासी वैमानिक देव-देवियों से परिवेष्टित हो सर्व ऋद्धि वैभव—यावत्—वाद्यनिनादों पूर्वक जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया और आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार निवेदन किया—

'अहं णं भंते! सूरियाभे देवे देवाणुप्पियाणं वंदामि, नमंसामि-जाव-पज्जुवासामि'।

'हे भदन्त! मैं सूर्याभदेव आप देवानुप्रिय को वन्दन-नमस्कार करता हूँ—यावत्—आपकी पर्युपासना करता हूँ।'

सूरियाभा! इ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी—'पोराणमेयं सूरियाभा! जीयमेयं सूरियाभा! किच्चमेयं सूरियाभा! करणिज्जमेयं सूरियाभा! आइण्णमेयं सूरियाभा! अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा! जं णं भवणवइ-वाणमंतर-जोइस-वेमाणिया देवा अरहंते भगवंते वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तओ पच्छा साइं-साइं नाम-गोत्ताइं साहिंति, तं पोराणमेयं सूरियाभा! -जाव-अब्भणुण्णायमेयं सूरियाभा!'

'हे सूर्याभ!' इस प्रकार से सूर्याभदेव को संबोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने सूर्याभदेव से इस प्रकार कहा—'हे सूर्याभ! यह पुरातन परम्परा है। हे सूर्याभ! यह जीत-परम्परागत व्यवहार है। हे सूर्याभ! यह कृत्य है, हे सूर्याभ! यह करने योग्य है, हे सूर्याभ! यह पूर्व परम्परा से आचरित है, हे सूर्याभ! यह अभ्यनुज्ञात—सम्मत है, कि भवनपति, वाणव्यन्तर, ज्योतिष्क एवं वैमानिक देव अर्हत भगवान को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् अपने-अपने नाम एवं गोत्र कहते हैं, अतएव हे सूर्याभ! तुम्हारी यह समस्त प्रवृत्ति पुरातन है—यावत्—हे सूर्याभ! यह अभ्यनुज्ञात है।'

तए णं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-जाव-समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासण्णे, णाइदूरे सुस्सूसमाणे, णमंसमाणे, अभिमुहे, विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

तब वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर हर्षित हो—यावत्—विकसित हृदय हो श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करके न तो उनसे अधिक दूर और न अधिक निकट किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए अभिमुख विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़ अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

सूरियाभेण नट्टविहिस्स उवदंसणं—

२२. तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभस्स देवस्स तीसे य महइ-महालियाए परिसाए-जाव-परिसा जामेव दिसिं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया ।

तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा, निसम्म-हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हयहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

'अहं णं भंते ! सूरियाभे देवे किं भव-सिद्धिए ? अभव-सिद्धिए ? सम्म-दिट्ठी, मिच्छा-दिट्ठी ? परित्त-संसारिए, अणंतसंसारिए ? सुलभ-बोहिए, दुल्लभ-बोहिए ? आराहए विराहए ? चरिमे अचरिमे ?',

सूरियाभाइ समणे भगवं महावीरे सूरियाभं देवं एवं वयासी—

सूरियाभा ! तुमं णं भव-सिद्धिए, नो अभव-सिद्धिए,-जाव-चरिमे, णो अचरिमे ।

तए णं से सूरियाभे देवे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठ-चित्तमाणंदिए परम-सोमणस्सिए, समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

'तुब्भे णं भंते ! सव्वं जाणह, सव्वं पासह, सव्वओ जाणह, सव्वओ पासह, सव्वं कालं जाणह, सव्वं कालं पासह, सव्वे भावे जाणह, सव्वे भावे पासह । जाणंति णं देवाणुप्पिया ! मम पुव्विं वा पच्छा वा मम एयारूवं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं लद्धं, पत्तं अभिसमण्णागयं ति । तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं-भत्ति-पुव्वगं, गोयमाइयाणं समणाणं, निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं, दिव्वं बत्तीसइ-बद्धं नट्टविहिं उवदंसित्तए' ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे, सूरियाभस्स देवस्स एयमट्ठं णो आढाइ, णो परियाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ।

तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवंतं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

सूर्याभ द्वारा नृत्यविधि का उपदर्शन—

२२ तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस सूर्याभदेव को और उस अति विशाल परिषद को धर्म देशना दी—यावत्—श्रवणकर परिषदा जिस दिशा से आई थी, वापस उसी दिशा में लौट गई ।

इसके बाद वह सूर्याभदेव श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवणकर और हृदय में धारणकर हर्षित, सन्तुष्ट—यावत्—आह्लादित हृदय हुआ तथा अपने आसन से उठकर उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया एवं वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—पूछा—

'हे भदन्त ! मैं सूर्याभदेव भव-सिद्धिक—भव्य हूं अथवा अभव-सिद्धिक—अभव्य हूं ? सम्यग्दृष्टि हूं अथवा मिथ्यादृष्टि हूं ? परित्तसंसारी (परिमित काल तक संसार में भ्रमण करने वाला) हूं, अथवा अनन्तसंसारी हूं ? सुलभबोधि हूं अथवा दुर्लभबोधि हूं ? आराधक हूं, अथवा विराधक हूं ? चरम (शरीरी) हूं अथवा अचरमशरीरी हूं ?'

'हे सूर्याभ' इस प्रकार से संबोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने उस सूर्याभदेव से इस प्रकार कहा—

'हे सूर्याभ ! तुम भव-सिद्धिक हो, अभवसिद्धिक नहीं हो—यावत्—चरिम हो, अचरिम नहीं हो ।'

तब उस सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित, परम सौमनस्क होते हुए श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

'हे भगवन् ! आप सब (द्रव्यों को) जानते हैं एवं सब देखते हैं, आप सर्वत्र जानते हैं और सर्वत्र देखते हैं, आप सर्वकाल को जानते हैं और सर्वकाल को देखते हैं, आप सर्व भावों (पर्यायों) को जानते हैं और सर्व भावों को देखते हैं, अतएव हे देवानुप्रिय ! आप मेरे पूर्व के और पिछले (आगे के) भव को तथा मुझे लब्ध, प्राप्त एवं अधिगत यह इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति तथा दिव्य देवानुभाव को भी जानते हैं । अतएव आप देवानुप्रिय की भक्तिपूर्वक मैं गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों के समक्ष इस दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव तथा बत्तीस प्रकार की दिव्य नाट्यविधियों को प्रदर्शित करना चाहता हूं ।'

तब सूर्याभदेव के इस निवेदन को सुनकर श्रमण भगवान महावीर ने सूर्याभदेव के इस निवेदन का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु वे मौन ही रहे ।

इसके बाद उस सूर्याभदेव ने पुनः श्रमण भगवान महावीर से दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार निवेदन किया—

'तुब्भे णं भंते ! सव्वं जाणह-जाव-उवदंसित्तए त्ति कट्टु समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तर-पुरत्थिमं दिसी-भागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणइ, समोहणित्ता संखिज्जाइं जोयणाइं दण्डं निसिरइ, निसिरित्ता अहाबायरे-पुग्गले परिसाडेति परिसाडित्ता-अहासुहुमे पुग्गले परियायंति, परियाइत्ता । दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं-जाव-बहु-सम-रमणिज्जं भूमि-भागं विउव्वइ । से जहानामए आलिंग-पुक्खरे इ वा-जाव-मणीणं फासो । तस्स णं बहु-सम-रमणिज्जस्स भूमि-भागस्स बहु-मज्झ-देस-भागे पिच्छाघरमण्डवं विउव्वइ-अणेग-खंभ-सय-संनिविट्ठं वण्णओ । अन्तो बहु-सम-रमणिज्जं भूमि-भागं, उल्लोयं, अक्खाडगं च मणि-पेढियं च विउव्वइ ।

'हे भगवन् ! आप सब जानते हैं—यावत्—नाट्यविधि प्रदर्शित करना चाहता हूँ ऐसा कहकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दना की, उनको नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिक्कोण में गया, वहाँ जाकर वैक्रिय समुद्घात किया, वैक्रिय समुद्घात करके संख्यात योजन का दण्ड निकाला, निकालकर यथा बादर पुद्गलों को दूर हटाया, दूर हटाकर यथा सूक्ष्म पुद्गलों का संचय किया, संचय करके दूसरी बार पुनः वैक्रिय समुद्घात करके —यावत्—अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग की विकुर्वणा की । वह भूमिभाग पूर्ववर्णित भूमिभागवत् आलिंग पुष्कर आदि के समान सर्व प्रकार से समतल था—यावत्—रूप, रस, गंध और स्पर्शवाली मणियों से सुशोभित था । उस अतिसम और रमणीय भूमिभाग के बीचोंबीच एक प्रेक्षागृह मंडप की रचना की, जो अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट था यहाँ मंडप का वर्णन करना चाहिए । उस प्रेक्षागृह मंडप के अन्दर अत्यन्त समरमणीय भूमिभाग, चंदोवा, अक्षपाट और मणिपीठिका की विकुर्वणा की ।

तीसे णं मणि-पेढियाए उवरि सीहासणं सपरिवारं-जाव-दामा चिट्ठन्ति ।

उस मणिपीठिका के ऊपर पादपीठ, छत्र आदि सहित एक सिंहासन की रचना की—यावत्—उसका ऊपरी भाग मुक्तादामों से सुशोभित हो रहा था ।

तए णं से सूरियाभे देवे समणस्स भगवओ महावीरस्स आलोए पणामं करेइ, करित्ता 'अणुजाणउ मे भगवं त्ति' कट्टु सीहासणवरगए तित्थयराभिमुहे संणिसण्णे ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने श्रमण भगवान महावीर की ओर देखकर प्रणाम किया, प्रणाम करके 'हे भगवन् ! मुझे आज्ञा दीजिए' कहकर तीर्थंकर की ओर मुँह करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया ।

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए नाना-मणि-कणग-रयण-विमल-महरिह-निउणोविय-मिसिमिसित--विरइय-महाभरण—कडग-तुडिय-वर-भूसणुज्जलं, पीवरं, पलम्बं, दाहिणं भुयं पसारेइ, तओ णं सरिसयाणं, सरित्तयाणं, सरिव्वयाणं, सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं, एगाभरण-वसण-गहिय-णिज्जोयाणं, दुहओ संवेल्लियग्ग-णियत्थाणं, आविद्ध-तिलयामेलाणं, पिणिद्ध-गेविज्ज-कंचुयाणं, उप्पीलिय-चित्त-पट्ट-परियर-सफेणगावत्त-रइय-संगय-पलंब-वत्थंत-चित्त-चिल्ललग-नियंसणाणं, एगावलि-कण्ठ-रइय-सोभंत-वच्छ-परिहत्थ-भूसणाणं, अट्ठ-सयं णट्ट-सज्जाणं देव-कुमाराणं णिग्गच्छइ ।

तदनन्तर सबसे पहले उस सूर्याभदेव ने निपुण शिल्पियों द्वारा बनाये गये विविध प्रकार की निर्मल मणियों और स्वर्ण-रत्नोंवाले, भाग्यशालियों के योग्य देदीप्यमान कड़ा, त्रुटित-बाजूबन्ध, आदि श्रेष्ठ आभूषणों से विभूषित, उज्ज्वल पुष्ट दीर्घ दाहिनी भुजा को पसारा—लम्बा किया, तब उस भुजा से समान शरीर—आकार, समान रंग, समान वय, समान लावण्य, रूप, यौवन, गुणों वाले एक जैसे आभरणों, वस्त्रों और नाट्योपकरणों—वाद्यों से सुसज्जित, कंधों के दोनों ओर लटकते पल्लोंवाले उत्तरीय (दुपट्टे) से युक्त, तिलक और आमेलक (शिरोभूषण) को बाँधे हुए, गले में ग्रैवेयक पहने हुए, कंचुकवस्त्र को पहने हुए, हवा का हल्का सा झोंका लगने पर चित्र विचित्र पट्टे वाली फेनपुंज जैसी प्रतीत होने वाली झालर से युक्त, चित्र विचित्र, देदीप्यमान लम्बे अधोवस्त्रों को धारण किये हुए, एका-वली आदि आभूषणों से शोभायमान कण्ठ और वक्षस्थल वाले नृत्य करने के लिए तत्पर एक सौ आठ देवकुमार निकले ।

तयणंतरं च णं नाना-मणि-जाव-पीवरं, पलंबं वामं भुयं पसारेइ। तओ णं सरिसयाणं, सरित्तयाणं, सरिव्वयाणं, सरिस-लावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयाणं, एगाभरण-वसण-गहिअ-णिज्जोआणं, दुहओ संवेल्लियग्ग-णियत्थाणं आविद्ध-तिलयामेलाणं, पिणद्धगेवेज्ज-कंचुईणं, नाना-मणि-रयण-भूसण-विराइयंगमंगाणं, चंदाणणाणं, चंदद्ध-सम-निलाडाणं, चंदाहिय-सोम-दंसणाणं, उक्का इव उज्जोवेमाणीणं, सिंगारा-गारचारुवेसाणं, हसियभणिय-चिट्ठिय-विलास-ललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयारकुसलाणं, गहियाउज्जाणं अट्ठ-सयं नट्ट-सज्जाणं देव-कुमारियाणं णिग्गच्छइ।

इसके पश्चात् अनेक प्रकार की मणियों आदि के आभूषणों से शोभित—यावत्—पुष्ट लम्बी बायीं भुजा को पसारा। तब उससे समान शरीराकृति, समान रंग, समान वय, समान लावण्य, रूप, यौवन और गुणों वाली, एक जैसे आभूषणों, वस्त्रों और अपने अपने वाद्यों-नाट्योपकरणों से सुसज्जित, दोनों ओर लटकते पल्लोंवाले उत्तरीयों को कन्धों पर लटकायी हुई, शिर पर तिलक और आमेलक को बाँधी हुई, ग्रैवेयक और कंचुक वस्त्रों को पहनी हुई, अनेक प्रकार की मणियों और रत्नों के आभूषणों से शोभायमान अंगोपांग वाली, चन्द्र के समान ललाट वाली, चन्द्र से भी अधिक सौम्य दर्शन वाली, उल्का के समान चमचमाहट करने वाली, शृंगारगृह के तुल्य सुन्दर वेश वाली, हँसने, बोलने, चेष्टा, विलास, लीला आदि को पहचानने में निपुण, उचित व्यवहार करने में कुशल, अपने अपने वाद्यों को ली हुई, नृत्य करने के लिए उद्यत एक सौ आठ देवकुमारिकायें निकलीं।

तए णं से सूरियाभे देवे अट्ठ-सयं संखाणं विउव्वइ, अट्ठ-सयं संख-वायाणं विउव्वइ, अट्ठसयं सिंगाणं विउव्वइ, अट्ठसयं सिंगवायाणं विउव्वइ, अट्ठसयं संखियाणं विउव्वइ, अट्ठसयं संखिय-वायाणं विउव्वइ, अट्ठसयं खरमुहीणं विउव्वइ, अट्ठसयं खरमुहिवायाणं विउव्वइ, अट्ठसयं पेयाणं विउव्वइ, अट्ठसयं पेया-वायगाणं विउव्वइ, अट्ठसयं पिरिपिरियाणं विउव्वइ, अट्ठसयं पिरिपिरिया-वायगाणं विउव्वइ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव ने एक सौ आठ शंखों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ शंखवादकों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ शृंगों की विकुर्वणा की और एक सौ आठ शृंगवादकों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ शंखिकाओं की विकुर्वणा की, एक सौ आठ शंखिकावादकों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ खर-मुखियों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ खरमुखीवादकों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ पेयों (नगाड़ों) की विकुर्वणा की, एक सौ आठ पेयवादकों की विकुर्वणा की, एक सौ आठ पिरि-पिरिकाओं की और एक सौ आठ पिरिपिरिकावादकों की विकुर्वणा की।

एवमाइयाइं एगूणपण्णं आउज्ज-विहाणाइं विउव्वइ।

इस प्रकार कुल मिलाकर उगणपचास (४९) तरह के वाद्यों और उनके वादकों की विकुर्वणा की।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारियाओ य सद्दावेइ।

तदुपरान्त उसने उन देवकुमारों और देवकुमारिकाओं को बुलाया।

तए णं बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य सूरियाभेणं देवेणं सद्दाविया समाणा, हट्ठ-जाव-जेणेव सूरियाभे देवे, तेणेव उवागच्छंति तेणेव उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं-जाव-वद्धावित्ता एवं वयासी—

'संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं अम्हेहिं कायव्वं'।

तब वे सभी देवकुमार एवं देवकुमारिकायें सूर्याभदेव द्वारा बुलाये जाने पर हर्षित हो—यावत्—जहाँ सूर्याभदेव था, वहाँ आये और आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—बधाकर सूर्याभदेव से इस प्रकार बोले—निवेदन किया—

'हे देवानुप्रिय! हमारे लिए जो करने योग्य है, उसकी आज्ञा दीजिये अथवा हमें जो करना है, उसके लिए आज्ञा दीजिए।

तए णं से सूरियाभे देवे ते बहवे देव-कुमारे य देव-कुमारीओ य एवं वयासी—

'गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करित्ता वंदह नमंसह, वंदित्ता नमंसित्ता गोयमाइयाणं समणाणं निग्गंथाणं तं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं, दिव्वं बत्तीसइ-बद्धं

तब उस सूर्याभदेव ने उन सभी देवकुमारों और देवकुमारिकाओं से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! तुम सभी श्रमण भगवान महावीर के पास जाओ और उनको तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा करो, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करो, वन्दन-नमस्कार करके गौतम आदि निर्ग्रंथ श्रमणों को दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवा-

णट्ट-विहिं उवदंसेह उवदंसित्ता खिप्पामेव एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह'।

नुभाव और दिव्य बत्तीस प्रकार की नृत्यविधि दिखाओ और दिखाकर शीघ्र ही यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ।'

णट्टविहिवण्णओ--

२३. तए णं ते बहवे देव-कुमारा देव-कुमारीओ य सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ-जाव-करयल-परिग्गहियं पडिसुणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं-जाव-नमंसित्ता जेणेव गोयमाइया समणा निग्गंथा, तेणेव उवागच्छंति। तए णं ते बहवे देव-कुमारा देव-कुमारीओ य समामेव समोसरणं करेंति, करित्ता समामेव अवणमंति, अवणमित्ता समामेव उन्नमंति, एवं सहियामेव ओनमंति, एवं सहियामेव उन्नमंति, सहियामेव उण्णमित्ता, संगयामेव ओनमंति, संगयामेव उन्नमंति, उन्नमित्ता थिमियामेव ओणमंति थिमियामेव उन्नमंति, समामेव पसरंति, पसरित्ता समामेव आउज्ज-विहाणाइं गेण्हंति, समामेव पवाएंसु, पगाइंसु, पणच्चिंसु। किं ते?

नृत्यविधि का वर्णन—

२३. तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं ने सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुना और सुनकर हर्षित—यावत्—प्रसन्न होकर दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—यह स्वीकार किया, स्वीकार करके वे जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, आकर उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण निर्ग्रंथ विराज रहे थे, वहाँ आये। इसके बाद वे सभी देवकुमार एवं देवकुमारियाँ पंक्तिबद्ध होकर एक साथ मिले, मिलकर एक साथ नीचे नमे, नीचे नमनकर एक साथ ही अपने मस्तक ऊपर कर सीधे खड़े हुए, इस प्रकार वे सभी एक साथ मिलकर नीचे नमे और फिर मस्तक ऊंचा करके सीधे खड़े हुए, इसी प्रकार से पुनः सीधे खड़े होकर नीचे नमे और सीधे खड़े हुए, खड़े होकर धीमे से कुछ नमे और फिर इसी प्रकार से मस्तक उन्नत किया, मस्तक उन्नत करके एक साथ अलग अलग फैल गये, फैलकर एक साथ अपने-अपने वाद्यों को लिया और फिर एक साथ मिलकर वाद्यों को बजाने लगे, गाने लगे और नृत्य करने लगे। उनका संगीत आदि किस प्रकार का था? तो कहते हैं—

उरेणं मंदं, सिरेण तारं, कंठेण वितारं 'ति-विहं, ति-समय-रेयग-रइयं, गुंजाऽवंक-कुहरोवगूढं, रत्तं, ति-ठाण-करण-सुद्धं, सकुहर-गुंजंत-वंस तंती-तल-ताल-लय-गह-सुसंपउत्तं, महुरं, समं, सललियं, मणोहरं, मिउ-रिभिय-पय-संचारं, सुरइ-सुणइ-वर-चारु-रूवं दिव्वं णट्टसज्जं गेयं पगीया वि होत्था। किं ते?

उर-हृदयस्थल से उद्गत होने पर आदि में मन्द-मन्द, मूर्धा में आने पर तार-तार स्वर (उच्च स्वर) वाला और कण्ठस्थल में विशेष तार स्वर वाला था, इस तरह त्रिस्थान समुद्गत वह संगीत त्रिसमय रेचक से रचित होने से त्रिविध रूप था, संगीत के गुंजारव से समस्त प्रेक्षागृह गूंज रहा था, राग-रागिनी के अनुरूप था, त्रिस्थान एवं त्रिकरण से शुद्ध था, गूंजती हुई बांसुरी और वीणा के स्वरों में एकरूप मिला हुआ था, एक दूसरे की बजती हथेली के स्वर का अनुसरण करने वाला था, वाद्यों की झनकारों तथा नर्तकों के पादक्षेप-ठमक से बराबर मिला हुआ था, लय के अनुरूप था, वीणा आदि वाद्यों की धुनों का अनुकरण करने वाला था, कर्णमधुर था, सर्वप्रकार से सम, ललित, मनोहर, मृदु, रिभित, पदसंचार युक्त था, श्रोताओं को रतिकर, सुखान्त ऐसा उन नर्तकों का श्रेष्ठ नृत्य सज्ज विशिष्ट प्रकार का उत्तमोत्तम संगीत था। इसके साथ ही उन्होंने क्या किया? तो कहते हैं—

उद्धुमंताणं संखाणं, सिंगाणं, संखियाणं, खरमुहीणं, पेयाणं, पिरिपिरियाणं; आहम्मंताण पणवाणं, पडहाणं; अप्फालिज्ज-माणाणं भंभाणं, होरंभाणं; तालिज्जंताणं भेरीणं, झल्लरीणं, दुन्दुहीणं; आलवंताणं, मुरयाणं, मुइंगाणं, नंदीमुइंगाणं; उत्तालिज्जंताणं आलिंगाणं, कुंतुंबाणं, गोमुहीणं, मद्दलाणं; मुच्छिज्जंताणं वीणाणं, विपंचीणं,—

शंख, शृंग, शंखिका, खरमुखी, पेया, पिरिपिरिका के वादक उन्हें उद्धमानित करते—फूंकते; पणव और पटह के वादक उन पर आघात करते, इसी प्रकार कोई भंभा और होरंभ पर टंकार मारते; भेरी, झल्लरी, और दुन्दुभि को ताड़ित करते; मुरज, मृदंग और नन्दीमृदंग का आलाप लेते; आलिंग, कुस्तुम्ब, गोमुखी और मादल पर उत्ताड़न करते; वीणा, विपंची और

वल्लईणं; कुट्टिज्जंताणं महंतीणं, कच्छभीणं, चित्तवीणाणं; सारिज्जंताणं बद्धीसाणं, सुघोसाणं, नंदिघोसाणं; फुट्टिज्जंतीणं भामरीणं, छब्भामरीणं, परिवायणीणं; छिप्पंतीणं तूणाणं, तुम्बवीणाणं; आमोडिज्जंताणं आमोयाणं, कुंभाणं, नउलाणं; अच्छिज्जंतीणं मुगुन्दाणं, हुडुक्कीणं, विचिक्कीणं; वाइज्जंताणं करडाणं, डिंडिमाणं, किणियाणं, कडंबाणं; ताडिज्जंताणं दद्दरगाणं, दद्दरिगाणं, कुतुम्बाणं, कलसियाणं, मड्डयाणं; आताडिज्जंताणं तलाणं, तालाणं, कंसतालाणं; घट्टिज्जंताणं रिंगिरिसियाणं, लत्तियाणं, मगरियाणं, सुंसुमारियाणं; फूमिज्जंताणं वंसाणं, वेलूणं, वालीणं, परिल्लीणं, बद्धगाणं।

वल्लकी को मूर्च्छित करते; महतीवीणा, कच्छपीवीणा और चित्रवीणा को कूटते; बद्धीस, सुघोषा, नन्दीघोष वीणाओं का सारण करते; भ्रामरी, षड्भ्रामरी और परिवादनी वीणा का स्फोटन करते, तूण, तुम्बवीणा का स्पर्श करते; आमोट (झांझ), कुम्भ और नकुल को आमोटते-खनखनाते; मृदंग, हुडुक्क और विचिक्की को धीरे से स्पर्श करते—छूते; करड, डिंडिम, किणित और कडम्ब को बजाते; दर्दरक, दर्दरिका, कुस्तुम्बुरु, कलशिका, मड्डक को जोर-जोर से ताडित करते; तल, ताल, कांस्यताल को धीरे से ताडित करते; रिंगिरिसिका, लत्तिका, मकरिका, और सुंसमारिका का घट्टन करते; एवं वंशी, वेणु, वाली, परिल्ली तथा बद्धकों को फूंकते थे। इस प्रकार सभी अपने-अपने वाद्यों को बजा रहे थे।

तए णं से दिव्वे गीए, दिव्वे वाइए, दिव्वे नट्टे एवं अब्भुए, सिंगारे, उराले, मणुन्ने, मणहरे गीए, मणहरे नट्टे, मणहरे वाइए, उप्पिंजलभूए, कहकहभूए दिव्वे, देव-रमणे पवत्ते यावि होत्था।

वह दिव्य संगीत, दिव्य वादन और दिव्य नृत्य इस प्रकार का अद्भुत, शृंगाररूप, उदार, मनोज्ञ, मनोहर था, कि वह मनमोहक गीत, मनोहर नृत्य और मनोहर वाद्यवादन, सभी के चित्त में स्पर्धा को उत्पन्न कर रहा था, दर्शकों के कहकहों से नाट्यशाला को गुंजा रहा था। इस प्रकार वे सब देवकुमार एवं देवकुमारिकायें दिव्य देवक्रीडा में प्रवृत्त हो रहे थे।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स सोत्थिय-सिरिवच्छ-नंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पण-मंगल्ल-भत्ति-चित्तं णामं दिव्वं नट्ट-विहिं उवदंसेंति ॥१॥

तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं ने श्रमण भगवान महावीर एवं गौतम आदि निर्ग्रंथ श्रमणों के समक्ष १. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्दावर्त, ४. वर्धमानक, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७. मत्स्ययुगल और ८. दर्पण, इन आठ मंगलद्रव्यों का आकार, रूप दिव्य नृत्य–अभिनय दिखाया। १।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य समामेव समोसरणं करेंति, करित्ता तं चेव भाणियव्वं-जाव-दिव्वे देवरमणे पवत्ते यावि होत्था।

उसके बाद मंगल द्रव्याकार नृत्य विधि दिखलाने के पश्चात् दूसरी नृत्यविधि प्रारम्भ करने के लिए वे सभी देवकुमार एवं देवकुमारिकायें एकत्रित हुईं, एकत्रित होने से लेकर दिव्य देवरमण में प्रवृत्त हो गईं तक की समस्त वक्तव्यता का यहाँ वर्णन समझना चाहिये।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स आवड-पच्चावड-सेढि-पसेढि सोत्थिय-सोवत्थिय-पूसमाणव-वद्धमाणग-मच्छंडग-मगरंडग-जार-मार-फुल्ला-वलि-पउम-पत्त-सागर-तरंग-वसंतलया-पउमलय-भत्तिचित्तं णाम दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२॥

तदनन्तर उन सभी देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने श्रमण भगवान महावीर के समक्ष आवर्त, प्रत्यावर्त, श्रेणि, प्रश्रेणि, स्वस्तिक, सौवस्तिक, पुष्यमाणवक, वर्धमानक, मत्स्यांडक, मकरांडक, जार, मार, पुष्पावलि, पद्मपत्र, सागर, तरंग, वसंतलता, पद्मलता, की आकृति रचनारूप दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन करके दिखाया। २।

एवं च एक्किक्कियाए णट्टविहीए समोसरणाइया एसा वत्तव्वया-जाव-दिव्वे देवरमणे पवत्ते यावि होत्था।

इसी प्रकार से एक-एक नृत्यविधि को दिखलाने के पश्चात् एवं दूसरी प्रारम्भ करने के अंतराल में उन देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं के एकत्रित होने से लेकर दिव्य देवक्रीडा में प्रवृत्त होने तक की समस्त वक्तव्यता का पूर्ववत् सर्वत्र कथन करना चाहिए।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा देव कुमारियाओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स ईहामिय-उसभ-तुरय-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्ति-चित्तं णामं दिव्वं णट्टविहिं-उवदंसेंति ॥३॥

तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं ने श्रमण भगवान् महावीर के समक्ष ईहामृग, वृषभ, तुरग, नर, मकर, विहग, व्यालक (सर्प), किन्नर, रुरुमृग, सरभ (अष्टापद) चमर, कुंजर, वनलता, पद्मलता, की आकृति रचनारूप दिव्य नृत्यविधि का अभिनय दिखाया। ३।

एगओ वंकं, दुहओ वंकं, एगओ खुहं, दुहओ खुहं, एगओ चक्कवालं, दुहओ चक्कवालं, चक्कद्धचक्कवालं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥४॥

तदुपरान्त उन कुमार एवं कुमारिकाओं ने एकतोवक्र (जिस नृत्य में एक ओर ही धनुषाकार श्रेणि बनाई जाती है), द्विधावक्र एकतः नमित, द्विधातः नमित, एकतः चक्रवाल, द्विधातः चक्रवाल इस प्रकार चक्रार्ध चक्रवाल नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। ४।

चंदावलि-पविभत्तिं च, सूरावलि-पविभत्तिं च, वलियावलि-पविभत्तिं च, हंसावलि-पविभत्तिं च, एगावलि-पविभत्तिं च, तारावलि-पविभत्तिं च, मुत्तावलि-पविभत्तिं च, कणगावलि-पविभत्तिं च, रयणावलि-पविभत्तिं च, णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥५॥

चन्द्रावलिप्रविभक्ति, सूर्यावलिप्रविभक्ति, वलियावलिप्रविभक्ति, हंसावलिप्रविभक्ति, एकावलिप्रविभक्ति, तारावलिप्रविभक्ति, मुक्तावलिप्रविभक्ति, कनकावलिप्रविभक्ति, रत्नावलिप्रविभक्ति, नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। ५।

चंदुग्गमण पविभत्तिं च, सूरुग्गमण-पविभत्तिं च, उग्गमणुग्गमण-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥६॥

इसके पश्चात् उन्होंने चन्द्रोद्गमप्रविभक्ति, सूर्योद्गमप्रविभक्ति, उद्गमनोद्गमप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि को दिखाया। ६।

चंदागमण-पविभत्तिं च, सूरागमण-पविभत्तिं च, आगमणागमण-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥७॥

तदनन्तर उन्होंने चन्द्रागमप्रविभक्ति, सूर्यागमनप्रविभक्ति, आगमनागमनप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। ७।

चंदावरण-पविभत्तिं च, सूरावरण-पविभत्तिं च, आवरणावरण-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥८॥

तदुपरान्त उन्होंने चन्द्रावरणप्रविभक्ति, सूर्यावरणप्रविभक्ति, आवरणावरणप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का अभिनय प्रदर्शित किया। ८।

चंदत्थमण-पविभत्तिं च, सूरत्थमण-पविभत्तिं च, अत्थमण-उत्थमण-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥९॥

इसके बाद उन्होंने चन्द्रास्तमन-प्रविभक्ति, सूर्यास्तमन-प्रविभक्ति, अर्थात् चन्द्र और सूर्य के अस्त होने के समय के दृश्य की सूचक अस्तमन-उत्थमन (उत्पन्न) प्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि को दिखाया। ९।

चंदमंडल-पविभत्तिं च, सूरमंडल-पविभत्तिं च नागमंडल-पविभत्तिं च, जक्खमंडल-पविभत्तिं च, भूतमंडल-पविभत्तिं च, रक्खस-महोरग-गंधव्वमंडल-पविभत्तिं च, मंडल-मंडल-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥१०॥

इसके अनन्तर चन्द्रमण्डलप्रविभक्ति, सूर्यमण्डलप्रविभक्ति, नागमण्डलप्रविभक्ति, यक्षमण्डलप्रविभक्ति, भूतमण्डलप्रविभक्ति, राक्षसमण्डलप्रविभक्ति, महोरगमण्डलप्रविभक्ति, एवं गंधर्वमण्डल-प्रविभक्ति, मण्डल-मण्डलप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का अभिनय प्रदर्शित किया। १०।

उसभमंडल-पविभत्तिं च, सीहमंडल-पविभत्तिं च, हय-विलंबियं, गय-विलंबियं, हय-विलसियं, गय-विलसियं मत्तहय-विलसियं, मत्तगय-विलसियं, मत्तहय-विलंबियं, मत्तगय-विलंबियं, दुय-विलंबियं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥११॥

तत्पश्चात् उन्होंने वृषभमण्डलप्रविभक्ति, सिंहमण्डलप्रविभक्ति, अश्व की विलंबितगति, गज की विलंबितगति, अश्व की विलसितगति, गज की विलसितगति, मत्तअश्व की विलसितगति, मत्तहस्ती की विलसितगति, मत्तअश्व की विलंबितगति, मत्तहस्ती की विलंबितगति द्रुतविलंबित नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। ११।

सागर-पविभत्तिं च, नागर-पविभत्तिं च, सागर-नागर-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥१२॥

इसके बाद सागरप्रविभक्ति, नागरप्रविभक्ति अर्थात् समुद्र और नागर संबन्धी रचना से युक्त सागर-नागर प्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का अभिनय दिखाया। १२।

णंदा-पविभत्तिं च, चंपा-पविभत्तिं च, नंदा-चंपा-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥१३॥

तदनन्तर नन्दाप्रविभक्ति, चंपाप्रविभक्ति अर्थात् नन्दा पुष्करिणी और चंपकवृक्ष की रचनारूप नन्दा-चंपाप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। १३।

मच्छंडा-पविभत्तिं च, मयरंडा-पविभत्तिं च, जार-पविभत्तिं च, मार-पविभत्तिं च, मच्छंडा-मयरंडा-जारा-मारा-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥१४॥

तत्पश्चात् मत्स्यांडकप्रविभक्ति, मकराण्डकप्रविभक्ति, जारप्रविभक्ति, मारप्रविभक्ति, की आकृतियों की सुरचना से युक्त मत्स्यांड-मकराण्ड-जार-मार प्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि का अभिनय किया। १४।

'क' त्ति ककार-पविभत्तिं च, 'ख' त्ति खकार-पविभत्तिं च, 'ग' त्ति गकार-पविभत्तिं च, 'घ' त्ति घकार-पविभत्तिं च, 'ङ' त्ति ङकार-पविभत्तिं च, ककार-खकार-गकार-घकार-ङकार-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥१५॥

तदनन्तर उन देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं ने क्रमशः 'क' अक्षर की रचनाकर ककारप्रविभक्ति, 'ख' अक्षर की रचना करके खकारप्रविभक्ति, 'ग' अक्षर की रचना करके गकारप्रविभक्ति, 'घ' अक्षर की रचना करके घकारप्रविभक्ति, और 'ङ' अक्षर की रचना करके ङकारप्रविभक्ति, इस प्रकार ककार, खकार, गकार, घकार, ङकारप्रविभक्ति नाम की दिव्यनृत्यविधि का प्रदर्शन किया। १५।

एवं चकारवग्गोऽपि ॥१६॥

इसी तरह से चकार वर्ग के 'च, छ, ज, झ, ञ' अक्षरों की रचना करके चकारवर्ग प्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि को प्रदर्शित किया। १६।

टकार-वग्गोऽपि ॥१७॥

इसी प्रकार से 'ट ठ ड ढ ण' टकारवर्ग के अक्षरों की आकृति बनाकर टकारवर्ग प्रविभक्ति नामक नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। १७।

तकार-वग्गोऽपि ॥१८॥

तत्पश्चात् तकारवर्ग के अक्षर 'त थ द ध न' की आकृति बनाकर तकार वर्ग प्रविभक्ति नामक नृत्यविधि दिखलाई। १८।

पकार-वग्गोऽपि ॥१९॥

तदनन्तर 'प, फ, ब, भ, म' इन पकारवर्ग के अक्षरों का आकर बनाकर पकारवर्ग प्रविभक्ति नामक नृत्यविधि का अभिनय किया। १९।

असोय-पल्लव-पविभत्तिं च, अंब-पल्लव-पविभत्तिं च, जंबू-पल्लव-पविभत्तिं च, कोसंब-पल्लव-पविभत्तिं च, पल्लवपविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२०॥

तदुपरान्त अशोकपल्लव (अशोकवृक्ष का पत्ता), आम्रपल्लव, जाम्बूपल्लव, कोशांबपल्लव, की आकृति जैसी रचना से युक्त पल्लवप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि प्रदर्शित की। २०।

पउमलया-पविभत्तिं च-जाव-सामलया-पविभत्तिं च लया-पविभत्तिं च णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२१॥

इसके पश्चात् पद्मलताप्रविभक्ति—यावत्—श्यामलता प्रविभक्ति द्वारा लताप्रविभक्ति नामक दिव्य नृत्यविधि दिखलाई। २१।

दुय-णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२२॥

फिर द्रुत नामक दिव्य नृत्यविधि प्रदर्शित की। २२।

विलंबिय-णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२३॥

पुनः विलम्बित नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। २३।

दुय-विलंबियं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२४॥

इसके बाद द्रुत-विलम्बित नामक दिव्य नृत्यविधि को दिखलाया। २४।

अंचियं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२५॥

तत्पश्चात् अंचितनामक दिव्य नृत्यविधि प्रदर्शित की। २५।

रिभियं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२६॥

तदनन्तर रिभित नाम की दिव्य नृत्यविधि दिखलाई। २६।

अंचिय-रिभियं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२७॥

तदुपरान्त अंचित-रिभित नामक दिव्य नृत्यविधि प्रदर्शित की। २७।

आरभडं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२८॥

इसके बाद आरभट नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। २८।

भसोलं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥२९॥

तत्पश्चात् भसोल नाम की दिव्य नृत्यविधि दिखलाई। २९।

आरभड-भसोलं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥३०॥

तदनन्तर आरभट-भसोल नामक दिव्य नृत्यविधि का अभिनय प्रदर्शित किया। ३०।

उप्पय-निवय-पवत्तं, संकुचियं, पसारियं, रयारइयं भंतं संभंतं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥३१॥

इसके बाद उत्पात-निपात प्रवृत्त, संकुचित, प्रसारित, रयारइय, भ्रांत और संभ्रांत संबंधी क्रियाओं विषयक दिव्य नृत्यविधि को दिखाया। ३१।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य समामेव समोसरणं करेंति-जाव-दिव्वे देवरमणे पवत्ते यावि होत्था।

इसके बाद वे सभी देवकुमार और देवकुमारिकायें एक साथ एकत्रित हुए—यावत्—दिव्य देवरमण में प्रवृत्त हो गये।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स पुव्व-भव-चरिय-णिबद्धं च चवण-चरिय-णिबद्धं च संहरण-चरिय-निबद्धं च जम्मण-चरिय-निबद्धं च अभिसेय-चरिय-निबद्धं च बाल-भाव-चरिय-निबद्धं च जोव्वण-चरिय-निबद्धं च काम-भोग-चरिय-निबद्धं च निक्खमण-चरिय-निबद्धं च तव-चरण-चरिय-निबद्धं च णाणुप्पाय-चरिय-निबद्धं च तित्थ-पवत्तण-चरिय-परिनिव्वाण-चरिय-निबद्धं च चरिम-चरिय-निबद्धं णामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति ॥३२॥

तदनन्तर उन सभी देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने श्रमण भगवान महावीर के पूर्व (मनुष्य) भव सम्बन्धी चरित्र से निबद्ध च्यवनचरित्रनिबद्ध, गर्भ संहरणचरित्रनिबद्ध, जन्म चरित्रनिबद्ध, अभिषेकचरित्रनिबद्ध, बाल्यभाव (बाल्यावस्था) चरित्रनिबद्ध, यौवनचरित्रनिबद्ध, काम-भोगचरित्रनिबद्ध, निष्क्रमणचरित्रनिबद्ध, तपश्चरणचरित्रनिबद्ध, ज्ञानोत्पादचरित्र निबद्ध, तीर्थप्रवर्तनचरित्रनिबद्ध, परिनिर्वाण चरित्रनिबद्ध और चरमचारित्रनिबद्ध नामक दिव्य नृत्यविधि का प्रदर्शन किया। ३२।

नाडयस्स समत्ती, सूरियाभस्स पडिगमणं च—

नृत्य की समाप्ति और सूर्याभ का लौटना—

२४. तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारीओ य चउव्विहं वाइत्तं वाएंति। तंजहा—ततं, विततं, घणं, झुसिरं।

२४. तदनन्तर उन देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने तत (ढोल, नगाड़े आदि) वितत (वीणा आदि) घन (झांझ आदि) और शुषिर (शंख, बांसुरी आदि) इन चार प्रकार के वादित्रों-वाद्यों को बजाया।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारियाओ य चउव्विहं गेयं गायंति। तंजहा—उक्खित्तं, पायंतं, मंदायं, रोइयावसाणं च।

तत्पश्चात् उन सब देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मंदक और रोचितावसान रूप चार प्रकार का संगीतगान किया।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारियाओ य चउव्विहं णट्टविहिं उवदंसेंति। तंजहा—अंचियं, रिभियं, आरभडं, भसोलं च।

इसके बाद उन सभी देवकुमारों एवं देवकुमारिकाओं ने चार प्रकार की नृत्यविधियों का प्रदर्शन किया, यथा—अंचित, रिभित, आरभट और भसोल।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारियाओ य चउव्विहं अभिणयं अभिणएंति। तंजहा—दिट्ठंतियं, पाडंतियं, सामन्नोविणिवाइयं, अंतोमज्झावसाणियं च।

तत्पश्चात् उन सभी देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने दार्ष्टान्तिक, प्रात्यंतिक, सामान्यतोपनिपातनिक और अन्तर्मध्यावसानिक—इन चार प्रकार के अभिनयों का अभिनय प्रदर्शित किया।

तए णं ते बहवे देव-कुमारा य देव-कुमारियाओ य गोयमाइयाणं समणाणं निग्गंथाणं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवजुइं, दिव्वं देवाणुभावं, दिव्वं बत्तीसइबद्धं नाडयं उवदंसित्ता, समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण पयाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव सूरियाभे देवे, तेणेव उवागच्छंति,

तदनन्तर उन सभी देवकुमारों और देवकुमारिकाओं ने गौतम आदि श्रमण निर्ग्रंथों को दिव्य देवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति, दिव्य देवानुभाव और बत्तीस प्रकार के नाट्यों को दिखाने के बाद श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ सूर्याभ

उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु, जएणं, विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं आणत्तियं पच्चप्पिणंति।

देव था, वहाँ आये, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभदेव को बधाया, और बधाकर उसकी आज्ञा वापस लौटाई अर्थात् नृत्य आदि प्रदर्शित करने की सूचना दी।

तए णं से सूरियाभे देवे तं दिव्वं देविड्ढिं, दिव्वं देवज्जुइं, दिव्वं देवाणुभावं पडिसाहरइ, पडिसाहरेत्ता खणेणं जाए एगे एगभूए।

इसके बाद उस सूर्याभदेव ने अपनी वह सब दिव्यदेवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति, दिव्यदेवानुभाव को प्रतिसंहारित कर लिया—समेट लिया, प्रतिसंहारित करके क्षणमात्र में जैसा अकेला था, वैसा ही एकाकी बन गया।

तए णं से सूरियाभे देवे समणं भगवंतं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता नियग-परिवाल-सद्धिं संपरिवुडे तमेव दिव्वं जाण-विमाणं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

तदनन्तर उस सूर्याभदेव ने तीन बार श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके अपने परिवार को साथ लेकर उसी दिव्ययान-विमान पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर जिस दिशा में प्रादुर्भूत हुआ था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

सूरियाभदेवस्स देविड्ढिआईणं सरीरतग्गयत्तनिरूवणं—

सूर्याभदेव की देवऋद्धि आदि का शरीरान्तर्गतत्व निरूपण—

२५. भन्ते ! त्ति भयवं गोयमे समणं भगवंतं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता, नमंसित्ता एवं वयासी—

२५. 'हे भंते !' इस प्रकार से भगवान गौतम ने संबोधित कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

'सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स एसा दिव्वा देविड्ढि, दिव्वा देवज्जुइ, दिव्वे देवाणुभावे कहिं गए, कहिं अणुप्पविट्ठे' ?

'हे भगवन् ! उस सूर्याभदेव की यह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव कहाँ चला गया, कहाँ प्रविष्ट हो गया ?"

गोयमा ! सरीरं गए, सरीरं अणुप्पविट्ठे।

'हे गौतम ! शरीर में चला गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया।' श्रमण भगवान महावीर ने उत्तर दिया।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ सरीरं गए सरीरं अणुप्पविट्ठे ?

गौतमस्वामी ने पुनः पूछा—'हे भदन्त ! किस कारण आप ऐसा कहते हैं कि शरीर में चला गया, शरीर में प्रविष्ट हो गया ?

गोयमा ! से जहा नामए कूडागार-साला सिया दुहओ लित्ता, गुत्ता, गुत्त-दुवारा, णिवाया, णिवाय-गंभीरा। तीसे णं कूडागार-सालाए अदूर-सामंते एत्थ णं महेगे जण-समूहे चिट्ठइ, तए णं से जण-समूहे एगं महं अब्भ-वद्दलगं वा वास-वद्दलगं वा महा-वायं वा एज्जमाणं पासइ, पासित्ता तं कूडागार-सालं अंतो अणुप्पविसित्ता णं चिट्ठइ, से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—सरीरं अणुप्पविट्ठे।

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! जैसे कोई एक कूटाकारशाला भीतर बाहर से गोबर आदि से लिपी पुती हो, बाह्य प्राकार-परकोटे से घिरी हुई हो, मजबूत किवाड़ों से युक्त गुप्त द्वार वाली हो, निर्वात—वायुप्रवेश भी जिसमें दुष्कर हो, और गहरी-विशाल हो। उस कूटाकारशाला के निकट एक विशाल जनसमूह बैठा हो और उसी समय वह जनसमूह आकाश में एक बहुत बड़े मेघपटल को अथवा जलवृष्टि करने योग्य बादल को अथवा प्रचण्ड आँधी को आते हुए देखे, तो देखते ही वह उस कूटाकार शाला के अन्दर प्रविष्ट हो जाता है। तो हे गौतम ! उसी प्रकार से सूर्याभदेव की वह सब दिव्य देवऋद्धि आदि उसके शरीर में प्रविष्ट हो गई—अन्तर्लीन हो गई है—ऐसा मैंने कहा है।"

सूरियाभविमाणस्स ठाणाईणं वित्थरओ निरूवणं—

२६. कहि णं भंते ! सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे नामं विमाणे पन्नत्ते ?

गोयमा ! जंबुद्दीवे दीवे मंदरस्स पव्वयस्स दाहिणेणं इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए बहुसमरमणिज्जाओ भूमि-भागाओ उड्ढं चंदिमसूरियगहगणनक्खत्ततारारूवाणं बहूइं जोयणाइं बहूइं जोयण-सयाइं एवं सहस्साइं सयसहस्साइं बहुईओ जोयणकोडीओ जोयण-सयकोडीओ जोयण-सहस्सकोडीओ बहुईओ जोयणसयसहस्सकोडीओ बहुईओ जोयणकोडाकोडीओ उड्ढं दूरं वीईवइत्ता एत्थ णं सोहम्मे नामं कप्पे पन्नत्ते पाईणपडीणायए उदीणदाहिणवित्थिण्णे अद्धचंद-संठाणसंठिए अच्चिमालिभासरासिवण्णाभे असंखेज्जाओ जोयण-कोडाकोडीओ आयामविक्खंभेणं असंखेज्जाओ जोयणकोडाकोडीओ परिक्खेवेणं एत्थ णं सोहम्माणं देवाणं बत्तीसं विमाणावाससय-सहस्साइं भवंतीति मक्खायं। ते णं विमाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

सूर्याभ विमान के स्थान आदि का विस्तार से वर्णन—

२६. 'हे भगवन् ! उस सूर्याभदेव का वह सूर्याभ नामक विमान कहाँ पर बताया है।? गौतमस्वामी ने प्रश्न पूछा।

उत्तर देते हुए भगवान ने कहा—'हे गौतम ! जम्बूद्वीप के मंदर (सुमेरु) पर्वत से दक्षिण दिशा में इस रत्नप्रभा पृथ्वी के अत्यन्त सम और रमणीय भूमिभाग से ऊपर ऊर्ध्व दिशा में चन्द्र, सूर्य, ग्रहगण, नक्षत्र और तारामण्डल से आगे अनेक सैंकड़ों योजन, हजारों योजन, लाखों योजन, करोड़ों योजन, सैंकड़ों करोड़ योजन, हजारों करोड़ योजन, लाखों करोड़ योजन और करोड़ों करोड़ योजन ऊँचे-ऊँचे पार करने के बाद प्राप्त स्थान पर सौधर्मकल्प नामक कल्प—वैमानिक देवों का आवास स्थान—स्वर्गलोक है। जो पूर्व पश्चिम में लम्बा है और उत्तर दक्षिण दिशा में चौड़ा है, अर्धचन्द्र के समान आकार वाला है, अपनी किरणों की कान्ति से सदा चमचमाता रहता है, असंख्यात कोटाकोटि योजन प्रमाण लम्बाई-चौड़ाई तथा असंख्यात कोटा-कोटि योजन प्रमाण परिधिवाला है। यहाँ (सौधर्म कल्प में) सौधर्मदेवों के बत्तीस लाख विमानवास बताये हैं। ये सभी विमानवास सर्वात्मना रत्नों से बने हुए हैं, और स्फटिकमणिवत् निर्मल—यावत्—अतीव मनोहर हैं।

तेसि णं विमाणाणं बहुमज्झदेसभाए पंच वडिंसया पन्नत्ता तंजहा—असोगवडिंसए सत्तवण्णवडिंसए चंपगवडिंसए चूयवडिंसए मज्झे सोहम्मवडिंसए। ते णं वडिंसगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन विमानों के अतिमध्यभाग में चार दिशाओं में पाँच अवतंसक (भवन) कहे हैं। यथा—अशोकावतंसक, सप्तपर्णावतंसक, चंपकावतंसक और चूतावतंसक तथा मध्य में सौधर्मावतंसक। वे सभी अवतंसक सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रति-रूप हैं।

तस्स णं सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स पुरत्थिमेणं तिरियं असंखेज्जाइं जोयणसयसहस्साइं वीइवइत्ता एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सूरियाभे णामं विमाणे पण्णत्ते। अद्धतेरसजोयणसयसहस्साइं आयामविक्खंभेणं अउणयालीसं च सयसहस्साइं बावन्नं च सहस्साइं अट्ठ य अडयालजोयणसए परिक्खेवेणं।

उस सौधर्मावतंसक महाविमान की पूर्व दिशा में तिरछे असंख्यात लाख योजन प्रमाण आगे जाने पर सूर्याभदेव का सूर्याभ नामक विमान कहा है, जिसका आयामविष्कंभ (लम्बाई-चौड़ाई) साढ़े बारह लाख योजन और परिक्षेप (परिधि) उनता-लीस लाख बावन हजार आठ सौ अड़तालीस योजन प्रमाण है।

से णं विमाणे एगेणं पागारेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। से णं पागारे तिण्णि जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, मूले एगं जोयणसयं विक्खंभेणं, मज्झे पन्नासं जोयणाइं विक्खंभेणं उप्पिं पणवीसं जोयणाइं विक्खंभेणं। मूले वित्थिण्णे मज्झे संखित्ते उप्पिं तणुए गोपुच्छसंठाणसंठिए सव्वरयणामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

वह विमान चारों ओर से एक प्राकार-परकोटे से घिरा हुआ है। यह परकोटा तीन सौ योजन ऊँचा है, मूल में इसका विष्कम्भ एक सौ योजन, मध्य में पचास योजन और ऊपर पच्चीस योजन है। इस प्रकार का विष्कम्भ वाला होने से इसका गोपुच्छ के आकार जैसा आकार (संस्थान, आकृति) है, तथा यह प्राकार सर्वात्मना रत्नमयी, स्फटिकमणि के समान निर्मल—यावत्—प्रतिरूप है।

से णं पागारे णाणाविहपंचवण्णेहिं कविसीसएहिं उवसोभिए तं जहा—कण्हेहिं य नीलेहिं य लोहिएहिं हालिद्देहिं सुक्किल्लेहिं कविसीसएहिं।

वह प्राकार अनेक प्रकार के पाँचवर्ण वाले यथा—कृष्णवर्ण नीलवर्ण, रक्तवर्ण, पीतवर्ण और शुक्लवर्ण के कपिशीर्षकों से उपशोभित है।

ते णं कविसीसगा एगं जोयणं आयामेणं अद्धजोयणं विक्खंभेणं देसूणं जोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

वे प्रत्येक कपिशीर्षक एक योजन लम्बे, आधे योजन चौड़े, और कुछ कम एक योजन ऊँचे हैं, तथा वे सब रत्नों से बने हुए, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

सूरियाभस्स णं विमाणस्स एगमेगाए बाहाए दारसहस्सं दारसहस्सं भवतीति मक्खायं। ते णं दारा पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा ईहामिय-उसभ-तुरग-नर-मगर-विहग-वालग-किन्नर-रुरु-सरभ-चमर-कुंजर-वणलय-पउमलय—भत्तिचित्ता खंभुग्गय-वर-वयर-वेइया-परिगयाभिरामा विज्जाहर-जमल-जुयल-जंतजुत्ता विव अच्चीसहस्समालणीया रूवगसहस्सकलिया भिसमाणा भिब्भिसमाणा चक्खुल्लोयणलेसा सुहफासा सस्सिरीयरूवा।

सूर्याभ विमान की एक-एक बाजू में एक-एक हजार द्वार कहे हैं। वे द्वार पाँच-पाँच सौ योजन ऊँचे, अढ़ाई सौ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश (गमनागमन के लिए प्रवेश करने के स्थान) वाले हैं, ये द्वार श्वेतवर्ण के हैं और उत्तम स्वर्णमयी स्तूपिकाओं-शिखरों से युक्त हैं, उन पर ईहामृग, वृषभ, अश्व, मनुष्य, मकर, पक्षी, सर्प, किन्नर, रुरुमृग, अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के चित्राम बने हुए हैं, स्तम्भों पर बनी हुई वज्ररत्नों की वेदिका से युक्त होने के कारण रमणीय दीखते हैं, समश्रेणी में स्थित विद्याधरयुगल यन्त्र द्वारा चलते हुए से दीख पड़ते हैं, हजारों किरणों से व्याप्त और हजारों रूपकों-चित्रों से युक्त होने के कारण वे द्वार देदीप्यमान और अतीव देदीप्यमान हैं, देखने पर दर्शकों के नेत्रों को आकृष्ट कर लेते हैं, उनका स्पर्श सुखप्रद एवं रूप शोभासंपन्न है। उन द्वारों का स्वरूप वर्णन इस प्रकार का है—

वण्णो दाराणं तेसिं होइ तंजहा—वइरामया णिम्मा रिट्ठामया पइट्ठाणा वेरुलियमया खंभा जायरूवोवचियपवरपंचवण्ण-मणिरयणकोट्टिमतला हंसगब्भमया एलुया गोमेज्जमया इंदकीला लोहियक्खमईओ चेडाओ जोईरसमया उत्तरंगा लोहियक्खमईओ सूईओ वयरामया संधी नाणामणिमया समुग्गया वयरामया अग्गला अग्गलपासाया रययामयाओ आवत्तणपेढियाओ अंकुत्तर-पासगा निरंतरियघणकवाडा भित्तीसु चेव भित्तिगुलिया छप्पन्ना तिण्णि होंति गोमाणसिया तत्तिया णाणामणिरयणवालरूवगलीलट्ठियसालभंजियागा वयरामया कूडा रययामया उस्सेहा सव्वतवणिज्जमया उल्लोया णाणामणिरयणजालपंजरमणिवंसग-लोहियक्खपडिवंसगरययभोमा अंकामया पक्खा पक्खबाहाओ जोईरसमया वंसा वंसकवेल्लुयाओ रययामईओ पट्टियाओ

इन द्वारों के नेम (भूभाग से ऊपर निकले प्रदेश) वज्ररत्नों से, प्रतिष्ठान (मूलपाये) रिष्टरत्नों से, स्तम्भ वैडूर्य मणियों से तथा तलभाग स्वर्णजटित पंचरंगे मणिरत्नों से बने हुए हैं, देहलियाँ हंसगर्भ रत्नों की, इन्द्रकीलियाँ गोमेद रत्नों की, द्वार-शाखायें लोहिताक्ष रत्नों की, उत्तरंग (द्वार के ऊपर पाटने के लिए रखा गया पाटिया) ज्योतिरस रत्नों के, दो पाटियों को जोड़ने के लिए ठोकी गयी कीलियाँ लोहिताक्ष रत्नों की हैं और उनकी सांधें वज्ररत्नों से भरी हुई हैं, समुद्गक (कीलियों का ऊपरी हिस्सा—टोपी) विविध प्रकार की मणियों के हैं, अर्गलायें और अर्गलापाशक (कुंदा) वज्ररत्नों के हैं, आवर्तन पीठिकायें (इन्द्रकीलों का स्थान) चाँदी की हैं, उत्तर पार्श्वक (बेनी) अंक रत्नों के हैं, इनके किवाड़ इतने सघन हैं, कि बन्द करने पर किंचित्मात्र भी अन्तर नहीं रहता है, प्रत्येक द्वार की दोनों बाजुओं की दीवारों में कुल मिलाकर तीन सौ छप्पन भित्ति गुलिकायें (गोल शून्य झरोखे) हैं और इतनी ही गोमानसिकायें हैं, द्वारों पर अनेक प्रकार के मणिरत्नों से बने व्याल-सर्प रूपों से क्रीड़ा करती हुई पुतलियाँ बनी हुई हैं, उनके माड़ वज्ररत्नों के, माड़ के शिखर चाँदी के और उनके भी ऊपर के भाग सोने के हैं, द्वारों के जालीदार झरोखे अनेक प्रकार के मणिरत्नों से बने हुए हैं, छप्पर के बांस मणियों के हैं और बांसों को बाँधने की लाटें लोहिताक्ष रत्नों की हैं, रजतमयी भूमि है, पाखें और पाखों की बाजुयें अंकरत्न की हैं, छप्पर के नीचे सीधी और आड़ी लगी हुई वल्लियाँ तथा कवेलू ज्योतिरस रत्नमयी हैं, पट्टियां

जायरूवमईओ ओहाडणीओ वइरामईओ उवरिपुंछणीओ सव्वसेयरययामए छायणे अंकमयकणगकूडतवणिज्जथूभियागा सेया संखतलविमलनिम्मलदहिघणगोखीरफेणरययणिगरप्पगासा तिलगरयणद्धचंदचित्ता नाणामणिदामालंकिया अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्जवालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ॥

चाँदी की हैं, अवघाटनियाँ (कवलू के ढक्कन) स्वर्ण की बनी हुई हैं, उपरिप्रोञ्छनियाँ (टाटियाँ) वज्ररत्नों की हैं, टाटियों के ऊपर एवं अंगुलों के भीतर के आच्छादन श्वेत और चाँदी के बने हुए हैं, इनके शिखर अंकरत्नों के और चाँदी के हैं और ऊपर की स्तूपिकायें तपनीय स्वर्ण की हैं, ये द्वार शंख के समान विमल, दही और दुग्ध-फेन एवं चाँदी के ढेर जैसी श्वेतप्रभा वाले हैं, द्वारों के ऊपरी भाग में तिलक रत्नों से निर्मित अनेक प्रकार के अर्धचन्द्रों के चित्र बने हुए हैं, अनेक प्रकार की मणियों की मालाओं से अलंकृत हैं, ये द्वार भीतर-बाहर अत्यन्त स्निग्ध और सुकोमल हैं, सोने के समान पीली बालुका बिछी हुई है, सुखद स्पर्शवाले और रूप शोभासंपन्न हैं, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस चंदणकलसपरिवाडीओ पन्नत्ताओ। ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा सुरभिवरवारिपडिपुण्णा चंदणकयचच्चागा आविद्धकंठेगुणा पउमुप्पलपिहाणा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा महया महया इंदकुंभसमाणा पन्नत्ता समणाउसो ॥

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं (बैठकों) में सोलह-सोलह चन्दनकलशों की पंक्तियाँ हैं। ये चन्दनकलश श्रेष्ठ उत्तम कमलों पर प्रतिष्ठित हैं, उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए हैं, चन्दन के लेप से चर्चित हैं, उनके कंठों में रक्तवर्ण सूत बंधा हुआ है, और मुख पद्मोत्पल के ढक्कनों से ढंके हुए हैं। हे आयुष्मान् श्रमणो ! ये सभी कलश सर्वात्मना रत्नमय हैं, निर्मल यावत् वृहद् इन्द्रकुम्भ जैसे विशाल एवं अतिशय रमणीय हैं।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस णागदंतपरिवाडीओ पन्नत्ताओ। ते णं णागदंता मुत्ताजालंतरुसियहेमजालगवक्खजालखिंखिणीघंटाजालपरिक्खित्ता अब्भुग्गया अभिणिसिट्ठा तिरियसुसंपरिग्गहिया अहेपन्नगद्धरूवा पन्नगद्धसंठाणसंठिया सव्ववइरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा महया महया गयदंतसमाणा पन्नत्ता समणाउसो ॥

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निषीधिकाओं (बैठकों) में सोलह सोलह नागदन्तों (खूटियों) की परिपाटियाँ—पंक्तियाँ कही हैं। ये नागदन्त मोतियों और सोने की मालाओं में लटकती हुई गवाक्षाकार घुंघरूओं से युक्त छोटी-छोटी घंटिकाओं से परिवेष्टित हैं, इनके अग्रभाग ऊपर की ओर उठे हुए हैं और दीवार से बाहर निकले हैं, और पिछले भाग अन्दर दीवार में अच्छी तरह से ढके हुए हैं एवं उनका आकार सर्प के अधोभाग जैसा है, अग्रभाग का संस्थान सर्पार्ध के समान है, ये वज्ररत्नों से बने हुए हैं। हे आयुष्मान् श्रमणो ! बड़े-बड़े गजदन्तों जैसे ये नागदन्त अतीव स्वच्छ निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे किण्हसुत्तबद्धा वग्घारियमल्लदामकलावा णील० लोहिय० हालिद्द० सुक्किल्लसुत्तबद्धा वग्घारियमल्लदामकलावा। ते णं दामा तवणिज्जलंबूसगा सुवण्णपयरगमंडिया नाणाविहमणिरयणविविहहारउवसोभियसमुदया-जाव-सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणा चिट्ठंति। तेसि णं णागदंताणं उवरिं अन्नाओ सोलस सोलस नागदंतपरिवाडीओ पन्नत्ता ते णं णागदंता तं चेव-जाव-गयदंतसमाणा पन्नत्ता समणाउसो ॥

उन नागदन्तों के ऊपर बहुत से काले सूत में गूँथी हुई एवं इसी प्रकार से नीले, लाल, पीले, और श्वेत सूत में गूँथी हुई लम्बी-लम्बी मालायें लटक रही हैं। वे मालायें सोने के झूमकों और सोने के पत्तों से परिमंडित हैं, नाना प्रकार के मणिरत्नों से रचित विविध प्रकार के शोभनीक हारों के अभ्युदय—यावत्—श्री से अतीव-अतीव उपशोभित हैं। उन नागदन्तों के ऊपर और दूसरी सोलह-सोलह नागदन्तों की परिपाटियाँ कही हैं, हे आयुष्मान् श्रमणो ! ये नागदन्त भी पूर्ववत्—यावत्—विशाल गजदन्त के समान बताये हैं।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता, तेसु णं रययामएसु सिक्कएसु बहवे वेरुलियामईओ धूवघडीओ पण्णत्ताओ। ताओ णं धूवघडीओ कालागुरुपवरकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धयाभिरामाओ सुगंधवरगंधियाओ गंधवट्टिभूयाओ ओरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं घाणमणणिव्वुइकरेणं गंधेणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणा आपूरेमाणा-जाव-चिट्ठंति।

उन नागदन्तों पर बहुत सी रजतमयी सींके लटक रही हैं, उन रजतमयी सींकों में बहुत सी वैडूर्यमणियों से बनी हुई धूपघटिकायें रखी हैं। ये धूपघटिकायें काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क तुरुष्क और सुगन्धित धूप के जलने से उत्पन्न मघमघाती मनमोहक सुगन्ध के उड़ने से एवं उत्तम सुरभिगन्ध की अधिकता से गंधवर्तिका जैसी प्रतीत होती हैं तथा सर्वोत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, नासिका एवं मन को तृप्तिदायक गंध से उस प्रदेश को सब तरफ से अधिवासित करती हुई—यावत्—शोभायमान हो रही हैं।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस सालभंजियापरिवाडीओ पण्णत्ताओ, ताओ णं सालभंजियाओ लीलट्ठियाओ सुपइट्ठियाओ सुअलंकियाओ णाणाविहरागवसणाओ णाणामल्लपिणद्धाओ मुट्ठिगेज्झसुमज्झाओ आमेलगजमलजुयलवट्टियअब्भुण्णयपीणरइयसंठियपीवरपओहराओ रत्तावंगाओ असियकेसीओ मिउविसयपसत्थलक्खणसंवेल्लियग्गसिरयाओ ईसिं असोगवरपायवसमुट्ठियाओ वामहत्थग्गहियग्गसालाओ ईसिं अद्धच्छिकडक्खचिट्ठिएणं लूसमाणीओ विव चक्खुल्लोयणलेसेहि य अण्णमण्णं खिज्जमाणीओ विव पुढविपरिणामाओ सासयभावमुवगयाओ चन्दाणणाओ चंदविलासिणीओ चन्दद्धसमणिडालाओ चन्दाहियसोमदंसणाओ उक्का विव उज्जोवेमाणाओ विज्जुघणमिरियसूरदिप्पंततेयअहिययरसण्णिगासाओ सिंगारागारचारुवेसाओ पासाइयाओ-जाव-चिट्ठंति।

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की निशीधिकाओं में सोलह-सोलह पुतलियों की परिपाटियाँ बताई हैं, ये पुतलियाँ विविध प्रकार की लीलायें करती हुई, सुप्रतिष्ठित, सब प्रकार के आभूषणों से अलंकृत, अनेक प्रकार के रंगबिरंगे वस्त्रों और मालाओं से सुशोभित, मुट्ठी में समा जाने योग्य कटिप्रदेश वाली सिर पर ऊँचा अँबाडा (जूड़ा) बाँधे हुए, परिपुष्ट मांसल, कठोर पीवर भरावदार छाती, समश्रेणी में स्थित, सहवर्ती, अभ्युन्नत-ऊँचे गोलाकार पयोधरों (स्तन) वाली, लालिमायुक्त नयनान्त वाली, सुकोमल, अतीव निर्मल, सघन, घुंघराली, काली-काली कजरारी केशराशि वाली, अशोक वृक्ष का सहारा लेकर खड़ी हुई और बायें हाथ से उसकी अग्रशाखा को पकड़े हुए, अर्धनिमीलित नेत्रों की ईषत् वक्र कटाक्ष रूप चेष्टाओं द्वारा देवों के मन को हरण करती हुई सी और एक दूसरे को देखकर परस्पर खिजाती हुई सी, पार्थिव परिणाम वाली होने पर भी शाश्वत, चन्द्रवत् मुख वाली, चन्द्रमा के समान मनोहर, चन्द्रार्धतुल्य ललाट वाली, चन्द्रमा से भी अधिक सौम्य कान्ति वाली, उल्का पुंज की तरह उद्योत करने वाली, विद्युत की चमक एवं सूर्य के दीप्तिमान तेज से भी अधिक प्रकाश प्रभा वाली, अपनी सुन्दर वेशभूषा से शृंगार रस की गृह जैसी और मन को प्रसन्न करने वाली—यावत्—अतीव रमणीय वे (पुतलियाँ) थीं।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस जालकडगपरिवाडीओ पण्णत्ताओ। ते णं जालकडगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन द्वारों की बाजुओं की दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह जालकटक परिपाटियाँ बताई है, ये जालकटक सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप है।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ निसीहियाए सोलस सोलस घंटापरिवाडीओ पण्णत्ताओ। तासि णं घंटाणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—जंबूणयामईओ घंटाओ वयरामयाओ लालाओ णाणामणिमया घंटापासा तवणिज्जमइयाओ संखलाओ रययामयाओ रज्जूओ। ताओ णं घंटाओ ओहस्सराओ मेहस्सराओ हंसस्सराओ कुंचस्सराओ सीहस्सराओ दुंदुहिस्सराओ णंदिस्सराओ णंदिघोसाओ मंजुस्सराओ मंजुघोसाओ सुस्सराओ सुस्सर-

उन द्वारों की उभयपार्श्ववर्ती दोनों निशीधिकाओं में सोलह सोलह घंटों की पंक्तियाँ कही हैं। उन घण्टाओं का यह और इस प्रकार का वर्णन किया गया है, जैसे कि ये प्रत्येक घण्टे जाम्बूनदस्वर्ण के बने हुए हैं, उनके लोलक वज्ररत्नमयी हैं, भीतर और बाहर दोनों बाजुओं में विविध प्रकार के मणि जड़े हुए है, लटकाने के लिये बँधी हुई सांकलें सोने की और रस्सियाँ मणियों की हैं। मेघ की गड़गड़ाहट, हंसस्वर, क्रौंचस्वर, सिंहगर्जना, दुन्दुभिनाद, वाद्यवृन्दनिनाद, नन्दिघोष, मंजुलस्वर, मंजुलघोष,

घोसाओ उरालेणं मणुण्णेणं मणहरेणं कण्णमणनिव्वुइकरेणं सद्देणं ते पएसे सव्वओ समंता आपूरेमाणाओ आपूरेमाणाओ-जाव-चिट्ठंति ।

सुस्वर, सुस्वरघोष, जैसी गूँज वाले वे घण्टे अपनी श्रेष्ठ, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, कर्ण और मन को सुखकारी झनकारों से उस प्रदेश को सब तरफ से व्याप्त करते रहते हैं ।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस वणमालापरिवाडीओ पन्नत्ताओ । ताओ णं वणमालाओ णाणामणिमयदुमलयकिसलयपल्लवसमाउलाओ छप्पयपरिभुज्जमाणसोहंतसस्सिरीयाओ पासाईयाओ । तेसि णं दाराणं उभओ पासे दुहओ णिसीहियाए सोलस सोलस पगंठगा पन्नत्ता । ते णं पगंठगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं आयामविक्खंभेणं पणवीसं जोयणसयं बाहल्लेणं सव्ववयरामया अच्छा-जाव-पडिरूवा । तेसिं णं पगंठगाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पन्नत्ता, ते णं पासायवडेंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियपहसिया विव विविहमणिरयणभत्तिचित्ता वाउद्धुयविजयवेजयंतपडागच्छत्ताइच्छत्तकलिया तुंगा गगणतलमणुलिहंतसिहरा जालंतररयणपंजरुम्मिलिय व्व मणिकणगथूभियागा वियसियसयवत्तपोंडरीयतिलगरयणद्धचंदचित्ता णाणामणिदामालंकिया अंतो बहिं च सण्हा तवणिज्जवालुयापत्थडा सुहफासा सस्सिरीयरूवा पासाईया दरिसणिज्जा-जाव-दामा ।

उन द्वारों की दोनों बाजुओं की दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह वनमालाओं की परिपाटियाँ कही हैं । वे वनमालायें मणियों से बने हुए नाना प्रकार के वृक्ष-पौधों, लताओं और पल्लवों से व्याप्त हैं, मधुपान के लिये प्रवृत्त भ्रमरों द्वारा बार-बार स्पर्श किये जाने से सुशोभित वे वनलतायें मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय हैं । उन द्वारों की उभय पार्श्ववर्ती दोनों निशीधिकाओं में सोलह-सोलह प्रकंठक (वेदिकारूप पीठ विशेष) चबूतरे बताये हैं । वे प्रकंठक ढाई सौ योजन लम्बे, ढाई सौ योजन चौड़े और सवा सौ योजन मोटे हैं, सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं । उन प्रकंठकों में से प्रत्येक के ऊपर एक-एक प्रासादावतंसक (श्रेष्ठ भवन विशेष) कहे हैं, वे प्रासादावतंसक ढाई सौ योजन ऊँचे और सवा सौ योजन चौड़े हैं और चारों दिशाओं में फैल रही अपनी प्रभा से हँसते हुये से प्रतीत होते हैं, विविध प्रकार के मणिरत्नों से इनमें चित्र विचित्र रचनायें बनी हुई हैं, वायु से फहराती हुई और विजय सूचित करने वाली वैजयन्ती पताकाओं एवं छत्रातिछत्रों से अलंकृत हैं, अत्यन्त ऊँचे होने से इनके शिखर आकाशतल का स्पर्श करते हुए से प्रतीत होते हैं, विशिष्ट शोभा के लिए जाली झरोखों में खचित रत्नपिंजरों से निकले हुए पक्षियों के समान चमकते हैं, इनमें मणियों और स्वर्ण की स्तूपिकायें हैं, तथा स्थान-स्थान पर विकसित शतपत्र एवं पुण्डरीक कमलों के चित्र और तिलक, रत्नों द्वारा रचित अर्धचन्द्र बने हुए हैं, विविध प्रकार की मणिमय मालाओं से अलंकृत हैं, भीतर और बाहर से चिकने-कमनीय हैं, आंगनों में स्वर्णमयी बालुका बिछी हुई है, सुखप्रदस्पर्श वाले, सश्रीकरूप वाले प्रासादिक, दर्शनीय—यावत्—मुक्तादामों से सुशोभित हैं ।

तेसि णं दाराणं उभओ पासे सोलस सोलस तोरणा पन्नत्ता, णाणामणिमया णाणामणिमएसु खंभेसु उवणिविट्ठसन्निविट्ठा-जाव-पउमहत्थगा ।

उन द्वारों की दोनों बाजुओं में सोलह-सोलह तोरण बताये हैं जो अनेक प्रकार की मणियों के बने हुए हैं और विविध प्रकार की मणियों से निर्मित स्तम्भों पर अच्छी तरह से बंधे हुये —यावत्—पद्मकमलों के गुच्छों से उपशोभित हैं ।

तेसि णं तोरणाणं पत्तेयं पुरओ दो-दो सालभंजियाओ पन्नत्ताओ, जहा हेट्ठा तहेव ।

उन तोरणों में से प्रत्येक के आगे दो-दो पुतलियाँ स्थित हैं । इन पुतलियों का वर्णन पूर्ववत् यहाँ जानना चाहिए ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ नागदंता पन्नत्ता जहा हेट्ठा-जाव-दामा ।

उन तोरणों के आगे नागदन्त कहे हैं । पूर्ववर्णित नागदन्तों की तरह मुक्तादाम पर्यन्त इनका वर्णन जानना चाहिए ।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयसंघाडा गयसंघाडा नरसंघाडा किन्नरसंघाडा पुरिससंघाडा महोरगसंघाडा

उन तोरणों के आगे दो-दो अश्व, गज, नर, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व, वृषभ, संघाट-युगल रखे हैं, ये सभी रत्नमय

गंधव्वसंघाडा उसभसंघाडा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा, एवं पंतीओ वीही मिहुणाइं।

निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं, इसी प्रकार से उनकी पंक्ति, श्रेणी, वीथि और मिथुन (स्त्री-पुरुष का जोड़ा) स्थित हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पउमलयाओ-जाव सामलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों के आगे दो-दो पद्मलतायें यावत् श्यामलतायें हैं। ये सभी लतायें पुष्पों से व्याप्त और रत्नमय, निर्मल—यावत्—असाधारण मनोहर हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो दिसासोवत्थिया पन्नत्ता सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों के आगे दो-दो दिशास्वस्तिक कहे हैं, ये सभी रत्नों से बने हुए, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चंदणकलसा पन्नत्ता। ते णं चंदणकलसा वरकमलपइट्ठाणा तहेव।

उन तोरणों के आगे दो-दो चन्दनकलश कहे हैं। ये चन्दन-कलश श्रेष्ठ कमलों पर रखे हुए हैं इत्यादि वर्णन पूर्ववत् यहाँ समझ लेना चाहिए।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो भिंगारा पण्णत्ता, ते णं भिंगारा वरकमलपइट्ठाणा-जाव-महया मत्तगयमुहागिइ-समाणा पन्नत्ता। समणाउसो!।

उन तोरणों के आगे दो-दो भृंगार (झारी) रखे हैं, ये भृंगार उत्तम कमलों पर रखे हैं—यावत्—हे आयुष्मन् श्रमणो! मत्त गजराज की मुखाकृति के समान विशाल आकार वाले हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो आयंसा पन्नत्ता। तेसि णं आयंसाणं इमेयारूवे वन्नावासे पन्नत्ते, तंजहा—तवणिज्जमया पगंठगा अंकमया मंडला अणुग्घसियनिम्मलाए छायाए समणुबद्धा चंदमंडलपडिणिकासा महया महया अद्धकायसमाणा पन्नत्ता समणाउसो!

उन तोरणों के आगे दो-दो दर्पण रखे हैं, उन दर्पणों का यह और इस प्रकार से वर्णन किया गया है, यथा—इनकी पादपीठ सोने की है; प्रतिबिम्ब मण्डल अंकरत्न के हैं, जो अनवघर्षित होने पर भी, अपनी स्वाभाविक निर्मल प्रभा से युक्त हैं, हे आयुष्मन् श्रमणो! चन्द्रमण्डल के जैसे ये निर्मल दर्पण कायार्द्ध प्रमाण जितने बड़े-बड़े हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो वइरनाभथाला पन्नत्ता। अच्छतिच्छडियसालितंदुलनहसंदिट्ठपडिपुन्ना इव चिट्ठंति सव्वजंबूणयमया-जाव-पडिरूवा महया महया रहचक्कवालसमाणा पन्नत्ता समणाउसो।

उन तोरणों के आगे वज्रमय नाभि वाले दो-दो थाल रखे हैं, ये सभी थाल मूसल आदि से तीन बार छांटे गये, शोधे गये अतीव स्वच्छ-निर्मल अखण्ड तंदुलों—चावलों से परिपूर्ण भरे हुए से प्रतिभासित होते हैं, हे आयुष्मन् श्रमणो! ये थाल जाम्बुनद-स्वर्ण के बने हुए—यावत्—प्रतिरूप और रथ के पहिये जितने विशाल आकार वाले हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पाईओ पन्नत्ताओ। ताओ णं पाईओ सच्छोदगपरिहत्थाओ णाणाविहस्स फलहरियगस्स बहुपडिपुन्नाओ विव चिट्ठंति सव्वरयणामईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ महया महया गोकलिंजरचक्कसमाणीओ पन्नत्ताओ समणाउसो!

उन तोरणों के आगे दो-दो पात्रियां रखी हैं। वे पात्रियां स्वच्छ जल से भरी हुई हैं और विविध प्रकार के ताजे हरे फलों से पूर्णतया भरी हुई सी प्रतिभासित होती हैं, हे आयुष्मन् श्रमणो! ये सभी पात्रियां रत्नमयी, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं और उनका आकार बड़े-बड़े गोकलिंजरों (गायों को घास रखने के टोकरे) के समान गोल है।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सुपइट्ठा पन्नत्ता। णाणाविहभंडविरइया इव चिट्ठंति सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों के आगे दो-दो सुप्रतिष्ठक (पात्र—विशेष-प्रसाधन मंजूषा) कहे हैं, जो प्रसाधन की औषधियों-सामग्रियों के भांडों के समान सुशोभित हैं और सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो मणोगुलियाओ पन्नत्ताओ। तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवन्नरुप्पमया फलगा पन्नत्ता। तेसु णं सुवन्नरुप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया नागदंतया पन्नत्ता।

उन तोरणों के आगे दो-दो मनोगुलिकायें (पीठिका विशेष) कही हैं। उन मनोगुलिकाओं के ऊपर बहुत से सोने और चाँदी के पाटिये लगे हैं। उन सोने और चाँदी के पाटियों में अनेक

तेसु णं वयरामएसु णागदंतएसु बहवे वयरामया सिक्कगा पन्नत्ता। तेसु णं वयरामएसु सिक्कगेसु किण्हसुत्तसिक्कगवच्छिया णील-सुत्तसिक्कगवच्छिया लोहियसुत्तसिक्कगवच्छिया हालिद्दसुत्तसिक्कग-वच्छिया सुक्किल्ल-सुत्तसिक्कगवच्छिया बहवे वायकरगा पन्नत्ता सव्ववेरुलियमया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

वज्ररत्नमयी नागदन्त जड़े हुए हैं। उन नागदन्तों पर वज्ररत्न-मय सींके टंगे हैं। उन वज्ररत्नमयी सींकों पर काले, नीले, लाल, पीले और सफेद सूत के जालीदार वस्त्रखण्ड से ढके हुए बहुत से वातकरक (कोरे घड़े) कहे हैं, वे सभी वज्ररत्नमय स्वच्छ —यावत्—अतीव सुन्दर हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चित्ता रयणकरंडगा पन्नत्ता, से जहा णामए रन्नो चाउरंतचक्कवट्टिस्स चित्ते रयणकरंडए वेरुलियमणिफलिहपडलपच्चोयडे साए पहाए ते पएसे सव्वओ समंता ओभासइ उज्जोवेइ तवइ पभासइ एवामेव ते वि चित्ता रयणकरंडगा साए पभाए ते पएसे सव्वओ समंता ओभासंति उज्जोवेंति तवंति पभासंति।

उन तोरणों के आगे चित्रामों से चित्रित दो-दो रत्नकरण्डक रखे हैं, जिस तरह चातुरंत चक्रवर्ती राजा का वैडूर्यमणि और स्फटिक मणि के पटल से आच्छादित अद्भुत रत्नकरण्डक अपनी प्रभा से उस प्रदेश को पूरी तरह से प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, उसी प्रकार ये रत्नकरण्डक भी अपनी प्रभा से उस प्रदेश को पूरी तरह से सर्वात्मना प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करते हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो हयकंठा गयकंठा नरकंठा किन्नरकंठा किंपुरिसकंठा महोरगकंठा गंधव्वकंठा उसभकंठा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन तोरणों के आगे दो-दो अश्वकंठ, गजकंठ, नरकंठ, किन्नरकंठ, किंपुरुषकंठ, महोरगकंठ, गंधर्वकंठ, वृषभकण्ठ रखे हैं, ये सभी रत्नों के बने हुए, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो पुप्फचंगेरीओ मल्लचंगेरीओ चुण्णचंगेरीओ गंधचंगेरीओ वत्थचंगेरीओ आभरणचंगेरीओ सिद्धत्थ-चंगेरीओ पन्नत्ताओ, सव्वरयणामयाओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

उन तोरणों के आगे दो-दो पुष्पचंगेरिकायें, माल्यचंगेरिकायें, चूर्णचंगेरिकायें, गंधचंगेरिकायें, वस्त्रचंगेरिकायें, आभरणचंगेरि-कायें, सिद्धार्थ (सरसों) चंगेरिकायें (छोटी-छोटी टोकरियाँ, डलियाँ) कही हैं, ये सभी रत्नों से बनी हुई, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तासु णं पुप्फचंगेरियासु-जाव-सिद्धत्थचंगेरीसु दो दो पुप्फपडल-गाइं-जाव-सिद्धत्थपडलगाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरू-वाइं।

उन पुष्पचंगेरिकाओं—यावत्—सिद्धार्थ चंगेरिकाओं में दो-दो पुष्प पटलक (पिटारे)—यावत्—सिद्धार्थ पटलक रखे हैं, ये सभी पटलक रत्नों के बने हुए, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो सीहासणा पण्णत्ता। तेसि णं सीहासणाणं वण्णओ-जाव-दामा।

उन तोरणों के आगे दो-दो सिंहासन कहे हैं, मुक्तादाम पर्यंत इन सिंहासनों का वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिए।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो रुप्पमया छत्ता पन्नत्ता। ते णं छत्ता वेरुलियविमलदंडा जंबूणयकन्निया वइरसंधी मुत्ता-जालपरिगया अट्ठसहस्सवरकंचणसलागा दद्दरमलयसुगंधिसव्वो-उयसुरभिसीयलच्छाया मंगलभत्तिचित्ता चंदागारोवमा।

उन तोरणों के आगे दो-दो रजतमय छत्र कहे हैं। इन रजत-मय छत्रों के दण्ड विमल वैडूर्यमणि के हैं, कर्णिकायें सोने की हैं, संधियाँ वज्र की हैं, मोती पिरोई हुई आठ हजार सोने की श्रेष्ठ शलाकायें ताने हैं, दद्दर चन्दन और सभी ऋतुओं के पुष्पों की सुरभिगंध से युक्त शीतल छाया वाले हैं, इन पर मंगलरूप स्वस्तिक आदि आठ मंगलों के चित्र बने हुए हैं और चन्द्रमण्डल-वत् इनका गोलाकार है।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो चामराओ पन्नत्ताओ। ताओ णं चामराओ चंदप्पभ-वेरुलियवयरनानामणिरयणखचिय-चित्तदंडाओ सुहुमरययदीहवालाओ संखंककुंददगरयअमयमहिय-फेणपुञ्जसन्निगासाओ सव्वरयणामयाओ अच्छाओ-जाव-पडि-रूवाओ।

उन तोरणों के आगे दो-दो चामर कहे हैं। इन चामरों की डंडियाँ चन्द्रकान्त, वैडूर्य और वज्ररत्नों की हैं और उन पर अनेक प्रकार के मणिरत्नों द्वारा अनेक प्रकार की चित्र-विचित्र रचनायें बनी हुई हैं, शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण और मथित क्षीरोदधि के फेनपुंज सदृश श्वेत धवल इनके पतले लम्बे बाल हैं, ये सभी चामर सर्वात्मना रत्नमय, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं तोरणाणं पुरओ दो दो तेल्लसमुग्गा कोट्ठसमुग्गा पत्तसमुग्गा चोयगसमुग्गा तगरसमुग्गा एलासमुग्गा हरियालसमुग्गा हिंगुलयसमुग्गा मणोसिलासमुग्गा अंजणसमुग्गा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ॥

इन तोरणों के आगे दो-दो तेलसमुद्गक (सुगन्धित तेल से भरे पात्र), कोष्ठसमुद्गक, पत्रसमुद्गक, चोयसमुद्गक, तगर-समुद्गक, एला (इलायची) समुद्गक, हरतालसमुद्गक, हिंगलुक-समुद्गक, मैनसिलसमुद्गक और अंजनसमुद्गक, रखे हैं, ये सभी समुद्गक रत्नों से बने हुए, निर्मल—यावत्—अतीव मनोहर हैं।

सूरियाभे णं विमाणे एगमेगे दारे अट्ठसयं चक्कज्झयाणं अट्ठसयं मिगज्झयाणं गरुडज्झयाणं छत्तज्झयाणं पिच्छज्झयाणं सउणिज्झयाणं सीहज्झयाणं उसभज्झयाणं अट्ठसयं सेयाणं चउविसाणाणं नागवरकेऊणं एवामेव सपुव्वावरेणं सूरियाभे विमाणे एगमेगे दारे असीयं असीयं केउसहस्सं भवतीति मक्खायं।

सूर्याभ विमान के एक-एक द्वार के ऊपर एक सौ आठ-एक सौ आठ चक्र, मृग, गरुड़ छत्र, मयूरपिच्छ, पक्षी, सिंह, वृषभ, श्वेत चारदाँतवाले हाथी, और उत्तम नाग के चिन्ह से अंकित ध्वजायें लगी हैं। इस प्रकार उस सूर्याभ विमान के एक-एक द्वार पर कुल मिलकर एक हजार अस्सी-एक हजार अस्सी ध्वजायें फहरा रही हैं, ऐसा कहा गया है।

तेसि णं दाराणं एगमेगे दारे पण्णट्ठि पण्णट्ठि भोमा पन्नत्ता। तेसि णं भोमाणं भूमिभागा उल्लोया य भाणियव्वा। तेसि णं भोमाणं बहुमज्झदेसभागे पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे, सीहासणवन्नओ सपरिवारो, अवसेसेसु भोमेसु पत्तेयं पत्तेयं भद्दासणा पन्नत्ता।

उन द्वारों में से एक-एक द्वार पर पैंसठ-पैंसठ भौम (उपरि-गृह-विशिष्ट स्थान) कहे हैं। यान विमान की तरह इन भौमों के समरमणीय भूमिभाग और उल्लोक (आगासों) का वर्णन करना चाहिए। उन भौमों के बीचों-बीच एक-एक सिंहासन रखा है। यानविमानवर्ती सिंहासन की तरह परिवार रूपसामानिक आदि देवों के भद्रासनों सहित इन सिंहासनों का वर्णन करना चाहिए और अवशेष भौमों में एक-एक भद्रासन कहा है।

तेसि णं दाराणं उत्तमागारा सोलसविहेहिं रयणेहिं उवसोहिया, तंजहा—रयणेहिं-जाव-रिट्ठेहिं। तेसि णं दाराणं उप्पि अट्ठट्ठ मंगलगा सज्झया-जाव-छत्ताइछत्ता

उन द्वारों के ओतरंग (ऊपरी भाग) सोलह प्रकार के रत्नों से उपशोभित हैं, उन रत्नों के नाम इस प्रकार है—यावत्—रिष्ट रत्न। उन द्वारों के ऊपर ध्वजाओं—यावत्—छत्रातिछत्रों से शोभित स्वस्तिक आदि आठ-आठ मंगल द्रव्य हैं।

एवामेव सपुव्वावरेणं सूरियाभे विमाणे चत्तारि दारसहस्सा भवंतीति मक्खायं।

इसी प्रकार से सूर्याभ विमान के सभी चार हजार द्वारों की शोभा का वर्णन किया गया है।

सूरियाभस्स विमाणस्स चउद्दिसिं पंच जोयणसयाइं अबाहाए चत्तारि वणसंडा पन्नत्ता, तंजहा—असोगवणे, सत्तिवन्नवणे, चंपगवणे, चूयगवणे। पुरत्थिमेणं असोगवणे दाहिणेणं सत्तिवन्नवणे पच्चत्थिमेणं चंपगवणे उत्तरेणं चूयगवणे। ते णं वणखंडा साइरेगाइं अद्ध-तेरसजोयणसयसहस्साइं आयामेणं पंच जोयणसयाइं विक्खंभेणं पत्तेयं पत्तेयं पागारपरिखित्ता किण्हा किण्होभासा नीला नीलोभासा हरिया हरिओ० सीया सीओ० निद्धा निद्धो० तिव्वा तिव्वो० किण्हा किण्हच्छाया नीला नी० हरिया ह० सीया सी० निद्धा नि० घणकडितडियच्छाया रम्मा महामेहनिउरंबभूया।

सूर्याभ विमान के चारों ओर पाँच-पाँच सौ योजन छोड़कर चारों दिशाओं में चार वनखण्ड कहे हैं, यथा—अशोकवन, सप्त-पर्णवन, चंपकवन, चूत (आम्र) वन। इनमें से पूर्व दिशा में अशोकवन, दक्षिण दिशा में सप्तपर्णवन, पश्चिम दिशा में चंपक-वन और उत्तर दिशा में चूतवन है। ये प्रत्येक वनखण्ड साढ़े बारहलाख योजन से कुछ अधिक लम्बे और पाँच सौ योजन चौड़े हैं, तथा एक-एक परकोटे से घिरे हुए हैं। ये सभी वनखण्ड अत्यंत घने होने से काले और काली प्रभा वाले, नीले और नीलीप्रभावाले, हरे और हरी प्रभा वाले, शीतस्पर्श और शीतल प्रभा वाले, स्निग्ध-कमनीय और कमनीय प्रभा वाले, तीव्र और तीव्र प्रभा वाले, काले और काली छाया वाले, नीले और नीली छाया वाले, हरे और हरी छाया वाले, शीतल और शीतल छाया वाले, स्निग्ध और स्निग्ध छाया वाले हैं और वृक्षों की शाखा प्रशाखायें आपस में एक दूसरी से मिली होने के कारण अपनी सघन छाया से बड़े ही रमणीय तथा महामेघों के समुदाय जैसे सुहावने दीखते हैं।

ते णं पायवा मूलमंतो वन्नओ।

उन वनखण्डों के वृक्ष भीतर जमीन में गहरी फैली हुई जड़ों वाले हैं आदि—इन वृक्षों का वर्णन करना चाहिये।

तेसि णं वणसंडाणं अंतो बहुसमरमणिज्जा भूमिभागा पण्णत्ता। से जहा नामए आलिंगपुक्खरे इ वा-जाव-णाणाविहपंचवण्णेहिं मणीहि य तणेहि य उवसोहिया, तेसि णं गंधो फासो णेयव्वो जहक्कमं।

इन वनखण्डों के मध्य में अत्यन्त सम और रमणीय भूमि भाग बताये है, जैसे कि आलिंग पुष्कर आदि के समान सम —यावत्—नाना प्रकार के पंचरंगी मणियों और तृणों से उपशोभित हैं। उन मणियों और तृणों का गंध और स्पर्श यथाक्रम से पूर्व में किये गये मणियों के गंध और स्पर्श के वर्णन के अनुरूप जानना चाहिए।

तेसि णं भंते! तणाण य मणीण य पुव्वावरदाहिणुत्तरागएहिं वाएहिं मंदायं मंदायं एइयाणं वेइयाणं कंपियाणं चालियाणं फंदियाणं घट्टियाणं खोभियाणं उदीरियाणं केरिसए सद्दे भवइ?

प्र.—'हे भदन्त! पूर्व, पश्चिम, दक्षिण और उत्तर दिग्वर्ती वायुस्पर्श से मन्द-मन्द हिलने-डुलने, काँपने, डगमगाने, फरकने, टकराने, क्षुभित और उदीरित होने पर उन तृणों और मणियों की कैसी शब्द ध्वनि होती है?'

गोयमा! से जहानामए सीयाए वा संदमाणीए वा रहस्स वा सच्छत्तस्स सज्झयस्स सघंटस्स सपडागस्स सतोरणवरस्स सनंदिघोसस्स सखिंखिणिहेमजालपरिक्खित्तस्स हेमवयचित्ततिणिसकणगनिज्जुत्तदारुयायस्स सुसंपिणद्धचक्कमंडलधुरागस्स कालायससुकयणेमिजंतकम्मस्स आइण्णवरतुरगसुसंपउत्तस्स कुसलणरच्छेयसारहिसुसंपरिग्गहियस्स सरसयबत्तीसतोणपरिमंडियस्स सकंकडावयंसगस्स सचावसरपहरणआवरणभरियजोहजुद्धसज्जस्स रायंगणंसि वा रायंतेउरंसि वा रम्मंसि वा मणिकुट्टिमतलंसि अभिक्खणं अभिघट्टिज्जमाणस्स वा नियट्टिज्जमाणस्स वा ओराला मणुण्णा मणोहरा कण्णमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समंता अभिणिस्सवंति,

उ.—'हे गौतम! जिस तरह शिविका (पालकी), स्यन्दमानिका (बहली) अथवा, छत्र-ध्वजा-घंटा-पताका और उत्तम तोरणों से सुशोभित, वाद्यसमूहवत् शब्द निनाद करने वाले, घुंघरुओं एवं स्वर्णमयी मालाओं से परिवेष्टित, हिमालय में उत्पन्न अति निगड सारभूत उत्तम तिनिसकाष्ठ से निर्मित, सुव्यवस्थित रीति से लगाये गये और युक्त, धुराओं से सुसज्जित, सुदृढ़ उत्तम लोहे के पट्टों से सुरक्षित पट्टियों वाले, शुभ लक्षणों और गुणों से युक्त कुलीन अश्वों से जुते हुए, रथ संचालन में अति कुशल सारथी द्वारा संचालित, एक सौ बाणों वाले बत्तीस तूणीरों से परिमण्डित कवच से आच्छादित शिखर भाग वाले, धनुष-बाण, प्रहरण कवच आदि युद्धोपकरणों से भरे हुए और युद्ध के लिए सन्नद्ध योद्धाओं के लिए सजाये गये रथ के बारम्बार मणियों और रत्नों से निर्मित फर्श वाले राजप्रांगण अथवा अंतःपुर अथवा रमणीय प्रदेश में आने-जाने पर सभी दिशा-विदिशाओं में उत्तम, मनोज्ञ, मनोहर, कर्ण मन को आनन्दकारक मधुर ध्वनि फैलती है।'

भवेयारूवेसिया?

प्र.—'हे भदन्त! क्या इन रथादिकों की ध्वनि उन तृणों और मणियों की ध्वनि जैसी ही है?'

णो इणट्ठे समट्ठे।

उ.—'हे गौतम! यह अर्थ समर्थ नहीं है, इनसे भी अधिक मधुर उनकी ध्वनि है।'

से जहा णामए वेयालियवीणाए उत्तरमंदामुच्छियाए अंके सुपइट्ठियाए कुसलनरनारिसुसंपरिग्गहियाए चंदणसारनिम्मियकोणपरिघट्टियाए पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि मंदायं मंदायं वेइयाए पवेइयाए चालियाए घट्टियाए खोभियाए उदीरियाए ओराला मणुण्णा मणहरा कण्णमणनिव्वुइकरा सद्दा सव्वओ समंता अभिनिस्सवंति, भवेयारूवे सिया?

प्र.—'हे भदन्त! जैसी कि मध्यरात्रि में वादन कुशल नर या नारी द्वारा अंक (गोद) में लेकर चन्दन के सारभाग से रचित कोण (वीणा बजाने का दण्ड—डांडी) के स्पर्श से मन्द-मन्द ताड़ित, कम्पित, प्रकम्पित, चालित, घर्षित, क्षुभित और उदीरित किये जाने पर उत्तर मन्द मूर्छना वाली, वैतालिक वीणा की सभी दिशा-विदिशाओं में चारों ओर श्रेष्ठ, सुन्दर, मनोज्ञ, मनोहर, कर्णप्रिय एवं मनमोहक ध्वनि गूंजती है क्या उन मणियों और तृणों की ऐसी ध्वनि है?'

णो इणट्ठे समट्ठे।

उ. 'हे गौतम ! नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है, इससे भी विशेष मधुर उन मणियों और तृणों की ध्वनि है।'

से जहा नामए किन्नराण वा किंपुरिसाण वा महोरगाण वा गंधव्वाण वा भद्दसालवणगयाण वा नंदणवणगयाण वा सोमणसवणगयाण वा पंडगवणगयाण वा हिमवंतमलयमंदरगिरि-गुहासमन्नागयाण वा एगओ सन्निहियाणं समागयाणं सन्निसन्नाणं समुवविट्ठाणं पमुइय-पक्कीलियाणं गीयरइगंधव्वहसियमणाणं गज्जं पज्जं कत्थं गेयं पयबद्धं पायबद्धं उक्खित्तं पायंतं मंदायं रोइयावसाणं सत्तसरसमन्नागयं छद्दोसविप्पमुक्कं एक्कारसालंकारं अट्ठगुणोववेयं, गुंजाऽवंककुहरोवगूढं रत्तं तिट्ठाणकरणसुद्धं पगीयाणं, भवेयारूवे ?

'अथवा हे भदन्त ! क्या उनकी ध्वनि इस प्रकार की है ? जैसे कि भद्रशाल वन, नन्दन वन, सोमनस वन अथवा पांडक वन या हिम वन, मलय अथवा मंदरगिरि की गुफाओं में वास करने वाले एवं एक स्थान पर एकत्रित, समागत, बैठे हुए और अपने-अपने समूह के साथ उपस्थित हुए, हर्षोल्लासपूर्वक क्रीड़ा करने में तत्पर, संगीत, नृत्य, नाटक, हास-परिहास के प्रेमी किन्नरों, किंपुरुषों, महोरगों अथवा गन्धर्वों के गद्यमय, पद्यमय, कथनीय, गेय, पदबद्ध, पादबद्ध, उत्क्षिप्त, पादान्त, मन्द-मन्द घोलनात्मक, रोचितावसान, सुखान्त, मनमोहक, सप्त स्वरों से समन्वित षड्दोषों से रहित, ग्यारह अलंकारों और आठ गुणों से युक्त, गुञ्जारव से दूर-दूर तक के कोनों को व्याप्त करने वाले, समरागिनी से युक्त, आकर्षक, त्रिस्थानकरण शुद्ध गीतों के जैसे मधुर बोल होते हैं ?'

हंता सिया ॥

'हे गौतम ! हां, ऐसी ही मधुर-अतिमधुर ध्वनि इन मणियों और तृणों से निकलती है।'

तेसि णं वणसंडाणं तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहुईओ खुड्डाखुड्डियाओ वावियाओ पुक्खरिणीओ दीहियाओ गुञ्जालियाओ सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ बिलपंतियाओ अच्छाओ सण्हाओ रययामयकूलाओ समतीराओ वयरामयपासाणाओ तवणिज्जतलाओ सुवण्णसुब्भरययवालुयाओ वेरुलियमणिफालियपडल-पच्चोयडाओ सुहोयारसुउत्ताराओ णाणामणितित्थसुबद्धाओ चउक्कोणाओ आणुपुव्वसुजायवप्पगंभीरसीयलजलाओ संछन्नपत्त-भिसमुणालाओ बहुउप्पलकुमुयनलिणसुभगसोगंधियपोंडरीयसय-वत्तसहस्सपत्तकेसरफुल्लोवचियाओ छप्पयपरिभुज्जमाणकमलाओ अच्छविमलसलिलपुण्णाओ पडिहत्थभमंतमच्छकच्छभअणेगसउण-मिहुणगपविचरियाओ पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइयापरिक्खित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ अप्पेगइयाओ आसवोयगाओ वारुणोयगाओ अप्पेगइयाओ खीरोयगाओ—

उन वनखण्डों में उन—उनके योग्य देश-प्रदेशों में अनेक छोटी-छोटी चौरस वापिकायें—बावड़ियां, पुष्करिणियां, दीर्घिकायें (सीधी बहती नदियां), गुञ्जालिकायें (टेढ़ी-मेढ़ी तिरछी बहती नदियां) सरपंक्तियां, सर-सरपंक्तियां, कूपपंक्तियां बनी हुई हैं, इन वापिकाओं आदि का बाहरी भाग स्वच्छ और कमनीय है, इनके किनारे रजतमय हैं और तटवर्ती भाग अत्यन्त सम—चौरस हैं, ये सभी जलाशय वज्ररत्न रूपी पाषाणों से बने हुए हैं, इनके तलभाग तपनीय स्वर्ण से निर्मित हैं और उन पर शुद्ध स्वर्ण और चाँदी की बालू बिछी है, तटों के निकटवर्ती प्रदेश वैडूर्य एवं स्फटिक मणि पटलों के हैं, उनमें उतरने और निकलने के स्थान सुखकारी हैं, घाटों पर अनेक प्रकार की मणियां जड़ी हुई हैं, चार कोनों वाली वापिकाओं और कुओं में अनुक्रम से नीचे-नीचे पानी अगाध और शीतल है तथा कमलपत्रों बिसों (कमल कन्द) एवं मृणालों से ढका हुआ है, ये सभी जलाशय विकसित उत्पल, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पौंडरिक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों से सुशोभित हैं तथा उन पर पराग पान करने के लिए भ्रमर समूह गूंज रहे हैं, स्वच्छ और विमल जल से भरे हुए हैं, कल्लोल करते हुए मगर-मच्छ, कछुवा, इधर उधर घूम रहे हैं और अनेक प्रकार के पक्षी समूहों के गमनागमन से सदा व्याप्त रहते हैं तथा ये सभी जलाशय एक-एक पद्मवरवेदिका और एक-एक वनखण्ड से घिरे हुए हैं, इन जलाशयों में से किसी किसी में आसव जैसा, किसी में वारुणोदक—वारुण समुद्र के जल जैसा, किसी में क्षीरोदक

अप्पेगइयाओ घओयगाओ अप्पेगइयाओ खोदोयगाओ अप्पेगइयाओ पगईए उदगरसेणं पण्णत्ताओ पासाइयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ।

जैसा, किसी में घी जैसा, किसी में इक्षुरस जैसा और किसी-किसी में प्राकृतिक—स्वाभाविक पानी जैसा स्वाद वाला पानी भरा है। ये सभी जलाशय मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं।

तासि णं वावीणं-जाव-बिलपंतीणं पत्तेयं पत्तेयं चउद्दिसि चत्तारि तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तेसि णं तिसोवाणपडिरूवगाणं अयमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते तंजहा—

उन प्रत्येक वापिकाओं—यावत्—कूप पंक्तियों की चारों दिशाओं में एक-एक सुन्दर तीन-तीन सोपान बने हैं, इन त्रिसोपान प्रतिरूपकों का यह और इस प्रकार से वर्णन किया गया है—

वइरामया नेमा०, तोरणाणं झया छत्ताइछत्ता य णेयव्वा। तासि णं खुड्डाखुड्डियाणं वावीणं-जाव-बिलपंतियाणं तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे उप्पायपव्वयगा नियइपव्वयगा जगई-पव्वयगा दारुइज्जपव्वयगा दगमंडवा दगमंचगा दगमालगा दग-पासायगा उसड्डा खुड्डखुड्डगा अंदोलगा पक्खंदोलगा सव्वर-यणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

जैसे कि उनकी नेमें वज्ररत्नों की हैं इत्यादि। तोरणों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों का वर्णन पूर्ववत् यहां कर लेना चाहिये। उन छोटी-छोटी वापिकाओं—यावत्—कूपपंक्तियों के मध्यवर्ती प्रदेशों में बहुत से—अनेक उत्पात पर्वत, नियति पर्वत, जगती पर्वत, दारु पर्वत तथा कितने ही ऊँचे-नीचे, छोटे-बड़े दक-मण्डप, दक मंचक, दकमालक एवं दकप्रासाद बने हुए है, साथ ही कहीं-कहीं पर देवों एवं पक्षियों को झूलने के लिए झूले—हिंडोले पड़े हैं। ये सभी पर्वत आदि सर्वात्मना रत्नमय स्वच्छ-निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं उप्पायपव्वएसु-जाव-पक्खंदोलएसु बहूइं हंसासणाइं कोंचासणाइं गरुलासणाइं उण्णयासणाइं पणयासणाइं दीहासणाइं भद्दासणाइं पक्खासणाइं मगरासणाइं उसभासणाइं सीहासणाइं पउमासणाइं दिसासोवत्थियाइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं-जाव-पडिरूवाइं।

उन उत्पात पर्वतों पर—यावत्—पक्षि हिंडोलों पर अनेक हंसासन (हंस जैसी आकृति वाले आसन), क्रौंचासन, गरुड़ासन, प्रणतासन (नीचे की ओर झुके हुए आसन), दीर्घासन (शैया जैसे लम्बे आसन), भद्रासन, पक्ष्यासन, मकरासन, वृषभासन, सिंहासन, पद्मासन और दिशा स्वस्तिकासन रखे हैं, ये सभी आसन रत्नों से बने हुए स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं वणसंडेसु तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे आलियघरगा मालियघरगा कयलिघरगा लयाघरगा अच्छणघरगा पिच्छणघरगा मज्जणघरगा पसाहणघरगा गब्भघरगा मोहणघरगा सालघरगा जालघरगा कुसुमघरगा चित्तघरगा गंधव्वघरगा आयंसघरगा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

उन वनखण्डों में स्थान-स्थान पर बहुत से आलिगृह (वनस्पति विशेष से बने हुए जैसे मण्डप) मालिगृह, कदलीगृह, लतागृह, आसनगृह, प्रेक्षणगृह, मज्जनगृह, प्रसाधनगृह, गर्भगृह (तल घर), मोहनगृह, शालागृह, जालगृह, कुसुमगृह चित्रगृह, गन्धर्वगृह (संगीतशाला), आदर्शगृह (दर्पणों से बने घर) सुशोभित हो रहे हैं। ये सभी गृह रत्नों से बने हुए स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं आलियघरगेसु-जाव-आयंसघरगेसु तहिं तहिं घरएसु बहूइं हंसासणाइं-जाव-दिसासोवत्थियआसणाइं सव्वरयणामयाइं-जाव-पडिरूवाइं।

उन आलिगृहों—यावत्—आदर्शगृहों में स्थान-स्थान पर बहुत गृहों में हंसासन—यावत्—दिशा स्वस्तिक—आसन रखे हैं। वे सर्वात्मना रत्नमय—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं वणसंडेसु तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे जाइ-मंडवगा जूहियामंडवगा मल्लियामंडवगा णवमालियामंडवगा वासंतिमंडवगा दहिवासुयमंडवगा सूरिल्लियमंडवगा तंबोलिमंडवगा मुद्दियामंडवगा णागलयामंडवगा अइमुत्तलयामंडवगा अप्फोया-मंडवगा मालुयामंडवगा अच्छा सव्वरयणामया-जाव-पडिरूवा।

उन वनखण्डों में यथायोग्य उन-उन स्थानों पर बहुत से जाति मण्डप, यूथिका मण्डप, मल्लिका मण्डप, नवमल्लिका मण्डप, वासंती मण्डप, दधिवासुका (वनस्पति विशेष) मण्डप, सूरिल्लि (सूरजमुखी) मण्डप, नागर बेल मण्डप, मृद्वीका मण्डप (अंगूर की बेल के मण्डप), नागलता मण्डप, अतिमुक्तकलता मण्डप, अप्फोया मण्डप और मालुका मण्डप बने हुए हैं। ये सभी मण्डप स्वच्छ—निर्मल, रत्नमय—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसु णं जाइमण्डवएसु-जाव-मालुयामंडवएसु बहवे पुढवि-सिलापट्टगा हंसासणसंठिया-जाव-दिसासोवत्थियासणसंठिया अण्णे य बहवे-वरसयणासणविसिट्ठसंठाणसंठिया पुढविसिलापट्टगा पण्णत्ता समणाउसो ! आईणगरूयबूरणवणीयतूलफासा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

हे आयुष्मन् श्रमणो ! उन जाति मण्डपों—यावत्—मालुका मण्डपों में बहुत से हंसासन सदृश आकार वाले—यावत्—पद्मासन सदृश दिशा स्वस्तिकासन जैसे आकार वाले पृथ्वी शिलापट्टक तथा दूसरे भी बहुत से श्रेष्ठ शयनासन सदृश विशिष्ट आकार वाले पृथ्वी शिलापट्टक रखे हैं। ये सभी पृथ्वी शिलापट्टक चर्मनिर्मित वस्त्र (मृगछाला), रुई, बूर, नवनीत, तूल (सेमल या आक की रुई) के स्पर्श जैसे सुकोमल—कमनीय, सर्वरत्नमय, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप—अतीव सुन्दर हैं।

तत्थ णं बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य आसयंति सयंति चिट्ठंति निसीयंति तुयट्टंति रमंति ललंति कीलंति किट्टंति मोहेंति पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरिक्कंताण सुभाण कडाण कम्माण कल्लाणाण कल्लाणं फलविवागं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

उन पर बहुत से देव और देवियाँ सुखपूर्वक बैठते हैं, सोते हैं, विश्राम करते हैं, ठहरते हैं, करवट लेते हैं, रमण करते हैं, केलिक्रीड़ा करते हैं, इच्छानुसार भोग-विलास भोगते हैं, मनोविनोद करते हैं और रतिक्रीड़ा करते हैं इस प्रकार वे अपने-अपने सुपुरुषार्थ से पूर्वोपार्जित शुभ, कल्याणरूप, शुभफलप्रद मंगलरूप पुण्य कर्मों के कल्याणकारी फलविपाक का अनुभव करते हुए समय व्यतीत करते हैं।

तेसि णं वणसंडाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं पासायवडेंसगा पण्णत्ता। ते णं पासायवडेंसगा पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसियपहसिया इव, तहेव बहुसमरमणिज्जभूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं।

उन वनखण्डों के मध्यातिमध्य भाग में प्रासादावतंसक बने हुए हैं। वे प्रत्येक प्रासादावतंसक पाँच सौ योजन ऊँचे, अढ़ाई सौ योजन चौड़े हैं और अपनी उज्ज्वल प्रभा से हँसते हुए से प्रतीत हो रहे हैं। उनका भूमि भाग अतिसमरमणीय है और इनमें चंदेवा, सामानिक आदि देवों के भद्रासनों आदि सहित सिंहासन इत्यादि का वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिए।

तत्थ णं चत्तारि देवा महिड्ढिया-जाव-पलिओवमट्ठिइया परिवसंति, तंजहा—असोए सत्तपण्णे चंपए चूए।

उन प्रासादावतंसकों में महान् ऋद्धिशाली—यावत्—पल्योपम प्रमाण स्थिति वाले चार देव निवास करते हैं। उनके नाम इस प्रकार हैं—१. अशोक देव, २. सप्तपर्ण देव, ३. चंपक देव और ४. चूत (आम्र) देव।

सूरियाभस्स णं देवविमाणस्स अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते, तंजहा— वणसंडविहूणे-जाव-बहवे वेमाणिया देवा य देवीओ य आसयंति-जाव-विहरंति,

उस सूर्याभ विमान के अन्दर अत्यधिक सम एवं अतीव रमणीय भूमि भाग बताया है। वनखण्ड के वर्णन के अतिरिक्त शेष बहुत से वैमानिक देव देवियाँ बैठती हैं—यावत्—विचरण करती हैं तक का वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिये।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसे एत्थ णं महेगे उवगारियालयणे पण्णत्ते, एगं जोयणसयसहस्सं आयाम-विक्खंभेणं तिण्णि जोयणसयसहस्साइं सोलस सहस्साइं दोण्णि य सत्तावीसं जोयणसए तिण्णि य कोसे अट्ठावीसं च धणुसयं तेरस य अंगुलाइं अद्धंगुलं च किंचिविसेसूणं परिक्खेवेणं, जोयणं बाहल्लेणं, सव्वजंबूणयामए अच्छे-जाव-पडिरूवे।

उस अति समरमणीय भूमि भाग के बीचों-बीच एक विशाल उपकारिकालयन बना हुआ है। जो एक लाख योजन लम्बा-चौड़ा है और उसकी परिधि तीन लाख सोलह हजार दो सौ सत्ताईस योजन तीन कोस एक सौ अट्ठाईस धनुष और कुछ अधिक साढ़े तेरह अंगुल है तथा एक योजन मोटाई है। यह विशाल लयन सर्वात्मना स्वर्ण का बना हुआ है, स्वच्छ—निर्मल—यावत्—प्रतिरूप है।

से णं एगाए पउमवरवेइयाए एगेण य वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते सा णं पउमवरवेइया अद्धजोयणं उड्ढं उच्चत्तेणं पंच धणुसयाइं विक्खंभेणं उवयारियलेणसमा परिक्खेवेणं।

वह उपकारिकालयन सभी दिशा—विदिशाओं में चारों ओर से एक पद्मवरवेदिका और एक वनखण्ड से परिवेष्टित है। वह पद्मवरवेदिका आधे योजन ऊँची, पाँच सौ धनुष चौड़ी और उपकारिकालयन जितनी परिधि वाली है।

तीसे णं पउमवरवेइयाए इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—वयरामया० सुवण्णरुप्पमया फलया नाणामणिमया कलेवरा णाणामणिमया कलेवर-संघाडगा णाणामणिमया रूवा णाणामणिमया रूवसंघाडगा अंकामया० उवरिपुंछणी सव्वरयणामए अच्छायणे । सा णं पउमवरवेइया एगमेगेणं हेमजालेणं, एगमेगेणं गवक्खजालेणं, ए० खिंखिणीजालेणं, ए० घंटाजालेणं, ए० मुत्ताजालेणं, ए० मणिजालेणं, ए० कणगजालेणं, ए० रयणजालेणं, ए० पउमजालेणं, सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता ।

उस पद्मवरवेदिका का इस प्रकार से वर्णन किया गया है, जैसे कि वज्ररत्नमय इसकी नेमें हैं, स्वर्ण और रजतमय इसके फलक हैं, विविध मणिरत्नों से बना हुआ इसका कलेवर—ढाँचा है, इसका कलेवर—संघात भी विविध मणिरत्नों से बना हुआ है, अनेक प्रकार के मणिरत्नों से इस पर चित्र बने हुए हैं और अनेक प्रकार के मणिरत्नों से इसमें रूपक-संघात—चित्र-समूह बने हैं, अंकरत्नमय इसके पक्ष हैं—यावत्—उपरि-प्रोंछनी हैं, सर्वरत्नमय आच्छादन हैं। वह पद्मवरवेदिका एक-एक हेमजाल (सोने की मालाओं), एक-एक गवाक्षजाल, एक-एक किंकणीजाल, एक-एक घंटाजाल, एक-एक मुक्ताजाल, एक-एक मणिजाल, एक-एक कनकजाल, एक-एक रत्नजाल, एक-एक पद्मजाल से सभी दिशा-विदिशाओं में चारों ओर से घिरी हुई है।

ते णं जाला तवणिज्जलंबूसगा-जाव-चिट्ठंति । तीसे णं पउमवरवेइयाए तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं बहवे हयसंघाडा-जाव-उसभसंघाडा सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा पासाईया-जाव-वीहीओ पंतीओ मिहुणाणि लयाओ ।

ये सभी जालायें सोने के लम्बूसकों आदि से अलंकृत हो रही हैं। उस पद्मवरवेदिका के यथायोग्य उन-उन स्थानों पर अनेक अश्व-संघात—यावत्—वृषभ-संघात सुशोभित हो रहे हैं, ये सभी सर्वात्मना रत्नों से बने हुए, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं—यावत्—इसी प्रकार इनकी वीथियाँ, पंक्तियाँ, मिथुन एवं लतायें हैं।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया पउमवरवेइया ?

प्र.—'हे भगवन् ! किस कारण आप ऐसा कहते हैं कि यह पद्मवरवेदिका पद्मवरवेदिका है ?'

गोयमा ! पउमवरवेइयाए णं तत्थ तत्थ देसे देसे तहिं तहिं वेइयासु वेइयाबाहासु य वेइयाफलएसु य वेइयापुडंतरेसु य, खंभेसु खंभबाहासु खंभसीसेसु खंभपुडंतरेसु, सूईसु सूईमुहेसु सूईफलएसु सूईपुडंतरेसु, पक्खेसु पक्खबाहासु पक्खपेरंतेसु पक्खपुडंतरेसु बहुयाइं उप्पलाइं पउमाइं कुमुयाइं नलिणाइं सुभगाइं सोगंधियाइं पुण्डरीयाइं महापुण्डरीयाइं सयवत्ताइं सहस्सवत्ताइं सव्वरयणामयाइं अच्छाइं० पडिरूवाइं महया वासिक्कछत्तसमाणाइं पण्णत्ताइं समणाउसो ! से एएणं अट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ-पउमवरवेइया पउमवरवेइया ।

उ.—'हे गौतम ! पद्मवरवेदिका के यथायोग्य उन-उन स्थानों में, वेदिका के आजू-बाजू में, वेदिका के फलकों में, वेदिका के अन्तरालों में, स्तम्भों में, स्तम्भों की बाजुओं में, स्तम्भों के शिखरों में, स्तम्भों के अन्तरालों में, कीलियों में, कीलियों के ऊपरी भागों में, कीलियों से जुड़े फलकों में, कीलियों के अन्तरालों में, पक्षों—पाखों में, पाखों की बाजुओं में, पाखों के प्रान्त भागों में और पाखों के अन्तरालों में वर्षाकाल के बरसते मेघों से बचाव करने के लिये छत्राकार जैसे अनेक प्रकार के बड़े-बड़े विकसित सर्वरत्नमय, स्वच्छ—यावत्—अतीव मनोहर उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र और सहस्रपत्र कमल शोभित हो रहे हैं। इसीलिये हे आयुष्मन् श्रमण गौतम ! इसी कारण पद्मवरवेदिका को पद्मवरवेदिका कहते हैं।'—श्रमण भगवान महावीर ने उत्तर दिया।

पउमवरवेइया णं भंते ! किं सासया असासया ?

प्र.—'हे भगवन् ! वह पद्मवरवेदिका शाश्वत है अथवा अशाश्वत है ?'

गोयमा ! सिय सासया सिय असासया ।

उ.—'हे गौतम ! शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है।'

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ-सिय सासया सिय असासया ?

प्र.—हे भगवन् ! ऐसा आप किस कारण से कहते हैं कि किसी अपेक्षा से वह शाश्वत भी है और किसी अपेक्षा से अशाश्वत भी है ?'

गोयमा ! दव्वट्ठयाए सासया, वण्णपज्जवेहिं गंधपज्जवेहिं रसपज्जवेहिं फासपज्जवेहिं असासया। से एएणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ सिय सासया सिय असासया।

उ.—'हे गौतम ! द्रव्यार्थिक नय की अपेक्षा शाश्वत है और वर्ण, गन्ध, रस और स्पर्श पर्यायों की अपेक्षा अशाश्वत है। इसी कारण हे गौतम ! यह कहा है कि वह पद्मवरवेदिका शाश्वत भी है और अशाश्वत भी है।'

पउमवरवेइया णं भंते ! कालओ केवच्चिरं होइ ?

प्र.—'हे भगवन् ! काल की अपेक्षा से वह पद्मवरवेदिका कितने काल पर्यंत रहेगी ?'

गोयमा ! ण कयावि णासि ण कयावि णत्थि ण कयावि न भविस्सइ, भुविं च भवइ य भविस्सइ य, धुवा णियया सासया अक्खया अव्वया अवट्ठिया णिच्चा पउमवरवेइया।

उ.—'हे गौतम ! वह पद्मवरवेदिका पहले (भूतकाल में) नहीं थी, ऐसा नहीं है, अभी (वर्तमानकाल में) नहीं है, ऐसा भी नहीं है और आगे (भविष्य में) नहीं रहेगी, ऐसा भी नहीं है, परन्तु वह पहले भी थी, अब भी है और आगे भी रहेगी। इस प्रकार त्रिकालावस्थायी होने से वह पद्मवरवेदिका ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।'

सा णं पउमवरवेइया एगेणं वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता।

वह पद्मवरवेदिका चारों ओर सभी दिशा-विदिशाओं में एक वनखण्ड से घिरी हुई है।

से णं वणसंडे देसूणाइं दो जोयणाइं चक्कवालविक्खंभेणं उवयारियालेणसमे परिक्खेवेणं वणसंडवण्णओ भाणियव्वो-जाव-विहरंति।

उस वनखण्ड का चक्रवालविष्कंभ (गोलाकार चौड़ाई) कुछ कम दो योजन प्रमाण है तथा उपकारिकालयन की परिधि जितनी उसकी परिधि है। देव देवियाँ विचरण करती हैं पर्यंत वनखण्ड का वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिए।

तस्स णं उवयारियालेणस्स चउद्दिसिं चत्तारि तिसोवाण-पडिरूवगा पण्णत्ता, वण्णओ, तोरणा झया छत्ताइच्छत्ता।

उस उपकारिकालयन की चारों दिशाओं में चार त्रिसोपान प्रतिरूपक (तीन-तीन सीढ़ियों की पंक्ति) कहे हैं। यान विमान के सोपानों के समान तोरणों, ध्वजाओं, छत्रातिछत्रों आदि पर्यंत इनका वर्णन यहाँ कर लेना चाहिए।

तस्स णं उवयारियालयणस्स उवरिं बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-मणीणं फासो।

उस उपकारिकालयन के ऊपर अतिसमरमणीय भूभाग कहा है। यान विमान—यावत्—मणियों के स्पर्श पर्यंत इस भूमिभाग का वर्णन यहाँ करना चाहिये।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगे मूलपासायवडेंसए पण्णत्ते। से णं मूलपासायवडिंसए पंच जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं विक्खंभेणं अब्भुग्गयमूसिय० वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।

उस अतिसम और रमणीय भूमिभाग के अतिमध्य देश में एक विशाल मुख्य प्रासादावतंसक कहा है। वह मुख्य प्रासादावतंसक पाँच सौ योजन ऊँचा और ढाई सौ योजन चौड़ा है तथा अपनी फैल रही प्रभा से हँसता हुआ-सा प्रतीत होता है आदि वर्णन करते हुए उस प्रासाद के भीतर के भूमिभाग, उल्लोक, परिवार रूप अन्य भद्रासनों आदि से सहित सिंहासन, आठ मंगल, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों का यहाँ कथन करना चाहिये।

से णं मूलपासायवडेंसगे अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते। ते णं पासायवडेंसगा अड्ढाइज्जाइं जोयणसयाइं उड्ढं उच्चत्तेणं पणवीसं जोयणसयं विक्खंभेणं-जाव-वण्णओ।

वह प्रधान प्रासादावतंसक सभी चारों दिशाओं में ऊँचाई में अपने से आधे ऊँचे अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित है। ये चारों प्रासादावतंसक ढाई सौ योजन ऊँचे और चौड़ाई में सवा सौ योजन चौड़े हैं आदि वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

ते णं पासायवडिंसया अण्णेहिं चउहिं पासायवडिंसएहिं तयद्धुच्चत्तप्पमाणमेत्तेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायव-

वे प्रासादावतंसक भी पुनः चारों दिशाओं में अपनी ऊँचाई से आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से घिरे हुए हैं।

वडेंसया पणवीसं जोयणसयं उड्ढं उच्चत्तेणं, बासट्ठि जोयणाइं अद्धजोयणं च विक्खंभेणं, अब्भुग्गयमूसिय० वण्णओ, भूमिभागो उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं भाणियव्वं, अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।

वे प्रासादावतंसक एक सौ पच्चीस योजन ऊँचे और साढ़े बासठ योजन चौड़े हैं, तथा चारों ओर फैल रही प्रभा से हँसते हुए से दीखते हैं आदि से लेकर भूमिभाग, उल्लोक, सपरिवार सिंहासन, आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्रातिछत्र पर्यंत इनका वर्णन करना चाहिए।

ते णं पासायवडेंसगा अण्णेहिं चउहिं पासायवडेंसएहिं तयद्धुच्चत्तपमाणमेत्तेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता। ते णं पासायवडेंसगा बासट्ठि जोयणाइं अद्धजोयणं च उड्ढं उच्चत्तेणं, एक्कतीसं जोयणाइं कोसं च विक्खंभेणं, वण्णओ, उल्लोओ सीहासणं सपरिवारं पासाय० उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

वे प्रासादावतंसक भी चारों दिशाओं में अपनी ऊँचाई से आधी ऊँचाई वाले अन्य चार प्रासादावतंसकों से परिवेष्टित हैं। वे प्रासादावतंसक साढ़े बासठ योजन ऊँचे और इकतीस योजन एक कोस चौड़े हैं। इन प्रासादों के भूमिभाग, चंदेवा, सपरिवार सिंहासन, प्रासादों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजाओं, छत्रातिछत्रों आदि का वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

तस्स णं मूलपासायवडेंसयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं सभा सुहम्मा पण्णत्ता, एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खम्भेणं, बावत्तरिं जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अणेगखम्भ-जाव-अच्छरगण० पासाईया०।

उस प्रधान प्रासादावतंसक के ईशानकोण में सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और बहत्तर योजन ऊँची सुधर्मा सभा बनी हुई है, एवं वह सभा अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट—यावत्—अप्सराओं से व्याप्त है अतीव मनोहर है।

सभाए णं सुहम्माए तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अट्ठ जोयणाइं विक्खम्भेणं, तावइयं चेव पवेसेणं, सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाओ, [तेसि णं दाराणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइछत्ता]

सुधर्मा सभा की तीन दिशाओं में तीन द्वार हैं, जो इस प्रकार हैं—पूर्व दिशा में एक, दक्षिण दिशा में एक और उत्तर दिशा में एक। वे द्वार सोलह योजन ऊंचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश मार्ग वाले हैं, वे द्वार श्वेत वर्ण के हैं, श्रेष्ठ स्वर्ण से निर्मित शिखरों—यावत्—वनमालाओं से अलंकृत है। [उन द्वारों के ऊपर आठ-आठ स्वस्तिक आदि मंगल, ध्वजायें, छत्रातिछत्र शोभायमान हो रहे हैं।]

तेसि णं दाराणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं मुहमण्डवे पण्णत्ते। ते णं मुहमण्डवा एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, साइरेगाइं सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, वण्णओ, सभाए सरिसो, [तेसि णं मुहमण्डवाणं तिदिसिं तओ दारा पण्णत्ता, तंजहा—पुरत्थिमेणं दाहिणेणं उत्तरेणं, ते णं दारा सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अट्ठ जोयणाइं विक्खंभेणं तावइयं चेव पवेसेणं सेया वरकणगथूभियागा जाव वणमालाओ। तेसि णं मुहमंडवाणं भूमिभागा उल्लोया, तेसि णं मुहमंडवाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।]

उन प्रत्येक द्वारों के आगे एक-एक मुखमण्डप कहे गये है। वे मुखमण्डप एक सौ योजन लम्बे, पचास योजन चौड़े और ऊंचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे हैं। इनका शेष वर्णन सुधर्मा सभा के समान कर लेना चाहिये। [उन मुखमण्डपों को तीन दिशाओं में तीन द्वार बताये हैं, यथा पूर्व, दक्षिण और उत्तर दिशा। वे द्वार सोलह योजन ऊँचे, आठ योजन चौड़े और उतने ही प्रवेश मार्ग वाले हैं तथा श्वेत वर्ण के हैं श्रेष्ठ स्वर्ण से बनी शिखरों आदि से लेकर वनलताओं से अलंकृत हैं पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिये। उन मुखमण्डपों के भूमिभाग, चंदेवा हैं तथा उन मुखमण्डपों के ऊपर आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों आदि का भी वर्णन करना चाहिये।]

तेसि णं मुहमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं पेच्छाघरमंडवे पण्णत्ते, मुहमंडववत्तव्वया-जाव-दारा भूमिभागा उल्लोया।

उन मुखमण्डपों के आगे एक-एक प्रेक्षागृहमण्डप बने हुए हैं। इन मण्डपों के द्वार, भूमिभाग, चाँदनी आदि का वर्णन मुखमण्डलों की वक्तव्यता के अनुरूप जानना चाहिये।

तेसि णं बहुसमरमणिज्जाणं भूमिभागाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं वइरामए अक्खाडए पण्णत्ते। तेसि णं वयरामयाणं अक्खाडगाणं बहुमज्झदेसभाए पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढिया पण्णत्ता। ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ-जाव-पडिरूवाओ।

उनके अतीव सम और रमणीय भूमिभाग के अतिमध्य भाग में वज्ररत्नों से बना हुआ एक-एक अक्षपाटक—मंच बना है। उन वज्रमय अक्षपाटकों के अतिमध्यभाग में एक-एक मणिपीठिका बताई है। ये मणिपीठिकायें आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं पत्तेयं सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो, तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

इन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक सिंहासन कहा गया है। भद्रासनों रूपी परिवार सहित उन सिंहासनों का वर्णन करना चाहिये। उन प्रेक्षागृह मण्डपों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें, छत्रातिछत्र सुशोभित हैं।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ।

उन प्रेक्षागृह मण्डपों के आगे एक-एक मणिपीठिका बनी हैं। वे मणिपीठिकायें आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और सर्वात्मना रत्नों से बनी हुई, स्वच्छ, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तेसि णं पेच्छाघरमंडवाणं पुरओ पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ सोलस-सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ अच्छाओ पडिरूवाओ।

उन प्रेक्षागृह मंडपों के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकायें सोलह-सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी हैं। ये सभी सर्वात्मना मणिरत्नमय, स्फटिक मणि के समान निर्मल और प्रतिरूप हैं।

तासि णं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं थूभे पण्णत्ते। ते णं थूभा सोलस-सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं सोलस-सोलस जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, सेया संखंक सव्वरयणामया अच्छा जाव पडिरूवा।

उन प्रत्येक मणिपीठों के ऊपर सोलह-सोलह योजन लम्बे-चौड़े समचौरस और ऊँचाई में कुछ अधिक सोलह योजन ऊँचे, शंख, अंक रत्न, श्वेत, सर्वात्मना रत्नों से बने हुए स्वच्छ—यावत्—असाधारण रमणीय स्तूप बने हैं।

तेसि णं थूभाणं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा, झया छत्ताइछत्ता जाव सहस्सपत्तहत्थया।

उन स्तूपों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें छत्रातिछत्र—यावत्—सहस्रपत्र कमलों के झूमके सुशोभित हो रहे हैं।

तेसि णं थूभाणं पत्तेयं-पत्तेयं चउद्दिसिं मणि-पेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणि-मईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ।

उन स्तूपों की चारों दिशाओं में एक-एक मणिपीठिका है। ये प्रत्येक मणिपीठिकायें आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और अनेक प्रकार के मणिरत्नों से निर्मित, निर्मल—यावत्—प्रतिरूप हैं।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं चत्तारि जिणपडिमाओ जिणुस्सेहपमाणमेत्ताओ संपलियंकनिसण्णाओ, थूभाभिमुहीओ सन्निक्खित्ताओ चिट्ठंति, तंजहा—उसभा, वद्धमाणा, चंदाणणा वारिसेणा।

प्रत्येक मणिपीठिका के ऊपर, जिनका मुख स्तूपों के सामने है ऐसी जिनोत्सेध प्रमाण वाली चार जिन-प्रतिमायें पर्यंकासन से विराजमान हैं, यथा—(१) ऋषभ, (२) वर्धमान (३) चन्द्रानन (४) वारिषेण की।

तेसि णं थूभाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं मणिपेढियाओ सोलस जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, अट्ठ जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमईओ जाव पडिरूवाओ।

उन प्रत्येक स्तूपों के आगे-सामने मणिमयी पीठिकायें बनी हुई हैं। ये मणिपीठिकायें सोलह योजन लम्बी-चौड़ी, आठ योजन मोटी और सर्वात्मना मणिरत्नों से निर्मित, निर्मल—यावत्—अतीव मनोहर हैं।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरिं पत्तेयं-पत्तेयं चेइयरुक्खे पण्णत्ते, ते णं चेइयरुक्खा अट्ठ जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं अद्धजोयणं उव्वेहेणं, दो जोयणाइं खंधा, अद्धजोयणं विक्खंभेणं,—

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक चैत्यवृक्ष है। ये सभी चैत्यवृक्ष ऊँचाई में आठ योजन ऊँचे, जमीन के भीतर आधे योजन गहरे हैं। इनका स्कन्ध भाग दो योजन का और आधा योजन चौड़ा है।—

छ जोयणाइं विडिमा, बहुमज्झदेसभाए अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, साइरेगाइं अट्ठ जोयणाइं सव्वग्गेणं पण्णत्ता ।

स्कन्ध से निकलकर ऊपर की ओर फैली हुई शाखायें छह योजन ऊँची और लम्बाई-चौड़ाई में आठ योजन की है। कुल मिलाकर इनका सर्वपरिमाण कुछ अधिक आठ योजन है।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—

वयरामयमूल-रययसुपइट्ठियविडिमा, रिट्ठामयविउलकंद-वेरुलियरुइलखंधा, सुजायवरजाय-रूवपढमगविसालसाला, नाणा-मणिमयरयणविविहसाहप्पसाह-वेरुलियपत्त-तवणिज्जपत्तबिंटा, जंबू-णयरत्तमउयसुकुमालपवालपल्लववरंकुरधरा, विचित्तमणिरयण-सुरभिकुसुमफलभरनमियसाला, सच्छाया, सप्पभा, सस्सिरीया, सउज्जोया, अहियं नयणमणणिव्वुइकरा, अमयरससमरसफला, पासाईया……।

इन चैत्य वृक्षों का वर्णन इस प्रकार किया गया है,—

इन वृक्षों के मूल (जड़ें) वज्ररत्नों के हैं, विडिमायें-शाखायें रजत की, कंद रिष्टरत्नों के, मनोरम स्कन्ध वैडूर्यमणि के, मूलभूत प्रथम विशाल शाखायें शोभनीक श्रेष्ठ स्वर्ण की, विविध शाखा-प्रशाखायें नाना प्रकार के मणि-रत्नों की, पत्ते वैडूर्यरत्न के, पत्तों के वृन्त (डंडियाँ) स्वर्ण के, अरुण-मृदु-सुकोमल-श्रेष्ठ प्रवाल, पल्लव एवं अंकुर जाम्बूनद (स्वर्णविशेष) के हैं और विचित्र मणिरत्नों एवं सुरभिगंध-युक्त पुष्प-फलों के भार से नमित शाखाओं एवं अमृत के समान मधुररस युक्त फल वाले ये वृक्ष सुन्दर मनोरम छाया, प्रभा, कांति, शोभा, उद्योत से सम्पन्न नयन-मन को शांतिदायक एवं प्रासादिक हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं उवरि अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइ-छत्ता ।

उन चैत्यवृक्षों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

तेसि णं चेइयरुक्खाणं पुरतो पत्तेयं-पत्तेयं मणिपेढियाओ पण्णत्ताओ । ताओ णं मणिपेढियाओ अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं सव्वमणिमईओ अच्छाओ जाव पडिरूवाओ ।

उन प्रत्येक चैत्यवृक्षों के आगे एक-एक मणिपीठिका है। ये मणिपीठिकायें आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना मणिमय निर्मल—यावत्—प्रतिरूप—अतिशय मनोरम हैं।

तासि णं मणिपेढियाणं उवरि पत्तेयं पत्तेयं महिंदज्झया पण्णत्ता । ते णं महिंदज्झया सट्ठि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, अद्धकोसं उव्वेहेणं, अद्धकोसं विक्खंभेणं, वइरामय० सिहरा पासादीया ४ ।

उन मणिपीठिकाओं के ऊपर एक-एक महेन्द्रध्वज कहा है। वे महेन्द्रध्वज साठ योजन ऊँचे, आधे कोस जमीन के भीतर ऊंडे, आधे कोस चौड़े वज्ररत्नमय—यावत्—शिखरों से अलंकृत मन को प्रसन्न करने, दर्शनीय, प्रतिरूप और अभिरूप हैं।

तेसि णं महिंदज्झयाणं उवरि अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइ-छत्ता ।

उन महेन्द्रध्वजों के ऊपर आठ-आठ मंगल, ध्वजायें और छत्रातिछत्र सुशोभित हो रहे हैं।

तेसि णं महिंदज्झयाणं पुरओ पत्तेयं पत्तेयं नंदा पुक्खरिणीओ पण्णत्ताओ । ताओ णं पुक्खरिणीओ एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, अच्छाओ-जाव-वण्णओ, एगइयाओ उदगरसेणं पण्णत्ताओ, पत्तेयं पत्तेयं पउमवरवेइया-परिखित्ताओ पत्तेयं पत्तेयं वणसंडपरिक्खित्ताओ ।

उन प्रत्येक महेन्द्रध्वज के आगे एक-एक नन्दापुष्करिणी बनी हुई हैं। ये पुष्करिणियाँ सौ योजन लम्बी, पचास योजन चौड़ी और दस योजन गहरी और स्वच्छ-निर्मल हैं आदि वर्णन पूर्ववत् यहाँ जानना चाहिए, इनमें से किसी-किसी का पानी स्वाभाविक पानी जैसा मधुररस वाला है। ये प्रत्येक नन्दा-पुष्करिणियाँ एक-एक पद्मवरवेदिका और वनखण्ड से घिरी हुई हैं।

तासि णं णंदाणं पुक्खरिणीणं तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा पण्णत्ता, तिसोवाणपडिरूवगाणं वण्णओ, तोरणा झया छत्ताइछत्ता ।

उन नन्दापुष्करिणियों की तीन दिशाओं में अतीव मनोहर त्रिसोपानपंक्तियाँ हैं। उन त्रिसोपानपंक्तियों के ऊपर तोरण, ध्वजायें, छत्रातिछत्र सुशोभित हैं, आदि वर्णन यहाँ करना चाहिए।

समाए णं सुहम्माए अडयालीसं मणोगुलिया-साहस्सीओ पण्णत्ताओ, तंजहा—पुरत्थिमेणं सोलससाहस्सीओ, पच्चत्थिमेणं सोलससाहस्सीओ, दाहिणेणं अट्ठसाहस्सीओ, उत्तरेणं अट्ठ-साहस्सीओ।

तासु णं मणोगुलियासु बहवे सुवण्णरूप्पमया फलगा पण्णत्ता। तेसु णं सुवण्णरूप्पमएसु फलगेसु बहवे वइरामया णागदंता पण्णत्ता।

तेसु णं वइरामएसु णागदंतएसु किण्हसुत्तवट्टवग्घारियमल्ल-दामकलावा चिट्ठंति।

समाए णं सुहम्माए अडयालीसं गोमाणसियासाहस्सीओ पन्नत्ताओ, जहा मणोगुलिया-जाव-णागदंतगा।

तेसु णं णागदंतएसु बहवे रययामया सिक्कगा पण्णत्ता। तेसु णं रययामएसु सिक्कगेसु बहवे वेरुलियामइयाओ धूवघडियाओ पण्णत्ताओ। ताओ णं धूवघडियाओ कालागुरुपवर-जाव-चिट्ठंति।

समाए णं सुहम्माए अंतो बहुसमरमणिज्जे भूमिभागे पण्णत्ते-जाव-मणीहिं उवसोभिए, मणिफासो य उल्लोओ य।

तस्स णं बहुसमरमणिज्जस्स भूमिभागस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइं आयाम-विक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे सीहासणे पण्णत्ते, सीहासणवण्णओ सपरिवारो।

तीसे णं दिसिविसाए एत्थ णं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्व-मणिमया अच्छा-जाव-पडिरूवा।

तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे देवसयणिज्जे पण्णत्ते। तस्स णं देवसयणिज्जस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तं जहा—णाणामणिमया पडिपाया सोवण्णिया पाया णाणामणि-मयाइं पायसीसगाइं जंबूणयामयाइं गत्तगाइं वइरामया संधी णाणामणिमए विच्चे रययामई तूली लोहियक्खमया बिब्बोयणा तवणिज्जमया गंडोवहाणया। से णं सयणिज्जे सालिंगणवट्टिए उभओ बिब्बोयणे दुहओ उण्णए मज्झे णयगंभीरे—

सुधर्मासभा में अड़तालीस हजार मनोगुलिकायें (छोटे-छोटे चबूतरे) कही हैं। वे इस प्रकार हैं :—पूर्व दिशा में सोलह हजार, पश्चिम दिशा में सोलह हजार, दक्षिण दिशा में आठ हजार और उत्तर दिशा में आठ हजार।

उन मनोगुलिकाओं के ऊपर अनेक स्वर्ण और रजतमय फलक—पाटिये लगे हैं। उन स्वर्ण रजतमय फलकों पर अनेक वज्ररत्नमय नागदन्त बताये हैं।

उन वज्ररत्नमय नागदन्तों पर काले सूत से बनी हुई गोल, लम्बी-लम्बी मालायें लटक रही हैं।

सुधर्मासभा में अड़तालीस सहस्र गोमानसिकायें (शैयारूप स्थान विशेष) रखी हुई हैं। नागदन्त पर्यन्त इनका वर्णन मनो-गुलिकाओं के समान करना चाहिए।

उन नागदन्तों पर बहुत सी रजतमयी सींके लटक रही हैं। उन रजतमय सींकों में बहुत सी वैडूर्य रत्नों से बनी हुई धूप-घटिकायें रखी हैं। वे धूपघटिकायें काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुक्क आदि की सुगंध से मन को मोहित कर रही हैं।

सुधर्मासभा के भीतर अत्यन्त रमणीय समभूभाग कहा है। वह भूमिभाग मणियों से उपशोभित है आदि मणियों के स्पर्श एवं चंदेवा पर्यन्त का वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिए।

उस अति समरमणीय भूमिभाग के बीचों-बीच एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है, जो आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और सर्वात्मना मणिमय, निर्मल—यावत्—प्रति-रूप है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक विशाल सिंहासन रखा गया है। भद्रासनों के परिवार सहित सिंहासन का वर्णन जानना।

उसकी विदिशा में एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है, जो आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी और सर्वमणिमय स्वच्छ—यावत्—असाधारण सुन्दर है।

उस मणिपीठिका के ऊपर एक श्रेष्ठ, रमणीय, विशाल देवशैया रखी है। उस देवशैया का वर्णन इस प्रकार से किया गया है, यथा—उसके प्रतिपाद अनेक प्रकार की मणियों से बने हुए हैं, स्वर्ण के पाद—पाये हैं, पादशीर्षक (पायों का ऊपरी भाग) अनेक प्रकार की मणियों के हैं, गातें (ईषायें, पाटियाँ) सोने की हैं, सांधें वज्ररत्नों से भरी हुई हैं, वाण (निवार) विविध रत्नमयी है, तूली (बिछौना, गादी) रजतमय है, ओसीका लोहिताक्ष रत्न का है, गंडोपधानिका (तकिया) सोने का है, उस शैया पर शरीर प्रमाण उपधान (गद्दा) बिछा है, उसके शिरो-भाग और चरणभाग (सिराहने और पांयते) दोनों ओर तकिये लगे हैं, वह दोनों ओर से ऊँची और मध्य में नत (झुकी हुई) गम्भीर (गहरी) है,—

—गंगापुलिणवालुयाउद्दालसालिसए सुविरइयरयत्ताणे उवचिय-खोमदुगुल्लपट्ट-पडिच्छायणे आईणगरूयबूरणवणीय-तूलफासमउए रत्तंसुयसंवुए सुरम्मे पासादीए० पडिरूवे।

—जैसे गंगा किनारे की बालू में पांव रखने पर वह धंस जाती है, उसी प्रकार उस पर बैठते ही नीचे की ओर धँस जाती है, उस पर सुन्दर रजस्त्राण पड़ा रहता है, कसीदा वाला क्षौमदुकूल (रुई का बना चद्दर) बिछा है, उसका स्पर्श आजिनक, रुई, बूर, मक्खन और आक की रुई के समान सुकोमल है, रक्तांशुक (लालतूस) से ढंका रहता है, अत्यन्त रमणीय, मनमोहक—यावत्—प्रतिरूप है।

तस्स णं देवसयणिज्जस्स उत्तरपुरत्थिमेणं महेगा मणिपेढिया पण्णत्ता, अट्ठ जोयणाइं आयामविक्खंभेणं, चत्तारि जोयणाइं बाहल्लेणं, सव्वमणिमई-जाव-पडिरूवा, तीसे णं मणिपेढियाए उवरिं एत्थ णं महेगे खुड्डाए महिंदज्झए पण्णत्ते, सट्ठि जोयणाइं उड्ढं उच्चत्तेणं, जोयणं विक्खंभेणं, वइरामए वट्टलट्ठसंठियसुसिलिट्ठ-जाव-पडिरूवे, उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।

उस देवशैया के ईशानकोण में आठ योजन लम्बी-चौड़ी, चार योजन मोटी, सर्वात्मना रत्नमयी—यावत्—प्रतिरूप एक विशाल मणिपीठिका बनी हुई है, उस मणिपीठिका के ऊपर साठ योजन ऊँचा, एक योजन चौड़ा, वज्ररत्नमय, सुन्दर, गोल आकार वाला—यावत्—प्रतिरूप एक विशाल क्षुल्लक (छोटा) महेन्द्रध्वज लगा हुआ है, जो स्वस्तिक आदि आठ मंगल, ध्वजाओं और छत्रातिछत्र से उपशोभित है।

तस्स णं खुड्डागमहिंदज्झयस्स पच्चत्थिमेणं एत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स चोप्पाले नाम पहरणकोसे पन्नत्ते सव्ववइरामए अच्छे-जाव-पडिरूवे। तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स फलिहरयण-खग्गगयाधणुप्पमुहा बहवे पहरणरयणा संनिखित्ता चिट्ठंति, उज्जला निसिया सुतिक्खधारा पासादीया० सभाए णं सुहम्माए उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइच्छत्ता।

उस क्षुल्लक महेन्द्रध्वज की पश्चिम दिशा में सूर्याभ देव का 'चोप्पाल' नामक प्रहरण कोश (शस्त्रागार) बना हुआ है, यह प्रहरणकोश सर्वात्मना रत्नमय, स्वच्छ-निर्मल—यावत्—प्रतिरूप है। उस प्रहरणकोश में सूर्याभ देव के परिघरत्न, तलवार, गदा, धनुष आदि बहुत से श्रेष्ठ प्रहरण—अस्त्र-शस्त्र सुरक्षित रखे हैं, वे सभी शस्त्र अत्यन्त उज्ज्वल, चमकीले, तीक्ष्ण धार वाले और मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप हैं। सुधर्मा सभा का ऊपरी भाग आठ-आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से सुशोभित हो रहा है।

सभाए णं सुहम्माए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा उववाय-सभा पण्णत्ता० जहा सभाए सुहम्माए तहेव-जाव-मणिपेढिया, अट्ठ जोयणाइं० देवसयणिज्जं, तहेव सयणिज्जवण्णओ, अट्ठट्ठ मंगलगा झया छत्ताइछत्ता।

सुधर्मा सभा के ईशान कोण में एक विशाल श्रेष्ठ उपपात सभा बनी हुई है, सुधर्मा सभा के समान ही इस उपपात सभा का वर्णन समझना चाहिए—यावत्—मणिपीठिका की लम्बाई-चौड़ाई आठ योजन की है और सुधर्मासभा में स्थित देव शैया के समान यहाँ की शैया का वर्णन करना चाहिए तथा सुधर्मा-सभावत् इस उपपात सभा का ऊपरी भाग आठ मंगलों, ध्वजाओं और छत्रातिछत्रों से शोभायमान हो रहा है।

तीसे णं उववायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगे हरए पण्णत्ते, एगं जोयणसयं आयामेणं, पण्णासं जोयणाइं विक्खंभेणं, दस जोयणाइं उव्वेहेणं, तहेव। से णं हरए एगाए पउमवरवेइयाए एगेण वणसंडेणं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते।

उस उपपात सभा के उत्तर-पूर्व दिग्विभाग में एक विशाल ह्रद है, उस ह्रद का आयाम एक सौ योजन एवं विस्तार पचास योजन तथा गहराई दस योजन है। यह ह्रद सभी दिशाओं में एक पद्मवरवेदिका एवं एक वनखण्ड चारों ओर से घिरा हुआ है।

तस्स णं हरयस्स तिदिसिं तिसोवाणपडिरूवगा पन्नत्ता।

इस ह्रद के तीन ओर अतीव मनोरम त्रिसोपान पंक्तियाँ बनी हुई हैं।

तस्स णं हरयस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा अभिसेगसभा पण्णत्ता, सुहम्मागमएणं-जाव-गोमाणसियाओ मणिपेढिया सीहासणं सपरिवारं-जाव-दामा चिट्ठंति ।

उस ह्रद के ईशानकोण में एक विशाल अभिषेक सभा है, सुधर्मा सभा के अनुरूप ही—यावत्—गोमानसिकाओं, मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन और मुक्तादाम पर्यन्त इस अभिषेक सभा का भी वर्णन जानना चाहिए ।

तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अभिसेयभंडे संनिखित्ते चिट्ठइ, अट्ठट्ठ मंगलगा तहेव ।

वहाँ सूर्याभ देव के अभिषेक योग्य साधन सामग्री से भरे हुए बहुत से भांड रखे हैं तथा इस अभिषेक सभा के ऊपरी भाग में आठ-आठ मंगल आदि सुशोभित हो रहे हैं ।

तीसे णं अभिसेगसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं अलंकारियसभा पण्णत्ता, जहा सभा सुहम्मा, मणिपेढिया अट्ठ जोयणाइं सीहासणं सपरिवारं । तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स सुबहु अलंकारियभंडे संनिखित्ते चिट्ठइ, सेसं तहेव ।

उस अभिषेक सभा के ईशानकोण में एक अलंकार सभा है । सुधर्मा सभा के समान ही इस अलंकार सभा का तथा आठ योजन की मणिपीठिका, सपरिवार सिंहासन का वर्णन करना चाहिए । उस अलंकार सभा में सूर्याभ देव द्वारा धारण किये जाने वाले अलंकारों से भरे हुए बहुत से अलंकार भांड रखे हैं । शेष सब वर्णन पूर्ववत् जानना चाहिए ।

तीसे णं अलंकारियसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं महेगा ववसायसभा पण्णत्ता, जहा उववायसभा-जाव-सीहासणं सपरिवारं मणिपेढिया अट्ठट्ठ मंगलगा० ।

उस अलंकार सभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में एक विशाल व्यवसाय सभा बनी है । उपपात सभा के अनुरूप ही यहाँ पर भी सपरिवार सिंहासन, मणिपीठिका, आठ-आठ मंगल आदि का वर्णन कर लेना चाहिए ।

तत्थ णं सूरियाभस्स देवस्स एत्थ महेगे पोत्थयरयणे सन्निखित्ते चिट्ठइ । तस्स णं पोत्थयरयणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते, तंजहा—रिट्ठामईओ कंबियाओ तवणिज्जमए दोरे नाणामणिमए गंठी रयणामयाइं पत्तगाइं वेरुलियमए लिप्पासणे रिट्ठामए छादणे तवणिज्जमई संकला रिट्ठामई मसी वइरामई लेहणी रिट्ठामयाइं अक्खराइं धम्मिए लेक्खे ।

उस व्यवसाय सभा में सूर्याभ देव का एक विशाल श्रेष्ठतम पुस्तक रत्न रखा है । उस पुस्तक रत्न का वर्णन यह और इस प्रकार है—इसके पुट्ठे रिष्ट रत्न के हैं, डोरा स्वर्णमय है, विविध मणिमय गांठें हैं, पत्र रत्नमय हैं, लिप्यासन (दवात) वैडूर्यरत्नमय है, उसका ढक्कन रिष्टरत्नमय है और सांकल तपनीय स्वर्ण की बनी हुई है, रिष्टरत्न से बनी हुई स्याही है, वज्ररत्न से बनी हुई लेखनी है, रिष्टरत्नमय अक्षर हैं और उसमें धार्मिक लेख लिखे हैं ।

ववसायसभाए णं उवरिं अट्ठट्ठ मंगलगा, तीसे णं ववसायसभाए उत्तरपुरत्थिमेणं एत्थ णं नंदा पुक्खरिणी पण्णत्ता हरयसरिसा ।

व्यवसाय सभा का ऊपरी भाग आठ मंगल आदि से सुशोभित हो रहा है । उस व्यवसाय सभा के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशान कोण) में एक नन्दापुष्करिणी है, ह्रद के समान इस नन्दापुष्करिणी का वर्णन जानना चाहिए ।

सूरियाभदेवस्स वित्थरओ अभिसेयवण्णणाइ—

विस्तार से सूर्याभ देव का अभिषेक वर्णनादि—

२७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सूरियाभे देवे अहुणोववण्णमित्तए चेव समाणे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तीभावं गच्छइ, तंजहा—आहारपज्जत्तीए सरीरपज्जत्तीए इंदियपज्जत्तीए आणपाणपज्जत्तीए भासामणपज्जत्तीए ।

२७. उस काल और उस समय में तत्काल उत्पन्न होकर वह सूर्याभ देव—१. आहारपर्याप्ति, २. शरीरपर्याप्ति ३. इन्द्रियपर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वासपर्याप्ति और ५. भाषा-मनःपर्याप्ति—इन पाँच पर्याप्तियों से पर्याप्त भाव को प्राप्त हुआ ।

तए णं से सूरियाभे देवे सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता उववायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छइ । जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हरयं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं अणुपविसइ, अणु-

तत्पश्चात् वह सूर्याभ देव (उपपात) शैया से उठा, उठकर उपपात सभा के पूर्वदिग्वर्ती द्वार से निकला । फिर जहाँ ह्रद था, वहाँ आया, आकर ह्रद की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्वदिशावर्ती तोरण से उस ह्रद में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके पूर्व दिशा

पविसित्ता पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जलावगाहं जलमज्जणं करेइ, करेत्ता जलकिड्डं करेइ, करित्ता जलाभिसेयं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुई-भूए हरयाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता अभिसेय-सभं अणुपयाहिणी-करेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसन्ने।

की त्रिसोपान पंक्ति से उसमें नीचे उतरा, नीचे उतर कर जल में अवगाहन और जलमज्जन किया, जलमज्जन करके जल-क्रीड़ा की, फिर जलाभिषेक किया, जलाभिषेक करके आचमन द्वारा अत्यन्त स्वच्छ और परमशुचिभूत—पवित्र होकर ह्रद से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ अभिषेक सभा थी वहाँ आया, वहाँ आकर अभिषेक सभा की अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ सिंहासन था वहाँ आया और आकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

तए णं सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा आभिओगिए देवे सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो! देवाणुप्पिया! सूरियाभस्स देवस्स महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेह।

तदनन्तर सूर्याभदेव के सामानिक परिषदोपगत देवों ने आभियोगिक देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग शीघ्र ही सूर्याभदेव का अभिषेक करने के लिए महान् अर्थ वाले, बहुमूल्य एवं महा-पुरुषों के योग्य विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री उपस्थित करो।'

तए णं ते आभिओगिया देवा सामाणियपरिसोववन्नेहिं देवेहिं एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-जाव-हियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं देवो! तह' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमंति, उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहणंति, समोहणित्ता संखेज्जाइं जोयणाइं-जाव-दोच्चं पि वेउव्विय-समुग्घाएणं समोहणित्ता अट्ठसहस्सं सोवण्णियाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं मणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पमयाणं कलसाणं अट्ठसहस्सं सुवण्णमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं रुप्पमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं सुवण्णरुप्पमणिमयाणं कलसाणं, अट्ठसहस्सं भोमिज्जाणं कलसाणं, एवं भिंगाराणं आयंसाणं थालाणं पाईणं सुपइट्ठाणं वायकरगाणं रयणकरंडगाणं सीहासणाणं छत्ताणं चामराणं तेल्लसमुग्गाणं-जाव-अंजणसमुग्गाणं, झयाणं विउव्वंति,—

तत्पश्चात् उन आभियोगिक देवों ने सामानिक परिषदा-पगत देवों की इस आज्ञा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे देव! इसी प्रकार' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया और स्वीकार करके वे ईशान कोण में गये। ईशान कोण में जाकर उन्होंने वैक्रिय समुद्घात किया, समुद्घात करके संख्यात योजन का दण्ड निकाला—यावत्—दूसरी बार पुनः वैक्रिय समुद्घात करके एक हजार आठ स्वर्ण कलशों की, एक हजार आठ रूप्य कलशों की, एक हजार आठ मणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्ण-रूप्यमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्णमणिमय कलशों की, एक हजार आठ रूप्यमणिमय कलशों की, एक हजार आठ स्वर्णरूप्यमणिमय कलशों की, एक हजार आठ भौमेय (मिट्टी के) कलशों की और इसी प्रकार भृंगारों, दर्पणों, थालों, पात्रियों, सुप्रतिष्ठानों, वातकरकों, रत्नकरंडकों, सिंहासनों, छत्रों, चामरों, तैलसमुद्गकों—यावत्—अंजन समुद्गकों और ध्वजाओं की विकुर्वणा की।

—विउव्वित्ता ते साभाविए य वेउव्विए य कलसे य-जाव-झए य गिण्हंति, गिण्हित्ता सूरियाभाओ विमाणाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता ताए उक्किट्ठाए चवलाए-जाव-तिरियमसंखेज्जाणं -जाव-वीईवयमाणा वीईवयमाणा जेणेव खीरोदयसमुद्दे तेणेव उवागच्छंति- उवागच्छित्ता खीरोयगं गिण्हंति, गिण्हित्ता जाइं तत्थुप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुक्खरोदए समुद्दे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुक्खरोदयं गेण्हंति गिण्हित्ता जाइं तत्थुप्पलाइं—

—इन सबकी विकुर्वणा करके उन स्वाभाविक और विक्रिया-जन्य कलशों—यावत्—ध्वजाओं को उन्होंने लिया और लेकर सूर्याभविमान से निकले, निकलकर उस उत्कृष्ट, चपल—यावत्—तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों को उलांघते हुए जहाँ क्षीरोदधि समुद्र था, वहाँ आये, वहाँ आकर क्षीरोदक को भरा और जल को भरकर वहाँ के उत्पलों—यावत्—शतपत्रों, सहस्र-पत्रों कमलों को लिया, फिर जहाँ पुष्करोदक समुद्र था वहाँ आये, वहाँ आकर पुष्करोदक लिया, लेकर वहाँ के उत्पल—

जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव समयखेत्ते भरहेरवयाइं वासाइं जेणेव मागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हंति, गेण्हेत्ता तित्थमट्टियं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव गंगासिंधुरत्तारत्तवईओ महा-नईओ तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति सलिलोदगं गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गेण्हंति, मट्टियं गेण्हित्ता जेणेव चुल्लहिमवंतसिहरीवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता दगं गेण्हंति० सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वगंधे सव्वमल्ले सव्वोसहिसिद्धत्थए गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पउमपुण्डरीयद्दहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दहोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सयसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव हेमवयएरवयाइं वासाइं जेणेव रोहियरोहियंसासुवण्णकूलरुप्पकूलाओ महाणईओ तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सलिलोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता उभओकूलमट्टियं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सद्दावइवियडावइपरियागा वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति, उवागच्छित्ता सव्वतूयरे तहेव जेणेव महाहिमवंतरुप्पिवासहरपव्वया तेणेव उवागच्छन्ति, तहेव जेणेव महापउम-महापुण्डरीयद्दहा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता दहोदगं गिण्हन्ति, तहेव जेणेव हरिवासरम्मगवासाइं जेणेव हरिकंतनारिकंताओ महाणईओ तेणेव उवागच्छंति० तहेव, जेणेव गंधावइमालवंतपरियाया वट्टवेयड्ढपव्वया तेणेव० तहेव, जेणेव णिसढणीलवंतवासधरपव्वया० तहेव, जेणेव तिगिच्छिकेसरिद्दहाओ तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तहेव जेणेव महाविदेहे वासे जेणेव सीयासीओयाओ महाणईओ तेणेव० तहेव, जेणेव सव्वचक्कवट्टि-विजया जेणेव सव्वमागहवरदामपभासाइं तित्थाइं तेणेव उवागच्छंति, तेणेव उवागच्छित्ता तित्थोदगं गेण्हंति, गेण्हित्ता सव्वंतरणईओ जेणेव सव्ववक्खारपव्वया तेणेव उवागच्छंति० सव्वतूयरे तहेव, जेणेव मंदरे पव्वए जेणेव भद्दसालवणे तेणेव उवागच्छंति० सव्वतूयरे सव्वपुप्फे सव्वमल्ले सव्वोसहिसिद्धत्थए य गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव णंदणवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता

यावत्—शतपत्र सहस्रपत्र कमलों को लिया, उन कमलों को लेकर जहां समय क्षेत्र (मनुष्य क्षेत्र) था और उसमें भी जहां भरत ऐरावत क्षेत्र थे और उन क्षेत्रों में जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास तीर्थ थे, वहाँ आये, वहाँ आकर तीर्थों के जल को भरा, जल भरकर फिर तीर्थों की मिट्टी ली, मिट्टी लेकर जहाँ गंगा, सिंधु, रक्ता और रक्तवती महानदियाँ थीं, वहाँ आये, आकर नदियों के जल को भरा, नदियों के जल को भरकर उन नदियों के दोनों किनारों की मिट्टी ली, मिट्टी लेकर फिर जहाँ क्षुल्ल हिमवंत और शिखरी वर्षधर पर्वत थे, वहाँ आये, वहाँ आकर जल भरा, सर्वऋतुओं के सर्वोत्तम सभी प्रकार के पुष्पों, गंधों, मालाओं और औषधियों और सिद्धार्थकों (सरसों) को लिया, इन सबको लेकर जहां पद्म एवं पुंडरीक द्रह था वहाँ आये, वहाँ आकर द्रह का जल कलशों में भरा और फिर वहां जो उत्पल—यावत्—शतपत्र सहस्रपत्र कमल थे, उनको लिया, उन कमलों को लेकर फिर जहां हेमवत और हैरण्यवत क्षेत्र थे, रोहित रोहितांशा, स्वर्णकूला, रूप्यकूला नामक महानदियाँ थीं, वहाँ आये, वहाँ आकर उन-उन नदियों का जल कलशों में भरा, भरकर नदियों के दोनों किनारों की मिट्टी ली, लेकर जहाँ शब्दापाति, विकटापाति नामक वृत्त वैताढ्य नामक पर्वत थे, वहां आये, वहां आकर उसी प्रकार—पूर्ववत् सर्वऋतुओं के पुष्पों आदि को लिया, उसके बाद महाहिमवंत और रुक्मि नामक वर्षधर पर्वत थे, वहाँ आये और पूर्ववत् उनके जल-पुष्प आदि लिए, फिर जहाँ महापद्म और महापुंडरीक द्रह थे, वहां आये, वहाँ आकर द्रहों का जल लिया, फिर पूर्ववत्, जहाँ हरिवर्ष, रम्यकवर्ष क्षेत्र थे, जहां हरिकांता, नारिकांता महानदियाँ थीं, वहां आये और वहां आकर वहाँ के जल, मिट्टी आदि को लिया, फिर जहाँ गंधापाति, माल्यवंत नामक वृत्त वैताढ्य पर्वत थे, वहाँ आये और पूर्ववत् जल आदि को लिया, फिर जहाँ निषध और नीलवंत नामक वर्षधर पर्वत थे, वहाँ आये और वहाँ से जल पुष्पादि लिये, फिर तिगिंछि और केशरी द्रह थे, वहाँ आये और वहाँ आकर पूर्ववत् उनके जल आदि को लिया, फिर जहां महाविदेह क्षेत्र था, जहाँ सीता सीतोदा नामक महानदियां थीं, वहां आये और पूर्ववत् नदियों का जल, तटों की मिट्टी ली, फिर जहाँ सर्वचक्रवर्तियों के विजयस्तम्भ थे, जहाँ मागध, वरदाम और प्रभास आदि सभी तीर्थ थे, वहां आये, वहाँ आकर तीर्थों का जल लिया, तीर्थजल लेकर जहाँ अंतर्वर्ती सभी नदियां और वक्षस्कार पर्वत थे, वहां आये और वहाँ आकर जल, मिट्टी, सर्वऋतुओं के पुष्पों आदि को लिया, फिर जहाँ मन्दर (मेरु) पर्वत था, जहाँ भद्रशालवन था, वहां आये और वहाँ से सर्वऋतुओं के पुष्पों, मालाओं, औषधियों और सिद्धार्थकों (सरसों) को लिया, लेकर जहां नन्दनवन था, वहाँ आये और आकर

सव्वतुयरे-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव सोमणसवणे तेणेव उवागच्छंति० सव्वतुयरे-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसगोसीसचंदणं च दिव्वं च सुमणदामं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पंडगवणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सव्वतूयरे-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थए य सरसं च गोसीस-चंदणं दिव्वं च सुमणदामं दद्दरमलय-सुगंधियगन्धे गिण्हन्ति,

सर्वऋतुओं के पुष्पों—यावत्—औषधियों और सरसों के दानों एवं सरसगोशीर्ष चन्दन को लिया, लेकर फिर जहाँ सौमनसवन था, वहाँ आये और वहाँ से सभी ऋतुओं के पुष्पों—यावत्—औषधियों और सरसों के दानों एवं सरसगोशीर्ष चन्दन, दिव्य पुष्प-मालाओं को लिया, लेकर फिर जहाँ पांडुकवन था, वहाँ आये, आकर सभी ऋतुओं के पुष्पों—यावत्—औषधियों, सिद्धार्थकों, सरसगोशीर्ष चन्दन, दिव्य पुष्पमालाओं और दर्दरमलय चन्दन और सुगंधित गंध द्रव्यों को लिया।

—गिण्हित्ता एगओ मिलायंति मिलाइत्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-जेणेव सोहम्मे कप्पे जेणेव सूरियाभे विमाणे जेणेव अभिसेयसभा जेणेव सूरियाभे देवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सूरियाभं देवं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं इंदाभिसेयं उवट्ठवेंति।

—इन सब वस्तुओं को लेकर एक स्थान पर एकत्रित हुए—मिले. मिलकर उस उत्कृष्ट—यावत्—जहाँ सौधर्मकल्प था, जहाँ सूर्याभविमान था, उसमें जहाँ अभिषेक सभा थी और उस सभा में जहाँ सूर्याभदेव स्थित था, वहाँ आये और आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके सूर्याभदेव को जय-विजय शब्दों से बधाया और बधाकर महार्थक, महामूल्यवान महापुरुषों के योग्य उस विपुल इन्द्राभिषेक की सामग्री को सामने रखा।

तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ, चत्तारि अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ, तिन्नि परिसाओ, सत्त अणियाहिवइणो-जाव-अन्ने वि बहवे सूरियाभविमाणवासिणो देवा य देवीओ य तेहिं साभाविएहि य वेउव्विएहि य वरकमलपइट्ठाणेहि य सुरभिवरवारिपडिपुन्नेहिं चंदणकयचच्चिएहिं आविद्धकंठेगुणेहिं पउमुप्पलपिहाणेहिं सुकुमालकोमलकरयलपरिग्गहिएहिं अट्ठसहस्सेणं सोवण्णियाणं कलसाणं-जाव-अट्ठसहस्सेणं भोमिज्जाणं कलसाणं सव्वोदएहिं सव्वमट्टियाहिं सव्वतूयरेहिं-जाव-सव्वोसहिसिद्धत्थएहि य सव्विड्ढीए-जाव-वाइएणं महया महया इंदाभिसेएणं अभिसिंचंति।

तत्पश्चात् चार सहस्र सामानिक देवों, परिवार सहित चार अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकाधिपतियों—यावत्—अन्य दूसरे बहुत से देव-देवियों ने उन स्वाभाविक, वैक्रियिक, श्रेष्ठ कमल पुष्पों पर स्थापित, सुगंधित शुद्ध श्रेष्ठ जल से भरे हुए, चन्दन के लेप से चर्चित, पंचरंगी सूत से बंधे हुए कण्ठ वाले, पद्मों और उत्पलों के ढक्कनों से ढंके हुए, सुकोमल कर-तलों में लिये गये एक हजार स्वर्ण कलशों—यावत्—एक हजार आठ भौमेय कलशों के जलों, सब प्रकार की मिट्टी, सर्वऋतुओं के पुष्पों—यावत्—समस्त औषधियों, सिद्धारकों से महान ऋद्धि—वैभव—यावत्—वाद्यघोषपूर्वक उस सूर्याभदेव को अतीव महान इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त किया।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स महया महया इंदाभिसेए वट्टमाणे अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं नच्चोययं नाइमट्टियं पविरल-फुसियरेणुविणासणं दिव्वं सुरभिगन्धोदगं वासं वासंति,

इस प्रकार से सूर्याभदेव का अभिषेक हो रहा था। तब कितने ही देवों ने सूर्याभविमान में इस प्रकार से झिरमिर-झिरमिर, विरल नन्हीं-नन्हीं बूँदों में अतिशय सुगंधित गंधोदक की वर्षा बरसाई, कि जिससे वहाँ की धूलि दब गयी, किन्तु जमीन पर पानी नहीं फैला और न ही कीचड़ हुआ।

अप्पेगइया देवा हयरयं नट्ठरयं भट्ठरयं उवसंतरयं पसंतरयं करेंति,

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को झाड़-बुहार कर हत-रज—नष्टरज—भ्रष्टरज—उपशांतरज और प्रशांतरज वाला बना दिया।

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं आसियसंमज्जिओवलित्तं सुइसंमट्ठरत्थंतरावणवीहियं करेंति,

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान की गलियों, बाजारों और राजमार्गों को पानी से सींचकर, कचरा वगैरह झाड़-बुहार कर और गोबर-मिट्टी से लीप-पोतकर साफ किया।

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं मंचाइमंच-कलियं करेंति,

कितने ही देवों ने मंच बनाये और मंचों के ऊपर मंच बना-कर सूर्याभविमान को सजाया।

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं णाणाविहरागोसियं झय-पडागाइपडागमंडियं करेंति,

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं लाउल्लोइयमहियं गोसीस-सरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितलं करेंति, अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं उवचियचंदणकलसं चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवार-देसभागं करेंति,

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेंति,

अप्पेगइया देवा सूरियाभं पंचवण्णसुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेंति,

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं कालागुरुपवरकुन्दुरुक्क-तुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धयाभिरामं करेंति,

अप्पेगइया देवा सूरियाभं विमाणं सुगंधवरगंधियं गंधवट्टिभूयं करेंति,

अप्पेगइया देवा हिरण्णवासं वासंति, सुवण्णवासं वासंति, रययवासं वासंति, वइरवासं०, पुप्फवासं०, फलवासं०, मल्लवासं०, गंधवासं०, चुण्णवासं०, आभरणवासं वासंति,

अप्पेगइया देवा हिरण्णविहिं भाएंति, एवं सुवन्नविहिं भाएंति, रयणविहिं०, पुप्फविहिं०, फलविहिं०, मल्लविहिं०, चुण्णविहिं०, वत्थविहिं०, गंधविहिं०, तत्थ अप्पेगइया देवा आभरणविहिं भाएंति,

अप्पेगइया चउव्विहं वाइत्तं वाएंति तं जहा—ततं विततं घणं झुसिरं,

अप्पेगइया देवा चउव्विहं गेयं गायंति, तं जहा—उक्खित्तायं पायत्तायं मंदायं रोइयावसाणं,

अप्पेगइया देवा दुयं नट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया विलंबियं नट्टविहिं उवदंसेंति अप्पेगइया देवा दुयविलंबियं णट्टविहिं उवदंसेंति, एवं अप्पेगइया अंचियं नट्टविहिं उवदंसेंति, अप्पेगइया देवा आरभडं भसोलं आरभडभसोलं उप्पायनिवायपवत्तं संकुचियपसारियं रियारियं भंतसंभंतणामं दिव्वं णट्टविहिं उवदंसेंति,

अप्पेगइया देवा चउव्विहं अभिणयं अभिणयंति, तं जहा—दिट्ठंतियं पाडंतियं सामंतोवणिवाइयं लोगअंतोमज्झावसाणियं,

अप्पेगइया देवा बुक्कारेंति,

कितने ही देवों ने विविध प्रकार की रंग-बिरंगी ध्वजाओं, पताकातिपताकाओं से मण्डित किया।

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को लीप-पोतकर स्थान-स्थान पर सरस गोरोचन और रक्तदर्दर चन्दन हाथों में लगाकर पाँचों अंगुलियों के छापे मारे, कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को चर्चित कलशों और चन्दन कलशों से बने तोरणों से सजाया।

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालाओं से विभूषित किया।

कितने ही देवों ने पंचरंगे सुगंधित पुष्पों को बिखेरकर, मांडने मांडकर (रंगोली करके) सूर्याभविमान को सुशोभित किया।

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को कृष्णअगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क और धूप की मघमघाती सुगंध से मनमोहक बनाया।

कितने ही देवों ने सूर्याभविमान को सुरभिगंध के सुवास से सुगंध की गुटिका जैसा बना दिया।

कितने ही देवों ने चाँदी की वर्षा बरसाई, तो कितनेक ने सुवर्ण की, रजत की, वज्ररत्नों की, पुष्पों की, फलों की, मालाओं की, सुगंधित द्रव्यों की, सुगंधित चूर्ण की और कितनेक ने आभरणों की वर्षा की।

कितने ही देवों ने आपस में एक-दूसरे को भेंट में चाँदी दी तो इसी प्रकार कितने ही देवों ने आपस में एक-दूसरे को स्वर्ण, रत्न, पुष्प, फल, माला, सुगंधितचूर्ण, वस्त्र, गंधद्रव्य भेंट में दिये और कितने ही देवों ने भेंट में आभूषण दिये।

किन्हीं देवों ने तत, वितत, घन और शुषिर इन चार प्रकार के वाद्यों को बजाया।

किन्हीं देवों ने उत्क्षिप्त, पादान्त, मंद और रोचितावसान इन चार प्रकार के संगीत गाये।

किसी देव ने द्रुत नृत्यविधि दिखाई, किसी ने विलम्बित नृत्यविधि का प्रदर्शन किया, किसी ने द्रुत-विलम्बित नृत्यविधि का प्रदर्शन किया, किसी ने अंचित नृत्यविधि दिखलाई और कितने ही देवों ने आरभट, भसोल, आरभट-भसोल उत्पात-निपातप्रवृत्त संकुचित प्रसारित, रितारित, भ्रांतसंभ्रांत नामक दिव्य नृत्यविधियाँ दिखलाईं।

कितने ही देवों ने दार्ष्टान्तिक, प्रात्यान्तिक, सामन्तोपनिपातिक और लोकान्त मध्यावसानिक इन चार प्रकार के अभिनयों का अभिनय किया।

इसके अतिरिक्त कितने ही देव हर्षातिरेक से बकरे जैसी बुकबुकाहट (मिमियाना) करने लगे।

अप्पेगइया देवा पीणेंति,

अप्पेगइया० लासेंति,

अप्पेगइया० हक्कारेंति, अप्पेगइया० विणंति, तंडवेंति, अप्पेगइया वग्गंति अप्फोडेंति, अप्पेगइया० अप्फोडेंति वग्गंति, अप्पे० तिवई छिंदंति, अप्पेगइया० हयहेसियं करेंति, अप्पेगइया० हत्थिगुलगुलाइयं करेंति, अप्पेगइया० रहघण-घणाइयं करेंति, अप्पेगइया०, हयहेसिय-हत्थिगुलगुलाइयरहघणघणाइयं करेंति,

अप्पेगइया० उच्छलेंति, अप्पेगइया० पोच्छलेंति, अप्पेगइया० उक्किट्ठियं करेंति, अ० उच्छलेंति पोच्छलेंति, अप्पेगइया तिन्नि वि, अप्पेगइया० ओवयंति, अप्पेगइया० उप्पयंति, अप्पेगइया० परिवयंति, अप्पेगइया० तिन्नि वि,

अप्पेगइया० सीहनायंति, अप्पेगइया० दद्दरयं करेंति, अप्पेगइया० भूमिचवेडं दलयंति, अप्पे० तिन्नि वि,

अप्पेगइया० गज्जंति, अप्पेगइया० विज्जुयायंति, अप्पेगइया० वासं वासंति, अप्पेगइया० तिन्नि वि करेंति,

अप्पेगइया० जलंति, अप्पेगइया० तवंति, अप्पेगइया० पतवेंति, अप्पेगइया० तिन्नि वि,

अप्पेगइया० हक्कारेंति, अप्पेगइया० थुक्कारेंति, अप्पेगइया० धक्कारेंति, अप्पेगइया० साइं साइं नामाइं साहेंति, अप्पेगइया० चत्तारि वि,

अप्पेगइया० देवा देवसन्निवायं करेंति, अप्पेगइया० देवुज्जोयं करेंति, अप्पेगइया० देवुक्कलियं करेंति, अप्पेगइया० देवा कहकहगं करेंति, अप्पेगइया देवा दुहदुहगं करेंति, अप्पेगइया० चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया० देवसन्निवायं देवुज्जोयं देवुक्कलियं देवकहकहगं देवदुहदुहगं चेलुक्खेवं करेंति, अप्पेगइया० उप्पलहत्थगया-जाव-सयसहस्स-पत्तहत्थगया, अप्पेगइया० कलसहत्थगया-जाव-धयहत्थगया हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया सव्वओ समंता आहावंति परिधावंति ।

कितने ही देवों ने अपने शरीर को फुलाने का दिखावा किया ।

कितनेक देव नाचने-गाने लगे ।

कितनेक हक-हक की आवाजें लगाने लगे । कितनेक गुन-गुनाने लगे । कितने ही तांडव नृत्य करने लगे । कितने ही उछलने के साथ ताल ठोकने लगे और कितने ही ताली बजाकर उछलने लगे । कितने ही तीन-पैर की दौड़ दौड़ने लगे । कितने ही घोड़े जैसी हिनहिनाहट करने लगे, कितने ही हाथी जैसी गुलगुलाहट (चिंघाड़) करने लगे, कितने ही रथों की घनघनाहट जैसे घन्-घन् की आवाजें करने लगे और कितने ही घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथी की गुलगुलाहट और रथों की घनघनाहट जैसी आवाजें करने लगे ।

कितनेक ने ऊँची छलांगें लगाई और कितनेक ने और ऊँची छलांग लगाई और कितने ही हर्षध्वनि करने लगे । कितने ही उछले, कितने ही विशेष ऊँचे उछले । कितने ही तीनों (उछलना, विशेष ऊँचा उछलना, हर्षध्वनि करना) ही करने लगे । कितने ही ऊपर से नीचे कूदे, कितने ही नीचे से ऊपर कूदे और कितने ही लम्बे कूदे । कितने ही तीनों प्रकार से कूदे ।

कितनेक सिंह जैसी गर्जना की—दहाड़ लगाई । कितनेक ने एक दूसरे को रंग—गुलाल से भर दिया । कितनेक ने भूमि को थपथपाया और कितनेक ने सिंहनाद किया, रंग—गुलाल उड़ाई और भूमि को थपथपाया । इस प्रकार तीनों प्रवृत्तियाँ कीं ।

कितने ही देवों ने मेघों की गड़गड़ाहट की, कितने ही ने बिजली की चमक जैसा दिखावा किया और किन्हीं ने वर्षा बरसाई । कितने ही देवों ने मेघों के गरजने, बिजली चमकने और बरसात होने—इन तीनों के दृश्य दिखलाये ।

कुछेक देवों ने गर्मी से आकुल—व्याकुल होने का, कुछ एक ने तपने का, कुछ एक ने विशेष रूप से तपने का दिखावा किया और किन्हीं ने तीनों का प्रदर्शन किया ।

कितने ही हक्-हक्, कितने ही थुक्-थुक्, कितने ही धक्-धक् जैसे शब्दों का उच्चारण करने लगे और कितने ही अपने-अपने नामों की आवाजें लगाने लगे और कितने ही देवों ने हक्-हक् आदि इन चारों को एक साथ किया ।

कितने ही देवों ने टोलियाँ बनाईं । कितने ही ने देवोद्योत किया । कितने ही देवों ने रुक-रुककर बहने वाली वाततरंगों का प्रदर्शन किया । कितने ही देवों ने कहकहे लगाये, कितने ही देवों ने दुहदुह शब्द की आवाज लगाई । कितने ही देवों ने वस्त्रों को उछाला और कितने ही हाथों में उत्पल—यावत्—शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों को लेकर, कितने ही हाथों में कलश—यावत्—ध्वजा लेकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होते हुए इधर-उधर चारों ओर दौड़ा-दौड़ करने लगे ।

तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ-जाव-सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अण्णे य बहवे सूरियाभरायहाणि-वत्थव्वा देवा य देवीओ य महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसिंचंति अभिसिंचित्ता पत्तेयं पत्तेयं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात् चार हजार सामानिक देवों—यावत्—सोलह हजार आत्मरक्षक देवों तथा और दूसरे भी बहुत से सूर्याभ राजधानी में निवास करने वाले देवों और देवियों ने महान् महिमाशाली इन्द्राभिषेक से सूर्याभदेव को अभिषिक्त किया। अभिषेक करके प्रत्येक ने दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

"जय जय नन्दा ! जय जय भद्दा ! जय जय नंदा ! भद्दं ते, अजियं जिणाहि, जियं च पालेहि, जियमज्झे वसाहि इंदो इव देवाणं, चंदो इव ताराणं, चमरो इव असुराणं, धरणो इव नागाणं, भरहो इव मणुयाणं, बहूइं पलिओवमाइं बहूइं सागरोवमाइं बहूइं पलिओवम-सागरोवमाइं चउण्हं सामाणियसाहस्सीणं-जाव-आयरक्खदेवसाहस्सीणं सूरियाभस्स विमाणस्स अन्नेसिं च बहूणं सूरियाभविमाणवासीणं देवाण य देवीण य आहेवच्चं-जाव-महया महया कारेमाणं पालेमाणे विहराहि" त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति। तए णं से सूरियाभे देवे महया महया इंदाभिसेगेणं अभिसित्ते समाणे अभिसेयसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अलंकारियसभं अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अणुप्पयाहिणीकरेमाणे अलंकारियसभं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सण्णिसन्ने।

'हे नन्द ! तुम्हारी जय हो, जय हो, हे भद्र तुम्हारी जय हो, जय हो, हे जगदानन्द कारक ! तुम्हारी बारम्बार जय-जयकार हो, तुम्हारा कल्याण हो, तुम न जीते हुओं को जीतो और विजितों का पालन करो, जीते हुए शिष्ट आचार-विचार वालों के मध्य में निवास करो। देवों में इन्द्र के समान, ताराओं में चन्द्र के समान, असुरों में चमर के समान, नागों में धरणेन्द्र के समान, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती के समान, अनेक पल्योपमों तक, अनेक सागरोपमों तक अनेक-अनेक पल्योपमों—सागरोपमों तक चार हजार सामानिक देवों—यावत्—सोलह हजार आत्मरक्षक देवों एवं सूर्याभविमान और सूर्याभविमानवासी अन्य बहुत से देवों तथा देवियों का बहुत-बहुत अतिशय रूप से आधिपत्य करते हुए, उनका पालन करते हुए विचरण करो' इस प्रकार कहकर पुनः जय-जयकार किया। अतिशय महिमाशाली इन्द्राभिषेक से अभिषिक्त होने के पश्चात् वह सूर्याभदेव अभिषेकसभा के पूर्वदिशावर्ती द्वार से बाहर निकला और निकलकर जहाँ अलंकार सभा थी, वहाँ आया, वहाँ आकर अलंकार सभा की बारम्बार अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से अलंकार सभा में प्रविष्ट हुआ। प्रविष्ट होकर जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और आकर पूर्व की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा अलंकारियभंडं उवट्ठवेंति।

तब उस सूर्याभदेव के सामानिक परिषदोपगत देवों ने उसके सम्मुख अलंकार भांड उपस्थित किये।

तए णं से सूरियाभे देवे तप्पढमयाए पम्हलसूमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहित्ता सरसेणं गोसीस-चंदणेणं गायाइं अणुलिपइ, अणुलिंपित्ता नासानीसासवायवोज्झं चक्खुहरं वन्नफरिसजुत्तं हयलालापेलवाइरेगं धवलं कणगखचियन्त-कम्मं आगासफालियसमप्पभं दिव्वं देवदूसजुयलं नियंसेइ, नियंसेत्ता हारं पिणद्धेइ, पिणद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता एगावलिं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता मुत्तावलिं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता रयणावलिं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता एवं अंगयाइं केऊराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणंतगं वच्छसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुण्डलाइं—

तदनन्तर सर्वप्रथम रोमयुक्त सुकोमल, काषायिक सुरभिगंध से सुवासित वस्त्र से शरीर को पोंछा, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन का शरीर पर लेप किया, लेप करके नाक के निःश्वास से उड़ जाये ऐसे अति बारीक, नेत्राकर्षक, सुन्दरवर्ण और स्पर्श-वाले, घोड़े के थूक—लारपुञ्ज से भी अधिक सुकोमल, धवल, जिनके पल्लों और किनारे पर सुनहरे बेल-बूटे बने हैं, आकाश एवं स्फटिक मणि जैसी प्रभावाले, दिव्य देवदूष्ययुगल को पहना। पहनकर गले में हार, अर्धहार, एकावलि, मुक्तावलि, रत्नावलि को धारण किया। इसी प्रकार भुजाओं में अंगद, केयूर, कड़ा, त्रुटित, कमर में करधनी, हाथों की दसों अंगुलियों में अंगूठियाँ और वक्षस्थल पर वक्षसूत्र, मुरवि (मादलियाँ) कण्ठमुरवि (कंठी), प्रालंब (झूमके), कानों में कुण्डल पहने तथा मस्तक पर

चूडामणिं मउडं पिणद्धेइ, पिणद्धित्ता गंथिमवेढिमपूरिमसंघाइमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अप्पाणं अलंकियविभूसियं करेइ, करित्ता दद्दरमलयसुगंधगंधिएहिं गायाइं भुखंडेइ दिव्वं च सुमणदामं पिणद्धेइ ।

चूडामणि (कलंगी) और मुकुट धारण किया। इन आभूषणों को पहनने के पश्चात् ग्रंथिम (गूंथी हुई), वेष्टिम (लपेटी हुई), पूरिम (पिरोई हुई) और संघातिम (सांधकर बनाई हुई) इन चार प्रकार की मालाओं से अपने आपको कल्प वृक्ष के समान अलंकृत-विभूषित किया। विभूषित करके अपने शरीर पर दद्दर मलय चन्दन की सुगंध से सुगंधित चूर्ण को डाला और दिव्य सुमन दामाओं (पुष्पमालाओं) को धारण किया।

तए णं से सूरियाभे देवे केसालंकारेणं मल्लालंकारेणं आभरणालंकारेणं वत्थालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकियविभूसिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता अलंकारियसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ववसायसभं अणुपयाहिणीकरेमाणे अणुपयाहिणीकरेमाणे पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणवरए-जाव-सन्निसन्ने ।

तत्पश्चात् केशालंकारों, माल्यालंकारों, आभरणालंकारों और वस्त्रालंकारों—इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत, विभूषित होकर वह सूर्याभदेव सिंहासन से उठा, उठकर अलंकारसभा के पूर्व दिशावर्ती द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ व्यवसाय सभा थी, वहाँ आया और वहाँ आकर व्यवसाय सभा की अनुप्रदक्षिणा की, अनुप्रदक्षिणा करके पूर्व दिशा के द्वार से उसमें प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट होकर जहाँ सिंहासन था वहाँ आकर—यावत्—उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स सामाणियपरिसोववन्नगा देवा पोत्थयरयणं उवणेंति । तए णं से सूरियाभे देवे पोत्थयरयणं गिण्हइ, गिण्हित्ता पोत्थयरयणं मुयइ, मुइत्ता पोत्थयरयणं विहाडेइ, विहाडित्ता पोत्थयरयणं वाएइ, पोत्थयरयणं वाएत्ता धम्मियं ववसायं ववसइ, ववसइत्ता पोत्थयरयणं पडिनिक्खिवइ, पडिनिक्खिवित्ता सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता ववसायसभाओ पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव नंदा पुक्खरणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता णंदापुक्खरिणिं पुरत्थिमिल्लेणं तोरणेणं तिसोवाणपडिरूवएणं पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता हत्थपादं पक्खालेति, पक्खालित्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए एगं महं सेयं रययामयं विमलं सलिलपुण्णं मत्तगयमुहागितिकुम्भसमाणं भिंगारं पगेण्हति, पगेण्हित्ता जाइं तत्थ उप्पलाइं-जाव-सतसहस्सपत्ताइं ताइं गेण्हति, गेण्हित्ता णंदातो पुक्खरिणीतो पच्चुत्तरति, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सिद्धायतणे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के सामानिक परिषदोपगत देवों ने पुस्तकरत्न को उसके समक्ष रखा। तब उस सूर्याभदेव ने उस पुस्तकरत्न को हाथ में लिया, लेकर पुस्तकरत्न को खोला, खोलकर पुस्तक को उघाड़ा और फिर उस पुस्तकरत्न को पढ़ा, पुस्तकरत्न को पढ़कर अपना धार्मिक-धर्मानुगत कार्य करने का निश्चय किया, निश्चय करके पुस्तकरत्न को वापस रखा, रखकर सिंहासन से उठा और उठकर व्यवसाय सभा के पूर्वदिग्वर्ती द्वार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया और आकर नन्दापुष्करिणी के पूर्वी तोरण और त्रिसोपानों से उसमें उतरा, उतरकर हाथ पैरों को धोया, धोकर आचमन कुल्ला कर पूर्णरूप से स्वच्छ एवं परम शुचिभूत—शुद्ध होकर मत्त गजराज की मुखाकृति जैसी एक विशाल, श्वेत, धवल रजतमय विमल जल से भरी हुई भृंगार (झारी) को लिया, लेकर वहाँ के उत्पल—यावत्—शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लिया, लेकर नन्दापुष्करिणी से बाहर निकला, बाहर निकल कर जहाँ सिद्धायतन था, उस ओर चलने के लिए उद्यत हुआ।

तए णं तं सूरियाभं देवं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ-जाव-सोलस आयरक्खदेवसाहस्सीओ अन्ने य बहवे सूरियाभविमाणवासिणो-जाव-देवीओ य, अप्पेगतिया देवा उप्पलहत्थगा-जाव-सयसहस्सपत्तहत्थगा सूरियाभं देवं पिट्ठतो पिट्ठतो समणुगच्छंति ।

तब उस सूर्याभदेव के चार सहस्र सामानिक देव—यावत्—सोलह सहस्र आत्मरक्षक देव अन्य बहुत से सूर्याभविमानवासी देव और देवियाँ भी हाथों में उत्पल—यावत्—शतपत्र-सहस्रपत्र कमलों को लेकर सूर्याभदेव के पीछे पीछे चले।

तए णं तं सूरियाभं देवं, बहवे आभिओगिया देवा य देवीओ य, अप्पेगतिया कलसहत्थगा-जाव-अप्पेगतिया धूवकडुच्छुयहत्थगा हट्ठतुट्ठ-जाव-सूरियाभं देवं पिट्ठतो समणुगच्छंति ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के बहुत से आभियोगिक देव और देवियों में से कोई हाथों में कलश—यावत्—कोई धूपदानों को लेकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होते हुए सूर्याभदेव के पीछे-पीछे चले।

तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं-जाव-अन्नेहि य बहूहिं सूरियाभविमाणवासीहिं देवेहि य देवीहि सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-णातियरवेणं जेणेव सिद्धायतणे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सिद्धायतणं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसति, अणुपविसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव जिणपडिमाओ तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता जिणपडिमाणं आलोए पणामं करेति, करेत्ता लोमहत्थगं गिण्हति, गिण्हित्ता जिणपडिमाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जिणपडिमाओ सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेइ, ण्हाणित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं अणुलिपइ, अणुलिंपित्ता सुरभिगंधकासाइएणं गायाइं लूहेइ, लूहित्ता जिणपडिमाणं अहयाइं देवदूसजुयलाइं नियंसेइ, नियंसित्ता पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं चुण्णारुहणं वन्नारुहणं वत्थारुहणं आभरणारुहणं करेइ, करित्ता आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारियमल्लदामकलावं करेइ, मल्लदामकलावं करेत्ता कयग्गहगहियकरयलपब्भट्ठविप्पमुक्केणं दसद्धवन्नेणं कुसुमेणं मुक्कपुप्फपुंजोवयारकलियं करेति, करित्ता जिणपडिमाणं पुरतो अच्छेहिं सण्हेहिं रययामएहिं अच्छरसातंदुलेहिं अट्ठट्ठ मंगले आलिहइ, तं जहा—सोत्थिय-जाव-दप्पणं।

तत्पश्चात् वह सूर्याभदेव चार हजार सामानिकदेवों—यावत्—और दूसरे सूर्याभविमानवासी देवों और देवियों से परिवेष्टित होता हुआ अपनी समस्त ऋद्धि-वैभव—यावत्—वाद्यनिनादों पूर्वक जहाँ सिद्धायतन था, वहाँ आया। वहाँ आकर पूर्वदिशावर्ती द्वार से सिद्धायतन में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ देवच्छन्दक (सिंहासन विशेष) था, जहाँ जिनप्रतिमायें थीं वहाँ आया, आकर जिनप्रतिमाओं को देखते ही उसने प्रणाम किया, प्रणाम करके लोममयी प्रमार्जनी (मयूरपिच्छ) की पूंजनी हाथ में ली, पूंजनी हाथ में लेकर जिनप्रतिमाओं को प्रमार्जित किया—पूंजा, प्रमार्जित करके सुरभिगंधोदक से उन प्रतिमाओं का प्रक्षालन किया, प्रक्षालन करके सरस गोशीर्ष चन्दन का लेप किया, लेप करके काषायिक सुरभिगंध से सुवासित अंगोछे से उनके शरीर को पोंछा, पोंछकर उन जिनप्रतिमाओं को अखंड (अक्षत) देवदूष्य युगल पहनाया, पहनाकर पुष्प, माला, गंध, चूर्ण, वर्ण (रंग), वस्त्र और आभूषण चढ़ाये, इन सबको चढ़ाने के बाद फिर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई लम्बी-लम्बी गोल मालायें पहनाईं, मालायें पहनाकर केश पाश के समान हाथ में लेकर छोड़े गये पंचरंगी पुष्पपुंजों को बिखेरकर और मांडने मांडकर उस स्थान को सुशोभित किया और फिर उन जिनप्रतिमाओं के सन्मुख शुभ्र सलोने रजतमय अक्षत तंदुलों (चावलों) से आठ-आठ मंगलों का आलेखन किया, यथा—स्वस्तिक—यावत्—दर्पण।

तयणंतरं च णं चंदप्पभ-वइर-वेरुलियविमलदंडं कंचण-मणि-रयणभत्तिचित्तं कालागुरु-पवरकुंदुरुक्क-तुरुक्क धूवमघमघंतगंधुत्तमाणुविद्धं च धूववट्टिं विणिम्मुयंतं वेरुलियमयं कडुच्छुयं पग्गहिय पयत्तेणं धूवं दाऊण जिणवराणं अट्ठसयविसुद्धगंथजुत्तेहिं अत्थजुत्तेहिं अपुणरुत्तेहिं महावित्तेहिं संथुणइ, संथुणित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता वामं जाणुं अंचेइ, अंचित्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि निहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवाडेइ, निवाडेत्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तदनन्तर काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुष्क, तुरुष्क और धूप की महकती सुगंध से व्याप्त, और धूपबत्ती के समान सुरभिगंध को फैलाने वाले चन्द्रकान्तमणि, वज्ररत्न और वैडूर्यमणि की डंडी तथा स्वर्ण, मणिरत्नों से रचित चित्र-विचित्र रचनाओं से युक्त वैडूर्यमणिमय धूपदान को लेकर धूपक्षेप किया और फिर विशुद्ध, शास्त्रानुकूल, अपूर्व अर्थसम्पन्न, अपुनरुक्त, महिमाशाली एक सौ आठ छंदों में स्तुति की, स्तुति करके सात-आठ पग पीछे हटा, पीछे हटकर बायाँ घुटना ऊँचा किया और दायाँ घुटना जमीन पर टिकाकर तीन बार मस्तक को भूमितल पर नमाया, नमाकर फिर कुछ ऊँचा उठाया, उठाकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

"नमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोअगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं

'अरिहंत भगवन्तों को नमस्कार हो, श्रुत चारित्ररूप धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर स्वयंसंबुद्ध, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ पुण्डरीक—कमल के समान, गंधहस्ती के समान, लोक में उत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोकालोक को प्रकाशित करने वाले, अभयदाता, श्रद्धा-ज्ञान रूप नेत्र के दाता, संयमरूप मार्ग के दाता, शरणदाता, बोधिदाता, धर्मदाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक,

धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं अप्पडिहयवरनाण-दंसणधराणं वियट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं सिवमयलमरुअमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावित्ति सिद्धिगइनामधेयं ठाणं संपत्ताणं।"

सारथी, चतुर्गतिरूप संसार का अन्त करने वाले श्रेष्ठ धर्मचक्रवर्ती, अप्रतिहत श्रेष्ठ ज्ञान-दर्शन के धारक, कर्मावरणरूप छद्म के नाशक, रागादि शत्रुओं को जीतने वाले तथा अन्य जीवों को भी कर्मशत्रुओं को जीतने के लिये प्रेरित करने वाले, संसार सागर से स्वयं तिरे हुए तथा दूसरों को भी तिरने का उपदेश देने वाले, बोध को प्राप्त तथा दूसरों को भी उपदेश द्वारा बोध को प्राप्त कराने वाले, स्वयं कर्ममुक्त एवं अन्य को भी कर्म-मुक्ति का उपदेश देने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, शिव-कल्याण रूप अचल, निरोग, अनन्त, अक्षय,, अव्याबाध, अपुनरावृत्ति रूप सिद्धगति नामक स्थान में विराजमान सिद्धभगवन्तों को वन्दन नमस्कार हो।'

वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव देवच्छंदए जेणेव सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता सिद्धायतणस्स बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलं मंडलगं आलिहइ, आलिहित्ता कयग्गाहग्गहिय०-जाव-पुंजोवयारकलियं करेइ, करित्ता धूवं दलयइ,—

सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार करके वह सूर्याभदेव जहाँ देवच्छन्दक था एवं सिद्धायतन का अतीव मध्य देश भाग था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी को उठाया और उठाकर उस मयूरपिच्छी से सिद्धायतन के अतिमध्य भाग को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा से सींचा, सींचकर सरसगोशीर्ष चन्दन के हाथे लगाये, मांडने मांडे, मांडकर कचग्रहवत्—(हलके हाथ से)—यावत्—पुष्पपुंजोपचार किया, पुंजोपचार करके धूप प्रक्षेप किया।

दलइत्ता जेणेव सिद्धायतणस्स दाहिणे दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता, सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं मल्ला०-जाव-आभरणारुहणं करेइ, करेत्ता आसत्तोसत्त०-जाव-धूवं दलयइ,—

धूप प्रक्षेप करके जहाँ सिद्धायतन का दक्षिणदिशावर्ती द्वार था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी को उठाया, उठाकर उस मयूरपिच्छी से द्वारचेटिकाओं, काष्ठपुतलियों एवं व्यालरूपों को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा सींची, सींचकर सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपक्षेप किया, धूप प्रक्षेप करके पुष्प चढ़ाये, मालायें चढ़ाईं—यावत्—आभूषण चढ़ाये, चढ़ाकर ऊपर से नीचे तक लटकती हुई गोल-गोल लम्बी मालाओं से—यावत्—धूप प्रक्षेप किया।

दलइत्ता जेणेव दाहिणिल्ले दारे मुहमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता बहुमज्झदेसभागं लोमहत्थेणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खित्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं पंचंगुलितलं मंडलगं आलिहइ, आलिहित्ता कयग्गहग्गहिय०-जाव-धूवं दलयइ,

धूप प्रक्षेप करने के पश्चात् जहाँ दक्षिणी द्वार का मुख-मण्डप था और उस दक्षिणी द्वार के मुखमण्डप का अतिमध्य देश भाग था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी उठाई, उठाकर उस मयूरपिच्छी से अतिमध्य भाग को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित कर दिव्य जलधारा को सींचा, सींचकर सरस गोशीर्षचन्दन के हाथे लगाये, मांडने मांडे, मांडनों का आलेखन कर कचग्रहवत्—यावत्—धूप प्रक्षेप किया।

दलइत्ता जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता दारचेडीओ य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए० सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं-जाव-आभरणारुहणं

धूप प्रक्षेप करके जहाँ उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप का पश्चिमीद्वार था, वहाँ आया, आकर मयूरपिच्छी को उठाया, उठाकर उस मयूरपिच्छी से द्वार चेटिकाओं, पुतलियों और व्यालरूपों को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा से सिंचित किया, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूप प्रक्षेप किया, धूप प्रक्षेप करके पुष्प चढ़ाये—यावत्—आभूषण

करेइ, करित्ता आसत्तोसत्त० कयग्गहगहिय० धूवं दलयइ,—

चढ़ाये, आभूषण आदि चढ़ाकर लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं, कचग्रहवत् मुक्त पुष्प बिखेरे, धूप प्रक्षेप किया।

दलइत्ता जेणेव दाहिणिल्लमुहमंडवस्स उत्तरिल्ला खंभपंती तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता खंभे य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता जहा चेव पच्चत्थिमिल्लस्स दारस्स-जाव-धूवं दलयइ,

धूप प्रक्षेप करने के पश्चात् उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप की उत्तरदिशावर्ती स्तंभपंक्ति थी, वहाँ आया, वहाँ आकर मयूरपिच्छी उठाई, उठाकर उस मयूरपिच्छी से द्वार चेटिकाओं, पुतलियों और व्यालरूपों को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा सींची, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपक्षेप किया, धूपक्षेप करके पुष्प चढ़ाये—यावत्—आभूषण चढ़ाये, आभूषण चढ़ाकर लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं, कचग्रहवत् मुक्त किये पुष्पपुञ्जों से उपचरित किया, धूप जलाई;

दलइत्ता जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता दारचेडीओ० तं चेव सव्वं।

धूप प्रक्षेप करने के पश्चात् उस दक्षिण दिशावर्ती मुखमण्डप का जहाँ पूर्व दिशावर्ती द्वार था, वहाँ आया, वहाँ आकर मोरपीछी उठाई, उठाकर द्वारचेटिकाओं आदि को प्रमार्जित किया इत्यादि समस्त वर्णन पूर्ववत् यहाँ कर लेना चाहिये।

जेणेव दाहिणिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता दारचेडीओ य० तं चेव सव्वं।

इसके बाद उस दक्षिणदिशावर्ती मुखमण्डप का दक्षिण द्वार था, वहाँ आया, वहाँ आकर द्वारचेटिकाओं आदि को मोरपीछी से प्रमार्जित किया इत्यादि समस्त वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

जेणेव दाहिणिल्ले पेच्छाघरमंडवे जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स बहुमज्झदेसभागे जेणेव वइरामए अक्खाडए जेणेव मणिपेढिया जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता अक्खाडगं च मणिपेढियं च सीहासणं च लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए०, सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं० आसत्तोसत्त-जाव-धूवं दलयइ,

तत्पश्चात् जहाँ दक्षिणी प्रेक्षागृह मण्डप था और उस दक्षिणी प्रेक्षागृह मण्डप का अतिमध्य देश भाग था, वहाँ आया, उसमें भी जहाँ वज्ररत्नमय अक्षपाट था, मणिपीठिका थी, सिंहासन था, वहाँ आया, वहाँ आकर मोरपीछी उठाई, उठाकर उस मोरपीछी से अक्षपाट, मणिपीठिका और सिंहासन को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा सींची सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपक्षेप किया, धूपक्षेप करके पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं, धूप प्रक्षेप किया।

दलइत्ता जेणेव दाहिणिल्लस्स पेच्छाघरमंडवस्स पच्चत्थिमिल्ले दारे० उत्तरिल्ले दारे। तं चेव जं चेव पुरत्थिमिल्ले दारे तं चेव, दाहिणे दारे तं चेव।

धूप प्रक्षेप करने के पश्चात् जहाँ दक्षिणी प्रेक्षागृहमण्डप का पश्चिम दिशावर्ती द्वार था, उत्तर दिशा का द्वार था, पूर्व दिशा का द्वार था, और दक्षिण दिशा का द्वार था, इन सब द्वारों पर भी पूर्ववत् मयूरपिच्छी से प्रमार्जन किया इत्यादि वर्णन यहाँ कर लेना चाहिये।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयथूभे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता० थूभं, मणिपेढियं च दिव्वाए दगधाराए अब्भु० सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारु० आसत्तो०-जाव-धूवं दलेइ, दलित्ता जेणेव पच्चत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा० तं चेव।

तत्पश्चात् जहाँ दक्षिण दिशा का चैत्य स्तूप था, वहाँ आया, वहाँ आकर स्तूप मणिपीठिका को दिव्य जलधारा से अभिसिंचित किया, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूप प्रक्षेप किया, धूप प्रक्षेप करके पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं—यावत्—धूप दी, धूपदान करके जहाँ पश्चिम दिशा की मणिपीठिका थी, जहाँ पश्चिम दिशा में स्थित जिनप्रतिमा थी, वहाँ पूर्ववत् जलसिंचन से लेकर धूप प्रक्षेप तक सर्व कार्य किये।

जेणेव उत्तरिल्ला मणिपेढिया जेणेव उत्तरिल्लाजिणपडिमा तं चेव सव्वं। जेणेव पुरत्थिमिल्ला मणिपेढिया जेणेव पुरत्थिमिल्ला जिणपडिमा तेणेव उवागच्छइ० तं चेव। दाहिणिल्ला मणिपेढिया दाहिणिल्ला जिणपडिमा० तं चेव।

जहाँ उत्तर दिशा की मणिपीठिका थी, जहाँ उत्तर दिशा स्थित जिनप्रतिमा थी, वहाँ भी पूर्ववत् सभी कार्य किये। जहाँ पूर्व-दिशावर्ती मणिपीठिका थी और उस मणिपीठिका पर स्थित पूर्वदिशावर्ती जिनप्रतिमा थी, वहाँ आया और वहाँ आकर पहले की तरह ही सर्व कार्य किया। इसी प्रकार से दक्षिण दिशा की मणिपीठिका और दक्षिणवर्ती जिनप्रतिमा थी, वहाँ भी पहले की तरह जलसिंचन से लेकर धूप प्रक्षेप तक सर्व कार्य किये।

जेणेव दाहिणिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छइ० तं चेव।

इसके पश्चात् जहाँ दक्षिण दिशावर्ती चैत्यवृक्ष था, वहाँ आया, वहाँ भी पूर्ववत् जलसिंचन आदि सर्व कार्य किये।

जेणेव महिंदज्झए जेणेव दाहिणिल्ला नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता तोरणे य तिसोवाणपडिरूवए य सालभंजियाओ य वालरूवए य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए अब्भु० सरसेणं गोसीसचंदणेणं० पुप्फारुहणं० आसत्तोसत्त० धूवं दलयइ, दलइत्ता सिद्धाययणं अणुपयाहिणीकरेमाणे जेणेव उत्तरिल्ला णंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छति० तं चेव।

जहाँ महेन्द्रध्वज था, जहाँ दक्षिण दिशा की नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया, आकर मोरपीछी को उठाया, उठाकर तोरण, त्रिसोपानपंक्ति, पुतलियों, व्यालरूपों को मोरपीछी से प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा से सींचा, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी गोल मालायें लटकाईं, धूपदान किया, धूपदान करके सिद्धायतन की अनुप्रदक्षिणा करके जहाँ उत्तर दिशा स्थित नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया, वहाँ आकर की पूर्ववत् जल अभिसिंचन आदि पूर्ववत् सब कार्य किये।

जेणेव उत्तरिल्ले चेइयरुक्खे तेणेव उवागच्छति०। जेणेव उत्तरिल्ले चेइयथूभे० तहेव।

इसके बाद जहाँ उत्तर दिशावर्ती चैत्यवृक्ष था, वहाँ आया। वहाँ भी दक्षिणदिशावर्ती चैत्यस्तूप की तरह सर्व कार्य किये।

जेणेव पच्चत्थिमिल्ला पेढिया०। जेणेव पच्चत्थिमिल्ला जिणपडिमा० तं चेव। उत्तरिल्ले पेच्छाघरमंडवे तेणेव उवागच्छति। जा चेव दाहिणिल्लवत्तव्वया सा चेव सव्वा पुरत्थिमिल्ले दारे। दाहिणिल्ला खंभपंती० तं चेव सव्वं।

जहाँ पश्चिम दिशावर्ती मणिपीठिका थी, जहाँ पश्चिम दिशा मे स्थित जिनप्रतिमा थी, वहाँ भी पूर्ववत् कार्यों को किया। फिर उत्तर दिशा के प्रेक्षागृहमण्डप में आया। दक्षिण दिशावर्ती प्रेक्षागृहमण्डप की वक्तव्यता के अनुसार सभी वर्णन यहाँ कर लेना चाहिये। इसी प्रकार पूर्व दिशावर्ती द्वार के लिए भी समझना चाहिये। दक्षिणी स्तम्भपंक्ति के लिये भी पूर्ववत् वर्णन जानना चाहिये। इसके बाद वह—

जेणेव उत्तरिल्ले मुहमंडवे जेणेव उत्तरिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए० तं चेव सव्वं। पच्चत्थिमिल्ले दारे तेणेव०। उत्तरिल्ले दारे दाहिणिल्ला खंभपंती० सेसं तं चेव सव्वं।

जहाँ उत्तरदिशा का मुखमण्डप और उसमें जहाँ उस उत्तर दिशा के मुखमण्डप का बहुमध्य देश भाग था, वहाँ आया, वहाँ आकर पूर्ववत् अक्षपाटक आदि का प्रमार्जन आदि सर्व कार्य किये। इसी प्रकार से पश्चिमी द्वार पर आकर भी प्रमार्जनादि कार्य किये। तत्पश्चात् उत्तरी द्वार और उसकी दक्षिण दिशा में स्थित स्तम्भपंक्ति के पास आया, वहाँ भी पूर्ववत् स्तम्भ, पुतलियों आदि की प्रमार्जना से लेकर धूपदान पर्यंत के सर्व कार्य किये।

जेणेव सिद्धायतणस्स उत्तरिल्ले दारे० तं चेव। जेणेव सिद्धायतणस्स पुरत्थिमिल्ले दारे तेणेव उवागच्छइ० तं चेव।

इसके बाद सिद्धायतन के उत्तरी द्वार पर आया। यहाँ भी प्रमार्जन आदि से लेकर धूप प्रक्षेप पर्यन्त के सर्व कार्य किये। फिर सिद्धायतन के पूर्वी द्वार पर आया, वहाँ भी पूर्ववत् सर्व कार्य किये।

जेणेव पुरत्थिमिल्ले मुहमंडवे जेणेव पुरत्थिमिल्लस्स मुहमंडवस्स बहुमज्झदेसभाए तेणेव उवागच्छइ० तं चेव। पुरत्थि-

इसके बाद जहाँ पूर्व दिशा का मुखमण्डप था और उस मुखमण्डप का अतिमध्य देश भाग था, वहाँ आया, और आकर

मिल्लस्स मुहमंडवस्स दाहिणिल्ले दारे पच्चत्थिमिल्ला खंभपंती उत्तरिल्ले दारे० तं चेव । पुरत्थिमिल्ले दारे० तं चेव ।

अक्षपाट आदि की प्रमार्जना करके धूपक्षेप तक के सर्व कार्य किये । इसके बाद जहाँ उस पूर्व दिशा के मुखमण्डप का दक्षिणी द्वार था और पश्चिमी दिशा की स्तम्भ पंक्ति थी वहाँ आया, फिर उत्तर दिशा के द्वार पर आया और पहले की तरह इन स्थानों पर स्तम्भों, पुतलियों आदि का प्रमार्जन किया आदि धूपदान तक के सभी कार्य किये । इसी प्रकार से पूर्व दिशा के द्वार पर आकर भी पूर्ववत् सर्व कार्य किये ।

जेणेव पुरत्थिमिल्ले पेच्छाघरमंडवे० । एवं थूभे जिणपडिमाओ चेइयरुक्खा महिंदज्झया णंदा पुक्खरिणी० तं चेव-जाव-धूवं दलयइ० ।

तदनन्तर पूर्व दिशा के प्रेक्षागृहमण्डप में आया और वहाँ आकर अक्षपाटक आदि का प्रमार्जन किया, धूप प्रक्षेप किया आदि, फिर क्रमशः इसी प्रकार से स्तूप की, जिनप्रतिमाओं की, चैत्यवृक्ष की, महेन्द्रध्वज की, नन्दापुष्करिणी की, त्रिसोपानपंक्ति आदि की प्रमार्जना करने से लेकर धूपक्षेप तक के सर्व कार्य किये ।

जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव माणवए चेइयखंभे जेणेव वइरामए गोलवट्टसमुग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए पमज्जइ, पमज्जित्ता वइरामए गोलवट्टसमुग्गए विहाडेइ, विहाडेत्ता जिणसकहाओ लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहि य मल्लेहि य अच्चेइ, अच्चइत्ता धूवं दलयइ, दलइत्ता जिणसकहाओ वइरामएसु गोलवट्टसमुग्गएसु पडिनिक्खिवइ, पडिनिक्खिवित्ता माणवगं चेइयखंभं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए० सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं-जाव-धूवं दलयइ, दलइत्ता—

इसके बाद जहाँ सुधर्मासभा थी, वहाँ आया और आकर पूर्वदिशावर्ती द्वार से उस सुधर्मा सभा में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ माणवक चैत्य स्तम्भ था और उस स्तम्भ में जहाँ वज्रमय गोल समुद्गक (डिब्बे) रखे थे, वहाँ आया, वहाँ आकर मोरपीछी उठाई और उठाकर उस पीछी से उन वज्रमय गोल समुद्गकों को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके उन वज्रमय गोल समुद्गकों को खोला, खोलकर उनमें रखी हुई जिन अस्थियों को लोमहस्तक से प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके सुगंधित गंधोदक से उनका प्रक्षालन किया, प्रक्षालन करके सर्वोत्तम, श्रेष्ठ गंध और पुष्पों एवं मालाओं से अर्चना की, धूपक्षेप किया और धूपक्षेप करने के पश्चात् उन जिनअस्थियों को पुनः उन्हीं वज्रमय गोल समुद्गकों में बन्द करके रख दिया, रखकर मोरपीछी से माणवक चैत्यस्तम्भ को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्यजलधारा से सिंचित किया, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपदान किया, धूपदान करके पुष्प चढ़ाये—यावत्—धूपक्षेप किया । धूपक्षेप करने के पश्चात्—

जेणेव सीहासणे० तं चेव । जेणेव देवसयणिज्जे० तं चेव । जेणेव खुड्डागमहिंदज्झए० तं चेव ।

जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया वहाँ आकर प्रमार्जन से लेकर धूपक्षेप तक के सर्व कार्य किये । इसी प्रकार से देवशैया के पास आकर भी प्रमार्जना से लेकर धूपदान पर्यन्त के सर्व कार्य किये । इसके बाद क्षुद्र महेन्द्रध्वज के पास आया और पहले की तरह प्रमार्जना से लेकर धूपदान तक के सर्व कार्य किये ।

जेणेव पहरणकोसे चोप्पालए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता पहरणकोसं चोप्पालं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए० सरसेणं गोसीसचंदणेणं चच्चए दलयइ, दलइत्ता पुप्फारुहणं० आसत्तोसत्त० धूवं दलयइ, दलइत्ता—

इसके बाद चोपाल नामक अपने प्रहरण कोश—आयुधगृह में आया, आकर लोमहस्तक को उठाया, उठाकर उस लोमहस्तक (मोरपीछी) से प्रहरण चोपाल कोश को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा से प्रक्षालन किया, सरसगोशीर्ष चन्दन से चर्चित किया, धूपदान किया, धूप देकर पुष्प चढ़ाये, लम्बी-लम्बी मालायें लटकायी, धूप प्रक्षेप किया । धूप प्रक्षेप के पश्चात्—

जेणेव सभाए सुहम्माए बहुमज्झदेसभाए जेणेव मणिपेढिया जेणेव देवसयणिज्जे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता देवसयणिज्जं च मणिपेढियं च लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता-जाव-धूवं दलयइ, दलइत्ता जेणेव उववाय-सभाए दाहिणिल्ले दारे० तहेव अभिसेयसभासरिसं-जाव-पुरत्थि-मिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य० तहेव।

जहाँ सभा सुधर्मा का अतिमध्य भाग था, उसमें जहाँ मणि-पीठिका थी, देवशैया थी, वहाँ आया और आकर मोरपीछी उठाई, उठाकर देवशैया और मणिपीठिका को प्रमार्जित किया —यावत्—धूपक्षेप किया, धूपक्षेप करने के पश्चात् जहाँ उपपातसभा का दक्षिण दिशावर्ती द्वार था, वहाँ आया, वहाँ आकर अभिषेक सभा के समान पूर्ववत् पूर्व दिशा की नन्दापुष्क-रिणी तक प्रमार्जनादि सर्व कार्य किये। इसके बाद ह्रद पर आया और आकर तोरण, त्रिसोपान, काष्ठपुतलियों और व्यालरूपों आदि की प्रमार्जना से लेकर धूपप्रक्षेप पर्यन्त सर्व कार्य किये।

जेणेव अभिसेयसभा तेणेव उवागच्छइ० तहेव सीहासणं च मणिपेढियं च० सेसं तहेव आययणसरिसं-जाव-पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी,—

इसके बाद जहाँ अभिषेक सभा थी, वहाँ आया, वहाँ पर भी पहले के समान सिंहासन, मणिपीठिका को मोरपीछी से प्रमार्जित किया, आदि धूप प्रक्षेप पर्यन्त सर्व कार्य किये। तद-नन्तर सिद्धायतन के समान पूर्व दिशावर्ती नन्दापुष्करिणी पर्यन्त धूपक्षेप आदि तक के सर्व कार्य सम्पन्न किये।

जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ० जहा अभिसेयसभा तहेव सव्वं।

इसके बाद अलंकार सभा में आया और अभिषेक सभा की वक्तव्यता के अनुरूप वहाँ धूपदान तक के सर्व कार्य किये।

जेणेव ववसायसभा तेणेव उवागच्छइ० तहेव लोमहत्थगं परामुसति, परामुसित्ता पोत्थयरयणं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दिव्वाए दगधाराए० अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं य मल्लेहिं य अच्चेति० मणिपेढियं सीहासणं च० सेसं तं चेव। पुरत्थिमिल्ला णंदा पुक्खरिणी जेणेव हरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तोरणे य तिसोवाणे य सालभंजियाओ य वालरूवए य० तहेव।

तत्पश्चात् जहाँ व्यवसाय सभा थी, वहाँ आया और वहाँ मोरपीछी को उठाया, उठाकर उस मोरपीछी से पुस्तकरत्न को प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके दिव्य जलधारा को छिड़का और सर्वोत्तम, श्रेष्ठगंध, मालाओं आदि से अर्चना की, इसके बाद मणिपीठिका की, सिंहासन की प्रमार्जना से लेकर धूप प्रक्षेप पर्यन्त सर्व कार्य किये। तदनन्तर जहाँ पूर्व दिशावर्ती नन्दापुष्क-रिणी थी, जहाँ ह्रद था, वहाँ आया और आकर तोरण, त्रिसोपान-पंक्ति काष्ठपुतलियों और व्यालरूपों की प्रमार्जनाआदि धूपक्षेपण पर्यन्त सर्व कार्य सम्पन्न किये।

जेणेव बलिपीढं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलि-विसज्जणं करेति, करेत्ता आभिओगिए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

इसके बाद जहाँ बलिपीठ थी, वहाँ आया, वहाँ आकर बलिविसर्जन किया और बलिविसर्जन करके आभियोगिक देवों को बुलाया और आभियोगिक देवों को बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्केसु चच्चरेसु चउमुहेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणरा-ईसु काणणेसु वणसंडेसु अच्चणियं करेह, अच्चणियं करेत्ता एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।"

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और शीघ्रातिशीघ्र सूर्याभ-विमान के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राज-मार्गों, प्राकारों, अट्टालिकाओं, चारिकाओं, द्वारों, गोपुरों, तोरणों, आरामों, उद्यानों, वनों, वनराजियों, काननों, वनखण्डों में जा जाकर अर्चनिका करो और अर्चनिका करके शीघ्र ही मेरी यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो।'

तए णं ते आभिओगिया देवा सूरियाभेणं देवेणं एवं वुत्ता समाणा-जाव-पडिसुणेत्ता सूरियाभे विमाणे सिंघाडएसु तिएसु चउक्केसु चच्चरेसु चउमुहेसु महापहेसु पागारेसु अट्टालएसु चरियासु

तदनन्तर उन आभियोगिक देवों ने सूर्याभदेव की इस आज्ञा को सुनकर —यावत्—स्वीकार करके सूर्याभविमान के शृंगाटकों त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, प्राकारों, अट्टा-

दारेसु गोपुरेसु तोरणेसु आरामेसु उज्जाणेसु वणेसु वणराईसु काणणेसु वणसंडेसु अच्चणियं करेंति, अच्चणियं करेत्ता जेणेव सूरियाभे देवे-जाव-पच्चप्पिणंति ।

लिकाओं, चरिकाओं, द्वारों, गोपुरों, तोरणों, आरामों, उद्यानों, वनों, वनराजियों, काननों, वनखण्डों की अर्चनिका की, और अर्चनिका करके जहाँ सूर्याभदेव था, वहाँ आये, आकर—यावत्—आज्ञा वापस लौटाई—कार्य हो जाने की सूचना दी ।

तए णं से सूरियाभे देवे जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नंदापुक्खरिणी पुरत्थिमिल्लेणं तिसोवाण-पडिरूवएणं पच्चोरुहति, पच्चोरुहित्ता हत्थपाए पक्खालेति, पक्खालेत्ता णंदाओ पुक्खरिणीओ पच्चुत्तरइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् वह सूर्याभदेव जहाँ नन्दापुष्करिणी थी, वहाँ आया और आकर पूर्व दिशावर्ती त्रिसोपानों से नन्दापुष्करिणी में उतरा, उतरकर हाथ पैरों को धोया, हाथ पैर धोकर नन्दापुष्करिणी से बाहर निकला, निकलकर सुधर्मासभा की ओर चलने के लिये उद्यत हुआ ।

तए णं से सूरियाभे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं-जाव-सोलसहिं आयरक्खदेवसाहस्सीहिं अन्नेहि य बहूहिं सूरियाभविमाण-वासीहिं वेमाणिएहिं देवेहि य देवीहि य सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-नाइयरवेणं जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सभं सुहम्मं पुरत्थिमिल्लेणं दारेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव सीहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे सन्निसण्णे ।

इसके बाद वह सूर्याभदेव चार सहस्र सामानिक देवों—यावत्—सोलह सहस्र आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे भी बहुत से सूर्याभविमानवासी वैमानिक देव एवं देवियों से परिवेष्टित होता हुआ, सर्व ऋद्धि—यावत्—तुमुलवाद्य ध्वनिपूर्वक जहाँ सुधर्मासभा थी, वहाँ आया, वहाँ आकर सभा सुधर्मा में पूर्व दिशावर्ती द्वार से प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और पूर्वदिशा की ओर मुख करके उस श्रेष्ठ सिंहासन पर बैठ गया ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स अवरुत्तरेणं उत्तरपुरत्थिमेणं दिसिभाएणं चत्तारि सामाणियसाहस्सीओ चउसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के पश्चिमोत्तर और उत्तर-पूर्व दिशा में स्थापित चार हजार भद्रासनों पर चार हजार सामानिक देव बैठे ।

तए णं सूरियाभस्स देवस्स पुरत्थिमिल्लेणं चत्तारि अग्गमहिसीओ चउसु भद्दासणेसु निसीयंति ।

उसके बाद उस सूर्याभदेव के पूर्वदिशा में चार भद्रासनों पर चार अग्रमहिषियाँ बैठीं ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपुरत्थिमेणं अब्भिंतरियपरिसाए अट्ठ देवसाहस्सीओ अट्ठसु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तत्पश्चात् उस सूर्याभदेव के दक्षिणपूर्व दिक्कोण में आभ्यन्तर परिषदा के आठ हजार देव आठ हजार भद्रासनों पर बैठे ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणेणं मज्झिमाए परिसाए दस देवसाहस्सीओ दससु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

इसके बाद उस सूर्याभदेव की दक्षिण दिशा में मध्यम परिषदा के दस हजार देव दस हजार भद्रासनों पर बैठे ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स दाहिणपच्चत्थिमेणं बाहिरियाए परिसाए बारस देवसाहस्सीओ बारससु भद्दासणसाहस्सीसु निसीयंति ।

तदनन्तर सूर्याभदेव की दक्षिण-पश्चिम दिशा में बाह्य परिषदा के बारह हजार देव बारह हजार भद्रासनों पर बैठे ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स पच्चत्थिमेणं सत्त अणियाहिवइणो सत्तहिं भद्दासणेहिं णिसीयंति ।

तदनन्तर उस सूर्याभदेव की पश्चिम दिशा में सात अनीकाधिपति सात भद्रासनों पर बैठे ।

तए णं तस्स सूरियाभस्स देवस्स चउद्दिसिं सोलस आयरक्ख-देवसाहस्सीओ सोलसहिं भद्दासणसाहस्सीहिं णिसीयंति, तं जहा—पुरत्थिमिल्लेणं चत्तारि साहस्सीओ०,

तदनन्तर उस सूर्याभदेव की चारों दिशाओं में सोलह हजार आत्मरक्षक देव सोलह हजार भद्रासनों पर बैठे । वे इस प्रकार बैठे कि पूर्वदिशा में चार हजार—यावत्—उत्तरदिशा में चार हजार ।

ते णं आयरक्खा सन्नद्धबद्धवम्मियकवया उप्पीलियसरासण-पट्टिया पिणद्धगेविज्जा आविद्धविमलवरचिंधपट्टा गहियाउहप्पहरणा

वे सभी आत्मरक्षक देव अंगरक्षा के लिए गाढ़ बन्धन से बद्ध कवच को शरीर पर धारणकर, बाण एवं प्रत्यन्चा से सन्नद्ध धनुष को हाथों में लेकर, वक्षस्थल की रक्षा के लिये गले में

तिणयाणि तिसंधियाइं वयरामयकोडीणि धणूइं पगिज्झ पडिया-इयकंडकलावा णीलपाणिणो पीयपाणिणो रत्तपाणिणो चाव-पाणिणो चारुपाणिणो चम्मपाणिणो दंडपाणिणो खग्गपाणिणो पासपाणिणो नीलपीयरत्तचावचारुचम्मदंडखग्गपासधरा आयरक्खा रक्खोवगा गुत्ता गुत्तपालिया जुत्ता जुत्तपालिया पत्तेयं पत्तेयं समयओ विणयओ किंकरभूया चिट्ठंति।

ग्रैवेयक नामक आभूषण विशेष को पहन कर, अपने-अपने विमल और श्रेष्ठ संकेतपट्टकों को धारण करके, आयुध और प्रहरणों से सज्जित, तीन स्थानों पर नमित और जुड़े हुए वज्रमय अग्र-भाग वाले धनुष, दण्ड और बाणों को लेकर नील, पीत, लाल प्रभावाले बाणों, धनुषों, चारु (शस्त्र विशेष), चमड़े के गोफन, दण्ड, तलवार, पाश (जाल) को लेकर एकाग्र मन से रक्षा करने पर तत्पर, स्वामी की आज्ञा का गोपन करने में सावधान, गुप्त आदेश का पालन करने वाले, सेवकोचित गुणों से युक्त, अपने-अपने कर्त्तव्य का पालन करने के लिये उद्यत होकर विनय-पूर्वक अपनी अपनी आचार मर्यादानुसार किंकर—सेवक जैसे होकर बैठे।

सूरियाभदेव—तस्सामाणियदेवट्ठिइपरूवणं—

सूर्याभदेव और उसके सामानिक देवों की स्थिति का प्ररूपण—

२८. सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महिड्ढिए महज्जुइए महब्बले महायसे महासोक्खे महाणुभागे सूरियाभे देवे, अहो णं भंते ! सूरियाभे देवे महिड्ढिए-जाव-महाणु-भागे।

२८. प्र.—'हे भदन्त ! सूर्याभदेव की भवस्थिति कितने काल की बताई जाती है ?

उ.—'हे गौतम ! सूर्याभदेव की चार पल्योपम की स्थिति बताई है।

प्र.—'हे भगवन् ! सूर्याभदेव के सामानिक परिषदोपगत देवों की स्थिति कितने काल की बताई है ?

उ.—'हे गौतम ! उनकी चार पल्योपम की स्थिति बताई है।

यह सूर्याभदेव महाऋद्धि, महाद्युति, महाबल, महायश, महासौख्य और महाप्रभाव वाला है।'

भगवान के इस कथन को सुनकर गौतम प्रभु ने आश्चर्ययुक्त होकर कहा—'अहो भगवन् ! सूर्याभदेव ऐसी महान ऋद्धि—यावत्—महाप्रभावयुक्त है।'

पएसिराय-दढपतिण्णचरिय—सूरियाभदेवस्स पुव्वभव-अण-तरभवपरूवणं। पएसिराय-सूरियकंतादेवी-सूरियकंत-कुमार-चित्तसारहि-नामनिरूवणं—

प्रदेशी राजा—दृढप्रतिज्ञचरित्र—सूर्याभदेव का पूर्वभव—अनन्तर भव प्ररूपण। प्रदेशी राजा, सूर्यकान्ता देवी, सूर्यकान्तकुमार और चित्तसारथी—नाम निरूपण—

२९. "सूरियाभेणं भन्ते ! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी सा दिव्वा देवजुई से दिव्वे देवाणुभावे किण्णा लद्धे किण्णा पत्ते किण्णा अभिसम-न्नागए ? पुव्वभवे के आसी ? किंनामए वा, को वा गोत्तेणं ? कय-रंसि वा गामंसि वा-जाव-संनिवेसंसि वा ? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा किच्चा किं वा समायरित्ता ? कस्स वा तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अन्तिए एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं

२९. गौतमस्वामी ने भगवान से पुनः पूछा—

प्र.—'हे भगवन् ! सूर्याभदेव को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव कैसे मिला है ? उसने कैसे प्राप्त किया है ? किस तरह से अधिगत किया है ? वह सूर्याभदेव पूर्वभव में कौन था ? उसका नाम क्या था ? और क्या गोत्र था ? किस ग्राम अथवा—यावत्—संनिवेश का निवासी था ? इसने ऐसा क्या दान में दिया, ऐसा क्या खाया और ऐसा क्या कार्य किया, कौनसा आचार पाला ? किस तथारूप श्रमण अथवा माहण से ऐसा कौनसा धार्मिक आर्य सुवचन सुना और हृदय में

सोच्चा निसम्म जं णं सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी-जाव-देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमन्नागए ?" ।

अवधारित किया कि जिससे उस सूर्याभदेव ने वह दिव्य देवर्द्धि —यावत्—दिव्य देवानुभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत किया है ?

"गोयमा" इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं आमन्तेत्ता एवं वयासी—

'हे गौतम इस प्रकार सम्बोधन कर भगवान महावीर ने कहा—

"एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं, तेणं समएणं, इहेव जम्बुद्दीवे दीवे, भारहे वासे, केइयअद्धे नामं जणवए होत्था, रिद्ध-त्थिमियसमिद्धे ।

उ.—हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में केकयार्ध नामक जनपद था, जो भवनादि वैभव से युक्त, स्तिमित (स्व-पर शत्रुभय से मुक्त) और धन धान्यादि की समृद्धि से परिपूर्ण था ।

सव्वोउयफलसमिद्धे रम्मे नंदणवण-प्पगासे पासाईए-जाव-पडिरूवे ।

सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, रमणीय, नन्दनवन के समान मनोरम प्रासादिक—यावत्—प्रतिरूप था ।

तत्थ णं केइयअद्धे जणवए सेयविया नामं नयरी होत्था, रिद्ध-त्थिमिय-समिद्धा-जाव-पडिरूवा ।

उस केकय-अर्ध जनपद में श्वेताम्बिका—सेयविया नाम की नगरी थी, वह नगरी भी ऋद्धि संपन्न, स्तिमित समृद्धिशाली—यावत्—प्रतिरूप थी ।

तीसे णं सेयवियाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए एत्थ णं मिगवणे नामं उज्जाणे होत्था—रम्मे, नन्दणवण-प्पगासे, सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे, सुभ-सुरभि-सीयलाए छायाए सव्वओ चेव समणुबद्धे, पासादीए-जाव-पडिरूवे ।

उस सेयविया नगरी के बाहर ईशानकोण में मृगवन नाम का उद्यान था । यह उद्यान रमणीय, नन्दनवन के समान शोभा सम्पन्न, सर्व ऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध, शुभ, सुरभिगंध, शीतल छाया से सभी चारों दिशाओं में समनुबद्ध—व्याप्त, प्रासादिक —यावत्—प्रतिरूप—असाधारण मनोहर था ।

तत्थ णं सेयवियाए नयरीए पएसी नामं राया होत्था, महया हिमवन्त-जाव-विहरइ, अधम्मिए, अधम्मिट्ठे, अधम्म-क्खाई, अधम्माणुए, अधम्म-पलोई, अधम्म-पजणणे, अधम्म-सील-समुदायारे, अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे, हण-छिन्द-भिन्द-पवत्तए, पावे, चण्डे, रुद्दे, खुद्दे लोहिय-पाणी, साहसिए, उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-साई-संपओग-बहुले, निस्सीले, निव्वए, निग्गुणे, निम्मेरे, निप्पच्चक्खाण-पोसहोववासे, बहूणं दुपय-चउप्पय-मियपसु-पक्खि-सिरीसिवाणं घायाए, वहाए, उच्छेयणाए अधम्म-केऊ समुट्ठिए,—

उस सेयविया नगरी में प्रदेशी नामक राजा राज्य करता था । वह राजा महाहिमवन्त (पर्वत सदृश)—यावत्—प्रभावशाली था, किन्तु वह अधार्मिक; अधर्मिष्ट—अधर्मप्रेमी, अधर्म का कथन करने वाला, अधर्म का अनुसरण करने वाला, सर्वत्र अधर्म का अवलोकन करने वाला, अधर्म प्रजनक, अधर्ममय स्वभाव और आचार वाला और अधर्म से आजीविका अर्जित करने वाला था, तथा सदैव मारो, छेदन करो; भेदन करो आदि आज्ञाओं का प्रवर्तक था, साक्षात् पाप का अवतार था, प्रकृति से प्रचंड क्रोधी-रौद्र और क्षुद्र अधम था, उसके हाथ सदा रक्त से रंगे रहते थे, साहसिक (बिना विचारे प्रवृत्ति करने वाला) था, उत्कंचक—धूर्त बदमाशों को उकसाने वाला था, वंचक—दूसरों को ठगने वाला, मायावि, निकृति—बकवृत्तिवत् प्रवृत्ति करने वाला कूट-कपट करने में चतुर और अनेक प्रकार के झगड़ा फसाद रचकर दूसरों को दुःख देने वाला था तथा शीलरहित, व्रतरहित, क्षमादि गुणों से रहित, मर्यादा रहित था, एवं उसके मन में प्रत्याख्यान, पोषध, उपवास आदि करने का विचार ही नहीं आता था, सदैव द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृप—सांप आदि, इन सबकी हत्या करने में, इनका वध करने में, उच्छेदन—विनाश करने में साक्षात् अधर्मरूप केतुग्रह के समान था ।

गुरुयं नो अब्भुट्ठेइ, नो विणयं पउञ्जइ, समणमाहणाणं…… नो विणयं पउञ्जइ, समस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं करभरवित्ति पवत्तेइ।

गुरुजनों (माता-पिता आदि) को देखकर भी उनका आदर करने के लिये आसन से खड़ा नहीं होता था, उठता नहीं था, उनकी विनय नहीं करता था, श्रमण और माहणों की विनय नहीं करता था और जनपद के प्रजाजनों से राज-कर लेकर भी उनका सम्यक्प्रकार से पालन और रक्षण नहीं करता था।

तस्स णं पएसिस्स रन्नो सूरियकन्ता नामं देवी होत्था—सुकुमाल-पाणि-पाया धारिणी-वण्णओ, पएसिणा रन्ना सद्धिं अणुरत्ता, अविरत्ता, इट्ठे सद्दे, रूवे-जाव-विहरइ।

उस प्रदेशी राजा की सूर्यकान्ता नाम की रानी थी। वह रानी हाथ-पैरों आदि अंगोपांगों से सुकुमाल थी इत्यादि धारिणी-रानी के समान वर्णन करना, वह प्रदेशी राजा के प्रति अनुरक्त; अतीव स्नेहशील थी, कभी भी उससे विरक्त—रुष्ट नहीं होती थी, और इष्ट-प्रिय शब्दरूप, मूलक आदि—यावत्—अनेक प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगती हुई विचरती थी।

तस्स णं पएसिस्स रन्नो जेट्ठे पुत्ते, सूरियकन्ताए देवीए अत्तए सूरियकन्ते नामं कुमारे होत्था—सुकुमाल-पाणिपाए-जाव-पडिरूवे।

उस प्रदेशी राजा का ज्येष्ठ पुत्र, सूर्यकान्ता रानी का अंगजात, सूर्यकान्त नामक राजकुमार था, जो सुकोमल हाथ-पैर वाला—यावत्—प्रतिरूप-अतीव मनोहर था।

से णं सूरियकन्ते कुमारे जुवराया वि होत्था, पएसिस्स रन्नो रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च पुरं च अन्तेउरं च जणवयं च सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ।

वह सूर्यकान्त कुमार युवराज भी था, वह प्रदेशी राजा के राज्य राष्ट्र, बल-सेना, वाहन-रथादि, कोश, कोठार (अन्न भण्डार), पुर, अन्तःपुर और जनपद की स्वयं देखभाल करता हुआ विचरण करता था।

तस्स णं पएसिस्स रन्नो जेट्ठे भाउय-वयंसए चित्ते नामं सारही होत्था, अड्ढे-जाव-बहु-जणस्स अपरिभूए, साम-दण्ड-भेय-उवप्पयाण-अत्थसत्थ-ईहा-मइ-विसारए, उप्पत्तियाए-जाव-पारिणामियाए-चउव्विहाए बुद्धीए उववेए, पएसिस्स रन्नो बहुसु कज्जेसु य-जाव-ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, मेढीपमाणं-जाव-रज्ज-धुरा-चिन्तए यावि होत्था।

उस प्रदेशी राजा के उम्र में बड़ा, ज्येष्ठ भाई के समान, चित्त नामक सारथी था, वह समृद्धिशाली था—यावत्—बहुत से लोगों के द्वारा भी पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था, साम, दण्ड, भेद, उपप्रदान, अर्थशास्त्र एवं विचार विमर्श प्रधान बुद्धि में विशारद—कुशल था। औत्पातिकी—यावत्—पारिणामिकी इन चार प्रकार की बुद्धियों से युक्त था और प्रदेशी राजा के द्वारा अपने बहुत से कार्यों में, कार्य में सफलता मिलने के उपायों में—यावत्—लोक व्यवहार में पूछने योग्य था, बारम्बार विशेष रूप से पूछने योग्य था, सबके लिये वह मेढी (खलिहान के केन्द्र में स्थित स्तम्भ, जिसके चारों ओर बैल घुमाकर धान्य कुचलते हैं) के समान था—प्रमाणरूप था—यावत्—राज्य की धुरा का संचालक एवं शुभचिंतक था।

पएसिरन्ना जियसत्तुरायसमीवे चित्तसारहिपेसणं—

प्रदेशी राजा द्वारा जितशत्रु राजा के समीप चित्तसारथी का प्रेषण—

३०. तेणं कालेणं, तेणं समएणं कुणाला नामं जणवए होत्था, रिद्ध-त्थिय-मिय-समिद्धे-जाव-पडिरूवे।

३०. उस काल और उस समय में कुणाल नामक जनपद था, वह जनपद देश वैभव-सम्पन्न, स्व-पर-चक्र (शत्रुओं) के भय से मुक्त और धन धान्यादि से समृद्ध था—यावत्—प्रतिरूप था।

तत्थ णं कुणालाए जणवए सावत्थी नामं नयरी होत्था, रिद्ध-त्थिय-मिय-समिद्धा-जाव-पडिरूवा।

उस कुणाल जनपद में श्रावस्ती नाम की नगरी थी, जो ऋद्ध, स्तिमित, समृद्ध थी यावत्—प्रतिरूप अतीव मनोहर थी।

तीसे णं सावत्थीए नयरीए बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसी-भाए कोट्ठए नामं चेईए होत्था, पोराणे-जाव-पडिरूवे।

उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिक्कोण में कोष्ठक नामक चैत्य था, वह चैत्य अत्यन्त प्राचीन—यावत्—प्रतिरूप था।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पएसिस्स रन्नो अन्तेवासी जियसत्तू नामं राया होत्था, महया हिमवन्त-जाव-विहरइ।

उस श्रावस्ती नगरी में प्रदेशी राजा का अन्तेवासी जैसा अर्थात् आज्ञापालक अधीनस्थ जितशत्रु नाम का राजा था, जो महाहिमवद् आदि पर्वतों के समान प्रख्यात था—यावत्—(सुख-पूर्वक) विचरता था।

तए णं से पएसी राया अन्नया कयाइ महत्थं महग्घं, महरिहं, विउलं, रायारिहं पाहुडं सज्जावेइ, सज्जावित्ता चित्तं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तदनन्तर किसी एक समय प्रदेशी राजा ने महार्थक—विशिष्ट प्रयोजन वाली, महर्घ—बहुमूल्य, महापुरुषों के योग्य, विपुल राजाओं को देने योग्य प्राभृत—भेंट, उपहार सजाया—तैयार किया। सजाकर चित्तसारथी को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"गच्छ णं चित्ता ! तुमं सावत्थिं नयरिं। जियसत्तुस्स रन्नो इमं महत्थं-जाव-पाहुडं उवणेहि। जाइं तत्थ राय-कज्जाणि य राय-किच्चाणि य राय-नीईओ य राय-ववहारा य ताइं जियसत्तुणा सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे विहराहि" त्ति कट्टु विसज्जिए।

'हे चित्त ! तुम श्रावस्ती नगरी जाओ और जितशत्रु राजा को यह महार्थक—यावत्—प्राभृत भेंट दे आओ। तथा जितशत्रु राजा के साथ रहकर वहाँ की राज्य व्यवस्था, राजा की चर्या, राजनीति और राजव्यवहार को स्वयं देखते, अनुभव करते हुए वहाँ समय बिताओ।' ऐसा कहकर उसे विदा किया।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना एवं वुत्ते समाणे, हट्ठ-जाव-पडिसुणेत्ता, तं महत्थं-जाव-पाहुडं गेण्हइ, गिण्हित्ता पएसिस्स रन्नो-जाव-पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सेयवियं नयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं-जाव-पाहुडं ठवेइ, ठवित्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

तदनन्तर वह चित्त सारथी प्रदेशी राजा की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित हुआ—यावत्—स्वीकार करके उस महार्थक—यावत्—भेंट को लिया और भेंट को लेकर प्रदेशी राजा के पास से निकला, निकलकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ जहाँ अपना घर था, वहाँ आया आकर उस महार्थक—यावत्—भेंट को एक स्थान पर रखा, रखकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सच्छत्तं-जाव-चाउग्घण्टं आस-रहं जुत्तामेव उवट्ठवेह-जाव-पच्चप्पिणह"।

'देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही सछत्र अर्थात् जिसमें छत्र लगा हो ऐसा—यावत्—चार घण्टों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो—यावत्—आज्ञा वापस लौटाओ।'

तए णं ते कोडुम्बिय-पुरिसा तहेव पडिसुणित्ता खिप्पामेव सच्छत्तं-जाव-जुद्ध-सज्जं चाउग्घण्टं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठवेन्ति, तमाणत्तियं पच्चप्पिणन्ति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने चित्तसारथी की उस प्रकार की आज्ञा को स्वीकार करके शीघ्र ही सछत्र—यावत्—युद्ध के लिये सजाये गये चातुर्घण्टिक अश्वरथ को जोतकर उपस्थित कर दिया और उस आज्ञा को वापिस लौटाया अर्थात् रथ लाने की सूचना दी।

तए णं से चित्ते सारही कोडुम्बिय-पुरिसाणं अन्तिए एय-मट्ठं-जाव-हियए ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते संनद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवए, उप्पीलिय-सरासण-पट्टिए, पिणद्ध-गेवेज्जे, बद्ध-आविद्ध-विमल-वर-चिंध-पट्टे, गहियाउह-पहरणे, तं महत्थं-जाव-पाहुडं गेण्हइ,

इसके बाद कौटुम्बिक पुरुषों की इस अर्थ—बात को सुनकर—यावत्—विकसित हृदय हो उस चित्त सारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त किया और फिर युद्ध के लिये सन्नद्ध जैसे होकर अच्छी तरह से शरीर पर कवच बाँधा, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाई, गले में ग्रैवेयक (हार) पहना और अपने श्रेष्ठ संकेत पट्टक को धारण किया,

गिण्हित्ता जेणेव चाउग्घंटे आसरहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं संनद्ध-जाव-गहियाउह-पहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे, सकोरिंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं धरिज्जमाणेणं, महया, भड-चडगर-रह-पहकर-विन्द-परिक्खित्ते। साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सेयवियं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुहेहिं वासेहिं, पायरासेहिं, नाइविकिट्ठेहिं अन्तरावासेहिं वसमाणे वसमाणे केइय-अद्धस्स जणवयस्स मज्झंमज्झेणं, जेणेव कुणाला जणवए, जेणेव सावत्थी नयरी, तेणेव उवागच्छइ,

आयुध और प्रहरण लिये, एवं उस महार्थक—यावत्—प्राभृत को ग्रहण किया, ग्रहण करके वह वहाँ आया जहाँ चार घण्टों वाला अश्वरथ खड़ा था, वहाँ आकर उस चतुर्घण्ट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर सन्नद्ध—यावत्—आयुध और प्रहरणों से सुसज्जित बहुत से पुरुषों से परिवृत्त हो, कोरंट पुष्प की मालाओं से विभूषित हो, छत्र को धारण कर, महान सुभटों और रथों के समूह को साथ लेकर अपने घर से निकला, निकलकर सेयविया नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर सुखपूर्वक रात्रि विश्राम करता हुआ प्रातः कलेवा करके और अतिदूर नहीं किन्तु पास-पास अन्तरावास—दिन में विश्राम करते हुए जगह-जगह ठहरते हुए केकय-अर्ध जनपद के बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ कुणाला जनपद था, उसमें जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ आया।

उवागच्छित्ता सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव जियसत्तुस्स रन्नो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तं महत्थं-जाव-पाहुडं गिण्हइ, गिण्हित्ता जेणेव अब्भन्तरिया उवट्ठाण-साला, जेणेव जियसत्तू राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जियसत्तुं रायं करयल-परिग्गहियं-जाव-कट्टु, जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता तं महत्थं-जाव-पाहुडं उवणेइ।

आकर, श्रावस्ती नगरी के मध्य भाग में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ जितशत्रु राजा का भवन था, जहाँ उस भवन की बाहरी उपस्थान-शाला—बैठक थी, वहाँ आया, वहाँ आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, खड़ा करके फिर रथ से नीचे उतरा, उतरकर उस महार्थक—यावत्—भेंट को लिया, लेकर जहाँ आभ्यन्तर उपस्थानशाला थी, उसमें जहाँ जितशत्रु राजा था, वहाँ आया और आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—अंजलि करके जय-विजय शब्दों से जितशत्रु राजा को बधाया और बधाकर उस महार्थक—यावत्—उपहार को भेंट किया।

तए णं से जियसत्तू राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं-जाव-पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता चित्तं सारहिं सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ, रायमग्गमोगाढं च से आवासं दलयइ।

तब उस जितशत्रु राजा ने चित्तसारथी द्वारा भेंट किये गये उस महार्थक—यावत्—प्राभृत—उपहार को स्वीकार किया, स्वीकार करके चित्तसारथी का सत्कार-सम्मान किया, और सत्कार-सम्मान करके विदा किया तथा विश्राम करने के लिये राजमार्ग के बीचों-बीच आवास स्थान दिया।

तए णं से चित्ते सारही विसज्जिए समाणे, जियसत्तुस्स रन्नो अन्तियाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला, जेणेव चाउग्घण्टे आस-रहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पडिनिक्खमित्ता चाउ-ग्घण्टं आस-रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता सावत्थिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं, जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे, कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते, सुद्ध-प्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए, अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरे, जिमिय-भुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे, पुव्वावरण्ह-काल-समयंसि गन्धव्वेहि य नाडगेहि य

तत्पश्चात् जितशत्रु द्वारा विदा किया गया वह चित्तसारथी जितशत्रु राजा के पास से निकला और जहाँ बाह्य उपस्थान-शाला थी, जहाँ चातुर्घण्ट अश्वरथ था, वहाँ आया, आकर उस चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से निकला, जहाँ राजमार्ग के मध्य में स्थित अपने ठहरने का आवास स्थान था, वहाँ आया, आकर घोड़ों को रोका, रोककर रथ को खड़ा किया, खड़ा करके रथ से नीचे उतरा, नीचे उतरकर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक—मंगल—प्रायश्चित किया और फिर शुद्ध और उचित मांगलिक वस्त्रों को पहना, अल्प किन्तु मूल्यवान आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया, भोजन आदि करने के बाद दिन के तीसरे प्रहर में गंधर्वों, नर्तकों और नाट्यकारों के संगीत, नृत्य और नाट्याभि-

उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे, उवगाइज्जमाणेउवगाइज्ज-माणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गन्धे पञ्चविहे माणुस्सए काम-भोएपच्चणुभवमाणे विहरइ।

सावत्थिनयरीए केसिकुमारसमणागमणं—

३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमार-समणे जाइ-संपन्ने, कुल-संपन्ने, बल-संपन्ने, रूव-संपन्ने, विणय-संपन्ने, नाण-संपन्ने, दंसण-संपन्ने, चरित्त-संपन्ने, लज्जा-संपन्ने, लाघव-संपन्ने, लज्जा-लाघव-संपन्ने, ओयंसी, तेयंसी, वच्चंसी, जसंसी, जिय-कोहे जिय-माणे जिय-माए, जिय-लोहे, जिय-निद्दे, जिइन्दिए, जिय-परीसहे, जीवियास-मरणभय-विप्पमुक्के, तव-प्पहाणे, गुण-प्पहाणे, करण-प्पहाणे, चरण-प्पहाणे, निग्गह-प्पहाणे, निच्छय-प्पहाणे, अज्जव-प्पहाणे, मद्दव-प्पहाणे, लाघव-प्पहाणे, खन्ति-प्पहाणे, गुत्ति-प्पहाणे, मुत्ति-प्पहाणे, विज्ज-प्पहाणे, मन्त-प्पहाणे, बम्भ-प्पहाणे, वेय-प्पहाणे, नय-प्पहाणे, नियम-प्पहाणे, सच्च-प्पहाणे, सोय-प्पहाणे, नाण-प्पहाणे, दंसण-प्पहाणे, चरित्त-प्पहाणे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउल-तेयलेस्से चउदस-पुव्वी, चउ-नाणोवगए, पञ्चहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं-सुहेणं विहरमाणे,—

नयों को सुनते-देखते हुए इष्ट-प्रिय शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध मूलक पाँच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए विचरण करने लगा।

श्रावस्ती नगरी में केशी कुमारश्रमण का आगमन—

३१. उस काल और उस समय में जातिसम्पन्न, कुल सम्पन्न, बलसम्पन्न, रूपसम्पन्न, विनयसम्पन्न, सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन, सम्यग्चारित्र से सम्पन्न, लज्जा सम्पन्न—पाप कार्यों के प्रति भीरु, लाघव सम्पन्न—द्रव्य से अल्प उपधि वाले और भाव से ऋद्धि, रस और सात रूप तीन गौरवों से रहित, लज्जा-लाघव सम्पन्न, ओजस्वी—मानसिक तेज से सम्पन्न, तेजस्वी—शारीरिक कांति से देदीप्यमान, वचस्वी—सार्थक वचन बोलने वाले, यशस्वी, क्रोध को जीतने वाले, मान को जीतने वाले, माया को जीतने वाले, लोभ को जीतने वाले, निद्राजयी, इन्द्रियजयी, परिषहजयी, जीवन की आकांक्षा और मरण के भय से विमुक्त, तपःप्रधान, गुणप्रधान, उत्कृष्ट संयम—गुण के धारक, करण-प्रधान—पिंडशुद्धि आदि करण सत्तरी में प्रधान, चरणप्रधान—महाव्रत आदि चरण सत्तरी में प्रधान, निग्रहप्रधान—मन और इन्द्रियों की अनाचार प्रवृत्ति को रोकने में सदैव सावधान, निश्चयप्रधान—तत्त्व का निश्चय करने में निपुण, आर्जवप्रधान, —माया का निग्रह करने वाले, मार्दवप्रधान—अभिमान रहित, लाघवप्रधान—क्रिया करने के कौशल में दक्ष, क्षमाप्रधान—क्रोध का निग्रह करने में प्रधान, गुप्तिप्रधान—मन, वचन-काया के संयमी, मुक्तिप्रधान—निर्लोभता के साकार रूप, विद्याप्रधान—देवता अधिष्ठित प्रज्ञप्ति आदि विद्याओं के ज्ञाता, मंत्रप्रधान—साधना से प्राप्त होने वाली विद्याओं के ज्ञाता, ब्रह्मचर्यप्रधान, वेदप्रधान—लौकिक लोकोत्तर आगमों में निष्णात, नयप्रधान—समस्त वचन अपेक्षाओं के मर्मज्ञ, नियमप्रधान—विविध अभि-ग्रहों को धारण करने में कुशल, सत्यप्रधान, शौचप्रधान—द्रव्य और भाव से ममत्वरहित, ज्ञानप्रधान, दर्शनप्रधान, चारित्रप्रधान, उदार, घोर—परिषहों, इन्द्रियों और कषायों आदि आन्तरिक शत्रुओं का निग्रह करने में कठोर, घोर गुणी—अप्रमत्त भाव से संयम गुण का पालन करने वाले, घोर तपस्वी—महान् तपस्वी, घोर ब्रह्मचर्यवासी—उत्कृष्ट ब्रह्मचर्य का पालन करने वाले, शरीर संस्कार के त्यागी, विपुल तेजोलेश्या को अपने शरीर में ही समाये रखने वाले, चौदह पूर्वों के ज्ञाता, मतिज्ञानादि—मनः पर्याय ज्ञान पर्यन्त चार ज्ञानों के धनी, पार्श्वापत्य (पार्श्वनाथ तीर्थंकर की शिष्य परम्परा के) केशी नामक कुमारश्रमण (कुमारावस्था में दीक्षित साधु, बालब्रह्मचारी श्रमण)—पाँच सौ अनगारों से परिवृत्त होकर, पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में विचरण करते हुए, सुखे सुखे विहार करते हुए,

जेणेव सावत्थी नयरी, जेणेव कोट्ठए चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सावत्थीए नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहा-पडिरूवं उग्गहं उग्गिण्हइ, उग्गिण्हित्ता संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, उसमें जहाँ कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पधारे और वहाँ पधारकर श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथोचित अवग्रह ग्रहण किया—योग्य स्थान की याचना की और फिर अवग्रह ग्रहण करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

विन्नयावुत्तंतस्स चित्तसारहिस्स केसिकुमारसमणवंदणट्ठा गमणं, धम्मसवणं, गिहत्थधम्मपडिवत्ती य—

३२. तए णं सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउमुह-महापह-पहेसु महया जण-सद्दे इ वा जण-वूहे इ वा जण-कलकले इ वा जण-बोले इ वा जण-उम्मी इ वा जण-उक्कलिया इ वा जण-संनिवाए इ वा-जाव-परिसा पज्जुवासइ।

विज्ञात वृत्तांत चित्तसारथी का केशी कुमारश्रमण वन्दनार्थ गमन, धर्मश्रवण और गृहस्थ धर्म प्रतिपत्ति—

३२. तब श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों में लोग आपस में चर्चा करने लगे, लोगों के झुण्ड एकत्रित होने लगे, लोगों के बोलने की चौखाट सुनाई पड़ने लगी, कोलाहल होने लगा, भीड़ के कारण लोग आपस में टकराने लगे, एक के बाद एक लोगों के टोले आते दिखने लगे, इधर उधर से आकर लोग एक स्थान पर इकट्ठे होने लगे—यावत्—परिषद् पर्युपासना करने लगे।

तए णं तस्स सारहिस्स तं महा-जण-सद्दं च जण-कलकलं च सुणेत्ता या पासित्ता य इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था।

तब लोगों की बातचीत और जन-कोलाहल सुनकर एवं जन-समूह को देखकर उस चित्तसारथी को इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ।

किं णं अज्ज सावत्थीए नयरीए इन्द-महे इ वा खन्द-महे इ वा रुद्द-महे इ वा मउन्द-महे इ वा सिवमहे इ वा वेसमण-महे इ वा नाग-महे इ वा भूय-महे इ वा जक्ख-महे इ वा थूम-महे इ वा चेइयमहे इ वा रुक्ख-महे इ वा गिरि-महे इ वा दरि-महे इ वा अगड-महे इ वा नई-महे इ वा सर-महे इ वा सागर-महे इ वा, जं णं इमे बहवे उग्गा, भोगा, राइन्ना, इक्खागा, खत्तिया, नाया, कोरव्वा-जाव-इब्भा, इब्भपुत्ता ण्हाया, जहोववाइए-जाव-अप्पेगइया हय-गया, अप्पेगइया गय-गया, रह-गया सिबिया-गया संदमाणिया-गया, अप्पेगइया, पाय-चार-विहारेणं महया महया वन्दावन्दएहिं निग्गच्छन्ति एवं संपेहेइ, संपेहित्ता कञ्चुइज्ज-पुरिसं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

आज क्या श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमह (इन्द्र निमित्तक उत्सव, इन्द्रमहोत्सव) अथवा स्कन्दमह अथवा रुद्रमह, मुकुन्दमह, शिवमह, वैश्रमण (कुबेर) मह, नागमह, भूतमह, यक्षमह, स्तूपमह, चैत्यमह, वृक्षमह, गिरिमह, दरि (गुफा) मह, कूपमह, नदीमह, सरमह अथवा सागरमह है, कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय, भोगवंशीय, इक्ष्वाकुवंशीय, राजन्यवंशीय, क्षत्रिय, ज्ञातवंशीय, कौरववंशीय—यावत्—इभ्य, इभ्यपुत्र आदि सभी स्नान करके इत्यादि शेष वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार जानना चाहिये—यावत्—उनमें से कितने ही घोड़ों पर सवार होकर, कितने ही हाथी पर बैठकर, कोई रथ में, कोई एक पालखी में, कोई एक स्यन्दमानिका में बैठकर और कितने ही अपने-अपने समुदाय बनाकर पैदल ही जा रहे हैं—ऐसा विचार किया और विचार करके कंचुकि पुरुष (द्वारपाल) को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार पूछा—

"किं णं देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नयरीए इन्द-महे इ वा-जाव-सागर-महे इ वा जेणं इमे बहवे उग्गा भोगा-जाव-निग्गच्छन्ति"?

'हे देवानुप्रिय ! आज क्या श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमहोत्सव—यावत्—सागरोत्सव है, कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय, भोगवंशीय—यावत्—निकलकर जा रहे हैं।'

तए णं से कंचुइज्जपुरिसे केसिस्स कुमार-समणस्स आगमण गहिय-विणिच्छए चित्तं सारहिं करयल-परिग्गहियं-जाव-वद्धावेत्ता एवं वयासी—

तब उस कंचुकि पुरुष ने केशी कुमारश्रमण के पदार्पण होने के निश्चित समाचार जानकर दोनों हाथ जोड़ कर—यावत्—बधाकर चित्त सारथी से इस प्रकार निवेदन किया—

"नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज सावत्थीए नयरीए इन्द-महे इ वा-जाव-सागर-महे इ वा, जेणं इमे बहवे जाव-वन्दावन्दएहिं निग्ग-

'हे देवानुप्रिय ! आज श्रावस्ती नगरी में इन्द्रमह—यावत् सागरमह आदि नहीं हैं, कि जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय—यावत्

च्छंति । एवं खलु भो देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमार-समणे जाइ-संपन्ने-जाव-दूइज्जमाणे इहमागए-जाव-विहरइ, तेणं अज्ज सावत्थीए नयरीए बहवे उग्गा-जाव-इब्भा, इब्भपुत्ता अप्पेगइया वंदणवत्तियाए-जाव-महया वंदावंदएहिं निग्गच्छंति" ।

—सभी लोग अपने-अपने समुदाय बनाकर निकल रहे हैं। परन्तु हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि आज जाति कुल आदि से सम्पन्न पार्श्वापत्य केशी नामक कुमारश्रमण—यावत्—एक गाँव से दूसरे गाँव में विहार करते हुए यहाँ आये हैं—यावत्—विचरण कर रहे हैं। इसी कारण आज श्रावस्ती नगरी के ये अनेक उग्रवंशीय—यावत्—इभ्य, इभ्यपुत्र आदि कितने ही वन्दना करने आदि के विचार से बड़े-बड़े समुदायों में अपने-अपने घरों से निकल रहे हैं।'

३३. तए णं से चित्ते सारही कंचुइज्ज-पुरिसस्स अन्तिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउ-ग्घण्टं आस-रहं जुत्तामेव उवट्ठवेह"-जाव-सच्छत्तं उवट्ठवेन्ति ।

तए णं से चित्ते सारही ण्हाए, सुद्ध-प्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए, अप्प-महग्घाभरणालंकिय-सरीरे, जेणेव चाउ-ग्घण्टे आस-रहे, तेणेव उवागच्छइ उवागच्छित्ता चाउ-ग्घण्टं आस-रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता सकोरिण्ट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, महया भडचडगरविन्दपरिक्खित्ते, सावत्थी-नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए उज्जाणे, जेणेव केसी कुमार-समणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसि-कुमार-समणस्स अदूरसामन्ते तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव केसी कुमार-समणे, तेणेव उवागच्छइ,

उवागच्छित्ता केसिं कुमार-समणं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करित्ता वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, नच्चासन्ने, नाइदूरे सुस्सूसमाणे, नमंसमाणे, अभिमुहे, पंजलिउडे विणएणं पज्जुवासइ ।

३३. तदनन्तर कंचुकि पुरुष से इस बात को सुनकर और हृदय में धारण कर उस चित्तसारथी ने हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होते हुए कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घण्टों वाले अश्वरथ को जोतकर उपस्थित करो'—यावत्—वे सछत्र अश्वरथ को जोतकर लाते हैं।

तब उस चित्तसारथी ने स्नान किया, शुद्ध एवं सभोचित मांगलिक वस्त्रों को पहना, बहुमूल्य अल्प-भार वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत किया और फिर जहाँ चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहाँ आया, वहाँ आकर उस चार घण्टों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर बहुत बड़े सुभटों के समुदाय से परिवेष्टित होता हुआ श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से निकला, निकलकर जहाँ कोष्ठक उद्यान था, उसमें जहाँ केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे, वहाँ पहुँचा।

वहाँ पहुँचकर केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर घोड़ों को रोका, घोड़ों को रोककर रथ को खड़ा किया, खड़ा करके रथ से नीचे उतरा, उतरकर जहाँ केशी कुमारश्रमण आसीन थे, वहाँ आया, और आकर तीन बार केशीकुमार श्रमण को आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके न अतिनिकट न अतिदूर किन्तु यथोचित स्थान पर धर्मोपदेश सुनने की इच्छा और नमस्कार करते हुए, सम्मुख बैठकर विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

३४. तए णं से केसी कुमार-समणे चित्तस्स सारहिस्स तीसे य महइ-महालियाए महच्च-परिसाए चाउ-ज्जामं धम्मं परिकहेइ । तं जहा—सव्वाओ पाणाइवायाओ वेरमणं, सव्वाओ मुसावायाओ वेरमणं, सव्वाओ अदिन्नादाणाओ वेरमणं, सव्वाओ बहिद्धादाणाओ वेरमणं ।

३४. तत्पश्चात् उन केशी कुमारश्रमण ने उस चित्तसारथी और उस अतिविशाल परिषदा को चार याम (जीवन पर्यन्त के लिये सर्वथा त्याग करना) वाले धर्म का कथन किया। उन चार यामों के नाम इस प्रकार हैं—१. समस्त प्राणातिपात (हिंसा) से विरमण, २. समस्त मृषावाद (असत्य) से विरत होना, समस्त अदत्तादान से विरत होना, ४. समस्त बहिद्धादान (मैथुन और परिग्रह) से विरत होना।

तए णं सा महइ-महालिया महच्चपरिसा केसिस्स कुमार-समणस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा निसम्म, जामेव दिसिं पाउब्भूया, तामेव दिसिं पडिगया।

तदनन्तर वह अतिविशाल परिषदा केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवणकर और हृदय में धारणकर जिस दिशा से आयी थी वापस उसी दिशा में लौट गई।

तए णं से चित्ते सारही केसिस्स कुमार-समणस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा, निसम्म हट्ठ-जाव-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता केसिं कुमार-समणं तिक्खुत्तो आयाहिणं, पयाहिणं करेइ, करित्ता वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

तदनन्तर वह चित्तसारथी केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवण-कर और हृदय में धारणकर हर्षित—यावत्—विकसित हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, खड़ा हुआ और खड़े होकर उसने केशी कुमारश्रमण की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गन्थं पावयणं-जाव-सच्चे णं एसमट्ठे जं णं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, एवं वयासी—

'हे भदन्त ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन में श्रद्धा है—यावत्—वह सत्य है, जैसा आप निरूपण—कथन करते हैं' ऐसा कहकर उसने वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"जहा णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए बहवे उग्गा, भोग-जाव-इब्भा, इब्भपुत्ता चिच्चा हिरण्णं, चिच्चा सुवण्णं, एवं धणं, धण्णं, बलं, वाहणं, कोसं, कोट्ठागारं, पुरं, अन्तेउरं, चिच्चा, विउलं धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-सन्त-सार-सावएज्जं, विच्छड्डइत्ता, विगोवइत्ता, दाणं दाइयाणं परिभाइत्ता, मुण्डा भवित्ता, अगाराओ अणगारियं पव्वयन्ति, नो खलु अहं ता संचाएमि चिच्चा हिरण्णं तं चेव-जाव-पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अन्तिए पंचाणुव्वइयं सत्त-सिक्खावइयं दुवालस-विहं गिहि-धम्मं····पडिवज्जित्तए"।

'हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार से आपके पास अनेक उग्रवंशीय—भोगवंशीय—यावत्—इभ्य और इभ्यपुत्र आदि हिरण्य, चाँदी का त्यागकर, स्वर्ण को छोड़कर एवं धन, धान्य, बल, वाहन, कोश, कोठार, पुर, अन्तःपुर का त्याग कर और विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल (मूंगा) आदि सारभूत द्रव्यों में ममत्व को छोड़कर, उन सबको दीन-दरिद्रों में वितरित कर, पुत्रादि में बटवारा कर, मुण्डित होकर, गृहस्थ जीवन का परित्याग कर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए हैं, उसी प्रकार से मैं हिरण्य का त्याग कर—यावत्—प्रव्रजित होने में तो समर्थ नहीं हूँ। अतएव मैं आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत मूलक बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबन्धं करेहि"।

चित्तसारथी की भावना को जानकर केशी कुमारश्रमण ने कहा—'देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध—विलम्ब मत करो।'

तए णं से चित्ते सारही केसिस्स कुमार-समणस्स अन्तिए पञ्चाणुव्वइयं-जाव-गिहि-धम्मं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तब चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण के पास पंच अणुव्रत—यावत्—बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया।

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमार-समणं वन्दइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता, जेणेव चाउ-ग्घण्टे आस-रहे, तेणेव पहारेत्थ गमणाए। चाउ-ग्घण्टं आस-रहं दुरूहइ, दुरूहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

तत्पश्चात् उस चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण को वन्दन नमस्कार करके जहाँ चार घण्टों वाला अश्वरथ खड़ा था, उस ओर चलने के लिये उद्यत हुआ, फिर उस चार घण्टों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर जिस दिशा से आया था वापस उसी दिशा में लौट गया।

३५. तए णं से चित्ते सारही समणोवासए जाए अहिगय-जीवा-जीवे, उवलद्ध-पुण्ण-पावे, आसव-संवर-निज्जर-किरिया-हिगरण-

३५. तत्पश्चात् वह चित्तसारथी श्रमणोपासक हो गया, उसने जीव-अजीव पदार्थों का स्वरूप समझ लिया था, पुण्य-पाप के भेद को जान लिया था, वह आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया,

बन्ध-मोक्ख-कुसले, असहिज्जे देवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गन्धव्व-महोरगाईहिं देवगणेहिं निग्गन्थाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जे, निग्गन्थे पावयणे निस्संकिए, निक्कंखिए, निव्वितिगिच्छे, लद्धट्ठे, गहियट्ठे, पुच्छियट्ठे, अहिगयट्ठे, विणिच्छियट्ठे, अट्ठि-मिञ्ज-पेम्माणुरागरत्ते,—

अधिकरण (क्रिया का आधार), बंध, मोक्ष के स्वरूप को जानने में कुशल हो गया था, कुतीर्थिकों के कुतर्कों के खण्डन में पर की सहायता की अपेक्षा वाला नहीं रहा था, देव असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवगणों के द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित किये जा सकने योग्य नहीं था, निर्ग्रन्थ प्रवचन में निःशंक—शंकारहित था, आत्मोत्थान के सिवाय अन्य के प्रति आकांक्षा रहित था, अथवा अन्य मतों की कांक्षा उसके चित्त में नहीं रही, विचिकित्सा—फल के प्रति संशय रहित था, लब्धार्थ—यथार्थ तत्त्व को प्राप्त कर लिया था, गृहीतार्थ था, पृष्टार्थ—जिज्ञासा द्वारा तत्त्व का मर्म समझ लिया था, अधिगतार्थ—वास्तविक अर्थ का ज्ञाता हो गया था, विनिश्चितार्थ—निश्चित अर्थ को आत्मसात् कर लिया था एवं अस्थि और मज्जा पर्यन्त धर्मानुराग से भरा हुआ था अर्थात् उसके रोम-रोम में निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति अनुराग व्याप्त था और सभी को संबोधित करते हुए कहता था।

'अयमाउसो ! निग्गन्थे पावयणे अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे', ऊसिय-फलिहे अवंगुय-दुवारे चियत्तन्तेउर-घर-प्पवेसे, चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठ-पुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणे, समणे, निग्गन्थे, फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं, पीढ-फलग-सेज्जा-संथारेणं, वत्थ-पडिग्गह-कम्बल-पाय-पुञ्छणेणं, ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणे पडिलाभेमाणे, बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं य अप्पाणं भावेमाणे, जाइं तत्थ राय-कज्जाणि य-जाव-राय-ववहाराणि य ताइं जियसत्तुणा रन्ना सद्धिं सयमेव पच्चुवेक्खमाणे पच्चुवेक्खमाणे विहरइ ।

कि हे आयुष्मनो ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ प्रयोजनभूत है, यही परमार्थ है, इसके सिवाय अन्य-अन्यतीर्थिक कुप्रवचनादि कुमतिज्ञापक होने से अनर्थ—अप्रयोजनभूत हैं, असद् विचारों से रहित हो जाने के कारण उसका हृदय स्फटिकमणि की तरह निर्मल हो गया था, निर्ग्रंथ श्रमणों का भिक्षा के निमित्त सरलता से प्रवेश हो सके, इस विचार से उसके घर का द्वार अर्गला रहित था अर्थात् सुपात्रदान के लिये उसका द्वार सदैव खुला रहता था, सभी के घरों में यहाँ तक कि अन्तःपुर में भी उसका प्रवेश शंकारहित होने से प्रीतिजनक था, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या एवं पूर्णिमा को परिपूर्ण पौषध का अच्छी तरह से पालन करता हुआ श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय—स्वीकार करने योग्य निर्दोष अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य आहार, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक—आसन, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन, औषधि, भेषज से प्रतिलाभित करते हुए एवं अनेक प्रकार के शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवासों से आत्मा को भावित—शुद्ध करते हुए जितशत्रु राजा के साथ रहकर स्वयं उस श्रावस्ती नगरी में राजकार्यों—यावत्—राज्य व्यवहारों को बारम्बार अवलोकन और अनुभव करते हुए विचरने लगे।

सेयवियं नयरिं गच्छंतेण चित्तसारहिणा केसिकुमारसमणं पइ सेयवियानयरिआगमणपत्थणा, केसिकुमारसमणाणुमई य—

सेयविया नगरी को जाते हुए चित्त सारथी द्वारा केशी कुमारश्रमण से सेयविया नगरी में आगमन की प्रार्थना और केशी कुमारश्रमण की अनुमति—

३६. तए णं से जियसत्तू-राया अन्नया कयाइ महत्थं-जाव-पाहुडं सज्जेइ, चित्तं सारहिं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

३६. तत्पश्चात् किसी एक दिन जितशत्रु राजा ने महार्थक—यावत्—प्राभृत उपहार को सजाया—तैयार किया और फिर चित्त-सारथी को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! सेयवियं नयरिं । पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं-जाव-पाहुडं उवणेहि । मम पाउग्गं च णं जहाभणियं अवितहमसंदिद्धं वयणं विन्नवेहि" त्ति कट्टु विसज्जिए ।

'हे चित्त ! तुम वापस सेयविया नगरी जाओ और प्रदेशी राजा सम्मुख इस महाप्रयोजन साधक—यावत्—प्राभृत—उपहार को भेंट करना तथा मेरी ओर से विनयपूर्वक उनसे निवेदन करना कि आपने मेरे लिये जो सन्देश भिजवाया है उसे उसी रूप में अवितथ—सत्य, प्रामाणिक और असंदिग्ध रूप से स्वीकार करता हूँ' ऐसा कहकर चित्तसारथी को ससम्मान विदा किया ।

तए णं से चित्ते सारही जियसत्तुणा रन्ना विसज्जिए समाणे, तं महत्थं-जाव-गिण्हइ-जाव-जियसत्तुस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सावत्थी-नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं-जाव-ठवेइ । ण्हाए-जाव-सरीरे, सकोरेण्ट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भडचडगर-विंदपरिक्खित्ते पायचार-विहारेणं, महया पुरिस-वग्गुरा-परिक्खित्ते रायमग्गमोगाढाओ आवासाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सावत्थी-नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव केसी कुमार-समणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसि कुमार-समणस्स अन्तिए धम्मं सोच्चा-जाव-उट्ठाए-जाव-हट्ठ-जाव-एवं वयासी—

इसके बाद जितशत्रु राजा द्वारा विदा किये गये उस चित्त सारथी ने उस महाप्रयोजन साधक—यावत्—उपहार को ग्रहण किया—यावत्—जितशत्रु राजा के पास से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के मध्यभाग से निकला, निकलकर राजमार्ग पर स्थित जहाँ अपना निवास था, वहाँ आया, आकर उस महार्थक—यावत्—उपहार को एक ओर रखा, फिर स्नान किया—यावत्—आभूषणों से शरीर को विभूषित किया, कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारणकर विशाल सुभटों और जनसमुदाय को साथ लेकर पैदल ही राजमार्ग पर स्थित अपने आवासगृह से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से चलता हुआ जहाँ कोष्ठक चैत्य था, उसमें जहाँ केशी कुमार-श्रमण विराज रहे थे, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवण किया, श्रवण करके—यावत्—हर्षित हो, यावत्—अपने आसन से उठा—यावत्—इस प्रकार निवेदन किया—

"एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रन्ना पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं-जाव-उवणेहि त्ति कट्टु विसज्जिए । तं गच्छामि णं अहं भंते ! सेयवियं नयरिं । पासादीया णं भंते ! सेयविया नयरी । दरिसणिज्जा णं भंते ! सेयविया नयरी । अभिरूवा णं भंते ! सेयविया नयरी । पडिरूवा णं भंते ! सेयविया नयरी । समोसरह णं भंते ! सेयवियं नयरिं" ।

'हे भगवन् ! बात यह है कि प्रदेशी राजा को यह महार्थक—यावत्—उपहार भेंट करो कहकर जितशत्रु राजा ने मुझे विदा किया है, अतएव हे भदन्त ! मैं वापस सेयविया नगरी लौट रहा हूँ और आप जरूर सेयविया नगरी में पधारें, क्योंकि हे भदन्त ! सेयविया नगरी प्रासादीया—मन को आनन्द देने वाली है, हे भगवन् ! सेयविया नगरी दर्शनीया—देखने योग्य है, हे भदन्त ! सेयविया नगरी अभिरूपा—मनोहर है, हे भदन्त ! सेयविया नगरी प्रतिरूपा—अतीव मनोहर है, अतः हे भदन्त ! आप सेयविया नगरी में समवसृत हों—पधारें—पदार्पण करें ।

तए णं से केसी कुमार-समणे चित्तेणं सारहिणा एवं वुत्ते समाणे चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ ।

चित्तसारथी द्वारा इस प्रकार से विनती किये जाने पर भी केशी कुमारश्रमण ने चित्तसारथी के इस कथन का आदर नहीं किया—उत्सुकता नहीं दिखायी, ध्यान नहीं दिया किन्तु मौन रहे ।

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमार-समणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—

तब चित्तसारथी ने पुनः दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से निवेदन किया—

"एवं खलु अहं भंते ! जियसत्तुणा रन्ना पएसिस्स रन्नो इमं महत्थं-जाव-विसज्जिए तं चेव-जाव-समोसरह णं भंते ! तुब्भे सेयवियं नयरिं" ।

'हे भदन्त ! प्रदेशी राजा को यह महाप्रयोजन साधक—यावत्—उपहार को देने का कहकर जितशत्रु राजा ने मुझे विदा कर दिया है, इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये—यावत्—हे भदन्त ! आप सेयविया नगरी में पधारें ।

तए णं केसी कुमार-समणे चित्तेणं सारहिणा दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—

"चित्ता ! से जहा-नामए वण-सण्डे सिया किण्हे, किण्होभासे-जाव-पडिरूवे। से नूणं चित्ता ! से वण-सण्डे बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ?"

"हंता अभिगमणिज्जे"।

तंसि च णं चित्ता ! वण-संडंसि बहवे भिलुंगा नाम पाव-सउणा परिवसन्ति, जे णं तेसिं बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसिवाणं ठियाणं चेव मंस-सोणियं आहारेन्ति। से नूणं चित्ता ! से वण-संडे णं बहूणं दुपय-जाव-सिरीसिवाणं अभिगमणिज्जे ?"

"नो तिणट्ठे समट्ठे।"

"कम्हा णं ?"

"भंते ! सोवसग्गे"।

"एवामेव चित्ता ! तुब्भं पि सेयवियाए नयरीए पएसी नामं राया परिवसइ, अहम्मिए-जाव-नो सम्मं कर-भर-वित्ति पवत्तेइ। तं कहं णं अहं चित्ता ! सेयवियाए नयरीए समोसरिस्सामि ?"

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"किं णं भंते ! तुब्भं पएसिणा रन्ना कायव्वं ? अत्थि णं भंते ! सेयवियाए नयरीए अन्ने बहवे ईसर-तलवर-जाव-सत्थवाह-प्पभिइओ, जे णं देवाणुप्पियं वंदिस्संति-जाव-पज्जुवासिस्संति, विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं पडिलाभेस्संति, पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जासंथारेणं उवनिमन्तिस्सन्ति"।

तए णं से केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—

"अवि याइ चित्ता ! समोसरिस्सामो"।

तत्पश्चात् चित्तसारथी द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से विनती किये जाने पर केशी कुमारश्रमण ने चित्तसारथी से इस प्रकार कहा—

'हे चित्त ! जैसे कोई कृष्णवर्ण और कृष्णप्रभा वाला—यावत्—प्रतिरूप वनखण्ड हो तो हे चित्त ! वह वनखण्ड अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि सबके गमनयोग्य-रहने लायक है, अथवा नहीं है ?

'हाँ भदन्त ! वह उनके गमनयोग्य—रहने लायक है।' चित्त ने उत्तर दिया।

इसके पश्चात् पुनः केशी कुमारश्रमण ने चित्तसारथी से पूछा—'और यदि उस वनखण्ड में हे चित्त ! रहने वाले बहुत से द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी और सरीसृप आदि प्राणियों के रक्त, माँस को खाने वाले भिलुंगा नामक पापशकुन (पशुओं का वध करने वाले पापिष्ठ भील) रहते हों तो क्या वह वनखण्ड उन अनेक द्विपद—यावत्—सरीसृपों के अभिगमनीय—रहने योग्य हो सकता है ?

चित्त—'यह अर्थ समर्थ नहीं है' अर्थात् ऐसी स्थिति में वह वनखण्ड वास करने योग्य नहीं हो सकता है।

केशी कुमारश्रमण—'क्यों—किस कारण नहीं है ?'

चित्त—'हे भदन्त ! क्योंकि वह वनखण्ड उपसर्ग सहित है—त्रास, दुःख, भयजनक है।'

(इन उत्तरों को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने चित्त सारथी को समझाने के लिये कहा)—'तो इसी प्रकार हे चित्त ! तुम्हारी सेयविया नगरी में प्रदेशी नामक राजा रहता है, जो अधार्मिक—यावत्—प्रजा से राजकर लेकर भी उसका अच्छी तरह से रक्षण और पालन नहीं करता है। तो हे चित्त ! उस सेयविया नगरी में मैं कैसे आ सकता हूँ—कैसे आ सकूँगा ?

तब चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

'हे भदन्त ! आपको प्रदेशी राजा से क्या मतलब है ? क्योंकि हे भदन्त ! उस सेयविया नगरी में और दूसरे भी बहुत से ईश्वर, तलवर—यावत्—सार्थवाह प्रभृति रहते हैं, जो आप देवानुप्रिय की वन्दना करेंगे—यावत्—पर्युपासना करेंगे एवं विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप आहार से प्रतिलाभित करेंगे, प्रातिहारिक, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक के लिये उपनिमंत्रित करेंगे।

तब केशी कुमारश्रमण ने चित्तसारथी से इस प्रकार कहा—'हे चित्त ! इसको ध्यान में रखेंगे और अवसर हुआ तो सेयविया नगरी में भी आऊँगा।'

चित्तसारहिस्स सेयवियानयरिआगमणं—

३७. तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमार-समणं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता केसिस्स कुमार-समणस्स अंतियाओ, कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थि णयरी जेणेव रायमग्गमोगाढे आवासे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउ-घंटं आस-रहं जुत्तामेव उवट्ठवेह"। जहा सेयवियाए नयरीए निग्गच्छइ तहेव-जाव-वसमाणे वसमाणे कुणालाजणवयस्स मज्झं-मज्झेणं, जेणेव केइयअद्धे जणवए, जेणेव सेयविया नयरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उज्जाण-पालए सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"जया णं देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जे केसी नाम कुमार-समणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागच्छिज्जा, तया णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! केसिं कुमार-समणं वंदिज्जाह, नमंसिज्जाह, वंदित्ता नमंसित्ता अहा-पडिरूवं उग्गहं अणुजाणेज्जाह। पाडिहारिएणं पीढ-फलग-जाव-उवनिमंतेज्जाह। एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणेज्जाह"।

तए णं ते उज्जाण-पालगा चित्तेण सारहिणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियया करयल-परिग्गहियं-जाव-एवं वयासी— "तह" त्ति। आणाए, विणएणं वयणं पडिसुणंति।

३८. तए णं से चित्ते सारही जेणेव सेयविया नयरी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेयवियं नयरिं मज्झं-मज्झेणं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जेणेव पएसिस्स रन्नो गिहे, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवित्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तं महत्थं-जाव-गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव पएसी राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पएसिं रायं करयल-जाव-वद्धावेत्ता तं महत्थं-जाव-उवणेइ।

चित्तसारथी का सेयविया नगरी में आगमन—

३७. तत्पश्चात् चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके केशी कुमारश्रमण के पास से एवं कोष्ठक चैत्य से निकला, निकलकर जहाँ श्रावस्ती नगरी थी और उसमें राजमार्ग पर स्थित अपना निवास स्थान था वहाँ आया और आकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घण्टों वाला अश्वरथ जोतकर लाओ।' इसके बाद जिस प्रकार पहले सेयविया नगरी से प्रस्थान किया था, उसी प्रकार से—यावत्—विश्राम करता हुआ, पड़ाव डालता हुआ कुणाला जनपद के मध्यभाग में से चलता हुआ जहाँ केकय-अर्ध जनपद था और उसमें जहाँ सेयविया नगरी थी, जहाँ उस नगरी का मृगवन नामक उद्यान था, वहाँ आया, आकर उद्यानपालकों (मालियों) को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! जब पार्श्वापत्य केशी नामक कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में विचरण करते हुए यहाँ पधारें, तब हे देवानुप्रियो ! तुम केशी कुमारश्रमण को वन्दना-नमस्कार करना और वन्दना-नमस्कार करके यथा प्रतिरूप (साधु कल्पानुसार) उन्हें वसतिका की आज्ञा देना, तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक आदि देना—यावत्—उपनिमंत्रित करना—प्रार्थना करना और इसके बाद मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे लौटाना अर्थात् केशी कुमारश्रमण के आगमन की मुझे सूचना देना।"

तब से उद्यानपालक चित्तसारथी की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुए—यावत्—विकसित हृदय होते हुए दोनों हाथ जोड़—यावत्—इस प्रकार बोले—'स्वामिन् ! आपकी आज्ञा प्रमाण है' इस प्रकार कहकर आज्ञा वचन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

३८. तत्पश्चात् वह चित्तसारथी जहाँ सेयविया नगरी थी, वहाँ आ पहुँचा, वहाँ पहुँचकर सेयविया नगरी के मध्यभाग में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर जहाँ प्रदेशी राजा का प्रासाद था, उस प्रासाद की जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ आया, आकर घोड़ों को रोका, रोककर रथ को खड़ा किया, खड़ा करके रथ से नीचे उतरा और उतर कर उस महार्थक—यावत्—उपहार को लिया, लेकर जहाँ प्रदेशी राजा था, उस ओर चला, उस ओर चलकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—बधाकर प्रदेशी राज के सम्मुख वह महार्थक—यावत्—भेंट उपस्थित की।

तए णं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स तं महत्थं-जाव-पडिच्छइ, पडिच्छित्ता चित्तं सारहिं सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् उस प्रदेशी राजा ने चित्तसारथी की उस महार्थक—यावत्—भेंट को स्वीकार किया, स्वीकार करके चित्तसारथी का सत्कार सम्मान किया और सत्कार, सम्मान करके विदा किया।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रन्ना विसज्जिए समाणे हट्ठ-जाव-हियए, पएसिस्स रण्णो अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव चाउग्घंटे आस-रहे तेणेव उवागच्छइ, चाउग्घंटं आस-रहं दुरूहइ सेयवियं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ तुरए निगिण्हइ रहं ठवेइ, रहाओ पच्चोरुहइ, ण्हाए-जाव-उप्पिं पासाय-वर-गए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइ-बद्धएहिं नाडएहिं वर-तरुणी-संपउत्तेहिं उवनच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे, उवलालिज्जमाणे, इट्ठे सद्द-फरिस-जाव-विहरइ।

तत्पश्चात् प्रदेशी राजा द्वारा विदा किया गया वह चित्तसारथी हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होकर प्रदेशी राजा के पास से निकला, निकलकर जहाँ चातुर्घंट अश्वरथ था, वहाँ आया, चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ और सेयविया नगरी के मध्य भाग में से चलता हुआ जहाँ अपना घर था, वहाँ आया, आकर घोड़ों को रोका, रथ को खड़ा किया, फिर रथ से नीचे उतरा और स्नान करके—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के ऊपर जोर-जोर से बजाये जा रहे मृदंगों की ध्वनिपूर्वक उत्तम तरुणियों द्वारा किये जा रहे बत्तीस प्रकार के नाटकों, नृत्य, गायन और क्रीड़ा को सुनता-देखता तथा हर्षित होता हुआ इष्ट-प्रिय शब्द, स्पर्श—यावत्—काम-भोगों को भोगता हुआ विचरने लगा।

उज्जाणपालनिवेइयवुत्तंताणुसारेणं चित्तसारहिस्स केसिकुमारसमणवंदणट्ठा गमणं धम्मसवणं च—

उद्यानपाल निवेदित वृत्तांतानुसार चित्तसारथी का केशी कुमारश्रमण के वन्दनार्थ गमन और धर्मश्रवण—

३९. तए णं केसी-कुमार-समणे अन्नया कयाइ पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं पच्चप्पिणइ, पच्चप्पिणित्ता सावत्थीओ नयरीओ, कोट्ठगाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पञ्चहिं अणगारसएहिं-जाव-विहरमाणे, जेणेव केइअअद्धे जणवए, जेणेव सेयविया नयरी, जेणेव मियवणे उज्जाणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहा-पडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता, संजमेणं, तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

३९. तत्पश्चात् किसी एक समय प्रातिहारिक पीठ, फलक शैया, संस्तारक आदि को उन उनके स्वामियों को वापस सौंपकर केशी कुमारश्रमण श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक उद्यान से बाहर निकले, निकलकर पाँच सौ अनगार शिष्यों के साथ—यावत्—विहार करते हुए जहाँ केकय-अर्ध जनपद था, सेयविया नगरी थी, उसमें जहाँ मृगवन उद्यान था, वहाँ आये, वहाँ आकर यथा प्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

४०. तए णं सेयवियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहेसु महया जणसद्दे इ वा-जाव-परिसा निग्गच्छइ।

४०. तब सेयविया नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों और राजमार्गों में जन समूह की बात-चीत होने लगी कि स्वामी पधारे हैं—यावत्—परिषदा धर्म श्रवण करने के लिए निकलने लगी।

तए णं ते उज्जाणपालगा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा, हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियया, जेणेव केसी कुमार-समणे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता केसिं कुमारसमणं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता, अहा-पडिरूवं उग्गहं अणुजाणंति, पाडिहारिएणं-जाव-संथारएणं उवनिमंतेन्ति, नामं गोयं पुच्छंति, ओधारेंति, एगन्तं अवक्कमन्ति, अन्नमन्नं एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे उद्यानपालक इस संवाद को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रसन्न हृदय होकर जहाँ केशी कुमारश्रमण विराज रहे थे, वहाँ आये, आकर उन्होंने केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके यथाप्रतिरूप अवग्रह (आज्ञा—अनुमति) प्रदान किया, प्रातिहारिक पीठ—यावत्—संस्तारक के लिए उपनिमंत्रित किया, प्रार्थना की, नाम-गोत्र पूछा और फिर चित्तसारथी की आज्ञा का स्मरण किया तथा एकान्त में गये और वहाँ परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहा—

"जस्स णं देवाणुप्पिया ! चित्ते सारही दंसणं कंखइ-जाव-दंसणं अभिलसइ जस्स णं नाम-गोयस्स वि सवणयाए हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए-भवइ, से णं एस केसी कुमार-समणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव सेयवियाए नयरीए बहिया मियवणे उज्जाणे अहा-पडिरूवं-जाव-विहरइ । तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! चित्तस्स सारहिस्स एयमट्ठं पियं निवेएमो, पियं से भवउ" ।

'हे देवानुप्रियो ! चित्तसारथी जिनके दर्शन की आकांक्षा करता है—यावत्—जिनके दर्शन की अभिलाषा करता है और जिनके नाम एवं गोत्र को सुनकर ही हृष्ट-तुष्ट—यावत्—उल्लासपूर्ण हृदय वाला होता है, वही ये केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विहार करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं, यहां समवसृत हुए हैं—पधारे हैं और यहीं सेयविया नगरी के बाहर मृगवन उद्यान में यथा प्रतिरूप अवग्रह लेकर—यावत्—विचर रहे हैं । अतएव हे देवानुप्रियो ! हम लोग चलें और चित्तसारथी के प्रिय इस अर्थ को उनसे निवेदन करें, हमारा यह निवेदन उन्हें बहुत ही प्रिय लगेगा ।'

अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणंति । जेणेव सेयविया नयरी, जेणेव चित्तस्स सारहिस्स गिहे, जेणेव चित्ते सारही तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चित्तं सारहिं करयल-जाव-वद्धावेंति, एवं वयासी—

इस प्रकार कहकर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया और फिर जहाँ सेयविया नगरी थी, उसमें जहां चित्तसारथी का घर था, और जहाँ चित्तसारथी था वहां वे आये, आकर दोनों हाथ जोड़कर- यावत्—चित्तसारथी को बधाया और इस प्रकार निवेदन किया—

"जस्स णं देवाणुप्पिया ! दंसणं कंखंति-जाव-अभिलसंति, जस्स णं नाम-गोयस्स वि सवणयाए हट्ठ-जाव-भवह, से णं अयं केसी कुमार-समणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहेव मियवणे उज्जाणे समोसढे-जाव-विहरइ ।"

'हे देवानुप्रिय ! आपको जिनके दर्शन की आकांक्षा है—यावत्—अभिलाषा करते हैं और जिनका नाम, गोत्र सुनकर भी आप हर्षित—यावत्—विकसित हृदय होते हैं, ऐसे वे केशी कुमारश्रमण पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए यहीं मृगवन उद्यान में समवसृत हुए हैं, पधार गये हैं—यावत्—विचरण कर रहे हैं ।'

४१. तए णं से चित्ते सारही तेसिं उज्जाण-पालगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ-जाव-आसणाओ अब्भुट्ठेइ, पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एग-साडियं उत्तरासंगं करेइ । अंजलि-मउलियग्गहत्थे केसिकुमार-समणाभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

४१. तब वह चित्तसारथी उन उद्यानपालकों से उस संवाद को सुनकर और हृदय में धारणकर हर्षित, सन्तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय हो अपने आसन से उठा, पादपीठ से नीचे उतरा, उतरकर पादुकायें उतारी, एक शाटिक उत्तरासंग किया और मुकुलित हस्ताग्रपूर्वक अंजलि करके केशी कुमार-श्रमण के अभिमुख सात-आठ डग चला और चलकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार स्तुति करने लगा—

"नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-संपत्ताणं । नमोत्थु णं केसिस्स कुमार-समणस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स । वंदामि णं भगवंतं तत्थ-गयं इहगए । पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं" ति कट्टु वंदइ, नमंसइ ।

अरिहंत भगवन्तों—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त सिद्ध भगवन्तों को नमस्कार हो । मेरे धर्माचार्य एवं धर्मोपदेशक केशी कुमारश्रमण को नमस्कार हो । यहाँ रहा हुआ मैं वहाँ विराजमान भगवन्तों की वन्दना करता हूँ । वहाँ विराजमान रहे हुए वे मुझे देखें—इस प्रकार कहकर वन्दन नमस्कार किया ।

ते उज्जाण-पालए विउलेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ, संमाणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता विउलं जीवियारिहं पीइ-दाणं

तत्पश्चात् उन उद्यानपालकों का विपुल वस्त्र, गंध, माला और अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार सम्मान करके पुष्कल आजीविका योग्य प्रीतिदान (पारितोषिक) दिया और

दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ, पडिविसज्जित्ता कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चाउग्घंटं आस-रहं जुत्तामेव उवट्ठवेह-जाव-पच्चप्पिणह" ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-खिप्पामेव सच्छत्तं, सज्झयं-जाव-उवट्ठवित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तए णं से चित्ते सारही कोडुम्बिय-पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म, हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए, ण्हाए कयबलिकम्मेण सरीरे, जेणेव चाउग्घंटे-जाव-दुरुहित्ता, सकोरंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भडचडगरेणं तं चेव जाव-पज्जुवासइ धम्म-कहा-जाव ।

तए णं से चित्ते सारही केसिस्स कुमार-समणस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठ-तुट्ठ उट्ठाए तहेव एवं वयासी—

"एवं खलु भंते ! अम्हं पएसी राया अधम्मिए-जाव-सयस्स वि णं जणवयस्स नो सम्मं कर-भर-वित्ति पवत्तेइ । तं जइ णं देवाणुप्पिया ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खेज्जा बहुगुणतरं खलु होज्जा पएसिस्स रन्नो, तेसिं च बहूणं दुपय-चउप्पय-मिय-पसु-पक्खि-सिरीसिवाणं, तेसिं च बहूणं समण-माहण-भिक्खुयाणं । तं जइ णं देवाणुप्पिया ! ० पएसिस्स बहुगुणतरं होज्जा, सयस्स वि य णं जणवयस्स" ।

धम्मस्स अलाभ-लाभविसयाइं चत्तारि ठाणाइं—

४२. तए णं केसी कुमारसमणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—

"एवं खलु चउहिं ठाणेहिं चित्ता ! जीवे केवलिपन्नत्तं धम्मं नो लभेज्जा सवणयाए । तं जहा—

पारितोषिक देकर उन्हें विदा किया, विदा करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया तथा बुलाकर उनको इस प्रकार की आज्ञा दी—

'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही चार घंटों वाला अश्वरथ जोतकर उपस्थित करो—यावत्—इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् हमें इसकी सूचना दो ।'

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—शीघ्र ही छत्र और ध्वजा से युक्त रथ को उपस्थित करके आज्ञा वापस लौटाई ।

इसके बाद कौटुम्बिकपुरुषों से रथ लाने की बात सुनकर और हृदय में धारणकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होते हुए चित्तसारथी ने स्नान किया, बलिकर्म किया और शरीर को विभूषित किया और फिर जहाँ श्रेष्ठ चार घंटों वाला अश्वरथ था वहाँ आया, आरूढ़ हुआ—यावत्—आरूढ़ होकर कोरंटपुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर सुभटों आदि के विशाल समुदाय सहित रवाना हुआ, पहुँचा—यावत्—पर्युपासना करने लगा, केशी कुमारश्रमण ने धर्मो-पदेश दिया पर्यन्त अवशेष कथन पहले के समान यहाँ करना चाहिए ।

तत्पश्चात् उस चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण से धर्म श्रवणकर और हृदय में धारणकर हृष्ट-तुष्ट होते हुए अपने आसन से उठा, उठकर केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

'हे भदन्त ! हमारा प्रदेशी राजा अधार्मिक है—यावत्—राज-कर लेकर भी अपने जनपद का समीचीन रूप से रक्षण और पालन नहीं करता है । अतएव हे देवानुप्रिय ! यदि आप उस प्रदेशी राजा को धर्म का आख्यान करेंगे—धर्मो-पदेश देंगे तो प्रदेशी राजा के लिए तथा अनेक द्विपद, चतुष्पद, मृग, पशु, पक्षी, सरीसृपों आदि के लिए एवं बहुत से श्रमण-माहणों आदि के लिए बहुत-बहुत गुणकारी—हितावह, लाभदायक होगा । हे देवानुप्रिय ! यदि वह धर्मोपदेश प्रदेशी राजा को अतीव हितकर हो जाता है तो उसके जनपद देश का भी भला हो जायेगा ।'

धर्म के लाभ-अलाभ विषयक चार स्थान—

४२. (चित्तसारथी की इस भावना को सुनने के अनन्तर) केशी कुमार श्रमण ने चित्तसारथी को बताया कि—

'हे चित्त ! निश्चय ही जीव इन चार कारणों से केवलि-भाषित धर्म को सुनने का लाभ प्राप्त नहीं कर पाता है । वे चार कारण इस प्रकार हैं—

आराम-गयं वा उज्जाण-गयं वा समणं वा माहणं वा नो अभिगच्छइ, नो वंदइ, नो नमंसइ, नो सक्कारेइ, नो संमाणेइ, नो कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं पज्जुवासेइ, नो अट्ठाइं, हेऊइं पसिणाइं, कारणाइं, वागरणाइं पुच्छइ। एएणं ठाणेणं चित्ता! जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए ॥१॥

१. आराम (बाग) में आये अथवा उद्यान में आये श्रमण या माहण के अभिमुख जो नहीं जाता है, मधुर वचनों से जो उनकी स्तुति नहीं करता है, मस्तक नमाकर उनको नमस्कार नहीं करता है, उनका सत्कार-सम्मान नहीं करता है तथा कल्याण, मंगल देव एवं चैत्य स्वरूप मानकर जो उनकी पर्युपासना नहीं करता है, जो अर्थ—जीवाजीव आदि पदार्थों को, हेतुओं—मुक्ति के उपायों को जानने की इच्छा से प्रश्नों को, कारणों—संसार-बंध के कारणों को, व्याख्याओं—तत्त्वों का पूर्ण ज्ञान करने के लिए उनके स्वरूप को नहीं पूछता है, तो हे चित्त! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त नहीं कर पाता है।

उवस्सय-गयं समणं वा तं चेव-जाव-एएण वि ठाणेणं चित्ता! जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए ॥२॥

२. उपाश्रय में आये हुए श्रमणों आदि के सम्मुख नहीं जाता है—यावत्—उनसे नहीं पूछता है, तो इस कारण भी हे चित्त! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन नहीं पाता है।

गोयरग्ग-गयं समणं वा माहणं वा-जाव-नो पज्जुवासइ, नो विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेइ, नो अट्ठाइं-जाव-पुच्छइ, एएणं ठाणेणं चित्ता! जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए ॥३॥

३. गोचरी—भिक्षा के निमित्त गाँव में आये श्रमण अथवा माहण को वन्दन-नमस्कार आदि करने के लिए उनके सम्मुख नहीं जाता है—यावत्—उनकी पर्युपासना नहीं करता है तथा विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप आहार से प्रतिलाभित नहीं करता है और अर्थ—यावत्—व्याख्या को उनसे नहीं पूछता है तो ऐसा जीव भी हे चित्त! केवलिनिरूपित धर्म को सुन नहीं पाता है।

जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा सद्धिं अभिसमागच्छइ, तत्थ वि य णं हत्थेण वा वत्थेण वा छत्तेण वा अप्पाणं आवरित्ता चिट्ठइ, नो अट्ठाइं-जाव-पुच्छइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता! जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए ॥४॥

४. जहाँ कहीं भी श्रमण या माहण का सुयोग मिलने पर भी वहाँ अपने आपको छिपाने के लिये अथवा पहचाना न जाऊँ के विचार से स्वयं को हाथ से, वस्त्र से, छत्ते से आवृत कर लेता है—ढांक लेता है, एवं उनसे अर्थ आदि नहीं पूछता है, तो हे चित्त! इस कारण से भी वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म श्रवण करने का अवसर प्राप्त नहीं कर पाता है।

एएहिं च णं चित्ता! चउहिं ठाणेहिं जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं नो लभइ सवणयाए॥

हे चित्त! उक्त चार कारणों से जीव केवलिभाषित धर्म को सुनने का लाभ नहीं ले पाता है। किन्तु—

चउहिं ठाणेहिं चित्ता! जीवे केवली-पन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए। तं जहा—

हे चित्त! इन चार कारणों से जीव केवलिभाषित धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है। वे चार कारण इस प्रकार हैं—

आराम-गयं वा उज्जाण-गयं वा समणं वा माहणं वा वंदइ, नमंसइ,-जाव-पज्जुवासइ, अट्ठाइं-जाव-पुच्छइ, एएण-जाव-लभइ सवणयाए।

१. आराम में पधारे हुए, उद्यान में आये हुए श्रमण अथवा माहण को जो वन्दन-नमस्कार करता है—यावत्—पर्युपासना करता है तथा अर्थों—यावत्—व्याख्याओं को पूछता है, तो हे चित्त! ऐसा वह जीव केवलिप्ररूपित धर्म को सुनने का अवसर प्राप्त कर सकता है।

एवं उवस्सय-गयं गोयरग्ग-गयं समणं वा-जाव-पज्जुवासइ विउलेणं-जाव-पडिलाभेइ—

२-३. इसी प्रकार से उपाश्रय में विराजमान और गोचरी—भिक्षा के लिये ग्राम में आये हुए श्रमण अथवा माहण की वन्दना—यावत्—पर्युपासना करता है, विपुल अशन आदि से

अट्ठाइं-जाव-पुच्छइ, एएण वि-जाव-लभइ सवणयाए।

प्रतिलाभित करता हुआ अर्थों—यावत्—व्याख्याओं को पूछता है, तो इन कारणों से हे चित्त ! वह जीव भी केवलिप्रज्ञप्त धर्म को सुन सकता है।

जत्थ वि य णं समणेण वा माहणेण वा सद्धिं अभि-समागच्छइ तत्थ वि य णं नो हत्थेण वा-जाव-आवरेत्ता णं चिट्ठइ, एएण वि ठाणेणं चित्ता ! जीवे केवलि-पन्नत्तं धम्मं लभइ सवणयाए।

इसी प्रकार जो जीव जहाँ कहीं भी श्रमण अथवा माहण का सुयोग मिलने पर हाथों आदि से स्वयं को छिपाता नहीं है, तो इस निमित्त से भी हे चित्त ! वह जीव केवलिप्रज्ञप्त धर्म सुनने का लाभ प्राप्त कर सकता है।

तुज्झं च णं चित्ता ! पएसी राया आराम-गयं वा तं चेव सव्वं भाणियव्वं आइल्लएणं गमएणं-जाव-अप्पाणं आवरेत्ता चिट्ठइ। तं कहं णं चित्ता ! पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खिस्सामो ?"

लेकिन हे चित्त ! तुम्हारा प्रदेशी राजा तो बाग में पधारे हुए श्रमण अथवा माहण के सन्मुख ही नहीं जाता है, इत्यादि प्रथम गम के अनुसार अपने को आच्छादित कर लेता है पर्यन्त कथन कर लेना चाहिए, तो फिर हे चित्त ! मैं प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश कैसे दे सकूँगा ?'

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमारसमणं एवं वयासी—

केशी कुमारश्रमण के विचारों को सुनने के अनन्तर चित्त-सारथी ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

"एवं खलु भंते ! अन्नया कयाइ कंबोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया। ते मए पएसिस्स रन्नो अन्नया चेव उवणेया। तं एएणं खलु भंते ! कारणेणं अहं पएसिं रायं देवाणुप्पियाणं अंतिए हव्वमाणेस्सामि। तं मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खमाणा गिलाएज्जाह। अगिलाए णं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रन्नो धम्ममाइक्खेज्जाह, छंदेणं भंते ! तुब्भे पएसिस्स रण्णो धम्ममाइक्खेज्जाह"।

'हे भंते ! किसी एक समय कम्बोज देशवासियों ने उपहार रूप में चार घोड़े मुझे भेंट किये थे, उनको मैंने उसी समय प्रदेशी राजा के पास भिजवा दिया था तो हे भगवन् ! इन घोड़ों के बहाने मैं प्रदेशी राजा को शीघ्र ही आपके यहाँ ले आऊँगा, तब हे देवानुप्रिय ! आप प्रदेशी राजा को धर्मकथा कहते हुए लेश मात्र भी ग्लानि मत करना—खेद खिन्न—उदासीन मत होना, लेकिन हे भन्ते ! आप पूर्ववत् अग्लानभाव से हर्षपूर्वक प्रदेशी राजा को धर्मोपदेश देना, हे भगवन् ! आप अपनी इच्छानुसार प्रदेशी राजा को धर्म कथन करना।'

तए णं से केसी कुमार-समणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—
"अवि याइ चित्ता ! जाणिस्सामो"॥

तब केशीकुमार श्रमण ने चित्तसारथी से यह कहा—
'हे चित्त ! अवसर प्रसंग आने पर देखा जायेगा—विचार करेंगे।'

तए णं से चित्ते सारही केसिं कुमार-समणं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव चाउ-ग्घंटे आस-रहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउ-ग्घंटं आस-रहं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए॥

तत्पश्चात् उस चित्तसारथी ने केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ चार घंटों वाला अश्वरथ था, वहाँ आया और आकर उस चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ और आरूढ़ होकर जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था—जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

आसपरिक्खट्ठं निग्गयस्स चित्तसारहिसहियस्स पएसि-रन्नो केसिकुमारसमणसमीवागमणं—

४३. तए णं से चित्ते सारही कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए, फुल्लुप्पल-कमल-कोमलुम्मिलियम्मि अहापण्डुरे पभाए कय-नियमावस्सए सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलन्ते, साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव—

अश्व-परीक्षार्थ निर्गत प्रदेशी राजा का चित्तसारथी सहित केशी कुमारश्रमण के समीप आगमन—

४३. तत्पश्चात् कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने, कोमल उत्पल कमलों के विकसित और धूप के सुनहरी हो जाने पर दैनिक नित्य कर्मों से निवृत्त होकर जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्र रश्मि दिनकर के चमकने के बाद चित्तसारथी अपने घर से निकला और निकलकर जहाँ

—पएसिस्स रन्नो गिहे, जेणेव पएसी राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पएसिं रायं करयल-जाव-कट्टु जएणं, विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पियाणं कम्बोएहिं चत्तारि आसा उवणयं उवणीया । ते य मए देवाणुप्पियाणं अन्नया चेव विणइया । तं एह णं सामी ! ते आसे चिट्ठं पासह ।"

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—

"गच्छाहि णं तुमं चित्ता ! तेहिं चेव चउहिं आसेहिं आस-रहं जुत्तामेव उवट्ठवेहि-जाव-पच्चप्पिणाहि" ।

तए णं से चित्ते सारही पएसिणा रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए उवट्ठवेइ उवट्ठवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तए णं से पएसी राया चित्तस्स सारहिस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा, निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-अप्प-महग्घाभरणालंकिय-सरीरे साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव चाउ-ग्घण्टे आस-रहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउ-ग्घण्टं आस-रहं दुरुहइ दुरुहित्ता सेयवियाए नयरीए मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ ।

तए णं से चित्ते सारही तं रहं णेगाइं जोयणाइं उब्भामेइ । तए णं से पएसी राया उण्हेण य तण्हाए य रह-वाएणं परिकिलंते समाणे चित्तं सारहिं एवं वयासी—

"चित्ता ! परिकिलंते मे सरीरे, परावत्तेहि रहं ।"

तए णं से चित्ते सारही रहं परावत्तेइ, जेणेव मियवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पएसिं रायं एवं वयासी—

"एस णं सामी ! मियवणे उज्जाणे, एत्थ णं आसाणं समं, किलामं सम्मं अवणेमो" ।

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—"एवं होउ चित्ता !"

तए णं से चित्ते सारही जेणेव मियवणे उज्जाणे, जेणेव

प्रदेशी राजा का भवन था तथा उस भवन में भी जहाँ प्रदेशी राजा था, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—अंजलि करके जय विजय शब्दों से प्रदेशी राजा को बधाया और बधाकर इस प्रकार बोला—

'कम्बोज देशवासियों ने आप देवानुप्रिय के लिए चार घोड़े उपहार रूप में भेजे थे, उनको उसी दिन मैंने आप देवानुप्रिय के योग्य अच्छी तरह से शिक्षित कर दिया था । अतएव हे स्वामिन् ! आप पधारें और उन घोड़ों की गति आदि चेष्टाओं का निरीक्षण कीजिये ।'

तब प्रदेशी राजा ने चित्तसारथी से इस प्रकार कहा—

'तुम जाओ और उन चार घोड़ों को अश्वरथ में जोतकर यहाँ लाओ—यावत्—इस आज्ञा को वापस लौटाओ—रथ लाने की मुझे सूचना दो ।'

तदनन्तर इस प्रकार से प्रदेशी राजा द्वारा आज्ञापित वह चित्तसारथी प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय होते हुए अश्वरथ को उपस्थित किया—यावत्—आज्ञा वापस लौटाई—रथ लाने की सूचना राजा को दी ।

तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा चित्तसारथी से इस बात को सुनकर और हृदय में अवधारित कर—यावत्—मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर अपने भवन से निकला; निकल कर जहाँ चार घंटों वाला अश्वरथ था; वहाँ आया, आकर उस चातुर्घंट अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ और आरूढ़ होकर सेयविया नगरी के बीचों-बीच से निकला ।

इसके बाद उस चित्तसारथी ने रथ को अनेक योजनों (बहुत दूर) तक बड़ी तेज चाल से दौड़ाया । तब उस प्रदेशी राजा ने गरमी—प्यास और रथ की चाल से उड़ती गरम लू और धूलि से व्याकुल, परेशान—खिन्न होकर चित्तसारथी से इस प्रकार कहा—

'हे चित्त ! मेरा शरीर थक गया है, अतएव रथ को वापस लौटाओ ।'

तब चित्तसारथी ने रथ को वापस लौटाया और जहाँ मृगवन उद्यान था, वहाँ आया और आकर प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! यह मृगवन उद्यान है । हम यहाँ रथ को रोककर घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को अच्छी तरह से दूर कर लेवें ।'

इस पर प्रदेशी राजा ने चित्तसारथी से कहा—'हे चित्त ! ठीक, ऐसा ही करो ।'

प्रदेशी की स्वीकृति मिलने पर चित्तसारथी ने जहाँ मृगवन

केसिस्स कुमार-समणस्स अदूरसामंते, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हेइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तुरए मोएइ, मोएत्ता पएसिं रायं एवं वयासी—"एह णं सामी ! आसाणं समं, किलामं सम्मं अवणेमो।"

उद्यान था, उसमें भी उस स्थान पर आया जो केशी कुमार-श्रमण के विराजने के पास था, आकर घोड़ों को रोका, रोककर रथ को खड़ा किया, खड़ा करके रथ से नीचे उतरा, नीचे उतरकर घोड़ों को खोला और खोलकर प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! हम यहाँ घोड़ों के श्रम और अपनी थकावट को अच्छी तरह से दूर करलें।'

तए णं से पएसी राया रहाओ पच्चोरुहइ। चित्तेण सारहिणा सद्धिं आसाणं समं, किलामं सम्मं अवणेमाणे पासइ जत्थ केसी कुमार-समणे महइ-महालियाए महच्चपरिसाए मज्झ-गए महया महया सद्देणं धम्ममाइक्खमाणं। पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए -जाव-समुप्पज्जित्था—

तदनन्तर वह प्रदेशी राजा रथ से नीचे उतरा और चित्त-सारथी के साथ उसने घोड़ों की थकावट और अपनी व्याकुलता को मिटाते हुए उस ओर देखा जहाँ केशी कुमारश्रमण अति-विशाल परिषदा के बीच बैठकर उच्च स्वर से धर्मोपदेश दे रहे थे। यह देखकर उस प्रदेशी राजा को इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—

"जड्डा खलु भो जड्डं पज्जुवासंति, मुण्डा खलु भो मुण्डं पज्जुवासंति, मूढा खलु भो मूढं पज्जुवासंति, अपंडिया खलु भो अपंडियं पज्जुवासंति, निव्विन्नाणा खलु भो निव्विन्नाणं पज्जुवासंति। से केस णं एस पुरिसे जड्डे, मुण्डे, मूढे, अपंडिए, निव्विन्नाणे, सिरीए हिरीए उवगए, उत्तप्पसरीरे।

'अरे जड़ ही जड़ की पर्युपासना करते हैं, मुण्ड ही मुण्ड की उपासना करते हैं, मूढ़ ही मूढ़ों की उपासना करते हैं, अपंडित ही अपंडितों की उपासना-सेवा करते हैं, अज्ञानी ही अज्ञानियों की उपासना-सम्मान करते हैं। परन्तु यह कौन पुरुष है जो जड़, मुण्ड, मूढ़, अपंडित और अज्ञानी होते हुए भी श्री-ह्री से सम्पन्न है, शारीरिक कान्ति से सुशोभित है ?

एस णं पुरिसे किमाहारमाहारेइ, किं परिणामेइ, किं खाइ, किं पियइ किं दलइ, किं पयच्छइ, जे णं एमहालियाए मणुस्स-परिसाए मज्झ-गए महया महया सद्देणं बुयाए ?"

यह पुरुष किस प्रकार के आहार करता है ? यह क्या खाता है, क्या पीता है, लोगों को क्या देता है, क्या वितरित करता है, कि जिससे यह पुरुष इतनी विशाल जनपरिषदा के बीच बैठकर उच्च स्वर में बोल रहा है ?'

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता चित्तं सारहिं एवं वयासी—

ऐसा विचार किया और विचार करके चित्तसारथी से बोला—

"चित्ता ! जड्डा खलु भो जड्डं पज्जुवासंति-जाव-बुयाए। साए वि य णं उज्जाण-भूमीए नो संचाएमि सम्मं पकामं पवियरित्तए"।

'हे चित्त ! जड़ पुरुष ही जड़ की पर्युपासना करते हैं—यावत्—ज़ोर-ज़ोर से बोल रहा है, जिससे कि अपनी ही उद्यान भूमि में हम इच्छानुसार इधर-उधर घूम-फिर नहीं सकते हैं।'

तए णं से चित्ते सारही पएसी-रायं एवं वयासी—

तब चित्तसारथी ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"एस णं सामी ! पासावच्चिज्जे केसी नामं कुमार-समणे जाइ-संपन्ने-जाव-चउ-नाणोवगए आहोहिए अन्न-जीवी।"

'हे स्वामिन् ! ये पार्श्वापत्य केशी कुमारश्रमण हैं, जो जाति सम्पन्न—यावत्—मतिज्ञान आदि चार ज्ञान के धारक हैं। ये आधोऽवधिज्ञान (परमावधि से कुछ न्यून अवधिज्ञान) से सम्पन्न एवं एषणीय अन्नपान जीवी हैं।'

तए णं से पएसी राया चित्तं सारहिं एवं वयासी—

तब प्रदेशी राजा ने चित्तसारथी से यह कहा—

"आहोहियं णं वयासि चित्ता ! अन्न-जीवियं च णं वयासि चित्ता ?"

'हे चित्त ! क्या यह पुरुष आधोऽवधिज्ञान से सम्पन्न है ? अन्नजीवी है ?'

"हन्ता सामी आहोहियं णं वयामि, अन्नजीवियं च णं वयामि"।

चित्त—'हाँ स्वामिन् ! ये आधोऽवधिज्ञान सम्पन्न एवं अन्नजीवी हैं।'

"अभिगमणिज्जे णं चित्ता ! अहं एस पुरिसे ?"

प्रदेशी—'हे चित्त ! तो क्या यह पुरुष अभिगमनीय है अर्थात् इस पुरुष के पास जाकर बैठना चाहिए ?'

"हंता सामी ! अभिगमणिज्जे"।

"अभिगच्छामो णं चित्ता ! अम्हे एयं पुरिसं ?"

"हंता सामी ! अभिगच्छामो" ॥

पएसिरायपडिबोहट्ठं केसिमुणिपरूवणाए पंचविहनाण-निरूवणं—

४४. तए णं से पएसी राया चित्तेण सारहिणा सद्धिं जेणेव केसी कुमार-समणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता केसिस्स कुमार-समणस्स अदूर-सामन्ते ठिच्चा एवं वयासी—

"तुब्भे णं भन्ते ! आहोहिया, अन्न-जीविया ?"

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"पएसी ! से जहा-नामए अंकवाणिया इ वा संख-वाणिया इ वा दन्त-वाणिया इ वा सुंकं भंसिउं-कामा नो सम्मं पंथं पुच्छइ, एवामेव पएसी ! तुब्भेवि विणयं भंसेउ-कामो नो सम्मं पुच्छसि। से नूणं तव पएसी ! ममं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"जड्डा खलु भो जड्डं पज्जुवासंति-जाव-पवि-यरित्तए"। से नूणं पएसी ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि"।

तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"से केणट्ठेणं भंते ! तुज्झ नाणे वा दंसणे वा जेणं तुब्भे मम एया-रूवं अज्झत्थियं-जाव-संकप्पं समुप्पन्नं जाणह, पासह ?"

तए णं से केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"एवं खलु पएसी ! अम्हं समणाणं निग्गंथाणं पंचविहे नाणे प० तं जहा—आभिणिबोहियनाणे, सुयनाणे, ओहिनाणे, मण-पज्जवनाणे, केवलनाणे।

से किं तं आभिणिबोहियनाणे ?

आभिणिबोहियनाणे चउव्विहे पन्नत्ते, तं जहा—उग्गहो, ईहा, अवाए, धारणा।

से किं तं उग्गहे ?

चित्त—'हाँ स्वामिन् ! अभिगमनीय है।'

प्रदेशी—'तो फिर हे चित्त ! आओ हम इस पुरुष के पास चलें।'

चित्त—'हाँ स्वामिन् ! आओ हम चलें।'

प्रदेशी राजा के प्रतिबोधनार्थ केशी मुनि की प्ररूपणा में पंचविध ज्ञान निरूपण—

४४. तत्पश्चात् चित्तसारथी के साथ वह प्रदेशी राजा जहाँ केशी कुमारश्रमण विराजमान थे, वहाँ आया और आकर केशी कुमारश्रमण से कुछ दूर खड़े होकर इस प्रकार बोला—

'हे भदन्त ! क्या आप आधोऽवधिज्ञानधारी हैं ? क्या आप अन्नजीवी हैं ?'

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

'हे प्रदेशी ! जैसे कोई अंकवणिक (अंकरत्न का व्यापारी) अथवा शंखवणिक, दन्तवणिक, राजकर न देने के विचार से सीधा मार्ग नहीं पूछता है, उसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी विनयप्रतिपत्ति नहीं करने की भावना से प्रेरित होकर मुझसे योग्य रीति से नहीं पूछ रहे हो। हे प्रदेशी ! मुझे देखकर क्या तुम्हें यह और इस प्रकार का आंतरिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न नहीं हुआ था कि ये जड ही जड़ों की पर्युपासना करते हैं—यावत् मैं अपने उद्यान में इच्छानुसार घूम-फिर नहीं सकता हूं।' तो हे प्रदेशी ! मेरा यह कथन सत्य है ?

'हाँ आपका कहना सत्य है।'

यह कहने के अनन्तर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

प्र.—'हे भदन्त ! तुम्हारा ऐसा कौन-सा ज्ञान और दर्शन है, कि जिसके द्वारा आपने मेरे इस प्रकार के आध्यात्मिक—यावत्—समुत्पन्न संकल्प को जाना और देखा ?'

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

उ.—'हे प्रदेशी ! निश्चय ही हम निर्ग्रन्थ श्रमणों के शास्त्रों में ज्ञान पाँच प्रकार के बतलाये हैं। ज्ञान पाँच प्रकार के यह हैं—१. आभिनिबोधिकज्ञान, २. श्रुतज्ञान, ३. अवधिज्ञान, ४. मनःपर्यायज्ञान, ५. केवलज्ञान।'

प्र.—'वह आभिनिबोधिकज्ञान कितने प्रकार का है ?'

उ.—आभिनिबोधिकज्ञान चार प्रकार का है, यथा—१. अवग्रह, २. ईहा, ३. अवाय, ४. धारणा।

प्र.—प्रदेशी—वह अवग्रह कितने प्रकार का है ?

उग्गहे दुविहे पण्णत्ते जहा नंदीए-जाव-से तं आभिणिबोहिय-नाणे।

से किं तं सुयनाणे ?

सुयनाणे दु-विहे पण्णत्ते तं जहा-अंगपविट्ठं च अंग-बाहिरं च, सव्वं भाणियव्वं-जाव-दिट्ठिवाओ।

ओहिनाणं भव-पच्चइयं खओवसमियं जहा नंदीए।

मणपज्जवनाणे दु-विहे पण्णत्ते तं जहा—उज्जुमई य विउल-मई य।

तहेव केवलनाणं सव्वं भाणियव्वं।

तत्थ णं जे से आभिणिबोहियनाणे से णं ममं अत्थि। तत्थ णं से जे सुयनाणे से वि य ममं अत्थि। तत्थ णं जे से ओहि-नाणे से वि य ममं अत्थि। तत्थ णं जे से मणपज्जवनाणे से वि य ममं अत्थि। तत्थ णं जे से केवलनाणे से णं ममं नत्थि, से णं अरिहंताणं भगवन्ताणं। इच्चेएणं पएसी! अहं तव चउ-विहेणं छउमत्थेणं णाणेणं इमेयारूवं अज्झत्थियं-जाव-समुप्पन्नं जाणामि पासामि"।

उ.—केशी—अवग्रहज्ञान दो प्रकार का प्रतिपादन किया गया है इत्यादि धारणा पर्यन्त आभिनिबोधिक ज्ञान का समस्त वर्णन नन्दीसूत्र के अनुरूप यहाँ जानना चाहिए।

प्र.—प्रदेशी—श्रुतज्ञान कितने प्रकार का है ?

उ.—केशी—श्रुतज्ञान दो प्रकार का प्रतिपादन किया है, यथा—अंगप्रविष्ट, अंगबाह्य। दृष्टिवाद पर्यन्त श्रुतज्ञान के समस्त भेदों का वर्णन नन्दीसूत्र के अनुसार यहाँ कहना चाहिये।

भवप्रत्ययिक और क्षायोपशमिक के भेद से अवधिज्ञान दो प्रकार का है और उनका विवेचन भी नन्दीसूत्र के आधार से यहाँ करना चाहिए।

मनःपर्याय ज्ञान दो प्रकार का कहा है, यथा—ऋजुमति और विपुलमति। इनका वर्णन भी नन्दीसूत्र के अनुसार यहाँ जानना चाहिए।

इसी प्रकार नन्दीसूत्र के अनुसार केवलज्ञान का वर्णन भी यहाँ कहना चाहिए।

'इन पाँच ज्ञानों में से जो आभिनिबोधिक ज्ञान है, वह मुझे है, और जो श्रुतज्ञान है, वह भी मुझे है, जो अवधिज्ञान है, वह भी मुझे है तथा जो मनःपर्यायज्ञान है, वह भी मुझे है, किन्तु इनमें जो केवलज्ञान है, वह मुझे नहीं है, वह अरिहंत भगवन्तों को होता है, इसलिए इन चतुर्विध छाद्मस्थिकज्ञानों के द्वारा हे प्रदेशी! मैंने तुम्हारे इस प्रकार के आध्यात्मिक—यावत्—समुत्पन्न संकल्प को जाना और देखा।'

केसिकुमारसमणवत्तव्वे जीव-सरीराणं अन्नत्तपरूवणं—

केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव-शरीर का अन्यत्व प्ररूपण—

१. अहुणोववन्न नेरइयस्स मणुस्सलोगागमणविसए निसेह-परूवगाइं चत्तारि ठाणाइं—

१. अधुनोत्पन्न नैरयिक के मनुष्य लोकागमन के विषय में निषेध प्ररूपक चार स्थान—कारण—

४५. तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"अहं णं भंते! इहं उवविसामि ?"

"पएसी! एयाए उज्जाण-भूमिए तुमं सि चेव जाणए"।

तए णं से पएसी राया चित्तेणं सारहिणा सद्धिं केसिस्स कुमार-समणस्स अदूर-सामन्ते उवविसइ, उवविसित्ता केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"तुब्भं णं भंते! समणाणं निग्गन्थाणं एसा सन्ना, एसा पइन्ना, एसा दिट्ठी, एसा रुई, एस हेऊ, एस उवएसे, एस संकप्पे, एसा तुला, एस माणे, एस पमाणे, एस समोसरणे, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो तं सरीरं ?"

४५. केशीस्वामी के कथन को सुनने के अनन्तर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से यह निवेदन किया—

प्र.—'हे भदन्त! क्या मैं यहाँ आपके पास बैठ जाऊँ ?'

उ.—केशी—'हे प्रदेशी! यह उद्यानभूमि तुम्हारी अपनी है, अतएव यहाँ बैठने या न बैठने के विषय में तुम स्वयं समझ लो।'

तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा चित्तसारथी के साथ केशी कुमार-श्रमण के पास बैठ गया और बैठकर केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार पूछा—

प्र.—'हे भदन्त! क्या आप श्रमण निर्ग्रन्थों की ऐसी सम्यग्ज्ञानरूप संज्ञा है, तत्त्वनिश्चयरूप प्रतिज्ञा है, दर्शनरूप दृष्टि है, श्रद्धानुगत रुचि है, अर्थ का प्रतिपादन करने रूप हेतु है, शिक्षावचनरूप उपदेश है, तात्त्विक निश्चयरूप संकल्प है, तुला—मान्यता है, दृढ़ धारणा है, दृष्ट एवं इष्ट प्रमाणरूप

मन्तव्य है और यह स्वीकृत सिद्धान्त है कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है—जीव-शरीर भिन्न-भिन्न हैं अथवा ऐसी मान्यता है कि जो जीव है, वही शरीर है अर्थात् जीव और शरीर दोनों एक हैं, शरीर जीवरूप है, और जीव शरीररूप है ?'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा के इस प्रश्न को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने प्रत्युत्तर में प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"पएसी ! अम्हं समणाणं निग्गन्थाणं एसा सन्ना-जाव-एस समोसरणे, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं नो, तं जीवो नो, तं सरीरं" ।

उ.—हे प्रदेशी ! हम श्रमण निर्ग्रन्थों की यह संज्ञा—यावत्—यह समोसरण है, कि जीव भिन्न—पृथक् है और शरीर भिन्न है, परन्तु हमारी ऐसी धारणा नहीं है, कि जो जीव है वही शरीर है अर्थात् जीव-शरीर दोनों एक हैं ।'

तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

तब उस प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

"जइ णं भंते ! तुब्भं समणाणं, निग्गंथाणं एसा सन्ना-जाव-समोसरणे, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो, नो तं सरीरं । एवं खलु ममं अज्जए होत्था, इहेव जम्बुद्दीवे दीवे, सेयवियाए नयरीए, अधम्मिए-जाव-सयस्स वि य णं जणवयस्स नो सम्मं कर-भर वित्तिं पवत्तेइ । से णं तुब्भं वत्तव्वयाए सुबहुं पावं कम्मं कलि-कलुसं समज्जिणित्ता, काल-मासे कालं किच्चा, अन्नयरेसु नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने ।

'हे भदन्त ! यदि आप श्रमण निर्ग्रन्थों की यह संज्ञा—यावत्—समोसरण है कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, किन्तु ऐसी धारणा नहीं है, कि जो जीव है, वही शरीर है तो मेरे पितामह थे, जो इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप की सेयविया नगरी में अधार्मिक—यावत्—राजकर लेकर भी अपने जनपद का भली-भाँति पालन-रक्षण नहीं करते थे । वे आपके कथनानुसार अत्यन्त मलिन पाप कर्मों का उपार्जन करके कालमास में काल करके किसी एक नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुए हैं ।

तस्स णं अज्जगस्स अहं नत्तुए होत्था इट्ठे, कंते, पिए, मणुन्ने, मेज्जे, वेसासिए, संमए, बहुमए, अणुमए, रयण-करण्डग-समाणे, जीविउस्सविए, हियय-नन्दि-जणणे, उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे, सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ।

उन पितामह का मैं इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम (अतीव प्रिय) धैर्य और विश्राम का स्थानभूत, कार्य करने में सम्मत, बहुत कार्य करने में माना हुआ तथा कार्य करने के बाद भी अनुमत, रत्नकरण्डक (आभूषण मंजूषा—पेटी) के समान, जीवन की श्वासोच्छ्वास के समान, हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला, गूलर के फूल के समान, जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है ? ऐसा मैं पौत्र हूँ ।

तं जइ णं से अज्जए ममं आगंतुं वएज्जा—एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जए होत्था, इहेव सेयवियाए नयरीए अधम्मिए-जाव-नो सम्मं कर-भर-वित्तिं पवत्तेमि । तए णं अहं सुबहुं पावं कम्मं कलि-कलुसं समज्जिणित्ता नरएसु उववन्ने । तं मा णं नत्तुया ! तुमं पि भवाहि अधम्मिए-जाव-नो सम्मं कर-भर-वित्तिं पवत्तेहि । मा णं तुमं पि एवं चेव सुबहुं पाव-कम्मं-जाव-उववज्जिहिसि ।

अतएव यदि वे पितामह आकर मुझसे इस प्रकार कहें कि—हे पौत्र ! मैं तुम्हारा अजा—पितामह था और इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक—यावत्—प्रजाजनों से कर लेकर भी सम्यक् प्रकार से उनका पालन-रक्षण नहीं करता था । जिससे अतीव कलुष पाप कर्मों का उपार्जन-संचय करके नरक में उत्पन्न हुआ हूँ । किन्तु हे पौत्र ! तुम अधार्मिक मत होना—यावत्—प्रजाजनों से कर लेकर उनके पालन-रक्षण में प्रमाद मत करना और न अतीव कलि-कलुष पाप कर्मों का संचय—उपार्जन ही करना ।'

तं जइ णं से अज्जए ममं आगन्तुं एवं वएज्जा, तो णं अहं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं,

यदि वे आर्यक—पितामह आकर मुझसे इस प्रकार कहें तो मैं आपके कथन पर श्रद्धा कर सकता हूँ, प्रतीति कर सकता हूँ और अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ, कि जीव अन्य

नो तं जीवो, तं सरीरं। जम्हा णं से अज्जए ममं आगन्तुं णो एवं वयासी, तम्हा सुपइट्ठिया मम पइण्णा समणाउसो। जहा तं जीवो, तं सरीरं"।

है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव और शरीर एक नहीं है। लेकिन जब तक मेरे पितामह आकर मुझसे ऐसा नहीं कहते हैं, तब तक हे आयुष्मन् श्रमण! मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित—समीचीन है, कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है, वही जीव है अर्थात् जीव शरीर एक ही हैं।"

तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा की उक्त युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"अत्थि णं पएसी! तव सूरियकंता नामं देवी?"

प्र.—'हे प्रदेशी! तुम्हारी सूर्यकान्ता नाम की रानी है न?'

"हंता अत्थि"।

उ.—प्रदेशी—'हाँ भदन्त! है।'

"जइ णं तुमं पएसी! तं सूरियकंतं देविं ण्हायं-जाव-सव्वालंकार-विभूसियं केणइ पुरिसेणं सव्वालंकार-विभूसिएणं सद्धिं इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पञ्चविहे माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणिं पासिज्जासि, तस्स णं तुमं पएसी! पुरिसस्स कं दंडं निव्वत्तेज्जासि?"

प्र.—केशी कुमारश्रमण—'तो हे प्रदेशी! यदि तुम उस सूर्यकान्ता देवी को स्नान करके—यावत्—समस्त अलंकारों से शरीर को विभूषित करके किसी स्नान किये हुए—यावत्—समस्त अलंकारों से विभूषित हुए पुरुष के साथ इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध मूलक पाँच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का अनुभव करते हुए देख लो तो हे प्रदेशी! तुम उस पुरुष के लिये क्या दंड निश्चित करोगे?'

"अहं णं भन्ते! तं पुरिसं हत्थ-च्छिन्नगं वा पायच्छिन्नगं वा सूलाइयं वा सुल-भिन्नगं वा एगाहच्चं, कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवएज्जा"।

उ.—प्रदेशी—'हे भगवन्! मैं उस पुरुष के हाथ काट दूँगा, पैर काट दूँगा, शूली पर चढ़ा दूँगा, काँटों से छेद दूँगा अथवा एक ही प्रहार से उसे जीवन रहित कर दूँगा—मार दूँगा।'

"अह णं पएसी! से पुरिसे तुमं एवं वएज्जा—"मा ताव मे सामी! मुहुत्तगं हत्थ-छिन्नगं-जाव-जीवियाओ ववरोवेहि-जाव-तावाहं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबन्धि-परिजणं एवं वयामि—"एवं खलु देवाणुप्पिया! पावाइं कम्माइं समायरित्ता इमेयारूवं आवइं पाविज्जामि, तं मा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे वि केइ पावाइं कम्माइं समायरउ, मा णं से वि एवं चेव आवइं पाविज्जिहिइ जहा णं अहं"।

प्र.—'हे प्रदेशी! यदि वह पुरुष तुमसे यह प्रार्थना करे, कि 'हे स्वामिन्! आप कुछ क्षणों के लिए रुक जाइये, तब तक आप मेरे हाथ न काटें—यावत्—जीवन रहित न करें, जब तक मैं अपने मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजन-सम्बन्धियों और परिचितों से यह कहकर आऊँ कि हे देवानुप्रियो! मैं इस प्रकार के पाप कर्मों का आचरण करने के कारण इस प्रकार का ऐसा दण्ड भोग रहा हूं, अतएव आप देवानुप्रियों में से कोई भी ऐसे पाप कार्यों में प्रवृत्ति मत करना, जिससे तुमको इस प्रकार का दण्ड भोगना पड़े, जैसा कि मैं भोग रहा हूं।'

तस्स णं तुमं पएसी! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणेज्जासि?"

'तो हे प्रदेशी! तुम क्षणमात्र के लिए भी उस पुरुष की यह प्रार्थना स्वीकार कर लोगे—मान लोगे?

"णो इणट्ठे समट्ठे"।

उ.—प्रदेशी—'हे भन्ते! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उसकी यह प्रार्थना स्वीकार नहीं करूँगा।'

कम्हा णं?"

प्र.—केशी कुमारश्रमण—'उसकी प्रार्थना क्यों स्वीकार नहीं करोगे?

"जम्हा णं भन्ते! अवराही णं से पुरिसे"।

उ.—प्रदेशी—'क्योंकि हे भदन्त! वह पुरुष महा अपराधी है।'

"एवामेव पएसी! तव वि अज्जए होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए अधम्मिए-जाव-नो सम्मं कर-भर-वित्तिं पवत्तेइ। से णं

केशी कुमारश्रमण—'तो इसी प्रकार हे प्रदेशी! तुम्हारे पितामह भी थे, जिन्होंने इसी सेयविया नगरी में अधार्मिक

अम्हं वत्तव्वयाए सुबहुं-जाव-उववन्नो। तस्स णं अज्जगस्स तुमं नत्तुए होत्था इट्ठे, कन्ते-जाव-पासणयाए। से णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए।

होकर जीवन व्यतीत किया—यावत्—प्रजा से राजकर लेकर भी उसका सुचारु रूप से रक्षण-पालन नहीं किया और मेरे कथनानुसार वे सुबहु—विपुल पाप कर्मों का उपार्जन करके—यावत्—नरक में उत्पन्न हुए हैं। उन पितामह के तुम इष्ट, कान्त,—यावत्—दर्शन दुर्लभ जैसे पौत्र हो। वे यद्यपि शीघ्र ही मनुष्यलोक में आना तो चाहते हैं, किन्तु वहाँ से शीघ्र आने में समर्थ नहीं हैं। (क्योंकि—)

चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्नए नरएसु, नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ

हे प्रदेशी ! नरक में तत्काल नैरयिक रूप से उत्पन्न जीव निम्नलिखित चार कारणों से शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु वहाँ से आ नहीं पाते हैं वे चार कारण इस प्रकार हैं :—

अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए—से णं तत्थ महब्भूयं वेयणं वेएमाणे इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाइए हव्वमागच्छित्तए १।

१. नरक में अधुनोत्पन्न नैरयिक वहाँ की अत्यन्त तीव्र वेदना का वेदन करते हुए शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की आकांक्षा करते हैं, किन्तु विह्वलता के कारण कर्त्तव्यविमूढ़ हो जाने से शीघ्र ही आने में असमर्थ हैं।

अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए नरय-पालेहिं भुज्जो भुज्जो समहिट्ठिज्जमाणे इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं हव्वमागच्छित्तए २।

२. नरक में तत्काल नैरयिक रूप में उत्पन्न जीव परमाधार्मिक नरकपालों द्वारा बारम्बार ताडित-प्रताडित किये जाने से घबराकर शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की इच्छा तो करते हैं, किन्तु शीघ्र ही आने में अपने को समर्थ नहीं पाते हैं।

अहुणोववन्नए नरएसु नेरइए निरयवेयणिज्जंसि कम्मंसि अक्खीणंसि, अवेइयंसि, अनिज्जिण्णंसि इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए संचाएइ नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ३।

३. नरक में अधुनोत्पन्न नैरयिक मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा तो करते हैं, किन्तु नरकों में भोगने योग्य असाता—वेदनीय कर्म के क्षय नहीं होने से, अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से वहाँ से निकलने में समर्थ नहीं हो पाते हैं।

एवं नरइए निरयाउयंसि कम्मंसि अक्खीणंसि, अवेइयंसि, अनिज्जिण्णंसि इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४।

४. इसी प्रकार नरक में नरक सम्बन्धी आयुकर्म के क्षय नहीं होने से अननुभूत एवं अनिर्जीर्ण होने से नारक जीव मनुष्य लोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी वहाँ से आ नहीं सकते हैं।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्ने नरएसु नेरइए इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए तं सद्दहाहि णं पएसी ! जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो, तं सरीरं" ॥१॥

इस प्रकार के उक्त चार कारणों से हे प्रदेशी ! तत्काल नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न जीव शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने के अभिलाषी होते हुए भी, मनुष्यलोक में आ नहीं सकते हैं। अतएव हे प्रदेशी ! तुम इस बात पर विश्वास करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य—भिन्न है, किन्तु यह मत मानो कि जो जीव है, वही शरीर है और जो शरीर है, वही जीव है।"

२. अहुणोववन्नदेवस्स मणुस्सलोगागमणविसए निसेह-निरूवगाइं चत्तारि ठाणाइं—

२. अधुनोत्पन्न देव के मनुष्यलोकागमन के विषय में निषेध निरूपक चार स्थान—कारण—

४६. तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

४६. तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से तर्क प्रस्तुत करते हुए इस प्रकार कहा—

"अत्थि णं भंते ! एसा पन्ना उवमा, इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ एवं खलु भंते ! मम अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए धम्मिया-जाव-वित्तिं कप्पेमाणी समणोवासिया अभिगय-जीवाजीवा सव्वो वण्णओ-जाव-अप्पाणं भावेमाणी विहरइ । सा णं तुज्झं वत्तव्वयाए सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता काल-मासे कालं किच्चा अन्नयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ना ।

'हे भन्ते ! यह तो आपकी बुद्धि कल्पित उपमा है, कि इस कारण मेरे पितामह मनुष्यलोक में नहीं आते हैं, लेकिन हे भगवन् ! मेरी आजी—दादी थी, जो इसी सेयविया नगरी में धर्मपरायण—यावत्—धार्मिक आचार-विचार पूर्वक अपना जीवन व्यतीत करने वाली, जीवाजीव आदि तत्वों की ज्ञाता, श्रमणोपासिका थी—यावत्—तप से आत्मा को भावित करती हुई अपना समय व्यतीत करती थीं इत्यादि समस्त वर्णन यहाँ कर लेना चाहिए । आपके कथनानुसार वे पुण्य का उपार्जन करके मरण समय में मरण को प्राप्त होकर किसी एक देवलोक में देवरूप से उत्पन्न हुई हैं ।

तीसे णं अज्जियाए अहं नत्तुए होत्था इट्ठे, कंते०-जाव-पासणयाए । तं जइ णं सा अज्जिया ममं आगन्तुं एवं वएज्जा—'एवं खलु नत्तुया ! अहं तव अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए धम्मिया-जाव-वित्तिं कप्पेमाणी समणोवासिया-जाव-विहरामि । तए णं अहं सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता-जाव-देवलोएसु उववन्ना । तं तुमं पि नत्तुया ! भवाहि धम्मिए-जाव-विहराहि । तए णं तुमं पि एवं चेव सुबहुं पुण्णोवचयं समज्जिणित्ता-जाव-उववज्जिहिसि' ।

"उन आर्यिका (दादी) का मैं इष्ट, कान्त—यावत्—दुर्लभ दर्शन वाला पौत्र हूँ । अतएव वे आर्यिका यदि यहाँ आकर मुझसे इस प्रकार कहें, कि 'हे पौत्र ! मैं तुम्हारी दादी थी और इसी सेयविया नगरी में धार्मिक जीवन व्यतीत करती हुई श्रमणोपासिका होकर—यावत्—अपना समय व्यतीत करती थी । जिससे मैं बहुत से पुण्य का उपार्जन करके—यावत्—देवलोक में उत्पन्न हुई हूँ । हे पौत्र ! तुम भी धार्मिक आचार-विचार पूर्वक—यावत्—जीवन व्यतीत करो, जिससे तुम भी बहुत से पुण्य का उपार्जन करके—यावत्—देवलोक में उत्पन्न होओगे ।'

तं जइ णं सा अज्जिया मम आगंतुं एवं वएज्जा, तो णं अहं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो, तं सरीरं । जम्हा सा अज्जिया ममं आगंतुं नो एवं वयासी, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइन्ना, जहा तं जीवो, तं सरीरं, नो अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं" ।

इस प्रकार से यदि वे मेरी दादी आकर मुझसे कहें तो हे भदन्त ! मैं आपके कथन, कि 'जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु वही जीव—वही शरीर नहीं है, अर्थात् जीव और शरीर एक हैं' पर विश्वास कर सकता हूँ, प्रतीति कर सकता हूँ और अपनी रुचि का विषय बना सकता हूँ । परन्तु जब तक मेरी दादी आकर मुझसे ऐसा नहीं कहती हैं, तब तक मेरी यह धारणा सुप्रतिष्ठित—समीचीन है, कि जो जीव है, वही शरीर है, किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं ।

तए णं केसी कुमार-समणे पएसी-रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा द्वारा प्रस्तुत उक्त तर्क को सुनकर प्रत्युत्तर में केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार पूछा—

"जइ णं तुमं पएसी ! ण्हायं, कयबलिकम्मं कयकोउयमंगल-पायच्छित्तं उल्ल-पड-साडगं, भिंगार-कडुच्छुय-हत्थ-गयं, देवकुल-मणुपविसमाणं केइ पुरिसे वच्च घरंसि ठिच्चा एवं वएज्जा—'एह ताव सामी ! इह मुहुत्तगं आसयह वा चिट्ठह वा निसीयह वा तुयट्टह वा । तस्स णं तुमं पएसी ! पुरिसस्स खणमवि एयमट्ठं पडिसुणिज्जासि ?"

प्र.—'हे प्रदेशी ! स्नान करके, बलिकर्म और कौतुक—मंगल—प्रायश्चित करके, गीली धोती पहन एवं हाथ में झारी तथा धूपदान लेकर देवकुल में प्रविष्ट होते समय यदि कोई पुरुष विष्टागृह में खड़े होकर, तुमसे यह कहे, कि 'हे स्वामिन् ! आओ और क्षणमात्र के लिए यहाँ बैठो, खड़े होओ, सोओ और लेटो, तो हे प्रदेशी ! क्या एक क्षण के लिए भी तुम उस पुरुष की यह बात स्वीकार कर लोगे ?'

"नो तिणट्ठे समट्ठे ।"

उ.—प्रदेशी—'हे भदन्त ? यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस पुरुष की बात स्वीकार नहीं करूँगा ।'

"कम्हा णं ?"

"भंते ! असुइ असुइ सामन्तो" ।

"एवामेव पएसी ! तव वि अज्जिया होत्था इहेव सेयवियाए नयरीए धम्मिया-जाव-विहरइ । सा णं अम्हं वत्तव्वयाए सुबहुं-जाव-उववन्ना. तीसे णं अज्जियाए तुमं नत्तुए होत्था इट्ठे-जाव-किमंगपुण पासणयाए ? सा णं इच्छइ माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ।

चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्ने देवे देव-लोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए

अहुणोववन्ने देवे देव-लोएसु दिव्वेहिं काम-भोगेहिं मुच्छिए, गिद्धे, गढिए, अज्झोववन्ने, से णं माणुसे भोगे नो आढाइ, नो परिजाणाइ, से णं इच्छिज्ज माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए १ ।

अहुणोववन्नए देवे देव-लोएसु दिव्वेहिं काम-भोगेहिं मुच्छिए-जाव-अज्झोववन्ने, तस्स णं माणुस्से पेम्मे वोच्छिन्नए भवइ, दिव्वे पेम्मे संकंते भवइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए २ ।

अहुणोववन्ने देवे दिव्वेहि काम-भोगेहिं मुच्छिए-जाव-अज्झोववन्ने, तस्स णं एवं भवइ—इयाणिं गच्छं, मुहुत्तं गच्छं-जाव-इह अप्पाउया नरा काल-धम्मुणा संजुत्ता भवंति, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ३ ।

अहुणोववन्ने देवे दिव्वेहिं-जाव-अज्झोववन्ने तस्स माणुस्सए उराले, दुग्गंधे, पडिकूले, पडिलोमे भवइ, उड्ढं पि य णं चत्तारि पंच जोयण-सयाइं असुभे माणुस्सए गंधे अभिसमागच्छइ, से णं इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए ४ ।

प्र.—केशी कुमारश्रमण—'उस पुरुष की बात स्वीकार क्यों नहीं करोगे ?'

उ.—प्रदेशी—'क्योंकि हे भदन्त ! वह स्थान अपवित्र है और अपवित्र वस्तुओं से व्याप्त है—भरा हुआ है ।'

प्रदेशी राजा के उत्तर को सुनकर केशी कुमारश्रमण ने उसके पूर्वतर्क का समाधान करने के लिए कहा—

'तो उसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम्हारी दादी जो इसी सेयविया नगरी में धार्मिक—यावत्—धर्मानुरागपूर्वक जीवन व्यतीत करती थीं और हमारी मान्यतानुसार बहुत से पुण्यकर्मों का संचय करके वे—यावत्—देवलोक में उत्पन्न हुई हैं तथा उन्हीं दादी के तुम इष्ट—यावत्—दुर्लभ दर्शन जैसे पौत्र हो । वे तुम्हारी दादी यद्यपि शीघ्र ही मनुष्यलोक में आने की अभिलाषी है, किन्तु आ नहीं सकती हैं । क्योंकि—

'हे प्रदेशी ! अधुनोत्पन्न देवों की देवलोक से मनुष्यलोक मे आने की आकांक्षा होते हुए भी इन चार कारणों से वे आ नहीं पाते हैं—

१. तत्काल उत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और तल्लीन हो जाने से मनुष्य सम्बन्धी भोगों के प्रति आकर्षित नहीं होते हैं, न ध्यान देते हैं और न इच्छा करते हैं । जिससे वे मनुष्यलोक में आने की आकांक्षा रखते हुए भी आने में समर्थ नहीं हो पाते हैं ।

२. देवलोक सम्बन्धी दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित—यावत्—तल्लीन हो जाने से अधुनोत्पन्न देव का मनुष्य सम्बन्धी प्रेम व्युच्छिन्न हो जाता है और दिव्य दैविक भोग सम्बन्धी अनुराग संक्रान्त हो जाने से मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी वे यहाँ आ नहीं पाते हैं ।

३. अधुनोत्पन्न देव देवलोक में दिव्य कामभोगों में मूर्च्छित—यावत्—तल्लीन हो जाते हैं, तब वे मन में सोचते हैं कि अब जाऊँ, अब जाऊँ, कुछ समय बाद जाऊँगा किन्तु उतने समय में तो मनुष्यलोक सम्बन्धी उनके अल्प आयु वाले स्वजन-स्नेही, बन्धु कालधर्म को प्राप्त हो चुकते है, जिससे मनुष्यलोक में आने की अभिलाषा रखते हुए भी वे यहाँ आ नहीं पाते है ।

४. वे अधुनोत्पन्न देव देवलोक के दिव्य कामभोगों मे—यावत्—तल्लीन हो जाते है कि जिससे उनको मर्त्यलोक सम्बन्धी अतिशय तीव्र दुर्गंध प्रतिकूल और अनिष्ट लगती है और वह मनुष्य सम्बन्धी अशुभ दुर्गन्ध ऊपर आकाश मे चार सौ-पाँच सौ योजन तक फैल जाती है, जिससे मनुष्यलोक में आने की इच्छा रखते हुए भी वे उस दुर्गन्ध के कारण आने में असमर्थ हो जाते हैं ।

इच्चेएहिं चउहिं ठाणेहिं पएसी ! अहुणोववन्ने देवे देव-लोएसु इच्छेज्जा माणुसं लोगं हव्वमागच्छित्तए, नो चेव णं संचाएइ हव्वमागच्छित्तए। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो, तं सरीरं" ॥२॥

अतएव हे प्रदेशी ! इन चार कारणों से अधुनोत्पन्न देव देवलोक से मनुष्यलोक में आने की इच्छा रखते हुए भी यहाँ आ नहीं सकते हैं। इसलिए प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर रूप नहीं है और शरीर जीवरूप नहीं है।

३-४. केसिकुमारसमणवत्तव्वे जीवस्स अप्पडिहयगईए समत्थणं—

३-४. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव की अप्रतिहत गति का समर्थन—

४७. तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"अत्थि णं भंते ! एसा पन्ना उवमा। इमेणं पुण कारणेणं नो उवागच्छइ। एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्ठाण-सालाए अणेग-गणनायग-दण्डनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-दूय-संधिवालेहिं सद्धिं संपरिवुडे विहरामि। तए णं मम नगर-गुत्तिया ससक्खं सलोद्दं सगेवेज्जं अव-ओडय-बन्धण-बद्धं चोरं उवणेन्ति। तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतं चेव अओकुम्भीए पक्खिवावेमि, अओमएणं पिहाणएणं पिहावेमि, अएण य तउएण य आयावेमि, आय-पच्चइयएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि।

४७. केशी कुमारश्रमण के उक्त उत्तर को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

'हे भगवन् ! आपकी यह उपमा तो बुद्धिकल्पित दृष्टान्त मात्र है, कि इन कारणों से देव मनुष्यलोक में नहीं आते हैं। परन्तु मैंने तो प्रत्यक्ष देखा है कि हे भदन्त ! किसी एक दिन मैं अपने अनेक गणनायक, दंडनायक, राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, मंत्री, महामंत्री, गणक, दौवारिक, अमात्य, चेट, पीठमर्दक, नागरिक, व्यापारी, दूत, संधिपाल आदि के साथ विचरण कर रहा था, कि उसी समय मेरे नगररक्षक चुराई हुई वस्तु और साक्षी सहित, गर्दन और मुश्कें (दोनों हाथ) बाँधे एक चोर को पकड़कर मेरे सामने लाये। तब मैंने उसे जीवित ही एक लोहे की कुम्भी में बन्द करवा दिया और लोहे के ढक्कन से उसका मुख अच्छी तरह से ढक दिया, फिर गरम लोहे और रांगे से उसे लीप दिया और रक्षा के लिये अपने विश्वासपात्र पुरुषों को नियुक्त कर दिया।

तए णं अहं अन्नया कयाइ जेणामेव सा अओकुम्भी, तेणामेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता तं अओकुम्भिं उग्गलच्छावेमि, उग्गलच्छावित्ता, तं पुरिसं सयमेव पासामि। नो चेव णं तीसे अओकुम्भीए केइ छिड्डे इ वा विवरे इ वा अंतरे इ वा राई इ वा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो बहिया निग्गए। जइ णं भंते ! तीसे अओकुम्भीए होज्जा केइ छिड्डे वा-जाव-राई वा जओ णं से जीवे अंतोहिंतो बहिया निग्गए, तो णं अहं सद्दहेज्जा, पत्तिएज्जा, रोएज्जा, जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं, नो तं जीवो, तं सरीरं। जम्हा णं भंते ! तीसे अओकुम्भीए नत्थि केइ छिड्डे वा-जाव-निग्गए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइन्ना, जहा तं जीवो, तं सरीरं, नो अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं"।

तत्पश्चात् एक दिन मैं उस लोहे की कुम्भी के पास गया, वहाँ जाकर मैंने उस लोहे की कुम्भी को खुलवाया, खुलवाकर मैंने स्वयं उस पुरुष को देखा कि वह पुरुष मर चुका था। जबकि उस लोह कुम्भी में न कोई छेद था, न कोई विवर था, न कोई अन्तर था, न कोई दरार थी कि जिसमें से उसके अन्दर बन्द पुरुष का जीव बाहर निकल गया है और उससे आपकी बात पर विश्वास कर लेता, प्रतीति कर लेता एवं अपनी रुचि का विषय बना लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव शरीररूप नहीं और शरीर जीवरूप नहीं है। लेकिन उस लोह कुम्भी में जब कोई छिद्र ही नहीं है—यावत्—जीव बाहर निकल गया तो हे भदन्त ! मेरा यह मानना उचित है कि जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है—जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा की इस युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमार-श्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"पएसी ! से जहा-नामए कूडागार-साला सिया, दुहओ-लित्ता

'हे प्रदेशी ! जैसे कोई एक कूटाकारशाला हो और वह भीतर-बाहर चारों ओर से लीपी हुई हो, अच्छी तरह से आच्छादित

गुत्ता गुत्त-दुवारा निवाय-गम्भीरा। अह णं केइ पुरिसे भेरिं च दंडं च गहाय कूडागार-सालाए अंतो अंतो अणुपविसइ, अणुपविसित्ता तीसे कूडागार-सालाए सव्वओ, समन्ता घण-निचिय-निरन्तर-निच्छिड्डाइं दुवार-वयणाइं पिहेइ। तीसे कूडागार-सालाए बहु-मज्झ-देस-भाए ठिच्चा तं भेरिं दंडएणं महया महया सद्देणं तालेज्जा।

हो, उसका द्वार भी गुप्त हो और हवा का प्रवेश भी जिसमें नहीं हो सके ऐसी गहरी हो। अब यदि उस कूटाकारशाला में कोई पुरुष भेरी और उसे बजाने के लिए डंडा लेकर घुस जाए और घुसकर उस कूटाकारशाला के द्वार आदि को इस प्रकार चारों ओर से बन्द करदे, कि जिससे उसके द्वारों में कहीं भी थोड़ा सा अन्तर नहीं रहे और उसके बाद उस कूटाकारशाला के बीचों-बीच खड़े होकर उस भेरी को डंडा लेकर जोर-जोर से बजाये।

से णूणं पएसी ! से णं सद्दे अंतोहिंतो बहिया निग्गच्छइ ?"

तो हे प्रदेशी ! क्या वह भीतर की ध्वनि बाहर निकलती है, अथवा नहीं निकलती है अर्थात् बाहर सुनाई पड़ती है या नहीं पड़ती है ?

"हंता निग्गच्छइ"।

प्रदेशी—'हाँ निकलती है।'

"अत्थि णं पएसी ! तीसे कूडागारसालाए केइ छिड्डे वा-जाव-राई वा जओ णं से सद्दे अंतोहिंतो बहिया निगए ?"

केशी कुमारश्रमण—'प्रदेशी ! उस कूटाकारशाला में कोई छिद्र—यावत्—दरार है ? जिसमें से वह शब्द अन्दर से बाहर निकला हो ?'

"नो इणट्ठे समट्ठे"।

प्रदेशी—'हे भगवन् ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् वहाँ कोई छिद्रादि नहीं है, जिससे वह ध्वनि बाहर निकल सके।'

"एवामेव पएसी ! जीवे वि अप्पडिहय-गई पुढविं भिच्चा, सिलं भिच्चा, पव्वयं भिच्चा, अंतोहिंतो बहिया निग्गच्छइ। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! अन्नो जीवो, तं चेव" ॥३॥

केशी कुमारश्रमण—'तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव भी अप्रतिहत गतिवाला है, जिससे वह पृथ्वी का भेदनकर, शिला का भेदनकर, पर्वत का भेदनकर, भीतर से बाहर निकल जाता है। इसलिये हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं, जीव शरीर नहीं और शरीर जीव नहीं है।'

४८. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

४८. इस उत्तर को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमार-श्रमण से इस प्रकार कहा—

"अत्थि णं भंते ! एसा पन्ना उवमा। इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ। एवं खलु भंते ! अहं अन्नया कयाइ बाहिरियाए उवट्ठाण-सालाए-जाव-विहरामि। तए णं ममं नगर-गुत्तिया ससक्खं-जाव-उवणेंति। तए णं अहं पुरिसं जीवियाओ ववरोवेमि, ववरोवेत्ता अओकुम्भीए पक्खिवामि, अउमएणं पिहाणएणं पिहावेमि-पच्चइएहिं पुरिसेहिं रक्खावेमि।

'हे भदन्त ! आप द्वारा प्रयुक्त यह उपमा तो बुद्धि विशेष-रूप है, इससे मेरे मन में जीव और शरीर की भिन्नता का विचार युक्तियुक्त प्रतीत नहीं होता है। क्योंकि बात यह है, हे भदन्त ! किसी एक समय मैं अपनी बाह्य उपस्थानशाला में गणनायक आदि के साथ बैठा हुआ था। तब मेरे नगररक्षकों ने साक्षी सहित—यावत्—एक चोर पुरुष को उपस्थित किया। मैंने उस पुरुष को जीवरहित कर दिया—मार डाला और मारकर एक लोह कुम्भी में डलवा दिया और लोहे के ढक्कन से ढांक दिया—यावत्—विश्वासपात्र पुरुषों को रक्षा के लिये नियुक्त कर दिया।

तए णं अहं अन्नया कयाइ जेणेव सा कुम्भी तेणेव उवागच्छामि, तं अउ-कुम्भिं उग्गलच्छावेमि। तं अउकुम्भिं किमि-कुम्भिं पिव पासामि। नो चेव णं तीसे अउ-कुम्भीए केइ छिड्डे वा-जाव-राई वा, जओ णं ते जीवा बहियाहिंतो अंतो अणुपविट्ठा। जइ णं तीसे अउ-कुम्भीए होज्ज केइ छिड्डे-जाव-अणुपविट्ठा,

तत्पश्चात् किसी एक दिन जहाँ वह कुम्भी थी, वहाँ आया और उस कुम्भी को उघाड़ा तो उस लोहकुम्भी को कृमिकुल से व्याप्त देखा। लेकिन उस लोहकुम्भी में न तो कोई छिद्र था —यावत्—दरार थी, कि जिसमें से वे जीव बाहर से उसमें प्रविष्ट हो सकें। यदि उस लोहकुम्भी में कोई छेद होता—यावत्

तए णं अहं सद्दहेज्जा जहा अन्नो जीवो तं चेव। जम्हा णं तीसे अउ-कुम्भीए नत्थि केइ छिड्डे वा-जाव-अणुपविट्ठा तम्हा सुपइट्ठिया मे पइन्ना, जहा तं जीवो, तं सरीरं तं चेव"।

—दरार होती तो यह माना जा सकता था कि उसमें से होकर वे जीव कुम्भी में प्रविष्ट हुए हैं और तब मैं श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, लेकिन उस लोहकुम्भी में कोई छेद नहीं है—यावत्—अतः यही समीचीन है, कि जीव और शरीर एक ही है—जीव शरीररूप है और शरीर जीवरूप है।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

तत्पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार पूछा—

"अत्थि णं तुमे पएसी! कयाइ अए धंत-पुव्वे वा धमाविय-पुव्वे वा?"

'हे प्रदेशी! क्या तुमने पहले कभी अग्नि से तपाया हुआ लोहा देखा है और स्वयं ने भी लोहे को तपवाया है?

"हंता अत्थि"।

प्रदेशी—'हाँ भदन्त! देखा है।'

"से नूणं पएसी! अए धंते समाणे सव्वे अगणि-परिणए भवइ?"

केशी कुमारश्रमण—'तब हे प्रदेशी! तपाये जाने पर वह लोहा पूर्णतया अग्निरूप में परिणत हो जाता है या नहीं?'

"हंता भवइ"।

प्रदेशी—'हाँ भदन्त! हो जाता है।'

"अत्थि णं पएसी! तस्स अयस्स केइ छिड्डे वा-जाव-राई इ वा, जेणं से जोई बहियाहिंतो अंतो अणुपविट्ठे?

केशी कुमारश्रमण—'हे प्रदेशी! उस लोहे में कोई छिद्र—यावत्—दरार है कि जिसमें से वह अग्नि उसके भीतर प्रविष्ट हो गई?'

"नो इणट्ठे समट्ठे"।

प्रदेशी—'हे भदन्त! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस लोहे में कोई छिद्र आदि नहीं है।'

"एवामेव पएसी! जीवो वि अप्पडिहय-गई पुढवि भिच्चा, सिलं भिच्चा, बहियाहिंतो अंतो अणुपविसइ।

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी! जीव की भी अप्रतिहतगति है, जिससे वह पृथ्वी का भेदनकर, शिला का भेदन करके बाहर से भीतर के प्रदेशों में प्रविष्ट हो जाता है।

तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी! तहेव"॥४॥

इसलिये हे प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव भिन्न है और शरीर भिन्न है, जीव-शरीर एक नहीं हैं।

५-६. केसिकुमारसमणवत्तव्वे जीव-सरीराणं अन्नत्त-समत्थणे अपज्जत्तोवगरणहेउनिरूवणं—

५-६. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव-शरीर के अन्यत्व समर्थन में अपर्याप्तोपकरण हेतु निरूपण—

४९. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

४९. केशी कुमारश्रमण की उक्त युक्ति को सुनने के पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

"अत्थि णं भंते! एसा पन्ना उवमा। इमेण पुण मे कारणेणं नो उवागच्छइ।

'हे भदन्त! बुद्धिविशेषजन्य होने से आपकी उपमा वास्तविक नहीं है। इसलिये यह नहीं माना जा सकता है कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। किन्तु जो कारण मैं बता रहा हूं, उससे जीव और शरीर की भिन्नता सिद्ध नहीं होती है। वह कारण इस प्रकार है—

अत्थि णं भंते! से जहा-नामए केइ पुरिसे-तरुणे-जाव-सिप्पोवगए पभू पंच-कंडगं निसिरित्तए?"

हे भदन्त! जैसे कोई एक तरुण—यावत्—अपना कार्य करने में निपुण पुरुष एक साथ क्या पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ है?

"हंता पभू"।

केशी कुमारश्रमण—'हाँ, वह समर्थ है।'

"जइ णं भंते! सो चेव पुरिसे बाले-जाव-मंद-विन्नाणे पभू होज्जा पंच-कंडगं निसिरित्तए, तो णं अहं सद्दहेज्जा, जहा अन्नो जीवो

प्रदेशी—'लेकिन वही पुरुष यदि बालक—यावत्—मंद विज्ञान वाला होते हुए भी पाँच बाणों को एक साथ छोड़ने में समर्थ होता तो हे भदन्त! मैं यह श्रद्धा कर सकता था, कि जीव

तं चेव । जम्हा णं भंते ! स चेव से पुरिसे-जाव-मंद-विण्णाणे नो पभू पंच-कंडगं निसिरित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा, जहा तं जीवो तं चेव" ।

और शरीर दोनों भिन्न-भिन्न हैं । शरीर और जीव एक नहीं हैं । लेकिन हे भदन्त !—यावत्—मंद विज्ञानवाला वह पुरुष पाँच बाणों को एक साथ छोड़ने में समर्थ नहीं है, इसलिये मेरी यह धारणा समीचीन है, कि जीव और शरीर एक है, जो जीव है वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है ।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

इस कुतर्क के प्रत्युत्तर में केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"से जहा-नामए केइ पुरिसे तरुणे-जाव-सिप्पोवगए नवएणं धणुणा, नवियाए जीवाए, नवएणं उसुणा पभू पंच-कंडगं निसिरित्तए ?"

'जैसे कोई एक तरुण—यावत्—कार्य करने में निपुण पुरुष नवीन धनुष, नई प्रत्यंचा और नवीन बाण के द्वारा एक साथ पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ है ?'

"हंता पभू" ।

प्रदेशी—'हाँ, समर्थ है ।'

"सो चेव णं पुरिसे तरुणे-जाव-निउण-सिप्पोवगए कोरिल्लिएणं धणुणा, कोरिल्लियाए जीवाए, कोरिल्लिएणं उसुणा पभू पंच-कंडगं निसिरित्तए ?"

केशी कुमारश्रमण—'लेकिन वही तरुण—यावत्—कार्य कुशल पुरुष जीर्ण-शीर्ण पुराने धनुष, जीर्ण प्रत्यंचा और वैसे ही पुराने बाण से क्या एक साथ पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ हो सकता है ?'

"नो इणट्ठे समट्ठे" ।

प्रदेशी—'भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् पुराने धनुष आदि से एक साथ पाँच बाण छोड़ने में वह समर्थ नहीं होगा ।'

"कम्हा णं ?"

केशी कुमारश्रमण—'क्या कारण है कि जिससे यह अर्थ समर्थ नहीं है ?'

"भंते ! तस्स पुरिसस्स अपज्जत्ताइं उवगरणाइं हवंति" ।

प्रदेशी—'क्योंकि हे भदन्त ! उस पुरुष के पास उपकरण (साधन) अपर्याप्त हैं ।'

"एयामेव पएसी ! से चेव पुरिसे बाले-जाव-मंद-विण्णाणे अपज्जत्तोवगरणे, नो पभू पंच-कंडगं निसिरित्तए । तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो तं चेव" ॥५॥

केशी कुमारश्रमण—'तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह बालक —यावत्—मंद विज्ञानवाला पुरुष योग्यतारूप उपकरण की अपर्याप्तता के कारण पाँच बाणों को छोड़ने में समर्थ नहीं हो पाता है । इसीलिये हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव और शरीर पृथक्-पृथक् हैं, जीव शरीररूप नहीं और शरीर जीवरूप नहीं है ।'

५०. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

५०. इस तर्क को सुनकर राजा प्रदेशी ने पुनः केशी कुमारश्रमण से यह कहा—

"अत्थि णं भंते ! एसा पण्णा उवमा, इमेण पुण कारणेणं नो उवागच्छइ ।

'हे भदन्त ! यह तो बौद्धिक उपमा है, वास्तविक नहीं है । इससे यह नहीं माना जा सकता है, कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं । किन्तु मेरे द्वारा प्रस्तुत हेतु से तो यही सिद्ध होता है, कि जीव और शरीर में पार्थक्य नहीं है । वह हेतु इस प्रकार है—

भंते ! से जहा-नामए केइ पुरिसे तरुणे-जाव-सिप्पोवगए पभू एगं महं अय-भारगं वा तउय-भारगं वा सीसग-भारगं वा परिवहित्तए ?"

'हे भदन्त ! जैसे कोई एक तरुण—यावत्—कार्यदक्ष पुरुष एक विशाल वजनदार लोहे के भार को, सीसे के भार को, रांगे के भार को, लवणादिक के भार को उठाने में समर्थ है ?'

"हंता पभू" ।

केशी कुमारश्रमण—'हाँ समर्थ है ।'

"सो चेव णं भंते ! पुरिसे जुण्णे, जरा-जज्जरिय-देहे, सिढिल-वलित-याबि-णट्ठ-गत्ते, दण्ड-परिग्गहियग्गहत्थे, पविरल-परिसडिय-दंत-सेढी, आउरे, किसिए, पिवासिए, दुब्बले, किलंते, नो पभू एगं महं अय-भारगं वा-जाव-परिवहित्तए। जइ णं भंते ! से चेव पुरिसे जुण्णे जरा-जज्जरिय-देहे-जाव-परिकिलंते पभू एगं महं अय-भारं वा-जाव-परिवहित्तए, तो णं अहं सद्दहेज्जा०, तहेव। जम्हा णं भंते ! से चेव पुरिसे जुण्णे-जाव-किलंते नो पभू एगं महं अय-भारं वा-जाव-परिवहित्तए, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइन्ना०, तहेव"।

प्रदेशी—'लेकिन भदन्त ! जब वही पुरुष वृद्ध हो जाये और वृद्धावस्था के कारण शरीर जर्जरित, शिथिल, झुर्रियों वाला एवं अशक्त हो जाये, चलते समय सहारे के लिये हाथ में लकड़ी ले, बहुत से दांत गिर गये हों, खांसी श्वास आदि रोगों से पीड़ित होने के कारण कमजोर हो जाये, भूख, प्यास के कारण व्याकुल रहता हो, दुर्बल और क्लान्त—थका सा रहता हो, तो उस वजनदार लोहे के भार को—यावत्—लवणादिक के भार को ले जाने में समर्थ नहीं हो पाता है। इसलिये हे भदन्त ! यदि वही पुरुष वृद्ध, जरा जर्जरित शरीर—यावत्—परिक्लान्त होने पर भी उस विशाल लोहभार को—यावत्—उठाने में समर्थ होता तो मैं यह विश्वास—श्रद्धा कर सकता था, कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं, जीव और शरीर एक नहीं हैं, लेकिन हे भदन्त ! वह पुरुष वृद्ध—यावत्—क्लांत हो जाने से उस विशाल लोहभार को उठाने में समर्थ नहीं है, जिससे मेरी यह धारणा सुसंगत है कि जीव और शरीर दोनों एक ही हैं, किन्तु जीव और शरीर पृथक-पृथक नहीं हैं।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा के इस तर्क के प्रत्युत्तर में केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से यह कहा—

"से जहा-नामए केइ पुरिसे तरुणे-जाव-सिप्पोवगए, नवियाए विहंगियाए, नवएहिं सिक्कएहिं, नवएहिं पत्थिय-पिडएहिं पहू एगं महं अय-भारं-जाव-परिवहित्तए ?"

'जैसे कोई एक तरुण—यावत्—कार्यदक्ष पुरुष नवीन कावड़ से, रस्सी के बने सींके से, नई टोकरी से एक बहुत वजनदार लोहभार को—यावत्—वहन करने में समर्थ है अथवा नहीं है ?'

"हंता पभू"।

प्रदेशी—'हाँ, समर्थ है।'

"पएसी ! से चेव णं पुरिसे तरुणे-जाव-सिप्पोवगए, जुण्णियाए, दुब्बलियाए, घुण-क्खइयाए विहंगियाए, दुब्बलएहिं, जुण्णएहिं, घुण्ण-क्खइएहिं, सिढिल-तया-पिणद्धएहिं सिक्कएहिं, जुण्णएहिं, दुब्बलएहिं घुणक्खइएहिं, पत्थिय-पिडएहिं पभू एगं महं अय-भारं वा-जाव-परिवहित्तए ?"

केशी कुमारश्रमण—'अब मैं पुनः तुमसे पूछता हूँ, कि हे प्रदेशी ! वही तरुण—यावत्—कार्यकुशल पुरुष सड़ी-गली, कमजोर, घुन खाई हुई कावड़ से, जीर्ण-शीर्ण, दुर्बल, दीमक द्वारा खाये गये और ढीले-ढाले सींके से और पुराने कमजोर घुन लगे टोकरे से एक भारी वजनदार लोहभार आदि को ले जाने में क्या समर्थ है ?'

"नो इणट्ठे समट्ठे"।

प्रदेशी—'हे भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है। अर्थात् जीर्ण-शीर्ण कावड़ आदि के होने से वह तरुण भार ले जाने में समर्थ नहीं है।'

"कम्हा णं ?"

केशी कुमारश्रमण—'क्यों समर्थ नहीं है ?'

"भंते ! तस्स पुरिसस्स जुण्णाइं उवगरणाइं हवंति"।

प्रदेशी—'क्योंकि, हे भदन्त ! उस पुरुष के पास भार वहन करने के उपकरण—साधन जीर्ण-शीर्ण हैं।'

"पएसी ! से चेव से पुरिसे जुण्णे-जाव-किलंते जुण्णोवगरणे नो पभू एगं महं अय-भारं वा-जाव-परिवहित्तए। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं" ॥६॥

केशी कुमारश्रमण—'तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! वह पुरुष जीर्ण-शीर्ण—यावत्—क्लांत शरीर आदि उपकरणों वाला होने से एक भारी वजनदार—लोहभार को—यावत्—परिवहन करने—उठाने में समर्थ नहीं है। इसलिये हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव

और शरीर दोनों एक नहीं हैं—जीव शरीर नहीं, शरीर जीव नहीं है।

७. केसिकुमारसमणवत्तव्वे जीवस्स अगुरुलहुयत्तं—

७. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में जीव का अगुरु-लघुत्व—

५१. तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"अत्थि णं भंते ! -जाव-नो उवागच्छइ। एवं खलु भंते ! -जाव-विहरामि। तए णं मम नगर-गुत्तिया चोरं उवणेंति। तए णं अहं तं पुरिसं जीवंतगं चेव तुलेमि। तुलेत्ता छवि-च्छेयं अकुव्वमाणे जीवियाओ ववरोवेमि, मयं तुलेमि। नो चेव णं तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स, मुयस्स वा तुलियस्स केइ आणत्ते वा नाणत्ते वा ओमत्ते वा तुच्छत्ते वा गुरुयत्ते वा लहुयत्ते वा। जइ णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स केइ अन्नत्ते वा-जाव-लहुयत्ते वा तो णं अहं सद्दहेज्जा, तं चेव। जम्हा णं भंते ! तस्स पुरिसस्स जीवंतस्स वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ आणत्ते वा लहुयत्ते वा तम्हा सुपइट्ठिया मे पइण्णा जहा तं जीवो, तं चेव" ०।

५१. तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से यह कहा—

'हे भदन्त ! यह तो आपकी बुद्धि-कल्पित उपमा है—यावत्—इससे जीव-शरीर की भिन्नता नहीं मानी जा सकती है। किन्तु जो कारण मैं बतलाता हूँ, उससे यह सिद्ध होता है, कि जीव और शरीर एक हैं। वह कारण इस प्रकार है—हे भदन्त ! मैं गणनायक आदि के साथ बाह्य उपस्थान-शाला में बैठा था। उसी समय मेरे नगररक्षक एक चोर को पकड़कर लाये। तब मैंने उस पुरुष को जीवित ही तोला, तोलकर फिर मैंने अंगभंग किये बिना ही उसको जीवन-रहित कर दिया—मार डाला, और मारकर पुनः मैंने उसको तोला। लेकिन जीवित रहते उस पुरुष का जो तोल था, उतना ही तोल मरने के बाद रहा। जीवित रहते और मरने के बाद के तोल में मुझे कुछ भी अन्तर दिखाई नहीं दिया, न उसका भार बढ़ा और न कम हुआ, न वजनदार हुआ, और न हलका हुआ। इसलिए हे भदन्त ! यदि उस पुरुष के जीवितावस्था में किये गये वजन से मृतावस्था में किये गये वजन में किसी प्रकार का अन्तर होता—यावत्—हलकापन होता तो मैं यह श्रद्धा कर सकता था, कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव और शरीर एक नहीं हैं। लेकिन हे भदन्त ! मैं उस पुरुष की जीवित और मृत अवस्था में किये गये तोल में किसी प्रकार का अन्तर अथवा लघुत्व नहीं देखता हूँ, इसलिए मेरी यह धारणा समीचीन है कि जो जीव है, वही शरीर है और जो शरीर है, वही जीव है, किन्तु जीव और शरीर भिन्न-भिन्न नहीं हैं।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"अत्थि णं पएसी ! तुमे कयाइ वत्थी धंत-पुव्वे वा धमाविय-पुव्वे वा ?"

"हंता अत्थि"।

"अत्थि णं पएसी ! तस्स वत्थिस्स पुण्णस्स वा तुलियस्स अपुण्णस्स वा तुलियस्स केइ अन्नत्ते वा-जाव-लहुयत्ते वा ?"

"णो इणट्ठे समट्ठे"।

"एवामेव पएसी ! जीवस्स अगुरु-लघुयत्तं पडुच्च जीवंतस्स

इस युक्ति को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

'हे प्रदेशी ! तुमने कभी मशक में हवा भरी है अथवा किसी से भरवाई है ?'

प्रदेशी—'हाँ भदन्त ! भरी है, और भरवाई भी है।'

केशी कुमारश्रमण—'हे प्रदेशी ! जब वायु से भरकर उस मशक को तोला तब और वायु को निकालकर तोला तब तुमको उसके वजन में कुछ अन्तर—यावत्—लघुता दृष्टिगत हुई—मालूम हुई ?'

प्रदेशी—'यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् उस मशक के वजन में अन्तर आदि मालूम नहीं हुआ।'

केशी कुमारश्रमण—तो इसी प्रकार हे प्रदेशी ! जीव के

वा तुलियस्स मुयस्स वा तुलियस्स नत्थि केइ आणत्ते वा-जाव-लहुयत्ते वा। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! तं चेव" ॥७॥

अगुरुलघुत्व को समझ कर उस चोर के शरीर में जीवितावस्था में किये गये तोल में और मृतावस्था में किये गये तोल में कुछ भी अन्तर—यावत्—हलकापन नहीं है। इसलिए तुम यह श्रद्धा करो, कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, किन्तु जीव और शरीर एक नहीं हैं।'

८. केसिकुमारसमणवत्तव्वे कट्ठगयअग्गिदिट्ठंतेण जीवस्स अदंसणीयत्तं—

८. केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में काष्ठगत अग्नि दृष्टान्त द्वारा जीव का अदर्शनीयत्व समर्थन—

५२. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"अत्थि णं भंते ! एसा-जाव-नो उवागच्छइ। एवं खलु भंते ! अहं अन्नया-जाव-चोरं उवणेंति। तए णं अहं तं पुरिसं सव्वओ, समन्ता समभिलोएमि। नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि। तए णं अहं तं पुरिसं दुहा-फालियं करेमि, करित्ता सव्वओ, समन्ता समभिलोएमि। नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि। एवं तिहा, चउहा संखेज्जफालियं करेमि, नो चेव णं तत्थ जीवं पासामि। जइ णं भंते ! अहं तंमि पुरिसम्मि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा फालियम्मि जीवं पासंतो, तो णं अहं सद्दहेज्जा नो०, तं चेव। जम्हा णं भंते ! अहं तंसि दुहा वा तिहा वा चउहा वा संखेज्जहा वा फालियम्मि जीवं न पासामि, तम्हा सुपइट्ठिया मे पइन्ना, जहा तं जीवो तं सरीरं० तं चेव"।

५२. तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त ! यह तो काल्पनिक उपमा है, इससे—यावत्—यह नहीं माना जा सकता है, कि जीव और शरीर भिन्न-भिन्न हैं। क्योंकि बात यह है, कि हे भदन्त ! मैं किसी एक दिन अपने गणनायक आदि के साथ बैठा था—यावत्—चोर को पकड़कर लाये। तब मैंने उस चोर पुरुष को सिर से पैर तक सभी चारों ओर से देखा, लेकिन मुझे उसमें कहीं भी जीव दिखाई नहीं दिया। तब मैंने उस पुरुष के दो टुकड़े किये, करके पुनः सभी ओर से देखा। लेकिन तब भी उनमें कहीं पर जीव दिखायी नहीं दिया। इसके बाद इसी प्रकार से तीन-चार आदि संख्यात टुकड़े किये, लेकिन उनमें भी जीव दिखायी नहीं दिया। यदि भदन्त ! उस पुरुष के दो, तीन, चार अथवा संख्यात टुकड़े करने पर कहीं भी जीव दिखता तो मैं यह श्रद्धा कर लेता कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव-शरीर एक नहीं हैं। लेकिन भदन्त ! जब मैंने उसके दो, तीन, चार अथवा संख्यात् टुकड़ों में कहीं पर भी जीव नहीं देखा है, तो मेरी यह प्रतीति सुप्रतिष्ठित है कि जो जीव है वही शरीर है, जीव-शरीर एक हैं, भिन्न-भिन्न नहीं हैं।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"मूढतराए णं तुमं पएसी ! ताओ तुच्छतराओ"।

"के णं भंते ! तुच्छतराए ?"

"पएसी ! से जहा-नामए केई पुरिसा वणत्थी, वणोवजीवी, वण-गवेसणयाए जोइं च जोइ-भायणं च गहाय कट्ठाणं अडविं अणुपविट्ठा। तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए-जाव-किंचि देसं अणुप्पत्ता समाणा एगं पुरिसं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा के इस कथन को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

'हे प्रदेशी ! तुम तो मुझे उस दीन-हीन (कठियारे) से भी अधिक मूढ़ प्रतीत होते हो।'

प्रदेशी—'हे भदन्त ! कौन सा वह दीन-हीन कठियारा ?'

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी ! जैसे कितने ही पुरुष वन में रहने वाले और वन से आजीविका कमाने वाले, वनोत्पन्न वस्तुओं की खोज में आग और अंगीठी लेकर लकड़ी के वन में प्रविष्ट हुए। तत्पश्चात् उन पुरुषों ने गाँव से दूर—यावत्—वन के किसी प्रदेश में पहुँचने पर अपने साथ के एक पुरुष से इस प्रकार कहा—

"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अडविं पविसामो। एत्तो णं तुमं जोइ-भायणाओ जोइं गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि। अह तं जोइ-भायणे जोई विज्झवेज्जा एत्तो णं तुमं कट्ठाओ जोइं

'देवानुप्रिय ! हम लोग इस लकड़ी के वन में घुसते हैं, और तुम यहाँ अंगीठी से आग लेकर हमारे लिये भोजन तैयार करना। अगर इस अंगीठी में आग बुझ गई हो तो तुम इस

गहाय अम्हं असणं साहेज्जासि त्ति कट्टु कट्ठाणं अडविं अणुपविट्ठा।

लकड़ी से आग लेकर भोजन बना लेना, ऐसा कहकर वे उस लकड़ी के वन में प्रविष्ट हो गए।

तए णं से पुरिसे तओ मुहुत्तंतरस्स तेसिं पुरिसाणं असणं साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोइ-भायणे तेणेव उवागच्छइ, जोइ-भायणे जोइं विज्झायमेव पासइ। तए णं से पुरिसे जेणेव से कट्ठे-तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं कट्ठं सव्वओ समंता समभिलोएइ, नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ।

उन लोगों के चले जाने के पश्चात् कुछ समय होने पर उस पुरुष ने विचार किया कि अब मैं उन लोगों के लिए भोजन बना लूँ" और ऐसा सोचकर जहाँ अंगीठी थी, वहाँ आया और अंगीठी में आग को बुझा हुआ देखा। इसके बाद वह पुरुष जहाँ वह काष्ठ पड़ा था, वहाँ आया, वहाँ आकर उस काष्ठ को सभी ओर से देखा, किन्तु उसमें कहीं पर भी आग नहीं देखी।

तए णं से पुरिसे परियरं बंधइ, फरसुं गिण्हइ, तं कट्ठं दुहा-फालियं करेइ, सव्वओ समन्ता समभिलोएइ, नो चेव णं तत्थ जोइं पासइ। एवं जाव-संखेज्ज-फालियं करेइ, सव्वओ समंता समभिलोएइ, नो चेव तत्थ जोइं पासइ। तए णं से पुरिसे तंसि कट्ठंसि दुहा-फालिए वा—जाव-संखेज्ज-फालिए वा जोइं अपासमाणे संते, तंते, परितंते निव्विण्णे समाणे, परसुं एगंते एडेइ, परियरं मुयइ, एवं वयासी—

तत्पश्चात् उस पुरुष ने कमर बाँधी—कसी, कुल्हाड़ी ली और उस लकड़ी के दो टुकड़े किए, फिर उन्हें सभी ओर से देखा, किन्तु उसमें आग नहीं देखी। इसी प्रकार से तीन-चार—यावत्—संख्यात टुकड़े किये और उन्हें अच्छी तरह से देखा, फिर भी उनमें आग नहीं देखी। जब उस पुरुष ने काष्ठ के उन दो टुकड़ों—यावत्—संख्यात टुकड़ों में आग नहीं देखी तब वह श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और दुःखित हो गया तथा कुल्हाड़ी को एक ओर रख एवं कमर को खोलकर इस प्रकार बोला—

"अहो मए तेसिं पुरिसाणं असणे नो साहिए" त्ति कट्टु ओहय-मण-संकप्पे, चिन्तासोग-सागर-संपविट्ठे, करयल-पल्हत्थ-मुहे, अट्टज्झाणोवगए, भूमि-गय-दिट्ठिए झियाइ।

'अरे; मैं उन लोगों के लिए भोजन तैयार नहीं कर सका' और ऐसा सोचकर अत्यन्त निराश, चिन्तित, शोकातुर हो, हथेली पर मुख को टिकाकर आर्तध्यानपूर्वक नीचे जमीन में दृष्टि गड़ाये चिन्ता में डूब गया।

तए णं ते पुरिसा कट्ठाइं छिंदंति, जेणेव से पुरिसे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं पुरिसं ओहय-मण-संकप्पं-जाव-झियायमाणं पासंति, एवं वयासी—

लकड़ियों को काटने के पश्चात् वे लोग वहाँ आये जहाँ वह अपना साथी था, आकर उसको निराश—यावत्—चिन्ताग्रस्त देखा, तब उससे पूछा—

"किं णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहय-मण-संकप्पे-जाव-झियायसि ?"

'हे देवानुप्रिय ! क्या तुम निराश, दुःखी—यावत्— चिन्ता में डूबे हुए हो ?'

तए णं से पुरिसे एवं वयासी—

तब उस पुरुष ने इस प्रकार कहा—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अडविं अणुपविसमाणा ममं एवं वयासी—

"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कट्ठाणं अडविं-जाव-पविट्ठा। तए णं अहं तत्तो मुहुत्तंतरस्स तुब्भं असणं साहेमि त्ति कट्टु जेणेव जोई-जाव-झियामि"।

'हे देवानुप्रियो ! आप लोगों ने लकड़ी के वन में प्रविष्ट होने से पहले मुझसे यह कहा था, कि 'देवानुप्रिय ! हम लोग लकड़ी लाने वन में जाते हैं— यावत्—इस प्रकार कहकर जंगल में चले गये। तब कुछ समय के बाद मैंने विचार किया, कि आप लोगों के लिए भोजन बना लूँ, और ऐसा विचार करके जहाँ अंगीठी थी, वहाँ आया—यावत्—इसी विचार में चिन्ता में डूब रहा हूँ।'

तए णं तेसिं पुरिसाणं एगे पुरिसे छेए, दक्खे पत्तट्ठे जाव-उवएसलद्धे, ते पुरिसे एवं वयासी—

इस बात को सुनकर उन पुरुषों में जो एक छेक (अवसर को जानने वाला) दक्ष, प्राप्तार्थ (कुशलता के कारण अपने अभीप्सित अर्थ को प्राप्त करने वाला)—यावत्—उपदेशलब्ध (गुरु से शिक्षा प्राप्त) पुरुष था, उस पुरुष ने अपने दूसरे साथी पुरुषों से इस प्रकार कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! ण्हाया हव्वमागच्छेह, जा णं अहं असणं साहेमि।"

'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और स्नान आदि करके शीघ्र आ जाओ, तब तक मैं भोजन तैयार करता हूँ।

त्ति कट्टु परियरं बन्धइ, बंधित्ता परसुं गिण्हइ, सरं करेइ, सरेणं अरणिं महेइ, जोइं पाडेइ, जोइं संधुक्खेइ, तेसिं पुरिसाणं असणं साहेइ। तए णं ते पुरिसा ण्हाया, जेणेव से पुरिसे, तेणेव उवागच्छंति। तए णं से पुरिसे तेसिं पुरिसाणं सुहासण-वर-गयाणं तं विउलं असणं, पाणं, खाइमं, साइमं उवणेइ। तए णं ते पुरिसा तं विउलं असणं-जाव-साइमं आसाएमाणा, वीसाएमाणा-जाव-विहरंति। जिमिय-भुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता, चोक्खा, परम-सुइ-भूया तं पुरिसं एवं वयासी—

ऐसा कहकर उसने अपनी कमर बाँधी, बाँधकर कुल्हाड़ी उठाई फिर सर बनाया, सर से अरणि काष्ठ को रगड़ा, आग की चिनगारी प्रकट की, उसको धौंका और उन पुरुषों के लिए विपुल अशन, पान, स्वाद्य रूप भोजन बनाया। तब तक उन पुरुषों ने स्नान किया और फिर जहाँ वह भोजन बनाने वाला अपना साथी था, वहाँ आये। इसके पश्चात् उस पुरुष ने सुख पूर्वक अपने-अपने आसन पर बैठे उन लोगों के सामने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप चारों प्रकार का भोजन परोसा। तब वे पुरुष उस विपुल अशन—यावत्—स्वाद्य भोजन का स्वाद लेते हुए, खाते हुए—यावत्—विचरने लगे। भोजन करने के बाद आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, शुद्ध होकर उस अपने पहले साथी से इस प्रकार बोले—

'अहो णं तुमं देवाणुप्पिया! जड्डे मूढे, अपंडिए निव्विन्नाणे, अणुवएस-लद्धे, जे णं तुमं इच्छसि कट्ठंसि दुहा-फालियंसि वा० जोइं पासित्तए'।

'हे देवानुप्रिय! तुम जड़ (अनभिज्ञ), मूढ़ (मूर्ख), अपंडित (प्रतिभा रहित), निर्विज्ञान (निपुणतारहित) और अनुपदेशलब्ध (अशिक्षित) हो, जो तुमने काष्ठ के दो आदि टुकड़ों में आग देखनी चाही।'

से एएणट्ठेणं पएसी! एवं वुच्चइ मूढतराए णं तुमं पएसी ताओ तुच्छतराओ" ॥८॥

तुम्हारी भी इसी प्रकार की प्रवृत्ति देखकर ही हे प्रदेशी! मैंने यह कहा है कि तुम उस तुच्छ कठियारे से भी अधिक मूढ़ हो जो शरीर के टुकड़े-टुकड़े करके जीव को देखने के अभिलाषी बने।"

केसिकुमारसमणनिद्दिट्ठं पएसिरन्नो ववहारित्तणं—

केशी कुमारश्रमण द्वारा निर्दिष्ट प्रदेशी राजा का व्यवहारित्व—

५३. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

५३. तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

"जुत्तए णं भंते! तुम्हं इय छेयाणं, दक्खाणं, बुद्धाणं, कुसलाणं, महा-मईणं, विणीयाणं, विन्नाण-पत्ताणं, उवएसलद्धाणं अहं इमीसाए महालियाए महच्चपरिसाए मज्झे उच्चावएहिं आउसेहिं आउसित्तए, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसित्तए, एवं उच्चावयाहिं निब्भंछणाहिं निब्भंछित्तए उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडित्तए?"

'आप जैसे छेक (अवसरज्ञ) दक्ष (चतुर) बुद्ध (तत्त्वज्ञ) कुशल (कर्तव्याकर्तव्य के निर्णायक), बुद्धिमान, विनीत, विशिष्टज्ञानी, उपदेशलब्ध (गुरु से शिक्षाप्राप्त) पुरुष का इस अतिविशाल परिषदा के बीच मेरे लिये इस प्रकार के अशिष्ट-जनोचित, निष्ठुर आक्रोशपूर्ण शब्दों का प्रयोग करना, अनादर-सूचक शब्दों से मेरी भर्त्सना करना, अनेक प्रकार के अवहेलना सूचक शब्दों से मुझे प्रताड़ित करना क्या उचित है?

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशी राजा के इस उपालंभ को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

"जाणासि णं तुमं पएसी! कइ परिसाओ पन्नत्ताओ?"

'हे प्रदेशी! तुम जानते हो कि कितनी परिषदायें कही हैं?'

"भंते! जाणामि, चत्तारि परिसाओ पन्नत्ता। तं जहा-खत्तिय-परिसा, गाहावइ-परिसा, माहण-परिसा, इसि-परिसा"।

प्रदेशी—'हाँ भदन्त! जानता हूँ कि चार परिषदायें कही हैं' यथा—१. क्षत्रिय परिषदा २. गाथापति परिषदा ३. माहण (ब्राह्मण) परिषदा और ४. ऋषि परिषदा।

"जाणासि णं तुमं पएसी राया ! एयासि चउण्हं परिसाणं कस्स का दण्ड-नीई पन्नत्ता ?"

"हंता जाणामि । जे णं खत्तिय-परिसाए अवरज्झइ से णं हत्थ-च्छिन्नए वा पाय-च्छिन्नए वा सीस-च्छिन्नए वा सूलाइए वा एगाहच्चे कूडाहच्चे जीवियाओ ववरोविज्जइ ।

जे णं गाहावइ-परिसाए अवरज्झइ से णं तएण वा वेढेण वा पलालेण वा वेढित्ता अगणि-काएणं झामिज्जइ ।

जे णं माहण-परिसाए अवरज्झइ से णं अणिट्ठाहिं अकंताहिं-जाव-अमणामाहिं, वग्गूहिं उवालंभित्ता कुण्डिया-लंछणए वा सुणग-लंछणए वा कीरइ, निव्विसए वा आणविज्जइ ।

जे णं इसि-परिसाए अवरज्झइ से णं नाइ-अणिट्ठाहिं-जाव-नाइ-अमणामाहिं, वग्गूहिं उवालब्भइ" ।

"एवं च ताव पएसी ! तुमं जाणासि, तहा वि णं तुमं ममं वामं-वामेणं दंडं-दंडेणं, पडिकूलं-पडिकूलेणं, पडिलोमं-पडिलोमेणं विवच्चासं-विवच्चासेणं वट्टसि" ।

तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"एवं खलु अहं देवाणुप्पिएहिं पढमिल्लएणं चेव वागरणेणं संलत्ते । तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था-जहा-जहा णं एयस्स पुरिसस्स वामं-वामेणं-जाव-विवच्चासं-विवच्चासेणं वट्टिस्सामि, तहा-तहा णं अहं नाणं च नाणोवलम्भं च करणं च करणोवलम्भं च दंसणं च दंसणोवलम्भं च जीवं च जीवोवलम्भं च उवलभिस्सामि । तं एएणं कारणेणं अहं देवाणुप्पियाणं वामंवामेणं-जाव-विवच्चा-संविवच्चासेणं वट्टिए" ।

तए णं केसी कुमार-समणे पएसीरायं एवं वयासी—

"जाणासि णं तुमं पएसी ! कइ ववहारगा पन्नत्ता ?"

केशी कुमारश्रमण—'हे प्रदेशी ! तुम यह भी जानते हो कि इन चार परिषदाओं में से उन-उनके अपराधियों के लिए क्या दंडनीति बताई है ?'

प्रदेशी—हाँ जानता हूँ, कि जो क्षत्रिय परिषदा का अपराध-अपमान करता है, उसके या तो हाथ काट दिये जाते हैं, अथवा पैर काट दिये जाते हैं, या सिर काट दिया जाता है, अथवा उसे शूली पर चढ़ा दिया जाता है, या फिर एक ही प्रहार से या कुचलकर जीवन रहित (निष्प्राण) कर दिया जाता है—मार दिया जाता है।

जो गाथापति परिषदा का अपराध करता है, उसे घास में अथवा पेड़ के पत्तों से अथवा पलाल में लपेटकर आग में फेंक दिया जाता है—झोंक दिया जाता है।

जो ब्राह्मण परिषदा का अपराध करता है, उसे अनिष्ट—रोषपूर्ण, अप्रिय—यावत्—अमणाम (कठोर) शब्दों से उपालंभ देकर अग्नितप्त लोहे से कुंडिका अथवा कुत्ते के चिह्न से लांछित—चिह्नित कर दिया जाता है अथवा देश छोड़ने की आज्ञा दी जाती है।

जो ऋषिपरिषदा का अपमान-अपराध करता है, उसे न अति अनिष्ट—यावत्—न अति अमनोज्ञ शब्दों द्वारा उपालंभ दिया जाता है।'

केशी कुमारश्रमण—'इस प्रकार की दंडनीति को जानते हुए भी हे प्रदेशी ! तुम मेरे प्रति विपरीत, परितापजनक, प्रतिकूल, विरुद्ध और सर्वथा विपरीत व्यवहार कर रहे हो ?'

तब प्रदेशी राजा ने अपनी मनोभावना व्यक्त करते हुए केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

'हे भदन्त ! बात यह है कि मेरा आप देवानुप्रिय से प्रथम बार ही वार्तालाप हो रहा है अर्थात् आप से पहली बार मिल रहा हूँ, तो मुझे इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ कि जितना-जितना और जैसे-जैसे मैं इस पुरुष के विपरीत—यावत्—सर्वथा विपरीत व्यवहार करूँगा तो उतना-उतना और वैसे-वैसे मैं अधिक-अधिक तत्त्व को जानूँगा, ज्ञान को प्राप्त करूँगा, चारित्र को, चारित्रलाभ को, तत्त्वार्थ श्रद्धान-रूप दर्शन—सम्यक्त्व को, सम्यक्त्वलाभ को, जीव को और जीव के स्वरूप को समझ सकूँगा। इसी कारण मैंने आप देवानुप्रिय के प्रति विपरीत—यावत्—अत्यन्त विरुद्ध व्यवहार किया है।'

प्रदेशीराजा की उक्त भावना को सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार पूछा—

'हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि कितने प्रकार के व्यवहारक बताये हैं।'

"हंता जाणामि. चत्तारि ववहारगा पन्नत्ता

देइ नामेगे, नो सन्नवेइ,

सन्नवेइ, नामेगे नो देइ;

एगे देइ वि, सन्नवेइ वि;

एगे नो देइ, नो सन्नवेइ"।

"जाणासि णं तुमं पएसी ! एएसिं चउण्हं पुरिसाणं के ववहारी, के अव्ववहारी ?"

"हंता जाणामि, तत्थ णं जे से पुरिसे देइ, नो सन्नवेइ, से णं पुरिसे ववहारी; तत्थ णं जे से पुरिसे नो देइ, सन्नवेइ, से णं पुरिसे ववहारी; तत्थ णं जे से पुरिसे देइ वि, सन्नवेइ वि से णं पुरिसे ववहारी; तत्थ णं जे से पुरिसे नो देइ, नो सन्नवेइ, से णं अववहारी"।

"एवामेव तुमं पि ववहारी, नो चेव णं तुमं पएसी ! अववहारी"।

केसिकुमारनिद्दिट्ठं जीवस्स अदंसणीयत्तं—

५४. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

"तुब्भे णं भंते ! इय छेया, दक्खा-जाव-उवएसलद्धा। समत्था णं भंते ! ममं करयलंसि वा आमलयं जीवं सरीराओ अभिनिवट्टित्ताणं उवदंसित्तए ?"

तेणं कालेणं, तेणं समएणं पएसिस्स रन्नो अदूर-सामंते वाउकाए संवुत्ते, तण-वणस्सइ काए एयइ, वेयइ, चलइ, फंदइ, घट्टइ, उदीरइ, तं तं भावं परिणमइ।

तए णं केसी कुमारसमणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"पाससि णं तुमं पएसी राया ! एयं तण-वणस्सइं एयंतं-जाव-तं तं भावं परिणमंते ?"

"हंता पासामि"।

प्रदेशी—'हाँ भदन्त ! जानता हूँ कि व्यवहार के चार प्रकार कहे हैं—

१. कोई एक किसी को दान तो देते हैं, किन्तु उसके साथ प्रेमपूर्वक वार्तालाप नहीं करते हैं।

२. कोई एक संतोषप्रद बातें तो करते हैं, किन्तु देते कुछ नहीं हैं।

३. कोई एक देते भी हैं और लेनेवाले के साथ वार्तालाप भी करते हैं।

४. कोई एक ऐसे भी होते हैं, जो देते भी कुछ नहीं और न बात करते हैं।"

केशी कुमारश्रमण—'जानते हो हे प्रदेशी ! इन चार प्रकार के व्यक्तियों में से कौन व्यवहारक (व्यवहार कुशल) है और कौन अव्यवहारक (व्यवहार शून्य) है ?'

प्रदेशी—'हाँ भदन्त ! जानता हूँ कि इनमें से जो पुरुष देता है, किन्तु संभाषण नहीं करता, वह व्यवहारी है, जो पुरुष देता तो नहीं किन्तु संभाषण से संतोष उत्पन्न करता है वह व्यवहारी है, जो पुरुष देता भी है और शिष्ट वचन भी बोलता है, वह व्यवहारी है, किन्तु जो न देता है और न शिष्ट वचन बोलता है, वह अव्यवहारी है।'

केशी कुमारश्रमण—'इसी प्रकार हे प्रदेशी ! तुम भी व्यवहारी हो, किन्तु अव्यवहारी नहीं हो। अर्थात् तुमने मेरे साथ यद्यपि शिष्टजनोचित वाग्व्यवहार तो नहीं किया, फिर भी मेरे प्रति भक्ति और सम्मान प्रदर्शित किया है, अतएव व्यवहारी हो।'

केशी कुमारश्रमण निर्दिष्ट जीव का अदर्शनीयत्व—

५४. तत्पश्चात् प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त ! आप छेक, दक्ष—यावत्—उपदेशलब्ध हैं। अतएव हे भदन्त ! क्या आप मुझे हथेली में स्थित आंवले की तरह शरीर से जीव को निकालकर दिखाने में समर्थ हैं ?'

प्रदेशी राजा ने यह कहा ही था, कि उसी काल और उसी समय प्रदेशी राजा से अति दूर नहीं अर्थात् निकट ही वायु के चलने से तृण, घास, वृक्ष आदि वनस्पतियाँ हिलने डुलने लगीं, कंपने लगीं, फरकने लगीं, परस्पर टकराने लगीं आदि उन-उन रूपों में परिणत होने लगीं।

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी से पूछा—

'हे प्रदेशी ! तुम इन तृणादि वनस्पतियों के हिलने-डुलने—यावत्—उन-उन को अनेक रूपों में परिणत होते हुए देख रहे हो न ?'

प्रदेशी—'हाँ, देख रहा हूँ।'

"जाणासि णं तुमं पएसी ! एयं तण-वणस्सइ-कायं किं देवो चालेइ, असुरो वा चालेइ, नागो वा किन्नरो वा चालेइ, किंपुरिसो वा चालेइ, महोरगो वा चालेइ, गंधव्वो वा चालेइ ?"

केशी कुमारश्रमण—तो हे प्रदेशी ! क्या तुम यह भी जानते हो कि इन तृण वनस्पतियों को कोई देव हिला-डुला रहे हैं—अथवा असुर हिला रहे हैं, अथवा नाग, किन्नर हिला रहे हैं अथवा किंपुरुष हिला रहे हैं, अथवा महोरग चला रहे हैं अथवा गंधर्व हिला रहे हैं ?'

"हंता जाणामि, नो देवो चालेइ-जाव-नो गंधव्वो वा चालेइ, वाउ-काए चालेइ"।

प्रदेशी—हाँ भदन्त ! जानता हूँ, कि इनको न कोई देव हिला-डुला रहे हैं—यावत्—न कोई गंधर्व हिला रहे हैं, किन्तु वायुकाय से हिल-डुल रही हैं।

"पाससि णं तुमं पएसी ! एयस्स वाउ-कायस्स सरूविस्स सकामस्स सरागस्स, समोहस्स, सवेयस्स सलेसस्स, ससरीरस्स रूवं" ?

"नो इणट्ठे समट्ठे"।

केशी कुमारश्रमण—'हे प्रदेशी ! क्या तुम इस मूर्त, काम-राग-मोह-वेद-लेश्या और शरीरधारी वायुकाय के रूप को देखते हो ?'

प्रदेशी—'भदन्त ! यह अर्थ समर्थ नहीं है, अर्थात् हे भदन्त ! मैं नहीं देखता हूँ।'

"जइ णं तुमं पएसी राया ! एयस्स वाउकायस्स सरूविस्स-जाव-ससरीरस्स रूवं न पाससि, तं कहं णं पएसी ! तव करयलंसि वा आमलगं जीवं उवदंसिस्सामि ?"

केशी कुमारश्रमण—'जब हे प्रदेशी राजा ! तुम इस रूप-धारी (मूर्त)—यावत्—सशरीरी वायु को नहीं देख सकते हो, तो हे प्रदेशी ! मैं इन्द्रियातीत ऐसे जीव को हाथ में रखे आंवले की तरह कैसे दिखा सकता हूँ ?'

एवं खलु पएसी ! दस-ठाणाइं छउमत्थे मणुस्से सव्व-भावेणं न जाणइ, न पासइ, तं जहा—धम्मत्थिकायं १, अधम्मत्थिकायं २, आगासत्थिकायं ३, जीवं असरीरबद्धं ४, परमाणुपोग्गलं ५, सद्दं ६, गन्धं ७, वायं ८, अयं जिणे भविस्सइ नो वा भविस्सइ ९, अयं सव्व-दुक्खाणं अंतं करिस्सइ वा नो वा करिस्सइ १०।

क्योंकि बात यह है कि छद्मस्थ (सकर्मा, सरागी) मनुष्य (जीव) इन दस बातों को उनके सर्वभावों—पर्यायों सहित सर्वात्मना जानता—देखता नहीं है—१. धर्मास्तिकाय २. अधर्मास्तिकाय, ३. आकाशास्तिकाय ४. अशरीरी (निष्कर्मा) जीव, ५. परमाणु-पुद्गल, ६. शब्द, ७. गंध, ८. वायु ९. यह जिन (कर्म क्षय करने वाला) होगा अथवा जिन नहीं होगा तथा १०. यह सर्व दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा।

एयाणि चेव उप्पन्न-नाण-दंसण-धरे अरहा जिणे केवली सव्व-भावेणं जाणइ, पासइ। तं जहा—धम्मत्थिकायं-जाव-नो वा करिस्सइ। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी ! जहा अन्नो जीवो०, तं चेव"।

किन्तु उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक (केवलज्ञानी, केवल-दर्शी—सर्वज्ञ, सर्वदर्शी) अरिहंत, जिन केवली इन दस बातों को उनकी समस्त पर्यायों सहित जानते-देखते हैं, यथा—धर्मास्तिकाय—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा या नहीं करेगा। इसलिये हे प्रदेशी ! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है, जीव शरीर एक नहीं हैं।'

केसिकुमारसमणनिद्दिट्ठं जीवपएसाणं सरीरपमाणावगाहित्तं—

केशी कुमारश्रमण द्वारा निर्दिष्ट जीव प्रदेशों का शरीर प्रमाणावगाहित्व—

५५. तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

५५. तत्पश्चात् प्रदेशीराजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार पूछा—

"से नूणं भंते ! हत्थिस्स कुन्थुस्स य समे चेव जीवे ?"

'हे भंते ! क्या हाथी और कुन्थु (सबसे छोटे शरीर का धारक जीव विशेष) एक जैसा (समान आत्मप्रदेश परिमाण वाला) है, ?'

"हंता पएसी ! हत्थिस्स य कुन्थुस्स य समे चेव जीवे"।

केशी कुमारश्रमण—'हाँ, प्रदेशी ! हाथी और कुन्थु का जीव एक जैसा है, न्यूनाधिक आत्मप्रदेश परिमाण वाला नहीं है।'

"से णूणं भंते ! हत्थीओ कुन्थू अप्प-कम्मतराए चेव अप्प-किरियतराए चेव अप्पासवतराए चेव, एवं आहार-नीहार-उस्सास नीसासइड्ढीए अप्पतराए चेव, एवं च कुन्थुओ हत्थी महा-कम्मतराए चेव महाकिरिय० तराए चेव ?"

प्रदेशी—हे भदन्त ! हाथी से तो कुन्थु अल्प कर्म वाला, अल्प क्रिया वाला, अल्प आस्रव वाला है और इसी प्रकार उस कुन्थु का आहार-विहार, श्वासोच्छ्वास, ऋद्धि—शारीरिक बल आदि भी अल्प ही है, किन्तु कुन्थु की अपेक्षा हाथी अधिक कर्म वाला अधिक क्रिया वाला है।'

"हंता पएसी ! हत्थीओ कुन्थू अप्प-कम्मतराए चेव०, कुन्थुओ वा हत्थी महा-कम्मतराए चेव० तं चेव"।

केशी कुमारश्रमण—'हाँ प्रदेशी, हाथी से कुन्थु अल्प कर्म वाला और कुन्थु से हाथी महाकर्म वाला आदि है।'

"कम्हा णं भंते ! हत्थिस्स य कुन्थुस्स य समे चेव जीवे ?"

प्रदेशी—'तो फिर हे भदन्त ! हाथी और कुन्थु का जीव समान परिमाण वाला कैसे हो सकता है ?'

"पएसी से जहा-नामए कूडागार-साला सिया-जाव-गम्भीरा। अह णं केइ पुरिसे जोइं वा दीवं वा गहाय तं कूडागार-सालं अंतो अंतो अणुपविसइ। तीसे कूडागार-सालाए सव्वओ समंता घण-निचिय-निरंतर-निच्छिड्डाइं दुवार-वयणाइं पिहेइ, पिहेत्ता तीसे कूडागार-सालाए बहु-मज्झ-देस-भाए तं पईवं पलीवेज्जा। तए णं से पईवे तं कूडागार-सालं अंतो अंतो ओभासइ, उज्जोवेइ, तवइ, पभासेइ, नो चेव णं बाहिं।

केशी कुमारश्रमण—हाथी और कुन्थु के जीव को समान परिमाण वाला ऐसे समझा जाता है कि हे प्रदेशी ! जैसे कोई एक कूटाकार (पर्वत शिखर के आकार जैसी)—यावत्—विशाल गहरी शाला (घर) हो और कोई एक पुरुष उस कूटाकार शाला में अग्नि और दीपक के साथ घुसकर उसके ठीक मध्यभाग में जाकर खड़ा हो जाए। तत्पश्चात् उस कूटाकार-शाला के सभी चारों ओर के द्वारों के किवाड़ों को इस प्रकार सटाकर अच्छी तरह से बन्द करले कि उनमें रंचमात्र भी सांध नहीं रहे। फिर उस कूटाकारशाला के बीचों-बीच उस प्रदीप को जलाये तो प्रज्वलित करने पर वह दीपक उस कूटाकार शाला के अंतर्वर्ती भाग को ही प्रकाशित, उद्योतित, तापित और प्रभासित करता है, किन्तु उस शाला के बाहरी भाग को प्रकाशित आदि नहीं करता है।

अह णं से पुरिसे तं पईवं इड्डरएणं पिहेज्जा, तए णं से पईवे तं इड्डरयं अंतो अंतो ओभासेइ-जाव-पभासइ, नो चेव णं इड्डरगस्स बाहिं, नो चेव णं कूडागार-सालाए बाहिं। एवं किलिंजेणं, गंडमाणियाए, पच्छिय-पिडएणं, आढएणं, अद्धाढएणं, पत्थएणं, अद्ध-पत्थएणं, कुलवेणं, अद्ध-कुलवेणं, चाउ-ब्भाइयाए, अट्ठ-भाइयाए, सोलसियाए अंतो बत्तीसियाए, चउसट्ठियाए, दीव-चंपएणं। तए णं से पईवे दीव-चंपगस्स अंतो अंतो ओभासइ-जाव-पभासइ, नो चेव णं दीव-चंपगस्स बाहिं, नो चेव णं चउ-सट्ठियाए बाहिं, नो चेव णं कूडागार-सालं, नो चेव णं कूडागार-सालाए बाहिं।

अब यदि वही पुरुष उस दीपक को एक विशाल पिटारे से ढांक दे तो वह दीपक उस पिटारे के भीतरी भाग को ही प्रकाशित—यावत्—प्रभासित करेगा, किन्तु पिटारे के बाहरी भाग को नहीं और न कूटाकारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित आदि करेगा। इसी प्रकार से गोकलिंज (गाय का घास रखने के लिए बांस से बनी डलिया) गंडमाणिका (अनाज मापने का बर्तन), पच्छिपिटक (पिटारी), आढ़क (चार सेर धान्य मापने का पात्र) अर्ध-आढ़क, प्रस्थक, अर्ध-प्रस्थक, कुलब, अर्ध-कुलब, चातुर्भागिका, अष्टभागिका, षोडशिका, द्वात्रिंशिका, चतुष्षष्टिका अथवा दीप चंपक (दीये का ढकना) से ढांकें तो वह दीपक उस-उस ढांकने वाले पात्र के भीतरी भाग को प्रकाशित—यावत्—प्रभासित करेगा। यदि उस प्रदीप को दीपचम्पक से ढाकते हैं तो वह दीपचंपक के अंतर्वर्ती भाग को आभासित—यावत्—प्रभासित करता रहता है, किन्तु दीपचंपक के बाहरी भाग को नहीं, और न चतुष्षष्टिका के बाहरी भाग को, न कूटाकारशाला को और न कूटाकारशाला के बाहरी भाग को प्रकाशित आदि करेगा।

एवामेव पएसी ! जीवे वि जं जारिसयं पुव्व-कम्म-निबद्धं

इसी प्रकार हे प्रदेशी ! पूर्वभवोपार्जित कर्म के निमित्त से

बोंदि निव्वत्तेइ, तं असंखेज्जेहिं जीव-पएसेहिं सचित्तं करेइ खुड्डियं वा महालियं वा। तं सद्दहाहि णं तुमं पएसी! जहा अन्नो जीवो०, तं चेव"।

जीव को क्षुद्र—छोटे अथवा महत्—बड़े जैसे भी शरीर की प्राप्ति हो तो (आत्मप्रदेशों को संकुचित और विस्तृत करने के स्वभाव के कारण) उस शरीर को अपने असंख्यात आत्मप्रदेशों के द्वारा सचित्त करता है। अतएव हे प्रदेशी! तुम यह श्रद्धा करो कि जीव अन्य है और शरीर अन्य है—जीव, शरीर एक नहीं है।

केसिकुमारसमणवत्तव्वे अयहारयदिट्ठंतेण पच्छाणुतावनिसेहपरूवणं—

केशी कुमारश्रमण के वक्तव्य में अयोहारक दृष्टान्त द्वारा पश्चात्ताप निषेध प्ररूपण—

५६. तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

५६. तत्पश्चात् प्रदेशीराजा ने केशी कुमारश्रमण के समक्ष अपनी परम्परागत धारणा व्यक्त करने के लिए इस प्रकार कहा—

"एवं खलु भंते! मम अज्जगस्स एसा सण्णा-जाव-समोसरणे, जहा तं जीवो, तं सरीरं, नो अन्नो जीवो, अन्नं सरीरं। तयाणंतरं च णं ममं पिउणो वि एसा सन्ना०। तयणंतरं मम वि एसा सण्णा-जाव-समोसरणे। तं नो खलु अहं बहु-पुरिस-परंपरागयं कुल-निस्सियं दिट्ठिं छंडेस्सामि"।

'हे भदन्त! आपका कथन ठीक है और स्वीकार भी कर लूँ, लेकिन मेरे पितामह की यह संज्ञा—यावत्—समवसरण (सर्वमान्य सिद्धान्त) था कि जो जीव है, वही शरीर है और जो शरीर है वही जीव है, लेकिन जीव शरीर से भिन्न नहीं और शरीर जीव से भिन्न नहीं है। उनके बाद मेरे पिता की भी ऐसी ही संज्ञा—यावत्—ऐसा ही समवसरण था और उनके बाद मेरी भी यही संज्ञा—यावत्—ऐसा ही समवसरण है। नो फिर अनेक पुरुष—पीढ़ी परम्परा से चली आ रही कुल-निश्रित (स्वीकृत) दृष्टि—मान्यता को कैसे छोड़ दूँ—कैसे छोड़ सकता हूँ।'

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

प्रदेशीराजा की बात सुनने के पश्चात् केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशीराजा से इस प्रकार कहा—

"मा णं तुमं पएसी! पच्छाणुताविए भवेज्जासि जहा व से पुरिसे अय-हारए"।

'हे प्रदेशी! तुम उस अयोहारक (लोहे के भार को लेकर घूमने वाले लोहवणिक्) की तरह पश्चात्ताप करने वाले मत होओ।'

"के णं भंते! से अय-हारए?"

प्रदेशी—'हे भदन्त! वह अयोहारक कौन था?'

"पएसी! से जहा-नामए केई पुरिसा अत्थत्थी, अत्थ-गवेसी, अत्थ-लुद्धगा, अत्थ-कंखिया, अत्थ-पिवासिया, अत्थ-गवेसणयाए विउलं पणिय-भंडमायाए सुबहुं भत्त-पाण-पत्थयणं गहाय, एगं महं अगामियं, छिन्नावायं, दीहमद्धं अडविं अणु-पविट्ठा।

केशी कुमारश्रमण—हे प्रदेशी! कुछ एक अर्थ (धन) के अभिलाषी, अर्थ की गवेषणा करने वाले, अर्थ के लोभी, अर्थ की कांक्षा वाले, अर्थ की लिप्सावाले पुरुष अर्थोपार्जन के निमित्त विपुल परिमाण में बिक्री करने योग्य पदार्थों और साथ में खाने-पीने के लिये पर्याप्त पाथेय लेकर निर्जन, हिंसक प्राणियों से व्याप्त और विकट—पार होने के लिये रास्ता न मिले ऐसी बहुत बड़ी अटवी में जा पहुँचे।

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए अडवीए कंचि देसं अणुप्पत्ता समाणा, एगं महं अयागरं पासंति, अएणं सव्वओ समंता आइण्णं, विच्छिण्णं, सच्छडं, उवच्छडं, फुडं, गाढं, अवगाढं, पासंति, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावित्ता एवं वयासी—

इसके बाद जब वे लोग उस निर्जन अटवी में कुछ आगे चले तो किसी एक स्थान पर उन्होंने सभी चारों ओर श्रेष्ठ, सारयुक्त, चमकदार लोहे से भरी हुई, लम्बी-चौड़ी और गहरी एक विशाल लोहे की खान देखी, उस खान को देखकर हर्षित, संतुष्ट—यावत्—उल्लसित हृदय होकर आपस में दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

"एस णं देवाणुप्पिया ! अय-भंडे इट्ठे, कंते-जाव-मणामे। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं अय-भारए बंधित्तए"

'देवानुप्रियो ! इस लोहे का संग्रह करना हमारे लिए इष्ट, प्रिय—यावत्—मनोज्ञ है। अतएव हे देवानुप्रियो ! हमें इस लोहे के भार को बांध लेना चाहिए।

त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता अय-भारं बंधंति, बंधित्ता अहाणुपुव्वीए संपत्थिया।

ऐसा कहकर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया और स्वीकार करके लोहभार को बाँध लिया, फिर बांधकर आगे चल दिये।

तए णं ते पुरिसा तीसे अगामियाए-जाव-अडवीए कंचि देसं अणुप्पत्ता समाणा एगं महं तउआगरं पासंति, तउएणं आइण्णं तं चेव-जाव-सद्दावेत्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् वे लोग उसी निर्जन—यावत्—अटवी में चलते-चलते जब किसी दूसरे स्थान पर पहुँचे तब उन्होंने सीसे से भरी हुई एक विशाल सीसे की खान देखी—यावत्—एक दूसरे को बुलाकर कहा—

"एस णं देवाणुप्पिया ! तउय-भंडे-जाव-मणामे। अप्पेणं चेव तउएणं सुबहुं अए लब्भइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अय-भारए छड्डेत्ता तउय-भारए बंधित्तए"।

'हे देवानुप्रियो ! इस सीसे का संग्रह करना—यावत्—मणाम लाभदायक है। क्योंकि थोड़े से सीसे के बदले हम बहुत सा लोहा ले सकते हैं। इसलिए हे देवानुप्रियो ! हमें इस लोहे के भार को छोड़कर सीसे की पोटली बांध लेना योग्य है।'

त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुर्णेति, अय-भारं छड्डेन्ति, तउय-भारं बंधंति।

ऐसा कहकर आपस में एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया और लोहे के भार को छोड़ दिया तथा सीसे की पोटली बांध ली।

तत्थ णं एगे पुरिसे नो संचाएइ अय-भारं छड्डित्तए, तउय-भारं बंधित्तए। तए णं ते पुरिसा तं पुरिसं एवं वयासी—

लेकिन उनमें से एक व्यक्ति लोहे के भार को छोड़कर सीसे की पोटली बाँधने के लिए तैयार नहीं हुआ। तब उन पुरुषों ने उस व्यक्ति से इस प्रकार कहा—

"एस णं देवाणुप्पिया ! तउय-भंडे-जाव-सुबहुं अए लब्भइ। तं छड्डेहि णं देवाणुप्पिया ! अय-भारगं, तउय-भारगं बंधाहि'।

'हे देवानुप्रिय ! इस सीसे का संग्रह श्रेयस्कर है—यावत्—बहुत सा लोहा लिया जा सकता है। इसलिए हे देवानुप्रिय ! इस लोहे के भार को छोड़ दो और सीसे के भार को बाँध लो।'

तए णं से पुरिसे एवं वयासी—

तब उस पुरुष ने इस प्रकार कहा—

'दूराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए; चिराहडे मे देवाणुप्पिया ! अए; अइ-गाढ-बंधण-बद्धे मे देवाणुप्पिया ! अए; असिलिट्ठ-बंधण-बद्धे मे देवाणुप्पिया ! अए; धणिय-बंधण-बद्धे मे देवाणुप्पिया ! अए; नो संचाएमि अय-भारगं छड्डेत्ता, तउय-भारगं बंधित्तए।

'हे देवानुप्रियो ! इस लोहे के भार को मैं बहुत दूर से लादे चला आ रहा हूँ, हे देवानुप्रियो ! इस लोहे के भार को बहुत समय से लादे हुए हूँ, हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को अत्यन्त गाढ़ बन्धन से बाँध रखा है, हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को अशिथिल बन्धन से बाँधा है, हे देवानुप्रियो ! मैंने इस लोहे को अत्यधिक प्रगाढ़ बन्धन से कसकर बाँधा है, इसलिए मैं इस लोह-भार को छोड़कर सीसे के भार को नहीं बाँध सकता हूँ।'

तए णं ते पुरिसा तं पुरिसं जाहे नो संचाएंति बहूहिं आघवणाहि य पन्नवणाहि य आघवित्तए वा पन्नवित्तए वा, तया अहाणुपुव्वीए संपत्थिया।

तत्पश्चात् वे पुरुष जब उस व्यक्ति को अनुकूल—प्रतिकूल सभी तरह की आख्यापनाओं (सामान्य रूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) और प्रज्ञापनाओं (विशेषरूप से प्रतिपादन करने वाली वाणी) से समझाने—बुझाने में सफल नहीं हुए तब यथाक्रम से आगे-आगे चलते गये।

एवं तंबागरं, रुप्पागरं, सुवण्णागरं, रयणागरं, वइरागरं।

इसी प्रकार से आगे-आगे चलने पर क्रमशः ताँबे की खान, चांदी की खान, रत्नों की खान और वज्र हीरे की खान देखी और वहाँ पूर्व की अल्पमूल्य वाली वस्तु को छोड़कर बहुमूल्य वाली वस्तु की पोटली बाँधते गये। लेकिन अपने उस दुराग्रही साथी के दुराग्रह को छुड़वाने में समर्थ नहीं हो सके।

तए णं ते पुरिसा जेणेव सया सया जणवया, जेणेव साइं साइं नयराइं, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता वइर-विक्कयणं करेंति, करेत्ता सुबहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलगं गिण्हंति, गेण्हित्ता अट्ठ-तलमूसिय-वडिंसगे कारावेंति। ण्हाया कयबलिकम्मा उप्पिं पासाय-वर-गया, फुट्टमाणेहिं मुइंग-मत्थएहिं, बत्तीसइ-बद्धएहिं नाडएहिं वर-तरुणी-संपउत्तेहिं उवनच्चिज्जमाणा, उवलालिज्जमाणा, इट्ठे सद्दफरिस-जाव-विहरंति ।

तत्पश्चात् वे व्यक्ति जहाँ अपना-अपना जनपद—देश था, जहाँ अपनी-अपनी नगरी थी, वहाँ आये, आकर हीरों को बेचा, बेचकर प्राप्त धन से बहुत सी दास-दासी, गाय, भैंस और भेड़ों को लिया, लेकर आठ-आठ तल्ले (मंजिल) वाले ऊँचे भवन बनवाये और उसके बाद स्नान, बलिकर्म आदि करके उन श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपरी तल्लों में बैठकर जोर-जोर से बजाये जा रहे मृदंग आदि वाद्यनिनादों और वर तरुणियों द्वारा की जा रही नृत्य-गान युक्त बत्तीस प्रकार की नाट्य लीलाओं को देखने के साथ इष्ट शब्द, स्पर्श आदि मूलक मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगते हुए विचरने लगे ।

तए णं से पुरिसे अय-भारेण-जेणेव सए नयरे तेणेव उवा-गच्छइ । अय-विक्किणणं करेइ, करेत्ता तंसि अप्प-मोल्लंसि निहियंसि झीण-परिव्वए ते पुरिसे उप्पिं पासाय-वर-गए-जाव-विहरमाणे पासइ, पासित्ता एवं वयासी—

तत्पश्चात् लोह भार सहित वह पुरुष जहाँ अपना नगर था, वहाँ आया । उस लोहे को बेचा, किन्तु अल्प मूल्य वाला होने से उसे अल्प लाभ हुआ, तब अपने साथी पुरुषों को श्रेष्ठ प्रासादों के ऊपर—यावत्—विचरण करते हुए देखा, देखकर अपने आप से इस प्रकार बोला—

'अहो णं अहं अधन्ने, अपुण्णे, अकयत्थे अकय-लक्खणे, हिरि-सिरि-वज्जिए, हीण-पुण्ण-चाउद्दसे, दुरंत-पंत-लक्खणे । जइ णं अहं मित्ताण वा नाईण वा नियगाण वा सुणेंतओ, तो णं अहं पि एवं चेव उप्पिं पासाय-वर-गए-जाव-विहरंतो ।

'अरे मैं अधन्य, पुण्यहीन, अकृतार्थ; शुभ लक्षणों से रहित श्री-ह्री से परिवर्जित, हीनपुण्यचतुर्दश (कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को उत्पन्न), दुरन्त प्रान्त लक्षण वाला हूँ । यदि मैं उन मित्रों, ज्ञातिबन्धुओं और अपने हितैषियों की बात मान लेता तो मैं भी इन्हीं की तरह श्रेष्ठ प्रासाद में रहता हुआ—यावत्—विचरण करता—समय व्यतीत करता ।'

से तेणट्ठेणं पएसी ! एवं वुच्चइ—"मा णं तुमं पएसी ! पच्छाणुताविए भवेज्जासि जहा व से पुरिसे अय-हारए" ।

इसीलिए हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि यदि तुम अपना दुराग्रह नहीं छोड़ सके तो तुम्हें भी उस लोहभार को लेनेवाले दुराग्रही की तरह पश्चात्तापित होना पड़ेगा ।'

पएसिरन्नो गिहिधम्मपडिवत्ती, रमणिज्ज-अरमणिज्ज-विसए वणसंडाइ दिट्ठंता य—

प्रदेशी राजा की गृही धर्मप्रतिपत्ति और रमणीय-अरमणीय के विषय में वनखण्ड का दृष्टान्त—

५७. एत्थ णं से पएसी राया संबुद्धे केसिं कुमार-समणं वंदइ एवं वयासी—

५७. इस प्रकार से समझाये जाने पर यथार्थबोध को प्राप्त कर प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण की वन्दना की और इस प्रकार कहा—

"नो खलु भंते ! अहं पच्छाणुताविए भविस्सामि जहा व से पुरिसे अयहारए । तं इच्छामि णं देवाणुप्पियाणं अंतिए केवलि-पन्नत्तं धम्मं निसामित्तए" ।

'हे भदन्त ! मैं उस अयोहारक के समान पश्चात्तापित नहीं होऊँगा । अतएव आप देवानुप्रिय से केवलिप्रज्ञप्त धर्म को श्रवण करना चाहता हूँ ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि" ।

'हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख उपजे, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध—विलम्ब मत करो' कुमारश्रमण केशी स्वामी ने उत्तर दिया ।

धम्मकहा जहा चित्तस्स, तहेव गिहि-धम्मं पडिवज्जइ, पडि-

तत्पश्चात् प्रदेशी की भावना को समझ केशी कुमारश्रमण ने जैसे चित्तसारथी को धर्मोपदेश देकर धर्म समझाया था, उसी प्रकार प्रदेशी राजा को भी धर्मकथा सुनाकर श्रावक धर्म का विवेचन किया, एवं तथैव (चित्तसारथी की तरह) प्रदेशी ने

पडिवज्जित्ता जेणेव सेयविया नयरी, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

गृहस्थ धर्म को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ सेयविया नगरी थी, उस ओर चलने को उद्यत हुआ।

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशीराजा से इस प्रकार कहा—

"जाणासि तुमं पएसी ! कइ आयरिया पन्नत्ता ?"

'हे प्रदेशी ! जानते हो तुम कि कितने प्रकार के आचार्य कहे हैं ?'

"हंता जाणामि, तओ आयरिया पन्नत्ता। तं जहा—कलायरिए, सिप्पायरिए, धम्मायरिए।"

प्रदेशी—'हाँ भदन्त ! जानता हूँ कि तीन प्रकार के आचार्य बताये हैं–यथा–१. कलाचार्य २. शिल्पाचार्य और ३. धर्माचार्य।'

"जाणासि णं तुमं पएसी ! तेसिं तिण्हं आयरियाणं कस्स का विणय-पडिवत्ती पउंजियव्वा ?"

केशी कुमारश्रमण—'जानते हो तुम हे प्रदेशी ! कि उक्त तीन आचार्यों में से किसकी कैसी विनयप्रतिपत्ति—विनय, व्यवहार करना चाहिए ?'

"हंता जाणामि, कलायरियस्स सिप्पायरियस्स उवलेवणं संमज्जणं वा करेज्जा, पुरओ पुप्फाणि वा आणवेज्जा, मज्जावेज्जा, मंडावेज्जा, भोयावेज्जा वा, विउलं जीवियारिहं पीइ-दाणं दलएज्जा, पुत्ताणुपुत्तियं वित्तिं कप्पेज्जा।

प्रदेशी—'हाँ भदन्त ! जानता हूँ कि कलाचार्य और शिल्पाचार्य के शरीर पर चन्दनादि का लेप और तेल आदि की मालिश करना चाहिए, उन्हें स्नान कराना चाहिए, उनके आगे पुष्प आदि भेंट रूप में रखना चाहिए, स्नान कराके और आभूषणों से अलंकृत करके उन्हें सम्मान पूर्वक भोजन कराना चाहिए और फिर आजीविका के योग्य विपुल प्रीतिदान (भेंट) देना चाहिए एवं उनके लिए ऐसी वृत्ति की व्यवस्था कर देना चाहिए कि पुत्र-पौत्रादि परम्परा भी जिसका लाभ ले सके।

जत्थेव धम्मायरियं पासिज्जा, तत्थेव वंदेज्जा, नमंसेज्जा, सक्कारेज्जा, संमाणेज्जा, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं पज्जुवासेज्जा, फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेज्जा, पाडिहारिएणं पीढफलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेज्जा।"

जहाँ भी धर्माचार्य के दर्शन हों, वहीं उनको वन्दन-नमस्कार करना चाहिए, सत्कार-सम्मान करना चाहिए और कल्याणरूप मंगलरूप, देवरूप, एवं चैत्यरूप मानकर उनकी पर्युपासना करना चाहिए, प्राशुक-एषणीय अशन-पान खाद्य-स्वाद्य आदि से प्रतिलाभित करना चाहिए, प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया संस्तारक आदि ग्रहण करने के लिए उनसे प्रार्थना करना चाहिए।'

"एवं च ताव तुमं पएसी ! एवं जाणासि, तहा वि णं तुमं ममं वामं-वामेणं-जाव-वट्टित्ता ममं एयमट्ठं अक्खामित्ता जेणेव सेयविया नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए"।

केशी कुमारश्रमण—इस प्रकार की विनयप्रतिपत्ति जानते हुए भी तुम, हे प्रदेशी ! मेरे प्रति प्रतिकूल व्यवहार यावत् प्रवृत्ति करके और उसके लिये मुझसे क्षमा माँगे बिना सेयविया नगरी की ओर चलने के लिए उद्यत हो रहे हो।'

तए णं से पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

तब प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

"एवं खलु भंते ! मम एयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

'हे भदन्त ! मुझे इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ है कि—

"एवं खलु अहं देवाणुप्पियाणं वामं-वामेणं-जाव-वट्टिए, तं सेयं खलु मे कल्लं पाउ-प्पभायाए रयणीए-जाव-तेयसा जलंते, अंतेउर-परियाल-सद्धिं संपरिवुडस्स देवाणुप्पिए वंदित्तए, नमंसित्तए,

'मैं आप देवानुप्रिय के प्रति प्रतिकूल व्यवहार—यावत्—प्रवृत्ति करता रहा हूँ, तो उसके लिए यह उचित है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य प्रकाशित होने पर अन्तःपुर परिवार को साथ लेकर आप देवानुप्रिय को वन्दन-नमस्कार करने और अवमानना

एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामित्तए"—

त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए, तामेव दिसिं पडिगए।

५८. तए णं से पएसी राया कल्लं पाउ-प्पभायाए रयणीए-जाव-तेयसा जलंते, हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियए, जहेव कूणिए तहेव निग्गच्छइ, अंतेउर-परियाल-सद्धिं संपरिवुडे पंचविहेणं अभिगमेणं वंदइ, नमंसइ, एयमट्ठं भुज्जो भुज्जो सम्मं विणएणं खामेइ।

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिस्स रन्नो, सूरियकन्त-प्पमुहाणं देवीणं, तीसे य महइमहालियाए महच्चपरिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ।

तए णं पएसी राया धम्मं सोच्चा, निसम्म उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता केसिं कुमार-समणं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव सेयविया नयरी, तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं केसी कुमार-समणे पएसिं रायं एवं वयासी—

"मा णं तुमं पएसी ! पुव्विं रमणिज्जे भवित्ता, पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि, जहा से वण-संडे इ वा नट्ट-साला इ वा इक्खुवाडए इ वा खल-वाडए इ वा"।

"कहं णं भंते ?"

'जया णं वण-संडे पत्तिए, पुप्फिए, फलिए, हरियग-रेरिज्जमाणे, सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ, तया णं वण-संडे रमणिज्जे भवइ। जया णं वण-संडे नो पत्तिए, नो पुप्फिए, नो फलिए, नो हरियग-रेरिज्जमाणे, नो सिरीए अईव अईव उवसोभेमाणे चिट्ठइ, तया णं जुण्णे, झडे, परिसडिय-पंडु-पत्ते, सुक्क-रुक्खे इव मिलायमाणे चिट्ठइ, तया णं वण-संडे नो रमणिज्जे भवइ।

जया णं नट्ट-साला वि गिज्जइ, वाइज्जइ, नच्चिज्जइ, हसि-

रूप अपने अपराध की बारम्बार विनयपूर्वक क्षमापना के लिए सेवा में उपस्थित होऊँ—

ऐसा निवेदन कर वह जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

५८. तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा कल (आगामी दिन) रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तन होने—यावत्—जाज्वल्यमान तेज सहित सूर्य के प्रकाशित होने पर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—उल्लसित हृदय हो कोणिक राजा की तरह अपने नगर से निकला और अन्तःपुर परिवार आदि के साथ पाँच प्रकार के अभिगमपूर्वक वन्दन-नमस्कार किया और यथाविधि विनयपूर्वक अपने उपेक्षापूर्ण आचरण के लिए बारम्बार क्षमा याचना की।

इसके बाद केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा, सूर्यकान्ता आदि रानियों और उस अतिविशाल परिषदा को—यावत्—धर्मकथा सुनाई।

तदनन्तर प्रदेशी राजा धर्मदेशना सुनकर और उसका मन में विचारकर अपने आसन से उठा, उठकर उसने केशी कुमारश्रमण को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ सेयविया नगरी थी, उस ओर चलने के लिए उन्मुख हुआ।

तब केशी कुमारश्रमण ने प्रदेशी राजा से इस प्रकार कहा—

'हे प्रदेशी ! पूर्व में रमणीय होकर पश्चात् अरमणीय मत हो जाना, जैसे कि वनखंड अथवा नृत्यशाला अथवा इक्षुवाड़ (गन्ने का खेत) अथवा खलवाड (खलिहान) पूर्व में रमणीय होकर बाद में अरमणीय हो जाते हैं।'

प्रदेशी—'हे भदन्त ! यह कैसे कि वनखण्ड आदि पूर्व में रमणीय होकर बाद में अरमणीय हो जाते हैं ?'

केशी कुमारश्रमण—प्रदेशी ! तुम सुनो कि ये वनखण्ड आदि पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय कैसे हो जाते हैं—जब तक वनखण्ड हरे-भरे पत्तों से युक्त होता है, पुष्पों से सम्पन्न होता है, फलों से व्याप्त होता है, हरियाली से उपशोभित होता है और अपनी श्री-समृद्धि से अतीव-अतीव आनन्दजनक होता है, तब तक वह वनखण्ड रमणीय लगता है। लेकिन जब वही वनखण्ड पत्तों से युक्त नहीं रहता है, पुष्पों से रहित होता है, फलों से व्याप्त नहीं रहता है, हरियाली से उपशोभित नहीं होता है और अपनी समृद्धि से मन प्रसन्न नहीं करता है, तब छाल के जीर्ण-शीर्ण हो जाने, झड़ जाने, सड़ जाने और पत्तों के पीले और म्लान हो जाने, कुम्हला जाने पर सूखे वृक्ष की तरह रमणीय नहीं रहता है।

इसी प्रकार से नृत्यशाला भी जब तक गीत गाये जा रहे हैं, नृत्य होते रहते हैं, हास्य से व्याप्त रहती है और विविध प्रकार

ज्जइ, रमिज्जइ, तया णं नट्ट-साला रमणिज्जा भवइ। जया णं नट्ट-साला नो गिज्जइ-जाव-नो रमिज्जइ, तया णं नट्ट-साला अरमणिज्जा भवइ।

की रमतें—क्रीड़ायें होती रहती हैं, तब तक नृत्यशाला रमणीय सुहावनी लगती है, लेकिन जब उसी नृत्यशाला में संगीत गान—यावत्—क्रीड़ायें नहीं हो रहीं हों तब वही नृत्यशाला अरमणीय—अप्रिय असुहावनी हो जाती है।

जया णं इक्खु-वाडे छिज्जइ, भिज्जइ, सिज्जइ, पिज्जइ, दिज्जइ, तया णं इक्खु-वाडे रमणिज्जे भवइ। जया णं इक्खु-वाडे नो छिज्जइ-जाव-तया णं इक्खु-वाडे अरमणिज्जे भवइ।

इसी तरह से हे प्रदेशी ! जब तक इक्षुवाड में ईख कटती हो टूटती हो, पेरी जाती हो और लोग रस पीते हों और कोई उसे देते-लेते हों, तब तक वह ईक्षुवाड रमणीय लगती है। लेकिन जब उसी इक्षुवाड़ में ईख नहीं कटती हो आदि तब वही इक्षुवाड़ मन को अरमणीय—अनिष्टकर प्रतीत होने लगती है।

जया णं खल-वाडे उच्छुब्भइ, उडुइज्जइ, मलइज्जइ, मुणिज्जइ, खज्जइ पिज्जइ, दिज्जइ, तया णं खल-वाडे रमणिज्जे भवइ। जया णं खल-वाडे नो उच्छुब्भइ-जाव-अरमणिज्जे भवइ।

इसी प्रकार जब खलवाड़ में धान्य के ढेर लगे रहते हैं, उड़ावनी होती रहती है, धान्य का मर्दन (दांय) होता रहता है, तिल से तेल निकालने के लिये कोल्हू चलते रहते हैं, लोग एक साथ मिल-बैठकर भोजन खाते-पीते, देते-लेते रहते हैं, तब वह खलिहान रमणीय मालूम होता है। लेकिन जब धान्य के ढेर आदि नहीं रहते हैं, तब वही खलिहान अरमणीय-अशोभनीय-कुरूप दीखने लगता है।

से तेणट्ठेणं पएसी ! एवं वुच्चइ, मा णं तुमं पएसी ! पुव्वि रमणिज्जे भवित्ता, पच्छा अरमणिज्जे भविज्जासि, जहा से वण-संडे इ वा।"

इसीलिये हे प्रदेशी ! मैंने यह कहा है कि पहले रमणीय होकर बाद में तुम अरमणीय मत हो जाना, जैसे कि वे वनखण्ड आदि हो जाते हैं।'

तए णं पएसी राया केसिं कुमार-समणं एवं वयासी—

तब प्रदेशी राजा ने केशी कुमारश्रमण से इस प्रकार निवेदन किया—

"नो खलु भंते ! अहं पुव्वि रमणिज्जे भवित्ता, पच्छा अरमणिज्जे भविस्सामि, जहा से वण-संडे इ वा, जाव खल-वाडे इ वा। अहं णं सेयविया-नयरी-पामोक्खाइं सत्त गाम-सहस्साइं चत्तारि भागे करिस्सामि। एगं भागं बलवाहणस्स दलइस्सामि, एगं भागं कोट्ठागारे छुभिस्सामि, एगं भागं अंते-उरस्स दलइस्सामि, एगेणं भागेणं महइ-महालयं कूडागार-सालं करिस्सामि। तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं दिन्न-भइ-भत्त-वेयणेहिं विउलं असणं-जाव-साइमं-उवक्खडावेत्ता, बहूणं, समण-माहण-भिक्खुयाणं पन्थिय-पहियाणं परिभाएमाणे परिभाएमाणे बहूहिं सीलव्वय-गुणव्वय-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासस्स-जाव-विहरिस्सामि"।

'हे भदन्त ! मैं वनखण्ड—यावत्—खलवाड़ की तरह पहले रमणीय होकर बाद में अरमणीय नहीं बनूंगा। क्योंकि मैंने यह विचार किया है कि मैं सेयविया नगरी आदि सात हजार गाँवों के चार विभाग करूंगा। उनमें से एक भाग राज्य की रक्षा के लिये बलवाहन (सेना) के लिये दूँगा, एक भाग अन्न भंडारों के लिये सुरक्षित रखूंगा अर्थात् एक भाग की आय से कोठारों में अन्न भरूँगा, एक भाग अंतःपुर के निर्वाह और रक्षा के लिये दूंगा और शेष एक भाग से एक विशाल कूटाकारशाला का निर्माण कराके बहुत से व्यक्तियों को भोजन और मासिक वेतन तथा दैनिक मजदूरी देकर प्रतिदिन प्रचुर परिमाण में अशन पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चारों प्रकार का आहार तैयार करवाया करूँगा और अनेक श्रमणों, माहणों, भिक्षुकों, पथिकों यात्रियों को देते हुए तथा विविध प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पोषधोपवासों का पालन करते हुए अपना जीवन बिताऊँगा।'

त्ति कट्टु जामेव दिसिं, पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए।

इस प्रकार कहकर वह जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

तए णं से पएसी राया कल्लं-जाव-तेयसा जलंते सेयविया-

तत्पश्चात् उस प्रदेशी राजा ने कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—तेज से, सूर्य प्रकाशित होने पर सेयविया

पामोक्खाइं सत्त गाम-सहस्साइं चत्तारि भाए करेइ। एगं भागं बलवाहणस्स दलइ-जाव-कूडागार-सालं करेइ, तत्थ णं बहूहिं पुरिसेहिं-जाव-उवक्खडावेत्ता बहूणं समण-जाव-परिभाएमाणे विहरइ।

सूरियकंताकयविसप्पओगो, पएसिस्स समाहिमरणं, सूरियाभदेवत्तेण उववाओ य—

५९. तए णं से पएसी राया समणोवासए जाए अभिगय-जीवाजीवे-जाव-विहरइ। जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च पुरं च अंतेउरं च जणवयं च अणाढायमाणे यावि विहरइ।

तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

"जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए, तप्पभिइं च णं रज्जं च रट्ठं च-जाव-अंतेउरं च ममं च जणवयं च अणाढायमाणे विहरइ। तं सेयं खलु मे पएसिं रायं केण वि सत्थ-पओगेण वा अग्गि-पओगेण वा मन्त-प्पओगेण वा विस-प्पओगेण वा उद्दवेत्ता, सूरियकंतं कुमारं रज्जे ठवित्ता, सयमेव रज्ज-सिरिं कारेमाणीए, पालेमाणीए विहरित्तए"—

त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सूरियकंतं कुमारं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"जप्पभिइं च णं पएसी राया समणोवासए जाए, तप्पभिइं च णं रज्जं च -जाव-अंतेउरं च ममं च जणवयं च माणुस्सए य कामभोगे अणाढायमाणे विहरइ। तं सेयं खलु तव पुत्ता! पएसिं रायं केणइ सत्थ-प्पओगेण वा-जाव-उद्दवित्ता सयमेव रज्ज-सिरिं कारेमाणे, पालेमाणे विहरित्तए"।

तए णं सूरियकंते कुमारे सूरियकंताए देवीए एवं वुत्ते समाणे सूरियकंताए देवीए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तीसे सूरियकंताए देवीए इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

"मा णं सूरियकंते कुमारे पएसिस्स रन्नो इमं ममं रहस्स-भेयं करिस्सइ"

त्ति कट्टु पएसिस्स रन्नो छिद्दाणि य मम्माणि य रहस्साणि य

प्रमुख सात हजार गाँवों के चार विभाग किये। एक भाग बल-वाहन को दिया—यावत्—कूटाकारशाला का निर्माण कराया और उसमें बहुत से पुरुषों को रखकर—यावत्—भोजन पकवाकर अनेक श्रमणों को—यावत्—यात्रिकों को बाँटता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

सूर्यकान्ता-कृत विषप्रयोग, प्रदेशी राजा का समाधि मरण और सूर्याभ देवत्व के रूप में उपपाद—

५९. तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया और जीव-अजीव आदि तत्वों का ज्ञाता होकर—यावत्—जीवन व्यतीत करने लगा। जब से वह प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हुआ, उसी दिन से राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, भण्डार, पुर, अंतःपुर और जनपद के प्रति उदासीन होता हुआ विचरने लगा।

तब उस सूर्यकान्ता देवी को इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—संकल्प समुत्पन्न हुआ—

'जिस समय से प्रदेशी राजा श्रमणोपासक हो गया है, तब से राज्य, राष्ट्र—यावत्— अंतःपुर, जनपद और मुझसे उदासीन होकर विचरण कर रहा है। अतएव मुझे यही उचित है कि शस्त्र-प्रयोग, अग्निप्रयोग, मन्त्रप्रयोग अथवा विषप्रयोग द्वारा प्रदेशी राजा को मारकर और सूर्यकान्त कुमार को राज्य पर स्थापित कर—राजा बनाकर स्वयं राज्यश्री का भोग करती हुई और प्रजा का पालन-रक्षण करती हुई आनन्दपूर्वक विचरण करूँ।'

इस प्रकार उसने विचार किया और विचार करके सूर्यकान्त कुमार को बुलाया एवं बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

'जबसे प्रदेशी राजा ने श्रमणोपासक धर्म स्वीकार किया है, उस दिन से वह राज्य—यावत्—अंतःपुर, मेरी, जनपद और मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों की ओर से उदासीन होकर अपना समय बिताता है। इसलिये हे पुत्र! तुम्हें यह उचित है कि प्रदेशी राजा को शस्त्रप्रयोग आदि किसी न किसी उपाय से मारकर स्वयं राज शासन करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए विचरण करो।'

तब उस सूर्यकान्त कुमार ने सूर्यकान्ता देवी के इन विचारों का आदर नहीं किया—उन पर ध्यान नहीं दिया, किन्तु मौन धारण कर शांत खड़ा रहा। तब उस सूर्यकान्ता देवी को इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—विचार उत्पन्न हुआ—

'कहीं ऐसा न हो कि सूर्यकान्त कुमार प्रदेशी राजा के सामने मेरे इस रहस्य को प्रकाशित कर दे।'

इस प्रकार सोचकर वह प्रदेशी राजा के दोष रूप छिद्रों की, कुकृत्य रूप आंतरिक मार्गों की, गुप्त रहस्यों की, एकान्त

विवराणि य अंतराणि य पडिजागरमाणी पडिजागरमाणी विहरइ।

निर्जन स्थानों रूप विवरों की और अवसर रूप अन्तरों की शोध खोज करते हुए समय बिताने लगी अर्थात् मारने के उपायों और मौकों की तलाश में रहने लगी।

तए णं सूरियकंता देवी अन्नया कयाइ पएसिस्स रन्नो अंतरं जाणइ, जाणित्ता असणं-जाव-साइमं सव्व-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं विसप्पओगं पउंजइ।

तत्पश्चात् किसी एक दिन अनुकूल अवसर मिलने पर सूर्यकान्ता देवी ने प्रदेशी राजा को मारने के लिए, अशन—यावत्—स्वाद्य रूप भोजन में, पहनने आदि के सभी वस्त्रों, गंधों, माला अलंकारों पर विष डालकर विषाक्त-विषैला कर दिया।

पएसिस्स रन्नो ण्हायस्स, सुहासण-वर-गयस्स तं विस-संजुत्तं असणं-जाव-साइमं वत्थं-जाव-अलंकारं निसिरेइ, घायइ। तए णं तस्स पएसिस्स रन्नो तं विस-संजुत्तं असणं-जाव-साइमं आहारेमाणस्स सरीरगम्मि वेयणा पाउब्भूया उज्जला, विउला पगाढा, कक्कसा, कडुया, फरुसा, णिट्ठुरा, चंडा, तिव्वा, दुक्खा, दुग्गा, दुरहियासा, पित्त-जर-परिगय-सरीरे दाहवक्कन्तिए यावि विहरइ।

तत्पश्चात् स्नान करके भोजन के लिए सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर आसीन उस प्रदेशी राजा को मारने के लिए वह विष मिला हुआ अशन—यावत्—स्वाद्य भोजन परोसा, विषमय वस्त्र पहनाये—यावत्—विषमय अलंकारों से उसे विभूषित किया। तब विष संयुक्त उस अशन—यावत्—स्वाद्य आहार का आहार करने से उस प्रदेशी राजा के शरीर में उत्कट, प्रचुर, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, परुष, निष्ठुर, प्रचण्ड, तीव्र, दुःखद, विकट, दुस्सह वेदना उत्पन्न हुई और पित्त ज्वर से परिव्याप्त हो शरीर में जलन होने लगी।

६०. तए णं से पएसी राया सूरियकंताए देवीए अत्ताणं संपलद्धं जाणित्ता, सूरियकंताए देवीए मणसा वि अप्पदुस्समाणे जेणेव पोसह-साला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसह-सालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवण-भूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहित्ता दब्भ-संथारगं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भ-संथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियं-निसण्णे, करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं अञ्जलिं मत्थए कट्टु एवं वयासी—

६०. तत्पश्चात् वह प्रदेशी राजा सूर्यकान्ता देवी द्वारा किये गये इस उत्पात (षड्यन्त्र, धोखे) को जानकर भी सूर्यकान्ता देवी के प्रति मन में रंचमात्र भी द्वेष-रोष न करते हुए जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला की प्रमार्जना की, प्रमार्जना करके उच्चार—प्रस्रवण भूमि (स्थंडिलभूमि) की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भसंस्तारक-दर्भ का आसन बिछाया, बिछाकर उस दर्भ के आसन पर बैठा, बैठकर पूर्वदिशा की ओर मुख करके पर्यंकासन (पद्मासन) से स्थित हो उसने दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-संपत्ताणं। नमोत्थु णं केसिस्स कुमार-समणस्स मम धम्मोवएसगस्स, धम्मायरियस्स। वंदामि णं भगवंतं तत्थ-गयं इहगए। पासउ मे भगवं तत्थ-गए इह-गयं' त्ति कट्टु वंदइ, नमंसइ।

अरिहंत भगवन्तों को—यावत्—सिद्धगति को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो। मेरे धर्मोपदेशक, धर्माचार्य कुमारश्रमण केशीस्वामी को नमस्कार हो। यहाँ स्थित मैं वहाँ विराजमान भगवन्त को वन्दन करता हूँ। वहाँ विराजमान भगवान यहाँ स्थित मुझे देखें इस प्रकार कहकर वन्दन नमस्कार किया।

"पुव्विं पि णं मए केसिस्स कुमार-समणस्स अंतिए थूल-पाणाइवाए पच्चक्खाए-जाव-परिग्गहे। तं इयाणिं पि णं तस्सेव भगवओ अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि-जाव-परिग्गहं, सव्वं कोहं-जाव-मिच्छा-दंसण-सल्लं, अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामि, चउव्विहं पि आहारं जावज्जीवाए पच्चक्खामि, जं पि य मे

पहले भी मैंने केशी कुमारश्रमण के पास स्थूल प्राणातिपात (हिंसा)—यावत्—स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान कर लिया था। इस समय पुनः उन्हीं भगवन्तों के समक्ष सर्व प्राणातिपात—यावत्—परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ, समस्त क्रोध—यावत्—मिथ्यादर्शनशल्य का प्रत्याख्यान करता हूँ, अकरणीय (न करने योग्य) कर्मों एवं योगप्रवृत्ति का प्रत्याख्यान करता हूँ, यावज्जीवन के लिए चतुर्विध आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ।

सरीरं इट्ठं-जाव-फुसंतु त्ति एयं पि य णं चरिमेहिं ऊसास-निस्सासेहिं वोसिरामि"

यद्यपि मुझे यह शरीर प्रिय रहा है—यावत्—यह ध्यान रखा है, कि इसको कोई रोग आदि स्पर्श न करें, परन्तु अब इस शरीर का भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक के लिए परित्याग करता हूँ।'

त्ति कट्टु आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, काल-मासे कालं किच्चा सोहम्मेकप्पे, सूरियाभे विमाणे उववाय-सभाए-जाव-उववण्णो।

इस प्रकार के निश्चय के साथ पुनः आलोचना और प्रतिक्रमण करके समाधिपूर्वक मरण के समय में मरण करके सौधर्म कल्प के सूर्याभ विमान की उपपात सभा में—यावत्—देवरूप में उत्पन्न हुआ।

तए णं से सूरियाभे देवे अहुणोववन्नए चेव समाणे पञ्चविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ। तं जहा—आहार-पज्जत्तीए सरीर-पज्जत्तीए इन्दिय-पज्जत्तीए आण-पाण पज्जत्तीए भासा-मण-पज्जत्तीए।

तत्पश्चात् तत्काल उत्पन्न हुआ वह सूर्याभदेव पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्ति भाव को प्राप्त हुआ। उन पर्याप्तियों के नाम इस प्रकार हैं—१. आहार पर्याप्ति २. शरीर पर्याप्ति ३. इन्द्रिय पर्याप्ति ४. श्वासोच्छ्वास पर्याप्ति और ५. भाषा—मनः-पर्याप्ति।

तं एवं खलु भो सूरियाभेणं देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी, दिव्वा देव-जुई, दिव्वे देवाणुभावे लद्धे, पत्ते, अभिसमन्नागए"।

इस प्रकार हे गौतम ! उस सूर्याभदेव ने यह दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव—देवप्रभाव उपार्जित किया है, प्राप्त किया है और अधिगत-आधीन किया है।"

सूरियाभदेवभवाणंतरं पएसिरायजीवस्स दढपइन्नभवे मोक्खगमण निरूवणं—

सूर्याभदेव भवानन्तर प्रदेशी राजा के जीव का दृढ़प्रतिज्ञ भव में मोक्षगमन का निरूपण—

६१. "सूरियाभस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?"

"गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता"।

"से णं सूरियाभे देवे ताओ देव-लोगाओ आउ-क्खएणं, भव-क्खएणं, ठिइ-क्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ, कहिं उववज्जिहिइ ?"

गोयमा ! महाविदेहे वासे जाणि इमाणि कुलाणि भवंति, तं जहा—अड्ढाइं, दित्ताइं, विउलाइं, विच्छिण्ण-विपुल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइं, बहुजण-बहुजायरूव-रययाइं, आओग-पओग-संपउत्ताइं, विच्छड्डिय-पउर-भत्त-पाणाइं, बहु-दासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्पभूयाइं, बहु-जणस्स अपरिभूयाइं, तत्थ अन्नयरेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ।

६१. गौतम—'हे भदन्त ! उस सूर्याभदेव की कितने काल की आयुष्य स्थिति—मर्यादा बतलाई है ?'

भगवान—'हे गौतम ! उसकी आयुष्य मर्यादा चार पल्योपम की बताई है।'

गौतम—'हे भगवन् ! वह सूर्याभदेव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

भगवान—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो कुल आढ्य-धन-धान्य समृद्ध दीप्त—प्रभावक, विपुल—बड़े कुटुम्ब—परिवार वाले बड़े-बड़े बहुत से भवनों, शैयाओं, आसनों और यान-वाहनों के स्वामी, बहुत धन—सोने-चांदी के अधिपति, अर्थोपार्जन के व्यापार व्यवसाय में प्रवृत्त, दीनजनों को जिनके यहाँ से प्रचुर मात्रा में भोजन-पान प्राप्त होता है, जिनके पास सेवा करने के लिए बहुत से दास-दासी रहते हैं, जिनके यहाँ पुष्कल गाय, भैंस, भेड़ आदि पशुधन हैं और जिनका बहुत से लोगों द्वारा भी पराभव—तिरस्कार नहीं किया जा सकता है, ऐसे प्रसिद्ध कुलों में से किसी एक कुल में वह पुत्ररूप से उत्पन्न होगा।

तए णं तंसि दारगंसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि अम्मा-पिऊणं धम्मे दढा पइन्ना भविस्सइ।

तब उस बालक के गर्भ में आने पर उसके माता पिता की धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा—श्रद्धा होगी।

तए णं तस्स दारगस्स नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं, अद्धट्ठमाण राइंदियाणं, वीइक्कंताणं, सुकुमाल-पाणिपायं, अहीण-पडि-

तत्पश्चात् नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिन बीतने पर उस बालक की माता सुकुमाल हाथ पैर वाले, शुभ लक्षणों एवं

पुण्ण-पंचिंदिय-सरीरं, लक्खण-वंजण-गुणोववेयं, माणुम्माण-पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुन्दरं, ससि-सोमाकारं, कंतं, पिय-दंसणं, सुरूवं दारयं पयाहिइ ।

परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों और शरीर वाले, शुभ लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त, माप-तोल-नाप से बराबर सुजात, सर्वांग सुन्दर, चन्द्रमा के समान सौम्य आकार वाले, कमनीय, प्रियदर्शन एवं सुरूपवान पुत्र को जन्म देगी ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मा-पियरो पढमे दिवसे ठिइ-वडियं करेहिंति । तइय-दिवसे चंद-सूर-दंसणगं करिस्संति । छट्ठे दिवसे जागरियं जागरिस्संति । एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते, संपत्ते, बारसाहे दिवसे, निव्वित्ते, असुइ-जाय-कम्म-करणे, चोक्खे, संमज्जिओवलित्ते, विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेस्संति, मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेत्ता, तओ पच्छा ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अलंकिया, भोयण-मंडवंसि सुहासण-वरगया, तेण मित्त-णाइ-जाव-परिजणेण सद्धिं विउलं असणं-जाव-साइमं आसाएमाणा, विसाएमाणा, परिभुंजेमाणा, परिभाएमाणा एवं चेव णं विहरिस्संति । जिमिय-भुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता, चोक्खा, परम-सुइ-भूया तं मित्त-णाइ-जाव-परियणं विउलेणं वत्थ-गन्ध-मल्लालंकारेणं सक्कारेस्संति, संमाणिस्सन्ति, तस्सेव मित्त-जाव-परियणस्स पुरओ एवं वइस्संति—

तत्पश्चात् उस बालक (दारक) के माता-पिता प्रथम दिवस स्थितिपतिता—कुलपरम्परागतविधि—क्रियाओं से पुत्रजन्मोत्सव करेंगे । तीसरे दिवस चन्द्र-सूर्य दर्शन करेंगे । छट्ठे दिन रात्री जागरण करेंगे । ग्यारह दिन बीतने के बाद बारहवें दिन जातकर्म सम्बन्धी अशुचि की निवृत्ति के लिए घर को झाड़-बुहार और लीप-पोतकर शुद्ध करेंगे, फिर अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य रूप विपुल भोजन सामग्री बनवायेंगे और मित्रों, ज्ञातीजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों और दास-दासी आदि परिजनों, परिचितों को आमंत्रित करेंगे और उसके बाद स्नान, बलिकर्म, तिलक आदि से कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके—यावत्—आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके भोजन मंडप में श्रेष्ठ आसनों पर सुखपूर्वक बैठकर उन मित्रों, ज्ञातीजनों—यावत्—परिजनों के साथ उस विपुल अशन—यावत्—स्वाद्य भोजन का आस्वादन, विशेषरूप में आस्वादन करते हुए, खाते हुए, एक-दूसरे को परोसते हुए विचरण करेंगे । भोजन करने के बाद आचमन-कुल्ला आदि करके स्वच्छ, परमशुचिभूत होकर उन्हीं मित्रों ज्ञाति बंधुओं—यावत्—परिजनों का विपुल वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों आदि से सत्कार-सम्मान करेंगे और फिर उन्हीं मित्रों —यावत्—परिजनों से इस प्रकार कहेंगे—

जम्हा णं देवाणुप्पिया ! इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि चेव समाणंसि धम्मे दढा पइण्णा जाया, तं होउ णं अम्हं एयस्स दारयस्स दढपइण्णे नामेणं । तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारयस्स अम्मा-पियरो नामधेज्जं करिस्संति—दढपइण्णो य दढपइण्णो य ।

'देवानुप्रियो ! जब से यह दारक माता की कुक्षि में गर्भरूप से आया तभी से हमारी धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा—श्रद्धा हुई है, इसलिये हमारे इस बालक का दृढ़प्रतिज्ञ यह नाम हो । तत्पश्चात् उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक के माता-पिता उसका 'दृढ़प्रतिज्ञ' ऐसा नामकरण करेंगे ।

तए णं तस्स अम्मा-पियरो अणुपुव्वेणं ठिइ-वडियं च चंद-सूरिय-दरिसणं च धम्म-जागरियं च नामधेज्ज-करणं च पजेमणगं च पजंपणगं च पडिवद्धावणगं च पचंकमणगं च कण्ण-वेहणं च संवच्छर-पडिलेहणगं च चूलोवणयं च अन्नाणि य बहूणि गब्भा-हाणजम्मणाइयाइं महया इड्ढीसक्कार-समुदएणं करिस्संति ।

तदनन्तर उसके माता-पिता अनुक्रम से स्थितिपतिता, चन्द्र-सूर्य दर्शन, धर्मजागरण, नामकरण, अन्नप्राशन, प्रजल्पन (बोलना) प्रतिवर्धापन (आशीर्वाद—अभिनन्दन समारोह), पंचक्रमण (पैरों से चलना), कर्णवेधन, संवत्सर प्रतिलेख (प्रथमवर्ष का जन्मोत्सव), चूलोपनयन (मुण्डनोत्सव) आदि तथा और दूसरे भी बहुत से गर्भाधान, जन्मादि सम्बन्धी उत्सव भव्य समारोह के साथ करेंगे ।

तए णं से दढपइण्णे दारए पंच-धाई-परिक्खित्ते-खीर-धाईए, मज्जण-धाईए, मंडण-धाईए, अंक-धाईए, कीलावणधाईए, अन्नाहि

तदनन्तर वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक १. क्षीरधात्री—दूध पिलानेवाली धाय, २. मंडनधात्री—वस्त्र आभूषण पहनाने वाली धाय, ३. मज्जनधात्री—स्नान, तेल मालिश आदि करने वाली धाय, ४. अंकधात्री—गोद में लेने वाली धाय और ५. क्रीड़ापनधात्री—खेल-क्रीड़ा आदि खिलाने वाली धाय । इन पाँच धायमाताओं

य बहूहिं खुज्जाहिं, चिलाइयाहिं, वामणियाहिं, वडभियाहिं, बब्बरीहिं, बउसियाहिं, जोण्हियाहिं, पण्हवियाहिं, ईसिणिणियाहिं, वारुणियाहिं, लासियाहिं, लउसियाहिं, दमिलीहिं, सिंहलीहिं, आरबीहिं, पुलिंदीहिं, पक्कणीहिं, बहलीहिं, मुरुंडीहिं, सबरीहिं, पारसीहिं, णाणा-देसी-विदेस-परिमंडियाहिं, सदेस-नेवत्थ-गहिय-वेसाहिं, इंगिय-चिंतिय-पत्थिय-वियाणाहिं, निउण-कुसलाहिं, विणीयाहिं चेडिया-चक्कवाल-तरुणि-वंद-परियाल-परिवुडे, वरिस-धर-कंचुइ-महयर-वंदपरिक्खित्ते, हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे, साहरिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे, अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिभुज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवला-लिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे, अवयासिज्जमाणे अवयासिज्जमाणे परियंदिज्जमाणे, परियंदिज्ज-माणे परिचुंबिज्जमाणे परिचुंबिज्जमाणे, रम्मेसु मणि-कोट्टिम-तलेसु परंगमाणे परंगमाणे, गिरि-कंदरमल्लीणे विव चंपग-वर-पायवे, निवाय-निव्वाघायंसि सुहं-सुहेणं परिवड्ढिस्सइ ।

तए णं तं दढपइन्नं दारगं अम्मा-पियरो साइरेग-अट्ठ-वास-जायगं जाणित्ता, सोभणंसि तिहि-करण-नक्खत्त-मुहुत्तंसि ण्हायं सव्वालंकार-विभूसियं करेत्ता, महया इड्ढी-सक्कार-समुदएणं कलायरियस्स उवणेहिंति ।

तए णं से कलायरिए तं दढपइन्नं दारगं लेहाइयाओ गणिय-प्पहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेहिइ य सेहावेहिइ य । तं जहा—

लेहं, गणियं, रूवं, नट्टं, गीयं, वाइयं, सर-गयं, पोक्खर-गयं, समताल, जूयं, जणवायं, पासगं, अट्ठावयं, पोरेकच्चं, दगमट्टियं,

की देख-रेख में तथा इनके उपरान्त बहुत सी इंगित (मुख आदि की चेष्टा), चिन्तित (मानसिक विचार), प्रार्थित (अभिलाषित) को जानने वाली, अपने-अपने देश की वेशभूषा को धारण करने वाली, निपुण, कुशल-प्रवीण एवं विनयशील ऐसी कुब्जा (कुबड़ी) चिलातिका (चिलात-किरात नामक देश में उत्पन्न) वामनी (बौनी) वडभी (बड़े पेट-तोंद वाली) बर्बरी (बर्बर देश की), बकुश देश की, योनक देश की, पल्हविका (पल्हव देश की), ईसिनिका, वारुणिका (वरुण देश की), लासिका (लिच्छव देश की) लाकुसिका (लकुस देश की), द्राविड़ी (द्राविड़ देश की), सिंहली (सिंहल— लंका देश की), आरबी (अरब देश की), पुलिंदी (पुलिंद देश की), पक्कणी, बहली (बहल देश की), मुरुण्डी (मुरुण्ड देश की), शबरी (शबर देश की), पारसी (पारस देश की ईरानी) आदि अनेक देश-देशान्तर की तरुण दासियों एवं वर्षधरों, कंचुकियों और महत्तरकों के समुदाय से परिवेष्टित होता हुआ, हाथों से हाथों में लिया जाता, दुलराया जाता, एक गोद से दूसरी गोद में लिया जाता, लोरियाँ गा-गाकर बहलाया जाता, क्रीड़ा आदि के द्वारा लालन-पालन किया जाता, लाड़-प्यार किया जाता, चुम्बन किया जाता और रमणीय मणि-जटित आँगन में चलाया जाता हुआ व्याघातरहित गिरिगुफा में स्थित श्रेष्ठ चम्पक वृक्ष की तरह सुखपूर्वक दिनों दिन परिवर्धित होगा—बढ़ेगा ।

तत्पश्चात् माता-पिता उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर उस बालक को कला शिक्षण के लिये शुभ तिथि, करण, नक्षत्र और मुहूर्त में स्नान, बलिकर्म, समस्त अलंकारों से विभूषित करके महान् ऋद्धि—वैभव, सत्कार समारोहपूर्वक कलाचार्य के पास ले जायेंगे ।

तब कलाचार्य उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को गणित जिसमें प्रधान है, ऐसे लेख (लिपि) आदि शकुनिरुत (पक्षियों की ध्वनि) पर्यन्त की बहत्तर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से (विस्तार से व्याख्या करके) ग्रन्थ से (सूत्र और अर्थ से) तथा करण—प्रयोग से अभ्यास करायेंगे—सिद्ध करायेंगे । उन बहत्तर कलाओं के नाम इस प्रकार हैं—

१. लेखन, २. गणित (अंक विद्या), ३. रूप सजाने की कला, ४. नाट्य (अभिनय और नृत्य करने की कला), ५. संगीत, ६. वाद्य बजाना, ७. स्वर जानना, ८. वाद्य-ढोल आदि वाद्य सुधारने व बजाने की कला, ९. संगीत में गीत और वाद्यों के सुर-ताल की समानता को जानने की कला, १०. द्यूत—जुआ खेलना, ११. लोगों के साथ वार्तालाप और वाद-विवाद करना, १२. पासों से खेलना, १३. चौपड़ खेलना, १४. तत्काल काव्य-कविता की रचना करना, १५. जल और मिट्टी के गुणों की परीक्षा

अन्नविहिं, पाण-विहिं, वत्थ-विहिं, विलेवण-विहिं, सयण-विहिं, अज्जं, पहेलियं, मागहियं निद्दाइयं,

करना, १६. अन्नोत्पादन अथवा भोजन बनाने की कला, १७. नया पानी उत्पन्न करना अथवा औषधि आदि के संयोग संस्कार से पानी को शुद्ध करना, स्वादिष्ट पेय पदार्थ बनाना, १८. वस्त्र बनाने, रंगने और सीने की कला, १९. विलेपन विधि—शरीर पर लेप करने योग्य चन्दन आदि सुगंधित वस्तुओं का ज्ञान, लेप बनाने और करने की विधि २०. शैया बनाना और शयन करने की विधि २१. आर्या-मात्रिक छंदों को बनाने और पहचानने की विधि, २२. पहेलियाँ बनाना, २३. मागधिका-मागधी भाषा और उसमें छन्द रचना का ज्ञान, २४. निद्रायिका—नींद में सुलाने की कला,

गाहं, गीइयं, सिलोगं, हिरण्ण-जुत्तिं, सुवण्ण-जुत्तिं, चुण्ण-जुत्तिं, आभरण-विहिं, तरुणी पडिकम्मं, इत्थि-लक्खणं, पुरिस-लक्खणं, हय-लक्खणं, गय-लक्खणं, गोण-लक्खणं, कुक्कुड-लक्खणं, चक्क-लक्खणं, छत्त-लक्खणं, दण्ड-लक्खणं, असि-लक्खणं, मणि-लक्खणं, कागणि-लक्खणं, वत्थु-विज्जं, नगर-माणं, खन्धावारं, चारं, पडिचारं, वूहं, पडिवूहं, चक्कवूहं, गरुल-वूहं, सगड-वूहं, जुद्धं, निजुद्धं, जुद्धाइजुद्धं, लट्ठि-जुद्धं, मुट्ठि-जुद्धं, बाहु-जुद्धं, लया-जुद्धं, ईसत्थं, छरु-प्पवायं, धणु-व्वेयं, हिरण्ण-पागं, सुवण्ण-पागं, सुत्त-खेड्डं, वट्ट-खेड्डं, नालिया-खेड्डं, पत्त-च्छेज्जं, कडग-च्छेज्जं, सज्जीवं, निज्जीवं, सउण-रुयमिति ।

२५. प्राकृत भाषा में गाथा आदि बनाना, २६. गीतिका छन्द बनाना, २७. श्लोक (अनुष्टुप छंद आदि) बनाना, २८. हिरण्ययुक्ति—चाँदी बनाने और उसे शुद्ध करने की कला, २९. स्वर्णयुक्ति, ३०. चूर्ण युक्ति, ३१. आभूषण बनाना ३२. तरुणी प्रतिकर्म—स्त्रियों का श्रृंगार-प्रसाधन करना, ३३. स्त्रियों के शुभाशुभ लक्षण जानना, ३४. पुरुषों के शुभाशुभ लक्षण जानना, ३५. अश्व के लक्षण जानना, ३६. हाथी के लक्षण जानना, ३७. बैल के लक्षण जानना, ३८. मुर्गों के लक्षण जानना। ३९. चक्र का लक्षण जानना, ४०. छत्र के लक्षण जानना, ४१. दंड के लक्षण जानना, ४२. तलवार के लक्षण जानना, ४३. मणि के लक्षण जानना, ४४. काकिणी रत्न के लक्षण जानना, ४५. वास्तु विद्या, ४६. नगर निर्माण की कला, ४७. स्कन्धावार (सेना के पड़ाव) की रचना करने की कला, ४८. युद्ध के लिये सेना का मोर्चा जमाना, ४९. प्रतिचार—शत्रुसेना के सामने अपनी सेना का संचालन करना. ५०. व्यूह रचना करना, ५१. प्रतिव्यूह की रचना करना, ५२. गरुड़ व्यूह की रचना करना, ५०. शकट व्यूह की रचना करना, ५४. सामान्य युद्ध करना, ३५. नियुद्ध—मल्लयुद्ध करना, ५६. युद्ध-युद्ध घमासान गुत्थम गुत्था होकर युद्ध करना, ५७. लाठी से युद्ध करना, ५८. मुष्टि युद्ध करना, ५९. बाहुयुद्ध करना, ६०. लतायुद्ध, ६१. इष्वस्त्रशास्त्र—बाण बनाने की कला अथवा नागबाण आदि विशिष्ट बाणों के प्रक्षेपण की कला, ६२, तलवार चलाने की कला, ६३. धनुर्वेद—धनुष-बाण सम्बन्धी कौशल, ६४. चाँदी भस्म या पाक बनाने की कला, ६५. स्वर्णपाक बनाने की कला, ६६. सूत्रखेल—रस्सी पर क्रीडा करने की कला, ६७. वृत्तखेल—क्रीडा विशेष, ६८. नालिका खेल—जुआ विशेष, ६९. पत्रछेदन कला, ७०. पार्वतीय भूमि को छेदने की कला, ७१. मूर्च्छित को होश में लाने और अमूर्च्छित को मृततुल्य करने की कला और ७२. शकुनरुत—काक, घूक आदि पक्षियों की बोली और उससे अच्छे-बुरे शकुन का ज्ञान करना।

तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ गणिय-

तत्पश्चात् कलाचार्य उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को गणित-प्रधान

व्वहाणाओ सउणरुय-पज्जवसाणाओ बावत्तरिं कलाओ सुत्तओ य अत्थओ य गंथओ य करणओ य सिक्खावेत्ता, सेहावेत्ता अम्मा-पिऊणं उवणेहिइ ।

लेखन आदि शकुनरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र से (मूलपाठ से) अर्थ (व्याख्या) से, मूल और अर्थ से तथा प्रयोग से सिखलाकर, सिद्ध कराकर वापस माता-पिता के पास ले जायेंगे ।

तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मा-पियरो तं कलायरियं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारिस्संति, संमाणिस्संति, विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्संति, पडिविसज्जेहिंति ।

तब उस दृढ़प्रतिज्ञ दारक के माता-पिता कलाचार्य का विपुल अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यरूप भोजन, वस्त्र, गंध- माला और अलंकारों से सत्कार—सम्मान करके आजीविका योग्य पुष्कल प्रीति-दान (भेंट) देंगे और फिर विदा करेंगे ।

तए णं से दढपइण्णे दारए उम्मुक्क-बालभावे, विण्णयपरिणयमेत्ते, जोव्वण-गमणुप्पत्ते, बावत्तरि-कला-पंडिए, अट्ठारस-विहदेसि-प्पगार-भासा-विसारए, नवंग-सुत्त-पडिबोहए, गीय-रई, गंधव्व-नट्ट-कुसले, सिंगारागार-चारुवेसे, संगय-गय-हसिय-भणिय-चिट्ठिय-विलास-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसले, हय-जोही, गय-जोही, रह-जोही, बाहुजोही, बाहु-प्पमद्दी, अलं-भोग-समत्थे, साहसिए, वियाल-चारी यावि भविस्सइ ।

तत्पश्चात् वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक, बालभाव से मुक्त, परिपक्व विज्ञान-युक्त और युवावस्था से सम्पन्न हो जायेगा। बहत्तर कलाओं का पण्डित, अठारह प्रकार की देशी भाषाओं में विशारद हो जायेगा, बाल्यावस्था के कारण सुप्त-अव्यक्त चेतना वाले दो कान, दो नेत्र, दो नासिक, जिह्वा, त्वचा और मनरूप नौ अंग प्रतिबुद्ध—जागृत हो जायेंगे, वह गीत का अनुरागी, संगीत और नृत्य में कुशल हो जायेगा, अपने सुन्दर वेष से शृंगार-गृह जैसा प्रतीत होगा, चाल, हास्य, भाषण, शारीरिक और नेत्रों की चेष्टायें—सभी कुछ संगत होंगी, पारस्परिक आलाप, संलाप एवं व्यवहार में निपुण-कुशल होगा, अश्वयुद्ध, गजयुद्ध, रथयुद्ध, बाहुयुद्ध करने एवं अपनी भुजाओं से विपक्षी का मर्दन करने में सक्षम तथा भोग भोगने की सामर्थ्य से सम्पन्न हो जायेगा और साहसी ऐसा हो जायेगा कि विकालचारी—मध्य रात्रि में इधर-उधर आने-जाने में हिचकिचायेगा नहीं ।

तए णं तं दढपइण्णं दारगं अम्मा-पियरो उम्मुक्क-बालभावं जाव-वियाल-चारिं च वियाणित्ता, विउलेहिं अन्न-भोगेहि य पाण-भोगेहि य लेण-भोगेहि य वत्थ-भोगेहि य सयणभोगेहि य उवनिमंतेहिंति ।

इसके बाद उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को बाल्यावस्था से मुक्त—यावत्—विकालचारी जानकर उसके माता-पिता विपुल अन्न भोगों, पान भोगों, प्रासाद भोगों, वस्त्र भोगों और शयन भोगों को भोगने के लिये आमंत्रित—संकेत करेंगे ।

तए णं से दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अन्न-भोगेहिं-जाव-सयणभोगेहिं नो सज्जिहिइ, नो गिज्झिहिइ, नो मुच्छिहिइ, नो अज्झोववज्जिहिइ ।

किन्तु वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक उन विपुल अन्न रूप भोग्य पदार्थों—यावत्—शयन भोगों में आसक्त नहीं होगा, गृद्ध नहीं होगा, मूर्च्छित नहीं होगा और अनुरक्त नहीं होगा ।

से जहा-नामए पउमुप्पले इ वा पउमे इ वा-जाव-सय-सहस्स-पत्ते इ वा पंके जाए, जले संवुड्ढे नोवलिप्पइ पंकरएणं, नोवलिप्पइ जल-रएणं, एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए, भोगेहिं संवड्ढिए, नोवलिप्पिहिइ कामरएणं, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं ।

जैसे कि—पद्मोत्पल—नील कमल, पद्मकमल (सूर्य-विकासी कमल)—यावत्—शतपत्र सहस्रपत्र कमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं, जल में वृद्धिगत होते हैं, फिर भी पंकरज से, जलरज से लिप्त नहीं होते हैं, इसी प्रकार वह दृढ़प्रतिज्ञ दारक भी कामों में उत्पन्न हुआ, भोगों के बीच लालित—पालित, वृद्धिगत हुआ, लेकिन उन काम-भोगों रूप रज-मलिनता में एवं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों में लिप्त—आसक्त नहीं होगा ।

से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता, अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ ।

वह तथारूप स्थविरों से केवलबोधि—सम्यक्त्व और सम्यग् ज्ञान को प्राप्त करेगा, प्राप्त करके एवं मुण्डित होकर, गृहत्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा ।

से णं अणगारे भविस्सइ, इरियासमिए-जाव-सुहुयहुयासणे इव तेयसा जलंते ।

वह ईर्यासमिति आदि समितियों से समित—यावत्—सुहुत (विधिपूर्वक होम की गई) हुताशन (अग्नि) की तरह अपने तपस्तेज से देदीप्यमान अनगार होगा ।

तस्स णं भगवओ अणुत्तरेणं नाणेणं एवं दंसणेणं, चरित्तेणं, आलएणं, विहारेणं, अज्जवेणं, मद्दवेणं, लाघवेणं, खंतीए, गुत्तीए, मुत्तीए, अणुत्तरेणं सव्व-संजम-तव-सुचरिय-फल-निव्वाणमग्गेणं अप्पाणं भावेमाणस्स, अणंते अणुत्तरे, कसिणे, पडिपुण्णे, निरावरणे, निव्वाघाए, केवल-वर-नाण-दंसणे समुप्पज्जिहिइ ।

इसके साथ ही अनुत्तर (सर्वोत्तम) ज्ञान, दर्शन, चारित्र, अप्रतिबद्ध विहार, आर्जव, मार्दव, लाघव, क्षमा, गुप्ति, मुक्ति (सन्तोष), अनुत्तर सर्वसंयम एवं निर्वाण की प्राप्ति जिसका फल है, ऐसे तपोमार्ग से आत्मा को भावित करते हुए उस भगवान (आत्मा) को अनन्त, अनुत्तर, सकल, परिपूर्ण, निरावरण, निर्व्याघात, सर्वोत्कृष्ट केवलज्ञान और केवल दर्शन समुत्पन्न होंगे ।

तए णं से भगवं अरहा, जिणे, केवली भविस्सइ, सदेव-मणुयासुरस्स लोगस्स परियागं जाणिहिइ । तं जहा—आगइं, गइं, ठिइं, चवणं, उववायं, तक्कं, कडं, मणोमाणसियं, खइयं, भुत्तं, पडिसेवियं, आवीकम्मं, रहोकम्मं—अरहा, अरहस्सभागी, तं तं मण-वय-काय-जोगे वट्टमाणाणं सव्व-लोए सव्व-जीवाणं सव्व-भावे जाणमाणे, पासमाणे विहरिस्सइ ।

तब से दृढ़प्रतिज्ञ भगवान अर्हत्, जिन, केवली हो जायेंगे, और जिसमें देव, मनुष्य तथा असुर आदि बसते हैं, ऐसे लोक को और उसकी समस्त पर्यायों को जानेंगे । यथा—प्राणिमात्र की आगति—पूर्व की एक गति से दूसरी गति में आगमन की गति—वर्तमान गति को छोड़कर अन्य गति में गमन करने की, स्थिति, च्यवन, उपपात—देव या नारक जीवों की उत्पत्ति—जन्म, तर्क (विचार) क्रिया, मनोभावों, क्षयप्राप्त—भोगे जा चुके—भुक्त, प्रतिसेवित (भोगे जा रहे भोगोपभोगों) आविष्कर्म (प्रकट कार्यों), रहःकर्म (एकान्त में किये गये कार्यों) आदि, प्रगट और गुप्त रूप से होने वाले उस-उस मन, वचन—और काय योग में विद्यमान लोकवर्ती सभी जीवों के सर्व भावों को जानते-देखते हुए विचरण करेंगे ।

तए णं दढपइन्ने केवली एया-रूवेणं विहारेणं विहरमाणे, बहूइं वासाइं केवलि-परियागं पाउणित्ता, अप्पणो आउसेसं आभोएत्ता, बहूइं भत्ताइं पच्चक्खाइस्सइ, बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेइस्सइ, जस्सट्ठाए कीरइ जिण-कप्प-भावे, थेर-कप्प-भावे-मुण्ड-भावे, केस-लोए, बम्भचेर-वासे अण्हाणगं, अदंतवणं, अणुवहाणगं, भूमि-सज्जा, फलह-सेज्जा, परघर-पवेसो, लद्धावलद्धाइं, माणावमाणाइं, परेसिं हीलणाओ, निंदणाओ, खिंसणाओ, तज्जणाओ, ताडणाओ, गरहणाओ, उच्चावया विरूवरूवा बावीसं परीसहोवसग्गा, गाम-कंटगा अहियासिज्जंति, तमट्ठं आराहेहिइ, आराहेत्ता चरिमेहिं उस्सास-निस्सासेहिं सिज्झिहिइ, बुज्झिहिइ, मुच्चिहिइ, परिनिव्वाहिइ, सव्व-दुक्खाणमंतं करेहिइ" ।

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली इस प्रकार के विहार से विचरण करते हुए अनेक वर्षों तक केवलि पर्याय का पालन कर और और अपनी आयु के अन्त को जानकर अनेक भक्तो-भोजनों का प्रत्याख्यान—त्याग करेंगे और बहुत से भोजनों का अनशन द्वारा छेदन—त्याग करेंगे एवं जिस साध्य प्रयोजन की सिद्धि के लिये जिनकल्प भाव, स्थविरकल्प भाव, मुण्डभाव, केशलोंच, ब्रह्मचर्यवास—धारण, स्नान का त्याग, दन्त धावन त्याग, पादुकाओं का त्याग, भूमिशयन, काष्ठासन पर सोना-बैठना, भिक्षार्थ पर गृह प्रवेश, लाभ-अलाभ में समभाव रखना, मान-अपमान सहन करना, दूसरों के द्वारा की जाने वाली हीनता (तिरस्कार), निन्दा, खिसना (अवर्णवाद), तर्जना (धमकी), ताड़ना, गर्हा (घृणा) तथा अनुकूल-प्रतिकूल अनेक प्रकार के बाईस परिषहों, उपसर्गों और ग्रामकंटक (लोकापवाद, गाली गलौज) सहन किये जाते हैं, उस मोक्षरूपी साध्य की साधना करेंगे और साधना करके चरमश्वासोच्छ्वास में सिद्ध हो जायेंगे, बोधि को प्राप्त करेंगे, मुक्त हो जायेंगे, परिनिवृत्त हो जायेंगे—सकल कर्मों का क्षय करेंगे और समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ।

(इस प्रकार से उस सूर्याभदेव के अतीत वर्तमान और अनागत जीवन प्रसंगों को सुनकर गौतम स्वामी ने अन्त में कहा—)

"सेवं भंते ! सेवं भंते" त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

—राय प० १

'हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है जैसा आप बतलाते हैं, हे भदन्त ! वह ऐसा ही है, जैसा आपने प्रतिपादन किया है'—इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

।। पार्श्वतीर्थ में प्रदेशी कथानक समाप्त ।।

३. महावीरतित्थे तुंगियाणगरीनिवासिणो समणोवासगा

समणोवासगवण्णओ—

६२. तेणं कालेणं तेणं समएणं तुंगिया नामं नयरी होत्था—वण्णओ ।

तीसे णं तुंगियाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे पुप्फवतिए नामं चेइए होत्था—वण्णओ ।

तत्थ णं तुंगियाए नयरीए बहवे समणोवासया परिवसंति-अड्ढा दित्ता वित्थिण्णविपुलभवण-सयणासण-जाणवाहणाइण्णा बहुधण-बहुजायरूव-रयया आयोग-पयोगसंपउत्ता विच्छड्डिय-विपुलभत्तपाणा बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलयप्पभूया बहुजणस्स अपरिभूया ।

अभिगयजीवाजीवा उवलद्धपुण्ण-पावा आसव-संवर-निज्जर-किरियाहिकरणबंध-मोक्खकुसला असहेज्जदेवासुर-नाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किन्नर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगादिएहिं देव-गणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणतिक्कमणिज्जा, निग्गंथे पाव-

३. महावीर तीर्थ में तुंगियानगरी निवासी श्रमणोपासक

श्रमणोपासकों का वर्णन—

६२. उस काल और उस समय में तुंगिका (तुंगिया) नाम की नगरी थी, नगरी का वर्णन करना चाहिये।

उस तुंगिकानगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग में पुष्पवती नामक चैत्य था, चैत्य का वर्णन करना चाहिये।

उस तुंगिकानगरी में बहुत से श्रमणोपासक निवास करते थे, जो धनाढ्य और देदीप्यमान थे, उनके रहने के भवन विशाल और बहुत ऊँचे थे, उनके पास बहुत बड़ी संख्या में शयन, आसन यान, वाहन आदि थे, उनके पास धन, स्वर्ण और चाँदी बहुत थी, वे ब्याज आदि का व्यापार-व्यवसाय करके धन को दुगुना तिगुना करने में कुशल थे, उनके यहाँ विविध प्रकार के खाद्य-स्वाद्य आदि पदार्थ पुष्कल प्रमाण में थे, उनके यहाँ अनेक दास, दासी, गाय-भैंस और भेड़-बकरी आदि रहते थे, बहुत से लोगों द्वारा भी पराभूत किये जा सकें, ऐसे वे नहीं थे।

वे जीव और अजीव तत्वों के स्वरूप के जानकार थे, वे पुण्य और पाप कार्यों का विवेक करने वाले थे, वे आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बंध और मोक्ष में से कौनसा ग्राह्य है और कौनसा अग्राह्य है, यह अच्छी तरह से जानते थे, निर्ग्रन्थ प्रवचन में इतने श्रद्धाशील थे कि कोई भी समर्थ देव, असुर, नाग, सुवर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड़, गंधर्व, महोरग आदि देवगण उन्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित नहीं कर सकते

यणो निस्संकिया निक्कंखिया निव्वितिगिच्छा लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा अभिगयट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठिमिंजपेम्माणुराग-रत्ता 'अयमाउसो ! निग्गंथे पावयणे अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे', ऊसियफलिहा अवंगुयदुवारा चियत्तंतेउर-घरप्पवेसा चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु पडिपुण्णं पोसहं सम्मं अणुपालेमाणा, समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेणं पडिलाभेमाणा बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

थे, उन्होंने शास्त्र के अर्थ को उपलब्ध किया था, शास्त्र के अर्थ को ग्रहण किया था, शास्त्र के अर्थ को पूछकर निर्णीत किया था, शास्त्र के अर्थ को अधिगत किया था और शास्त्रों के अर्थ का रहस्य उन्होंने निर्णयपूर्वक जाना था, निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति अनुराग उनके रोम-रोम में व्याप्त था, जिससे वे इस प्रकार—ऐसा कहते थे, कि 'हे आयुष्मन् ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन ही अर्थ एवं परमार्थ रूप है, और शेष दूसरा सभी अनर्थ रूप है', उनकी उदारता के कारण उनके द्वारों की अर्गलायें सदैव ऊंची-खुली रहती थीं और सभी के लिए उनके द्वार सदैव उघाड़े-खुले रहते थे, जिस किसी के घर या अन्तःपुर में प्रवेश करने पर वे वहाँ रहने वालों के प्रातिपात्र माने जाते थे, चतुर्दशी, अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी को परिपूर्ण पौषध को सम्यक् प्रकार से अनुपालना करते हुए, श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कम्बल, पादप्रोंछन, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक, औषधि, भेषज से प्रतिलाभित कर, शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण प्रत्याख्यान, पौषधोपवास एवं यथा विधि अंगीकार की गई तपस्याओं द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तुंगियाए पासावच्चिज्जथेरागमणं—

६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो-जातिसंपन्ना कुलसंपन्ना बलसंपन्ना रूवसंपन्ना विणयसंपन्ना नाणसंपन्ना दंसणसंपन्ना चरित्तसंपन्ना लज्जासंपन्ना ओयंसी तेयंसी वच्चंसी जसंसी जियकोहा जियमाणा जियमाया जियलोभा जियनिद्दा जिइंदिया जियपरीसहा जीवियास-मरण-भयविप्पमुक्का तवप्पहाणा गुणप्पहाणा करणप्पहाणा चरणप्पहाणा निग्गहप्पहाणा निच्छयप्पहाणा मद्दवप्पहाणा अज्जवप्पहाणा लाघवप्पहाणा खंतिप्पहाणा मुत्तिप्पहाणा विज्जापहाणा मंतप्पहाणा वेयप्पहाणा बंभप्पहाणा नयप्पहाणा नियमप्पहाणा सच्चप्पहाणा सोयप्पहाणा चारुपण्णा सोही अणियाणा अप्पुस्सुया अबहिल्लेसा सुसामण्णरया अच्छिद्दपसिणवागरणा कुत्तियावणभूया बहुस्सुया बहुपरिवारा पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं संपरिवुडा अहाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा जेणेव तुंगिया नगरी जेणेव पुप्फवइए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

तुंगिका में पार्श्वापत्यीय स्थविरों का आगमन—

६३. उस काल और उस समय में जातिसंपन्न, कुलसंपन्न, बलसंपन्न, रूपसंपन्न, विनयसंपन्न, ज्ञानसंपन्न, दर्शनसंपन्न, चारित्रसंपन्न, लज्जासंपन्न, लाघवसंपन्न, ओजस्वी, तेजस्वी, प्रतापी, यशस्वी, क्रोधजयी, मानजयी, मायाजयी, लोभजयी, निद्राजयी, इन्द्रियजयी, परिषहजयी, जीवन की आशा और मरणभय से विमुक्त, तपःप्रधान, गुणप्रधान, करणप्रधान, चरणप्रधान, निग्रहप्रधान, निश्चयप्रधान, आर्जवप्रधान, लाघवप्रधान, क्षमाप्रधान, मुक्तिप्रधान, विद्याप्रधान, मन्त्रप्रधान, वेदप्रधान, ब्रह्मप्रधान, नयप्रधान, नियमप्रधान, सत्यप्रधान, शौचप्रधान, उत्तमप्रज्ञासंपन्न, शोधी—अन्वेषण करने वाले अथवा शोभायुक्त, सावद्य-व्यापार से विरत—अथवा व्रतानुष्ठान के फल-प्राप्ति की अभिलाषा से विरत, स्तुति-प्रसंशा से उदासीन, बहिर्मुखी चित्तवृत्ति से रहित अर्थात् अन्तर्मुखी चित्तवृत्ति वाले, सुश्रामण्य में रत, अप्रतिहत रूप से प्रश्नों का समाधान करने वाले, प्रतिपादन करने वाले, कुत्रिकापणरूप अर्थात् सभी प्रकार से बोध को देने वाले, बहुश्रुत, बहुत बड़े शिष्य परिवार वाले, पार्श्वनाथ के शिष्य स्थविर भगवन्त अपने पांच सौ अनगारों के साथ अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ तुंगिकानगरी थी, जहाँ पुष्पवती चैत्य था, वहाँ आये, वहाँ आकर यथाप्रतिरूप अवग्रह को धारणकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

थेराणं समणोवासगेहिं पज्जुवासणा—

६४. तए णं तुंगियाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु-जाव-एगदिसाभिमुहा निज्जायंति।

श्रमणोपासकों द्वारा स्थविरों की पर्युपासना—

६४. तत्पश्चात् 'श्रमण निर्ग्रन्थ तुंगिकानगरी में आये है—यावत्—एक दिशा की ओर खड़े होकर ध्यान करते हैं'—यह संवाद तुंगिकानगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों—गलियों में सर्वत्र फैल गया।

तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! पासावच्चिज्जा थेरा भगवंतो जातिसंपन्ना-जाव-अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ताणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

तब उस नगरी में रहने वाले श्रमणोपासकों ने इस बात को जानकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्तवाले, प्रसन्न, स्नेह-अनुराग मनवाले, परमसौमनस भावयुक्त, हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाले होते हुए, परस्पर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! जातिसम्पन्न आदि विशेषणों से युक्त पार्श्वापत्यीय स्थविर भगवन्त पधारे हैं—यावत्—यथा-प्रतिरूप अवग्रह को धारणकर संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे हैं।

तं महाफलं खलु देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं थेराणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! थेरे भगवंते वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो। एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सति" इति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जेणेव सयाइं-सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं-सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति, मेलायित्ता पायविहार-चारेणं तुंगियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुप्फवतिए चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता थेरे भगवंते पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति, तं जहा—

तो हे देवानुप्रिय ! तथारूप स्थविर भगवन्तों के नाम और गोत्र सुनने का भी जब महान् फल मिलता है, तो फिर उनके सामने जाने से, उनको वन्दन-नमस्कार करने से, कुशल समाचार पूछने और उनकी पर्युपासना करने से कल्याण होने में तो कोई विशेषता नहीं है, अथवा वन्दन-नमस्कार और पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या है ? जब आर्यधर्म के एक ही सुवचन का सुनना मंगलरूप है, तो फिर विपुल अर्थ को ग्रहण करने से कल्याण होगा ही। इसलिए हे देवानुप्रियो ! हम सभी चलें और उन स्थविर भगवन्तों का वन्दन-नमस्कार करें, उनका सत्कार-सम्मान करें और कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप उनकी सेवा करें। यह हमें पर भव में और इस भव में हितरूप, सुखरूप, शान्तिरूप और परम्परा से कल्याणरूप होगी"—इस प्रकार कहकर इस बात को एक दूसरे से स्वीकार कराते हैं, स्वीकार कराके अपने-अपने घरों को जाते हैं, घर पर आकर स्नान, बलिकर्म और कौतुक, मंगलरूप प्रायश्चित करके शुद्ध, श्रेष्ठ और मंगलरूप वस्त्रों को पहिनकर, अल्प किन्तु महामूल्यवान् अलंकारों से शरीर को अलंकृत करके अपने-अपने घर से निकले, निकलकर एक स्थान पर एकत्रित हुए और एकत्रित होकर पैदल तुंगिकानगरी के बीचोंबीच होकर निकले, निकलकर पुष्पवती चैत्य में आये, चैत्य में आकर पाँच प्रकार के अभिगमों-पूर्वक स्थविर भगवन्तों के पास पहुँचते हैं,

१. सच्चित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए २. अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए ३. एगसाडिएणं उत्तरासंगकरणेणं ४. चक्खुप्फासे अंजलिप्पग्गहेणं ५. मणसो एगत्तीकरणेणं; जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए

यथा—१. सचित्त द्रव्यों को एक ओर रखते हैं, २. अचित्त-द्रव्यों को अपने पास रखते हैं, ३. एकशाटिक उत्तरासंग करते हैं, ४. उनको देखते ही हाथ जोड़ते हैं और ५. मन को एकाग्र करते हैं; इन पाँच अभिगमोंपूर्वक भगवन्तों के पास आकर तीन प्रदक्षिणा करते हैं, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार करते हैं

पज्जुवासणाए पज्जुवासंति तं जहा—

काइयाए वाइयाए, माणसिए।[1]

और फिर तीन प्रकार की पर्युपासना द्वारा उनकी पर्युपासना करते हैं।

यथा कायिक (शरीर का संकोचकर) वाणी से (विनयपूर्वक मधुर वाणी बोलकर) मानसिक (मन में भक्ति व वैराग्य पूर्वक)

तए णं ते थेरा भगवंतो तेसिं समणोवासयाणं तीसे य महति महालियाए परिसाए चाउज्जामं धम्मं परिकहेंति, जहा—केसिसामिस्स जाव समणोवासियत्ताए आणाए आराहगे भवंति। जाव धम्मो कहिओ।

—भग० स० २, उ० ५

इसके बाद उन स्थविर भगवन्तों ने उन श्रमणोपासकों को तथा उस महान् परिषद को केशी कुमारश्रमण की तरह चार महाव्रत वाले धर्म का उपदेश दिया। उपदेश सुनकर—यावत्—उन श्रमणोपासकों ने अपनी श्रमणोपासकता द्वारा उन स्थविर भगवन्तों की आज्ञा का आराधन किया—यावत्—धर्म कथा पूर्ण हुई। यह सब वर्णन राजप्रश्नीय सूत्र की तरह जानना।

॥ महावीर तीर्थ में तुंगिया नगरी निवासी श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

□ □

४. महावीरतित्थे नंदमणियारकहाणगं

दद्दुरदेवेण महावीरसमोसरणे नट्टविही—

६५. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। समोसरणं। परिसा निग्गया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे सभाए सुहम्माए दद्दुरंसि सीहासणंसि दद्दुरे देवे चउहिं सामाणियसाहस्सीहिं चउहिं अग्गमहिसीहिं सपरिसाहिं एवं जहा सूरियाभ-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ। इमं च णं केवलकप्पं जंबुद्दीवं दीवं विउलेणं ओहिणा आभोएमाणे-जाव-नट्टविहिं उवदंसित्ता पडिगए, जहा—सूरियाभे।

४. महावीर तीर्थ में नन्दमणियार कथानक

दर्दुरदेव द्वारा महावीर समवसरण में नाट्यविधि—

६५. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था। उसके बाहर (उत्तरपूर्व दिशा में) गुणशीलक नामक चैत्य (उद्यान) था। वहाँ श्रमण भगवान महावीर पधारे। भगवान की वन्दना करने परिषदा निकली।

उस काल और उस समय सौधर्म स्वर्ग के दर्दुरावतंसक विमान में सुधर्मा सभा में दर्दुर नामक सिंहासन पर आसीन होकर दर्दुरदेव चार हजार सामानिक देवों, चार अग्रमहिषियों और तीन परिषदों के साथ सूर्याभदेव के समान—यावत्—दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचरण कर रहा था। उस समय उसने अपने विपुल अवधिज्ञान द्वारा केवलकल्प (सम्पूर्ण) जम्बूद्वीप नामक द्वीप को देखते हुए गुणशीलक चैत्य में पधारे हुए श्रमण-भगवान महावीर स्वामी को देखा—यावत्—सूर्याभदेव के समान नाट्यविधियों को दिखलाकर वापस लौट गया।

गोयमस्स पुच्छाए भगवं महावीरपरूवियं दद्दुरदेवपुव्वभवनिबद्धं नंदमणियारकहाणयं—

६६. 'भंते!' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ

गौतम के पूछने पर भगवान् महावीर द्वारा दर्दुरदेव का पूर्वभवनिबद्ध नन्दमणियार कथानक प्ररूपण—

६६. 'भदन्त!' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण

---

१ तुंगियासमणोवासगाणं पासावच्चिज्जेहिं थेरेहिं सह पण्हुत्तराइं संजाताइं। तदट्ठं दट्ठव्वो चरणाणुयोगो दट्ठव्वा य। भगवई स० २, उ० ५।

नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"अहो णं भंते ! दद्दुरे देवे महिड्ढिए महज्जुईए महब्बले महासोक्खे महाणुभागे।

दद्दुरस्स णं भंते ! देवस्स सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे कहिं गए ? कहिं अणुपविट्ठे ?"

"गोयमा ! सरीरं गए सरीरं अणुपविट्ठे । कूडागार-दिट्ठंतो ।"

६७. "दद्दुरेणं भंते ! देवेणं सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे ? किणा पत्ते ? किणा अभिसमण्णागए ?"

"एवं खलु गोयमा ! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे रायगिहे नयरे । गुणसिलए चेइए । सेणिए राया ।

तत्थ णं रायगिहे नंदे नामं मणियारसेट्ठी—अड्ढे दित्ते-जाव-अपरिभूए ।

नंदस्स धम्मपडिवत्ती—

६८. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! समोसढे । परिसा निग्गया । सेणिए वि निग्गए ।

तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे पायविहारचारेणं-जाव-पज्जुवासइ ।

नंदे मणियारसेट्ठी धम्मं सोच्चा समणोवासए जाए ।

तए णं अहं रायगिहाओ पडिनिक्खंते बहिया जणवयविहारेणं विहरामि ।

नंदस्स मिच्छत्तपडिवत्ती—

६९. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य अपज्जुवासणाए य अणणुसासणाए य असुस्सूसणाए य सम्मत्त-पज्जवेहिं परिहायमाणेहिं-परिहायमाणेहिं मिच्छत्तपज्जवेहिं परि-वड्ढमाणेहिं-परिवड्ढमाणेहिं मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे जाए यावि होत्था। तए णं नंदेमणियारसेट्ठी अण्णया कयाइ गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलंसि मासंसि अट्ठमभत्तं परिगेण्हइ, परिगेण्हित्ता पोसह-सालाए पोसहिए बंभचारी उम्मुक्क-मणि-सुवण्णे ववगयमाला-वण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए विहरइ ।

भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! यह दर्दुरदेव महान् ऋद्धिमंत, महान द्युतिमंत, महाबलवान्, महायशस्वी, महासुख-वान् और महान प्रभावशाली है

तो हे भदन्त ! उस दर्दुरदेव की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्यदेवद्युति, दिव्य देवप्रभाव कहाँ चला गया ? कहाँ समा गया ?'

प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा—'गौतम ! वह दिव्य देवऋद्धि आदि शरीर में चली गयी, शरीर में समा गई । इसके लिये कूटा-गारशाला का दृष्टांत समझ लेना चाहिये ।'

६७. 'हे भन्ते ! उस दर्दुरदेव को वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव—प्रभाव किस प्रकार लब्ध, प्राप्त और अभिसमागत हुआ ?' गौतम स्वामी ने पूछा ।

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में राजगृह नामक नगर है । गुणशीलक चैत्य है और वहाँ श्रेणिक राजा राज्य करता है ।

उस राजगृह नगर में नन्द नामक एक मणियार सेठ रहता था, जो धनाढ्य तेजस्वी था—यावत्—किसी से पराभूत होने वाला नहीं था ।

नन्द को धर्मप्राप्ति—

६८. हे गौतम ! उस काल और उस समय में मैं गुणशीलक चैत्य में आया, परिषदा वन्दना करके निकली । श्रेणिक राजा भी निकला ।

तब वह नन्दमणियार सेठ (मेरे आगमन के) इस वृत्तान्त को सुनकर पैदल चलता हुआ वहाँ आया—यावत्—उपासना करने लगा ।

फिर वह नन्द धर्म सुनकर श्रमणोपासक हो गया ।

तत्पश्चात् मैं राजगृह नगर से निकलकर बाहर जनपदों में विचरण करने लगा ।

नन्द को मिथ्यात्व प्राप्ति—

६९. तत्पश्चात् वह नन्दमणियार श्रेष्ठी अन्य किसी समय असाधुओं का दर्शन करने से और सुसाधुओं की उपासना न करने से, उनका उपदेश श्रवण न करने से, वीतराग वाणी को सुनने की इच्छा न होने से एवं शनैः शनैः सम्यक्त्व के पर्यायों के क्रमशः क्षीण होते जाने से तथा मिथ्यात्व की पर्यायों की क्रमशः वृद्धि होते जाने से मिथ्यात्वी हो गया । तत्पश्चात् उस नन्दमणियार सेठ ने अन्य किसी एक समय ग्रीष्मऋतु में, ज्येष्ठ मास में अष्टम भक्त (तेला) अंगीकार किया और अंगीकार करके पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक मणि स्वर्ण के आभूषणों का त्याग करके, माला, वर्णक, विलेपन और मुसल आदि शस्त्रों के आरम्भ—समारम्भ को

छोड़कर एकाकी, अद्वितीय हो दर्भ-संस्तारक पर आसीन होकर विचरने लगा।

नंदेण पोक्खरिणी निम्माणं—

७०. तए णं नंदस्स अट्ठमभत्तंसि परिणममाणंसि तण्हाए छुहाए य अभिभूयस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—'धण्णा णं ते ईसरपभियओ, संपुण्णा णं ते ईसरपभियओ, कयत्था णं ते ईसरपभियओ, कयपुण्णा णं ते ईसरपभियओ, कयलक्खणा णं ते ईसरपभियओ कयविभवा णं ते ईसरपभियओ, जेसिं णं रायगिहस्स बहिया बहुओ वावीओ पोक्खरिणीओ दीहियाओ गुञ्जालियाओ सरपंतियाओ सरसरपंतियाओ, जत्थ णं बहुजणो ण्हाइ य पियइ य पाणियं च संवहइ। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सेणियं रायं आपुच्छित्ता रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे वेभारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढग-रोइयंसि भूमिभागंसि नंदं पोक्खरिणिं खणावेत्तए'

नन्द द्वारा पुष्करिणी निर्माण—

७०. इसके बाद उस नन्दमणियार सेठ का अष्टमभक्त परिणत पूरा होने की ओर उन्मुख था, तब भूख और प्यास से पीड़ित होने पर उनके मन में इस प्रकार का अध्यवसाय—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'वे ईश्वर प्रभृति सार्थवाह धन्य हैं, वे ईश्वर आदि पुण्यशाली हैं, वे ईश्वर आदि कृतार्थ हैं, वे ईश्वर कृतपुण्य हैं, वे ईश्वर आदि सुलक्षण-सम्पन्न हैं, वे ईश्वर आदि वैभवशाली हैं जिनकी इस राजगृह नगर के बाहर बहुत सी बावड़ियाँ हैं, पुष्करिणियाँ, दीर्घिकायें, गुञ्जालिकायें, सरोवर और अनेक सरोवरों की पंक्तियाँ हैं, जिनमें बहुत से लोग स्नान करते हैं, पानी पीते हैं और जिनसे पानी भरकर ले जाते हैं। अतएव मेरे लिये यह उचित होगा कि मैं भी कल रात्रि के प्रभातरूप होने पर—यावत्—सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिवाकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर श्रेणिक राजा से अनुमति लेकर राजगृह नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशान-कोण में—वैभार पर्वत के समीप वास्तुशास्त्र पाठकों के द्वारा पसन्द किये हुए भूमिभाग में नन्दापुष्करिणी खुदवाऊँ"—नन्द-मणियार सेठ ने इस प्रकार का विचार किया।

त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पोसहं पारेइ, पारेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ-जाव-पाहुडं उवट्ठवेइ, उवट्ठवेत्ता एवं वयासी—'इच्छामि णं सामी! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे रायगिहस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभागे वेभारपव्वयस्स अदूरसामंते वत्थुपाढग-रोइयंसि भूमिभागंसि नंदं पोक्खरिणिं खणावेत्तए'।

विचार करके कल रात्रि के प्रभातरूप होने पर—यावत्—सूर्योदय होने तथा जाज्वल्यमान तेज से सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशमान होने पर पौषध पारा, पौषध पारकर स्नान किया, बलिकर्म किया और इसके बाद मित्रों, ज्ञातिबन्धुओं, अपने स्व-जन सम्बन्धिओं और परिजनों को साथ लेकर महार्थक, महा-मूल्यवान, महापुरुषों के योग्य और राजा के योग्य भेंट ली और भेंट लेकर जहाँ श्रेणिक राजा थे, वहाँ आया—यावत्—भेंट राजा के सामने रखी, भेंट रखकर इस प्रकार कहा—'स्वामिन्! आपकी आज्ञा-अनुमति लेकर राजगृहनगर के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग में वैभार पर्वत के समीप वास्तुपाठकों द्वारा पसंद किये गये भूमिभाग में नन्दापुष्करिणी खुदवाना चाहता हूँ।'

'अहासुहं देवाणुप्पिया!'

'जैसा सुख उपजे वैसा करो'—राजा ने उत्तर दिया।

तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी सेणिएणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता वत्थुपाढय-रोइयंसि भूमिभागंसि नंदं पोक्खरिणिं खणावेउं पयत्ते यावि होत्था।

तत्पश्चात् वह नन्दमणियार श्रेष्ठी श्रेणिक राजा की आज्ञा अनुमति प्राप्त होने से हर्षित और संतुष्ट होता हुआ राजगृह नगर के मध्य भाग से निकला और निकलकर वास्तुशास्त्रियों के द्वारा पसन्द किये हुए भूमिभाग में नन्दापुष्करिणी खुदवाने में प्रवृत्त हो गया तथा उसने नन्दापुष्करिणी खुदवाना प्रारम्भ कर दिया।

तए णं सा नंदा पोक्खरणी अणुपुव्वेणं खम्ममाणा-खम्ममाणा पोक्खरणी जाया यावि होत्था—चाउक्कोणा समतीरा अणुपुव्वं

इसके बाद नन्दापुष्करिणी खुदते-खुदते चतुष्कोण और समान किनारों वाली पुष्करिणी हो गई और उसके बाद अनुक्रम से

सुजायवप्प-सीयलजला संछन्न-पत्त-भिसमुणाला बहुउप्पल-पउम-कुमुय-नलिण-सुभग-सोगंधिय-पुण्डरीय-महापुण्डरीय-सयपत्त-सहस्स-पत्त-पप्फुल्ल-केसरोववेया परिहत्थ-भमंत-मत्तछप्पअ-अणेग-सउणगण-मिहुणवियरिय-सद्दुन्नइय-महुरसरनाइया पासाईया-जाव-पडिरूवा।

उसके चारों ओर घूमता हुआ परकोटा (मुण्डेर) बनवाया। वह पुष्करिणी शीतलजल से भरी हुई थी और जल, पत्तों, बिस-तन्तुओं एवं मृणालों से आच्छादित हो गई, वह पुष्करिणी बहुत से उप्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग-सुन्दर सौगन्धिक कमल, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र आदि अनेक प्रकार के कमलों के पराग से परिव्याप्त हो गई, परिहत्थ नामक जल जन्तुओं, भ्रमण करते हुए मदोन्मत्त भ्रमरों और अनेक प्रकार के पक्षी युगलों के कलरव और उन्नत एवं मधुर स्वरनाद से गूंजने लगी, जिससे वह पुष्करिणी मन को प्रसन्न करने वाली—यावत्—प्रतिरूप हो गयी।

नंदेण वणसंडनिम्माणं—

७१. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी नंदाए पोक्खरिणीए चउद्दिसिं चत्तारि वणसंडे रोवावेइ।

तए णं ते वणसंडा अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढियमाणा य वणसंडा जाया—किण्हा-जाव-महामेह-निउरंबभूया पत्तिया पुप्फिया फलिया हरियग-रेरिज्जमाणा सिरीए अईव उवसोभेमाणा-उवसोभेमाणा चिट्ठंति।

नन्द द्वारा वनखण्ड निर्माण—

७१. इसके बाद उस नन्दमणियार श्रेष्ठी ने नन्दापुष्करिणी की चारों दिशाओं में चार वनखण्ड (बगीचे) लगवाये।

वनखण्डों की अच्छी तरह से देख रेख किये जाने से संगोपन-सार संभाल—किये जाने से, संवर्धन किये जाने से वे वनखण्ड कृष्णवर्ण वाले—यावत्—महामेघों के समान, सघन, पत्तों, पुष्पों, फलों से हरे-भरे और अपनी सुन्दरता से अतीव-अतीव शोभायमान हो गये।

नंदेण चित्तसभानिम्माणं—

७२. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी पुरत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं चित्तसभं कारावेइ-अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं पासाईयं-जाव-पडिरूवं। तत्थ णं बहूणि किण्हाणि य-जाव-सुक्किलाणि य कट्ठ-कम्माणि य पोत्थकम्माणि य चित्त-लेप्प-गंथिम-वेढिम-पूरिम-संघाइमाइं उवदंसिज्जमाणाइं-उवदंसिज्जमाणाइं चिट्ठंति।

नन्द द्वारा चित्रसभा का निर्माण—

७२. तत्पश्चात् नन्दमणियार सेठ ने पूर्वदिशा के वनखण्ड में एक विशाल चित्रसभा का निर्माण करवाया, जो कई सौ खम्भों की बनी हुई थी, मन को प्रसन्न करने वाली—यावत्—प्रतिरूप थी। उस चित्रसभा में बहुत से कृष्णवर्ण वाले—यावत्—शुक्ल-वर्ण वाले काष्ठकर्म (पुतलियाँ) आदि—बने हुए थे। इसी तरह के पुस्तकर्म—कपड़े पर बने चित्र आदि थे और चित्र, लेप्य, ग्रन्थिम, वेष्टिम, पूरिम, संघातिम कलाकृतियाँ थीं। जिनको दर्शक एक-दूसरे को दिखा-दिखाकर प्रसन्न होते थे।

तत्थ णं बहूणि आसणाणि य सयणाणि य अत्थुय-पच्चत्थुयाइं चिट्ठंति।

वहाँ पर—उसमें बहुत से आसन (बैठने योग्य) और लेटने-सोने योग्य शयन सदैव रखे रहते थे।

तत्थ णं बहवे नडा य नट्टा य जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिया य दिन्नभइ-भत्त-वेयणा तालायर-कम्मं करेमाणा-करेमाणा विहरंति।

वहाँ पर बहुत से नट, नर्तक, स्तुतिपाठक, मल्ल, मौष्टिक-पंजा लड़ाने वाले, विदूषक, कथा-कहानी सुनाने वाले, तैरने वाले, मसखरे—भाँड, आख्यायिक—शुभ-अशुभफल निर्देश करने-वाले, लंख—बांसपर खेल दिखाने वाले, मंख—चित्रपट दिखा-कर भिक्षा माँगने वाले, तूण—शहनाईवादक, तुम्बवीणक—तानपूरा बजाने वाले पुरुष जीविका-भोजन और वेतन देकर रखे हुए थे। वे तालाचर—एक प्रकार का नाटक विशेष—करते हुए रहते थे।

रायगिहविणिग्गओ एत्थ णं बहुजणो तेसु पुव्वन्नत्थेसु आसण-सयणेसु संनिसन्नो य संतुयट्टो य सुणमाणो य पेच्छमाणो य

घूमने के लिये निकले हुए राजगृह नगर के बहुत से लोग वहाँ आकर पहले से ही रखे हुए आसनों और शयनों पर बैठकर एवं लेटकर कथा वार्ता सुनते हुए, नाटक देखते हुए और

साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ ।

वहाँ की शोभा का आनन्दानुभव करते हुए सुखपूर्वक विचरण करते थे।

नंदेणं महाणससालानिम्माणं—

७३. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी दाहिणिल्ले वणसंडे एगं महं महाणससालं कारावेइ—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं-जाव-पडिरूवं। तत्थ णं बहवे पुरिसा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेंति, बहूणं समण-माहण-अतिहि-किवण-वणीमगाणं परिभाएमाणा-परिभाएमाणा विहरंति।

नन्द द्वारा महानसशाला-निर्माण—

७३. तत्पश्चात् नन्दमणियार सेठ ने दक्षिण बाजू के वनखण्ड में अनेक सैकड़ों खम्भों से सन्निविष्ट—यावत्—प्रतिरूप (अत्यन्त सुन्दर) एक विशाल महानसशाला (भोजनशाला) बनवाई। वहाँ पर जीविका-वृत्ति, भोजन और वेतन देकर रखे गये बहुत से व्यक्ति विपुल मात्रा में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार पकाते थे और बहुत से श्रमणों, माहणों, अतिथियों दरिद्रों और भिखारियों को देते रहते थे अर्थात् भोजन कराते रहते थे।

नंदेण तिगिच्छियसालानिम्माणं—

७४. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी पच्चत्थिमिल्ले वणसंडे एगं महं तिगिच्छियसालं कारावेइ—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं-जाव-पडिरूवं। तत्थ णं बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य दिन्नभइ-भत्त-वेयणा बहूणं वाहियाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य तेइच्छकम्मं करेमाणा-करेमाणा विहरंति। अण्णे य एत्थ बहवे पुरिसा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा तेसिं बहूणं वाहियाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य ओसह-भेसज्ज-भत्तपाणेणं पडियारकम्मं करेमाणा विहरंति।

नन्द द्वारा चिकित्साशाला का निर्माण—

७४. तदनन्तर नन्दमणियार सेठ ने पश्चिम दिशा के वनखण्ड में एक विशाल चिकित्साशाला (औषधालय) बनवाई, जो अनेक सैकड़ों खम्भों वाली—यावत्—प्रतिरूप थी। उसमें बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र, ज्ञायक और ज्ञायकपुत्र, कुशल और कुशलपुत्र जीविका वृत्ति-भोजन और वेतन देकर रखे गये थे—नियुक्त थे। जो बहुत से व्याधितों की, ग्लानों की, रोगियों की और दुर्बलों की चिकित्सा करते रहते थे। उस चिकित्सालय में और दूसरे बहुत से लोग आजीविका, भोजन और वेतन देकर रखे गये थे। वे व्याधि पीड़ितों की, ग्लानों की, रोगियों की और दुर्बलों की औषधि, भेषज, भोजन और पानी द्वारा परिचारकर्म—सेवा-शुश्रूषा करते थे।

नंदेण अलंकारियसभा निम्माणं—

७५. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी उत्तरिल्ले वणसंडे एगं महं अलंकारियसभं कारावेइ—अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं-जाव-पडिरूवं। तत्थ णं बहवे अलंकारिय-मणुस्सा दिन्नभइ-भत्त-वेयणा बहूणं समणाण य अणाहाण य गिलाणाण य रोगियाण य दुब्बलाण य अलंकारियकम्मं करेमाणा-करेमाणा विहरंति।

नन्द द्वारा अलंकार सभा का निर्माण—

७५. तदनन्तर नन्दमणियार सेठ ने उत्तर दिशा के वनखण्ड में एक विशाल अलंकार सभा का निर्माण कराया, जो अनेक सैकड़ों खंभों से सन्निविष्ट—यावत्—प्रतिरूप थी। उसमें बहुत से अलंकारिकपुरुष (शरीर का शृंगार आदि करने वाले पुरुष) जीविका, भोजन और वेतन देकर रखे हुए थे। जो बहुत से श्रमणों, अनाथों, ग्लानों, रोगियों और दुर्बलों का अलंकार कर्म (हजामत बनाना, शरीर पर तेल आदि की मालिश करना) करते थे।

बहुजणकया नंदस्स पसंसा नंदस्स पमोओ य—

७६. तए णं तीए नंदाए पोक्खरिणीए बहवे सणाहा य अणाहा य पंथिया य पहिया य करोडिया य तणहारा य पत्तहारा य कट्ठहारा य—अप्पेगइया ण्हायंति अप्पेगइया पाणियं पियंति अप्पेगइया पाणियं संवहंति अप्पेगइया विसज्जियसेय-जल्ल-मल-परिस्सम-निद्द-खुप्पिवासा सुहंसुहेणं विहरंति।

बहुजन कृत नन्द की प्रशंसा और नन्द का प्रमोद—

७६. उस नन्दापुष्करिणी में बहुत से सनाथ, अनाथ, पांथिक, पथिक, करोटिया (कावड़िया-कावड़ को उठाने वाले), घसियारे, पत्तों के भारेवाले, लकड़हारे आदि आते थे। उनमें से कोई एक स्नान करते, कोई-कोई पानी पीते, कोई-कोई पानी भरकर ले जाते, कोई-कोई पसीने, जल्ल, मल, परिश्रम, थकावट, निद्रा, भूख, प्यास का निवारण करके सुखपूर्वक रहते थे।

रायगिहविणिग्गओ वि यत्थ बहुजणो 'किं ते जलरमण-विविहमज्जण-कयलिलयाहरय-कुसुम-सत्थरयअणेगसउणगण-रुयरिभिय-

राजगृह नगर से भी बहुत से लोग आकर उस नन्दापुष्करिणी में क्या करते थे? तो बताते हैं—वे जल में रमण करते थे, विविध प्रकार से स्नान करते थे, कदली गृहों, लतागृहों पुष्प

संकुलेसु सुहंसुहेणं अभिरममाणो-अभिरममाणो विहरइ।

तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवं वयासी—"धण्णे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियार-सेट्ठी, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयपुण्णे, णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले नंदस्स मणियारस्स? जस्स णं इमेयारूवा नंदा पोक्खरिणी चाउक्कोणा-जाव-पडिरूवा-जाव-रायगिहविणिग्गओ जत्थ बहुजणो आसणेसु य सयणेसु य सण्णिसण्णो य संतुयट्टो य पेच्छमाणो य साहेमाणो य सुहंसुहेणं विहरइ। तं धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी, कया णं लोया! सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले नंदस्स मणियारस्स'।

तए णं रायगिहे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारसेट्ठी सो चेव गमओ-जाव-सुहंसुहेणं विहरइ।

तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे धाराहत-कलंबगं विव समूससियरोमकूवे परं सायासोक्खमणुभवमाणे विहरइ।

नंदस्स रोगुप्पत्ती—

७७. तए णं तस्स नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स अण्णया कयाइ सरीरगंसि सोलस रोगायंका पाउब्भूया। तं जहा—

> सासे कासे जरे दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे।
> अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुद्धसूले अकारए॥
> अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू दउदरे कोढे॥१॥

नंदरोगाणं वेज्जकयतिगिच्छाए वि निप्फलत्तं—

७८. तए णं से नंदे मणियारसेट्ठी सोलसहिं रोयायंकेहिं अभिभूए समाणे कोडुंबियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया!—

वाटिकाओं और अनेक पक्षियों के समूहों के कलरवों से युक्त नन्दापुष्करिणी में क्रीड़ा करते हुए सुखपूर्वक विचरते थे।

तत्पश्चात् उस नन्दापुष्करिणी में स्नान करते हुए, पानी पीते हुए, पानी भरकर ले जाते हुए बहुत से लोग आपस में इस प्रकार कहते थे—हे देवानुप्रिय! नन्दमणियार सेठ धन्य है, नन्दमणियार सेठ कृतार्थ है, नन्दमणियार सेठ कृत लक्षण है, नन्दमणियार सेठ कृतपुण्य है, उसने अपना जीवन सफल कर लिया, नन्दमणियार सेठ ने इस मनुष्य जन्म और जीवन का फल अच्छी तरह से प्राप्त किया है, जिसने इस प्रकार की चौकोर—यावत्—प्रतिरूप-मनोहर नन्दापुष्करिणी का निर्माण कराया है—यावत्—जहाँ राजगृह नगर से आकर बहुत से लोग आसनों और शयनों पर बैठते, लेटते और सोते हैं और नाटक आदि देखते हुए, कथा-वार्ता सुनते हुए सुखपूर्वक विचरण करते हैं। अतएव हे देवानुप्रिय! नन्दमणियार सेठ धन्य है, कृतार्थ है, नन्दमणियार सेठ कृतलक्षण है, नन्दमणियार सेठ पुण्यशाली है, नन्दमणियार सेठ ने अपना लोक सफल कर लिया है और उसका मनुष्य जन्म और जीवन सुलब्ध है।

राजगृह में भी शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों—गली-गली में बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कहते थे, बोलते थे, प्ररूपित करते थे, प्रज्ञापना करते थे, कि—हे देवानुप्रिय! नन्दमणियार सेठ धन्य है इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिए—यावत्—आने वाले लोग सुखपूर्वक विचरते हैं।

तब वह नन्दमणियार सेठ बहुत से लोगों से अपनी प्रशंसा-रूप बातों को सुनकर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट होता हुआ मेघधारा से आहत कदम्ब वृक्ष के समान विकसित रोमराजि-युक्त होकर साता जनित परम सुख का अनुभव करते हुए विचरण करने लगा।

नन्द की रोगोत्पत्ति—

७७. तत्पश्चात् किसी एक समय उस नन्दमणियार सेठ के शरीर में सोलह रोगांतक उत्पन्न हो गये। वे इस प्रकार हैं—

१. श्वास (दमा), २. कास (खांसी), ३. ज्वर, ४. दाह-जलन, ५. कुक्षिशूल, ६. भगंदर, ७. अर्श-बवासीर, ८. अजीर्ण, ९. नेत्रशूल, १०. शिरोवेदना, ११. अरुचि, १२. नेत्रवेदना, १३. कर्णवेदना, १४. खुजली, १५. जलोदर और १६. कोढ़-कुष्ट।

नन्द के रोगों की वैद्यकृत-चिकित्सा की विफलता—

७८. तत्पश्चात् उन सोलह रोगांतकों से पीड़ित होने पर उस नन्दमणियार सेठ ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ

रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया ! नंदस्स मणियारस्स सरीरगंसि सोलस रोयायंका पाउब्भूया । तं जहा—सासे-जाव-कोढे । तं जो णं इच्छइ देवाणुप्पिया ! विज्जो वा विज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुअपुत्तो वा कुसलो वा कुसलपुत्तो वा नंदस्स मणियारस्स तेसिं च णं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, तस्स णं नंदे मणियारसेट्ठी विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ त्ति कट्टु दोच्चंपि तच्चंपि घोसणं घोसेह, घोसेत्ता एयमाणत्तियं पच्च-प्पिणह । तेवि तहेव पच्चप्पिणंति ।

और राजगृह नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग और सामान्य मार्गों में ऊँची-ऊँची आवाज से उद्घो-षणा करते हुए इस प्रकार कहो कि—'हे देवानुप्रियो ! नन्द-मणियार के शरीर में सोलह रोगातंक उत्पन्न हुए हैं, यथा—श्वास—यावत्—कोढ़ । इसलिए हे देवानुप्रियो ! जो कोई भी वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकार का पुत्र, कुशल या कुशलपुत्र नन्दमणियार के उन सोलह रोगातंकों में से किसी एक भी रोगातक को उपशान्त कर देगा—मिटा देगा, उसे नन्दमणियार सेठ विपुल धन-संपत्ति देगा, इस प्रकार घोषणा करके पुनः इसी प्रकार दूसरी और तीसरी बार घोषणा करो, घोषणा करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् घोषणा करके मुझे सूचना दो । वे कौटुम्बिक पुरुष भी उसी प्रकार घोषणा करके आज्ञा वापस लौटाते हैं ।

तए णं रायगिहे नगरे इमेयारूवं घोसणं सोच्चा निसम्म बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य कुसला य कुसल-पुत्ता य सत्थकोसहत्थगया य सिलियाहत्थगया य गुलियाहत्थगया य ओसह-भेसज्जहत्थगया य सएहिं सएहिं गिहेहिंतो निक्खमंति, निक्खमित्ता रायगिहं मज्झंमज्झेणं जेणेव नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स सरीरं पासंति, पासित्ता तेसिं रोगायंकाणं नियाणं पुच्छंति, पुच्छित्ता नंदस्स मणियारसेट्ठिस्स बहूहिं उव्वलणेहि य उव्वट्टणेहि य सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणेहि य अवदह-णेहि य अवण्हाणेहि य अणुवासणाहि य वत्थिकम्मेहि य निरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणाहि य पच्छणाहि य सिरावत्थीहि य तप्पणाहि य पुडपाएहि य छल्लीहि य वल्लीहि य मूलेहि य कंदेहि य पत्तेहि य पुप्फेहि य फलेहि य बीएहि य सिलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, नो चेव णं संचाएंति उवसामेत्तए ।

तत्पश्चात् राजगृह नगर में इस प्रकार की घोषणा सुनकर और हृदय में अवधारण कर बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र, जान-कार और जानकार के पुत्र, कुशल और कुशलपुत्र हाथ में शस्त्र-कोश (शस्त्रों की पेटी) लेकर, शिलिका (शस्त्रों को धार देने का पत्थर-सिल्ली) लेकर, गोलियाँ लेकर, औषधि-भेषज लेकर अपने-अपने घरों से निकले । निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच से निकलते हुए, जहाँ नन्दमणियार सेठ का घर था, वहाँ आये, वहाँ आकर उन्होंने नन्दमणियार सेठ के शरीर को देखा—शरीर की परीक्षा की, परीक्षा करके नन्दमणियार से रोगान्तक उत्पन्न होने के कारण को पूछा, पूछकर फिर बहुत से उद्वलन (विशेष प्रकार के लेप) द्वारा, उद्वर्तन (उबटन) द्वारा, स्नेहपान द्वारा, वमन द्वारा, विरेचन द्वारा, स्वेदन (पसीना निकालने के) द्वारा, अवदहन (डाम) द्वारा, अपस्नान द्वारा, अनुवासना (एनिमा) द्वारा, बस्तिकर्म द्वारा, निरूह द्वारा, शिरोवेध द्वारा, तक्षण (चीरफाड़) द्वारा, प्रक्षणद्वारा, शिरावस्ति (इंजेक्शन) द्वारा, तर्पण (तैलमालिश) द्वारा, पुटपाक (भस्मों) द्वारा, छालों द्वारा, बेलों द्वारा, जड़ों द्वारा, कन्दों द्वारा, पत्तों द्वारा, पुष्पों द्वारा, फलों द्वारा, बीजों द्वारा, शिलिक (घास विशेष) द्वारा, गोलियों द्वारा, औषधियों द्वारा, भैषजों द्वारा, उन सोलह रोगा-न्तकों को उपशमित करना चाहा, परन्तु वे एक भी रोगान्तक को शांत करने में समर्थ नहीं हो सके ।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुय-पुत्ता य कुसला य कुसलपुत्ता य जाहे नो संचाएंति तेसिं सोल-सण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

तत्पश्चात् वे बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र, ज्ञायक और ज्ञायक-पुत्र, कुशल और कुशलपुत्र, जब उन सोलह रोगान्तकों में से एक भी रोगान्तक को शान्त करने में सफल नहीं हुए तब श्रान्त, क्लान्त, खिन्न और उदास होकर जिधर से आये थे, उधर ही अपने-अपने घरों को वापस लौट गये ।

नंदमणियारस्स दद्दुरभवो—

७९. तए णं नंदे मणियारसेट्ठी तेहिं सोलसेहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे नंदाए पुक्खरिणीए मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे तिरिक्खजोणिएहिं निबद्धाउए बद्धपए सिए अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे कालमासे कालं किच्चा नंदाए पोक्खरिणीए दद्दुरीए कुच्छिंसि दद्दुरत्ताए उववण्णे।

तए णं नंदे दद्दुरे गब्भाओ विणिमुक्के समाणे उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमित्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते नंदाए पोक्खरिणीए अभिरममाणे-अभिरममाणे विहरइ

तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—धन्ने णं देवाणुप्पिया! नंदे मणियारे, जस्स णं इमेयारूवा नंदा पुक्खरिणी—चाउक्कोणा-जाव-पडिरूवा। जस्स णं पुरत्थिमिल्ले वणसंडे चित्तसभा अणेगखंभसयसन्निविट्ठा तहेव चत्तारि सहाओ जाव जम्म जीविअफले।

नन्दमणियार का दर्दुरभव—

७९. इसके बाद उन सोलह रोगातंकों से अभिभूत उस नन्दमणियार सेठ ने नन्दापुष्करिणी में मूर्च्छित, गृद्ध, लालसी होकर तिर्यंचयोनि सम्बन्धी आयु का बन्ध किया, प्रदेशों का बन्ध किया और आर्त्तध्यान के वशीभूत होकर मरण के समय काल करके नन्दापुष्करिणी में एक दर्दुरी—मेंढकी की कुक्षि में मेंढक रूप में उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् वह नन्द मण्डूक गर्भ से निकलकर और अनुक्रम से बाल्यावस्था को पार कर विज्ञान परिणत-समझदार होकर एवं युवावस्था को प्राप्त कर नन्दापुष्करिणी में रमण करता हुआ विचरने लगा।

तब नन्दापुष्करिणी में बहुत से लोग स्नान करते हुए, पानी पीते हुए और पानी भरकर ले जाते हुए परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहते थे, बोलते थे, प्रज्ञापना करते थे, प्ररूपणा करते थे, कि—'हे देवानुप्रियो! नन्दमणियार धन्य है, जिसने इस प्रकार की यह चतुष्कोणवाली—यावत्—प्रतिरूप नन्दापुष्करिणी बनवाई। जिसके पूर्व के वनखण्ड में अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त चित्रसभा है। इसी प्रकार चारों सभाओं के विषय में कहना चाहिए—यावत्—इस प्रकार के कार्य करवाके उसका जन्म और जीवन सफल है।

दद्दुरस्स जाइस्सरणं सावगवयपालणं च—

८०. तए णं तस्स दद्दुरस्स तं अभिक्खणं-अभिक्खणं बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—'कहिं मन्ने मए इमेयारूवे सद्दे निसंतपुव्वे' त्ति कट्टु सुभेणं परिणामेणं पसत्थेणं अज्झवसाणेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं तयावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहापूह-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स सण्णिपुव्वे जाईसरणे समुप्पण्णे, पुव्वजाइं सम्मं समागच्छइ।

तए णं तस्स दद्दुरस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इहेव रायगिहे नयरे नंदे नामं मणियारे-अड्ढे-जाव-अपरिभूए, तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे। तए णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइए सत्तसिक्खावइए—दुवालसविहे गिहिधम्मे पडिवण्णे। तए णं अहं अण्णया कयाइ असाहुदंसणेण य-जाव-मिच्छत्तं विप्पडिवण्णे।

'तए णं अहं अण्णया कयाइं गिम्हकालसमयंसि-जाव-पोसहं

दर्दुर को जातिस्मरण ज्ञान और श्रावकव्रत पालन—

८०. तत्पश्चात् उस दर्दुर को बार-बार बहुत से लोगों से यह बात सुनकर और मन में समझकर इस प्रकार मानसिक चिन्तन—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ कि—'जान पड़ता है कि इस प्रकार के शब्द मैंने पहले भी सुने हैं,' इस तरह विचार करने से शुभ परिणामों से, प्रशस्त अध्यवसायों से, लेश्याओं के विशुद्ध होने से तथा तदावरणीयकर्मों के क्षयोपशम से, ईहा, अपोह (अवाय), मार्गणा, गवेषणा करते हुए उस दर्दुर को संज्ञीपर्याय के भवों को जानने वाला जातिस्मरणज्ञान उत्पन्न हो गया। जिससे उसे अपना पूर्वभव अच्छी तरह से स्मरण में आ गया।

तत्पश्चात् उस दर्दुर को इस प्रकार का चिन्तन—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'मैं इसी राजगृहनगर में धनाढ्य—यावत्—दूसरों से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला नन्द नामक मणियार था। उस काल और उस समय राजगृहनगर में श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे थे। तब मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास पाँच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म को अंगीकार किया था। तत्पश्चात् असाधुदर्शन—यावत्—मिथ्यात्वोदय के कारण मैं किसी समय मिथ्यात्वी हो गया।

इसके बाद किसी एक समय ग्रीष्मऋतु में—यावत्—तेले

उवसंपज्जित्ताणं विहरामि। एवं जहेव चिंता। आपुच्छणा। नंदापुक्खरिणी। वणसंडा। सभाओ। तं चेव सव्वं-जाव-नंदाए दद्दुरत्ताए उववण्णे। तं अहो णं अहं अधण्णे अपुण्णे अकयपुण्णे निग्गंथाओ पावयणाओ नट्ठे भट्ठे परिब्भट्ठे। तं सेयं खलु मम सयमेव पुव्वपडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।'

के साथ पौषध अंगीकार करके विचर रहा था। तब मुझे पुष्करिणी बनवाने का विचार उत्पन्न हुआ। श्रेणिकराजा की आज्ञा ली। नन्दापुष्करिणी खुदवाई। वनखण्ड लगवाये। चार सभायें बनवाई। इत्यादि सर्व वर्णन पूर्ववत् समझना चाहिए—यावत्—पुष्करिणी के प्रति आसक्ति होने के कारण नन्दापुष्करिणी में मेंढ़करूप में उत्पन्न हुआ। अतएव मैं अधन्य हूँ, अपुण्य हूँ, मैंने पुण्य नहीं किया, मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन से नष्ट हुआ, भ्रष्ट हुआ, परिभ्रष्ट हुआ। अतएव अब मेरे लिए यही श्रेयस्कर है, कि मैं स्वयं ही पहले अंगीकार किये गये पाँच अणुव्रतों और सात शिक्षाव्रतों को पुनः अंगीकार कर लूँ।'

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता पुव्वपडिवण्णाइं पंचाणुव्वयाइं आरुहेइ, आरुहेत्ता इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ—कप्पइ मे जावज्जीवं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणगंसि कप्पइ मे नंदाए पोक्खरिणीए परिपेरंतेसु फासुएणं ण्हाणोदएणं उम्मद्दणालोलियाहि य वित्तिं कप्पेमाणस्स विहरित्तए—इमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ, जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

इस प्रकार का विचार किया और विचार करके पहले अंगीकार किये हुए पांच अणुव्रतों को पुनः अंगीकार कर लिया, पंच अणुव्रतों को अंगीकार करके इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया—'आज से यावज्जीवन के लिए मुझे बेले-बेले की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरना कल्पता है और षष्ठ भक्त (बेले) के पारणे में भी नन्दापुष्करिणी के पर्यन्त (किनारे) भागों में प्रासुक (अचित्त) हुए स्नान के जल से और उन्मर्दन आदि द्वारा उतारे गये मनुष्यों के मैल से अपना जीवन-निर्वाह करना कल्पता है'—इस प्रकार का उसने अभिग्रह धारण किया और अभिग्रह धारण करके जीवन पर्यन्त बेले-बेले की तपस्या द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

भगवओ रायगिहे समवसरण—

८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! गुणसिलए समोसढे। परिसा निग्गया।

तए णं नंदाए पोक्खरिणीए बहुजणो ण्हायमाणो य पियमाणो य पाणियं च संवहमाणो य अण्णमण्णं एवमाइक्खइ—एवं खलु समणे भगवं महावीरे इहेव गुणसिलए चेइए समोसढे। तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो। एयं णे इहभवे परभवे य हियाए-जाव-आणुगामियत्ताए भविस्सइ।

भगवान का राजगृह में समवसरण—

८१. हे गौतम ! मैं उस काल और उस समय में गुणशीलक चैत्य में आया। वन्दन करने परिषदा निकली।

उस समय उस नन्दापुष्करिणी में आये हुए बहुत से जन नहाते, पानी पीते और पानी ले जाते हुए आपस में इस प्रकार बातें करने लगे, कि 'श्रमण भगवान महावीर स्वामी यहीं गुणशीलक चैत्य में समवसृत हुए हैं—पधारे हैं। इसीलिए हे देवानुप्रिय ! हम चलें और श्रमण भगवान महावीर की वन्दना करें, नमस्कार करें, सत्कार-सम्मान करें, कल्याण, मंगल, देव एवं चैत्यरूप भगवान की पर्युपासना करें। यह हमारे लिए इस भव में और परभव में हितकर होगा—यावत्—अनुगामीरूप होगा—परभव में भी साथ जायेगा।'

दद्दुरस्स समवसरण पइ गमणं—

८२. तए णं तस्स दद्दुरस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे समोसढे। तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि'। एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता नंदाओ पोक्खरिणीओ

दर्दुर का समवसरण—प्रतिगमन—

८२. तत्पश्चात् अनेक लोगों से यह वृत्तांत सुनकर और हृदय में धारणकर उस दर्दुर को यह और इस प्रकार का विचार—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'यहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं। इसलिए मैं उन श्रमण भगवान महावीर स्वामी की वन्दना करने के लिए जाऊं।' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके शनैः-शनैः नन्दापुष्करिणी से वह बाहर

सणियं-सणियं पच्चुत्तरेइ, पच्चुत्तरित्ता जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताए उक्किट्ठाए दद्दुरगईए वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

निकला और बाहर निकलकर जहाँ राजमार्ग था, वहाँ आया, आकर उत्कृष्ट दर्दुर गति से अर्थात् मेंढक योग्य तीव्र चाल से चलते हुए मेरे पास आने के लिए उद्यत—तत्पर हुआ।

इमं च णं सेणिए राया भंभसारे ण्हाए-जाव-सव्वालंकार-विभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवर-चामरेहि य उद्धुव्वमाणेहिं महयाहय-गय-रह-भड-चडगर-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे मम पायवंदए हव्वमागच्छइ।

इधर श्रेणिक राजा अपरनाम भंभसार ने स्नान किया—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ और श्रेष्ठ हाथी के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की मालावाले छत्र को धारण किये हुए, श्वेत चामरों से विंजाते हुए एवं उत्तम अश्व, हाथी, रथ और सुभटों की समूहरूप चतुरंगिणी सेना से परिवृत होकर मेरे चरणों की वन्दना करने के लिये शीघ्रता से आ रहा था।

दद्दुरस्स महव्वयगहणसंकप्पो—

दर्दुर का महाव्रतग्रहण संकल्प—

८३. तए णं से दद्दुरे सेणियस्स रण्णो एगेणं आसकिसोरएणं वामपाएणं अक्कंते समाणे अंतनिग्घाइए कए यावि होत्था।

८३. तब वह मेंढक श्रेणिक राजा के एक अश्वकिशोर (नौजवान घोड़े) के बायें पैर से कुचल गया, जिससे उसकी आंतें बाहर निकल आईं।

तए णं से दद्दुरे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु एगंतमवक्कमइ, करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

तत्पश्चात्—घोड़े के पैर से कुचल जाने के बाद—वह दर्दुर शक्तिहीन, बलहीन, वीर्यहीन, पुरुषाकार—पराक्रम से हीन हो गया। अब इस जीवन का बचना शक्य नहीं है, ऐसा जानकर एकान्त में चला गया और वहाँ दोनों हाथ जोड़कर, मस्तक पर आवर्तन पूर्वक अंजलि करके इस प्रकार बोला—

"नमोत्थु णं अरहंताणं-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं। नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-सिद्धिगइनामधेज्जं ठाणं संपाविउकामस्स। पुव्विं पि य णं मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए-जाव-थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए। तं इयाणिं पि तस्सेव अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि-जाव-सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामि जावज्जीवं, सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं पच्चक्खामि जावज्जीवं। जं पि य इमं सरीरं कंतं-जाव-मा णं विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु एयं पि य णं चरिमेहिं ऊसासेहिं वोसिरामि त्ति कट्टु।

'अरिहंत—यावत्—सिद्धावस्था को प्राप्त आत्माओं को नमस्कार हो। श्रमण भगवान महावीर स्वामी को—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर आत्माओं को नमस्कार हो। पहले भी मैंने श्रमण भगवान महावीर के पास स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान किया था—यावत्—स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान किया था, तो इस समय भी उन्हीं के समीप सर्वप्रकार से जीवनपर्यन्त के लिए समस्त प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ—यावत्—समस्त परिग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ, जीवन पर्यन्त के लिए सभी प्रकार के अशन-पान-खादिम-स्वादिम आहार का प्रत्याख्यान करता हूँ, यह जो मेरा इष्ट और कान्त शरीर है—यावत्—जिसके विषय में यह चाहा था कि इसे विविध प्रकार के रोग और आतंक, परिषह और उपसर्ग स्पर्श न करें, उसे भी अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक त्यागता हूँ।' इस प्रकार उसने पूर्ण प्रत्याख्यान कर लिया।

दद्दुरस्स देवत्तं—

दर्दुर की देवपर्याय में उत्पत्ति—

तए णं से दद्दुरे कालमासे कालं किच्चा-जाव-सोहम्मे कप्पे दद्दुरवडिंसए विमाणे उववायसभाए दद्दुरदेवत्ताए उववण्णे।

तत्पश्चात् वह दर्दुर मरणकाल के प्राप्त होने पर मरण करके—यावत्—सौधर्मकल्प में दर्दुरावतंसक विमान की उपपात सभा में दर्दुर देव के रूप में उत्पन्न हुआ है।

एवं खलु गोयमा! दद्दुरेणं सा दिव्वा देविड्ढी लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया"।

हे गौतम! इस प्रकार से उस दर्दुरदेव ने वह दिव्य देवऋद्धि लब्ध की है, प्राप्त की है और पूर्ण रूप से अधिगत की है।'

दद्दुरस्स णं भंते ! देवस्स केवइयं कालं ठिई पण्णत्ता ?

गोयमा ! चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

से णं दद्दुरे देवे ताओ देवलोगाओ कहिं गए ? कहिं उववज्जे ?

गोयमा ! से णं दद्दुरे देवे आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिइ।[1]

'हे भगवन् ! दर्दुरदेव की उस देवलोक में कितनी स्थिति है ?' गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा।

प्रत्युत्तर में भगवान ने कहा—'हे गौतम ! दर्दुरदेव की चार पल्योपम की स्थिति कही गयी है।'

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न किया—'वह दर्दुरदेव उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

'हे गौतम ! तत्पश्चात् वह दर्दुरदेव आयु क्षय, भव क्षय, स्थिति क्षय से शीघ्र ही च्यवन करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा, परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

॥ महावीर तीर्थ में नंदमणियार कथानक समाप्त ॥

□ □

५. महावीरतित्थे आणंदगाहावइकहाणगं

वाणियगामे आणंदो गाहावई—

८४. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था—वण्णओ।

तस्स वाणियगामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं दूइपलासए नामं चेइए होत्था।

तत्थ णं वाणियगामे नयरे जियसत्तू राया होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं वाणियगामे नयरे आणंदे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-अपरिभूए।

तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

५. महावीर तीर्थ में आनन्द गाथापति कथानक

वाणिज्यग्राम में आनन्द गाथापति—

८४. उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था—अन्य नगरों के समान इसका वर्णन जानना चाहिए।

उस वाणिज्य ग्राम नगर के बाहर उत्तरपूर्व दिग्भाग में दूतीपलाश नाम का चैत्य था।

उस वाणिज्य ग्राम नगर में जितशत्रु राजा राज्य करता था, राजा का वर्णन कोणिक के समान जानना चाहिए।

उस वाणिज्यग्राम नगर में आनन्द नामक गाथापति रहता था, जो धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत था।

उस आनन्द गाथापति के चार स्वर्ण कोटियाँ निधान-कोष में संचित थीं, चार स्वर्ण कोटियाँ वृद्धि के लिए व्यापार-व्यवसाय में लगी हुई थीं और चार स्वर्ण कोटियाँ प्रविस्तरगृह सम्बन्धी सामान में लगी हुई थीं एवं उसके पास दस-दस हजार गायों वाले चार व्रज थे।

---

१. वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

संपन्नगुणो वि जओ, सुसाहु-संसग्गवज्जिओ पायं। पावइ गुणपरिहाणिं, दद्दुरजीवो व्व मणियारो ॥१॥

अथवा—

तित्थयर-वंदणत्थ, चलिओ भावेण पावए सग्गं। जह दद्दुरदेवेणं, पत्तं वेमाणिय-सुरत्तं ॥२॥

—णाया० सु०१ अ० १३।

से णं आणंदे गाहावई बहूणं राईसर तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाणं बहूसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुम्बेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी पमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूए पमाणभूए आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था।

बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ सेनापति, सार्थवाह उस आनन्द गाथापति से अपने-अपने कार्यों, कारणों, कौटुम्बिक प्रश्नों, मंत्रणाओं, गुप्तबातों, रहस्यों, निश्चयों और लौकिक व्यवहारों के विषय में पूछते रहते थे, विचार विमर्श करते थे एवं अपने कुटुम्ब का भी वह प्रमुख, आधार भूत, आलंबनरूप—सहारा, पथप्रदर्शक, मेढीभूत—केन्द्र स्तम्भ के समान था तथा सर्वकार्यों को सम्पन्न करने के लिए मेढ़ीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, अवलंबनभूत, निर्देशक भी था।

तस्स णं आणंदस्स गाहावइस्स सिवणंदा नामं भारिया होत्था—अहीण-जाव-सुरूवा, आणंदस्स गाहावइस्स इट्ठा, आणंदेणं गाहावइणा सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता, इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

उस आनन्द गाथापति की शिवनन्दा नाम की भार्या थी, जो सर्वांगोपांगवाली—यावत्—सुन्दर थी, आनन्द गाथापति को इष्ट-प्रिय थी, आनन्द गाथापति के प्रति अनुरक्त थी, उससे अविरक्त थी और इष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप, गंध सम्बन्धी पांच प्रकार के मानवीय कामभोगों को भोगती हुई विचरती थी।

तस्स णं वाणियगामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं कोल्लाए नामं सण्णिवेसे होत्था—रिद्धत्थिमिए-जाव-पासादिए-जाव-पडिरूवे।

उस वाणिज्यग्राम नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा—ईशानकोण में कोल्लाग नामक सन्निवेश—उपनगर था, जो भवनादि वैभव से सम्पन्न, स्व-पर चक्र के भय से रहित—यावत्—मनोहर—यावत्—प्रतिरूप था।

तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे आणंदस्स गाहावइस्स बहवे मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणे परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

उस कोल्लाग सन्निवेश में आनन्द गाथापति के बहुत से मित्र, ज्ञाति-जाति जन, निजी स्वजन, सम्बन्धी, परिजन रहते थे, वे सभी धनाढ्य थे—यावत्—किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाले थे।

महावीर-समवसरणं—

८५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव वाणियगामे नयरे जेणेव दूइपलासए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

महावीर समवसरण—

८५. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर स्वामी—यावत्—जहाँ वाणिज्यग्राम नगर था, जहाँ दूतीपलाश चैत्य था, वहाँ पधारे, पधारकर यथाप्रतिरूप अवग्रहों को ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

परिसा निग्गया। कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

परिषदा निकली। कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा भी निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

आणंदस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

८६. तए णं आणंदे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव वाणियगामस्स नयरस्स बहिया दूइपलासए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ। तं महप्फलं-जाव-तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि-जाव-पज्जुवासामि"—

आनन्द का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण—

८६. तदनन्तर आनन्द गाथापति इस वृत्तांत को सुनकर कि—'पूर्वानुपूर्वी क्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए श्रमण भगवान महावीर यहाँ आये हैं, यहाँ समागत हुए हैं, यहाँ पधारे हैं और यहीं वाणिज्यग्राम नगर के बाहर दूतीपलाश चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रहों को स्वीकार करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं। अतः मैं उनके दर्शन का महाफल प्राप्त करूँ—यावत्—जाऊँ और उन देवानुप्रिय श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन करूँ—यावत्—उनकी पर्युपासना-सेवा करूँ"

एवं संपेहेइ, संपेहित्ता ण्हाए-जाव-सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घा-भरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं वाणिय-गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव दूइ-पलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पया-हिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ-जाव-पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे आणंदस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

आणंदस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

८७. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए-जाव-एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जहेयं तुब्भे वयह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडं-बिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचा-एमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि" ।

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।

आणंदगाहावइगहियस्स सावगधम्मस्स विवरणं—

८८. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए तप्पढमयाए थूलयं पाणाइवायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं—न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा ।

तयाणंतरं च णं थूलयं मुसावायं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं—न करेमि न कारवेमि मणसा वयसा कायसा ।

तयाणंतरं च णं थूलयं अदिण्णादाणं पच्चक्खाइ जावज्जीवाए दुविहं तिविहेणं—न करेमि न कारवेमि, मणसा वयसा कायसा ।

इस प्रकार का विचार किया—यावत्—स्नान [...] यावत्—शुद्ध, वेशोचित, मंगलरूप उत्तम वस्त्रों को प[...] अल्प भार किन्तु मूल्यवान् आभूषणों से शरीर को [...] करके अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्पों की म[...] से युक्त छत्र को सिर पर धारणकर मनुष्य समूह के सा[...] चलते हुए वाणिज्यग्राम नगर के मध्यभाग से निकला, [...] कर दूतीपलाश चैत्य में जहाँ श्रमण भगवान महावीर [...] रहे थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की [...] बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया—या[...] पर्युपासना करने लगा ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने आनन्द गाथाप[...] उस महती परिषदा को—यावत्—धर्मकथा सुनाई ।

परिषदा वापस लौट गई और राजा भी चला गया [...]

आनन्द का गृहस्थ धर्म स्वीकार करना—

८७. इसके बाद आनन्द गाथापति ने श्रमण भगवान [...] स्वामी से धर्म श्रवणकर और हृदय में धारण करके, ह[...] संतुष्ट एवं आनन्दित मन वाला होते हुए—यावत्—[...] कहा—'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा [...] —यावत्—वह वैसा ही है, जैसा आप कहते हैं । आप[...] प्रिय के पास जैसे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, म[...] कौटुम्बिक इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि मुण्डित [...] गृहत्यागकर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, व[...] से मैं मुण्डित होकर गृहत्यागकर आनगारिक दीक्षा [...] करने में समर्थ नहीं हूँ । किन्तु मैं आप देवानुप्रिय के पा[...] अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म [...] करना चाहता हूँ ।'

महावीर स्वामी ने कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुमको [...] हो, वैसा करो, किन्तु विलंब-प्रमाद मत करो ।'

आनन्द गाथापति के गृहस्थधर्म-श्रावकधर्म का वि[...]

८८. तदनंतर उस आनन्द गाथापति ने श्रमण भगवान [...] से पहले—'सर्व प्रधान स्थूल प्राणातिपात का दो क[...] योग से जीवन पर्यंत के लिए प्रत्याख्यान किया, कि म[...] काया से न हिंसा करूंगा और न कराऊंगा ।

तदनन्तर स्थूल मृषावाद का प्रत्याख्यान किया कि [...] वन के लिए दो करण, तीन योग से अर्थात् मन-व[...] काया से स्थूल मृषावाद का प्रयोग न स्वयं करूंगा [...] दूसरों से करवाऊंगा ।

इसके पश्चात् स्थूल अदत्तादान का प्रत्याख्यान कि[...] यावज्जीवन के लिए दो करण, तीन योग-मन, वचन, [...] न स्थूल चोरी स्वयं करूंगा और न दूसरे से करवाऊंगा [...]

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसीय परिमाणं करेइ—नन्नत्थ एक्काए सिवनंदाए भारियाए, अवसेसं सव्वं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ ।

तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणं करेमाणे—

(१) हिरण्ण-सुवण्णविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं हिरण्णकोडीहिं निहाणपउत्ताहिं, चउहिं वुड्ढिपउत्ताहिं, चउहिं पवित्थरपउत्ताहिं अवसेसं सव्वं हिरण्ण-सुवण्णविहिं पच्चक्खाइ ।

(२) तयाणंतरं च णं चउप्पयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं वएहिं दसगोसाहस्सिएणं वएणं, अवसेसं सव्वं चउप्पयविहिं पच्चक्खाइ ।

(३) तयाणंतरं च णं खेत्त-वत्थुविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचहिं हलसएहिं नियत्तणसतिएणं हलेणं, अवसेसं सव्वं खेत्तवत्थुविहिं पच्चक्खाइ ।

(४) तयाणंतरं च णं सगडविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचहिं सगडसएहिं दिसायत्तिएहिं, पंचहिं सगडसएहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं सगडविहिं पच्चक्खाइ ।

(५) तयाणंतरं च णं वाहणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ चउहिं वाहणेहिं दिसायत्तिएहिं, चउहिं वाहणेहिं संवाहणिएहिं, अवसेसं सव्वं वाहणविहिं पच्चक्खाइ ।

तयाणंतरं च णं उवभोग-परिभोगविहिं पच्चक्खायमाणे—

(१) उल्लणियाविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगाए गंधकासाईए, अवसेसं सव्वं उल्लणियाविहिं पच्चक्खाइ ।

(२) तयाणंतरं च णं दंतवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं अल्ललट्ठीमहुएणं, अवसेसं सव्वं दंतवणविहिं पच्चक्खाइ ।

(३) तयाणंतरं च णं फलविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं खीरामलएणं, अवसेसं सव्वं फलविहिं पच्चक्खाइ ।

(४) तयाणंतरं च णं अब्भंगणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सयपागसहस्स-पागेहिं तेल्लेहिं, अवसेसं सव्वं अब्भंगणविहिं पच्चक्खाइ ।

(५) तयाणंतरं च णं उव्वट्टणाविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं सुरहिणा गंधट्टएणं, अवसेसं सव्वं उव्वट्टणाविहिं पच्चक्खाइ ।

(६) तयाणंतरं च णं मज्जणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ

तत्पश्चात् स्वदार-संतोष विषयक परिमाण किया कि एक शिवानन्दा भार्या के अतिरिक्त अवशिष्ट सर्व प्रकार के मैथुन सेवन का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

तत्पश्चात् इच्छा परिमाण को करते हुए—

१. हिरण्य—स्वर्ण विधि का परिमाण किया—कोष में निक्षिप्त चार स्वर्ण कोटियों, चार कोटि व्यापार व्यवसाय में लगी हुई और चार कोटि गृहोपकरण सम्बन्धी स्वर्ण कोटियों के अतिरिक्त अवशिष्ट सब हिरण्य—स्वर्ण संग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

२. इसके बाद चतुष्पद विधि का परिमाण किया—दस-दस हजार गायों वाले प्रत्येक चार व्रजों के अतिरिक्त अन्य सब चतुष्पदसंग्रह-पशुसंग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

३. इसके पश्चात् क्षेत्र-वास्तु विधि का परिमाण किया—सौ बीघा भूमि का एक हल, ऐसे पाँच सौ हलों के अतिरिक्त अन्य सब क्षेत्र-वास्तु विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

४. तदनन्तर शकट—गाड़ा, गाड़ी आदि—विधि का परिमाण किया—पाँच सौ शकट विदेश यात्रा करने वाला और पाँच सौ शकट यहाँ हल आदि का वहन करने वालों के सिवाय शेष सब शकट संग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

५. तदनन्तर वाहन विधि का परिमाण किया—चार वाहन यात्रा के, चार वाहन माल-सामान ढोने के अतिरिक्त अन्य सब वाहन संग्रह का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

तदनन्तर उपभोग परिभोग विधि का प्रत्याख्यान करते हुये—

१. आर्द्रयणिका (जल पोंछने का गमछा-तौलिया) विधि का परिमाण किया—एक गंध कषाय गमछे के अतिरिक्त अन्य सब का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

२. इसके पश्चात् दंत-धावन—दतौन विधि का परिमाण किया—एक आर्द्र—हरी मधुयष्टि—मुलहठी की दतौन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

३. इसके पश्चात् फलविधि का परिमाण किया—एक क्षीरामलक—दूधिया आंवले के सिवाय शेष दूसरी सब फलविधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

४. तदनन्तर अभ्यंगनविधि का परिमाण किया—शतपाक, सहस्रपाक तेलों के अतिरिक्त अन्य सब अभ्यंगन मालिश के तेलों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

५. तदनन्तर उबटनविधि का परिमाण किया कि—एक सुगंधित गंधाढ्क (पीठी) के अतिरिक्त और दूसरी सब उबटनविधि का परिमाण करता हूँ ।

६. तदनन्तर मज्जन-स्नान-विधि का परिमाण किया—

अट्ठहिं उट्टिएहिं उदगस्स घडेहिं, अवसेसं सव्वं मज्जणविहिं पच्चक्खाइ।

(७) तयाणंतरं च णं वत्थविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं खोमजुयलेणं, अवसेसं सव्वं वत्थविहिं पच्चक्खाइ।

(८) तयाणंतरं च णं विलेवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ अगरु-कुंकुम-चंदणमादिएहिं, अवसेसं सव्वं विलेवणविहिं पच्चक्खाइ।

(९) तयाणंतरं च णं पुप्फविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं सुद्धपउमेणं मालइकुसुमदामेणं वा, अवसेसं सव्वं पुप्फविहिं पच्चक्खाइ।

(१०) तयाणंतरं च णं आभरणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ मट्ठकण्णेज्जएहिं नाममुद्दाए य, अवसेसं सव्वं आभरणविहिं पच्चक्खाइ।

(११) तयाणंतरं च णं धूवणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ अगरु-तुरुक्क-धूवमादिएहिं, अवसेसं सव्वं धूवणविहिं पच्चक्खाइ।

(१२) तयाणंतरं च णं भोयणविहिपरिमाणं करेमाणे—

(क) पेज्ज-विहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगाए कट्ठपेज्जाए, अवसेसं सव्वं पेज्जविहिं पच्चक्खाइ।

(ख) तयाणंतरं च णं भक्खविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेहिं घयपुण्णेहिं खंडखज्जएहिं वा, अवसेसं सव्वं भक्खविहिं पच्चक्खाइ।

(ग) तयाणंतरं च णं ओदणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ कलमसालिओदणेणं, अवसेसं सव्वं ओदणविहिं पच्चक्खाइ।

(घ) तयाणंतरं च णं सूवविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ कलायसूवेण वा मुग्गसूवेण वा माससूवेण वा, अवसेसं सव्वं सूवविहिं पच्चक्खाइ।

(ङ) तयाणंतरं च णं घयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सारइएणं गोघय-मंडेणं, अवसेसं सव्वं घयविहिं पच्चक्खाइ।

(च) तयाणंतरं च णं सागविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ वत्थुसाएण वा तुम्बसाएण वा सुत्थियसाएण वा मंडुक्कियसाएण वा, अवसेसं सव्वं सागविहिं पच्चक्खाइ।

(छ) तयाणंतरं च णं माहुरयविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ

आठ औष्ट्रिक घड़ों (ऊँट के आकार) जितने जल के अतिरिक्त स्नान के लिये अन्य शेष पानी का प्रत्याख्यान करता हूँ।

७. इसके अनन्तर वस्त्र विधि—पहनने के वस्त्रों का परिमाण किया—अलसी या कपास के बने हुये वस्त्र युगल के अतिरिक्त अन्य वस्त्रों के पहनने का परित्याग—प्रत्याख्यान करता हूँ।

८. तत्पश्चात् विलेपनविधि का परिमाण किया—अगुरु-कुंकुम, चन्दन आदि के अतिरिक्त अन्य सब विलेपनों-लेप करने करने की वस्तुओं का प्रत्याख्यान करता हूँ।

९. तदनंतर पुष्पविधि का परिमाण किया—शुद्ध पद्म-श्वेत कमल और मालती पुष्प की मालाओं के सिवाय अन्य सब पुष्पों के धारण करने, सूंघने आदि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

१०. इसके बाद आभरण विधि का परिमाण किया—स्वर्ण कुण्डलों तथा अपने नाम वाली अंगूठी के अतिरिक्त अन्य सब आभूषणों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

११. तत्पश्चात् धूप-विधि का परिमाण किया—अगुरु-तुरुक्क-लोभान-एवं धूप आदि के अलावा अन्य सब धूपनीय वस्तुओं—धूप के काम आने वाली वस्तुओं—का प्रत्याख्यान करता हूँ।

१२. तदनंतर भोजन विधि का परिमाण करते हुए—

(क) पेय वस्तुओं का परिमाण किया—मूंग तथा घी में भुने हुये चावलों आदि से बने हुये पेय अथवा काष्ठपेय—त्रिफला आदि से बने हुये पेय के अतिरिक्त शेष पेयों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ख) तदनन्तर भक्ष्य विधि का परिमाण किया कि एक घेवर और खाजे के अतिरिक्त अन्य सब भक्ष्य पकवानों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(ग) इसके बाद ओदन विधि का परिमाण किया—कलम जातीय चावलों से बने हुये भोजन के अतिरिक्त अन्य सब ओदन विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(घ) इसके बाद सूप विधि का परिमाण किया—मटर, मूंग और उड़द की दाल के अतिरिक्त अन्य सब सूपों—दालों का प्रत्याख्यान—परित्याग करता हूँ।

(ङ) तदनंतर घृत विधि का परिमाण किया—शरत्कालीन गोघृत के अतिरिक्त अन्य सब घृतों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(च) तत्पश्चात् शाकविधि का परिमाण किया—बथुआ, लौकी, सौवस्तिक (सुआपालक) और मण्डूकिक (भिण्डी) के अतिरिक्त अन्य शाकों का प्रत्याख्यान करता हूँ।

(छ) तदनंतर माधुरक विधि का परिमाण किया—एक पालंगा माधुर के अतिरिक्त अवशिष्ट सब माधुरक—गुड़, चीनी,

एगेणं पलंकामाहुरएणं, अवसेसं सव्वं माहुरयविहिं पच्चक्खाइ ।

(ज) तयाणंतरं च णं जेमणविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ सेहंबदालियंबेहिं अवसेसं सव्वं जेमणविहिं पच्चक्खाइ ।

(झ) तयाणंतरं च णं पाणियविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ एगेणं अंतलिक्खोदएणं, अवसेसं सव्वं पाणियविहिं पच्चक्खाइ ।

(ञ) तयाणंतरं च णं मुहवासविहिपरिमाणं करेइ—नन्नत्थ पंचसोगंधिएणं तंबोलेणं, अवसेसं सव्वं मुहवासविहिं पच्चक्खाइ ।

तयाणंतरं च णं चउव्विहं अणट्ठादंडं पच्चक्खाइ, तं जहा—

१. अवज्झाणाचरितं २. पमायाचरितं ३. हिंसप्पयाणं ४. पावकम्मोवदेसे ।

सम्मत्ताईणं अइयारा—

८९. आणंदा ! इ समणे भगवं महावीरे आणंदं समणोवासगं एवं वयासी—

"एवं खलु आणंदा ! समणोवासएणं अभिगयजीवाजीवेणं उवलद्धपुण्णपावेणं आसव-संवर-निज्जर-किरिया-अहिगरण-बंधमोक्खकुसलेणं असहेज्जेणं, देवासुर-णाग-सुवण्ण-जक्ख-रक्खस-किण्णर-किंपुरिस-गरुल-गंधव्व-महोरगाइएहिं देवगणेहिं निग्गंथाओ पावयणाओ अणइक्कमणिज्जेणं सम्मत्तस्स पंच अतियारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा तं जहा—

१. संका २. कंखा ३. वितिगिच्छा ४. परपासंडपसंसा ५. परपासंडसंथवो ।

तयाणंतरं च णं थूलयस्स पाणाइवायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा पेयाला जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

१. बंधे २. वहे ३. छविच्छेदे ४. अतिभारे ५. भत्तपाणवोच्छेदे ।

मिश्री आदि से बने भोज्य पदार्थ—विधि का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

(ज) इसके बाद जेमण (व्यजन) विधि का परिमाण किया कि सेधाम्ल—कांजी बड़े और दालिकाम्ल—दाल के पकौड़े आदि के अतिरिक्त अन्य सब जेमनविधि—नमकीन पदार्थों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

(झ) इसके अनंतर पानीय विधि का परिमाण किया—एक मात्र वर्षा के पानी के अतिरिक्त अन्य सर्व पानीय विधि—पीने के काम में आने वाले पानी का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

(ञ) तदनंतर मुखवास विधि का परिमाण किया—पाँच सुगंधित पदार्थों (इलायची, लौंग, कपूर, दालचीनी, जायफल) से युक्त ताम्बूल-पान के अतिरिक्त मुख को सुगंधित करने वाले अन्य पदार्थों का प्रत्याख्यान करता हूँ ।

तदनंतर चार प्रकार के अनर्थदण्डों का प्रत्याख्यान किया, जो इस प्रकार हैं—

१. अपध्यानाचरित—दुर्ध्यान करना, २. प्रमादाचरित—विकथा आदि प्रमाद का आचरण करना, ३. हिंस्रप्रदान—हिंसाकारी अस्त्र-शस्त्रों का देना और ४. पापकर्मोपदेश—पाप कर्मों का उपदेश देना ।

सम्यक्त्व आदि के अतिचार—

८९. हे आनन्द ! इस प्रकार से संबोधित कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने आनन्द श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे आनन्द ! जीव और अजीव तत्व के जानकार, पुण्य-पाप कार्यों—शुभ अशुभ कार्यों के विज्ञाता, आस्रव, संवर, निर्जरा, क्रिया, अधिकरण, बन्ध और मोक्ष का स्वरूप जानने में कुशल—दक्ष, आरम्भ समारम्भ में—पापजनक क्रियाओं में खेद खिन्न होने वाले, देव, असुर, नाग, स्वर्ण, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, गरुड, गन्धर्व, महोरग आदि देवों द्वारा किये गये अनुकूल प्रतिकूल उपसर्गों से भी निर्ग्रन्थ प्रवचनों से विचलित नहीं होने वाले श्रमणोपासक को सम्यक्त्व के मुख्य पाँच अतिचारों को अवश्य जान लेना चाहिये, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये, उन अतिचारों के नाम इस प्रकार हैं—

१. शंका, २. कांक्षा, ३. विचिकित्सा, ४. परपाषण्ड-प्रशंसा और ५. परपाषण्ड संस्तव ।

तदनन्तर श्रमणोपासक को स्थूल प्राणातिपात विरमण व्रत के पाँच प्रधान अतिचार जान लेना चाहिये, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये, वे पाँच अतिचार इस प्रकार हैं—

१. बंध, २. वध, ३. छविच्छेद ४. अतिभार और ५. भक्त पान व्यवच्छेद ।

तयाणंतरं च णं थूलयस्स मुसावायवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा न समायरियव्वा, तं जहा—

तदनन्तर स्थूल मृषावाद विरमणव्रत के पाँच अतिचार श्रमणोपासक को जान लेना चाहिए, किन्तु उनका आचरण में उपयोग नहीं करना चाहिये, वे पाँच अतिचार इस प्रकार हैं—

१. सहसाभक्खाणे २. रहस्सब्भक्खाणे ३. सदारमंतभेए ४. मोसोवएसे ५. कूडलेहकरणे।

१. सहसा अभ्याख्यान, २. रहस्याभ्याख्यान, ३. स्वदार-मंत्रभेद, ४. मृषोपदेश और ५. कूटलेखकरण।

तयाणंतरं च णं थूलयस्स अदिण्णादाणवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

इसके पश्चात् श्रमणोपासक को स्थूल अदत्तादान विरमण-व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, परन्तु आचरण में प्रवृत्ति नहीं करना चाहिए, वे अतिचार यह हैं—

१. तेणाहडे २. तक्करप्पओगे ३. विरुद्धरज्जातिक्कमे ४. कूडतुल-कूडमाणे ५. तप्पडिरूवगववहारे।

१. स्तेनाहृत—चोर द्वारा लाई वस्तु को लेना, २. तस्कर प्रयोग—व्यवसाय में चोरों का उपयोग करना, ३. विरुद्ध राज्यातिक्रम—राज्य विरुद्ध कार्य करना (राज्यकर की चोरी करना), ४. कूट तोल—कूट माप—कम बढ़ तोलना-मापना और ५. तत्प्रतिरूपक व्यवहार—मूल्यवान वस्तु में अल्प मोल की वस्तु मिलाना।

तयाणंतरं च णं सदारसंतोसीए पंच समणोवासएणं अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

इसके बाद स्वदार-संतोष के पाँच अतिचार श्रमणोपासक को जानना चाहिए, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए, यथा—

१. इत्तरियपरिग्गहियागमणे २. अपरिग्गहियागमणे ३. अणंगकिड्डा ४. परविवाहकरणे ५. कामभोगे तिव्वाभिलासे।

१. इत्वरिक परिगृहिता गमन २. अपरिगृहिता गमन, ३. अनंगक्रीड़ा, ४. परविवाहकरण और ५. कामभोगतीव्राभिलाषा।

तयाणंतरं च णं इच्छापरिमाणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तदनन्तर श्रमणोपासक को इच्छा-परिमाणव्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये, वे पाँच अतिचार इस प्रकार हैं—

१. खेत्तवत्थुपमाणातिक्कमे २. हिरण्ण-सुवण्ण-पमाणातिक्कमे ३. धण-धण्णपमाणातिक्कमे ४. दुपयचउप्पयपमाणातिक्कमे ५. कुवियपमाणातिक्कमे।

१. क्षेत्रवास्तु प्रमाणातिक्रम, २. हिरण्य-स्वर्ण प्रमाणातिक्रम, ३. धन धान्य प्रमाणातिक्रम, ४. द्विपद-चतुष्पद प्रमाणातिक्रम और ५. कुप्य प्रमाणातिक्रम।

तयाणंतरं च णं दिसिवयस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

इसके अनन्तर श्रमणोपासक को दिग्व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, लेकिन उनका आचरण नहीं करना चाहिए, वे अतिचार इस प्रकार हैं—

१. उड्ढदिसिपमाणातिक्कमे २. अहोदिसिपमाणातिक्कमे ३. तिरियदिसिपमाणातिक्कमे ४. खेत्तवुड्ढी ५. सतिअंतरद्धा।

१. ऊर्ध्वदिग् प्रमाणातिक्रम, २. अधोदिग् प्रमाणातिक्रम, ३. तिर्यग्दिग् प्रमाणातिक्रम, ४. क्षेत्रवृद्धि और ५. स्मृत्यंतर्धान की हुई दिशाओं की मर्यादा का स्मरण न रखना।

तयाणंतरं च णं उवभोगपरिभोगे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—भोयणओ कम्मओ य।

तत्पश्चात् उपभोग-परिभोग दो प्रकार का है, वह इस प्रकार—१. भोजन सम्बन्धी और २. कर्मसम्बन्धी।

भोयणओ समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

श्रमणोपासक को भोजन सम्बन्धी पाँच अतिचार जानना चाहिये, लेकिन आचरण नहीं करना चाहिये, उन अतिचारों के नाम इस प्रकार हैं—

१. सचित्ताहारे २. सचित्तपडिबद्धाहारे ३. अप्पउलिओसहिभक्खणया ४. दुप्पउलिओसहिभक्खणया ५. तुच्छोसहिभक्खणया।

१. सचित्ताहार, २. सचित्तप्रतिबद्ध आहार, ३. अपक्व औषधि भक्षण—कच्ची वनस्पति (फल, शाक आदि) खाना, ४. दुष्पक्व औषधि भक्षण—पूरी तरह न पकी हुई वनस्पति का खाना, और ५. तुच्छ औषधि भक्षण।

कम्मओ णं समणोवासएणं पण्णरस कम्मादाणाइं जाणियव्वाइं, न समायरियव्वाइं, तं जहा—

१. इंगालकम्मे २. वणकम्मे ३. साडीकम्मे ४. भाडीकम्मे ५. फोडीकम्मे ६. दंतवाणिज्जे ७. लक्खवाणिज्जे ८. रसवाणिज्जे ९. विसवाणिज्जे १०. केसवाणिज्जे ११. जंतपीलणकम्मे १२. निल्लंछणकम्मे १३ दवग्गिदावणया १४. सरदहतलागपरिसोसणया १५. असतीजणपोसणया।

श्रमणोपासक को कर्मसम्बन्धी पन्द्रह कर्मादान जानना चाहिये लेकिन उनमें प्रवृत्ति नहीं करना चाहिये, उन पन्द्रह कर्मादानों के नाम इस प्रकार हैं—

१. इंगालकर्म, २. वनकर्म, ३. शाकटिक कर्म—गाड़ी आदि बनाने बेचने का कार्य, ४. भाडीकर्म—गाड़ी आदि को भाड़े पर देने का कार्य, ५. फोड़ीकर्म—जमीन पत्थर आदि खोदने फोड़ने का कार्य, ६. दंत वाणिज्य, ७. लाक्षा (लाख) वाणिज्य, ८. रस-वाणिज्य—मदिरा आदि का व्यापार ९. विष वाणिज्य, १०. केश-वाणिज्य, ११. यंत्रपीलनकर्म—कोल्हू आदि चलाने का व्यापार, १२. निर्लाञ्छन कर्म—बैल आदि को बधिया बनाने का कार्य, १३. दावाग्निदापन—वन में अग्नि लगाना, १४. सर-द्रह-तालाब परिशोषण—तालाब आदि सुखाने संबंधी कार्य और १५. असतीजनपोषण—दुश्चरित्र स्त्री, गुण्डों आदि को पालना, शिकार के लिए कुत्ता, बिल्ली आदि हिंसक पशुओं का पालन करना।

तयाणंतरं च णं अणट्ठादंडवेरमणस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तदनन्तर श्रमणोपासक को अनर्थ दण्ड विरमणव्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये लेकिन उनको आचरण में प्रयोग नहीं करना चाहिये—वे अतिचार इस प्रकार हैं—

१. कंदप्पे २. कुक्कुइए ३. मोहरिए ४. संजुत्ताहिकरणे ५. उवभोगपरिभोगातिरित्ते।

१. कंदर्प—कामवासना वाली चेष्टायें करना, २. कौत्कुच्य—भद्दी चेष्टायें करना, ३. मौखर्य-व्यर्थ बातें बनाना ४. संयुक्ताधिकरण—हिंसक शस्त्रों का संग्रह करना और ५. उपभोग-परिभोग अतिरेक—उपभोग परिभोग को बढ़ाना।

तयाणंतरं च णं सामाइयस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

इसके बाद श्रमणोपासक को सामायिक व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, लेकिन आचरण नहीं करना चाहिये, वे अतिचार इस प्रकार हैं—

१. मणदुप्पणिहाणे २. वइदुप्पणिहाणे ३. कायदुप्पणिहाणे ४. सामाइयस्स सतिअकरणया ५. सामाइयस्स अणवट्ठियस्स करणया।

१. मनदुष्प्रणिधान, २. वचनदुष्प्रणिधान, ३. कायदुष्प्रणिधान, ४. सामायिक का स्मृत्यकरण—सामायिक के समय की अवधि का ध्यान न रखना और ५. सामायिक को अस्थिर चित्त होकर करना।

तयाणंतरं च णं देसावगासियस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तत्पश्चात् श्रमणोपासक को देशावकाशिक व्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिए, परन्तु उन्हें आचरण में नहीं उतारना चाहिये, वे अतिचार यह हैं—

१. आणवणप्पओगे २. पेसवणप्पओगे ३. सद्दाणुवाए ४. रूवाणुवाए ५. बहियापोग्गलपक्खेवे।

१. आनयन प्रयोग, २. प्रेष्यप्रयोग, ३. शब्दानुपात, ४. रूपानुपात और ५. बहिर्पुद्गलप्रक्षेप—बाहर (सीमा के अतिरिक्त) कोई वस्तु फेंककर कार्य आदि कराना।

तयाणंतरं च णं पोसहोववासस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तत्पश्चात् श्रमणोपासक को पौषधोपवासव्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, किन्तु आचरण नहीं करना चाहिये, वे अतिचार निम्न प्रकार हैं—

१. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-सिज्जासंथारे २. अप्पमज्जिय-

१. अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित शैयासंस्तारक—बिना देखे भाले शैया संस्तारक का उपयोग करना, २. अप्रमार्जित-दुष्प्रमा-

दुप्पमज्जिय-सिज्जासंथारे ३. अप्पडिलेहिय-दुप्पडिलेहिय-उच्चार-पासवणभूमी ४. अप्पमज्जिय-दुप्पमज्जिय-उच्चारपासवणभूमी ५. पोसहोववासस्स सम्मं अणणुपालणया।

जित शैया संस्तार—बिना पूंजे या अच्छी तरह पूंजे बिना ही शैया आदि का उपयोग करना, ३. अप्रतिलेखित-दुष्प्रतिलेखित उच्चार-प्रस्रवण भूमि—बिना देखे या अच्छी तरह देखे बिना शौच, लघुशंका आदि के स्थान का उपयोग करना, ४. अप्रमार्जित-दुष्प्रमार्जित उच्चार प्रस्रवण भूमि—बिना पूंजे या बिना अच्छी तरह पूंजे टट्टी, पेशाब की भूमि का उपयोग करना और ५. पौषधोपवास का सम्यक् प्रकार से अनुपालन न करना।

तयाणंतरं च णं अहासंविभागस्स समणोवासएणं पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तत्पश्चात् श्रमणोपासक को (अतिथि—) यथासंविभागव्रत के पाँच अतिचार जानना चाहिये, लेकिन आचरण नहीं करना चाहिए, वे पाँच अतिचार इस प्रकार हैं—

१. सचित्तनिक्खेवणया २. सचित्तपिहणया ३. कालातिक्कमे ४. परववदेसे ५. मच्छरियया।

१. सचित्त निक्षेपण २. सचित्तपिधान, ३. कालातिक्रम, ४. परव्यपदेश और ५. मात्सर्य।

तयाणंतरं च णं अपच्छिममारणंतियसंलेहणाझूसणाराहणाए, पंच अतियारा जाणियव्वा, न समायरियव्वा, तं जहा—

तदनंतर श्रमणोपासक को अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा आराधना—मरण समय में शरीर और कषायों को निर्बल बनाकर शरीर त्यागने की विधि विशेष की प्रीतिपूर्वक सेवना करने रूप कार्य के पाँच अतिचार जानना चाहिये, किन्तु उनका आचरण नहीं करना चाहिये, वे इस प्रकार हैं—

१. इहलोगासंसप्पओगे २. परलोगासंसप्पओगे ३. जीवियासंसप्पओगे ४. मरणासंसप्पओगे ५. कामभोगासंसप्पओगे।

१. इहलोकाशंसाप्रयोग—ऐहिक भोगों की प्राप्ति विषयक आकांक्षा करना, २. परलोकाशंसाप्रयोग—स्वर्ग आदि परलोक सम्बन्धी सुख की आकांक्षा रखना, ३. जीविताशंसाप्रयोग—मृत्यु भय से जीवित रहने की आकांक्षा करना, ४. मरणाशंसाप्रयोग—पीड़ा आदि के कारण तत्काल मरने की आकांक्षा करना, और ५. काम-भोगाशंसाप्रयोग—इस लोक में अथवा परलोक में इन्द्रियभोगों को भोगने की आकांक्षा करना।

आणंदस्स अभिग्गहे, सिवणंदं पइ गिहिधम्माणुपालणाविसइया पेरणा य—

आनन्द का अभिग्रह और शिवानन्दा को श्राविका धर्म-अनुपालन विषयक प्रेरणा—

६०. तए णं से आणंदे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावयधम्मं पडिवज्जति, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

"नो खलु मे भंते! कप्पइ अज्जप्पभिइं अण्णउत्थिए-वा अण्णउत्थिय-देवयाणि वा अण्णउत्थिय-परिग्गहियाणि वा अरहंतचेइयाइं वंदित्तए वा नमंसित्तए वा, पुव्विं अणालत्तेणं आलवित्तए वा संलवित्तए वा, तेसिं असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा दाउं वा अणुप्पदाउं वा, नन्नत्थ रायाभिओगेणं गणाभिओगेणं बलाभिओगेणं देवयाभिओगेणं गुरुनिग्गहेणं वित्तिकंतारेणं।

६०. तत्पश्चात् आनन्द गाथापति ने भगवान महावीर स्वामी के पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म को स्वीकार करके श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'भन्ते! आज से मुझे निर्ग्रंथसंघ से इतर संघवालों को, अन्य यूथिक देवों को, अन्ययूथिकों द्वारा परिग्रहित मंदिरों-चैत्यों को वन्दन-नमस्कार करना नहीं कल्पता है, इसी प्रकार उनके बोले बिना अपनी ओर से पहले बोलना, संलाप-वार्तालाप करना, उनको गुरुबुद्धि से अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप, भोजन देना अथवा इसके लिये आग्रह करना नहीं कल्पता है, किन्तु राजाज्ञा से, बलवान के अभियोग-आदेश से, गण (संघ) के आदेश से, देवाभियोग से, गुरुजनों-माता-पिता आदि के आग्रह से तथा वृत्तिकांतार—वन आदि में वृत्ति (आजीविका) के लिए विवश होने पर ऐसा करना पड़े तो आगार है।

कप्पइ मे समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण य पडिलाभेमाणस्स विहरित्तए"— त्ति कट्टु इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हइ, अभिगिण्हित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठाइं आदियइ, आदित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव वाणियगामे नयरे, जेणेव सए गिहे जेणेव सिवणंदा भारिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिवणंदं भारियं एवं वयासी—

मुझे निर्ग्रंथ श्रमणों को प्रासुक-एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक, औषधि, भेषज द्वारा प्रतिलाभित करते हुए विचरना कल्पता है' ऐसा कहकर यह और इस प्रकार का अभिग्रह धारण किया, धारण करके प्रश्नादि पूछे, पूछकर अर्थ को समझा, समझकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की एवं वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर के पास से, दूतिपलाश चैत्य से निकला, निकलकर वाणिज्य ग्राम नगर में जहाँ अपना घर था और वहाँ भी जहाँ शिवानंदा भार्या थी, वहाँ आया, आकर शिवानंदा भार्या से इस प्रकार कहा—

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते। से वि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं गच्छाहि णं तुमं देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि सक्कारेहि सम्माणेहि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासाहि, समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।

'हे देवानुप्रियो ! आज मैंने श्रमण भगवान महावीर स्वामी से धर्मश्रवण किया है। वह मुझे इष्ट, अतीव इष्ट एवं रुचिकर लगा। अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम भी जाओ और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप एवं चैत्यरूप श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वंदन-नमस्कार करो, सत्कार-सम्मान करो एवं उनकी पर्युपासना करो तथा श्रमण भगवान महावीर के पास पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का गृही धर्म—श्रावक धर्म अंगीकार करो।

सिवणंदाए भगवंतवंदणट्ठगमणं धम्मसवणं च—

६१. तए णं सा सिवणंदा भारिया आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणंदस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

शिवानन्दा का भगवन्त वन्दनार्थ गमन और धर्म श्रवण—

६१. तदनंतर आनंद श्रमणोपासक के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर उस शिवानंदा भार्या ने हृष्ट-तुष्ट, आनन्दित चित्त—यावत्—विकसित हृदयवाली होकर दोनों हाथों को जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे स्वामी ! इसी प्रकार है' कहकर आनंद श्रमणोपासक के कथन को विनयपूर्वक सुना।

तए णं से आणंदे समणोवासए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइयं समखुरवालिहाण सम-लिहियसिंगएहिं जंबूणयामयकलावजुत्तपइविसिट्ठएहिं रययामयघंट-सुत्तरज्जुग-वरकंचणखचियनत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिकणग-घंटियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्त-उज्जुग-पसत्थसुविरइय-निम्मियं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह"।

तत्पश्चात् आनंद श्रमणोपासक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

शीघ्र ही समान खुर और पूंछवाले, एक सरीखे चित्रित सींगों के अग्रभाग वाले, स्वर्णमयी आभूषणों, चित्रामों से युक्त चाँदी की घंटियोंवाले, स्वर्णजटित सूत की डोरी की नाथ से बंधे हुये, नीलकमल की कलंगी से युक्त, श्रेष्ठ जवान-युवा बैलों से जुता हुआ, नाना प्रकार की मणियों, रत्नों और स्वर्ण की घंटियों से सुशोभित, सुजात, ऋजु—सरस-सीधा लकड़ी से बने हुये जुये से युक्त प्रशस्त, सुविरचित-निर्मित, श्रेष्ठ लक्षणोंवाले, चलने में हलके और अच्छी तरह से जोड़े गये धार्मिक यान प्रवर को जोतकर लाओ और लाकर मेरी यह आज्ञा मुझे वापस लौटाओ अर्थात् रथ लाने की सूचना दो।"

तए णं ते कोडुंबियपुरिसा आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरि-

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने आनंद श्रमणोपासक के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, आनंदित चित्त, अनुरागी, परम

सवण विसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलि कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्तजोइयं-जाव-धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

सौमनस्क, हर्षातिरेक से विकसित हृदयवाले होते हुये, दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि कर 'स्वामिन् ! इसी प्रकार' कहकर आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके, शीघ्र ही चलने में हल्के और अच्छी तरह से जोड़े गये —यावत्—श्रेष्ठ धार्मिकयान—रथ को उपस्थितकर—लाकर उस आज्ञा को वापस लौटाया ।

तए णं सा सिवणंदा भारिया ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता वाणियगामं णयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव दूइपलासए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहे विणएणं पंजलियडा पज्जु-वासइ ।

तदनंतर उस शिवानन्दा भार्या ने स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक मंगलरूप प्रायश्चित्त करके शुद्ध वंदनार्थ जाने योग्य मंगलकारी श्रेष्ठ वस्त्रों को पहिना, अल्प और मूल्यवान् अलंकारों से शरीर को अलंकृत किया और फिर दासियों को साथ लेकर वह धार्मिक यानप्रवर पर बैठी, बैठकर वाणिज्यग्राम नगर के बीचोंबीच से निकली, निकलकर जहाँ दूतिपलाश चैत्य था, वहाँ आई, आकर उत्तम धार्मिकयान-रथ से नीचे उतरी, उतरकर दासियों को साथ लेकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आई, वहाँ आकर आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन, नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट किन्तु यथायोग्य स्थानपर बैठकर सामने सेवा-शुश्रूषा करती हुई अथवा सुनने के लिये उत्सुक होकर नमन करती हुई विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगी ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सिवणंदाए तीसे य महइमहा-लियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने शिवानंदा और उस महती धर्मसभा को—यावत्—धर्म कहा ।

सिवणंदाए गिहिधम्म-पडिवत्ती—

शिवानन्दा का गृहीधर्म—श्राविका धर्म ग्रहण करना—

९२. तए णं सिवणंदा भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूआ, तामेव दिसं पडिगया ।

९२. तदनंतर शिवानन्दा भार्या ने श्रमण भगवान महावीर से पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार का गृहीधर्म-श्राविकाधर्म अंगीकार किया, अंगीकार करके श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसी धार्मिक यानप्रवर पर बैठी और बैठकर जिस दिशा में आयी थी, उसी दिशा में वापस लौट गई ।

आणंदपव्वज्जागहणविसए गोयमपुच्छाए भगवओ समाहाणं—

आनन्द का प्रव्रज्या ग्रहण करने के विषय में गौतमपृच्छा और भगवान का समाधान—

९३. 'भंते !' त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता, एवं वयासी—"पहू णं भंते ! आणंदे समणो-वासए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

९३. 'भंते !' यह कहकर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महा-वीर को वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'हे भगवन् ! क्या आनंद श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहत्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में प्रभु-समर्थ है ?'

नो इणट्ठे समट्ठे ।

भगवान ने उत्तर दिया—'यह अर्थ—कथन समर्थ—उचित नहीं है ।

गोयमा ! आणंदे णं समणोवासए बहूइं वासाइं समणोवास-गपरियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता-जाव-सोहम्मे कप्पे अरुणाभे

किन्तु हे गौतम ! आनंद श्रमणोपासक बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करेगा और पालन करके—

विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति । तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । तत्थ णं आणंदस्स वि समणोवासगस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

यावत्—सौधर्म स्वर्ग के अरुणाभविमान में देवरूप से उत्पन्न होगा । वहाँ कितने ही देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही गई है—बताई है । वहाँ आनन्द श्रमणोपासक की चार पल्योपम की आयु होगी ।

भगवओ जणवयविहारो—

९४. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ वाणियगामाओ नयराओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

भगवान का जनपद विहार—

९४. इसके अनन्तर किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर वाणिज्यग्राम नगर से दूतिपलाश चैत्य से निकले, निकलकर बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे ।

आणंदस्स समणोवासग-चरिया—

९५. तए णं से आणंदे समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासुएसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ ।

आनन्द की श्रमणोपासक चर्या—

९५. इसके बाद आनंद जीव, अजीव तत्त्व का जानकार श्रमणोपासक हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रंथों को प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन, औषधि, भैषज और पाडिहारी—वापस लौटाने योग्य पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुये—दान देते हुए विचरने लगा—अपना समय व्यतीत करने लगा ।

सिवणंदाए समणोवासिय-चरिया—

९६. तए णं सा सिवणंदा भारिया समणोवासिया जाया-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ ।

शिवानन्दा की श्रमणोपासिका चर्या—

९६. तत्पश्चात् शिवानंदा भार्या श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रंथों को प्रासुक एषणीय, अशन, पान—यावत्—शैया संस्तारक देती हुई धार्मिक जीवन जीने लगी ।

आणंदस्स धम्मजागरिया गिहिववहारचागो य—

९७. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं । पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—

एवं खलु अहं वाणियगामे नयरे बहूणं राईसर-जाव-सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स-जाव-आहारभूए आलंबणभूए चक्खुभूए सव्व-कज्जवड्ढावए तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए । तं सेयं खलु ममं कल्लं-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता, जहा पूरणो-जाव-जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठवेत्ता, तं मित्त-जाव-जेट्ठपुत्तं

आनन्द की धर्म जागरिका और गृही व्यवहार त्याग—

९७. तत्पश्चात् अनेक प्रकार के शीलव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और प्रोषधोपवासों के द्वारा आत्मा को भावित करते हुये उस आनन्द श्रमणोपासक के चौदह वर्ष व्यतीत हो गये । पंद्रहवें वर्ष में किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरण करते हुये उसके मन में इस प्रकार का यह विचार—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—

"मैं इस वाणिज्यग्राम नगर में अनेक राजा, ईश्वर—यावत्—स्वयं अपने भी कुटुम्ब का—यावत्—आधारभूत, अवलंबनरूप और सर्वकार्य व्यवहार का निर्देशक—मार्गदर्शकरूप हूँ, अतएव इस विक्षेप के कारण मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी से प्राप्त की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके अथवा धर्मप्रज्ञप्ति का अच्छी तरह से पालन करके अपना समय व्यतीत करने में समर्थ हो नहीं पाता हूँ । इसलिये मुझे यह श्रेयस्कर होगा कि कल—यावत्—सूर्योदय होने और सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशमान होने पर पुष्कल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन बनवाकर पूरणसेठ के समान—यावत्—ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब में स्थापित कर अर्थात् ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर, उन मित्रों—यावत्—ज्येष्ठपुत्र से पूछकर

य आपुच्छित्ता, कोल्लाए सण्णिवेसे नायकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए'' एवं संपेहेइ,

कोल्लाग सन्निवेश में ज्ञात कुल की पोषधशाला की प्रतिलेखना कर श्रमण भगवान महावीर से प्राप्त धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरण करूँ—समय व्यतीत करूँ,' इस प्रकार का विचार किया;

संपेहित्ता कल्लं-जाव-जलंते विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परिजणं आमंतेइ, आमंतेत्ता तओ पच्छा ण्हाए-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे भोयणवेलाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए, तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं सद्धिं तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसाएमाणे विसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए णं आयंते चोक्खे परमसुइभूए, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम साइमेणं वत्थ-गंधमल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

विचार करके कल—यावत्—सूर्य प्रकाशमान होने पर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन बनवाया, बनवाकर मित्रो, जातिबंधुओं, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों-परिचितों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करने के बाद स्नान किया—यावत्—अल्प और बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को विभूषित किया और भोजन वेला में भोजनशाला में सुखासन पर बैठकर उन मित्र, जातिबंधु, स्वजन सम्बन्धी परिजनों के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, भोजन का स्वाद लेते हुए, विशेष रूप में स्वाद लेते हुये, देते हुये, खाते हुये विचरने लगा। भोजन करने के बाद आचमन-कुल्लाकर स्वच्छ, शुचिभूत हो उन मित्रों, जातिबंधुओं, निजी स्वजन संबन्धियों और परिचितों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार से सत्कार और सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्रों, जातिबंधुओं, निजी स्वजन संबंधियों और परिचितों के सामने ज्येष्ठपुत्र को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

''एवं खलु पुत्ता ! अहं वाणियगामे नयरे बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्म-पण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए। त सेयं खलु मम इयाणिं तुमं सयस्स कुडुम्बस्स मेढिपमाणं आहारं आलंबणं चक्खुं ठावेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं तुमं च आपुच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे नायकुलंसि पोसहसालं पडिलेहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए''।

'हे पुत्र ! मैं वाणिज्यग्राम नगर में बहुत से—यावत्—राजा ईश्वर द्वारा पूछा जाता हूँ, बारबार पूछा जाता हूँ तथा स्वयं अपने कुटुम्ब का भी आधार स्तम्भ—यावत्—सर्वकार्यों का प्रेरक हूँ। इसलिये इस विक्षेप के कारण श्रमण भगवान महावीर स्वामी से प्राप्त धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके समय व्यतीत करने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ। अतएव मेरे लिये यह उचित है कि तुम्हें अपने कुटुम्ब के आधार स्तम्भ, आधार, अवलंबन, मार्गदर्शक के रूप में स्थापित कर अर्थात् कुटुम्ब का प्रमुख बनाकर और इन मित्रों जातिबंधुओं, निजी स्वजन संबंधियों और परिचितों एवं तुमसे पूछकर कोल्लाग सन्निवेश में ज्ञातकुल की पौषधशाला में प्रतिलेखना करके श्रमण भगवान महावीर से प्राप्त धर्मप्रज्ञप्ति को अंगीकार करके विचरण करूँ।'

तए णं से जेट्ठपुत्ते आणंदस्स समणोवासगस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेति।

इसके बाद ज्येष्ठपुत्र ने आनंद श्रमणोपासक के इस अभिप्राय—आज्ञा को 'तथेति अर्थात् जैसी आपकी आज्ञा' कहते हुए विनयपूर्वक स्वीकार किया।

६८. तए णं से आणंदे समणोवासए तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेति, ठावेत्ता एवं वयासी—

६८. तदनन्तर उस आनन्द श्रमणोपासक ने उन्हीं मित्रों, जातिबंधुओं, निजी स्वजन सम्बंधियों और परिजनों के समान ज्येष्ठपुत्र को कुटुम्ब पर स्थापित किया, स्थापित करके इस प्रकार कहा—

''मा णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे अज्जप्पभिइं केइ ममं बहुसु

'हे देवानुप्रियो ! आज से तुम में से कोई भी बहुत से-

कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य कुडुम्बेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छउ वा पडिपुच्छउ वा, ममं अट्ठाए असणं वा पाणं वा खाइमं वा साइमं वा उवक्खडेउ वा उवकरेउ वा"।

विविध कार्यों के सम्बन्ध में, कारणों के विषय में, विचार परामर्श, कुटुम्ब-परिवार, गुप्तबात—गोपनीय बात, निर्णय अथवा लोक व्यवहार के सम्बंध में मुझसे मत पूछना और न परामर्श ही करना तथा न मेरे लिये अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन तैयार करना एवं न मेरे पास लाना।"

९९. तए णं से आणंदे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता वाणियगामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे, जेणेव नायकुले, जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

९९. तदनंतर आनन्द श्रमणोपासक ने ज्येष्ठपुत्र तथा मित्रों, ज्ञातिजनों, अपने स्वजन सम्बंधियों और परिचितजनों की अनुमति ली, अनुमति लेकर अपने घर से निकला, निकलकर वाणिज्य ग्रामनगर के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ कोल्लाग सन्निवेश था और उसमें भी जहाँ ज्ञातकुल तथा उसकी पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके उच्चार—प्रस्रवण भूमि (शौच आदि का स्थान) की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भसंस्तारक (बिछौना) बिछाया। तत्पश्चात् दर्भसंस्तारक पर बैठा, बैठकर पौषधशाला में पौषधव्रत स्वीकार करके मणि स्वर्ण आदि के आभूषणों, पुष्पमालाओं, विलेपन आदि तथा मुसल आदि शस्त्रों का त्यागकर एकाकी ब्रह्मचर्यपूर्वक दर्भसंस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान महावीर स्वामी से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

आणंदस्स उवासगपडिमा पडिवत्ती—

आनन्द द्वारा उपासक प्रतिमा-ग्रहण—

१००. तए णं आणंदे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ।

१००. इसके अनंतर वह आनन्द श्रमणोपासक पहली उपासक प्रतिमा को स्वीकार करके विचरने लगा। पहली उपासक प्रतिमा को सूत्रानुसार, कल्पानुसार, मार्ग के अनुसार यथार्थ तत्त्व के अनुसार, सम्यक् प्रकार से काया के द्वारा स्वीकार किया, पालन किया, शोधन किया, अच्छी तरह से पूर्ण किया, कीर्तन किया एवं आराधना की।

तए णं से आणंदे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ।

तदनन्तर उस आनन्द श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को और इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, दसवीं, ग्यारहवीं, उपासकप्रतिमा को यथासूत्र, यथा कल्प, यथातत्त्व, सम्यक् प्रकार से काया द्वारा स्वीकार किया, पालन किया, शोधन किया, पूर्ण किया, कीर्तन किया और आराधना की।

तए णं से आणंदे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

तत्पश्चात् वह आनन्द श्रमणोपासक इस और इस प्रकार के उदार, विपुल प्रयत्न साध्य तपोकर्म के ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, मांस-रहित अस्थिपंजरमात्र, किडकिडाहट करने वाला शरीररूप, कृश, उभरी हुई नाड़ियों से व्याप्त हो गया।

आणंदस्स अणसणं—

आनन्द का अनशन—

१०१. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं

१०१. तदनन्तर किसी एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्म जागरणा करते हुये उस आनन्द श्रमणोपासक के मन में यह आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—'निश्चय

खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडिया-भूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे-जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा-जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइ-क्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्स-रस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

ही मैं इस और इस प्रकार के उदार, विपुल प्रयत्नसाध्य तपोकर्म के ग्रहण करने से शुष्क, रुक्ष, मांस रहित अस्थि और चर्मावृत्त, किड़किड़ाहट करने वाला शरीररूप, कृश और उभरी हुई नाड़ियों जैसा हो गया हूँ। फिर भी अभी तक मुझमें उत्थान, कर्म क्रियाशीलता, बल—शारीरिक क्षमता, वीर्य, पुरुषार्थ, परा-क्रम, श्रद्धा, धृति-सहनशीलता और संवेग मुमुक्षुभाव विद्यमान है। अतएव जब तक मुझमें उत्थान—उठने बैठने का सामर्थ्य, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेग है—यावत्—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान महावीर विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिये श्रेयस्कर होगा कि कलरात्रि के प्रभातरूप होने—यावत्—सूर्योदय तथा जाज्वल्यमान तेजपूर्वक सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम—अंतिम मारणांतिक संलेखना को प्रीतिपूर्वक अंगीकार करके, आहार-पानी का प्रत्याख्यान करके मृत्युकाल की आकांक्षा न करते हुये समय व्यतीत करूँ, इस प्रकार का विचार किया। विचार करके कल रात्रि के प्रभातरूप होने—यावत्—सूर्य के उदय होने एवं सहस्ररश्मि सूर्य के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणांतिक संलेखना को अंगीकार करके, भक्तपान का प्रत्याख्यान करके, मरण की आकांक्षा न करते हुए विचरण करने में तत्पर हो गया।

आणंदस्स ओहिनाणुप्पत्ती—

१०२. तए णं तस्स आणंदस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ सुभेणं अज्झवसाणेणं, सुभेणं परिणामेणं, लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे—पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसयाइं खेत्तं जाणइ पासइ। दक्खिणेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसयाइं खेत्तं जाणइ पासइ। पच्च-त्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसयाइं खेत्तं जाणइ पासइ। उत्तरेणं-जाव-चुल्ल-हिमवंतं वासधरपव्वयं जाणइ पासइ। उड्ढं-जाव-सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ। अहे-जाव-इमीसे रयणप्पभाइ पुढवीए लोलुयच्चुतं नरयं चउरासीतिवाससहस्सट्ठितियं जाणइ पासइ।

आनन्द को अवधिज्ञानोत्पत्ति—

१०२. तत्पश्चात् किसी एक समय शुद्ध अध्यवसाय, शुभपरिणाम, विशुद्ध होती हुई लेश्याओं और तदावरणीयकर्म—अवधिज्ञाना—वरणीयकर्म के क्षयोपशम से उस आनंद श्रमणोपासक को अव-धिज्ञान उत्पन्न हो गया, जिससे वह पूर्वदिशा में लवण समुद्र तक के पाँच सौ योजन पर्यंत क्षेत्र को जानने और देखने लगा। दक्षिणदिशा में पाँच सौ योजन तक का लवणसमुद्र का क्षेत्र देखने और जानने लगा। पश्चिमदिशा में भी इसी प्रकार लवण समुद्र पर्यंत के पाँच सौ योजन प्रमाण क्षेत्र को जानने देखने लगा और उत्तर दिशा में क्षुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत पर्यंत के क्षेत्र को जानने देखने लगा। ऊर्ध्व दिशा में सौधर्म कल्प तक के क्षेत्र को तथा अधोदिशा में चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले लोलुयाच्युत नरक तक जानने और देखने लगा।

गोयरचरियानिग्गयस्स गोयमस्स आणंदसमक्खं गमणं—

१०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए।

परिसा निग्गया-जाव-पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स

गोचर चर्या हेतु निर्गत गौतम का आनन्द के समक्ष-गमन—

१०३. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर समव-सृत हुए—पधारे।

धर्मकथा सुनने के लिए परिषदा नगर से निकली—यावत्—धर्म सुनकर वापस लौट गयी।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ

जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमसगोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसहनारायसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे महातवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्त-विउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

अन्तेवासी प्रथम शिष्य, सात हाथ ऊँचे शरीर वाले समचतुरस्र संस्थान एवं वज्रऋषभनाराच संहनन वाले, कसौटी पर घिसे हुये सोने की रेखा तथा पद्म के समान गौरवर्ण वाले, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, विशेषतप से तप्ततपस्वी, महातपस्वी, उदार, घोर, घोरगुणवाले—महान्‌गुणों से संपन्न, घोरतपस्वी, महान्ब्रह्मचारी, शरीर की ममता से मुक्त, अन्तर्निहित तेजोलेश्या वाले गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार निरन्तर षष्ठ-षष्ठ भक्त तपो-कर्म और संयम साधना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे थे ।

तए णं से भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बिइयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए [समाणे ?] छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे नयरे उच्च-नीच-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए" ।

तत्पश्चात् उन भगवान गौतम अनगार ने षष्ठ भक्त तपस्या के पारणे के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय किया. द्वितीय पौरुषी में ध्यान किया तृतीय पौरुषी में अत्वरित—बिना किसी प्रकार की उतावली के, चपलतारहित, असंभ्रांत—अनाकुल भाव से मुखवस्त्रिका का प्रतिलेखन किया और प्रतिलेखन करके पात्र-भाजनादि का प्रमार्जन किया, पात्रों का प्रमार्जन करके उनको हाथ में उठाया, उठाकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदंत ! आपकी आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके षष्ठ-क्षमण के पारणे के लिये वाणिज्यग्राम नगर के सधन-निर्धन-मध्यम (उच्च-नीच-मध्यम) कुलों में गृहसामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण करना—घूमना चाहता हूँ ।''

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह" ।

'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुमको सुख हो, वैसा करो. विलंब मत करो ।' भगवान ने उत्तर दिया ।

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे नयरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाणियगामे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ ।

इसके अनन्तर श्रमण भगवान महावीर द्वारा अभ्यनुज्ञात—आज्ञा प्राप्त हुए—होकर भगवान् गौतम श्रमण भगवान महावीर के पास से, दूतिपलाश चैत्य से बाहर निकले, निकलकर बिना किसी प्रकार की शीघ्रता चपलता और आकुलता के युगपरिमाण—चार हाथ प्रमाण मार्ग का अवलोकन—शोधन करते हुए, जहाँ वाणिज्यग्राम नगर था, वहाँ आये, वहाँ आकर वाणिज्यग्राम नगर के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में (आर्थिक दृष्टि से सधन, निर्धन, मध्यम स्थिति वाले परिवारों में) गृहसामुदानिक भिक्षा-चर्या से परिभ्रमण करने लगे—घूमने लगे ।

तए णं से भगवं गोयमे वाणियगामे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं पडिग्गाहेइ, पडिग्गाहेत्ता वाणियगामाओ नयराओ पडिणिग्गच्छइ, पडिणिग्गच्छित्ता कोल्लायस्स सण्णिवेसस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ । बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे

तत्पश्चात् भगवान गौतम ने वाणिज्यग्राम नगर में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृहसमुदानी भिक्षाचर्या से घूमते हुये अपने लिये पर्याप्त आहार पानी ग्रहण किया. ग्रहण करके वाणिज्यग्राम नगर से बाहर निकले, निकलकर कोल्लाग सन्निवेश के न अधिक दूर और न अधिक निकट अर्थात् उचित मार्ग से गमन करते हुये बहुत से लोगों की बातचीत को सुना । वे बहुत से मनुष्य आपस में इस प्रकार कह रहे थे, बोल रहे थे, प्रतिपादन कर रहे थे, प्ररूपणा कर रहे थे, कि—'हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान महावीर

नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-झूसिए, भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ"।

के अन्तेवासी आनंद श्रमणोपासक पौषधशाला में अपश्चिम मारणांतिक संलेखना-झूषणा को अंगीकार करके, भक्तपान का त्याग करके और जीवन-मरण की आकांक्षा न करते हुये विचर रहे हैं।'

तए णं तस्स गोयमस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"तं गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि"। एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे जेणेव पोसहसाला जेणेव आणंदे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ।

तब उन बहुत से लोगों से इस बात को सुनकर और अवधारित कर भगवान गौतम को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं जाऊँ और आनन्द श्रमणोपासक को देखूँ।' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ कोल्लागसन्निवेश-उपनगर था, जहाँ पौषधशाला थी और उसमें भी जहाँ आनन्द श्रमणोपासक थे, वहाँ आये।

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण-हियए भगवं गोयमं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु भंते! अहं इमेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए, णो संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ताणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाए अभिवंदित्तए। तुब्भे णं भंते! इच्छाकारेणं अणभिओएणं इओ चेव एह, जेणं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदामि णमंसामि"।

तब आनन्द श्रमणोपासक ने भगवान गौतम को अपने समीप आते हुए देखा, देखकर हर्षित, संतुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम सौमनस्य भावपूर्वक हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाले होते हुए भगवान् गौतम को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भवंत! बात यह है कि मैं इस उदार विपुल प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को अंगीकार करने से शुष्क, रुक्ष, निर्मांस, अस्थिचर्मावृत, किडकिडाहट ध्वनि करनेरूप शरीर वाला, कृश और उभरे हुए नसाजाल जैसा हो गया हूँ। जिससे आप देवानुप्रिय के निकट आकर तीन बार मस्तक नमाकर चरण वंदना करने में समर्थ नहीं हूँ। अतएव हे देवानुप्रिय! आप ही स्वेच्छापूर्वक, बिना किसी दबाव के यहाँ पधारिये, जिससे मैं आप देवानुप्रिय को तीन बार नमित मस्तक होकर पाद वंदना और नमस्कार कर सकूँ।'

तए णं से भगवं गोयमे जेणेव आणंदे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ।

तब भगवान गौतम आनन्द श्रमणोपासक के निकट आये।

ओहिविसए आणंद-गोयम-संवादो—

अवधिज्ञान विषयक आनन्द-गौतम संवाद—

१०४. तए णं से आणंदे समणोवासए भगवओ गोयमस्स तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पाएसु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"अत्थि णं भंते! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ?"

"हंता अत्थि।"

"जइ णं भंते! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ, एवं खलु भंते! मम वि गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे—पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसयाइं-जाव-लोलुयच्चुतं नरयं जाणामि पासामि"।

१०४. तत्पश्चात् आनन्द श्रमणोपासक ने तीन बार मस्तक नमाकर भगवान गौतम के चरणों में वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भगवन्! क्या घर में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है?'

गौतम ने उत्तर दिया—'हाँ, हो सकता है।'

'हे भदन्त! यदि ऐसा है कि घर में रहने वाले गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है तो हे भगवान्! मुझको भी घर में रहते हुये अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे पूर्वदिशा में लवण समुद्र पर्यन्त पाँच सौ योजन—यावत्—लोलुपाच्युत नरक तक को जानता और देखता हूँ।' आनन्द श्रमणोपासक ने भगवान गौतम से कहा।

तए णं से भगवं गोयमे आणंदं समणोवासयं एवं वयासी—

तब भगवान गौतम ने आनन्द श्रमणोपासक से कहा—

"अत्थि णं आणंदा ! गिहिणो गिहमज्झावसंत ओहिणाणे समुप्पज्जइ । नो चेव णं एमहालए । तं णं तुमं आणंदा ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि" ।

'हे आनन्द ! यह ठीक है कि गृहस्थ को घर में रहते हुये अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है, किन्तु इतने विस्तृत क्षेत्र को जानने और देखने वाला नहीं हो सकता है । इसलिए हे आनन्द ! तुम मृषावादरूप इस स्थान की आलोचना करो, प्रतिक्रमण करो, निन्दा, गर्हा करो, इस धारणा का परिमार्जन करो, अयोग्य कार्य का शुद्धिकरण करो, यथायोग्य प्रायश्चित्त करने के लिए तत्पर होकर तपःकर्म स्वीकार करो ।'

तए णं से आणंदे समणोवासए भगवं गोयमं एवं वयासी—"अत्थि णं भंते ! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ निंदिज्जइ गरिहिज्जइ विउट्टिज्जइ विसोहिज्जइ अकरणयाए अब्भुट्ठिज्जइ पडिक्कमिज्जइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिज्जइ ?

भगवान् गौतम के कथन को सुनकर आनन्द श्रमणोपासक ने भगवान गौतम से इस प्रकार पूछा—हे भगवन् ! क्या जिन-शासन में सत्य, तात्त्विक तथ्य—यथार्थ, सद्भूत भावों के लिये भी आलोचना, प्रतिक्रमण, निंदा, गर्हा, निवृत्ति, अकरणता की विशुद्धि, यथायोग्य प्रायश्चित एवं तदनुरूप तपःक्रिया स्वीकार करनी पड़ती है ?'

"नो इणट्ठे समट्ठे" ।

गौतम ने कहा—'आनंद ! ऐसा नहीं किया जाता है । अर्थात् नहीं करना पड़ता है ।'

"जइ णं भंते ! जिणवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं नो आलोइज्जइ-जाव-तवोकम्मं नो पडिवज्जिज्जइ, तं णं भंते ! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह पडिक्कमेह निंदेह गरिहेह विउट्टेह विसोहेह अकरणाए अब्भुट्ठेह अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेह" ।

इस पर आनंद ने कहा—'यदि हे भदन्त ! ऐसा है कि जिनप्रवचन में सत्य, तात्त्विक, तथ्य और सद्भूत भावों के लिए आलोचना नहीं करनी पड़ती है—यावत्—तपोकर्म स्वीकार नहीं किया जाता है, तो हे भदन्त ! आप ही इस विषय में आलोचना, प्रतिक्रमण, निंदा, गर्हा, निवृत्ति, अकार्य की विशुद्धि, यथोचित प्रायश्चित्त और तदनुरूप तपःक्रिया स्वीकार करें ।'

भगवया गोयमस्स संकानिराकरणं—

भगवान द्वारा गौतम की शंका का निराकरण—

१०५. तए णं से भगवं गोयमे आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छसमावण्णे आणंदस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव दूइपलासे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता, भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

१०५. तदनंतर आनंद श्रमणोपासक के इस प्रकार कहने पर भगवान गौतम शंका, कांक्षा और विचिकित्सा युक्त होकर आनन्द श्रमणोपासक के पास से रवाना हुए, रवाना होकर जहाँ दूतिपलाश चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर से न अधिक दूर और न अधिक निकट किन्तु यथोचित स्थान में स्थित होकर गमनागमन सम्बन्धी प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणीय-अनेषणीय की आलोचना की, आलोचना करके भगवान महावीर को आहार-पानी दिखलाया और आहार-पानी दिखलाकर भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया तथा वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—

"एवं खलु भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे वाणियगामे नयरे भिक्खायरियाए अडमाणे अहापज्जत्तं भत्तपाणं पडिग्गाहेमि, पडिग्गाहेत्ता वाणियगामाओ नयराओ पडिणिग्गच्छामि, पडिणिग्गच्छित्ता कोल्लायस्स सण्णिवेसस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि । बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ,

'हे भदन्त ! आपकी आज्ञा—अनुमति लेकर वाणिज्यग्राम नगर में भिक्षाचर्या के लिए घूमते हुए यथापर्याप्त आहार-पानी ग्रहण किया—लिया, लेकर वाणिज्यग्राम नगर से बाहर निकला, निकलकर कोल्लाग सन्निवेश के समीप से गुजरते हुए बहुत से मनुष्यों की बातचीत को सुना । वे बहुत से मनुष्य आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, बोल रहे थे, प्रतिपादन कर रहे

एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ —'एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए-भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ'।

और प्ररूपणा कर रहे थे, कि 'हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान के अन्तेवासी—अनुयायी आनन्द नामक श्रमणोपासक पौषधशाला में अन्तिम मारणांतिक संलेखना को अंगीकार करके भक्तपान का परित्याग करके, मृत्यु की आकांक्षा न करते हुए विचर रहे हैं।'

तए णं मम बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—तं गच्छामि णं आणंदं समणोवासयं पासामि—एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे, जेणेव पोसहसाला, जेणेव आणंदे समणोवासए तेणेव उवागच्छामि।

तत्पश्चात् उन बहुत से मनुष्यों की यह बात सुनकर और हृदय में धारण कर मुझे यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं जाऊँ और आनन्द श्रमणोपासक को देखूँ"—ऐसा विचार किया, विचार करके जहाँ कोल्लाग सन्निवेश था, जहाँ पौषधशाला थी और उसमें भी जहाँ आनन्द श्रमणोपासक था, वहाँ पहुँचा।

तए णं से आणंदे समणोवासए ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए ममं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'एवं खलु भंते ! अहं इमेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए, णो संचाएमि देवाणुप्पियस्स अंतियं पाउब्भवित्ता णं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पादे अभिवंदित्तए। तुब्भे णं भंते ! इच्छक्कारेणं अणभिओगेणं इओ चेव एह, जेणं देवाणुप्पियाणं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पादेसु वंदामि णमंसामि'।

तब उस आनन्द श्रमणोपासक ने मुझे अपनी ओर आते हुये देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट हुआ, चित्त में आनन्दित हुआ, मन में प्रीति पैदा हुई, परम सौमनस्य भाव वाला हुआ और हर्षातिरेक से विकसित हृदय होते हुए उसने मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! मैं इस उदार—प्रधान, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, मांसरहित अस्थिचर्मावरणमात्र, किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों वाला जैसा हो गया हूँ, जिससे आप देवानुप्रिय के समीप आकर तीन बार मस्तक नमाकर चरण वंदन करने में समर्थ नहीं हूँ, अतएव हे भगवन् ! आप स्वयं ही अपनी इच्छा से बिना किसी प्रकार के दबाव के यहाँ पधारें, जिससे आप देवानुप्रिय को तीन बार मस्तक नमाकर चरणों में वन्दन-नमस्कार कर लूँ।'

तए णं अहं जेणेव आणंदे समणोवासए, तेणेव उवागच्छामि। तए णं से आणंदे समणोवासए ममं तिक्खुत्तो मुद्धाणेणं पादेसु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—'अत्थि णं भंते ! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ ?' 'हंता अत्थि'।

तब मैं स्वयं आनन्द श्रमणोपासक के समीप गया और उस आनन्द श्रमणोपासक ने तीन बार मस्तक नमाकर मेरे चरणों में वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करने के पश्चात् उसने इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! क्या घर में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान उत्पन्न हो सकता है ?' प्रत्युत्तर में मैंने बताया कि 'हाँ, हो सकता है।'

'जइ णं भंते ! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ, एवं खलु भंते ! मम वि गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पण्णे—पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंचजोयणसयाइं खेत्तं जाणामि पासामि। दक्खिणेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसयाइं खेत्तं जाणामि पासामि। पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दे पंच जोयणसयाइं खेत्तं जाणामि पासामि। उत्तरेणं-जाव-चुल्लहिमवंतं वासधरपव्वयं जाणामि पासामि। उड्ढं-जाव-सोहम्मं कप्पं जाणामि पासामि। अहे-जाव-इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीतिवाससहस्सट्ठितियं जाणामि पासामि'।

इस प्रकार उसने पुनः कहा कि 'यदि भदन्त ! घर में रहते हुए गृहस्थ को अवधिज्ञान हो सकता है, तो हे भगवन् ! घर में रहने वाले मुझे भी अवधिज्ञान उत्पन्न हुआ है, जिससे पूर्व दिशा में लवण समुद्र तक के पाँच सौ योजन क्षेत्र को जान रहा हूँ और देख रहा हूँ। दक्षिणदिशा में भी लवण समुद्र तक के पाँच सौ योजन प्रमाण क्षेत्र को जानता देखता हूँ। पश्चिम में लवण समुद्र पर्यंत पाँच सौ योजन क्षेत्र को जानता और देखता हूँ। उत्तर में चुल्ल हिमवान् वर्षधर पर्वत तक को जानता देखता हूँ, ऊर्ध्व दिशा में सौधर्मकल्प तक जानता देखता हूँ। अधोदिग्भाग में इस रत्नप्रभा नामक प्रथम नारक पृथ्वी के चौरासी हजार वर्ष की स्थिति वाले लोलुपाच्युत नामक नरक तक जानता और देखता हूँ।'

तए णं अहं आणंदं समणोवासयं एवं वयासी—'अत्थि णं आणंदा ! गिहिणो गिहमज्झावसंतस्स ओहिणाणे समुप्पज्जइ। नो चेव णं एमहालए। तं णं तुमं आणंदा ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि'।

तब मैंने आनन्द श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'हे आनन्द ! घर में रहने वाले गृहस्थ को अवधिज्ञान अवश्य उत्पन्न हो सकता है, किन्तु इतने विशाल क्षेत्र को देखने और जानने वाला अवधिज्ञान उत्पन्न नहीं होता है। अतएव हे आनन्द ! तुम इस मृषावादरूप स्थान की आलोचना करो—यावत्—यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःकर्म स्वीकार करो।'

तए णं से आणंदे ममं एवं वयासी—'अत्थि णं भंते ! जिण-पवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं आलोइज्जइ-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिज्जइ ?' 'णो इणट्ठे समट्ठे'।

तब आनन्द श्रमणोपासक ने मुझसे यह कहा—'हे भदंत ! क्या जिनप्रवचन में सत्य, तात्त्विक, तथ्य और समीचीन भावों के लिए भी आलोचना—यावत्—यथोचित प्रायश्चित्त एवं तदनुरूप तपःक्रिया स्वीकार करनी पड़ती है ?' प्रत्युत्तर में मैंने कहा—'ऐसा नहीं होता है।'

'जइ णं भंते ! जिणपवयणे संताणं तच्चाणं तहियाणं सब्भूयाणं भावाणं नो आलोइज्जइ-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं नो पडिवज्जिज्जइ, तं णं भंते ! तुब्भे चेव एयस्स ठाणस्स आलोएह-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेह'।

इस बात को सुनकर आनन्द श्रमणोपासक ने कहा—'हे भगवन् ! यदि जिनप्रवचन में सत्य, तात्त्विक, तथ्य और सद्भूत भावों के लिये आलोचना—यावत्—यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःक्रिया स्वीकार नहीं करनी पड़ती है तो हे भगवन् ! आप स्वयं ही इस स्थान के लिए आलोचना करें—यावत्—यथायोग्य प्रायश्चित्त एवं तदनुरूप तपःकर्म स्वीकार करें।'

तए णं अहं आणंदेणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छसमावण्णे आणंदस्स समणोवासयस्स अंतियाओ पडिणिक्खमामि, पडिणिक्खमित्ता जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए। तं णं भंते ! किं आणंदेणं समणोवासएणं तस्स ठाणस्स आलोएयव्वं पडिक्कमेयव्वं निंदेयव्वं गरिहेयव्वं विउट्टेयव्वं विसोहेयव्वं अकरणयाए अब्भुट्ठेयव्वं अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जेयव्वं ? उदाहु मए ?

इसके अनन्तर आनन्द श्रमणोपासक की यह बात सुनकर मैं शंका, कांक्षा और विचिकित्सा—संशय युक्त होता हुआ आनंद श्रमणोपासक के यहाँ से निकला और निकलकर शीघ्र ही आपके पास आया हूँ। तो क्या हे भगवन् ! उक्त स्थान—आचरण के लिए आनन्द श्रमणोपासक को आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, निवृत्ति, अकरणता-विशुद्धि यथोचित प्रायश्चित्त एवं तदनुरूप तपःकर्म स्वीकार करना चाहिए या मुझे ?'

गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—"गोयमा ! तुमं चेव णं तस्स ठाणस्स आलोएहि-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि, आणंदं च समणोवासयं एय-मट्ठं खामेहि।"

'गौतम !' इस प्रकार सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम से कहा—हे गौतम ! तुम्हीं उस स्थान के लिए आलोचना—यावत्—यथायोग्य प्रायश्चित्त और तपःक्रिया स्वीकार करो तथा इसके लिए श्रमणोपासक आनन्द से क्षमा-याचना भी करो।

गोयमस्स खमणा—

१०६. तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहइ अकरणयाए अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ, आणंदं च समणोवासयं एयमट्ठं खामेइ।

गौतम द्वारा क्षमा-याचना—

१०६. इसके बाद भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर के उक्त आदेश को 'तथेति'—इसी प्रकार कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके उस स्थान—आचरण के लिए आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, निवृत्ति, अकरणता-विशुद्धि, यथोचित प्रायश्चित्त एवं तदनुरूप तपःक्रिया स्वीकार की और इस कार्य के लिये श्रमणोपासक आनन्द से क्षमा माँगी।

भगवओ जणवयविहारो—

१०७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ बहिया जण-वय विहारं विहरइ।

भगवान का जनपद विहार—

१०७. तत्पश्चात् अन्य किसी समय श्रमण भगवान महावीर अन्य दूसरे जनपदों में विचरने लगे।

आणंदस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगमण-निरूवणं च—

१०८. तए णं से आणंदे समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा, सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसगस्स महाविमाणस्स उत्तर-पुरत्थिमे णं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे।
तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।
तत्थ णं आणंदस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

आणंदे णं भंते! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—उवासगदसाओ अ० १

आनन्द का समाधिमरण, देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

१०८. तदनन्तर वह श्रमणोपासक आनन्द अनेक प्रकार के शील एवं गुणव्रत, विरमण—विरति, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास द्वारा आत्मा को संस्कारित करके, बीस वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय को पालन करके, ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की सम्यक् प्रकार से आराधना करके, एक मास की संलेखना द्वारा अपनी आत्मा को शुद्ध करके, साठ भोजनों का अनशन द्वारा त्याग करके, आलोचना, प्रतिक्रमण करके, समाधि में लीन रहते हुए, मरणकाल प्राप्त होने पर मरण करके सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक महाविमान के ईशानकोण में स्थित अरुणाभविमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ पर कितने ही देवों की चार पल्योपम की स्थिति होती है। अतएव वहाँ आनन्द देव की भी चार पल्योपम की स्थिति हुई।

हे भगवन्! वह आनन्द देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा? भगवन् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा।

हे गौतम! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, कर्ममुक्त होगा और समस्त दुःखों का अन्त करेगा।' भगवान ने उत्तर दिया।

।। महावीर तीर्थ में आनंद गाथापति कथानक समाप्त ।।

□ □

६. कामदेवगाहावइकहाणगं

चंपाए कामदेवे गाहावई—

१०९. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी। पुण्णभद्दे चेइए। जियसत्तू राया।

तत्थ णं चंपाए नयरीए कामदेवे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

६. कामदेव गाथापति कथानक

चंपा में कामदेव गाथापति—

१०९. उस काल और समय में चंपा नाम की नगरी थी। पूर्णभद्र नामक चैत्य था। जितशत्रु नाम का राजा वहाँ राज्य करता था।

उस चंपा नगरी में धनाढ्य—यावत्—किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला कामदेव नामक गाथापति रहता था।

तस्स णं कामदेवस्स गाहावइस्स छ हिरण्णकोडीओ निहाण-पउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, छ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था ।

उस कामदेव गाथापति की छह करोड़ सुवर्ण मुद्रायें कोष में रखी थीं, छह हिरण्य कोटियां व्यापार में लगी थीं और छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें गृह सम्बन्धी साधनों में नियोजित थीं तथा उसके दस-दस हजार गायों वाले छह व्रज—गोकुल थे ।

से णं कामदेवे गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था ।

उस कामदेव गाथापति से बहुत से राजा—यावत्—व्यापारी अपने-अपने कार्यों आदि के लिये पूछते थे, परामर्श करते थे तथा वह अपने परिवार का भी केन्द्र स्तम्भ—यावत्—सब कार्यों में प्रेरक—मुखिया था ।

तस्स णं कामदेवस्स गाहावइस्स भद्दा नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ ।

उस कामदेव गाथापति की भद्रा नामक भार्या थी, जो शुभ लक्षणों से सम्पन्न, परिपूर्ण पंचेन्द्रिय शरीर वाली—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों को भोगती हुई अपना समय व्यतीत करती थी ।

महावीरसमवसरणं—

११० तेणं कालेणं तेण समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

परिसा निग्गया ।

कूणियराया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ ।

महावीर समवसरण—

११०. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर—यावत्—जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे, वहाँ पधारकर यथाप्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

धर्मोपदेश सुनने के लिए परिषदा निकली,

कोणिकराजा की तरह जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला—यावत्—पर्युपासना की ।

कामदेवस्स समवसरणं गमणं धम्मसवणं च—

१११. तए णं से कामदेवे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव चंपाए नयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं महप्फलं खलु भो ! देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ! तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं

कामदेव का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण—

१११. तदनन्तर वह कामदेव गाथापति इस संवाद को सुनकर कि 'श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए यहाँ पधारे हैं, विराज रहे हैं, समवसृत हुए हैं और यहीं चम्पा नगरी के बाहर स्थित पूर्णभद्र चैत्य में यथायोग्य अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे हैं । हे देवानुप्रियो ! जब तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम गोत्र का सुनना भी महाफल दायक है तो हे आयुष्मन् ! फिर उनके सामने जाना, उनको वन्दन-नमस्कार करना, उनसे प्रश्न पूछना और उनकी पर्युपासना करने के फल विषय में तो कहना ही क्या है ? जब धर्माचार्य के एक सुवचन का श्रवण करना महान फल देने वाला है, तो फिर हे आयुष्मन् ! विपुल अर्थ के ग्रहण करने से प्राप्त होने वाले सुफल के लिये क्या कहा जाये ? इसलिए हे देवानुप्रियो ! मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ एवं उनका कल्याण रूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यज्ञानस्वरूप की पर्युपासना करूँ'—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके उसने स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किया और अवसरानुकूल वेशभूषा तथा मंगलकारी उत्तम वस्त्रों को

पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडि-णिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्ज-माणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं चंपं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ निग्गच्छित्ता जेणामेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंस-माणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

पहनकर महामूल्यवान् अल्प आभूषणों से शरीर को विभूषित कर अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्पमालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारण कर जनसमूह को साथ लेकर पैदल चलते हुए चम्पानगरी के बीचों-बीच से निकला, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था और उसमें भी जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अतिदूर और न अतिनिकट किन्तु यथोचित स्थान पर सामने स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए पर्यु-पासना करने लगा ।

तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने कामदेव गाथापति और उस महती परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश दिया।

उपदेशानन्तर परिषदा वापस लौट गई और राजा भी चला गया ।

कामदेवस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

कामदेव की गृहीधर्म प्रतिपत्ति—

११२. तए णं कामदेवे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—

११२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवणकर और हृदय में धारणकर कामदेव गाथापति हृष्ट-तुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम सौमनस भाव वाला और हर्षवशात् विकसित हृदय वाला होकर अपने आसन से उठा, उठकर तीन बार श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते । पडि-च्छियमेयं भंते । इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडं-बिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालस-विहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि" ।

'हे भन्ते ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति करता हूँ, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचता है—अच्छा लगता है, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन का मैं आदर करता हूँ। हे भदन्त ! ऐसा ही है, हे भदन्त ! यही तथ्यरूप है, हे भदन्त ! यह यथार्थ है, हे भगवन् ! यह असंदिग्ध-संदेह रहित है, हे भगवन् ! यह अभिलाषणीय है, हे भगवन् ! यह ग्रहण करने योग्य है, हे भदन्त ! यह अभिल-षणीय और ग्रहण करने योग्य है, वह वैसा ही है, जैसा आप प्रतिपादन करते हैं। जैसे आप देवानुप्रिय के पास बहुत से राजा, ईश्वर तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेना-पति, सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर गृहत्याग करके आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, इसी प्रकार से मुण्डित होकर और गृहत्याग करके अनगार दीक्षा अंगीकार करने के लिये तो मैं समर्थ नहीं हूँ, किन्तु आप देवानुप्रिय के पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को ग्रहण करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि" ।

भगवान ने कहा—"हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें उचित प्रतीत हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब-प्रमाद मत करो ।"

तए णं से कामदेवे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ ।

तत्पश्चात् उस कामदेव गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर से श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

भगवओ जणवयविहारो—

भगवान का जनपद विहार—

११३. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ चंपाए नयरीए पुण्णभद्दाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

११३. इसके अनन्तर श्रमण भगवान महावीर किसी एक दिन चम्पानगरी के पूर्णभद्र चैत्य से निकले और निकलकर बाह्य जनपद विहार से विचरण करने लगे ।

कामदेवस्स समणोवासग-चरिया—

कामदेव की श्रमणोपासक चर्या—

११४. तए णं से कामदेवे समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबल-पायपुञ्छणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ ।

११४. इसके अनन्तर वह कामदेव जीव और अजीव आदि तत्त्वों को जानने वाला श्रमणोपासक हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रंथों को प्राशुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह—पात्र आदि, कंबल, पादप्रोञ्छन, औषधि, भेषज और प्रतिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगा ।

भद्दाए समणोवासियाचरिया—

भद्रा की श्रमणोपासक चर्या—

११५. तए णं सा भद्दा भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुञ्छणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथार एणं पडिलाभेमाणी विहरइ ।

११५. तदनन्तर वह भद्रा भार्या जीवाजीवादि तत्त्वों की ज्ञाता श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्राशुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, वस्त्र, पात्रादि, कंबल, पादप्रोञ्छन—रजोहरण औषधि, भेषज और पडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगी ।

कामदेवस्स धम्मजागरिया गिहिववहारचाओ य—

कामदेव की धर्मजागरिका और गृहव्यवहार त्याग—

११६. तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं । पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं चंपाए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिउवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए" ।

११६. तदनन्तर उस कामदेव श्रमणोपासक के अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, पोषधोपवासों के द्वारा आत्मा को संस्कारित करते हुए चौदह वर्ष बीत गये । पन्द्रहवें वर्ष के अन्तराल में रहते हुए किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्मजागरणा में जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ कि चम्पानगरी के बहुत से राजा आदि के द्वारा अपने-अपने कार्यों के लिए पूछा जाता है, वे परामर्श करते हैं और स्वयं अपने कुटुम्ब के लिए आधार स्तम्भ समान—यावत्—सभी कार्यों के लिए प्रेरकरूप हूँ । अतएव इस विक्षेप के कारण मैं श्रमण भगवान महावीर से प्राप्त की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ,

इसके बाद उस श्रमणोपासक कामदेव ने अपने ज्येष्ठपुत्र, मित्रों, ज्ञातिजनों निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचितों से पूछा, पूछकर अपने घर से निकला, निकलकर चम्पानगरी के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके उच्चार-

पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणि-सुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भ-संथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके कुश का बिछौना बिछाया, बिछौना बिछाकर उस पर स्थित हुआ, स्थित होकर पौषधशाला में पौषधव्रती होकर ब्रह्मचर्यपूर्वक स्वर्ण मणियों से बने आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्णकों, विलेपनों को छोड़कर और मूसलादि शस्त्रों का त्यागकर एकाकी अद्वितीय हो दर्भ-घास के संस्तारक पर बैठकर श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति-धर्मशिक्षा को स्वीकार करके उपासनारत हो गया ।

कामदेवस्स पिसायरूव-कय-मारणंतिय-उवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

कामदेव द्वारा पिशाचरूपकृत मारणांतिक उपसर्ग का सम्यक् प्रकार से सहन करना—

११७. तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि एगे देवे मायी मिच्छद्दिट्ठी अंतियं पाउब्भूए ।

तए णं से देवे एगं महं पिसायरूवं विउव्वइ । तस्स णं दिव्वस्स पिसायरूवस्स इमे एयारूवे वण्णावासे पण्णत्ते—

११७. तदनन्तर उस कामदेव श्रमणोपासक के समीप मध्यरात्रि के समय एक मायावी और मिथ्यादृष्टि देव प्रगट हुआ ।

उस देव ने एक विशालकाय पिशाचरूप बनाया था—धारण किया था । उस देव के पिशाचरूप का इस प्रकार का विस्तार से वर्णन किया गया है—

सीसं से गोकिलंज-संठाण-संठियं, सालिभसेल्ल-सरिसा से केसा कविलतेएणं दिप्पमाणा उट्ठिया,

उस पिशाच का सिर गोकिलञ्ज अर्थात् गाय को चारा डालने के उपयोग में आने वाली बांस की टोकरी जैसा था । उसके बाल—केश धान की मंजरी के तंतुओं के समान रूक्ष और मोटे थे, और वे भूरे रंग के थे, चमकीले थे ।

कमल्ल-संठाण-संठियं निडालं,

ललाट बड़े मटके के कपाल जैसा था ।

मंगुसपुच्छं व तस्स भुमगाओ फुग्गफुग्गाओ विगय-बीभच्छ-दंसणाओ,

भौंहें गिलहरी के पूंछ की तरह बिखरी हुई थीं, जो देखने में बड़ी विकृत और बीभत्स-घृणोत्पादक अथवा भयोत्पादक थीं ।

सीसघडिविणिग्गयाइं अच्छीणि विगय-बीभच्छ-दंसणाइं,

आँखें मटकी के समान सिर से बाहर निकली हुई थीं और देखने में विकृत एवं बीभत्स दीखती थीं ।

कण्णा जह सुप्प-कत्तरं चेव विगय-बीभच्छ-दंसणिज्जा,

कान टूटे हुए सूप के समान बड़े भद्दे और कुरूप दिखाई देते थे ।

उरब्भपुडसंनिभा से नासा, झुसिरा जमल-चुल्ली-संठाण-संठिया दो वि तस्स नासापुडया,

नाक मेंढे की नाक जैसी चपटी थी । उसकी नाक के दोनों छेद गड्ढे के समान और जुड़े हुए दो चूल्हे जैसे थे ।

घोडयपुच्छं व तस्स मंसूइं कविल-कविलाइं विगय-बीभच्छ-दंसणाइं,

घोड़े की पूंछ जैसी उसकी मूंछें थीं जिनका रंग भूरा था और बड़ी विकृत तथा बीभत्स थीं ।

उट्ठा उट्टस्स चेव लंबा,

होठ ऊँट के होठ के समान लम्बे थे ।

फालसरिसा से दंता,

दाँत हल की फाल के समान नुकीले-पैने, तीखे थे ।

जिब्भा जह सुप्प-कत्तरं चेव विगय-बीभच्छ-दंसणिज्जा,

जीभ सूप-छाजले के टुकड़े के समान विकृत और देखनेवालों को भय पैदा करने वाली थी ।

हल-कुद्दाल-संठिया से हणुया,

उसकी ठुड्डी (होठों के नीचे का भाग) हल के अग्र भाग के समान बाहर उभरी हुई थी ।

गल्ल-कडिल्लं व तस्स खड्डं फुट्टं कविलं फरुसं महल्लं,

कड़ाई के समान अन्दर धँसे हुए उसके गाल थे, वे फटे हुए थे अर्थात् उन पर चोट लगने से घाव हो रहे थे, भूरे रंग के कठोर और विकराल थे ।

मुइंगाकारोवमे से खंधे,

पुरवरकवाडोवमे से वच्छे,

कोट्ठिया-संठाण-संठिया दो वि तस्स बाहा,

निसापाहाण-संठाण-संठिया दो वि तस्स अग्गहत्था,

निसालोड-संठाण-संठियाओ हत्थेसु अंगुलीओ,

सिप्पि-पुडग-संठिया से नखा,

ण्हाविय-पसेवओ व्व उरम्मि लंबंति दो वि तस्स थणया,

पोट्टं अयकोट्ठओ व्व वट्टं,

पाण-कलंद-सरिसा से नाही

सिक्कग-संठाण-संठिए से नेत्ते,

किण्णपुड-संठाण-संठिया दो वि तस्स वसणा,

जमल-कोट्टिया-संठाण-संठिया दो वि तस्स ऊरू,

अज्जुण-गुट्ठं व तस्स जाणूइं कुडिल-कुडिलाइं विगय-बीभत्स-दंसणाइं

जंघाओ कक्खडीओ लोमेहिं उवचियाओ,

अहरी-संठाण-संठिया दो वि तस्स पाया, अहरी-लोढ-संठाण-संठियाओ पाएसु अंगुलीओ,

सिप्पि-पुडसंठिया से नखा ।

लडह-मडह-जाणुए,

विगय-भग्ग-भुग्ग-भुमए,

अवदालिय-वयण-विवर-निल्लालियग्गजीहे,

सरड-कयमालियाए उंदुरमाला-परिणद्ध-सुकयचिंधे,

नउल-कयकण्णपूरे, सप्पकयवेगच्छे,

अप्फोडंते, अभिगज्जंते, भीम-मुक्कट्टहासे, नाणाविह-पंच-वण्णेहिं लोमेहिं उवचिए, एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय जेणेव पोसहसाला, जेणेव काम-देवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

उसके कंधे मृदंग के समान थे।

उसका वक्षस्थल—छाती नगर के फाटक समान चौड़ा था।

उसकी दोनों भुजाएँ कोष्ठिका (हवा रोकने अथवा इकट्ठी करने के लिये धौंकनी के मुँह के सामने बनी हुई मिट्टी की कोठी) के समान थीं।

उसकी दोनों हथेलियाँ चक्की के पाट के समान मोटी थीं।

हाथों की उँगलियाँ मसाला आदि पीसने की लोढ़ी के समान थीं।

उसके नख सीपियों के समान थे।

उसके दोनों स्तन नाई की रछानी (उस्तरा आदि रखने के लिये चमड़े की बनी थैली) के समान छाती से लटक रहे थे।

पेट लोहे से बने ढोल (कोठी) के समान गोल था।

नाभि, जुलाहों द्वारा कपड़ों में मांड लगाने के बर्तन के समान गहरी थी।

उसका नेत्र—लिंग छींके के समान लटक रहा था।

उसके दोनों अंडकोष फैले हुए दो थैलों या बोरियों जैसे थे।

उसकी दोनों जंघायें समान आकारवाली दो कोठियों के समान थीं।

उसके घुटने अर्जुन—तृण विशेष के गुच्छों के समान टेढ़े-मेढ़े, विकृत और बीभत्स—भयानक दर्शन वाले थे।

उसकी पिंडलियाँ कठोर और बालों से भरी हुई थीं।

उसके दोनों पैर दाल पीसने की शिला के सदृश थे और अंगुलियाँ लोढ़ी की आकृतिवाली थीं।

उन अंगुलियों के नख सीपियों के समान थे।

उस पिशाच के घुटने मोटे-लम्बे और लड़खड़ा रहे थे।

उसकी भौंहें विकृत, खंडित और कुटिल थीं।

मुख फाड़ रखा था और जीभ बाहर निकाल रखी थी।

उसने सिर पर सरटों-गिरगिटों की माला लपेट रखी थी और गले में पहनी चूहों से बनी माला उसकी पहिचान-चिन्ह थी।

कानों में कुण्डलों के स्थान पर नेवले लटक रहे थे। सांपों का वैकक्ष—दुपट्टा बना रखा था।

वह भुजाओं पर हाथ फटकार रहा था, गरज रहा था, भयंकर अट्टहास कर रहा था। नानाविधि पांचवर्णों के केशों से उसका शरीर व्याप्त था और नीलकमल, भैंसे के सींग तथा अलसी के फूल जैसी नीली, तीक्ष्ण धारवाली तलवार लिये जहाँ पौषधशाला थी, श्रमणोपासक कामदेव था, वहाँ वह पिशाच आया। वहाँ आकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् विकराल होते हुए दाँतों को पीसते हुए कामदेव श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—

"हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! अप्पत्थियपत्थिया ! दुरंत-पंत-लक्खणा ! हीणपुण्णचाउद्दसिया ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया ! धम्मकामया ! पुण्णकामया ! सग्गकामया मोक्खकामया ! धम्मकंखिया ! पुण्णकंखिया ! सग्गकंखिया ! मोक्ख-कंखिया ! धम्मपिवासिया ! पुण्णपिवासिया ! सग्गपिवासिया ! मोक्खपिवासिया ! नो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया ! सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज इमेणं नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडि करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि"।

'अरे ओ कामदेव श्रमणोपासक ! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाला—अर्थात् जिसको कोई नहीं चाहता, उस मृत्यु को चाहने वाला ! दुःखद अंत और अशुभ लक्षणोंवाला ! दुर्भाग्यपूर्ण चतुर्दशी में जन्म लेने वाला ! श्री, ह्री—लज्जा, धी—बुद्धि, कीर्तिविहीन ! धर्म की कामना करने वाला ! पुण्य की कामना करने वाला ! स्वर्ग की कामना करने वाला ! मोक्ष की कामना करने वाला ! धर्माकांक्षी ! पुण्याकांक्षी ! मोक्षाकांक्षी ! धर्म-पिपासु ! पुण्य-पिपासु ! स्वर्ग-पिपासु ! मोक्ष पिपासु ! देवानु-प्रिय ! शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों तथा पौषधोपवासों से विचलित होना, क्षुभित होना, उन्हें खंडित करना, भग्न करना, उज्झित—त्याग करना, परित्याग करना तुम्हें नहीं कल्पता है। परन्तु यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं आज इस नीलकमल भैंसे के सींग, अलसी के फूल के समान गहरी नीली तेजधार वाली तलवार से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान के वशीभूत होकर अतिविकट दुःख भोगते हुए अकाल मौत के कारण प्राणों से हाथ धो बैठोगे।"

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अखुभिए अच-लिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तदनन्तर उस पिशाचरूप धारी देवता के इस प्रकार कहने पर भी श्रमणोपासक कामदेव भीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित एवं विचलित नहीं हुआ, घबराया नहीं, किन्तु चुपचाप-शांतभाव से धर्मध्यान में स्थिर बना रहा।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अखुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झा-णोवगयं विहरमाणं, पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं, पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडि करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

अपने कथन के अनन्तर भी जब उस पिशाचरूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को पूर्ववत् निर्भय, त्रासरहित, उद्वेग और क्षोभरहित अविचल, अनाकुल, शांत भाव से धर्मध्यान में निरत देखा तो दुबारा, तिबारा फिर कहा—'अरे ओ कामदेव श्रमणो-पासक !—यावत्—आज यदि तुम शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय इस नीलकमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल के समान नीली, तीक्ष्ण धारवाली तलवार से तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान के वश होकर अति विकट दुःख भोगते हुए अकाल मरण करके प्राणों से हाथ धो बैठोगे।"

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं पिसायरूवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

उस पिशाचरूपधारी देव के द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर भी वह श्रमणोपासक कामदेव निर्भय—यावत्—शान्तभाव से धर्मध्यान में निरत ही रहा।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमि-सीयमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु कामदेवं समणोवासयं

तदनन्तर उस पिशाचदेव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् विकराल हो और दांतों को पीसते हुए ललाट में बल डालकर, भृकुटियाँ चढ़ाकर नीलकमल, भैंसे के सींग, अलसी के

नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडिं करेइ।

फूल जैसी गहरी नीली, तीक्ष्ण धारवाली तलवार से श्रमणोपासक कामदेव के शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दिये।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

तब उस कामदेव श्रमणोपासक ने उस तीव्र, विपुल—अत्यधिक कर्कश—कठोर, प्रगाढ़ रौद्र—कष्टप्रद और दुस्सह वेदना को समभाव पूर्वक सहन किया, क्षमा और तितिक्षापूर्वक झेला।

कामदेवस्स हत्थिरूव-कय-उवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

कामदेव द्वारा हस्तीरूपकृत उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन—

११८. तए णं से दिव्वे पिसायरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अक्खुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता, पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ—

११८. तत्पश्चात् उस पिशाचरूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को भय, त्रास, उद्वेग, क्षोभरहित, अविचल, अनाकुल, शान्तभाव से धर्मध्यान में स्थित देखा, देखकर कि वह कामदेव श्रमणोपासक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित विपरिणामित-विपरीत परिणामयुक्त नहीं कर सका है, तब वह श्रांत, क्लान्त और खिन्न होकर धीरे धीरे पीछे लौटा, पीछे लौटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर देवमाया जन्य पिशाचरूप का त्याग किया, त्याग करके एक विशालकाय विकराल देवमाया जन्य हस्तीरूप की विकुर्वणा की अर्थात् हाथी का रूप धारण किया। उस हाथी का रूपवर्णन इस प्रकार का था—

सत्तंगपइट्ठियं सम्मं संठियं सुजातं

वह हाथी सुपुष्ट सात अंगों (चार पैर, सूंड़, जननेन्द्रिय और पूँछ) से युक्त था। उसका शरीर सम्यक् प्रकार से सुगठित और सुन्दर था।

पुरतो उदग्गं पिट्ठतो वराहं

उसका अग्रभाग ऊँचा—उभरा हुआ था और पृष्ठभाग सूअर के समान झुका हुआ था।

अयाकुच्छि अलंबकुच्छि पलंब-लंबोदराधरकरं

उसकी कुक्षि बकरी की कुक्षि—पेट के समान सटी, लम्बी और नीचे लटकी हुई थी।

अब्भुग्गय-मउल-मल्लिया-विमल-धवलदंतं कंचणकोसी-पविट्ठदंतं

मुँह से बाहर निकले हुए दाँत मुकुलित मल्लिका पुष्प के जैसे निर्मल और सफेद थे और वे ऐसे प्रतीत होते थे कि मानो सोने के म्यान में रखे हुए हों।

आणामिय-चाव-ललिय-संवेल्लियग्ग-सोंडं

उसकी सूँड का अग्रभाग कुछ खींचे हुए धनुष की तरह सुन्दर रूप में मुड़ा हुआ था।

कुम्म-पडिपुण्णचलणं वीसतिनखं

उसके पैरों के तलवे कछुए के समान स्थूल और चपटे थे, बीस नाखून थे।

अल्लीण-पमाणजुत्तपुच्छं मत्तं मेहमिव गुलुगुलेंतं मण-पवण-जइणवेगं, दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला, जेणेव कामदेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

उसकी पूँछ देह से सटी हुई और प्रमाणोपेत—समुचित लम्बाई आदि आकारवाली थी। वह हाथी मदोन्मत्त था और मेघ के समान गर्जना कर रहा था। उसका वेग मन और पवन के वेग से भी तीव्र था। ऐसे देवमाया जन्य हाथी के रूप की विक्रिया करके वह देव जहाँ पौषधशाला थी, जहाँ श्रमणोपासक कामदेव था, वहाँ आया और आकर कामदेव श्रमणोपासक से उसने इस प्रकार कहा—

"हंभो ! कामदेवा ! समणोवासगा ! -जाव-न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज सोंडाए गेण्हामि, गेण्हित्ता पोसहसालाओ नीणेमि, नीणेत्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

'अरे ओ श्रमणोपासक कामदेव !—यावत्—तुम अपने व्रतों को नहीं तोड़ते हो—भंग नहीं करते हो तो मैं तुझे सूंड़ से पकड़ लूँगा, पकड़कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा, ले जाकर ऊपर आकाश में उछालूँगा और ऊपर उछालकर अपने तीक्ष्ण एवं मूसल जैसे दाँतों पर झेलूँगा, झेलकर नीचे धरती पर पैरों से तीन बार रौंदूंगा, जिसे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान एवं विकट दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन से पृथक् हो जाओगे—मर जाओगे ।"

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।

हाथी का रूप धारण किये हुए उस देव के द्वारा उक्त प्रकार से कहे जाने पर भी श्रमणोपासक कामदेव भयभीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित एवं विचलित नहीं हुआ, घबराया नहीं, किन्तु शान्तिपूर्वक धर्मध्यान में स्थिर रहा ।

तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अक्खुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता, दोच्चं पि तच्चं पि कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

तब उस हाथीरूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को पूर्ववत्, अभीत, अत्रस्त, अक्षुभित, अचलित, अनाकुल एवं शान्त भाव से धर्मध्यान में स्थिर देखा, तो देखकर दूसरी बार भी, तीसरी बार भी पुनः कामदेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

"हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अज्ज अहं सोंडाए गेण्हामि, गेण्हेत्ता पोसहसालाओ नीणेमि, नीणेत्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छेत्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

'अरे ओ कामदेव श्रमणोपासक !—यावत्—यदि अभी भी तुम शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हें सूंड़ से पकड़ लूँगा पकड़कर पौषधशाला के बाहर ले जाऊँगा, ले जाकर ऊपर आकाश में उछालूंगा, उछालकर तीक्ष्ण मूशल (मूसल) जैसे दाँतों पर झेलूँगा, झेलकर नीचे जमीन पर तीन बार पैरों से रौंदूंगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! आर्तध्यान के वश होकर विकट दुःखों से दुःखित होते हुए असमय में जीवन रहित हो जाओगे—मर जाओगे ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं हत्थिरूवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तब भी वह श्रमणोपासक कामदेव उस हाथीरूप देव के दूसरी बार, तीसरी बार कहे गये शब्दों को सुनकर भी निर्भय —यावत्—धर्मध्यान में स्थिर रहा ।

तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवं समणोवासयं सोंडाए गेण्हेति, गेण्हित्ता, उड्ढं वेहासं उव्विहइ, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ ।

तदनन्तर उस हाथीरूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित चंडिकावत् विकराल होकर दाँतों को कटकटाते हुए कामदेव श्रमणोपासक को सूंड़ से पकड़ा, पकड़कर ऊपर आकाश में उछाला, उछाल कर मूसल जैसे तीखे दाँतों पर झेला और झेलकर नीचे धरती पर तीन बार पैरों से रौंद डाला ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तब उस श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र, अत्यधिक कर्कश —दारुण, प्रगाढ़, रौद्र, कष्टदायक और दुस्सह वेदना को समभावपूर्वक सहन किया और क्षमा, तितिक्षापूर्वक झेला ।

कामदेवस्स सप्परूव-कय-उवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

११६. तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अखुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ-जाव-सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ—

उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाकायं

मसीमूसाकालगं नयणविसरोसपुण्णं अंजणपुंज-निगरप्पगासं

रत्तच्छं लोहियलोयणं जमलजुयल-चंचलचलंतजीहं धरणीयल-वेणिभूयं उक्कड-फुड-कुडिल-जडिल-कक्कस-वियड-फडाडोवकरण-दच्छं लोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतघोसं अणागलियतिव्वपयंडरोसं दिव्वं सप्परूवं विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला, जेणेव कामदेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

"हंभो ! कामदेवा ! -जाव-न भंजेसि, तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगयाहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से दिव्वे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अखुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी —

कामदेव को सर्प रूप कृत उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

११६. तदनन्तर जब हाथीरूप देव ने कामदेव श्रमणोपासक को पहले की तरह निर्भय, अत्रस्त, अनुद्विग्न, अक्षुभित, अचलित, अनाकुल और शान्तभावपूर्वक धर्मध्यान में निरत देखा किन्तु विचलित नहीं कर सका तो धीरे-धीरे पीछे हटा, पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर देवमाया निर्मित हाथी के रूप का त्याग किया, त्याग करके एक विकराल सर्परूप की विकुर्विणा की—सर्प का रूप धारण किया। वह सर्परूप इस प्रकार का था—

वह सर्प उग्र विषवाला था, प्रचण्ड विषवाला था, घोर विषवाला था और विशालकाय था।

वह स्याही और मूसरोना आदि धातुओं के गलाने के पात्र जैसा काला था। उसके नेत्र विष और रोष से व्याप्त थे अर्थात् उसकी आँखों में विष और क्रोध भरा हुआ था। उसके शरीर का वर्ण काजल से भरी हुई डिबिया के समान काला था।

उसकी आँखें लाल-लाल थीं। उसकी दुहरी जीभ बाहर लपलपा रही थी। अत्यन्त काला होने से पृथ्वी की वेणी के समान प्रतीत होता था। वह अपना उत्कृष्ट—उग्र, स्फुट—प्रकट अथवा देदीप्यमान, कुटिल, जटिल, कर्कश, विकट—भयंकर, फन फैलाये हुए था। लुहार की धौंकनी के समान वह फुंकारें मार रहा था और दुर्दान्त, तीव्र रोष से भरा हुआ था।

ऐसे देवमायाजन्य सर्परूप की विकुर्वणा करके वह देव जहाँ पौषधशाला थी, उसमें भी जहाँ श्रमणोपासक कामदेव धर्मसाधना में निरत होकर बैठा था, वहाँ आया और आकर कामदेव श्रमणोपासक से इस प्रकार बोला—

'अरे ओ कामदेव ! श्रमणोपासक—यावत्—पौषधोपवासों को भंग नहीं करते हो, तो मैं अभी इसी समय तेरे शरीर पर सर-सर करता हुआ चढ़ता हूँ, चढ़कर पिछले भाग से—पूँछ की ओर से तेरे गले को तीन बार लपेट लूँगा, लपेट कर तीक्ष्ण विषैली दाढ़ाओं—दाँतों से तेरी छाती पर डंक मारूंगा—डस लूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तू आर्तध्यान और विकट दुःख से दुःखित होते हुए असमय में ही जीवन से रहित हो जायेगा।"

सर्परूपधारी उस देव के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी वह कामदेव श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—समभावपूर्वक ध्यान में स्थिर रहा।

तदनन्तर उस सर्प रूपधारी देव ने कामदेव श्रमणोपासक को पूर्ववत् निर्भय, त्रास, उद्वेग, क्षोभरहित, अविचल, अनाकुल और शान्तभाव से धर्मध्यान में स्थिर देखा तो दूसरी बार भी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा—

"हंभो कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगताहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।"

'ओ रे श्रमणोपासक कामदेव ! यदि तू अभी भी शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों को नहीं छोड़ेगा, नहीं तोड़ेगा तो इसी समय ही सर-सर तेरे शरीर पर चढ़ जाऊँगा, चढ़कर पूँछ की ओर से तीन बार तेरे गले को लपेटूंगा, लपेटकर तीखे, विषैले दाँतों से छाती में डस लूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तू आर्तध्यानपूर्वक अति विकट दुःखों को भोगते हुए अकालमरण करके प्राणों को गँवा देगा।'

तए णं से कामदेवे समणोवासए तेणं दिव्वेणं सप्परूवेणं दोच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

तदनन्तर वह श्रमणोपासक कामदेव उस सर्प रूपधारी देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर निर्भय—यावत्—ध्यान में स्थिर रहा।

तए णं से दिव्वे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं -जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे कामदेवस्स सरसरस्स कायं दुरुहइ, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगताहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेइ।

इसके बाद उस सर्प रूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय—यावत् ध्यान में स्थिर देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् विकराल हो और दाँतों को कटकटाते सर-सर करते हुए कामदेव के शरीर पर चढ़ गया, चढ़कर पिछले भाग से—पूँछ की ओर से उसके गले में तीन लपेटा लगा दिये और लपेटा लगाकर अपने तीक्ष्ण, जहरीले दाँतों से उसकी छाती पर डंक मारा—डसा।

तए णं से कामदेवे समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

तब उस श्रमणोपासक कामदेव ने उस तीव्र, विपुल, अत्यधिक कर्कश—कठोर, प्रगाढ़ अतीव तीव्र, प्रचण्ड, दुःखदायक और दुस्सह वेदना को शान्ति से सहन किया, क्षमा और तितिक्षापूर्वक झेला।

रूवसाभावियरूवदेवकया कामदेवस्स पसंसा खामणा य—

स्वाभाविक रूप करके देव द्वारा कामदेव की प्रशंसा और क्षमा याचना—

१२०. तए णं से दिव्वे सप्परूवे कामदेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ कामदेवं समणोवासयं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं सप्परूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ—

१२०. तदनन्तर उस सर्प रूपधारी देव ने श्रमणोपासक कामदेव को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा कि वह उस कामदेव श्रमणोपासक को निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित और मनोभावों को परिवर्तित करने में समर्थ नहीं हो सका है तो श्रान्त, क्लान्त एवं खिन्न होकर धीरे-धीरे पीछे हटा, पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर उस देवमाया जन्य सर्परूप का त्याग किया और त्याग करके उसने एक उत्तम दिव्य देवरूप की विकुर्वणा की—

हार-विराइय-वच्छं कडग-तुडिय-थंभियभुयं

उस देव का वक्षस्थल हार से सुशोभित हो रहा था। उसकी भुजायें कटक—कंकण और भुजबन्धों से स्तंभित—शोभायमान थीं।

अंगय-कुण्डल-मट्ठ-गंड-कण्णपीढधारि

उसके केशर, कस्तूरी आदि से बने हुए चित्रामों से मंडित कपोलों पर कर्ण-भूषण-कुण्डल शोभित थे।

विचित्तहत्थाभरणं विचित्तमाला-मउलि-मउडं

उसके हाथ विशिष्ट प्रकार के हस्ताभरणों—हाथ के आभूषणों से मंडित थे, उसके मस्तक पर तरह तरह की मालाओं से युक्त मुकुट था।

कल्लाणग-पवरवत्थपरिहियं

वह मांगलिक उत्तम परिधान पोशाक पहने था।

कल्लाणगपवरमल्लाणुलेवणं भासुरबोंदिं पलंबवणमालधरं ।

मांगलिक, उत्तम मालाओं और चन्दन केशर आदि के विलेपन से युक्त उसका शरीर देदीप्यमान था, सभी ऋतुओं के फूलों से बनी माला उसके गले से घुटनों तक लटक रही थी।

दिव्वेणं वण्णेणं दिव्वेणं गंधेणं दिव्वेणं रूवेणं दिव्वेणं फासेणं दिव्वेणं संघाएणं दिव्वेणं संठाणेणं दिव्वाए इड्ढीए दिव्वाए जुईए दिव्वाए पभाए दिव्वाए छायाए दिव्वाए अच्चीए दिव्वेणं तेएणं दिव्वाए लेसाए दसदिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं, दिव्वं देवरूवं विउव्वित्ता कामदेवस्स समणोवासयस्स पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

वह दिव्य वर्ण, दिव्य गंध, दिव्य रूप, दिव्य स्पर्श, दिव्य संघात, दिव्य संस्थान, दिव्य ऋद्धि, दिव्य द्युति, दिव्य प्रभा, दिव्य कांति, दिव्य दीप्ति, दिव्य तेज, दिव्य लेश्या से दसों दिशाओं से उद्योतित, प्रभासित—शोभायुक्त, प्रासादित—आह्लाद-युक्त, दर्शनीय, अभिरूप—मनोज्ञ और प्रतिरूप—मन को आकृष्ट करने वाले दिव्य देवरूप की विकुर्वणा—रचना करके श्रमणोपासक कामदेव की पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर आकाश में अवस्थित हो घुंघुरुओं युक्त पाँचवर्णों के उत्तमवस्त्र धारण किये हुए वह श्रमणोपासक कामदेव से इस प्रकार बोला—

"हंभो ! कामदेवा समणोवासया ! धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! पुण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयलक्खणे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया।

'हे श्रमणोपासक कामदेव ! आप देवानुप्रिय धन्य हैं, हे देवानुप्रिय ! आप पुण्यशाली हैं, हे देवानुप्रिय ! कृतकृत्य हैं, हे देवानुप्रिय ! कृतलक्षण—शुभलक्षण वाले हैं, हे देवानुप्रिय ! आपने मनुष्यभव का सुफल समीचीन रूप से प्राप्त किया है, कि जिससे आपको निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति—विश्वास सुलब्ध, सुप्राप्त और अधिगत हुई है।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया वज्जपाणी पुरंदरे सयक्कऊ सहस्सक्खे मघवं पागसासणे दाहिणड्ढलोगाहिवई बत्तीसविमाण-सयसहस्साहिवई एरावणवाहणे सुरिंदे अरयंबर-वत्थधरे आलइय-मालमउडे नव-हेम-चारु-चित्त-चंचल-कुण्डल-विलिहिज्जमाणगंडे भासुरबोंदी पलंबवणमाले सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सोहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि चउरासीईए सामाणियसाहस्सीणं, तायत्तीसाए तावत्तीसगाणं, चउण्हं लोगपालाणं, अट्ठण्हं अग्गमहिसीणं सपरिवाराणं, तिण्हं परिसाणं, सत्तण्हं अणियाणं, सत्तण्हं अणियाहिवईणं, चउण्हं चउरासीणं आयरक्ख-देवसाहस्सीणं, अण्णेसिं च बहूणं देवाण य देवीण य मज्झगए एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ—

हे देवानुप्रिय ! बात यह हुई कि शक्र, देवेन्द्र, देवराज, वज्रपाणि, पुरन्दर, शतक्रतु, सहस्राक्ष, मघवा, पाकशासन, दक्षिणार्ध लोकाधिपति, बत्तीस लाख विमानों के स्वामी, ऐरावत नामक हाथी पर सवारी करने वाले, सुरेन्द्र, आकाश के समान निर्मल वस्त्रों के धारक, मालाओं से युक्त मुकुट धारण करने वाले, उज्ज्वल स्वर्ण के सुन्दर, चित्रित, चंचल कुण्डलों से सुशोभित कपोलों वाले, देदीप्यमान शरीरधारी, प्रलंबमान पुष्पमाला पहनने वाले इन्द्र ने सौधर्मकल्प के सौधर्मावतंसक विमान में, सुधर्मा सभा में इन्द्रासन पर स्थित हो चौरासी हजार सामानिक देवों, तेंतीस त्रायस्त्रिंशक देवों, चार लोकपालों, परिवार सहित आठ अग्रमहिषियों, तीन परिषदाओं, सात अनीकों, सात अनीकाधिपतियों, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देवों तथा दूसरे बहुत से देव देवियों के सामने इस प्रकार कहा था, बोला था, प्रतिपादित किया था, प्ररूपित किया था, कि—

एवं खलु देवा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्क-मणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। नो खलु से सक्के केणइ देवेण वा दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ

हे देवो ! जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में स्थित चंपानगरी में श्रमणोपासक कामदेव पौषधशाला में पौषधव्रती हो, ब्रह्मचर्य का पालन करते हुए मणि-स्वर्णमाला, वर्णक, पुष्पमाला, विलेपन का त्याग करके, मूसलादि शस्त्रों को छोड़कर, एकाकी, अद्वितीय कुश के बिछौने पर अवस्थित हो श्रमण भगवान महावीर से अंगीकृत धर्म प्रज्ञप्ति के अनुरूप उपासनारत है। उसे कोई देव, दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग

चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामेत्तए वा ।'

अथवा गंधर्व निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित अथवा विपरिणमित नहीं कर सकता है ।'

तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे इहं हव्वमागए ।

तब मैं देवेन्द्र देवराज शक्र के इस कथन पर अविश्वास, अप्रतीति और अरुचि प्रकट करते हुए यहाँ शीघ्र आया ।

"तं अहो णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए" । तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए ।

'अहो देवानुप्रिय ! आपने जो ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम लब्ध, प्राप्त और अधिसमन्वित किया है, वह सब लब्ध, प्राप्त, अभिसमन्वित तथा देवानुप्रिय की ऋद्धि द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम को मैंने देखा ।

तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया ! नाइं भुज्जो करणयाए" त्ति कट्टु पायवडिए पंजलिउडे एयमट्ठं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, खामेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए ।

हे देवानुप्रिय ! मैं तुमसे क्षमा याचना करता हूं हे देवानुप्रिय ! मुझे क्षमा करो, हे देवानुप्रिय ! आप क्षमा करने में समर्थ हैं, फिर कभी ऐसा नहीं करूँगा, ऐसा कहकर पैरों में पड़ गया और हाथ जोड़कर इस बात के लिए बार-बार क्षमा याचना करने लगा, क्षमा-याचना करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा की ओर लौट गया ।

कामदेवस्स पडिमा-पारणं—

कामदेव का प्रतिमा पारण—

१२१. तए णं से कामदेवे समणोवासए निरुवसग्गमिति कट्टु पडिमं पारेइ ।

१२१. तत्पश्चात् उस श्रमणोपासक कामदेव ने अब उपसर्ग नहीं रहा, यह समझकर प्रतिमा का पारण किया ।

कामदेवकयं भगवओ पज्जुवासणं—

कामदेव कृत भगवान् की पर्युपासना—

१२२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

१२२ उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर —यावत्—जहाँ चम्पानगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पधारे, वहाँ पधारकर यथाप्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—'एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव चंपाए नयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।'

तत्पश्चात् वह कामदेव श्रमणोपासक यह बात सुनकर कि श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं, यहाँ पधारे हैं और यहीं चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में यथोचित अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं ।

तं सेयं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमित्ता चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ ।

अतएव मेरे लिए यह उचित है, कि श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करके वहाँ से वापस लौटकर पौषध का पारणा करूँ," इस प्रकार का उसने विचार किया, विचारकरके शुद्ध, सभा के योग्य, मांगलिक उत्तम वस्त्र पहने और जनसमुदाय को साथ लेकर अपने घर से निकलकर चम्पानगरी के मध्य भाग में से निकला, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था और उसमें भी जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहीं आया, वहाँ आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके त्रिविध पर्युपासना से पर्युपासना करने लगा ।

तए णं समणे भगवं महावीरे कामदेवस्स समणोवासयस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं-परिकहेइ ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने श्रमणोपासक कामदेव और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश सुनाया ।

भगवया कामदेवस्स उवसग्ग-वागरणं—

१२३. कामदेवा ! इ समणे भगवं महावीरे कामदेवं समणोवासयं एवं वयासी—

'से नूणं कामदेवा ! तुब्भं पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए ।

तए णं से देवे एगं महं दिव्वं पिसायरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय तुमं एवं वयासी—

'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अज्ज अहं इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसि-कुसुमप्पगासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव, जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तुमं तेणं दिव्वेणं पिसायरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरसि ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि तुमं एवं वयासी—'हंभो ! कामदेवा ! समणो-वासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज इमेणं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडिं करेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं तुमे तेणं दिव्वेणं पिसायरूवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरसि ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु तुमं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्प-गासेण खुरधारेण असिणा खंडाखंडिं करेइ ।

तए णं तुमे तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहसि खमसि तितिक्खसि अहियासेसि ।

भगवान द्वारा कामदेव के उपसर्ग का विवेचन—

१२३. हे कामदेव ! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने कामदेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे कामदेव ! मध्यरात्रि के समय एक देव तुम्हारे सामने प्रकट हुआ था ।

तदनन्तर उस देव ने एक विशालकाय देवमायाजन्य पिशाच-रूप की विकुर्वणा-रचना की थी, विकुर्वणा करके अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् विकरालरूप हो दांतों को कटकटाते हुए एक बड़ी नीलकमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल के समान नीली तीक्ष्ण धारवाली तलवार लेकर तुमसे इस प्रकार कहा—

'अरे ओ कामदेव श्रमणोपासक ! यदि तू इसी समय शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ेगा, नहीं तोड़ेगा तो मैं इसी समय इस नीलकमल भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी प्रभा वाली, तीक्ष्ण धार वाली तलवार से तेरे शरीर के टुकड़े-टुकड़े कर दूंगा, जिससे हे देवानु-प्रिय ! तू आर्तध्यान के वशीभूत होकर अति विकट दुःख भोगते हुए अकाल में ही जीवन रहित हो जायेगा—मर जायेगा ।

तब उस पिशाचरूपधारी देव के इस कथन को सुनकर भी तुम निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहे ।

तदनन्तर उस पिशाचरूप धारी देव ने तुम्हें निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर देखा, तो दूसरी बार भी और तीसरी बार भी तुमसे यह कहा—'अरे ओ कामदेव श्रमणोपासक—यावत्—यदि तुम इसी समय शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय इस नीलकमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी नीलप्रभा और तीक्ष्ण धार वाली तलवार से तुम्हारे शरीर के टुकड़े-टुकड़े करूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम दुर्निवार आर्तध्यान के वश होकर अकाल में ही जीवन से रहित हो जाओगे ।'

तब भी तुम उस पिशाचरूपधारी देव के दूसरी बार और तीसरी बार कहे गये शब्दों को सुनकर भी निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर रहे ।

तदनन्तर उस पिशाचरूपधारी देव ने तुम्हें निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर कटकटाते हुए ललाट में तीन बल पड़ी हुई भृकुटि तान कर नीलकमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी प्रभा वाली और तीक्ष्ण धार वाली तलवार से तुम्हारे टुकड़े-टुकड़े कर दिये ।

तब भी तुमने उस तीव्र—यावत्—वेदना को समभावपूर्वक सहन किया, क्षमा, तितिक्षापूर्वक झेला ।

तए णं से दिव्वे पिसायरूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ तुमं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं पिसायरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं हत्थिरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला, जेणेव तुमे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुमं एवं वयासी—

'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज सोंडाए गेण्हामि, गेण्हित्ता पोसहसालाओ नीणेमि, नीणेत्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं तुमे तेणं दिव्वेणं हत्थिरूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरसि ।

तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे तुमं अभीयं जाव पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि तुमं एवं वयासी—

'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अज्ज अहं सोंडाए गेण्हामि, गेण्हित्ता पोसहसालाओ नीणेमि, नीणित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहामि, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छामि, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं तुमे तेणं दिव्वेणं हत्थिरूवेणं दोच्चं पि एवं तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरसि ।

तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे तुमं सोंडाए गेण्हति, गेण्हित्ता उड्ढं वेहासं उव्विहइ, उव्विहित्ता तिक्खेहिं दंतमुसलेहिं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अहे धरणितलंसि तिक्खुत्तो पाएसु लोलेइ ।

इसके बाद भी उस पिशाचरूपधारी देव ने तुम्हें निर्भय—यावत्–पौषधोपवास में देखा, देखकर भी जब तुम्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित और विपरिणामित करने में समर्थ न हुआ, तो श्रांत, क्लान्त और खिन्न होकर धीरे धीरे पीछे हटा, हटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर देवमायाजन्य पिशाच-रूप का त्याग किया, त्याग करके एक विशालकाय देवमायाजन्य हाथी के रूप की रचना की और रचना करके जहाँ पौषधशाला थी, उसमें जहाँ तुम बैठे थे, वहाँ आया और वहाँ आकर तुमसे इस प्रकार कहा—

'अरे ओ कामदेव श्रमणोपासक ! यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय सूँड़ से पकड़ूँगा, पकड़कर पौषध-शाला से बाहर ले जाऊँगा, बाहर ले जाकर ऊपर आकाश में उछालूँगा, उछालकर फिर अपने तीखे और मूसल जैसे दाँतों पर झेलूँगा, झेलकर नीचे धरती पर तीन बार पैरों से रौंदूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान और विकट दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन रहित हो जाओगे—मर जाओगे ।

तदनन्तर उस हाथी रूप धारण करने वाले देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी तुम निर्भय—यावत्—उपासनारत रहे ।

तब उस हस्तीरूपधारी देव ने तुम्हें निर्भय भाव से—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी उसने तुमसे इस प्रकार कहा—

'अरे ओ श्रमणोपासक कामदेव !—यावत्—यदि तुम इसी समय शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं तुम्हें इसी समय ही सूँड़ से पकड़ लूँगा, पकड़कर पौषधशाला से बाहर ले जाऊँगा, बाहर ले जाकर ऊपर आकाश में उछालूँगा, उछालकर तीखे और मूसल जैसे दाँतों पर झेलूँगा, झेलकर पृथ्वी पर तीन बार पैरों से रौंदूँगा, जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान के वश होकर विकट पीड़ा से पीड़ित होते हुए अकाल में मरकर जीवन से रहित हो जाओगे ।

तदनन्तर उस हस्तीरूपधारी देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर भी तुम निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत रहे ।

तब हस्तीरूपधारी देव ने तुम्हें निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा तो देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित तथा विक-राल होते हुए, दाँतों को कटकटाते हुए तुम्हें सूँड़ से पकड़ा, पकड़ कर ऊपर आकाश में उछाला, उछालकर तीक्ष्ण और मूसल जैसे दाँतों पर झेला, झेलकर नीचे धरती पर तीन बार पैरों से रौंद डाला ।

तए णं तुमे तं उज्जलं -जाव- वेयणं सम्मं सहसि खमसि तितिक्खसि अहियासेसि ।

तुमने उस तीव्र—यावत्—असीम वेदना को समभावपूर्वक क्षमा और सहनशीलता के साथ सहन किया ।

तए णं से दिव्वे हत्थिरूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएति निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामित्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं हत्थिरूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं सप्परूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता जेणेव पोसहसाला, जेणेव तुमं, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुमं एवं वयासी—'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव- जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगताहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि, जहा णं तुमं देवाणुप्पिया ! अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तदनन्तर उस हस्तीरूपदेव ने तुम्हें निर्भय—यावत्—ध्यानमग्न देखा, कि वह तुम्हें जिन प्रवचन से किंचित मात्र भी विचलित, क्षुभित और विपरिणमित—विपरीत परिणाम युक्त नहीं कर सका है तो श्रांत, क्लान्त और खिन्न होता हुआ धीरे-धीरे पीछे हटा, पीछे हटकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर देवमाया जन्य हस्तीरूप का विसर्जन किया, विसर्जित करके एक विकराल सर्परूप की विकुर्वणा की, विकुर्वणा करके जहाँ पौषधशाला थी, जहाँ तुम स्थित थे, वहाँ आया, और आकर तुम से यह कहा—'अरे श्रमणोपासक कामदेव ! —यावत्—यदि तुम अभी इसी समय शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, भग्न नहीं करोगे तो मैं इसी समय सर-सर करते हुए तुम्हारे शरीर पर चढ़ूँगा, चढ़कर पिछली पूँछ की ओर से तीन बार तुम्हारी गर्दन को लपेटूँगा, लपेटकर तीखे, विषैले दाँतों से छाती पर डंक मारूँगा जिससे हे देवानुप्रिय ! तुम आर्तध्यान और विकट दुःख से दुःखी होते हुए असमय में ही जीवन रहित हो जाओगे ।

तए णं तुमे तेणं दिव्वेणं सप्परूवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव- विहरसि ।

तब भी तुम उस सर्प रूपधारी देव के इस कथन को सुनकर भयरहित—यावत्—धर्मध्यान में रत रहे ।

तए णं से दिव्वे सप्परूवे तुमं अभीयं -जाव- पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि तुमं एवं वयासी—'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! -जाव- जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अज्जेव अहं सरसरस्स कायं दुरुहामि, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेमि, वेढित्ता तिक्खाहिं विसपरिगताहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेमि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तदनन्तर उस सर्परूपधारी देव ने तुम्हें पूर्ववत् निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में लीन देखा, देखकर दूसरी बार और तीसरी बार भी तुमसे इस प्रकार कहा—'अरे ओ श्रमणोपासक कामदेव ! —यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और और पौषधोपवासों को नहीं तोड़ोगे तो इसी समय सर-सर करते हुए तुम्हारे शरीर पर चढ़ जाऊँगा, चढ़कर अपने शरीर के पिछले भाग से तीन बार तुम्हारी गर्दन में लपेटा लगाऊँगा, लपेटा लगाकर तीक्ष्ण, जहरीले दाँतों से तुम्हारी छाती में डस लूँगा, जिससे तुम दुर्निवार आर्तध्यान और पीड़ा के वश होकर अकाल में ही प्राणों से हाथ धो बैठोगे ।

तए णं तुमे तेणं दिव्वेणं सप्परूवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए -जाव- विहरसि ।

उस सर्परूपधारी देव के द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर भी तुम निर्भय—यावत्—साधना में रत रहे ।

तए णं से दिव्वे सप्परूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे तुम्हं सरसरस्स कायं दुरुहइ, दुरुहित्ता पच्छिमेणं भाएणं तिक्खुत्तो गीवं वेढेइ, वेढेत्ता तिक्खाहिं विसपरिगताहिं दाढाहिं उरंसि चेव निकुट्टेइ ।

तब उस सर्परूपधारी देव ने तुम्हें अभीत—यावत्—अपनी धर्म-साधना में रत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर वह दाँतों को कटकटाते हुए, सरसराहट करते हुए तुम्हारे शरीर पर चढ़ा, चढ़कर अपने पिछले भाग से तीन बार तुम्हारी गर्दन को लपेटा, लपेटकर अपने तीक्ष्ण और विषैले दाँतों से वक्षस्थल पर डंक मारा ।

तए णं तुमे तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहसि खमसि तितिक्खसि अहियासेसि ।

तए णं से दिव्वे सप्परूवे तुमं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता जाहे नो संचाएइ तुमं निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामेत्तए वा, ताहे संते तंते परितंते सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता दिव्वं सप्परूवं विप्पजहइ, विप्पजहित्ता एगं महं दिव्वं देवरूवं विउव्वइ, विउव्वित्ता पोसहसालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिए तुमं एवं वयासी—'हंभो ! कामदेवा ! समणोवासया ! धण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! पुण्णे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयत्थे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! कयलक्खणे सि णं तुमं देवाणुप्पिया ! सुलद्धे णं तव देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले, जस्स णं तव निग्गंथे पावयणे इमेयारूवा पडिवत्ती लद्धा पत्ता अभिसमण्णागया ।

एवं खलु देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया-जाव-एवं-माइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ, एवं परूवेइ 'एवं खलु देवा ! जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए कामदेवे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी उम्मुक्कमणि-सुवण्णे ववगयमाला-वण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ । नो खलु से सक्के केणइ देवेण वा दाणवेण वा जक्खेण वा रक्खसेण वा किन्नरेण वा किंपुरिसेण वा महोरगेण वा गंधव्वेण वा निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामेत्तए वा ।'

तए णं अहं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे इहं हव्वमागए । तं अहो णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए । तं दिट्ठा णं देवाणुप्पियाणं इड्ढी जुई जसो बलं वीरियं पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए । तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया ! नाइं भुज्जो करणयाए त्ति कट्टु पायवडिए पंजलिउडे एयमट्ठं भुज्जो-भुज्जो खामेइ, खामेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए ।

तब तुमने उस तीव्र—यावत्—वेदना को सहनशीलता, क्षमा एवं तितिक्षापूर्वक सहन किया ।

इसके बाद उस सर्परूपधारी देव ने पहले की तरह ही तुम्हें अभीत—यावत्—साधनारत देखा और वह तुम्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित और विपरीत परिणाम वाला नहीं कर सका है तो श्रांत, क्लान्त और निराश होता हुआ धीरे-धीरे नीचे उतरा—पीछे हटा, नीचे उतरकर पौषधशाला से बाहर निकला, निकलकर उस दैविक सर्परूप का त्याग किया और त्याग करके एक श्रेष्ठ दिव्य देव रूप बनाया, बनाकर पौषधशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर आकाश में अवस्थित हो, घुंघरुओं से युक्त पंचरंगे उत्तम वस्त्रों को धारण किये हुए वह तुमसे इस प्रकार बोला—'हे श्रमणोपासक कामदेव ! देवानुप्रिय ! तुम धन्य हो, हे देवानुप्रिय ! तुम पुण्यशाली हो, हे देवानुप्रिय ! तुम कृतकृत्य हो ! हे देवानुप्रिय ! तुमने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है कि जिससे तुम्हें निर्ग्रन्थ प्रवचन में इस प्रकार की प्रतिपत्ति (विश्वास) सुलब्ध, सुप्राप्त और समधिगत हुई है ।

हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि देवेन्द्र, देवराज शक्र—यावत्—इन्द्र ने इस प्रकार कहा था, प्रतिपादित किया था, प्ररूपित किया था कि हे देवो ! जम्बूद्वीप की भारतक्षेत्रवर्ती चम्पानगरी में कामदेव श्रमणोपासक पौषधशाला में पौषधव्रत स्वीकार करके ब्रह्मचर्यपूर्वक स्वर्ण-मणियों के आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्णक और विलेपन का त्याग किये हुए, मूसलादि शस्त्रों से रहित हो, एकाकी, अद्वितीय दर्भ-घास के बिछौने पर अवस्थित हो श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकृत धर्म-प्रज्ञप्ति के अनुरूप साधनारत है । उसको कोई, देव दानव, यक्ष, राक्षस, किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गंधर्व निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित और विपरिणमित करने में समर्थ नहीं है ।'

तब देवेन्द्र, देवराज शक्र के इस कथन पर श्रद्धा न करते हुए, उसकी प्रतीति न करते हुए और पसन्द न करते हुए मैं शीघ्र ही यहाँ आया । हे देवानुप्रिय ! आपको जो ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, उपलब्ध, प्राप्त और अभि-समन्वागत—अधिगत हुआ है, वह सब उपलब्ध, प्राप्त और अधिगत ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम मैंने देखा । हे देवानुप्रिय ! मैं क्षमा याचना करता हूं, हे देवानुप्रिय ! आप मुझे क्षमा करें, हे देवानुप्रिय ! आप क्षमा करने में समर्थ हैं, हे देवानुप्रिय ! मैं फिर कभी ऐसा नहीं करूंगा, ऐसा कहकर पैरों में पड़कर और हाथ जोड़कर इस कार्य के लिये उसने बार-बार क्षमा याचना की, क्षमा याचना करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया ।'

से नूणं कामदेवा ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि" ।

भगवया कामदेवस्स पसंसा—

१२४. अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे बहवे समणे निग्गंथे य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—"जइ ताव अज्जो ! समणोवासगा गिहिणो गिहमज्झावसंता दिव्व-माणुस-तिरिक्ख-जोणिए उवसग्गे सम्मं सहंति खमंति तितिक्खंति अहियासेंति, सक्का पुणाइं अज्जो ! समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं दिव्व-माणुस-तिरिक्खजोणिए उवसग्गे सम्मं सहित्तए खमित्तए तितिक्खित्तए अहियासित्तए ।"

तओ ते बहवे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स तह त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति ।

कामदेवस्स पडिगमणं—

१२५. तए णं से कामदेवे समणोवासए हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए समणं भगवं महावीरं पसिणाइं पुच्छइ, अट्ठमादियइ, समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए ।

भगवओ जणवयविहारो—

१२६. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ चंपाओ नयरीओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

कामदेवस्स उवासगपडिमा-पडिवत्ती—

१२७. तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ ।

तए णं से कामदेवे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं,

'तो हे कामदेव ! क्या यह कथन सत्य है ?' भगवान महावीर ने श्रमणोपासक कामदेव से पूछा ।

प्रत्युत्तर में कामदेव ने कहा—'हाँ भगवन् ! ऐसा ही हुआ है ।'

भगवान द्वारा कामदेव की प्रशंसा—

१२४. 'हे आर्यो !' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने उन बहुत से निर्ग्रन्थ श्रमणों और श्रमणियों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! यदि श्रमणोपासक गृहस्थ भी गृहस्थ में निवास करते हुए देव, मनुष्य, और तिर्यंच सम्बन्धी उपसर्गों को समभावपूर्वक सहन करते हैं, क्षमा और तितिक्षा सहित होकर दृढ़ता से सहन करते हैं—झेलते हैं तो हे आर्यो ! द्वादशांगरूप गणिपिटक का अध्ययन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा देवकृत, मनुष्यकृत और तिर्यंचकृत उपसर्गों को सम्यक् प्रकार से सहन करना, क्षमा और तितिक्षा भाव से झेलना शक्य ही है ।'

उन बहुत से श्रमण निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थनियों ने 'ऐसा ही है' कहकर श्रमण भगवान महावीर के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

कामदेव का प्रतिगमन—

१२५. तदनन्तर उस कामदेव श्रमणोपासक ने हर्षित, संतुष्ट, आनन्दितचित्त, अनुरागमना, परमसौमनस्क और हर्षातिरेक से विकसित हृदय होते हुए श्रमण भगवान महावीर से प्रश्न पूछे, अर्थ—आशय को ग्रहण—स्वीकार किया और फिर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा की ओर लौट गया ।

भगवान का जनपद में विहार—

१२६. तदनन्तर किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर चम्पा-नगरी से निकले और निकलकर बाहरी जनपदों में विचरने लगे ।

कामदेव द्वारा उपासक प्रतिमा-ग्रहण—

१२७. इसके अनन्तर वह श्रमणोपासक कामदेव पहली उपासक प्रतिमा को स्वीकार करके विचरने लगा ।

उस कामदेव श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा का सूत्र के अनुसार, कल्प के अनुसार, मार्ग के अनुसार, यथार्थ तत्त्व के अनुसार सम्यक् प्रकार से शरीर से स्वीकार किया, पालन किया, निरतिचार शोधन किया, पूर्ण किया, कीर्तन किया और आराधन किया ।

तदनन्तर उस श्रमणोपासक कामदेव ने दूसरी उपासक प्रतिमा को तथा इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छट्ठी,

एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा का यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग सम्यक् प्रकार से शरीर द्वारा ग्रहण, पालन, शोधन, तीरण, कीर्तन और आराधन किया।

तए णं से कामदेवे समणोवासए इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

इसके अनन्तर वह कामदेव श्रमणोपासक यह और इस प्रकार के उदार-प्रधान, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को स्वीकार करने से शुष्क, रुक्ष, निर्मांस, अस्थिचर्मावृत, किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों रूप शरीर वाला हो गया।

कामदेवस्स अणसणं—

१२८. तए णं तस्स कामदेवस्स समणोवासयस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडिया-भूए किसे धमणिसंतए जाए तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइ-क्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए' एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

कामदेव का अनशन—

१२८. तदनन्तर किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्माराधना में जागरण करते हुए उस श्रमणोपासक कामदेव को यह आध्यात्मिक चिंतित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि—"मैं इस और इस प्रकार के उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को स्वीकार करने से शुष्क, रुक्ष, मांसरहित, अस्थि-चर्मावृत्त, किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों जैसे शरीर वाला हो गया हूं, फिर भी अभी मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति और संवेग भाव विद्यमान हैं, अतएव जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेग है—यावत्—मेरे धर्मा-चार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान महावीर विद्यमान हैं, तब मुझे यह श्रेयरूप है कि कल रात्रि के प्रभात-रूप होने—यावत्—सूर्योदय तथा जाज्वल्यमान तेज के साथ सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणांतिक संलेखना को अंगीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, जीवन मरण की आकांक्षा न करते हुये विचरना चाहिये," इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रजनी के प्रभात-रूप होने पर—यावत्—सूर्य का उदय होने एवं सहस्र रश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज के साथ प्रकाशित होने पर अप-श्चिम-अन्तिम मारणांतिक संलेखना को अंगीकार करके, भक्त-पान का त्याग करके जीवन मरण की वांछा न करते हुये अपना समय व्यतीत करने लगा।

कामदेवस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती, तयणंतरं सिद्धि-गमणनिरूवणं च—

१२९. तए णं से कामदेवे समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते,

कामदेव का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति तदनन्तर सिद्ध-गति निरूपण—

१२९. तदनन्तर वह श्रमणोपासक कामदेव अनेक शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोवासों द्वारा आत्मा को भावित करके, बीस वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करके, ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का सम्यक् प्रकार से पालन करके, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को परिमार्जित—शुद्ध करके, साठ भोजनों का अनशन द्वारा त्याग करके, आलोचना प्रति-क्रमण करके मरण समय आने पर समाधिपूर्वक मरण करके

कालमासे कालं किच्चा, सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तर-पुरत्थिमे णं अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। कामदेवस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

"से णं भंते! कामदेवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?"

"गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।"

—उवासगदसाओ अ० २

सौधर्मकल्प में सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तर-पूर्व दिग्भाग—ईशान दिशा में स्थित अरुणाभविमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ पर किसी-किसी देव की चार पल्योपम की स्थिति होती है। कामदेव देव की भी चार पल्योपम की स्थिति हुई।

भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा—'हे भदन्त! आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर वह कामदेव उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?'

श्रमण भगवान महावीर ने कहा—'हे गौतम! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और संपूर्ण दुःखों का अन्त करेगा।'

॥ कामदेव गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

७. चुलणीपियगाहावइकहाणगं

वाराणसीए चुलणीपिया गाहावई—

१३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया।

तत्थ णं वाणारसीए नयरीए चुलणीपिता नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं चुलणीपियस्स गाहावइस्स अट्ठ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं चुलणीपिता गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था।

तस्स णं चुलणीपियस्स गाहावइस्स सामा नामं भारिया होत्था—अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

७. चुलनीपिता गाथापति कथानक

वाराणसी का चुलनीपिता गाथापति—

१३०. उस काल और उस समय में वाराणसी नाम की नगरी थी। कोष्ठक नामक चैत्य था। वहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था।

उस वाराणसी नगरी में चुलनीपिता नामक गाथापति निवास करता था, जो धनाढ्य था—यावत्—किसी से भी पराभव प्राप्त नहीं करने वाला था, अर्थात् प्रभावशाली था।

उस चुलनीपिता गाथापति के कोष में आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें (निधान) थीं, आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार-व्यवसाय में लगी थीं और आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें घर के साधन सामग्री में लगी थीं। उसके पास प्रत्येक दस-दस सहस्र गायों वाले आठ व्रज-गोकुल थे।

उस गाथापति चुलनीपिता से बहुत से राजा आदि अपने-अपने कार्यों के लिये पूछते थे, परामर्श करते थे और अपने कुटुम्ब परिवार का भी आधार-स्तम्भ—मुखिया—यावत्—सर्व कार्यों का निर्देशक-प्रेरक था।

उस चुलनीपिता गाथापति की भार्या का नाम श्यामा था, जो शुभ लक्षणों वाली परिपूर्ण पंचेन्द्रियों एवं शरीर वाली थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करती थी।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

१३१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव वाणारसी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

भगवान महावीर का समवसरण—

१३१. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर—यावत्—जहाँ वाराणसी नगरी थी, जहाँ कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पधारे, पधार कर यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को संस्कारित करते हुए विचरने लगे।

दर्शन करके परिषदा निकली।

कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा भी दर्शन करने निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

चुलणीपियस्स गाहावइस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

१३२. तए णं से चुलणीपिया गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव वाणारसीए नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।" तं महप्फलं खलु भो! देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं वाणारसिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

चुलनीपिता गाथापति का समवसरण में गमन और धर्म-श्रवण—

१३२. तत्पश्चात् वह चुलनीपिता गाथापति इस समाचार को सुनकर कि—"पूर्वानुपूर्वि के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए श्रमण भगवान महावीर यहाँ आये हैं, प्राप्त हुए हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं और वाराणसी नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथोचित अवग्रह लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण कर रहे हैं। हे देवानुप्रियो! जब तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम और गौत्र का सुनना ही महाफलदायक है तो फिर हे आयुष्मन्! उनके सामने जाने, उनको वन्दन नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के सुफल का तो कहना ही क्या है? धर्माचार्य के एक सुवचन का सुनना ही कल्याणप्रद है तब उनसे विपुल अर्थ के ग्रहण करने के फल के लिये तो कहना ही क्या है? अतएव मैं जाऊँ और उन देवानुप्रिय श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार सम्मान करूँ एवं उन कल्याणरूप मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप की पर्युपासना करूँ। इस प्रकार का विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया और कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके शुद्ध, अवसर के अनुरूप मांगलिक उत्तम वस्त्र पहने और अल्प किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था और उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर स्वामी विराजमान थे वहाँ आया, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके यथायोग्य स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए अपने हाथ जोड़ विनयपूर्वक पर्युपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे चुलणीपियस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ।

परिसा पडिगया, राया य गए।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने गाथापति चुलनीपिता और उस विशाल जन-परिषदा को—यावत्—धर्मकथा कही।

परिषदा लौट गयी और राजा भी चला गया।

चुलणीपियस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

१३३. तए णं से चुलणीपिता गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स

चुलनीपिता का गृहीधर्म प्रतिपत्ति—

१३३. इसके अनन्तर वह चुलनीपिता गाथापति श्रमण भगवान

अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छिय-मेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह। जहा णं देवाणुप्पियाण अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-वइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

महावीर से धर्मकथा सुनकर और हृदय में धारण कर हर्षित, सन्तुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम सौमनस्क—प्रसन्न और हर्षातिरेक से विकसित हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, उठकर श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ, हे भदन्त ! प्रतीति रखता हूँ, हे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचता है—पसन्द है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का आदर करता हूँ, हे भदन्त ! वह ऐसा ही है, हे भगवन् ! वह तथ्यरूप है, हे भगवन् ! वह यथार्थ है, हे भगवन् ! वह असंदिग्ध है—उसके बारे में शंका नहीं की जा सकती है, हे भगवन् ! वह अभिलषणीय है, हे भगवन् ! वह अभीप्सनीय है, हे भगवन् ! वह अभिलषणीय और अभीप्सनीय है। वह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं। जैसे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि, सेनापति, सार्थवाह आदि आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर, गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, उसी तरह तो मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर आनगारिक दीक्षा अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूँ, किन्तु आप देवानुप्रिय से पांच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

श्रमण भगवान महावीर ने उत्तर दिया—'हे देवानुप्रिय ! जैसा तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब-प्रमाद मत करो।'

तए णं से चुलणीपिता गाहावई समणस्स भगवओ महा-वीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

तत्पश्चात् उस चुलनीपिता गाथापति ने श्रमण भगवान महावीर से श्रावक धर्म अंगीकार किया।

भगवओ जणवयविहारो—

१३४. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कयाइ वाणारसीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान का जनपद विहार—

१३४. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर वारा-णसी नगरी और कोष्ठक चैत्य से निकले और निकलकर बाहरी जनपदों—देशों में विचरने लगे।

चुलणीपियस्स समणोवासग-चरिया—

१३५. तए णं से चुलणीपिता समणोवासए जाए—अभिगयजीवा-जीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडि-हारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

चुलनीपिता की श्रमणोपासक चर्या—

१३५. तदनन्तर वह चुलनीपिता जीवाजीव आदि तत्त्वों का जानकार श्रमणोपासक हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन, औषधि, भैषज और प्रतिहारी पीठ, फलक, शैय, आसन आदि से प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगा।

सामाए समणोवासिया-चरिया—

१३६. तए णं सा सामा भारिया समणोवासिया जाया—अभि-गयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

श्यामा की श्रमणोपासिका चर्या—

१३६. तदनन्तर वह श्यामा भार्या जीवाजीव तत्त्वों की जानकार श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह—पात्र आदि कंबल, पादप्रोंछन, औषधि, भैषज एवं पडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विचरण करने लगी।

चुलणीपियस्स धम्मजागरिया गिहिववहारचाओ य—

१३७. तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वोइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।[1]

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता वाणारसिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

चुलनीपिता की धर्म जागरणा और गृही व्यवहार त्याग—

१३७. तत्पश्चात् अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों की अनुपालना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चुलनीपिता के चौदह वर्ष व्यतीत हुए और पंद्रहवां वर्ष चल रहा था, तो किसी एक समय मध्य रात्रि में धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि वाराणसी नगरी में बहुत से राजा आदि अपने-अपने कार्यों के लिये मुझसे पूछते हैं, परामर्श करते हैं—यावत्—स्वयं अपने कुटुम्ब परिवार का आधार स्तम्भ—यावत्—सभी कार्यों का निर्देशक हूँ, इसलिये इस विक्षेप के कारण मैं श्रमण भगवान महावीर से अंगीकृत धर्म प्रज्ञप्ति के अनुरूप प्रवृत्ति करने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ।

तदनन्तर उस श्रमणोपासक चुलनीपिता ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों और परिचित जनों से पूछा, पूछकर अपने घर से निकला, निकलकर वाराणसी नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पौषधशाला को बुहारा-पोंछा, बुहार कर उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ-घास का आसन बिछाया, बिछाकर उस पर बैठा, बैठकर पौषधशाला में पौषध व्रत स्वीकार करके ब्रह्मचर्यपूर्वक मणि-स्वर्ण के आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्णक, विलेपन का त्याग कर, मूसल आदि शस्त्रों को छोड़कर एकाकी, अद्वितीय हो दर्भ संस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान महावीर के पास ग्रहण की हुई धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

चुलणीपियस्स देवकयनियजेट्ठपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१३८. तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए।

तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुम-प्पगासं खुरधारं असिं गहाय चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—

'हंभो चुलणीपिता! समणोवासया! अप्पत्थियपत्थिया! -जाव-[2] न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव

चुलनीपिता द्वारा देवकृत निज ज्येष्ठपुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

१३८. तदनन्तर मध्यरात्रि के समय उस चुलनीपिता श्रमणोपासक के समक्ष एक देव प्रकट हुआ।

तत्पश्चात् उस देव ने एक बड़ी नीलकमल, भैंस के सींग और अलसी के फूल जैसी नीली प्रभा वाली तीक्ष्ण तलवार हाथ में लेकर चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'अरे ओ श्रमणोपासक चुलनीपिता! अरे ओ अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाला!—यावत्—पौषधोपवासों को नहीं तोड़ेगा, भग्न नहीं करेगा तो मैं इसी समय तेरे ज्येष्ठपुत्र को घर से निकाल लाऊँगा, निकालकर तेरे सामने उसे मारूँगा, मारकर उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल से भरी कड़ाही में तलूँगा, पकाऊँगा, पकाकर उसके मांस और रक्त से

---

१. एत्थसंबंधाणुसंधाणं आणंदगाहावइकहाणयाओ णेयं।
२. 'जाव' सद्दनिद्दिट्ठं अणुसंधाणं कामदेवकहाणगाओ णेयं।

गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ । तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुलणीपियस्स समणोवासयस्स जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

चुलणीपियस्स देवकयनियमज्झिमपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१३६. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! चुलणीपिता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता-जाव-(सु. १३८) जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-(सु. १३६) जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तेरे शरीर को सींचूँगा, जिससे तू आर्तध्यान के वश हो, दुःख से पीड़ित होता हुआ अकाल में ही जीवन से पृथक् हो जायेगा —जान गँवा बैठेगा ।

तब उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी वह श्रमणोपासक चुलनीपिता निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत रहा । उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा, तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी श्रमणोपासक चुलनीपिता से इस प्रकार कहा—'अरे चुलनीपिता श्रमणोपासक ! यदि तुम इसी समय शील—यावत्—पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे तो अपनी जान गँवा बैठोगे ।'

तब भी वह चुलनीपिता श्रमणोपासक उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी कहे गये शब्दों को सुनकर भी निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहा ।

तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को अभीत —यावत्—उपासनारत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को कटकटाते हुए चुलनीपिता के ज्येष्ठपुत्र को घर से निकाला, निकालकर उसके सामने मारा, मारकर माँस के टुकड़े-टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल से भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर चुलनीपिता श्रमणोपासक के शरीर को माँस और रुधिर से सींचा ।

उस श्रमणोपासक चुलनीपिता ने उस तीव्र, विपुल, कर्कश-कठोर, प्रगाढ़, प्रचंड, दुस्सह वेदना को क्षमा, तितिक्षा और सहिष्णुतापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

चुलनीपिता का देवकृत निज मध्यमपुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

१३६. तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—ध्यानमग्न देखा, देखकर श्रमणोपासक चुलनीपिता से इस प्रकार कहा—'अरे ओ चुलनीपिता श्रमणोपासक ! यदि तू अभी शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ेगा, नहीं तोड़ेगा तो मैं इसी समय तेरे मंझले पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तेरे सामने मारूँगा, मारकर—यावत्—(सू० १३८ के अनुसार) जीवन रहित हो जाओगे ।'

उस देव के इस कथन को सुनकर भी चुलनीपिता श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—अपनी साधना में रत रहा ।

तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय —यावत्—धर्मध्यान में रत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे ओरे चुलनीपिता श्रमणोपासक !—यावत्—(सू० १३६ के अनुसार) जीवन रहित हो जायेगा ।'

तए णं से चुलणीपिया समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ। तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुलणीपियस्स समणोवासयस्स मज्झिमं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ।

उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर भी वह चुलनीपिता श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्म साधना में लीन रहा। तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—धर्मध्यान मग्न देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को कटकटाते हुये चुलनीपिता श्रमणोपासक के मंझले पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर उसके मांस के टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल से भरी कड़ाही में तला, तलकर चुलनीपिता श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रक्त सींचा—छिड़का।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

उस चुलनीपिता श्रमणोपासक ने वह तीव्र—यावत्—वेदना को समता, क्षमा, तितिक्षा और सहिष्णुतापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया।

चुलणीपियस्स देवकयनियकणीयसपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

चुलनीपिता द्वारा देवकृत निज कनिष्ठ पुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभाव पूर्वक सहन—

१४०. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! चुलणीपिता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

१४०. तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—धर्मध्यान में मग्न देखा, देखकर चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे चुलनीपिता श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पोषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं भंग करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठपुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसका घात करूँगा, घात करके उसके मांस के टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तलूँगा, तलकर तुम्हारे शरीर पर उस मांस और रक्त को सींचूँगा, जिससे तुम दुर्निवार आर्तध्यान और दुःख से पीड़ित होते हुये अकाल में ही जीवन रहित हो जाओगे—अपने प्राणों को गंवा दोगे।'

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

तब वह चुलनीपिता श्रमणोपासक उस देव के कथन को सुनकर अभीत—यावत्—साधनारत रहा।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! चुलणीपिता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—साधना निरत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी श्रमणोपासक चुलनीपिता से इस प्रकार कहा—'अरे श्रमणोपासक चुलनीपिता ! यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पोषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, उनको भंग नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसे मारूँगा, मारकर उसके मांस के टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रुधिर से सींचूँगा-छिड़कूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान के वश होकर दुर्निवार दुःख से पीड़ित होते हुए अकाल में जीवन का नाश कर डालोगे।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव के दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार से कहे जाने पर वह चुलनीपिता श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहा ।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुलणीपियस्स समणोवासयस्स कणीयसं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुलणीपियस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तदनन्तर उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल हो दाँतों को कटकटाते हुए चुलनीपिता श्रमणोपासक के कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर मांस के टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर चुलनीपिता श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रक्त को छिटका-सींचा ।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तब भी उस चुलनीपिता श्रमणोपासक ने वह तीव्र—यावत्—दुस्सह वेदना को क्षमा, तितिक्षा, और समभावपूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन की ।

चुलणीपियस्स देवकहियनियमायाभद्दा-मारणवयण-सवण उवसग्गस्स असहणे कोलाहलकरणं, मायाविकुव्विय-देवस्स आगासे उप्पयणं च—

चुलनीपिता का देव कथित निज माता भद्रा मारण-वचन श्रवणरूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और मायाविकुर्वित देव का आकाश में उड़ना—

१४१. तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चउत्थं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—

१४१. तदनन्तर उस देव ने श्रमणोपासक चुलनीपिता को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर चौथी बार भी उसने चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

"हंभो ! चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जा इमा माया भद्दा सत्थवाही देवतं गुरुजणणी दुक्कर-दुक्करकारिया तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

'अरे श्रमणोपासक चुलनीपिता ! यदि तुम—यावत्—पोषधोपवासों को नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे लिए देवरूप और गुरु सदृश पूजनीय, तुम्हारा लालन-पालन आदि रूप दुष्कर कार्य करने वाली माता भद्रा सार्थवाही को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा, मारकर उसके मांस के लोथड़े करूँगा, करके तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रुधिर छिड़कूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान के वश होकर दुस्सह वेदना से पीड़ित होते हुए असमय में मरण करके जीवन रहित हो जाओगे ।'

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी वह श्रमणोपासक चुलनीपिता निर्भय—यावत्—पूर्ववत् धर्मध्यान में स्थिर रहा ।

तए णं से देवे चुलणीपियं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! चुलणीपिता ! समणोवासया ! -जाव-ववरोविज्जसि ।'

तत्पश्चात् उस देव ने चुलनीपिता श्रमणोपासक को पूर्ववत् निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर पुनः दूसरी और तीसरी बार भी चुलनीपिता श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे चुलनीपिता श्रमणोपासक !—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे ।'

तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे

तदनन्तर उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार इस प्रकार कहे जाने पर उस चुलनीपिता श्रमणोपासक को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न

अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरति, जे णं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाण-भरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जा वि य णं इमा ममं माया भद्दा सत्थवाही देवत गुरु-जणणी दुक्कर-दुक्करकारिया, तं पि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए—तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए" त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे उप्पइए, तेणं च खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

हुआ कि—अहो ! यह पुरुष बड़ा अनार्य-अधम और अनार्य बुद्धि-नीच बुद्धि वाला है, निकृष्ट पाप कर्मों का करने वाला है, जिसने पहले मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से निकाला, निकालकर मेरे सामने उसकी हत्या की, हत्या करके उसके मांस के टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर उसके मांस और रक्त को मेरे शरीर पर छिड़का। तत्पश्चात् मेरे मंझले पुत्र को भी घर से लाया, लाकर मेरे सामने मार डाला, मारकर उसके मांस के टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर मेरे शरीर पर मांस और रक्त को छिड़का, इसके बाद मेरे कनिष्ठ पुत्र को भी घर से उठा लाया, लाकर मेरे सामने उसकी हत्या की, हत्या करके उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े किये, फिर उन टुकड़ों को तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर मेरे शरीर पर मांस और रक्त को छिड़का और अब देव एवं गुरु के समान पूजनीय दुष्कर से भी दुष्कर क्रियाओं को करने वाली मेरी माता भद्रा सार्थवाही को भी घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता है—इसलिए यही अच्छा है कि इस पुरुष को पकड़ लूँ—ऐसा विचार कर वह पकड़ने को दौड़ा, किन्तु वह देव आकाश में उड़ गया और चुलनीपिता के हाथ में खंभा आ गया और वह उच्च स्वर में कोलाहल करने लगा—जोर-जोर से पुकारने लगा—शोर करने लगा।

भद्दाए पसिणो—

१४२. तए णं सा भद्दा सत्थवाही तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव चुलणीपिया समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—"किण्णं पुत्ता ! तुमे महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ?"

भद्रा का प्रश्न—

१४२. तदनन्तर वह भद्रा सार्थवाही उस कोलाहल को सुनकर और समझकर जहाँ चुलनीपिता श्रमणोपासक था, वहाँ आई, वहाँ आकर चुलनीपिता श्रमणोपासक से बोली—'पुत्र ! तुम जोर-जोर से क्यों चिल्लाये ?'

चुलणीपियस्स उत्तरं—

१४३. तए णं से चुलणीपिया समणोवासए अम्मयं भद्दं सत्थवाहिं एवं वयासी—"एवं खलु अम्मो ! न याणामि के वि पुरिसे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुर-धारं असिं गहाय ममं एवं वयासी—

"हंभो ! चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं जाव-ववरोविज्जसि।'

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता ममं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—हंभो चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-ववरोविज्जसि।

चुलनीपिता का उत्तर—

१४३. तब चुलनीपिता श्रमणोपासक ने माता भद्रा सार्थवाही से इस प्रकार कहा—बात यह है कि हे अम्मा-माता ! मैं नहीं जानता कि वह पुरुष कौन था कि जिसने अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए एक बड़ी, नीलकमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी नीली प्रभा वाली तीक्ष्ण तलवार लेकर मुझे कहा—

'अरे श्रमणोपासक चुलनीपिता !—यावत्—यदि तुम—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे।'

उस पुरुष के द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर भी मैं निर्भय—यावत्—अपनी उपासना में निरत रहा।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—धर्म ध्यान में निरत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी मुझसे कहा—'अरे चुलनीपिता श्रमणोपासक !—यावत्—मार दिये जाओगे।'

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ममं जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता तओ मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तए णं अहं तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

एवं मज्झिमं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

एवं कणीयसं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता, ममं चउत्थं पि एवं वयासी—हंभो ! चुलणीपिया ! समणोवासया ! -जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जा इमा माया देवतं गुरुजणणी-जाव-ववरोविज्जसि ।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं ममं एवं वयासी—हंभो ! चुलणीपिया ! समणोवासया ! जाव-ववरोविज्जसि ।

तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए-जाव-समायरति, जे णं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ-जाव-आइंचइ, तुब्भे वि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए" त्ति कट्टु उद्धाविए । से वि य आगासे उप्पइए मए वि य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ।'

तदनन्तर मैं उस पुरुष द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी ऐसा कहे जाने पर भी निर्भय—यावत्—अपनी धर्म-साधना में रत रहा ।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे अभीत—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और विकराल हो दाँतों को मिसमिसाते हुए वह ज्येष्ठ पुत्र को घर से लेकर आया, आकर मेरे सामने उसको मारा, मारकर उसके मांस के टुकड़े-टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर पर मांस और रुधिर छिड़का ।

तब मैंने उस अत्यन्त तीव्र—यावत्—वेदना को समभावपूर्वक सहन किया और क्षमा, तितिक्षा के साथ अपनी साधना में लीन रहा ।

इसी प्रकार मंझले पुत्र के लिये भी किया—यावत्—उस वेदना को सहनशीलता, क्षमा और तितिक्षापूर्वक सहन किया ।

इसी प्रकार कनिष्ठ पुत्र के लिये भी किया—यावत्—उस तीव्र वेदना को शांत रहकर क्षमा और तितिक्षापूर्वक सहन किया ।

ऐसा करने के बाद भी जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—अपने धर्म ध्यान में निरत देखा तो चौथी बार मुझसे इस प्रकार कहा—'अरे चुलनीपिता श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम अपने शील आदि को खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय देव और गुरु जैसी पूजनीय तुम्हारी माता को लाऊँगा—यावत्—मर जायेगा ।'

तदनन्तर मैं उस पुरुष के इस कथन को सुनकर भी निर्भय—यावत्—धर्म ध्यान में रत रहा ।

तब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—साधना में रत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा—'अरे श्रमणोपासक चुलनीपिता !—यावत्—प्राणों से हाथ धो बैठोगे ।

तदनन्तर उस पुरुष द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार से कहे जाने पर मुझे यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—अरे इस अधम पुरुष ने—यावत्—पाप-कर्म किये हैं कि पहले तो मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लेकर आया—यावत्—मांस शोणित छिड़का, अब तुमको भी घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता था, इसलिए मैंने यह उचित समझा कि उस पुरुष को पकड़ लूँ—ऐसा विचार कर मैं उसे पकड़ने को उठा-दौड़ा । लेकिन वह तो आकाश में उड़ गया और पकड़ने के लिए फैलाये हुए हाथों में खंभा आ गया, जिससे मैंने जोर-जोर से शोर मचाया ।

चुलणीपियस्स पायच्छित्तकरणं—

१४४. तए णं सा भद्दा सत्थवाही चुलणीपियं समणोवासयं एवं वयासी—"नो खलु केइ पुरिसे तव जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव मज्झिमपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव कणीयसंपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, एस णं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ, एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे। तं णं तुमं इयाणिं भग्गवए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं पुत्ता! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि।"

चुलनीपिता का प्रायश्चित्त करना—

१४४. तदनन्तर भद्रा सार्थवाही ने श्रमणोपासक चुलनीपिता से इस प्रकार कहा—"न तो किसी पुरुष ने तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठाया है और न उठाकर तुम्हारे आगे मारा है न तुम्हारे मंझले पुत्र को घर से लाया है और न तुम्हारे आगे उसे मारा है और न किसी पुरुष ने तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठाया है और न तुम्हारे सामने उसका वध किया है। यह तो किसी पुरुष ने तुम पर उपसर्ग किया है, यह तो तुमने मिथ्या-कल्पित घटना (दृश्य) देखी है। जिससे तुम्हारा व्रत, नियम और पौषध खंडित हो गया। इसलिए हे पुत्र! तुम इस स्थान—व्रत भंग होने की आलोचना करो, प्रतिक्रमण करो, निन्दा करो, गर्हा करो, इससे निवृत्त होओ, इस अकार्य की शुद्धि करो, यथोचित प्रायश्चित्त करने की तैयारी करो और तदर्थ तपःक्रिया स्वीकार करो।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए अम्माए भद्दाए सत्थवाहीए 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहेइ अकरणयाए अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ।

तदनन्तर चुलनीपिता श्रमणोपासक ने 'आप ठीक कहती हैं' कहकर माता भद्रा सार्थवाही की आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया। स्वीकार करके उस स्थान—व्रत भंगरूप कार्य की आलोचना की, प्रतिक्रमण की, निन्दा की, गर्हा की, इसको विप्रोटित किया, और इस अकरणीय कार्य की विशुद्धि के लिए यथोचित प्रायश्चित्त करने हेतु तत्पर होकर तपःकर्म स्वीकार किया।

चुलणीपियस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

१४५. तए णं से चुलणीपिता समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

चुलनीपिता का उपासक प्रतिमाओं को ग्रहण करना—

१४५. तदनन्तर चुलनीपिता श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा को अंगीकार किया।

उस पहली प्रतिमा को चुलनीपिता श्रमणोपासक ने यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातत्त्व अर्थात् शास्त्र, आचार मर्यादा, विधि और सिद्धान्त के अनुसार सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, पालन किया, शोधित किया अथवा शोभित किया, तीर्णपूर्ण किया, कीर्तित किया, आराधित किया।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तदनन्तर उस चुलनीपिता श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को आराधित किया तथा इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को यथासूत्र, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, पालन किया, शोभित किया, पूर्ण किया, कीर्तित—अभिनन्दित किया और आराधित किया।

तए णं से चुलणीपिता समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

इस तपःकर्म से वह चुलनीपिता श्रमणोपासक उस उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, मांसरहितअवशिष्ट अस्थि और चर्म, किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों रूप शरीर वाला हो गया।

चुलणीपियस्स अणसणं—

१४६. तए णं तस्स चुलणीपियस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए, तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बल वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए'।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिइ कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

चुलनीपिता का अनशन—

१४६. तदनन्तर किसी एक दिन मध्यरात्रि में धर्म जागरणा से जागरण करते हुए उस चुलनीपिता श्रमणोपासक को यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस और इस प्रकार के उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि और चर्ममात्र, किटिकिटिकाभूत, कृश और लुहार की धौंकनी जैसा शरीर वाला हो गया हूँ, किन्तु अभी मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति, और संवेग विद्यमान है। इसलिए जब तक मुझमें उत्थान-उत्साह, कर्म-प्रवृत्ति, बल वीर्य, पुरुषाकार-पुरुषार्थ, पराक्रम-सामर्थ्य, श्रद्धा, धृति संवेग—मुमुक्षभाव है—यावत्—धर्माचार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्य का उदय एवं सहस्ररश्मि दिनकर को जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को अंगीकार करके आहार पानी का त्याग करके, जीवन-मरण की आकांक्षा न करते हुए अपना समय बिताऊँ—

ऐसा विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणांतिक संलेखना झूसणा को अंगीकार करके, आहार पानी का त्याग करके मरण की आकांक्षा न करते हुए विचरण करने लगा।

चुलणीपियस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती, तयणंतरं च सिद्धिगमणनिरूवणं—

१४७ तए णं से चुलणीपिता समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइयपडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महाविमाणस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं अरुणप्पभे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—उवासगदसाओ अ० ३

चुलनीपिता का समाधिमरण, देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

१४७. तदनन्तर वह चुलनीपिता श्रमणोपासक अनेकविध शील-व्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पोषधोपवासों से आत्मा को संस्कारित कर, बीस वर्ष श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, इग्यारह उपासक प्रतिमाओं को ग्रहण कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर, साठ भोजनों को अनशन द्वारा त्याग कर, आलोचना, प्रतिक्रमण और समाधिभाव पूर्वक मरण समय में मरण करके सौधर्म कल्प में सौधर्मावतंसक महाविमान के उत्तर पूर्व दिग्भाग ईशान कोण में स्थित अरुणप्रभ विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी चार पल्योपम की स्थिति हुई। तदनन्तर वहाँ से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा और संपूर्ण दुःखों का अन्त करेगा।

॥ चुलनीपिता गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

८. सुरादेवगाहावइकहाणगं

वाराणसीए सुरादेवे गाहावई—

१४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया।

तत्थ णं वाणारसीए नयरीए सुरादेवे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं सुरादेवस्स गाहावइस्स छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, छ व्वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं सुरादेवे गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्ज-वड्ढावए यावि होत्था।

तस्स णं सुरादेवस्स गाहावइस्स धन्ना नामं भारिया होत्था—अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

१४९. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव वाणारसी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

सुरादेवस्स गाहावइस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

१५०. तए णं से सुरादेवे गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव वाणारसीए नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं महप्फलं खलु भो! देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-

८. सुरादेव गाथापति कथानक

वाराणसी में सुरादेव गाथापति—

१४८. उस काल और उस समय वाराणसी नाम की नगरी थी। कोष्ठक चैत्य था। जितशत्रु राजा था।

उसी वाराणसी नगरी में सुरादेव नामक गाथापति निवास करता था—जो धन-धान्य से समृद्ध था—यावत्—बहुत से लोगों द्वारा भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला था।

उस सुरादेव गाथापति के कोष में छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें थीं, छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में लगी थीं और छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें भवन तथा अन्य घरेलू साधनों में प्रयुक्त थीं। प्रत्येक दस-दस हजार वाले छह गोकुल उसकी गोशाला में थे।

उस सुरादेव गाथापति से बहुत से राजा आदि अपने-अपने कार्यों के बारे में पूछते थे, परामर्श करते थे और अपने कुटुम्ब का भी वह आधार स्तम्भ—यावत्—सब कार्यों का निर्देशक—प्रेरक था।

उस सुरादेव गाथापति की भार्या का नाम धन्ना था, जो शुभ लक्षण एवं परिपूर्ण पंचेन्द्रिय युक्त शरीर वाली थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों का उपभोग करती हुई विचरण करती थी।

भगवान् महावीर का पदार्पण—

१४९. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—जहाँ वाराणसी नगरी थी, जहाँ कोष्ठक चैत्य था वहाँ पधारे, पधार कर यथोचित अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे। परिषदा धर्म कथा सुनने के लिए निकली।

कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा भी वन्दना आदि करने के लिये निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

सुरादेव गाथापति का समवसरण में गमन और धर्म-श्रवण—

१५०. तदनन्तर वह सुरादेव गाथापति इस संवाद को सुनकर कि पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुये श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आये हैं, प्राप्त हुये हैं, यहाँ समवसृत हुये हैं और यहाँ वाराणसी नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथोचित अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुये विराजमान हैं।

'हे देवानुप्रियो! जब तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र का सुनना भी महाफलदायक है तब फिर उनके सामने

वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहार-चारेणं वाणारसिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

जाने, उनको वंदन-नमस्कार करने उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या है? जब आर्य धर्म का एक सुवचन सुनना ही दुर्लभ है तब फिर विपुल अर्थ के ग्रहण करने की सुदुर्लभता के लिये क्या कहा जाये? इसलिये हे देवानुप्रिय! मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार सम्मान करूँ, और कल्याण, मंगल, देव एवं ज्ञान रूप उनकी पर्युपासना करूँ।' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया, और कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके शुद्ध समयोचित, मांगलिक श्रेष्ठ वस्त्र पहने एवं अल्प किन्तु मूल्यवान् आभूषणों से शरीर अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्पों से युक्त छत्र को सिर पर धारण कर जन समूह के साथ पैदल वाराणसी नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था, और उसमें भी जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया तथा वंदन-नमस्कार करने के बाद न अति दूर और न अति निकट किन्तु यथायोग्य स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुये विनय-पूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे सुरादेवस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ।

परिसा पडिगया, राया य गए।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने सुरादेव गाथापति और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्म कथा कही।

परिषदा वापस लौटी, राजा भी लौट गया।

सुरादेवस्स गिहिधम्मपडिवत्ती—

१५१. तए णं से सुरादेवे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छिय-मेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वदह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया,

सुरादेव की गृहीधर्म प्रतिपत्ति—

१५१. तदनन्तर वह सुरादेव गाथापति श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुनकर और हृदय में धारण कर—समझकर हृष्ट, तुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न और हर्षवशात् विकसित हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा—खड़ा हुआ, उठकर श्रमण भगवान् की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, हे भदन्त! निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति करता हूं, हे भगवन्! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की आराधना करने के लिए तत्पर हूं, हे भदन्त! यह ऐसा ही है, हे भन्ते! यह तथ्य है, हे भदन्त! यह यथार्थ—सत्य है, हे भगवन्! मुझे यह इच्छित-अभिलषणीय है, हे भदन्त! यह प्रतिइच्छित—अभीप्सनीय है और हे भगवन्! इच्छित-प्रति-इच्छित-अभिलाषा—अभीप्सा के योग्य है। यह वैसा ही है जैसा आप प्रतिपादित करते हैं। जिस प्रकार से आप देवानुप्रिय के पास बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति मुंडित होकर गृह त्याग कर

नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

अनगारित्व से प्रव्रजित हुये हैं, तदनुरूप तो मैं मुण्डित होकर घर का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूँ, किन्तु आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

भगवान ने कहा—'जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, लेकिन इसके लिये विलम्ब मत करो।'

तए णं से सुरादेवे गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

तदनन्तर उस सुरादेव गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर से श्रावक धर्म स्वीकार किया।

भगवओ जणवयविहारो—

१५२. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कयाइ वाणारसीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान् का जनपद विहार—

१५२. तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर किसी एक दिन वाराणसी नगरी के कोष्ठक चैत्य से निकले और निकलकर बाह्य जनपदों में विहार करने लगे।

सुरादेवस्स समणोवासगचरिया—

१५३. तए णं से सुरादेवे समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

सुरादेव की श्रमणोपासक चर्या—

१५३. तदनन्तर वह सुरादेव जीवाजीवादि तत्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार, वस्त्र, पात्रादि प्रतिग्रह, कंबल, पादपोंछन, रजोहरण, औषधि, भैषज तथा पडिहारिय पीठ फलक, शैया, संस्तारक आसन आदि से प्रतिलाभित करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगा।

धन्नाए समणोवासियाचरिया—

१५४. तए णं सा धन्ना भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

धन्ना भार्या की श्रमणोपासिका चर्या—

१५४. इसके पश्चात् वह धन्ना भार्या भी जीवाजीवादि तत्वों की जानकार श्रमणोपासिका हो गई,—यावत्—निर्ग्रन्थ श्रमणों को प्रासुक, एषणीय, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह-पात्र आदि कंबल, पाद-प्रोंछन-रजोहरण औषधि, भैषज एवं पडिहारिय पीठ, फलक, शैया संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगी।

सुरादेवस्स धम्मजागरिया गिहिवावारचागो य—

१५५. तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वोइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णदा कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं वाणारसीए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेण वक्खेवेणं अहं

सुरादेव की धर्म जागरिका और गृही व्यापार त्याग—

१५५. तदनन्तर उस सुरादेव श्रमणोपासक के अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष बीत गये और पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था तब किसी एक समय मध्य रात्रि में धर्म जागरिका में जागरण करते हुए यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत विचार उत्पन्न हुआ कि वाराणसी नगरी के बहुत से राजा—यावत्—मुझसे पूछते हैं, परामर्श करते हैं तथा अपने कुटम्ब का भी आधार स्तम्भ हूँ—यावत्—सभी कार्यों, व्यवहारों का प्रेरक—निर्देशक हूँ, अतएव इस विक्षेप के कारण श्रमण भगवान महावीर से ली

नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए।[1]

तए णं से सुरादेवे समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता वाणारसिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

हुई धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ।'

इसके पश्चात् सुरादेव श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, जाति बन्धुओं, निजी स्वजन संबन्धियों और परिजनों से पूछा—पूछकर अपने घर से निकला, निकलकर वाराणसी नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पौषधशाला को बुहारा, बुहारकर उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, तत्पश्चात् दर्भ—घास का आसन बिछाया, आसन बिछाकर उस पर बैठा, बैठकर पौषध-शाला में पौषध व्रत लेकर ब्रह्मचर्यपूर्वक, मणि स्वर्ण आदि के आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्णकों शृंगार-वस्तुओं और विलेपनों को छोड़कर मूसल आदि शस्त्रों का त्याग कर एक, अद्वितीय हो दर्भ संस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान् महावीर के पास से ग्रहण की हुई धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके समय बिताने लगा।

सुरादेवस्स देवकयनियजेट्ठपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१५६. तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पलगवलगुलिय-अयसिकुसुम-प्पगासं खुरधारं असिं गहाय सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो सुरादेवा! समणोवासया! अपत्थियपत्थिया! दुरंत-पंत-लक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसिया! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! धम्मकामया! पुण्णकामया! सग्गकामया! मोक्खकामया! धम्मकंखिया! पुण्णकंखिया! सग्गकंखिया! मोक्खकंखिया! धम्मपिवासिया! पुण्णपिवासिया! सग्ग-पिवासिया! मोक्खपिवासिया! नो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया! सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्च-इत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभ-रियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण

सुरादेव का देवकृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

१५६. तदनन्तर मध्यरात्रि में उस सुरादेव श्रमणोपासक के सामने एक देव प्रगट हुआ—उपस्थित हुआ।

उस देव ने नील कमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी प्रभा एवं तीक्ष्ण धारवाली एक बड़ी तलवार हाथ में लेकर सुरादेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे श्रमणोपासक सुरादेव! अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाला (अकाल मौत का इच्छुक) दुरन्त और अशुभ लक्षणों वाला! दुर्भाग्य पूर्ण चतुर्दशी—कृष्णपक्ष की चतुर्दशी को जन्म देने वाला! श्री, ह्री, धृति, कीर्ति विहीन! धर्म की कामना करने वाला! पुण्य की कामना करने वाला! स्वर्ग की कामना करने वाला! मोक्ष की कामना करने वाला! धर्माकांक्षी! पुण्याकांक्षी! स्वर्गाकांक्षी! मोक्षा-कांक्षी! धर्मपिपासु! पुण्यपिपासु! स्वर्गपिपासु! मोक्षपिपासु! हे देवानुप्रिय! यद्यपि तुम्हें शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों से विचलित, क्षुभित होना, उन्हें खंडित करना, भग्न करना, त्यागना, परित्याग करना नहीं कल्पता है, फिर भी यदि तुम आज शीलों—यावत्—पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसका वध करूँगा, वध करके उसके माँस के पाँच टुकड़े करूँगा, और फिर तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर माँस और रक्त सींचूँगा—छिड़कूँगा, जिससे तुम दुर्निवार आर्तध्यान और दुःख

---

१ एत्थ संबंधाणुसंधाणं आणंदगाहावइकहाणगाओ णेयं।

य आइंचामि जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणुव्विग्गं अक्खुभियं अचलियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव- जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।''

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सुरादेवस्स समणोवासयस्स जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सुरादेवस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

सुरादेवस्स देवकयनियमज्झिमपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१५७. तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि

से पीड़ित होते हुए अकाल में ही जीवन रहित हो जाओगे—प्राण गंवा बैठोगे।

तदनन्तर वह सुरादेव श्रमणोपासक उस देव की इस बात को सुनकर, भीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित, विचलित नहीं हुआ, घबराया नहीं और शान्तभाव से धर्मध्यान में स्थिर रहा।

तदनन्तर उस देव ने श्रमणोपासक सुरादेव को अभीत, अत्रस्त, अनुद्विग्न, अक्षुभित असंभ्रांत होकर शांतिपूर्वक धर्मध्यान में निरत देखा तो दूसरी और तीसरी बार भी सुरादेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—अरे सुरादेव श्रमणोपासक ! —यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, तोड़ोगे नहीं तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसकी हत्या करूँगा, हत्या करके उसके मांस के पाँच टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तलूँगा, तलकर तुम्हारे शरीर पर मांस और शोणित को छिड़कूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान एवं दुर्निवार दुःख से पीड़ित होते हुए अकाल मरण द्वारा अपना जीवन गंवा दोगे।

तब उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी कही गई बात को सुनकर वह सुरादेव श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत रहा।

तत्पश्चात् उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत देखा, देखकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए वह सुरादेव श्रमणोपासक—ज्येष्ठपुत्र को घर से लेकर आया, लाकर उसके सामने वध किया, वध करके मांस के पाँच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेलभरी कड़ाही में पकाया, पकाकर सुरादेव श्रमणोपासक के शरीर पर रक्त और मांस छिड़का।

तब उस सुरादेव श्रमणोपासक ने उस अतीव दुर्द्धर्ष, विपुल, कठोर, प्रगाढ़, प्रचंड दुस्सह वेदना को क्षमा, तितिक्षा और समभावपूर्वक भलीभांति सहन किया।

सुरादेव का देवकृत निज मंझले पुत्र मरण रूप उपसर्ग का सम्यक् प्रकार से सहन करना—

१५७. इसके अनन्तर उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—साधनारत देखा, देखकर सुरादेव श्रमणोपासक से बोला—अरे सुरादेव श्रमणोपासक !—यावत्—यदि आज तुम शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे—खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय घर से तुम्हारे मंझले पुत्र को लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा, मारकर उसके मांस के पाँच टुकड़े करूँगा,

कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो! सुरादेवा! समणोवासया! -जाव- जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि''।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सुरादेवस्स समणोवासयस्स मज्झिमं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सुरादेवस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ।

सुरादेवस्स देवकयनियकणीयसपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१५८. तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो! सुरादेवा! समणोवासया! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि, करेत्ता

टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रुधिर छिड़कूंगा, जिससे आर्तध्यान एवं दुस्सह वेदना से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन रहित हो जाओगे।

तदनन्तर उस देव की यह बात सुनकर भी सुरादेव श्रमणोपासक अभीत—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहा।

इसके अनन्तर जब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत देखा तब देखकर दूसरी और तीसरी बार भी सुरादेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—ओरे सुरादेव श्रमणोपासक!—यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे मंझले बेटे को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा, मार कर मांस के पाँच टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तलूँगा, तलकर तुम्हारे शरीर को मांस और रक्त से सींचूंगा, जिससे तुम आर्तध्यान और दुर्निवार दुःखों से पीड़ित होकर अकाल में ही अपने प्राणों को गँवा दोगे।

उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार से कहे जाने पर वह सुरादेव श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में ही निरत रहा।

इस प्रकार से कहे जाने के अनन्तर भी जब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् विकरालरूप होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए सुरादेव श्रमणोपासक के मंझले बेटे को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर उसके मांस पिंड के पाँच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर सुरादेव श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रुधिर को छिड़का।

तब उस सुरादेव श्रमणोपासक ने उस तीव्र—यावत्—वेदना को समता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया।

सुरादेव का देवकृत निज कनिष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

१५८. मंझले बेटे को मारने के अनन्तर भी उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा, देखकर सुरादेव श्रमणोपासक से बोला—ओरे श्रमणोपासक सुरादेव! —यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा, मारकर उसके मांस पिंड के पाँच टुकड़े करूँगा,

आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सुरादेवस्स समणोवासयस्स कणीयसं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सुरादेवस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

सुरादेवस्स देवकहियरोगायंक उवसग्गस्स असहणे कोलाहल-करणं, मायाविकुव्वियदेवस्स आगासे उप्पयणं—

१५६. तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चउत्थं पि सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि, तं जहा—१. सासे २. कासे ३. जरे ४. दाहे ५. कुच्छिसूले ६. भगंदरे ७. अरिसए ८. अजीरए ९.

टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रक्त छिड़कूँगा, जिससे तुम दुर्निवार आर्त्तध्यान और दुःख से पीड़ित होकर अकाल में मरण करके प्राणों को गँवा दोगे ।

तब उस देव की इस बात को सुनकर सुरादेव श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—उपासनारत रहा ।

इस धमकी के बाद भी जब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत देखा तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी सुरादेव श्रमणोपासक से यह कहा—ओरे सुरादेव श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, भंग नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा, मारकर उसके मांस पिंड के पाँच टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तलूँगा, तलकर तुम्हारे शरीर पर मांस और खून छिड़कूँगा, जिससे तुम आर्त्तध्यान एवं दुस्सह दुःख से दुःखित-पीड़ित होकर अकाल में ही जीवन रहित हो जाओगे ।

उस देव के द्वारा दूसरी और तीसरी बार दी गयी धमकी को सुनकर निर्भय—यावत्—अपनी साधना में निरत रहा ।

तदनन्तर भी जब उस देव ने श्रमणोपासक सुरादेव को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा तो देखकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए श्रमणोपासक सुरादेव के कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर उसके मांस पिंड के पाँच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर सुरादेव के शरीर पर मांस और रुधिर छिड़का ।

तब उस सुरादेव श्रमणोपासक ने उस विकट—यावत्—वेदना को समभाव, क्षमा और तितिक्षा पूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

सुरादेव का देव कथित रोगातंक उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और मायाविकुर्वित देव का आकाश में उड्डयन—

१५६. तदनन्तर भी जब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यानरत देखा तो चौथी बार सुरादेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—ओरे सुरादेव श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे शरीर में एक साथ ही (१) श्वास-दमा (२) कास—खांसी, (३) ज्वर (४) दाह (५) उदर-पेट-शूल, (६) भगंदर (७) अर्श—बवासीर (८) अजीर्ण—बदहजमी

दिट्ठिसूले १० मुद्धसूले ११. अकारिए १२. अच्छिवेयणा १३. कण्णवेयणा १४. कंडुए १५. उदरे १६. कोढे । जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।'

(९) दृष्टि शूल (१०) मस्तक शूल (११) भोजन में अरुचि, भूख न लगना (१२) नेत्र वेदना (१३) कर्ण वेदना, (१४) खुजली (१५) उदर रोग—जलोदर आदि और (१६) कोढ़ ये सोलह भयानक रोग उत्पन्न कर दूंगा। जिससे तुम आर्तध्यान एवं दुस्सह वेदना से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन से हाथ धो बैठोगे।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव की इस धमकी को सुनकर भी सुरादेव श्रमणोपासक पूर्ववत् निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर रहा।

तए णं से देवे सुरादेवं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंके पक्खिवामि-जाव-जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

इस धमकी को सुनकर भी जब उस देव ने सुरादेव श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी सुरादेव श्रमणोपासक को धमकी दी कि ओ! सुरादेव श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पोषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे शरीर में एक साथ सोलह भयंकर रोगों को उत्पन्न कर दूंगा—यावत्—जिससे तुम आर्तध्यान पूर्वक दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही अपने जीवन से हाथ धो बैठोगे।

तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरति, जे णं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे वि य इमे सोलस रोगायंका, ते वि य इच्छइ मम सरीरंसि पक्खिवित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए" त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ।

तदनन्तर उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहे जाने पर सुरादेव श्रमणोपासक को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि 'अहो' ! यह पुरुष अधम है, नीचबुद्धि वाला है और निकृष्ट पापकर्मों को करने वाला है जिसने पहले तो मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाया, लाकर मेरे सामने मारा, मारकर उसके मांस पिंड के पाँच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर मेरे शरीर पर मांस और रुधिर का छिड़काव किया, इसके बाद मेरे मंझले बेटे को घर से उठा लाया, मेरे आगे उसको मारा, मारकर उसके शरीर के पांच मांस खंड किये, फिर तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर पर मांस और रक्त छिड़का, तत्पश्चात् मेरे कनिष्ठ पुत्र को भी घर से उठाकर ले आया, लाकर मेरे आगे उसे मारा, मारकर उसके मांसपिंड के पाँच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर पर मांस और खून छिड़का और अब जो सोलह भयंकर रोग हैं, उन्हें भी मेरे शरीर में उत्पन्न कर देना चाहता है, इसलिए मुझे इस पुरुष को पकड़ लेना चाहिए।' ऐसा विचार कर पकड़ने के लिए उठा, लेकिन वह ऊपर आकाश में उड़ गया, और सुरादेव के हाथों में खंभा आ गया तब वह जोर-जोर से कोलाहल करने लगा—चिल्लाने लगा।

धन्नाए पसिणो—

१६०. तए णं सा धन्ना भारिया तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म

धन्ना का प्रश्न—

१६०. तदनन्तर धन्ना भार्या कोलाहल सुनकर और समझकर

जेणेव सुरादेवे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ. उवागच्छित्ता एवं वयासी—"किण्णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे णं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ?"

जहाँ सुरादेव श्रमणोपासक था, वहाँ आई और आकर बोली—'हे देवानुप्रिय ! आप जोर-जोर से क्यों चिल्लाये ?'

सुरादेवस्स उत्तरं—

१६१. तए णं से सुरादेवे समणोवासए धन्नं भारियं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए ! न याणामि के वि पुरिसे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय ममं एवं वयासी—"हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता पंच मंससोल्लए करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि" ।

सुरादेव का उत्तर—

१६१. तब सुरादेव श्रमणोपासक ने उस धन्ना भार्या से कहा—हे देवानुप्रिये ! बात यह है कि मैं नहीं जानता, कि वह पुरुष कौन था, जिसने क्रोधित, रुष्ट, कुपित विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए नील कमल, भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी नीली तीक्ष्ण धार वाली एक बड़ी तलवार लेकर मुझसे कहा—अरे सुरादेव श्रमणोपासक !—यावत्—तुम आज शीलों, व्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पोषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे—नहीं त्यागोगे—खण्डित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे आगे मारूंगा, मारकर उसके मांसपिंड के पाँच टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल-भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रुधिर छिड़कूँगा जिससे तुम आर्तध्यान एवं दुस्सह दुःख वेदना से पीड़ित होकर अकाल में ही जीवन-रहित हो जाओगे ।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

लेकिन मैं उस पुरुष की उस बात को सुनकर भी निर्भय—यावत्—अपनी धर्मसाधना में रत रहा ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता ममं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—हंभो सुरादेवा ! -जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो-जाव-तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि" ।

तब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी धमकी दी कि अरे श्रमणोपासक सुरादेव !—यावत्—नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो—यावत्—तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर अकाल में ही जीवन-रहित हो जाओगे ।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

उस पुरुष की दूसरी और तीसरी बार भी दी गई धमकी को सुनकर मैं निर्भय—यावत्—अपनी धर्म-साधना निरत रहा ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ममं जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता पंच मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ । तए णं अहं तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

तदनन्तर भी जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, विकराल और मिसमिसाते हुए मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर मेरे आगे उसका वध किया, वध करके मांसपिंड के पांच टुकड़े किये, टुकड़े करके तेलभरी कड़ाही में पकाया, पकाकर मेरे शरीर पर मांस और रुधिर सींचा, छिड़का । तब मैंने उस तीव्र—यावत्—वेदना को समभाव, क्षमा, तितिक्षापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

एवं मज्झिमं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि । एवं कणीयसं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

इसी प्रकार ने मध्यम पुत्र को भी घर से लाया—यावत्—समभाव, क्षमा तितिक्षापूर्वक अच्छी तरह से सहन किया । इसी प्रकार कनिष्ठ पुत्र को भी लाया—यावत्—वेदना को समभावपूर्वक क्षमा और सहनशीलता के साथ सहन किया ।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता, ममं चउत्थं पि एवं वयासी—"हंभो ! सुरादेवा ! समणोवासया !

तब भी उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—साधनारत देखा, देखकर मुझसे चौथी बार कहा—'अरे सुरादेव श्रमणो-

-जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलसरोगायंके पक्खिवामि-जाव-जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि''।

पासक ! —यावत्—यदि तुम आज शीलों—यावत्—पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, खण्डित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे शरीर में एक साथ भयंकर सोलह रोग उत्पन्न कर दूंगा—यावत्—जिससे तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही अपना जीवन गँवा दोगे'।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि।

उस पुरुष की इस बात को सुनकर भी मैं निर्भय—यावत्—अपनी धर्मसाधना में स्थिर रहा।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं ममं एवं वयासी—''हंभो ! सुरादेवा समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज सरीरंसि जमगसमगमेव सोलसरोगायंके पक्खिवामि-जाव-जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि''।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—स्थिर देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी मुझे धमकी दी कि 'अरे सुरादेव श्रमणोपासक—यावत्—यदि तुम आज शीलों—यावत्—पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे शरीर में एक साथ ही कास आदि भयंकर सोलह रोग उत्पन्न कर दूंगा—यावत्—जिससे तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख के वश होकर अकाल में ही प्राण गँवा बैठोगे।'

तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमे पुरिसे अणारिए-जाव-तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए'' त्ति कट्टु उद्धाविए। से वि य आगासे उप्पइए मए वि य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

उस पुरुष के दुबारा और तिबारा भी इस प्रकार कहने पर मुझे इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि 'अहो ! यह पुरुष अनार्य—अधम है—यावत्—मुझे उचित होगा कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूँ, ऐसा विचार कर मैं अपने आसन से उठा और पकड़ने को दौड़ा किन्तु मेरे हाथ में खम्भा आ गया और वह पुरुष ऊपर आकाश में उड़ गया, जिससे मैंने जोर-जोर से कोलाहल किया—मैं जोर-जोर से चिल्लाया।

सुरादेवस्स पायच्छित्ताकरणं—

१६२. तए णं सा धन्ना भारिया सुरादेवं समणोवासयं एवं वयासी—''नो खलु केइ पुरिसे तव जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु देवाणुप्पिया ! तुब्भं के वि पुरिसे सरीरंसि जमगसमगं सोलस रोगायंके पक्खिवइ, एस णं के वि पुरिसे तुब्भं उवसग्गं करेइ, एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे। तं णं तुमं इयाणिं भग्गवए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं देवाणुप्पिया ! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि।''

सुरादेव का प्रायश्चित्त करण—

१६२. तदनन्तर धन्नाभार्या ने सुरादेव श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'किसी पुरुष ने न तो तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठाया है, न तुम्हारे आगे उसे मारा है, न किसी पुरुष ने तुम्हारे मध्यम पुत्र को घर से उठाया है और न तुम्हारे सामने मारा है और न कोई पुरुष तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठाकर लाया है और न लाकर तुम्हारे सामने उसकी हत्या की है और न हे देवानुप्रिय ! किसी पुरुष ने तुम्हारे शरीर में कास आदि सोलह रोगातंक उत्पन्न किये हैं, किन्तु किसी पुरुष ने तुम पर उपसर्ग किया है, यह तो तुमने भयंकर दृश्य देखा है। जिससे तुम इस समय खण्डित व्रत, खण्डित नियम और खण्डित पौषध वाले हो गये हो। अतएव हे देवानुप्रिय ! आप इस स्थान—व्रत भंग रूप स्थान की आलोचना करो, प्रतिक्रमण करो, निन्दा करो, गर्हा करो, निवृत्ति करो, अकार्य की विशुद्धि करो और अकार्य की विशुद्धि के लिए तदनुरूप प्रायश्चित्त स्वीकार करके तपस्या करो।'

तए णं से सुरादेवे समणोवासए धन्नाए भारियाए

तदनन्तर 'आप ठीक कहती हो' कहकर सुरादेव श्रमणोपासक

'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहेइ अकरणयाए अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ।

सुरादेवस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

१६३. तए णं से सुरादेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से सुरादेवे समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

सुरादेवस्स अणसणं—

१६४. तए णं तस्स सुरादेवस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए'।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणं-

ने विनयपूर्वक धर्माचार्य के कथन को स्वीकार किया और स्वीकार करके उस स्थान की आलोचना की, प्रतिक्रमणा की, निन्दा, गर्हा, निवृत्ति और विशुद्धि की एवं अकार्य के लिए प्रायश्चित्त करने में तत्पर होकर तदनुरूप तपःक्रिया स्वीकार की।

सुरादेव की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

१६३. तदनन्तर उस सुरादेव श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा अंगीकार की और उस पहली प्रतिमा को सुरादेव श्रमणोपासक ने यथासूत्र, यथामार्ग, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, पालन किया, शोधित किया, पूर्ण किया, कीर्तित किया, आराधित किया।

तदनन्तर उस सुरादेव श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को ग्रहण किया और उसके बाद तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को सूत्र, कल्प, विधि और सिद्धान्त के अनुसार ग्रहण पालन, शोभित, पूर्ण, कीर्तित और आराधित किया।

तदनन्तर वह श्रमणोपासक उस उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को स्वीकार करने से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थि चर्मावृत्त मात्र किटिकिटिकाभूत, कृश, उभरी हुई नाड़ियों जैसे शरीर वाला हो गया।

सुरादेव का अनशन—

१६४. तदनन्तर किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरिका से जागरण करते हुए—धर्म-साधना करते हुए उस सुरादेव श्रमणोपासक को यह आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि 'मैं इस और इस प्रकार के उदार-प्रधान, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को स्वीकार करने से शुष्क, रूक्ष, मांस रहित, अस्थिपिंजर मात्र किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों जैसे शरीरवाला हो गया हूँ, फिर भी अभी तक मुझमें उत्थान कर्म उठने-बैठने रूप क्रिया करने की शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषाकार—पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य, संवेगभाव, मुमुक्षु भाव विद्यमान है, इसलिए जब तक मुझमें उत्थान—कर्म-बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम, श्रद्धा, धृति संवेग है—यावत्—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर वर्तमान हैं, तब तक मुझे यह श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभातरूप होने, सूर्य का उदय होने और ज्वलंत तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, जीवन-मरण की आकांक्षा न करते हुए अपना समय व्यतीत करूँ—

इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभातरूप होने, सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणांतिक

तियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

संलेखना झूसणा को स्वीकार करके, आहार-पानी का त्याग करके मरण की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगा।

सुरादेवस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगमणनिरूवणं च—

१६५. तए णं से सुरादेवे समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणकंते विमाणे उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—उवासगदसाओ अ० ४

सुरादेव का समाधिमरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगति निरूपण—

१६५. तदनन्तर वह सुरादेव श्रमणोपासक बहुत से शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित संस्कारित कर, बीस वर्ष की श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, इग्यारह उपासक प्रतिमाओं को सम्यक् प्रकार से आराधित कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर, साठ भोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर आलोचना, प्रतिक्रमण और समाधिपूर्वक मरण समय में प्राणत्याग करके सौधर्म कल्प के अरुणकांत विमान में उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी चार पल्योपम की आयुस्थिति हुई। तदनन्तर वहाँ से च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध, बुद्ध, मुक्त हो सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

॥ सुरादेव गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

६. चुल्लसययगाहावईकहाणगं

आलभियाए चुल्लसयए गाहावई—

१६६. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नयरी। संखवणे उज्जाणे। जियसत्तू राया।

तत्थ णं आलभियाए नयरीए चुल्लसयए नामं गाहावई परिवसइ— अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं चुल्लसययस्स गाहावइस्स छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, छ व्वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं चुल्लसयए गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्ज-वड्ढावए यावि होत्था।

६. चुल्लशतक गाथापति कथानक

आलभिका में चुल्लशतक गाथापति—

१६६. उस काल और उस समय में आलभिका नाम की नगरी थी। शंखवन नाम का उद्यान था। वहाँ जितशत्रु नाम का राजा राज्य करता था।

उस आलभिका नगरी में धन-धान्य से सम्पन्न—यावत्—बहुत से जनों द्वारा भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला चुल्लशतक नाम का गाथापति निवास करता था।

उस चुल्लशतक गाथापति के छह स्वर्ण कोटियाँ कोष में सुरक्षित—संचित थीं, छह स्वर्ण कोटियाँ व्यापार में नियोजित थीं, और छह स्वर्ण कोटियाँ घर-गृहस्थी के साधन उपकरणों में लगी हुई थीं। दस-दस हजार गायों वाले छह व्रज उसकी गोशाला में थे।

उस चुल्लशतक गाथापति से बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह अपने-अपने कार्यों के लिए पूछते थे—राय लेते थे, परामर्श करते थे और अपने कुटुम्ब के लिए आधार स्तम्भ—यावत्—समस्त कार्यों का प्रेरक था।

तस्स णं चुल्लसयगस्स गाहावइस्स बहुला नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

उस चुल्लशतक गाथापति की शुभ लक्षणों और परिपूर्ण पाँचों इन्द्रियों युक्त शरीर वाली बहुला नाम की भार्या—पत्नी थी—यावत्—मनुष्योचित काम-भोगों को भोगती हुई विचरण करती थी।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

भगवान् महावीर का समवसरण—

१६७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव आलभिया नयरी जेणेव संखवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—जहाँ आलभिका नगरी थी, जहाँ शंखवन उद्यान था, वहाँ पधारे, पधारकर यथायोग्य अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

वंदना करने परिषदा निकली।

कोणिक राजा की तरह राज्य वैभव को साथ लेकर जितशत्रु राजा भी वंदना करने निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

चुल्लसययस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

चुल्लशतक का समवसरण में गमन और धर्मश्रवण—

१६८. तए णं से चुल्लसयए गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते, इह समोसढे इहेव आलभियाए नयरीए बहिया संखवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं महप्फलं खलु भो! देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्ख-मइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहार-चारेणं आलभियं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव संखवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ

१६८. इसके अनन्तर वह चुल्लशतक गाथापति इस समाचार को सुनकर कि पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुये श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आये हैं, प्राप्त हुये हैं, समवसृत हुये हैं और आलभिका नगरी के बाहर शंखवन नामक उद्यान में यथोचित अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुये विचरण कर रहे हैं।

'हे देवानुप्रियो! जब तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र के सुनने का महाफल है तब हे आयुष्मनो! उनके सामने जाने, उनको वंदन-नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के सुफल का तो कहना ही क्या है? धर्माचार्य के एक सुवचन का सुनना ही मंगलरूप है तो फिर उनसे विपुल अर्थ को ग्रहण करने के फल के लिये तो कहना ही क्या है? इसलिये हे देवानुप्रियो! मैं जाऊँ और उन श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ, एवं कल्याण, मंगल, देव तथा चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूँ।' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित करके शुद्ध, धर्म सभा में जाने योग्य मांगलिक वस्त्रों को पहिना तथा अल्पभार किन्तु बहुमूल्य वाले आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्पों की माला युक्त छत्र को सिर पर लगाकर कर जन-समूह को साथ लेकर पैदल आल-भिका नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ शंख-वन उद्यान था, उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, वहाँ आकर तीन बार श्रमण भगवान् महावीर की आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार

णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे चुल्लसययस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

चुल्लसययस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

१६६. तए णं से चुल्लसयए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परम-सोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छिय-मेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खा-वइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

तए णं से चुल्लसयए गाहावई समणस्स भगवओ महा-वीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ ।

भगवओ जणवयविहारो—

१७०. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ आलभियाए नयरीए संखवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

चुल्लसययस्स समणोवासग-चरिया—

१७१. तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जाए—अभिगयजीवा-

किया वंदन-नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट, किन्तु योग्य स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुये अभिमुख विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा ।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने चुल्लशतक गाथापति और उस महती परिषदा को धर्मोपदेश सुनाया ।

परिषदा वापस लौटी। राजा भी चला गया ।

चुल्लशतक की गृहीधर्म प्रतिपत्ति—

१६६. इसके अनन्तर चुल्लशतक गाथापति श्रमण भगवान् महावीर से धर्मश्रवण कर और विचार कर हर्षित, संतुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न एवं हर्षातिरेक से विक-सित हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, उठकर श्रमण भग-वान् महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूं, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति-विश्वास करता हूं हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचता है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ, प्रवचन का आदर करता हूं, हे भदन्त ! यह ऐसा ही है, हे भगवन् ! यह तथ्य-सत्यरूप है, हे भगवन् यह यथार्थ है, हे भगवन् ! यह असंदिग्ध है, हे भगवन् ! मुझे यह इच्छित, अभि-लषणीय है, हे भगवन् ! यह मुझे अभीप्सनीय है, हे भगवन् यह मुझे इच्छित-प्रतिइच्छित अभिलषणीय-अभीप्सनीय है, हे भगवन् ! वह वैसा ही है जैसा आप कहते हैं। आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजा, ईश्वर-तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा से दीक्षित हुए, वैसे तो मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारित्व अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूं। अतएव मैं आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत और सप्त शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के श्रावकधर्म को स्वीकार करना चाहता हूं।'

भगवान ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो किन्तु विलम्ब मत करो ।

तदनन्तर उस चुल्लशतक गाथापति ने श्रमण भगवान् महा-वीर से श्रावक धर्म अंगीकार किया ।

भगवान् का जनपद विहार—

१७०. तदनन्तर किसी एक दिन श्रमण भगवान् महावीर शंखवन उद्यान से निकले और निकलकर बाहरी जनपदों-देशों में विचरण करने लगे ।

चुल्लशतक की श्रमणोपासक चर्या—

१७१. तदनन्तर वह चुल्लशतक श्रमणोपासक हो गया, जो जीवा-

जीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

जीव तत्त्वों को जानता हुआ—यावत्—प्रासुक एषणीय अशन, पान, खाद्य-स्वाद्य, आहार, वस्त्र, प्रतिग्रह-पात्रादि, कंबल, पाद-प्रोंछन-रजोहरण औषधि, भैषज एवं पडिहारीय पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगा।

बहुलाए समणोवासिया-चरिया—

१७२. तए णं सा बहुला भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

बहुला की श्रमणोपासिका चर्या—

१७२. तदनन्तर वह बहुलाभार्या जीवाजीव तत्त्वों की जानकार श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, प्रतिग्रह, कंबल, पाद प्रोंछन, औषधि, भैषज और पडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विचरने लगी।

चुल्लसयय-धम्मजागरिया—

१७३. तए णं तस्स चुल्लसययस्स समणोवासगस्स उच्चावएहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं आलभियाए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

चुल्लशतक की धर्म जागरिका—

१७३. तदनन्तर अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुण व्रतों, विरमणों प्रत्याख्यानों, पौषधोपवासों से आत्मा को भावित करते हुए उस चुल्लशतक श्रमणोपासक के चौदह वर्ष व्यतीत हो गये और जब पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था तब किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरणा से जागरण करते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि मुझे आलभिका नगरी के बहुत से राजा आदि अपने-अपने कार्यों के बारे में पूछते हैं, परामर्श करते हैं तथा अपने कुटुम्ब परिवार का मुखिया—यावत्—सर्व कार्यों का निर्देशक हूँ अतएव इस विक्षेप के कारण मैं श्रमण भगवान् महावीर से प्राप्त हुई धर्म प्रज्ञप्ति के अनुसार आचरण नहीं कर पाता हूँ।

१७४. तए णं से चुल्लसयए समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता आलभियं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

१७४. तदनन्तर उस चुल्लशतक श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, जाति-बन्धुओं, स्वजन सम्बन्धियों और परिचित जनों से अनुमति ली, अनुमति लेकर अपने घर से निकला, निकलकर आलभिका नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया, उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, दर्भ संस्तारक बिछाया, उस पर बैठा और पौषधशाला में पौषध व्रत लेकर ब्रह्मचर्य पूर्वक मणि-स्वर्णादि के आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्ण और विलेपनों को छोड़कर मूसल आदि शस्त्रों का त्यागकर, एकाकी, अद्वितीय होकर दर्भ संस्तारक पर बैठकर श्रमण भगवान् महावीर से ली हुई धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरण करने लगा।

चुल्लसयगस्स देवकयनियजेट्ठपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

१७५. तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि एगे देवे अंतियं पाउब्भूए।

तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुम-

चुल्लशतक का देव कृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभाव पूर्वक सहन करना—

१७५. इसके अनन्तर मध्यरात्रि के समय उस चुल्लशतक श्रमणोपासक के समक्ष एक देव प्रगट हुआ।

वह देव एक नील कमल, भैंसे के सींग और अलसी के पुष्प

प्पगासं खुरधारं असिं गहाय एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-सीलाइं-जाव-चालित्तए-जाव-परिच्चइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं जाव-न भंजेसि, तो ते (अहं ?) अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता सत्त मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

जैसी नीलप्रभा एवं तीक्ष्ण धार वाली बड़ी तलवार हाथों में लेकर बोला—'ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक ! यद्यपि तुम्हें शील—यावत्—पौषधोपवासों से चलित होना—यावत्—परित्याग करना नहीं कल्पता है, फिर भी यदि तुम आज शीलों को—यावत्—पौषधोपवासों को खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसका हनन करूँगा, हनन करके उसके मांस पिंड के सात खण्ड करूँगा, खण्ड करके तेल भरी कढ़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर पर मांस और रक्त लपेटूँगा जिससे तुम आर्तध्यान पूर्वक दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर अकाल में ही अपने जीवन को गँवा दोगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।

वह चुल्लशतक श्रमणोपासक उस देव के इस कथन को सुनकर भी निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में ही निरत रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुल्लसययं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो तं अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि-जाव-ववरोविज्जसि ।

तदनन्तर जब उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर देखा तो देखकर पुनः दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहा—ओरे श्रमणोपासक चुल्लशतक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों—यावत्—पौषधोपवासों को खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा—यावत्—प्राणों को गँवा दोगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तदनन्तर वह चुल्लशतक श्रमणोपासक उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी दी गई धमकी को सुनकर निर्भय—यावत्— धर्मध्यान में निरत रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता सत्त मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुल्लसयगस्स समणोवासगस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तत्पश्चात् उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—साधनारत देखा, देखकर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए चुल्लशतक श्रमणोपासक के ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने वध किया, वध करके माँसपिंड के सात खंड किये, खंड करके तेलभरी कढ़ाही में पकाया, और पकाकर मांस एवं खून से श्रमणोपासक चुल्लशतक के शरीर को लिप्त कर दिया ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तब उस चुल्लशतक श्रमणोपासक ने उस तीव्र, विकट, कर्कश, प्रगाढ़, प्रचंड दुखद, दुस्सह वेदना को क्षमा, तितिक्षा और सहिष्णुता पूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

मज्झिमपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

मध्यम पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

१७६. तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, -जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

१७६. तदनन्तर उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में स्थिर देखा तो देखकर चुल्लशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—आज तुम शीलों को—यावत्—पौषधव्रतों को नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे मध्यम पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसे मारूँगा—यावत्—तुम जीवन गँवा बैठोगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव की इस धमकी को सुनकर भी वह चुल्लशतक श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में ही निरत रहा।

तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव. नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि,-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

तदनन्तर उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी चुल्लशतक श्रमणोपासक को यह धमकी दी—ओरे श्रमणोपासक चुल्लशतक !—यावत्—यदि तुम इसी समय शीलों को नहीं तोड़ोगे,—यावत्—मध्यम पुत्र को उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीयं-जाव-विहरइ ।

उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी दी गई धमकी को सुनकर वह चुल्लशतक श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान निरत ही रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स मज्झिमं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएमि, घाएत्ता सत्त मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

इसके अनन्तर उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा तो क्रोधित, रुष्ट, कुपित, विकराल हो और दाँतों को मिसमिसाते हुए वह चुल्लशतक श्रमणोपासक के मध्यम पुत्र को घर से उठा लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर उसके मांस पिंड के सात टुकड़े किये टुकड़े करके तेलभरी कड़ाही में पकाया, पकाकर चुल्लशतक श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रुधिर लपेट दिया ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तब उस चुल्लशतक श्रमणोपासक ने उस तीव्र—यावत्—वेदना को सहनशीलता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक भली-भाँति सहन किया ।

कणीयसपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

कनिष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभाव पूर्वक सहन करना—

१७७. तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज ! सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

१७७. इसके बाद भी जब उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत देखा तो देखकर पुनः चुल्लशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—पौषध व्रतों को नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे आगे मारूँगा—यावत्—जीवन से रहित हो जाओगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तदनन्तर उस देव के इस कथन को सुनकर श्रमणोपासक चुल्लशतक निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसयगं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

धमकी को सुनकर भी जब उस देव ने श्रमणोपासक चुल्लशतक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत देखा तो देखकर पुनः दूसरी और तीसरी बार भी चुल्लशतक श्रमणोपासक को धमकी दी कि 'ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—खण्डित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा—यावत्—अपने जीवन को गँवा दोगे ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तदनन्तर उस देव द्वारा दुबारा और तिबारा कहे गये धमकी भरे शब्दों को सुनकर भी चुल्लशतक श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—अपनी धर्मसाधना में रत रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसययं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स कणीयसं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता सत्त मंससोल्लए करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचइ ।

इसके बाद भी जब उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यानरत देखा तो देखकर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल हो और दाँतों को मिसमिसाते हुये चुल्लशतक श्रमणोपासक के कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर मांसपिंड के सात खण्ड किये, खण्ड करके तेलभरी कड़ाही में पकाया और पकाकर चुल्लशतक श्रमणोपासक के शरीर को माँस और रुधिर से लपेट दिया ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

इस पर भी चुल्लशतक श्रमणोपासक ने इस तीव्र—यावत्—वेदना को समभाव, क्षमा, तितिक्षा पूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

देवकहियनियसव्वहिरण्णकोडिविप्पकीरणरूवउवसग्गस्स असहणे कोलाहलकरणं, मायाविकुव्वियदेवस्स आगासे य उप्पयणं—

देव-कथित निज सर्व हिरण्य कोटियों को विकीर्ण करने रूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना मायाविकुर्वित देव का आकाश में उड़ना—

१७८. तए णं से देवे चुल्लसययं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चउत्थं पि चुल्लसययं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु सव्वओ समंता विप्पइरामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

१७८. तदनन्तर उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्मध्यानरत देखा तो देखकर चौथी बार भी चुल्लशतक से इस प्रकार कहा—'अरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय जो छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें कोष में रखी हैं, छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में और छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें गृहस्थी के साधनों में लगी हुई हैं उनको घर से लाऊँगा, लाकर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों-गलियों आदि में चारों ओर बिखेर दूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान और विकट दुःखों से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन से हाथ धो बैठोगे ।'

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव के द्वारा कहे गये इन धमकी भरे शब्दों को सुनकर भी वह चुल्लशतक श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—पूर्ववत् अपनी धर्मसाधना में निरत रहा ।

तए णं से देवे चुल्लसययं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयया ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडीओ निहाण-पउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-

धमकी सुनने के बाद भी जब उस देव ने चुल्लशतक श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा कि 'अरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—खण्डित नहीं करोगे तो मैं इसी समय जो ये छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें कोष में रखी हुई हैं, छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में विनियोजित हैं और छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें घर-गृहस्थी के साधनों में लगी हुई हैं, उनको तुम्हारे घर से लाऊँगा, लाकर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और गलियों आदि में चारों ओर बिखेर

महापहपहेसु सव्वओ समंता विप्पइरामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरति, जे णं ममं जेट्ठं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता सत्त मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेत्ता-जाव-सोणिएण य आइंचइ, जे णं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता सोणिएण य आइंचइ, जाओ वि य णं इमाओ ममं छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ वि य णं इच्छइ ममं साओ गिहाओ नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सव्वओ समंता विप्पइरित्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए" त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ।

बहुलाए पसिणो—

१७९. तए णं बहुला भारिया तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव चुल्लसयए समणोवासए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—किण्णं देवाणुप्पिया ! तुब्भे णं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए ?

चुल्लसयगस्स उत्तरं—

१८०. तए णं चुल्लसयए समणोवासए बहुलं भारियं एवं वयासी—एवं खलु बहुले ! न याणामि के वि पुरिसे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल-गवल-गुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय ममं एवं वयासी—"हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

"तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

"तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता ममं

दूंगा, जिससे तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर जीवन रहित हो जाओगे ।

तदनन्तर उस चुल्लशतक श्रमणोपासक को उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार कहने पर यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'अहो ! यह पुरुष अधम है, निकृष्ट बुद्धिवाला है और नीचतापूर्ण पापकर्मों को करने वाला है कि जो पहले तो मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाया, और मेरे सामने मारा, मारकर उसके शरीर के सात मांस खण्ड किये, खण्ड करके तेल भरी कड़ाही में पकाया, पकाकर मांस और रुधिर से मेरा शरीर लपेट दिया, तदनन्तर मेरे मध्यम पुत्र को घर से उठा लाया—यावत्— रक्त मांस से मेरा शरीर लपेट दिया, उसके बाद मेरे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा लाया—यावत्—मेरे शरीर पर रक्त और मांस लपेट दिया और अब इस कोष में रखी छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को, व्यापार में नियोजित छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को और घरेलू साधनों में लगी हुई छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को भी घर से लाकर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों आदि सभी में चारों ओर बिखेर देना चाहता है, इसलिए ऐसे पुरुष को पकड़ लेना मेरे लिए उचित है ऐसा विचार कर पकड़ने के लिए लपका, लेकिन वह देव आकाश में उड़ गया और उसके हाथ में खम्भा आ गया, तब वह जोर-जोर से चिल्लाया ।

बहुला का प्रश्न—

१७९. तदनन्तर बहुलाभार्या उस चिल्लाहट को सुनकर और उस पर ध्यान देकर जहाँ चुल्लशतक श्रमणोपासक था, वहाँ आई और आकर चुल्लशतक श्रमणोपासक से पूछा—'हे देवानुप्रिय ! आप जोर-जोर से क्यों चिल्लाये ?

चुल्लशतक का उत्तर—

१८०. बहुलाभार्या के प्रश्न को सुनकर चुल्लशतक श्रमणोपासक ने उत्तर दिया—'बहुले ! बात यह है कि मैं नहीं जानता कि वह पुरुष कौन था, जिसने अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर, दांतों को मिसमिसाते हुए नील कमल, भैंसे के सींग, अलसी के फूल जैसी नीलप्रभा और तीक्ष्ण धारवाली एक बड़ी तलवार हाथ में लेकर मुझसे कहा—ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—भंगोगे नहीं तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे ।

तब मैं उस पुरुष की इस धमकी को सुनकर भी निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत रहा ।

तदनन्तर जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—साधना

दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो-जाव-तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

रत देखा, तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी मुझसे इस प्रकार कहा—ओरे श्रमणोपासक चुल्लशतक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—खण्डित नहीं करोगे तो—यावत्—आर्तध्यान के वश होकर दुस्सह दुःख से पीड़ित हो असमय में ही अपने प्राण गँवा दोगे ।

"तए णं अहं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

उस पुरुष के द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार से कहने पर भी मैं निर्भय—यावत्—अपनी साधना में निरत रहा ।

"तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ममं जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता सत्त मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचइ ।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—साधनारत देखा तो देखकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर मेरे सामने मारा, मारकर मांसपिंड के सात खण्ड किये, खण्ड करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे सारे शरीर पर मांस और खून लपेट दिया ।

"तए णं अहं तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि ।

तब मैंने उस तीव्र—यावत्—वेदना को क्षमा, तितिक्षा और सहिष्णुता पूर्वक भलीभाँति सहन किया ।

"एवं मज्झिमं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि । एवं कणीयसं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि । तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता, ममं चउत्थं पि एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जाओ इमाओ छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, ताओ साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सव्वओ समंता विप्पइरामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

इसी प्रकार मध्यम पुत्र के लिए भी किया—यावत्—उस वेदना को सहनशीलता, क्षमा, तितिक्षा पूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया । कनिष्ठ पुत्र का भी यही हाल किया—यावत्—वेदना को समभाव क्षमा और तितिक्षा पूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया । तदनन्तर भी जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर चौथी बार भी यह धमकी दी कि—ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज अपने शीलों को—यावत्—भांगोगे नहीं तो मैं इसी समय कोष में रखी हुई छह स्वर्ण कोटियों, व्यापार में विनियोजित छह स्वर्ण कोटियों और घरेलू साधनों में प्रयुक्त छह स्वर्ण कोटियों को तुम्हारे घर से उठा लाऊँगा और लाकर आलभिका नगरी के श्रृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और गलियों आदि में चारों ओर बिखेर दूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख की पीड़ा से पीड़ित होकर असमय में ही अपने जीवन को गँवा दोगे ।

"तए णं अहं तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि ।

उस देव की इस धमकी को सुनकर भी मैं निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में निरत रहा ।

"तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि ममं एवं वयासी—हंभो ! चुल्लसयगा ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न भंजेसि, तो-जाव-तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

तदनन्तर भी जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी यही धमकी दी कि ओरे चुल्लशतक श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलों को—यावत्—नहीं भांगोगे तो—यावत्—तुम आर्तध्यान और दुस्सह दुःख के वश होकर असमय में ही अपनी जान गँवा बैठोगे ।

"तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि ममं एवं वुत्तस्स

उस पुरुष द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी दी गई इस

समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'अहो णं इमे पुरिसे-जाव-एयं पुरिसं गिण्हित्तए' त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे उप्पइए, मए वि य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।"

श्रमकी को सुनकर मुझे यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि—अहो यह पुरुष अधम है—यावत्—इस पुरुष को पकड़ लूं, ऐसा सोचकर मैं पकड़ने के लिए दौड़ा तो वह पुरुष ऊपर आकाश में उड़ गया और मेरे हाथों में खम्भा आ गया, इसीलिए मैं जोर-जोर से चिल्लाया।

चुल्लसयगकयपायच्छित्तं—

१८१. तए णं सा बहुला भारिया चुल्लसयगं समणोवासयं एवं वयासी—"नो खलु केइ पुरिसे तव जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु देवाणुप्पिया! तुब्भं के वि पुरिसे तव छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थर-पउत्ताओ, साओ गिहाओ नीणेत्ता आलभियाए नयरीए सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सव्वओ समंता विप्पइ-रइ, एस णं केइ पुरिसे तव उवसग्गं करेइ, एस णं तुमे विदरिसणे दिट्ठे, तं णं तुमं इयाणिं भग्गवए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं देवाणुप्पिया! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि"।

चुल्लशतक कृत प्रायश्चित्त—

१८१. इसके अनन्तर बहुलाभार्या ने चुल्लशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—न तो कोई पुरुष तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया है और न लाकर तुम्हारे सामने उसे मारा है, न कोई पुरुष तुम्हारे मध्यम पुत्र को घर से लाया और न उसे तुम्हारे सामने मारा है और न कोई पुरुष तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा कर लाया है और न उसे तुम्हारे सामने मारा है, और देवानुप्रिय! न किसी पुरुष ने कोष में रखी छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को, व्यापार में नियोजित छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को और घर गृहस्थी के साधनों में लगी हुई छह करोड़ स्वर्ण मुद्राओं को लेकर आलभिका नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और गलियों आदि में चारों ओर बिखेरा है, यह तो किसी पुरुष ने तुम पर उपसर्ग किया है, यह तो तुमने भयंकर दृश्य देखा है, अब तुम्हारा व्रत, नियम और पौषध खंडित (खोटा) हो गया है। अतएव हे देवानुप्रिय! इस स्थान-व्रतभंग रूप आचरण की आलोचना करो प्रतिक्रमण करो, निन्दा करो, गर्हा करो, इसे वित्रोटित-विच्छिन्न करो—मिटाओ, और इस अकार्य की विशुद्धि के लिए यथोचित प्रायश्चित्त करने को उद्यत होकर तपःक्रिया स्वीकार करो।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए बहुलाए भारियाए 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलो-एइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहेइ अकरणयाए अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ।

तदनन्तर चुल्लशतक श्रमणोपासक ने बहुला भार्या के कथन को 'आप ठीक कहती हो' कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके उस स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमणा, निन्दा, गर्हा, निवृत्ति, अकरणता विशुद्धि की और यथोचित प्रायश्चित्त लेते हुए तपःक्रिया स्वीकार की।

चुल्लसयगस्स उवासगपडिमा पडिवत्ती—

१८२. तए णं से चुल्लसयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहा-सुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

चुल्लशतक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

१८२. तदनन्तर उस चुल्लशतक श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा स्वीकार की और इस पहली उपासक प्रतिमा को यथा-सूत्र, यथाकल्प यथाविधि, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, पालन किया, शोधित किया, पूर्ण किया, कीर्तित किया और आराधित किया।

तदनन्तर उस चुल्लशतक श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को ग्रहण किया एवं इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को सूत्र, कल्प, विधि, तत्त्व के अनुसार सम्यक् प्रकार से ग्रहण, पालन, शोधन, तीरण, कीर्तन और आराधन किया।

तए णं से चुल्लसयए समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

चुल्लसयगस्स अणसणं—

१८३. तए णं तस्स चुल्लसयगस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, जाव य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए'।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

चुल्लसयगस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धि-गमणनिरूवणं च—

१८४. तए णं से चुल्लसयए समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ, सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणसिद्धे विमाणे देवत्ताए उववण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। चुल्लसयगस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

"से णं भंते! चुल्लसयए ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं

तदनन्तर वह चुल्लशतक श्रमणोपासक उस उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, मांस रहित अस्थिचर्मविशेष किटिकिटिकाभूत, कृश, उभरी हुई नाड़ियों जैसे शरीर वाला हो गया।

चुल्लशतक का अनशन—

१८३. तदनन्तर किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरणा करते हुए उस चुल्लशतक को यह आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इस तथा इस प्रकार के उदार, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपस्या को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थिचर्मावशेष, किटिकिटिकाभूत, कृश और उभरी हुई नाड़ियों रूप शरीर वाला हो गया हूं। लेकिन अभी भी मुझमें उत्थान कर्म—उठने-बैठने की शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य, संवेग—मुमुक्षुभाव विद्यमान है, अतएव जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेगभाव है और मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि कल रात्रि को प्रभातरूप होने, सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेजपूर्वक प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को स्वीकार करके, आहार पानी का त्याग करके, जीवन-मरण की आकांक्षा न करते हुए अपना समय व्यतीत करूं—

इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभातरूप होने—यावत्—सूर्य का उदय होने और जाज्वल्यमान तेजपूर्वक सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणांतिक संलेखना झूसणा को स्वीकार करके, भक्तपान का त्याग करके मरण की आकांक्षा न करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

चुल्लशतक का समाधिमरण देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धि गमन निरूपण—

१८४. तदनन्तर वह चुल्लशतक श्रमणोपासक के बहुत से शील-व्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित कर बीस वर्ष तक श्रावक धर्म का पालन कर, ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की भलीभांति आराधना कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर, साठ भोजनों का अनशन द्वारा त्यागकर, आलोचना प्रतिक्रमण कर मरण काल आने पर समाधिपूर्वक देह त्याग कर सौधर्मकल्प के अरुणसिद्ध विमान में देव रूप से उत्पन्न हुआ। वहां किसी-किसी देव की चार पल्योपम की स्थिति होती है। उस चुल्लशतक देव की भी चार पल्योपम की आयु स्थिति हुई।

'हे भगवन्! वह चुल्लशतक आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति-

भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

—उवासगदसाओ अ० ५

क्षय होने के अनन्तर वहाँ से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा । (श्रमण भगवान महावीर ने उत्तर दिया—)

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्ति प्राप्त करेगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा ।

॥ चुल्लशतक गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

१०. कुण्डकोलियगाहावईकहाणयं

कंपिल्लपुरे कुण्डकोलिए गाहावई—

१८५. तेणं कालेणं तेणं समएणं कंपिल्लपुरे नयरे । सहस्संबवणे उज्जाणे । जियसत्तू राया ।

तत्थ णं कंपिल्लपुरे नयरे कुण्डकोलिए नामं गाहावई परिवसइ— अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए ।

तस्स णं कुण्डकोलियस्स गाहावइस्स छ हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, छ हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, छव्वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था ।

से णं कुण्डकोलिए गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे, पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्ज-वड्ढावए यावि होत्था ।

तस्स णं कुण्डकोलियस्स गाहावइस्स पूसा नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ ।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

१८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव कंपिल्लपुरे नयरे जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

१०. कुण्डकौलिक गाथापति कथानक

कांपिल्यपुर में कुण्डकौलिक गाथापति—

१८५. उस काल और उस समय में कांपिल्यपुर नगर था । सहस्राम्रवन नाम का उद्यान था । जितशत्रु राजा था ।

उस कांपिल्य नगर में धन-धान्य से समृद्ध—यावत्—बहुत जनों से अपरिभूत कुण्डकौलिक नाम का गाथापति निवास करता था ।

उस कुण्डकौलिक गाथापति के कोष में छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें सुरक्षित थीं, छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में लगी थीं और छह करोड़ स्वर्ण मुद्रायें घर-गृहस्थी के साधनों में लगी थीं । उसकी गोशाला में छह गोकुल थे और प्रत्येक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं ।

उस कुण्डकौलिक गाथापति से बहुत से राजा—यावत्—पूछते थे, परामर्श करते थे तथा स्वयं अपने कुटुम्ब परिवार का आधार स्तम्भ—यावत्—समस्त कार्यों का प्रेरक-निर्देशक था ।

उस कुण्डकौलिक गाथापति की शुभ लक्षणों और परिपूर्ण शरीर इन्द्रिय अंगोपांग युक्त पूषा नाम की भार्या—पत्नी थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी काम भोगों को भोगती हुई विचरती थी ।

भगवान् महावीर का समवसरण—

१८६. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—जहाँ कांपिल्यपुर नगर था, जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, वहाँ पधारे और पधारकर यथाप्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

परिसा निग्गया ।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ ।

वंदना करने परिषदा निकली ।

कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा भी वंदना करने निकला—यावत्—पर्युपासना की ।

कुण्डकोलियस्स गाहावइस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं य—

कुण्डकौलिक गाथापति का समवसरण में गमन और धर्म श्रवण—

१८७. तए णं से कुण्डकोलिए गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे इहेव कंपिल्लपुरस्स नयरस्स बहिया सहस्संबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।"

तं महप्फलं खलु भो ! देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर-परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं कंपिल्लपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

१८७. तदनन्तर कुण्डकौलिक गाथापति इस समाचार को सुनकर कि पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुये श्रमण भगवान् महावीर यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुये हैं, यहाँ समवसृत हुये हैं और यहीं कांपिल्यपुर नगर के बाहर सहस्राम्र वन उद्यान में यथोचित अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुये विचरण कर रहे हैं ।"

'हे देवानुप्रियो ! तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र के सुनना भी जब महाफलदायक है तब फिर उनके सामने जाने, उनको वंदन-नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के फल के लिए तो कहना ही क्या है ? धर्माचार्य के एक सुवचन का सुनना ही जब मंगलरूप है तब फिर विपुल-बहुत से अर्थ को ग्रहण करने के विषय में तो कहना ही क्या है ? अतएव हे देवानुप्रियो ! मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ, और कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप ज्ञान-रूप उनकी पर्युपासना करूँ'—इस प्रकार का विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त किया और फिर शुद्ध, धर्मसभा में जाने योग्य मांगलिक वस्त्रों को पहना एवं बहुमूल्य अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से निकला, निकल कर कोरंट पुष्प की मालाओं युक्त छत्र को सिर पर धारण कर जन-समूह को साथ लेकर पैदल कांपिल्यपुर नगर के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था और उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित होकर शुश्रूषा करते हुए, नमस्कार करते हुए सामने विनयपूर्वक दोनों हाथ जोड़ पर्युपासना करने लगा ।

तए णं समणे भगवं महावीरे कुण्डकोलियस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने कुण्डकौलिक गाथापति और उस महती परिषदा को—यावत्—धर्म कथा सुनाई ।

परिषदा वापस लौटी, राजा भी चला गया ।

कुण्डकोलियस्स गिहिधम्मपडिवत्ती—

कुण्डकौलिक की गृही धर्म प्रतिपत्ति—

१८८. तए णं से कुण्डकोलिए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परम-

१८८. तदनन्तर कुण्डकौलिक गाथापति श्रमण भगवान महावीर से धर्मोपदेश सुनकर और हृदय में अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट,

सोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वदह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि।"

आनन्दित चित्त प्रीतिमना, परम प्रसन्न और हर्षातिरेक से विकसित हृदय होता हुआ अपने स्थान से खड़ा हुआ, खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार से अपनी भावना बताई कि 'हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति-विश्वास करता हूँ, हे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचता है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का आदर करता हूँ, हे भदन्त ! यह ऐसा ही है, हे भगवन् ! यह वैसा ही है, हे भगवन् ! यह अवितथ-सत्य है, हे भगवन् ! यह असंदिग्ध है, हे भदन्त ! यह इच्छित, प्राप्त करने योग्य है, हे भगवन् ! यह अभीप्सनीय है, हे भदन्त ! यह प्राप्तनीय और अभीप्सनीय है, जैसा आप कहते हैं, वह वैसा ही है। आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इब्भ, सेठ, सेनापति सार्थवाह आदि मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, तदनुरूप तो मैं मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूँ। अतएव आप देवानुप्रिय के पास पंचाणुव्रत, सप्त शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार करूँगा।

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

'हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख उपजे वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध-प्रमाद मत करो।' श्रमण भगवान् महावीर ने कहा।

तए णं से कुण्डकोलिए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

तदनन्तर उस कुण्डकौलिक गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर के पास श्रावक धर्म स्वीकार किया।

भगवओ जणवयविहारो—

१८९. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ कंपिल्लपुराओ नयराओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान् का जनपद विहार—

१८९. तदनन्तर किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर कांपिल्यपुर नगर और सहस्राम्रवन उद्यान से निकले तथा निकलकर बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे।

कुण्डकोलियस्स समणोवासग-चरिया—

१९०. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

कुण्डकौलिक की श्रमणोपासक चर्या—

१९० इसके अनन्तर वह कुण्डकौलिक जीवाजीवादितत्त्वों का जानकार श्रमणोपासक हो गया—यावत्—प्रासुक एषणीय, अशन-पान, खाद्य-स्वाद्य भोजन, वस्त्र, प्रतिग्रह, संयमोपकरण-पात्र आदि, कंबल, पादप्रोंछन, रजोहरण, औषधि, भैषज एवं प्रातिहारिक पीठ फलक शैया संस्तारक आसन आदि से श्रमणों निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करते हुए जीवन बिताने लगा।

पूसाए समणोवासिया-चरिया—

१९१. तए णं सा पूसा भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

पूषा की श्रमणोपासिका चर्या—

१९१. तदनन्तर वह पूषा भार्या श्रमणोपासिका हो गई, जो जीवाजीवादि तत्त्वों की ज्ञाता—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय, अशन-पान, खादिम, स्वादिम भोजन, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन औषधि, भैषज और पडिहारिय पीठ-फलक, शैया, संस्तारक आदि से प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगी।

देवेण नियतिवाद-समत्थणं—

१६२. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए अण्णया कयाइ पच्चावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया, जेणेव पुढविसिलापट्टए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता नाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

तए णं से देवे नाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढविसिलापट्टयाओ गेण्हइ, गेण्हित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिए कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—'हंभो ! कुण्डकोलिया ! समणोवासया ! सुन्दरी णं देवाणुप्पिया ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, नियता सव्वभावा; मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, अणियता सव्वभावा''।

देव द्वारा नियतिवाद-समर्थन—

१६२. तदनन्तर वह कुण्डकौलिक श्रमणोपासक किसी एक दिन दोपहर में जहाँ अशोकवाटिका थी, जहाँ पृथ्वी शिलापट्टक था, वहाँ आया, वहाँ आकर अपने नाम वाली मुद्रिका—अंगूठी और उत्तरीय दुपट्टा पृथ्वी शिलापट्टक पर रखा, रखकर श्रमण भगवान् महावीर के पास से प्राप्त धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

तब उस कुण्डकौलिक श्रमणोपासक के पास एक देव प्रादुर्भूत हुआ।

तदनन्तर उस देव ने कुण्डकौलिक की नामांकित मुद्रिका और दुपट्टा पृथ्वी शिलापट्टक से उठाया और उठाकर घुंघुरुओं सहित पंचरंगे श्रेष्ठ वस्त्रों को पहिन कर झनझनाहट करते हुए आकाश में अवस्थित हो कुण्डकौलिक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ! देवानुप्रिय ! मंखलिपुत्र गोशालक की धर्म प्रज्ञप्ति सुन्दर है कि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य पुरुषार्थ, पराक्रम को कोई स्थान नहीं है, किन्तु सभी भाव—विश्व के समस्त परिवर्तन नियत हैं—निश्चित हैं और श्रमण भगवान् महावीर का धर्मप्रज्ञप्ति-धर्म शिक्षा असुन्दर-अशोभन है कि उत्थान—प्रयत्न, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम आदि का अपना अस्तित्व है, सभी भाव अनियत-अनिश्चित हैं।

कुण्डकोलिएण नियतिवाद-निरसणं—

१६३. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी—"जइ णं देवाणुप्पिया ! सुन्दरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती 'नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे, इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, नियता सव्वभावा'; मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती 'अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, अणियता सव्वभावा'; तुमे णं देवाणुप्पिया ! इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे ? किणा पत्ते ? किणा अभिसमण्णागए ? किं उट्ठाणेणं कम्मेणं बलेणं वीरिएणं पुरिसक्कार-परक्कमेणं ? उदाहु अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं ?"

कुण्डकौलिक द्वारा नियतिवाद—निरसन—

१६३. उस देव के कथन को सुनने के अनन्तर कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा—'हे देवानुप्रिय ! यदि मंखलिपुत्र गोशालक की यह धर्मप्रज्ञप्ति—सिद्धांत निरूपण-सुन्दर है कि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम का कोई अस्तित्व नहीं है, किन्तु सभी भाव नियत हैं और श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति असुन्दर है कि उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम का अस्तित्व है, सभी भाव अनियत है, तो हे देवानुप्रिय ! तुम्हें यह इस प्रकार की दिव्य देवों ऋद्धि, दिव्य देव-द्युति-कांति, दिव्य दैविक प्रभाव, कैसे मिला है ? कैसे प्राप्त हुआ है ? कैसे अधिगत हुआ है ? क्या यह सब उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, और पराक्रम से मिला है ? अथवा अनुत्थान, अकर्म, अबल, अवीर्य, अपौरुष और अपराक्रम से प्राप्त हुआ है ?'

देवेण नियतिवाद-समत्थणं—

१६४. तए णं से देवे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं

देव द्वारा नियतिवाद समर्थन—

१६४. तदनन्तर उस देव ने कुण्डकौलिक श्रमणोपासक से कहा—'हे देवानुप्रिय ! मुझे तो यह इस प्रकार की दिव्य देव ऋद्धि, द्युति, एवं प्रभाव बिना उत्थान, बिना कर्म, बिना बल, बिना

अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए"।

वीर्य, बिना पौरुष और बिना पराक्रम के ही मिला है, प्राप्त हुआ है, अभिसमन्वित हुआ है।'

कुण्डकोलिएण नियतिवाद-निरसणं—

१९५. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए तं देवं एवं वयासी—जइ णं देवाणुप्पिया! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, जेसि णं जीवाणं नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, ते किं न देवा?

'अह तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे उट्ठाणेणं कम्मेणं बलेणं वीरिएणं पुरिसक्कार-परक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तो जं वदसि, सुन्दरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, णियता सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा अणियता सव्वभावा; तं ते मिच्छा।

कुण्डकौलिक द्वारा नियतिवाद निरसन—

१९५. देव की बात सुनने के अनन्तर कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने उस देव से कहा—'हे देवानुप्रिय! यदि तुम्हें यह, इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवकांति, दिव्य देवानुभाव—प्रभाव अनुत्थान, अबल, अवीर्य, अपुरुषार्थ अपराक्रम से मिला है, प्राप्त हुआ है, अधिगत हुआ है तो जिन जीवों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष और पराक्रम नहीं है, वे देव क्यों नहीं हुए?

और यदि तुमने यह, इस प्रकार की दिव्य दैविक ऋद्धि, दिव्य देवकांति, दिव्य देवानुभाव उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम से लब्ध किया है, प्राप्त किया है, अधिगत किया है तो तुम जो यह कहते हो कि गोशालक मंखलिपुत्र की धर्मप्रज्ञप्ति सुन्दर है, क्योंकि उसमें उत्थान नहीं है, कर्म नहीं है, बल नहीं है, वीर्य नहीं है, पौरुष नहीं है, पराक्रम नहीं है, सब भाव नियत है, और श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति असुन्दर है, क्योंकि उसमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष और पराक्रम है, और सभी भाव नियत नहीं हैं तो तुम्हारा यह सब कथन मिथ्या है।"

देवस्स पडिगमणं—

१९६. तए णं से देवे कुण्डकोलिएणं समणोवासएणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छासमावण्णे कलुससमावण्णे नो संचाएइ कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स किंचि पमोक्खमाइक्खित्तए, नाममुद्दगं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

देव का प्रतिगमन—

१९६. तदनन्तर वह देव कुण्डकौलिक श्रमणोपासक की यह बात सुनकर शंकित कांक्षित, संशययुक्त और हतप्रभ होता हुआ, कुण्डकौलिक श्रमणोपासक को कुछ भी उत्तर नहीं दे सका और नाम मुद्रिका तथा उत्तरीय-दुपट्टा वापस पृथ्वी शिलापट्टक पर रख दिया, रखकर जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

महावीर-समवसरणे कुण्डकोलियस्स गमणं धम्मसवणं च—

१९७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे, इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे इहेव कंपिल्लपुरस्स नयरस्स बहिया सहस्संबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं सेयं खलु मम समणं भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता तओ पडिणियत्तस्स पोसहं पारेत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता [पोसहसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता ?] सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते सयाओ

महावीर समवसरण में कुण्डकौलिक का गमन और धर्म-श्रवण—

१९७. उस काल और उस समय स्वामी समवसृत हुए, श्रमण भगवान् महावीर पधारे।

तब वह कुण्डकौलिक श्रमणोपासक इस संवाद को सुनकर कि 'श्रमण भगवान् महावीर क्रम-क्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम को स्पर्श करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं और यहीं कांपिल्यपुर नगर के बाहर सहस्राम्र-वन उद्यान में अपनी मर्यादा के अनुसार अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित—शुद्ध करते हुए विचरते हैं।

अतएव पहले श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ, पश्चात् वहाँ से लौटकर पौषध का पारणा करना मेरे लिए उचित है, इस प्रकार का विचार किया, विचारकर (पौषधशाला से निकला निकलकर) शुद्ध समयोचित मांगलिक उत्तम वस्त्रों

गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कम्पिल्लपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं-परिकहेइ ।

को पहनकर जन-समूह को साथ लेकर अपने घर से निकला, निकलकर काम्पिल्यपुर नगर के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, वहाँ आकर तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर के त्रिविध पर्युपासना द्वारा पर्युपासना करने लगा ।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने कुण्डकौलिक श्रमणोपासक और उस महती परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश सुनाया ।

महावीरेण पुव्ववुत्तंत-परूवण—

१६८. कुण्डकोलिया ! इ समणे भगवं महावीरे कुण्डकोलियं समणोवासयं एवं वयासी—"से नूणं कुण्डकोलिया ! कल्लं तुब्भं पच्चावरण्हकालसमयंसि असोगवणियाए एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था ।

"तए णं से देवे नाममुद्दगं च उत्तरिज्जगं च पुढविसिला-पट्टयाओ गेण्हइ, गेण्हित्ता अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवरपरिहिए तुमं एवं वयासी 'हंभो ! कुण्डकोलिया ! समणोवासया ! सुन्दरी णं देवाणुप्पिया ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परिक्कमे इ वा नियता सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती—अत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा अणियता सव्वभावा' ।

"तए णं तुमं देवं एवं वयासी—'जइ णं देवाणुप्पिया ! सुन्दरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती—नत्थि उट्ठाणे इ वा-जाव-पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा नियता सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती अत्थि उट्ठाणे इ वा-जाव-पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा अणियता सव्वभावा, तुमे णं देवाणुप्पिया ! इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे किणा लद्धे ? किणा पत्ते ? किणा अभिसमण्णागए ? किं उट्ठाणेणं-जाव-पुरिसक्कार-परक्कमेणं ? उदाहु अणुट्ठाणेणं-जाव-अपुरिसक्कार-परक्कमेणं ?'

"तए णं से देवे तुमं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे अणुट्ठाणेणं-जाव-अपुरिसक्कार-परक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए' ।

"तए णं तुमं तं देवं एवं वयासी 'जइ णं देवाणुप्पिया ! तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे अणुट्ठाणेणं-जाव-अपुरिसक्कार-परक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसम-

महावीर द्वारा पूर्ववृत्तान्त—प्ररूपण—

१६८. 'हे कुण्डकौलिक ! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने कुण्डकौलिक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—हे कुण्डकौलिक ! कल दोपहर के समय अशोक वाटिका में एक देव तुम्हारे सामने प्रगट हुआ था ।

उस देव ने तुम्हारी नाममुद्रिका और उत्तरीय पृथ्वी शिलापट्टक से उठाया, उठाकर घुंघरुओं युक्त पंचरंगे श्रेष्ठ वस्त्रों को पहिनकर झनझनाहट करते हुए आकाश में अवस्थित हो तुमसे इस प्रकार कहा—अरे श्रमणोपासक कुण्डकौलिक ! देवानुप्रिय ! गोशालक मंखलिपुत्र की धर्मप्रज्ञप्ति में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम नहीं है, सभी भाव नियत है—सुन्दर है और श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्ररूपणा में उत्थान, बल, कर्म, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम हैं और सर्व भाव अनियत हैं—असुन्दर हैं ।

तब तुमने उस देव को उत्तर दिया—हे देवानुप्रिय ! यदि गोशाल मंखलिपुत्र की धर्मप्रज्ञप्ति सुन्दर है कि उत्थान, कर्म—यावत्—पौरुष-पराक्रम नहीं है और सब भाव नियत है तथा श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति में उत्थान, कर्म-यावत्-पुरुषाकार पराक्रम हैं और सब भाव अनियत—परिवर्तनशील हैं—असुन्दर है तो हे देवानुप्रिय ! तुम्हें जो यह इस प्रकार की दिव्य देवर्द्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य दैविक प्रभाव कैसे मिला है, कैसे प्राप्त हुआ है, कैसे अधिगत हुआ है ? क्या उत्थान—यावत्—पुरुषाकार पराक्रम से मिला है ? अथवा अनुत्थान—यावत्—अपौरुष-अपराक्रम से अधिगत हुआ है ?'

तब उस देव ने तुमसे यह कहा—'हे देवानुप्रिय ! मुझे यह इस प्रकार की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव अनुत्थान—यावत्—अपुरुषाकार-अपराक्रम से मिला है प्राप्त और अभिसमन्वित हुआ है ।'

देव के इस कथन को सुनकर तुमने उस देव से कहा—'हे देवानुप्रिय ! यदि तुम्हें यह इस प्रकार की दिव्य देवऋद्धि-देवद्युति, अनुभाव अनुत्थान—यावत्—अपौरुष-अपराक्रम से लब्ध,

ण्णागए, जेसि णं जीवाणं नत्थि उट्ठाणे इ वा-जाव-परक्कमे इ वा, ते किं न देवा ? अह तुमे इमा एयारूवा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुई दिव्वे देवाणुभावे उट्ठाणेणं-जाव-परक्कमेणं लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तो जं वदसि सुन्दरी णं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स धम्मपण्णत्ती नत्थि उट्ठाणे इ वा-जाव-नियता सव्वभावा, मंगुली णं समणस्स भगवओ महावीरस्स धम्मपण्णत्ती अत्थि उट्ठाणे इ वा-जाव-अणियता सव्वभावा, तं ते मिच्छा'।

"तए णं से देवे तुमं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छासमावण्णे कलुससमावण्णे नो संचाएइ तुमे किंचि पमोक्खमाइक्खित्तए, नाममुद्दगं च उत्तरिज्जयं च पुढविसिलापट्टए ठवेइ, ठवेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए। से नूणं कुण्डकोलिया ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि"।

प्राप्त और अभिगत हुआ है तो जिन जीवों में उत्थान नहीं है—यावत्—पराक्रम नहीं है तो वे देव क्यों नहीं हुये ? अथवा तुम्हें यह इस प्रकार की दिव्य देव-ऋद्धि, दिव्य देवद्युति, दिव्य देवानुभाव उत्थान—यावत्—पराक्रम से लब्ध, प्राप्त और अभिसमन्वित हुआ है तो तुम जो यह कहते हो कि गोशाल मंखलिपुत्र की धर्मप्रज्ञप्ति में उत्थान नहीं है—यावत्—सभी भाव नियत हैं, सुन्दर हैं और श्रमण भगवान् महावीर की धर्मप्रज्ञप्ति में उत्थान है—यावत्—सभी भाव अनियत हैं, असुन्दर है तो तुम्हारा यह कथन मिथ्या है।'

तदनन्तर वह देव तुम्हारे इस कथन को सुनकर शंका, कांक्षा और संशययुक्त होता हुआ हतप्रभ हो तुम्हें कुछ उत्तर नहीं दे सका और वापस पृथ्वी शिलापट्टक पर उसने तुम्हारी नाम मुद्रिका एवं उत्तरीय को रख दिया, रखकर जिस दिशा में प्रादुर्भूत हुआ था, उसी दिशा में लौट गया। हे देवानुप्रिय कुण्डकौलिक ! क्या मेरा कथन ठीक है ?

हाँ भगवन् ! यह ठीक है। ऐसा ही हुआ था। कुण्डकौलिक ने उत्तर दिया।"

महावीरेण कुण्डकोलियस्स पसंसा—

१९९. अज्जो ! समणे भगवं महावीरे समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—"जइ ताव अज्जो ! गिहिणो गिहिमज्झावसंता अण्णउत्थिए अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य निप्पट्ठ-पसिणवागरणे करेंति, सक्का पुणाइं अज्जो ! समणेहिं निग्गंथेहिं दुवालसंगं गणिपिडगं अहिज्जमाणेहिं अण्णउत्थिया अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य निप्पट्ठ-पसिणवागरणा करेत्तए"।

तए णं समणा निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ महावीरस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठमादियइ, अट्ठमादित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

महावीर द्वारा कुण्डकौलिक की प्रशंसा—

१९९. हे आर्यो ! इस प्रकार से उपस्थित श्रमण निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थिनियों को सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने कहा—"हे आर्यो ! यदि घर में रहने वाले गृहस्थ भी अन्य तीर्थिकों को अर्थ, हेतु, प्रश्न, कारण, युक्ति और व्याख्या द्वारा निरुत्तर कर देते हैं तो हे आर्यो ! द्वादशांग रूप गणिपिटक का अध्ययन करने वाले श्रमण निर्ग्रन्थ तो अन्यमतावलम्बियों को अर्थ, हेतु, प्रश्न, युक्ति और विश्लेषण द्वारा निरुत्तर करने में समर्थ हैं ही।

ऐसा ही है भगवन् ! कहकर उन साधु-साध्वियों ने श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तदनन्तर उस कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके प्रश्न पूछे, पूछकर समाधान प्राप्त किया और तत्पश्चात् जिस ओर से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

भगवओ जणवयविहारो—

२००. सामी बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान् का जनपद विहार—

२००. स्वामी (भगवान् महावीर) अन्य जनपदों में विहार करने लगे।

कुण्डकोलियस्स धम्मजागरिया—

२०१. तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स

कुण्डकौलिक की धर्म जागरिका—

२०१. तदनन्तर उस कौण्डकौलिक श्रमणोपासक के अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों-प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये

अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं कंपिल्लपुरे नयरे बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।"

और जब पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था तब किसी एक समय मध्य रात्रि में धर्मजागरिका से जागरण करते हुये इस प्रकार का आन्तरिक, चिन्तित, प्रार्थित और मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि कांपिल्यपुर में मुझे बहुत से राजा—यावत्—पूछते हैं, परामर्श करते है तथा स्वयं भी अपने कुटुम्ब का आधार स्तम्भ हूँ—यावत्—संपूर्ण कार्यों का प्रेरक हूँ, अतएव इस व्यवधान-बाधा के कारण श्रमण भगवान् महावीर से प्राप्त की हुई धर्म-प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके मैं अपना समय व्यतीत नहीं कर पाता हूं।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता कंपिल्लपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमि पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणि-सुवण्णं ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तदनन्तर उस कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, जातिबंधुओं, निजी स्वजन-संबन्धियों और परिचित जनों से अनुमति ली, अनुमति लेकर अपने घर से निकला, निकलकर कांपिल्यपुर नगर के मध्य भाग में से होता हुआ जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला को बुहारा, बुहार कर उच्चार-प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रति-लेखना करके घास का आसन बिछाया, बिछाकर उस दर्भ संस्तारक-घास के आसन पर आरूढ़ हुआ और पौषधशाला में पौषधव्रत धारण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक मणि-स्वर्णादिक के आभूषणों, पुष्पमालाओं, वर्णक, विलेपनों एवं मूसल आदि शस्त्रों का त्यागकर एकाकी अद्वितीय हो दर्भ संस्तारोपगत हो श्रमण भगवान् महावीर से ली हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

कुण्डकोलियस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

२०२. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहा-सुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

कुण्डकौलिक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

२०२. तदनन्तर कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा की आराधना प्रारम्भ की और उस पहली उपासक प्रतिमा को सूत्रकल्प, विधि और यथार्थ के अनुरूप सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, उसका पालन-शोधन किया, उसको पूर्ण किया, उसका कीर्तन-अभिनन्दन और आराधन किया।

तदनन्तर उस कुण्डकौलिक श्रमणोपासक ने उसी प्रकार से दूसरी उपासक प्रतिमा की आराधना की और तत्पश्चात् तीसरी चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवी, ग्यारहवी उपासक प्रतिमा की आराधना की और उनका यथाश्रुत यथा-कल्प, यथामार्ग एवं यथातत्त्व भलीभांति स्पर्श, पालन, शोधन तीरण, कीर्तन एवं आराधन किया।

तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

तदनन्तर वह कुण्डकौलिक श्रमणोपासक इस और इस प्रकार के उदार विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष निर्मांस अस्थिचर्मावशेष, किटिकिटिकाभूत कृश लोहार की धौंकनी जैसे शरीर वाला हो गया।

कुण्डकोलियस्स अणसणं—

२०३. तए णं तस्स कुण्डकोलियस्स समणोवासगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं

कुण्डकौलिक का अनशन—

२०३. इसके अनन्तर उस कुण्डकौलिक श्रमणोपासक को किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्म जागरणा करते हुये यह आध्या-

अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडिया-भूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइ-क्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए'। एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिम-मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंख-माणे विहरइ।

कुण्डकोलियस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धि-गमणनिरूवणं च—

२०४. तए णं से कुण्डकोलिए समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ, सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडिंसगस्स महा-विमाणस्स उत्तर-पुरत्थिमेणं अरुणज्झए विमाणे देवत्ताए उव-वण्णे। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

"से णं भंते ! कुण्डकोलिए ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—उवासगदसाओ अ० ६

त्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि मैं इस और इस प्रकार के प्रधान, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को ग्रहण करने से शुष्क, रूक्ष मांसरहित, अस्थि-चर्मावशेष किड़किडाहट करने कृश और धौंकनी रूप शरीर वाला हो गया हूँ, फिर भी अभी मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेगभाव विद्यमान है, अतएव जब तक मुझ में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार-पराक्रम, श्रद्धा धैर्य, संवेग-भाव है और—यावत्—मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर विचरण कर रहे हैं तब तक मेरे लिये यह करना उचित है कि कल रात्रि के प्रभातरूप होने, सूर्य का उदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिन-कर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना झूंसणा को स्वीकार कर आहार पानी का त्यागकर, जीवन मरण की आकांक्षा न रखते हुये अपना समय व्यतीत करूं—यह विचार किया और विचार करने के पश्चात् रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्योदय तथा सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को अंगीकार करके भक्त-पान को छोड़कर मरण की आकांक्षा न रखते हुये विचरण करने लगा।

कुण्डकौलिक का समाधिमरण, देव लोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धि गमन निरूपण—

२०४. इसके पश्चात् वह कुण्डकौलिक श्रमणोपासक अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों पौषधोप-वासों से आत्मा को शुद्ध कर बीस वर्ष की श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर ग्यारह उपासक प्रतिमाओं को समीचीन रूप से ग्रहण कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर साठ भक्त-आहारों को अनशन द्वारा छोड़कर, आलोचना, प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि सहित मरण समय में मरण करके सौधर्म कल्प के सौधर्मावतंसक महाविमान से उत्तर पूर्व दिग्भाग—ईशानकोण में स्थित अरुणध्वज विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ किसी-किसी देव की चार पल्योपम की स्थिति बताई गई है।

'हे भदन्त ! वह कुण्डकौलिक आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति-क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम स्वामी ने भगवान महा-वीर से पूछा।

भगवान् ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा, बोधि-केवल ज्ञान प्राप्त करेगा, कर्म मुक्त होगा और सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

॥ कुण्डकौलिक गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

११. सद्दालपुत्ते-कुम्भकारकहाणगं

पोलासपुरे सद्दालपुत्तो—

२०५. तेणं कालेणं तेणं समएणं पोलासपुरं नामं नयरं। सहस्संबवणं उज्जाणं। जियसत्तू राया।

तत्थ णं पोलासपुरे नयरे सद्दालपुत्ते नामं कुम्भकारे आजीविओवासए परिवसइ। आजीवियसमयंसि लद्धट्ठे गहियट्ठे पुच्छियट्ठे विणिच्छियट्ठे अभिगयट्ठे अट्ठिमिंजपेमाणुरागरत्ते। "अयमाउसो! आजीवियसमए अट्ठे अयं परमट्ठे सेसे अणट्ठे" त्ति आजीविय-समएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्का हिरण्णकोडी निहाणपउत्ताओ एक्का हिरण्णकोडी वड्ढिपउत्ताओ, एक्का हिरण्णकोडी पवित्थरपउत्ताओ, एक्के वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स अग्गिमित्ता नामं भारिया होत्था।

तस्स णं सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पोलासपुरस्स नगरस्स बहिया पंच कुम्भारावणसया होत्था।

तत्थ णं बहवे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्तवेयणा कल्लाकल्लिं बहवे करए य वारए य पिहडए य घडए य अद्धघडए य कलसए य अलिंजरए य जंबूलए य उट्टियाओ य करेंति। अण्णे य से बहवे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्तवेयणा कल्लाकल्लिं तेहिं बहूहिं करएहि य वारएहि य पिहडएहि य घडएहि य अद्धघडएहि य कलसएहि य अलिंजरएहि य जंबूलएहि य उट्टियाहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

सद्दालपुत्तपुरओ देवकया महावीरपसंसा—

२०६. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ पच्चावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया, तेणेव उवागच्छइ,

११. सद्दालपुत्र कुम्भकार कथानक

पोलासपुर में सद्दालपुत्र—

२०५. उस काल और उस समय में पोलासपुर नाम का नगर था। सहस्राम्रवन नामक उद्यान था। जितशत्रु वहाँ का राजा था।

उस पोलासपुर नगर में आजीविक गोशालक मत का अनुयायी सद्दालपुत्र नामक कुम्भकार—कुम्हार रहता था। वह आजीविक मत में लब्धार्थ था, अर्थात् उस सिद्धान्त को उसने अच्छी तरह समझा था, गृहीतार्थ था—उसे ग्रहण-स्वीकार किये हुए था, पृष्ठार्थ—प्रश्नोत्तर द्वारा स्पष्ट किया हुआ था, विनिश्चितार्थ—निश्चित—अर्थ को आत्मसात् किये हुए था, अभिगतार्थ—पूरी तरह से जाना हुआ था, आजीविक सिद्धांतों के प्रति प्रेम तथा अनुराग अस्थि और मज्जापर्यन्त समाया हुआ था और उसकी निश्चित धारणा थी कि 'हे आयुष्मन्! यह आजीविक मत-सिद्धांत ही अर्थ—प्रयोजन भूत है, परमार्थ है, और इसके सिवाय शेष दूसरे सिद्धान्त अनर्थ—अप्रयोजन भूत है, इस विश्वासपूर्वक वह आजीविक मतानुसार आत्मा को भावित करते हुये विचरता था।

उस आजीविकोपासक सद्दालपुत्र के कोष में एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें संचित थीं, एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में विनियोजित थीं और एक करोड़ स्वर्णमुद्रायें घर गृहस्थी के साधन-उपकरणों में लगी थीं। तथा दस हजार गायों वाला एक व्रज-गोकुल उसकी गोशाला में था।

उस आजीविकोपासक सद्दालपुत्र की भार्या का नाम अग्निमित्रा था।

उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक की पोलासपुर नगर के बाहर पाँच सौ बर्तन के आपण—व्यवसाय स्थान दुकानें अथवा कर्मशालायें कारखाने थे।

उनमें बहुत से पुरुष दिनभृति—दैनिक मजदूरी, भोजन और वेतन लेकर प्रतिदिन प्रभात होते ही बहुत से करक-करवे, वारक पिठर-परातें-कुंडियाँ, घटक-घड़े, बड़े घड़े-नांदें, अर्धघट-छोटे घड़े, कलश, अलिंजर-पानी भरने की बड़ी-बड़ी कोठियाँ, जंबूलक-सुराहियाँ, उष्ट्रिका-घी तेल रखने की कुप्पियाँ बनाते थे तथा और दूसरे भी बहुत से व्यक्ति दैनिक मजदूरी, भोजन और वेतन लेकर सुबह होते ही बहुत से करवे, वारक, पिठर, घड़े, अर्धघट, कलश, अलिंजर, जंबूलक, उष्ट्रिका, आदि लेकर राजमार्गों पर बैठकर उनकी बिक्री में लग जाते थे।

सद्दालपुत्र के आगे देवकृत महावीर प्रशंसा—

२०६. तदनन्तर वह आजीविकोपासक सद्दालपुत्र किसी एक समय दोपहर के समय जहाँ अशोकवाटिका थी, वहाँ आया,

उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एक्के देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिए सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"एहिइ णं देवाणुप्पिया! कल्लं इहं महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे तीयप्पडुप्पण्णऽणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्कवहिय-महिय-पूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे णमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे तच्च-कम्मसंपयासंपउत्ते। तं णं तुमं वंदेज्जाहि णमंसेज्जाहि सक्कारेज्जाहि सम्माणेज्जाहि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जाहि पाडिहारिएण पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेज्जाहि"। दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए, तामेव दिसं पडिगए।

और आकर गोशाल मंखलिपुत्र से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

तदनन्तर उस आजीविकोपासक सद्दालपुत्र के पास एक देव प्रादुर्भूत हुआ।

इसके पश्चात् घुंघरुओं से युक्त पाँच वर्ण के उत्तम वस्त्रों को पहने हुए आकाश में अवस्थित उस देव ने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! कल (आगामी दिन) प्रातःकाल यहाँ महामाहण-महान अहिंसक, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक, अतीत-वर्तमान-भविष्य-तीनों काल के ज्ञाता, अर्हत जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रैलोक्य-वहित—तीनों लोक जिनके दर्शन को उत्सुक रहते हैं, महित—जिनकी उपासना करने के आकांक्षी, पूजित—देवों मनुष्यों और असुरों के अर्चनीय, पूजनीय, वंदनीय, नमस्करणीय सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप, चैत्यरूप, ज्ञानस्वरूप, पर्युपासना करने योग्य तथ्य कर्म सम्पदा संप्रयुक्त-सत्कर्म रूप संपत्ति से युक्त भगवान् (महावीर) पधारेंगे अतएव तुम उन्हें वंदन करना-नमस्कार करना, उनका सत्कार-सम्मान करना, एवं कल्याण, मंगल, देव, चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करना तथा प्राडिहारिय पीठ, फलक, शैया, संस्तारक आदि के हेतु उन्हें आमंत्रित करना। दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से कहा और कहकर फिर जिस दिशा में प्रादुर्भूत हुआ था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

सद्दालपुत्तस्स गोसालवंदणसंकप्पो—

२०७. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तेणं देवेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—"एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते से णं महामाहणे उप्पण्ण-णाणदंसणधरे तीयप्पडुप्पण्णाणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्कवहिय-महिय-पूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे णमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे तच्च-कम्म-संपया-संपउत्ते, से णं कल्लं इह हव्वमागच्छिस्सति। तए णं तं अहं वंदिस्सामि णमंसिस्सामि सक्कारेस्सामि सम्माणेस्सामि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासिस्सामि पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतिस्सामि।"

सद्दालपुत्र का गोशालक वंदन संकल्प—

२०७. इसके अनन्तर उस देव की इस बात को सुनकर आजीविकोपासक सद्दालपुत्र को इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक महामाहण, अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक अतीत, वर्तमान, अनागतकाल के ज्ञाता, अर्हंत, जिन, केवली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीनों लोक अत्यन्त हर्ष पूर्वक जिनके दर्शन के लिये उत्सुक रहते हैं, जिनकी सेवा-उपासना की वांछा लिए रहते हैं, पूजा करते हैं, देव, मनुष्य तथा असुर—सभी के द्वारा अर्चनीय, पूजनीय-वंदनीय, नमस्करणीय-सत्कारणीय, संमाननीय कल्याण, मंगल देव, चैत्य स्वरूप, पर्युपासनीय, सत्कर्म संपत्तियुक्त, गोशाल मंखलिपुत्र कल यहाँ पधारेंगे। तब मैं उनको वंदन नमस्कार करूंगा, उन का सत्कार सम्मान करूंगा, कल्याण, मंगल देव, चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करूंगा और प्रतिहारिक पीठ फलक, शैया, संस्तारक हेतु आमंत्रित करूंगा।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं; सद्दालपुत्तस्स धम्मसवणं च—

भगवान् महावीर का समवसरण और सद्दालपुत्र का धर्म-श्रवण—

२०८. तए णं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलु-

२०८. तदनन्तर कल रात्रि बीत जाने पर प्रभात हो जाने पर नीले और अन्य प्रकार के कमलों के सुहावने रूप से खिल जाने

म्मिलियंमि अहपंडुरे पभाए रत्तासोगप्पगास—किंसुय-सुयमुह-गुंजद्धरागसरिसे कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणे भगवं महावीरे-जाव-जेणेव पोलासपुरे नयरे जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

पर उज्ज्वल प्रभा एवं लाल अशोक किंशुक, तोते की चोंच घुंघची के आधे भाग के रंग के सदृश, लालिमा लिये हुए, कमलवन-समूह को विकसित करने वाले, दिन को करने वाले सहस्ररश्मि युक्त सूर्य के उदित होने पर, अपने तेज सहित उद्दीप्त होने पर श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—जहाँ पोलासपुर नगर था जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, वहाँ आये, आकर यथायोग्य अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरण करने लगे ।

परिसा निग्गया । कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ ।

वंदन करने परिषदा निकली । कोणिक राजा की तरह जितशत्रु राजा भी वंदना करने निकला—यावत्—पर्युपासना की ।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे इहेव पोलासपुरस्स नयरस्स बहिया सहस्संबवणे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।" तं गच्छामि णं समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे मणुस्सवग्गुरापरिगए साओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पोलासपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

इसके अनन्तर आजीविकोपासक सद्दालपुत्र ने इस वृत्तान्त को सुना कि 'श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में विहार करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं और यहाँ समवसृत हुए हैं एवं यहीं पोलासपुर नगर के बाहर सहस्राम्रवन उद्यान में यथाप्रतिरूप अवग्रह को लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए अवस्थित हैं ।' अतएव मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार-सम्मान करूँ, कल्याण, मंगल, देव, चैत्य स्वरूप उनकी पर्युपासना करूँ, ऐसा विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त किया, और शुद्ध, सभा में जाने योग्य मांगलिक उत्तम वस्त्रों को पहना तथा बहुमूल्य अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर मनुष्य समूह को साथ लेकर अपने घर से निकला, निकलकर पोलासपुर नगर के मध्यभाग से निकला, निकलकर जहाँ सहस्राम्रवन उद्यान था, उसमें जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, वहाँ आकर तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके न अति दूर एवं न अति समीप—यथोचित स्थान पर स्थित हो शुश्रूषा करते हुए नमस्कार करते हुए विनय-पूर्वक सन्मुख हाथ जोड़ कर पर्युपासना की ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्म देशना दी ।

महावीरेण देवकयपसंसानिरूवणं—

२०६. सद्दालपुत्ता ! इ समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"से णूणं सद्दालपुत्ता ! कल्लं तुमं पच्चावरण्हकालसमयंसि जेणेव असोगवणिया, तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंप-

महावीर द्वारा देवकृत प्रशंसा निरूपण—

२०६. सद्दालपुत्र ! इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को संबोधित कर यह कहा—"हे सद्दालपुत्र ! कल दोपहर के समय जब तुम अशोकवाटिका में आकर गोशाल मंखलिपुत्र से ग्रहण की हुई धर्म प्रज्ञप्ति को

पन्नत्तिं॰ विहरसि। तए णं तुब्भं एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

"तए णं से देवे अंतलिक्खपडिवण्णे सखिंखिणियाइं पंचवण्णाइं वत्थाइं पवर परिहिए तुमं एवं वयासी—हंभो! सद्दालपुत्ता! एहिइ णं देवाणुप्पिया! कल्लं इहं महामाहणे-जाव-तच्च-कम्म-संपया-संपउत्ते। तं णं तुमं वंदेज्जाहि णमंसेज्जाहि सक्कारेज्जाहि सम्माणेज्जाहि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासेज्जाहि, पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेज्जाहि।' दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयइ, वइत्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

"तए णं तुब्भं तेणं देवेणं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—"एवं खलु मम धम्मायरिए धम्मोवएसए गोसाले मंखलिपुत्ते, से णं महामाहणे-जाव-तच्च-कम्मसंपया-संपउत्ते, से णं कल्लं इह हव्वमागच्छिस्सति। तए णं तं अहं वंदिस्सामि णमंसिस्सामि सक्कारेस्सामि सम्माणेस्सामि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासिस्सामि, पाडिहारिएण पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतिस्सामि'।

से णूणं सद्दालपुत्ता! अट्ठे समट्ठे?"

"हंता अत्थि"।

तं नो खलु सद्दालपुत्ता! तेणं देवेणं गोसालं मंखलिपुत्तं पणिहाय एवं वुत्ते।

स्वीकार करके विचरण कर रहे थे तब एक देव तुम्हारे सामने प्रगट हुआ था।

तदनन्तर घुंघरूओं युक्त पंच वर्ण के उत्तम वस्त्रों को पहने हुए आकाश में अवस्थित हो उस देव ने तुमसे इस प्रकार कहा था कि 'हे सद्दालपुत्र! देवानुप्रिय! सुनो कि कल यहाँ महामाहण—यावत्—तथ्यकर्म-सत्कर्म-संपत्ति युक्त पधारेंगे। तब तुम उनको वंदन-नमस्कार करना, सत्कार-सम्मान करना और कल्याण, मंगल, देव-चैत्य-स्वरूप उनकी पर्युपासना करना तथा प्रतिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक हेतु उन्हें आमंत्रित करना। दूसरी बार तथा तीसरी बार भी यों कहा, कहकर जिस दिशा से आया था उसी दिशा में चला गया।

तब उस देव के ऐसा करने पर तुम्हारे मन में ऐसा अध्यात्म विचार, चिन्तन, प्रार्थना और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ, निश्चय ही मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशालक हैं, वे ही महामाहन—यावत्—सत्कर्म की संपत्ति से युक्त हैं, वे ही कल यहाँ पधारेंगे।' तब मैं उनको वंदना-नमस्कार, सत्कार सम्मान करूँगा, कल्याण-मंगल-देव-चैत्य-स्वरूप उनकी पर्युपासना करूँगा। प्रतिहारिक-पीठ-फलक-शैया-संस्तारक से उपनिमंत्रित करूँगा।"

"तो हे सद्दालपुत्र! मेरा यह कथन सत्य है?"

हाँ भगवन्! यह कथन यथार्थ है।' सद्दालपुत्र ने उत्तर दिया।

'हे सद्दालपुत्र! उस देव ने यह बात गोशाल मंखलिपुत्र को लक्ष्य करके नहीं कही थी'—भगवान् ने फिर कहा।

सद्दालपुत्तस्स निवेदणं—

२१०. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासयस्स समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—"एस णं समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे तीयप्पडुप्पण्णाणागय-जाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्कवहिए-महिय-पूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे णमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे तच्च-कम्मसंपया-संपउत्ते। तं सेयं खलु ममं समणं भगवं महावीरं वंदित्ता णमंसित्ता पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेत्तए"। एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु भंते! मम पोलासपुरस्स

सद्दालपुत्र का निवेदन—

२१०. तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक को यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि ये श्रमण भगवान् महावीर महामाहण अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारक, अतीत, वर्तमान, अनागत समय के ज्ञाता, अरहा, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, त्रैलोक्य वहित, महित, पूजित, देव, मनुष्य और असुर तथा संपूर्ण लोक के अर्चनीय, पूजनीय, वंदनीय, नमस्करणीय, सत्कारणीय, सम्माननीय, कल्याण-मंगल-देव-चैत्यरूप, पर्युपासनीय—यावत्—सत्कर्म-संपत्ति-संप्रयुक्त हैं। अतएव मेरे लिए यह उचित है कि श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करके प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक हेतु आमंत्रित करूँ। ऐसा विचार किया और विचार करके अपने बैठने के स्थान से उठकर खड़ा हुआ, खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके यह कहा—'हे भदन्त! पोलासपुर नगर के बाहर मेरी

नयरस्स बहिया पंच कुम्भारावणसया। तत्थ णं तुब्भे पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरह"।

पाँच सौ कुम्हारगिरी की कर्मशालायें हैं। आप वहाँ प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, सस्तारक ग्रहण कर विराजें।"

महावीरेण सद्दालपुत्त-संबोधणं—

२११. तए णं से समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स पंचसु कुम्भारावणसएसु फासु-एसणिज्जं पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए अण्णया कयाइ वाताहतयं कोलालभंडं अंतो सालाहितो बहिया नीणेइ, नीणेत्ता आयवंसि दलयइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता ! एस णं कोलालभंडे कहं कतो ?"

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—"एस णं भंते ! पुव्विं मट्टिया आसी, तओ पच्छा उदएणं तिम्मिज्जइ, तिम्मिज्जित्ता छारेण य करिसेण य एगयओ मीसिज्जइ, मीसिज्जित्ता चक्के आरुभिज्जति, तओ बहवे करगा य वारगा य पिहडगा य घडगा य अद्धघडगा य कलसगा य अलिंजरगा य जंबूलगा य उट्टियाओ य कज्जंति"।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता ! एस णं कोलालभंडे किं उट्ठाणेणं कम्मेण बलेणं वीरिएणं पुरिसक्कार-परक्कमेणं कज्जंति, उदाहु अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं कज्जंति ?"

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—"भंते अणुट्ठाणेणं अकम्मेणं अबलेणं अवीरिएणं अपुरिसक्कारपरक्कमेणं। नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, नियता सव्वभावा।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तं आजीविओवासयं एवं वयासी—"सद्दालपुत्ता ! जइ णं तुब्भं केइ पुरिसे वाताहतं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेज्ज वा विक्खिरेज्ज वा भिंदेज्ज वा अच्छिंदेज्ज वा परिट्ठवेज्ज वा, अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरेज्जा, तस्स णं तुमं पुरिसस्स कं दंडं वत्तेज्जासि ?"

"भंते अहं णं तं पुरिसं आओसेज्ज वा हणेज्ज वा बंधेज्ज वा महेज्ज वा तज्जेज्ज वा तालेज्ज वा निच्छोडेज्ज वा निब्भच्छेज्ज वा, अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेज्जा"।

महावीर द्वारा सद्दालपुत्र-संबोधन—

२११. तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने आजीविकोपासक सद्दालपुत्र का वह निवेदन स्वीकार किया और स्वीकार करके सद्दालपुत्र आजीविकोपासक की पाँच सौ कुम्हारगिरी की कर्मशालाओं से प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक ग्रहण कर वहीं विराजे।

इसके अनन्तर किसी एक दिन उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक ने हवा से कुछ सूखे हुए मिट्टी के बर्तनों को अन्दर के कोठे से बाहर लाकर सुखाने के लिए धूप में रखे।

तब यह देखकर श्रमण भगवान् महावीर ने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक से पूछा—"हे सद्दालपुत्र ! ये मिट्टी के बर्तन कैसे बने ?"

इस पर आजीविकोपासक सद्दालपुत्र ने श्रमण भगवान् महावीर को बताया कि 'हे भदन्त ! सर्वप्रथम मिट्टी लाये, उसके बाद पानी से उसे भिगोया, फिर राख गोबर के साथ उसे मिलाया, मिलाकर चाक पर रखा, तब ये बहुत से करवे, वारक, मडए, पिहड, परात, घट, अर्धघट, कलश, अलिंजरक (बड़े मटके) जंबूलक (सुराहियाँ) और उष्ट्रिका आदि बनाते हैं।"

इसके अनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने आजीविकोपासक सद्दालपुत्र से यह पूछा—'हे सद्दालपुत्र ! ये सब मिट्टी के बर्तन क्या प्रयत्न, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार-पराक्रम से बनाते हो अथवा बिना उत्थान कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, पराक्रम के बनते हैं ?"

उत्तर में उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर से कहा—'हे भदन्त ! यह सब बर्तन उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम के बिना बनते हैं। उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम का कोई अर्थ—अस्तित्व—स्थान नहीं है, सभी भाव-होने वाले कार्य नियत-निश्चित हैं।"

इस उत्तर को सुनकर श्रमण भगवान् महावीर ने आजीविकोपासक सद्दालपुत्र से कहा—'हे सद्दालपुत्र ! यदि कोई पुरुष हवा लगे हुए या धूप में सूखे हुए या पके हुए मिट्टी के बर्तनों को चुराले बिखेर दे, फोड़ दे, छीन ले, या फैंक दे अथवा अग्निमित्रा भार्या के साथ विपुल भोगोपभोगों को भोगे तो क्या तुम उस पुरुष को दण्ड दोगे ?"

'हे भगवन् ! मैं उस पुरुष को उपालंभ दूँगा, फटकारूँगा, पीटूँगा, बाँधूँगा, कुचल दूँगा, तर्जना करूँगा, चेतावनी दूँगा, ताड़ना दूँगा, निर्भर्त्सना करूँगा, अथवा अकाल में ही मार डालूँगा।" सद्दालपुत्र ने उत्तर दिया।

"सद्दालपुत्ता ! नो खलु तुब्भं केइ पुरिसे वाताहतं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरइ वा विक्खिरइ वा भिंदइ वा अच्छिंदइ वा परिट्ठवेइ वा; अग्गिमित्ताए भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे विहरइ; नो वा तुमं तं पुरिसं आओसेसि वा हणेसि वा बंधेसि वा महेसि वा तज्जेसि वा तालेसि वा निच्छोडेसि वा निब्भच्छेसि वा अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेसि, जइ नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परिक्कमे इ वा, नियता सव्वभावा। अह णं तुब्भं केइ पुरिसे वाताहतं वा पक्केल्लयं वा कोलालभंडं अवहरेइ वा विक्खिरेइ वा भिंदेइ वा अच्छिंदेइ वा परिट्ठवेइ वा अग्गिमित्ताए वा भारियाए सद्धिं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, तुमं वा तं पुरिसं आओसेसि वा हणेसि वा बंधेसि वा महेसि वा तज्जेसि वा तालेसि वा निच्छोडेसि वा निब्भच्छेसि वा, अकाले चेव जीवियाओ ववरोवेसि, तो जं वदसि नत्थि उट्ठाणे इ वा कम्मे इ वा बले इ वा वीरिए इ वा पुरिसक्कार-परक्कमे इ वा, नियता सव्वभावा, तं ते मिच्छा"।

इस पर भगवान् महावीर बोले— 'हे सद्दालपुत्र ! उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम नहीं हैं सभी भाव नियत हैं तुम्हारी इस मान्यता के अनुसार न तो कोई पुरुष तुम्हारे हवा लगे हुए, पके हुए मिट्टी के बर्तनों को चुराता है, बिखेरता है, फोड़ता है, छीनता है, फैंकता है और न अग्निमित्रा भार्या के साथ विपुल काम भोगों को भोगता है और न तुम उस पुरुष को फटकारते हो, न पीटते हो, न बाँधते हो, न रौंदते हो, न तर्जना देते हो, न थप्पड़ घूँसे मारते हो, न छीनाझपटी करते हो न उसकी भर्त्सना करते हो और न असमय में उसके प्राण लेते हो।

इसके विपरीत यदि कोई पुरुष तुम्हारे हवा लगे हुए, पके हुए मिट्टी के बर्तनों को चुराता है, बिखेरता है, फोड़ता है, छीनता है, फैंकता है अथवा अग्निमित्रा भार्या के साथ विपुल काम भोगों को भोगता है और तब तुम उस पुरुष को फटकारते हो, पीटते हो, बाँधते हो, कुचलते हो, रौंदते हो, तर्जना करते हो, थप्पड़ घूँसा मारते हो, छीनाझपटी करते हो, भला-बुरा कहते हो और असमय में ही उसके प्राण ले लेते हो तो फिर जो तुम यह कहते हो कि उत्थान, बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम नहीं हैं, सब भाव नियत हैं, यह कथन मिथ्या है।'

एत्थ णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए संबुद्धे।

यह सुनकर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक संबुद्ध हुआ अर्थात् सत्य बात को समझ गया।

सद्दालपुत्तस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

सद्दालपुत्र की गृहिधर्म प्रतिपत्ति—

२१२. तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भं अंतिए धम्मं निसामेत्तए।

तए णं समणे भगवं महावीरे सद्दालपुत्तस्स आजीविओवासगस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं-परिकहेइ।

२१२. तदनन्तर सद्दालपुत्र आजीविकोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके प्रार्थना की—'हे भदन्त ! मैं आप से धर्म सुनना चाहता हूँ।'

तब श्रमण भगवान महावीर ने सद्दालपुत्र आजीविकोपासक और उस महती विशाल परिषदा को—यावत्—धर्म श्रवण कराया।

तए णं से सद्दालपुत्ते आजीविओवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए, उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडि-

तब श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर और चिन्तन-कर उस आजीविकोपासक सद्दालपुत्र ने हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त प्रीतिमना परम प्रसन्न, हर्षातिरेक से विकसित हृदय वाला होते हुए अपने स्थान से उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करने के पश्चात् यह निवेदन किया— 'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति—विश्वास करता हूँ, हे भगवन् ! मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है, हे भगवन ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का आदर करता हूँ, हे भदन्त ! यह ऐसा ही है, हे भगवन ! यह यथार्थ है, हे भगवन् ! यह शंका रहित है, हे भदन्त ! यह असंदिग्ध है, हे भगवन् ! यह अभीप्सित है, हे भगवन् ! यह मुझे अभिप्रेत है—इष्ट है, हे भगवन् ! यह मुझे इच्छित-प्रति

चिछयमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि"।

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि"।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जइ, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता जेणेव पोलासपुरे नयरे, जेणेव सए गिहे, जेणेव अग्गिमित्ता भारिया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अग्गिमित्तं भारियं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिये धम्मे निसंते। से वि य धम्मे मे इच्छिए पडिच्छिए अभिरुइए। तं गच्छाहि णं तुमं समणं भगवं महावीरं वंदाहि णमंसाहि सक्कारेहि सम्माणेहि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासाहि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जाहि।

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया सद्दालपुत्तस्स समणोवासगस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ।

इच्छित है, वह वैसा ही है जैसा आप प्रतिपादित करते हैं। आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार से तो मैं मुण्डित होकर, गृह त्यागकर अनगार दीक्षा लेने में समर्थ नहीं हूँ। परन्तु मैं आप देवानुप्रिय से पाँच अणुव्रत, सात शिक्षा व्रत रूप—बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करना चाहता हूँ।

'हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, लेकिन विलम्ब—प्रमाद मत करो।' भगवान ने उत्तर दिया।

तदनन्तर उस सद्दालपुत्र आजीविकोपासक ने श्रमण भगवान् महावीर से पंच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावक धर्म स्वीकार किया, स्वीकार करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके जहाँ पोलासपुर नगर था और उसमें जहाँ अपना घर था और घर में भी जहाँ अग्निमित्रा भार्या थी वहाँ आया, आकर अग्निमित्रा-भार्या से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिये ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुना है। वह धर्म मुझे इष्ट, अतीव इष्ट और अच्छा लगा है। अतएव तुम भी जाओ और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार करो, उनका सत्कार-सम्मान करो एवं कल्याण-मंगल-देव-ज्ञान स्वरूप उनकी पर्युपासना करो तथा श्रमण भगवान् महावीर के पास पाँच अणुव्रत, सात शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को स्वीकार करो।

तब उस अग्निमित्रा भार्या ने 'आप ठीक कहते हैं' कहकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के कथन को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

अग्गिमित्ताए महावीरवंदणट्ठा गमणं धम्मसवणं च—

२१३. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो ! देवाणुप्पिया ! लहुकरणजुत्त-जोइयं समखुरवालिहाण-समलिहियसिंगएहिं जंबूणयामयकलावजुत्त-पइविसिट्ठएहिं रययामयघंट-सुत्तरज्जुग-वरकंचणखचिय-नत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवरगोणजुवाणएहिं नाणामणिकणग-घंटियाजालपरिगयं सुजायजुगजुत्त-उज्जुग-पसत्थसुविरइयनिम्मियं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह"।

अग्निमित्रा का महावीर वन्दनार्थ गमन और धर्म-श्रवण—

२१३. तदनन्तर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—'हे देवानुप्रियो ! तेज चलने वाले समवयस्क एक जैसे खुर, पूँछ और अनेक रंगों में चित्रित सींग वाले, गले में सोने के गहने और जोत धारण किये, गले में लटकती चांदी की घण्टियों सहित, नाक में उत्तम सोने के तारों युक्त सूत की डोरी की नाथ से जुड़ी रास वाले, नीलकमलों से बने पुष्प गुच्छकों (गुलदस्तों) से सुशोभित मस्तक वाले, युवा बैलों द्वारा खींचे जाने वाले अनेक प्रकार की मणियों और सोने से बनी घंटियों और घुंघरुओं से युक्त उत्तम लकड़ी से बने हुए सीधे युग (जुए) सहित श्रेष्ठ लक्षणों और गुणों से युक्त धार्मिक—धर्मकार्यों के निमित्त उपयोग में आने वाले—यान प्रवर को सजाओ—तैयार करो, सजाकर कार्य सम्पन्न होने की मुझे सूचना दो।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता खिप्पामेव लहुकरणजुत्त-जोइयं-जाव-धम्मियं जाणप्पवरं उवट्ठवेत्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

तब कौटुम्बिक पुरुषों ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक की इस आज्ञा को सुनकर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न और हर्षातिरेक से विकसित हृदय हो. दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे स्वामिन् ! इसीप्रकार' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को सुना, सुनकर शीघ्र ही तेज चलने वाले समवयस्क बैलों से जुते हुए —यावत्—धार्मिकयान प्रवर को उपस्थित कर आज्ञा को वापस लौटाया।

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया अप्पमहग्घा-भरणालंकियसरीरा चेडियाचक्कवालपरि-किण्णा धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोलासपुरं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सहस्संबवणे उज्जाणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चो-रुहइ, पच्चोरुहित्ता चेडियाचक्कवालपरिकिण्णा जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आया-हिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहे विणएणं पंजलियाउडा ठिइया चेव पज्जुवासइ ।

तत्पश्चात् अग्निमित्रा भार्या स्नान बलिकर्म कौतुक मंगल-प्रायश्चित्त कर शुद्ध धर्म सभा में जाने योग्य, मांगलिक, उत्तम वस्त्रों को पहनकर मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलं-कृत कर चेटिकाओं—दासियों के समूह से घिरी हुई धार्मिक यान प्रवर पर बैठी, बैठकर पोलासपुर नगर के मध्यभाग में से निकली, निकलकर सहस्राम्रवन उद्यान में आई, उद्यान में आकर धार्मिक यान से नीचे उतरी, उतर कर दासियों के साथ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आई, आकर तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित हो सुनने के लिये उत्कंठित हो नमन करती हुई सन्मुख विनय पूर्वक अंजलि करके खड़ी होकर पर्युपासना करने लगी।

तए णं समणे भगवं महावीरे अग्गिमित्ताए तीसे य महइ-महालियाए परिसाए-जाव-धम्मं-परिकहेइ ।

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने अग्निमित्रा और उस महती परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश दिया ।

अग्गिमित्ताए गिहिधम्म-पडिवत्ती—

अग्निमित्रा की गृही धर्म प्रतिपत्ति—

२१४. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महा-वीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं-जाव-जहेयं तुब्भे वयह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे उग्गा भोगा राइण्णा खत्तिया माहणा भडा जोहा पसत्थारो मल्लई लेच्छई अण्णे य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-इब्भ सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्प-भिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डा भवित्ता अगा-राओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए

२१४. तदनन्तर अग्निमित्रा भार्या श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुनकर और हृदय में धारण कर हृष्ट, तुष्ट, आनंदित चित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न, हर्षवश विकासमान हृदय होती हुई अपने आसन से उठी, उठकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करती हूँ—यावत्—वह वैसा ही है, जैसा आप कहते हैं। आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार बहुत से उग्र, भोग, राजन्य, क्षत्रिय, माहण, भट, योद्धा प्रशास्ता—शासन करने वाले अधिकारी, मल्लकि—मल्लगणराज्य के निवासी लिच्छिवि—लिच्छिवि राज्य के नागरिक तथा अन्य दूसरे भी बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक इभ्य, सेठ, सेना-पति, सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार से मैं आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार धर्म में दीक्षित होने में तो समर्थ नहीं हूँ, किन्तु मैं आप देवानुप्रिय से पाँच अणुव्रत और सात

पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामि"।

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के गृहीधर्म को स्वीकार करना चाहती हूँ।

अग्निमित्रा के इस प्रकार निवेदन करने पर भगवान् ने कहा—देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो।

तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जइ पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया, तामेव दिसं पडिगया।

तत्पश्चात् अग्निमित्रा भार्या ने श्रमण भगवान् महावीर के पास पांच अणुव्रत और सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार के गृहीधर्म को अंगीकार करके श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके उत्तम धार्मिक रथ पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर जिस दिशा से आई थी वापस उसी दिशा में लौट गई।

भगवओ जणवयविहारो—

२१५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदाइ पोलासपुराओ नयराओ सहस्संबवणाओ उज्जाणाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान् का जनपद विहार—

२१५. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान् महावीर ने पोलासपुर नगर और सहस्राम्रवन उद्यान से प्रस्थान किया और प्रस्थान कर बाहरी जनपदों में विचरण करने लगे।

सद्दालपुत्तस्स समणोवासगचरिया—

२१६. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

सद्दालपुत्र की श्रमणोपासकचर्या—

२१६. तदनन्तर वह सद्दालपुत्र जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्राशुक एषणीय अशन, पान-खाद्य-स्वाद्य आहार, वस्त्र, प्रतिग्रह, कंबल, रजोहरण औषधि, भैषज एवं प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए अपना जीवन व्यतीत करने लगा।

अग्गिमित्ताए समणोवासियाचरिया—

२१७. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया समणोवासिया जाया—अभिगय-जीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

अग्निमित्रा की श्रमणोपासिकाचर्या—

२१७. इसके पश्चात् वह अग्निमित्रा भार्या श्रमणोपासिका हो गई जो जीव-अजीव आदि तत्त्वों की ज्ञाता होकर—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्राशुक एषणीय अशन, पान, खादिम, स्वादिम, भोजन, वस्त्र, प्रतिग्रह, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन, औषधि, भेषज, प्रातिग्राहिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए विचरने लगी।

गोसालस्स आगमणं—

२१८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—एवं खलु सद्दालपुत्ते आजीवियसमयं वमित्ता समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं पवण्णे, तं गच्छामि णं सद्दालपुत्तं आजीवियोवासयं समणाणं निग्गंथाणं दिट्ठिं वामेत्ता पुणरवि आजीवियदिट्ठिं गेण्हाविस्सए" त्ति कट्टु—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता आजीवियसंघ-परिवुडे जेणेव पोलासपुरे नयरे, जेणेव आजीवियसभा, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भंडगनिक्खेवं करेइ, करेत्ता कतिवएहिं आजीविएहिं सद्धिं जेणेव सद्दालपुत्ते समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ।

गोशालक का आगमन—

२१८. तदनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र इस समाचार को सुनकर कि 'सद्दालपुत्र आजीविक सिद्धान्त को छोड़कर श्रमण निर्ग्रन्थों के सिद्धान्त का अनुयायी बन गया है तब उसने विचार किया कि मैं जाऊँ और सद्दालपुत्र आजीविकोपासक से श्रमण निर्ग्रन्थों की मान्यता छुड़ाकर पुनः आजीविक सिद्धान्त अंगीकार करवाऊं।' इस प्रकार का विचार कर आजीविक संघ को साथ लेकर जहाँ पोलासपुर नगर था, उसमें जहाँ आजीविका सभा थी, वहाँ आया, आकर पात्र—उपकरण आदि रखे और फिर कतिपय आजीविकों को साथ लेकर जहाँ सद्दालपुत्र श्रमणोपासक था, वहाँ गया।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाति नो परिजाणति, अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने गोशाल मंखलिपुत्र को आते हुए देखा, देखकर न उसका आदर किया और न उसे पहिचाना अर्थात् उसको देखने के लिए आँख ऊपर नहीं की। किन्तु आदर न करता हुआ अपरिचित की तरह उपेक्षा भाव रखते हुए चुपचाप बैठा रहा।

गोसालेण महावीरस्स गुणकित्तणं—

गोशाल द्वारा महावीर का गुण कीर्तन—

२१६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तेणं समणोवासएणं अणाढिज्जमाणे अपरिजाणिज्जमाणे पीढ-फलग-सेज्जा-संथारट्ठयाए समणस्स भगवओ महावीरस्स गुणकित्तणं करेइ—"आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महामाहणे ?"

२१६. तदनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक द्वारा इस प्रकार से अनादर और उपेक्षा किये जाते देखकर पीठ, फलक, शैया, संस्तारक आदि प्राप्त करने हेतु श्रमण भगवान् महावीर का गुण कीर्तन करते हुए कहा—'हे देवानुप्रिय ! क्या यहाँ महामाहण पधारे हैं ?'

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"के णं देवाणुप्पिया ! महामाहणे ?"

इस पर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने गोशाल मंखलिपुत्र से पूछा—'हे देवानुप्रिय ! महामाहण कौन है।'

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"समणे भगवं महावीरे महामाहणे।"

तब गोशालमंखलिपुत्र ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को उत्तर दिया 'श्रमण भगवान् महावीर महामाहण हैं।'

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महामाहणे ?"

हे देवानुप्रिय ! किस अभिप्राय से यह कहते हैं कि 'श्रमण भगवान् महावीर महामाहण हैं ?' सद्दालपुत्र ने पूछा।

एवं खलु सद्दालपुत्ता ! समणे भगवं महावीरे महामाहणे उप्पण्णणाणदंसणधरे तीयप्पडुप्पण्णाणागयजाणए अरहा जिणे केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी तेलोक्क-वहिय-महिय-पूइए सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स अच्चणिज्जे पूयणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासणिज्जे तच्च-कम्मसंपया-संपउत्ते। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महामाहणे"।

गोशाल मंखलिपुत्र ने कहा—'हे सद्दालपुत्र ! श्रमण भगवान महावीर महामाहण हैं। क्योंकि वे अप्रतिहत ज्ञान-दर्शन के धारण करने वाले, अतीत, वर्तमान और अनागत, त्रिकालवर्ती पर्यायों को जानने वाले, अर्हंत, जिन, केवली, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी, तीनों लोकों द्वारा सेवित, प्रतिष्ठित, पूजित, एवं देव, मनुष्य, असुरलोक (ऊर्ध्व मध्य और अधोलोक) द्वारा अर्चनीय, पूजनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, सत्कारणीय, संमाननीय हैं तथा कल्याण, मंगल, देव ज्ञान रूप होने से पर्युपासनीय हैं, सत्कर्म सम्पदा से युक्त हैं। इसीलिये हे देवानुप्रिय ! मैं यह कहता हूँ कि श्रमण भगवान् महावीर महामाहण हैं।'

"आगए णं देवाणुप्पिया ! इहं महागोवे ?"

गोशाल मंखलिपुत्र ने पुनः कहा—'हे देवानुप्रिय ! क्या यहाँ महागोप आये हैं ?'

"के णं देवाणुप्पिया ! महागोवे ?"

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! कौन महागोप हैं ?'

"समणे भगवं महावीरे महागोवे"।

गोशाल मंखलिपुत्र—'श्रमण भगवान् महावीर महागोप हैं।'

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महागोवे ?

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! किस कारण से आप यह कहते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर महागोप हैं ?'

एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्ज-

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! श्रमण भगवान महावीर महागोप हैं क्योंकि इस संसार रूपी भयानक वन में अनेक जीव नष्ट हो रहे हैं—सन्मार्ग से च्युत हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, प्रतिक्षण मरण प्राप्त कर रहे हैं, खाये जा रहे हैं—मृग, शेर, बाघ आदि द्वारा खाये जा रहे हैं, छेदन किये जा रहे हैं—मनुष्य आदि द्वारा तलवार आदि से काटे जा रहे हैं, भेदन किये जा

माणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे धम्ममएणं दंडेणं सारक्खमाणे संगोवेमाणे निव्वाणमहावाडं साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ समणे भगवं महावीरे महागोवे"।

रहे हैं—भाले आदि द्वारा बींधे जा रहे हैं, विकलांग किये जा रहे हैं, घायल किये जा रहे हैं, उनकी धर्मरूपी दण्ड द्वारा रक्षा करते हैं, संगोपन करते हैं, उन्हें मोक्ष रूपी महासुखकारी क्षेत्र में पहुँचाते हैं। इसीलिये हे सद्दालपुत्र! मैं श्रमण भगवान् को महागोप कहता हूँ।'

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महासत्थवाहे?"

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ महासार्थवाह पधारे हैं?'

"के णं देवाणुप्पिया! महासत्थवाहे"।

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय! आप महासार्थवाह किसे कहते हैं?'

"सद्दालपुत्ता! समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे"।

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे सद्दालपुत्र! श्रमण भगवान महावीर महासार्थवाह हैं।'

से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे?

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय! आप यह किस अभिप्राय से कहते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर महासार्थवाह हैं?'

एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे संसाराडवीए बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे धम्ममएणं पंथेणं सारक्खमाणे निव्वाणमहापट्टणे साहत्थिं संपावेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महासत्थवाहे"।

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय! बात यह है कि श्रमण भगवान् महावीर, संसार रूपी महा अटवी में बहुत से जीव जो नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, खाये जा रहे हैं, भिद्यमान हैं लुप्तमान हैं, हैं, विलुप्यमान हैं और उन्मार्गगामी हैं। उनकी धर्म रूपी मार्ग द्वारा रक्षा करते है और मोक्षरूपी महानगर की ओर उन्मुख करके सहारा देकर वहाँ पहुँचाते हैं। इसीलिये हे सद्दालपुत्र! मैं कहता हूँ कि श्रमण भगवान् महावीर महासार्थवाह हैं।'

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महाधम्मकही?"

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ महाधर्मकथी आये हैं?'

"के णं देवाणुप्पिया! महाधम्मकही?"

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय! आप महाधर्मकथी किसे कह रहे हैं?'

"समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही।"

गोशाल मंखलिपुत्र—'श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथी हैं।'

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही?"

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय! आप किस अभिप्राय से कहते हैं कि श्रमण भगवान महावीर महाधर्मकथी हैं।'

"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे महइमहालयंसि संसारंसि बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे उम्मग्गपडिवण्णे सप्पहविप्पणट्ठे मिच्छत्तबलाभिभूए अट्ठविहकम्म-तमपडल-पडोच्छण्णे बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य निप्पट्ठ-पसिणवागरणेहि य चाउरंताओ संसारकंताराओ साहत्थिं नित्थारेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महाधम्मकही"

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर इस विशाल संसार में नश्यमान, विनश्यमान, खाद्यमान, छिद्यमान, भिद्यमान, लुप्यमान, विलुप्यमान, उन्मार्गगामी, सत्पथ से भ्रष्ट, मिथ्यात्व से ग्रस्त आठ प्रकार के कर्मरूपी, अन्धकार पटल के पर्दे से ढके हुए, बहुत से प्राणियों को अनेक प्रकार की युक्तियों, प्रश्नों, कारणों, व्याख्याओं द्वारा निरुत्तर कर देते हैं और चतुर्गति वाली संसाररूपी भयंकर अटवी से सहारा देकर निकालते हैं। इसी अभिप्राय से हे देवानुप्रिय! मैं कहता हूँ कि श्रमण भगवान् महाधर्मकथी हैं।'

"आगए णं देवाणुप्पिया! इहं महानिज्जामए?"

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय! क्या यहाँ महानिर्यामक आये हैं?'

"के णं देवाणुप्पिया ! महानिज्जामए ?"

"समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए"।

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए ?"

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे संसारमहासमुद्दे बहवे जीवे नस्समाणे विणस्समाणे खज्जमाणे छिज्जमाणे भिज्जमाणे लुप्पमाणे विलुप्पमाणे बुड्डमाणे निबुड्डमाणे उप्पियमाणे धम्ममईए नावाए निव्वाणतीराभिमुहे साहत्थि संपावेइ। से तेणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—समणे भगवं महावीरे महानिज्जामए"।

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! कौन महानिर्यामिक हैं ?'

गोशाल मंखलिपुत्र—श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक हैं।

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! किस अभिप्राय से आप कहते हैं कि श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामिक हैं।'

गोशाल मंखलिपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि श्रमण भगवान् महावीर संसाररूपी महासमुद्र में नष्ट हो रहे हैं, विनष्ट हो रहे हैं, डूब रहे, गोते खा रहे, बहते जा रहे, लुप्त, विलुप्त हो रहे, छीज रहे, भीज रहे बहुत से प्राणियों को धर्म रूपी नौका द्वारा सहारा देकर मोक्ष रूपी किनारे पर ले जाते हैं इसीलिये हे देवानुप्रिय ! मैं कहता हूँ कि श्रमण भगवान् महावीर महानिर्यामक—कर्णधार—खिवैया हैं।'

महावीरेण सह विवादकरणे गोसालस्स असामत्थं पडिगमणं च—

२२०. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! इयच्छेया इयदच्छा इयपट्ठा इयनिउणा इयनयवादी इयउवएसलद्धा इयविण्णाणपत्ता। पभू णं तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?"

"नो इणट्ठे समट्ठे"।

"से केणट्ठेणं देवाणुप्पिया ! एवं वुच्चइ—"नो खलु पभू तुब्भे मम धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए ?"

"सद्दालपुत्ता ! से जहानामए केइ पुरिसे तरुणे जुगवं बलवं अप्पायंके थिरग्गहत्थे पडिपुण्णपाणि-पाए पिट्ठंतरोरुसंघायपरिणए घणनिचियवट्टवलियखंधे। लंघण-पवण-जवण-वायाम-समत्थे चम्मेट्ठ-दुघण-मुट्ठिय-समाहय-निचियगत्ते उरस्सबलसमन्नागए तालजमल-जुयलबाहू छेए दक्खे निउणसिप्पोवगए एगं महं अयं वा एलयं वा सूयरं वा कुक्कुडं वा तित्तरं वा वट्टयं वा लावयं वा कवोयं वा कविंजलं वा वायसं वा सेणयं वा, हत्थंसि वा पायंसि वा खुरंसि वा पुच्छंसि वा पिच्छंसि वा सिंगंसि वा विसाणंसि वा रोमंसि वा जहिं-जहिं गिण्हइ, तहिं-तहिं निच्चलं निप्फंदं करेइ,

महावीर के साथ विवाद करने में गोशाल का असामर्थ्य एवं प्रतिगमन—

२२०. तदनन्तर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने गोशाल मंखलिपुत्र से कहा—'हे देवानुप्रिय ! आप ऐसे छेक–चतुर, अवसर के जानकार, ऐसे दक्ष, ऐसे प्रष्ठ, वाग्मी—बोलने में कुशल, ऐसे निपुण, ऐसे नयवादी—नीतिज्ञ, ऐसे उपदेशलब्ध-आप्तजनों से शिक्षा प्राप्त किये हुए, ऐसे विज्ञापन प्राप्त, विशेष बोध युक्त हैं तो क्या आप मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर से विवाद—तत्त्व चर्चा करने में समर्थ हैं ?'

गोशाल मंखलिपुत्र—'नहीं, यह संभव नहीं है।

सद्दालपुत्र—'हे देवानुप्रिय ! आप यह किस कारण कहते हैं कि मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के साथ विवाद करने में समर्थ नहीं हैं ?'

मंखलिपुत्र गोशाल—'हे सद्दालपुत्र ! जैसे कोई तरुण आत्मिक और शारीरिक शक्ति संपन्न, बलवान, निरोग परिपुष्ट हाथ पैर वाला, पीठ, पसली जंघा आदि सुगठित अंगवाला, अत्यन्त सघन, गोलाकार कंधों वाला, लंघन—लंबा कूदने, प्लवन—ऊँचे कूदने-उछलने, गमन, गोल चक्कर काटने में समर्थ अथवा वेगपूर्वक शीघ्रता से किये जाने वाले व्यायामों में सक्षम, चर्मेष्टक—ईंट पत्थर के टुकड़ों से भरी चमड़े की थैली, मुद्गर मौष्टिक, घूँसे आदि के आघातों से सशक्त बनाये गये शरीर वाले, आन्तरिक उत्साह और शक्ति युक्त, महोलम्ब ताड़ के दो वृक्षों की तरह सुदृढ़ एवं दीर्घ भुजाओं वाला, छेक, दक्ष, निष्णात, निपुण, शिल्पोपगत—अपने कार्य को करने में प्रवीण पुरुष एक बड़े बकरे, मेंढ़े, सुअर, मुर्गे, तीतर, बटेर, लावा (पक्षी) कबूतर पपीहे, कौए, चील, बाज के हाथ-पंजे, पैर, खुर, पूँछ, पीठ, सींग विषाण, बाल—रोम आदि को जहाँ कहीं से पकड़ लेता है तो उसे वहीं निश्चल निष्पन्द-हलन-चलन रहित कर देता है।

एवामेव समणे भगवं महावीरे ममं बहूहिं अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य कारणेहि य वागरणेहि य जहिं-जहिं गिण्हइ, तहिं-तहिं-निप्पट्ठ-पसिणवागरणं करेइ। से तेणट्ठेणं सद्दालपुत्ता! एवं वुच्चइ—नो खलु पभू अहं तव धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं भगवया महावीरेणं सद्धिं विवादं करेत्तए"।

तए णं से सद्दालपुत्ते! समणोवासए गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"जम्हा णं देवाणुप्पिया! तुब्भे मम धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं भावेहिं गुणकित्तणं करेह, तम्हा णं अहं तुब्भे पाडिहारिएणं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं उवनिमंतेमि, नो चेव णं 'धम्मो त्ति वा तवो त्ति वा'। तं गच्छह णं तुब्भे मम कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ता णं विहरह"।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता कुम्भारावणेसु पाडिहारियं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारयं ओगिण्हित्ताणं विहरइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सद्दालपुत्तं समणोवासयं जाहे नो संचाएइ बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य निग्गंथाओ पावयणाओ चालित्तए वा खोभित्तए वा विपरिणामेत्तए वा, ताहे संते तंते परितंते पोलासपुराओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

सद्दालपुत्तस्स धम्मजागरिया—

२२१. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वीइक्कंता। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं पोलासपुरे नयरे बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।"

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए जेट्ठपुत्तं 'मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ

इसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर भी मुझको बहुत से अर्थों, हेतुओं, प्रश्नों, कारणों और व्याख्या विश्लेषणों द्वारा जहाँ कहीं से भी पकड़ लेंगे तो वहीं वहीं निरुत्तर कर देंगे। इसीलिए हे सद्दालपुत्र! मैं यह कहता हूं कि तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर के साथ विवाद—तत्वचर्चा करने में मैं समर्थ नहीं हूं।'

तब उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने गोशाल मंखलिपुत्र से कहा—'हे देवानुप्रिय! आप मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान् महावीर का सत्य, यथार्थ, सद्भूत भावों द्वारा गुण कीर्तन कर रहे हैं, इसलिये मैं आपको प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक के लिये आमन्त्रित करता हूं, किन्तु धर्म या तप मानकर नहीं। आप मेरे कुम्भकारापण—बर्तनों की कर्मशाला से प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक ग्रहण करके विचरण करें—निवास करें।"

तदनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के इस कथन को सुना, और सुनकर प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैय संस्तारक लेकर विचरने लगा।

इसके अनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को अनेक प्रकार की आख्यापनाओं—सामान्य कथनों, प्रज्ञापनाओं विविध प्ररूपणाओं, संज्ञापनाओं—प्रतिबोधों और विज्ञापनाओं—अनुनय विनययुक्त वचनों द्वारा निर्ग्रन्थ प्रवचन से विचलित, क्षुभित और विपरिणमित—विरुद्ध न कर सका तब श्रांत क्लान्त खिन्न और अत्यन्त दुखी होकर पोलासपुर नगर से निकला और निकल कर बाह्य जनपदों में विहार करने लगा।

सद्दालपुत्र की धर्म जागरिका—

२२१. तदनन्तर बहुत से शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के चौदह वर्ष व्यतीत हो गये और पन्द्रहवाँ वर्ष चल रहा था तब किसी एक समय मध्य रात्रि के समय धर्म जागरणा—तत्वचिन्तन करते हुए इस प्रकार का आंतरिक, चिंतित, प्रार्थित, मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि पोलासपुर नगर में बहुत से लोग—यावत्—अपने अपने कार्यों के लिये मुझसे पूछते हैं, परामर्श करते हैं तथा अपने कुटुम्ब का भी आधार स्तम्भ जैसा हूं तथा सर्व कार्यों के लिये प्रेरक हूं। अतएव इस विक्षेप—रुकावट के कारण श्रमण भगवान् महावीर से ग्रहण की हुई धर्मप्रज्ञप्ति को स्वीकार करके समय व्यतीत करने में सक्षम-उन्मुख-अग्रसर नहीं हो पाता हूं।'

तदनन्तर उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठपुत्र, मित्रों, जाति-बन्धुओं—निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचित जनों से पूछा—अनुमति ली, अनुमति लेकर अपने घर से निकला

गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता पोलासपुरं नयरं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणिसुवण्णे ववगयमाला-वण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

निकलकर पोलासपुर नगर के मध्य भाग में चलते हुए जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, वहाँ आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया, उच्चार प्रस्रवण भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके घास के आसन को बिछाया, बिछाकर उस घास के आसन पर बैठा और पौषधशाला में पौषधिक हो—पौषधव्रत ग्रहण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक मणि-स्वर्ण आदि को छोड़कर पुष्पमालाओं, वर्णक-शृंगार के साधनों और विलेपनों-केशर आदि के लेपों का त्याग कर और मूसल आदि शस्त्रों को अलग रखकर, एकाकी अद्वितीय हो, दर्भसंस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान महावीर से ली हुई धर्म प्रज्ञप्ति को स्वीकार करके विचरने लगा।

सद्दालपुत्तस्स देवकयनियजेट्ठपुत्तमारणोवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

सद्दालपुत्र का देवरूप कृत निज ज्येष्ठ पुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

२२२. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स पुव्वरत्तावरत्त-काले एगे देवे अंतियं पाउब्भवित्था।

तए णं से देवे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुम-प्पगासं खुरधारं असिं गहाय सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो! सद्दालपुत्ता! समणोवासया! अप्पत्थियपत्थिया! दुरंत-पंत-लक्खणा! हीणपुण्णचाउद्दसिया! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिया! धम्मकामया! पुण्णकामया! सग्गकामया! मोक्खकामया! धम्मकंखिया! पुण्णकंखिया! सग्गकंखिया! मोक्ख-कंखिया! धम्मपिवासिया! पुण्णपिवासिया! सग्गपिवासिया! मोक्खपिवासिया! नो खलु कप्पइ तव देवाणुप्पिया! सीलाइं वयाइं वेरमणाइं पच्चक्खाणाइं पोसहोववासाइं चालित्तए वा खोभित्तए वा खंडित्तए वा भंजित्तए वा उज्झित्तए वा परिच्चइत्तए वा, तं जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

२२२. तदनन्तर मध्य रात्रि के समय उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के सन्मुख एक देव प्रगट हुआ।

उस देव ने नीलकमल, भैंसे के सींग, अलसी के पुष्प जैसी नील प्रभा और तीक्ष्ण धार वाली एक बड़ी तलवार हाथ में लेकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से कहा—'अरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक! अप्रार्थित-मरण की प्रार्थना करने वाले! दुःखद अन्त तथा अशुभ लक्षण वाले! हीनपुण्य चातुर्दशिक—जिसकी घड़ियों में अमावस्या आ गई हो ऐसी चतुर्दशी को जन्म लेने वाले! श्री ह्री (लज्जा) धृति (धैर्य) कीर्ति से रहित! धर्म की कामना करने वाले! पुण्य की कामना करने वाले! स्वर्ग की कामना करने वाले! मोक्ष की कामना करने वाले! धर्मकांक्षी! पुण्यकांक्षी! मोक्षकांक्षी! धर्मपिपासु! पुण्यपिपासु! स्वर्ग-पिपासु! मोक्षपिपासु! देवानुप्रिय! यद्यपि तुम्हें शील, व्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास से विचलित, क्षुभित, होना, उन्हें खंडित करना, भग्न करना, उज्झित करना, उनका त्याग करना, परित्याग करना नहीं कल्पता है, परन्तु आज तुम यदि शील—यावत्—पौषधोपवास को नहीं छोड़ोगे, भग्न नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊंगा, लाकर तुम्हारे आगे उसको मारूंगा, मारकर उसके मांस के नौ टुकड़े करूंगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तलूंगा, तलकर मांस और खून से तुम्हारा शरीर लिप्त कर दूंगा, जिससे तुम विकट आर्तध्यान और दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन रहित हो जाओगे—प्राण गँवा दोगे।'

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए अतत्थे अणुव्विग्गे अक्खुभिए अचलिए असंभंते तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

देव की इस बात को सुनकर भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक भीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित विचलित नहीं हुआ, घबराया नहीं किन्तु शांत भाव से धर्मध्यान में स्थिर रहा।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं अतत्थं अणु-व्विग्गं अक्खुभियं असंभंतं तुसिणीयं धम्मज्झाणोवगयं विहरमाणं

तदनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को भीत, त्रस्त, उद्विग्न, क्षुभित, चलित और व्याकुल न होकर पूर्ववत्

पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-पोसहोववासाइं न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि-जाव-जेव जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

शांत भाव से धर्मध्यान में निरत देखा तो देखकर दूसरी बार और तीसरी बार भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को यह धमकी दी कि 'अरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शील व्रत—यावत्—पौषधोपवास को छोड़ोगे नहीं, खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र को घर से लाऊँगा—यावत्—अकाल में ही अपने प्राण गंवा दोगे ।''

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

इसके अनन्तर भी वह सद्दालपुत्र श्रमणोपासक उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार दी गई धमकी को सुनकर निर्भय—यावत्—धर्म-साधना में रत रहा ।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तदनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्म-साधना में रत देखा, देखकर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् विकराल और दाँतों को मिसमिसाते हुए सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके आगे उसे मारा, मारकर उसके मांस के नौ टुकड़े किये, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में तला और तलकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रक्त लपेट दिया ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तं उज्जलं विउलं कक्कसं पगाढं चंडं दुक्खं दुरहियासं वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तब भी उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने उस तीव्र, विकट, कठोर, प्रगाढ़, प्रचंड, दुःखद असहनीय वेदना को क्षमा, तितिक्षा और सहिष्णुतापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

सद्दालपुत्तस्स देवकयनियमज्झिमपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

सद्दालपुत्र का देवकृत निज मध्यमपुत्र मारण रूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहना—

२२३. तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

२२३. इसके बाद भी उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—साधनारत देखा, देखकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—'अरे श्रमणोपासक सद्दालपुत्र ! —यावत्—यदि तुम आज शील—यावत्—पौषधोपवास को छोड़ोगे नहीं, तोड़ोगे नहीं तो मैं इसी समय तुम्हारे मध्यम पुत्र को तुम्हारे घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे आगे उसका वध करूँगा—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे ।'

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

उस देव के इस प्रकार से कहने पर भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक अभीत—यावत्—धर्म-ध्यान में लीन रहा ।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि तो ते अहं अज्ज मज्झिमं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।"

तदनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—साधनारत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को धमकी दी—'अरे श्रमणोपासक सद्दालपुत्र !—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवास को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे मध्यम पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसका घात करूँगा—यावत्—जीवन गँवा दोगे ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीयं-जाव-विहरइ ।

उस देव द्वारा दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से कहने पर भी वह श्रमणोपासक सद्दालपुत्र अभीत—यावत्—धर्म-ध्यान में निरत रहा ।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स मज्झिमं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

सद्दालपुत्तस्स देवकयनियकणीयसपुत्तमारणरूवउवसग्गस्स सम्मं अहियासणं—

२२४. तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ ।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि,-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि" ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव- विहरइ ।

"तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स कणीयसं पुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहइ खमइ तितिक्खइ अहियासेइ ।

तदनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्म-निरत देखा, देखकर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल और दाँतों को मिसमिसाते हुए सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के मध्यमपुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर मांस के नौ खण्ड किये—फिर तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के शरीर पर मांस और रुधिर लपेट दिया ।

तदनन्तर उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने उस तीव्र—यावत्—असीम वेदना को समभावपूर्वक सहन किया, क्षमा, तितिक्षापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

सद्दालपुत्र का देवकृत निज कनिष्ठपुत्र मारणरूप उपसर्ग का समभावपूर्वक सहन करना—

२२४. इसके पश्चात् भी उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को निर्भय—यावत्—धर्म-साधना में रत देखा, देखकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को यह चेतावनी दी —'अरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवास को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा—यावत्—अपने प्राण गँवा दोगे ।'

उस देव की उस चेतावनी को सुनकर भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक अभीत—यावत्—धर्म-ध्यान में रत रहा ।

तदनन्तर उस देव ने श्रमणोपासक सद्दालपुत्र को अभीत—यावत्—धर्म-साधना में रत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी चेतावनी दी कि 'अरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवास को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा—यावत्—जीवन रहित हो जाओगे ।

दूसरी और तीसरी बार भी देव द्वारा दी गई इस धमकी को सुनकर वह सद्दालपुत्र श्रमणोपासक निर्भय—यावत्—उपासना में रत रहा ।

तदनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—साधनारत देखा, देखकर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, विकराल होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर उसके सामने मारा, मारकर माँस के नौ टुकड़े किये, फिर तेल भरी कड़ाही में तला और तलकर मांस और रुधिर को उसके शरीर पर लपेट दिया ।

इसके अनन्तर भी उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने उस तीव्र—यावत्—वेदना को सहिष्णुता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया ।

सद्दालपुत्तस्स देवकहिय-नियभज्जामारणरूवउवसग्गस्स असहणे कोलाहलकरणं, मायाविकुव्वियदेवस्स आगासे य उप्पयणं—

सद्दालपुत्र का देव कथित निज भार्या मारण रूप उपसर्ग को सहन न करके कोलाहल करना और माया-विकुर्वित देव का आकाश में उड़ना—

२२५. तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता चउत्थं पि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया, तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि।

२२५. इसके अनन्तर उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—साधनारत देखा, देखकर चौथी बार सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से कहा—ओरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक !—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, भग्न नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारी धर्म सहायिका—धर्मवैद्या (धर्म में शिथिलता आदि रूप रोगों को दूर कर धार्मिक स्वास्थ्य प्रदान करने में वैद्य के समान) धर्मानुरागरक्ता—धर्म के अनुराग में रंगी हुई सम-सुख-दुःखसहायिका—समान रूप से तुम्हारे सुख-दुःख में सहायता करने वाली अग्निमित्रा-भार्या को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने उसका वध करूँगा—यावत्—अपने जीवन को गँवा दोगे।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं देवेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरइ।

देव की इस धमकी को सुनकर भी सद्दालपुत्र श्रमणोपासक पूर्ववत् अभीत—यावत्—धर्म-साधना में रत रहा।

तए णं से देवे सद्दालपुत्तं समणोवासयं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता दोच्चं पि तच्चं पि सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो ! सद्दालपुत्ता ! समणोवासया ! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया, तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि-जाव-जीवियाओ ववरोविज्जसि।

इसके बाद भी जब उस देव ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को अभीत—यावत्—साधना रत देखा, तो देखकर दूसरी और तीसरी बार भी पुनः सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को यह चेतावनी दी—हंभो ! सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ! यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, भग्न नहीं करोगे, तो मैं इसी समय तुम्हारी धर्म सहायिका धर्म-वैद्या धर्मानुरागरक्ता, सम-सुख-दुःख सहायिका, अग्निमित्राभार्या को घर से उठा लाऊँगा, लाकर तुम्हारे सामने मारूँगा—यावत्—तुम भी जीवन रहित हो जाओगे।

तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स तेणं देवेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्तस्स समाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समायरति, जे णं ममं जेट्ठं पुत्तं, जे णं ममं मज्झिमयं पुत्तं, जेणं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आयंचइ, जा वि य णं ममं इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया, तं पि य इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता ममं अग्गओ घाएत्तए। तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए" त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे

तदनन्तर दूसरी और तीसरी बार भी देव द्वारा दी गई इस चेतावनी को सुनकर उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को यह आंतरिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'अहो यह पुरुष अधम नीच विचार और क्रूर पाप कर्म करने वाला है जो पहले तो मेरे ज्येष्ठ पुत्र को, उसके बाद मध्यम पुत्र को और तदनन्तर कनिष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर मेरे सामने उनका घात किया, घात करके नौ-नौ मांस खण्ड किये और फिर उन्हें तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर पर मांस, रुधिर लपेटा और अब मेरी जो धर्म-सहायक, धर्म-वैद्या, धर्मानुरागरक्त, सम-सुख-दुःख सहायक, अग्निमित्राभार्या को भी घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता है। इसलिये मेरे लिये यही उचित है कि मैं इस पुरुष को पकड़ लूँ, ऐसा विचार करके पकड़ने के लिए अपने आसन से उठा, लेकिन वह देव तो आकाश में, उड़ गया और सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के हाथ में

उप्पइए, तेण य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

खम्भा आ गया। जिससे वह जोर-जोर से कोलाहल—शोर करने लगा।

अग्गिमित्ताए पसिणो—

२२६. तए णं अग्गिमित्ता भारिया तं कोलाहलसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव सद्दालपुत्ते समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"किण्णं देवाणुप्पिया! तुब्भे णं महया-महया सद्देणं कोलाहले कए?"

अग्निमित्रा का प्रश्न—

२२६. तदनन्तर अग्निमित्रा भार्या उस कोलाहल को सुनकर और विचार कर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक के पास आई और आकर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से पूछा—"हे देवानुप्रिय! आपने जोर-जोर से कोलाहल क्यों किया?

सद्दालपुत्तस्स उत्तरं—

२२७. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए अग्गिमित्तं भारियं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए! न याणामि के वि पुरिसे आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे एगं महं नीलुप्पल-गवलगुलिय-अयसिकुसुमप्पगासं खुरधारं असिं गहाय ममं एवं वयासी—"हंभो! सद्दालपुत्ता! समणोवासया! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।'

सद्दालपुत्र का उत्तर—

२२७. इस पर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने अग्निमित्रा भार्या को उत्तर दिया—"हे देवानुप्रिये! बात यह है कि मैं नहीं जानता कि किसी एक पुरुष ने क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् दाँतों को मिसमिसाते नीलकमल भैंसे के सींग और अलसी के फूल जैसी नील प्रभा तथा तीक्ष्ण धार वाली एक बड़ी तलवार हाथ में लेकर मुझसे कहा कि 'अरे सद्दालपुत्र श्रमणोपासक!—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो मैं इसी समय तुम्हारे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा लाकर तुम्हारे सामने उसे मारूँगा, मारकर उसके पिंड के नौ टुकड़े करूँगा, टुकड़े करके तेल भरी कड़ाही में पकाऊँगा, पकाकर तुम्हारे शरीर को माँस और रक्त से लपेट दूँगा, जिससे तुम आर्तध्यान और दुस्सह वेदना के वश होकर अकाल में ही अपने जीवन को गंवा दोगे।

"तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि।

तब मैं उस पुरुष की यह धमकी सुनकर भी अभीत—यावत्—धर्मध्यान में रत रहा।

"तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता ममं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—"हंभो! सद्दालपुत्ता! समणोवासया! जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजसि, तो ते अहं अज्ज जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेमि, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—धर्म साधना में रत देखा, देखकर दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से कहा—हंभो सद्दालपुत्र श्रमणोपासक!—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवासों को छोड़ोगे नहीं, खंडित नहीं करोगे तो मैं इसी समय ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाऊँगा, लाकर तुम्हारे आगे मारूँगा, मारकर नौ मांस खंड करूँगा और फिर तेल भरी कड़ाही में तलूँगा, तलकर मांस और रक्त से तुम्हारा शरीर लपेट दूँगा। जिससे तुम आर्तध्यान एवं दुस्सह दुःख से पीड़ित होकर अपने जीवन को गंवा दोगे।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि।

उस देव के दूसरी और तीसरी बार भी इस प्रकार से कहने पर भी मैं निर्भय—यावत्—धर्मध्यान में रत रहा।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता आसुरत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ममं जेट्ठपुत्तं गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ।

इसके अनन्तर भी जब उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—उपासनारत देखा तो देखकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, विकराल और मिसमिसाते हुए वह मेरे ज्येष्ठ पुत्र को घर से लाया, लाकर मेरे आगे उसकी हत्या की, हत्या करके नौ मांस खंड किये, खंड करके तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर को मांस और शोणित से लिप्त कर दिया।

तए णं अहं तं उज्जलं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि।

तब मैंने उस उत्कट—यावत्—वेदना को सहिष्णुता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक सम्यक् प्रकार से सहन किया।

एवं मज्झिमं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि। एवं कणीयसं पुत्तं-जाव-वेयणं सम्मं सहामि खमामि तितिक्खामि अहियासेमि। तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव-पासइ, पासित्ता, ममं चउत्थं पि एवं वयासी—हंभो! सद्दालपुत्ता! समणोवासया! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो ते अहं अज्ज जा इमा अग्गिमित्ता भारिया धम्मसहाइया धम्मविइज्जिया धम्माणुरागरत्ता समसुहदुक्खसहाइया तं साओ गिहाओ नीणेमि, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएमि, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेमि करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेमि, अद्दहेत्ता तव गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचामि, जहा णं तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

इसी प्रकार से मध्यम पुत्र को भी मारा आदि—यावत्—उस वेदना को सहनशीलता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक पूरी तरह से सहन किया। इसी प्रकार से कनिष्ठ पुत्र को मारा, मेरे शरीर पर माँस, शोणित लपेटा आदि, फिर भी मैंने उस वेदना को सहनशीलता, क्षमा, तितिक्षापूर्वक शान्ति से सहन किया। इसके बाद भी जब उस पुरुष ने मुझे पूर्ववत् निर्भय—यावत्—धर्म ध्यान करते हुए देखा तो देखकर चौथी बार इस प्रकार कहा कि हंभो सद्दालपुत्र श्रमणोपासक!—यावत्—यदि तुम आज शीलादि—यावत्—पौषधोपवासोंको छोड़ोगे नहीं, भग्न नहीं करोगे तो मैं इसी समय तुम्हारी धर्म-सहायिका धर्म-वैद्या धर्मानुराग रक्त और समसुख दुःख सहायिका अग्निमित्राभार्या को घर से पकड़ लाऊँगा, लाकर तुम्हारे आगे उसका वध करूँगा, वध करके उसके शरीर के नौ मांस खण्ड करूँगा, खण्ड करके तेल भरी कड़ाही में तलूँगा और तलकर तुम्हारे शरीर पर माँस और शोणित सींचूँगा। जिससे तुम दुस्सह आर्तध्यान और दुःख से पीड़ित होकर असमय में ही जीवन रहित हो जाओगे।

तए णं अहं तेणं पुरिसेणं एवं वुत्ते समाणे अभीए-जाव-विहरामि।

उस पुरुष की इस धमकी को सुनकर भी मैं पूर्ववत् निर्भय—यावत्—धर्म-साधना में रत रहा।

तए णं से पुरिसे ममं अभीयं-जाव- दोच्चं पि तच्चं पि ममं वयासी—हंभो! सद्दालपुत्ता! समणोवासया! -जाव-जइ णं तुमं अज्ज सीलाइं-जाव-न छड्डेसि न भंजेसि, तो-जाव-तुमं अट्ट-दुहट्ट-वसट्टे अकाले चेव जीवियाओ ववरोविज्जसि।

तदनन्तर उस पुरुष ने मुझे निर्भय—यावत्—साधनारत देखा तो दूसरी और तीसरी बार भी मुझसे बोला—हंभो सद्दालपुत्र श्रमणोपासक!—यावत्—यदि तुम आज शीलादि को—यावत्—पौषधोपवासों को नहीं छोड़ोगे, नहीं तोड़ोगे तो—यावत्—आर्तध्यान और दुस्सह वेदना के वशीभूत होकर असमय में अपने जीवन को गँवा दोगे।

तए णं तेणं पुरिसेणं दोच्चं पि तच्चं पि ममं एवं वुत्तस्स समाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं इमे पुरिसे अणारिए अणारियबुद्धी अणारियाइं पावाइं कम्माइं समाचरति, जे णं ममं जेट्ठपुत्तं, जे णं ममं मज्झिमयो पुत्तं जे णं ममं कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता मम अग्गओ घाएइ, घाएत्ता नव मंससोल्ले करेइ, करेत्ता आदाणभरियंसि कडाहयंसि अद्दहेइ, अद्दहेत्ता ममं गायं मंसेण य सोणिएण य आइंचइ, तुमं पि य णं इच्छइ साओ गिहाओ नीणेत्ता मम अग्गओ घाएत्तए, तं सेयं खलु ममं एयं पुरिसं गिण्हित्तए त्ति कट्टु उद्धाविए, से वि य आगासे उप्पइए, मए वि य खंभे आसाइए, महया-महया सद्देणं कोलाहले कए।

तदनन्तर उस पुरुष की दूसरी और तीसरी बार भी दी हुई इस धमकी को सुनकर मुझे इस प्रकार का आंतरिक, चिन्तित, प्रार्थित मानसिक विचार उत्पन्न हुआ कि अहो! यह पुरुष अधम, नीचबुद्धि और क्रूर पाप कर्म करने वाला है जो मेरे ज्येष्ठ पुत्र को, उसके बाद मेरे मध्यम पुत्र को और उसके बाद मेरे कनिष्ठ पुत्र को घर से लेकर आया, लाकर मेरे सामने मारा, मारकर नौ-नौ माँस खंड किये, फिर तेल भरी कड़ाही में तला, तलकर मेरे शरीर को माँस और शोणित से सींचा और अब तुम को भी घर से लाकर मेरे सामने मारना चाहता था, अतएव ऐसे पुरुष को पकड़ लेना उचित है, ऐसा विचार कर मैं पकड़ने के लिये दौड़ा, किन्तु वह आकाश में उड़ गया और मेरे हाथ में खम्भा आ गया, जिससे मैं जोर-जोर से चिल्लाया।

सद्दालपुत्तकयपायच्छित्तं—

२२८. तए णं सा अग्गिमित्ता भारिया सद्दालपुत्तं समणोवासयं एवं वयासी—"नो खलु केइ पुरिसे तव जेट्ठपुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव मज्झिमयं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, नो खलु केइ पुरिसे तव कणीयसं पुत्तं साओ गिहाओ नीणेइ, नीणेत्ता तव अग्गओ घाएइ, एस णं केइ पुरिसे तव उव-सग्गं करेइ, एस णं तुमं विदरिसणे दिट्ठे। तं णं तुमं इयाणि भग्गवए भग्गनियमे भग्गपोसहे विहरसि। तं णं तुमं पिया! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि"।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए अग्गिमित्ताए भारियाए 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहेइ अकरणयाए अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ।

सद्दालपुत्र कृत प्रायश्चित्त—

२२८. तब अग्निमित्राभार्या ने सद्दालपुत्र श्रमणोपासक से कहा—"न तो किसी पुरुष ने तुम्हारे ज्येष्ठपुत्र को घर से निकाला है और न तुम्हारे सामने मारा है, न किसी पुरुष ने तुम्हारे मध्यम पुत्र को घर से पकड़ा है और न तुम्हारे सामने मारा है, न कोई पुरुष तुम्हारे कनिष्ठ पुत्र को घर से लेकर आया है और न तुम्हारे सामने मारा है, यह तो किसी पुरुष ने उपसर्ग किया है, यह तो तुमने कोई भयकर दृश्य देखा है जिससे तुम इस समय खंडित व्रत—नियम—पौषध वाले हो गये हो। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम इस स्थान—पाप कार्य की आलोचना करो—प्रतिक्रमण करो निन्दा, गर्हा करो, इससे निवृत्त होओ, इसकी शुद्धि करो और इस अयोग्य कार्य का यथायोग्य प्रायश्चित्त करने के लिये तपोकर्म स्वीकार करो।"

इसके अनन्तर सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने अग्निमित्राभार्या के कथन को 'आप ठीक कहती हो' इस प्रकार कहकर विनय-पूर्वक स्वीकार किया और स्वीकार करके उस प्रमाद स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमणा, निन्दा, गर्हा की, उससे निवृत्त होकर विशुद्धि की तथा उस अनुचित कार्य का परिमार्जन करने के लिये तत्पर होकर यथोचित प्रायश्चित और तपोकर्म ग्रहण किया।

सद्दालपुत्तस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

२२९. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहा-सुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ।

तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मा-वणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

सद्दालपुत्र श्रमणोपासक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

२२९. तदनन्तर उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा अंगीकार की और उस पहली उपासक प्रतिमा को सूत्र, कल्प, विधि यथार्थतत्त्व के अनुसार ग्रहण किया, पालन किया, निरतिचार शोधन किया, पूर्ण किया, कीर्तन किया और आरा-धन किया।

पहली उपासक प्रतिमा की आराधना करने के अनन्तर दूसरी उपासक प्रतिमा को भी तथा इसी प्रकार तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को यथासूत्र—सिद्धांत, यथाकल्प, यथाविधि, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, पालन किया, शोधन किया—पूर्ण किया, उसका कीर्तन किया, आराधन किया।

जिससे वह सद्दालपुत्र श्रमणोपासक उस उदार—उत्कृष्ट, विपुल और प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को स्वीकार करने से शुष्क, रुक्ष, मांसविहीन, अस्थिचर्मावृत, किड़किड़ाहट करने, कृश और लुहार की धौंकनीरूप शरीर वाला हो गया।

सद्दालपुत्तस्स अणसणं—

२३०. तए णं तस्स सद्दालपुत्तस्स समणोवासयस्स अण्णदा कयाइ, पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं

सद्दालपुत्र का अनशन—

२३०. तदनन्तर उस सद्दालपुत्र श्रमणोपासक को किसी एक समय मध्य रात्रि के समय धर्म-जागरिका से जागरण करते हुए यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ

खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए"।

कि—'मैं इस और इस प्रकार के उत्कृष्ट, विपुल, प्रयत्नसाध्य तपोकर्म को अंगीकार करने से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, अस्थिपिंजर किड़किड़ाहट करने, कृश, धौंकनी रूप शरीर वाला हो गया हूँ, लेकिन अभी भी मुझ में उत्थान, कर्म (उठने बैठने आदि क्रिया) करने का बल, वीर्य, पौरुष, पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेगभाव विद्यमान है। इसलिये जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य, संवेग—यावत्—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक जिन सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर विचरण कर रहे हैं तब तक मुझे यह श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभातरूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्य का उदय होने और जाज्वल्यमान प्रकाश सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम अंतिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को स्वीकार कर आहार पानी का त्यागकर, जीवन-मरण की आकांक्षा न करते हुये अपना समय व्यतीत करूँ।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ।

उक्त प्रकार विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात-रूप होने—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना को अंगीकार कर भक्त-पान का त्यागकर काल-मरण की आकांक्षा न करते हुये विचरने लगा।

सद्दालपुत्तस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धि-गमणनिरूवणं च—

सद्दालपुत्र का समाधिमरण; देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

२३१. तए णं से सद्दालपुत्ते समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ, सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणज्झए विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

२३१. तदनन्तर वह सद्दालपुत्र श्रमणोपासक बहुत से शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान और पौषधोपवासों द्वारा आत्मा को संस्कारित कर, बीस वर्ष की श्रावकपर्याय का पालन कर सम्यक् प्रकार से ग्यारह उपासक प्रतिमाओं को ग्रहण कर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर, साठभोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर, आलोचना, प्रतिक्रमण कर समाधि में लीन रहता हुआ मरणकाल में मरण करके सौधर्म कल्प के अरुणाभ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ उसकी चार पल्योपम की स्थिति हुई।

महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

पश्चात् महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा, समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

—उवासगदसाओ अ० ७

॥ सद्दालपुत्र कुम्भकार कथानक समाप्त ॥

□ □

१२. महासतयगाहावइकहाणगं

रायगिहे महासतए गाहावई—

२३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नयरे। गुणसिलए चेइए। सेणिए राया।

तत्थ णं रायगिहे नयरे महासतए नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं महासतयस्स गाहावइस्स अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ निहाणपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ वड्ढिपउत्ताओ, अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ पवित्थरपउत्ताओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं महासतए गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था।

तस्स णं महासतयस्स गाहावइस्स रेवतीपामोक्खाओ तेरस भारियाओ होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीराओ-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणीओ विहरंति।

तस्स णं महासतयस्स रेवतीए भारियाए कोलहरियाओ अट्ठ हिरण्णकोडीओ, अट्ठ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था। अवसेसाणं दुवालसण्हं भारियाणं कोलहरिया एगमेगा हिरण्णकोडी, एगमेगे य वए दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

२३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा सेणिओ निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

महासतयस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

२३४. तए णं से महासतए गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—“एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव रायगिहस्स नयरस्स बहिया गुणसिलए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।”

१२. महाशतक गाथापति कथानक

राजगृह में महाशतक गाथापति—

२३२. उस काल और उस समय में राजगृह नगर था। वहाँ गुणशिलक नामक चैत्य था। श्रेणिक राजा राज्य करता था।

उस राजगृह नगर में महाशतक नामक गृहस्थ रहता था, जो धन-धान्य सम्पन्न था—यावत्—अनेक जनों के द्वारा पराभव प्राप्त करने वाला नहीं था।

उस महाशतक गाथापति की आठ करोड़ कांस्य परिमित स्वर्ण मुद्रायें कोष में सुरक्षित धन के रूप में रखी थीं, आठ करोड़ कांस्य परिमित स्वर्ण मुद्रायें व्यापार में विनियोजित थीं और आठ करोड़ कांस्य परिमित स्वर्ण मुद्रायें घर-भवन आदि वैभव में लगी थीं। उसके आठ व्रज गोकुल थे और प्रत्येक व्रज में दस-दस हजार गायें थीं।

वह महाशतक गाथापति बहुत से राजा—यावत्—कौटुम्बिक पुरुषों में सलाह देने में योग्य, विचार विमर्श में समर्थ था, तथा अपने कुटुम्ब में भी मेढीभूत—यावत्—सर्व कार्यों में निर्देशक भी था।

उस महाशतक गाथापति की रेवती प्रमुख तेरह पत्नियाँ थीं वे सभी शुभ लक्षणों युक्त, परिपूर्ण पंच इन्द्रिय और शरीर वाली थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करती थीं।

उस महाशतक की रेवती भार्या के पास पीहर से मिली आठ करोड़ स्वर्ण मुद्रायें तथा दस-दस हजार गायों वाले आठ गोकुल व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में थे और शेष बारह पत्नियों के पास उन उन के पीहर से प्राप्त एक-एक करोड़ स्वर्ण मुद्रायें और दस-दस हजार गायों वाला एक-एक गोकुल निजी—व्यक्तिगत सम्पत्ति के रूप में था।

भगवान् महावीर का समवसरण—

२३३. उस काल और उस समय में स्वामी—श्रमण भगवान महावीर राजगृह नगर में पधारे।

दर्शनार्थ परिषदा निकली।

कौणिक राजा के वर्णन सदृश अपने राज-वैभव सहित श्रेणिक राजा दर्शन करने निकला—यावत्—पर्युपासना की।

महाशतक का समवसरण में गमन और धर्म श्रवण—

२३४. तदनन्तर महाशतक गाथापति इस समाचार को सुनकर कि ‘श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए ग्राम-ग्राम में विहार करते हुए यहाँ आये हैं, प्राप्त हुए हैं, यहाँ पधारे हैं और यहीं राजगृह नगर के बाहर गुणशिलक चैत्य में यथोचित साध्वाचार के अनुरूप अवग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं।

"तं महप्फलं खलु भो ! देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडि-णिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्ज-माणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव गुणसिलए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

तो हे देवानुप्रियो ! जब तथारूप अरिहंत भगवन्तों के नाम और गोत्र सुनने का महाफल है तब फिर उनके सन्मुख जाने, उनको वन्दन-नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या है ? जब आर्यधर्म का एक सुवचन सुनना ही पर्याप्त है तो विपुल अर्थ के ग्रहण करने के विषय में तो कहना ही क्या है ? अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करूँ, उनका सत्कार सम्मान करूँ एवं उन कल्याण मंगल-देव-चैत्य स्वरूप की पर्युपासना करूँ—ऐसा विचार किया, विचार कर स्नान किया, बलि कर्म किया और कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके सभा में जाने योग्य शुद्ध मांगलिक श्रेष्ठ वस्त्रों को पहिनकर मूल्यवान; अल्प भार वाले अलंकारों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्प मालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारण कर मनुष्य समूह को साथ लेकर पैदल राजगृह नगर के बीचों-बीच से निकला, निकलकर जहाँ गुणशिलक चैत्य था, उसमें जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार दक्षिण दिशा से आरम्भ करके प्रदक्षिणा की, फिर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अति निकट न अति दूर किन्तु यथोचित स्थान पर स्थित हो सुनने के लिए उत्सुक हो, नमस्कार करते हुए सन्मुख विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा ।

तए णं समणे भगवं महावीरे महासतयस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने महाशतक गाथापति और उस विशाल धर्म परिषदा को—यावत्—धर्म सुनाया ।

परिषदा वापस लौटी और राजा भी चला गया ।

महासतयस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

२३५. तए णं महासतए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं । एवमेयं भंते । तहमेयं भंते । अवितहमेयं भंते । असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते । से जहेयं तुब्भे वयह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ सेट्ठि-सेणा-

महाशतक को गृही धर्म प्रतिपत्ति—

२३५. तदनन्तर महाशतक गाथापति श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर और हृदय में धारण कर हृष्ट तुष्ट, आनंदित चित्त, अनुरागमना परम प्रसन्न और हर्षवश विकासमान हृदय होता हुआ अपने आसन से उठा, उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके बोला—हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ । हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का विश्वास करता हूँ, हे भगवन् मुझे निर्ग्रन्थ प्रवचन रुचता है । हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन को स्वीकार करने के लिए उद्यत हूँ, हे भगवन् ! वह ऐसा ही है, हे भगवन् ! वह तथ्य है, हे भगवन् ! वह सत्य है, हे भगवन् ! वह संशयरहित है, हे भगवन् ! वह मुझे इच्छित है, हे भगवन् ! मुझे प्रतिइच्छित है, हे भगवन् इच्छित-प्रति-इच्छित है, वह वैसा ही है जैसा आपने कहा है । आप देवानुप्रिय के पास जैसे बहुत से राजा ईश्वर—ऐश्वर्यशाली, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेना-

इड्ढ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि"।

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि।"

तए णं से महासतए गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ, नवरं—अट्ठ हिरण्णकोडीओ सकंसाओ। अट्ठ वया।

रेवतीपामोक्खाहिं तेरसहिं भारियाहिं अवसेसं मेहुणविहिं पच्चक्खाइ। इमं च णं एयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हति—कल्लाकल्लिं च णं कप्पइ मे बेदोणियाए कंसपाईए हिरण्णभरियाए संववहरित्तए।

महासतयस्स समणोवासग-चरिया—

२३६. तए णं महासतए समणोवासए जाए अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसहभेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

भगवओ जणवयविहारो—

तए णं समणे भगवं महावीरे बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भोगाभिलासिणोए रेवतीए चिंता—

२३७. तए णं तीसे रेवतीए गाहावइणीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं इमासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं विघातेणं नो संचाएमि महासतएणं समणोवासएणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं एयाओ दुवालस वि सवत्तीओ अग्गिपओगेण वा सत्थप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवित्ता एतासिं एगमेगं हिरण्णकोडिं एगमेगं वयं सयमेव उवसंपज्जित्ताणं महासतएणं समणोवासएणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणीए विहरित्तए"। एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतराणि य छिद्दाणि य विरहाणि य पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।

पति, सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर, गृहवास का त्यागकर अनगार रूप में प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार से तो मैं मुण्डित होकर गृहवास त्यागकर अनगार दीक्षा अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूँ। अतएव मैं आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत और सात शिक्षा व्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को ग्रहण करना चाहता हूँ।"

भगवान ने कहा—देवानुप्रिय ! जिससे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध—विलम्ब मत करो।"

इसके अनन्तर महाशतक गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर से श्रावक धर्म ग्रहण किया, लेकिन इतना अन्तर है कि आठ करोड़ कांस्य परिमित स्वर्ण मुद्रायें आदि कोष में रखने की और आठ गोकुल—गोशाला में रखने की मर्यादा की।

रेवती आदि तेरह पत्नियों के सिवाय शेष मैथुन-सेवन का परित्याग किया। इसके अतिरिक्त यह और इस प्रकार का विशेष अभिग्रह किया कि प्रतिदिन लेन-देन में दो द्रोण परिमाण कांस्य परिमित स्वर्ण मुद्राओं की सीमा रखूँगा।

महाशतक की श्रमणोपासक चर्या—

२३६. तदनन्तर वह महाशतक जीव-अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक हो गया—यावत्—प्राशुक एषणीय अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य, आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण, औषधि, भेषज एवं प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, आसन आदि से श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रतिलाभित करते हुए जीवन व्यतीत करने लगा।

भगवान् का जनपद विहार—

तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर अन्य बाह्य जनपदों में विचरण करने लगे।

भोगाभिलाषिणी रेवती की चिन्ता—

२३७. इसके पश्चात् उस रेवती गाथापत्नी को किसी एक समय मध्यरात्रि में कौटुम्बिक कार्यों के सम्बन्ध में विचार करते हुए यह इस प्रकार का आंतरिक चिंतित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इन अपनी बारह सौतों के विघ्न के कारण महाशतक श्रमणोपासक के साथ विशिष्ट प्रकार के मनुष्य जीवन सम्बन्धी काम भोगों को भोग नहीं पाती हूँ। अतः मेरे लिये यह अच्छा होगा कि मैं इन बारह सौतों को अग्निप्रयोग, शस्त्रप्रयोग अथवा विषप्रयोग द्वारा मार कर इनकी एक एक करोड़ स्वर्ण मुद्राओं और एक-एक गोकुल पर कब्जा करके महाशतक श्रमणोपासक के साथ मनुष्य-जीवन सम्बन्धी अलौकिक काम भोगों का भोग करूँ।" ऐसा विचार किया और ऐसा विचार कर उन बारह सौतों के गुप्त छिद्रों और विवरों—गुप्त भेदों और कमजोरियों—को ढूंढने लगी।

रेवतीए सवत्ती-उद्दवणं—

२३८. तए णं सा रेवती गाहावइणी अण्णया कयाइ तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं अंतरं जाणित्ता छ सवत्तीओ सत्थप्पओगेणं उद्दवेइ, छ सवत्तीओ विसप्पओगेणं उद्दवेइ उद्दवेत्ता तासिं दुवालसण्हं सवत्तीणं कोलघरियं एगमेगं हिरण्णकोडिं, एगमेगं वयं सयमेव पडिवज्जित्ता महासतएणं समणोवासएणं सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

रेवती द्वारा सपत्नी विनाश—

२३८. तदनन्तर उस रेवती गाथापत्नी ने किसी एकदिन उन बारह सपत्नियों के गुप्त भेदों को जानकर छह सपत्नियों—सौतों को शस्त्र-प्रयोग से मार डाला और छह सपत्नियों को विष प्रयोग से मारा, मारकर उन बारहों सौतों के पीहरों से मिली हुई एक-एक स्वर्ण कोटियों और दस दस हजार गायों वाले एक-एक व्रज को अपने अधिकार में लेकर महाशतक श्रमणोपासक के साथ मन चाहे मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगने लगी।

रेवतीए मंस-मज्जाऽऽसेवणं—

२३९. तए णं सा रेवती गाहावइणी मंसलोलुया मंसमुच्छिया मंसगढिया मंसगिद्धा मंसअज्झोववण्णा बहुविहेहिं मंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी विहरइ।

रेवती का मांस-मद्य-आदि सेवन—

२३९. तदनन्तर वह रेवती गाथापत्नी मांस लोलुप, मांस मूर्च्छित मांसानुरागी, मांसगृद्ध, मांस-आसक्त होती हुई अनेक प्रकार के मांसों में, मांस के शूलकों में, तले हुए मांस आदि में, भुने हुए मांस में और सुरा, मधुक (महुये से बनी शराब) मेरग, मद्य, सीधु (विशिष्ट शराब) सुगंधित शराब आदि का आस्वादन करती हुई, खाती पीती हुई, पीती पिलाती हुई, भोग करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

अमाघायघोसणाए वि रेवतीए मंस-मज्जाऽऽसेवणं—

२४०. तए णं रायगिहे नयरे अण्णया कयाइ अमाघाए घुट्ठे यावि होत्था।

तए णं सा रेवती गाहावइणी मंसलोलुया मंसमुच्छिया मंसगढिया मंसगिद्धा मंसअज्झोववण्णा कोलघरिए पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे देवाणुप्पिया! ममं कोलहरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे-दुवे गोणपोयए, उद्दवेह, उद्दवेत्ता ममं उवणेह"।

तए णं ते कोलघरिया पुरिसा रेवतीए गाहावइणीए 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता रेवतीए गाहावइणीए कोलहरिएहिंतो वएहिंतो कल्लाकल्लिं दुवे-दुवे गोणपोयए वहेंति, वहेत्ता रेवतीए गाहावइणीए उवणेंति।

तए णं सा रेवती गाहावइणी तेहिं गोणमंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि सुरं च महुं च मेरगं च मज्जं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी विहरइ।

अमारि-घोषणा होने पर भी रेवती द्वारा मांस-मद्य-आसेवन—

२४०. इसके पश्चात् किसी एक दिन राजगृह नगर में अमारि घोषणा (किसी भी जीव का वध न करने की घोषणा) हुई।

अब उस मांस लोलुप, मांसमूर्च्छित, मांसानुरागी, मांस गृद्ध, मांस आसक्त रेवती गाथापत्नी ने अपने पीहर के सेवक—नौकर को बुलाया, बुलाकर उसे यह आज्ञा दी—'हे देवानुप्रिय! मेरे पीहर के व्रजों में से प्रतिदिन दो-दो बछड़ों को मारो और मारकर मेरे पास लाया करो—पहुँचाओ।"

तत्पश्चात् उस पितृगृह के सेवक ने रेवती गाथापत्नी की आज्ञा को 'इसी प्रकार ठीक है' कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके रेवती गाथापत्नी के पीहर के व्रजों में से प्रतिदिन दो-दो बछड़ों को मारता और मारकर रेवती गाथापत्नी को पहुँचाने लगा।

तब वह रेवती गाथापत्नी उन बछड़ों के मांस को लोहे की शलाकों पर सेके हुए, घी आदि में तले हुए और आग पर भुने हुए टुकड़ों एवं सुरा मधु, मेरक, मद्य, सीधु, और प्रसन्न नामक मदिराओं का आस्वादन लेती हुई, चखती हुई, देती हुई एवं लोलुपता से सेवन करती हुई रहने लगी।

महासतगस्स धम्मजागरिया—

२४१. तए णं तस्स महासतगस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छरा वीइक्कंता। पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा

महाशतक की धर्मजागरिका—

२४१. तदनन्तर उस महाशतक श्रमणोपासक के विविध प्रकार के शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष व्यतीत हो गये और पन्द्रहवां

वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं रायगिहे नयरे बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेण अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए"।

तए णं से महासतए समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणि-सुवण्णे ववगयमाला-वण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

महासतगस्स अणुकूलो रेवतीकओ उवसग्गो—

२४२. तए णं सा रेवती गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढमाणी-विकड्ढमाणी जेणेव पोसहसाला जेणेव महासतए समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्माय-जणणाइं सिंगारियाइं इत्थिभावाइं उवदंसेमाणी-उवदंसेमाणी महासतयं समणोवासयं एवं वयासी—"हंभो! महासतया! समणोवासया! धम्मकामया! पुण्णकामया! सग्गकामया! मोक्खकामया! धम्मकंखिया! पुण्णकंखिया! सग्गकंखिया! मोक्ख-कंखिया! धम्मपिवासिया! पुण्णपिवासिया! सग्गपिवासिया! मोक्खपिवासिया! किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा, जं णं तुमं मए सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे नो विहरसि?"

तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं सा रेवती गाहावइणी महासतयं समणोवासयं दोच्चं

वर्ष चल रहा था। तब किसी एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्म जागरण करते हुए इस प्रकार का यह चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"मैं राजगृह नगर के बहुत से (राजाओं—यावत्—सार्थवाहप्रभृति) द्वारा पूछा जाता हूं, सलाह लेने योग्य हूं, तथा स्वयं अपने कुटुम्ब का भी मेढि के समान आधारभूत हूं और समस्त कार्यों का निर्देशक हूं, लेकिन इस विक्षेप—रुकावट के कारण मैं श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकृत धर्मप्रज्ञप्ति का तदनुरूप परिपालन करने में समर्थ नहीं हो पा रहा हूं, परिपालन नहीं कर पा रहा हूं।

तत्पश्चात् उस श्रमणोपासक महाशतक ने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, जाति-बन्धुओं, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचित जनों से पूछा, पूछकर वह अपने घर से निकला, निकलकर राजगृह नगर के मध्य में से होता हुआ जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला को प्रमार्जित किया—साफ किया, प्रमार्जित करके शौच एवं लघुशंका के स्थान की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ संस्तारक बिछौना बिछाया, बिछाकर उस कुश संस्तारक पर बैठा और पौषधशाला में पौषधव्रत धारण कर मणि स्वर्ण, माला, विलेपन, वर्णक का त्यागकर मूसल आदि शस्त्रों को एक ओर रखकर एकाकी होकर ब्रह्मचारीवत् दर्भ-संस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकृत धर्म प्रज्ञप्ति-धर्म शिक्षा को धारण कर विचरने लगा।

महाशतक को रेवतीकृत अनुकूल उपसर्ग—

२४२. तत्पश्चात् किसी एक दिन वह रेवती गाथापत्नी शराब के नशे में उन्मत्त लड़खड़ाती हुई, बालों को बिखेरे हुए, बारम्बार अपने उत्तरीय ओढ़ने के वस्त्र को फेंकती हुई जहाँ पौषधशाला थी, जहाँ महाशतक श्रमणोपासक था वहाँ आई, वहाँ आकर मोह एवं उन्माद जनक कामोद्दीपक कटाक्ष आदि स्त्री भावों का बारम्बार प्रदर्शन करती हुई—दिखाती हुई महाशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार बोली—"ओ धर्म, पुण्य, स्वर्ग, मोक्ष की कामना, इच्छा—आकांक्षा एवं अभिलाषा रखने वाले महाशतक श्रमणोपासक! तुम उस धर्म, पुण्य, स्वर्ग अथवा मोक्ष से क्या प्राप्त करोगे, जिससे हे देवानुप्रिय! तुम मेरे साथ मनमाने मनुष्य जीवन सम्बन्धी विषय भोगों को नहीं भोगते हो? अर्थात् मेरे साथ भोग भोगने में जो सुख मिलेगा वह धर्म आदि से प्राप्त होने वाला नहीं है।"

उस महाशतक श्रमणोपासक ने रेवती गाथापत्नी के इस कथन का कोई आदर नहीं किया न उस पर ध्यान दिया किन्तु उपेक्षा और उदासीन भाव से मौनपूर्वक धर्माराधना में निरत रहा।

यह देखकर उस गाथापत्नी रेवती ने महाशतक श्रमणोपासक

पि तच्चं पि एवं वयासी—"हंभो ! महासतया ! समणोवासया ! किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया ! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा, जं णं तुमं मए सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणे नो विहरसि ?"

से दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—'ओ महाशतक श्रमणोपासक ! तुम्हें उस धर्म पुण्य, स्वर्ग अथवा मोक्ष से क्या मिलने वाला है ? जिससे तुम मेरे साथ मनमाने मनुष्य सम्बन्धी भोगों को भोगते हुए विचरण नहीं करते हो ?"

तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे विहरइ ।

महाशतक श्रमणोपासक ने रेवती गाथापत्नी के इन दूसरी और तीसरी बार कहे गये शब्दों को सुनकर भी आदर नहीं किया, उन पर ध्यान नहीं दिया किन्तु उपेक्षा और उदासीनता दिखाते हुए वह धर्म साधना में निरत रहा।

तए णं सा रेवती गाहावइणी महासतएणं समणोवासएणं अणाढाइज्जमाणी अपरियाणिज्जमाणी जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

तत्पश्चात् वह रेवती गाथापत्नी महाशतक श्रमणोपासक द्वारा तिरस्कृत और उपेक्षित होती हुई जिस ओर से आई थी वापस उसी ओर लौट गई ।

महासतगस्स उवासगपडिमा-पडिवत्ती—

महाशतक की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

२४३. तए णं से महासतए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उव-संपज्जित्ताणं विहरइ ।

२४३. तत्पश्चात् वह महाशतक श्रमणोपासक प्रथम उपासक प्रतिमा को स्वीकार करके विचरने लगा ।

तए णं से महासतए समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ ।

उस महाशतक श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा यथा-श्रुत—शास्त्र के अनुसार, यथाकल्प—आचार मर्यादानुसार, यथा-मार्ग—विधि के अनुसार यथातत्त्व—सिद्धान्त के अनुसार भलीभांति ग्रहण की, उसका पालन किया उसे शोधित—शुद्ध किया तीर्ण-पूर्ण किया, कीर्तित अभिनंदित किया, आराधित किया ।

तए णं से महासतए समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्का-रसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेए पालेइ सोहेइ तीरेइ कित्तेइ आराहेइ ।

तदपश्चात् महाशतक श्रमणोपासक ने इसीप्रकार से दूसरी तीसरी, चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा यथाश्रुत, यथाकल्प, यथामार्ग, यथातत्त्व सम्यक् प्रकार से अंगीकार की, उसका पालन किया, उसे शोधित किया, तीर्ण किया, कीर्तित किया, आराधित किया ।

तए णं से महासतए समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पय-त्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए ।

तदनन्तर वह महाशतक श्रमणोपासक उस उत्कृष्ट, विपुल, प्रयत्नसाध्य, ग्रहण किये हुए तपश्चरण से शुष्क, रूक्ष हो गया, उसके शरीर पर मांस नहीं रहा, हड्डियाँ और चमड़ी मात्र बची रही, हड्डियों से किड़-किड़ की आवाज होने लगी, शरीर कृश-क्षीण हो गया, उभरी हुई नाड़ियाँ दिखने लगीं ।

महासतगस्स अणसणं—

महाशतक का अनशन—

२४४. तए णं तस्स महासतगस्स समणोवासयस्स अण्णदा कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकाले धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणि-संतए जाए । तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरि-

२४४. तत्पश्चात् किसी एक दिन मध्यरात्रि धर्म जागरण करते हुए उन महाशतक श्रमणोपासक को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि मैं इस उत्कृष्ट विपुल, प्रयत्न साध्य ग्रहण किये हुए तपश्चरण से सूख गया हूँ, मेरा शरीर रूक्ष हो गया है, मांस-विहीन हो गया है, मात्र अस्थियाँ और चमड़ी शेष रही है, हड्डियाँ किड़-किड़ाहट करने लगी हैं, कृशता के कारण उभरी हुई नाड़ियाँ दिखने लगी हैं । तथापि मुझमें अभी उत्थान, धर्म के प्रति उत्साह, कर्म, प्रवृत्ति, बल, वीर्य, पुरुषोचित पराक्रम, श्रद्धा धृति,-धैर्य

सक्कार-परक्कमे सद्धाधिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे,-जाव-म मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतिय-संलेहणाझूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए'' । एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ ।

संवेग-मुमुक्षु भाव है । अतएव जब तक मुझमें उत्थान, क्रिया-शक्ति, बल, वीर्य, पुरुषोचित पराक्रम, श्रद्धा, धृति, संवेग है तथा—यावत्—जब तक मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, जिन, सुहस्ती श्रमण भगवान् महावीर विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिये यह श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने पर—यावत्—सूर्योदय होने तथा जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के चमकने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना स्वीकार कर लूं, भोजन पान का परित्याग कर लूं और मरण की कामना न करता हुआ काल व्यतीत करूं ।'' ऐसा विचार किया विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने पर—सूर्य के उदित होने पर और सहस्ररश्मि दिनकर के तेजसहित प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को स्वीकार कर, भक्त-पान का परित्याग कर मृत्यु की कामना न करता हुआ वह आराधना में लीन हो गया ।

महासतगस्स ओहिनाणुप्पत्ती—

२४५. तए णं तस्स महासतगस्स समणोवासगस्स सुभेणं अज्झवसाणेणं सुभेणं परिणामेणं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं, तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ओहिणाणे समुप्पण्णे पुरत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ पासइ, दक्खिणेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ पासइ, पच्चत्थिमेणं लवणसमुद्दे जोयणसाहस्सियं खेत्तं जाणइ पासइ उत्तरेणं-जाव-चुल्लहिमवंतं वासहरपव्वयं पव्वयं जाणइ, पासइ [उड्ढं जाव सोहम्मं कप्पं जाणइ पासइ ?] अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुयं नरयं चउरासीयवाससहस्सट्ठिइयं जाणइ पासइ ।

महाशतक को अवधिज्ञानोत्पत्ति—

२४५. तत्पश्चात् महाशतक श्रमणोपासक को शुभ अध्यवसाय और शुभ परिणाम युक्त विशुद्ध, होती हुई लेश्याओं से तदावरणीय कर्म के क्षयोपशम में अवधिज्ञान उत्पन्न हो गया । जिससे वह पश्चिम में लवणसमुद्र के एक हजार योजन तक के क्षेत्र को जानने देखने लगा—यावत्—उत्तर में हिमवन्त वर्षधर पर्वत तक जानने देखने लगा (ऊर्ध्वदिशा में सौधर्मकल्प पर्यन्त) और अधोदिशा में इस प्रथम नारकभूमि—रत्नप्रभा में चौरासी हजार की स्थिति वाले लोलुपाच्युत नामक नरक तक जानने देखने लगा ।

महासतगस्स पुणरवि रेवतीकओ अणुकूलो उवसग्गो—

२४६. तए णं सा रेवती गाहावइणी अण्णदा कदाइ मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढमाणी-विकड्ढमाणी जेणेव पोसहसाला, जेणेव महासतए समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासतयं समणोवासयं एवं वयासी—''हंभो ! महासतया ! समणोवासया ! किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया ! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा, जं णं तुमं मए सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे नो विहरसि ?''

महाशतक को पुनः रेवतीकृत अनुकूल उपसर्ग—

२४६. तत्पश्चात् किसी एक दिन वह रेवती गाथापत्नी शराब के नशे में उन्मत्त लड़खड़ाती हुई, बाल बिखेरे, बार-बार ओढ़ने को इधर उधर फेंकती हुई जहाँ पोषधशाला में महाशतक श्रमणोपासक था, वहाँ आई । वहाँ आकर श्रमणोपासक से इस प्रकार बोली—'ओ महाशतक श्रमणोपासक ! तुम इस धर्म, पुण्य, स्वर्ग अथवा मोक्ष से क्या प्राप्त करोगे ? जो तुम मेरे साथ मनमाने मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों के भोगते हुए विचरण नहीं करते हो ?''

तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए एयमट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ ।

तब उस श्रमणोपासक महाशतक ने रेवती गाथापत्नी की इस बात का आदर नहीं किया, और न उस पर ध्यान दिया, किन्तु उपेक्षा और उदासीन भाव से मौन होकर अपनी धर्म-साधना में निरत रहा ।

तए णं सा रेवती गाहावइणी महासतयं समणोवासयं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—''हंभो ! महासतया ! समणोवासया'' ! किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया ! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा

तत्पश्चात् उस गाथापत्नी रेवती ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—'ओ महाशतक श्रमणोपासक ! तुम देवानुप्रिय ! धर्म, पुण्य, स्वर्ग अथवा मोक्ष से क्या पाओगे,

मोक्खेण वा, जं णं तुमं मए सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोग-भोगाइं भुञ्जमाणे नो विहरसि ?"

जिससे तुम मेरे साथ मनुष्य सम्बन्धी श्रेष्ठ भोगोपभोगों को नहीं भोगते हो ?"

महासतगस्स विक्खेवो तेण य रेवतीए मरणाणंतरं नरय-गमण-कहणं—

महाशतक को विक्षेप और उससे रेवती को मरणानन्तर नरक गमन कथन—

२४७. तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता रेवतिं गाहावइणिं एवं वयासी—"हंभो ! रेवती ! अप्पत्थियपत्थिए ! दुरंत-पंत-लक्खणे ! हीणपुण्णचाउद्दसिए ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए ! एवं खलु तुमं अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि"।

२४७. इसके बाद महाशतक श्रमणोपासक ने रेवती गाथापत्नी के दूसरी और तीसरी बार इसी प्रकार कहे जाने पर क्रोधित, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् रौद्र रूप धारण कर दाँतों को मिसमिसाते हुए अवधि ज्ञान का प्रयोग किया, प्रयोग करके अवधि ज्ञानोपयोग लगाया और उपयोग लगाकर रेवती गाथापत्नी से इस प्रकार कहा—'ओ अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाली (मौत को चाहने वाली) दुरन्त-हीन लक्षण वाली (भाग्यहीन) हीनपुण्य, चातुर्दशिक (कृष्ण पक्ष की चतुर्दशी को जन्म लेने वाली) श्री, ह्री धृति, कीर्तिविहीन रेवती ! तू सात रात के अन्दर अलसक नामक रोग से आक्रांतपीड़ित होकर आर्त, दुःखित, व्यथित और विवश होती हुई अशान्तिपूर्वक मरण समय में मर कर अधोलोक में इस रत्न प्रभा पृथ्वी के लोलुपाच्युत नामक नरक में चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगी।"

तए णं सा रेवती गाहावइणी महासतएणं समणोवासएणं एवं वुत्ता समाणी—"रुट्ठे णं ममं महासतए समणोवासए ! हीणे णं ममं महासतए समणोवासए ! अवज्झाया णं अहं महासतएणं समणोवासएणं, न नज्जइ णं अहं केणावि कु-मारेणं मारिज्जिस्सामि"—त्ति कट्टु भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ओहयमणसंकप्पा चिंतासोगसागरसंपविट्ठा करयलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठिया झियाइ।

तब वह रेवती गाथापत्नी श्रमणोपासक महाशतक की इस बात को सुनकर अपने आप से कहने लगी—'महाशतक श्रमणोपासक मुझसे रुष्ट हो गया है, महाशतक श्रमणोपासक को मेरे प्रति दुर्भावना पैदा हो गई है, न जाने मैं किस कुमौत से मार डाली जाऊँगी'—ऐसा सोचकर भयभीत, त्रस्त, त्रसित-व्यथित, उद्विग्न और भयग्रस्त होती हुई धीरे-धीरे वापस वहाँ से निकली और निकलकर अपने घर पर आई। आकर उदासीन एवं भग्न मनोरथ जैसी होकर, चिन्ता और शोक सागर में डूबकर हथेली पर मुख को रखकर आर्तध्यान में खोई हुई भूमि पर दृष्टि गड़ाये सोच में पड़ गई।

तए णं सा रेवती गाहावइणी अंतो सत्तरत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

तत्पश्चात् वह रेवती गाथापत्नी सात रात्रि के भीतर अलसक रोग से पीड़ित होकर व्यथित, दुःखित एवं विवश होती हुई मरण समय में मर कर इस रत्न प्रभा पृथ्वी के लोलुपाच्युत नामक नरक में चौरासी हजार वर्ष के आयु वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

भगवान महावीर का समवसरण—

२४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा पडिगया।

२४८. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे। परिषदा वापस लौट गई।

महासतगस्स अंतिए गोतम-पेसणं—

महाशतक के निकट गौतम-प्रेषण—

२४९. गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—"एवं खलु गोयमा ! इहेव रायगिहे नयरे ममं अंतेवासी महासतए नामं समणोवासए पोसहसालाए अपच्छिममारणंतिय-

२४९. 'गौतम !' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम से कहा—"हे गौतम ! इसी राजगृह नगर में मेरा अन्तेवासी-अनुयायी महाशतक नामक श्रमणोपासक पौषध-

संलेहणाए झूसियसरीरे भत्तपाण-पडियाइक्खिए, कालं अणवकंख-माणे विहरइ।

तए णं तस्स महासतगस्स समणोवासगस्स रेवती गाहावइणी मत्ता लुलिया विइण्णकेसी उत्तरिज्जयं विकड्ढमाणी-विकड्ढमाणी जेणेव पोसहसाला, जेणेव महासतए समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मोहुम्मायजणणाइं सिंगारियाइं इत्थिभावाइं उवदंसे-माणी-उवदंसेमाणी महासतयं समणोवासयं एवं वयासी—हंभो ! महासतया ! समणोवासया ! किं णं तुब्भं देवाणुप्पिया ! धम्मेण वा पुण्णेण वा सग्गेण वा मोक्खेण वा, जं णं तुमं मए सद्धिं ओरालाइं माणुस्सयाइं भोगभोगाइं भुञ्जमाणे नो विहरसि ?

तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए एय-मट्ठं नो आढाइ नो परियाणाइ, अणाढायमाणे अपरियाणमाणे तुसिणीए धम्मज्झाणोवगए विहरइ।

तए णं सा रेवती गाहावइणी महासतयं समणोवासयं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी०।

तए णं से महासतए समणोवासए रेवतीए गाहावइणीए दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसीयमाणे ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता रेवतिं गाहावइणि एवं वयासी—हंभो ! रेवती ! अपत्थियपत्थिए ! दुरंत-पंत-लक्खणे ! हीणपुण्णचाउद्दसिए ! सिरि-हिरि-धिइ-कित्ति-परिवज्जिए ! एवं खलु तुमं अंतो सत्त-रत्तस्स अलसएणं वाहिणा अभिभूया समाणी अट्ट-दुहट्ट-वसट्टा असमाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा अहे इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए लोलुयच्चुए नरए चउरासीतिवाससहस्सट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिसि।

नो खलु कप्पइ गोयमा ! समणोवासगस्स अपच्छिममारणं-तियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए। तं गच्छ णं देवाणु-प्पिया ! तुमं महासतयं समणोवासयं एवं वयाहि—नो खलु देवा-णुप्पिया ! कप्पइ। समणोवासगस्स अपच्छिम मारणंतिय-संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स-भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए तुमे य णं देवाणुप्पिया ! रेवती

शाला में अन्तिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना में तत्पर होता हुआ, आहार-पानी का परित्याग किये हुए, मरण की कामना न करते हुए विचर रहा है।

उस महाशतक श्रमणोपासक की पत्नी रेवती शराब के नशे में उन्मत्त, लड़खड़ाती हुई, बाल बिखेरे और ओढ़ने को बार-बार उछालती हुई पौषधशाला में महाशतक के पास आई, आकर मोह एवं उन्मादजनक, शृंगार आदि के द्वारा स्त्रीभावों को प्रदर्शित करती हुई महाशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार बोली—'ओ महाशतक श्रमणोपासक ! तुम देवानुप्रिय इन धर्म, पुण्य, स्वर्ग अथवा मोक्ष से क्या पाओगे ? जिससे मेरे साथ मनुष्य जीवन के उत्तम भोगोपभोगों को नहीं भोगते हो ?

तब महाशतक श्रमणोपासक ने रेवती गाथापत्नी की इस बात का आदर नहीं किया, उसकी अनुमोदना नहीं की, किन्तु उपेक्षा एवं उदासीनतापूर्वक मौन रहकर धर्म साधना में निरत रहा।

तत्पश्चात् रेवती गाथापत्नी ने दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार से कहा।

तब उस महाशतक श्रमणोपासक ने रेवती गाथापत्नी की दूसरी और तीसरी बार कही गई इसी बात को सुनकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित और रौद्र रूप को धारण कर दाँतों को मिसमिसाते हुए अवधिज्ञान का प्रयोग किया, प्रयोग करके उपयोग लगाया और उपयोग लगाकर रेवती गाथापत्नी से इस प्रकार कहा—'ओ अप्रार्थित की प्रार्थना करने वाली, दुरंत-प्रांत लक्षण वाली, हीनपुण्य चातुर्दशिक, श्री, ह्री, धृति, कीर्ति विहीन रेवती ! तू सात रात के अन्दर अलसकरोग से पीड़ित होकर व्यथित, दुःखित तथा विवश होती हुई अशान्ति पूर्वक मरण समय में मर कर इस अधोलोक में रत्नप्रभा पृथ्वी के लोलुपाच्युत नरक में चौरासी हजार वर्ष की आयु वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगी।'

परन्तु हे गौतम ! अंतिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना में तत्पर आहार-पानी का त्याग किये हुए—अन-शन स्वीकार किये हुए, श्रमणोपासक को दूसरों के लिये सत्य, तत्त्वरूप, तथ्यात्मक, सद्भूत भी ऐसे अनिष्ट, अकान्त—अनुचित—असुन्दर, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम (जिन्हें मन स्वीकार न करना चाहे) वचनों को बोलना नहीं कल्पता है। इसलिये हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और महाशतक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहो—'अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना में तत्पर, आहार-पानी का त्याग किये हुए श्रमणोपासक को दूसरों के लिये सत्य, तत्त्वरूप, तथाभूत एवं सद्रूप होने पर भी अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम वचन बोलना नहीं कल्पता

गाहावइणी संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरिया। तं णं तुमं एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि।"

गोतमस्स महासतयपुरओ आगमणं—

२५०. तए णं से भगवं गोयमे समणस्स भगवओ महावीरस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता जेणेव महासतगस्स समणोवासगस्स गिहे जेणेव महासतए समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ।

महासतयकयं गोयमवंदणं—

२५१. तए णं से महासतए समणोवासए भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठ-तुट्ठ चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए भगवं गोयमं वंदइ नमंसइ।

महासतयपुरओ गोयमस्स पायच्छित्तकरणकहं भगवंत-कहणनिरूवणं—

२५२. तए णं से भगवं गोयमे महासतयं समणोवासयं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे एवं आइक्खइ भासइ पण्णवेइ परूवेइ—नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया! समणोवासगस्स अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स परो संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरित्तए। तुमे णं देवाणुप्पिया! रेवती गाहावइणी संतेहिं तच्चेहिं तहिएहिं सब्भूएहिं अणिट्ठेहिं अकंतेहिं अप्पिएहिं अमणुण्णेहिं अमणामेहिं वागरणेहिं वागरिया। तं णं तुमं देवाणुप्पिया! एयस्स ठाणस्स आलोएहि पडिक्कमाहि निंदाहि गरिहाहि विउट्टाहि विसोहेहि अकरणयाए अब्भुट्ठाहि अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जाहि"।

महासतगस्स पायच्छित्तकरणं—

२५३. तए णं से महासतए समणोवासए भगवओ गोयमस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तस्स ठाणस्स आलोएइ पडिक्कमइ निंदइ गरिहइ विउट्टइ विसोहेइ अकरणयाए

है, किन्तु देवानुप्रिय तुमने रेवती गाथापत्नी को सत्य, सत्वरूप, तथ्यपूर्ण, सद्भूत होने पर भी अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम वचन कहे हैं। अतएव तुम इस स्थान की, धर्म के प्रतिकूल आचरण की, आलोचना करो, प्रतिक्रमण करो, निन्दा करो, गर्हा करो, त्याग करो, विशुद्धि करो तथा इस अकरणीय का प्रायश्चित्त करने के लिए उद्यत होओ और तपःकर्म स्वीकार करो।

गौतम का महाशतक के समक्ष आगमन—

२५०. तत्पश्चात् भगवान गौतम ने विनयपूर्वक श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को 'आपकी आज्ञानुसार' कहकर स्वीकार किया, स्वीकार करके वे वहाँ से निकले और निकलकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से चलते हुए जहाँ महाशतक श्रमणोपासक का घर था, जहाँ महाशतक श्रमणोपासक था, वहाँ पहुँचे—उसके पास आये।

महाशतक कृत गौतम वन्दन—

२५१. तब महाशतक श्रमणोपासक ने भगवान् गौतम को अपनी ओर आते हुए देखा, देखकर हर्षित, संतुष्ट, आनंदितचित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न एवं हर्षातिरेक से विकसित हृदय होते हुए भगवान् गौतम को वन्दन नमस्कार किया।

महाशतक के समक्ष गौतम का प्रायश्चित्त करने रूप भगवान् के कथन का निरूपण—

२५२. तत्पश्चात् भगवान् गौतम ने महाशतक श्रमणोपासक से यह कहा—"हे देवानुप्रिय! श्रमण भगवान् महावीर ने ऐसा आख्यात, भाषित, प्रज्ञप्त और प्ररूपित किया है कि अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना की आराधना में निरत, आहार पानी का त्याग किये हुए श्रमणोपासक को दूसरों के लिये सत्य, तत्व, तथ्य एवं सद्रूप होने पर भी अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ अमणाम वचन बोलना नहीं कल्पता है। किन्तु हे देवानुप्रिय! तुमने रेवती गाथापत्नी के प्रति सत्य, तत्व, तथ्य और सद्रूप, होने पर भी अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम वचन बोले हैं। अतएव हे देवानुप्रिय! तुम इस स्थान, प्रतिकूल, प्रवृत्ति की आलोचना, प्रतिक्रमण, निन्दा, गर्हा, करो, इससे निवृत्ति लो, इसका शोधन परिमार्जन कर तथा इस अकरणीय कार्य के लिये यथायोग्य प्रायश्चित्त करने के लिये उद्यत होओ, तपः कर्म स्वीकार करो।

महाशतक का प्रायश्चित्त करना—

२५३. तत्पश्चात् उस महाशतक श्रमणोपासक ने भगवान् गौतम के इस कथन को 'इसी प्रकार से' कहकर विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके उस स्थान की आलोचना की, प्रतिक्रमण की, निन्दा की गर्हा की, उससे निवृत्ति ली, उसका विशोधन-

अब्भुट्ठेइ अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जइ।

किया तथा अकरणीय कार्य का यथोचित प्रायश्चित्त करने के लिये तत्पर होकर तपःकर्म अंगीकार किया।

गोयमस्स पडिणिक्खमणं—

२५४. तए णं से भगवं गोयमे महासतगस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

गौतम का प्रतिनिष्क्रमण—

२५४. तत्पश्चात् भगवान् गौतम महाशतक श्रमणोपासक के पास से वापस लौटे—रवाना हुए और राजगृहनगर के मध्य में से निकले, निकलकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये और आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

भगवओ जणवयविहारो—

२५५. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ रायगिहाओ नयराओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान का जनपद विहार—

२५५. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर ने राजगृह नगर से प्रस्थान किया और अन्य बाह्य जनपदों में विचरने लगे।

महासतगस्स देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगमणनिरूवणं च—

२५६. तए णं से महासतए समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणित्ता एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते, समाहिपत्ते, कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे अरुणवडए विमाणे देवत्ताए उववण्णे। चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता।

महाशतक की देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

२५६. तत्पश्चात् वह महाशतक श्रमणोपासक अनेक प्रकार के शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों से आत्मा को भावित कर शुद्ध कर बीस वर्ष तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, ग्यारह उपासक प्रतिमाओं की सम्यक् प्रकार से आराधना कर मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शोधित कर, साठ भोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर, आलोचना प्रतिक्रमण कर, मरण काल आने पर समाधिपूर्वक काल करके सौधर्मकल्प के अरुणावतंसक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ चार पल्योपम की स्थिति है।

महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—उवासगदसाओ अ० ८

महाविदेह क्षेत्र में वह सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

॥ महाशतक गाथापति कथानक समाप्त ॥

१३. नंदिणीपियागाहावइकहाणगं

१३. नंदिनीपिता गाथापति कथानक

सावत्थीए नन्दिणीपिया गाहावई—

२५७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी। कोट्ठए चेइए। जियसत्तू राया।

श्रावस्ती में नन्दिनीपिता गाथापति—

२५७. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी। कोष्ठक नामक चैत्य था। वहाँ के राजा का नाम जितशत्रु था।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए नंदिणीपिया नामं गाहावई परिवसइ— अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं नंदिणीपियस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं नंदिणीपिया गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्ज-वड्ढावए यावि होत्था।

तस्स णं नंदिणीपियस्स गाहावइस्स अस्सिणी नामं भारिया होत्था—अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

२५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

नंदिणीपियस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

२५९. तए णं से नंदिणीपिया गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इहसंपत्ते इहसमोसढे इहेव सावत्थीए नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं महप्फलं खलु भो! देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छणपज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? तं गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं

उस श्रावस्ती नगरी में धनाढ्य—यावत्—बहुत से लोगों द्वारा भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला नन्दिनीपिता नामक गाथापति निवास करता था।

उस नन्दिनीपिता गाथापति की स्वर्णमुद्राओं की चार कोटियाँ कोष में सुरक्षित रखी थी, चार करोड़ स्वर्णमुद्रायें व्यापार-व्यवसाय में विनियोजित थीं और चार कोटि स्वर्ण मुद्रायें आभूषण आदि गृहस्थी सम्बन्धी साधन-सामग्री में लगी थीं। चार गोकुल थे और एक-एक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं।

उस नन्दिनीपिता गाथापति से बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह अपने-अपने कार्यों के बारे में पूछते थे, परामर्श करते थे तथा अपने कुटुम्ब का मेढीभूत—प्रधान—यावत्—सभी कार्यों का निर्देशक भी था।

उस नन्दिनीपिता गाथापति की भार्या का नाम अश्विनी था। जो अखंडित और सम्पूर्ण शरीर एवं पांचों इन्द्रियों वाली थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगती हुई विचरती थी।

भगवान महावीर का समवसरण—

२५८. उस काल और उस समय स्वामी—श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती में पधारे।

दर्शनार्थ परिषदा निकली।

कौणिक राजा के समान जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

नन्दिनीपिता का समवसरण में गमन और धर्म श्रवण—

२५९. तदनन्तर वह नन्दिनीपिता गाथापति इस समाचार को जानकर कि "श्रमण भगवान् महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए, ग्रामनुग्राम में विचरण करते हुए, यहाँ आये हैं, सम्प्राप्त हुए हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं—पधारे हैं और श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह लेकर संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं।

हे देवानुप्रिय! जब तथारूप अरिहन्त भगवन्तों के नाम और गोत्र का सुनना ही महाफलप्रद है तब उनके सम्मुख जाना, उनको वंदन नमन करना, उनसे प्रश्न पूछना और उनकी पर्युपासना करने का तो कहना ही क्या है? जब आर्यधर्म के एक सुवचन का सुनना ही बहुत बड़ी बात है, तब फिर विपुल अर्थ के ग्रहण करने की तो कहना ही क्या है? इसलिये मैं जाऊँ और श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन करूँ, नमन करूँ, सत्कार और सम्मान करूँ एवं इन कल्याण रूप, मंगल रूप, देवरूप तथा चैत्यरूप की पर्युपासना करूँ। ऐसा विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित

पवरपरिहिए अप्पमहग्घा-भरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंट-मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पादविहारचारेणं सावत्थिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ।

किया और फिर शुद्ध तथा सभायोग्य मांगलिक वस्त्रों को पहनकर और अल्प भार, किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर जन समूह को साथ लेकर पैदल श्रावस्ती नगरी के मध्य भाग से गुजरा और जहाँ कोष्ठक चैत्य था, उसमें भी जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की दक्षिण दिशा से प्रारम्भ कर तीन बार प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया वन्दन-नमस्कार करके न अतिदूर और न अति निकट किंतु यथोचित स्थान पर स्थित होकर भगवान की शुश्रूषा करता हुआ नमस्कार करता हुआ सम्मुख विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे नंदिणीपियस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं-परिकहेइ।

परिसा पडिगया, राया य गए।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने नंदिनीपिता गाथापति को और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्मोपदेश दिया।

परिषदा वापिस लौट गई राजा भी चला गया।

नंदिणीपियस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

२६०. तए णं से नंदिणीपिया गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाणहियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते। इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते! से जहेयं तुब्भे वदह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए। अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि"।

नन्दिनीपिता की गृही धर्म प्रतिपत्ति—

२६०. तत्पश्चात् नन्दिनीपिता गाथापति श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारित कर हर्षित, सन्तुष्ट, चित्त में आनंदित, प्रीति मनवाला परम सौम्य मानसिक भावों से युक्त और हर्षातिरेक से विकसित हृदय होता हुआ अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ, खड़े होकर उसने श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके यह बोला—'हे भदन्त! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूँ, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति करता हूँ, हे भगवन्! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचिकर है, हे भगवन्! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन के प्रति उन्मुख होता हूँ—तत्पर हूँ, हे भगवन्! वह ऐसा ही है, हे भगवन्! वह तथ्यरूप है, हे भदन्त, वह सत्य है, हे भदन्त! वह असंदिग्ध—शंकारहित है, हे भदन्त! इच्छित है, हे भदन्त! प्रतीच्छित (स्वीकृत) है, हे भदन्त! इच्छित-प्रतीच्छित है, वह वैसा ही है, जैसा आपने कहा है। आप देवानुप्रिय के पास जिस प्रकार से अनेक राजा ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि मुण्डित होकर, गृह त्याग करके अनगारधर्म में प्रव्रजित हुए है, उस प्रकार से मैं मुण्डित होकर गृहस्थावस्था का परित्याग कर अनगारधर्म में प्रव्रजित होने में समर्थ नहीं हूँ। किन्तु आप देवानुप्रिय के पास मैं पाँच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म ग्रहण करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं करेहि"।

नन्दिनी पिता के निवेदन को सुनकर भगवान ने कहा—'हे देवानुप्रिय! जिससे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, परन्तु विलम्ब मत करो।'

तए णं से नंदिणीपिया गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ।

तत्पश्चात् उस नन्दिनीपिता गाथापति ने श्रमण भगवान् महावीर से श्रावक धर्म अंगीकार किया।

भगवओ जणवयविहारो—

२६१. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ सावत्थीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

भगवान् का जनपद विहार—

२६१. तदनन्तर किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से निकले और निकलकर बाहरी जनपदों में विहार करने लगे।

नंदणीपियस्स समणोवासगचरिया—

२६२. तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ।

नन्दिनीपिता की श्रमणोपासकचर्या—

२६२. तत्पश्चात् वह नन्दिनीपिता श्रमणोपासक हो गया—जीवाजीव तत्वों का ज्ञाता—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय अशन-पान-खाद्य-स्वाद्यरूप चार प्रकार के आहार, वस्त्र, पात्रादि उपधि, कंबल, पादप्रोंछन-रजोहरण, औषधि भेषज तथा प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करता हुआ समय व्यतीत करने लगा।

अस्सिणीए समणोवासियाचरिया—

२६३. तए णं सा अस्सिणी भारिया समणोवासिया जाया—अभिगय-जीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थपडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ।

अश्विनी की श्रमणोपासिकाचर्या—

२६३. तदनन्तर वह अश्विनीभार्या भी जीवाजीव आदि तत्त्वों की जानकार श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थ को प्रासुक, एषणीय अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोंछन, औषधि, भैषज और प्रातिहारिक पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई समय व्यतीत करने लगी।

नंदिणीपियस्स धम्मजागरिया—

२६४. तए णं तस्स नंदिणीपियस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं, पण्णरसमस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं सावत्थीए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुंबस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेणं अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए।

नन्दिनीपिता की धर्म-जागरिका—

२६४. इसके बाद उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक के अनेक शील-व्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों, प्रोषधोपवासों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए चौदह वर्ष बीत गये और पन्द्रहवाँ वर्ष भी आधा व्यतीत हो चुका था तो किसी एक दिन मध्यरात्रि के समय धर्माराधना में जागरण करते हुए मन में इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं श्रावस्ती नगरी के बहुत से राजाओं द्वारा—यावत्—सार्थवाह द्वारा पूछने योग्य हूँ, सलाह लेने योग्य हूँ तथा स्वयं अपने कुटुम्ब का मेढ़िभूत हूँ (आधार)—यावत्—कर्ता धर्ता हूँ, किन्तु इस विक्षेप—रुकावट के कारण मैं श्रमण भगवान् महावीर के पास अंगीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति-धर्म-शिक्षा के अनुरूप आचार करने में समर्थ नहीं हो पाता हूँ।'

२६५. तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधिपरिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सावत्थिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवण-भूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता दब्भ-

२६५. तत्पश्चात् उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक ने अपने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, ज्ञाति बन्धुओं, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचितों से पूछा, पूछकर अपने घर से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ पौषधशाला थी, वहाँ आया, आकर पौषधशाला का प्रमार्जन किया—सफाई की, शौच एवं लघुशंका के स्थान की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके दर्भ संस्तारक को बिछाया, दर्भ संस्तारक बिछाकर उस पर बैठा

संथारयं दुरूहइ, दुरूहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्क-मणिसुवण्णे ववगयमालावण्णगविलेवणे निक्खित्तसत्थमुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ता णं विहरइ।

और मणि-स्वर्ण आदि के आभूषणों को छोड़कर, माला विलेपन आदि का त्याग कर, मूसल आदि शस्त्रों को दूर हटाकर पौषध-शाला में एकाकी हो, ब्रह्मचर्यपूर्वक पौषध व्रत धारणकर श्रमण भगवान महावीर के पास स्वीकार की हुई धर्मप्रज्ञप्ति के अनुरूप साधना में निरत हो गया।

नंदिणीपियस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

२६६. तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

नन्दिनीपिता की उपासक प्रतिमा प्रतिपत्ति—

२६६. तत्पश्चात् नन्दिनीपिता श्रमणोपासक ने पहली उपासक प्रतिमा को स्वीकार किया।

उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक ने इस पहली उपासक प्रतिमा का यथाश्रुत, यथाकल्प, यथामार्ग—विधि के अनुसार, यथातत्त्व—सिद्धान्त के अनुसार भलीभाँति ग्रहण की, पालन की, उसे शोधित किया—पूर्ण किया, कीर्तित किया, आराधित किया।

तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तत्पश्चात् उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को ग्रहण किया और फिर इसी प्रकार तीसरी चौथी, पाँचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं तथा ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को ग्रहण किया, उसका पालन किया, उसे शोधित किया, तीर्ण-पूर्ण किया, उसको अभिनन्दित एवं आराधित किया।

तए णं से नंदिणीपिया समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

तत्पश्चात् उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक उस प्रधान, विपुल प्रयत्नसाध्य और ग्रहण किये हुए तपःकर्म से सूख गया, उसका शरीर रूक्ष हो गया, मांस रहित हो गया, मात्र हड्डियाँ और चमड़ी शेष रह गई, हड्डियाँ आपस में टकराने पर किड़-किड़ाहट की आवाज करने लगीं, शरीर इतना कृश—क्षीण हो गया कि उस पर उभरी हुई नाड़ियाँ—नसें दिखने लगीं।

नंदणीपियस्स अणसणं—

२६७. तए णं तस्स नंदिणीपियस्स समणोवासयस्स अण्णदा कदाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, -जाव-य मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते

नन्दिनीपिता का अनशन—

२६७ तत्पश्चात् किसी एक समय मध्यरात्रि में धर्मजागरण करते हुए उस नन्दिनीपिता श्रमणोपासक को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिंतित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं इस और इस प्रकार के प्रधान—श्रेष्ठ, विस्तृत प्रयत्न साध्य और ग्रहण किये हुए तपःकर्म से शुष्क, रूक्ष निर्मांस होकर हड्डियों एवं चमड़ी का ढाँचा मात्र रह गया हूँ, आपस में टकराने पर शरीर की हड्डियाँ किड़किड़ाहट की आवाज करती हैं तथा क्षीणता के कारण उस पर उभरी हुई नाड़ियाँ दिखने लगी हैं। लेकिन अभी मुझमें उत्थान-उत्साह कर्म—तदनुरूप प्रवृत्ति बल, वीर्य पुरुषाकार पराक्रम, श्रद्धा, धैर्य, संवेग-मुमुक्षुभाव है और जब तक मुझमें उत्थान-धर्मोत्साह, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, श्रद्धा, धृति, संवेग है—यावत्—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर जिन सुहस्ती विचरण कर रहे हैं, तब तक मेरे लिये यह श्रेयरूप है कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्य का

अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए" ।

उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर को जाज्वल्यमान तेज सहित चमकने पर अपश्चिम मारणान्तिक झूसणा को स्वीकार, आहार पानी को छोड़कर काल की आकांक्षा न करते हुए समय बिताऊँ।

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिम-मारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ ।

इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर अंतिम मारणान्तिक संलेखना स्वीकार कर, भक्त-पान को छोड़कर मरण की कामना न करता हुआ धर्म-आराधना में लीन हो गया ।

नंदणीपियस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धि-गमण-निरूवणं च—

नन्दिनीपिता का समाधि-मरण, देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

२६८. तए णं नंदिणीपिया समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासपरियायं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मेकप्पे अरुणगवे विमाणे देवत्ताए उववण्णे । तत्थ णं अत्थेगइया देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । नंदिणीपियस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

२६८. तत्पश्चात् नन्दिनीपिता श्रमणोपासक अनेकविध शीलव्रत गुणव्रत, विरति, पौषधोपवास द्वारा आत्मा को भावित कर, शुद्ध कर बीस वर्ष तक श्रमणोपासक धर्म का पालन कर ग्यारह उपासक प्रतिमाओं का सम्यक्प्रकार से पालन कर, मासिक संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर, साठ भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर, आलोचना प्रतिक्रमणपूर्वक समाधिपूर्वक मरणकाल में मरण कर सौधर्मकल्प के अरुणगव नामक विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ। वहाँ किसी-किसी देव की चार पल्योपम की स्थिति बताई है । नंदिनीपिता देव की भी चार पल्योपम की स्थिति बताई गई है ।

"से णं भंते ! नंदिणीपिया ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

'हे भदन्त ! वह नंदिनीपिता उस देव लोक से आयुक्षय, भव क्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ? गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से जिज्ञासा व्यक्त की ।

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

—उवासगदसाओ अ० ९

भगवान ने कहा—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा और सर्व दुःखों का अंत करेगा ।

॥ नंदिनीपिता गाथापति कथानक समाप्त ॥

□ □

१४. लेतियापियागाहावइकहाणगं

१४. लेतिकापिता गाथापति कथानक

सावत्थीए लेतियापिया गाहावई—

श्रावस्ती में लेतिकापिता गाथापति—

२६९. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नयरी । कोट्ठए चेइए । जियसत्तू राया ।

२६९. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी वहाँ कोष्ठक नामक चैत्य था और वहां के राजा का नाम जितशत्रु था ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए लेतियापिता नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए।

तस्स णं लेइयापियस्स गाहावइस्स चत्तारि हिरण्णकोडीओ निहाणपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ वड्ढिपउत्ताओ, चत्तारि हिरण्णकोडीओ पवित्थरपउत्ताओ, चत्तारि वया दसगोसाहस्सिएणं वएणं होत्था।

से णं लेइयापिता गाहावई बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुंबस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए यावि होत्था।

तस्स णं लेतियापिया गाहावइस्स फग्गुणी नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा-जाव-माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

भगवओ महावीरस्स समवसरणं—

२७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे।

परिसा निग्गया।

कूणिए राया जहा, तहा जियसत्तू निग्गच्छइ-जाव-पज्जुवासइ।

लेतियापियस्स समवसरणे गमणं धम्मसवणं च—

२७१. तए णं से लेतियापिता गाहावई इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे—"एवं खलु समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इहेव सावत्थीए नयरीए बहिया कोट्ठए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं महप्फलं खलु भो! देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए? त गच्छामि णं देवाणुप्पिया! समणं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि सक्कारेमि सम्माणेमि कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामि—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे

उस श्रावस्ती नगरी में लेतिकापिता नामक एक गृहस्थ रहता था। जो धनाढ्य—यावत्—अनेक जनों के द्वारा भी पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था।

उस लेतिकापिता गाथापति के कोष में चार कोटि स्वर्ण-मुद्रायें सुरक्षित रखी थी, चार कोटि स्वर्णमुद्रायें व्यापार में विनियोजित थी और चार कोटि स्वर्णमुद्रायें आभूषण आदि के रूप से गृहस्थी के साधनों में लगी हुई थी। चार गोकुल थे और एक-एक गोकुल में दस-दस हजार गायें थीं।

उस लेतिकापिता गाथापति से बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह अपने अपने कार्य के लिये पूछते थे, परामर्श करते थे तथा अपने कुटुम्ब का भी आधारभूत—यावत्—सर्व कार्यों की देखरेख करने वाला था।

उस लेतिकापिता गाथापति की पत्नी का नाम फाल्गुनी थी, जो अखंडित, शुभ लक्षणों युक्त, परिपूर्ण पंच इन्द्रिय शरीर वाली थी—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी विषय भोगों को भोगती हुई समय बिताती थी।

भगवान् महावीर का समवसरण—

२७०. उस काल और उस समय स्वामी—भगवान महावीर (श्रावस्ती नगरी में) पधारे।

परिषदा दर्शनार्थ निकली।

कूणित राजा के समान जितशत्रु राजा भी दर्शनार्थ निकला—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

लेतिकापिता का समवसरण में गमन और धर्म-श्रवण—

२७१. तत्पश्चात् लेतिकापिता गाथापति इस संवाद को सुनकर कि 'श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए, ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं—पधारे हैं और यहीं श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में यथाप्रतिरूप-साध्वोचित अवग्रह को ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हैं।'

हे देवानुप्रिय! तथारूप अरिहन्त भगवन्तों के नाम और गोत्र को सुनने का ही जब महाफल प्राप्त होता है तब उनके सामने जाने, उनको वन्दन नमस्कार करने, उनसे प्रश्न पूछने और उनकी पर्युपासना करने के लिये तो कहना ही क्या है? जब आर्य धर्म के एक सुवचन का सुनना भी दुर्लभ है, तब विपुल अर्थ के ग्रहण करने के विषय में तो कहना ही क्या है? अतएव हे देवानुप्रिय! मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर की वन्दना करूँ, उनको नमन करूँ, उनका सत्कार सम्मान करूँ और कल्याणरूप मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप उनकी पर्युपासना करूँ"—ऐसा विचार किया, विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया एवं

कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते पायविहारचारेणं सावत्थिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणामेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं, तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता पच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ ।

कौतुक, मंगल और प्रायश्चित्त करके शुद्ध, सभोचित, मांगलिक वस्त्रों को पहिना तथा अल्प भार वाले किन्तु बहुमूल्य आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने घर से निकला, निकलकर कोरंट पुष्पों की मालायुक्त छत्र को मस्तक के ऊपर धारण कर जनसमूह को साथ लेकर पैदल श्रावस्ती नगरी के बीच से गुजरा; गुजरकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था, और उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमन किया, वन्दन-नमन करके न अतिदूर न अति निकट किन्तु यथायोग्य स्थान में स्थित होकर शुश्रूषा करता हुआ, नमस्कार करता हुआ, विनयपूर्वक सन्मुख अंजलि करके भगवान की पर्युपासना करने लगा ।

तए णं समणे भगवं महावीरे लेतियापियस्स गाहावइस्स तीसे य महइमहालियाए परिसाए-जाव-धम्मं परिकहेइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने लेतिकापिता गाथापति और उस विशाल परिषदा को—यावत्—धर्म-देशना दी ।

परिसा पडिगया, राया य गए ।

परिषदा वन्दना कर वापस लौट गई, राजा भी चला गया ।

लेतियापियस्स गिहिधम्म-पडिवत्ती—

२७२. तए णं लेतियापिया गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवस-विसप्पमाण-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं । एवमेयं भंते । तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह । जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइया मुण्डा भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, नो खलु अहं तहा संचाएमि मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि" ।

लेतिकापिता की गृही धर्म-प्रतिपत्ति—

२७२. तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने धर्म-श्रवण कर और हृदय में धारण कर हर्षित, सन्तुष्ट, आनन्दितचित्त, प्रीतिमना परम प्रसन्न एवं हर्षवशात् विकासमान हृदय होता हुआ वह लेतिकापिता गाथापति अपने स्थान से उठ खड़ा हुआ, खड़े होकर श्रमण भगवान की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की और फिर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—'हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की श्रद्धा करता हूं, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर विश्वास करता हूं, हे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचिकर है, हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन अंगीकार करने के लिये उद्यत हूं । हे भदन्त ! वह ऐसा ही है, हे भदन्त ! वह तथ्य है, हे भदन्त ! वह सत्य है, हे भदन्त ! वह असंदिग्ध है, हे भदन्त ! वह मुझे इच्छित है, हे भदन्त ! प्रतीच्छित है, हे भदन्त ! मुझे इच्छित प्रतीच्छित है, वह वैसा ही है, जैसा आप प्ररूपित करते हैं । किन्तु आप देवानुप्रिय के पास जैसे अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य श्रेष्ठी, सेनापति सार्थवाह प्रभृति मुण्डित होकर गृहस्थावस्था का त्याग कर अनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार से मैं मुण्डित होकर गृहत्याग करके अनगार दीक्षा अंगीकार करने में समर्थ नहीं हूं । अतएव आप देवानुप्रिय के पास पंच अणुव्रत, सात शिक्षाव्रत रूप बारह प्रकार का श्रावकधर्म अंगीकार करना चाहता हूं ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेहि ।"

भगवान् ने कहा—हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु प्रतिबंध-विलम्ब—प्रमाद मत करो ।'

तए णं से लेतियापिता गाहावई समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सावयधम्मं पडिवज्जइ ।

तत्पश्चात् उस लेतिकापिता गाथापति ने श्रमण भगवान महावीर के पास श्रावक धर्म अंगीकार किया।

भगवओ जणवयविहारो—

२७३. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कयाइ सावत्थीए नयरीए कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

भगवान का जनपद विहार—

२७३. तत्पश्चात् किसी एक दिन श्रमण भगवान् महावीर श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से निकले और निकलकर बाह्य जन पदों में विचरण करने लगे।

लेतियापियस्स समणोवासग-चरिया

२७४. तए णं से लेतियापिता समणोवासए जाए—अभिगयजीवाजीवे—जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणे विहरइ ।

लेतिकापिता की श्रमणोपासकचर्या—

२७४. तदनन्तर वह लेतिकापिता श्रमणोपासक हो गया—जीवाजीवादि तत्त्वों का ज्ञाता हो गया—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय अशन-पान, खाद्य-स्वाद्य आहार-वस्त्र, पात्र, कंबल, रजोहरण औषधि, भैषज और पाडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करते हुए अपना समय व्यतीत करने लगा।

फग्गुणीए समणोवासिया-चरिया—

२७५. तए णं सा फग्गुणी भारिया समणोवासिया जाया—अभिगयजीवाजीवा-जाव-समणे निग्गंथे फासु-एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुंछणेणं ओसह-भेसज्जेणं पाडिहारिएण य पीढ-फलग-सेज्जा-संथारएणं पडिलाभेमाणी विहरइ ।

फाल्गुनी की श्रमणोपासिकाचर्या—

२७५. तत्पश्चात् वह फाल्गुनी भार्या जीवाजीवादि तत्त्वों की जानकार श्रमणोपासिका हो गई—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक, एषणीय अशन पान, खादिम, स्वादिम भोजन, वस्त्र, उपधि, कंबल पादप्रोञ्छन, औषधि, भैषज एवं पाडिहारी पीठ, फलक, शैया, संस्तारक से प्रतिलाभित करती हुई विचरने लगी।

लेतियापियस्स धम्मजागरिया

२७६. तए णं तस्स लेतियापियस्स समणोवासगस्स बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणस्स चोद्दस संवच्छराइं वीइक्कंताइं पण्णरसमस्स संवच्छरस्स अंतरा वट्टमाणस्स अण्णदा कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं सावत्थीए नयरीए बहूणं-जाव-आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, सयस्स वि य णं कुडुम्बस्स मेढी-जाव-सव्वकज्जवड्ढावए, तं एतेणं वक्खेवेण अहं नो संचाएमि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्तिं उवसंपज्जित्ता णं विहरित्तए"० ।

लेतिकापिता की धर्म जागरिका—

२७६. तदनन्तर उस लेतिकापिता श्रमणोपासक के अनेक शील-व्रत, गुणव्रत, विरति, प्रत्याख्यान और पौषधोपवास आदि द्वारा आत्मा का परिमार्जन करते हुए चौदह वर्ष बीत चुके और पन्द्रहवां वर्ष चल रहा था तब किसी एक दिन मध्यरात्रि में धर्म-जागरणा करते हुए इस प्रकार का यह आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित और मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'श्रावस्ती नगरी में बहुत से राजा—यावत्—सार्थवाह अपने अपने कार्यों के लिये मुझे पूछते हैं, मुझसे विचार-परामर्श करते हैं तथा स्वयं अपने कुटुम्ब का मेढ़ीभूत—आधार तथा कर्ताधर्ता हूं, इस विक्षेप-रुकावट के कारण श्रमण भगवान महावीर के पास से स्वीकार की धर्म-प्रज्ञप्ति—धर्मशिक्षा के अनुकूल प्रवृत्ति करने में समर्थ नहीं हो पाता हूं।

तए णं से लेतियापिता समणोवासए जेट्ठपुत्तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणं च आपुच्छइ, आपुच्छित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता सावत्थिं नयरिं मज्झं-मज्झेणं निगच्छइ, निगच्छित्ता जेणेव पोसहसाला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चार-पासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारयं संथरेइ, संथरेत्ता

तत्पश्चात् उस लेतिकापिता श्रमणोपासक ने ज्येष्ठ पुत्र, मित्रों, ज्ञातीय बन्धुओं निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिचितों से अनुमति ली, अनुमति लेकर अपने घर से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के बीचों बीच से होता हुआ पौषधशाला में आया, आकर पौषधशाला को साफ किया, साफ करके उच्चार-प्रस्रवण, शौच, लघुशंका—भूमि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना

दब्भसंथारयं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभयारी उम्मुक्कमणि-सुवण्णे ववगयमाला-वण्णग-विलेवणे निक्खित्तसत्थ-मुसले एगे अबीए दब्भसंथारोवगए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मपण्णत्ति उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

करके दर्भ-शैया को बिछाया, बिछाकर उस पर बैठा, बैठकर पौषधशाला में ब्रह्मचर्यपूर्वक पौषधिक होकर तथा मणि-स्वर्ण आदि के आभूषणों का त्यागकर, माला, विलेपन आदि को छोड़कर, मूशल आदि शस्त्रों का परित्याग कर, एकाकी हो दर्भ—संस्तारक पर स्थित हो श्रमण भगवान महावीर के पास अंगीकार की हुई धर्मशिक्षा की साधना में निरत हो गया।

लेतियापियस्स उवासगपडिमापडिवत्ती—

२७७. तए णं से लेतियापिता समणोवासए पढमं उवासगपडिमं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

तए णं से लेतियापिता समणोवासए पढमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से लेतियापिता समणोवासए दोच्चं उवासगपडिमं, एवं तच्चं, चउत्थं, पंचमं, छट्ठं, सत्तमं, अट्ठमं, नवमं, दसमं, एक्कारसमं उवासगपडिमं अहासुत्तं अहाकप्पं अहामग्गं अहातच्चं सम्मं काएणं फासेइ पालेइ सोहेइ तीरेइ किट्टेइ आराहेइ।

तए णं से लेतियापिता समणोवासए तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए।

लेतिकापिता की उपासक प्रतिमा-प्रतिपत्ति—

२७७. तत्पश्चात् वह लेतिकापिता श्रमणोपासक पहली उपासक प्रतिमा को स्वीकार करके विचरने लगा।

उस लेतिकापिता श्रमणोपासक ने उस पहली उपासक प्रतिमा को यथाश्रुत, यथाकल्प, यथामार्ग, यथाकल्प सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, उसका पालन किया, शोधन किया, उसको तीर्ण-पूर्ण किया, उसका अभिनन्दन किया और आराधन किया।

तत्पश्चात् उस लेतिकापिता श्रमणोपासक ने दूसरी उपासक प्रतिमा को भी ग्रहण किया और इसीप्रकार तीसरी, चौथी, पांचवीं, छठी, सातवीं, आठवीं, नौवीं, दसवीं और ग्यारहवीं उपासक प्रतिमा को यथाश्रुत, यथाकल्प, मर्यादा के अनुसार यथामार्ग—विधि के अनुरूप, यथातत्त्व—सिद्धान्त के अनुसार सम्यक् प्रकार से ग्रहण किया, उसका पालन किया, शोधन किया, उसको तीर्ण, पूर्ण किया, उसका कीर्तन किया और आराधन किया।

जिससे वह लेतिकापिता श्रमणोपासक उस उदार-प्रधान विपुल प्रयत्नपूर्वक ग्रहण किये गये तपःकर्म से सूख गया, रूक्ष हो गया, उसके शरीर पर माँस नहीं रहा, अस्थिपिंजर जैसा हो गया, आपस में टकराने से हड्डियों से किड़-किड़ की आवाज होने लगी, शरीर क्षीण हो गया, उभरी हुई नाड़ियाँ दिखने लगीं।

लेतियापियस्स अणसणं—

२७८. तए णं तस्स लेतियापियस्स समणोवासयगस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयं अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं इमेणं एयारूवेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं तवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठिचम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए। तं अत्थि ता मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे, तं जावता मे अत्थि उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे सद्धा-धिइ-संवेगे,-जाव-य

लेतिकापिता का अनशन—

२७८. तत्पश्चात किसी एक दिन मध्यरात्रि में धर्म-जागरण करते हुए उस लेतिकापिता श्रमणोपासक को इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'मैं इस प्रकार के श्रेष्ठ, विपुल, प्रयत्नसाध्य और ग्रहण किये हुए तपश्चरण से शुष्क, रूक्ष हो गया हूँ, शरीर में माँस नहीं रहा है, हड्डियां और चमड़ी मात्र शेष रही है, हड्डियाँ किड़किड़ाहट करने लगी है और इतनी कृशता आ गई है कि उभरी हुई नाड़ियां दिखने लगी हैं। तथापि मुझ में अभी उत्थान—धर्मोत्साह, कर्म-प्रवृत्ति-बल, शारीरिक बल, आत्मशक्ति और पुरुषाकार पराक्रम तथा श्रद्धा, धृति संवेगभाव विद्यमान है, अतएव जब तक मुझमें उत्थान, कर्म, बल, वीर्य, पुरुषार्थ, श्रद्धा, धैर्य,

मे धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे भगवं महावीरे जिणे सुहत्थी विहरइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतिय-संलेहणाझूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स, कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए" । एवं संपेहेइ संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते अपच्छिममारणंतियसंलेहणा-झूसणा-झूसिए भत्तपाण-पडियाइक्खिए कालं अणवकंखमाणे विहरइ ।

संवेगभाव है-- यावत्—मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर जिन, सुहस्ती विचरण कर रहे हैं तब तक मुझे यह श्रेयस्कर होगा कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने, सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेजसहित प्रकाशित होने पर अन्तिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को अंगीकार करके, भोजन-पानी का त्याग कर मरण की आकांक्षा न करते हुए समय व्यतीत करूँ ।' ऐसा विचार किया और विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने, सूर्य का उदय होने और जाज्वल्यमान तेजसहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर अपश्चिम मारणान्तिक संलेखना झूसणा को स्वीकार करके भोजन-पानी का त्याग कर काल की आकांक्षा न करते हुए विचरने लगा ।

लेतियापियस्स समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगमण-निरूवणं च—

लेतिकापिता का समाधिमरण देवलोकोत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण —

२७९. तए णं से लेतियापिता समणोवासए बहूहिं सील-व्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेत्ता, वीसं वासाइं समणोवासगपरियायं पाउणित्ता, एक्कारस य उवासगपडिमाओ सम्मं काएणं फासित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मेकप्पे अरुणकीले विमाणे देवत्ताए उववण्णे । तत्थ णं अत्थेगइया देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता । लेतियापियस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता ।

२७९. तदपश्चात् वह लेतिकापिता श्रमणोपासक अनेक शीलव्रतों, गुणव्रतों, विरमणों, प्रत्याख्यानों और पौषधोपवासों से आत्मा को परिमार्जित-शुद्ध कर, बीस वर्ष की श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शुद्ध कर साठ भोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर आलोचना, प्रतिक्रमण कर समाधिपूर्वक मरण समय में मरकर सौधर्मकल्प के अरुणकील विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ । वहाँ किसी-किसी देव की चार पल्योपम की स्थिति होती है । लेतिकापिता देव की भी चार पल्योपम की स्थिति निरूपित की है ।

"से णं भंते ! लेतियापिता ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा—"हे भदन्त ! वह लेतिकापिता देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।"

—उवासगदसाओ अ० १०

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होगा, संपूर्ण दुःखों का अन्त करेगा ।'

।। लेतिकापिता गाथापति कथानक समाप्त ।।

□ □

१५. इसिभद्दपुत्ताइणो समणोवासगा

आलभियाए इसिभद्दपुत्ताई समणोवासगा—

२८०. तेणं कालेणं तेणं समएणं आलभिया नामं नगरी होत्था—वण्णओ। संखवणे चेइए—वण्णओ। तत्थ णं आलभियाए नगरीए बहवे इसिभद्दपुत्तपामोक्खा समणोवासया परिवसंति—अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया अभिगयजीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

देवट्ठिइविसए विवादो—

२८१. तए णं तेसिं समणोवासयाणं अण्णया कयाइ एगयओ समुवागयाणं सहियाणं सण्णिविट्ठाणं सण्णिसण्णाणं अयमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—"देवलोगेसु णं अज्जो! देवाणं केवतियं कालं ठिती पण्णत्ता?"

तए णं से इसिभद्दपुत्ते समणोवासए देवट्ठिती-गहियट्ठे ते समणोवासए एवं वयासी—

"देवलोएसु णं अज्जो! देवाणं जहण्णेणं दसवाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया, तिसमयाहिया-जाव-दससमयाहिया, संखेज्जसमयाहिया, असंखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य"।

तए णं ते समणोवासया इसिभद्दपुत्तस्स समणोवासगस्स एवं आइक्खमाणस्स-जाव-एवं परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोयमाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

भगवओ महावीरस्स समोसरणं—

२८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे-जाव-समोसढे-जाव-परिसा पज्जुवासइ। तए णं ते समणोवासया इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा, हट्ठ-तुट्ठा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया समणे भगवं महावीरे-जाव-आलभियाए नयरीए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।"

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया! तहारूवाणं अरहंताणं

१५. ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक

आलभिका के ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक—

२८०. उस काल और उस समय आलभिका नाम की नगरी थी, वर्णन करो। शंखवन नामक चैत्य था—वर्णन करो। उस आलभिका नगरी में ऋषिभद्रपुत्र आदि बहुत से श्रमणोपासक रहते थे, जो धनाढ्य—यावत्—किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं करने वाले और जीव-अजीव तत्त्वों के ज्ञाता थे—यावत्—यथाविधि ग्रहण किये तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

देव-स्थिति विषयक विवाद—

२८१. तत्पश्चात् किसी एक दिन एक स्थान पर एकत्रित हुए और साथ मिलकर बैठे हुए उन श्रमणोपासकों में इस प्रकार की यह चर्चा हुई कि 'हे आर्यो! देवलोकों में देवों की कितनी स्थिति बताई है?"

तब देवस्थिति सम्बन्धी विषय के जानकार उस ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—'हे आर्यो! देवलोकों में देवों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके बाद एक समय अधिक, दो समय अधिक, तीन समय अधिक—यावत्—दस समय अधिक, संख्यात समय अधिक, असंख्यात समय अधिक करते-करते उत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। तत्पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं। अर्थात् इसके अधिक स्थिति वाले देव और देवलोक नहीं हैं।

तब वे श्रमणोपासक ऋषिभद्रपुत्र श्रमणोपासक द्वारा इस प्रकार से कहे गये—यावत्—प्ररूपित अर्थ की श्रद्धा नहीं करते हैं प्रतीति नहीं करते हैं और रुचि नहीं करते हैं किन्तु अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि बताते हुए वे जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये।

भगवान महावीर का पदार्पण—

२८२. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर स्वामी—यावत्—पधारे—यावत्—परिषद् पर्युपासना—सेवा करने लगी। तत्पश्चात् इस वृत्तान्त को सुनकर उन श्रमणोपासकों ने हर्षित और सन्तुष्ट हो एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय! बात यह है कि श्रमण भगवान महावीर स्वामी—यावत्—आलभिका नगरी में यथाप्रतिरूप अवग्रह को ग्रहण करके संयम और तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं।

'हे देवानुप्रिय! तथारूप अरिहन्त भगवन्तों के नाम और

नामगोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-नमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो ।

गोत्र के सुनने से ही जब महाफल प्राप्त होता है, तब हे आयुष्मन् ! उनके समीप जाने से, उनको वन्दन-नमन करने से, उनसे प्रश्न पूछने से और उनकी पर्युपासना करने के फल का तो कहना ही क्या है ? जब धर्माचार्य भगवन्तों के एक सुवचन सुनने से मंगल रूप फल की प्राप्ति संभव है तो उनके द्वारा कहे गये विपुल अर्थों के ग्रहण करने के विषय में तो कहना ही क्या है ? इसलिये हे देवानुप्रियो ! हम सब चलें और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करें, उनका सत्कार-सम्मान करें एवं कल्याणरूप, मंगलरूप, देवरूप और चैत्यरूप उनकी पर्युपासना करें—सेवा करें ।

एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता, जेणेव सयाइं-सयाइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिया अप्प-महग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति, मेलायित्ता पायविहारचारेणं आलभियाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव संखवणे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं-जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए एवं जहा तुंगि उद्देसए (भग० श० २, उ० ४)-जाव-पज्जुवासंति । तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महति-महालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-आणाए आराहए भवइ ।

यह सब वन्दन-नमस्कार करना परभव और इस भव में हित के लिये, सुख के लिये, क्षान्ति-शान्ति के लिये और जन्म-जन्मान्तर में निश्रेयस—परम कल्याण प्राप्ति के लिये कारणरूप होगा'—इस प्रकार विचार कर आपस में एक दूसरे ने स्वीकार किया और अपने अपने घरों की ओर चल पड़े, घर आकर स्नान किया, बलिकर्म किया और मंगलरूप कौतुक व प्रायश्चित्त करके शुद्ध प्रवेशोचित, मंगलरूप, उत्तम वस्त्रों को पहना और महा-मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को विभूषित कर अपने अपने घरों से निकले, निकलकर एक स्थान पर इकट्ठे हुए, मिले, मिलकर पैदल आलभिका नगरी के बीचों बीच से निकले, निकल कर शंखवन चैत्य में जहां श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, वहां आकर श्रमण भगवान् महावीर को—यावत्—तीन बार की पर्युपासना द्वारा तुंगिया नगरी के श्रावकों के उद्देशानुसार—यावत्—पर्युपासना—सेवा करने लगे । तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर स्वामी ने इन श्रमणोपासकों और इस महती परिषदा—सभा को धर्म कथा कही—यावत्—धर्म-पालन कर आज्ञा के आराधक हुए ।

महावीरेण समाहाणं —

२८३. तए णं ते समणोवासया समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु भंते ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए अम्हं एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—देवलोएसु णं अज्जो ! देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया-जाव-तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य ।

से कहमेयं भंते ! एवं ?"

महावीर द्वारा समाधान—

२८३. तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारित कर हृष्ट, तुष्ट होते हुए अपने अपने स्थान से उठे—खड़े हुए, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोले—

'हे भदन्त ! ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक ने हम से इस प्रकार कहा है—यावत्—प्ररूपणा की है कि 'हे आर्यो ! देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष कही है, उसके बाद एक समय अधिक—यावत्—उत्कृष्ट स्थिति तेत्तीस सागरोपम की कही है, उसके बाद देवलोक और देव व्युच्छिन्न हो जाते हैं ।

तो हे भगवन् ! इस प्रकार कैसे हो सकता है ?

अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे ते समणोवासए एवं वयासी—

"जण्णं अज्जो ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए तुब्भं एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—देवलोएसु णं देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया-जाव-तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य—सच्चे णं एसमट्ठे।

अहं पि णं अज्जो ! एवमाइक्खामि-जाव-परूवेमि—देवलोएसु णं अज्जो ! देवाणं जहण्णेणं दस वाससहस्साइं ठिती पण्णत्ता, तेण परं समयाहिया, दुसमयाहिया, तिसमयाहिया-जाव-दस-समयाहिया, संखेज्जसमयाहिया, उक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तेण परं वोच्छिण्णा देवा य देवलोगा य—सच्चे णं एसमट्ठे।

तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति, नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव इसिभद्दपुत्ते समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता इसिभद्दपुत्तं समणोवासगं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो भुज्जो खामेंति। तए णं ते समणोवासया पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियंति, परियादियित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

'हे आर्यों !' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—

हे आर्यो ! ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक ने जो तुमसे इस प्रकार कहा है—यावत्—प्ररूपणा की है कि—'देवलोकों में देवों की जघन्य स्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके आगे एक समय अधिक—यावत्—उससे परे देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाता है, यह कथन सत्य—यथार्थ है।'

'हे आर्यो ! मैं भी इसी प्रकार कहता हूँ—यावत्—प्ररूपणा करता हूँ कि आर्यों ! देवलोकों में देवों की जघन्यस्थिति दस हजार वर्ष की है और उसके आगे समयाधिक, दो समयाधिक, तीन समयाधिक—यावत्—संख्यात समयाधिक, असंख्यात समयाधिक करते करते बढ़ते-बढ़ते उत्कृष्ट से तेतीस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति कही है—होती है; तत्पश्चात् देव और देवलोक व्युच्छिन्न हो जाते हैं—यह कथन सत्य है।"

तदनन्तर वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर स्वामी से इस बात को सुनकर और अवधारित कर श्रमण भगवान महावीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमस्कार करके ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक के पास आये; आकर ऋषिभद्र पुत्र को वन्दन नमस्कार करते हैं, वन्दन-नमन करके इस अर्थ के लिये (सत्य बात को न मानने रूप बात के लिये) सम्यक् प्रकार से बारम्बार क्षमा माँगते हैं। तत्पश्चात् उन श्रमणोपासकों ने प्रश्न पूछे, पूछकर अर्थ को ग्रहण किया, ग्रहण करके श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, वापस उसी ओर लौट गये।

इसिभद्दपुत्तविसए गोयमपण्हो महावीरस्स उत्तरं य—

२८४. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"पभू णं भंते ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतिये मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?"

"नो इणट्ठे समट्ठे गोयमा ! इसिभद्दपुत्ते समणोवासए बहूहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासगपरियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेहिति, झूसेत्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेहिति, छेदेत्ता आलोइय-पडिक्कंते-समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा

ऋषिभद्र पुत्र विषयक गौतम के प्रश्न और महावीर का उत्तर—

२८४. 'हे भगवन् ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

'हे भदन्त ! ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक क्या आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो और गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या धारण करने में समर्थ है ?'

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! यह अर्थ यथार्थ नहीं है, किन्तु वह ऋषिभद्र पुत्र श्रमणोपासक बहुत से शीलव्रत, गुण-व्रत, विरमण व्रत, पौषधोपवासों से एवं यथायोग्य विधि से स्वीकार किये गये तपोकर्मों द्वारा आत्मा को भावित करते हुए बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन कर मासिक संलेखना द्वारा आत्मा की सेवा कर अथवा आत्मा को शुद्ध कर अनशन द्वारा साठ भक्तों—भोजन का त्याग कर, आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर, मरण काल में काल

सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं इसिभद्दपुत्तस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती भविस्सति।

"से णं भंते! इसिभद्दपुत्ते देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति? कहिं उववज्जिहिति?"

गोयमा! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति।

सेवं भंते! सेवं भंते! त्ति भगवं गोयमे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ आलभियाओ नयरीओ संखवणाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ।

—भग० स० ११, उ० १२

करके सौधर्मकल्प के अरुणाभविमान में देवरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ कितने ही देवों की चार पल्योपम की स्थिति होती है। वहाँ ऋषिभद्र पुत्र देव की भी चार पल्योपम की स्थिति होगी।"

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न पूछा—'हे भगवन्! आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर वह ऋषिभद्र पुत्र देव उस देवलोक से च्युत होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा?"

'हे गौतम! महाविदेह क्षेत्र से सिद्ध पद प्राप्त करेगा—यावत् सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

'हे भगवन! वह इसी प्रकार है, हे भदन्त! वह इसी तरह है' ऐसा कहकर भगवान गौतम—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी अन्य किसी एक दिन आलभिका नगरी से, शंखवन चैत्य से निकलकर बाह्य जनपदों में विचरने लगे।

॥ ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

□ □

१६. संखे पोक्खली य समणोवासया

१६. शंख और पुष्कली श्रमणोपासक

सावत्थीए संखे पोक्खली य—

२८५. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ। कोट्ठए चेइए—वण्णओ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए बहवे संखप्पामोक्खा समणोवासया परिवसंति—अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया, अभिगयजीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

तस्स णं संखस्स समणोवासगस्स उप्पला नामं भारिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया-जाव-सुरूवा, समणोवासिया अभिगयजीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

तत्थ णं सावत्थीए नयरीए पोक्खली नामं समणोवासए परि-

श्रावस्ती में शंख और पुष्कली—

२८५. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी, नगरी का वर्णन करना चाहिए। कोष्ठक नामक चैत्य था, वर्णन करो। उस श्रावस्ती नगरी में शंख प्रमुख बहुत से श्रमणोपासक निवास करते थे, जो धनाढ्य—यावत्—अनेक लोगों अथवा किसी से भी पराभव को प्राप्त नहीं होने वाले, जीव-अजीव आदि तत्त्वों के जानकार—यावत्—यथाविधि ग्रहीत तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

उस शंख श्रमणोपासक की उत्पला नामकी भार्या—पत्नी थी—सुकुमार हाथ पैर वाली—यावत्—सुरूप और जीवाजीव तत्त्वों की ज्ञाता श्रमणोपासिका थी—यावत्—यथापरिगृहीत तपोविधि से आत्मा को भावित करती हुई विचरण करती थी।

उस श्रावस्ती नगरी में पुष्कली नाम का भी श्रमणोपासक

वसइ—अड्ढे, अभिगयजीवाजीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवो-कम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

रहता था जो धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत था तथा जीवाजीव तत्त्वों का जानकार—यावत्—यथारूप में अंगीकार किये गये तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरता था।

भगवओ महावीरस्स समोसरणं—

२८६. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे। परिसा-जाव-पज्जुवासइ। तए णं ते समणोवासगा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जहा आलभियाए—(भग० स० ११-उ० १२)-जाव पज्जुवासंति। तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-परिसा पडिगया।

तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियंति, परियादियित्ता उट्ठाए, उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडि-निक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

भगवान महावीर का पदार्पण—

२८६. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी पधारे। परिषदा निकली—यावत्—पर्युपासना करती है। तब वे श्रमणोपासक इस सम्वाद को सुनकर आलभिका नगरी के श्रावकों की तरह—यावत्—पर्युपासना करने लगे। तदनन्तर श्रमण भगवान महावीरस्वामी ने उन श्रमणोपासकों और महती परिषदा को धर्मोपदेश सुनाया—यावत्—परिषदा वापस लौटी।

तत्पश्चात् उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान महावीर से धर्मश्रवण कर हृदय में अवधारित कर और हृष्ट-तुष्ट हो श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके प्रश्न पूछे, प्रश्न पूछकर उनके अर्थ को ग्रहण किया, अर्थ को ग्रहण करके अपने अपने स्थान से उठे और उठकर श्रमण भगवान महावीर के पास से, कोष्ठक चैत्य से निकले निकलकर जिस ओर श्रावस्ती नगरी थी उसी ओर चल दिये।

संखस्स पोसहो—

२८७. तए णं से संखे समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी—

"तुब्भे णं देवाणुप्पिया! विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह। तए णं अम्हे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं अस्साएमाणा विस्साएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो।

तए णं ते समणोवासगा संखस्स समणोवासगस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

तए णं तस्स संखस्स समणोवासगस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"नो खलु मे सेयं तं विपुलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणस्स विस्साएमाणस्स परिभाएमाणस्स परिभुञ्जेमाणस्स पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, सेयं खलु मे पोसहसालाए पोसहियस्स बंभचारिस्स ओमुक्कमणि-सुवण्णस्स ववगयमाला-वण्णग-विलेवणस्स निक्खित्तसत्थ-मुसलस्स एगस्स अबिइयस्स दब्भसंथारोवगयस्स पक्खियं पोसहं पडिजागर-माणस्स विहरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव सावत्थी नगरी, जेणेव सए गिहे, जेणेव उप्पला समणोवासिया,

शंख का पौषध—

२८७. इसके बाद शंख श्रमणोपासक ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो! आप लोग पुष्कल प्रमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, आहार को बनवाओ—तैयार करवाओ तब हम सभी उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम आहार का आस्वादन करते हुए, विशेषरूप से स्वाद लेते हुए, परस्पर देते हुए और खाते हुए पाक्षिक पौषध का अनुपालन करते हुए विचरण करेंगे।

तत्पश्चात् उन श्रमणोपासकों ने शंख श्रमणोपासक की बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तत्पश्चात् उस शंख श्रमणोपासक को इस प्रकार का यह मानसिक विचार—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—मुझे 'उस विपुल अशन—यावत्—स्वादिम आहार का आस्वाद लेते, विस्वाद लेते, देते और खाते हुए पाक्षिक पौषध का अनुपालन करते हुए विचरण करना उचित नहीं है किन्तु पौषधशाला में ब्रह्मचर्य पूर्वक, स्वर्ण-मणि आदि का त्याग कर माला, वर्णक, विलेपन को छोड़कर और मूसल आदि शस्त्रों को अलग रखकर एकाकी रह-कर, दूसरे किसी की सहायता न लेकर, दर्भ संस्तारक पर बैठकर पौषधव्रत को स्वीकार करके विचरण करना ही श्रेयस्कर है" इस प्रकार का विचार किया, विचार कर श्रावस्ती नगरी में

तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलं समणोवासियं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता जेणेव पोसहसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पोसहसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता पोसहसालं पमज्जइ, पमज्जित्ता उच्चारपासवणभूमिं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता दब्भसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरइ ।

वहाँ अपना घर था और जहाँ उत्पला श्रमणोपासिका रहती थी वहाँ आया, आकर उत्पला श्रमणोपासिका से पूछा, पूछकर जहाँ पौषधशाला थी वहाँ आया, आकर पौषधशाला में प्रवेश किया, प्रवेश करके पौषधशाला का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके उच्चार-प्रस्रवण परठने की जगह देखी और देखने के बाद दर्भ-संस्तारक को बिछाया और उस पर बैठा, बैठकर पौषधशाला में पौषधग्रहण कर ब्रह्मचर्यपूर्वक-यावत्—पाक्षिक पौषध की अनुपालना करते हुए विचरण करने लगे ।

संखकहणाणुसारेणं सावत्थीसमणोवासएहिं पोसहट्ठं विउलअसणाईणं करणं—

शंख कथनानुसार श्रावस्ती के श्रमणोपासकों द्वारा पौषध हेतु विपुल अशनादिकरण—

२८८. तए णं ते समणोवासगा जेणेव सावत्थी नगरी जेणेव साइं-साइं गिहाइं, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असण-पाण-खाइम-साइमे उवक्खडाविए, संखे य णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं संखं समणोवासगं सद्दावेत्तए ।

२८८. तदनन्तर वे श्रमणोपासक श्रावस्ती नगरी में अपने अपने घर पर आये, आकर उन्होंने विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार बनवाया (तैयार करवाया) बनवाकर परस्पर एक दूसरे को बुलाया एवं बुलाकर इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! बात यह है कि हमने विपुल अशन, पान, खादिम स्वादिम आहार तैयार करवाया है, किन्तु अभी तक शंख श्रमणोपासक नहीं आया है, इसलिये हे देवानुप्रियो ! हमें शंख श्रमणोपासक को बुलाना श्रेयस्कर है ।'

असणाइभोगट्ठं पोक्खलिणा संखनिमंतणं—

अशनादि भोगार्थ पुष्कली का शंख को निमंत्रण—

२८९. तए णं से पोक्खली समणोवासए ते समणोवासए एवं वयासी—

"अच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सुनिव्वुय-वीसत्था, अहं णं संखं समणोवासगं सद्दावेमि" त्ति कट्टु तेसिं समणोवासगाणं अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सावत्थीए नगरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव संखस्स समणोवासगस्स गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता संखस्स समणोवासगस्स गिहं अणुपविट्ठे ।

तए णं सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासयं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता पोक्खलिं समणोवासगं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतेत्ता एवं वयासी—

"संदिसतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पओयणं ?"

तए णं से पोक्खली समणोवासए उप्पलं समणोवासियं एवं वयासी—

"कहिण्णं देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए ?"

तए णं सा उप्पला समणोवासिया पोक्खलिं समणोवासयं एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए बंभचारी-जाव-विहरइ ।

२८९. तदनन्तर पुष्कली श्रमणोपासक ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रियो ! आप शान्तिपूर्वक विश्राम लो, मैं शंखश्रमणोपासक को बुलाता हूँ, ऐसा कहकर उन श्रमणोपासकों के पास से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के मध्य भाग में से चलते हुए शंख श्रमणोपासक के घर आया, आकर शंख श्रमणोपासक के घर में प्रविष्ट हुआ ।

तब उत्पला श्रमणोपासिका ने पुष्कली श्रमणोपासक को आते हुए देखा, देखकर हर्षित और संतुष्ट हो आसन से उठी और सात-आठ पग उसके सामने आई, सामने जाकर पुष्कली श्रावक को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके आसन ग्रहण करने के लिये, आमन्त्रित किया और उसके बाद इस प्रकार बोली—

'देवानुप्रिय ! अपने आगमन का प्रयोजन कहिये ?'

तत्पश्चात् पुष्कली श्रमणोपासक ने उत्पला श्रमणोपासिका से इस प्रकार कहा—

हे देवानुप्रिये ! शंख श्रमणोपासक कहाँ है ?'

तब उत्पला श्रमणोपासिका ने पुष्कली श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! शंख श्रमणोपासक पौषधशाला में पौषध ग्रहण कर ब्रह्मचारी हो—यावत्—विचरण कर रहा है ।'

तए णं से पोक्खली समणोवासए जेणेव पोसहसाला, जेणेव संखे समणोवासए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता संखं समणोवासगं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं से विउले असणे-जाव-साइमे उवक्खडाविए, तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! तं विउलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणा-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरामो।

इसके बाद पुष्कली श्रमणोपासक पौषधशाला में शंख श्रमणोपासक के पास आया, आकर गमनागमन-सम्बन्धी प्रतिक्रमण करके शंख श्रमणोपासक को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि हमने पुष्कल परिमाण में अशन—यावत्—स्वादिम भोजन बनवाया है, इसलिये हे देवानुप्रिय ! आओ हम चलें और उस विपुल अशन—यावत्—स्वादिम भोजन का आस्वाद लेते हुए—यावत्—पौषधव्रत की अनुपालना करते हुए विचरण करें।'

संखेण निवारणं—

२६०. तए णं से संखे समणोवासए पोक्खलिं समणोवासगं एवं वयासी—

"नो खलु कप्पइ देवाणुप्पिया ! तं विउलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणस्स-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, कप्पइ मे पोसहसालाए पोसहियस्स-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणस्स विहरित्तए, तं छंदेणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे तं विउलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणा-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरह।

शंख द्वारा निषेध—

२६०. तब शंख श्रमणोपासक ने पुष्कली श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे देवानुप्रिय ! उस विपुल अशन—यावत्—स्वादिम आहार का आस्वादन लेते हुए—यावत्—पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विचरण करना मुझे नहीं कल्पता है, किन्तु मुझे तो पौषधशाला में पौषधव्रती होकर—यावत्—पाक्षिक पौषध की अनुपालना करते हुए विचरण करना कल्पता है, अतएव हे देवानुप्रिय ! तुम लोग इच्छानुसार उस विपुल अशन—यावत्—स्वादिम भोजन का आस्वाद लेते हुए—यावत्—पाक्षिक पौषध का पालन करते हुए विचरण करो।

अण्णेहिं समणोवासएहिं पोसहट्ठं असणाईणं भोगो—

२६१. तए णं से पोक्खली समणोवासए संखस्स समणोवासगस्स अंतियाओ पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव ते समणोवासगा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ते समणोवासए एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! संखे समणोवासए पोसहसालाए पोसहिए-जाव-विहरइ, तं छंदेणं देवाणुप्पिया ! तुब्भे विउलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणा-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरह, संखे णं समणोवासए नो हव्वमागच्छइ"।

तए णं ते समणोवासगा तं विउलं असणं-जाव-साइमं अस्साएमाणा-जाव-विहरंति।

अन्य श्रमणोपासकों द्वारा पौषध निमित्तक अशनादि का भोग—

२६१. तत्पश्चात् वह पुष्कली श्रमणोपासक पौषधशाला में से शंख श्रमणोपासक के पास से निकला, निकलकर श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से होता हुआ जहाँ अन्य श्रमणोपासक थे, वहाँ आया, और आकर उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार बोला—

'हे देवानुप्रियों ! पौषधशाला में वह शंख श्रमणोपासक पौषध व्रत ग्रहणकर—यावत् विचरता है, अतएव हे देवानुप्रियो ! तुम यथेच्छा विपुल अशन—यावत्—स्वादिम भोजन का आस्वादन लेते हुए—यावत्—पाक्षिक पौषध सम्बन्धी प्रतिजागरणा करते हुए विचरण करो, शंख श्रमणोपासक तो शीघ्र नहीं आ सकेगा।'

तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक उस विपुल अशन—यावत्—स्वादिम आहार का आस्वाद लेते हुए—यावत्— विचरते हैं।

संखेण पारणट्ठं महावीरपज्जुवासणं—

२६२. तए णं तस्स संखस्स समणोवासगस्स पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि धम्मजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते समणं

शंख द्वारा पारणार्थ महावीर पर्युपासना—

२६२. तदनन्तर मध्यरात्रि के समय धर्मजागरणा करते हुए उस शंख श्रमणोपासक को इस प्रकार का यह—यावत्—आध्यात्मिक संकल्प उत्पन्न हुआ—'आगामी कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्योदय के अनन्तर सहस्ररश्मि दिनकर के

भगवं महावीरं वंदित्ता नमंसित्ता-जाव-पज्जुवासित्ता तओ पडि-नियत्तस्स पक्खियं पोसहं पारित्तए'' त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पोसहसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्ख-मित्ता सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं सावत्थि नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासति ।

जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर श्रमण भगवान महा-वीर स्वामी को वन्दन-नमस्कार करके—यावत्—पर्युपासना करके वहाँ से वापस आने के बाद पाक्षिक पौषध का पारणा करना मुझे श्रेयस्कर है'—ऐसा विचार किया, विचार करके, कल रात्रि के प्रभातरूप होने—यावत्—सूर्योदय के अनन्तर जाज्वल्यमान तेज से सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर पौषधशाला से निकला, निकलकर शुद्ध, वेषोचित, मंगलरूप उत्तम वस्त्रों को पहनकर अपने घर से निकला, निकलकर पैदल श्रावस्ती नगरी के मध्य भाग से होता हुआ कोष्ठक चैत्य में विराजमान श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास आया, आकर तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके त्रिविध पर्युपासनाओं द्वारा पर्युपासना—सेवा करने लगा ।

तए णं ते समणोवासगा कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा सएहिं-सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता एगयओ मेलायंति, मेलायित्ता पायविहारचारेणं सावत्थीए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए, चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं-जाव-तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति ।

तत्पश्चात् वे श्रमणोपासक कल, रजनी के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्योदय होने के पश्चात् जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर नहाए, बलिकर्म करके—यावत्—मूल्यवान अल्पभार आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने अपने घरों से निकले, निकलकर एक स्थान पर एकत्रित हुए और मिलकर श्रावस्ती नगरी के बीचों-बीच से होते हुए कोष्ठक चैत्य में श्रमण भगवान महावीर के विराजने के स्थान पर आये, आकर श्रमण भगवान महावीर की—यावत्—त्रिविध पर्युपासना से पर्युपासना करने लगे ।

तए णं समणे भगवं महावीरे तेसिं समणोवासगाणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए धम्मं परिकहेइ-जाव-आणाए आराहए भवइ ।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी ने उन श्रमणो-पासकों और महती परिषदा को धर्मकथा सुनाई—यावत्—उन्होंने आत्मा की आराधना की अर्थात् वे आज्ञा के आराधक हुए ।

समणोवासएहिं संखहीलणा—

श्रमणोपासकों द्वारा शंख का तिरस्कार—

२६३. तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव संखे समणोवासए, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता संखं समणो-वासयं एवं वयासी—

२६३. तत्पश्चात वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट होते हुए आसन से उठे, खड़े हुए उठकर उन्होंने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके शंख श्रमणोपासक के पास आये और आकर शंख श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

''तुमं णं देवाणुप्पिया ! हिज्जो अम्हे अप्पणा चेव एवं वयासी—तुम्हे णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं-जाव-साइमं उवक्खडावेह-जाव-परिभुञ्जेमाणा पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणा विहरिस्सामो । तए णं तुमं पोसहसालाए-जाव-पक्खियं पोसहं पडिजागरमाणे विहरिए, तं सुट्ठु णं तुमं देवाणुप्पिया ! अम्हे हीलसि ।''

'हे देवानुप्रिय । तुम्हीं ने कल स्वयं हमसे इस प्रकार कहा था कि 'हे देवानुप्रियो ! तुम विपुल अशन—यावत्—स्वादिम भोजन बनवाओ—यावत्—खाते हुए पाक्षिक पौषध की अनुपा-लना करते हुए विचरण करेंगे । किन्तु उसके बाद तुम्हीं पौषध-शाला में—यावत्—पाक्षिक पौषध की प्रतिजागरणा करते हुए विचरे तो; हे देवानुप्रिय ! तुमने हमारी अच्छी तरह से हीलना—हँसी उड़ाई है ।'

महावीरकयं संखहीलणानिवारणं—

२६४. अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे ते समणोवासए एवं वयासी—

"मा णं अज्जो ! तुब्भे संखं समणोवासगं हीलह निंदह खिंसह गरहह अवमण्णह । संखे णं समणोवासए पियधम्मे चेव, दढधम्मे चेव, सुदक्खुजागरियं जागरिए ।"

महावीर द्वारा शंख-हीलना—निवारण—

२६४. 'हे आर्य पुरुषो !' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने उन श्रमणोपासकों से इस प्रकार कहा—

'हे आर्यो ! आप शंख श्रमणोपासक की हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा और अवमानना मत करो । शंख श्रमणोपासक धर्म के विषय में प्रीति वाला और दृढ़ता वाला है एवं उसने सुदृष्टि—जागरिका की आराधना की है ।'

महावीरकयं जागरियाविवरणं—

२६५. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"कतिविहा णं भंते ! जागरिया पण्णत्ता ?"

"गोयमा ! तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा—बुद्धजागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खुजागरिया ।

"केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा—बुद्धजागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खुजागरिया ?"

"गोयमा ! जे इमे अरहंता भगवंतो उप्पण्णनाणदंसणधरा अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागयवियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी एए णं बुद्धा बुद्धजागरियं जागरंति ।

"जे इमे अणगारा भगवंतो रियासमिया-जाव-गुत्तबंभयारी—एए णं अबुद्धा अबुद्धजागरियं जागरंति ।

"जे इमे समणोवासगा अभिगयजीवाजीवा-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणा विहरंति—एए णं सुदक्खुजागरियं जागरंति । से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ—तिविहा जागरिया पण्णत्ता, तं जहा-बुद्धजागरिया, अबुद्धजागरिया, सुदक्खुजागरिया ।"

महावीर-कृत जागरिका विवरण—

२६५. 'हे भदन्त !' इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भगवान ! जागरिका कितने प्रकार की कही है ?'

'हे गौतम ! जागरिका तीन प्रकार की कही है, वह इस प्रकार—(१) बुद्धजागरिका (२) अबुद्धजागरिका और (३) सुदृष्टिजागरिका ।' भगवान ने उत्तर दिया ।

गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न पूछा—'हे भगवन् ! किस कारण आप इस प्रकार कहते हैं कि जागरिका तीन प्रकार की कही है, यथा—बुद्धजागरिका, अबुद्धजागरिका और सुदृष्टि-जागरिका ?'

'हे गौतम ! जो उत्पन्न (केवल) ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हत्-पूज्य, जिन, केवली, अतीत, अनागत और वर्तमान के विज्ञाता, सर्वज्ञ—सर्वदर्शी अरिहन्त भगवन्त हैं, वे बुद्ध हैं (केवल ज्ञान द्वारा) बुद्ध जागरिका का जागरण करते हैं—अनुभव करते हैं ।'

'हे गौतम ! ईर्या आदि समितियों से समित—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी आदि अनगार भगवन्त हैं, वे अबुद्ध हैं अबुद्धजागरिका का अनुभव करते हैं ।

जीवाजीव आदि तत्वों के जानकार—यावत्—यथाविधि ग्रहण किये हुए तपोकर्म से आत्मा को भावित करने वाले जो ये श्रमणोपासक हैं, वे सुदृष्टिजागरिका में जागरण करते हैं । इसलिए हे गौतम ! इस प्रकार कहा कि जागरिका तीन प्रकार की है, वे इस प्रकार हैं—बुद्धजागरिका, अबुद्धजागरिका और सुदृष्टि जागरिका ।'

कसायफलं कम्मबंधणं जाणित्ता समणोवासयाणं संखं पइ खमावणी—

२६६. तए णं से संखे समणोवासए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

कषाय का फल कर्म बन्धन जानकर श्रमणोपासकों का शंख से क्षमायाचन—

२६६. तत्पश्चात् शंख श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

कोहवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ ?"

'हे भगवन ! क्रोधाभिभूत—क्रोध से पीड़ित जीव क्या बांधता है, क्या करता है, किसका चय करता है, और किसका उपचय करता है ?'

"संखा ! कोहवसट्टे णं जीवे आउयवज्जाओ सत्त कम्मपगडीओ सिढिलबंधणबद्धाओ धणियबंधणबद्धाओ पकरेइ हस्सकालठिइयाओ दीहकालठिइयाओ पकरेइ मंदाणुभावाओ तिव्वाणुभावाओ पकरेइ, अप्पपएसग्गाओ पकरेइ, आउयं च णं कम्मं सिय बंधइ, सिय नो बंधइ, असायावेयणिज्जं च णं कम्मं भुज्जो-भुज्जो उवचिणाइ, अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसार-कंतारं अणुपरियट्टइ"।

'हे शंख ! क्रोधाधीन जीव आयु को छोड़कर शेष सात कर्म प्रकृतियों को यदि शिथिल बन्धन से बद्ध हों तो गाढ़ बंधन वाली करता है, जघन्यस्थिति को उत्कृष्टस्थिति वाली, मंद अनुभाग से तीव्र अनुभाग वाली और अल्पप्रदेश से बहुप्रदेश वाली करता है, आयुकर्म का कदाचित् बंध करता भी है और कदाचित बन्ध नहीं भी करता है, असातावेदनीय कर्म का पुनः पुनः उपचय—संग्रह करता है और दीर्घकाल पर्यन्त अनादि अनन्त चातुरंत—चतुर्गति रूप संसार कांतार में परिभ्रमण करता है—भटकता है।'

"माणवसट्टे णं भंते ! जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं उवचिणाइ" ?

"एवं चेव -जाव- अणुपरियट्टइ"।

'हे भदन्त ! मानवशवर्ती जीव क्या बाँधता है, क्या करता है, किसका चय करता है और किसका उपचय करता है ?'

'इसीप्रकार—यावत्—परिभ्रमण करता है।'

"मायवसट्टे णं भंते जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ" ?

एवं चेव-जाव-अणुपरियट्टइ"।

'हे भदन्त ! माया की पराधीनता से पीड़ित जीव क्या बांधता है, क्या करता है, किसको इकट्ठा करता और किसको पुष्ट बनाता है ?'

'इसीप्रकार—यावत्—परिभ्रमण करता है ?'

"लोभवसट्टे णं भंते ? जीवे किं बंधइ ? किं पकरेइ ? किं चिणाइ ? किं उवचिणाइ" ?

"एवं चेव-जाव-अणुपरियट्टइ"।

'हे भदन्त ! लोभाभिभूत जीव किसको बाँधता है, क्या करता है, किसको इकट्ठा करता है और किसको पुष्ट करता है ?'

'इसी प्रकार (पूर्ववत्)—यावत्—परिभ्रमण करता है ?'

तए णं ते समणोवासगा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था तसिया संसारभउव्विग्गा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव संखे समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता संखं समणोवासगं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एयमट्ठं सम्मं विणएणं भुज्जो-भुज्जो खामेंति।

तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर स्वामी से इस अर्थ को सुनकर और अवधारित कर भयभीत, त्रस्त, त्रसित संसारभय से उद्विग्न हुए उन श्रमणोपासकों ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके शंख श्रमणोपासक के पास आये, आकर वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके (तिरस्कार करने रूप) इस अर्थ के लिये सम्यक् प्रकार से विनयपूर्वक बारम्बार क्षमा मांगते हैं।

तए णं ते समणोवासगा पसिणाइं पुच्छंति, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियंति, परियादियित्ता समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तदनन्तर वे श्रमणोपासक श्रमण भगवान महावीर स्वामी से प्रश्न पूछकर अर्थ को ग्रहण कर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करते हैं और वन्दन-नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, वापस उसी ओर लौट गये।

संखस्स देवगई सिद्धी य—

२६७. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

शंख की देवगति और सिद्धि—

२६७. 'हे भदन्त ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

"पभू णं भंते ! संखे समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ? सेसं जहा (भग० स० ११ उ० १२) इसिभद्दपुत्तस्स -जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति।"

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति-जाव-विहरइ।"

—भग० स० १२, उ० १

'हे भगवन ! क्या शंख श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर, गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ है ? शेष सभी वर्णन ऋषिभद्रपुत्र के समान जानना—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

'हे भगवन ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन ! वह इसी तरह है, ऐसा कहकर गौतम स्वामी—यावत्—विचरण करने लगे।'

॥ शंख और पुष्कली श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

□ □

१७. वरुणे नागनत्तुए समणोवासए

संगामे मरणे देवत्तविसए गोयमपण्हो—

२९८. "बहुजणे णं भंते ! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु बहवे मणुस्सा अण्णयरेसु उच्चावएसु संगामेसु अभिमुहा चेव पहया समाणा कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, से कहमेयं भंते ! एवं ?"

महावीरस्स उत्तरे वरुणकहाणयं—

"गोयमा ! जण्णं से बहुजणे अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु बहवे मणुस्सा-जाव-देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति, जे ते एवमाहंसु मिच्छं ते एवमाहंसु। अहं पुण गोयमा ! एवमाइक्खामि-जाव-परूवेमि—

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं वेसाली नामं नगरी होत्था—वण्णओ। तत्थ णं वेसालीए नगरीए वरुणे नामं नागनत्तुए परिवसइ-अड्ढे-जाव-अपरिभूए, समणोवासए, अभिगय-जीवाजीवे-जाव-समणे निग्गंथे फासु एसणिज्जेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं वत्थ-पडिग्गह-कंबल-पायपुञ्छणेणं पीढ-फलगसेज्जा-संथारएणं ओसह-भेसज्जेण पडिलाभेमाणे छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरति।

१७. नाग पौत्र वरुण श्रमणोपासक

संग्राम में मरण होने पर देवत्व विषयक गौतम का प्रश्न—

२९८. हे भदन्त ! बहुत से मनुष्य परस्पर इस प्रकार कहते हैं—यावत्—प्ररूपणा करते हैं कि 'अनेक प्रकार के छोटे-बड़े संग्रामों में से किसी भी एक संग्राम में अभिमुख—आमने सामने युद्ध करते हुए प्रहत—घायल मनुष्य मरण काल में काल करके किसी भी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, तो हे भदन्त ! क्या इस प्रकार होता है ?' गौतम स्वामी ने भगवान महावीर स्वामी से प्रश्न पूछा।

महावीर द्वारा उत्तर में वरुण कथानक—

भगवान महावीर ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! वे बहुत से लोग परस्पर जो इस प्रकार कहते हैं—यावत्—प्ररूपणा करते हैं कि बहुत से मनुष्य—यावत्—देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होते हैं, परन्तु जो इस प्रकार कहते हैं, उन्होंने मिथ्या कहा है, हे गौतम ! मैं तो इस प्रकार कहता हूं—यावत्—प्ररूपणा करता हूं—

हे गौतम ! वह इस प्रकार है कि उस काल और उस समय वैशाली नाम की नगरी थी, नगरी का वर्णन करो। उस वैशाली नगरी में वरुण नामक नागपौत्र रहता था—जो धनाढ्य—यावत्—अपराभूत था—जिसका पराभव न हो सके ऐसा, समर्थ था, वह श्रमणों का उपासक जीव-अजीव तत्त्वों का ज्ञाता था—यावत्—श्रमण निर्ग्रन्थों को प्रासुक एषणीय, अशन, पान, खादिम स्वादिम, वस्त्र, पात्र, कंबल, पादप्रोञ्छन—रजोहरण पीठ, फलक, शैया, संस्तारक, औषधि, भेषज द्वारा प्रतिलाभित करते हुए निरन्तर षष्ठभक्त (बेला) तप द्वारा आत्मा को भावित करते हुए विचरता था।

वरुणस्स रहमुसलसंगामे गमणं—

तए णं से वरुणे णागनत्तुए अण्णया कयाइ रायाभिओगेणं, गणाभिओगेणं, बलाभिओगेणं रहमुसले संगामे आणत्ते समाणे छट्ठभत्तिए अट्ठमभत्तं अणुवट्टेति, अणुवट्टेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठावेह, हय-गय-रह-पवर-जोह-कलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सच्छत्तं सज्झयं-जाव-चाउग्घंटं आसरहं जुत्तामेव उवट्ठावेंति, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेंति, सण्णाहेत्ता जेणेव वरुणे णागनत्तुए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता-जाव-समाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं से वरुणे णागनत्तुए जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकार-विभूसिए सण्णद्ध-बद्ध-वम्मियकवए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं, अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिपालसद्धिं संपरिवुडे मज्जणघराओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव चाउग्घंटे आसरहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे- महया-भडचडगरविंदपरिक्खित्ते जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसलं संगामं ओयाए।

संगामे वरुणस्स अभिग्गहो—

तए णं से वरुणे णागनत्तुए रहमुसलं संगामं ओयाए समाणे अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ—"कप्पति मे रहमुसलं संगामं संगामेमाणस्स जे पुव्विं पहणइ से पडिहणित्तए, अवसेसे नो कप्पतीति; अयमेयारूवं अभिग्गहं अभिगेण्हइ अभिगेण्हेत्ता रहमुसलं संगामं संगामेति।

तए णं तस्स वरुणस्स णागनत्तुयस्स रहमुसलं संगामं संगा-

वरुण का रथमूसल संग्राम में गमन—

तत्पश्चात् किसी एक समय जब उस नागपौत्र वरुण को राजा के अभियोग (आदेश) से, गणाभियोग से, बल (सेना) के आदेश, से रथमूसल संग्राम में जाने की आज्ञा हुई तब उसने षष्ठ भक्त की बजाय अष्टम भक्त (तेला) कर लिया और तेलाकर के कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही चार घण्टे वाला अश्वरथ जोत कर लाओ, घोड़ा, हाथी, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो—सुसज्जित करो, सुसज्जित करके मेरी यह आज्ञा वापस मुझे लोटाओ—आदेशानुसार कार्य हो जाने की मुझे सूचना दो।'

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—स्वीकार करके शीघ्र ही छत्रसहित, ध्वजासहित—यावत्—चार घण्टों वाले अश्वरथ को सुसज्जित करके लाते हैं, लाकर घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से कलित—युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध तैयार करते हैं, तैयार करके नागपौत्र वरुण के पास आते हैं आकर—यावत्—आज्ञा वापिस लोटाते हैं आज्ञानुसार कार्य होने की सूचना देते हैं।

तत्पश्चात् वह नागपौत्र वरुण स्नान गृह में आया, आकर स्नानगृह में प्रवेश कर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक और मंगलरूप प्रायश्चित्त करके, सर्वालंकारों से विभूषित हो, कवच को पहिन और बांधकर सन्नद्ध होकर कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारण करके अनेक गणनायकों, दण्ड नायकों, राजेश्वरों, तलवरों, मांडबिकों, कौटुम्बिकों, इभ्यों, सेठों सेनापतियों, सार्थवाहों, दूतों और संधिपालों से परिवेष्टित होता हुआ स्नानगृह से बाहर निकला, निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी, जहाँ चार घण्टों वाला अश्वरथ था, वहाँ आया, आकर चार घण्टों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर घोड़ा, हाथी, रथ और प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से संपरिवृत्त और महान सुभटों के समूह से वेष्टित होता हुआ रथ-मूसल संग्राम भूमि में आया, और उस संग्राम भूमि में आकर रथ-मूसल संग्राम करने में प्रवृत्त हो गया।

संग्राम में वरुण का अभिग्रह—

तत्पश्चात् रथ-मूसल संग्राम में प्रवृत्त होने पर उस नागपौत्र वरुण ने इस प्रकार का यह अभिग्रह धारण किया कि—'रथ-मूसल संग्राम में संग्राम करते हुए जो पहले मुझ पर प्रहार करेगा उसी पर प्रहार करना मुझे कल्पता है, दूसरों पर प्रहार करना नहीं कल्पता है।' इस प्रकार का यह अभिग्रह धारण करके रथ-मूसल संग्राम करने लगा।

तत्पश्चात् समान शरीर, शक्ति अथवा त्वचा, वय, और

मेमाणस्स एगे पुरिसे सरिसए सरित्तए सरिव्वए सरिसभंडमत्तोवगरणे रहेणं पडिरहं हव्वमागए ।

तए णं से पुरिसे वरुणं नागनत्तुयं एवं वयासी—पहण भो वरुणा ! नागनत्तुया ! पहण भो वरुणा ? नागनत्तुया !

तए णं से वरुणे नागनत्तुए तं पुरिसं एवं वयासी—नो खलु मे कप्पइ देवाणुप्पिया ! पुव्विं अहयस्स पहणित्तए, तुमं चेव णं पुव्विं पहणाहि ।

तए णं से पुरिसे वरुणेणं नागनत्तुएणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता ठाणं ठाति, ठिच्चा आययकण्णाययं उसुं करेइ, करेत्ता वरुणं नागनत्तुयं गाढप्पहारीकरेइ ।

तए णं से वरुणे नागनत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता आययकण्णाययं उसुं करेइ, करेत्ता तं पुरिसं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ ।

वरुणकयं संलेहणं—

तए णं से वरुणे नागनत्तुए तेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं परावत्तेइ परावत्तेत्ता रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता एगंतमंतं अवक्कमइ अवक्कमित्ता तुरए निगिण्हइ निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तुरए मोएइ, मोएत्ता तुरए विसज्जेइ, विसज्जेत्ता दब्भसंथारगं संथरइ, संथरित्ता दब्भसंथारगं दुरूहइ, दुरूहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—

"नमोत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं-जाव-सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपत्ताणं, नमोत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स-जाव-सिद्धिगतिनामधेयं ठाणं संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थगयं इहगए, पासउ मे से भगवं तत्थगए इहगयं" ति कट्टु वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"पुव्विं पि णं मए समणस्स

समान अस्त्र-शस्त्रादि उपकरणों से सुसज्जित एक पुरुष रथ में बैठकर शीघ्र ही रथ-मूसल संग्राम करने वाले उस नागपौत्र वरुण के सामने आया ।

तत्पश्चात् उस पुरुष ने नागपौत्र वरुण से इस प्रकार कहा—'ओ नागपौत्र वरुण ! प्रहार कर, प्रहार कर ।'

तब नागपौत्र वरुण ने उस पुरुष से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय ! जब तक मुझ पर पहले प्रहार न किया जाए तब तक मुझे प्रहार करना नहीं कल्पता है । अतएव पहले तुम्हीं वार करो ।'

तब नागपौत्र वरुण की इस बात को सुनकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित और चंडिकावत् रौद्र रूप धारण कर उस पुरुष ने दाँतों को मिसमिसाते हुए हाथ में धनुष लिया, धनुष लेकर उस पर बाण चढ़ाया और कान तक खींचकर नागपौत्र वरुण पर सख्त प्रहार किया ।

तत्पश्चात् उस पुरुष के प्रहार से आहत नागपौत्र वरुण ने क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् विकराल रूप धारण कर दाँतों को मिसमिसाते हुए धनुष उठाया, उठाकर उस पर बाण चढ़ाया और कान तक धनुष को खींचकर एक ही चोट से टुकड़े-टुकड़े—पत्थर के समान उस पुरुष को छिन्न भिन्न करके जीवन रहित कर दिया ।

वरुणकृत संलेखना—

तत्पश्चात् उस पुरुष के प्रबल प्रहार से आहत होने से अशक्त निर्बल, वीर्यरहित, पुरुषार्थ और पराक्रम रहित हुए उस नागपौत्र वरुण ने अब जीवित रहना सम्भव नहीं है, समझकर घोड़ों को रुकवाया—रोका, रुकवाकर रथ को लौटाया, लौटाकर रथ-मूसल संग्राम से बाहर निकला, निकलकर एकांत स्थान में आया, आकर घोड़ों को रोका, रोककर रथ को खड़ा किया, खड़ा करके रथ से नीचे उतरा, उतरकर घोड़ों को छोड़ा, छोड़कर घोड़ों को वापस भेज दिया, वापस भेजकर दर्भ-संस्तारक बिछाया, बिछाकर दर्भ संस्तारक पर बैठा और पूर्वाभिमुख पर्यंकासन से बैठकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—

'अरिहन्त भगवन्तों—यावत्—सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त भगवन्तों को नमस्कार हो, जो धर्म की आदि करने वाले —यावत्—सिद्ध गति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर हैं । जो मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक हैं, उन श्रमण भगवान महावीर स्वामी को नमस्कार हो, वहाँ विराजमान भगवान को यहाँ स्थित मैं वन्दना करता हूँ, वहाँ रहे हुए भगवान यहाँ स्थित मुझे देखो" ऐसा कहकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'पहले भी मैंने श्रमण

भगवओ महावीरस्स अंतिए थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, एवं-जाव-थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, इयाणि पि णं अहं तस्सेव भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामि जावज्जीवाए-जाव-मिच्छादंसणसल्लं पच्चक्खामि जावज्जीवाए। सव्वं असण-पाण-खाइम-साइमं—चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामि-जावज्जीवाए। जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं-जाव-मा णं वाइयपित्तिय-सेंभिय-सण्णिवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु एयं पि णं चरिमेहिं ऊसास-नीसासेहिं वोसिरिस्सामि" त्ति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ, मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेइ, करेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

भगवान महावीर स्वामी के पास जीवनपर्यन्त के लिये स्थूल प्राणातिपात का प्रत्याख्यान कर लिया था, इसी प्रकार—यावत्—जीवन पर्यन्त के लिये स्थूल परिग्रह का प्रत्याख्यान कर लिया था. इस समय भी मैं श्रमण भगवान महावीर स्वामी के पास यावज्जीवन के लिये सर्व प्राणातिपात का प्रत्याख्यान करता हूँ—यावत्—मिथ्या-दर्शन शल्य का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ। सभी अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चार प्रकार के आहार का भी यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करता हूँ। यद्यपि मुझे यह शरीर इष्ट, कान्त और प्रिय है—यावत्—यह सावधानी रखी है कि वातज, पित्तज, कफज और सन्निपातज विविध प्रकार के रोगातंक तथा परिषह, उपसर्ग इसको स्पर्श न करें, तथापि इसको भी चरम श्वासोच्छ्वास तक के लिये त्यागता हूँ' ऐसा कहकर सन्नाहपट्ट-कवच को उतारा, उतारकर शल्यों का उन्मूलन किया और आलोचना प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि को प्राप्त करके अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुआ।

वरुणनागनत्तुय-मित्तस्स वि वरुणाणुसरणं—

तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स एगे पियबालवयंसए रहमुसलं संगामं संगामेमाणे एगेणं पुरिसेणं गाढप्पहारीकए समाणे अत्थामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु वरुणं नागनत्तुयं रहमुसलाओ संगामाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता जहा वरुणे-जाव-तुरए विसज्जेति, पडसंथारगं दुरुहइ, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहे संपलियंकनिसण्णे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"जाइं णं भंते! मम पियबालवयंसस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स सीलाइं वयाइं गुणाइं वेरमणाइं पच्चक्खाण-पोसहोववासाइं, ताइं णं ममं पि भवंतु" त्ति कट्टु सण्णाहपट्टं मुयइ, मुइत्ता सल्लुद्धरणं करेइ, करेत्ता आणुपुव्वीए कालगए।

नागपौत्र वरुण के मित्र का भी वरुणानुसरण—

तत्पश्चात् नागपौत्र वरुण के एक बाल मित्र ने रथमूसल संग्राम करते हुए एक पुरुष के प्रबल प्रहार से आहत होकर शक्ति रहित, बलरहित, वीर्यरहित, पुरुषाकार पराक्रम से रहित होने पर जब यह समझ लिया कि अब जीवन धारण करना सम्भव नहीं है तब नागपौत्र वरुण को रथमूसल संग्राम से बाहर निकलते हुए देखा, देखकर घोड़ों को रोका, रोककर वरुण की तरह—यावत्—वापस भेज दिया और पट संस्तारक पर पूर्व की ओर मुख करके पर्यंकासन से बैठ कर दोनों हाथों को जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'हे भगवन्! मेरे प्रिय बालमित्र नागपौत्र वरुण के जो शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण, आदि, प्रत्याख्यान, पौषधोपवास आदि हों, वे सब मुझे भी हों, ऐसा कहकर सन्नाहपट्ट—कवच को उतारा और शल्यों का त्याग कर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुआ।

वरुणमरणे देवकयवुट्ठं

तए णं तं वरुणं नागनत्तुयं कालगयं जाणित्ता अहासन्निहिएहिं वाणमंतरेहिं देवेहिं दिव्वे सुरभिगंधोदगवासे वुट्ठे, दसद्धवण्णे कुसुमे निवाडिए, दिव्वे य गीय-गंधव्वनिनादे कए यावि होत्था।

तए णं तस्स वरुणस्स नागनत्तुयस्स तं दिव्वं देविड्ढिं दिव्वं देवज्जुतिं दिव्वं देवाणुभागं सुणित्ता य पासित्ता य बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया!

वरुण के मरण पर देवकृत वृष्टि—

तत्पश्चात् नागपौत्र वरुण को कालगत जानकर आसपास में रहे हुए वाणव्यंतर देवों ने दिव्यसुरभि (सुगंधित) गंधोदक की वृष्टि की, रंगबिरंगे पंचरंगे पुष्प बरसाये और दिव्य गीत गंधर्व निनाद भी किया।

तब उस नागपौत्र वरुण की वह दिव्य देवऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवप्रभाव को सुनकर और देखकर बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे—यावत्—प्ररूपणा करने लगे कि हे देवानुप्रिय! अनेक प्रकार के छोटे-बड़े

बहवे मणुस्सा अण्णयरेसु उच्चावएसु संगामेसु अभिमुहा चेव पहया समाणा कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववत्तारो भवंति।"

संग्रामों में से किसी भी एक में आमने सामने रहकर युद्ध करते हुए प्रहत-आहत होने पर मरण काल में काल करके किसी भी देवलोक में देवरूप से उत्पन्न होते हैं।"

वरुणस्स देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगइनिरूवणं च—

वरुण की देवलोक में उत्पत्ति और तदनन्तर सिद्धगति निरूपण—

२९९. "वरुणे णं भंते ! नागनत्तुए कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ! कहिं उववन्ने ?"

"गोयमा ! सोहम्मे कप्पे, अरुणाभे विमाणे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं वरुणस्स वि देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिती पण्णत्ता"।

"से णं भंते ! वरुणे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति।

२९९. 'हे भगवन् ! मरण काल में काल करके नागपौत्र वरुण कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ ?' गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा।

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम ! सौधर्म कल्प के अरुणाभ विमान में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ कितने ही देवों की आयु चार पल्योपम की कही है—होती है। वहाँ वरुण देव की भी चार पल्योपम की स्थिति कही है।'

'हे भदन्त ! वह वरुण देव उन देवलोकों में आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति क्षय होने के अनन्तर च्युत होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?' गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा।

भगवान ने उत्तर दिया कि "गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिवृत्त होकर सर्वदुःखों का अंत करेगा।"

वरुणमित्तस्सवि सुकुलुप्पत्तिआइ—

वरुण के मित्र की भी सुकुल-उत्पत्ति आदि—

३००. वरुणस्स णं भंते ! नागनत्तुयस्स पियबालवयंसए कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! सुकुले पच्चायाते।

से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-अंतं काहिति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भग० श० ७, उ० ९

३००. 'हे भगवन् ! नागपौत्र वरुण का प्रिय बालमित्र काल मास में काल करके कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ है ?' गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा।

भगवान ने उत्तर दिया—

"गौतम ! वह सुकुल—उच्चकुल में उत्पन्न हुआ है।"

"हे भगवन ! वहाँ से मरण करने के अनन्तर वह कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?" गौतम स्वामी ने पुनः प्रश्न पूछा।

भगवान ने उत्तर में बताया कि "हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि को प्राप्त करेगा—यावत्—सर्वदुःखों का अन्त करेगा।

हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! वह इसी प्रकार है। इस तरह कहकर गौतम स्वामी पूर्ववत् विचरण करने लगे।

॥ नागपौत्र वरुण श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

□ □

१८. सोमिलमाहणे समणोवासए

वाणियगामे सोमिलमाहणे भ. महावीरस्स समोसरणं च—

३०१. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नगरे होत्था—वण्णओ। दूतिपलासए चेइए—वण्णओ।

तत्थ णं वाणियगामे नगरे सोमिले नामं माहणे परिवसति अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए, रिव्वेद-जाव-सुपरिनिट्ठिए, पंचण्हं खंडियसयाणं, सयस्स य कुडुम्बस्स आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

तए णं समणे भगवं महावीरे-जाव-समोसढे-जाव-परिसा पज्जुवासति।

सोमिलमाहणस्स समवसरणे गमणं—

३०२. तए णं तस्स सोमिलस्स माहणस्स इमीसे कहाए लद्धट्ठस्स समाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु समणे नायपुत्ते पुव्वाणुपुव्वि चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इहमागए इहसंपत्ते इहसमोसढे इहेव वाणियगामे नगरे दूतिपलासए चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तं गच्छामि णं समणस्स नायपुत्तस्स अंतियं पाउब्भवामि, इमाइं च णं एयारूवाइं अट्ठाइं हेऊइं पसिणाइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामि, तं जइ मे से इमाइं एयारूवाइं अट्ठाइं-जाव-वागरणाइं वागरेहिति तओ णं वंदीहामि नमंसीहामि-जाव-पज्जुवासीहामि, अह मे से इमाइं अट्ठाइं जाव वागरणाइं नो वागरेहिति तो णं एएहिं चेव अट्ठेहि य-जाव-वागरणेहि य निप्पट्ठ-पसिणवागरणं करेस्सामि" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ण्हाए-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं एगेणं खंडियसएणं सद्धिं संपरिवुडे वाणियगामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव दूतिपलासए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—

सोमिलस्स जत्ताइपण्हाणं भगवओ समाहाणं—

३०३. जत्ता ते भंते ? जवणिज्जं (ते भंते ?) ? अव्वाबाहं (ते

१८. सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक

वाणिज्यग्राम में सोमिल ब्राह्मण और भगवान महावीर का समवसरण—

३०१. उस काल और उस समय में वाणिज्यग्राम नामक नगर था। वर्णन करो। दूतिपलाश चैत्य था। वर्णन करो।

उस वाणिज्यग्राम नगर में सोमिल नामक ब्राह्मण निवास करता था। जो संपत्तिसंपन्न—यावत्—अपरिभूत एवं ऋग्वेद—यावत्—ब्राह्मण शास्त्रों में प्रवीण था। पांच सौ शिष्यों और अपने कुटुम्ब का आधिपत्य, पौरोहित्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, आज्ञैश्वर्यत्व एवं सेनापतित्व करते हुए, पालन करते हुए विचरता था।

श्रमण भगवान महावीर—यावत्—वहां पधारे—यावत्—परिषदा पर्युपासना करने लगी।

सोमिल ब्राह्मण का समवसरण में गमन—

३०२. तत्पश्चात् उस सोमिल ब्राह्मण को यह समाचार जानकर इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित प्रार्थित मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ—'श्रमण ज्ञातपुत्र पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए और सुखपूर्वकविहार करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं, यहाँ समवसृत हुए हैं एवं यहीं वाणिज्यग्राम नगर के दूतिपलाश चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं।

अतएव मैं जाऊँ और श्रमण ज्ञातपुत्र के समक्ष उपस्थित होऊँ। यह और इस प्रकार के अर्थ हेतु, प्रश्न, कारण और व्याकरण (व्याख्या) पूछूँ। यदि वे मेरे इन और इस प्रकार के अर्थों का—यावत्—व्याख्या का विवेचन कर देंगे तो उसके बाद वन्दना नमस्कार करूँगा—यावत्—पर्युपासना करूँगा और यदि वे मेरे इन अर्थों—यावत्—व्याख्याओं का विवेचन नहीं कर सकेंगे तो मैं इन अर्थों—यावत्—व्याख्याओं से निरुत्तर कर दूँगा। इस प्रकार का विचार किया, विचार करके स्नान किया—यावत्—बहुमूल्य अल्प आभरणों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से निकला, निकलकर पाद विहार से चलते हुए एक सौ शिष्यों को साथ लेकर वाणिज्यग्राम नगर के मध्य भाग में से निकला, निकलकर जहाँ दूतिपलाश चैत्य था उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे। वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर से कुछ देर खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहा—

सोमिल के यात्रादि प्रश्नों का भगवान द्वारा समाधान—

३०३. प्रश्न—हे भदन्त ! आपके यात्रा है ? हे भदन्त ! यापनीय

भंते ?) ? फासुयविहारं (ते भंते ?)

सोमिला ! जत्ता वि मे, जवणिज्जं पि मे, अव्वाबाहं पि मे, फासुयविहारं पि मे।

किं ते भंते ! जत्ता ?

सोमिला ! जं मे तव-नियम-संजम-सज्झाय-झाणावस्सगमादीएसु जोगेसु जयणा, सेत्तं जत्ता।

किं ते भंते ! जवणिज्जं ?

सोमिला ! जवणिज्जे दुविहे पण्णत्ते, तं जहा—इंदियजवणिज्जे य, नोइंदिय-जवणिज्जे य।

से किं तं इंदियजवणिज्जे ?

इंदियजवणिज्जे—जं मे सोइंदिय-चक्खिंदिय-घाणिंदिय-जिब्भिंदिय-फासिंदियाइं निरुवहयाइं वसे वट्टंति, सेत्तं इंदियजवणिज्जे।

से किं तं नोइंदियजवणिज्जे ?

नोइंदियजवणिज्जे—जं मे कोह-माण-माया-लोभा वोच्छिण्णा नो उदीरेंति, सेत्तं नोइंदियजवणिज्जे। सेत्तं जवणिज्जे।

किं ते भंते ! अव्वाबाहं ?

सोमिला ! जं मे वातिय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइया विविहा रोगायंका सरीरगया दोसा उवसंता नो उदीरेंति सेत्तं अव्वाबाहं।

किं ते भंते ! फासुयविहारं ?

सोमिला ! जण्णं आरामेसु उज्जाणेसु देवकुलेसु सभासु पवासु इत्थी-पसु-पंडगविवज्जियासु वसहीसु फासु-एसणिज्जं पीढ-फलग-सेज्जा-संथारगं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि, सेत्तं फासुयविहारं।

सरिसवा ते भंते ! किं भक्खेया ? अभक्खेया ?

सोमिला ! सरिसवा मे भक्खेया वि अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—सरिसवा मे भक्खेया वि अभक्खेया वि ?

से नूणं भे सोमिला ! बंभण्णएसु नएसु दुविहा सरिसवा पण्णत्ता तं जहा—मित्तसरिसवा य, धन्नसरिसवा य।

तत्थ णं जे ते मित्तसरिसवा ते तिविहा पण्णत्ता तं जहा—सहजायया, सहवड्ढियया, सहपंसुकीलियया, ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

है ? हे भदन्त ! आपके अव्याबाध ? हे भदन्त ! आपके प्रासुक विहार है ?

उत्तर—हे सोमिल ! मेरे यात्रा भी है, यापनीय भी है, अव्याबाध भी है और प्रासुक विहार भी है।

प्रश्न—हे भदन्त ! आपके यात्रा कैसी है ?

उत्तर—हे सोमिल ! मेरी जो तप, नियम, संयम, स्वाध्याय, ध्यान और आवश्यक आदि योगों में यतना—प्रवृत्ति है, वह मेरी यात्रा है।

प्रश्न—हे भदन्त ! आपके यापनीय क्या है ?

उत्तर—हे सोमिल ! यापनीय दो प्रकार का कहा गया है, वह इसप्रकार है—इन्द्रिययापनीय और नोइन्द्रिय-यापनीय।

प्रश्न—इन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—इन्द्रिय यापनीय—जो मेरी श्रोत्रेन्द्रिय, चक्षुइन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय और स्पर्शेन्द्रिय ये पाँचों इन्द्रियाँ निरुपहत हैं, मेरे वश में वर्तती हैं यह मेरे इन्द्रिययापनीय है।

प्रश्न—नोइन्द्रिययापनीय किसे कहते हैं ?

उत्तर—नोइन्द्रिय यापनीय—जो मेरे क्रोध, मान, माया, लोभ व्युच्छिन्न (नष्ट) हो गये हैं और उदय में नहीं हैं, वह मेरे नोइन्द्रिय यापनीय हैं। इस प्रकार ये यापनीय है।

प्रश्न—हे भदन्त ! आपके अव्याबाध क्या है ?

उत्तर—हे सोमिल ! मेरे वात, पित्त, कफ और सन्निपात जन्य अनेक प्रकार के शरीर सम्बन्धी दोष और रोगान्तक उपशान्त हो गये हैं, उदय में नहीं आये हैं। यह मेरे अव्याबाध है।

प्रश्न—हे भदन्त ! आपके प्रासुक विहार कौनसा है ?

उत्तर—हे सोमिल ! स्त्री, पशु, पंडक (नपुंसक) रहित आराम, उद्यान, देवकुल, सभा प्रपा (प्याऊ) आदि वस्तिकाओं में प्रासुक, एषणीय, पीठ, फलक, शैया, संस्तारक आदि प्राप्त कर मैं विचरण करता हूँ, मेरे यह प्रासुक विहार है।

प्रश्न—हे भदन्त ! सरिसव क्या भक्ष्य है या अभक्ष्य है ?

उत्तर—हे सोमिल ! सरिसव मेरे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

प्रश्न—हे भगवन् ! आप यह किस कारण कहते हैं कि सरिसव भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है ?

उत्तर—हे सोमिल ! ब्राह्मणनयों (शास्त्रों) में दो प्रकार के सरिसव कहे गये हैं, यथा—मित्रसरिसव और धान्यसरिसव।

उनमें जो मित्रसरिसव हैं (समानवय वाला मित्र) वे तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—१. सहजात, (एक साथ जन्मे हुए) २. सहवर्धित, (एक साथ बढ़े हुए) और ३. सहपांसुक्रीडित (एक साथ धूल में खेले हुए)। ये तीनों श्रमण निर्ग्रन्थों के लिए अभक्ष्य हैं।

तत्थ णं जे ते धन्नसरिसवा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य, असत्थपरिणया य। तत्थ णं जे ते असत्थपरिणया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते सत्थपरिणया ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—एसणिज्जा य, अणेसणिज्जा य।

तत्थ णं जे ते अणेसणिज्जा ते समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते एसणिज्जा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—जाइया य, अजाइया य। तत्थ णं जे ते अजाइया ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते जाइया, ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—लद्धा य, अलद्धा य। तत्थ णं जे ते अलद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया। तत्थ णं जे ते लद्धा ते णं समणाणं निग्गंथाणं भक्खेया। से तेणट्ठेणं सोमिला! एवं वुच्चइ—सरिसवा मे भक्खेया वि अभक्खेया वि।

मासा ते भंते! किं भक्खेया? अभक्खेया?

सोमिला! मासा मे भक्खेया वि, अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—मासा मे भक्खेया वि अभक्खेया वि?

से नूणं भे सोमिला! बंभण्णएसु नएसु दुविहा मासा पण्णत्ता, तं जहा—दव्वमासा य, कालमासा य।

तत्थ णं जे ते कालमासा ते णं सावणाईया आसाढपज्जवसाणा दुवालस पण्णत्ता, तं जहा—सावणे, भद्दवए, आसोए, कत्तिए, मग्गसिरे, पोसे, माहे, फग्गुणे, चेत्ते, वइसाहे, जेट्ठामूले, आसाढे। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते दव्वमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—अत्थमासा य, धण्णमासा य।

तत्थ णं जे ते अत्थमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सुवण्णमासा य, रुप्पमासा य। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते धण्णमासा ते दुविहा पण्णत्ता, तं जहा—सत्थपरिणया य, असत्थपरिणया य।

एवं जहा धण्णसरिसवा-जाव-से तेणट्ठेणं-जाव-अभक्खेया वि।

कुलत्था ते भंते! किं भक्खेया? अभक्खेया?

सोमिला! कुलत्था मे भक्खेया वि अभक्खेया वि।

से केणट्ठेणं-जाव-अभक्खेया वि?

जो धान्य सरिसव (सरसों) हैं, वह दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—१. शस्त्रपरिणत और २. अशस्त्रपरिणत। उनमें जो अशस्त्रपरिणत हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं। और जो शस्त्रपरिणत हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—१. एषणीय और २. अनेषणीय।

जो अनेषणीय हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं और जो एषणीय हैं, वे दो प्रकार के बताये हैं—यथा—याचित और अयाचित (बिना माँगा हुआ)। जो अयाचित हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं और जो उनमें याचित (माँगकर लिया हुआ) हैं, वे दो प्रकार के हैं यथा-लब्ध (लिया हुआ) और अलब्ध, उनमें से जो अलब्ध हैं, वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं। जो लब्ध हैं वे श्रमण निर्ग्रन्थों को भक्ष्य हैं। इसलिये हे सोमिल! ऐसा कहा गया है कि सरिसव मेरे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

प्रश्न—हे भदन्त! मास क्या भक्ष्य है? या अभक्ष्य है?

उत्तर—हे सोमिल! मास मेरे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

प्रश्न—हे भगवन्! ऐसा आप किस कारण कहते हैं कि मेरे लिये भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है?

उत्तर—हे सोमिल! ब्राह्मण नयों में दो प्रकार के मास कहे गये हैं यथा-द्रव्यमास और कालमास।

इनमें जो कालमास हैं वे श्रावण आदि आषाढ़ पर्यन्त बारह कहे गये हैं, यथा—१ श्रावण, २ भाद्रपद, ३ आसोज, ४ कार्तिक, ५ मार्गशीर्ष, ६ पौष, ७ माघ, ८ फाल्गुन, ९ चैत्र, १० वैशाख, ११ जेष्ठमूल और आषाढ़ (वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं)

जो द्रव्यमास हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं—यथा-अर्थमास और धान्यमास।

जो अर्थमास हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—सुवर्णमास और रूप्यमास। वे श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं।

जो धान्यमास (दाल) हैं, वे दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—शस्त्रपरिणत और अशस्त्रपरिणत।

आदि सभी धान्य सरिसव के समान कहना चाहिए—यावत्—इस कारण मास भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

प्रश्न—हे भदन्त! क्या आपके कुलत्था भक्ष्य है या अभक्ष्य है?

उत्तर—हे सोमिल! मेरे लिये कुलत्था भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है।

प्रश्न—हे भदन्त! ऐसा क्यों कहते हैं कि मेरे लिए भक्ष्य भी है और अभक्ष्य भी है?

से नूणं भे सोमिला ! बंभण्णएसु नएसु दुविहा कुलत्था पण्णत्ता, तं जहा—इत्थिकुलत्था य, धण्णकुलत्था य।

तत्थ णं जे ते इत्थिकुलत्था ते तिविहा पण्णत्ता, तं जहा—कुलवधुया इ वा, कुलमाउया इ वा, कुलधुया इ वा। ते णं समणाणं निग्गंथाणं अभक्खेया।

तत्थ णं जे ते धण्णकुलत्था, एवं जहा धण्णसरिसवा। से तेणट्ठेणं-जाव-अभक्खेया वि।

उत्तर—हे सोमिल ! ब्राह्मण नयों में कुलत्था दो प्रकार के कहे गये हैं, यथा—स्त्री कुलत्था और धान्य कुलत्था।

जो स्त्री कुलत्था है, वह तीन प्रकार के कहे गये हैं यथा—१. कुलवधू, २. कुलमाता और ३. कुलपुत्री। ये श्रमण निर्ग्रन्थों को अभक्ष्य हैं।

जो धान्य कुलत्था है, उसके विषय में धान्य सरिसव के समान समझना चाहिये। इसलिये कुलत्था भक्ष्य भी है। और अभक्ष्य भी है।

एगे भवं ? दुवे भवं ? अक्खए भवं ? अव्वए भवं ? अवट्ठिए भवं ? अणेगभूयभाव-भविए भवं ?

प्रश्न—हे भदन्त आप एक हैं ? आप दो हैं ? आप अक्षय हैं ? आप अव्यय हैं ? आप अवस्थित हैं या अनेक भूत-भाव-भावि (भूतकाल, वर्तमान काल और भविष्य काल के अनेक परिणामों के योग्य) हैं ?

सोमिला ! एगे वि अहं-जाव-अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।

उत्तर—हे सोमिल ! मैं एक भी हूँ—यावत्—अनेक भूत-भाव-भावि भी हूँ।

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—एगे वि अहं—जाव-अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं ?

प्रश्न—हे भदन्त ! आप ऐसा किस कारण कहते हैं कि मैं एक भी हूँ—यावत्—अनेक भूत-भाव-भावि भी हूँ ?

सोमिला ! दव्वट्ठयाए एगे अहं, नाणदंसणट्ठयाए दुविहे अहं, पएसट्ठयाए अक्खए वि अहं, अव्वए वि अहं, अवट्ठिए वि अहं, उवयोगट्ठाए अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं। से तेणट्ठेणं-जाव-अणेगभूय-भाव-भविए वि अहं।

उत्तर—हे सोमिल ! मैं द्रव्य दृष्टि से एक प्रकार का हूँ, ज्ञान और दर्शन के भेद से दो प्रकार का हूँ, प्रदेशार्थिक दृष्टि से मैं अक्षय हूँ, अव्यय हूँ, अवस्थित हूँ, उपयोग की अपेक्षा अनेक भूत-भाव-भावि (भूत-वर्तमान और भविष्य परिणामों के योग्य) हूँ। इस कारण हे सोमिल !—यावत्—मैंने कहा है कि अनेक भूत-भाव-भावि भी हूँ।

सोमिलस्स सावगधम्मपडिवत्ती—

सोमिल की श्रावक धर्म प्रतिपत्ति—

एत्थ णं से सोमिले माहणे संबुद्धे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—जहा खंदओ-जाव-से जहेयं तुब्भे वदह। जहा णं देवाणुप्पियाणं अंतिए बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भसेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-प्पभितओ मुण्डा भवित्ताणं अगाराओ अणगारियं पव्वयंति, नो खलु अहं तहा संचाएमि, अहं णं देवाणुप्पियाणं अंतिए दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जिस्सामि-जाव-दुवालसविहं सावगधम्मं पडिवज्जति, पडिवज्जित्ता समणं भगवं महावीरं वंदति, नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

भगवान के इस प्रकार कहने पर सोमिल ब्राह्मण प्रतिबुद्ध हुआ और उसने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'वह वैसा ही जैसा आपने कहा' इत्यादि स्कन्दक के वर्णन के समान जानना चाहिये। 'आप देवानुप्रिय के पास बहुत से राजा-ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य-श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि मुण्डित होकर गृहवास छोड़कर अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुए हैं, उस प्रकार से करने में तो मैं समर्थ नहीं हूँ, अतएव आप देवानुप्रिय के पास बारह प्रकार के श्रावकधर्म को अंगीकार करूँगा'—यावत्—उसने बारह प्रकार का श्रावक धर्म अंगीकार किया। अंगीकार करके श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी दिशा में लौट गया।

तए णं से सोमिले माहणे समणोवासए जाए—अभिगयजीवा-जीवे-जाव-अहापरिग्गहिएहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक हो गया, जीव अजीव आदि तत्त्वों का ज्ञाता होकर—यावत्—यथाविधि ग्रहण किये हुए तपःकर्म से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

सोमिलस्स देवगइ-सिद्धिगमणनिद्देसो—

३०४. भंते ! ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

पभू णं भंते ! सोमिले माहणे देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ?

नो इणट्ठे समट्ठे जहेव संखे तहेव निरवसेसं-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति-जाव-विहरइ।

—भग० स० १८, उ० १०

सोमिल की देवगति-सिद्धिगमन निर्देश—

३०४. हे भदन्त ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—

प्रश्न—हे भगवन ! क्या सोमिल ब्राह्मण आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या अंगीकार करने में समर्थ है ?

उत्तर—यह अर्थ समर्थ नहीं है इत्यादि सब वर्णन शंख श्रावक के समान जानना चाहिये—यावत्—सर्वदुःखों का अंत करेगा।

हे भगवन ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कहकर गौतम गणधर विचरने लगे।

॥ सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

□ □

१९. भगवओ महावीरस्स समणोवासगाणं देवलोगट्ठिईए परूवणं

समणोवासगाणं सोहम्मे कप्पे ठिई—

३०५. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स समणोवासगाणं सोहम्मे कप्पे अरुणाभे विमाणे चत्तारि पलिओवमाइं ठिई प०।

—ठाण अ० ४, उ० ३

१९. भगवान् महावीर के श्रमणोपासकों की देवलोकस्थिति का प्ररूपण

श्रमणोपासकों की सौधर्म कल्प में स्थिति—

३०५. श्रमण भगवान महावीर के श्रमणोपासकों की सौधर्मकल्प के अरुणाभ विमान में चार पल्योपम की स्थिति प्रतिपादित की है।

२०. कूणियस्स महावीरसमवसरणगमण-धम्मसवणपसंगो

चंपानयरी वण्णओ—

३०६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था रिद्धत्थिमियसमिद्धा पमुइयजणजाणवया आइण्णजणमणूसा हलसयसहस्ससंकिट्ठविकिट्ठलट्ठपण्णत्तसेउसीमा कुक्कुडसंडेयगामपउरा उच्छुजवसालिकलिया गो-महिस-गवेलग-प्पभूया

२०. कोणिक का महावीर समवसरण-गमन, धर्मश्रवण प्रसंग

चंपा नगरी वर्णन—

३०६. उस काल और उस समय वैभवशाली, स्व-पर शत्रुभय से सुरक्षित एवं समृद्ध चंपा नाम की नगरी थी। वहाँ के नागरिक एवं जनपद वासित आमोद-प्रमोद के प्रचुर साधन होने से प्रमुदित रहते थे। लोगों की घनी आबादी थी, सैंकड़ों और हजारों हलों से जुती हुई उसकी निकटवर्ती भूमि सुन्दर सीमा मार्ग सी लगती थी, वहाँ के समीपवर्ती ग्राम मुर्गों और सांड़ों के समूह से व्याप्त थे। खेतों में ईख, जौ और धान की फसल लहलहाती थी, वहाँ प्रचुर मात्रा में गाय, भैंस और भेड़ों के समूह थे।

आयारवंतचेइयजुवइविविहसण्णिविट्ठबहुला उक्कोडियगाय-गठिभेयग-भड-तक्कर-खंडरक्खरहिया खेमा णिरुवद्दवा सुभिक्खा वीसत्थसुहावासा अणेगकोडिकुडुंबियाइण्णणिव्वुयसुहा णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-कहग-पवग-लासग-आइक्खग-मंख-लंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिय-अणेगतालायराणुचरिया।

वहाँ सुन्दर शिल्पकला युक्त चैत्य और पण्य तरुणियों के मुहल्लों की बहुलता थी। रिश्वतखोरों, जेबकटों, बटमारों, चोरों और खंडियों—चुंगी वसूल करने वालों से वह नगरी रहित थी। सुख-शांतिमय एवं निरुपद्रव थी। सुभिक्ष होने से वहाँ निवास करने में सब सुख मानते थे और आश्वस्त थे। अनेक श्रेणी के पारिवारिक जनों का वास होने से शान्तिमय थी। नट, नर्तक जल्ल—कलाबाज, मल्ल, मौष्टिक, विडंबक-विदूषक, कथक-कथा कहानी कहने वाले, प्लवन—उछलने वाले, तैरने वाले, लासक—रास गाने वाले, आख्यायक—शुभ-अशुभ बताने वाले, मंख—चित्रपट दिखाकर आजीविका कमाने वाले, लंख—बाँस के सिरे पर खेल दिखाने वाले, तूणनादक, तुम्ब-वीणा बजाकर आजीविका चलाने वाले, ताली बजाकर मनोविनोद करने वाले आदि अनेक जनों से सेवित थी।

आरामुज्जाण-अगड-तलाग-दीहिय-वप्पिणगुणोववेया नंदणवणसन्निभप्पगासा उव्विद्धविउलगंभीरखायफलिहा चक्क-गय-मुसुंढिओरोह-सयग्घि-जमलक-वाड-घणदुप्पवेसा धणुकुडिलवंकपागारपरिक्खित्ता कविसीसगवट्टरइयसंठियविरायमाणा अट्टालय-चरिय-दार-गोपुर-तोरण-समुण्णय-सुविभत्त-रायमग्गा छेयायरियरइयदढफलिहइंदकीला विवणिवणिछित्तसिप्पियाइण्णणिव्वुयसुहा।

आराम, उद्यान, कुए, तालाब, बावड़ी और छोटे-छोटे बाँधों से युक्त थी, नन्दनवन के समान श्री-सम्पन्न थी, ऊंची-विस्तृत और गहरी खाई से घिरी हुई थी, उसके चारों ओर बना परकोटा चक्र, गदा, भुसुंडी, अवरोध, शतघ्नी आदि शस्त्रों से युक्त होने एवं द्वार छिद्ररहित कपाल युगल वाले होने से उसमें प्रवेश कर सकना दुष्कर था। धनुष जैसे टेढ़े परकोटे से वह घिरी हुई थी, और वह परकोटा गोल आकार के कपि शीर्षकों—कंगूरों से सुशोभित था, और स्थान-स्थान पर अट्टालक—गुमटियाँ बनी हुई थीं। वह नगरी चरिका परकोटे में बनी छोटी बारियों, गोपुरों, तोरणों से सुशोभित थी। उसके द्वारों—बारियों के किवाड़ों की अर्गलायें और इन्द्रकीलियाँ सुयोग्य शिल्पियों द्वारा निर्मित थीं। विपणि—हाट और व्यापार का केन्द्र होने से तथा वहाँ बहुत से शिल्पियों के निवास करने के कारण सुखकारी थी।

सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-पणियावण-विविहवत्थुपरिमंडिया सुरम्मा नरवइपविइण्णमहिवइपहा अणेगवरतुरग-मत्तकुंजर-रहपहकर-सीय-संदमाणी-आइण्ण-जाण-जुग्गा विमउल-णवणलिणिसोभियजला पंडुरवरभवणसण्णिमहिया उत्ताणणयणपेच्छणिज्जा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

शृंगाटकों तिकों, चतुष्कों, चत्वरों तथा अनेक प्रकार की वस्तुओं से परिमंडित दुकानों से सुशोभित और रमणीय थी, राजा महाराजाओं के आवागमन से उसके राजमार्ग जनसमूह से व्याप्त रहते थे, वहाँ अनेक उत्तम घोड़ों, मन्दोमत्त हाथियों, रथसमूहों, शिविकाओं, स्यन्दमानिकाओं, यानों और युग्मों का जमघट लगा रहता था, वहाँ के जलाशयों का जल विकसित कमलों से शोभित रहता था। सफेद लिपे पुते उत्तम भवनों की पंक्तियों से अलंकृत थी, अत्यधिक सुन्दरता के कारण अपलक नेत्रों से प्रेक्षणीय थी। मन को प्रसन्न करने वाली दर्शनीय अभिरूप एवं प्रतिरूप—अतीव मनोहर थी।

पुण्णभद्दे चेइए—

३०७. तीसे णं चंपाए णयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए पुण्णभद्दे नाम चेइए होत्था, चिराईए पुव्वपुरिसपण्णत्ते पोराणे

पूर्णभद्र चैत्य—

३०७. उस चम्पा नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिक्कोण में पूर्णभद्र नामक चैत्य था। 'वह चिरकाल से चला आ रहा था' इस प्रकार

सद्दिए वित्तिए (पाठान्तरे—'कित्तिए') णाए सच्छत्ते सज्झए सघंटे सपडागे पडागाइपडागमंडिए सलोमहत्थे कयवेयड्डिए लाउल्लोइयमहिए गोसीससरसरत्तचंदणदद्दरदिण्णपंचंगुलितले उवचियचंदणकलसे चंदणघडसुकयतोरणपडिदुवारदेसभाए

से पूर्व पुरुष—वृद्धजन उसकी चर्चा करते रहते थे। वह सुप्रसिद्ध था। अनेक लोगों के लिये आजीविका—वृत्ति का साधन था (लोगों द्वारा प्रशंसित था—यह पाठान्तर है) तथा दूर दूर तक उसका नाम फैला हुआ था। वह छत्र, ध्वजा, घण्टा तथा पताकाओं एवं पताकातिपताकाओं से परिमंडित था। रोममय पिच्छिकाओं से प्रमाजित होता रहता था, वेदिकायें बनी हुई थीं। वहाँ की भूमि गोबर आदि से लिपी रहती थी। दीवारें खड़िया आदि से पुती थीं, सरस गोशीर्ष रक्तचन्दन के स्थान स्थान पर पाँच अंगुलियों और हथेलियों सहित हाथे लगे थे। वहाँ चंदन-चर्चित मंगलघट रखे थे। उसका प्रत्येक द्वार-भाग चन्दन कलशों और तोरणों से सुअलंकृत था।

आसत्तोसत्तविउलवट्टवग्घारिय-मल्लदामकलावे पंचवण्णसरस-सुरभिमुक्कपुप्फपुंजोवयारकलिए कालागुरुपवरकुन्दरुक्कतुरुक्कधूवमघमघंतगंधुद्धुयाभिरामे सुगंधवरगंध-गंधिए गंधवट्टिभूए णड-णट्टग-जल्ल-मल्ल-मुट्ठिय-वेलंबग-पवग-कहग-लासग-आइक्खग-लंख-मंख-तूणइल्ल-तुम्बवीणिय-भुयग-मागहपरिगए

छत से लेकर भूतल को छूती हुई बड़ी-बड़ी गोल और लंबी पुष्पमालायें वहाँ लटकती रहती थीं। पंचरंगे सरस पुष्पों के ढेर वहाँ चढ़ाये हुए थे। काल-अगर, उत्तम कुन्दरुक, लोबान तथा धूप की मघमघाती महक से वहाँ का वातावरण बड़ा मनोहर था। उत्कृष्ट सौरभमय था एवं सुगन्ध की प्रचुरता से गन्ध वर्तिका जैसा ज्ञात प्रतीत होता था। वह चैत्य नट, नर्तक, जल्ल, मल्ल, मौष्टिक, विडंबक, प्लवक, कथक, लासक, आख्यायक, लंख, मंख, तूणइल्ल, तुम्ब वीणक, भोजक, मागध आदि जनों से युक्त था,

बहुजणजाणवयस्स विस्सुयकित्तिए बहुजणस्स आहुस्स आहुणिज्जे पाहुणिज्जे अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे दिव्वे सच्चे सच्चोवाए सण्णिहियपाडिहेरे जाग-सहस्स-भागपडिच्छए बहुजणो अच्चेइ आगम्म पुण्णभद्दचेइयं पुण्णभद्दचेइयं।

अनेकानेक नगरवासियों और जनपदवासियों में उसकी कीर्ति फैली हुई थी, बहुत से लोग उसे आह्वान करने योग्य, आह्वणीय, अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, संमाननीय एवं कल्याणमय, मंगलमय, देवमय एवं चैत्यमय मानकर पर्युपासनीय मानते थे, वह दिव्य, सत्य, सत्योपाय-आराधकों की सेवा को—कामना को सफल करने वाला था। अतिशय अतीन्द्रिय प्रभाव युक्त था, हजारों प्रकार की पूजा उपासनायें वहाँ होती रहती थीं। बहुत से लोग आ-आकर उस पूर्णभद्र चैत्य की अर्चना करते थे।

वणसंडो—

३०८. से णं पुण्णभद्दे चेइए एक्केणं महया वणसंडेणं सव्वओ समंता परिक्खित्ते, से णं वणसंडे किण्हे किण्होभासे नीले नीलोभासे हरिए हरिओभासे सीए सीओभासे णिद्धे णिद्धोभासे तिव्वे तिव्वोभासे किण्हे किण्हच्छाए नीले नीलच्छाए हरिए हरियच्छाए सीए सीयच्छाए णिद्धे णिद्धच्छाए तिव्वे तिव्वच्छाए घणकडिय-कडिच्छाए रम्मे महामेहणिकुरंबभूए।

वन-खण्ड—

३०८. वह पूर्णभद्र चैत्य सब ओर—चारों ओर से एक विशाल वन-खण्ड से घिरा हुआ था, वह वन-खण्ड वृक्षों आदि की सघनता के कारण काला, काली आभावाला, नीला, नीली आभावाला, हरा, हरी आभावाला, शीतल और शीतल आभावाला, स्निग्ध, स्निग्ध आभावाला, तीव्र-सलौना, तीव्र आभावाला, कालेपन, कालीछाया, नीलेपन, नीलीछाया, हरेपन, हरीछाया, शीतलता शीतलछाया, स्निग्धता, स्निग्ध छाया, तीव्रता, तीव्र छाया से युक्त था, वृक्षों की शाखा—प्रशाखाओं के परस्पर गुंथ जाने के कारण बड़ी-बड़ी मेघ घटायें घिरी हुई हों जैसा रमणीय था।

से णं पायवा मूलमंतो कंदमंतो खंधमंतो तयामंतो सालमंतो पवालमंतो पत्तमंतो पुप्फमंतो फलमंतो बीयमंतो अणुपुव्वसुजाय-

उस वन-खण्ड के वृक्ष उत्तम मूल, कन्द, स्कन्ध, छाल, शाखा प्रवाल पत्र, पुष्प, फल तथा बीज से संपन्न थे, वे आनुपातिक

मूलवट्टभावपरिणया एक्कखंधा अणेगसाला अणेगसाहप्पसाह-विडिमा अणेगनरवामसुप्पसारियअगेज्झघणविउलवट्टखंधा

रूप में सुन्दर और गोलाकार रूप में विकसित थे, उनके एक-एक स्कन्ध और अनेक शाखायें थीं। उनके मध्य भाग अनेक शाखाओं, प्रशाखाओं के विस्तार से व्याप्त थे, उनके सघन, विस्तृत तथा सुघड़ स्कन्ध अनेक मनुष्यों द्वारा फैलाई हुई अनेक भुजाओं से भी ग्रहण नहीं किये जा सकने के योग्य थे, घेरे नहीं जा सकते थे।

[वाचनान्तरे अधिकानि पदानि-पाईणपडीणाययसाला उदीण-दाहिणविच्छिण्णा ओणयनयपणयविप्पहाइयओलंबपलंबलंबसाह-प्पसाहविडिमा अवाईणपत्ता अणुइण्णपत्ता] अच्छिद्दपत्ता अवाई-णपत्ता अवाईयपत्ता निद्धूयजरढपंडुपत्ता णवहरियभिसंतपत्तभारं-धयारगंभीरदरिसणिज्जा उवणिग्गयणवतरुणपत्तपल्लवकोमल-उज्जलचलंतकिसलयसुकुमालपवालसोहियवरंकुरग्गसिहरा

(वाचनान्तर से यह अधिक पद है—उनकी शाखायें पूर्व-पश्चिम में लम्बी और उत्तर दक्षिण में चौड़ी थीं, तथा वे सुवि-भक्त लम्बी-लम्बी शाखा-प्रशाखायें वायु से अनुपहत अधोमुखी पत्तों से व्याप्त नमित, विशेष रूप से नमित थीं।) उनके पत्ते छिद्र रहित, अविरल, एक दूसरे से सटे हुए, नीचे की ओर लट-कते हुए और उपद्रव रहित-नीरोग थे, उनके पुराने पीले पत्ते झड़ गये थे, नवीन, हरे चमकीले पत्तों की सघनता से वहाँ अंधेरा तथा गंभीरता दिखती थी। नवीन परिपुष्ट पत्तों और कोमल उज्ज्वल, हिलते हुए किसलयों, पत्तों, प्रवालों से उनके अग्रशिखर सुशोभित थे।

णिच्चं कुसुमिया णिच्चं माइया णिच्चं लवइया णिच्चं थव-इया णिच्चं गुलइया णिच्चं गोच्छिया णिच्चं जमलिया णिच्चं जुवलिया णिच्चं विणमिया णिच्चं पणमिया णिच्चं कुसुमिय-माइयलवइयथवइयगुलइयगोच्छियजमलियजुवलियविणमियपणमि-यसुविभत्तपिंडमंजरिवडिंसयधरा।

वे वृक्ष सदैव पुष्पों, मंजरियों, पत्तों, फूलों के गुच्छों, गुल्मों, पत्रगुच्छों से युक्त रहते थे, उनमें से कुछ वृक्ष ऐसे भी थे, जो सदैव समश्रेणी रूप से स्थित थे, कई ऐसे थे जो सदा युगल रूप में विद्यमान थे। कई ऐसे थे जो पुष्पों, फलों आदि के भार से नित्य नमित रहते थे। प्रणमित-विशेष रूप में नमित रहते थे। इस प्रकार वे वृक्ष अपने सुन्दर पुष्पों, मंजरियों, पत्तों, फूलों के झूमकों गुल्मों, पत्तों के गुच्छों, युगलों एवं पुष्पों आदि के भार से नमित, प्रणमित थे। अपने पुष्पगुच्छों मंजरियों आदि के रूप में शिरो-भूषण—कलंगियों को धारण किये रहते थे।

सुय-बरहिण-मयणसाल-कोइल कोभगक-भिंगारग-कोंडलग-जीवंजीवग-णंदीमुह-कविल-पिंगलक्खग-कारंड-चक्कवाय-कलहंस-सारस-अणेगसउणगणमिहुणविरइयसद्दुन्नइयमहुरसरणाइए सुरम्मे

तोता, मोर, मैना, कोयल, कोभगक, भिंगारक, कोण्डलक, चकोर, नन्दीमुख, तीतर, बटेर, बतख, चक्रवाक, कलहंस, सारस आदि अनेक पक्षियों द्वारा की जाती आवाज के उन्नत और मधुर स्वरालाप से वे वृक्ष गुंजित हो रहे थे, सुरम्य प्रतीत होते थे।

संपिंडियदरियभमरमहुयरिपहकरपरिलिंतमत्तछप्पयकुसुमासव-लोलमहुरगुमगुमंतगुंजंतदेसभाए अब्भिंतर पुप्फफले बाहिरपत्तो-च्छण्णे पत्तेहि य पुप्फेहि य ओच्छन्नपडिवलिच्छन्ने साउफले निरोयए अकंटए णाणाविहगुच्छ-गुम्म-मंडवग-रम्मसोहिए विचित्तसुहकेउभूए

वहाँ विद्यमान मदमाते भ्रमरों और भ्रमरियों के समूह एवं पुष्प पराग के लोभ से अन्यान्य स्थानों से आये हुए विविध जाति के भंवरे मस्ती में गुनगुना रहे थे, जिससे वह स्थान गुंजा-यमान हो रहा था। वे वृक्ष भीतर से पुष्पों और फलों से आपूर्ण थे और बाहर से पत्तों से ढके हुए थे। वे पत्तों और फूलों से सर्वदा लदे रहते थे। उनके फल सुस्वादु थे। निरोग थे तथा कंटकरहित थे, वे विविध प्रकार के फूलों के गुच्छों गुल्मों और मंडपों द्वारा रमणीय प्रतीत होते थे। शोभित होते थे। उन पर चित्र-विचित्र अनेक प्रकार की सुन्दर पताकायें फहरा रही थीं।

वावी-पुक्खरिणी-दीहियासु य सुनिवेसियरम्मजालहरए पिंडिम-

वहाँ उस वनखंड में वापिकाओं, में पुष्करणियों और दीर्घिकाओं में जाली झरोखेदार सुन्दर भवन बने हुए थे, दूर-दूर तक फैलने वाली

—णीहारिमं सुगंधिं सुहसुरभिमणहरं च महया गंधद्धणिं मुयंता णाणाविहगुच्छ-गुम्म-मंडवगघरगसुहसेउकेउबहुला अणेगरहजाण-जुग्गसिबियपविमोयणा सुरम्मा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

सुगन्ध के संचित परमाणुओं के कारण वे वृक्ष अपनी सुन्दर महक से मन को हर लेते थे। अत्यन्त तृप्तिदायक विपुल सुगन्ध छोड़ते थे, उस वन-खण्ड में अनेक प्रकार के अनेकानेक पुष्पगुच्छ, लता-कुञ्ज मंडप, विश्राम स्थान, सुन्दर मार्ग थे, झंडे लगे थे और वृक्षों के नीचे का भाग अनेक रथों, वाहनों, डोलियों तथा पाल-खियों के ठहरने के लिये उपयुक्त तथा विस्तीर्ण था। इस प्रकार से वह वन-खंड रमणीय, मनोरम, दर्शनीय अभिरूप तथा प्रतिरूप था।

असोगवरपायवे—

उत्तम अशोक वृक्ष—

३०६. तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए एत्थ णं महं एक्के असोगवरपायवे पण्णत्ते, [वाचनान्तरे अधिकः पाठः—दूरोवगय-कंदमूलवट्टलट्ठसंठियसिलिट्ठ-घणमसिणनिद्धसुजायनिरुवहयुव्विद्ध-पवरखंधी अणेगनरपवरभुयागेज्झे कुसुमभरसमोणमंतपत्तलविसाल-साले महुयरिभमरगणगुमगुमाइयनिलिंतउड्डिंतसस्सिरीए णाणा-सउणगणमिहुणसुमहुरकण्णसुहपलत्तसद्दमहुरे] कुस-विकुसविसुद्ध-रुक्खमूले मूलमंते कंदमंते-जाव-परिमोयणे सुरम्मे पासादीए दरि-सणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

३०६. उस वन खंड के ठीक मध्य भाग में एक विशाल और श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था (वाचानान्तर में यह अधिक पाठ है—उस का कद और मूल-जड़ें जमीन के भीतर गहरी गई हुई थीं। उसका स्कन्ध—तना गोल वर्तुलाकार सुन्दर आकार प्रकार का था। मनोहर, ठोस, स्निग्ध कांतियुक्त, सुविकसित, अक्षत एवं पुष्ट था। अनेक मनुष्यों द्वारा फैलाई गई भुजाओं द्वारा जो घेरा ग्रहण नहीं किया जा सकता था। पुष्पों और पत्तों के भार से कुछ नमी हुई उसकी शाखायें थीं, मकरन्द के लोभी भ्रमरगणों की गुनगुनाहट, संस्पर्श और उड़ने से जो सुशोभित था, अनेक जाति के पक्षियों की आवाज के मधुर कर्णप्रिय स्वरालाप से गुञ्जित था) उसकी जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से विशुद्ध थीं, वह वृक्ष उत्तम मूल कंद युक्त—यावत्—पालखियों आदि के ठहरने के लिए पर्याप्त स्थान वाला, रमणीय, मन को प्रसन्न करने वाला, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था।

से णं असोगवरपायवे अण्णेहिं बहूहिं तिलएहिं लउएहिं छत्तोवेहिं सिरीसेहिं सत्तवण्णेहिं दहिवण्णेहिं लोद्धेहिं धवेहिं चंद-णेहिं अज्जुणेहिं णीवेहिं कुडएहिं कलंबेहिं सव्वेहिं फणसेहिं दालि-मेहिं सालेहिं तालेहिं तमालेहिं पियएहिं पियंगूहिं पुरोवगेहिं राय-रुक्खेहिं णंदिरुक्खेहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ते ।

वह उत्तम अशोक वृक्ष अन्य अनेक तिलक, लकुच, छत्रोप, शिरीष, सप्तपर्ण, दधिपर्ण, लोध्र, धव, चंदन, अर्जुन, नीम, कुरज, कदम्ब, सव्य, पनस, दाडिम, शाल, ताल तमाल, प्रियक, प्रियंगु पुरोपक, राज वृक्ष और नन्दीवृक्ष आदि वृक्षों से सब ओर से घिरा हुआ था।

से णं तिलया लउया-जाव-णंदिरुक्खा कुसविकुसविसुद्धरुक्ख-मूला मूलमंतो कंदमंतो, एएसिं वण्णओ भाणियव्वो-जाव-सिविय-परिमोयणा सुरम्मा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

उन तिलक, लकुच—यावत्—नन्दी वृक्ष आदि वृक्षों की जड़ें डाभ तथा दूसरे प्रकार के तृणों से रहित थीं। ये सभी वृक्ष उत्तम कोटि के मूल कंद आदि वाले थे इत्यादि वर्णन करना चाहिये—यावत्—पालखियों आदि के ठहरने योग्य पर्याप्त स्थान वाले, रमणीय, मन को प्रसन्न करने वाले, दर्शनीय, मनोहर और अतीव मनोहर थे।

ते णं तिलया-जाव-णंदिरुक्खा अण्णेहिं बहूहिं पउमलयाहिं णागलयाहिं असोअलयाहिं चंपगलयाहिं चूयलयाहिं वणलयाहिं वासंतियलयाहिं अइमुत्तयलयाहिं कुंदलयाहिं सामलयाहिं सव्वओ समंता संपरिक्खित्ता ।

वे तिलक—यावत्—नन्दी वृक्ष आदि अन्य बहुत सी पद्म-लताओं, नागलताओं, अशोकलताओं, चंपकलताओं, सहकार लताओं, वनलताओं, वासंतीलताओं, अतिमुक्तकलताओं, कुन्द-लताओं, श्यामलताओं से सब ओर से घिरे हुए थे।

ताओ णं पउमलयाओ णिच्चं कुसुमियाओ-जाव-वडिंसय-

वे पद्मलतायें सदैव पुष्पों से व्याप्त—यावत्—मंजरियों के रूप में शिरोभूषण—कलगियों को धारण किये रहती थीं,

धराओ पासादीयाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

[पुस्तकान्तरगतोऽधिकः पाठः—तस्स णं असोगवरपायवस्स उवरिं बहवे अट्ठ अट्ठ मंगलगा पण्णत्ता ।

तं जहा—१. सोत्थिय-२. सिरिवच्छ-३. नंदियावत्त-४. वद्धमाणग-५. भद्दासण-६. कलस-७. मच्छ-८. दप्पणा; सव्वरयणामया अच्छा सण्हा मण्हा घट्ठा मट्ठा नीरया निम्मला निप्पंका निक्कंकडच्छाया सप्पहा समिरिया सउज्जोया पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा । तस्स णं असोगवरपायवस्स उवरिं बहवे किण्हचामरज्झया नीलचामरज्झया लोहियचामरज्झया सुक्किलचामरज्झया हालिद्दचामरज्झया अच्छा सण्हा रुप्पपट्टा वइरामयदंडा जलयामलगंधिया सुरम्मा पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा ।

तस्स णं असोगवरपायवस्स उवरिं बहवे छत्ताइच्छत्ता पडागाइपडागा घंटाजुयला चामरजुयला उप्पलहत्थगा पउमहत्थगा कुमुयहत्थगा कुसुमहत्थगा नलिणहत्थगा सुभगहत्थगा सोगंधियहत्थगा पुण्डरीयहत्थगा महापुण्डरीयहत्थगा सयवत्तहत्था सहस्सपत्तहत्था सव्वरयणामया अच्छा-जाव-पडिरूवा ।]

तथा मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप थी ।

(पुस्तकान्तरगत अधिक पाठ इस प्रकार है—उस उत्तम अशोक वृक्ष के ऊपरी भाग में आठ मंगल द्रव्य कहे गये हैं, यथा—१. स्वस्तिक २. श्रीवत्स ३. नन्दिकावर्त ४. वर्धमानक ५. भद्रासन ६. कलश ७. मत्स्ययुगल और ८. दर्पण, ये सभी रत्नों से निर्मित, स्वच्छ, चिकने, घर्षित, मृष्ट, नीरज, निर्मल, निष्पंक, दीप्त—प्रकाशमान, चमकीले, प्रभायुक्त, उद्योतयुक्त मनआह्लादक, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप थे । उस उत्तम अशोक वृक्ष के ऊपर बहुत सी स्वच्छ, निर्मल, रजतमय पट्ट से शोभित, वज्रनिर्मित डंडियों वाली, कमल के फूल जैसी सुरभि गन्ध से सुगन्धित, रमणीय, आह्लादकारी, दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप, कृष्ण रंग की चामर ध्वजायें, नील चामर ध्वजायें लोहित चामर ध्वजायें,, श्वेत चामर ध्वजायें, और पीत चामर ध्वजायें फहरा रही थीं ।

उस उत्तम अशोक वृक्ष के ऊपर—शिरोभाग में अनेक छत्रातिछत्र, पताकातिपताकायें, घण्टा युगल, चामर युगल, उत्पल, पद्म, कुमुद, कुसुम, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमलों के झूमके लटक रहे थे, जो सभी रत्नों के बने हुए, स्वच्छ—यावत्—प्रतिरूप थे ।)

पुढविसिलापट्टओ—

३१०. तस्स णं असोगवरपायवस्स हेट्ठा ईसिं खंधसमल्लीणे एत्थ णं महं एक्के पुढविसिलापट्टए पण्णत्ते, विक्खंभायामउस्सेहसुप्पमाणे किण्हे अंजणग-घण-कुवलय-हलहरकोसेज्जाऽऽगास-केस-कज्जलंगी-खंजण-सिंगभेद-रिट्ठय-जंबूफलअसणग-सणबंधणणीलुप्पलपत्तनिकर-अयसि-कुसुमप्पगासे मरगय-मसार-कलित्त-णयणकीयरासिवण्णे णिद्धघणे अट्ठसिरे आयंसयतलोवमे सुरम्मे ईहामिय-उसभ-तुरग-णर-मगर-विहग-वालग-किण्णर-रुरु-सरभ-चमर-कुञ्जर-वणलय-पउमलय-भत्तिचित्ते आईणग-रूय-बूर-णवणीय-तूल-फरिसे सीहासणसंठिए पासादीए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

पृथ्वी शिलापट्टक—

३१०. उस अशोक वृक्ष के स्कन्ध—तने के नीचे एक विशाल पृथ्वी शिलापट्टक था, उसकी लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई समुचित प्रमाण में थी । वह कृष्ण वर्ण का था । वह अंजन, मेघ, कुवलय (बादल) नीले कमल, बलराम के वस्त्र, आकाश, केश, काजल की डिबिया खंजन पक्षी, भैंस के सींग, रिष्ट रत्न, जामुन के फल, असनक (वनस्पति विशेष) सन के फूल का डंठल, नीलकमल के पत्तों की राशि, अलसी के फूल के समान प्रभा, कान्तिवाला था । मरकतमणि, मसारगल्लमणि, आँख की कनीनिका के पुंज जैसा उसका वर्ण था । वह अतीव स्निग्ध-चिकना था । उसके आठ कोने थे । वह दर्पण के तलभाग के सदृश समतल था, सुरम्य था । ईहामृग वृषभ, अश्व, मनुष्य, मगर, पक्षी, सांप, किन्नर, रुरुमृग, सरभ-अष्टापद, चमर, हाथी, वनलता, पद्मलता आदि के उस पर चित्र बने हुए थे । उसका स्पर्श मृगछाला, रूई, बूर, नवनीत और आक की रुई के समान कोमल था । उसका आकार सिंहासन जैसा था । इस प्रकार वह मनोरम दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप था ।

चंपाए कोणिए राया—

३११. तत्थ णं चंपाए णयरीए कोणिए णामं राया परिवसइ, महयाहिमवंतमहंतमलयमंदरमहिंदसारे अच्चंतविसुद्धदीह—

चम्पा में कौणिक राजा—

३११. उस चम्पा नगरी में कौणिक नामक राजा राज्य करता था, वह महाहिमवान पर्वत के समान महान् एवं मलय, मन्दर

रायकुलवंससुप्पसूए

णिरंतरं रायलक्खणविराइयंगमंगे बहुजणबहुमाणपूइए सव्वगुणसमिद्धे खत्तिए मुइए मुद्धाहिसित्ते माउपिउसुजाए दयपत्ते सीमंकरे सीमंधरे खेमंकरे खेमंधरे मणुस्सिंदे जणवयपिया जणवयपाले जणवयपुरोहिए सेउकरे केउकरे नरपवरे पुरिसवरे पुरिससीहे पुरिसवग्घे पुरिसासीविसे पुरिसपुण्डरीए पुरिसवरगंधहत्थी

अड्ढे दित्ते वित्ते विच्छिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइण्णे बहुधण-बहुजायरूव-रयए आओगपओगसंपउत्ते विच्छड्डियपउरभत्तपाणे बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलग-प्पभूए पडिपुण्ण-जंतकोसकोट्ठागाराउधागारे

बलवं दुब्बलपच्चामित्ते ओहयकंटयं निहयकंटयं मलियकंटयं उद्धियकंटयं अकंटयं ओहयसत्तुं निहयसत्तुं मलियसत्तुं उद्धियसत्तुं निज्जियसत्तुं पराइयसत्तुं ववगयदुब्भिक्खं मारिभयविप्पमुक्कं खेमं सिवं सुभिक्खं पसंतडिंब-डमरं रज्जं पसासेमाणे विहरइ ।

एवं महेन्द्र पर्वत के समान विशिष्ट था, अत्यन्त विशुद्ध, दीर्घकालीन-प्राचीन राजकुल वंश में उत्पन्न हुआ था।

उसके अंग पूर्णतः राज्योचित लक्षणों से सुशोभित थे, बहुत लोगों द्वारा सम्मानित और पूजित था, सर्वगुण-समृद्ध था, क्षत्रिय था, मुदित—सदैव प्रसन्न रहता था । मूर्द्धाभिषिक्त था—अन्यान्य राजाओं द्वारा उसका राज्याभिषेक किया गया था। उत्तम माता-पिता से उत्पन्न हुआ था, करुणाशील था, मर्यादाओं की स्थापना करने वाला था, नैतिक मर्यादाओं का पालन करने वाला था, क्षेमकर—सबके लिए सुख-कल्याणकारी था, क्षेमधर था, ऐश्वर्यशाली होने से मनुष्यों में इन्द्र के समान था। जनपद के लिये पितातुल्य, प्रतिपालक, हितकारक, कल्याणकारक, पथ-दर्शक था, नर प्रवर—मनुष्यों में श्रेष्ठ, पुरुषार्थ शील पुरुषों में श्रेष्ठ, पराक्रमशील होने से सिंह के समान पुरुषों में श्रेष्ठ, शूरवीर होने से पुरुषों में व्याघ्र सदृश, पुरुषों में आशीविष के समान, पुरुषों में उत्तम पुण्डरीक के समान, पुरुषों में गन्धहस्ती के समान।

समृद्ध, दीप्त, वृत्त—सुप्रसिद्ध बड़े-बड़े विशाल भवन, शैया, आसन, रथ वाहनों का स्वामी था। उसके पास विपुल संपत्ति, सोना-चाँदी थी। वह अर्थलाभ के उपायों का प्रयोक्ता था। उसके यहाँ भोजन कर लेने के बाद बहुत सी सामग्री बच जाती थी। अनेक दासी, दास, गाय, भैंस और भेड़ों का स्वामी था। उसका यंत्रागार कोष, कोष्ठागार—अन्नभण्डार तथा शस्त्रागार प्रतिपूर्ण-अति समृद्ध था।

वह बहुत बड़ी सेना का स्वामी था। उसने अपने सीमावर्ती या पड़ोसी राजाओं को शक्तिहीन बना दिया था। सगोत्र प्रतिस्पर्द्धियों को विनष्ट कर दिया था। उनका मान मर्दन कर दिया था। उनका धन छीन लिया था और देश से निर्वासित कर दिया था। इसी प्रकार से दूसरे शत्रु राजाओं को विनष्ट कर दिया था। उनका धन छीन लिया था, मान भंग कर दिया था और उनको देश से निर्वासित कर दिया था, पराजित कर दिया था, जीत लिया था। इस प्रकार वह दुर्भिक्ष तथा महामारी के भय से रहित, क्षेममय, कल्याणमय सुभिक्ष युक्त एवं शत्रुकृत विघ्न रहित होकर राज्य का शासन करता था।

कोणियस्स धारिणी देवी—

३१२. तस्स णं कोणियस्स रण्णो धारिणी णामं देवी होत्था, सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्णपंचिंदियसरीरा लक्खणवंजणगुणोववेया माणुम्माणप्पमाणपडिपुण्णसुजायसव्वंगसुंदरंगी ससिसोमाकारकंतपियदंसणा;—

कोणिक की रानी धारणीदेवी—

३१२. उस कोणिक राजा की रानी का नाम धारणी था। उसके हाथ-पैर सुकोमल थे। उसके शरीर की पाँचों इन्द्रियाँ अहीन-प्रतिपूर्ण, अर्थात् अखंडित और सम्पूर्ण थी। वह उत्तम लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त थी, मान, उन्मान और प्रमाण आदि की दृष्टि से वह परिपूर्ण और श्रेष्ठ और सर्वांग सुन्दरी थी, चन्द्र के समान सौम्य उसका आकार था तथा दर्शन कमनीय था।

सुक्खा करयलपरिमियपसत्थतिवलीवलियमज्झा

वह परम रूपवती थी। उसकी देह का मध्यभाग—कटि प्रदेश हथेली के विस्तार जितना था, मुट्ठी में ग्रहण कर लिया जाये जितना था और त्रिवली—तीन रेखाओं से युक्त थी।

कुण्डलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइयरयणियरविमलपडिपुण्णसोमवयणा सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललियसंलाव-णिउणजुत्तोवयारकुसला

उसका कपोल भाग कुण्डलों से उद्दीप्त था, मुख शारदीय पूर्णिमा के चन्द्र के समान निर्मल, परिपूर्ण तथा सौम्य था। उसकी सुन्दर वेशभूषा श्रृंगार रस की आवास स्थान जैसी थी। उसकी चाल-हास्य-बोली-कृति और चेष्टायें संगत; समुचित थीं। लालित्यपूर्ण आलाप-संलाप से वह चतुर थी। लोकव्यवहार में निपुण थी।

[प्रत्यन्तरपाठः—सुन्दरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-विलासकलिया] पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा, पडिरूवा, कोणिएणं रण्णा भंभसारपुत्तेण सद्धिं अणुरत्ता अविरत्ता इट्ठे सद्दफरिसरसरूवगंधे पंचविहे माणुस्सए कामभोए पच्चणुभवमाणी विहरइ।

(अन्य प्रतियों में इस प्रकार पाठ है—वह सुन्दर स्तन, जघन (जंघा) मुख, हाथ, पैर, नेत्र, लावण्य और विलास से युक्त थी) वह मनोरम, दर्शनीय, अभिरूप तथा प्रतिरूप थी तथा बिम्बसार पुत्र कौणिक राजा में अनुरक्त एवं समर्पित होकर इष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध मूलक पांच प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करती थी।

कोणियस्स निरंतरं भगवंतपवित्तिनिवेययपुरिसे—

३१३. तस्स णं कोणियस्स रण्णो एक्के पुरिसे विउलकयवित्तिए भगवओ पवित्तिवाउए भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेइ।

तस्स णं पुरिसस्स बहवे अण्णे पुरिसा दिण्णभतिभत्तवेयणा भगवओ पवित्तिवाउया भगवओ तद्देवसियं पवित्तिं णिवेदेंति।

कोणिक का निरन्तर भगवन्त प्रवृत्ति-निवेदक पुरुष—

३१३. उस कोणिक राजा के यहाँ पर्याप्त वेतन देकर भगवान महावीर की दैनिक विहार आदि चर्या—प्रवृत्ति को सूचित करने वाला एक पुरुष नियुक्त था जो प्रतिदिन भगवान के विहार क्रम आदि प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में राजा को निवेदन करता था।

उस पुरुष ने भी अन्य अनेक व्यक्तियों को भोजन और वेतन देकर नियुक्त कर रखा था। जो भगवान की प्रतिदिन की प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में उसे सूचित करते रहते थे।

कोणियस्स सुहविहरणं—

३१४. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोणिए राया भंभसारपुत्ते बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए अणेगगणणायग-दंडणायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-मंति-महामंति-गणग-दोवारिय-अमच्च-चेड-पीढमद्द-नगर-निगम-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूयसंधिवालसद्धिं संपरिवुडे विहरइ।

कौणिक का सुखपूर्वक विचरण—

३१४. उस काल और उस समय बिम्बसार पुत्र कौणिक राजा अनेक गणनायकों, दण्डनायकों, राजाओं, ईश्वरों, तलवरों, माडम्बिकों, कौटुम्बिकों, मन्त्रियों, महामन्त्रियों, गणकों, ज्योतिषियों, द्वारपालों, अमात्यों, सेवकों, पीठमर्दकों, नागरिकों, व्यापारियों, श्रेष्ठियों, सेनापतियों, सार्थवाहों, दूतों और सन्धिपालकों के साथ सम्परिवृत्त होकर बाह्य राजसभा में अवस्थित था।

भगवंतपवित्तिवाउयपुरिसेण कोणियसमक्खं महावीरस्स चंपाए आगमणनिवेयणं—

३१५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे-जाव[1]-धम्मज्झएणं पुरओ पकड्ढिज्जमाणेणं चउद्दसहिं समणसाहस्सीहिं छत्तीसाए अज्जियासाहस्सीहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं

भगवन्त प्रवृत्तिवादक पुरुष द्वारा कौणिक के समक्ष महावीर का चम्पानगरी में आगमन-निवेदन—

३१५. उस काल और उस समय में धर्म की आदि करने वाले, तीर्थकर—यावत्—धर्म ध्वज को आगे फहराते हुए श्रमण भगवान महावीर चौदह हजार श्रमणों और छत्तीस हजार श्रमणियों से संपरिवृत्त होकर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए चम्पानगरी

---

१ प्रथम स्कन्धान्तर्गत ८० पृष्ठे, ३१६ सूत्रे विस्तारेणावगन्तव्यः।

विहरमाणे चंपाए णयरीए बहिया उवणगरग्गामं उवागए चंपं णगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समोसरिउकामे ।

के पूर्णभद्र चैत्य में पधारने के लिये उन्मुख होकर चम्पा नगरी के बाहर उपनगर में पहुँचे ।

तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठ-तुट्ठचित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्प-माणहियए ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगलपायच्छित्ते सुद्धप्पा-वेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवरपरिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकिय-सरीरे सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, सयाओ गिहाओ पडि-णिक्खमित्ता चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव कोणियस्स रण्णो गिहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव कोणिए राया भिंभ-सारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, तेणेव उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धा-वेत्ता एवं वयासी—

तदनन्तर जब उस प्रवृत्ति निवेदक को यह संवाद ज्ञात हुआ तो वह हर्षित हुआ, संतुष्ट हुआ, मन में आनन्द और प्रसन्नता का अनुभव किया, सौम्य मनोभावों एवं हर्षातिरेक से उसका हृदय विकसित हो गया और फिर उसने स्नान, बलिकर्म, कौतुक मंगल, प्रायश्चित्त आदि करके राज सभा में प्रवेश करने योग्य शुद्ध मांगलिक वस्त्रों को पहनकर तथा बहुमूल्य अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अपने घर से प्रस्थान किया। प्रस्थान करके चम्पा नगरी के मध्यभाग में से होता हुआ जहाँ कोणिक राजा का प्रासाद था। उसमें जहाँ बहिर्वर्ती राज सभा-भवन था और उसमें जहाँ बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा अवस्थित था। वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़कर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दघोष से बधाई दी और बधाई देकर इस प्रकार निवेदन किया—

"जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं कंखंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पीहंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं पत्थंति, जस्स णं देवाणुप्पिया दंसणं अभिलसंति जस्स णं देवाणुप्पिया णामगोयस्स वि सवणयाए हट्ठ-तुट्ठ-जाव-हियया भवंति, से णं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे चंपाए णयरीए उवणगरग्गामं उवागए चंपं णगरिं पुण्णभद्दं चेइयं समो-सरिउकामे। तं एवं देवाणुप्पियाणं पियट्ठयाए पियं णिवेदेमि, पियं ते भवउ।

'देवानुप्रिय ! जिनके दर्शन की आप कांक्षा करते हैं, जिनके दर्शन की आप स्पृहा—इच्छा करते हैं, जिनके दर्शन की आप प्रार्थना करते हैं, जिनके दर्शन की आप अभिलाषा करते हैं, जिनके नाम और गोत्र को सुनने मात्र से आप देवानुप्रिय हर्षित एवं परितुष्ट होते हैं—यावत्—हर्षातिरेक से विकसित हृदय युक्त होते हैं, वे श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से गमन करते हुए, एक गाँव से दूसरे गाँव होते हुए चम्पा नगरी के समीप-वर्ती उपनगर में पधार गये हैं, अब चम्पा नगरी के पूर्णभद्र चैत्य में पधारेंगे। हे देवानुप्रिय ! मैं आपकी प्रसन्नता के लिये यह प्रिय सम्वाद आपको निवेदित कर रहा हूँ, यह आपके लिये प्रियकर हो।"

भगवंतं पइ कोणियस्स नमोक्काराइ—

३१६. तए णं से कूणिए राया भिंभसारपुत्ते तस्स पवित्तिवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए धाराहय-नीवसुरहिकुसुमं व चंचुमालइयऊसवियरोमकूवे वियसियवरकमल-णयण-वयणे पयलियवरकडगतुडिय-केऊर-मउड-कुण्डल-हार-विरा-यंतरइयवच्छे पालंबपलंबमाणघोलंतभूसणधरे ससंभमं तुरियं चवलं नरिंदे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता वेरुलियवरिट्ठरिट्ठअंजणनिउणोवियमिसिमिसिंत-मणिरयणमंडियाओ पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइं तंजहा—१ खग्गं २ छत्तं ३ उप्फेसं ४ वाहणाओ

भगवान् के प्रति कोणिक का नमस्कारादि—

३१६. उस वार्ता निवेदक से बिम्बसारपुत्र कोणिक राजा यह संवाद सुनकर, उसे हृदयंगम कर हर्षित और संतुष्ट हुआ—यावत्—विकसित हृदय हो गया, मेघ धारा के संस्पर्श से विकसित कदम्ब पुष्प की तरह उसका रोम-रोम ऊर्ध्वमुखी होकर खिल उठा, उत्तम कमल के समान उसका मुख तथा नेत्र विकसित हो गये। हर्षातिरेक से हाथों के उत्तम कड़े, त्रुटित, केयूर—भुजबन्द, मुकुट, कुण्डल तथा वक्षःस्थल पर शोभित हार सहसा कम्पित हो उठे—हिल उठे, गले में लटकती लम्बी-लम्बी मालायें और आभूषण झूलने लगे। आदरपूर्वक राजा शीघ्रता से सिंहा-सन से उठा, उठकर पादपीठ पर पैर रखकर नीचे उतरा, उतर-कर उत्तम वैडूर्यमणि रिष्ट, अञ्जनरत्न आदि से उपचित और चमचमाते मणिरत्नों से मंडित पादुकायें उतारी, उतारकर १. खड्ग, २. छत्र, ३. मुकुट, ४. वाहन और ५. चंवर। इन पाँच

वालवीयणं, एगसाडियं उत्तरासंगं करेइ, करेत्ता आयंते चोक्खे परमसुइभूए अंजलिमउलियहत्थे तित्थगराभिमुहे सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छित्ता वामं जाणुं अंचेइ, वामं जाणुं अंचेत्ता दाहिणं जाणुं धरणितलंसि साहट्टु तिक्खुत्तो मुद्धाणं धरणितलंसि निवेसेइ, निवेसित्ता ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता कडग-तुडियथंभियाओ भुयाओ पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता करयल-जाव-कट्टु एवं वयासी—

राजचिन्हों को अलग किया। एक शाटिक उत्तरासंग किया। उत्तरासंग करके आचमन किया। स्वच्छ तथा परम शुचिभूत हुआ, फिर मुकलित कमल के समान हाथों को जोड़ा और तीर्थंकर विराजित दिशा में सात-आठ कदम सामने गया, सात-आठ पग जाकर बायें घुटने को संकुचित किया, दाहिने घुटने को भूमि पर टिकाया, फिर तीन बार अपना मस्तक भूमि से लगाया, भूमि से लगाकर फिर वह कुछ ऊपर उठा, ऊपर उठकर कंकण और त्रुटित से सुस्थिर भुजाओं को ऊपर की ओर किया, हाथ जोड़े और अंजलि करके इस प्रकार बोला—

"णमोऽत्थु णं अरहंताणं भगवंताणं आइगराणं तित्थगराणं सयंसंबुद्धाणं पुरिसुत्तमाणं पुरिससीहाणं पुरिसवरपुण्डरीयाणं पुरिसवरगंधहत्थीणं लोगुत्तमाणं लोगनाहाणं लोगहियाणं लोगपईवाणं लोगपज्जोयगराणं अभयदयाणं चक्खुदयाणं मग्गदयाणं सरणदयाणं जीवदयाणं बोहिदयाणं धम्मदयाणं धम्मदेसयाणं धम्मनायगाणं धम्मसारहीणं धम्मवरचाउरंतचक्कवट्टीणं दीवो ताणं सरण गई पइट्ठा अप्पडिहयवरनाण-दंसणधराणं वियट्टछउमाणं जिणाणं जावयाणं तिण्णाणं तारयाणं बुद्धाणं बोहयाणं मुत्ताणं मोयगाणं सव्वण्णूणं सव्वदरिसीणं—

'नमस्कार हो उन अरिहन्त भगवन्तों को, जो धर्म की आदि करने वाले, तीर्थ की स्थापना करने वाले, स्वयं सम्बुद्ध, पुरुषों में उत्तम, पुरुषों में सिंह के समान, पुरुषों में श्रेष्ठ कमल के समान, पुरुषों में गन्धहस्ती के समान, लोकोत्तम, लोक के नाथ, लोक का हित करने वाले, लोक में प्रदीप के समान, लोक में उद्योत करने वाले, अभयदाता, ज्ञानरूप नेत्र के दाता, धर्म (चारित्र) मार्ग के दाता, शरणदाता, जीवों पर दया रखने का उपदेश देने वाले, बोधिदाता, धर्म के दाता, धर्म के उपदेशक, धर्म के नायक, धर्म के सारथी, चतुर्गति रूप संसार का अन्त करने वाले, धर्म के चक्रवर्ती, दीपक के समान समस्त वस्तुओं के प्रकाशक अथवा संसार सागर में भटकते जीवों के लिए द्वीप के समान, आश्रयस्थान, शरण, गति और आश्रयभूत, निरावरण उत्तम ज्ञान-दर्शन के धारक, अज्ञान आदि आवरण रूप छद्म से रहित, जिन, ज्ञायक अथवा ज्ञापक—रागादि को जीतने का उपाय बताने वाले, तीर्ण-संसार सागर को पार कर जाने वाले तारक—संसार सागर से पार उतरने का उपाय बताने वाले, बुद्ध और दूसरों को बोध देने वाले, मुक्त—मोह ग्रन्थ से छूटे हुए, मोचक—दूसरों को छुड़ाने वाले, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी,

—सिवमयलमरुयमणंतमक्खयमव्वाबाहमपुणरावत्तगं सिद्धिगइणामधेज्जं ठाणं संपत्ताणं, णमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स आदिगरस्स तित्थगरस्स-जाव-संपाविउकामस्स मम धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स, वंदामि णं भगवंतं तत्थ गयं इहगए, पासउ मे भगवं तत्थगए इहगयं" ति कट्टु वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता सीहासणवरगए पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अट्ठुत्तरं सयसहस्सं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ, सम्माणेइ सक्कारित्ता सम्माणित्ता एवं वयासी—"जया णं देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे इहमागच्छेज्जा,

शिव—कल्याणमय, अचल, स्थिर, अरुज—निरुपद्रव, अन्तरहित, क्षयरहित, बाधारहित, अपुनरावर्तन (पुनर्जन्मरहित) ऐसे सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त आत्माओं को नमस्कार हो, धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर-यावत्-सिद्धगति नामक स्थान को प्राप्त करने की ओर अग्रसर मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर को नमस्कार हो, तत्रस्थ भगवान को अत्रस्थ मैं वन्दन करता हूँ, वहाँ विराजमान वे भगवान यहाँ स्थित मुझे देखें' इस प्रकार कहकर वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके पूर्व की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर बैठा और बैठकर उस प्रवृत्तिव्यापृत-वार्ता निवेदक को एक लाख आठ हजार स्वर्ण मुद्रायें प्रीतिदान—पारितोषिक के रूप में दी। फिर सत्कार-सम्मान किया, और सत्कार-सम्मान करके उससे कहा—हे देवानुप्रिय ! जब श्रमण भगवान महावीर यहाँ पधारें, यहाँ समवसृत

इह समोसरिज्जा, इहेव चंपाए णयरीए बहिया पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरेज्जा तया णं तुमं मम एयमट्ठं निवेदिज्जासि" त्ति कट्टु विसज्जिए।

हों और यहीं चम्पा नगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में यथा प्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके अर्हत्, जिन, केवली श्रमणगण से परिवृत हो, संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराजित हों तब मुझे यह समाचार निवेदित करना", इस प्रकार कहकर उस वार्ता निवेदक को विदा किया।

चंपाए भगवओ महावीरस्स समोसरणं—

३१७. तए णं समणे भगवं महावीरे कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए फुल्लुप्पलकमलकोमलुम्मिलियंमि अहपंडुरे पहाए रत्तासोगप्पगास-किंसुयसुयमुह-गुञ्जद्धरागसरिसे कमलागरसंडबोहए उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते आगासगएणं चक्केणं-जाव-सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा णयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव वणसंडे, जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव पुढविसिला-पट्टए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टगंसि पुरत्थाभिमुहे पलियंकनिसण्णे अरहा जिणे केवली समणगणपरिवुडे संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।[1]

चम्पा में भगवान महावीर का समवसरण—

३१७. तत्पश्चात् अगले दिन रात्रि बीत जाने पर प्रभात हो जाने पर, उत्पल आदि कमलों के खिल जाने पर, उज्ज्वल प्रभायुक्त एवं लाल अशोक किंशुक, (पलाश) तोते की चोंच घुंघची के आधे भाग के सदृश लालिमा लिये हुए, कमल वन को विकसित करने वाले, सहस्र किरण युक्त दिन के प्रादुर्भावि सूर्य के उदय होने पर, आकाश में जाज्वल्यमान तेज के चक्र के सदृश होने पर—यावत्—सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ चम्पानगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, जहाँ वनखंड था, जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था और उसके नीचे स्थित पृथ्वी शिलापट्टक था वहाँ श्रमण भगवान महावीर आये और आकर यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे स्थित पृथ्वी शिलापट्टक पर पूर्व की ओर मुख करके पद्मासन से बैठकर अर्हत् जिन, केवली और श्रमणगण से परिवृत हो संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विराज गये।

चंपानयरीनिवासिजणाणं समवसरणगमणं पज्जुवासणा य—

३१८. तए णं चंपाए णयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया जणसद्दे इ वा [क्वचित्-बहुजणसद्दे इ वा जणवाए इ वा जणुल्लावे इ वा] जणवूहे इ वा जणबोले इ वा जणकलकले इ वा जणुम्मीइ वा जणुक्कलिया इ वा जण-सण्णिवाए इ वा बहुजणो अण्णमण्णस्स एवं माइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—

चम्पानगरी निवासी जनों का समवसरण-गमन और पर्युपासना—

३१८. उस समय चंपानगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखी, राजमार्गों और गलियों में बहुत से मनुष्यों की आवाजें आ रही थीं (बहुत से लोग शब्द कर रहे थे, आपस में बात कर रहे थे, धीमे स्वर में बात कर रहे थे) लोग एकत्रित हो रहे थे, वे बोल रहे थे, उनकी बातचीत की कल-कल ध्वनि सुनाई देती थी। लोगों की एक लहर सी उमड़ रही थी, छोटी-छोटी टोलियों में लोग फिर रहे थे, लोगों का जमघट हो रहा था और बहुत से लोग आपस में चर्चा कर रहे थे, अभिभाषण कर रहे थे, बता रहे थे और प्ररूपित कर रहे थे।

एवं खलु देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थ-गरे सयंसंबुद्धे पुरिसुत्तमे-जाव-संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे इहमागए, इह संपत्ते, इह समोसढे, इहेव चंपाए णयरीए बहिं पुण्णभद्दे चेइए अहापडिरूवं उग्गहं उगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

देवानुप्रियो! धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर स्वयंसंबुद्ध पुरुषोत्तम—यावत्—सिद्धगतिरूप स्थान की प्राप्ति करने हेतु समुद्यत श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए ग्राम-ग्राम में विचरण करते हुए यहाँ आये हैं, यहाँ सम्प्राप्त हुए हैं और यहाँ समवसृत हुए हैं तथा यहीं चम्पानगरी के बाहर पूर्णभद्र चैत्य में यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते हैं।

---

१ एतदनन्तरमनो विस्तृतो ग्रन्थसन्दर्भ औपपातिक सूत्र, १—१३ सूत्रांकादवगन्तव्यः।

तं महप्फलं खलु भो देवाणुप्पिया ! तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं णाम-गोयस्स वि सवणयाए, किमंग पुण अभिगमण-वंदण-णमंसण-पडिपुच्छण-पज्जुवासणयाए ? एगस्स वि आरियस्स धम्मियस्स सुवयणस्स सवणयाए, किमंग पुण विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए ? तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासामो, एयं णे पेच्चभवे इहभवे य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियसाए भविस्सइ"

हे देवानुप्रियो ! ऐसे अरिहन्त भगवन्तों के नाम गोत्र का सुनना ही जब बहुत बड़ी बात है तो फिर अभिगमन-सन्मुख जाने वन्दन-नमस्कार करने, जिज्ञासा का समाधान करने और उनकी पर्युपासना करने का तो कहना ही क्या है ? आर्यपुरुषों के एक सद्धर्ममय सुवचन श्रवण की बहुत बड़ी बात है तो फिर विपुल-विस्तार से अर्थ को ग्रहण करने की तो बात ही क्या ? अतएव हे देवानुप्रिय ! हम चलें और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार करें, उनका सत्कार-सम्मान करें। वे भगवान कल्याण मंगल देव एवं चैत्यस्वरूप हैं अतः विनयपूर्वक उनकी पर्युपासना करें। यह सब इस भव और परभव में हमारे लिये हितप्रद, सुखप्रद, शान्तिप्रद, निःश्रेयसप्रद सिद्ध होगा।'

त्ति कट्टु बहवे उग्गा उग्गपुत्ता भोगा भोगपुत्ता एवं दुपडोयारेणं राइण्णा [क्वचित् इक्खागा नाया कोरव्वा] खत्तिया माहणा भडा जोहा पसत्थारो मल्लई लेच्छई लेच्छईपुत्ता अन्ने य बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितयो, अप्पेगइया वंदणवत्तियं, अप्पेगइया पूयणवत्तियं, एवं सक्कारवत्तियं सम्माणवत्तियं दंसणवत्तियं कोऊहलवत्तियं, अप्पेगइया अट्ठविणिच्छयहेउं-अस्सुयाइं सुणेस्सामो, सुयाइं निस्संकियाइं करिस्सामो; अप्पेगइया अट्ठाइं हेऊइं कारणाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामो, अप्पेगइया सव्वओ समंता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सामो, पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं—दुवालसविहं गिहिधम्मं पडिवज्जिस्सामो, अप्पेगइया जिणभत्तिरागेणं, अप्पेगइया जीयमेयंति कट्टु

इस प्रकार से चर्चा करते हुए बहुत से उग्रवंशीय, उग्रपुत्र, भोगवंशीय, भोगपुत्र, इसीप्रकार द्विपदावतार—(दो स्थानों में जिसका समावेश हो सके वह) राजन्य (कहीं पर इक्ष्वाकु, ज्ञात, कौरव) क्षत्रिय, ब्राह्मण, सुभट, योद्धा, राजकर्मचारी, मल्लकी, लिच्छवी—लिच्छवीपुत्र तथा और दूसरे भी अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति कितने ही वन्दना करने की भावना से, कितने ही पूजा करने के विचार से, उसीप्रकार सत्कार, सम्मान, दर्शन कौतुहल की दृष्टि से, कितने ही तत्त्व निर्णय करने के भाव से, अश्रुत को सुनने के विचार से, पूर्व में सुने हुए में उत्पन्न शंकाओं का निराकरण करके निःशंक होने की वृत्ति से, कितने ही हेतु, अर्थ, तर्क तथा विश्लेषणपूर्वक तत्त्व जिज्ञासा करने के विचार से, कितने ही यह विचार कर कि सभी सांसारिक सम्बन्धों का त्याग कर मुण्डित होकर अगारधर्म से अनगारधर्म में प्रव्रजित होंगे, कितने ही पंच अणुव्रत सात शिक्षाव्रतरूप बारह प्रकार के श्रावक धर्म को अंगीकार करने के आशय से, कितने ही जिनभक्ति के अनुराग से, कितने ही अपना वंश परम्परागत व्यवहार है यह सोचकर भगवान के समीप जाने के लिए उद्यत हुए।

ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउयमंगलपायच्छित्ता [क्वचित् उच्छोलणपधोया] सिरसा कंठे मालकडा आविद्धमणिसुवण्णा कप्पियहार---अद्धहार-तिसर---पालंबमाणकडिसुत्तसुकयसोहाभरणा पवर वत्थपरिहिया [वाचनान्तरे—जाणगया जुग्गगया गिल्लिगया थिल्लिगया पवहणगया] चंदणोलित्तगायसरीरा, अप्पेगइया हयगया, एवं गयगया, रहगया, सिबियागया संदमाणियागया अप्पेगइया पायविहारचारेणं पुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता [क्वचित्—वग्गा-

सर्वप्रथम उन्होंने स्नान किया। बलिकर्म किया। कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किया (कहीं पर यह पाठ है—प्रक्षालन आदि किया) मस्तक पर और गले में मालायें धारण कीं, रत्नजटित स्वर्णभूषण, हार, अर्धहार, तिलड़ी, लम्बे हार, लटकते कटिसूत्र आदि अलंकारों से अपने को अलंकृत किया। उत्तम मांगलिक वस्त्र पहने (वाचनान्तर में यान में बैठकर, युग्म में बैठकर, डोली में बैठकर, बग्घी में बैठकर, गाड़ी में बैठकर) और फिर अंग-प्रत्यंग में चन्दन का लेप कर, कई घोड़ों पर, हाथियों पर शिविका पर, स्यन्दमानिका पर सवार हुए, और कई पैदल ही अनेक व्यक्तियों के समूह को साथ लेकर (कहीं पर यह पाठ है—

बोंग गुम्मागुम्मि] महया उक्किट्ठसीहणायबोलकलकलरवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणा [क्वचित्—पायदद्दरेण भूमिं कंपेमाणा, अंबरतलं पिव फोडेमाणा एगदिसिं एगाभिमुहा] चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता जाणवाहणाइं ठावयंति, [क्वचित्—विट्ठंभंति], ठावइत्ता जाण-वाहणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता [वाचनान्तरे—जाणाइं मुयंति, वाहणाइं विसज्जेंति, पुप्फ-तंबोलाइयं आउहमाइयं सचित्तालंकारं पाहणाओ य विसज्जेंति, एगसाडियं उत्तरासंगं करेंति, आयंता चोक्खा परमसुइभूया अभिगमेणं अभिगच्छंति, चक्खु फासे एगत्तीभावकरणेणं]

अपने अपने समूह के साथ अपनी अपनी टोली बनाकर) उत्कृष्ट, हर्षोन्नत सुन्दर मधुर घोषों द्वारा नगरी को गुंजाते हुए, गरजते विशाल समुद्र सदृश बनाते हुए (क्वचित यह पाठ है—पदप्रहार से भूमि को कंपित करते हुए, आकाशतल को विदारित करते हुए वे एक ही दिशा में एक ओर मुख करके) चंपानगरी के बीचों-बीच से निकले, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था वहाँ आये। आकर न अधिक दूर और न अधिक निकट से श्रमण भगवान महावीर के तीर्थंकरत्व के उद्योतक छत्रादि अतिशय देखे, देखकर यान-वाहनादि ठहराये (कहीं पर यह पाठ है—रोककर खड़े किये) ठहराकर यान-वाहनादि से नीचे उतरे, उतरकर (वाचनान्तर में यह पाठ है—यानों को छोड़ा, वाहनों को वापस लौटाया, पुष्प ताम्बूल (पान) आदि सचित्त पदार्थों शस्त्रों और पादुकाओं का त्याग किया—उतारा एकशाटिक उत्तरासंग किया, आचमन कर अत्यन्त स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर अभिगमपूर्वक नेत्रों को केन्द्रित कर अभिमुख चले)—

जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करित्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासंति। [वाचनान्तरे—तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासंति, काइयाए सुसमाहियपसंतसाहरियपाणिपाया अंजलि-मउलियहत्था,

जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट स्थित हो वाणी श्रवण करने की उत्कंठा से नमस्कार करते हुए भगवान के सन्मुख विनयपूर्वक अंजलि करके पर्युपासना करने लगे। (वाचनान्तर में यह पाठ है—त्रिविध पर्युपासना से पर्युपासना करने लगे, कायिक पर्युपासना के रूप में समाधिस्थ होकर, निश्चल, हाथ पैरों को संकुचित किये हुए मुकलित हाथों में अंजलि करके स्थित हुए।

वाइयाए एवमेयं भंते, अवितहमेयं असंदिद्धमेयं, इच्छियमेयं, पडिच्छियमेयं इच्छियपडिच्छियमेयं, सच्चे णं एस अट्ठे। माणसियाए—तच्चित्ता तम्मणा तल्लेसा तदज्झवसिया तत्तिव्वज्झवसाणा तदप्पियकरणा तदट्ठोवउत्ता तब्भावणाभाविया एगमणा अविमणा अणण्णमणा जिणवयणधम्माणुरागरत्तमणा वियसियवरकमलनयण-वयणा पज्जुवासंति। समोसरणाइं गवेसह आगंतारेसु वा आरामागारेसु वा आएसणेसु वा आवसहेसु वा पणियगेहेसु वा पणियसालासु वा जाणगिहेसु वा जाणसालासु वा कोट्ठागारेसु वा सुसाणेसु वा सुण्णागारेसु वा परिहिंडमाणा परिघोलेमाणा।]

वाचिक पर्युपासना के रूप में 'हे भदन्त! आपने जो कहा यह ऐसा ही है। हे भन्ते! यही सत्य है, प्रभो! यही सन्देह रहित है, स्वामिन्! यही इच्छित है, भन्ते! यही प्रतीच्छित है। भगवन्! यही इच्छित-प्रतीच्छित है, यही अर्थ सत्य है', इस प्रकार अनुकूल वचन बोलते रहे। मानसिक पर्युपासना के रूप में चित्त को स्थिर करके, मन को केन्द्रित करके, लीन होकर, अध्यवसित होकर आत्म परिणामों को तदनुरूप परिणत करके, उसी ओर कानों को लगाकर तदनुरूप उपयोगयुक्त होकर, तद्रूप भावना में रमण कर, एकाग्रमन होकर, मन को अवछादित कर अनन्यमन हो, जिन वचन और धर्मानुराग से मन को अनुरंजित कर एवं उत्तम कमल के समान विकसित नयन और मुख वाले होकर पर्युपासना करने लगे। धर्मशालाओं में, उद्यानों में, शिल्पशालाओं में, मठों में, दुकानों में, हाट-बाजारों में, रथगृहों में, वाहनशालाओं में, कोठारों में, श्मशानों में, शून्यगारों में घूमते फिरते हुए भगवान के समवसरण स्थान-विराजने के स्थान की गवेषणा करने लगे।)

भगवंतपवित्तिवाउयपुरिसेण कोणियस्स पुरओ भगवओ आगमणस्स निवेयणं—

३१९. तए णं से पवित्तिवाउए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए ण्हाए-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमित्ता चंपाणयरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव बाहिरिया, तं चेव हेट्ठिल्ला वत्तव्वया-जाव-णिसीयइ, णिसीइत्ता तस्स पवित्तिवाउयस्स अद्धतेरस सयसहस्साइं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

भगवन्त प्रवृत्तिव्यापृत पुरुष द्वारा कोणिक के समक्ष भगवदागमन का निवेदन—

३१९. तत्पश्चात् वह प्रवृत्ति निवेदक यह बात जानकर हर्षित संतुष्ट हुआ—यावत्—विकसितहृदय हो स्नान किया—यावत्—मूल्यवान अल्पआभूषणों से शरीर को अलंकृत कर अपने घर से प्रस्थान किया। अपने घर से प्रस्थान कर चम्पानगरी के मध्यभाग में से निकलकर जहाँ बाह्य उपस्थानशाला थी वहाँ आया इत्यादि पहले जैसा वर्णन किया गया है। वह सब यहाँ कथन करना चाहिए—यावत्—सिंहासन पर बैठा, बैठकर वार्ता निवेदक को साढ़े बारह लाख स्वर्ण मुद्रायें प्रीतिदान के रूप में दीं, मुद्रायें देकर उसका सत्कार सम्मान किया और फिर सम्मान सत्कार पूर्वक उसे विदा किया।

कोणियस्स महावीरदंसणट्ठं संकप्पो सव्विड्ढिए समवसरणे गमणं पत्थाणं च—

३२०. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि, हय-गय-रहपवरजोहकलियं च चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि, सुभद्दापमुहाण य देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि, चंपं च णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं [क्वचित्—आसियसम्मज्जिओवलित्तं सिंघाडगतियचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहपहेसु] आसित्त-सित्त-सुइसम्मट्ठरत्थंतरा-ऽऽवण-वीहियं मंचाइमंचकलियं णाणाविहरागउच्छियज्झयपडागाइपडागमंडियं लाउल्लोइयमहियं गोसीससरसरत्तचंदण-जाव-गंधवट्टिभूयं करेहि य कारवेहि य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि णिज्जाहिस्सामि समणं भगवं महावीरं अभिवंदिए।"

कोणिक का महावीर के दर्शनार्थ संकल्प और सर्वऋद्धि सहित समवसरण की ओर गमन—प्रस्थान—

३२०. तत्पश्चात् बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा ने बल व्याप्त-सेनाधिकारी को बुलाया और बुलाकर उससे कहा—'हे देवानुप्रिय! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सज्जित करो एवं अश्व-गज-रथ योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो, सुभद्रादि रानियों में से प्रत्येक के लिए यात्राभिमुख जोते हुए यानों, रथों को बाहरी उपस्थानशाला में उपस्थित करो, चम्पानगरी के बाहर और भीतर (कहीं पर यह पाठ है—शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और गलियों आदि को पानी से सिंचित करो, साफ करो, खड़िया आदि से लीपो पोतो। रथ्यान्तर—आपण और वीथियों की सफाई कराओ, उनमें पानी का छिड़काव कराओ, साफ-स्वच्छ बनाओ मंचातिमंचों की रचना कराओ, तरह-तरह की छोटी-बड़ी रंग बिरंगी, सिंह, चक्र आदि चिन्हों से युक्त पताकायें लगवाओ, दीवालों को लिपवाओ, उन पर गोलोचन तथा सरस रक्तचन्दन के हाथे लगवाओ—यावत्—गन्धवटिका जैसा करो और करवाओ। फिर ऐसा करके और करवाके मेरी इसी आज्ञा को प्रत्यर्पित करो—कार्य होने की सूचना दो। मैं श्रमण भगवान महावीर के अभिवन्दन हेतु जाऊँगा।'

तए णं से बलवाउए कूणिएणं रण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि'त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता एवं हत्थिवाउयं आमंतेइ आमंतेत्ता एवं वयासि—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेहि हय-गय-रह-पवरजोहकलियं

तदनन्तर कोणिक राजा द्वारा यों कहे जाने पर उस सेनानायक ने हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय हो दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'स्वामिन्! इसी प्रकार होगा।" यों कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को सुना, सुनकर हस्तिव्यापृत महावत को बुलाया, और उसे बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! शीघ्र ही बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाओ, सजाकर अश्व, हस्ती,

चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेहि सण्णाहेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि''।

रथ योद्धाओं से गठित चतुरंगिणी सेना को तैयार करो और तैयार करके मुझे इस कार्य के होने की सूचना दो।

तए णं से हत्थिवाउए बलवाउयस्स एयमट्ठं सोच्चा आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ पडिसुणेत्ता छेयायरियउवएस-मइकप्पणाविकप्पेहिं सुणिउणेहिं उज्जलणेवत्थहव्वपरिवत्थियं सुसज्जं धम्मियसण्णद्धबद्धकवइयउप्पीलियकच्छवच्छगेवेयबद्धगलवरभूसणविरायंतं अहियतेयजुत्तं सललियवरकण्णपूरविराइयं पलंबओचूलमहुयरकयंधयारं चित्तपरिच्छेयपच्छयं पहरणावरणभरियजुद्धसज्जं सच्छत्तं सज्झयं सघंटं सपडागं पंचामेलयपरिमंडियाभिरामं ओसारियजमलजुयलघंटं, विज्जुपिणद्धं व कालमेहं, उप्पाइयपव्वयं व चंकमंतं, मत्तं गुलगुलंतं मणपवणजइणवेगं भीमं संगामियाओज्झं आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेइ, पडिकप्पेत्ता हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेइ, सण्णाहित्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ।

तदनन्तर महावत ने सेनानायक के कथन को सुनकर विनयपूर्वक आज्ञावचन को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस महावत ने कलाचार्य से प्राप्त शिक्षण एवं अपनी बौद्धिक कल्पना से विकल्पित तथा निपुणता से उस उत्तम हाथी को उज्ज्वल भड़कीले वस्त्राभूषणों आदि के द्वारा सजा दिया, उस सुसज्ज हाथी का धार्मिक उत्सव के अनुरूप शृंगार किया, उसको कवच बांधा, बांधने की रस्सी से उसके वक्षस्थल को कसा, गले में हार आदि आभूषण पहनाये, जिससे वह बड़ा तेजोमय दीखने लगा। उसके कानों को कलापूर्ण कनफूलों से सुसज्जित किया, लटकती हुई लम्बी झूलों तथा मद की गन्ध से एकत्रित हुए भ्रमर समूह से वहाँ अन्धकार जैसा प्रतीत होता था। झूल पर बेलबूटे युक्त कढ़ी छोटी झूल जैसी झूल डाली, शस्त्र और कवचयुक्त यह हाथी युद्ध के लिए सज्जित जैसा प्रतीत होता था, छत्र, ध्वजा, घण्टा, पताका और मस्तक पर पाँच कलंगियों से विभूषित कर उसे सुन्दर बनाया, उसके दोनों पार्श्वों में दो घण्टियाँ लटकाईं। वह हाथी बिजली सहित काले मेघ जैसा दिखाई देता था, अपने डील-डौल से चलता-फिरता पर्वत जैसा दिखाई देता था। वह मदोन्मत्त था, अपनी गुलगुलाहट द्वारा मेघ के सदृश गरज रहा था। उसकी गति मन और वायु के वेग को भी पराभूत करने वाली थी, विशाल देह और प्रचंड शक्ति के कारण वह भीम जैसा दिखता था। उस संग्राम योग्य आभिषेक्य हस्तिरत्न को महावत ने सज्जित किया। सज्जित करके अश्व, हस्ती, रथ और योद्धाओं से परिगठित सेना को तैयार कराया और फिर जहाँ सेनानायक था, वह वहाँ आया, आकर आज्ञापालन किये जाने की सूचना दी।

तए णं से बलवाउए जाणसालियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—''खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सुभद्दापमुहाणं देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठवेहि, उवट्ठवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि।''

तत्पश्चात् सेनानायक ने यानशालिक—यानशाला के अधिकारी को बुलाया और बुलाकर उसे आज्ञा दी—'हे देवानुप्रिय! शीघ्र ही सुभद्रा आदि प्रत्येक रानी के लिये अलग-अलग यात्राभिमुख जुते हुए यान बाह्य उपस्थानशाला—सभाभवन के सामने उपस्थापित करो—लाओ और लाकर आज्ञापालन किये जा चुकने की मुझे सूचना दो।'

तए णं से जाणसालिए बलवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ तेणेव उवागच्छित्ता जाणाइं पच्चुवेक्खेइ, पच्चुवेक्खित्ता जाणाइं संपमज्जेइ, संपमज्जित्ता जाणाइं संवट्टेइ, संवट्टित्ता जाणाइं णीणेइ, णीणेत्ता जाणाणं दूसे पवीणेइ, पवीणइत्ता जाणाइं समलंकरेइ,

तब यानशालिक ने सेनानायक की आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ यानशाला थी वहाँ आया, वहाँ आकर यानों का निरीक्षण किया, निरीक्षण कर उनका प्रमार्जन किया। प्रमार्जन कर वहाँ से हटाया, हटाकर उन्हें बाहर निकाला; बाहर निकालकर उन पर लगे आच्छादक वस्त्रों—खोलियों को दूर किया, खोलियों को दूर करके यानों को अलंकृत किया—सजाया, सजाकर उन्हें आभूषणों से विभूषित किया

समलंकरित्ता जाणाइं वरमंडणमंडियाइं करेइ करेत्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाहणसालं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खेइ, पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जइ, संपमज्जित्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणेत्ता वाहणाइं, अप्फालेइ, अप्फालेत्ता दूसे पवीणेइ, पवीणइत्ता वाहणाइं समलंकरेइ, समलंकरित्ता वाहणाइं वरमंडणमंडियाइं करेइ, करेत्ता वाहणाइं जाणाइं जोएइ, जोएत्ता पओयलट्ठिं पओयधरए य समं आडहइ, आडहेत्ता वट्टमग्गं गाहेइ; गाहेत्ता जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बलवाउयस्स एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

और यानों को विभूषित कर लेने के पश्चात् जहाँ वाहनशाला (घोड़े, बैल रहने का स्थान) थी वहाँ आया, आकर वाहनशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर योग्य वाहनों का निरीक्षण किया, निरीक्षण कर उनको संप्रमार्जित किया, प्रमार्जित कर उन्हें वाहनशाला से बाहर लाया, बाहर लाकर उन्हें थपथपाया, और फिर उनपर लगी धूल को हटाया, धूल को हटाकर वाहनों को समलंकृत किया, समलंकृत करके उत्तम आभूषणों से विभूषित किया विभूषित कर वाहनों को यानों में जोड़ा—जोता, जोतकर प्रतोत्र यष्टिकाओं-चाबुकों और प्रतोत्रधरों—गाड़ी हाँकने वालों को प्रस्थापित किया और फिर गमनमार्ग पर यानों को लाया, वैसा करवाकर जहाँ सेनानायक था, वहाँ आया और आकर सेनानायक को आज्ञा पालन किये जा चुकने की सूचना दी ।

तए णं से बलवाउए णयरगुत्तियं आमंतेइ, आमंतेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! चंपं णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त-जाव-कारवेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि" ।

तत्पश्चात् सेनानायक ने नगरगुप्तिक—नगररक्षक को आमन्त्रित किया और आमन्त्रित कर उससे कहा—'देवानुप्रिय ! शीघ्र ही चम्पानगरी को भीतर और बाहर से साफ कराओ —यावत्—कराकर आज्ञा पालन होने की मुझे सूचना दो ।'

तए णं से णयरगुत्तिए बलवाउयस्स एयमट्ठं आणाए विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता चंपं णयरिं सब्भिंतरबाहिरियं आसित्त-जाव-कारवेत्ता य जेणेव बलवाउए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणइ ।

तब नगरपाल ने सेनानायक के इस आदेश को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके चम्पा नगरी को भीतर-बाहर से साफ स्वच्छ आदि करवाकर जहाँ सेनानायक था वहाँ आया, और आकर आज्ञा पालन किये जाने की सूचना दी ।

तए णं से बलवाउए कोणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पियं पासइ हयगय-जाव-सण्णाहियं पासइ, सुभद्दापमुहाणं देवीणं पडिजाणाइं उवट्ठवियाइं पासइ, चंपं णयरिं सब्भिंतर-जाव-गंधवट्टिभूयं कयं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए णंदिए पीइमणे-जाव-हियए जेणेव कूणिए राया भंभसारपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-जाव-एवं वयासी—

तत्पश्चात् उस सेनानायक ने बिम्बसारपुत्र कोणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजा हुआ देखा, अश्व, हस्ती आदि से परिगठित चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध देखा, सुभद्रा आदि रानियों के लिये तैयार किये हुए यान देखे । चम्पानगरी को भीतर-बाहर से प्रमार्जित, सिंचित—यावत्—गन्धवर्तिका सदृश किया हुआ देखा, देखकर हर्षित, संतुष्ट, चित्त में आनन्दित, प्रसन्न —यावत्—विकसित-हृदय हो जहाँ बिम्बसारपुत्र कोणिक राजा था वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—इस प्रकार निवेदन किया—

"कप्पिए णं देवाणुप्पियाणं आभिसेक्के हत्थिरयणे, हयगय-जाव-पवरजोहकलिया चाउरंगिणी सेणा सण्णाहिया, सुभद्दापमुहाणं च देवीणं बाहिरियाए उवट्ठाणसालाए पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं उवट्ठावियाइं चंपाणयरी सब्भिंतरबाहिरिया आसित्त-जाव-गंधवट्टिभूया कया, तं णिज्जंतु णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं अभिवंदया ।

'आप देवानुप्रिय के लिये आभिषेक्य हस्तिरत्न तैयार है, अश्व हस्ती आदि से गठित चतुरंगिणी सेना सन्नद्ध है, सुभद्रा आदि रानियों के लिये अलग-अलग जुते हुए, गमन के लिये उद्यत यान बाह्य उपस्थानशाला के सामने उपस्थापित है—खड़े हैं, चम्पानगरी के भीतर और बाहर से सफाई आदि करवा दी गई है, पानी का छिड़काव हो गया है—यावत्—सुगन्ध से महक रही है, देवानुप्रिय ! आप श्रमण भगवान महावीर के अभिवन्दन हेतु पधारें ।'

तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते बलवाउयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए जेणेव अट्टणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अट्टणसालं अणुपविसइ, अणुप-

तब बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा सेनानायक से यह सुनकर प्रसन्न एवं सन्तुष्ट हुआ—यावत्—विकसितहृदय होता हुआ जहाँ व्यायामशाला थी, वहाँ आया, आकर व्यायामशाला में

विसित्ता अणेगवायामजोग्ग-वग्गण-वामद्दण-मल्लजुद्धकरणेहिं संते परिस्संते। सयपागसहस्सपागेहिं सुगंधतेल्लमाइएहिं पीणणिज्जेहिं दप्पणिज्जेहिं मयणिज्जेहिं विंहणिज्जेहिं सव्विंदियगायपल्हायणिज्जेहिं अब्भंगेहिं अब्भंगिए समाणे

प्रवेश किया, प्रवेश करके अनेक प्रकार की व्यायाम योग्य क्रियाओं जैसे—अंगों को खींचना, उछलना, कूदना, अंगों को मोड़ना, कुश्ती लड़ना आदि द्वारा अपने को श्रान्त, परिश्रान्त किया। फिर प्रीणनीय (प्रीतिजनक) दर्पणीय, बलवर्धक, मदनीय, कामोद्दीपक, बृंहणीय—मांसवर्धक, शरीर तथा सभी इन्द्रियों के लिये आह्लाद जनक शतपाक, सहस्रपाक नामक सुगंधित तेलों से, उबटनों से शरीर को मसलवाया।

तेल्लचम्मंसि पडिपुण्णपाणि-पायसुउमालकोमलतलेहिं पुरिसेहिं छेएहिं दक्खेहिं पट्ठेहिं कुसलेहिं मेहावीहिं निउणसिप्पोवगएहिं अब्भंगण-परिमद्दणुव्वलण-करणगुणणिम्माएहिं अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए चउव्विहाए संबाहणाए संबाहिए समाणे

फिर तैलचर्म पर—आसन विशेष पर स्थित होकर जिनके हाथ पैरों के तलुवे अत्यन्त सुकुमाल और कोमल थे। जो छेक-अवसरज्ञ, कलाविद्-दक्ष, कार्य करने में कुशल, मेधावी अपने व्यवसाय में सुशिक्षित-प्रशिक्षित अभ्यंगन, परिमर्दन उद्वलन से होने वाले गुणों का निष्पादन करने में समर्थ थे, उन पुरुषों से हड्डियों के लिये सुखप्रद, मांस के लिये सुखप्रद, त्वचा के लिये सुखप्रद, रोमराजि के लिए सुखप्रद यों चार प्रकार के संबाहन द्वारा, मालिश, द्वारा शरीर दबवाया।

अवगयखेयपरिस्समे अट्टणसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता समुत्तजालाउलाभिरामे विचित्तमणिरयणकुट्टिमतले रमणिज्जे ण्हाणमंडवंसि णाणामणि-रयणभत्तिचित्तंसि-ण्हाणपीढंसि सुहणिसण्णे सुद्धोदएहिं गंधोदएहिं पुप्फोदएहिं सुहोदएहिं पुणो पुणो कल्लाणगपवरमज्जणविहीए मज्जिए।

इस प्रकार व्यायामजनित थकावट को दूर कर व्यायामशाला से बाहर निकला, बाहर निकलकर जहाँ स्नानगृह था वहाँ आया। आकर स्नानघर में प्रवेश किया, वह मोतियों से बनी जालियों से मनोरम, तरह-तरह की मणियों और रत्नों से खचित प्रांगण वाले एवं दीवालों पर अनेक प्रकार की मणियों और रत्नों को चित्रात्मक रूप में जड़ा गया है। ऐसे स्नान मंडप में प्रविष्ट होकर स्नान हेतु स्थापित चौकी पर सुखपूर्वक बैठा और शुद्ध सुगंधित पुष्परस मिश्रित जल से सुखप्रद पुनः पुनः—अच्छी तरह अतीव उत्तम स्नान विधि द्वारा स्नान किया।

तत्थ कोउयसएहिं बहुविहेहिं कल्लाणगपवरमज्जणावसाणे पम्हलसुकुमालगंधकासाइयलूहियंगे सरससुरहिगोसीसचंदणाणुलित्तगत्ते अहयसुमहग्घदूसरयणसुसंवुए सुइमालावण्णगविलेवणे य आविद्धमणिसुवण्णे कप्पियहारद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाणकडिसुत्त-सुकयसोभे पिणद्धगेविज्ज-अंगुलिज्जग-ललियंगयललियकयाभरणे वरकडग-तुडियथंभियभुए अहियरूवसस्सिरीए मुद्दियापिंगलंगुलीए कुण्डलउज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए हारोत्थयसुकयरइयवच्छे पालंबपलंबमाणपडसुकयउत्तरिज्जे णाणामणि-कणग-रयण-

स्नान करने के अनन्तर कल्याणप्रद अनेक सैकड़ों कौतुक मंगल आदि विधि विधान किये, तत्पश्चात् रोंएदार सुकोमल, काषायिक गन्ध से सुगन्धित वस्त्र से शरीर को पोंछा, सरस सुगन्धित गोलोचन तथा चन्दन का देह पर लेप किया, अखण्ड, निर्मल महामूल्यवान दूष्य रत्न को पहना, पवित्र माला धारण की, केशर आदि का विलेपन किया, मणियों से जड़े हुए सोने के आभूषण पहने, हार, अर्धहार, तिलड़ी, लम्बे-लटकते कटिसूत्र आदि आभूषणों से अपने को अलंकृत किया, गले में ग्रैवेयक—गले का आभूषण पहना, अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनी, इस प्रकार अपने सुन्दर अंगों को सुन्दर आभूषणों से विभूषित किया। उत्तम कंकणों, त्रुटितों—भुजबन्धों द्वारा भुजाओं को स्तम्भित किया, जिससे उसकी शोभा और अधिक बढ़ गई। मुद्रिकाओं से उसकी अंगुलियाँ पीली झाई दे रही थीं, कुण्डलों से मुख दमक रहा था, मुकुट से मस्तक दीप्त हो रहा था, हारों से ढका हुआ उसका वक्ष-स्थल सुन्दर रमणीय प्रतीत होता था। एक लम्बे लटकते हुए वस्त्र को उत्तरीय के रूप में धारण किया था,

विमलमहरिहणिउणोवियमिसिमिसंतविरइयसुसिलिट्ठविसिट्ठलट्ठ-आविद्धवीरवलए, किं बहुणा ?

सुयोग्य शिल्पियों द्वारा मणि-स्वर्ण और रत्न के सुयोग से सुरचित विमल महार्ह—बड़े लोगों द्वारा धारण करने योग्य, सुश्लिष्ट विशिष्ट, प्रशस्त, चमकीले वीरवलय कंकण विशेष को धारण किया था, विशेष क्या कहें ?

कप्परुक्खए चेव अलंकियविभूसिए णरवई सकोरंटमल्लदामेणं

इस प्रकार की अलंकृत वेशभूषा से और शृंगार से वह राजा मानो कल्पवृक्ष ही हो ऐसा प्रतीत होता था। कल्प वृक्ष के समान अलंकृत—विभूषित वह नरपति कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त।

[वाचनान्तरे—"अब्भपडलपिंगलुज्जलेणं अविरलसमसहियचंदमंडलसमप्पभेणं मंगलसयभत्तिछेयचित्तिय खिंखिणिमणिहेम-जालविरइयपरिगयपेरंतकणगघंटियपयलिय किणिकिणितसुइसुहसुमहुर-सद्दालसोहिएणं सप्पयरवरमुत्तदामलंबंतभूसणेणं नरिंदवामप्पमाणरुंदपरिमंडलेणं सीयायववायवरिसविसदोसनासणेणं तमरयमलबहलपडलधाडणप्पभाकरेणं उउसुहसिवच्छायसमणुबद्धेणं वेरुलियदंडसज्जिएणं वइरामयवत्थिनिउणोइयअट्ठसहस्सवरकंचणसलागनिम्मिएणं सुनिम्मलरययसुच्छएणं निउणोवियमिसिमिसंतमणिरयणसूरमंडलवितिमिरकरनिग्गयग्गपडिहयपुणरविपच्चापडंतचंचल-मिरिइकवयं विणिमुयंतेणं सपडिदंडेणं धरिज्जमाणेणं आयवत्तेणं विरायंते"]

(वाचनान्तर में यह पाठ है—पिंगलवर्णी अभ्रपटल के समान प्रकाशमान, अत्यन्त शांतिदायक चन्द्रमण्डल के समान प्रभा वाले सैकड़ों मांगलिक चित्रामों से चित्रित, मणि और स्वर्ण निर्मित घुंघरुओं की माला से सजाये हुए चारों ओर लगी स्वर्ण घंटियों से निर्गत कर्णप्रिय समधुर मन्द-मन्द किनकिनाहट करने वाले, सघतर लटकती श्रेष्ठ मुक्तामालाओं से विभूषित, नरेन्द्र के भुजा युगल प्रमाण विस्तृत परिमंडल गोलाई वाले शीत, आतप, वात और वर्षा जन्य विष-दोष के नाशक, सघन तमरज, मल, पटल को नाश करने वाली प्रभा से युक्त, चन्द्र सदृश सुखकर और कल्याणकारी मांगलिक छाया से व्याप्त, वैडूर्यमणि के दण्ड से सज्जित, वज्र-रत्न की बस्ति और ज्योतिषरत्न से खचित एक हजार आठ शलाकाओं से निर्मित, अतीव निर्मल रजतमय आच्छादन वस्त्र वाले निपुण शिल्पियों द्वारा परिकर्मित, शृंगारित, संस्कारित देदीप्यमान मणिरत्नों द्वारा अन्धकारनाशक सूर्यबिम्ब से विनिर्गत किरणों को भी तिरस्कृत करने पर भी उनके प्रत्यावर्तन से धवल किरण समूह को छोड़ते हुए जैसे प्रतिदण्ड युक्त सुशोभित आतपत्र—छत्र को धारण करके।)

छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरवालवीइयंगे [वाचनान्तरे—"चउहि य पवरगिरिकुहरविचरणसमुइयनिरुवहयचमरपच्छिम सरीरसंजायसंगयाहिं अमलियसियकमलविमलुज्जलियरययगिरि-सिहरविमलससिकिरण-सरिस कलधोयनिम्मलाहिं पवणाहयचवल-ललियतरंगहत्थनच्चंतवीइपसरियखीरोदगपवरसागरुप्पूरचंचलाहिं माणससरपरिसरपरिचियावासविसयवेसाहिं कणगगिरिसिहरसंसियाहिं ओवायउप्पयतुरियचवलजइणसिग्घवेगाहिं हंसवधूयाहिं चेव कलिए, णाणामणिकणगरयणविमलमहरिहतवणिज्जुज्जलविचित्तदंडाहिं चिल्लियाहिं नरवइसिरिसमुदयप्पगासणकरीहिं वरपट्ट-

छत्र को धारण करके दोनों ओर डुलाये जाते चार चामरों के साथ (वाचनान्तर में यह पाठ है—श्रेष्ठ गिरिनिकुञ्जों में विचरण करने से अत्यन्त प्रसन्न और अनुपहत चमरी गायों के पृष्ठभाग (पूंछ) में उत्पन्न एवं निर्दोष अम्लान श्वेत कमलवत् निर्मल, उद्दीप्त (चमचमाते हुए) रजतगिरि—वैताढ्य पर्वत के शिखर, विमलचन्द्र किरणों एवं चांदी के तुल्य निर्मल वायुप्रेरित चपल, मनोहर हलकी-हलकी लहरों-तरंगों के समान नृत्य करते हुए जैसे और महाकल्लोलों के कारण विस्तृत से प्रतीत होने वाले क्षीरसागर के उद्दाम प्रकृष्ट प्रवाह के समान चंचल, मानस सरोवर के परिसर में निवास करने वाली तथा निर्मल वेशवाली, सुमेरु पर्वत के शिखर पर आश्रय लेने वाली, उत्पतन, निपतन में अतीव चपल, द्रुतगति गमनशीला हंसनियों के सदृश शोभायमान और विविध प्रकार की मणियों, स्वर्ण और रत्नों से रचित महामूल्य-वान, तपनीय स्वर्णवत् रक्ताभा वाले, देदीप्यमान चित्रामों से युक्त, दीप्तिमान डंडियों वाले, नरपति की श्री और अभ्युदय को

गुणयाहिं समिद्धरायकुलसेवियाहिं कालागुरुपवरकुंदुरुक्कवर-वण्णवासगन्धुद्धुयाभिरामाहिं सललियाहिं उभओपासं उक्खिप्पमाणाहिं चामराहिं कलिए सुहसीयलवायवीइयंगे]

प्रकाशित करने वाले, श्रेष्ठ पत्तनों के शिल्पियों द्वारा निर्मित समृद्ध राजवंशियों द्वारा सेवित, कृष्ण, अगर, श्रेष्ठ कुन्दरुक और उत्तम वर्णवासों की उड़ती हुई सुगन्ध से अत्यन्त मनोहर लालित्यपूर्वक दोनों पार्श्वों में ढोरे जा रहे चार चामरों की सुखद शीतल वायु से विंजाता हुआ।)

मंगलजयसद्दकयालोए मज्जणघराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अणेगगणनायग-दंडनायग-राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाह-दूय-संधिवालसद्धिं संपरिवुडे धवलमहामेहणिग्गए इव गहगणदिप्पंतरिक्खतारागणाण मज्झे ससि व्व पियदंसणे णरवई जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला जेणेव आभिसेक्के हत्थिरयणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अंजणगिरिकूडसण्णिभं गयवइं णरवई दुरूढे।

लोगों द्वारा किये जा रहे हैं, मंगलमय जय-जयकारों के साथ स्नानगृह से निकला, निकलकर अनेक गणनायक, दण्डनायक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह, दूत, संधिपाल आदि से घिरा हुआ धवल महामेघ से निकलते हुए नक्षत्रों और दीप्यमान तारों के मध्यवर्ती चन्द्र के समान देखने में बड़ा प्रिय वह राजा जहाँ बाहरी उपस्थानशाला (सभाभवन) थी; जहाँ आभिषेक्य हस्तीरत्न था; वहाँ आया और आकर अंजनगिरि के शिखर के समान उस गजपति पर नरपति आरूढ़ हुआ।

कूणियस्स समवसरणं पइ पयाणं—

कोणिक का समवसरण के प्रतिगमन—

३२१. तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स आभिसेक्कं हत्थिरयणं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठ मंगलया पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया। तं जहा—सोवत्थिय–सिरिवच्छ–णंदियावत्त–वद्धमाणग–भद्दासण–कलस–मच्छ–दप्पणा।

३२१. तत्पश्चात् उस बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा के आभिषेक्य हस्तिरत्न पर आरूढ़ हो जाने पर सर्वप्रथम यह आठ मंगल अनुक्रम से उसके सामने—आगे रवाना हुए, यथा—१. स्वस्तिक, २. श्रीवत्स, ३. नन्दावर्त, ४. वर्धमानक, ५. भद्रासन, ६. कलश, ७. मत्स्य और ८. दर्पण।

तयाणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं दिव्वा य छत्तपडागा सचामरा दंसणरइयआलोयदरिसणिज्जा वाउद्धूयविजयवेजयंती य ऊसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

इसके बाद जल से भरे हुए कलश, झारियाँ, दिव्य, छत्र, पताका, चंवर, देखने में रतिकर और आलोक दर्शनीय—देखने में सुन्दर, वायु से फहराती ऊँची उठी हुई और आकाश को ही स्पर्श करती हुई सी विजय वैजयन्ती अनुक्रम से आगे-आगे संप्रस्थित हुई।

तयाणंतरं च णं वेरुलियभिसंतविमलदंडं पलंबकोरंटमल्लदामोवसोभियं चंदमण्डलणिभं समूसियं विमलं आयवत्तं पवरं सीहासणं वरमणिरयणपादपीढं सपाउयाजोयसमाउत्तं बहुकिंकर-कम्मकर-पुरिसपायत्तपरिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।

तदनन्तर वैडूर्यमणि की प्रभा से देदीप्यमान निर्मल दण्डयुक्त लटकती हुई कोरंट पुष्प की मालाओं से सुशोभित, चन्द्रमण्डल के समान आभामय, ऊँचा तना हुआ (फैलाया हुआ) निर्मल आतपत्र, उत्तम सिंहासन, श्रेष्ठमणि रत्नों से विभूषित, पादुकाओं से युक्त पादपीठ (चौकी) बहुत से किंकरों-कर्मकरों-सेवकों तथा पदातिपुरुषों से घिरे हुए क्रमशः आगे रवाना किये गये।

तयाणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुन्तग्गाहा चावग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढग्गाहा वीणग्गाहा कूवग्गाहा हडप्पयग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया।

इसके बाद बहुत से लट्ठीधारी, भालाधारी, धनुर्धारी, चामरधारी, पाशधारी (चाबुक आदि लिये हुए) पुस्तकधारी, फलकधारी, पीठधारी, वीणाधारी, कूप्यधारी, हडप्पधारी (पान आदि के पात्र लिये हुए) पुरुष क्रमशः आगे रवाना हुए।

तयाणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुंडिणो सिहंडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकरा डमरकरा चाडुकरा वादकरा कंदप्पकरा दवकरा कोक्कुइया किड्डकरा य वायंता य गायंता य हसंता य

इसके बाद बहुत से दण्डी, मुण्डी—सिरमुण्डे, शिखंडी—शिखाधारी, जटाधारी, पिच्छधारी, हासकर—हँसी करने वाले, विदूषक, डमरकर—हल्ला मचाने वाले, चाटुकार—खुशामदी, वादकर—तर्क-वितर्क—वाद-विवाद करने वाले, कंदर्पकर—शृंगार चेष्टायें करने वाले, दवकर मजाक करने वाले, कौत्कुचित

णच्चंता य भासंता य सावेंता य रक्खंता य [क्वचित्—"रवेंता य"] आलोयं च करेमाणा जयसद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

—भांड, क्रीड़ाकार—खेल तमाशा करने वाले (मदारी) आदि वाद्य बजाते हुए, गाते हुए, हँसते हुए, नाचते हुए, बोलते हुए, सुनाते हुए, रक्षा करते हुए (कहीं पर यह भी पाठ है—जोर-जोर से आवाजें लगाते हुए) अवलोकन करते हुए तथा जय-जयकार करते हुए अनुक्रम से आगे चले ।

[संग्रहगाथाश्च क्वचित्—

असिलट्ठिकुन्तग्गाहे चावग्गाहे य फलगपोत्थे य ।
वीणाकूव्यग्गाहे तत्तो य हडप्पग्गाहे य ॥१॥

दंडी मुण्डि सिहंडी पिच्छी जडिणो य हासकिड्डा य ।
दवकारा चडुकारा कंदप्पियकुक्कुईगा य ॥२॥
गायंता वायंता नच्चंता तह हसंत हासेंता ।
सावेंता रावेंता आलोयजयं पउंजंति ॥३॥]

(कहीं पर यह संग्रहणी गाथायें हैं—

असिधारी—तलवार लेकर चलने वाले, लट्ठीधारी, भालाधारी, धनुर्धारी, चामरधारी, पाशधारी, फलकधारी, पुस्तकधारी, वीणाधारी, कूप्यधारी, हडप्पधारी ॥१॥

दण्डी, मुण्डित, शिखण्डी, पिच्छीधारी, जटाधारी, हास-क्रीड़ा करने वाले, दवकर, चाटुकार, कंदर्पिक, कौकुचित ॥२॥
गाते हुए, बजाते हुए, नाचते हुए, हँसते हुए, सुनाते हुए, होहल्ला करते हुए चारों ओर देखते हुए, जय-जयकार करते हैं ॥३॥

तयाणंतरं च णं जच्चाणं तरमल्लिहायणाणं हरिमेलामउल-मल्लियच्छाणं चंचुच्चियललियपुलियचलचवलचंचलगईणं लंघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवई-जइणसिक्खियगईणं ललंत-लाम-गल-लाय-वरभूसणाणं मुहभंडग-ओचूलग-थासग-अहिलाणचामरगंडपरि-मंडियकडीणं किंकरवरतरुणपरिग्गहियाणं अट्ठसयं वरतुरगाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं ।

तदनन्तर जात्य—ऊँची नसल वाले, वेग, शक्ति और स्फूर्ति-मय, युवा एक सौ आठ घोड़े अनुक्रम से उसके आगे रवाना हुए। हरिमेला पुष्प की कली और मल्लिका (चमेली) पुष्प जैसी उनकी आँखें थीं, तोते की चोंच की तरह वक्र, ललित, चपल, चंचल उनकी गति—चाल थी, लाँघना, कूदना, दौड़ना, चतुराई से दौड़ना, भूमि पर तीन पैर रखकर चलना, जयिनी—अति तीव्र गति से दौड़ना, चलना आदि विशिष्ट गतियों से वे शिक्षित थे, उनके गलों में श्रेष्ठ आभूषण लटक रहे थे, मुख के आभूषण अवचूलक—कलंगी, दर्पण की आकृति जैसे विशेष अलंकार मुख बन्ध से सुशोभित थे, उनके गण्डस्थल चामर और कटिभाग दण्ड से शोभायमान हो रहे थे और उनकी लगाम सुन्दर तरुण सेवक थामे हुए थे ।

तयाणंतरं च णं ईसीदंताणं ईसीमत्ताणं ईसीतुंगाणं ईसीउ-च्छंगविसालधवलदंताणं कंचणकोसीपविट्ठदंताणं कंचणमणि-रयणभूसियाणं वरपुरिसारोहगसंपउत्ताणं अट्ठसयं गयाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं ।

तत्पश्चात् यथाक्रम से (तरुण होने से) दाँत कुछ-कुछ बाहर निकले हुए, कुछ-कुछ मदमस्त, पिछला भाग कुछ विशाल धवल तथा सोने के खोल के मढ़े दाँतों वाले, स्वर्णमणि तथा रत्नों से निर्मित आभरणों से शोभित और श्रेष्ठ महावतों द्वारा चलाये जा रहे एक सौ आठ हाथी रवाना किये गये ।

तयाणंतरं च णं सच्छत्ताणं सज्झयाणं सघंटाणं सपडागाणं सतोरणवराणं सनंदिघोसाणं सखिंखिणीजाल-परिक्खित्ताणं हेम-वयचित्ततिणिसकणगणिज्जुत्तदारुयाणं कालायससुकयणेमिजंत-कम्माणं सुसिलिट्ठवत्तमंडलधुराणं आइण्णवरतुरगसुसंपउत्ताणं कुसलनरच्छेयसारहिसुसंपग्गहियाणं [क्वचित्—"हेमजालगवक्ख-जालखिंखिणीघंटजालपरिक्खित्ताणं"] बत्तीसतोणपरिमंडियाणं सकंकडवडेंसगाणं सचावसरपहरणावरणभरियजुद्धसज्जाणं अट्ठसयं रहाणं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं ।

इसके बाद यथाक्रम से छत्र, ध्वजा, घण्टा, पताका, तोरण नन्दिघोष आदि घुंघरुओं के जाल से परिक्षिप्त, हिमाचल प्रदेश में उत्पन्न और स्वर्णखचित तिनिशकाष्ठ से निर्मित लोहे के पट्टे चढ़ाये गये; पट्टियों के घेरे वाले, सुन्दर, सुदृढ़ और गोलवर्तुलाकार धुराओं वाले कुलीन घोड़ों से जुते हुए, सुयोग्य, सुरक्षित सार-थियों द्वारा चलाये जा रहे (कहीं पर यह पाठ है—सोने से बने जाली झरोखों वाले और घुंघरुओं, घंटियों के जाल से परिक्षिप्त) बत्तीस तरकशों से सुशोभित—कवच, शिरस्त्राण, धनुष, बाण तथा अन्यान्य शस्त्रों से युक्त युद्ध के लिये सज्जित जैसे एक सौ आठ रथ क्रमशः रवाना किये गये ।

तयाणंतरं च णं असिलट्ठिकुन्त-तोमर-सूल-लउल-भिंडि-माल-धणुपाणिसज्जं पायत्ताणीयं ["सण्णद्धबद्धवम्मियकवयाणं उप्पीलियसरासणपट्टियाणं पिणद्धगेवेज्जविमलवरबद्धचिंधपट्टाणं गहियाउहप्पहरणाणं"] पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं।]

तदनन्तर हाथों में तलवारें, त्रिशूल, भाले, तोमर—लोहदंड, शूल, लाठियाँ, भिन्दिमाल—छोटे भाले और धनुष धारण किये हुए पदाति सैनिक (युद्ध के लिये सज्जित होने के सदृश अच्छी तरह से शरीर पर कवच बाँधकर, धनुषों पर प्रत्यंचायें चढ़ाकर गले में ग्रैवेयक और संकेत सूचक श्रेष्ठ पट्टकों को धारण करके आयुध एवं प्रहरणों को लेकर क्रमशः रवाना हुए।

तए णं से कूणिए राया हारोत्थयसुकयरइयवच्छे कुण्डलउज्जोवियाणणे मउडदित्तसिरए णरसीहे णरवई णरिंदे णरवसहे मणुयरायवसभकप्पे अब्भहियं रायतेयलच्छीए दिप्पमाणे हत्थिक्खंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं उद्धुव्वमाणीहिं वेसमणे चेव णरवई अमरवइसण्णिभाए इड्ढीए पहियकित्ती हय-गय-रह-पवरजोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए समणुगम्ममाणमग्गे जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तत्पश्चात् जिसका वक्षस्थल हारों से व्याप्त और प्रीतिकर था। मुख कुण्डलों की दीप्ति से द्युतिमय था, मस्तक मुकुट से देदीप्यमान था, ऐसा वह नरसिंह—मनुष्यों में सिंह सदृश शौर्यशाली, नरपति—मनुष्यों का परिपालक, नरेन्द्र—मनुष्यों में ऐश्वर्यशाली, मनुजराजवृषभ—नरपतियों में बैल के सदृश, परमधीर और सहिष्णु, गौरवशाली राजोचित तेजस्विता रूप लक्ष्मी से अत्यन्त दीप्तिमान सुप्रशस्त समृद्धिशाली और विश्रुत कीर्ति कोणिक राजा उत्तम हाथी पर आरूढ़ होकर, कोरन्ट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर, श्वेत धवल श्रेष्ठ चामरों से विंजाता हुआ, वैश्रमण नरपति—चक्रवर्ती और अमरपति देवेन्द्र देवराज के तुल्य अश्व-हस्ती-रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से परिगठित चतुरंगिणी सेना से समनुगत होता हुआ जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, उस ओर गमन करने के लिये तत्पर हुआ।

तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो भंभसारपुत्तस्स पुरओ महंआसा आसवरा उभओ पासिं णागा णागवरा पिट्ठओ रहसंगेल्लि।

तब उस बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा के आगे बड़े-बड़े घोड़े और घुड़सवार आजू-बाजू में दोनों ओर हाथी और हाथियों पर सवार पुरुष थे, एवं पीछे रथ समुदाय था।

तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते अब्भुग्गयभिंगारे पग्गहियतालयंटे ऊसवियसेयच्छत्ते पवीइयवालवीयणीए सव्विड्ढीए सव्वजुत्तीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं [क्वचित्—"पगईहिं णायगेहिं तलवरेहिं सव्वोरोहेहिं"] सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्दसण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया जुईए महया बलेणं महया समुदएणं महया वरतुडियजमगसमगप्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहि-हुडुक्क-मुरय-मुअंग-दुन्दुहि-णिग्घोसणाइयरवेणं चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ।

तदनन्तर उस बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा के आगे-आगे जल से भरी झारियाँ लिये पुरुष चल रहे थे, सेवक दोनों ओर पंखे झल रहे थे ऊपर श्वेत छत्र तना हुआ था, चंवर ढोले जा रहे थे, वह सर्वप्रकार की ऋद्धि समृद्धि सर्वद्युति सर्वप्रकार से सैन्य समुदाय प्रभाव, आदर-सत्कार विभूति-वैभव, विभूषा, सर्व सम्भ्रम—उत्सुकता (कहीं पर यह पाठ है—साधारण जन समूह, मुखिया—अग्रणीय प्रमुख व्यक्ति, नगर रक्षक और अन्तःपुर) सर्व पुष्प गन्ध, माल्य—अलंकार, सर्वप्रकार के वाद्यों की ध्वनि-प्रतिध्वनि, महाऋद्धि, महाद्युति, महाबल, महासमुदय—प्रभाव अथवा पारिवारिक जनों के समुदाय से सुशोभित होता हुआ एक साथ बजाये जा रहे उत्तम शंख, पणव, पटह, भेरी, झालर, खरमुही, हुडुक्क, मुरज, मृदंग एवं दुन्दुभी निनाद के साथ चम्पा नगरी के बीचों-बीच से होकर निकला।

तए णं तस्स कूणियस्स रण्णो चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणस्स बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया करोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खंडियगणा ताहिं

तब उस कोणिक राजा को चम्पानगरी के बीचों-बीच से होकर निकलने पर बहुत से अभ्यर्थी—धन के अभिलाषी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, किल्बिषिक, करोटिक, भिक्षुक विशेष, कर बाधित, शांखिक, चाक्रिक—चक्रधारी, लांगलिक—कृषक, मुखमंगल—खुशामदी, वर्धमान, पुष्यमानव—चारणभाट,

इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं [वायनान्तरे—"उरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धण्णाहिं मंगल्लाहिं सस्सिरीयाहिं हियगमणिज्जाहिं हिययपल्हायणिज्जाहिं मियमहुरगंभीरगाहियाहिं अट्ठसइयाहिं अपुणरुत्ताहिं"] हिययगमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजय-मंगलसएहिं अणवरयं अभिणंदंता य अभित्थुणंता य एवं वयासी—

विरुद पाठक आदि इष्ट, कमनीय, प्रिय, मनोज्ञ, मनाम, मनोभिराम (वाचनान्तर में यह पाठ है—श्रेष्ठ, मंगलकारक, सुखद, प्रशंसनीय, मांगलिक, सश्रीक, हृदय-गमनीय, हृदय प्रह्लादिक—मृदु मधुर गम्भीर एक सौ आठ अकथित गाथाओं से) हृदय को आनंदित करने वाली वाणी एवं जय-विजय हो आदि सैकड़ों मांगलिक शब्दों से अनवरत-अभिनन्दन अभिस्तवन—प्रशस्तिगान करते हुए इस प्रकार कहने लगे—

"जय जय णंदा ! जय जय भद्दा ! भद्दं ते अजियं जिणाहि, जियं च पालेहि, जियमज्झे वसाहि। इंदो इव देवाणं चमरो इव असुराणं धरणो इव नागाणं चंदो इव ताराणं भरहो इव मणुयाणं बहूइं वासाइं बहूइं वाससयाइं बहूइं वाससहस्साइं बहूइं वाससयसहस्साइं अणहसमग्गो हट्ठतुट्ठे परमाउं पालयाहि इट्ठजणसंपरिवुडो चंपाए णयरीए अण्णेसिं च बहूणं गामागर-णयर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संवाह-संनिवेसाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणाईसरसेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे महयाहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहराहि" त्ति कट्टु जय जय सद्दं पउंजंति।

हे नन्द ! जन-जन को आनन्द देने वाले—आपकी जय हो जय हो। हे भद्र ! जन कल्याणकारी राजन ! आपको जयविजय प्राप्त हो, आपका कल्याण हो, अविजितों पर आप विजय प्राप्त करें और जिनको जीत लिया है उनका पालन करें, उन्हीं के बीच निवास करें। देवों में इन्द्र के तुल्य, असुरों में चमरेन्द्र के तुल्य, नागों में धरणेन्द्र के तुल्य, तारामण्डल में चन्द्र के तुल्य, मनुष्यों में भरत चक्रवर्ती की तरह आप अनेक वर्षों तक अनेक, सैकड़ों वर्षों तक, अनेक सहस्रों वर्षों तक, अनेक लाखों वर्षों तक निर्विघ्न और निर्दोष, हृष्ट-तुष्ट रहते हुए चिरंजीवी हों—उत्कृष्ट आयु प्राप्त करें, आप इष्टजन सहित चम्पानगरी एवं अन्य दूसरे बहुत से ग्राम, आगर, नगर, खेट, कर्बट, द्रोणमुख, मडंब, पत्तन, आश्रम, निगम, संवाह और सन्निवेश आदि का आधिपत्य, पौरोवृत्य, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरत्व, आज्ञेश्वरत्व सेनापतित्व करते हुए, पालन करते हुए निरन्तर नृत्य, गीत, वाद्य, वीणा, करताल, तूर्य एवं घनमृदंग को पटुता के साथ बजाये जाने पर निर्गत ध्वनियों से आनन्दित होते हुए विपुल भोगोपभोगों का उपभोग करते हुए सुखपूर्वक समय व्यतीत करें। ऐसा कहकर जय जय घोष किया।

कूणियस्स समोसरणे आगमणं पज्जुवासणा य—

३२२. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे पेच्छिज्जमाणे हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे अभिणंदिज्जमाणे [क्वचित्—"उसइज्जमाणे"] मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे विच्छिप्पमाणे वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे अभिथुव्वमाणे कंतिसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे पत्थिज्जमाणे बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे पडिच्छमाणे मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे समइच्छमाणे

कोणिक का समवसरण में आगमन और पर्युपासना—

३२२. तत्पश्चात् उस बिम्बसारपुत्र कोणिक राजा के हजारों मनुष्य अपने नेत्रों से बार-बार दर्शन कर रहे थे। हजारों मनुष्यों द्वारा बार-बार अभिनन्दन किया जा रहा था। (कहीं पर यह पाठ है—आह्वान किया जाता हुआ) मनोरथों रूपी माला सहस्रों द्वारा स्पर्शित होता हुआ, हजारों स्वस्तिवचनों द्वारा स्तुति किया जाता हुआ, शारीरिक कांति और सौभाग्यशाली होने से प्रार्थित होता हुआ, हजारों नर-नारियों की अंजलि रूप माला सहस्रों को दाहिने हाथ से स्वीकार करता हुआ, मंजुल मधुर जय घोषों से सम्बोधित होता हुआ, हजारों भवन पंक्तियों को लांघता हुआ अथवा उन पर दृष्टिपात करता हुआ।

[वायनान्तरे—"तंतीतलतालतुडियगीयवाइयरवेणं महुरेणं मणहरेणं जयसद्दघोसविसएणं मंजुमंजुणा घोसेणं पडिबुज्झमाणे पडिबुज्झमाणे कंदरगिरिविवरकुहरगिरिवरपासादुद्धघणभवणदेव-कुल-

(वाचनान्तर में यह पाठ है—वीणा, करतल, तुरही आदि वाद्यों के शब्दघोष एवं जय-जयकारी महान् मंजुल-मधुर शब्द-घोषों से सम्बोधित किया जाता हुआ, गिरिकन्दराओं, गुफाओं, पर्वत के समान ऊँचे उत्तम प्रासादों, आकाशमण्डल, देवकुलों,

सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरचउम्मुहमहापहआरामुज्जाणकाणणसभप्पवापदेसभागे पडिंसुआसयसहस्ससंकुलं करेंते हयहेसिय-हत्थिगुलगुलाइय-रहघणघणसद्दमीसएणं महया कलकलरवेण य जणस्स महुरेणं पूरयंते सुगंधवरकुसुमचुण्णउव्विद्धवासरेणुकविलं नभं करेंते कालागुरुकुंदुरुक्कतुरुक्कधूवनिवहेणं जीवलोगमिव वासयंते समंतओ खुभियचक्कवालं पउरजणबालवुड्ढपमुइयतुरियपहावियविउलाउलबोलबहुलं नभं करेंते"]

(शृंगाटकों, त्रिकों, चत्वरों, चतुष्कों, आरामों, उद्यानों, काननों, सभतल पर्वतों के प्रान्तभागों—तलहटियों को, हजारों प्रतिध्वनियों से व्याप्त करता हुआ घोड़ों की हिनहिनाहट, हाथियों की गुलगुलाहट और रथों की घनघनाहट से मिश्रित जनसमूह के मधुर कलरव से सभी दिशाओं को पूरित करता हुआ, सुरभि गंध से सुगंधित श्रेष्ठ पुष्पों के पराग से आकाश को कपिलवर्णीय और करते हुए, काले अगर कुन्दरुक्क-तुरुक्क और धूप की सुवास से लोक को सुवासित करता हुआ, गमनोत्सुक चारों ओर से उमड़ रहे प्रमुदित बाल-युवा और वृद्धों के बहुत बड़े जनसमूह के कोलाहल से नभोमण्डल को व्याप्त करता हुआ।)

चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्ताईए तित्थयराइसेसे पासइ, पासित्ता आभिसेक्कं हत्थिरयणं ठवेइ, ठवित्ता आभिसेक्काओ हत्थिरयणाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता अवहट्टु पंच रायककुहाइं, तं जहा—खग्गं छत्तं उप्फेसं वाहणाओ वालवीयणिं, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छइ, तं जहा—

चम्पानगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर से न अति दूर और न अति पास छत्रादि तीर्थंकर के अतिशयों को देखा, देखकर अभिषेक्य हस्तिरत्न को ठहराया, ठहराकर उस आभिषेक्य हस्तिरत्न से नीचे उतरा, उतरकर १. खड्ग, २. छत्र, ३. मुकुट, ४. वाहन और ५. चंवर इन पाँच राजचिह्नों को अलग किया और जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे वहाँ आया, आकर इन पाँच अभिगमपूर्वक सम्मुख पहुँचा वे पाँच अभिगम इस प्रकार हैं—

१ सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए

१. पुष्पमाला आदि सचित्त द्रव्यों का त्याग।

२ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए

२. वस्त्र आदि अचित्त द्रव्यों का अव्युत्सर्जन—अलग न करना।

३ एगसाडियं उत्तरासंगकरणेणं

३. अखण्ड वस्त्र का उत्तरासंग धारण करना।

४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं [हत्थिखंधविट्ठंभणयाए]

४. भगवान् पर दृष्टि पड़ते ही हाथ जोड़ना—अंजलि करना (हाथी के स्कन्ध के सदृश स्थापित करना)

५ मणसो एगत्तिभावकरणेणं;

५. मन को एकाग्र करना।

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणयाए पज्जुवासइ, तं जहा—काइयाए वाइयाए माणसियाए। काइयाए—ताव संकुइयग्गहत्थपाए सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासइ। वाइयाए—जं जं भगवं वागरेइ 'एवमेयं भंते! तहमेयं भंते! अवितहमेयं भंते! असंदिद्धमेयं भंते! इच्छियमेयं भंते! पडिच्छियमेयं भंते! इच्छियपडिच्छियमेयं भंते!, से जहेयं तुब्भे वयह अपडिकूलमाणे पज्जुवासइ।

श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके कायिक, वाचिक और मानसिक इस त्रिविध पर्युपासना से पर्युपासना करने लगा। त्रिविध पर्युपासनाओं में से कायिक पर्युपासना के रूप में हाथ-पैरों को संकुचित कर सुनने की इच्छा करते हुए, नमन करते हुए भगवान् के सम्मुख विनयपूर्वक अंजलि करके स्थित हुआ। वाचिक पर्युपासना के रूप में—जो-जो भगवान् बोलते उसके लिये 'यह ऐसा ही है भदन्त! यही तथ्य रूप है भगवन्! यही सत्य है प्रभो! यही सन्देह रहित है भगवन्! यही इच्छित है भन्ते! यही प्रतीच्छित—पुनः-पुनः इच्छित—स्वीकृत है भन्ते! यही इच्छित—प्रतीच्छित है, भन्ते! वह वैसा ही है जैसा आप कह रहे हैं।" इस प्रकार अनुकूल वचन बोलता रहा,

माणसियाए—महया-संवेग जणइत्ता तिव्वधम्माणुरागरत्ते पज्जुवासइ।

मानसिक पर्युपासना के रूप में अपने में, परम संवेगभाव को उत्पन्न करके तीव्र धर्मानुराग से अनुरक्त होकर पर्युपासना करने लगा।

सुभद्दाइकूणियभज्जाणं समोसरणे आगमणं पज्जुवासणा य—

३२३. तए णं ताओ सुभद्दप्पमुहाओ देवीओ अंतोअंतेउरंसि ण्हायाओ-जाव-पायच्छित्ताओ सव्वालंकारविभूसियाओ [वायणान्तरे—"वद्धयसुभगसोवत्थि वद्धमाणगपूसमाणगजयविजय-मंगलसएहिं अभिथुव्वमाणाओ कप्पाछेयायरियरइयसिरयाओ महयागंधद्धणिं मुयंतीओ] बहूहिं खुज्जाहिं चिलाईहिं वामणीहिं वडभीहिं बब्बरीहिं पउसियाहिं जोणियाहिं पल्हवियाहिं ईसिणियाहिं चारुइणियाहिं लासियाहिं लउसियाहिं सिंहलीहिं दमिलीहिं आरबीहिं पुलिंदीहिं पक्कणीहिं बहलीहिं मरुंडीहिं सबरीहिं पारसीहिं णाणादेसीहिं विदेसपरिमंडियाहिं इंगियचिंतियपत्थियविया-णियाहिं सदेसणेवत्थगहियवेसाहिं चेडियाचक्कवालवरिसधरकं-चुइज्जमहत्तरवंदपरिक्खित्ताओ अंतेउराओ णिग्गच्छंति,

सुभद्रा आदि कोणिक भार्याओं का समवसरण में आगमन और पर्युपासना—

३२३. तत्पश्चात् सुभद्रा आदि रानियों ने अन्तःपुर में स्नान किया—यावत्—प्रायश्चित्त कर सर्व अलंकारों से विभूषित होकर (वाचनान्तर में यह पाठ है—वर्धमानक—बधाई गाने वाले—अभ्युदयनिवेदक और पूज्यमानव—मंगल पाठकजनों द्वारा सौभाग्ययुक्त स्वस्ति वचनों द्वारा प्रशंसा की जाती एवं जय-विजय हो आदि सैकड़ों मांगलिक शब्दों द्वारा स्तुति की जाती हुई, कुशल शृंगार करने की कला में निपुणों द्वारा रचित केश-विन्यास से उत्तम सुगन्ध को फैलाती हुई) बहुत सी देश-विदेश और विभिन्न प्रकार संस्थान वाली अर्थात् कुब्जा, चिलात देश की वामनी—बौनी, बड़े पेट वाली, बर्बर देश की, बकुश देश की, यूनान देश की, पल्हव देश की, इसिन देश (ईरान) की, चारु किनिक देश की, लासक देश की, लकुश देश की, सिंहल देश की, द्रविड़ देश की, अरब देश की, पुलिन्द देश की, पक्कण देश की, बहल देश की, मुरुण्ड देश की, शबर देश की, पारस देश की, अपने-अपने देश की वेषभूषा से सज्जित तथा इंगित चिंतित एवं अभिलाषित भावों को समझने में कुशल तथा अपने अपने देश के आभूषणों को धारण की हुई दासियों के समूह से घिरी हुई, वर्षधरों (नपुंसकों) कंचुकियों और महत्तरवृन्द से परिरक्षित होती हुई अंतःपुर से निकली।

निग्गच्छित्ता जेणेव पाडियक्कजाणाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पाडियक्कपाडियक्काइं जत्ताभिमुहाइं जुत्ताइं जाणाइं दुरूहंति, दुरूहित्ता णियगपरियालसद्धिं संपरिवुडाओ चंपाए णयरीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छंति, णिग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते छत्तादीए तित्थयराइसेसे पासंति, पासित्ता पाडियक्कपाडियक्काइं जाणाइं ठवेंति, ठवित्ता जाणेहिंतो पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं-जाव-परिक्खित्ताओ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं अभिगच्छंति। तं जहा—

निकलकर प्रत्येक वहाँ आई जहाँ प्रत्येक के लिये तैयार रथ खड़े थे और उन पर आरूढ़ हुईं, आरूढ़ होकर अपनी-अपनी परिचारिकाओं के साथ चम्पानगरी के बीचोंबीच से निकलीं, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ पहुँचीं, पहुँचकर श्रमण भगवान् महावीर से न अधिक दूर और न अधिक निकट स्थित हो छत्रादि तीर्थंकरों के अतिशयों को देखा, देखकर प्रत्येक ने अपने-अपने रथ को खड़ा किया, खड़ा करके बहुत-सी कुब्जा —यावत्—घिरी हुई होकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आईं, आकर पाँच प्रकार के अभिगमों के साथ श्रमण भगवान् महावीर के अभिमुख गमन किया। वे पाँच अभिगम इस प्रकार हैं—

१ सचित्ताणं दव्वाणं विओसरणयाए २ अचित्ताणं दव्वाणं अविओसरणयाए ३ विणओणयाए गायलट्ठीए ४ चक्खुप्फासे अंजलिपग्गहेणं ५ मणसो एगत्तिभावकरणेणं;

१. सचित्त द्रव्यों का व्युत्सर्जन—त्याग, २. अचित्त द्रव्यों का अव्युत्सर्जन—अत्याग, ३. विनयपूर्वक गात्रयष्टि—शरीर को नम्र करना, झुकाना, ४. दृष्टि पड़ते ही अंजलि करना और ५. मन को एकाग्र करना;

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता कूणियरायं पुरओकट्टु

फिर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-

ठियाओ चेव सपरिवाराओ अभिमुहाओ विणएणं पंजलिकडाओ पज्जुवासंति ।

भगवओ महावीरस्स धम्मदेसणा—

३२४. तए णं समणे भगवं महावीरे कूणियस्स रण्णो भंभसार-पुत्तस्स सुभद्दापमुहाणं देवीणं तीसे य महतिमहालियाए परिसाए इसिपरिसाए मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगसयवंदपरिवाराए ओहबले अइबले महब्बले अपरिमियबलवीरियतेयमाहप्पकंतिजुत्ते सारयनवत्थणियमहुरगंभीर-कोंचणिग्घोसदुन्दुभिस्सरे उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खरसण्णिवाइयाए पुण्ण-रत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ अरिहा धम्मं परिकहेइ ।

तेसिं सव्वेसिं आरियमणारियाणं अगिलाए धम्मं आइक्खइ ।

सावि य णं अद्धमागहा भासा तेसिं सव्वेसिं आरियमणारि-याणं अप्पणो सभासाए परिणामेणं परिणमइ । तं जहा—

अत्थि लोए, अत्थि अलोए, एवं जीवा अजीवा बंधे मोक्खे पुण्णे पावे आसवे संवरे वेयणा णिज्जरा अरिहंता चक्कवट्टी बलदेवा वासुदेवा नरगा णेरइया तिरिक्खजोणिया तिरिक्खजोणिणीओ माया पिया रिसओ देवा देवलोया सिद्धी सिद्धा परिणिव्वाणे परिणिव्वुया अत्थि पाणाइवाए-जाव[1]-आणाए आराहए भवति ।

परिसाए धम्मपडिवत्ती, सगिहगमणं च—

३२५. तए णं सा महतिमहालिया मणुसपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आया-हिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता अत्थेगइया मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइया, अत्थे-गइया पंचाणुव्वइयं सत्तसिक्खावइयं-दुवालसविहं गिहिधम्मं पडि-वण्णा ।

नमस्कार करके कोणिक राजा को आगे कर अपने परिजन परि-वार के साथ भगवान् के सम्मुख विनयपूर्वक हाथ जोड़ पर्युपासना करने लगीं ।

भगवान् महावीर की धर्म-देशना—

३२४. तत्पश्चात्, श्रमण भगवान महावीर ने बिम्बसार पुत्र कोणिक राजा, सुभद्रा आदि प्रमुख रानियों और जिसमें अनेक-अनेक सैकड़ों समूह थे ऐसी उस अतिविशाल परिषदा ऋषि-परिषदा, मुनिपरिषदा, यतिपरिषदा, देवपरिषदा को ओघबली, अतिबली, महाबली, अपरिमितबल, वीर्य, तेज, महत्ता एवं कान्तियुक्त, शरत्कालीन नूतनमेघ के गर्जन, क्रौंचपक्षी के निर्घोष और दुन्दुभिध्वनि के समान मधुर गम्भीर स्वर युक्त वाणी में एक योजन पर्यन्तक्षेत्र में पहुँचने वाले स्वर हृदय में विस्तृत होती हुई, कंठ में अवस्थित होती हुई और मूर्धा में परिव्याप्त होती हुई, सुविभक्त शब्द विन्यासयुक्त, अस्पष्ट उच्चारण रहित सुव्यक्त अक्षर सन्निपातयुक्त, माधुर्य गुणयुक्त, श्रोताओं की सभी बोलियों में परिणत होने वाली अर्धमागधी भाषा में धर्म का कथन किया ।

उन उपस्थित सभी आर्य-अनार्य जनों को अम्लानभाव से धर्म का व्याख्यान किया ।

वह अर्धमागधी भाषा उन सभी आर्यों और अनार्यों की भाषाओं में परिणत हो गई । भगवान् ने जो धर्म-देशना दी, वह इस प्रकार है—

लोक है, अलोक का अस्तित्व है, इसी प्रकार जीव, अजीव बन्ध, मोक्ष, पुण्य, पाप, आस्रव, संवर, वेदना, निर्जरा, अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, नरक, नैरयिक, तिर्यंचयोनि, तिर्यंच-योनिक, माता, पिता, ऋषि, देव, देवलोक, सिद्धि, सिद्ध, परि-निर्वाण, परिनिर्वृत्त—कर्मावरण से रहित अवस्था प्राप्त जीव इनका अस्तित्व है, प्राणातिपात (विरमण)—यावत्—आज्ञा-पालन से आराधक होते हैं ।

परिषदा की धर्मप्रतिपत्ति और स्वगृह गमन—

३२५. तत्पश्चात् वह विशाल मनुष्य परिषदा श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर, हृदय में धारण कर, हृष्ट-तुष्ट हुई —यावत्—हर्षित हृदय होकर अपने स्थान से उठी, उठकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार कर उनमें से कई मुण्डित होकर, गृहवास का त्याग कर अनगार धर्म में प्रव्रजित हुए । किसी-किसी ने पाँच अणुव्रत और सात शिक्षा-व्रत रूप बारह प्रकार के श्रावक-धर्म को अंगीकार किया ।

---

[1] यावत्करणात्निर्दिष्टो ग्रन्थसन्दर्भ औपपातिकसूत्रादवगन्तव्यः ।

अवसेसा णं परिसा समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सुअक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे एवं सुपण्णत्ते सुभासिए सुविणीए सुभाविए, अणुत्तरे ते भंते ! निग्गंथे पावयणे, धम्मं णं आइक्खमाणा तुब्भे उवसमं आइक्खह, उवसमं आइक्खमाणा विवेगं आइक्खह, विवेगं आइक्खमाणा वेरमणं आइक्खह, वेरमणं आइक्खमाणा अकरणं पावाणं कम्माणं आइक्खह, णत्थि णं अण्णे केइ समणे वा माहणे वा जे एरिसं धम्ममाइक्खित्तए, किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?" एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

शेष रही परिषदा ने श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"हे भदन्त ! आप द्वारा सुआख्यात, सुप्रज्ञप्त, सुभाषित, सुविनीत, निर्ग्रन्थ प्रवचन अनुत्तर—सर्व श्रेष्ठ है। हे भगवन् ! आपने धर्म का आख्यान करते हुए उपशम का स्वरूप समझाया, उपशम का स्वरूप समझाते हुए विवेक को समझाया, विवेक की व्याख्या करते हुए पाप कर्मों से विरमण का निरूपण किया, विरमण का निरूपण करते हुए पाप कर्म न करने की विवेचना की, दूसरा ऐसा कोई श्रमण या ब्राह्मण नहीं है जो इस प्रकार से धर्म का प्रतिपादन कर सके। इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ?' इस प्रकार से कहकर वह परिषदा जिस दिशा से आई थी, वापस उसी दिशा में लौट गई।

कूणिय-कयधम्मदेसणपसंसा सगिहगमणं च—

३२६. तए णं से कूणिए राया भंभसारपुत्ते समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सुयक्खाए ते भंते ! निग्गंथे पावयणे-जाव-किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?" एवं वंदित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।

कोणिक-कृत धर्म देशना-प्रशंसा और स्वगृह गमन—

३२६. तत्पश्चात् बिम्बसारपुत्र कोणिक राजा श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर हृदय में धारण कर, हर्षित और संतुष्ट हुआ—यावत्—विकसित हृदय हो उठा। उठकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया। वन्दन नमस्कार करके बोला—'हे भदन्त ! आपने निर्ग्रन्थ प्रवचन का सुन्दर रूप से जो आख्यान-निरूपण किया है—यावत्—इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ?' इस प्रकार कहकर जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।

सुभद्दाईणं कूणियभज्जाणं धम्मदेसणापसंसा सगिहगमणं च—

३२७. तए णं ताओ सुभद्दापमुहाओ देवीओ समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा णिसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हिययाओ उट्ठाए उट्ठेंति, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणं पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति णमंसंति, वंदित्ता णमंसित्ता एवं वयासी—"सुयक्खाए णं भंते ! निग्गंथे पावयणे-जाव-किमंग पुण एत्तो उत्तरतरं ?", एवं वंदित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूयाओ तामेव दिसिं पडिगयाओ।

—ओव० सु० २७-३७

सुभद्रा आदि कोणिक भार्याओं की धर्म-देशना प्रशंसा और स्वगृह-गमन—

३२७. तत्पश्चात् सुभद्रा आदि देवियाँ श्रमण भगवान महावीर से धर्म श्रवण कर और उसको हृदय में धारण कर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय हो अपने आसन से उठीं, उठकर उन्होंने श्रमण भगवान महावीर की तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की। प्रदक्षिणा करके वन्दन नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—हे भदन्त ! आप द्वारा सुआख्यात निर्ग्रन्थ प्रवचन अनुत्तर है—यावत्—इससे श्रेष्ठ धर्म के उपदेश की तो बात ही कहाँ ?' इस प्रकार कहकर जिस दिशा से आई थीं, उसी दिशा में लौट गईं।

॥ कोणिक का महावीर समवसरणगमन; धर्म-श्रवण प्रसंग समाप्त ॥

२१. अम्मडपरिव्वायगकहाणयं

२१. अम्बड परिव्राजक कथानक

सत्तण्हं सयाणं अम्मडसिस्साणं अडवीए संगहियउदग-क्खओ—

३२८. तेणं कालेणं तेणं समएणं अम्मडस्स परिव्वायगस्स सत्त अंतेवासिसयाइं गिम्हकालसमयंसि जेट्ठामूलमासंसि गंगाए महा-नईए उभओ-कूलेणं कंपिल्लपुराओ णयराओ पुरिमतालं णयरं संप-ट्ठिया विहाराए ।

तए णं तेसिं परिव्वायगाणं तीसे अगामियाए छिण्णोवायाए दीहमद्धाए अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से पुव्वग्गहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुञ्जमाणे झीणे ।

सात सौ अम्बड शिष्यों का अटवी में संग्रहीत उदकक्षय—

३२८. उस काल और उस समय ग्रीष्म ऋतु के समय में जेठ के महीने में अम्बड परिव्राजक के सात सौ अन्तेवासी गंगा महानदी के दोनों किनारों से काम्पिल्यपुर नामक नगर से पुरिमताल नगर की ओर जाने के लिए उद्यत हुए ।

तब वे परिव्राजक ऐसे जंगल में पहुँचे कि जहाँ कोई गाँव नहीं था, जहाँ किसी का आवागमन भी नहीं होता था और मार्ग विकट था, ऐसे जंगल का कुछ भाग पार कर पाये थे कि चलते समय अपने साथ लिया पानी पीते पीते क्रमशः समाप्त हो गया ।

अदत्तअगहणवयं पालयाणं सत्तसयाणं परिव्वायगाणं-संलेहणापुव्वं समाहिमरणं देवलोगुप्पत्ती य—

३२९. तए णं ते परिव्वाया झीणोदगा समाणा तण्हाए पारब्भ-माणा पारब्भमाणा उदगदातारमपस्समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामिआए-जाव-अडवीए कंचि देसंतरमणुपत्ताणं से उदए-जाव-झीणे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमीसे अगामियाए-जाव-अडवीए उदगदाता-रस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करित्तए" त्ति कट्टु अण्ण-मण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तीसे अगामि-याए-जाव-अडवीए उदगदातारस्स सव्वओ समंता मग्गणगवेसणं करेंति करेत्ता उदगदातारमलभमाणा दोच्चंपि अण्णमण्णं सद्दा-वेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"इहण्णं देवाणुप्पिया ! उदगदातारो णत्थि, तं णो खलु कप्पइ, अम्हं अदिण्णं गिण्हित्तए, [क्वचित्—अदिण्णं भुञ्जित्तए] अदिण्णं साइज्जित्तए, तं मा णं अम्हे इयाणिं आवइकालं पि अदिण्णं गिण्हामो अदिण्णं साइज्जामो, मा णं अम्हं तवलोवे भविस्सइ । तं सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! तिदंडए य कुण्डि-याओ य कंचणियाओ य करोडियाओ य भिसियाओ छण्णालए य अंकुसए य केसरियाओ य पवित्तए य गणेत्तियाओ य छत्तए य वाहणाओ य पाउयाओ य धाउरत्ताओ एगंते एडित्ता गंगं महा-णइं ओगाहित्ता वालुया-संथारए संथरित्ता संलेहणाझूसियाणं

अदत्त अग्रहण-व्रतपालक सात सौ परिव्राजकों का संलेखना पूर्वक समाधिमरण और देवलोकोत्पत्ति—

३२९. तब वे परिव्राजक पानी समाप्त हो जाने पर प्यास से व्याकुल हो गये और पानी देने वाला दिखाई न देने पर उन्होंने परस्पर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर कहा—

'हे देवानुप्रियो ! जिसमें कोई गाँव नहीं है—यावत्—इस जंगल का कुछ भाग ही पार हो पाये हैं कि वह साथ में लाया जल—यावत्—क्रमशः समाप्त हो गया है, अतएव हे देवानुप्रिय ! हमें यही श्रेयस्कर है कि ग्रामविहीन—यावत्—अटवी में किसी पानी देने वाले की सब दिशाओं में चारों ओर मार्गणा-गवेषणा (खोज-बीन) करना उचित होगा । इस प्रकार कहकर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया । स्वीकार करके उस ग्राम विहीन—यावत्—अटवी में चारों ओर किसी जल देने वाले की मार्गणा-गवेषणा की, गवेषणा करने पर किसी पानी देने वाले दाता के नहीं मिलने पर पुनः दूसरी बार परस्पर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—

'देवानुप्रियो ! यहाँ कोई पानी देने वाला नहीं है और हमें अदत्त—बिना दिया हुआ लेना कल्पता नहीं है। (कहीं पर पाठान्तर है—अदत्त सेवन करना) इसलिए हम इस समय आपत्तिकाल में भी अदत्त का ग्रहण न करें, सेवन न करें, जिससे हमारे तप का लोप—भंग नहीं होगा । अतः हमारे लिये यही—श्रेयस्कर है कि हे देवानुप्रियो ! हम त्रिदण्डों, कुण्डिकाओं, कांचनिकाओं, करोटिकाओं, वृषिकाओं, छिनालिकाओं, अंकुशों, केसरिकाओं, पवित्रिकाओं, गणेत्रिकाओं, छत्रों-पादुकाओं, खड़ाऊओं, धातुरक्तों—गेरुए रंग से रंगे वस्त्रों को, एकान्त में छोड़कर गंगा महानदी में घुसकर बालु का संस्तारक—बिछौना, बिछाकर संलेखना की

भत्तपाणपडियाइक्खियाणं पाओवगयाणं कालं अणवकंखमाणाणं विहरित्तए[1]" त्ति कट्टु, अण्णमण्णस्स अंतिए एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तिदंडए य-जाव-एगंते एडेंति, एडेत्ता गंगं महाणइं ओगाहेंति ओगाहित्ता वालुआसंथारए संथरंति, संथरित्ता वालुया-संथारयं दुरुहिंति, दुरुहित्ता पुरत्थाभिमुहा संपलियंकनिसण्णा करयल-जाव-कट्टु एवं वयासी—

आराधना कर भोजन-पान का त्याग कर पादोपगमन रूप स्थिति में शरीर को स्थित करके—निश्चेष्ट अवस्था को स्वीकार कर मरण की आकांक्षा न करते हुए स्थित हों।' इसप्रकार कहकर परस्पर एक दूसरे ने इस विचार को स्वीकार किया, स्वीकार करके त्रिदण्ड आदि उपकरणों को एकान्त में डाल दिया, डालकर गंगा महानदी में प्रवेश किया, प्रवेश करके वालुका का बिछौना बिछाया, बिछाकर उस वालुका संस्तारक पर आसीन हुए और आसीन होकर पद्मासन से बैठकर दोनों हाथ जोड़े—यावत्—इस प्रकार बोले—

"नमोऽत्थु णं अरहंताणं-जाव-संपत्ताणं, नमोऽत्थु णं समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-संपाविउकामस्स, नमोऽत्थु णं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अम्हं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स। पुव्विं णं अम्हेहिं अम्मडस्स परिव्वायगस्स अंतिए थूलगपाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए, मुसावाए अदिण्णादाणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, थूलए परिग्गहे पच्चक्खाए जावज्जीवाए, इयाणिं अम्हे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए सव्वं पाणाइवायं पच्चक्खामो जावज्जीवाए, एवं-जाव-सव्वं परिग्गहं पच्चक्खामो जावज्जीवाए, सव्वं कोहं माणं मायं लोहं पेज्जं दोसं कलहं अब्भक्खाणं पेसुण्णं परपरिवायं अरइरइं मायामोसं मिच्छादंसणसल्लं अकरणिज्जं जोगं पच्चक्खामो जावज्जीवाए, सव्वं असणं पाणं खाइमं साइमं चउव्विहं पि आहारं पच्चक्खामो जावज्जीवाए।

'अर्हन्—यावत्—सिद्धावस्था को प्राप्त सिद्धों को नमस्कार हो। सिद्धावस्था को प्राप्त करने के लिये समुद्यत श्रमण भगवान महावीर को हमारा नमस्कार हो, हमारे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक अम्बड़ परिव्राजक को नमस्कार हो। पहले हमने अम्बड़ परिव्राजक के पास स्थूल प्राणातिपात का, मृषावाद का, अदत्तादान का, सब प्रकार के मैथुन का और स्थूल परिग्रह का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान किया था, इस समय श्रमण भगवान महावीर की साक्षी से हम सब प्रकार की हिंसा—यावत्—सब प्रकार के परिग्रह का जीवन पर्यन्त के लिये प्रत्याख्यान करते हैं, सब प्रकार के क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, कलह, अभ्याख्यान, पैशुन्य, पर-परिवाद, अरति, रति, मायामृषा, मिथ्यादर्शन-शल्य, अकरणीययोग का यावज्जीवन के लिये प्रत्याख्यान करते हैं तथा जीवनपर्यन्त के लिये सभी प्रकार के अशन-पान-खाद्य स्वाद्य रूप चार प्रकार के आहार का भी प्रत्याख्यान—त्याग करते हैं।

जं पि य इमं सरीरं इट्ठं कंतं पियं मणुण्णं मणामं पेज्जं थेज्जं वेसासियं संमयं बहुमयं अणुमयं भंडकरंडगसमाणं मा णं सीयं मा णं उण्हं मा णं खुहा मा णं पिवासा मा णं वाला मा णं चोरा मा णं दंसा मा णं मसगा मा णं वाइयपित्तियसिंभियसंनिवाइय विविहा रोगायंका परीसहोवसग्गा फुसंतु—त्ति कट्टु एयंपि णं चरमेहिं ऊसास-णीसासेहिं वोसिरामि" त्ति कट्टु संलेहणा-झूसणा-झूसिया भत्तपाणपडियाइक्खिया पाओवगया कालं अणवकंखमाणा विहरंति।

यद्यपि हमें यह शरीर इष्ट, कान्त, प्रिय, मनोज्ञ, मनोम, प्रेय, स्थैर्यमय, वैश्वासिक, संमत, बहुमत अनुमत और आभूषणों की मंजूषा के समान प्रीतिकर है। उसे सर्दी, गरमी न लग जाये, वह भूखा न रह जाये, प्यासा न रह जाये, इसे साप न काट ले, चोरों के उपद्रव से ग्रस्त न हो जाये—अपहरण न हो जाये, डांस-मच्छर न काटें, वात-पित्त, कफ, सन्निपात आदि से जनित विविध रोगों, आतंकों, परिषहों और उपसर्गों का स्पर्श न हो इसका ध्यान रखा है, लेकिन हम इस शरीर का भी चरम उच्छ्वास निःश्वास तक के लिये व्युत्सर्जन करते है, ममता हटाते हैं। इस प्रकार विचार-निश्चय कर संलेखना द्वारा आत्मा को भावित करते हुए, आहार पानी का त्याग कर शरीर को पादप-काष्ठवत् स्थिति में स्थित कर मरण की आकांक्षा न करते हुए समय व्यतीत करने लगे।

तए णं ते परिव्वाया बहूइं भत्ताइं अणसणाए छेदेंति छेदित्ता

इस प्रकार उन परिव्राजकों ने बहुत से भक्त—भोजन अन-

1 भगवतीसूत्र शतक १४, उद्देशक ८ सूत्र २२

आलोइयपडिक्कंता समाहिपत्ता कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववण्णा। तहिं तेसिं गई दससागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता, परलोगस्स आराहगा, सेसं तं चेव।

शन द्वारा छिन्न किये, छिन्न करके आलोचना—प्रतिक्रमणा की और समाधिदशा को प्राप्त करके मृत्यु समय आने पर देह त्याग कर ब्रह्मलोककल्प में देवरूप में उत्पन्न हुए। वहाँ उनकी गति के अनुरूप दस सागरोपम की स्थिति बताई गई है। वे परलोक के आराधक हैं, अवशेष वर्णन पहले की तरह जानना चाहिये।

अम्मडस्स घरसयवसहि-आहारनिरूवणं—

३३०. बहुजणेणं भंते! अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं परूवेइ—

"एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णयरे घरसए आहारमाहरेइ, घरसए वसहिं उवेइ, से कहमेयं भंते! एवं"!

"गोयमा! जं णं से बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—'एवं खलु अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे-जाव-घरसए वसहिं उवेइ', सच्चे णं एसमट्ठे अहं पि णं गोयमा! एवमाइक्खामि-जाव-एवं परूवेमि 'एवं खलु अम्मडे परिव्वायए-जाव-वसहिं उवेइ।"

अम्बड़ का शत-गृहवास और आहार निरूपण—

३३१. प्रश्न—'हे भदन्त! बहुत से लोग एक दूसरे से इस प्रकार कहते हैं—भाषित करते हैं और प्ररूपित करते हैं—

प्रश्न—अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है तो हे भगवन्! यह कैसे?

उत्तर—गौतम! बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से जो ऐसा कहते हैं—यावत्—इस प्रकार प्ररूपित करते हैं कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर के सौ घरों में आहार करता है—यावत्—सौ घरों में वास करता है, सो यह सच है। हे गौतम! मैं भी ऐसा ही कहता हूँ—यावत्—प्ररूपित करता हूँ कि अम्बड़ परिव्राजक—यावत्—सौ घरों मे एक साथ निवास करता है।

"से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—अम्मडे परिव्वायए-जाव-वसहिं उवेइ?"

"गोयमा! अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स पगइभद्दयाए-जाव-विणीययाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स सुभेणं परिणामेणं पसत्थेहिं अज्झवसाणेहिं पसत्थाहिं लेसाहिं विसुज्झमाणीहिं अन्नया कयाइ तदावरणिज्जाणं कम्माणं खओवसमेणं ईहा-वूहा-मग्गण-गवेसणं करेमाणस्स वीरियलद्धीए वेउव्वियलद्धीए ओहिणाणलद्धीए समुप्पण्णाए जणविम्हावणहेउं कंपिल्लपुरे णयरे घरसए-जाव-वसहिं उवेइ, से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—अम्मडे परिव्वायए कंपिल्लपुरे णयरे घरसए-जाव-वसहिं उवेइ"।[1]

प्रश्न—हे भगवन्! अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर के सौ घरों में आहार करता है, सौ घर में निवास करता है? ऐसा कहने में क्या रहस्य है!

उत्तर—गौतम! अम्बड़ परिव्राजक प्रकृति से भद्र—यावत् विनयशील है, तथा निरन्तर दो-दो दिन का उपवास करते हुए अपनी भुजायें ऊँची उठाये सूर्य के सामने मुख किये आतापन भूमि में आतापना लेते हुए शुभ परिणामों, प्रशस्त अध्यवसायों, विशुद्ध होती हुई प्रशस्त लेश्याओं से तदावरणीय कर्मों का क्षयोपशम होने से ईहा, ऊहा, मार्गणा—गवेषणा करते हुए उसे वीर्यलब्धि, वैक्रियलब्धि, अवधिज्ञानलब्धि उत्पन्न हो गई है। जिससे लोगों को विस्मित करने हेतु इन लब्धियों के द्वारा काम्पिल्यपुर नगर के एक ही समय में सौ घरों में आहार करता है, सौ घरों में निवास करता है। इस परिस्थिति के कारण हे गौतम! यह कहा जाता है कि अम्बड़ परिव्राजक काम्पिल्यपुर नगर के सौ घरों में—यावत्—निवास करता है।

अम्मडस्स समणोवासयत्तं—

३३१. पहू णं भंते! अम्मडे परिव्वायए देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए?

णो इणट्ठे समट्ठे, गोयमा! अम्मडे णं परिव्वायए समणो-

अम्बड़ का श्रमणोपासकत्व—

३३२. प्रश्न—हे भगवन्! आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास छोड़कर अम्बड़ परिव्राजक अनगार अवस्था अंगीकार करने में समर्थ है?

उत्तर—हे गौतम! ऐसा सम्भव नहीं है, किन्तु अम्बड़

---

१ भगवतीसूत्र शतक १४, उद्देशक ८ सूत्र २२।

वासए अभिगयजीवाजीवे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, णवरं 'ऊसियफलिहे अवंगुयदुवारे चियत्तंतेउरघरदारपवेसी [क्वचित्—चियत्तघरंतेउरपवेसो]' एयं णं वुच्चइ ।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स थूलए पाणाइवाए पच्चक्खाए जावज्जीवाए-जाव-परिग्गहे णवरं सव्वे मेहुणे पच्चक्खाए जावज्जीवाए ।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ अक्खसोयप्पमाणमेत्तं पि जलं सयराहं उत्तरित्तए, णण्णत्थ अद्धाणगमणेणं । अम्मडस्स णं णो कप्पइ सगडं वा, एवं तं चेव भाणियव्वं-जाव-णण्णत्थ एगाए गंगामट्टियाए । अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ आहाकम्मिए वा उद्देसिए वा मीसजाए इ वा अज्झोयरए इ वा पूइकम्मे इ वा कीयगडे इ वा पामिच्चे इ वा अणिसिट्ठे इ वा अभिहडे इ वा ठइत्तए वा रइत्तए वा कंतारभत्ते इ वा दुब्भिक्खभत्ते इ वा गिलाणभत्ते इ वा वद्दलियाभत्ते इ वा पाहुणगभत्ते इ वा भोत्तए वा पाइत्तए वा । अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स णो कप्पइ मूलभोयणे वा-जाव-बीयभोयणे वा भोत्तए वा पाइत्तए वा ।

अम्मडस्स णं परिव्वायगस्स चउव्विहे अणट्ठादण्डे पच्चक्खाए जावज्जीवाए । तं जहा—अवज्झाणायरिए पमायायरिए हिंसप्पयाणे पावकम्मोवएसे ।

अम्मडस्स कप्पइ मागहए अद्धाढए जलस्स पडिग्गाहित्तए—से वि य वहमाणए, णो चेव णं अवहमाणए-जाव-से वि य परिपूए, णो चेव णं अपरिपूए; से वि य 'सावज्जे' त्ति काउं णो चेव णं अणवज्जे, से वि य 'जीवा' त्ति काउं णो चेव णं अजीवा से वि य दिण्णे' णो चेव णं अदिण्णे, से वि य हत्थपायचरुचमसपक्खालणट्ठयाए पिबित्तए वा, णो चेव णं सिणाइत्तए । अम्मडस्स कप्पइ मागहए य आढए जलस्स पडिग्गाहित्तए, से वि य वहमाणए-जाव-णो चेव णं अदिण्णे, से वि य सिणाइत्तए णो चेव णं हत्थपायचरुचमसपक्खालणट्ठयाए पिबित्तए वा ।

अम्मडस्स णो कप्पइ अण्णउत्थिया वा अण्णउत्थियदेवयाणि वा अण्णउत्थियपरिग्गहियाणि वा चेइयाइं वंदित्तए वा णमंसित्तए

परिव्राजक जीवाजीव आदि तत्वों का ज्ञाता श्रमणोपासक होकर —यावत्—आत्मा को भावित करते हुए समय व्यतीत करेगा, किन्तु जिसके घर के किवाड़ों को आगल नहीं लगी रहती है, जिसके घर का द्वार कभी बन्द नहीं रहता हो, जिसका अन्तःपुर और घर में प्रवेश करना अप्रिय नहीं लगता हो (कहीं पर यह पाठ है—जिसका घर और अन्तःपुर में प्रवेश करना अप्रिय नहीं लगता हो) श्रावक के यह तीन विशेषण यहाँ नहीं जोड़ना चाहिए ।

अम्बड़ परिव्राजक के जीवन भर के लिये स्थूल प्राणातिपात —यावत्—परिग्रह का प्रत्याख्यान है; विशेष यह कि–यावज्जीवन के लिये सब प्रकार के मैथुन का प्रत्याख्यान है, जानना चाहिए ।

अम्बड़ परिव्राजक को मार्ग गमन के अतिरिक्त गाड़ी की धुरी प्रमाण जल में भी शीघ्रता से उतरना नहीं कल्पता है । अम्बड़ परिव्राजक को गाड़ी आदि पर सवार होना नहीं कल्पता है—यहाँ से लेकर गंगा की मिट्टी के लेप तक का वर्णन पूर्व में आये वर्णन के अनुरूप कर लेना चाहिये । अम्बड़ परिव्राजक को आधाकार्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूर, साधु के निमित्त अधिक मात्रा में भोजन तैयार करना, पूतिकर्म, क्रीतकृत, प्रामित्य—उधार लिया हुआ, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, स्थापित, रचित, कान्तारभक्त, दुर्भिक्षभक्त–ग्लानभक्त वार्दलिकभक्त दुर्दिन में दरिद्रों को देने के लिये बनाया भोजन, प्राघूर्णकभक्त—अतिथियों के लिये तैयार किया हुआ भोजन, खाना-पीना नहीं कल्पता है । इसी प्रकार अम्बड़ परिव्राजक को मूल भोजन—यावत्—बीजमय भोजन खाना-पीना नहीं कल्पता है ।

अम्बड़ परिव्राजक को यावज्जीवन के लिये चार प्रकार के अनर्थदण्ड का प्रत्याख्यान है, वे अनर्थदण्ड इस प्रकार हैं—अपध्यानाचरित, प्रमादाचरित, हिंस्रप्रदान और पापकर्मोपदेश ।

अम्बड़ को मागधमान के अनुसार आधा आढक जल लेना कल्पता है, वह भी प्रवहमान किन्तु अप्रवहमान नहीं—यावत्—वह भी परिपूत वस्त्र से छना हुआ कल्प्य है किन्तु अनछना कल्प्य नहीं है । वह भी सावद्य समझकर निरवद्य समझकर नहीं, सावद्य भी उसे सजीव समझकर लेता है । अजीव समझकर नहीं लेता है । वह भी दिया हुआ, किन्तु अदत्त नहीं कल्पता है, वह भी हाथ पैर चरु चमस के प्रक्षालन और पीने के लिये ही कल्पता है । स्नान करने के लिए नहीं कल्पता है । अम्बड़ को मागधिकमान के अनुसार आढक प्रमाण जल ग्रहण करना कल्पता है और वह भी प्रवहमान–यावत्–बिना दिया हुआ नहीं कल्पता है, वह भी स्नान करने के लिये किन्तु हाथ-पैर, चरु, चमस को धोने और पीने के काम में लेना नहीं कल्पता है ।

अम्बड़ को अन्यतीर्थिक, अन्यतीर्थिकदेव और अन्य तीर्थिकों द्वारा परिगृहीत चैत्य को वन्दन-नमस्कार—यावत्—

वा-जाव-पज्जुवासित्तए वा, णण्णत्थ अरिहंते वा अरिहंतचेइयाइं वा।

पर्युपासना करना नहीं कल्पता है, किन्तु अरिहंत या अरिहंत चैत्य को वन्दन-नमस्कार आदि करना उनकी पर्युपासना करना कल्पता है।

अम्मडस्स देवभवो—

३३२. "अम्मडे णं भंते ! परिव्वायए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! अम्मडे णं परिव्वायए उच्चावएहिं सीलव्वय-गुण-वेरमण-पच्चक्खाण-पोसहोववासेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं समणोवासयपरियायं पाउणिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा बंभलोए कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं दस सागरोवमाइं ठिई पण्णत्ता। तत्थ णं अम्मडस्स वि देवस्स दस सागरोवमाइं ठिई।

अम्बड़ का देवभव—

३३२. प्रश्न—हे भगवन् ! अम्बड़ परिव्राजक काल मास में काल करके कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर—'गौतम ! अम्बड़ परिव्राजक अनेक प्रकार के सामान्य विशेष शीलव्रत, गुणव्रत, विरमण प्रत्याख्यान, पौषधोपवास आदि से आत्मा को भावित करता हुआ बहुत वर्षों तक श्रमणोपासक पर्याय का पालन करेगा। पालन करके मासिक संलेखना द्वारा आत्मा का शोधन कर, साठ भक्त (एक मास) का अनशन कर आलोचना—प्रतिक्रमणपूर्वक समाधि प्राप्त कर मरणकाल में मरण करके ब्रह्मलोककल्प में देवरूप में उत्पन्न होगा। वहाँ पर किन्हीं किन्हीं देवों की दस सागरोपम की स्थिति बताई है। वहाँ अम्बड़ देव की भी आयु स्थिति दस सागरोपम प्रमाण होगी।

अम्मडस्स दढप्पइण्णभवनिरूवणे दढप्पइण्णस्स जम्मो—

३३३. "से णं भंते ! अम्मडे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति कहिं उववज्जिहिति ?"

अम्मडस्स दढपइण्णभवो—

गोयमा ! महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति अड्ढाइं दित्ताइं वित्ताइं विच्छिण्णविउलभवणसयणासणजाणवाहणाइं बहु-धणजायरूवरययाइं आओगपओगसंपउत्ताइं विच्छड्डियपउरभत्त-पाणाइं बहुदासीदासगोमहिसगवेलगप्पभूयाइं बहुजणस्स अपरि-भूयाइं तहप्पगारेसु कुलेसु पुमत्ताए पच्चायाहिति।

अम्बड़ के दृढ़प्रतिज्ञभव निरूपण में दृढ़प्रतिज्ञ का जन्म—

३३३. प्रश्न—हे भदन्त ! वह अम्बड़ देव अपना आयुक्षय, भव-क्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देव लोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा, कहाँ उत्पन्न होगा ?

अम्बड़ का दृढ़प्रतिज्ञभव—

हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में ऐसे जो कुल हैं, यथा—धनाढ्य, दीप्त, सम्पन्न, भवन, शयन, आसन, यान, वाहन आदि विपुल साधन-सामग्री तथा सोना, चाँदी आदि धन के स्वामी हैं, आयोग-प्रयोग संप्रवृत्त-व्यापार-व्यवसाय में संलग्न हैं, जिन के यहाँ भोजन कर चुकने पर भी खाने-पीने के बहुत से पदार्थ बचते हैं तथा बहुत से नौकर-नौकरानियाँ, गाय, भैंस, बैल, भेड़-बकरी आदि होते हैं, बहुत लोगों द्वारा भी जिनका तिरस्कार किया जाना सम्भव नहीं है, इस प्रकार के कुलों में वह अम्बड़ देव (मनुष्य रूप में) उत्पन्न होगा।

तए णं तस्स दारगस्स गब्भत्थस्स चेव समाणस्स अम्मापिईणं धम्मे दढा पइण्णा भविस्सइ।

तब उस अम्बड देव के शिशु रूप में गर्भ में आने पर माता-पिता की धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा—आस्था होगी।

से णं तत्थ णवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइं-दियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपाए-जाव-ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे दारए पयाहिति।

इसके बाद पूरे नौ मास साढे सात रात्रि-दिन अतिक्रान्त होने पर बालक का जन्म होगा। उसके हाथ पैर सुकोमल होंगे—यावत्—चन्द्रमा के समान सौम्य, कान्तिमान, देखने में प्रिय एवं सुरूप होगा।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे ठिइवडियं काहिंति, बिइयदिवसे चंदसूरदंसणियं काहिंति, छट्ठे दिवसे जाग-रियं काहिंति, एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते णिव्वत्ते असुइजाय-कम्मकरणे संपत्ते बारसाहे दिवसे अम्मापियरो इमं एयारूवं गोण्णं

तब उस बालक के माता-पिता प्रथम दिवस स्थितिपतिता करेंगे, दूसरे दिन चन्द्र और सूर्यदर्शन सम्बन्धी विधि-क्रियायें करेंगे। छट्ठे दिन रात्रि जागरणा करेंगे, ग्यारह दिन बीतने के बाद जातकर्म सम्बन्धी—जन्म-सम्बन्धी अशुचि की निवृत्ति

गुणनिप्फण्णं णामधेज्जं काहिंति—'जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भत्थंसि चेव समाणंसि धम्मे दढपइण्णा तं होउ णं अम्हं दारए दढपइण्णे णामेणं'। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो णामधेज्जं करेहिंति 'दढपइण्णे' त्ति।

करने के पश्चात् इस प्रकार का गुणनिष्पन्न सार्थक नामकरण करेंगे—जब से यह दारक माता की कुक्षि में गर्भरूप से आया है तब से हमारी धर्म में दृढ़ प्रतिज्ञा—श्रद्धा हुई है, अतएव हमारे इस बालक का 'दृढ़प्रतिज्ञ' यह नाम हो। इस प्रकार से इस बालक के माता पिता बारहवें दिन 'दृढ़प्रतिज्ञ' यह नामकरण करेंगे,

[पुस्तकान्तरगतोऽधिकः पाठः—तए णं तस्स दढपइण्णस्स अम्मापियरो अणुपुव्वेणं ठिइवडियं चंदसूरदरिसणं च जागरियं नामधेज्जकरणं परंगामणं च पचंकमणगं च पच्चक्खाणं च जेमणगं च पिंडवद्धावणं च पजंपावणं च कण्णवेहणगं च संवच्छरपडिलेहणगं च चोलोवणयणं च अण्णाणि य बहूणि गब्भाधाणजम्मणमाइयाइं कोउयाइं महया इड्ढिसक्कारसमुदएणं करिस्संति।

(पुस्तकान्तर में यह अधिक पाठ है—तत्पश्चात् उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक के माता पिता अनुक्रम से स्थितिपतिता, चन्द्र-सूर्य दर्शन, जागरण, नामकरण, परंगमन, प्रचंक्रमण—इन्द्रियों की अनुभव शक्ति में वृद्धि होना, भोजन का प्रतिवर्धापन, प्रजल्पन—बोलना, कर्णवेधन, सम्वत्सर प्रतिलेख (प्रथम वर्ष का जन्मोत्सव) चूलोपनयन, उपनयन आदि तथा अन्य दूसरे भी बहुत से गर्भाधान, जन्मादि सम्बन्धी कौतुक-उत्सव समारोह के साथ प्रभावक रूप में करेंगे।

तए णं से दढपइण्णे दारए पंचधाइपरिक्खित्ते, तं जहा—खीरधाईए मज्जणधाईए मंडणधाईए अंकधाईए कीलावणधाईए अण्णाहि य बहूहिं खुज्जाहिं चिलाइयाहिं विदेसपरिमंडियाहिं सदेसनेवत्थगहियवेसाहिं विणीयाहिं इंगियचितियपत्थियवियाणियाहिं निउणकुसलाहिं चेडियाचक्कवालवरतरुणिवंदपरियाल-संपरिवुडे वरिसधरकंचुइज्जमहत्तरगवंदपरिक्खित्ते हत्थाओ हत्थं साहरिज्जमाणे साहरिज्जमाणे, अंकाओ अंकं परिभुज्जमाणे परिभुज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवनच्चिज्जमाणे उवगाइज्जमाणे उवगाइज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे उवगूहिज्जमाणे अवयासिज्जमाणे अवयासिज्जमाणे परिवंदिज्जमाणे परियंदिज्जमाणे परिचुम्बिज्जमाणे परिचुम्बिज्जमाणे रम्मेसु मणिकुट्टिमतलेसु परंगिज्जमाणे परंगिज्जमाणे गिरिकंदरमल्लीणे विव चंपगवरपायवे निवायनिव्वाघायं सुहंसुहेणं परिवड्ढिस्सइ।]

तत्पश्चात् वह दृढ़प्रतिज्ञ दारक पाँच धात्रियों से घिरा होगा यथा—क्षीरधात्री, मज्जनधात्री, मंडनधात्री, अंकधात्री, क्रीडापन धात्री तथा बहुत सी इंगित, चिन्तित, प्रार्थित को जानने वाली निपुण, कुशल, प्रशिक्षित अपने अपने देश के वेष को पहने वाली ऐसी कुब्जा, चिलातिकी आदि देश-विदेश की तरुण दासियों के समूह से घिरा हुआ, वर्षधरों (नपुंसकों) कंचुकियों, महत्तरकों के समुदाय से परिरक्षित हाथों ही हाथों में लिया जाता हुआ, गोद से गोद में लिया जाता, दुलराया जाता, सहलाया जाता, लालन-पालन किया जाता, लाड़ किया जाता, लोरियाँ सुनाया जाता, चुम्बन किया जाता और मणिजटित रमणीय प्रांगण में चलाया जाता व्याघातरहित गिरि गुफा में स्थित श्रेष्ठ चंपक वृक्ष के समान सुखपूर्वक दिनों दिन परिवर्धित होगा—बढ़ेगा।

दढप्पइन्नस्स कलागहणं—

३३४. तं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो साइरेगट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहिकरणदिवसणक्खत्तमुहुत्तंसि कलायरियस्स उवणेहिंति।

तए णं से कलायरिए तं दढपइण्णं दारगं लेहाइयाओ गणियप्पहाणाओ सउणरुयपज्जवसाणाओ बावत्तरिकलाओ सुत्तओ य अत्थओ य करणओ य सेहाविहिति सिक्खाविहिति, तं जहा—

लेहं गणियं रूवं णट्टं गीयं वाइयं सरगयं पुक्खरगयं समतालं जूयं जणवायं पासगं अट्ठावयं पोरेकच्चं दगमट्टियं अण्णविहिं

दृढ़प्रतिज्ञ का कला ग्रहण—

३३४. उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को माता-पिता कुछ अधिक आठ वर्ष का होने पर शुभकरण, तिथि, दिन, नक्षत्र और मुहूर्त में शिक्षण हेतु कलाचार्य के पास ले जायेंगे।

तब कलाचार्य उस दृढ़प्रतिज्ञ बालक को लेख एवं गणित से लेकर शकुनिरुत पर्यन्त बहत्तर कलाओं को सूत्र से, अर्थ से और करण—प्रयोग से सिखायेंगे, शिक्षित करेंगे, वे बहत्तर कलायें इस प्रकार हैं—

१. लेखन, २. गणित, ३. रूप, ४. नाट्य, ५. गीत, ६. वाद्य ७. स्वरज्ञान, ८. वाद्यवादन, राग रागिनी के सुरताल ९. समानता का जानना, १०. द्यूत, ११. जनवाद—वाद-विवाद व वार्तालाप करने में निपुणता, १२. पाशक—पासा फेंकने की कला

पाणविहिं [वत्थविहिं विलेवणविहिं] सयणविहिं अज्जं पहेलियं मागहियं गाहं गीइयं सिलोगं हिरण्णजुत्ती सुवण्णजुत्ती गंधजुत्ती चुण्णजुत्ती आभरणविही तरुणीपडिकम्मं इत्थिलक्खणं पुरिसलक्खणं गयलक्खणं गोणलक्खणं कुक्कुडलक्खणं चक्कलक्खणं छत्तलक्खणं चम्मलक्खणं दंडलक्खणं असिलक्खणं मणिलक्खणं कागणिलक्खणं वत्थुविज्जं खंधारमाणं नगरमाणं वत्थुनिवेसणं वूहं पडिवूहं चारं पडिचारं चक्कवूहं गरुलवूहं सगडवूहं जुद्धं निजुद्धं जुद्धाइजुद्धं मुट्ठिजुद्धं बाहुजुद्धं लयाजुद्धं ईसत्थं छरुप्पवायं धणुव्वेयं हिरण्णपागं सुवण्णपागं वट्टखेड्डं सुत्ताखेड्डं नालियाखेड्डं पत्तच्छेज्जं कडगच्छेज्जं सज्जीवं निज्जीवं सउणरुतमिति बावत्तरिकलाओ सेहावित्ता सिक्खावेत्ता अम्मापिईणं उवणेहिति ।

१३. अष्टापद—विशेष प्रकार की द्यूत क्रीड़ा, १४. पौरस्कृत्य—तत्काल काव्य रचने की कला, १५. उदकमृत्तिका—जल तथा मिट्टी के मेल से बर्तन आदि के निर्माण की कला, १६. अन्नविधि—अन्न पैदा करने या भोजन बनाने की कला, १७. पानविधि—पेय पदार्थों को बनाने की कला, १८. वस्त्रविधि—वस्त्र सम्बन्धित ज्ञान, १९. विलेपन विधि—चंदनादि सुगन्धित द्रव्यों के लेप बनाने एवं मंडन करने का ज्ञान २०. शयनविधि—शैया आदि बनाने सजाने की कला, २१. आर्या आदि मात्रिक छन्दों को रचने की कला २२. प्रहेलिका २३. मागधिका—मगध प्रदेश की मागधी भाषा में काव्य रचना, २४. गाथा—मागधी से इतर प्राकृत भाषाओं में छन्द रचना का ज्ञान, २५. गीतिका, २६. श्लोक, २७. हिरण्ययुक्ति—चाँदी बनाने की कला, २८. स्वर्णयुक्ति—सोना और सोने के आभूषण बनाने की कला, २९. गंधयुक्ति, ३०. चूर्णयुक्ति, ३१. आभरणविधि—आभूषण बनाने व धारण करने की कला, ३२. तरुणीप्रतिकर्म—युवती सज्जा की कला, ३३. स्त्री-लक्षण, ३४. पुरुष-लक्षण, ३५ हयलक्षण, अश्व जातियों व उनके लक्षणों को जानने का ज्ञान, ३६. गज-लक्षण, ३७. गोलक्षण, ३८. कुक्कुटलक्षण, ३९. चक्रलक्षण, ४०. छत्रलक्षण, ४१. चर्मलक्षण—चमड़े से बनी ढाल आदि वस्तुओं के लक्षण का ज्ञान, ४२. दण्डलक्षण, ४३ असिलक्षण, ४४. मणिलक्षण, ४५. काकणीलक्षण, ४६. वास्तु विद्या—भवन निर्माण की कला, ४७. स्कन्धावारमान, ४८. नगरनिर्माण, ४९. वास्तुनिवेशन—भवनों आदि के उपयोग के सम्बन्ध में जानकारी ५०. व्यूह-प्रतिव्यूह, ५१. चार-प्रतिचार, ५२. चक्रव्यूह, ५३. गरुडव्यूह, ५४. शकटव्यूह, ५५. युद्ध, ५६. नियुद्ध, ५७. युद्धातियुद्ध, ५८. मुष्टियुद्ध, ५९. बाहुयुद्ध, ६०. लतायुद्ध, ६१. इषुशास्त्र क्षुरप्रवाह, ६२. धनुर्वेद, ६३. हिरण्यपाक, ६४. स्वर्णपाक, ६५. वृत्तखेल, ६६. सूत्रखेल, ६७. नालिकाखेल, ६८. पत्रच्छेद, ६९. कटच्छेद्य, ७०. सजीव, ७१. निर्जीव और ७२. शकुनरुत इन बहत्तर कलाओं को सिखाकर, इनका शिक्षण देकर अभ्यास कराकर कलाचार्य बालक को माता को सौंप देंगे।

तए णं तस्स दढपइण्णस्स दारगस्स अम्मापियरो तं कलायरियं विउलेणं असणपाणखाइमसाइमेणं वत्थगंधमल्लालंकारेण य सक्कारेहिंति सम्माणेहिंति, सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइस्संति, दलइत्ता पडिविसज्जेहिंति ।

तब उस दृढ़ प्रतिज्ञ बालक के माता-पिता कलाचार्य का विपुल, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार से सत्कार सम्मान करेंगे, सत्कार सम्मान करके प्रचुर जीवन को चित प्रीतिदान देंगे और प्रीतिदान देकर विदा करेंगे।

पत्तजुव्वणस्स दढपइन्नस्स वेरग्गं—

३३५. तए णं से दढपइण्णे दारए बावत्तरिकलापंडिए नवंगसुत्तपडिबोहिए अट्ठारसदेसीभासाविसारए गीयरई गंधव्वनट्टकुसले हयजोही गयजोही रहजोही बाहुजोही बाहुप्पमद्दी वियालचारी साहसिए अलंभोगसमत्थे यावि भविस्सइ ।

प्राप्त यौवन दृढ़प्रतिज्ञ का वैराग्य—

३३६. तत्पश्चात् बहत्तर कलाओं में पण्डित मर्मज्ञ, प्रतिबुद्ध सुप्त नवांग से युक्त अठारह देशी भाषा विशारद, गीत, रसिक, गंधर्व और नाट्यकुशल, अश्वयोद्धा, गजयोद्धा, रथयोद्धा, बाहुयोद्धा, बाहुप्रमापी, विकालचारी, साहसिक वह दृढ़ प्रतिज्ञ बालक भोग भोगने में समर्थ हो जायगा।

तए णं दढपइण्णं दारगं अम्मापियरो बावत्तरिकलापंडियं-जाव-अलंभोगसमत्थं वियाणित्ता विउलेहिं अण्णभोगेहिं पाणभोगेहिं लेणभोगेहिं वत्थभोगेहिं सयणभोगेहिं कामभोगेहिं उवणिमंतेहिंति ।

तब माता-पिता दृढ़प्रतिज्ञ बालक को बहत्तर कला पण्डित —यावत्— भोग भोगने में समर्थ जानकर विपुल अन्नभोग, पान-भोग, लयनभोग, वस्त्रभोग, शयनभोग और कामभोगों को भोगने के लिये आमन्त्रित करेंगे-संकेत करेंगे ।

तए णं से दढपइण्णे दारए तेहिं विउलेहिं अण्णभोगेहिं-जाव-सयणभोगेहिं णो सज्जिहिति णो रज्जिहिति णो गिज्झिहिति णो मुज्झिहिति णो अज्झोववज्जिहिति ।

किन्तु वह दृढ़प्रतिज्ञ बालक उन विपुल अन्नभोगों—यावत्—शयनभोगों के प्रति आकृष्ट नहीं होगा, उनमें अनुरक्त, गृद्ध, मूच्छित नहीं होगा तथा मन को नहीं लगायेगा—ध्यान नहीं देगा ।

से जहा णामए उप्पले इ वा पउमे इ वा कुमुमे इ वा नलिणे इ वा सुभगे इ वा सुगंधे इ वा पोंडरीए इ वा महापोंडरीए इ वा सयपत्ते इ वा सहस्सपत्ते इ वा सयसहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे णोवलिप्पइ पंकरएणं णोवलिप्पइ जलरएणं, एवामेव दढपइण्णे वि दारए कामेहिं जाए भोगेहिं संवुड्ढे णोवलिप्पिहिति भोगरएणं णोवलिप्पिहिति मित्तणाइणियगसयणसंबंधिपरिजणेणं ।

जैसे उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगन्धिक, पौंडरीक महापौंडरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र और शतसहस्रपत्र आदि विविध प्रकार के कमल कीचड़ में उत्पन्न होते हैं, जल में संवर्धित होते हैं किन्तु पंकरज, जलरज से लिप्त नहीं होते हैं । इसी प्रकार दृढ़ प्रतिज्ञ बालक भी काममय जगत में उत्पन्न हुआ, भोगों के बीच संवर्धित हुआ पर कामरज से लिप्त नहीं होगा, भोगरज से लिप्त नहीं होगा और मित्र, ज्ञाति निज स्वजन, संबंधी परिचित जनों में आसक्त नहीं होगा ।

दढप्पइन्नस्स पव्वज्जा-सिद्धिगमणनिरूवणं—

दृढ़प्रतिज्ञ की प्रव्रज्या-सिद्धिगमन निरूपण—

३३६. से णं तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झिहित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति ।

३३६. वह तथारूप स्थविरों के पास केवल बोधि को प्राप्त करेगा सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा, बोधि को प्राप्त करके गृहवास का त्याग कर अनगारत्व में प्रव्रजित होगा ।

से णं भविस्सइ अणगारे भगवंते ईरियासमिए-जाव-गुत्तबंभयारी ।

वे अनगार भगवान होंगे । जो ईर्यासमिति में समित प्रयत्नशील होंगे—यावत्—गुप्त ब्रह्मचारी होंगे ।

तस्स णं भगवंतस्स एएणं विहारेणं विहरमाणस्स अणंते अणुत्तरे निव्वाघाए निरावरणे कसिणे पडिपुण्णे केवलवरणाणदंसणे समुप्पज्जिहिति ।

इस प्रकार के विहारचर्या से प्रवर्तमान होने वाले उन भगवान दृढ़प्रतिज्ञ को अनन्त, अनुत्तर, निर्व्याघात, निरावरण, कृत्स्न, प्रतिपूर्ण उत्तम केवलज्ञान और केवलदर्शन उत्पन्न होंगे ।

तए णं से भगवं अरहा जिणे केवली भविस्सइ, सदेवमणुयासुरस्स लोगस्स परियागं जाणिहिति पासिहिति, तं जहा—आगइं गइं ठिइं चवणं उववायं तक्कं पच्छाकडं पुरेकडं मणो माणसियं खइयं भुत्तं कडं पडिसेवियं आवीकम्मं रहोकम्मं अरहा अरहस्सभागी तं तं कालं मणोवयकायजोगे वट्टमाणाणं सव्वलोए सव्वजीवाणं सव्वभावे जाणमाणे पासमाणे विहरिस्सइ ।

तब वे भगवान अर्हत् जिन केवली होंगे, देव, मनुष्य, असुर, युक्त लोक की पर्यायों को जानेंगे देखेंगे, यथा—उनकी आगति, गति स्थिति, च्यवन, उपपात, तर्क, पश्चात्कृतक्रिया, पूर्वकृतक्रिया, मनोभाव, मानसिकवृत्ति, क्षमित भुक्त, प्रतिसेवित, प्रगट कर्म, गुप्त कर्म आदि को जान सकेंगे, इसप्रकार से वे अर्हत् सर्वज्ञ दृढ़प्रतिज्ञ उस काल के मन, वचन, काययोग में प्रवर्तमान समस्त लोक एवं समस्त जीवों के सर्व भावों को जानते देखते हुए विचरण करेंगे ।

तए णं से दढपइण्णे केवली बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अप्पाणं झूसित्ता सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता जस्सट्ठाए कीरइ नग्गभावे मुण्डभावे अण्हाणए अदंतवणए केसलोए बंभचेरवासे अच्छत्तगं अणोवाहणगं भूमिसेज्जा फलहसेज्जा कट्ठसेज्जा परघरपवेसो

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवलपर्याय का पालन करेंगे, पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शोधित कर साठ भोजनों को अनशन से छेदकर जिस लक्ष्य के लिये नग्नभाव, मुण्डभाव, अस्नान, अदंतवन, केशलोच फलक शैया, काष्ठशैया पर—घर प्रवेश, लब्धालब्ध में साम्य

लद्धावलद्धं [वित्तीए माणावमाणणाओ] परेहिं हीलणाओ खिंसणाओ निंदणाओ गरहणाओ तालणाओ तज्जणाओ परिभवणाओ पव्वहणाओ उच्चावया गामकंटगा बावीसं परीसहोवसग्गा अहियासिज्जंति तमट्ठमाराहित्ता चरिमेहिं उस्सासणिस्सासेहिं सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणमंतं करेहिति ।

—ओव० सु० ३९-४०

ब्रह्मचर्यवास, अच्छत्रक, पादुकाधारण नहीं करना, भूशैया, (वृत्ति—मान अपमान सहन करना) दूसरों द्वारा कृत भर्त्सनापूर्ण अवहेलना, खिंसणा—मार्मिक वचनों में अपमान, निन्दा, गर्हा, ताड़ना, तर्जना, परिभवना, परिव्यथना, नाना प्रकार की इन्द्रियों के लिए कष्टकर स्थितियाँ बाइस परिषह और उपसर्ग स्वीकार या सहन किये उस लक्ष्य की आराधना करके चरम उच्छ्वास निश्वास में सिद्ध होंगे, बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिवृत्त होंगे और सर्व दुःखों का अन्त करेंगे

॥ अम्बड परिव्राजक कथानक समाप्त ॥

□ □

२२. उदायी हत्थिराया भूयाणंदे य

रायगिहे उदायी, हत्थिराया भूयाणंदे य—

३३७. रायगिहे-जाव-एवं वयासी—उदायी णं भंते ! हत्थिराया कओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता उदायिहत्थिरायत्ताए उववन्ने ?

गोयमा ! असुरकुमारेहिंतो देवेहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता उदायिहत्थिरायत्ताए उववन्ने ।

उदायी णं भंते ! हत्थिराया कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठितियंसि निरयावासंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं भंते ! तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

हत्थिराया भूयाणंदे—

३३८. भूयाणंदे णं भंते ! हत्थिराया कओहिंतो अणंतरं उव्व-

२२. हस्तीराज उदाई और भूतानन्द

राजगृह में हस्तीराज उदायी और भूतानन्द—

३३७. राजगृह नगर में श्रमण भगवान महावीर पधारे—यावत्—गौतम स्वामी ने भगवान से इस प्रकार पूछा—

प्रश्न—हे भदन्त ! उदायी हस्तीराज अनन्तर कहाँ से निकलकर उदायी हस्तीराज के रूप में उत्पन्न हुआ है ?

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देवों से अनन्तर निकलकर उदायी हस्तीराज के रूप में उत्पन्न हुआ है ।

प्रश्न—हे भदन्त ! उदायी हस्तीराज मरण समय में मरण करके कहाँ जायेगा ! कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर—हे गौतम ! इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नरकावास में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा ।

प्रश्न—हे भदन्त ! अनन्तर वहाँ से निकल कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर—हे गौतम ! महाविदेह वर्ष-क्षेत्र में सिद्ध होगा—यावत्—सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

हस्तीराज भूतानन्द—

३३८. गौतम ने भगवान से पूछा—हे भदन्त ! भूतानन्द

हि सा भूयाणंदे हत्थिरायत्ताए उववन्ने ?

एवं जहेव उदायी-जाव-अंतं काहिति ।

—भग० स० १७, उ० १

हस्तीराज अनन्तर कहाँ से निकलकर हस्तीराज भूतानन्द के रूप में उत्पन्न हुआ है ?

ऊपर जैसा उदायी का वर्णन किया गया है, उसी प्रकार सर्व दुःखों का अन्त करेगा पर्यन्त, इस भूतानन्द हस्तीराज के लिए भी जानना चाहिए ।

॥ हस्तीराज उदायी और भूतानन्द कथानक समाप्त ॥

□ □

२३. मद्दुयसमणोवासयकहा

२३. मद्रुक श्रमणोपासक कथा

रायगिहे अन्नउत्थिया मद्दुओ समणोवासओ य—

३३९. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ गुणसिलए चेइए, वन्नओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ। तस्स णं गुणसिलयस्स चेतियस्स अदूरसामंते बहवे अन्नउत्थिया परिवसंति, तं जहा—कालोदाई सेलोदाई एवं जहा सत्तमसए अन्नउत्थिउद्देसए-जाव-से-कहमेयं मन्ने एवं ?

राजगृह में अन्यतीर्थिक और मुद्रक श्रमणोपासक—

३३९. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था, वर्णन करो, गुणशिलक चैत्य था—यावत्—पृथ्वी शिलापट्टक पर्यंत वर्णन करो। उस गुणशिलक चैत्य के समीप बहुत से अन्य तीर्थिक रहते थे यथा—कालोदायी, शैलोदायी इत्यादि सातवें शतक के अन्यतीर्थिक उद्देशकवत्—यावत्—यह कैसे माना जा सकता है ? तक यहाँ वर्णन समझ लेना चाहिए ।

भगवओ महावीरस्स रायगिहे समोसरणं—

३४०. तत्थ णं रायगिहे नयरे मद्दुए नामं समणोवासए परिवसइ, अड्ढे-जाव-अपरिभूए अभिगयजीवाजीवे-जाव-विहरइ ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अन्नया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे-जाव-समोसढे, परिसा-जाव-पज्जुवासइ ।

भगवान महावीर का राजगृह नगर में समवसरण—

३४१. उस राजगृह नगर में धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत, मद्रुक नामक श्रमणोपासक निवास करता था । जो जीव अजीवादि तत्वों का—यावत्—ज्ञाता था ।

तत्पश्चात् किसी समय श्रमण भगवान महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए—यावत्—पधारे—परिषदा निकली—यावत्—पर्युपासना करने लगी ।

समवसरणे गच्छमाणस्स मद्दुयस्स अन्नउत्थिएहिं सह अत्थिकायविसओ संलावो—

३४१. तए णं मद्दुए समणोवासए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए ण्हाए-जाव-सरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, सओ गिहाओ पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं रायगिहं नयरं-जाव-निगच्छइ, निगच्छित्ता तेसिं अन्नउत्थियाणं अदूरसामंतेणं वीईवयइ ।

तए णं ते अन्नउत्थिया मद्दुयं समणोवासयं अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासंति, पासित्ता अन्नमन्नं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमा कहा अविउप्पकडा

समवसरण में जाते हुए मद्रुक का अन्यतीर्थिकों के साथ अस्तिकाय के विषय में संलाप—

३४२. तत्पश्चात् मद्रुक श्रमणोपासक इस समाचार को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसितहृदय होकर—स्नान—अलंकृत शरीर होकर अपने घर से निकला, अपने घर से निकलकर पाद विहार से चलते हुए राजगृह नगर से—यावत्—निकला, निकलकर उन अन्यतीर्थिकों के समीप से गुजरा ।

तब उन अन्यतीर्थिकों ने मद्रुक श्रमणोपासक को समीप से जाते हुए देखा, देखकर परस्पर एक दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! हमें यह विषय अविदित

इमं च णं मद्दुए समणोवासए अम्हं अदूरसामंतेणं वीईवयइ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं मद्दुयं समणोवासगं एयमट्ठं पुच्छित्तए ''त्ति कट्टु अन्नमन्नस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुर्णेति, अन्नमन्नस्स एयमट्ठं पडिसुणेत्ता जेणेव मद्दुए समणोवासए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मद्दुयं समणोवासगं एवं वयासी—

एवं खलु मद्दुया ! तव धम्मायरिए धम्मोवएसए समणे णायपुत्ते पंच अत्थिकाए पन्नवेइ जहा सत्तमे सए अन्नउत्थियउद्देसए-जाव-से कहमेयं मद्दुया ! एवं ?

तए णं से मद्दुए समणोवासए ते अन्नउत्थिए एवं वयासी— अह कज्जं कज्जइ जाणामो पासामो, अह कज्जं न कज्जइ न जाणामो न पासामो।

तए णं ते अन्नउत्थिया मद्दुयं समणोवासगं एवं वयासी— केस णं तुमं मद्दुया ! समणोवासगाणं भवसि, जे णं तुमं एयमट्ठं न जाणसि न पाससि ?

तए णं से मद्दुए समणोवासए ते अन्नउत्थिए एवं वयासी— अत्थि णं आउसो ! वाउयाए वाइ ?

हंता मद्दुया ! वाइ।

तुब्भे णं आउसो ! वाउयायस्स वायमाणस्स रूवं पासह ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

अत्थि णं आउसो ! घाणसहगया पोग्गला ?

हंता अत्थि,

तुब्भे णं आउसो ! घाणसहगयाणं पोग्गलाणं रूवं पासह ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

अत्थि णं आउसो ! अरणिसहगए अगणिकाए ?

हंता अत्थि,

तुब्भे णं आउसो ! अरणिसहगयस्स अगणिकायस्स रूवं पासह ?

णो इणट्ठे समट्ठे।

अत्थि णं आउसो ! समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं ?

हंता अत्थि,

है और यह मद्रुक श्रमणोपासक हमारे समीप से जा रहा है, अतएव हमें यह उचित है कि हे देवानुप्रिय ! हम मद्रुक श्रमणोपासक से यह विषय पूछें—इस प्रकार कहकर एक दूसरे ने इस बात को स्वीकार किया, परस्पर एक दूसरे ने इस बात को स्वीकार करके जहाँ मद्रुक श्रमणोपासक था, वहाँ आये, आकर मद्रुक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—

'हे मद्रुक ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र पंच अस्तिकायों की प्ररूपणा करते हैं इत्यादि सातवें शतक के अन्यतीर्थिक उद्देशकवत्—यावत्—हे मद्रुक ! यह कैसे माना जाये ?

तब उस मद्रुक श्रमणोपासक ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा— 'कार्य करने से उसका अस्तित्व जाना और देखा जाता है, बिना कार्य के उसको (कारणों को) नहीं जाना जाता है और न देखा जा सकता है।'

तब उन अन्यतीर्थिकों ने मद्रुक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—''तुम कैसे श्रमणोपासक हो। हे मद्रुक ! जो तुम इस अर्थ को (पंच अस्तिकाय को) जानते देखते नहीं हो (फिर भी मानते हो) ?'

तब मद्रुक श्रमणोपासक ने उन अन्यतीर्थिकों से इस प्रकार कहा—हे आयुष्मन् ! वायु बहती है (प्रवाहित होती है) क्या यह ठीक है ?

हाँ, मद्रुक ! यह ठीक है कि वायु बहती है।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! बहती हुई वायु के रूप को क्या तुम देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—यह अर्थ समर्थ नहीं है अर्थात् वायु का रूप दिखाई नहीं देता।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! गन्ध गुण युक्त पुद्गल है ?

अन्यतीर्थिक—हाँ है।

मद्रुक—आयुष्मन्—तुम उन गन्ध गुण वाले पुद्गलों के रूप को देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—यह अर्थ समर्थ नहीं है—यानी उन गन्धगुण युक्त पुद्गलों को नहीं देखते हैं

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! क्या अरणि के काष्ट में अग्निकाय है ?

अन्यतीर्थिक—हाँ, है।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! क्या तुम अरणि-काष्ठगत अग्निकाय के रूप को देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—यह अर्थ समर्थ नहीं है।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! समुद्र के उस पार रूप (पदार्थ) हैं ?

अन्यतीर्थिक—हाँ, है।

तुब्भे णं आउसो ! समुद्दस्स पारगयाइं रूवाइं पासह ?

णो इणट्ठे समट्ठे,

अत्थि णं आउसो ! देवलोगगयाइं रूवाइं ?

हंता अत्थि,

तुब्भे णं आउसो ! देवलोगगयाइं रूवाइं पासह ?

णो इणट्ठे समट्ठे,

एवामेव आउसो ! अहं वा तुब्भे वा अन्नो वा छउमत्थो जइ जो जं न जाणइ न पासइ तं सव्वं न भवइ एवं भे सुबहुए लोए ण भविस्सतीति कट्टु ते अन्नउत्थिए एवं पडिहणइ, एवं पडिह-णित्ता जेणेव गुणसिलए उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं पंचविहेणं अभिगमेणं-जाव-पज्जुवासइ ।

भगवया महावीरेण मद्दुयपसंसाकरणाइ—

३४३. मद्दुया ! इ समणे भगवं महावीरे मद्दुयं समणोवासयं एवं वयासी—सुट्ठु णं मद्दुया ! तुमं ते अन्नउत्थिए एवं वयासी, साहु णं मद्दुया ! तुमं ते अन्नउत्थिए एवं वयासी, जे णं मद्दुया ! अट्ठं वा हेउं वा पसिणं वा वागरणं वा अन्नायं अदिट्ठं अस्सुयं अमयं अविण्णायं बहुजणमज्झे आघवेइ पन्नवेइ-जाव-उवदंसेइ, से णं अरिहंताणं आसायणाए वट्टइ, अरिहंतपन्नत्तस्स धम्मस्स आसा-यणाए वट्टइ, केवलीणं आसायणाए वट्टइ, केवलिपन्नत्तस्स धम्मस्स आसायणाए वट्टइ, तं सुट्ठु णं तुमं मद्दुया ! ते अन्नउत्थिए एवं वयासी, साहु णं तुमं मद्दुया ! -जाव-एवं वयासी ।

तए णं मद्दुए समणोवासए समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पच्चासन्ने-जाव-पज्जुवासइ ।

३४४. तए णं समणे भगवं महावीरे मद्दुयस्स समणोवासगस्स तीसे य -जाव-परिसा पडिगया ।

३४५. तए णं मद्दुए समणोवासए समणस्स भगवओ महावीरस्स-जाव-निसम्म-हट्ठतुट्ठे पसिणाइं पुच्छइ, पसिणाइं पुच्छित्ता

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! तुम समुद्र के पारगत रूपों (पदार्थों) को देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! क्या देवलोक में रहे हुए पदार्थ हैं ?

अन्यतीर्थिक—हाँ, है ।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! क्या तुम देव लोक में रहे हुए पदार्थों को देखते हो ?

अन्यतीर्थिक—यह अर्थ समर्थ नहीं है ।

मद्रुक—हे आयुष्मन् ! इसी प्रकार मैं तुम या कोई भी छद्मस्थ व्यक्ति जिन पदार्थों को नहीं जानते, नहीं देखते, उन उन सभी का अस्तित्व नहीं माना जाये तो लोक में रहे हुए उन बहुत से पदार्थों का अभाव हो जायेगा, ऐसा कहकर मद्रुक ने उन अन्यतीर्थिकों को निरुत्तर कर दिया, और इस प्रकार से निरुत्तरित करके जहाँ गुणशिलक उद्यान था, उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आया, आकर पाँच प्रकार के अभिगमपूर्वक श्रमण भगवान महावीर के समीप आया——पर्युपासना करने लगा ।

भगवान महावीर द्वारा मद्रुक की प्रशंसा आदि करना—

३४२. हे मद्रुक ! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने मद्रुक श्रमणोपासक से इस प्रकार कहा—हे मद्रुक ! तुमने उन अन्यतीर्थिकों को ठीक उत्तर दिया है, हे मद्रुक ! तुमने उन अन्यतीर्थिकों को यथार्थ उत्तर दिया है, हे मद्रुक ! जो व्यक्ति बिना जाने देखे, और सुने किसी अदृष्ट, अश्रुत, असम्भव, अविज्ञात अर्थ, हेतु और प्रश्न का उत्तर बहुत से मनुष्यों के बीच कहता, बतलाता है—यावत् दर्शाता है, वह अरिहन्तों की आशातना करता है, अरिहन्त प्रज्ञप्त धर्म की, केवली की और केवलिभाषित धर्म की आराधना करता है । हे मद्रुक ! तुमने अन्यतीर्थिकों को यथार्थ उत्तर दिया है । हे मद्रुक ! तुमने—यावत्—उन अन्यतीर्थिकों को ठीक उत्तर दिया है ।,

तत्पश्चात् भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर मद्रुक श्रमणोपासक ने हृष्ट-तुष्ट हो श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अति दूर न अति निकट —यावत् पर्युपासना करने लगा ।

३४४. इसके बाद श्रमण भगवान महावीर ने मद्रुक श्रमणो-पासक और उस परिषदा को धर्म कथा कही—यावत्—परिषदा वापस चली गई ।

३४५. तत्पश्चात् मद्रुक श्रमणोपासक ने श्रमण भगवान महावीर से —यावत्—धर्म कथा धारण कर हर्षित और सन्तुष्ट हो प्रश्न

अट्ठाइं परियादियइ, परियादिइत्ता उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता-जाव-पडिगए।

पूछे, प्रश्न पूछकर अर्थ को जान अथवा जानकर अपने आसन से उठा, उठकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया और वन्दन-नमस्कार करके—यावत्—वापस लौट गया।

मद्दुयस्स अणंतरभवनिरूवणं—

मद्रुक का अनन्तर भव निरूपण—

३४६. 'भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—पभू णं भंते ! मद्दुए समणोवासए देवाणुप्पियाणं अंतियं-जाव-पव्वइत्तए ?

णो इणट्ठे समट्ठे एवं जहेव संखे तहेव अरुणाभे-जाव-अंतं काहिइ।

—भगवती. श. १८ उ. ७

३४६. हे भगवन ! ऐसा कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार किया, वन्दन नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'हे भदन्त ! क्या मद्रुक श्रमणोपासक आप देवानुप्रिय के पास—यावत्—प्रव्रजित होने में समर्थ हैं ?

भगवान ने उत्तर दिया—यह अर्थ समर्थ नहीं है, इत्यादि शंख श्रमणोपासक के समान अरुणाभ विमान में देवरूप में उत्पन्न होकर—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेगा।

॥ मद्रुक श्रमणोपासक कथा समाप्त ॥

॥ धर्मकथानुयोग—चतुर्थ स्कन्ध श्रमणोपासक कथानक समाप्त ॥

परिशिष्ट

[आनन्द आदि श्रमणोपासकों द्वारा आराधित श्रावक प्रतिमाओं और संलेखना (समाधिमरण) का उल्लेख उनके वर्णन में आया है, अतः पाठकों की जिज्ञासापूर्ति हेतु उनकी आराधना विधि और स्वरूप यहाँ संक्षेप में दी जा रही है।]

प्रतिमा एवं संलेखना विधि

प्रतिमा का अभिप्राय है—प्रतिज्ञा-विशेष, व्रत-विशेष, तप-विशेष, विशेष साधना पद्धति, किसी प्रकार का दृढ़ कठोर संकल्प।

प्रतिमाओं की विशेषता यह है कि इनकी आराधना करते समय साधक का संकल्प वज्र के समान कठोर और पर्वत के समान अचल होता है, किसी भी प्रकार विघ्न-बाधा से न वह घबराता है, न अपने स्वीकृत नियम से डिगता है, अपितु दृढ़तापूर्वक उसका पालन करता है।

ये प्रतिमाएँ ११ हैं। इनकी विशिष्ट साधना भूमिकाओं की साधना करके श्रावक अपनी आत्मिक उन्नति के शिखर पर पहुँचता है।

(१) **दर्शन प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक निर्दोष, शुद्ध और निर्मल सम्यग्दर्शन का पालन करता है, उसकी श्रद्धा मेरु के समान अचल होती है, देव-गुरु धर्म पर उसका दृढ़ श्रद्धान होता है। वह केवल पंच परमेष्ठी को ही शरण मानता है, शरीर-संस्कार और सांसारिक भोगों के प्रति उदासीन रहता है, सत्य मार्ग के अन्वेषण में निरत रहता है।

उसकी श्रद्धा देव-गुरु-धर्म के प्रति इतनी प्रगाढ़ होती है कि देव, दानव, मानव, पशु कोई भी उसे विचलित नहीं कर सकते। न भय उसे डिगा सकता है और न कोई प्रलोभन उसे लुभा सकता है।

(२) **व्रत प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक श्रमणोपासक अपने मूल व्रतों (अणुव्रतों—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, स्वदार-संतोष, इच्छापरिमाण) का पालन दृढ़तापूर्वक सम्यक् रूप से करता है। (उत्तरव्रतों (३ गुणव्रत) और (४ शिक्षाव्रत) की भी साधना-आराधना करता है।

(३) **सामायिक प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक श्रमणोपासक अपने सम्पूर्ण बल-वीर्य-पराक्रम और उत्साह एवं उल्लास के साथ प्रतिदिन कम से कम २ घड़ी (४८ मिनट) तक गृहस्थ सम्बन्धी कार्य-कलापों को छोड़कर समताभाव की आराधना—समत्वसाधना—सामायिक करता है।

सामायिक में वह—(१) समताभाव, (२) चतुर्विंशतिस्तव, (३) गुरु-वन्दन, (४) प्रत्याख्यान, (५) कायोत्सर्ग और (६) प्रतिक्रमण; सामायिक के इन छह अंगों की साधना करता है। इसप्रकार वह राग-द्वेष पर विजय प्राप्त करता है, भोगेच्छाओं को सीमित करता है और शरीर के ममत्व त्यागने की साधना करता है।

(४) **पौषध प्रतिमा**—इस प्रतिमा की आराधना एक-दिनरात (२४ घंटे) की होती है। समस्त सांसारिक कार्यों को त्यागकर, शरीर-संस्कार का विसर्जन करके साधक धर्मस्थानक अथवा पौषधशाला में जाकर धर्म-जागरणा करता है। इस २४ घंटे का समय वह गुरु के सान्निध्य में अथवा गुरु न हों तो स्वयं ही अथवा बहुश्रुत के सान्निध्य में आत्म-चिन्तन-मनन, स्वाध्याय, धर्म-ध्यान आदि में व्यतीत करता है।

साधक एक माह में २ चतुर्दशी, २ अष्टमी, पूर्णिमा और अमावस्या—इन छह पर्व दिनों में पौषध प्रतिमा की प्रतिपालना करता है।

(५) **नियम प्रतिमा**—इस पाँचवीं प्रतिमा में साधक इन पाँच नियमों की प्रतिपालना करता है—

(क) स्नान नहीं करना

(ख) रात्रि में चारों प्रकार के आहार (अशन, पान, खादिम, स्वादिम) का त्याग

(ग) मुकलीकृत रहना अर्थात् धोती की लाँग नहीं लगाना

(घ) दिन में पूर्ण ब्रह्मचर्य का पालन करना और रात्रि में भी अब्रह्मसेवन की मर्यादा करना

(च) एक रात्रि की प्रतिमा का भली-भाँति पालन करना।

इस प्रतिमा का आराधक सचित्त जल का भी प्रयोग नहीं करता।

(६) **ब्रह्मचर्य प्रतिमा**—इस प्रतिमा की आराधना करता हुआ श्रमणोपासक ब्रह्मचर्य का पालन करता है, ब्रह्मचर्य में दूषण लगने की सम्भावना हो वह ऐसा हास्य-विनोद भी नहीं करता।

(७) **सचित्त त्याग प्रतिमा**—इस प्रतिमा में सभी प्रकार के सचित्त आहार आदि का त्याग कर दिया जाता है।

(८) **आरम्भ त्याग प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक घर एवं व्यापार सम्बन्धी कार्य नहीं करता।

(९) **प्रेष्य परित्याग प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक पुत्र, सेवक आदि से भी घर एवं व्यापार सम्बन्धी कार्य नहीं करवाता। वह घर एवं व्यापार सम्बन्धी कार्यों में अनुमति नहीं देता। वाहनों का त्याग कर देता है। जलयान, वायुयान, स्कूटर, रिक्शा, बैलगाड़ी, अश्व, ऊँट, हाथी आदि किसी भी प्रकार की सवारी का उपयोग न स्वयं करता है और न किसी दूसरे से ही करवाता है।

(१०) **उद्दिष्ट भक्त त्याग प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक अपने लिए बने भोजन को भी नहीं खाता। वह अपने सिर के बालों का छुरे से मुण्डन करता है; किन्तु गृहस्थ के चिन्ह स्वरूप शिखा (चोटी) रखता है। वह वचनयोग का संवर भी करता है। कोई प्रश्न पूछे जाने पर यदि वह जानता है तो कहता है—'मैं जानता हूँ' और यदि नहीं जानता है तो कहता है—'मैं नहीं जानता'।

वह अपना अधिकांश समय स्वाध्याय, ध्यान आदि धर्मक्रियाओं में लगाता है और मन-वचन-काय—तीनों योगों का संवर करता है।

(११) **श्रमणभूत प्रतिमा**—इस प्रतिमा का आराधक गृह-त्याग कर देता है, वह श्रमणों के साथ अथवा धर्मस्थानक में रहता है, श्रमण जैसी उसकी वेश-भूषा होती है, भिक्षा द्वारा भोजन प्राप्त करता है, केशलोच करता है—अशक्त अवस्था में छुरे से मुण्डन भी करा सकता है।

इन प्रतिमाओं की साधना क्रमशः होती है, अर्थात् पहली प्रतिमा के बाद दूसरी प्रतिमा, फिर तीसरी और इस प्रकार अन्त में ग्यारहवीं।

प्रथम प्रतिमा का आराधना काल १ मास, दूसरी का २ मास, तीसरी का ३ मास, चौथी का ४ मास, पाँचवीं का ५ मास, छठी का ६ मास, सातवीं का ७ मास, आठवीं का ८ मास, नौवीं का ९ मास, दसवीं का १० मास और ग्यारहवीं का ११ मास होता है।

इन प्रतिमाओं की आराधना के बाद सामान्यतया श्रमणोपासक श्रमण बन जाता है और यदि वह अशक्त हो तो श्रमणोपासक ही बना रहता है।

संलेखना विधि

संलेखना का पूरा नाम '**अपच्छिममारणंतिय संलेहणा झूसणा आराहणा**' है। इसका अभिप्राय है—अन्तिम समय अर्थात् मृत्यु सन्निकट हो, उस समय की जाने वाली साधनाविशेष—तपविशेष, जिसमें शरीर, कषाय और ममत्व (राग) आदि भावों को कृश किया जाता है। इसी का दूसरा नाम समाधि-मरण है। इसे साधारण भाषा में संथारा भी कहा जाता है।

संलेखना स्वीकार करके साधक धीरे-धीरे आहार कम करता जाता है। पहले वह अशन का त्याग करता है और फिर शनैः-शनैः पान का भी त्याग कर देता है सिर्फ अचित्त प्रासुक जल लेता है और अन्त में उसका भी त्याग करके समाधिपूर्वक मरण स्वीकार कर लेता है।

यह सम्पूर्ण साधना बहुत ही विवेकपूर्वक की जाती है। साधक न जीवित रहने की इच्छा करता है और न ही शीघ्र मृत्यु आ जाये—ऐसी भावना रखता है; न इस लोक की आकांक्षा रखता है और न परलोक की; उसके मन के किसी कोने में भी काम-भोगों की इच्छा नहीं होती।

इसकी आगम विहित विधि इस प्रकार है—

मृत्यु का समय सन्निकट आने पर संलेखना तप का साधक पौषधशाला का प्रमार्जन करता है, मल-मूत्र त्यागने के स्थान का प्रमार्जन करता है, चलने-फिरने की क्रिया का प्रतिक्रमण करता है। तत्पश्चात् पूर्व या उत्तर दिशा की ओर पल्यंक (पालथी) आदि आसन लगाकर दर्भादि के आसन पर बैठे और हाथ जोड़कर सिर से आवर्तन करता हुआ मस्तक पर अंजलिबद्ध होकर '**नमोत्थुणं अरिहंताणं जाव संपत्ताणं**' पाठ बोलकर सिद्ध भगवान को नमस्कार करता है। फिर '**नमोत्थुणं जाव संपाविउकामाणं**' यह पाठ बोलकर महाविदेह के विहरमान तीर्थंकरों को नमस्कार करता है। साधु-साध्वी, श्रावक-श्राविका चतुर्विध संघ से खमत-खामणा करता है। पहले धारण किये हुए व्रतों में कोई अतिचार लगे हों तो उनकी आलोचना-निन्दना-गर्हणा करता है। हिंसा से लेकर मिथ्यादर्शन शल्य तक के अठारह पाप-स्थानकों का तीन करण (कृत-कारित-अनुमोदना) और तीन योग (मन-वचन-काय) से त्याग करता है। जीवन पर्यन्त चार प्रकार के आहार (अशन-पान-खादिम-स्वादिम) का त्याग करता है, अपने शरीर से ममत्व हटाता है और अतिचार रहित संलेखना तप की आराधना करते हुए समाधिमरण प्राप्त करता है।

यह संलेखना तप अथवा समाधिमरण की विधि है, जो श्रमणोपासक की अन्तिम समय की साधना-आराधना है। ❑

५

धम्मकहाणुओगो

[धर्मकथानुयोग]

पंचमो खंधो – पंचमस्कन्ध

निन्हव कथाएँ

पंचमो खंधो

निण्हवकहाणगाणि

पंचम स्कन्ध

निन्हव कथाएँ

□ धर्मकथानुयोग के पंचम स्कन्ध में भगवान महावीर के शासन में हुए सात प्रवचन-निह्नवों के कथानक संकलित है।

□ निह्नव—जैन परम्परा का एक पारिभाषिक शब्द है। 'नि' उपसर्गपूर्वक 'ह्नु' धातु का अर्थ है—अपलाप करना।

जो व्यक्ति किसी आप्त पुरुष के सिद्धान्त को मानता हुआ भी किसी विशेष बात में, आग्रह या अभिनिवेशपूर्वक विरोध करता है और फिर अपने हठाग्रह के कारण स्वयं एक अलग मत का प्रवर्तक बन बैठता है, उसे निन्हव कहा जाता है।

□ भगवान महावीर के शासन में इस प्रकार के सात प्रवचन निन्हव निम्नानुसार निम्न काल में हुए—

१. जमालि— भगवान महावीर के सर्वज्ञ काल के १६ वें वर्ष में।
२. तिष्यगुप्त- भगवान महावीर के सर्वज्ञ काल के १६ वर्ष पश्चात्।
३. आषाढ—भगवान महावीर-निर्वाण के २१४ वर्ष पश्चात्।
४. अश्वमित्र—भगवान महावीर निर्वाण के २२० वर्ष पश्चात्।
५. गंग आचार्य- भगवान महावीर निर्वाण के २२८ वर्ष पश्चात्।
६. षडुलुक (रोहगुप्त) -भगवान महावीर निर्वाण के ५४४ वर्ष पश्चात्।
७. गोष्ठामाहिल— भगवान महावीर निर्वाण के ५८४ वर्ष पश्चात्।

□ सात निन्हवों में गौशालक की गणना नहीं है। किंतु उसे भी निन्हववत् माना गया है, अतः इस स्कन्ध में गौशालक कथानक भी ले लिया है।

अज्झयणा	अध्ययन
१. सत्तण्हं पवयण निण्हवाणं नाम-धम्मायरिय-नगरनिद्देसो	१. सात प्रवचन निह्नवों के नाम—धर्माचार्य—नगर निर्देश
२. जमालि निण्हवकहाणयं	२. जमाली निह्नव कथानक
३. आजीवियतित्थयर-गोसालयनिण्हवकहाणयं	३. आजीविक तीर्थंकर—गोशालक निह्नव कथानक

१. सत्तण्हं पवयणनिण्हवाणं नाम–धम्मायरिय-नगर निद्देसो—

१. समणस्स णं भगवओ महावीरस्स तित्थंसि सत्त पवयणनिण्हवा पन्नत्ता, तं जहा—

१. बहुरता २. जीवपएसिया ३. अवत्तिता ४. सामुच्छेइत्ता ५. दोकिरिता ६. तेरासिता ७. अबद्धिता।

एएसि णं सत्तण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्त धम्मायरिया हुत्था, तं जहा—

१. जमाली २. तीसगुत्ते ३. आसाढे ४. आसमित्ते ५. गंगे ६. छलुए ७. गोट्ठामाहिले।

एएसि णं सत्तण्हं पवयणनिण्हगाणं सत्तुप्पत्तिनगरा होत्था, तं जहा—

१. सावत्थी २. उसभपुरं ३. सेतविता ४-५. मिहिलमुल्लगातीरं ६. पुरिमंतरंजि ७. दसपुर णिण्हगउप्पत्तिनगराइं ॥१॥

—ठाणंगसुत्त-सत्तमं ठाणं

१. सात प्रवचन निह्नवों के नाम–धर्माचार्य-नगर निर्देश—

१. श्रमण भगवान् महावीर के तीर्थ में सात प्रवचन निह्नव हुए हैं—यथा—

१. बहुरत २. जीवप्रदेशिका ३. अव्यक्तिका ४. सामुच्छेदिका ५. दो क्रिया ६. त्रैराशिका और ७. अबद्धिका।

इन सात प्रवचन निह्नवों के सात धर्माचार्य थे, यथा—

१. जमाली, २. तिष्यगुप्त, ३. आषाढ़, ४. अश्वमित्र, ५. गंग, ६. षडुलुक और ७. गोष्ठामाहिल।

इन सात प्रवचन निह्नवों के सात उत्पत्ति नगर थे, यथा—

१. श्रावस्ती २. ऋषभपुर ३. श्वेताम्बिका ४. मिथिला ५. उल्लुकातीर ६. अंतरंजिका और ७. दशपुर।

२. जमालि णिण्हवकहाणयं

खत्तियकुण्डे जमालिकुमारो—

२. तस्स णं माहणकुण्डग्गामस्स नगरस्स पच्चत्थिमे णं एत्थ णं खत्तियकुण्डग्गामे नामं नयरे होत्था—वण्णओ। तत्थ णं खत्तियकुण्डग्गामे नयरे जमाली नामं खत्तियकुमारे परिवसइ—अड्ढे दित्ते-जाव-बहुजणस्स अपरिभूते, उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसतिबद्धेहिं णाडएहिं वरतरुणीसंपउत्तेहिं उवनच्चिज्जमाणे-उवनच्चिज्जमाणे, उवगिज्जमाणे-उवगिज्जमाणे,

२. जमालि निह्नव कथानक

क्षत्रिय कुण्ड में जमालिकुमार—

२. उस माहण कुण्ड ग्राम नगर की पश्चिम दिशा में क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नामक नगर था, वर्णन करना चाहिए। उस क्षत्रिय कुण्ड ग्राम नगर में आढ्य, दीप्त (तेजस्वी) यावत्—अपरिभूत जमाली नामक क्षत्रिय कुमार निवास करता था, जो अपने उत्तम प्रासाद के ऊपरी भाग में जहाँ मृदग बज रहे हैं। अनेक श्रेष्ठ सुन्दर तरुणियों द्वारा बत्तीस प्रकार के नाट्याभिनयों में अपने हस्तपाद आदि अवयव नचाये जा रहे हैं, जहाँ बारंबार स्तुति की जा रही

अंजलिमउलियहत्थे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तिविहाए पज्जुवासणाए पज्जुवासइ ।

हो और मस्तक पर दोनों हाथ जोड़ अंजलि करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके त्रिविध पर्युपासना से उपासना करने लगा ।

महावीरस्स धम्मकहा—

६. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स, तीसे य महतिमहालियाए इसिपरिसाए [मुणिपरिसाए जइपरिसाए देवपरिसाए अणेगसयाए अणेगसयवंदाए अणेगवंदपरियालाए ओहबले अइबले महब्बले अपरिमियबलवीरिय-तेय-माहप्प-कंति-जुत्ते सारय-नवत्थणिय-महुरगंभीर-कोंचणिग्घोस-दुन्दुभिस्सरे उरे वित्थडाए कंठे वट्टियाए सिरे समाइण्णाए अगरलाए अमम्मणाए सुव्वत्तक्खर-सण्णिवाइयाए पुण्णरत्ताए सव्वभासाणुगामिणीए सरस्सईए जोयणणीहारिणा सरेणं अद्धमागहाए भासाए भासइ] धम्मं परिकहेइ -जाव-परिसा पडिगया ।

महावीर की धर्मकथा—

६ तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली क्षत्रियकुमार और उस विशाल ऋषि परिषदा (मुनिपरिषदा, यतिपरिषदा, देवपरिषदा, अनेक सैकड़ों समूहों, अनेक सैकड़ों परिवार समूहों को ओघबली, अतिबली, महाबली, अपरिमितबल, वीर्य तेज, महत्ता एवं कांतियुक्त, शरत काल के नूतन मेघ के गर्जन, क्रौंच-पक्षी के निर्घोष, दुन्दुभि के स्वर के समान मधुर स्वरयुक्त हृदय में विस्तृत होती हुई कंठ में अवस्थित एवं मूर्धा में परिव्याप्त होती हुई, सुविभक्त अक्षरों से सम्पन्न, अस्पष्ट उच्चारण वर्जित सुव्यक्त अक्षर सन्निपात लिये हुए, पूर्णता तथा स्वर माधुर्य युक्त श्रोताओं की सभी भाषाओं में परिणत होने वाली, एक योजन तक पहुँचने वाले स्वर में [अर्धमागधी भाषा में] धर्म का आख्यान किया यावत्—परिषदा वापस चली गई ।

जमालिकुमारस्स पव्वज्जासंकप्पो—

७. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिए [णंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाण हियए] उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, [पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, अब्भुट्ठेमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं, एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! असंदिद्धमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते !]—से जहेयं तुब्भे वदह, जं नवरं—देवाणुप्पिया ! अम्मापियरो आपुच्छामि, तए णं अहं देवाणुप्पियाणं अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वयामि ।

जमालीकुमार का प्रव्रज्या संकल्प—

७. तत्पश्चात् क्षत्रियकुमार जमाली ने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण कर और अवधारित कर हर्षित, संतुष्ट आनंदित (प्रसन्न, प्रीतिमना परम सौमनस भावयुक्त एवं हर्षातिरेक से विकसित हृदय) होकर अपने आसन से उठकर उसने श्रमण भगवान् महावीर की तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—"हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ (हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन की प्रतीति करता हूँ, हे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचता है, हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन में उद्यत होना चाहता हूँ, हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन इसी प्रकार का है, हे भदन्त ! निर्ग्रन्थ प्रवचन तथ्य रूप है। हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन अवितथ-सत्य है, हे भदन्त ! यह असंदिग्ध है, हे भदन्त ! मैं इसकी इच्छा करता हूँ, हे भगवन् ! यह मुझे प्रति-इच्छित है, हे भदन्त ! यह मुझे इच्छित-प्रति-इच्छित है) वह उसी प्रकार का है, जैसा आप कथन करते हैं, किन्तु इतना विशेष है कि हे देवानुप्रिय ! माता पिता से आज्ञा लूंगा, तत्पश्चात् आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित हो, गृह त्याग कर मैं अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करूँगा ।"

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

भगवान् ने उत्तर दिया—"हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध-विलम्ब, प्रमाद मत करो ।"

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता सकोरेंट मल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं महया भडचडगरपहकर-वंदपरिक्खित्ते, जेणेव खत्तियकुण्डग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खत्तियकुण्डग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गेहे जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तुरए निगिण्हइ, निगिण्हित्ता रहं ठवेइ, ठवेत्ता रहाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव अब्भिंतरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव अम्मापियरो तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अम्मापियरो जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—एवं खलु अम्मताओ ! मए समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए अभिरुइए।

तत्पश्चात् जमाली क्षत्रियकुमार श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ, उसने श्रमण भगवान् महावीर की तीनबार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसी चार घंटों वाले अश्वरथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर श्रमण भगवान् महावीर के पास से और बहुशाल चैत्य से बाहर निकला, निकल कर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर सुभटों के समूह से परिवृत्त होता हुआ जहाँ क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर था, वहाँ आया, आकर क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के मध्य में से होता हुआ जहाँ अपना घर था, जहाँ घर की बाह्य उपस्थानशाला थी, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर घोड़ों को रोका, रोककर रथ को खड़ा किया, रथ को खड़ा करके रथ से नीचे उतरा, उतरकर जहाँ अभ्यन्तर उपस्थानशाला थी, उसमें जहाँ माता-पिता थे, वहाँ आया, आकर जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म श्रवण किया है, वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट और रुचिकर है।'

तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—धन्ने सि णं तुमं जाया ! कयत्थे सि णं तुमं जाया ! कयपुण्णे सि णं तुमं जाया ! कयलक्खणे सि णं तुमं जाया ! जण्णं तुमे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मे निसंते, से वि य ते धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए अभिरुइए।

तत्पश्चात् माता-पिता ने जमाली क्षत्रियकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! तू धन्य है, तू कृतार्थ है, हे पुत्र ! तू कृतपुण्य है, हे पुत्र ! तू कृत लक्षण है कि जो तूने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुना है और वह धर्म तुझे इष्ट अत्यन्त इष्ट और रुचिकर प्रतीत हुआ है।'

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो दोच्चं पि एवं वयासी—एवं खलु मए अम्मताओ ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए धम्मे निसंते, से वि य मे धम्मे इच्छिए, पडिच्छिए अभिरुइए। तए णं अहं अम्मताओ ! संसारभउव्विग्गे, भीते जम्मण-मरणेणं, तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तब जमाली क्षत्रियकुमार ने दूसरी बार अपने माता पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैंने श्रमण भगवान् महावीर से धर्म सुना है, वह धर्म मुझे इष्ट, अत्यन्त इष्ट एवं रुचिकर लगा है. हे माता पिता ! मैं संसार के भय से उद्विग्न हुआ हूँ, जन्म-जरण से भयभीत हुआ हूँ, अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा अनुमति प्राप्त कर श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार धर्म स्वीकार करना चाहता हूँ।''

अम्मापियरेहिं पव्वज्जागहणणिवारणं जमालिणा य समत्थणं-

८. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माता तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं अमणुण्णं अमणामं अस्सुयपुव्वं गिरं सोच्चा निसम्म सेया-गयरोमकूवपगलंतचिलिणगत्ता, सोगभरपवेवियंगमंगी नित्तेया दीण-विमणवयणा, करयलमलिय व्व कमलमाला, तक्खणओलुग्गदुब्बल-सरीरलावण्णसुन्ननिच्छाया, गयसिरीया पसिढिलभूसणपडंतखुण्णिय-संचुण्णियधवलवलय-पब्भट्ठउत्तरिज्जा, मुच्छावसणट्ठचेतगरुई, सुकु-मालविकिण्णकेसहत्था, परसुणियत्त व्व चंपगलया, निव्वत्तमहे व्व इंदलट्ठी, विमुक्कसंधिबंधणा कोट्टिमतलंसि धसत्ति सव्वंगेहिं संनि-वडिया।

माता पिता द्वारा प्रव्रज्या ग्रहण निवारण और जमाली द्वारा समर्थन—

८. इसके बाद जमाली क्षत्रियकुमार की माता उस अनिष्ट (अनचाहे) अकांत अप्रियकर, अमनोज्ञ, अनिच्छनीय, अश्रुतपूर्व वाणी को सुनकर और उस पर मनन कर शरीर के रोम कूपों से झरते हुए पसीने से भीग गई, शोक के भार से उसका सारा शरीर कंपित होने लगा, वह निस्तेज हो गई, उसका मुख दीन और शोकातुर हो गया, हाथों से मसली हुई कमल माला की तरह उसका शरीर म्लान और दुर्बल हो गया, वह लावण्य रहित प्रभा रहित और शोभा रहित हो गई। उसके शरीर पर पहने हुए आभूषण ढीले हो गये, उसकी चूड़ियाँ हाथों से गिर पड़ी

हो और टूट कर चूर्ण हो गई, उसका उत्तरीय वस्त्र अस्त व्यस्त हो गया, मूर्छा द्वारा उसका चैतन्य विलुप्त हो गया, उसका सुकुमाल केश पाश बिखर गया, कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता के समान और उत्सव पूरा हो जाने पर इन्द्र ध्वज दण्ड के समान उसके संधि-बन्धन शिथिल हो गये और 'धस' करती हुई सभी अंगों से धरती पर गिर पड़ी।

तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया ससंभमोवत्तियाए तुरियं कंचणभिंगारमुहविणिग्गय-सीयलजल-विमलधार-परिसिच्चमाण-निव्वावियगायलट्ठी, उक्खेवय-तालियंट-वीयणगजणियवाएणं, सफुसिएणं अंतेउरपरिजणेणं आसासिया समाणी रोयमाणी कंदमाणी सोयमाणी विलवमाणी जमालिखत्तियकुमारं एवं वयासी—"तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणब्भूए जीविऊसविए हियनंदिजणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग, पुण पासणयाए ? तं नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पयोगं, तं अच्छाहि ताव जाया ! -जाव-ताव अम्हे जीवामो तओ पच्छा अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

इसके बाद जमाली क्षत्रियकुमार की वह शोकातुर माता शीघ्र ही दासियों द्वारा स्वर्ण की झारियों के मुख से निकली हुई शीतल और निर्मल जलधारा के सिंचन से स्वस्थ एवं बांस के बने उत्क्षेपकों (पंखों) तथा ताड़पत्र के बने हुए जल बिन्दु युक्त बीजनों की हवा से अंतःपुर के परिजनों द्वारा आश्वस्त किये जाने पर रोती हुई, आक्रन्दन करती हुई, शोक करती हुई और विलाप करती हुई क्षत्रियकुमार जमाली से इस प्रकार बोली—'हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता बेटा है, तू हमें इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, स्थैर्य, विश्वासपात्र संमत, बहुमत, अनुमत, रत्न करंडक के समान, रत्नों में प्रमुख रत्न के समान, जीवन को श्वासोच्छ्वास के समान हृदय में आनन्द उत्पन्न करने वाला, गूलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन के लिये कहना ही क्या है, अतः हे पुत्र ! हम एक क्षण के लिए भी तेरा वियोग नहीं चाहते हैं इसलिये हे पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं यावत् तब तक रुक जाओ, इसके बाद जब हम कालधर्म को प्राप्त हो जायें और तुम्हारी वृद्धावस्था आ जाये, तब कुलवंश की वृद्धि करके तुम निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित हो गृहवास का त्याग कर अनगारत्व अंगीकार करना।'

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—"तहा वि णं तं अम्मताओ ! जण्णं तुब्भे मम एवं वदह—तुमं सि णं जाया ! अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते तं चेव-जाव-पव्वइहिसि; एवं खलु अम्मताओ ! माणुस्सए भवे अणेगजाइ-जरा-मरण-रोग-सारीर-माणसपकामदुक्खवेयण-वसणसतोवद्दवाभिभूए अधुवे अणितिए असासए संझब्भरागसरिसे जलबुब्बुदसमाणे कुसग्गजलबिंदुसन्निभे सुविणदंसणोवमे विज्जुलयाचंचले अणिच्चे सडण-पडण-विद्धंसणधम्मे, पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्मताओ ! के पुव्विं गमणयाए, के पच्छा गमणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तब उस जमाली क्षत्रियकुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता पिता ! अभी जो आपने कहा कि 'हे पुत्र ! तू हमारा इकलौता पुत्र है, इष्ट है, कांत है आदि—यावत्-प्रव्रजित होना यह बात सत्य है परन्तु हे माता पिता ! यह मनुष्य भव जन्म, जरा, मरण, रोग आदि अनेक शारीरिक और मानसिक दुःखों की अत्यन्त वेदना से, सैंकड़ों व्यसनों (कष्टों) से उपद्रवों से अभिभूत है, अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है, संध्याकालीन रंगों के समान, जल के बुदबुदे के समान, कुशाग्र पर टिके हुए जल बिन्दु के समान, स्वप्न दर्शन के समान, बिजली की चमक के समान चंचल और अनित्य है। सड़ना, पड़ना, गलना एवं विनष्ट होना इसका धर्म (स्वभाव) है, पहले या पीछे अवश्य ही इसको छोड़ना पड़ेगा, हे माता पिता ! इसे कौन जानता है कि कौन पहले जायेगा और कौन पीछे जायेगा, इसलिये हे माता-पिता ! आपकी आज्ञा—अनुमति प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के पास मुण्डित हो गृहवास का त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ।''

९. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—"इमं च ते जाया ! सरीरगं पविसिट्ठरूवं लक्खण-वंजण-गुणोववेयं उत्तमबल-वीरियसत्तजुत्तं विण्णाणवियक्खणं ससोहग्गगुणसमूसियं अभिजायमहक्खमं विविहवाहि-रोगरहियं,, निरुवहय-उदत्त-लट्ठपंच-िंदियपडुं पढमजोव्वणत्थं अणेगउत्तमगुणेहिं संजुत्तं, तं अणुहोहि ताव जाया ! नियगसरीररूव-सोहग्ग-जोव्वणगुणे, तओ पच्छा अणुभूय नियगसरीररूव-सोहग्ग-जोव्वणगुणे अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

९. तब माता-पिता ने उस जमाली क्षत्रियकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! तेरा यह शरीर विशिष्ट रूप, लक्षण, व्यंजन और गुणों से युक्त है, उत्तम बल, वीर्य और सत्त्व सहित है, विज्ञान मे विचक्षण है, सौभाग्य गुण से उन्नत है, कुलीन है और अत्यन्त क्षमता वाला है विविध प्रकार के व्याधि और रोग से रहित है, निरुपहत, उदात्त और मनोहर है, पाँच इन्द्रिय युक्त है और नव-युवावस्था प्राप्त है, अनेक उत्तम गुणों से युक्त है, इसलिये हे पुत्र ! जब तक तेरे शरीर में रूप, सौभाग्य और यौवन आदि गुण हैं, तब तक तू उनका अनुभव कर। उसके बाद अपने शरीर के रूप, सौभाग्य और यौवन आदि गुणों का अनुभव करके और जब हम काल धर्म को प्राप्त हो जायें और तू परिणतवय वाला हो जाये तब कुल वंश की वृद्धि करने के पश्चात् निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित हो, गृहवास का त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना।'

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ ! जण्णं तुब्भे ममं एवं वयह—इमं च णं ते जाया ! सरीरगं तं चेव जाव-पव्वइहिसि. एवं खलु अम्मताओ ! माणुस्सगं सरीरं दुक्खाययणं, विविहवाहिसयसंनिकेतं, अट्ठियकट्ठुट्ठियं, छिराण्हारुजाल-ओणद्धसंपिणद्धं, मट्टियभंडं व दुब्बलं, असुइसंकिलिट्ठं, अणिट्ठविय-सव्वकालसंठप्पयं, जराकुणिम-जज्जरघरं व सडण-पडण-विद्धंसणधम्मं, पुव्विं वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वं भविस्सइ। से केस णं जाणइ अम्मताओ ! के पुव्विं गमणयाए, के पच्छा गमणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

माता-पिता की इस बात को सुनने के अनन्तर जमाली क्षत्रिय कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! आपने जो कहा—'हे पुत्र ! तेरा यह शरीर उत्तम रूप आदि गुणों से युक्त है इत्यादि यावत्—हमारे कालगत होने पर प्रव्रजित होना, यह ठीक ही है, परन्तु हे माता-पिता ! यह मनुष्य शरीर दुःखों का घर है, अनेक प्रकार की व्याधियों का स्थान है अस्थिरूप काष्ठ का बना हुआ है, नाड़ियों और स्नायुओं के समूह से वेष्टित है, मिट्टी के भांड के समान दुर्बल है, अशुचि से संक्लिष्ट-व्याप्त है, निरन्तर इसकी संभाल करना पड़ता है, जीर्ण घर के समान सड़ना गलना और विनष्ट होना इसका स्वभाव है, इस शरीर को पहले या पीछे एक दिन छोड़ना ही पड़ेगा; कौन जानता है कि हम में से पहले कौन जायेगा और पीछे कौन जायेगा ? इसलिये हे माता-पिता ! आपकी अनुमति प्राप्त कर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करना चाहता हूँ।"

१०. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमाओ य ते जाया ! विपुलकुलबालियाओ कलाकुसल-सव्वकाल-लालिय-सुहोचियाओ, मद्दवगुणजुत्त-निउणविणओवयारपंडियं-वियक्खणाओ, मंजुलमियमहुरभणिय-विहसिय-विप्पेक्खिय-गति-विलास-चिट्ठियविसारदाओ, अविकलकुल-सीलसालिणीओ, विसुद्धकुलवंससंताण-तंतुवद्धण-पगब्भवयभाविणीओ, मणाणुकूलहियइच्छियाओ, अट्ठ तुज्झ गुणवल्लहाओ उत्तमाओ, निच्चं भावाणुरत्तसव्वंगसुन्दरीओ। तं भुंजाहि ताव जाया ! एताहिं सद्धिं विउले माणुस्सए कामभोगे, तओ पच्छा भुत्तभोगी विसय-विगयवोच्छिण्ण कोउहल्ले अम्हेहिं कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए वड्ढियकुलवंस-तंतुकज्जम्मि

१०. तब माता-पिता ने उस जमाली क्षत्रिय कुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! तेरी जो ये बड़े कुल की बालिकायें, कला कुशल, सदैव स्नेहपूर्वक पाली गई और सुख में रही हुई, मार्दव गुण युक्त, निपुण, विनय व्यवहार में चतुर, विचक्षण, मंजुल-मृदु-मधुर भाषण, हास्य, निरीक्षण, गति, विलास, चेष्टा में विशारद विमल कुल-शील-शालिनी, विशुद्ध कुल वंश और संतान तंतु की वृद्धि करने में समर्थ यौवन वाली, मनोनुकूल हृदय से चाहने योग्य गुणवल्लभा उत्तम और सदैव भावानुराग से अनुरक्त एवं सर्वांग सुन्दर तेरी जो ये आठ पत्नियाँ हैं। हे पुत्र ! तू इनके साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों का भोग कर, तत्पश्चात् भुक्तभोगी होकर जब विषयेच्छा एवं उत्सुकता नष्ट हो जाये और हम कालगत हो

निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

जायें, परिणतवय हो जाये तब कुल-वंश की वृद्धि करके निरपेक्ष हो श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित हो गृहवास का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित होना।'

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ ! जण्णं तुब्भे मम एवं वदह—इमाओ ते जाया ! विपुलकुलबालियाओ-जाव-पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ ! माणुस्सगा कामभोगा उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाणग-वंत-पित्त-पूय-सुक्क-सोणिय-समुब्भवा, अमणुण्णदुरुय-मुत्त-पूइय-पुरीस-पुण्णा, मयगंधुस्सास-असुभनिस्सासउव्वेयणगा, बीभच्छा, अप्पकालिया, लहुसगा, कलमलाहिवासदुक्खा बहुजणसाहारणा, परिकिलेसकिच्छदुक्खसज्झा, अबुहजणणिसेविया, सदा साहुगरहणिज्जा, अणंतसंसारवद्धणा, कडुगफलविवागा चुडुलिव्व अमुच्चमाणा, दुक्खाणुबंधिणो, सिद्धिगमणविग्घा। से केस णं जाणइ अम्मताओ ! के पुव्विं गमणयाए ? के पच्छा गमणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

तब जमाली क्षत्रिय कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—"हे माता-पिता ! आपने जो ये कहा कि विशाल कुल वंश की बालिकायें इत्यादि—यावत् प्रव्रजित होना; तो हे माता-पिता ! ये मनुष्य सम्बन्धी काम-भोग निश्चित रूप से विष्ठा, मूत्र, श्लेष्म, सिंघाण, वमन, पित्त, राध (पीप), शुक्र और शोणित से उत्पन्न हुए हैं, वे अमनोज्ञ, घृणित मूत्र और मल से भरपूर तथा दुर्गन्ध से युक्त हैं, मृत कलेवर के समान गंध वाले एवं उच्छ्वास-निश्वास से उद्वेग उत्पन्न करने वाले, बीभत्स, अल्पकाल रहने वाले, लघु-तुच्छ कल-मल के स्थान रूप होने से दुःख रूप हैं और सर्वजन साधारण हैं, काम भोग शारीरिक और मानसिक दुःख साध्य हैं, अज्ञानी पुरुषों द्वारा सेवित एवं उत्तम पुरुषों द्वारा सदा निन्दनीय हैं, अनन्त संसार की वृद्धि करने वाले परिणाम में कटु फल वाले हैं, जलते हुए घास के पूले के स्पर्श के समान दुःखदायी तथा कठिनता से छूटने वाले हैं; दुःखों का अनुबंधन कराने वाले हैं और सिद्धि गमन में विघ्नरूप हैं। अतएव हे माता-पिता ! मैं आपकी आज्ञा लेकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।"

११. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो एवं वयासी—इमे य ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए सुबहु हिरण्णे य, सुवण्णे य, कंसे य, दूसे य, विउलधण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संतसार-सावएज्जे, अलाहि-जाव-आसत्तमाओ कुलवंसाओ पकामं दाउं, पकामं भोत्तुं पकामं परिभाएउं, तं अणुहोहि ताव जाया ! विउले माणुस्सए इड्ढि-सक्कार-समुदए, तओ पच्छा अणुहूयकल्लाणे, वड्ढियकुलवंस तंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि।

११. जमाली की इस भावना को सुनकर माता-पिता ने जमाली क्षत्रिय कुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! यह जो दादा, परदादा और पिता के परदादा से प्राप्त हुआ बहुत सा हिरण्य, स्वर्ण, कांस्य, वस्त्र, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मौक्तिक, शंख, शिला प्रवाल, रक्तरत्न (माणक) आदि रूप सारभूत द्रव्य विद्यमान हैं यावत्—वह इतना है कि सात पीढ़ियों तक पुष्कल इच्छानुसार दिया जावे, भोगा जाये, वितरित किया जाये तो भी समाप्त होने वाला नहीं है, इसलिए हे पुत्र ! मनुष्य सम्बन्धी विपुल ऋद्धि सत्कार और अभ्युदय के साथ उसका उपयोग करो तत्पश्चात् सुख का अनुभव करके और कुल वंश की वृद्धि करके और पश्चात् निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना।'

तए णं से जमालि खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ ! जण्णं तुब्भे ममं एवं वदह—इमं च ते जाया ! अज्जय-पज्जय-पिउपज्जयागए-जाव-पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ ! हिरण्णे य सुवण्णे य-जाव-सावएज्जे, अग्गिसाहिए, चोरसाहिए, रायसाहिए, मच्चुसाहिए, दाइयसाहिए, अग्गिसामण्णे, चोरसामण्णे, रायसामण्णे, मच्चुसामण्णे, दाइयसामण्णे, अधुवे,

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! आपने जो यह कहा—यह जो दादा, परदादा और पिता के परदादा से प्राप्त धन भोगकर—यावत्—प्रव्रजित होना, तो हे माता-पिता ! ये हिरण्य, स्वर्ण—यावत्—सारभूत धन अग्नि साध्य, चोर साध्य, राज साध्य, मृत्यु साध्य और दायाद (भाई) साध्य है तथा अग्नि, चोर, राज्य, मृत्यु, दायाद सामान्य है, अध्रुव, अनित्य और अशाश्वत है, पहले

अणितिए, असासए, पुव्वि वा पच्छा वा अवस्सविप्पजहियव्वे भविस्सइ, से केस णं जाणइ अम्मताओ ! के पुव्वि गमणयाए, के पच्छा गमणयाए ? तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए।

अथवा पीछे अवश्य छोड़ना होगा। अतएव हे माता-पिता ! कौन जानता है कि हममें से पहले कौन जायेगा और पीछे कौन जायेगा ! इसलिये हे माता-पिता आपकी आज्ञा प्राप्त करके मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुण्डित होकर गृहस्थावस्था का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूँ।'

१२. तए णं तं जमालि खत्तियकुमारं अम्मताओ जाहे नो संचाएंति विसयाणुलोमाहिं बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य, आघवेत्तए वा पण्णवेत्तए वा सण्णवेत्तए वा विण्णवेत्तए वा, ताहे विसयपडिकूलाहिं संजमभयुव्वेयणकरीहिं पण्णवणाहिं पण्णवेमाणा एवं वयासी--

१२. इसके पश्चात् माता-पिता जब उस जमाली क्षत्रिय कुमार को विषयों के अनुकूल बहुत सी युक्तियों, प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों द्वारा कहने, जतलाने और समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुए तब विषयों के प्रतिकूल तथा संयम के प्रति भय और उद्वेग उत्पन्न करने वाली युक्तियों से समझाते हुए इस प्रकार कहने लगे—

एवं खलु जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले पडिपुण्णे नेयाउए संसुद्धे सल्लगत्तणे सिद्धिमग्गे मुत्तिमग्गे निज्जाणमग्गे निव्वाणमग्गे अवितहे अविसंधि सव्वदुक्खप्पहीणमग्गे, एत्थं ठिया जीवा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति।

'हे पुत्र ! यह निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर, केवल (अद्वितीय) परिपूर्ण न्याययुक्त, शुद्ध, शल्य को काटने वाला सिद्धिमार्ग, मुक्तिमार्ग, निर्याणमार्ग और निर्वाणमार्ग रूप है, यह अवितथ (असत्य रहित) है, अविसंधि (निरंतर) है और समस्त दुःखों का अंत करने वाला है, इसमें स्थित—तत्पर जीव सिद्ध, बुद्ध, मुक्त होते हैं, निर्वाण प्राप्त करते हैं एवं समस्त दुःखों का अंत करते हैं।

अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरो इव एगंतधाराए, लोहमया जवा चावेयव्वा, वालुयाकवले इव निस्साए, गंगा वा महानदी पडिसोयगमणयाए, महासमुद्दो वा भुयाहिं दुत्तरो, तिक्खं कमियव्वं गरुयं लंबेयव्वं, असिधारगं वयं चरियव्वं।

परन्तु हे पुत्र ! यह धर्म-मार्ग सर्प की एकान्त दृष्टिवद्ध एक दृष्टि की तरह एक लक्ष्यबद्ध, शस्त्र की तीक्ष्ण धार की तरह कठोर और लोहे के जौ (चने) चबाने के समान दुष्कर है, बालु के कवल (ग्रास, कौर) के समान निस्वाद है, गंगा महानदी के प्रतिस्रोत प्रवाह के सन्मुख जाने के समान तथा भुजाओं से महासमुद्र को तैरने के समान है, तीक्ष्ण तलवार आदि पर चलने जैसा है, भारी शिला उठाने जैसा है, और असिधारा पर चलने जैसा है।

नो खलु कप्पइ जाया ! समणाणं निग्गंथाणं आहाकम्मिए इ वा, उद्देसिए इ वा, मिस्सजाए इ वा, अज्झोयरए इ वा, पूइए इ वा, कीले इ वा, पामिच्चे इ वा, अच्छेज्जे, इ वा, अणिसट्ठे इ वा, अभिहडे इ वा, कंतारभत्ते इ वा, दुब्भिक्खभत्ते इ वा, गिलाणभत्ते इ वा, वद्दलियाभत्ते इ वा, पाहुणगभत्ते इ वा, सेज्जायरपिंडे इ वा, रायपिंडे इ वा, मूलभोयणे इ वा, फलभोयणे इ वा, बीयभोयणे इ वा, हरियभोयणे इ वा, भोत्तए वा पायए वा।

हे पुत्र ! श्रमण निर्ग्रन्थों को आधाकर्मिक, औद्देशिक, मिश्रजात, अध्यवपूरक, पूतिकर्म, क्रीत, प्रामित्य, अछेद्य, अनिसृष्ट, अभ्याहृत, कान्तारभक्त, दुर्भिक्ष भक्त, ग्लानभक्त, वार्दलिकाभक्त, प्राघूर्णक भक्त, शैयातर पिंड और राजपिंड लेना नहीं कल्पता है, इसी प्रकार मूल, कन्द, फल, बीज और हरी वनस्पति का भोजन करना और पीना नहीं कल्पता है।

तुमं सि च णं जाया ! सुहसमुचिए नो चेव णं दुहसमुचिए, नालं सीयं, नालं उण्हं, नालं खुहा, नालं पिवासा, नालं चोरा, नालं वाला, नालं दंसा, नालं मसगा, नालं वाइय-पित्तिय-संभियसन्निवाइए विविहे रोगायंके, परिस्सहोवसग्गे उदिण्णे अहियासेत्तए। तं नो खलु जाया ! अम्हे इच्छामो तुब्भं खणमवि विप्पयोगं तं अच्छाहि ताव जाया ! -जाव-ताव अम्हे जीवामो तओ पच्छा अम्हेहिं

हे पुत्र ! तू सुख भोग करने योग्य है दुःख का भोग करने योग्य नहीं है, तू शीत, उष्ण, भूख, प्यास, चोर, श्वापद, डांस और मच्छर के उपद्रव वात-पित्त-कफ और सन्निपात संबन्धी अनेक प्रकार के रोग, परीषह उपसर्ग सहन करने में समर्थ नहीं है। हे पुत्र ! हम एक क्षण के लिये भी तेरा वियोग सहन नहीं कर सकते हैं, इसलिये हे पुत्र ! जब तक हम जीवित हैं, तब तक

कालगएहिं समाणेहिं परिणयवए, वड्ढियकुलवंसतंतुकज्जम्मि निरवयक्खे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिसि ।

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—तहा वि णं तं अम्मताओ ! जण्णं तुब्भे मम एवं वयह—एवं खलु जाया ! निग्गंथे पावयणे सच्चे अणुत्तरे केवले तं चेव-जाव-पव्वइहिसि, एवं खलु अम्मताओ ! निग्गंथे पावयणे कीवाणं कायराणं कापुरिसाणं इहलोगपडिबद्धाणं परलोगपरंमुहाणं विसयतिसियाणं दुरणुचरे पागयजणस्स, धीरस्स निच्छियस्स ववसियस्स नो खलु एत्थं किंचि वि दुक्करं करणयाए, तं इच्छामि णं अम्मताओ ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए ।

अम्मापियरेहिं पव्वज्जाणुमोयणं—

१३. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो जाहे नो संचाएंति विसयाणुलोमाहि य, विसयपडिकूलाहि य बहूहिं आघवणाहि य पण्णवणाहि य सण्णवणाहि य विण्णवणाहि य आघवेत्तए वा पण्णवेत्तए वा सण्णवेत्तए वा विण्णवेत्तए वा, ताहे अकामाइं चेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स निक्खमणं अणुमण्णित्था ।

पव्वज्जापुव्वकिच्चं—

१४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! खत्तियकुण्डग्गामं नयरं सब्भितरबाहिरियं आसिय-सम्मज्जिओवलित्तं जहा ओववाइए-जाव-सुगंधवरगंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह य कारवेह य, करेत्ता य कारवेत्ता य एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह । ते वि तहेव पच्चप्पिणंति ।

तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया दोच्चं पि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स महत्थं महग्घं महरिहं विपुलं निक्खमणाभिसेयं उवट्ठवेह । तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा तहेव-जाव-उवट्ठवेंति ।

तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहं निसीयावेंति, निसीयावेत्ता अट्ठसएणं सोवण्णियाणं कलसाणं, अट्ठसएणं रुप्पमयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं सुवण्णरुप्पमणि-

रुक जाओ, इसके बाद हमारे कालगत हो जाने पर और तुझे वृद्धावस्था प्राप्त हो जाये तब कुलवंश की वृद्धि करके और निरपेक्ष होकर श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो गृहवास का त्याग कर अनगारत्व में प्रव्रजित होना ।'

तत्पश्चात् उस क्षत्रिय पुत्र जमाली ने माता-पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! आपने मुझ से जो यह कहा कि हे पुत्र ! निर्ग्रन्थ प्रवचन सत्य, अनुत्तर अद्वितीय है इत्यादि—यावत्—प्रव्रजित होना, परन्तु हे माता-पिता ! क्लीब, कायर, नीच पुरुष, इस लोक में आसक्त, परलोक से पराङ्मुख विषयों की तृष्णा वाले व्यक्तियों के लिये निर्ग्रन्थ प्रवचन का पालन करना अवश्य कठिन है परन्तु धीर, दृढ़ निश्चय वाले पुरुषार्थी पुरुषों के लिये इसका पालन करना कुछ भी कठिन नहीं है । इसलिये हे माता-पिता ! आपकी अनुमति लेकर मैं श्रमण भगवान महावीर के पास मुंडित हो, गृहवास का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता हूं ।'

माता-पिता द्वारा प्रव्रज्या अनुमोदन—

१३. तत्पश्चात् जब माता-पिता उस जमाली क्षत्रिय कुमार को विषय भोगों के अनुकूल और प्रतिकूल बहुत सी प्रज्ञप्तियों, संज्ञप्तियों और विज्ञप्तियों से कहने, समझाने-बुझाने में समर्थ नहीं हुए तब बिना इच्छा के जमाली क्षत्रिय कुमार को अभिनिष्क्रमण करने—दीक्षा लेने की अनुमति दे दी ।

प्रव्रज्या के पूर्व कृत्य—

१४. तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही इस क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के बाहर और भीतर पानी का छिड़काव करो, झाड़ बुहार कर साफ-स्वच्छ करो इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार—यावत्—श्रेष्ठ सुगन्ध की गंध से व्याप्त करके गंधवर्तिका के समान करो और करवाओ, करके और करवाके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ।" आज्ञानुसार कार्य करके उन पुरुषों ने वापस आज्ञा सौंपी ।

इसके बाद उस जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने दूसरी बार पुनः कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे यह कहा—'हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही इस जमाली क्षत्रिय कुमार के लिए महार्थक, महामूल्यवान्, महान् पुरुषों के योग्य विपुल निष्क्रमणाभिषेक की सामग्री उपस्थित करो ।" तब वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार (आज्ञानुरूप) कार्य करके—यावत्—आज्ञानुसार अभिषेक सामग्री उपस्थित करते हैं ।

तत्पश्चात् माता-पिता ने इस जमाली क्षत्रिय कुमार को पूर्व की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर बैठाया, बैठाकर एक सौ आठ सोने के कलशों से, एक सौ आठ चाँदी के कलशों से, एक सौ आठ मणिमय कलशों से, एक सौ आठ सोने-चाँदी के कलशों

मयाणं कलसाणं, अट्ठसएणं भोमेज्जाणं कलसाणं सव्विड्ढीए सव्व-जुतीए सव्वबलेणं सव्वसमुदएणं सव्वायरेणं सव्वविभूईए सव्वविभूसाए सव्वसंभमेणं सव्वपुप्फगंधमल्लालंकारेणं सव्वतुडियसद्द-सण्णिणाएणं महया इड्ढीए महया बलेणं महया वरतुडिय-जमगसमग-प्पवाइएणं संख-पणव-पडह-भेरि-झल्लरि-खरमुहिहुडुक्क-मुरय-मुइंग-दुंदुहि-णिग्घोसणाइयरवेणं महया-महया निक्खमणाभिसेगेणं अभिसिंचंति अभिसिंचित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—भण जाया ! किं देमो ? किं पयच्छामो ? किणा व ते अट्ठो ?

से, एक सौ आठ स्वर्ण मणिमय कलशों से एक सौ आठ रजत-मणिमय कलशों से, एक सौ आठ स्वर्ण-रजत-मणिमय कलशों से और एक सौ आठ मिट्टी के कलशों से सर्व ऋद्धि, समस्त द्युति, समस्त बल, समस्त अभ्युदय, समस्त आदर, समस्त विभूति, समस्त विभूषा, समस्त सम्मान, समस्त पुष्प-गंध माला और अलंकार, समस्त वाद्य समूह के शब्द निनाद, महान ऋद्धि, महान द्युति, महान बल, महान अभ्युदय और एक साथ बज रहे शंख, प्रणव, पटह, भेरी, झल्लरी, खरमुखी, हुडक्क, मुरज, मृदंग, दुन्दुभी आदि वाद्य वृन्दों के निर्घोष की प्रतिध्वनि के शब्दों के साथ महान् निष्क्रमणाभिषेक से अभिषिक्त किया, अभिषिक्त करके दोनों हाथ जोड़ दस नखों के आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! बताओ तुम्हारे इष्टजनों को क्या दें ? तुम्हारे लिये क्या कार्य करें ? तुम्हारा क्या प्रयोजन -अभीप्सित है ?

१५. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अम्मापियरो एवं वयासी—इच्छामि णं अम्मताओ ! कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणियं, कासवगं च सद्दाविय।

तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गहाय दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेह, सयसहस्सेणं कासवगं सद्दावेह।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी ! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सिरिघराओ तिण्णि सयसहस्साइं गिण्हंति, गिण्हित्ता दोहिं सयसहस्सेहिं कुत्तियावणाओ रयहरणं च पडिग्गहं च आणेंति, सयसहस्सेणं कासवगं सद्दावेंति।

१५. तब उस जमाली क्षत्रियकुमार ने माता पिता से इस प्रकार कहा—'हे माता-पिता ! मैं चाहता हूँ कि कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र मँगवा दीजिये और काश्यप-नाई को बुला दीजिये।'

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रियकुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे यह कहा—'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही श्रीगृह (खजाने) से तीन लाख स्वर्ण मुद्रायें लेकर दो लाख के कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र ले आओ और एक लाख मुद्राएँ देकर काश्यप को बुला लाओ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता के इस आदेश को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो दोनों हाथ जोड़ मुकुलित दस नखों से आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके—स्वामिन् ! इस प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके शीघ्र ही श्रीगृह से तीन लाख स्वर्ण मुद्रायें लीं, लेकर दो लाख से कुत्रिकापण से रजोहरण और पात्र लाये तथा एक लाख से नाई को बुलाया।

१६. तए णं से कासवए जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा कोडुम्बियपुरिसेहिं सद्दाविए समाणे हट्ठतुट्ठे ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगलाइं वत्थाइं पवर परिहिए अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे, जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पियरं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! जं मए करणिज्जं ?

१६. तदनन्तर जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर उस नाई ने हृष्ट-तुष्ट हो स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त किया और अवसर के अनुरूप शुद्ध मांगलिक श्रेष्ठ वस्त्रों को पहनकर मूल्यवान् अल्प आभरणों से शरीर को अलंकृत किया और फिर जहाँ जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता थे, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता को जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मेरे करने योग्य कार्य कहिये।'

तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तं कासवगं एवं

तब जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने उस नापित से इस

वयासी—तुमं देवाणुप्पिया ! जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेहि ।

प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! तुम सावधानीपूर्वक चार अंगुल छोड़कर जमाली क्षत्रियकुमार के निष्क्रमण योग्य अग्र केश काट दो ।'

तए णं से कासवगे जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी ! तहत्ताणाए विणएणं वयणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता सुरभिणा गंधोदएणं हत्थपादे पक्खालेइ, पक्खालेत्ता सुद्धाए अट्ठपडलाए पोत्तीए मुहं बंधइ, बंधित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स परेणं जत्तेणं चउरंगुलवज्जे निक्खमणपाओग्गे अग्गकेसे कप्पेइ ।

तत्पश्चात् जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता की इस बात को सुनकर उस नाई ने हृष्ट-तुष्ट हो दोनों हाथ जोड़ मुकुलित दस नखों द्वारा सिर पर आवर्त करके मस्तक अंजलि करके 'हे स्वामिन् ! इसी प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके सुगन्धित गंधोदक से हाथ-पैरों का प्रक्षालन किया, प्रक्षालन करके आठ पड़ की शुद्ध मुखवस्त्रिका से मुख को बाँधा, बाँधकर सावधानीपूर्वक जमाली क्षत्रिय कुमार के चार अंगुल छोड़कर दीक्षा के योग्य अग्र केश काटे।

१७. तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं अग्गकेसे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता सुरभिणा गंधोदएणं पक्खालेइ, पक्खालेत्ता अग्गेहिं वरेहिं गंधेहिं मल्लेहिं अच्चेति, अच्चेत्ता सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडगंसि पक्खिवति, पक्खिवित्ता हा-वारिधार-सिंदुवार-छिण्णमुत्ता-वलिप्पगासाइं सुयवियोगदूसहाइं अंसूइं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी एवं वयासी—एस णं अम्हं जमालिस्स खत्तियकुमारस्स बहूसु तिहीसु य पव्वणीसु य उस्सवेसु य जण्णेसु य छणेसु य अपच्छिमे दरिसणे भविस्सतीति कट्टु ऊसीसगमूले ठवेति ।

१७. उस समय जमाली क्षत्रिय कुमार की माता ने हंस के समान श्वेत उज्ज्वल वस्त्र में उन अग्र केशों को ग्रहण किया, ग्रहण करके उन्हें सुगन्धित गंधोदक से प्रक्षालित किया - धोया, धोकर श्रेष्ठ उत्तम गंध और मालाओं से अर्चित किया, अर्चित करके शुद्ध वस्त्र में उन्हें बाँधा, बाँधकर रत्नकरंडिका में रखा, रखकर जल की धारा, निर्गुण्डी के फूल एवं टूटे हुए मोतियों के हार के समान दुःसह पुत्र वियोग से दुःखित हो आँसू बहाती हुई इस प्रकार कहने लगी—"जमाली क्षत्रिय कुमार के केशों का यह दर्शन बहुत सी तिथियों, पर्वों, उत्सवों, नागपूजा आदि यज्ञों और महोत्सवों के अवसर पर हमें अन्तिम दर्शन रूप होगा, इस प्रकार कहकर उस रत्नकरंडिका को अपने सिरहाने के नीचे रख लिया।

१८. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मापियरो दोच्चं पि उत्तरावक्कमणं रयावेंति, रयावेत्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सेया-पीयएहिं कलसेहिं ण्हावेंति, ण्हावेत्ता पम्हलसुकुमालाए सुरभीए गंधकासाईए गायाइं लूहेंति, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपंति, अणुलिंपित्ता नासानिस्सासवायवोज्झं चक्खुहरं वण्णफरिसजुत्तं हयलालापेलवातिरेगं धवलं कणगखचितंतकम्मं महरिहं हंसलक्खणपडसाडगं परिहिंति, परिहित्ता हारं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता अद्धहारं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता एगावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता मुत्तावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता रयणावलिं पिणद्धेंति, पिणद्धेत्ता एवं—अंगयाइं केयूराइं कडगाइं तुडियाइं कडिसुत्तगं दसमुद्दाणंतगं विकच्छसुत्तगं मुरविं कंठमुरविं पालंबं कुण्डलाइं चूडामणिं चित्तं रयणसंकडुक्कडं मउडं पिणद्धेंति, किं बहुणा ? गंथिम-वेढिम पूरिम-संघातिमेणं चउव्विहेणं मल्लेणं कप्परुक्खगं पिव अलंकिय-विभूसियं करेंति ।

१८. तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार के माता-पिता ने दूसरी बार सिंहासन को उत्तर दिशा की ओर रखवाया, रखवा कर जमाली क्षत्रिय कुमार को श्वेत और पीत अर्थात् चाँदी और सोने के कलशों से नहलाया, नहलाकर रोएंदार और अत्यन्त कोमल गंध काषायिक वस्त्र से उसके अंग पोंछे, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन से शरीर पर विलेपन किया, विलेपन करके नासिका के निश्वास की वायु से भी उड़ने योग्य, नेत्राकर्षक, वर्ण और स्पर्श से युक्त, अश्व की लार के फेन के समान अत्यन्त धवल, स्वर्ण के बेलबूटों से खचित किनारे वाले महान् पुरुषों के योग्य, हंस के सदृश श्वेत वस्त्र पहनाये, पहनाकर अठारह लड़ी का हार पहनाया, फिर अर्द्धहार पहनाया, फिर एकावली, मुक्तावली, रत्नावली पहनाई, पहनाकर इसी प्रकार अंगद, केयूर, कटक, त्रुटित, कटिसूत्र, अंगुलियों में दस मुद्रिकायें, कन्दोरा, मुरवि, कण्ठमुरवि, प्रालंब, कुण्डल, चूड़ामणि, विविध रत्नों से खचित मुकुट पहनाया और विशेष क्या कहें ? ग्रंथित, वेष्टित, पूरित और संघातित इन चार प्रकार की पुष्पमालाओं से कल्प वृक्ष के समान अलंकृत—विभूषित किया।

१९. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! अणेगखंभसयसण्णिविट्ठं, लीलट्ठियसालभंजियागं जहा रायप्पसेणइज्जे विमाणवण्णओ-जाव-मणिरयणघंटियाजालपरिक्खित्तं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं उवट्ठवेह, उवट्ठवेत्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह। तए णं ते कोडुम्बिया पुरिसा-जाव-पच्चप्पिणंति।

१९. इसके बाद जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! शीघ्र ही सैकड़ों स्तम्भों से युक्त, लीला करती हुई पुतलियों से युक्त इत्यादि राजप्रश्नीय सूत्र में वर्णित विमान के समान—यावत्—मणियों, रत्नों और घंटिकाओं के जाल से व्याप्त, हजार पुरुषों द्वारा वहन करने योग्य शिविका (पालकी) लाओ—तैयार करो, तैयार करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ। तब वे कौटुम्बिक पुरुष वैसा करके—यावत्—आज्ञा वापस लौटाते हैं।

२०. तए णं से जमाली खत्तियकुमारे केसालंकारेणं, वत्थालंकारेणं, मल्लालंकारेणं, आभरणालंकारेणं चउव्विहेणं अलंकारेणं अलंकारिए समाणे पडिपुण्णालंकारे सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणे सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे सण्णिसण्णे।

२०. तत्पश्चात् वह जमाली क्षत्रिय कुमार केशालंकार, वस्त्रालंकार, मालालंकार, आभरणालंकार—इन चार प्रकार के अलंकारों से अलंकृत होकर और प्रतिपूर्ण अलंकारों से विभूषित होकर सिंहासन से उठा, उठकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करके शिविका पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर पूर्व की ओर मुख करके उत्तम सिंहासन पर बैठ गया।

२१. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माता ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा हंसलक्खणं पडसाडगं गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा।

२१. तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार की माता स्नान कर बलिकर्म कर—यावत्—मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके हंस के समान धवलपट शाटक को लेकर शिविका की अनुप्रदक्षिणा करती हुई शिविका पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर जमाली क्षत्रिय कुमार की दाहिनी बाजू में रखे भद्रासन पर बैठ गई।

तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मधाती ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा रयहरणं पडिग्गहं च गहाय सीयं अणुप्पदाहिणीकरेमाणी सीयं दुरुहइ, दुरुहित्ता जमालिस्स खत्तियकुमारस्स वामे पासे भद्दासणवरंसि सण्णिसण्णा।

इसके बाद उस जमाली क्षत्रिय कुमार की धायमाता ने स्नान किया, बलिकर्म किया—यावत्—मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके वह रजोहरण और पात्र लेकर शिविका की प्रदक्षिणा करके शिविका पर आरूढ़ हुई और आरूढ़ होकर जमाली क्षत्रिय कुमार के वाम पार्श्ववर्ती भद्रासन पर बैठ गई।

२२. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिट्ठओ एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयारकुसला सुन्दरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण विलासकलिया सरयब्भ-हिम रयय-कुमुद-कुन्देंदुप्पगासं सकोरेंटमल्लदामं धवलं आयवत्तं गहाय सलीलं ओधरेमाणी-ओधरेमाणी चिट्ठति।

२२. तत्पश्चात् उस क्षत्रिय कुमार जमाली के पीछे शृंगार की आगार रूप मनोहर वेषवाली, सुन्दर गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास सललित संलाप करने में निपुण योग्य उपचार करने में कुशल, सुन्दर स्तन, जघन, मुख, कर, चरण, नयन, लावण्य, रूप यौवन और विलास से युक्त एक श्रेष्ठ तरुणी सरोवर की दूर्वा अथवा शरद ऋतु के बादल हिम (बर्फ) रजत, कुमुद, कुन्दपुष्प और चन्द्रमा के समान प्रकाश वाले कोरंट पुष्पों की माला से युक्त धवल छत्र को हाथों में थामकर लीला पूर्वक धारण करती हुई खड़ी हुई।

तए णं तस्स जमालिस्स [खत्तियकुमारस्स] उभओ पासिं दुवे वरतरुणीओ सिंगारागारचारुवेसाओ संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयारकुसलाओ सुन्दरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास-

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार की दोनों बाजुओं में शृंगार की आगार रूप सुन्दर वेष वाली सुसंगत गति, हास्य, वचन, चेष्टा, विलास, सललित संलाप में निपुण, उचित व्यवहार करने में कुशल, सुन्दर स्तन, जंघाओं, मुख, हाथ, पैर, नयन,

कलियाओ णाणामणि-कणग-रयण-विमल-महरिहतवणिज्जुज्जल-विचित्तदंडाओ चिल्लियाओ, संखंक-कुन्द-दगरय-अमय-महिय-फेण-पुंजसण्णिकासाओ धवलाओ चामराओ गहाय सलीलं वीयमाणीओ-वीयमाणीओ चिट्ठंति। तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स उत्तरपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयार-कुसला सुन्दरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास कलिया सेतं रययामयं विमलसलिलपुण्णं मत्तगयमहामुहाकितिसमाणं भिंगारं गहाय चिट्ठइ।

लावण्य, रूप, यौवन और विलास सम्पन्न दो उत्तम तरुणियाँ, विविध प्रकार के मणि, स्वर्ण, रत्न, विमल, महान पुरुषों के योग्य, तपनीय स्वर्णमय, उज्ज्वल एवं विचित्र दंडीवाले, चमचमाते हुए, शंख, अंकरत्न, कुन्दपुष्प, जलकण, रजत एवं मंथन किये हुए अमृत के फेन पुन्ज के समान धवल चामरों को धारण करके लीलापूर्वक वींजती हुई खड़ी हुई। इसके बाद उस जमाली क्षत्रिय कुमार के उत्तर पूर्व दिक्कोण में शृंगार की आगार रूप सुन्दर वेश वाली, सुन्दर गति, हास्य वाणी, चेष्टा, विलास, सलल्लित संलाप करने में निपुण, उचित व्यवहार करने में कुशल सुन्दर स्तन, जंघा, मुख, हाथ, पैर, नेत्र, लावण्य, रूप, यौवन और विलास से युक्त एक तरुणी श्रेष्ठ श्वेत, रजतमय, विमल जल से भरी हुई मत्त गजेन्द्र की मुखाकृति के समान आकृति वाली झारी लेकर खड़ी हुई।

तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स दाहिणपुरत्थिमेणं एगा वरतरुणी सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयारकुसला सुंदरथण-जघण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-रूव-जोव्वण-विलास कलिया चित्त-कणगदंडं तालवेंटं गहाय चिट्ठइ।

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार के दक्षिण पूर्व दिक्कोण में शृंगार की आगार, सुन्दर वेश वाली संगत गति, हास्य, वाणी, चेष्टा, विलास, सुललित संलाप में निपुण, यथोचित व्यवहार करने में कुशल, सुन्दर स्तन, जंघा, मुख, कर, चरण, नयन लावण्य, रूप, यौवन एवं विलास से युक्त एक वर तरुणी चित्र विचित्र सोने के डांडी वाले पंखे को ग्रहण करके खड़ी हुई।

२३. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया कोडुम्बिय-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! सरिसयं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं, एगाभरणवसण-गहियनिज्जोयं कोडुम्बियवरतरुणसहस्सं सद्दावेह। तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-पडिसुणेत्ता खिप्पामेव सरिसयं सरित्तयं सरिव्वयं सरिसलावण्ण-रूव-जोव्वण-गुणोववेयं एगाभरण-वसण-गहियनिज्जोयं कोडुम्बियवरतरुणसहस्सं सद्दावेंति।

२३. तदनन्तर उस जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा (शरीर कांति) वाले, एक सरीखी उम्र वाले, समान लावण्य रूप, यौवन एवं गुणों से युक्त तथा एक सरीखे आभूषणों और वस्त्रों से समान वेष धारण करने वाले एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाओ। तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—स्वीकार करके शीघ्र ही एक सरीखे, एक सरीखी त्वचा वाले, एक सरीखी उम्र वाले, एक सरीखे लावण्य, रूप, यौवन गुण से युक्त तथा एक सरीखे आभूषणों और वस्त्रों से समान वेष धारण किये हुए एक हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया।

तए णं ते कोडुम्बियवरतरुणपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा कोडुम्बियपुरिसेहिं सद्दाविया समाणा हट्ठतुट्ठा ण्हाया कय-बलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता एगाभरणवसण-गहिय-निज्जोया जेणेव जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया! जं अम्हेहिं करणिज्जं।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक उत्तम तरुण पुरुषों ने जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता के कौटुम्बिक पुरुषों द्वारा बुलाये जाने पर हृष्ट-तुष्ट हो स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल और प्रायश्चित्त किया और फिर एक सरीखे आभूषणों एवं वस्त्रों से समान वेष धारण करके जहाँ जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता थे, वहाँ आये, आकर दोनों हाथ जोड़ मुकलित दस नखों से सिर पर आवर्त करके मस्तक पर अंजलि कर जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—'हे देवानुप्रिय! हमें जो करने योग्य है उसके लिये आज्ञा दीजिये।'

तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया तं कोडुम्बियवर-

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता ने उन एक

तरुणसहस्सं एवं वयासी – तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ण्हाया कयबलि-कम्मा कयकोउय-मंगलपायच्छित्ता एगाभरणवसण-गहियनिज्जोया जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहेह ।

हजार उत्तम तरुण कौटुम्बिक पुरुषों से कहा—देवानुप्रियो ! तुम स्नान करके, बलिकर्म करके, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त करके और एक सरीखे आभूषणों और वस्त्रों से समान वेष धारण करके जमाली क्षत्रिय कुमार की पालकी को वहन करो ।

तए णं ते कोडुम्बियतरुणपुरिसा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिउणा एवं वुत्ता समाणा-जाव-पडिसुणेत्ता ण्हाया-जाव-एगाभरण-वसण गहियनिज्जोया जमालिस्स खत्तियकुमारस्स सीयं परिवहंति ।

तब उन उत्तम, तरुण कौटुम्बिक पुरुषों ने जमाली क्षत्रिय कुमार के पिता के इस आदेश को सुनकर—यावत्—स्वीकार करके स्नान किया—यावत्—एक सरीखे आभूषणों एवं वस्त्रों से समान वेष धारण किया और फिर जमाली क्षत्रिय कुमार की शिविका का वहन करने लगे ।

२४. तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरूढस्स समाणस्स तप्पढमयाए इमे अट्ठट्ठमंगलगा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया, तं जहा—सोत्थिय-सिरिवच्छ-णंदियावत्त-वद्धमाणग-भद्दासण-कलस-मच्छ-दप्पणा ।

२४. तत्पश्चात् पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका पर उस जमाली क्षत्रियकुमार के आरूढ़ हो जाने पर सर्वप्रथम उसके सामने वे मंगल द्रव्य अनुक्रम से चले वे इस प्रकार है—१. स्वस्तिक २. श्रीवत्स ३. नन्दावर्त ४. वर्धमान ५. भद्रासन ६. कलश ७. मत्स्य और ८. दर्पण ।

तदणंतरं च णं पुण्णकलसभिंगारं, दिव्वा य छत्तपडागा सचा-मरा दंसण-रइय-आलोय-दरिसणिज्जा, वाउद्धुय-विजयवेजयंती य ऊसिया गगणतलमणुलिहंती पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तदनन्तर पूर्ण कलश भृंगार चामर सहित दिव्य छत्र, पताका तथा इनके साथ अतिशय सुन्दर आलोक दर्शनीय, वायु से फरफराती हुई एक बहुत ऊँची गगनतल को स्पर्श करती हुई विजय वैजयन्ती पताका अनुक्रम से आगे चली ।

तदणंतरं च णं वेरुलिय-भिसंत-विमलदंडं पलंबकोरंटमल्लदा-मोवसोभियं चंदमंडलणिभं समूसियं विमलं आयवत्तं, पवरं सीहा-सणं वरमणिरयणपाद-पीढं सपाउयाजोयसमाउत्तं बहुकिंकर-कम्म-कर-पुरिस-पायत्त-परिक्खित्तं पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठियं ।

तदनन्तर वैडूर्य रत्नों से निर्मित, दीप्यमान, निर्मल दंडवाला लटकती हुई कोरंट पुष्पों की मालाओं से सुशोभित चंद्र मंडल के समान निर्मल, श्वेत, धवल, ऊँचा, आतपत्र-छत्र तथा अनेक किंकर कर्म करने वाले पुरुषों द्वारा वहन किया जा रहा मणि-रत्नों से बने हुए बेलबूटों से उपशोभित, पादुकाद्वय युक्त पाद पीठ सहित श्रेष्ठ उत्तम सिंहासन अनुक्रम से उसके आगे चला ।

तदणंतरं च णं बहवे लट्ठिग्गाहा कुन्तग्गाहा चामरग्गाहा पासग्गाहा चावग्गाहा पोत्थयग्गाहा फलगग्गाहा पीढग्गाहा वीण-ग्गाहा कूयग्गाहा हडप्पग्गाहा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तत्पश्चात् अनेक यष्टिधारी, कुंतधारी-चामरधारी पाशधारी धनुर्धारी, वस्त्रधारी, फलकधारी, पीठधारी, वीणाधारी, स्नेह पात्रधारी, ताम्बूलपात्रधारी अथवा आभूषणपात्रधारी पुरुष अनु-क्रम से उसके आगे चले ।

तदणंतरं च णं बहवे दंडिणो मुण्डिणो सिहंडिणो जडिणो पिच्छिणो हासकरा डमरकरा दवकरा चाडुकरा कंदप्पिया कोक्कुइया किड्डकरा य वायंता य गायंता य णच्चंता य हसंता य भासंता य सासंता य सावेंता य रक्खंता य आलोयं च करेमाणा जय-जयसद्दं पउंजमाणा पुरओ अहाणुपुव्वीए संपट्ठिया ।

तदनन्तर अनेक दंडी, मुंडी, शिखंडी, जटाधारी, तमाशा करने वाले, हंसी करने वाले, कलह करने वाले, परिहास करने वाले, चाटुकार, भांड, कौत्कुचित और क्रीड़ा करने वाले, वाद्य बजाते हुए, गाते हुए, नाचते हुए, हंसते हुए, बोलते हुए, शासन करते हुए अथवा आज्ञा देते हुए, सुनाते हुए, रक्षा करते हुए और आलोक करते हुए जय-जय शब्दघोष करते हुए अनुक्रम से उसके आगे चले ।

तदणंतरं च णं बहवे उग्गा भोगा खत्तिया इक्खागा नाया कोरव्वा जहा ओववाइए-जाव-महापुरिसवग्गुरापरिक्खित्ता जमा-लिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ य मग्गओ य पासओ य अहाणु-पुव्वीए संपट्ठिया ।

तदनन्तर बहुत से उग्रवंशीय, भोगवंशीय, क्षत्रीयवंशीय इक्ष्वाकुवंशीय, ज्ञातवंशीय, कुरुवंशीय, इत्यादि औपपातिक सूत्र में कहे अनुसार—यावत्—महापुरुषों के समूह से घिरे हुए जमाली क्षत्रियकुमार के आगे, पीछे आजूबाजू में अनुक्रम से साथ चलने लगे ।

२५. तए णं से जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पिया ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए हत्थिखंधवरगए सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवर-जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महया भडचडगरविंदपरिक्खित्ते जमालिं खत्तियकुमारं पिट्ठओ अणुगच्छइ ।

तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स पुरओ महं आसा आसवरा, उभओ पासिं णागा णागवरा, पिट्ठओ रहा, रहसंगेल्ली ।

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे अब्भुग्गयभिंगारे परिग्गहियतालियंटे ऊसवियसेतछत्ते पवीइयसेतचामरवालवीयणीए सव्विड्ढीए-जाव-दुन्दुहि-णिग्घोसणादितरवेणं खत्तियकुण्डग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव माहणकुण्डग्गामे नयरे, जेणेव बहुसालए चेइए जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तए णं तस्स जमालिस्स खत्तियकुमारस्स खत्तियकुण्डग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छमाणस्स सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहवे अत्थत्थिया कामत्थिया भोगत्थिया लाभत्थिया किब्बिसिया करोडिया कारवाहिया संखिया चक्किया नंगलिया मुहमंगलिया वद्धमाणा पूसमाणया खंडियगणा ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं मणाभिरामाहिं हियय-गमणिज्जाहिं वग्गूहिं जयविजयमंगलसएहिं अणवरयं अभिणंदंता य एवं वयासी—

जय-जय नंदा ! धम्मेणं, जय-जय नंदा ! तवेणं, जय-जय नंदा ! भद्दं ते अभग्गेहिं नाण-दंसण-चरित्तेहिमुत्तमेहिं, अजियाइं जिणाहि इंदियाइं, जियं पालेहि समणधम्मं, जियविग्घो वि य वसाहि तं देव ! सिद्धिमज्झे, निहणाहि य रागदोसमल्ले तवेणं धितिधणियबद्धकच्छे, मद्दाहि य अट्ठ कम्मसत्तू झाणेणं उत्तमेणं सुक्केणं, अप्पमत्तो हराहि आराहणपडागं च धीर ! तेलोक्करंगमज्झे, पावय वितिमिरमणुत्तरं केवलं च णाणं, गच्छ य मोक्खं परं पदं जिणवरोवदिट्ठेणं सिद्धिमग्गेणं अकुडिलेणं हंता परीसहचमूं, अभिभविय गामकंटकोवसग्गा णं, धम्मे ते अविग्घमत्थु त्ति कट्टु अभिणंदंति य अभिथुणंति य ।

२५. तत्पश्चात् जमाली क्षत्रीयकुमार के पिता स्नान कर बलिकर्म कर कौतुक-मंगल-प्रायश्चित्त कर और फिर समस्त अलंकारों से विभूषित होकर उत्तम हस्ती के स्कन्ध पर आरूढ़ होकर कोरंट पुष्पों की माला से युक्त छत्र को धारण कर, श्वेत चामरों से बिंजाते हुए अश्व, गज, रथ, एवं श्रेष्ठ योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना के साथ महासुभटों के झुंड से परिवृत जमाली क्षत्रिय कुमार के पीछे चले ।

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार के आगे बड़े अश्व और अश्वारोही दोनों बाजुओं में हाथी और हाथी सवार पीछे रथ और रथ समूह चला ।

तत्पश्चात् जिसके आगे झारियों को ऊपर उठाये हुए तालवृन्त लिये हुए पुरुष चल रहे हैं, ऐसा वह जमाली क्षत्रिय कुमार सिर पर श्वेत छत्र धारण किये हुए, दोनों ओर श्वेत चामरों द्वारा बिंजाया जाता हुआ समस्त ऋद्धि—यावत्—दुन्दुभि निनाद पूर्वक क्षत्रिय कुंडग्राम नगर के मध्य में से होता हुआ जहाँ माहण कुण्डग्राम नगर था, जहाँ बहुशाल चैत्य था और उसमें जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, उस ओर चलने के लिये तत्पर हुआ ।

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रियकुमार को क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के बीचोंबीच से निकलने पर शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों में बहुत से धनार्थी, कामार्थी, भोगार्थी, लाभार्थी, कृपण-दीन, भिक्षुक, कर-वांछित, शंखवादक, चाक्रिक (भिक्षुकों का एक विशेष वर्ग) मांगलिक मुखमांगलिक (सुभामदी) बधाई गाने वाले, मंगलपाठक, विरुदपाठक पुरुष, इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, मनोभिराम, हृदयाकर्षक वचनों द्वारा बारंबार अभिनन्दन और स्तुति करते हुए इस प्रकार कहने लगे ।

हे नन्द ! धर्म द्वारा तेरी जय हो, हे नन्द ! तप से तुम्हारी जय हो, हे नन्द ! तुम्हारी जय-जयकार हो, हे नन्द ! अखंडित उत्तम ज्ञान, दर्शन चारित्र से तुम्हारा कल्याण हो । अविजित ऐसी इन्द्रियों को जीतें, प्राप्त श्रमणधर्म का पालन करें, विघ्नों पर जय प्राप्त करें, हे देव ! सिद्धि के बीच वास करें, धैर्य रूपी कच्छ को मजबूत बाँधकर तप द्वारा रागद्वेष रूपी मल्लों पर विजय प्राप्त करें, उत्तम शुक्ल ध्यान द्वारा अष्टकर्म रूपी शत्रुओं का मर्दन करें, हे धीर ! तीन लोक रूपी रंगमंच पर आप आराधना रूपी पताका लेकर अप्रमत्तभाव पूर्वक विचरण करें और निर्मल विशुद्ध अनुत्तर केवल ज्ञान को प्राप्त करें, जिनवरोपदिष्ट सरल सिद्धि मार्ग द्वारा परमपद रूप मोक्ष को प्राप्त करें, परीषह रूपी सेना का हनन करें, ग्राम कंटक रूपी उपसर्गों को पराजित करें, तुम्हारे धर्म मार्ग में किसी प्रकार का विघ्न न हो'' इस प्रकार कहकर अभिनन्दन और स्तुति करते हैं ।

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे नयणमालासहस्सेहिं पेच्छिज्जमाणे-पेच्छिज्जमाणे, हिययमालासहस्सेहिं अभिणंदिज्जमाणे-अभिणंदिज्जमाणे, मणोरहमालासहस्सेहिं विच्छिप्पमाणे-विच्छिप्पमाणे, वयणमालासहस्सेहिं अभिथुव्वमाणे-अभिथुव्वमाणे, कंतिसोहग्गगुणेहिं पत्थिज्जमाणे, बहूणं नरनारिसहस्साणं दाहिणहत्थेणं अंजलिमालासहस्साइं पडिच्छमाणे-मंजु-मंजुणा घोसेणं आपडिपुच्छमाणे-आपडिपुच्छमाणे, भवणपंतिसहस्साइं समइच्छमाणे-समइच्छमाणे खत्तियकुण्डग्गामे नयरे मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव माहणकुण्डग्गामे नयरे जेणेव बहुसालए चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता छत्तादीए तित्थगरातिसए पासइ, पासित्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं ठवेइ, पुरिससहस्सवाहिणीओ सीयाओ पच्चोरुहइ ।

तत्पश्चात् वह जमाली क्षत्रियकुमार हजारों दर्शकों को सहस्रों नयन मालाओं द्वारा बार-बार निरीक्षित होता हुआ, हजारों मानवों के हृदय मालाओं द्वारा पुनः-पुनः अभिनन्दित होता हुआ हजारों जनों की मनोरथों रूपी माला सहस्रों द्वारा स्पृष्ट होता हुआ, उदार सहस्रों वचनावली द्वारा बारंबार स्तुति गान किया जाता हुआ, शारीरिक कांति एवं मोहक गुणों के कारण बार-बार प्रार्थित होता हुआ, हजारों नर-नारियों की अंजलि रूप माला सहस्रों को दाहिने हाथ से स्वीकार करता हुआ, मंजुल-मधुर स्वरों द्वारा किये गये जय-जय घोषों से सम्बोधित होता हुआ एवं हजारों भवन पंक्तियों को पार करता हुआ क्षत्रिय कुण्डग्राम नगर के बीचोंबीच से निकलता है, निकलकर जहाँ माहण कुण्ड ग्राम नगर था, जहाँ बहुशाल चैत्य था, वहाँ आया आकर तीर्थंकरों के अतिशय रूप छत्रादि को देखा, देखकर पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका को खड़ा किया और फिर उस पुरुष सहस्रवाहिनी शिविका से नीचे उतरा ।

अम्मापियरेहिं भगवओ महावीरस्स सिस्सभिक्खादाणं—

२६. तए णं तं जमालिं खत्तियकुमारं अम्मापियरो पुरओ काउं जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते ! जमाली खत्तियकुमारे अम्हं एगे पुत्ते इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेसासिए संमए बहुमए अणुमए भंडकरंडगसमाणे रयणे रयणभूए जीविऊसविए हिययनंदिजणणे उंबरपुप्फं पिव दुल्लभे सवणयाए, किमंग ! पुण पासणयाए ? से जहानामए उप्पले इ वा पउमे इ वा-जाव-सहस्सपत्ते इ वा पंके जाए जले संवुड्ढे नोवलिप्पति पंकरएणं, नोवलिप्पति जलरएणं, एवामेव जमाली वि खत्तियकुमारे कामेहिं जाए, भोगेहिं संवुड्ढे नोवलिप्पति कामरएणं, नोवलिप्पति भोगरएणं, नोवलिप्पति मित्त-णाइ-णियग-सयण-संबंधि-परिजणेणं । एस णं देवाणुप्पिया ! संसारभउव्विग्गे भीए जम्मण-मरणेणं, इच्छइ देवाणुप्पियाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइत्तए । तं एयं णं देवाणुप्पियाणं अम्हे सीसभिक्खं दलयामो, पडिच्छंतु णं देवाणुप्पिया ! सीसभिक्खं ।

माता-पिता द्वारा भगवान महावीर को शिष्य भिक्षादान—

२६. इसके बाद जमाली क्षत्रियकुमार को आगे करके माता-पिता जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—'हे भगवन् ! यह जमाली क्षत्रियकुमार हमारा इकलौता पुत्र इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, स्थैर्य, विश्वास पात्र, सम्मत, बहुमत, अनुमत, आभूषणों के पिटारे के समान, रत्नों में प्रधान रत्न के समान, जीवन और उच्छ्वास के समान, हृदय को आनन्द प्रदान करने वाला, गूलर के पुष्प के समान जिसका नाम श्रवण करना भी दुर्लभ है तो फिर दर्शन की बात ही क्या है ? ऐसा पुत्र है जैसे उत्पल पद्म—यावत्—सहस्र पत्र कमल कीच में उत्पन्न होता है और जल में वृद्धि पाता है, किंतु फिर भी पंक की रज से अथवा जल की रज (कण) से लिप्त नहीं होता है इसी प्रकार यह जमाली क्षत्रियकुमार भी कामों में उत्पन्न हुआ है और भोगों में वृद्धिगत हुआ है, फिर भी कामरज से लिप्त नहीं हुआ, भोगरज से लिप्त नहीं हुआ, मित्र, ज्ञाति, स्वजन सम्बन्धी और परिजनों में आसक्त नहीं हुआ । हे देवानुप्रिय ! यह संसार के भय से उद्‌विग्न हुआ है, जन्म-मरण के भय से भयभीत हुआ है, अतएव आप देवानुप्रिय के पास मुण्डित होकर गृहवास का त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करना चाहता है । इसलिये हम देवानुप्रिय को शिष्य भिक्षा देते हैं, हे देवानुप्रिय ! आप शिष्य भिक्षा स्वीकार कीजिये ।'

जमालिस्स पव्वज्जा—

२७. तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी—

जमाली की प्रव्रज्या—

२७. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली क्षत्रियकुमार से इस प्रकार कहा—

अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं करेह ।

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसिभागं अवक्कमइ, अवक्कमित्ता सयमेव आभरणमल्लालंकारं ओमुयइ ।

तए णं सा जमालिस्स खत्तियकुमारस्स माया हंसलक्खणेणं पडसाडएणं आभरणमल्लालंकारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता हार-वारि-धार-सिंदुवार छिन्नमुत्तावलिप्पगासाइं अंसूणि विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी जमालिं खत्तियकुमारं एवं वयासी—जइयव्वं-जाया! घडियव्वं जाया ! परक्कमियव्वं जाया ! अस्सिं च णं अट्ठे णो पमाएतव्वं ति कट्टु जमालिस्स खत्तियकुमारस्स अम्मापियरो समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

तए णं से जमाली खत्तियकुमारे सयमेव पंचमुट्ठियं लोयं करेइ, करेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"आलित्ते णं भंते ! लोए, पलित्ते णं भंते ! लोए; आलित्त-पलित्ते णं भंते ! लोए जराए मरणेण य ।

से जहानामए केइ गाहावई अगारंसि झियायमाणंसि जे से तत्थ भंडे भवइ अप्पभारे मोल्लगरुए, तं गहाय आयाए एगंतमंतं अवक्कमइ । एस मे नित्थारिए समाणे पच्छा पुरा य हियाए सुहाए खमाए निस्सेयसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ।

एवामेव देवाणुप्पिया ! मज्झ वि आया एगे भंडे इट्ठे कंते पिए मणुण्णे मणामे थेज्जे वेस्सासिए सम्मए बहुमए अणुमए भंड-करंडगसमाणे, मा णं सीयं, मा णं उण्हं, मा णं खुहा, मा णं पिवासा, मा णं चोरा, मा णं वाला, मा णं दंसा, मा णं मसया, मा णं वाइय-पित्तिय-सेंभिय-सन्निवाइयविविहा रोगायंका परीसहो-वसग्गा फुसंतु त्ति कट्टु, एस मे नित्थारिए समाणे परलोयस्स हियाए सुहाए खमाए नीसेसाए आणुगामियत्ताए भविस्सइ ।

'हे देवानुप्रिय ! जिस प्रकार तुम्हें सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।

तब जमाली क्षत्रियकुमार ने श्रमण भगवान् महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की; प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उत्तर-पूर्व दिक्कोण में गया, वहाँ जाकर स्वयमेव आभरण, माला और अलंकार उतारे ।

तब जमाली क्षत्रियकुमार की माता ने हंस के समान धवल और मृदुल वस्त्र में आभरण, माला और अलंकार ग्रहण किये, ग्रहण करके हार जल की धारा निर्गुंडी के पुष्प और टूटी हुई मुक्तावली के समान आंसू टपकाती हुई जमाली क्षत्रिय कुमार से इस प्रकार कहने लगी—'हे लाल ! प्राप्त चारित्रयोग में यतना करना, हे पुत्र ! अप्राप्त चारित्रयोग को प्राप्त करने के लिये प्रयत्नशील रहना । हे पुत्र ! पराक्रम करना, इस अर्थ में—संयम साधना में प्रमाद मत करना, इस प्रकार कहकर जमाली क्षत्रिय कुमार के माता-पिता ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये ।

तत्पश्चात् उस जमाली क्षत्रिय कुमार ने स्वयं ही पंचमुष्टि लोच किया, लोच करके जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार प्रार्थना की—हे भदन्त ! यह संसार जरा और मरण से आदीप्त है, यह संसार प्रदीप्त है, हे भगवन् ! यह संसार आदीप्त-प्रदीप्त है ।

जैसे कोई गाथापति अपने घर में आग लग जाने पर घर में से जो अल्प भार वाली और बहुत मूल्य वाली वस्तु होती है, उसको लेकर स्वयं एकान्त में चला जाता है, वह सोचता है कि अग्नि में जलने से बचाया हुआ वह पदार्थ मेरे लिये आगे-पीछे हित के लिये, सुख के लिये, क्षेम के लिये अथवा सामर्थ्य के लिये, कल्याण के लिये और भविष्य में उपभोग के लिये होगा ।

इसीप्रकार हे देवानुप्रिय ! मेरा भी यह एक आत्मा रूपी भांड (रत्नों का डिब्बा) है, जो मुझे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, स्थिरता और विश्राम स्थान, सम्मत, बहुमत, अनुमत एवं भांड-करण्ड के समान है, अतएव जब तक उसका शरीर शीत, उष्ण, क्षुधा, पिपासा, चोर, व्याल, दंश, मशक, वात, पित्त-कफ, सन्निपात आदि विविध रोगातंक परीषह उपसर्ग स्पर्श नहीं करते हैं, तब तक यदि मैं इस आत्मा को निकाल लूंगा तो परलोक के लिये हितकारी, सुखकारी, सामर्थ्यकारी और अनुगामी रूप से कल्याणकारी होगा ।

तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सयमेव पव्वावियं, सयमेव मुण्डावियं, सयमेव सेहावियं, सयमेव सिक्खावियं, सयमेव आयार-गोयरं विणय-वेणइय-चरण-करण-जायामायावत्तियं धम्ममा इक्खियं।

अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि आप स्वयं ही मुझे प्रव्रजित करें, स्वयं ही मुण्डित करें, मेरा लोच करें, स्वयं ही सिखावें—शिक्षा दें, और स्वयं ही आचार, गोचरी, विनय, वैनयिक, चरण-सत्तरी, करण सत्तरी, संयम यात्रा, मात्रा (भोजन का परिमाण) आदि स्वरूप वाले धर्म का प्ररूपण करें।'

२८. तए णं भगवं महावीरे जमालिं खत्तियकुमारं पंचहिं पुरिस-सएहिं सद्धिं सयमेव पव्वावेइ-जाव-सामाइयमाइयाइं एक्कारस अंगाइं अहिज्जइ, अहिज्जित्ता बहूहिं चउत्थ-छट्ठट्ठम-दसम-दुवाल-सेहिं मासद्ध-मासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

२८. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर ने पाँच सौ पुरुषों के साथ जमाली क्षत्रियकुमार को स्वयं प्रव्रजित किया—यावत्—सामायिक आदि से लेकर ग्यारह अंगों का अध्ययन किया, अध्ययन करके बहुत से उपवास, बेला, तेला, चौला, पचौला, बारह, अर्धमास, मासखमण आदि विचित्र तप द्वारा आत्मा को भावित करता हुआ विचरने लगा।

जमालिणा जणवयविहारपत्थणा भगवओ महावीरस्स मोण—

२९. तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरित्तए।

तए णं समणे भगवं महावीरे जमालिस्स अणगारस्स दोच्चं पि, तच्चं पि, एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

जमाली द्वारा जनपद विहार की प्रार्थना : भगवान महावीर का मौन—

२९. तत्पश्चात् किसी एक समय जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे जमाली अनगार वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार प्रार्थना की—हे भदन्त ! आपकी आज्ञा अनुमति लेकर पाँच सौ अनगारों के साथ बाहरी जनपदों में विहार करना चाहता हूँ।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली अनगार के इस कथन का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया मौन रहे।

तत्पश्चात् जमाली अनगार ने दूसरी और तीसरी बार भी श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार निवेदन किया—हे भगवन् ! आपकी आज्ञा हो तो पाँच सौ अनगारों के साथ बाहरी जनपदों में मैं विहार करना चाहता हूँ।

तब श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली अनगार के इस दूसरी और तीसरी बार किये गये निवेदन का आदर नहीं किया, स्वीकार नहीं किया, किन्तु शान्त होकर मौन रहे।

जमालिस्स जणवयविहारो सावत्थी-आगमणं च—

३०. तए णं से जमाली अणगारे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ बहुसालाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पंचहिं अणगारसएहिं सद्धिं बहिया जणवयविहारं विहरइ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नयरी होत्था—वण्णओ, कोट्ठए चेइए—वण्णओ—जाव-वणसंडस्स। तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—वण्णओ। पुण्णभद्दे चेइए—वण्णओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ।

तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ पंचहिं अणगार-सएहिं सद्धिं संपरिवुडे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्ज-माणे जेणेव सावत्थी नयरी जेणेव कोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ,

जमाली का जनपद विहार और श्रावस्ती आगमन—

३०. तत्पश्चात् जमाली अनगार ने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके वे श्रमण भगवान् महावीर के पास से और बहुशाल चैत्य से निकले और निकलकर पाँच सौ अनगारों के साथ बाह्य जनपद विहार में विचरने लगे।

उस काल और उस समय श्रावस्ती नाम की नगरी थी, वर्णन करो, कोष्ठक चैत्य था, यावत्—वन खण्ड तक का वर्णन करो। उस काल और उस समय चम्पा नाम की नगरी थी, वर्णन करो। पूर्णभद्र चैत्य था, उसका पृथ्वी शिलापट्टक तक का वर्णन करो।

तत्पश्चात् किसी एक दिन जमाली अनगार पाँच सौ अनगारों से परिवृत होकर पूर्वानुपूर्वी से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ कोष्ठक चैत्य था,

उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

वहाँ आये, आकर यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

भगवओ महावीरस्स चंपाए आगमणं—

३१. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कयाइ पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुग्गामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव चंपा नयरी जेणेव पुण्णभद्दे चेइए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हइ, ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

भगवान महावीर का चम्पा में आगमन—

३१. तत्पश्चात् किसी एक समय श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए एवं सुखपूर्वक विहार करते हुए जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आये, आकर यथाप्रतिरूप अवग्रह ग्रहण किया, ग्रहण करके संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

जमालिस्स रोगातंकपीडा सेज्जासंथरणे आणा य—

३२. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स तेहिं अरसेहि य, विरसेहि य, अंतेहि य, पंतेहि य, लूहेहि य, तुच्छेहि य, कालाइक्कंतेहि य, पमाणाइक्कंतेहि य पाणभोयणेहिं अण्णया कयाइ सरीरगंसि विउले रोगातंके पाउब्भूए—उज्जले विउले पगाढे कक्कसे कडुए चंडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे दुरहियासे। पित्तज्जरपरिगतसरीरे, दाहवक्कंतिए यावि विहरइ।

तए णं से जमाली अणगारे वेयणाए अभिभूए समाणे समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुब्भे णं देवाणुप्पिया! मम सेज्जा-संथारगं संथरह।

तए णं ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एतमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता जमालिस्स अणगारस्स सेज्जा-संथारगं संथरंति।

जमाली को रोगातंक-पीड़ा और शैया संस्तरण की आज्ञा—

३२. तत्पश्चात् उस जमाली अनगार को उस अरस, विरस, अन्त-प्रान्त, रूक्ष तुच्छ कालातिक्रम और प्रमाणातिक्रम भोजन-पान से किसी समय शरीर में उज्ज्वल, विकट, प्रगाढ़, कर्कश, कटुक प्रचण्ड, दुःखद, कष्टसाध्य, तीव्र और दुस्सह विपुल रोगातंक उत्पन्न हो गया। शरीर में पित्त ज्वर व्याप्त हो जाने से वह दाहाक्रान्त होकर विचरने लगा।

तब वेदना से पीड़ित हो जमाली अनगार ने श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम मेरे लिये शैय्या संस्तारक बिछाओ।'

तदनन्तर उन श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमाली अनगार की इस आज्ञा को विनय पूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके वे जमाली अनगार के लिये शैया संस्तारक बिछाने लगे।

जमालि-तस्सिस्साणं सेज्जाकरणे 'कड-कज्जमाण'—विसए पण्हुत्तरं—

३३. तए णं से जमाली अणगारे बलियतरं वेयणाए अभिभूए समाणे दोच्चं पि समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—ममं णं देवाणुप्पिया! सेज्जासंथारए किं कडे? कज्जइ?

तए णं ते समणा निग्गंथा जमालिं अणगारं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पियाणं सेज्जा-संथारए कडे, कज्जइ।

जमाली और उसके शिष्यों का शैया करने में 'कृत-क्रियमाण' के विषय में प्रश्नोत्तर—

३३. तदनन्तर जमाली अनगार ने अतीव तीव्र वेदना से व्याकुल होकर दुबारा श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! मेरे लिये क्या शैया संस्तारक कर लिया है या कर रहे हो?'

तब श्रमण निर्ग्रन्थों ने जमाली अनगार से इस प्रकार कहा—'आप देवानुप्रिय के लिये शैया संस्तारक किया नहीं है किन्तु कर रहे हैं—बिछा रहे हैं।'

'चलमाणे चलिए' इच्चाइभगवंतपरूवणाए जमालिस्स विपरिणामणा—

३४. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—जण्णं समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—एवं खलु चलमाणे चलिए, उदीरिज्जमाणे उदीरिए, वेदिज्जमाणे वेदिए, पहिज्जमाणे पहीणे, छिज्जमाणे छिण्णे, भिज्जमाणे भिण्णे, डज्झमाणे डड्ढे, मिज्जमाणे मए, निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्च-

'चलमान चलित' इत्यादि भगवन्त प्ररूपणा में जमाली की विपरिणामना—

३४. तत्पश्चात् उस जमाली अनगार को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—श्रमण भगवान् महावीर तो इस प्रकार कहते हैं—यावत्—प्ररूपणा करते हैं कि—"चलमान चलित है, उदीर्यमाण उदीरित है, वेद्यमान (वेदा जाता) वेदित है, प्रक्षीणमान प्रक्षीण है, छिद्यमान छिन्न है, भिद्यमान भिन्न है, दग्धमान दग्ध है, म्रियमाण मृत है, निर्जीर्यमाण निर्जीर्ण है, वह मिथ्या है। क्योंकि यह तो प्रत्यक्ष

पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए। जम्हा णं सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए तम्हा चलमाणे वि अचलिए-जाव-निज्जरिज्जमाणे वि अनिज्जिण्णे—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता समणे निग्गंथे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—जण्णं देवाणुप्पिया! समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु चलमाणे चलिए-जाव-निज्जरिज्जमाणे निज्जिण्णे, तण्णं मिच्छा। इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए। जम्हा णं सेज्जा-संथारए कज्जमाणे अकडे, संथरिज्जमाणे असंथरिए तम्हा चलमाणे वि अचलिए-जाव-निज्जरिज्जमाणे वि अनिज्जिण्णे।

दिख रहा है कि जब तक शैया संस्तारक किया जाता हो तब तक किया नहीं है, बिछौना बिछाया जाता हो तब तक बिछाया हुआ नहीं है। जब शैया संस्तारक किया जा रहा हो, वह किया हुआ नहीं है, बिछौना बिछाया जाता हो, वह बिछाया हुआ नहीं है, तब चलमान भी अचलित है—यावत्—निर्जीर्णमाण भी अनिर्जीर्ण है, इस प्रकार का विचार किया, विचार करके श्रमण निर्ग्रन्थों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! श्रमण भगवान् महावीर इस प्रकार कहते हैं—यावत्—प्ररूपणा करते हैं कि चलमान चलित है—यावत्—निर्जीर्णमाण निर्जीर्ण है, वह मिथ्या है। क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि शैया संस्तारक किये जाते हों तब तक किये हुए नहीं है, बिछौना बिछाया जाता हो, तब तक बिछाया हुआ नहीं है। जब शैया संस्तारक किये जाते हुए भी नहीं किये हुए है, बिछौना बिछाया जाता हो, तब तक बिछाया नहीं है तब चलमान भी अचलित है—यावत्—निर्जीर्णमाण भी अनिर्जीर्ण है।"

जमालिपरूवणं असद्दहमाणाणं केसिंचि समणाणं भगवंत-समीवागमणं—

३५. तए णं तस्स जमालिस्स अणगारस्स एवमाइक्खमाणस्स-जाव-परूवेमाणस्स अत्थेगतिया समणा निग्गंथा एयमट्ठं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति, अत्थेगतिया समणा निग्गंथा एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति। तत्थ णं जे ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं सद्दहंति पत्तियंति रोयंति, ते णं जमालिं चेव अणगारं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति। तत्थ णं जे ते समणा निग्गंथा जमालिस्स अणगारस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति नो पत्तियंति नो रोयंति, ते णं जमालिस्स अणगारस्स अंतियाओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता समणं भगवं महावीरं उवसंपज्जित्ता णं विहरंति।

जमाली की प्ररूपणा का श्रद्धान नहीं करने वाले कुछ श्रमणों का भगवान के समीप आगमन—

३५. तत्पश्चात् जमाली अनगार द्वारा इस प्रकार कहे जाने—यावत्—प्ररूपणा किये जाने पर कुछ एक श्रमण निर्ग्रन्थ इस बात की श्रद्धा प्रतीति और रुचि करते हैं तथा दूसरे कई एक श्रमण निर्ग्रन्थ इस बात की श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं करते हैं। उनमें से जो श्रमण निर्ग्रन्थ जमाली अनगार की बात का श्रद्धान करते हैं, उसकी प्रतीति करते हैं और उसे रुचिकर मानते हैं, वे जमाली अनगार के साथ विचरते हैं और जो श्रमण निर्ग्रन्थ जमाली अनगार के इस कथन पर श्रद्धा नहीं करते हैं, प्रतीति नहीं करते हैं और रुचि नहीं करते हैं वे जमाली अनगार के पास से कोष्ठक चैत्य से निकलते हैं और निकलकर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए, जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था और उसमें जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर की तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके श्रमण भगवान् महावीर की नेश्राय में विचरने लगे।

जमालिणा चंपाए महावीरसमक्खं अप्पणो केवलित्तघोसणं—

३६. तए णं से जमाली अणगारे अण्णया कयाइ ताओ रोगायंकाओ विप्पमुक्के हट्ठे जाए, अरोए बलियसरीरे सावत्थीओ नयरीओ कोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव चंपा नयरी, जेणेव पुण्ण-

जमाली द्वारा चम्पा में महावीर के समक्ष अपना केवलित्व घोषण—

३६. तत्पश्चात् वह जमाली अनगार किसी एक दिन उस रोगातंक से मुक्त और स्वस्थ होने, निरोग एवं बलवान शरीर वाला होने पर श्रावस्ती नगरी और कोष्ठक चैत्य से निकला, निकलकर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलता हुआ, ग्रामानुग्राम में गमन करता हुआ जहाँ चम्पा नगरी थी, जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, उसमें जहाँ

महं चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—जहा णं देवाणुप्पियाणं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंता, नो खलु अहं तहा छउमत्थावक्कमणेणं अवक्कंते, अहं णं उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली भवित्ता केवलिअवक्कमणेणं अवक्कंते।

श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान् महावीर के कुछ समीप खड़े होकर श्रमण भगवान् महावीर से इस प्रकार बोला—'जिस प्रकार आप देवानुप्रिय के बहुत से अन्तेवासी श्रमण निर्ग्रन्थ छद्मस्थ रहकर छद्मस्थ विहार से विचरण कर रहे हैं, उस प्रकार से मैं छद्मस्थ विहार से विचरण नहीं करता हूँ, किन्तु मैं उत्पन्न ज्ञान-दर्शन को धारण करनेवाला, अरिहंत, जिन केवली होकर केवली, विहार से विचरण कर रहा हूँ।'

गोयमकए लोग-जीवविसए पण्हे जमालिस्स तुसिणीयत्तं—

३७. तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं एवं वयासी—नो खलु जमाली! केवलिस्स नाणे वा दंसणे वा सेलंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवरिज्जइ वा निवारिज्जइ वा, जदि णं तुमं जमाली! उप्पन्ननाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवलि भवित्ता केवलि-अवक्कमणेणं अवक्कंते, तो णं इमाइं दो वागरणाइं वागरेहि—सासए लोए जमाली! असासए लोए जमाली? सासए जीवे जमाली! असासए जीवे जमाली?

तए णं से जमाली अणगारे भगवया गोयमेणं एवं वुत्ते समाणे संकिए कंखिए वितिगिच्छिए भेदसमावण्णे कलुससमावण्णे जाए यावि होत्था, नो संचाएति भगवओ गोयमस्स किंचि वि पमोक्खमाइक्खित्तए, तुसिणीए संचिट्ठइ।

गौतमकृत लोक-जीवविषयक प्रश्न पर जमाली का मौन—

३७. तत्पश्चात् भगवान् गौतम ने जमाली अनगार को इस प्रकार कहा—'हे जमाली! केवली का ज्ञान, दर्शन पर्वत, स्तम्भ और स्तूप आदि से आवृत और निवारित नहीं होता है, यदि हे जमाली! तुम उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हंत जिन केवली विहार से विचरण कर रहे हो तो इन दो प्रश्नों का उत्तर दो—हे जमाली! लोक शाश्वत है या अशाश्वत है? हे जमाली! जीव शाश्वत है या अशाश्वत है?'

तब वह जमाली अनगार भगवान् गौतम के प्रश्नों को सुनकर शंकित, कांक्षित, भ्रमित, संकल्प-विकल्पयुक्त और कलुषित परिणाम वाला हो गया और भगवान् गौतम के प्रश्नों का उत्तर देने में सक्षम न हो सकने से मौनधारण कर चुपचाप खड़ा रहा।

भगवंतपरूवियं लोग-जीवाणं सासयत्त-असासयत्तं—

३८. जमालीति! समणे भगवं महावीरे जमालिं अणगारं एवं वयासी—'अत्थि णं जमाली! ममं बहवे अंतेवासी समणा निग्गंथा छउमत्था, जे णं पभू एयं वागरणं वागरित्तए, जहा णं अहं, नो चेव णं एतप्पगारं भासं भासित्तए, जहा णं तुमं।

"सासए लोए जमाली! जं न कयाइ नासि, न कयाए न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य—धुवे, नितिए सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए निच्चे।"

"असासए लोए जमाली! जं ओसप्पिणी भवित्ता उस्सप्पिणी भवइ, उस्सप्पिणी भवित्ता ओसप्पिणी भवइ।"

सासए जीवे जमाली! जं न कयाइ नासि, न कयाइ न भवइ, न कयाइ न भविस्सइ—भुविं च, भवइ य, भविस्सइ य—धुवे, नितिए, सासए, अक्खए, अव्वए, अवट्ठिए निच्चे।

"असासए जीवे जमाली! जण्णं नेरइए भवित्ता तिरिक्खजोणिए भवइ, तिरिक्खजोणिए भवित्ता मणुस्से भवई मणुस्से भवित्ता देवे भवइ।"

भगवन्त प्ररूपित लोक-जीव का शाश्वतत्व-अशाश्वतत्व—

३८. 'जमाली!' इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने जमाली अनगार से कहा—'हे जमाली! मेरे बहुत से श्रमण निर्ग्रन्थ शिष्य छद्मस्थ हैं, जो मेरे समान ही इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ हैं किन्तु जिस प्रकार तू कहता है कि मैं सर्वज्ञ आदि हूँ' वे इस प्रकार की भाषा नहीं बोलते हैं।

"हे जमाली! लोक शाश्वत है, क्योंकि लोक कदापि नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा। यह बात नहीं है। किन्तु लोक था, है और रहेगा। लोक ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।"

"हे जमाली! लोक अशाश्वत भी है, क्योंकि अवसर्पिणि काल होकर उत्सर्पिणी काल होता है, उत्सर्पिणी काल होकर अवसर्पिणी काल होता है।"

"हे जमाली! जीव शाश्वत है, क्योंकि जीव कदापि नहीं था, नहीं है और नहीं रहेगा, ऐसी बात नहीं है, किन्तु जीव था, है और रहेगा—जीव ध्रुव, नियत, शाश्वत, अक्षय, अव्यय, अवस्थित और नित्य है।"

"हे जमाली! जीव अनित्य भी है, क्योंकि वह नैरयिक होकर तिर्यचयोनिक हो जाता है, तिर्यंचयोनिक होकर मनुष्य हो जाता है, मनुष्य होकर देव हो जाता है।"

जमालिस्स असद्दहणं, मरणंते य लंतए देवकिब्बिसियत्तं—

३९. तए णं से जमाली अणगारे समणस्स भगवओ महावीरस्स एवमाइक्खमाणस्स-जाव- एवं परूवेमाणस्स एतमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एतमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे दोच्चं पि समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणइ, पाउणित्ता अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेइ, झूसेत्ता तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेइ, छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

जमाली का अश्रद्धान और मरणान्त में लंतक कल्प में किल्विषिक देवत्व —

३९. तत्पश्चात् जमाली अनगार श्रमण भगवान् महावीर की कही गई—यावत्— प्ररूपित की गई बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि नहीं करता हुआ किन्तु इस अर्थ पर अश्रद्धा, अप्रतीति एवं अरुचि करता हुआ दूसरी बार श्रमण भगवान् महावीर की आज्ञा का अतिक्रमण कर बाहर निकल गया और निकलकर अनेक असद्‌भूत भावों से तथा मिथ्यात्व के अभिनिवेश से अपनी आत्मा को, पर को और उभय को—स्व पर को —भ्रान्त करता हुआ श्रमण पर्याय का पालन करता रहा, पालन करके अर्धमासिक संलेखना से आत्मा को स्वच्छ-शुद्ध कर तीस भोजनों का अनशन द्वारा छेदन कर और उस स्थान की आलोचना, प्रतिक्रमणा किये बिना मृत्युकाल में काल करके लंतक कल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूप से उत्पन्न हुआ।

४०. तए णं भगवं गोयमे जमालिं अणगारं कालगयं जाणित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी — एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से जमाली नामं अणगारे से णं भंते ! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?

गोयमा ! दी समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी —एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी कुसिस्से जमाली नाम अणगारे, से णं तदा ममं एवमाइक्खमाणस्स एवं भासमाणस्स एवं पण्णवेमाणस्स एवं परूवेमाणस्स एतमट्ठं नो सद्दहइ नो पत्तियइ नो रोएइ, एतमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे, दोच्चं पि ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमइ, अवक्कमित्ता बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिणिवेसेहि य अप्पाणं च परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कते कालमासे कालं किच्चा वुप्पाएमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमठितीएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने।

४०. तत्पश्चात् भगवान् गौतम जमाली अनगार को कालगत जानकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे वहाँ आये, आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी कुशिष्य जमाली नामक जो अनगार था, हे भदन्त ! वह जमाली अनगार मरण समय में मरण करके कहाँ गया ! कहाँ उत्पन्न हुआ ?'

''गौतम ! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम अनगार से इस प्रकार कहा—हे गौतम ! मेरा अन्तेवासी कुशिष्य जो जमाली नाम का अनगार था वह मेरे द्वारा कही गई भाषित प्रज्ञप्त एवं प्ररूपित बात पर श्रद्धा, प्रतीति और रुचि न कर परन्तु अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचिकर दूसरी बार भी मेरी आज्ञा से बाहर निकल गया और निकलकर बहुत से असद् भावों को प्रगट करने से, मिथ्या अभिनिवेशों से, स्वयं को, पर को और उभय को भ्रान्त करता हुआ मिथ्या ज्ञान वाला करता हुआ, बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन कर अर्धमासिक संलेखना से आत्मा को शुद्ध कर, तीस भक्तों का अनशन द्वारा छेदन कर और उस पाप स्थान की आलोचना-प्रतिक्रमणा किये बिना ही काल मास में काल करके लंतक कल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूप से उत्पन्न हुआ।

देवकिब्बिसियभेयाइनिरूवणं—

४१. कतिविहा णं भंते ! देवकिब्बिसिया पण्णत्ता ?

गोयमा ! तिविहा देवकिब्बिसिया पण्णत्ता, तं जहा—तिपलिओवमट्ठिइया, तिसागरोवमट्ठिइया, तेरससागरोवमट्ठिइया।

किल्विषिक देवों के भेद आदि का निरूपण—

४१. प्रश्न —हे भदन्त ! किल्विषिक देव कितने प्रकार के कहे गये हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! किल्विषिक देव तीन प्रकार के कहे गये हैं, यथा—तीन पल्योपम की स्थिति वाले, तीन सागरोपम की स्थिति वाले और तेरह सागरोपम की स्थिति वाले।

कहिं णं भंते ? तिपलिओवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

गोयमा ! उप्पिं जोइसियाणं, हेट्ठिं सोहम्मीसाणेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिपलिओवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

कहिं णं भंते ! तिसागरोवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

गोयमा ! उप्पिं सोहम्मीसाणाणं कप्पाणं, हेट्ठिं सणंकुमार-माहिंदेसु कप्पेसु, एत्थ णं तिसागरोवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया परिवसंति।

कहिं णं भंते ! तेरससागरोवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया परिवसंति ?

गोयमा ! उप्पिं बंभलोगस्स कप्पस्स, हेट्ठिं लंतए कप्पे, एत्थ णं तेरससागरोवमट्ठिइया देवकिब्बिसिया देवा परिवसंति।

देवकिब्बिसिया णं भंते ! केसु कम्मादाणेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति ?

गोयमा ! जे इमे जीवा आयरियपडिणीया, उवज्झायपडिणीया, कुलपडिणीया, गणपडिणीया, संघपडिणीया, आयरिय—उवज्झायाणं अयसकारा अवण्णकारा अकित्तिकारा, बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं, मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाणं परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणा वुप्पाएमाणा बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणंति, पाउणित्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवकिब्बिसिएसु देवकिब्बिसियत्ताए उववत्तारो भवंति, तं जहा—तिपलिओवमट्ठितिएसु वा, तिसागरोवमट्ठितिएसु वा, तेरससागरोवमट्ठितिएसु वा।

देवकिब्बिसिया णं भंते ! ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं, भवक्खएणं, ठितिक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छंति। कहिं उववज्जंति ?

गोयमा ! जाव-चत्तारि पंच नेरइय-तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता ताओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिणिव्वायंति सव्वदुक्खाणं अंतं करेंति, अत्थेगतिया अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टंति।

प्रश्न—हे भगवन् ! तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! ज्योतिष्क देवों के ऊपर और सौधर्म एवं ईशान देवलोक के नीचे तीन पल्योपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

प्रश्न—हे भदन्त ! तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ रहते हैं ?

उत्तर—गौतम ! सौधर्म-ईशानकल्प के ऊपर और सनत्कुमार माहेन्द्रकल्प के नीचे तीन सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव कहाँ निवास करते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! ब्रह्मलोक के ऊपर और लंतक कल्प के नीचे तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देव रहते हैं।

प्रश्न—हे भगवन् ! किल्विषिक देव किस कर्म के निमित्त से किल्विषिक देव रूप से उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! जो जीव आचार्य, उपाध्याय, कुल, गण और संघ के प्रत्यनीक (द्वेष करने वाले द्वेषी) होते हैं, आचार्य और उपाध्याय का अयश करने वाले होते हैं, अवर्णवाद करने वाले होते हैं, अकीर्ति करने वाले होते हैं और बहुत से असत्य अर्थों को प्रकट करने वाले होते हैं और मिथ्या कदाग्रह से अपनी आत्मा को, परको और उभय को भ्रान्त एवं विपरीत बोध करने कराने वाले जीव बहुत वर्षों तक श्रमणपर्याय का पालन कर उस पाप स्थान की आलोचना प्रतिक्रमण नहीं करके मरण के समय मरण करके तीन पल्योपम की स्थिति वाले तीन सागरोपम की स्थिति वाले अथवा तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूप से उत्पन्न होते हैं।

प्रश्न—हे भदन्त ! वे किल्विषिक देव आयुक्षय भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर च्यवित होकर कहाँ जाते हैं, कहाँ उत्पन्न होते हैं ?

उत्तर—हे गौतम ! कुछ किल्विषिक देव नैरयिकतिर्यंच मनुष्य और देव के चार पाँच भव कर संसार परिभ्रमण करके उसके बाद सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं, परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्व दुःखों का अन्त करते हैं और कितने ही अनादि, अनन्त दीर्घमार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कांतार में परिभ्रमण करते हैं।

४२. जमाली णं भंते ! अणगारे अरसाहारे विरसाहारे अंताहारे पंताहारे लूहाहारे तुच्छाहारे अरसजीवी विरसजीवी अंतजीवी पंतजीवी लूहजीवी तुच्छजीवी उवसंतजीवी पसंतजीवी विवित्तजीवी ?

४२. प्रश्न—हे भदन्त ! क्या जमाली अनगार अरसाहारी, विरसाहारी, अन्ताहारी, प्रांताहारी, रूक्षाहारी, तुच्छाहारी, अरसजीवी, विरसजीवी, अन्तजीवी, प्रान्तजीवी, रूक्षजीवी, तुच्छजीवी, उपशांतजीवी, प्रशान्तजीवी और विविक्तजीवी (पवित्र और एकान्त जीवन वाला) था ?

हंता गोयमा ! जमाली णं अणगारे अरसाहारे विरसाहारे -जाव-विवित्तजीवी ।

जति णं भंते ! जमाली अणगारे अरसाहारे विरसाहारे-जाव-विवित्तजीवी कम्हा णं भंते ! जमाली अणगारे कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमट्ठितिएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने ?

गोयमा ! जमाली णं अणगारे आयरियपडिणीए, उवज्झायपडिणीए, आयरियउवज्झायाणं अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए, बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छत्ताभिनिवेसेहि य अप्पाणं परं च तदुभयं च वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता, अद्धमासियाए संलेहणाए तीसं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता तस्स ठाणस्स अणालोइयपडिक्कंते कालमासे कालं किच्चा लंतए कप्पे तेरससागरोवमट्ठितिएसु देवकिब्बिसिएसु देवेसु देवकिब्बिसियत्ताए उववन्ने ।

उत्तर—हे गौतम ! हाँ, जमाली अनगार अरसाहारी, विरसाहारी—यावत्—विविक्तजीवी था ।

प्रश्न—हे भदन्त ! जब जमाली अनगार अरसाहारी, विरसाहारी—यावत्—विविक्तजीवी था तब हे भदन्त ! जमाली अनगार कालमास में काल करके लंतक कल्प में किल्विषिक देवों में किल्विषिक देव रूप से उत्पन्न क्यों हुआ ?

उत्तर—हे गौतम ! जमाली अनगार आचार्य और उपाध्याय का प्रत्यनीक था, आचार्य—उपाध्याय का अयश करने वाला था, अवर्णवाद और अकीर्ति करने वाला तथा मिथ्याभिनिवेश द्वारा अपने आपको, दूसरों को और उभय को भ्रान्त एवं दुर्बोध करता था तथा बहुत वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन कर, अर्धमासिक संलेखना द्वारा शरीर को कृशकर तीस भोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर भी उस पापस्थान की आलोचना, प्रतिक्रमणा नहीं करके कालमास में काल कर लंतक कल्प में तेरह सागरोपम की स्थिति वाले किल्विषिक देवों में देव रूप से उत्पन्न हुआ ।

जमालिस्स अण्णे भवा सिद्धी य—

४३. जमाली णं भंते ! देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?

गोयमा ! चत्तारि पंच तिरिक्खजोणिय-मणुस्स-देवभवग्गहणाइं संसारं अणुपरियट्टित्ता तओ पच्छा सिज्झिहिति बुज्झिहिति मुच्चिहिति परिणिव्वाहिति सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति ।

—भग० स० ९, उ० ३३

जमाली के अन्यभव और सिद्धि—

४३. प्रश्न—हे भदन्त ! वह जमाली देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थिति क्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर—हे गौतम ! चार या पाँच तिर्यंचयोनिक मनुष्य और देवभव ग्रहण रूप संसार परिभ्रमण करके तत्पश्चात् सिद्ध होगा, बुद्ध होगा, मुक्त होगा, परिनिर्वाण को प्राप्त करेगा और सर्वदुःखों का अन्त करेगा ।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कहकर गौतम विचरने लगे ।

३. आजीवियतित्थयर-गोसालकहाणयं—

सावत्थीए हालाहलाए कुम्भकारावणंसि गोसालो—

४४. तेणं कालेणं तेणं समएणं सावत्थी नामं नगरी होत्था—वण्णओ ।

तीसे णं सावत्थीए नगरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, तत्थ णं कोट्ठए नामं चेइए होत्था—वण्णओ ।

३. आजीवक तीर्थंकर-गोशाल कथानक—

श्रावस्ती नगरी में हालाहला के कुम्भकारापण में गोशाल—

४४. उस काल और उस समय में श्रावस्ती नाम की नगरी थी—नगरी का वर्णन जानना चाहिए ।

उस श्रावस्ती नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिक्कोण में कोष्ठक नामक चैत्य था—चैत्य का वर्णन जानना ।

तत्थ णं सावत्थीए नगरीए हालाहला नामं कुम्भकारी आजीवियोवासिया परिवसति – अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया, आजीवियसमयंसि लद्धट्ठा गहियट्ठा पुच्छियट्ठा विणिच्छियट्ठा अट्ठि-मिंजपेम्माणुरागरत्ता, अयमाउसो ! आजीवियसमये अट्ठे, अयं परमट्ठे, सेसे अणट्ठे त्ति आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणी विहरइ।

उस श्रावस्ती नगरी में हालाहला नामक आजीविकोपासिका कुम्भकारिनी (कुम्हारिन) रहती थी। वह धन-धान्य सम्पन्न थी यावत्—अनेकों लोगों द्वारा भी पराभव प्राप्त करने वाली नहीं थी—अपराभूत थी। उसने आजीविक सिद्धान्त का अर्थ (रहस्य) प्राप्त कर लिया था, ग्रहण कर लिया था, अर्थ पूछ लिया था, अर्थ का निश्चय कर लिया था एवं उसकी अस्थि और मज्जा भी आजीविक सिद्धान्त के प्रति प्रेम और अनुराग से रंगी हुई थी। वह दूसरों से कहती थी कि हे आयुष्मनो ! आजीविक सिद्धान्त ही अर्थ रूप– सार्थक है, यही परमार्थ है, किन्तु इससे शेष अर्थ तो अनर्थ रूप है, इस प्रकार से वह आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करती हुई विचरती थी।

तेणं कालेणं तेणं समएणं गोसाले मंखलिपुत्ते चउव्वीसवास-परियाए हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि आजीवियसंघ-संपरिवुडे आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

उस काल और उस समय में चौबीस वर्ष की दीक्षा पर्याय वाला मंखलिपुत्र[1] गोशाल हालाहला कुम्हारिन के कुंभकारापण (दुकान) में आजीविक संघ से परिवृत्त होकर आजीविक सिद्धांत से आत्मा को भावित करते हुए विचरता था।

दिसाचराणं पुव्वगयनिज्जूहणं—

४५. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णया कदायि इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तं जहा—साणे, कलंदे, कणि-यारे, अच्छिदे, अग्गिवेसायणे अज्जुणे गोमायुपुत्ते।

दिशाचरों का पूर्वगत निर्यूहण—

४५. तत्पश्चात् किसी एक समय उस मंखलिपुत्र गोशाल के पास छह दिशाचर प्रादुर्भूत हुए—आये, यथा—१. शान, २. कलन्द, ३. कर्णिकार, ४. अच्छिद्र, ५. अग्निवेश्यायन और ६. गोमायुपुत्र अर्जुन।

तए णं ते छ दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं सएहिं-सएहिं मतिदंसणेहिं निज्जूहंति, निज्जूहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु।

तब उन छह दिशाचरों ने पूर्वगत आठ प्रकार के निमित्तों और दसवें मार्ग को अपने अपने मति दर्शन से उद्धृत किया और उद्धृत करके गोशाल मंखलिपुत्र का आश्रय ग्रहण किया, अथवा मंखलिपुत्र गोशाल को दिये।

गोसालकयं छ अणइक्कमणाईणं परूवणं—

४६. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तं जहा—

लाभं अलाभं सुहं दुक्खं, जीवियं मरणं तहा।

गोशालकृत छह अनतिक्रमणीय की प्ररूपणा—

४६. तत्पश्चात् वह मंखलिपुत्र गोशाल उस अष्टांग महानिमित्त के स्वल्प उपदेश द्वारा सभी प्राणों, सभी भूतों, सभी सत्वों और सभी जीवों को इन छह बातों के विषय में अनतिक्रमणीय (जो असत्य न हो) उत्तर देने लगा—वे छह विषय ये हैं—

१. लाभ, २. अलाभ, ३. सुख, ४. दुःख, ५. जीवन, और, ६. मरण।

गोसालस्स जिणत्तं—

४७. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सावत्थीए नगरीए अजिणे जिणप्पलावी, अण-रहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्प-लावी, अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ।

गोशाल का जिनत्व—

४७. तदनन्तर वह मंखलिपुत्र गोशाल अष्टांग महानिमित्त के कुछ एक स्वल्प उपदेश मात्र से श्रावस्ती नगरी में 'जिन' नहीं होते हुए भी मैं जिन हूँ। इस प्रकार का प्रलाप करता हुआ 'अरिहन्त नहीं होते हुए भी अरिहन्त होने का 'मिथ्याप्रलाप करता हुआ', अकेवली होते हुए भी केवली होने का प्रलाप करता हुआ 'सर्वज्ञ नहीं होते हुए भी सर्वज्ञ होने का प्रलाप करते हुए', जिन नहीं होते हुए भी जिन शब्द का प्रकाश (विज्ञापन) करते हुए विचरने लगा।

---

१ चित्रफलक हाथ में लेकर आजीविका करने वाला (मंख)।

तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ, एवं भासइ, एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। से कहमेयं मन्ने एवं?"

तब श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों और महापथों में बहुत से मनुष्य एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, इस प्रकार बोलने लगे, इस प्रकार से बताने लगे और इस प्रकार से प्ररूपित करने लगे—'हे देवानुप्रियो! ये मंखलिपुत्र गोशाल अपने को जिन और जिन होने का प्रलाप करता हुआ, अर्हत् और अर्हत् होने का प्रलाप करता हुआ, केवली और केवली का प्रलाप करता हुआ, सर्वज्ञ और सर्वज्ञ होने का प्रलाप करता हुआ, जिन और जिन शब्द का प्रकाशन करता हुआ विचरण कर रहा है सो इस प्रकार कैसे माना जाये?'

भगवओ महावीरसमोसरणं, गोयमस्स गोयरचरियागमणं च—

भगवान् महावीर का समवसरण और गौतम का गोचर-चर्या के लिए गमन—

४८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे–जाव—परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूती नामं अणगारे गोयमे गोत्तेणं सत्तुस्सेहे समचउरंससंठाणसंठिए वज्जरिसभनारायसंघयणे कणगपुलगनिघसपम्हगोरे उग्गतवे दित्ततवे तत्ततवे ओराले घोरे घोरगुणे घोरतवस्सी घोरबंभचेरवासी उच्छूढसरीरे संखित्तविउलतेयलेस्से छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

४८. उस काल और उस समय स्वामी (श्रमण भगवान् महावीर) पधारे—यावत्—दर्शनार्थ परिषदा निकली और वापस लौटी।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी, सात हाथ ऊँचे, समचतुरस्र संस्थान से संस्थित आकार वाले, वज्र ऋषभनाराच संहनन वाले, कसौटी पर घिसे गये स्वर्ण के समान गौरवर्ण वाले, उग्रतपस्वी, दीप्ततपस्वी, तप से तप्त, महातपस्वी, उदार, घोर, घोर गुणवाले, घोर तपस्वी, महान ब्रह्मचर्य के आराधक, शरीर के प्रति निर्मोही, शरीर में संक्षिप्त, तेजोलेश्या वाले; निरन्तर षष्ठ-षष्ठ (बेले-बेले) तपोकर्म से एवं संयम तथा अन्य विविध प्रकार के तपों से आत्मा को भावित करते हुए गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार विचरते थे।

तए णं भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे छट्ठक्खमणपारणगंसि सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए।"

इसके बाद भगवान् गौतम ने षष्ठखमण के पारणे के दिन प्रथम प्रहर में स्वाध्याय किया दूसरे प्रहर में ध्यान ध्याया, तीसरे प्रहर में अत्वरित, अचपल और असंभ्रांत भावपूर्वक मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके फिर भाजन, वस्त्र की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके भाजनों (पात्रों) को प्रमार्जित किया—पोंछा प्रमार्जित करके भाजनों को उठाया, उठाकर जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, आकर भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—'हे भदन्त! आपकी आज्ञानुमति प्राप्त कर—षष्ठक्षमण के पारणे के निमित्त श्रावस्ती नगरी के उच्च-नीच मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये भ्रमण करना चाहता हूँ।'

"अहासुहं देवाणुप्पिया! मा पडिबंधं।"

भगवान् ने उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! जैसा अनुकूल हो वैसा करो किन्तु, विलम्ब मत करो।'

तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ कोट्ठयाओ चेइ-

तत्पश्चात् भगवान् गौतम श्रमण भगवान् महावीर द्वारा आज्ञा प्राप्त करके श्रमण भगवान् महावीर के पास से एवं

याओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव सावत्थी नगरी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियं अडइ।

कोष्ठक चैत्य से निकले, निकलकर अतुरित अचपल और असंभ्रांत भाव पूर्वक युगान्तर प्रमाण देखने वाली दृष्टि से आगे के मार्ग को देखते-भालते हुए जहाँ श्रावस्ती नगरी थी वहाँ आये आकर श्रावस्ती नगरी में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये घूमने लगे।

तए णं भगवं गोयमे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेइ, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। से कहमेयं मन्ने एवं?

तब भगवान् गौतम ने श्रावस्ती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये घूमते हुए बहुत से मनुष्यों की बातचीत सुनी, वे बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, बोल रहे थे—यावत्—प्ररूपणा कर रहे थे—'देवानुप्रियो! गोशाल मंखलिपुत्र अपने को जिन और जिन का प्रलाप करता हुआ—यावत्—जिन और जिन शब्द का प्रकाशन करता हुआ विचरण कर रहा है तो उसकी यह बात कैसे मानी जाये?''

गोयमस्स गोसालचरियजाणणत्थं पत्थणा—

४९. तए णं भगवं गोयमे बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म जायसड्ढे-जाव-समुप्पन्नकोउहल्ले अहापज्जत्तं समुदाणं गेण्हइ, गेण्हित्ता-जाव-जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पच्चासन्ने णातिदूरे सुस्सूसमाणे नमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलियडे, पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

गौतम का गोशाल चरित्र जाननार्थ प्रश्न—

४९. तब बहुत से लोगों से इस बात को सुनकर और अवधारणा कर तथा प्रश्न पूछने की श्रद्धा वाले होकर—यावत्—कौतूहल उत्पन्न होने पर भगवान् गौतम ने यथा पर्याप्त (अपने खाने योग्य) समुदान (आहार-भोजन) को लिया, लेकर—यावत्—जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर के समीप गमनागमन सम्बन्धी क्रिया का प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणीय आहार को देखा, देखकर भगवान् को आहार पानी दिखाया, दिखाकर श्रमण भगवान् महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके न अतिनिकट और न अति दूर किन्तु यथोचित स्थान पर सुश्रुषा करते हुए, नमस्कार करते हुए सन्मुख विनयपूर्वक अंजलि करके इस प्रकार निवेदन किया—

एवं खलु अहं भंते! छट्ठक्खमणपारणगंसि तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाणि कुलाणि घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे बहुजणसद्दं निसामेमि, बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे। से कहमेयं भंते! एवं? तं इच्छामि णं भंते! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स उट्ठाणपरियाणियं परिकहियं।

'हे भदन्त! मैंने षष्ठखमण के पारणे के लिये आपकी आज्ञा लेकर श्रावस्ती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के निमित्त घूमते हुए बहुत से लोगों की बातचीत सुनी है, वे बहुत से लोग परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे, बोल रहे थे—यावत्—प्ररूपणा कर रहे थे कि—हे देवानुप्रियो! गोशाल मंखलिपुत्र अपने को जिन कहता हुआ और जिनका अपलाप करता हुआ—यावत्—जिन और जिन शब्द को प्रकाशित करता हुआ विचरण कर रहा है, तो यह बात कैसे मानी जाये? अतएव हे भदन्त! मैं आपसे गोशाल मंखलिपुत्र का जन्म से लेकर अन्त तक का वृत्तान्त सुनना चाहता हूँ।'

महावीरेणं गोयमचरियवण्णणं—

५०. गोयमा! ई समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—जण्णं गोयमा! से बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ एवं खलु गोसाले मंखलि-

महावीर द्वारा गोशाल चरित्र वर्णन का पूर्वभाग—

५०. हे गौतम! इस प्रकार से गौतम स्वामी को आमंत्रित—सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने गौतम भगवान् से इस प्रकार कहा—'बहुत से मनुष्य जो परस्पर एक दूसरे से इस

पुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ। तण्णं मिच्छा। अहं पुण गोयमा! एवमाइक्खामि-जाव-परूवेमि—एवं खलु एयस्स गोसालस्स मंखलीपुत्तस्स मंखली नामं मंखे पिता होत्था। तस्स णं मंखलिस्स मंखस्स भद्दा नामं भारिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया-जाव-पडिरूवा। तए णं सा भद्दा भारिया अण्णया कयाइ गुव्विणी यावि होत्था।

प्रकार कहते हैं, बोलते हैं, प्रतिपादित करते हैं और प्ररूपण करते हैं कि गोशाल मंखलिपुत्र अपने आपको जिन कहता हुआ जिन का प्रलाप करता है—यावत्—अपने आपको जिन और जिन का प्रकाश करता हुआ विचरता है वह बात मिथ्या है। किन्तु हे गौतम! मैं तो इस प्रकार कहता हूँ—यावत्—प्ररूपित करता हूँ कि गोशाल मंखलिपुत्र का मंखली नामक मंख पिता था। उस मंखलि मंख की भार्या का नाम भद्रा था, वह सुकुमाल हाथ पैर वाली—यावत्—मनोहर थी। तत्पश्चात् किसी समय वह भद्रा भार्या गर्भवती हुई।

मंखलि-भद्दाणं गोसालाए निवासो—

५१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सरवणे नामं सण्णिवेसे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे-जाव-नंदणवण-सन्निभप्पगासे, पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे। तत्थ णं सरवणे सण्णिवेसे गोबहुले नामं माहणे परिवसइ—अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए, रिउव्वेद-जाव-बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था। तस्स णं गोबहुलस्स माहणस्स गोसाला यावि होत्था।

मंखलि भद्रा का गोशाला में निवास—

५१. उस काल और उस समय में शरवण नाम का सन्निवेश था, वह ऋद्धि सम्पन्न, शत्रु भय से मुक्त धन धान्यादि से समृद्ध—यावत्—नंदन वन के समान प्रभा कांति वाला, प्रासादिक, दर्शनीय, मनोहर और अतीव सुन्दर था। उस शरवण सन्निवेश में गोबहुल नामक माहण—ब्राह्मण निवास करता था। वह ब्राह्मण धनाढ्य था—यावत्—अनेक लोगों द्वारा अपरिभूत था, ऋग्वेद—यावत्—ब्राह्मण ग्रन्थों, परिव्राजक शास्त्रों, नयों के विषय में निपुण था। उस गोबहुल माहण की एक गोशाला थी।

तए णं से मंखली मंखे अण्णया कयाइ भद्दाए भारियाए गुव्विणीए सद्धिं चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव सरवणे सण्णिवेसे जेणेव गोबहुलस्स माहणस्स गोसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेसंसि भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता सरवणे सण्णिवेसे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घर-समुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसहीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, वसहीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणे अण्णत्थ वसहिं अलभमाणे तस्सेव गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए।

तत्पश्चात् वह मंखली मंख किसी एक दिन गर्भवती भद्रा भार्या के साथ चित्र फलक हाथ में लेकर मंखपने (चित्र दिखाकर आजीविका करने वाली भिक्षुवृत्ति) से अपनी आजीविका का अर्जन करते हुए पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए जहाँ वह शरवण नामक सन्निवेश (ग्राम) था, जहाँ गोबहुल माहण की गोशाला थी, वहाँ आया, आकर गोबहुल माहण की गोशाला के एक कोने में अपने भंडोपकरण रखे, रखकर शरवण ग्राम के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा माँगने के लिये घूमते हुए वसति के सभी स्थानों पर मार्गणा, गवेषणा करने लगा, वसतिका (निवास करने योग्य स्थान) की सभी स्थानों पर मार्गणा, गवेषणा करते हुए भी जब अन्य वसतिका नहीं मिली तो उसी गोबहुल माहण की गोशाला के किसी एक कोने में ही वर्षा ऋतु बिताने के लिये बस गया।

मंखलि-भद्दाहिं नियपुत्तस्स 'गोसाल' नामकरणं—

५२. तए णं सा भद्दा भारिया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं-जाव-पडिरूवगं दारगं पयाया।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीतिक्कंते-जाव-बारसमे दिवसे अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए गोबहुलस्स माहणस्स गोसालाए जाए तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं गोसाले-गोसाले त्ति।

मंखलि-भद्रा द्वारा निज पुत्र का 'गोशाल' नामकरण—

५२. तत्पश्चात् नौ मास पूर्ण होने और साढ़े सात रात्रि दिन बीतने पर उस भद्राभार्या ने सुकुमाल हाथ पैर वाले—यावत्—एक सुन्दर दारक (पुत्र) का प्रसव किया।

इसके बाद उस बालक के माता पिता ने ग्यारह दिन बीत जाने के बाद बारहवें दिन इस प्रकार का यह गुण निष्पन्न नामकरण किया—क्योंकि हमारा यह बालक गोबहुल माहण की गोशाला में उत्पन्न हुआ है, इसलिये हमारे इस बालक का नाम गोशाल हो।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापितरो नामधेज्जं करेंति गोसाले त्ति ।

तब माता पिता ने उस बालक का गोशाल (गोशालक) यह नामकरण किया।

गोसालस्स मंखचरिया—

५३. तए णं से गोसाले दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणय-मेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते सयमेव पाडिएक्कं चित्तफलगं करेइ, करेत्ता चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

गोशाल की मंखचर्या—

५३. तत्पश्चात् उस गोशाल दारक ने बाल्यावस्था से मुक्त होकर विज्ञान से परिपक्व होकर और युवावस्था को प्राप्त कर स्वयं चित्रफलक बनाया और बनाकर उस चित्रफलक को हाथ में लेकर मंखपने से (चित्र दिखाकर आजीविका उपार्जित करने से) अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगा।

भगवओ नालंदाए तंतुसालाए विहरणं—

५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! तीसं वासाइं अगार-वासमज्झे वसित्ता अम्मा-पिईहिं देवत्तगएहिं समत्तपइण्णे एवं जहा भावणाए-जाव-एगं देवदूसमादाय मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए ।

तए णं अहं गोयमा ! पढमं वासं अद्धमासं अद्धमासेणं खममाणे अट्ठियगामं निस्साए पढमं अंतरवासं वासावासं उवागए । दोच्चं वासं मासंमासेणं खममाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे, जेणेव नालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हामि, ओगिण्हित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए ।

तए णं अहं गोयमा ! पढमं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ।

भगवान का नालंदा की तंतुशाला में विहरण—

५४. हे गौतम ! उस काल और उस समय मैं तीस वर्ष तक गृहस्थावस्था में रहकर माता-पिता के दिवंगत हो जाने पर प्रतिज्ञा पूर्ण होने पर जैसा भावना अधिकार में वर्णन किया है, तदनुसार—यावत्—एक देवदूष्य ग्रहण कर मुण्डित हो गृह त्याग कर अनगारिक प्रव्रज्या से प्रव्रजित हुआ।

तत्पश्चात् हे गौतम ! मैं प्रथम वर्ष अर्ध-अर्धमास क्षमण करते हुए अस्थिक ग्राम की निश्रा (आश्रय) में प्रथम वर्षावास बिताने आया। दूसरे वर्ष मास-मासक्षमण करते हुए और पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ नालन्दा उपनगर था और उसमें जहाँ तन्तुवाय (कपड़ा बुनने की) शाला थी, वहाँ आया, आकर यथा प्रतिरूप अवग्रह (स्थान की आज्ञा) ग्रहण की, ग्रहण करके तंतुवाय शाला के एक कोने में वर्षा काल (चातुर्मास) बिताने के लिये ठहर गया।

उस समय हे गौतम ! मैं प्रथम मास क्षमण स्वीकार करके विचरने लगा।

गोसालस्स वि तंतुसालाए आगमणं

५५. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते चित्तफलगहत्थगए मंखत्तणेणं अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे जेणेव रायगिहे नगरे, जेणेव नालंदा बाहिरिया, जेणेव तंतुवाय-साला, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंतुवायसालाए एगदेसंसि भंडनिक्खेवं करेइ, करेत्ता रायगिहे नगरे उच्चनीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे वसहीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, वसहीए सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणे अण्णत्थ कत्थ वि वसहिं अलभमाणे तीसे य तंतुवाय-सालाए एगदेसंसि वासावासं उवागए, जत्थेव णं अहं गोयमा !

गोशाल का भी तंतुशाला में आगमन—

५५. तत्पश्चात् वह गोशाल मंखलिपुत्र हाथ में चित्रपट को लेकर मंखपन से अपने को भावित करते हुए, पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में घूमते हुए—गमन करते हुए जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ नालंदा नामक बाहरी बस्ती थी, उसमें जहाँ तंतुवाय शाला थी, वहाँ आया, आकर उसने तंतुवाय शाला के एक कोने में भंडोपकरण रखे, रखकर राजगृह नगर के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षावृत्ति के लिये घूमते हुए सभी स्थानों में बसतिका की मार्गणा-गवेषणा करते हुए जब अन्यत्र कहीं भी वास स्थान को प्राप्त न कर सका तो हे गौतम ! जहाँ मैं ठहरा हुआ था, उसी तंतुवाय शाला के एक कोने में वर्षाकाल बिताने के लिये रहने लगा।

भगवओ पढममासखमणपारणे पंच दिव्वाइं

५६. तए णं अहं गोयमा ! पढम-मासक्खमणपारणगंसि तंतुवाय-सालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झं-

भगवान् के प्रथम मासक्षमण के पारणे में पाँच दिव्य—

५६. इसके बाद हे गौतम ! प्रथम मासक्षमण के पारणे के लिये मैं तंतुवाय शाला से निकला, निकलकर उपनगर नालंदा के

मज्झेणं निगच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव रायगिहे नगरे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता रायगिहे नगरे उच्च-नीय-घर-जाव-अडमाणे विजयस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे।

तए णं से विजए गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता पायपीढाओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता पाउयाओ ओमुयइ, ओमुइत्ता एगसाडियं उत्तरासंगं, करेइ, करेत्ता अंजलिमउलियहत्थे ममं सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे।

बीचोंबीच से निकला और जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आया, आकर राजगृह नगर के उच्च, नीच और मध्यम—यावत्—घूमते हुए विजय गाथापति के घर में प्रविष्ट हुआ।

तब उस विजय गाथापति ने मुझे अपनी ओर आते हुए देखा देखकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—उल्लसित हृदय होते हुए शीघ्र ही वह अपने आसन से उठा—खड़ा हुआ, खड़े होकर पाद, पीठ से नीचे उतरा, नीचे उतरकर पादुकायें उतारी, उतारकर एक शाटिक उत्तरासंग किया, उत्तरासंग करके अंजलिरूप में मुकुलित हस्तपूर्वक मेरे सन्मुख सात-आठ पग आया, आकर मेरी तीन बार आदक्षिणा प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मुझे विपुल अशन—पान—खाद्य—स्वाद्य आहार से प्रतिलाभित करूंगा, ऐसा विचार कर सन्तुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करते हुए संतुष्ट हुआ और प्रतिलाभित करने के बाद सन्तुष्ट हुआ।

तए णं तस्स विजयस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं दायगसुद्धेणं पडिगाहगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं मए पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, संसारे परित्तीकए, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा, दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुंदुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे 'अहो दाणे अहो दाणे' त्ति घुट्ठे।

तब उस विजय गाथापति ने उस द्रव्य की शुद्धि, दायक की शुद्धि और पात्र की शुद्धि, तथा त्रिविध (मन, वचन, काया) और त्रिकरण (कृति, कारित, अनुमोदन) की शुद्धि से मुझे प्रतिलाभित किये जाने के कारण देवायुष्य का बन्ध किया संसार परिमित—सीमित किया तथा उसके घर में ये पाँच दिव्य प्रादुर्भूत हुए यथा—१. वसुधारा की वृष्टि, २. पंच वर्ण के पुष्पों की वृष्टि, ३. ध्वजात्मक वस्त्रों की वृष्टि, ४. आकाश में देवदुन्दुभि का घोष और ५. आकाश में 'अहोदानं, अहोदानं' इस प्रकार की ध्वनि।

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-जाव-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ एवं परूवेइ धन्ने णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! विजये गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया! विजयस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा-जाव-'अहो दाणे अहो दाणे' त्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले विजयस्स गाहावइस्स, विजयस्स गाहावइस्स।

उस समय राजगृह नगर के शृंगाटकों—यावत्—मार्गों में बहुत से लोग आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे—यावत्—प्ररूपण करने लगे—'देवानुप्रियो! विजय गाथापति धन्य है, देवानुप्रियो! विजय गाथापति कृतार्थ है, देवानुप्रियो! विजय गाथापति कृतपुण्य (पुण्यशाली) है, देवानुप्रियो! विजय गाथापति कृतलक्षण (उत्तम लक्षणों वाला) है, देवानुप्रियो! विजय गाथापति के उभय लोक सार्थक हैं, देवानुप्रियो! विजय गाथापति ने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है जिसके घर में तथारूप उत्तम साधु-श्रमण को प्रतिलाभित करने पर यह पाँच दिव्य प्रादुर्भूत हुए हैं यथा—वसुधारा वृष्टि—यावत्—अहोदानं, अहोदानं इस प्रकार की ध्वनि—उद्‌घोषणा हुई, इसलिये विजय गाथापति धन्य हैं, कृतार्थ हैं, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है, उसने दोनों लोक सार्थक किये हैं, विजय गाथापति का मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्रशंसनीय है।

गोसालकयाए सिस्सत्तपत्थणाए भगवओ उदासीणया—

गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान् की उदासीनता—

५७. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं

५७. तदनन्तर वह गोशाल मंखलिपुत्र अनेक लोगों से इस वृत्तान्त

सोच्चा निसम्म समुप्पन्नसंसए समुप्पन्नकोउहल्ले जेणेव विजयस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ विजयस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं, दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं विजयस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी—तुब्भे णं भंते ! ममं धम्मायरिया, अहं ण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी ।

तए णं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढामि, नो परिजाणामि, तुसिणीए संचिट्ठामि ।

भगवओ दोच्चमासखमणपारणे पंचदिव्वाइं—

५८. तए णं अहं गोयमा ! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव तंतुवायसाला, तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता दोच्चं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि ।

तए णं अहं गोयमा ! दोच्च-मासखमणपारणगंसि तंतुवायसालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव रायगिहे नगरे-जाव-अडमाणे आणंदस्स गाहावइस्स गिहं अणुप्पविट्ठे ।

तए णं से आणंदे गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ, एवं जहेव विजयस्स (सु. ५६)-जाव-वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलाए खज्जगविहीए पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे पडिलाभित्ते वि तुट्ठे ।

तए णं तस्स आणंदस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं-जाव-(सु. ५६) परूवेइ—धन्ने णं देवाणुप्पिया ! आणंदे गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया ! आणंदे गाहावई, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया ! आणंदे गाहावई, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया ! आणंदे गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया ! आणंदस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले आणंदस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा वसुधारा वुट्ठा-जाव-अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले आणंदस्स गाहावइस्स, आणंदस्स गाहावइस्स ।

को सुनकर और उस पर मनन कर संशय उत्पन्न होने, कौतुहल उत्पन्न होने से जहाँ विजय गाथापति का घर था, वहाँ आया, आकर विजय गाथापति के घर में वसुधारा वृष्टि-पंच वर्ण के पुष्पों को बिखरे हुए तथा विजय गाथापति के घर से मुझे निकलते हुए देखा, देखकर हर्षित सन्तुष्ट हो जहाँ मैं था, वहाँ आया, आकर मेरी तीन बार आदक्षिणा-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मुझसे इस प्रकार निवेदन किया—'हे भदन्त ! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका धर्म शिष्य हूँ ।'

तब हे गौतम ! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल के इस कथन का आदर नहीं किया (उत्सुकता प्रदर्शित नहीं की), और न ध्यान दिया किन्तु चुपचाप मौन धारण किये रहा ।

भगवान् के द्वितीय मासक्षमण के पारणे पर पंच दिव्य—

५८. तत्पश्चात् हे गौतम ! मैं राजगृह नगर से निकला, निकलकर उपनगर नालंदा के मध्यभाग में से निकला, निकलकर जहाँ तंतुवाय शाला थी, वहाँ आया और आकर द्वितीय मासक्षमण स्वीकार करके विचरने लगा ।

इसके बाद हे गौतम ! दूसरे मासक्षमण के पारणे के निमित्त मैं तन्तुवाय शाला से निकला, निकलकर उपनगर नालंदा के मध्यभाग से निकला, निकलकर जहाँ राजगृह नगर था—यावत्—घूमते हुए आनन्द गाथापति के घर में प्रविष्ट हुआ ।

तब उस आनन्द गाथापति ने मुझे अपनी ओर आते हुए देखा, इत्यादि समस्त वर्णन विजय गाथापति के समान है, किन्तु इतनी विशेषता है कि वंदन-नमस्कार करके मुझे विपुल खाजा (एक मिष्टान्न विशेष) से प्रतिलाभित करूँगा, ऐसा विचार कर वह आनन्द गाथापति संतुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करते हुए संतुष्ट हुआ और प्रतिलाभित करने के बाद भी संतुष्ट हुआ ।

तब उस आनन्द गाथापति ने द्रव्य की शुद्धि से—यावत्—(सु० ५६) लोग ऐसी प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति धन्य है, देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति कृतार्थ है, देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति कृतपुण्य है, देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति कृतलक्षण है, देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति के दोनों लोक सार्थक हैं, देवानुप्रियो ! आनन्द गाथापति ने मनुष्य और जीवन का सुफल प्राप्त किया है कि जिसके घर में तथारूप उत्तम सौम्य श्रमण को प्रतिलाभित करने से ये पंच दिव्य प्रगट हुए हैं यथा—वसुधारा वृष्टि—यावत्—आकाश मंडल में अहोदानं, अहोदानं, इस प्रकार की उद्घोषणा हुई है, अतएव आनन्द गाथापति धन्य है, कृतार्थ है, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है, उसके उभयलोक सार्थक हुए हैं, और उस आनन्द गाथापति का मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है ।

पुणो वि गोसालकयाए सिस्सत्तपत्थणाए भगवओ उदासीणया—

५९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते-जाव-(सु. ५७) जेणेव आणंदस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ आणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं दसद्धवण्णं कुसुमं निवडियं, ममं च णं आणंदस्स गाहावइस्स-जाव-(सु. ५७) तुसिणीए संचिट्ठामि।

पुनः भी गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान् की उदासीनता—

५९. तत्पश्चात् उस मंखलिपुत्र ने अनेक लोगों से यह वृत्तान्त सुना—यावत् (सूत्र ५७, वत) जहाँ आनन्द गाथापति का घर था वहाँ आया आकर आनन्द गाथापति के घर में वसुधारा की वृष्टि और बिखरे हुए पंचरंगे पुष्पों को तथा मुझे भी आनन्द गाथापति के घर से निकलते हुए देखा निवेदन किया परन्तु यावत् (सूत्र ५७) मैं मौन ही रहा।

भगवओ तच्चमासखमणपारणे पंचदिव्वाइं—

६०. तए णं अहं गोयमा ! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि, -जाव-(सु. ५८) उवागच्छित्ता तच्चं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

तए णं अहं गोयमा ! तच्च-मासक्खमणपारणगंसि तंतुवाय-सालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता-जाव-(सु. ५६) भिक्खा-यरियाए अडमाणे सुणंदस्स गाहावइस्स गिहं अणुपविट्ठे।

तए णं से सुणंदे गाहावई ममं एज्जमाणं पासइ, एवं जहेव विजयस्स (सु. ५६)-जाव-वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं सव्वकाम-गुणिएणं भोयणेणं पडिलाभेस्सामित्ति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे, पडिलाभिते वि तुट्ठे।

तए णं तस्स सुणंदस्स गाहावइस्स तेणं दव्वसुद्धेणं-जाव-(सु. ५६) परूवेइ— धन्ने णं देवाणुप्पिया ! सुणंदे गाहावई, कयत्थे णं देवाणुप्पिया ! सुणंदे गाहावई, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया ! सुणंदे गाहावई, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया ! सुणंदे गाहावई, कया णं लोया देवाणुप्पिया ! सुणंदस्स गाहावइस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले सुणंदस्स गाहावइस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा— वसुधारा वुट्ठा-जाव-अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले सुणंदस्स गाहावइस्स, सुणंदस्स गाहावइस्स।

भगवान् के तीसरे मासक्षमण के पारणे के अवसर पर पंच दिव्य—

६०. तदनन्तर हे गौतम ! मैं राजगृह नगर से वापस निकला यावत् (सूत्र ५८) आकर मैंने तीसरा मासक्षमण स्वीकार कर लिया।

इसके बाद हे गौतम ! मैं तीसरे मासक्षमण के पारणे के लिये तंतुवाय शाला से निकला, निकलकर—यावत् (सूत्र ५६) भिक्षाचर्या के लिये घूमते हुए मैंने सुनन्द गाथापति के घर में प्रवेश किया।

तब उस सुनन्द गाथापति ने मुझे आते हुए देखा, इत्यादि समस्त वर्णन विजय गाथापति के समान जानना चाहिये यावत् (सूत्र ५६) वंदना-नमस्कार करके मुझे विपुल सर्व काम गुण युक्त (सर्व रसों युक्त) भोजन से प्रतिलाभित करेगा, इस विचार से वह संतुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करते हुए संतुष्ट हुआ और प्रतिलाभित करने के बाद भी संतुष्ट हुआ।

तब उस सुनन्द गाथापति के घर में उस द्रव्य की शुद्धि से यावत् (सूत्र ५६) लोग ऐसी प्ररूपणा करते हैं—देवानुप्रियो ! सुनन्द गाथापति धन्य है, देवानुप्रियो ! सुनन्द गाथापति कृतपुण्य है, देवानुप्रियो ! सुनन्द गाथापति कृतलक्षण है, देवानुप्रियो ! सुनन्द गाथापति ने दोनों लोक सार्थक किये हैं, देवानुप्रियो ! सुनन्द गाथापति ने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त कर लिया है कि जिसके घर में तथारूप सौम्य साधु-श्रमण को प्रतिलाभित करने पर ये पाँच दिव्य प्रगट हुए—यथा—वसुधारा वृष्टि—यावत्—अहोदान, अहोदान की उद्घोषणा, इसलिये सुनन्द गाथापति धन्य है, कृतार्थ है, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है, उसने दोनों लोकों को सार्थक किया है और मनुष्य जन्म एवं जीवन का सुफल प्राप्त किया है।

पुणो वि गोसालकयाए सिस्सत्तपत्थणाए भगवओ उदासीणया—

६१. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते-जाव-(सु. ५७) जेणेव सुणंदस्स गाहावइस्स गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पासइ—सुणंदस्स गाहावइस्स गिहंसि वसुहारं वुट्ठं दसद्ध कुसुमं निवडियं, ममं च णं

पुनः भी गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना के प्रति भगवान् की उदासीनता—

६१. तत्पश्चात् वह मंखलिपुत्र गोशाल यावत् (सूत्र ५७) जहाँ सुनंद गाथापति का घर था, वहाँ आया, आकर उसने सुनंद गाथापति के घर में वसुधारा की वृष्टि और बिखरे हुए पंचरंगों

सुणंदस्स गाहावइस्स गिहाओ पडिनिक्खममाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता ममं एवं वयासी तुब्भे णं भंते। ममं धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं धम्मंतेवासी-जाव-(सु. ५७) तुसिणीए संचिट्ठामि।

के पुत्र को देखा तथा मुझे भी सुनंद गाथापति के घर से वापस निकलते हुए देखा, देखकर हर्षित-संतुष्ट हो जहाँ मैं था, वहाँ आया, आकर मुझे तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मुझसे इस प्रकार निवेदन किया— हे भगवन्! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका धर्म शिष्य हूँ—यावत् (सूत्र ५७) मैं मौन रहा।

भगवओ चउत्थमासक्खमण पारणे पंचदिव्वाइं—

६२. तए णं अहं गोयमा! रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमामि -जाव-(सु. ५८) उवागच्छित्ता चउत्थं मासखमणं उवसंपज्जित्ताणं विहरामि।

तीसे णं नालंदाए बाहिरियाए अदूरसामंते, एत्थ णं कोल्लाए नामं सण्णिवेसे होत्था—सण्णिवेसवण्णओ। तत्थ णं कोल्लाए सण्णिवेसे बहुले नामं माहणे परिवसइ- अड्ढे-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए, रिउव्वेय-जाव-बंभण्णएसु परिव्वायएसु य नयेसु सुपरिनिट्ठिए यावि होत्था।

तए णं से बहुले माहणे कत्तियचाउम्मासियपाडिवयंसि विउलेणं महुघयसंजुत्तेणं परमण्णेणं माहणे आयामेत्था।

तए णं अहं गोयमा! चउत्थ-मासक्खमणपारणगंसि तंतुवाय-सालाओ पडिनिक्खमामि, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छामि, निग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता कोल्लाए सण्णिवेसे उच्च-नीय-जाव-(सु. ५६) अडमाणे बहुलस्स माहणस्स गिहं अणुप्पविट्ठे।

तए णं से बहुले माहणे ममं एज्जमाणं पासइ तहेव (सु. ५६) -जाव-वंदित्ता नमंसित्ता ममं विउलेणं महुघयसंजुत्तेणं परमण्णेणं पडिलाभेस्सामिति तुट्ठे, पडिलाभेमाणे वि तुट्ठे।

तए णं तस्स बहुलस्स माहणस्स तेणं दव्वसुद्धेणं-जाव-(सु. ५६) परूवेइ—धन्ने णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयत्थे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयपुण्णे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कयलक्खणे णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे, कया णं लोया देवाणुप्पिया! बहुलस्स माहणस्स, सुलद्धे णं देवाणुप्पिया! माणुस्सए जम्मजीवियफले बहुलस्स माहणस्स, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा-जाव-अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे,

भगवान् के चतुर्थ मासक्षमण के पारणे पर पाँच दिव्य—

६२. तत्पश्चात् हे गौतम! मैं राजगृह नगर से वापस निकला यावत् (सूत्र ५७) आकर चतुर्थ मासक्षमण स्वीकार किया।

उस नालंदा के बाहरी भाग से कुछ दूर 'कोल्लाक' नामक सन्निवेश (ग्राम) था, सन्निवेश का वर्णन करो। उस कोल्लाक सन्निवेश में बहुल नामक माहण निवास करता था, वह धन-वैभव सम्पन्न था—यावत्—अनेक लोगों से अपरिभूत था तथा ऋग्वेद—यावत्—ब्राह्मण ग्रंथों और परिव्राजक सिद्धान्तों में निष्णात था।

उस बहुल माहण ने कार्तिक चातुर्मास की प्रतिपदा के दिन पुष्कल मधु और घृत से संयुक्त परमान्न (खीर) का ब्राह्मणों को भोजन कराया।

तत्पश्चात् हे गौतम! चतुर्थ मासक्षमण के पारणे के लिये मैं तंतुवाय शाला से निकला, निकलकर उपनगर नालंदा के मध्य भाग में से निकला और निकलकर जहाँ कोल्लाक सन्निवेश था, वहाँ गया, वहाँ आकर कोल्लाक सन्निवेश के उच्च-नीच-मध्यम यावत् (सूत्र ५६) घूमते हुए बहुल माहण के घर में प्रविष्ट हुआ।

तत्पश्चात् उस बहुल माहण ने मुझे अपने घर में आते हुए देखा इत्यादि वर्णन पूर्ववत् (सूत्र ५६) जानना चाहिये—यावत्—वंदन-नमस्कार करके मुझे उस पुष्कल मधु-घृत से संयुक्त परमान्न (खीर) से प्रतिलाभित करूँगा, इस विचार से वह बहुल माहण संतुष्ट हुआ, प्रतिलाभित करते हुए भी संतुष्ट हुआ और प्रतिलाभित करने के पश्चात् भी संतुष्ट हुआ।

तब उस बहुल माहण ने द्रव्य की शुद्धि से—यावत् (सूत्र ५६) लोग प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रियो! बहुल माहण धन्य है, देवानुप्रियो! बहुल माहण कृतार्थ है, देवानुप्रियो! बहुल माहण कृतपुण्य है, देवानुप्रियो! बहुल माहण कृतलक्षण है, देवानुप्रियो! बहुल माहण ने उभयलोक (इहभव और परभव) सार्थक बना लिये हैं और देवानुप्रियो! उस बहुल माहण का मनुष्य जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है कि जिसके घर में तथारूप, परम साधुरूप श्रमण को प्रतिलाभित करने पर यह पंच दिव्य प्रादुर्भूत हुए हैं, यथा—वसुधारा वृष्टि—यावत्—'अहोदान,

तं धन्ने कयत्थे कयपुण्णे कयलक्खणे, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स।

अहोदान' इस प्रकार की उद्घोषणा हुई है। इसलिये बहुल माहण धन्य है, कृतार्थ है, कृतपुण्य है, कृतलक्षण है, उसके दोनों लोक सार्थक हैं और उसने मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल सम्यक् प्रकार से प्राप्त किया है।

पुणो वि गोसालकयाए सिस्सत्तपत्थणाए भगवओ अणुमई, गोसालेण य सह विहरणं—

पुनः गोशालकृत शिष्यत्व प्रार्थना पर भगवान की अनुमति और गोशाल का साथ में विहरण—

६३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं तंतुवायसालाए अपासमाणे रायगिहे नगरे सब्भितरबाहिरियाए ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ। ममं कत्थ वि सुतिं वा खुतिं वा पवत्तिं वा अलभमाणे जेणेव तंतुवायसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता साडियाओ य पाडियाओ य कुण्डियाओ य वाहणाओ य चित्तफलगं च माहणे आयामेइ, आयामेत्ता सउत्तरोट्ठं भंडं कारेइ, कारेत्ता तंतुवायसालाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता नालंदं बाहिरियं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोल्लाए सण्णिवेसे तेणेव उवागच्छइ।

६३. तत्पश्चात् उस गोशाल मंखलिपुत्र ने मुझे तंतुवायशाला में नहीं देखकर राजगृह नगर के भीतर-बाहर सभी चारों ओर मेरी मार्गणा-गवेषणा की। किन्तु कहीं भी मेरी श्रुति (बोली) क्षुति (छींक) और प्रवृत्ति का पता न पाकर जहाँ तंतुवायशाला थी वहाँ आया, आकर अपनी शाटिका (धोती, अन्दर पहनने का वस्त्र) पाटिका (दुपट्टा), कुण्डिका, पादुका और चित्रपट माहण को सौंप दिया, सौंपकर दाढ़ी, मूँछ का मुंडन करवाया, मुंडन करवाके तंतुवायशाला से निकला, निकलकर उपनगर नालंदा के मध्यभाग में से निकला और निकलकर जहाँ कोल्लाक सन्निवेश था, वहाँ आया।

तए णं तस्स कोल्लागस्स सण्णिवेसस्स बहिया बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ धन्ने णं देवाणुप्पिया! बहुले माहणे-जाव-(सु. ६२) जीवियफले बहुलस्स माहणस्स, बहुलस्स माहणस्स।

तब उस कोल्लाक सन्निवेश के बाहरी भाग में बहुत से लोग परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कह रहे थे-यावत्—प्ररूपणा कर रहे थे कि देवानुप्रियो! बहुल माहण धन्य है—यावत् (सूत्र ६२) बहुल माहण के मनुष्य जन्म और जीवन का फल प्रशंसनीय है।

तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—"जारिसिया णं ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स इड्ढी जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, नो खलु अत्थि तारिसिया अण्णस्स कस्सइ तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा इड्ढी जुती जसे बले वीरिए पुरिसक्कारपरक्कमे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए, तं निस्संदिद्धं णं एत्थ ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे भविस्सतीति कट्टु कोल्लाए सण्णिवेसे सब्भितरबाहिरिए ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ, ममं सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणे कोल्लागस्स सण्णिवेसस्स बहिया पणियभूमीए मए सद्धिं अभिसमण्णागए।

तब उस गोशाल मंखलिपुत्र को उन बहुत से लोगों से इस संवाद को सुनकर और हृदय में अवधारित कर इस प्रकार का यह आन्तरिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान को जैसी ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार, पराक्रम मिला है, प्राप्त हुआ है और अभिसमन्वागत हुआ है, उस प्रकार की ऋद्धि, द्युति, यश, बल, वीर्य, पुरुषाकार पराक्रम अन्य किसी भी तथारूप श्रमण अथवा माहण को नहीं मिला है, न प्राप्त हुआ है और न अधिगत हुआ है, अतएव निस्संदेह यहाँ मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर होने चाहिए। इस प्रकार का विचार कर कोल्लाक सन्निवेश के भीतर बाहर मेरी मार्गणा-गवेषणा की और फिर सभी चारों ओर मेरी मार्गणा-गवेषणा करते हुए कोल्लाक सन्निवेश के बाहरी भाग में स्थित मनोज्ञभूमि में मुझसे आ मिला।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते हट्ठतुट्ठे, ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं भंते! मम धम्मायरिया, अहण्णं तुब्भं अंतेवासी।"

तत्पश्चात् उस मंखलिपुत्र गोशाल ने हृष्ट-तुष्ट हो मेरी तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके मुझे वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया हे भंते! आप मेरे धर्माचार्य हैं और मैं आपका अंतेवासी हूँ।

तए णं अहं गोयमा! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेमि।

तब हे गौतम! मैंने मंखलिपुत्र गोशाल की यह बात सुनी, और स्वीकार कर लिया।

तए णं अहं गोयमा ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं पणियभूमीए छव्वासाइं लाभं अलाभं सुहं दुक्खं सक्कारमसक्कारं पच्चणुब्भवमाणे अणिच्चजागरियं विहरित्था ।

तत्पश्चात् हे गौतम ! मैं गोशाल मंखलिपुत्र के साथ छह वर्ष तक उस प्रणीत भूमि में लाभ-अलाभ, सुख-दुःख, सत्कार-असत्कार का अनुभव करता हुआ और अनित्यता का चिन्तन करता हुआ विचरता रहा ।

तिलथंभयनिप्फत्तिविसए भगवओ वयणे गोसालस्स असद्धा—

६४. तए णं अहं गोयमा ! अण्णया कदायि पढमसरदकालसमयंसि अप्पवुट्ठिकायंसि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं सिद्धत्थगामाओ नगराओ कुम्मगामं नगरं संपट्ठिए विहाराए ।

तस्स णं सिद्धत्थगामस्स नगरस्स कुम्मगामस्स नगरस्स य अंतरा, एत्थ णं महं एगे तिलथंभए पत्तिए पुप्फिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे-उवसोभेमाणे चिट्ठइ ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तं तिलथंभगं पासइ, पासित्ता ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एस णं भंते ! तिलथंभए किं निप्फज्जिस्सइ नो निप्फज्जिस्सइ ? एए य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता कहिं गच्छिहिंति ? कहिं उववज्जिहिंति ?"

तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी-"गोसाला ! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, नो न निप्फज्जिस्सइ । एते य सत्ततिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्संति ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं आइक्खमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे, अरोएमाणे, ममं पणिहाए 'अयं णं मिच्छावादी भवउ' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं तिलथंभगं सलेट्ठुयायं चेव उप्पाडेइ, उप्पाडेत्ता एगंते एडेइ ।

तक्खणमेत्तं च णं गोयमा ! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए । तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव पविज्जुयाति, खिप्पामेव नच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलपफुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सलिलोदगं वासं वासति, जेण से तिलथंभए पच्चायाते बद्धमूले, तत्थेव पतिट्ठिए । ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तस्सेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाता ।

तिलस्तम्भ-निष्पत्ति विषयक भगवान के वचन में गोशाल की अश्रद्धा—

६४. तत्पश्चात् अन्यदा किसी एक दिन शरद्काल के समय जब वृष्टि नहीं हो रही थी तब मैं गोशाल मंखलिपुत्र के साथ सिद्धार्थ ग्राम नगर से कूर्म ग्राम नगर की ओर विहार कर रहा था ।

उस सिद्धार्थ ग्राम नगर और कूर्मग्राम नगर के अन्तराल—मध्य में एक विशाल—बड़ा तिलस्तम्भ (तिल का पौधा) था, जो पत्रपुष्प युक्त अपनी हरियाली से अत्यन्त रमणीय और अपनी श्री-लावण्य से अतीव शोभायमान हो रहा था ।

तत्पश्चात् गोशाल मंखलिपुत्र ने उस तिल के पौधे को देखा, देखकर मुझे वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—'हे भगवन् ! यह तिल का पौधा निष्पन्न (फलवाला) होगा अथवा नहीं होगा ? इन सात तिलपुष्पों के जीव मरकर कहाँ जायेंगे ? कहाँ उत्पन्न होंगे ?

तब हे गौतम ! मैंने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे गोशाल ! यह तिलका पौधा निष्पन्न होगा किन्तु अनिष्पन्न नहीं होगा । ये सात तिल पुष्प जीव मरकर इसी तिल के पौधे की एक तिलकी फली में सात तिलके रूप में उत्पन्न होंगे ।

तब उस गोशाल मंखलिपुत्र ने मेरे द्वारा कहे गये वचन पर श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की और रुचि नहीं की, किन्तु इस बात पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए 'मेरे निमित्त से ये मिथ्यावादी होवें ।' ऐसा सोचकर मेरे पास से धीरे-धीरे पीछे खिसका, पीछे खिसककर जहाँ वह तिल का पौधा था, वहाँ पहुंचा और पहुँचकर उस तिल के पौधे को मिट्टी सहित जड़ से उखाड़ दिया, उखाड़कर एकान्त के किसी कोने में फेंक दिया ।

हे गौतम ! उसी समय तत्काल ऊपर आकाश में दिव्य मेघ भरे बादल प्रादुर्भूत—उत्पन्न हुए । तब वे दिव्य मेघ बादल शीघ्र ही गरजने लगे, शीघ्र ही बिजली चमकने लगी और शीघ्र ही न अधिक कीचड़ हो और न अधिक पानी हो इस प्रकार की रिमझिम-रिमझिम छोटी-छोटी बूंदों वाली रज और धूल को शांत करने वाली दिव्य जल की वृष्टि के रूप में बरसने लगे, जिससे वह तिलका पौधा वहीं आश्रय लेकर स्थिर हो गया, विशेष रूप में स्थिर हो गया और बद्धमूल होकर वहीं प्रतिष्ठित हो गया तथा वे सात तिलपुष्प जीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक तिल की फली में सात तिलके रूप में उत्पन्न हुए ।

गोसालवयणकुद्धेण वेसियायणबालतवस्सिणा गोसालस्सुवरिं तेयलेस्सानिसिरणं—

६५. तए णं अहं गोयमा ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं जेणेव कुम्मग्गामे नगरे तेणेव उवागच्छामि।

तए णं तस्स कुम्मग्गामस्स नगरस्स बहिया वेसियायणे नामं बालतवस्सी छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ। आइच्चतेयतवियाओ य से छप्पदीओ सव्वओ समंता अभिनिस्सवंति, पाण-भूय-जीव-सत्तदयट्ठयाए च णं पडियाओ-पडियाओ तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चोरुभेइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं पासइ, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी— "किं भवं मुणी ? मुणिए ? उदाहु जूयासेज्जायरए ?"

तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं नो आढाति, नो परियाणति, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—"किं भवं मुणी ? मुणिए ? उदाहु जूयासेज्जायरए ?"

तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुभइ, पच्चोरुभित्ता तेयासमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहण्णित्ता सत्तट्ठपयाइं पच्चोसक्कइ, पच्चोसक्कित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरइ।

महावीरेण गोसालरक्खणत्थं सीयलेस्सानिसिरणं—

६६. तए णं अहं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणतेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणा तेयलेस्सा पडिहया।

तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए साउसिणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता साउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरइ, पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—"से गतमेयं भगवं ! गत-गतमेयं भगवं !"

गोशाल के वचन से क्रुद्ध बाल तपस्वी वैश्यायन द्वारा गोशाल के ऊपर तेजोलेश्या निस्सरण—

६५. तत्पश्चात् हे गौतम ! मैं मंखलिपुत्र गोशाल के साथ जहाँ कूर्म नगर था वहाँ आया।

उस कूर्मग्राम नगर के बाहर वैश्यायन नामक बाल तपस्वी निरंतर षष्ठ-षष्ठ श्रमण (बेले बेले की तपस्या) के तपोकर्म से ऊपर की ओर दोनों भुजाओं को रखकर सूर्य की ओर मुख किये आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरता था। आदित्य-सूर्य के ताप से तप्त हुई षट्पदी (जुएं) चारों ओर से निकलती थीं—टपकती थी और वह तपस्वी प्राण, भूत, जीव और सत्त्व की दयाकर उन गिरी हुई जुओं को पुनः पुनः उठाकर शिर पर रख लेता था।

तब उस मंखलिपुत्र गोशाल ने वैश्यायन बाल तपस्वी को देखा, देखकर मेरे पास से धीरे से पीछे हटा और हटकर जहाँ वह बाल तपस्वी वैश्यायन था वहाँ पहुँचा, वहाँ पहुँचकर वैश्यायन बाल तपस्वी से इस प्रकार कहा—'क्या तुम तत्त्वज्ञ मुनि हो अथवा जुओं के शैयातर हो—स्थान, भंडार हो ?'

तब उस वैश्यायन बाल तपस्वी ने गोशाल मंखलिपुत्र की इस बात का आदर नहीं किया, न ध्यान दिया किन्तु मौन रहा।

तत्पश्चात् उस गोशाल मंखलिपुत्र ने वैश्यायन बाल तपस्वी से पुनः दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा— 'क्या आप मुनि हैं, तत्त्वज्ञ हैं अथवा जुओं के शैयातर हैं ?'

तब वह वैश्यायन बाल तपस्वी गोशाल मंखलिपुत्र के दूसरी और तीसरी बार कहे गये इस कथन को सुनकर क्रोधाभिभूत होकर रुष्ट, कुपित, प्रचण्ड और दांतों को मिसमिसाते हुए आतापना भूमि से नीचे उतरा, उतरकर तेजस् समुद्घात किया, समुद्घात करके सात-आठ डग पीछे हटा, पीछे हटकर गोशाल मंखलिपुत्र का वध करने के लिये उसने शरीर से तेजोलेश्या निकाली।

महावीर द्वारा गोशाल रक्षणार्थ शीतलेश्या निःसृजन—

६६. तत्पश्चात् हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशाल की अनुकम्पा के वैश्यायन बाल तपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने हेतु अन्तराल में मैंने शीतल तेजोलेश्या निकाली। मेरी उस शीतल तेजोलेश्या से वैश्यायन बाल तपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हो गया।

तत्पश्चात् मेरी शीतल तेजोलेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ जानकर तथा गोशाल मंखलिपुत्र के शरीर में किंचिन्मात्र भी पीड़ा, बाधा अथवा अवयव का छेद नहीं हुआ देखकर उस वैश्यायन बाल तपस्वी ने अपनी उष्ण तेजोलेश्या वापस लौटाली और वापस लौटाकर मेरे प्रति इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! मैंने जाना, हे भगवन् ! मैंने यह जाना !'

तए णं गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—"किं णं भंते ! एस जूयासिज्जायरए तुब्भे एवं वयासी—से गतमेयं भगवं ! गत-गतमेयं भगवं ?"

तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"तुमं णं गोसाला ! वेसियायणं बालतवस्सिं पाससि, पासित्ता ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, जेणेव वेसियायणे बालतवस्सी तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता वेसियायणं बालतवस्सिं एवं वयासी—किं भवं मुणी ? मुणिए ? उदाहु जूयासेज्जायरए ? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी तव एयमट्ठं नो आढाति, नो परिजाणति, तुसिणीए संचिट्ठइ। तए णं तुमं गोसाला ! वेसियायणं बालतवस्सिं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—किं भवं मुणी ? मुणिए ? उदाहु जूयासेज्जायरए ? तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी तुमं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते-जाव-पच्चोसक्कति, पच्चोसक्कित्ता तव वहाए सरीरगंसि तेयलेस्सं निस्सिरइ। तए णं अहं गोसाला ! तव अणुकंपणट्ठयाए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणतेयपडिसाहरणट्ठयाए एत्थ णं अंतरा सीयलियं तेयलेस्सं निसिरामि, जाए सा ममं सीयलियाए तेयलेस्साए वेसियायणस्स बालतवस्सिस्स उसिणा तेयलेस्सा पडिहया। तए णं से वेसियायणे बालतवस्सी ममं सीयलियाए तेयलेस्साए साउसिणं तेयलेस्सं पडिहयं जाणित्ता तव य सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा अकीरमाणं पासित्ता साउसिणं तेयलेस्सं पडिसाहरति, पडिसाहरित्ता ममं एवं वयासी—से गतमेयं भगवं ! गत-गतमेयं भगवं !"

इसके बाद उस गोशाल मंखलिपुत्र ने इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! इस जुओं के शैयातर बाल तपस्वी ने आपको—हे भगवन् ! मैंने यह जाना, हे भगवन् ! मैंने यह जान लिया, इस प्रकार यह क्या कहा है ?'

तब हे गौतम ! मैंने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—'हे गोशाल ! तुम बाल तपस्वी वैश्यायन को देखकर मेरे पास से धीरे-धीरे पीछे खिसके और खिसककर जहाँ वह वैश्यायन बाल तपस्वी था, वहाँ पहुँचे, वहाँ पहुँचकर वैश्यायन बाल तपस्वी से तुमने इस प्रकार कहा—'क्या तू मुनि है, तत्त्वज्ञाता है अथवा जुओं का शैयातर है ? तब उस बाल तपस्वी ने तुम्हारी इस बात की उपेक्षा की, उस पर ध्यान नहीं दिया किन्तु मौन धारण किये रहा। इसके बाद हे गोशाल ! तुमने दूसरी और तीसरी बार भी उस बाल तपस्वी वैश्यायन से इस प्रकार कहा—'क्या तू मुनि है, तत्त्वज्ञानी है अथवा जुओं का शैयातर है ? तब वह वैश्यायन बाल तपस्वी तुम्हारी इस दूसरी और तीसरी बार कही गई बात को सुनकर अतीव क्रुद्ध, रुष्ट हुआ—यावत्—पीछे हटा, पीछे हटकर उसने तुम्हारा वध करने के लिये शरीर से तेजोलेश्या निकाली। तब हे गोशाल ! तुम्हारी अनुकम्पा के लिये वैश्यायन बाल तपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिसंहरण करने (वापस लौटाने) के निमित्त से मैंने अन्तराल में (इसी बीच) शीतल तेजोलेश्या निकाली, मेरी उस शीतल तेजोलेश्या से वैश्यायन बाल तपस्वी की उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हो गया। तब मेरी शीतल तेजोलेश्या से अपनी उष्ण तेजोलेश्या का प्रतिघात हुआ जानकर और तुम्हारे शरीर में किसी प्रकार की बाधा, पीड़ा अथवा अंगभंग नहीं हुआ देखकर वैश्यायन बाल तपस्वी ने अपनी तेजोलेश्या वापस पीछे खींच ली और पीछे खींचकर—लौटाकर मेरे प्रति इस प्रकार कहा—'हे भगवन ! मैंने यह जाना, हे भगवन ! मैंने यह अच्छी तरह से जाना—समझ लिया है।'

तेउलेस्सासंपादणोवाया—

६७. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं अंतियाओ एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"कहण्णं भंते ! संखित्तविउलतेय-लेस्से भवति ?"

तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—जेणं गोसाला ! एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-

तेजोलेश्या संपादनोपाय—

६७. तत्पश्चात् मेरी उपर्युक्त बात सुनकर और अवधारित कर उस मंखलिपुत्र गोशाल ने भीत, त्रस्त, त्रसित, उद्विग्न और भयाक्रान्त होकर मुझे वंदन-नमस्कार किया तथा वंदन-नमस्कार करके अपनी इस प्रकार से जिज्ञासा बताई—'हे भदन्त ! संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या कैसे प्राप्त होती है ?'

तब हे गौतम ! मैंने उस मंखलिपुत्र गोशाल से इस प्रकार कहा—'हे गोशाल ! नख सहित मुट्ठी में जितने उड़द के बाकुले आयें उतनी मात्रा से और एक विकटाशय प्रमाण (चुल्लुभर) पानी से निरन्तर छठ-छठ की तपस्या के साथ दोनों हाथ ऊँचे रखकर सूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में जो आतापना

पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ । से णं अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेस्से भवइ ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एयमट्ठं सम्मं विणएणं पडिसुणेति ।

महावीरकहियं तिलथंभय-निप्फत्तिं जाणिऊण गोसालस्स अवक्कमणं—

६८. तए णं अहं गोयमा ! अण्णदा कयाथि गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं सद्धिं कुम्मगामाओ नगराओ सिद्धत्थगामं नगरं संपट्ठिए विहाराए । जाहे य मो तं देसं हव्वमागया जत्थ णं से तिलथंभए, तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी —"तुब्भे णं भंते ! तदा ममं एवमाइक्खह-जाव-परूवेह—'गोसाला ! एस णं तिलथंभए निप्फज्जिस्सइ, नो न निप्फज्जिस्सइ । एते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाइस्संति' तण्णं मिच्छा । इमं च णं पच्चक्खमेव दीसइ—एस णं से तिलथंभए नो निप्फन्ने, अनिप्फन्नमेव । ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता नो एयस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया ।"

तए णं अहं गोयमा ! गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी— "तुमं णं गोसाला ! तदा ममं एवमाइक्खमाणस्स-जाव-परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहसि, नो पत्तियसि, नो रोएसि, एयमट्ठं असद्दहमाणे, अपत्तियमाणे, अरोएमाणे, ममं पणिहाए 'अयण्णं मिच्छावादी भवउ' त्ति कट्टु ममं अंतियाओ सणियं-सणियं पच्चोसक्कसि, पच्चोसक्कित्ता जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छसि, उवागच्छित्ता तं तिलथंभगं सलेट्ठुयायं चेव उप्पाडेसि, उप्पाडेत्ता एगंतमंते एडेसि । तक्खणमेत्तं गोसाला ! दिव्वे अब्भवद्दलए पाउब्भूए । तए णं से दिव्वे अब्भवद्दलए खिप्पामेव पतणतणाति, खिप्पामेव पविज्जुयाति, खिप्पामेव नच्चोदगं णातिमट्टियं पविरलपफुसियं रयरेणुविणासणं दिव्वं सलिलोदगं वासं वासति, जेण से तिलथंभए आसत्थे पच्चायाते बद्धमूले, तत्थेव पतिट्ठिए । ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तस्स चेव तिलथंभगस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया । तं एस णं गोसाला ! से तिलथंभए निप्फन्ने, नो अनिप्फन्नमेव । ते य सत्त तिलपुप्फजीवा उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता एयस्स चेव तिलथंभयस्स एगाए तिलसंगलियाए सत्त तिला पच्चायाया ।

लेता है, उसको छह मास के अन्त में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या प्राप्त होती है ।'

तत्पश्चात् गोशाल मंखलिपुत्र ने मेरे इस कथन को विनय पूर्वक सम्यक् रूप में स्वीकार किया ।

महावीर द्वारा कथित तिलस्तम्भ की निष्पत्ति जानकर गोशाल का अपक्रमण—

६८. इसके बाद हे गौतम ! अन्यदा एक दिन मैं मंखलिपुत्र गोशाल के साथ कूर्मग्राम नगर से सिद्धार्थ ग्राम नगर की ओर विहार करने के लिये अग्रसर था । जब हम उस तिलके पौधे के स्थान पर आये तब मंखलिपुत्र गोशाल ने मुझसे इस प्रकार कहा—'हे भंते ! आपने मुझसे उस समय यह कहा था—यावत्— प्ररूपित किया था—'हे गोशाल ! यह तिलका पौधा निष्पन्न होगा, किन्तु निष्पन्न नहीं हुआ । वे सात तिल पुष्पजीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक तिल की फली में सात तिल के रूप में उत्पन्न होंगे किन्तु आपकी वह बात मिथ्या है । क्योंकि यह प्रत्यक्ष दिख रहा है कि वह तिलका पौधा निष्पन्न नहीं हुआ- उगा ही नहीं है, अनिष्पन्न ही है और न ही वे सात तिल पुष्प जीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक तिल फली में सात तिल के रूप में उत्पन्न हुए हैं ।'

तब हे गौतम ! इसके उत्तर में मैंने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—हे गोशाल ! उस समय जब मैंने तुझसे ऐसा कहा था—यावत्—प्ररूपित किया था, तब इस कथन की तुमने श्रद्धा नहीं की थी, प्रतीति नहीं की थी और न रुचि ही की थी किन्तु इस कथन पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि करते हुए मेरे निमित्त से ये मिथ्यावादी होवें ऐसा विचार कर मेरे पास से शनैः शनैः पीछे खिसका था, पीछे खिसककर जहाँ तिलका पौधा था, वहाँ पहुँचा था, वहाँ पहुँचकर उस तिल के पौधे को मूल और मिट्टी सहित उखाड़ दिया था, उखाड़ कर एकान्त में फेंक दिया था । किन्तु हे गोशाल ! तत्काल दिव्य मेघ बादल उत्पन्न हुए । तब वे दिव्य मेघ बादल शीघ्र ही गर्जने लगे, शीघ्र ही बिजली चमकने लगी और शीघ्र ही न अधिक पानी हो और न कीचड़ हो, ऐसी प्रविरल छोटी-छोटी बूंदों वाली, रज और धूलि का विनाश करने वाली दिव्य जलवृष्टि हुई, जिससे वह तिल का पौधा वहीं स्थिर हो गया, विशेष स्थिर हो गया और बद्ध मूल वाला होकर सुप्रतिष्ठित हो गया । वे सात तिल पुष्पजीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक तिल फली में सात तिल के रूप में उत्पन्न हुए हैं । इसलिये हे गोशाल ! वह तिलका पौधा निष्पन्न हुआ है किन्तु अनिष्पन्न नहीं हुआ है और वे सात तिलपुष्प जीव मरकर उसी तिल के पौधे की एक तिलफली में सात तिल के रूप में उत्पन्न हुए हैं ।

एवं खलु गोसाला ! वणस्सइकाइया पउट्टपरिहारं परिहरंति।"

क्योंकि हे गोशाल ! वनस्पतिकाय के जीव मरकर प्रवृत्त परिहार का परिहार (उपभोग) करते हैं, अर्थात् मरकर पुनः उसी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवमाइक्खमाणस्स-जाव-परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहइ, नो पत्तियइ, नो रोएइ, एयमट्ठं असद्दहमाणे अपत्तियमाणे अरोएमाणे जेणेव से तिलथंभए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ताओ तिलथंभयाओ तं तिलसंगलियं खुड्डइ, खुड्डित्ता करयलंसि सत्त तिले पप्फोडेइ।

तब मेरे द्वारा इस प्रकार कहे जाने पर—यावत्—प्ररूपणा किये जाने पर गोशाल मंखलिपुत्र ने इस कथन की श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की, न रुचि की किन्तु इस कथन पर अश्रद्धा, अप्रतीति और अरुचि दिखाते हुए जहाँ वह तिल का पौधा था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर उस तिल के पौधे से तिल की फली तोड़ी, तोड़कर हाथ में सात तिल बाहर निकाले।

तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ते सत्त तिले गणमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था-एवं खलु सव्वजीवा वि पउट्टपरिहारं परिहरंति— एस णं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स पउट्टे, एस णं गोयमा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स ममं अंतियाओ आयाए अवक्कमणे पण्णत्ते।

इसके बाद उस गोशाल मंखलिपुत्र को उन सात तिलों की गिनती करते समय इस प्रकार यह आध्यात्मिक चिंतित, प्रार्थित और मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'इसी प्रकार से सभी जीव भी प्रवृत्त परिहार का परिहार करते हैं, अर्थात् मरकर पुनः उसी शरीर में उत्पन्न हो जाते हैं। हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशाल का यह परिवर्तन है, हे गौतम ! मंखलिपुत्र गोशाल का मेरे पास सही आगमन है और अपक्रमण (पृथक होना) है।"

गोसालस्स तेयलेस्सासंपत्ती—

६९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते एगाए सणहाए कुम्मासपिंडियाए एगेण य वियडासएणं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते अंतो छण्हं मासाणं संखित्तविउलतेयलेसे जाए।

गोशाल को तेजोलेश्या संप्राप्ति—

६९. इसके बाद वह गोशाल मंखलिपुत्र नख सहित एक मुट्ठी उड़द के बाकुलों से और एक चुल्लू भर पानी के द्वारा निरन्तर छठ-छठ के तपोकर्म के साथ दोनों हाथ ऊँचे रखकर और सूर्य के सम्मुख खड़े रहकर आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरने लगा।

तब उस गोशाल मंखलिपुत्र को छह मास के अन्त में संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या उत्पन्न हो गई।

महावीरकहियं गोसालस्स अजिणत्तं—

७०. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अण्णदा कयाथि इमे छ दिसाचरा अंतियं पाउब्भवित्था, तं जहा—

साणे, कलंदे, कणियारे, अच्छिदे, अग्गिवेसायणे, अज्जुणे, गोमायुपुत्ते।

तए णं ते छ दिसाचरा अट्ठविहं पुव्वगयं मग्गदसमं सएहिं-सएहिं मतिदंसणेहिं निज्जूहंति, निज्जूहित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं उवट्ठाइंसु। तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेणं अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सव्वेसिं पाणाणं, सव्वेसिं भूयाणं, सव्वेसिं जीवाणं, सव्वेसिं सत्ताणं इमाइं छ अणइक्कमणिज्जाइं वागरणाइं वागरेति, तं जहा—

लाभं अलाभं सुहं दुक्खं जीवियं मरणं तहा।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तेण अट्ठंगस्स महानिमित्तस्स केणइ उल्लोयमेत्तेणं सावत्थीए नगरीए अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्प-

महावीर कथित गोशाल का अजिनत्व—

७०. तत्पश्चात् उस मंखलिपुत्र गोशाल के पास किसी एक समय ये छह दिशाचर प्रादुर्भूत हुए—प्रगट हुए, यथा—

१. शान, २. कलन्द, ३. कर्णिकार, ४. अच्छिद्र, ५. अग्निवैश्यायन और ६. गोमायु पुत्र अर्जुन।

तब उन छह दिशाचरों ने पूर्व श्रुत में कहे हुए आठ महानिमित्त और दस मार्ग का अपने-अपने मतिदर्शन से निर्यूहण किया—उद्धृत किया, निर्यूहण करके गोशाल मंखलिपुत्र का आश्रय ग्रहण किया। इसके बाद वह गोशाल मंखलिपुत्र उन आठ प्रकार के महानिमित्तों के उपदेश द्वारा सभी प्राणों, सभी भूतों, सभी जीवों और सत्वों की इन छह बातों के विषय में अनतिक्रमणीय (जो अन्यथा—असत्य न हो) उत्तर देने लगा, वे छह बातें इस प्रकार हैं—

१. लाभ, २. अलाभ, ३. सुख, ४. दुःख, ५. जीवन तथा ६. मरण।

तत्पश्चात् वह मंखलिपुत्र गोशाल उन अष्टांग महानिमित्तों को स्वल्प उपदेश मात्र से श्रावस्ती नगरी में जिन नहीं होते हुए भी मैं जिन हूँ—इस प्रकार का प्रलाप करते हुए अर्हत नहीं होते

लावी, अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ. तं नो खलु गोयमा ! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी. जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी, अणरहा अरहप्पलावी, अकेवली केवलिप्पलावी, असव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ ।

हुए भी स्वयं के अर्हंत होने का प्रलाप करते हुए, केवली नहीं होते हुए अपने को केवली होने का प्रलाप करते हुए, सर्वज्ञ न होकर भी अपने को सर्वज्ञ बताने का प्रलाप करते हुए, जिन नहीं होकर भी जिन शब्द का प्रकाश करते हुए विचरने लगा। किन्तु हे गौतम ! यह गोशाल मंखलिपुत्र यथार्थतः जिन होकर अपने को जिन कहने वाला, अर्हंत होकर अर्हंत कहने वाला, केवली होकर अपने को केवली कहने वाला, सर्वज्ञ होकर अपने को सर्वज्ञ कहने वाला, जिन होकर अपने को जिन शब्द का प्रकाश करने वाला नहीं है अपितु मंखलिपुत्र अजिन है और जिन का अपलाप करने वाला है, अर्हंत नहीं है, अर्हंत का अपलाप करने वाला है, केवली नहीं है, केवली का अपलाप करने वाला है, सर्वज्ञ नहीं है, सर्वज्ञ का अपलाप करने वाला है, जिन नहीं है अपने को जिन शब्द से प्रकाशित करने वाला है ।

तए णं सा महतिमहालया महच्चपरिसा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया ।

तत्पश्चात् उस अति विशाल परिषदा ने श्रमण भगवान महावीर से इस बात को सुनकर और हृदय में अवधारित कर हृष्ट-तुष्ट हो श्रमण भगवान् महावीर को वंदन नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके जिस दिशा से आई थी वापस उसी दिशा में लौट गई ।

गोसालस्स अमरिसो—

७१. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—जण्णं देवाणुप्पिया ! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ तं मिच्छा । समणे भगवं महावीरे एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ—एवं खलु तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स मंखली नामं मंखे पिता होत्था । तए णं तस्स मंखस्स एवं चेव तं सव्वं भाणियव्वं-जाव-अजिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ. तं नो खलु गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी -जाव-विहरइ, गोसाले मंखलिपुत्ते अजिणे जिणप्पलावी-जाव-विहरइ, समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ ।

गोशाल का अमर्ष—

७१. तत्पश्चात् श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, महापथों और पथों में एकत्रित हुए बहुत से मनुष्य परस्पर एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे—यावत्—प्ररूपणा करने लगे—देवानुप्रियो ! गोशाल मंखलिपुत्र जो अपने को जिन और जिन का प्रलाप करते हुए यावत्—जिन और जिन शब्द को प्रकाशित करते हुए विचरता है, वह मिथ्या झूठ है। श्रमण भगवान महावीर तो यह कहते हैं—यावत्—यह प्ररूपित करते हैं कि उस गोशाल मंखलिपुत्र का मंखलि नामक मंख पिता था इत्यादि पूर्वोक्त समस्त वर्णन जिन नहीं होते हुए भी जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरता है तक का यहाँ जानना चाहिए। इसलिये गोशाल मंखलिपुत्र जिन होकर अपने को जिन कहने वाला इत्यादि नहीं है किन्तु गोशाल मंखलिपुत्र जिन नहीं, जिन का प्रलाप करने वाला है—यावत्—विचरता है, श्रमण भगवान महावीर जिन हैं, और जिन शब्द द्वारा कहे जाने वाले—यावत्—जिन शब्द को प्रकाशित करते हुए विचरते हैं।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते बहुजणस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे तेणेव उवा-

तत्पश्चात् वह गोशाल मंखलिपुत्र बहुत से लोगों से इस बात को सुनकर और हृदय में अवधारित कर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, प्रचण्ड हो और दांतों को मिसमिसाते हुए आतापना भूमि से उतरा, उतरकर श्रावस्ती नगरी के बीचों बीच से होता हुआ जहाँ हालाहला कुम्हारिन का कुम्भकारापण था, वहाँ आया, वहाँ आकर हालाहला कुम्भकारिनी के कुम्भकारापण में आजीविक संघ

गच्छइ, उवागच्छित्ता हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे महया अमरिसं वहमाणे यावि विहरइ।

गोसालस्स आणंदथेरसमक्खं अत्थलुद्धवणियदिट्ठंतकहण-पुव्वं अक्कोसपदंसणं—

७२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी आणंदे नामं थेरे पगइभद्दए-जाव-विणीए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से आणंदे थेरे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए एवं जहा गोयमसामी तहेव आपुच्छइ, तहेव-जाव-उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स अदूरसामंते वीइवयइ।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आणंदं थेरं हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"एहि ताव आणंदा! इओ एगं महं ओवमियं निसामेहि।'

तए णं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ।

७३. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आणंदं थेरं एवं वयासी—एवं खलु आणंदा!

इत्तो चिरातीयाए अद्धाए केइ उच्चावया वणिया अत्थत्थी अत्थलुद्धा अत्थगवेसी अत्थकंखिया अत्थपिवासा अत्थगवेसणयाए णाणाविहविउलपणियभंडमायाए सगडीसागडेणं सुबहुं भत्तपाणं पत्थयणं गहाय एगं महं अगामियं अणोहियं छिन्नावायं दीहमद्धं अडविं अणुप्पविट्ठा।

तए णं तेसिं वणियाणं तीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए किंचि देसं अणुप्पत्ताणं समाणाणं से पुव्वगहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुज्जमाणे-परिभुज्जमाणे झीणे।

तए णं ते वणिया झीणोदगा समाणा तण्हाए परब्भमाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए अणोहियाए छिन्नावायाए दीहमद्धाए अडवीए किंचि देसं अणुप्पत्ताणं समाणाणं से पुव्वगहिए उदए अणुपुव्वेणं परिभुज्जमाणे-परिभुज्जमाणे झीणे, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं इमीसे अगामियाए-जाव-अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेत्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स

से परिवृत्त होकर अत्यन्त अमर्ष को (क्रोध) को धारण कर अत्यन्त क्रुद्ध हो विचरने लगा।

गोशाल का आनन्द स्थविर के समक्ष अर्थलुब्ध वणिक्-दृष्टान्त कथनपूर्वक आक्रोश प्रदर्शन—

७२. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत आनन्द स्थविर निरन्तर षष्ठ-षष्ठ के तपोकर्म, संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरते थे।

तत्पश्चात् उन आनन्द स्थविर ने षष्ठ क्षमण के पारणे के दिन प्रथम पौरुषी में स्वाध्याय किया आदि जैसा गौतम स्वामी का वर्णन पूर्व में है, उसी प्रकार से आज्ञा मांगी और उसी प्रकार से—यावत्—उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये घूमते हुए हालाहला कुम्भकारिनी के कुम्भकारापण के समीप से निकले।

तब गोशाल मंखलिपुत्र ने हालाहला कुम्भकारिनी के कुम्भकारापण के पास से जाते हुए आनन्द स्थविर को देखा, देखकर इस प्रकार कहा—'अरे आनन्द! यहाँ आ और मेरे एक दृष्टान्त को सुन।"

तब गोशाल मंखलिपुत्र के इस संकेत को सुनकर आनन्द स्थविर जहाँ हालाहला कुम्भकारिनी का कुम्भकारापण था, उसमें जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था, वहाँ पहुँचे।

७३. तत्पश्चात् गोशाल मंखलिपुत्र ने आनन्द स्थविर से इस प्रकार कहा—'ओ आनन्द!

आज से बहुत पुराने समय में धन के अर्थी, धन के लोभी, धन के गवेषी, धन के आकांक्षी, धन की लिप्सा करने वाले कई एक छोटे-बड़े वणिक् धन की गवेषणा करने के लिये, उपार्जन करने के लिये, अनेक प्रकार के बिक्री करने योग्य पदार्थों को गाड़ी-गाड़ों में भरकर और बहुत सी खाने-पीने की सामग्री तथा पाथेय लेकर एक निर्जन, अगम्य—आर-पार से रहित जिसमें से निकलने के रास्ते का पता नहीं ऐसी महा अटवी में प्रविष्ट हुए।

तब उस निर्जन अगम्य आर-पार से रहित और लम्बे रास्ते वाली अटवी में कुछ दूर जाने पर उन वणिकों के साथ में लाया हुआ पानी पीते-पीते समाप्त हो गया।

तब पानी के समाप्त हो जाने और प्यास से पीड़ित होने पर उन व्यापारियों ने एक-दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! इस निर्जन, अगम्य, आर-पार रहित लम्बे रास्ते वाली अटवी के एक भाग में आने पर पहले साथ में लिया हुआ पानी पीते-पीते समाप्त हो गया है, इसलिये देवानुप्रियो! हमें इस ग्राम विहीन निर्जन—यावत्—अटवी में पानी की मार्गणा—गवेषणा करना उचित है' ऐसा कहकर एक दूसरे ने

अंतिए एयमट्ठं पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता तीसे णं अगामियाए-जाव-अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेंति, उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणा एगं महं वणसंडं आसादेंति— किण्हं किण्होभासं-जाव-महामेहनिकुरंबभूयं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं ।

"तस्स णं वणसंडस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महेगं वम्मीयं आसादेंति । तस्स णं वम्मीयस्स चत्तारि वप्पुओ अब्भुग्गयाओ, अभिनिसढाओ, तिरियं सुसंपग्गहियाओ, अहे पन्नगद्धरूवाओ, पन्नगद्धसंठाणसंठियाओ, पासादियाओ दरिसणिज्जाओ अभिरूवाओ पडिरूवाओ ।

"तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमीसे अगामियाए-जाव-अडवीए उदगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमाणेहिं इमे वणसंडे आसादिए— किण्हे किण्होभासे । इमस्स णं वम्मीयस्स चत्तारि वप्पुओ अब्भुग्गयाओ, अभिनिसढाओ-जाव-पडिरूवाओ, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स पढमं वप्पुं भिंदित्तए, अवि याइं ओरालं उदगरयणं अस्सादेस्सामो ।'

"तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स पढमं वप्पुं भिंदंति । ते णं तत्थ अच्छं पत्थं जच्चं तणुयं फालियवण्णाभं ओरालं उदगरयणं आसादेंति ।

तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा पाणियं पिबंति, पिबित्ता वाहणाइं पज्जेंति पज्जेत्ता भायणाइं भरेंति, भरेत्ता दोच्चं पि अण्णमण्णं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हेहिं इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादीए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वप्पुं भिंदित्तए, अवि याइं एत्थ ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेस्सामो ।'

"तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुर्णेति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स दोच्चं पि वप्पुं भिंदंति । ते णं तत्थ अच्छं जच्चं तावणिज्जं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं सुवण्णरयणं अस्सादेंति ।

तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा भायणाइं भरेंति, भरेत्ता पवहणाइं भरेंति, भरेत्ता तच्चं पि अण्णमण्णं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले

इस विचार को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस निर्जन— यावत् — अटवी में चारों ओर पानी की मार्गणा— गवेषणा की, चारों ओर पानी की मार्गणा-गवेषणा करते हुए श्यामल, श्यामल आभास वाला—यावत्—बड़े मेघों के समूह रूप प्रासादीय, दर्शनीय, अभिरूप एवं प्रतिरूप एक विशाल वन खंड देखा ।

उस वन खंड के अति मध्य देशभाग में एक विशाल वल्मीक (बांबी) देखी । उस वल्मीक के ऊपर ऊँचे उठे हुए तिरछे विस्तीर्ण, नीचे अर्ध सर्प के समान विस्तीर्ण और ऊपर संकुचित, अर्ध सर्प की आकृति वाले, प्रसन्नता उत्पन्न करने वाले, देखने में योग्य, मनोहर असाधारण सुन्दर चार शिखर थे ।

उस वल्मीक को देखकर वे व्यापारी हृष्ट-तुष्ट हुए और एक दूसरे को बुलाया, बुलाकर आपस में इस प्रकार कहा— 'देवानुप्रियो ! हमने इस निर्जन—यावत्—अटवी में चारों ओर पानी की मार्गणा— गवेषणा करते हुए इस श्यामल और श्याम आभा वाले वन खंड को देखा—प्राप्त किया है । इस वन खंड के बीचों बीच इस वल्मीक को देखा । इस वल्मीक के ऊपर ऊँचे उठे हुए —यावत्—मनोहर चार शिखर हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो ! हमें इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर है, सम्भव है कि तब हमें उत्तम उदक (पानी) रत्न मिल सकेगा—मिल जायेगा ।

तब उन वणिकों ने परस्पर एक दूसरे की इस बात को (सुझाव को) स्वीकार किया, स्वीकार करके उस वल्मीक के पहले शिखर को तोड़ा । जिससे उनको वहाँ स्वच्छ, पथ्यकारी, स्वाभाविक, हलका, स्फटिक मणिक के समान वर्ण प्रभा वाला उत्तम उदक रत्न (पानी) प्राप्त हुआ ।

तत्पश्चात् उन वणिकों ने हर्षित और सन्तुष्ट होकर पानी पीया, पीकर अपने वाहनों—बैलों आदि को पिलाया, पिलाकर बर्तनों में पानी भरा, पानी भरकर दुबारा एक दूसरे से इस प्रकार कहा 'देवानुप्रियो ! इस वल्मीक के पहले शिखर को तोड़ने पर हमने यह उत्तम उदक रत्न प्राप्त किया है, अतएव हे देवानुप्रियो ! अब हमें इस वल्मीक के दूसरे शिखर का भी भेदन करना श्रेयस्कर रहेगा—उचित होगा । सम्भव है कि उसमें सर्वोत्तम स्वर्ण रत्न प्राप्त हो जावे ।'

तदनन्तर उन वणिकों ने परस्पर एक दूसरे के इस विचार को सुना—स्वीकार किया और स्वीकार करके उस वल्मीक के दूसरे शिखर को भी तोड़ा, तब उन्होंने वहाँ स्वच्छ अकृत्रिम, ताप को सहन करने वाले, महाअर्थ वाले, मूल्यवान महापुरुषों के योग्य उत्तम स्वर्ण रत्न को प्राप्त किया ।

तत्पश्चात् हृष्ट-तुष्ट हुए उन वणिकों ने उस स्वर्ण को पात्रों में भरा, पात्रों में भरकर वाहनों (गाड़ियों) में भरा और भरकर फिर तीसरी बार भी एक दूसरे से इस प्रकार कहा— देवानुप्रियो !

उदगरयणे अस्साविए दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वप्पुं भिदित्तए, अवि याइं एत्थं ओरालं मणिरयणं अस्सादेस्सामो ।

इस वल्मीक के प्रथम शिखर को तोड़ने पर हमें उत्तम उदक रत्न मिला, दूसरे शिखर को तोड़ने पर हमने उत्तम स्वर्ण रत्न प्राप्त किया, अतएव हे देवानुप्रियो ! अब हमें इस वल्मीक के तीसरे शिखर को तोड़ना श्रेयस्कर—उचित है शायद उसमें से श्रेष्ठ उत्तम मणिरत्न प्राप्त हो जायें ।

तए णं ते वणिया अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता तस्स वम्मीयस्स तच्चं पि वप्पुं भिंदंति । ते णं तत्थ विमलं निम्मलं नित्तलं निक्कलं महत्थं महग्घं महरिहं ओरालं मणिरयणं अस्सादेंति ।

तत्पश्चात् उन व्यापारियों ने एक दूसरे के इस विचार को स्वीकार किया, स्वीकार करके उस वल्मीक के तीसरे शिखर का भी भेदन किया । वहाँ से उनको विमल, निर्मल अभिवृत (गोल) निष्कल (दोष रहित) महा अर्थवाले, महामूल्यवान, महापुरुषों के योग्य उत्तम मणिरत्न प्राप्त हुए ।

तए णं ते वणिया हट्ठतुट्ठा भायणाइं भरेंति, भरेत्ता पवहणाइं भरेंति, भरेत्ता चउत्थं पि अण्णमण्णं एवं वयासी—'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमस्स वम्मीयस्स या चउत्थं पि वप्पुं भिंदित्तए, अवि याइं उत्तमं महग्घं महरिहं ओरालं वइररयणं अस्सादेस्सामो ।'

तब हर्षित और सन्तुष्ट होते हुए उन व्यापारियों ने अपने भाजन भरे, भरकर गाड़ियाँ भरीं, भरकर पुनः चौथी बार भी एक दूसरे से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! बात यह है कि इस वल्मीक की प्रथम शिखर का भेदन करने पर उत्तम जल प्राप्त हुआ, दूसरी शिखर को तोड़ने पर उत्तम स्वर्ण रत्न मिला, तीसरी शिखर को भेदन करने पर सर्वश्रेष्ठ मणिरत्न मिले हैं । अतएव अब हमारे लिये यह उचित होगा कि देवानुप्रियो ! इस वल्मीक की चौथी शिखर का भी भेदन करें, शायद उसे तोड़ने पर उत्तम महामूल्यवान महापुरुषों के योग्य सर्वश्रेष्ठ वज्ररत्न प्राप्त हो जायें ।

'तए णं तेसिं वणियाणं एगे वणिए हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेसिए हिय-सुह-निस्सेसकामए ते वणिए एवं वयासी 'एवं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हे इमस्स वम्मीयस्स पढमाए वप्पूए भिन्नाए ओराले उदगरयणे अस्सादिए, दोच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले सुवण्णरयणे अस्सादिए, तच्चाए वप्पूए भिन्नाए ओराले मणिरयणे अस्सादिए, तं होउ अलाहि पज्जत्तं णे एसा चउत्थी वप्पू मा भिज्जउ, चउत्थी णं वप्पू सउवसग्गा यावि होत्था ।'

तत्पश्चात् उन व्यापारियों में जो एक उन सब का हितैषी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक, मुमुक्षु, हितसुख, कल्याणकामी वणिक था, उसने उन वणिकों से इस प्रकार कहा—देवानुप्रियो ! इस वल्मीक की प्रथम शिखर का भेदन करने पर हमने श्रेष्ठ उदकरत्न प्राप्त किया, दूसरी शिखर को तोड़ने पर उत्तम स्वर्ण रत्न पाया और तीसरी शिखर का भेदन करने पर सर्वश्रेष्ठ मणि रत्न प्राप्त किये हैं । इसलिये अब बस करो, हमारे लिये इतना पर्याप्त काफी है, इस चौथी शिखर का भेदन मत करो, सम्भव है कि चौथी शिखर उपसर्ग—उपद्रवकारी भी हो सकती है ।

"तए णं ते वणिया तस्स वणियस्स हियकामगस्स सुहकामगस्स पत्थकामगस्स आणुकंपियस्स निस्सेसियस्स हिय-सुह-निस्सेसकामगस्स एवमाइक्खमाणस्स-जाव-परूवेमाणस्स एयमट्ठं नो सद्दहंति, नो पत्तियंति, नो रोयंति, एयमट्ठं असद्दहमाणा अपत्तियमाणा अरोएमाणा तस्स वम्मीयस्स चउत्थं पि वप्पुं भिंदंति ।

तब उन वणिकों ने उस हितकामी, सुखकामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक, मुमुक्षु, हित-सुख, कल्याणकारी वणिक द्वारा इस प्रकार से कहे जाने पर—यावत्—प्ररूपणा किये जाने पर भी इस बात की श्रद्धा नहीं की, प्रतीति नहीं की और न उसके प्रति रुचि दिखाई किन्तु इस बात की श्रद्धा न करते हुए, प्रतीति न करते हुए और रुचि न करते हुए उस वल्मीक की चौथी शिखर को भी तोड़ दिया ।

ते णं तत्थ उग्गविसं चंडविसं घोरविसं महाविसं अतिकायं महाकायं मसिमूसाकालगं नयणविसरोसपुण्णं अंजणपुंज-निगरप्पगासं रत्तच्छं जमलजुयलचंचलचलंतजीहं धरणितलवेणिभूयं उक्कड-

उस शिखर के टूटने पर उन्होंने उग्र विष वाले, प्रचंड विष वाले, घोर विष वाले महाविष वाले अतिकाय (मोटे) महाकाय (लम्बे) मषि और मूषा के समान कृष्ण वर्ण वाले दृष्टि विष से

फुड-कुडिल-जडुल-कक्खड-विकड-फडाडोवकरणदच्छं लोहागर-धम्ममाण-धमधमेंतघोसं अणागलियचंडतिव्वरोसं समुहं तुरियं चवलं धमंतं दिट्ठीविसं सप्पं संघट्टेंति ।

रोषपूर्ण काजल के पुंज के समान कांति वाले, लाल आंखों वाले, चपल और चलती हुई दो जिह्वा वाले पृथ्वी तल की वेणी के समान उत्कृष्ट, स्पष्ट, कुटिल, जटिल, कर्कश, विकट, फटाटोप करने (फन को फैलाकर चौड़ा करने) में दक्ष, धौंकी जा रही धौंकनी के समान धमधमायमान शब्द घोष करने वाले, उग्र और तीव्र रोष वाले, त्वरायुक्त चपल और फूत्कार करते हुए दृष्टि विष सर्प का स्पर्श किया।

"तए णं से दिट्ठीविसे सप्पे तेहिं वणिएहिं संघट्टिए समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सणियं-सणियं उट्ठेइ, उट्ठेत्ता सरसरसरस्स वम्मीयस्स सिहरतलं दुरुहति, दुरुहित्ता आदिच्चं णिज्झाति, णिज्झाइत्ता ते वणिए अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समंता समभिलोएति।

तत्पश्चात् उन वणिकों का स्पर्श होते ही वह दृष्टि विष सर्प अतीव क्रोधित, रुष्ट, कुपित, प्रचण्ड होकर दांतों को मिस-मिसाते हुए शनैः शनैः उठा, उठकर सरसराहट करते हुए वल्मीक के शिखर पर चढ़ा चढ़कर उसने सूर्य की ओर देखा, देखकर उन वणिकों का अनिमेष दृष्टि से ऊपर से नीचे तक सभी को चारों ओर से अवलोकन किया।

तए णं ते वणिया तेणं दिट्ठीविसेणं सप्पेणं अणिमिसाए दिट्ठीए सव्वओ समंता समभिलोइया समाणा खिप्पामेव सभंडमत्तोवगरण-मायाए एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासी कया यावि होत्था।

तब वे वणिक उस दृष्टि विष सर्प के द्वारा अनिमेष दृष्टि से नख से शिख तक देखे जाने पर पात्र और उपकरणों सहित एक ही प्रहार से कूटाघात से जलाकर भस्म कर दिये गये।

तत्थ णं जे से वणिए तेसिं वणियाणं हियकामए सुहकामए पत्थकामए आणुकंपिए निस्सेसिए हिय-सुह-निस्सेसकामए से णं आणुकंपियाए देवयाए सभंडमत्तोवगरणमायाए नियगं नगरं साहिए।

लेकिन उन वणिकों में जो वणिक उनका हितकामी, सुख-कामी, पथ्यकामी, अनुकम्पक, मुमुक्षु, हित-सुख-कल्याणकामी था, अनुकम्पा करके उस सर्प रूप देव ने भांडोपकरण सहित उसे अपने नगर में रख दिया; पहुंचा दिया।

७४. "एवामेव आणंदा ! तव वि धम्मायरिएणं धम्मोवएसएणं समणेणं नायपुत्तेणं ओराले परियाए अस्साविए, ओराला कित्ति-वण्ण-सद्द-सिलोगा सदेवमणुयासुरे लोए पुव्वंति, गुव्वंति, थुव्वंति—इति खलु समणे भगवं महावीरे, इति खलु समणे भगवं महावीरे। तं जदि मे से अज्ज किंचि वि वदति तो णं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेमि, जहा वा वालेणं ते वणिया। तुमं च णं आणंदा ! सारक्खामि संगोवामि जहा वा से वणिए तेसिं वणियाणं हियकामए-जाव-निस्सेसकामए आणुकंपियाए देवयाए सभंड मत्तोवगरणमायाए नियगं नगरं साहिए। तं गच्छ णं तुमं आणंदा ! तव धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स नायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि।"

७४. इसी प्रकार ओ रे आनन्द ! तेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र ने उदार पर्याय प्राप्त की है और देव, मनुष्य और असुरों युक्त इस लोक में उनकी उत्तम कीर्ति, वर्ण, शब्द और श्लोक (यश) व्याप्त है एवं श्रमण भगवान महावीर, श्रमण भगवान महावीर इस घोष से उनको पुकारते हैं और उनकी स्तुति होती है। यदि वे आज से मेरे लिये कुछ भी कहेंगे तो जिस तरह उस सर्प ने उन वणिकों को भस्म कर दिया था, उसी प्रकार मैं अपने तपस्तेज के एक ही प्रहार और कूटाघात से भस्म कर दूंगा। हे आनन्द ! जिस प्रकार वणिकों के उस हितकामी… यावत्—निःश्रेयसकामी वणिक को नागदेव ने अनुकम्पा करके भांडोपकरण सहित उसके अपने नगर में पहुँचा दिया था उसी प्रकार मैं तेरा संरक्षण और संगोपन करूँगा। इसलिये हे आनन्द ! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञात पुत्र को यह बात सुना दे।

आणंदथेरस्स भगवओ समक्खं गोसालवयणनिवेदणं भगवओ य समाहाणं—

आनन्द स्थविर का भगवान के समक्ष गोशाल-वचन निवेदन और भगवान का समाधान—

७५. तए णं से आणंदे थेरे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे भीए-जाव-संजायभए गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता सिग्घं तुरियं सावत्थि नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग-

७५. तत्पश्चात् गोशाल मंखलिपुत्र के इस कथन (धमकी) को सुनकर आनन्द स्थविर भीत—यावत्—भयाक्रान्त होकर गोशाल मंखलिपुत्र के पास से और हालाहला कुम्भकारिणी के कुम्भकारापण से निकले और निकलकर शीघ्र एवं त्वरितगति से श्रावस्ती

च्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी —"एवं खलु अहं भंते ! छट्ठक्खमणपारणगंसि तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-जाव-अडमाणे हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स अदूरसामंते वीइवयामि, तए णं गोसाले मंखलिपुत्ते ममं हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स अदूरसामंतेणं वीइवयमाणं पासित्ता एवं वयासी — एहि ताव आणंदा ! इओ एगं महं ओवम्मियं निसामेहि ।"

नगरी के बीचोंबीच से निकले, निकलकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे वहाँ पहुँचे और पहुँचकर श्रमण भगवान महावीर की आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया— हे भन्ते ! षष्ठ क्षमण के पारणे के लिये आपकी आज्ञा लेकर मैं श्रावस्ती नगरी के उच्च-नीच-मध्यम कुलों में — यावत् घूमते हुए हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारापण के पास से आ रहा था, तब गोशाल मंखलिपुत्र ने हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारापण के पास से जाते हुए देखकर इस प्रकार कहा— ओरे आनन्द ! यहाँ आ, तुझे एक दृष्टान्त सुनाता हूँ ।'

"तए णं अहं गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं एवं वुत्ते समाणे जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे, जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते, तेणेव उवागच्छामि ।"

तब मैं मंखलिपुत्र गोशाल की इस बात को सुनकर जहाँ हालाहला कुम्हारिन का कुम्भकारापण था, जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था वहाँ पहुँचा ।

"तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते ममं एवं वयासी—एवं खलु आणंदा ! इओ चिरातीयाए अद्धाए केइ उच्चावया वणिया एवं तं चेव सव्वं निरवसेसं भाणियव्वं-जाव-नियगं नगरं साहिए । तं गच्छ णं तुमं आणंदा ! तव धम्मायरियस्स धम्मोवएसगस्स समणस्स नायपुत्तस्स एयमट्ठं परिकहेहि ।"

तदनन्तर उस मंखलिपुत्र गोशाल ने मुझसे इस प्रकार कहा— ए आनन्द ! आज से बहुत समय पहले कुछ धनी-निर्धन वणिक इत्यादि समस्त वर्णन पूर्ववत् — यावत् — नागदेव ने उसे अपने नगर में रख लिया पर्यन्त यहाँ समझना चाहिए । इसलिये हे आनन्द ! तू जा और अपने धर्माचार्य, धर्मोपदेशक श्रमण ज्ञातपुत्र को यह सब कह सुनाना ।'

"तं पभू णं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए ? विसए णं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए । समत्थे णं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए ?"

हे भदन्त ! तो मंखलिपुत्र गोशाल अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म राशि करने में प्रभु (समर्थ) है ? भदन्त ! अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म कर देना क्या मंखलिपुत्र गोशाल का विषय मात्र है ? अथवा हे भदन्त ! वह मंखलिपुत्र गोशाल, निश्चित रूप से अपने तप-तेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जला कर भस्म करने में समर्थ है ?

"पभू णं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए । विसए णं आणंदा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए । समत्थे णं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, नो चेव णं अरहंते भगवंते, पारियावणियं पुण करेज्जा ।"

'हे आनन्द ! मंखलिपुत्र गोशाल अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में प्रभु (सक्षम) है । हे आनन्द ! अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म कर देना मंखलिपुत्र गोशाल का विषय है । हे आनन्द ! अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में समर्थ है किन्तु अरिहन्त भगवन्तों को जलाकर भस्म करने में समर्थ नहीं है, हाँ, उनको परिताप उत्पन्न करने में समर्थ है ।

"जावतिए णं आणंदा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवे तेए, एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तेए अणगाराणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अणगारा भगवंतो ।"

हे आनन्द ! गोशाल मंखलिपुत्र का जितना तप-तेज है, उससे अनगार भगवन्तों का तपस्तेज अनन्त गुण विशिष्ट है, अनगार भगवन्त क्षान्तिक्षम (क्षमा करने में समर्थ) है ।

"जावइए णं आणंदा ! थेराणं भगवंताणं तवे तेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तेए थेराणं भगवंताणं खंतिखमा पुण थेरा भगवंतो ।"

हे आनन्द ! अनगार भगवन्तों का जितना तपस्तेज है, उससे अनन्त गुण विशेष तपस्तेज स्थविर भगवन्तों का होता है, क्योंकि स्थविर भगवन्त क्षान्ति-क्षम होते हैं ।

"जावतिए णं आणंदा ! थेराणं भगवंताणं तवे तेए एत्तो अणंतगुणविसिट्ठतराए चेव तवे तेए अरहंताणं भगवंताणं, खंतिखमा पुण अरहंता भगवंतो।"

"तं पभू णं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, विसए णं आणंदा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए समत्थे णं आणंदा ! गोसाले मंखलिपुत्ते तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्तए, नो चेव णं अरहंते भगवंते, पारियावणियं पुण करेज्जा।"

हे आनन्द ! जितना तपस्तेज स्थविर भगवन्तों का होता है, उससे अनन्त गुण विशिष्ट तप-तेज अरिहन्त भगवन्तों का होता है, क्योंकि अरिहन्त भगवन्त क्षान्तिक्षम होते हैं।

हे आनन्द ! मंखलिपुत्र अपने तपस्तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात के समान जलाकर भस्म करने में प्रभु है, हे आनन्द ! गोशाल मंखलिपुत्र का अपने तप-तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात करने के समान जलाकर भस्म करना विषय है और हे आनन्द ! गोशाल मंखलिपुत्र अपने तपः तेज से एक ही प्रहार में कूटाघात करने के समान जलाकर भस्म करने में समर्थ है किन्तु अरिहन्त भगवन्तों को भस्म करने में समर्थ नहीं है, केवल परिताप उत्पन्न अवश्य कर सकता है।

"तं गच्छ णं तुमं आणंदा ! गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेहि—'मा णं अज्जो ! तुब्भं केई गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेउ, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेउ, गोसाले णं मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने।"

हे आनन्द ! इसलिये तुम जाओ और गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों से यह बात कहो 'हे आर्यो ! तुम में से कोई मंखलिपुत्र गोशाल के साथ उसके मत के प्रतिकूल कोई भी धर्म सम्बन्धी चर्चा मत करना, उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण न करना और न उसके मत के प्रति प्रत्युपचार (तिरस्कार रूप वचन) करना क्योंकि गोशाल मंखलिपुत्र ने श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्यात्वभाव (अथवा मात्सर्यभाव) धारण किया है, विपरीत दृष्टि बनाली है।

महावीरसूइओ गोसालपडिचोयणानिसेहो—

७६. "तए णं से आणंदे थेरे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव गोयमादी समणा निग्गंथा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोयमा दी समणे निग्गंथे आमंतेति, आमंतेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अज्जो ! छट्ठक्खमणपारणगंसि समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे सावत्थीए नगरीए उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं तं चेव सव्वं-जाव-गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेहि, तं मा णं अज्जो ! तुब्भं केई गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएउ, धम्मियाए पडिसारणयाए पडिसारेउ, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेउ. गोसाले णं मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने।"

महावीर सूचित गोशाल प्रतिचोदना (निर्भर्त्सना) निषेध—

७६. तत्पश्चात् आनन्द स्थविर ने श्रमण भगवान महावीर के इस संकेत—आदेश को सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके जहाँ गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थ थे, उनके पास आये, आकर गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को आमंत्रित—सम्बोधित किया, आमंत्रित करके उनसे इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! बात यह है कि आज षष्ठ श्रमण पारणे के लिये श्रमण भगवान महावीर की आज्ञा लेकर मैं श्रावस्ती नगरी में उच्च-नीच-मध्यम कुलों में गया इत्यादि का वर्णन करके यावत् गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को भगवान की यह सूचना (आज्ञा) कह सुनाई—हे आर्यो ! आप में से कोई भी मंखलिपुत्र गोशाल के साथ उनके मत के प्रतिकूल कोई भी धर्म सम्बन्धी चर्चा मत करना, उसके मत के प्रतिकूल अर्थ का स्मरण न करना, उसके मत के प्रति तिरस्कार रूप वचन मत कहना, गोशाल मंखलिपुत्र ने श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मात्सर्यभाव धारण कर लिया है।

गोसालस्स भगवंतं पइ अवक्कोसपुव्वं ससिद्धंतनिरूवणं—

७७. "जाव च णं आणंदे थेरे गोयमाईणं समणाणं निग्गंथाणं एयमट्ठं परिकहेइ, तावं च णं से गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता आजी-

गोशाल का भगवान के प्रति आक्रोश पूर्वक स्वसिद्धान्त निरूपण—

७७. जब आनन्द स्थविर गौतम आदि श्रमण निर्ग्रन्थों को भगवान की यह आज्ञा सुना रहे थे, उसी समय गोशाल मंखलिपुत्र हालाहला कुम्हारिन के कुम्भकारापण से निकला, निकलकर

विषसंघसंपरिवुडे महया अमरिसं वहमाणे सिग्घं तुरियं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते ठिच्चा समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—सुट्ठु णं आउसो कासवा ! ममं एवं वयासी, साहु णं आउसो कासवा ! ममं एवं वयासी—"गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी, गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी।"

आजीविक संघ के साथ अत्यन्त रोष को धारण करता हुआ शीघ्र और त्वरित गति से श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ कोष्ठक चैत्य था उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, आकर श्रमण भगवान महावीर से न अति दूर और न अति निकट खड़े होकर श्रमण भगवान महावीर स्वामी से इस प्रकार कहने लगा—'हे आयुष्मन् ! काश्यप ! तुम मेरे लिये ठीक कहते हो, हे आयुष्मन् ! काश्यप गोत्रीय ! मेरे विषय में तुम अच्छा कहते हो कि मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है, गोशाल मंखलिपुत्र मेरा धर्मान्तेवासी है।'

"जे णं से गोसाले मंखलिपुत्ते तव धम्मंतेवासी से णं सुक्के सुक्काभिजाइए भवित्ता कालमासे कालं किच्चा अण्णयरेसु देवलोएसु देवत्ताए उववन्ने अहण्णं उदाई नामं कुंडियायणीए अज्जुणस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता इमं सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

'(परन्तु आपको यह ज्ञात होना चाहिये कि) जो मंखलिपुत्र गोशाल तुम्हारा धर्मान्तेवासी था, वह तो शुक्ल और शुक्लाभिजात होकर काल के समय काल करके किसी एक देवलोक में देव रूप से उत्पन्न हुआ है, मैं तो कौडिन्यायन गोत्रीय उदायी हूँ, मैंने गौतम पुत्र अर्जुन के शरीर का त्याग करके और मंखलिपुत्र गोशाल के शरीर में प्रवेश करके यह सातवां परिवृत्त परिहार किया है।'

"जे वि आइं आउसो कासवा ! अम्हं समयंसि केइ सिज्झिंसु वा सिज्झंति वा सिज्झिस्संति वा सव्वे ते चउरासीतिं महाकप्पसयसहस्साइं, सत्त दिव्वे, सत्त संजूहे, सत्त सण्णिगब्भे, सत्त पउट्टपरिहारे, पंच कम्मणिसयसहस्साइं सट्ठिं च सहस्साइं छच्च सए तिण्णि य कम्मंसे अणुपुव्वेणं खवइत्ता तओ पच्छा सिज्झंति बुज्झंति मुच्चंति परिनिव्वायंति सव्वदुक्खाणमंतं करेंसु वा करेंति वा करिस्संति वा।"

'हे आयुष्मन् काश्यप ! हमारे सिद्धान्त के अनुसार जो मोक्ष में गये हैं, जाते हैं और जायेंगे वे सभी चौरासी लाख महाकल्प, सात देवभव, सात संयूथ, सात संज्ञीगर्भ, सात परिवृत्त परिहार और पाँच लाख साठ हजार छह सौ तीन कर्मों के भेदों को अनुक्रम से क्षय करने के अनन्तर सिद्ध होते हैं, बुद्ध होते हैं, मुक्त होते हैं परिनिर्वाण को प्राप्त होते हैं और सर्व दुःखों का अन्त करते हैं, भूतकाल में ऐसा किया है, वर्तमान में करते हैं और भविष्य में करेंगे।

"से जहा वा गंगा महानदी जओ पवूढा, जहिं वा पज्जुवत्थिया, एस णं अद्धा पंचजोयणसयाइं आयामेणं, अद्धजोयणं विक्खंभेणं, पंच धणुसयाइं उव्वेहेणं। एएणं गंगापमाणेणं सत्त गंगाओ सा एगा महागंगा। सत्त महागंगाओ सा एगा सादीणगंगा। सत्त सादीणगंगाओ सा एगा मच्चुगंगा। सत्त मच्चुगंगाओ सा एगा लोहियगंगा। सत्त लोहियगंगाओ सा एगा आवतीगंगा। सत्त आवतीगंगाओ सा एगा परमावती। एवामेव सपुव्वावरेणं एगं गंगासयसहस्सं सत्तरस य सहस्सा छच्च अगुणपन्नं गंगासया भवंतीति मक्खाया।"

जिस प्रकार गंगा महानदी जहाँ से निकलती है और जहाँ पर्यवसित—समाप्त होती है, उस गंगा का अद्धा (मार्ग) लम्बाई में पाँच सौ योजन है, चौड़ाई में आधा योजन एवं गहराई में पाँच सौ धनुष है। इस प्रकार के गंगा प्रमाण वाली सात गंगा नदियाँ मिलकर एक महागंगा होती है। सात महागंगा मिलकर एक सादीन गंगा होती है। सात सादीन गंगा मिलकर एक मृत्यु गंगा होती है, सात मृत्यु गंगा मिलकर एक लोहित गंगा होती है। सात लोहित गंगा मिलकर एक अवन्ती गंगा होती है। सात अवन्ती गंगा मिलकर एक परमावती (गंगा) होती है। इस प्रकार पूर्वापर गंगा मिलकर कुल एक लाख सत्रह हजार छह सौ उनचास गंगा नदियाँ होती हैं ऐसा कहा गया है।

"तासिं दुविहे उद्धारे पण्णत्ते, तं जहा—सुहुमबोंदिकलेवरे चेव, बायरबोंदिकलेवरे चेव।"

'उन गंगा नदियों का दो प्रकार का उद्धार (बालू) कहा गया है—यथा सूक्ष्मबोन्दिकलेवर रूप और बादरबोन्दिकलेवर रूप।

"तत्थ णं जे से सुहुमबोंदिकलेवरे से ठप्पे।"

इनमें से सूक्ष्म बोन्दि कलेवर रूप उद्धार स्थाप्य (निरुपयोगी) है।

"तत्थ णं जे से बायरबोंदिकलेवरे तओ णं वाससए गए, वाससए गए एगमेगं गंगावालुयं अवहाय जावतिएणं कालेणं से कोट्ठे खीणे णीरए निल्लेवे निट्ठिए भवति सेत्तं सरे सरप्पमाणे ।"

उनमें से जो बादरबोन्दि कलेवर रूप उद्धार है, उसमें से सौ-सौ वर्ष के बाद एक-एक बालु का कण निकाला जाये और—जितने काल में उक्त गंगा के समुदाय रूप वह कोठा खाली हो, नीरज हो, निर्लेप हो और निष्ठित हो उतने काल प्रमाण को एक 'शरप्रमाण' काल कहते हैं ।

एएणं सरप्पमाणेणं तिण्णि सरसयसाहस्सीओ से एगे महाकप्पे, चउरासीतिं महाकप्पसयसहस्साइं से एगे महामाणसे ।

इस प्रकार के एक शरप्रमाण वाले तीन लाख शरप्रमाण काल का एक महाकल्प होता है और चौरासी लाख महाकल्प का एक महामानस होता है ।

१. "अणंताओ संजूहाओ जीवे चयं चइत्ता उवरिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जति । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता पढमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

१—अनन्तसंयूथ से जीव च्यवकर उपरितन मानस प्रमाण आयुष्य द्वारा संयूथ—देवभव में उत्पन्न होता है । वहाँ दिव्य भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचरता है वहाँ विचरण करने के पश्चात् उन देवलोगों से आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर च्यवकर प्रथम संज्ञीगर्भज पचेन्द्रिय मनुष्य रूप में उत्पन्न होता है ।"

२. "से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ, विहरित्ता ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता दोच्चे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

२—इसके बाद वहाँ मरकर तुरन्त मध्यम मानस शरप्रमाण आयुष्य द्वारा संयूथ देवनिकाय में उत्पन्न होता है । वहाँ वह दिव्य भोगों को भोगते हुए समय बिताता है. वह समय बिताने के पश्चात् आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने पर उस देव लोक से तत्काल च्यवित होकर दूसरे संज्ञीगर्भ में जन्म लेता है ।'

३. "से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता हेट्ठिल्ले माणसे संजूहे देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं-जाव-चइत्ता तच्चे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

३—इसके बाद वहाँ से मरकर तत्काल अधस्तन मानस शर प्रमाण आयुष्य द्वारा संयूथ देव निकाय में उत्पन्न होता है । वहाँ वह दिव्य भोग भोगकर यावत्—च्यवित होकर तीसरे संज्ञीगर्भ में जन्म लेता है ।

४. "से णं तओहिंतो-जाव-उव्वट्टित्ता उवरिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं-जाव-चइत्ता चउत्थे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

४—तत्पश्चात् वहाँ से यावत्—निकलकर उपरितन मानसोत्तर आयुष्य द्वारा संयूथ देव निकाय में उत्पन्न होता है । वहाँ दिव्य भोग भोगकर—यावत्—च्यवित होकर चौथे संज्ञी गर्भ में जन्मता है ।

५. "से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता मज्झिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं-जाव-चइत्ता पंचमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

५—इसके अनन्तर वहाँ से मरकर तुरन्त मध्यम मानसोत्तर आयुष्य द्वारा संयूथ देव में उपजता है । वहाँ दिव्य भोगों को भोगकर यावत्—च्यवित होकर पाँचवें संज्ञी गर्भ में उत्पन्न होता है ।

६. "से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता हिट्ठिल्ले माणुसुत्तरे संजूहे देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दिव्वाइं भोगभोगाइं-जाव-चइत्ता छट्ठे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति ।"

६—इसके बाद वह जीव तत्काल वहाँ से निकलकर अधस्तनमानसोत्तर आयुष्य के द्वारा संयूथ देव में उपजता है । वहाँ वह जीव दिव्य भोगों को भोगकर यावत्—वहाँ से च्यवकर छठे संज्ञी गर्भ में उत्पन्न होता है ।

७. "से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता—बंभलोगे नामं से कप्पे पण्णत्ते—पाईणपडीणायते उदीणदाहिणविच्छिण्णे, जहा ठाणपदे-जाव-पंच वडेंसगा पण्णत्ता, तं जहा—असोगवडेंसए-जाव-पडिरूवा—से णं तत्थ देवे उववज्जइ । से णं तत्थ दस सागरो-

७—तत्पश्चात् तत्काल वहाँ से निकलकर जो ब्रह्मलोक नामक कल्प (देवलोक) कहा गया है, वह पूर्व पश्चिम लम्बा है और उत्तर-दक्षिण चौड़ा है इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे स्थान-पद में वर्णन किया है—यावत्—उसमें पाँच अवतंसक विमान कहे गये हैं यथा—अशोकावतंसक जो मनोहर—यावत्—प्रतिरूप

वमाइं दिव्वाइं भोगभोगाइं-जाव-चइत्ता सत्तमे सण्णिगब्भे जीवे पच्चायाति।

"से णं तत्थ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाणं राइंदियाणं वीतिक्कंताणं सुकुमालगभद्दलए मिउ-कुण्डलकुंचिय-केसए मट्ठगंडतल-कण्णपीढए देवकुमारसप्पभए दारए पयाति।"

"से णं अहं कासवा! तए णं अहं आउसो कासवा! कोमारियपव्वज्जाए कोमारएणं बंभचेरवासेणं अविद्धकण्णए चेव संखाणं पडिलभामि, पडिलभित्ता इमे सत्त पउट्टपरिहारे परिहरामि, तं जहा—१. एणेज्जस्स, २. मल्लरामस्स, ३. मंडियस्स, ४. रोहस्स, ५. भारद्दाइस्स ६. अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स, ७. गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स।"

"तत्थ णं जे से पढमे पउट्टपरिहारे से णं रायगिहस्स नगरस्स बहिया मंडिकुच्छिंसि चेइयंसि उदाइस्स कुंडियायणस्स सरीरं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता एणेज्जगस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता बावीसं वासाइं पढमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

"तत्थ णं जे से दोच्चे पउट्टपरिहारे से णं उद्दण्डपुरस्स नगरस्स बहिया चंदोयरणंसि चेइयंसि एणेज्जगस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता मल्लरामस्स सरीरगं अणुप्पविसामि अणुप्पविसित्ता एकवीसं वासाइं दोच्चं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

"तत्थ णं जे से तच्चे पउट्टपरिहारे से णं चंपाए नगरीए बहिया अंगमंदिरंसि चेइयंसि मल्लरामस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता मंडियस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता वीसं वासाइं तच्चं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

"तत्थ णं जे से चउत्थे पउट्टपरिहारे से णं वाणारसीए नगरीए बहिया काममहावणंसि चेइयंसि मंडियस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता रोहस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता एकूणवीसं वासाइं चउत्थं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

"तत्थ णं जे से पंचमे पउट्टपरिहारे से णं आलंभियाए नगरीए बहिया पत्तकालगंसि चेइयंसि रोहस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता भारद्दाइस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता अट्ठारस वासाइं पंचमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

तत्थ णं जे से छट्ठे पउट्टपरिहारे से णं वेसालीए नगरीए बहिया कोंडियायणंसि चेइयंसि भारद्दाइस्स सरीरं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता सत्तरस वासाइं छट्ठं पउट्टपरिहारं परिहरामि।"

"तत्थ णं जे से सत्तमे पउट्टपरिहारे से णं इहेव सावत्थीए

है, उस देवलोक में उत्पन्न होता है। वहाँ दस सागरोपम पर्यन्त दिव्य भोग भोगकर—यावत्—च्यवकर सातवें संज्ञी गर्भ में उत्पन्न होता है।

वहाँ नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर सुकुमाल भद्र मृदु दर्भ के कुण्डल के समान संकुचित केश वाला, कान के आभूषणों से जिसके कपोल भाग शोभित हो रहे हैं ऐसा देवकुमार के समान प्रभा—कांतिवाला बालक उत्पन्न हुआ।

हे काश्यप! वह मैं हूँ। तत्पश्चात् हे आयुष्मन् काश्यप! कुमारावस्था में प्रव्रज्या द्वारा, कुमारावस्था में ब्रह्मचर्य द्वारा अविद्धकर्ण—किसी के उपदेश बिना—मुझे प्रव्रज्या ग्रहण करने की भावना जाग्रत हुई, प्रव्रज्या ग्रहण करके इन सात परिवृत्त परिहार में संचरण किया, यथा—(१) ऐणेयक, (२) मल्लराम, (३) मण्डिक, (४) रोह, (५) भारद्वाज, (६) गौतम पुत्र अर्जुन और (७) मंखलिपुत्र गोशाल।

इनमें से जो प्रथम परिवृत्त परिहार था, वह राजगृह नगर के बाहर मण्डिकुक्षि नामक चैत्य में कुण्डियायन गोत्रीय उदायन के शरीर का त्याग किया, त्याग करके ऐणेयक के शरीर में प्रवेश किया, प्रवेश करके बाईस वर्ष तक प्रथम शरीरान्तर में परिवर्तन किया।

'जो दूसरा परिवृत्त परिहार था उसमें उदण्डपुर नगर के बाहर चन्द्रावरण चैत्य में ऐणेयक के शरीर का त्याग किया, त्याग करके मल्लराम के शरीर में प्रवेश किया, प्रवेश करके इक्कीस वर्ष तक दूसरे परिवृत्त परिहार का उपभोग किया।'

'जो तीसरा परिवृत्त परिहार था उसमें चम्पानगरी के बाहर अंग मंदिर चैत्य में मल्लराम के शरीर का त्याग किया, त्याग करके मण्डिक के शरीर में प्रवेश किया और प्रवेश करके बीस वर्ष तक तीसरे परिवृत्त परिहार का उपभोग किया।'

'जो चौथा परिवृत्त परिहार था, उसमें वाणारसी नगरी के बाहर काम महावन नामक चैत्य में मण्डिक के शरीर का त्याग किया, त्याग करके रोह के शरीर में प्रवेश किया, प्रवेश करके उन्नीस वर्ष पर्यन्त चौथे परिवृत्त परिहार का उपभोग किया।'

'जो पाँचवाँ परिवृत्त परिहार था, उसमें आलंभिका नगरी के बाहर प्राप्त काल चैत्य में रोह के शरीर का त्याग किया, त्याग करके भारद्वाज के शरीर में प्रवेश किया, प्रवेश करके अठारह वर्ष तक पाँचवें परिवृत्त परिहार का उपभोग किया।

जो छठा परिवृत्त परिहार था, उसमें वैशाली नगरी के बाहर कुण्डियायन चैत्य में भारद्वाज के शरीर का त्याग किया, त्याग करके गौतम पुत्र अर्जुन के शरीर में प्रवेश किया, प्रवेश करके सत्रह वर्ष तक छठे परिवृत्त परिहार का उपभोग किया।

जो सातवाँ परिवृत्त परिहार है, उसमें इसी श्रावस्ती नगरी

नगरीए हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि अज्जुणगस्स गोयमपुत्तस्स सरीरगं विप्पजहामि, विप्पजहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अलं थिरं धुवं धारणिज्जं सीयसहं उण्हसहं खुहासहं विविहदंसमसगपरीसहोवसग्गसहं थिरसंघयणं ति कट्टु तं अणुप्पविसामि, अणुप्पविसित्ता सोलस वासाइं इमं सत्तमं पउट्टपरिहारं परिहरामि।''

के बाहर हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में गौतम पुत्र अर्जुन के शरीर का त्याग किया, त्याग करके गोशाल मंखलिपुत्र के शरीर को समर्थ, स्थिर, ध्रुव, धारण करने योग्य, शीत को सहन करने वाला, उष्णता को सहन करने में सक्षम, क्षुधा को सहन करने वाला, डांस-मच्छर आदि के विविध परीषह और उपसर्गों को सहन करने वाला तथा स्थिर संहनन वाला है, समझ कर उसमें प्रवेश किया, प्रवेश करके सोलह वर्ष तक इस सातवें परिवृत्त परिहार का उपभोग करता हूँ।'

''एवामेव आउसो कासवा! एगेणं तेत्तीसेणं वाससएणं सत्त पउट्टपरिहारा परिहरिया भवंतीति मक्खाया।''

''तं सुट्ठु णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी—साहु णं आउसो कासवा! ममं एवं वयासी—गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी, गोसाले मंखलिपुत्ते ममं धम्मंतेवासी।''

इस प्रकार हे आयुष्मन् काश्यप! मैंने एक सौ तेतीस वर्ष में ये सात परिवृत्त परिहार किये हैं, ऐसा मैंने कहा है।

अतएव हे आयुष्मन् काश्यप! तुमने मेरे लिये ठीक कहा है। हे आयुष्मन् काश्यप! तुमने मेरे बारे में उचित कहा कि मंखलिपुत्र गोशाल मेरा धर्मान्तेवासी है गोशाल मंखलिपुत्र मेरा धर्मान्तेवासी है।'

भगवया गोसालगवयणस्स पडियारो—

७८. तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—''गोसाला! से जहानामए तेणए सिया, गामेल्लएहिं परब्भमाणे परब्भमाणे कत्थयि गड्डं वा दरिं वा दुग्गं वा णिण्णं वा पव्वयं विसमं वा अणस्सादेमाणे एगेणं महं उण्णालोमेण वा सणलोमेण वा कप्पासपम्हेण वा तणसूएण वा अत्ताणं आवरेत्ताणं चिट्ठेज्जा, से णं अणावरिए आवरियमिति अप्पाणं मण्णइ, अप्पच्छण्णे य पच्छण्णमिति मण्णइ अणिलुक्के णिलुक्कमिति अप्पाणं मण्णइ, अपलाए पलायमिति अप्पाणं मण्णइ, एवामेव तुमं पि गोसाला! अणण्णे संते अण्णमिति अप्पाणं उपलभसि, तं मा एवं गोसाला! सच्चेव ते सा छाया नो अण्णा।''

भगवान द्वारा गोशालक के वचन का प्रतिवाद—

७८. तदनन्तर श्रमण भगवान महावीर ने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा 'हे गोशाला! जिस प्रकार कोई चोर ग्रामवासियों द्वारा पराभव पाता हुआ किसी गड्ढे, गुफा, दुर्ग, निम्न (नीचा स्थान) पर्वत अथवा विषम स्थान को प्राप्त नहीं करता हुआ किसी एक बड़े ऊन के रोम से, शण के रोम से, कपास के रोम से, तृण के अग्रभाग से अपने को आच्छादित करके बैठ जाये और फिर वह नहीं ढका हुआ भी अपने आपको प्रच्छन्न—छिपा हुआ माने, लुका हुआ नहीं होने पर भी अपने आपको लुका हुआ माने, अपलायित (गुप्त) नहीं होते हुए भी अपने आपको लायित (गुप्त) माने, उसी प्रकार हे गोशालक! तू अन्य न होते हुए भी अपने आपको अन्य बता रहा है, हे गोशालक! तू ऐसा मत कर, हे गोशालक! ऐसा करना योग्य नहीं है, तू वही है, तेरी वही छाया (प्रकृति) है, तू अन्य नहीं है।

भगवंतं पइ गोसालस्स पुणो वि अक्कोसो—

७९. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, उच्चावयाहिं उद्धंसणाहिं उद्धंसेति, उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेति, उच्चावयाहिं निच्छोडणाहिं निच्छोडेति. निच्छोडेत्ता एवं वयासी—''नट्ठे सि कदाइ, विणट्ठे सि कदाइ, भट्ठे सि कदाइ, नट्ठ-विणट्ठ-भट्ठे सि कदाइ, अज्ज न भवसि, नाहि ते ममाहितो सुहमत्थि।''

भगवान के प्रति गोशाल का पुनः आक्रोश—

७९. तदनन्तर मंखलिपुत्र गोशाल श्रमण भगवान महावीर के कथन को सुनकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, प्रचंड होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए श्रमण भगवान महावीर का अनेक प्रकार के अनुचित एवं आक्रोशपूर्ण वचनों से तिरस्कार किया, अनेक प्रकार के उद्घर्षणा (पराभव) युक्त वचनों से अपमान किया, अनेक प्रकार के कर्कश वचनों के द्वारा निर्भर्त्सन किया, अनेक प्रकार के कठोर वचनों के द्वारा उनको धमकी चेतावनी दी। धमकी देकर इस प्रकार कहा—'कदाचित् आज तू नष्ट हुआ, कदाचित् आज तू विनष्ट हुआ, कदाचित् आज तू भ्रष्ट हुआ, कदाचित् आज तू नष्ट, विनष्ट, भ्रष्ट हुआ, आज तू जीवित नहीं रह सकता, मेरे द्वारा तेरा शुभ होने वाला नहीं है।'

गोसालेण सव्वाणुभूतिमुणिस्स भासरासीकरणं—

८०. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए पगइउवसंते पगइपयणुकोह-माण-माया-लोभे मिउमद्दवसंपन्ने अल्लीणे विणीए धम्मायरियाणुरागेणं एयमट्ठं असद्दहमाणे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"जे वि ताव गोसाला ! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति सक्कारेति सम्माणेति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति, किमंग पुण तुमं गोसाला ! भगवया चेव पव्वाविए, भगवया चेव मुण्डाविए, भगवया चेव सेहाविए, भगवया चेव सिक्खाविए, भगवया चेव बहुस्सुतीकए, भगवओ चेव मिच्छं विप्पडिवन्ने ? तं मा एवं गोसाला ! नारिहसि गोसाला ! सच्चेव ते सा छाया नो अण्णा।"

गोशाल द्वारा सर्वानुभूति मुनि का भस्म राशिकरण—

८०. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर का अन्तेवासी पूर्वदेश में उत्पन्न, प्रकृति से भद्र, प्रकृति (स्वभाव) से शांत, प्रकृति से कृश क्रोध-मान-माया-लोभ युक्त, मृदु-मार्दव सम्पन्न, विनयशील, सर्वानुभूति नामक अनगार अपने धर्माचार्य के अनुराग से गोशालक की इस बात पर अश्रद्धा करता हुआ अपने आसन से उठा और उठकर जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था, वहाँ आया, आकर गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—"हे गोशालक ! जो भी व्यक्ति तथारूप श्रमण अथवा माहन से एक भी आर्य धार्मिक सुवचन सुनता है वह भी उनको वंदन-नमस्कार करता है, सत्कार—सम्मान करता है तथा कल्याण-मंगल-देव एवं चैत्य-रूप मानकर पर्युपासना करता है, तो फिर हे गोशालक ! तेरे लिये तो कहना ही क्या है ? क्योंकि भगवान ने तुझे दीक्षा दी, भगवान ने तुझे मुण्डित किया, भगवान ने तुझे व्रत-समाचारी सिखाई, भगवान ने तुझे शिक्षा दी, भगवान ने तुझे बहुश्रुत वेत्ता बनाया, किन्तु इतने पर भी तू भगवान के प्रतिकूल प्रवृत्ति कर रहा है। हे गोशालक ! तू ऐसा मत कर, हे गोशालक ! तू ऐसा करने के योग्य नहीं है, तू वही मंखलिपुत्र गोशालक है, दूसरा नहीं है।"

८१. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूतिणा अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सव्वाणुभूतिं अणगारं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेति।

८१. तत्पश्चात् सर्वानुभूति अनगार की बात सुनकर मंखलिपुत्र गोशाल क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित हुआ और चंडिकावत् रौद्ररूप धारण कर दाँतों को मिसमिसाते हुए अपने तप-तेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगार को जला कर भस्म कर दिया।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सव्वाणुभूतिं अणगारं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेत्ता दोच्चं वि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ,-जाव- (सु. ७६) सुहमत्थि।

इसके बाद अपने तपस्तेज के द्वारा एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह सर्वानुभूति अनगार को जलाकर भस्म करके गोशाल मंखलिपुत्र दूसरी बार पुनः श्रमण भगवान महावीर का अनेक प्रकार के आक्रोश वचनों से तिरस्कार करने लगा—यावत्—शुभ होने वाला नहीं है।

गोसालेण सुनक्खत्तमुणिस्स परितावणं—

८२. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी कोसलजाणवए सुनक्खत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए धम्मायरियाणुरागेणं-जाव-(सु. ८०) सच्चेव ते सा छाया नो अण्णा।

गोशाल द्वारा सुनक्षत्र मुनि का परितापन—

८२. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के अन्तेवासी कोशलदेश के निवासी प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत सुनक्षत्र नामक अनगार ने अपने धर्माचार्य के अनुराग से उस मंखलिपुत्र गोशाल से कहा—यावत्—हे गोशालक ! तू वही है, तेरी वही प्रकृति है, तू अन्य नहीं है।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सुनक्खत्तेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सुनक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परितावेइ।

तब सुनक्षत्र अनगार की इस बात को सुनकर उस गोशाल मंखलिपुत्र ने क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् रौद्ररूप धारण कर दाँतों को मिसमिसाते हुए अपने तपस्तेज से सुनक्षत्र अनगार को परितापित किया—जलाया।

तए णं से सुनक्खत्ते अणगारे गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं

तदनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र के तप-तेज से परितापित हुआ

तेएणं परितावियए समाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ, नमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुभेति, आरुभेत्ता समणा य समणीओ य खामेइ, खामेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते आणुपुव्वीए कालगए।

वह सुनक्षत्र अनगार जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आया, आकर, श्रमण भगवान महावीर को तीन बार वंदना नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके स्वयं ही पंच महाव्रतों का उच्चारण किया—धारण किया, धारण करके श्रमण और श्रमणी वृन्द से क्षमा याचना की—क्षमा मांगी—खमाया और फिर आलोचना प्रतिक्रमण करके समाधि प्राप्त कर अनुक्रम से कालधर्म को प्राप्त हुआ।

गोसालं पइ भगवओ अणुसट्ठी, पडिकुद्धगोसालमुक्केण य निप्फलेण तेएण गोसालस्सेव अणुडहणं—

८३. तए णं गोसाले मंखलिपुत्ते सुनक्खत्तं अणगारं तवेणं तेएणं परितावेत्ता तच्चं पि समणं भगवं महावीरं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ,-जाव-(सु. ७६) सुहमत्थि।

गोशाल को भगवान की शिक्षा, प्रतिक्रुद्ध गोशाल द्वारा मुक्त निष्फल तेज से गोशालक का ही अनुदहन—

८३. इसके बाद उस गोशाल मंखलिपुत्र ने अपने तप: तेज से सुनक्षत्र अनगार को परितापित करके तीसरी बार भी अनेक प्रकार के आक्रोश पूर्ण वचनों से श्रमण भगवान महावीर का तिरस्कार किया—यावत् शुभ होने वाला नहीं है, ऐसा कहा।

तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—"जे वि ताव गोसाला! तहारूवस्स समणस्स वा माहणस्स वा अंतियं एगमवि आरियं धम्मियं सुवयणं निसामेति, से वि ताव वंदति नमंसति सक्कारेति सम्माणेति कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासति, किमंग पुण गोसाला! तुमं मए चेव पव्वाविए, मए चेव मुण्डाविए, मए चेव सेहाविए, मए चेव सिक्खाविए, मए चेव बहुस्सुतीकए, ममं चेव मिच्छं विप्पडिवन्ने? तं मा एवं गोसाला! नारिहासि गोसाला! सच्चेव ते सा छाया नो अण्णा।"

तब श्रमण भगवान महावीर ने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—हे गोशाल! तथारूप श्रमण अथवा माहण से जो कोई भी एक धार्मिक आर्य सुवचन सुनता है, वह भी उसको वंदन-नमस्कार करता है, उसका सत्कार—सम्मान करता है तथा कल्याण-मंगलदेव एवं चैत्य रूप मानकर उसकी पर्युपासना करता है तो फिर हे गोशाला! तेरे लिये तो कहना ही क्या है? मैंने तुझे प्रव्रजित किया है, मैंने ही मुण्डित किया है, मैंने ही तुझे सिखाया है, मैंने ही तुझे शिक्षा दी है, मैंने ही तुझे बहुश्रुत विज्ञ बनाया है, लेकिन इसके बाद भी मेरे प्रतिकूल प्रवृत्ति कर रहा है? हे गोशाल! तू ऐसा मत कर, हे गोशाल! ऐसा करना तुझे योग्य नहीं है, तू वही है—तेरी वही प्रकृति है, तू अन्य नहीं है।"

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तेयासमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहण्णित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्कइ; पच्चोसक्कित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरिति—से जहानामए वाउक्कलिया इ वा वायमंडलिया इ वा सेलंसि वा कुड्डंसि वा थंभंसि वा थूभंसि वा आवारिज्जमाणी वा निवारिज्जमाणी वा सा णं तत्थ नो कमति नो पक्कमिति एवामेव गोसालस्स वि मंखलिपुत्तस्स तवे तेए समणस्स भगवओ महावीरस्स वहाए सरीरगंसि निसिट्ठे समाणे से णं तत्थ नो कमति नो पक्कमति अंचियंचिं करेति, करेत्ता आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता उड्ढं वेहासं उप्पइए, से णं तओ पडिहए पडिनियत्तमाणे तमेव गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं अणुडहमाणे-अणुडहमाणे अंतो-अंतो अणुप्पविट्ठे।

तत्पश्चात् उस गोशाल मंखलिपुत्र ने श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर अत्यन्त क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और चण्डिकावत् रौद्र हो दाँतों को मिसमिसाते हुए तैजस् समुद्घात किया, समुद्घात करके सात-आठ डग पीछे हटा, पीछे हट कर श्रमण भगवान महावीर का वध करने के लिये अपने शरीर से तेजोलेश्या निकाली, किन्तु जिस प्रकार वातोत्कलिका (ठहर-ठहर कर चलने वाली वायु) और मंडलाकार वायु पर्वत, दीवाल स्तम्भ या स्तूप द्वारा स्खलित एवं निवृत्त हो जाता है, किन्तु उन्हें गिराने में समर्थ, विशेष समर्थ नहीं हो पाती है, उसी प्रकार श्रमण भगवान महावीर का वध करने के लिये गोशाल मंखलिपुत्र द्वारा अपने शरीर से बाहर निकाली हुई तपोजन्य तेजोलेश्या भगवान को क्षति पहुँचाने में समर्थ, विशेष समर्थ नहीं हुई, किन्तु गमनागमन करने लगी, फिर उसने आदक्षिण, प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके आकाश में ऊँची उछली और फिर वहाँ से प्रतिहत हो नीचे गिरती हुई वह तेजोलेश्या उसी गोशाल मंखलिपुत्र के शरीर को जलाती हुई अन्दर शरीर में प्रविष्ट हो गई।

गोसाल-महावीराणं परोप्परं मरणकालमज्जायानिरूवणं—

८४. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे समणं भगवं महावीरं एवं वयासी—तुमं णं आउसो कासवा ! मम तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्ससि।

गोशाल—महावीर का परस्पर मरणकाल मर्यादा का निरूपण—

८४. इसके बाद गोशाल मंखलिपुत्र ने अपनी ही तेजोलेश्या से पराभव को प्राप्त हो कर श्रमण भगवान महावीर से इस प्रकार कहा—"हे आयुष्मन् काश्यप ! मेरे तप-तेज से पराभव को प्राप्त होता हुआ तू पित्त ज्वर युक्त शरीर वाला होकर छह मास में ही दाह की पीड़ा से छद्मस्थ अवस्था में ही काल करेगा मर जायेगा।

तए णं समणे भगवं महावीरे गोसालं मंखलिपुत्तं एवं वयासी—नो खलु अहं गोसाला ! तव तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सामि, अहं णं अण्णाइं सोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि। तुमं णं गोसाला ! अप्पणा चेव सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्ससि।

तब श्रमण भगवान महावीर ने गोशाल मंखलिपुत्र से इस प्रकार कहा—गोशालक ! मैं तेरे तप के तेज से पराभव को प्राप्त होकर पित्त ज्वराक्रान्त शरीर हो, दाह की पीड़ा से पीड़ित हो छह मास में ही छद्मस्थ अवस्था में काल नहीं करूँगा, किन्तु दूसरे सोलह वर्ष तक गंध हस्ती के समान जिनपने में विचरूँगा, किन्तु हे गोशाला ! तू स्वयं ही अपने तप-तेज से पराभव को प्राप्त कर सात रात्रि के अन्त में पित्त-ज्वर से ग्रस्त शरीर वाला होता हुआ दाह वेदना से पीड़ित हो छद्मस्थ अवस्था में ही कालगत हो जायेगा।

सावत्थीए जणपवादो—

८५. तए णं सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ-जाव-एवं परूवेइ—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सावत्थीए नगरीए बहिया कोट्ठए चेइए दुवे जिणा संलवंति—एगे वदति तुमं पुव्विं कालं करेस्ससि, एगे वदति तुमं पुव्विं कालं करेस्ससि। तत्थ णं के पुण सम्मावादी ? के मिच्छावादी ?"

श्रावस्ती में जनप्रवाद—

८५. इसके पश्चात् श्रावस्ती नगरी के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, राजमार्ग और सामान्य मार्ग आदि में बहुत से मनुष्य आपस में इस प्रकार कहने लगे—यावत्—प्ररूपणा करने लगे—'हे देवानुप्रियो ! श्रावस्ती नगरी के बाहर कोष्ठक चैत्य में दो जिन परस्पर संलाप करते हैं—उनमें से एक इस प्रकार कहता है कि तू पहले काल करेगा और एक कहता है तू पहले मर जायेगा। इन दोनों में न मालूम कौन सत्यवादी है और कौन मिथ्यावादी है ?'

तत्थ णं जे से अहप्पहाणे जणे से वदति—"समणे भगवं महावीरे सम्मावादी, गोसाले मंखलिपुत्ते मिच्छावादी।"

उन लोगों में जो प्रधान-प्रमुख मनुष्य-जन थे वे कहते कि 'श्रमण भगवान महावीर सम्यग्वादी—सत्यवादी हैं और गोशाल मंखलिपुत्र मिथ्यावादी' है।'

भगवंताऽऽदिट्ठनिग्गंथेहिं गोसालं पइ पडिचोयणा—

८६. अज्जो ! त्ति समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी "अज्जो ! से जहानामए तणरासी इ वा कट्ठरासी इ वा पत्तरासी इ वा तयारासी इ वा तुसरासी इ वा भुसरासी इ वा गोमयरासी इ वा अवकररासी इ वा अगणिझामिए अगणिझूसिए अगणिपरिणामिए हयतेए गयतेए नट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए जाए, एवामेव गोसाले मंखलिपुत्ते ममं वहाए सरीरगंसि तेयं निसिरित्ता हयतेए गयतेए नट्ठतेए भट्ठतेए लुत्ततेए विणट्ठतेए जाए, तं छंदेणं अज्जो ! तुब्भे गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएह, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेह, धम्मि-

भगवंतादिष्ट निर्ग्रन्थों द्वारा गोशाल की प्रतिबोदना—

८६. आर्यो ! इस प्रकार श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित कर कहा—'हे आर्य पुरुषो ! जिस प्रकार तृणराशि, काष्ठराशि, पत्रराशि, त्वचाराशि, तुषराशि, भूसाराशि, गोमयराशि और अवकर राशि (कचरा) अग्नि से नष्ट, अग्नि से दग्ध एवं अग्नि से परिणामान्तर को प्राप्त होती हुई हततेज, गततेज, नष्टतेज, भ्रष्टतेज, लुप्ततेज, विनष्टतेज हो जाती है, इसी प्रकार मंखलिपुत्र गोशाल भी मेरा वध करने के लिये शरीर से तेजोलेश्या निकालकर हततेज, गततेज, नष्टतेज, भ्रष्ट तेज, लुप्ततेज, विनष्टतेज वाला हो गया है, अतएव हे आर्यो ! अब तुम अपनी इच्छानुसार गोशाल मंखलिपुत्र से धर्मचर्चा करो,

एणं पडोयारेणं पडोयारेह, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं करेह।"

तए णं ते समणा निग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएंति, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारेंति, धम्मिएणं पडोयारेणं पडोयारेंति, अट्ठेहि य हेऊहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं करेंति।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते समणेहिं निग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोइज्जमाणे, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणे, धम्मिएणं पडोयारेण य पडोयारेज्जमाणे, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणे कीरमाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे नो संचाएति समणाणं निग्गंथाणं सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाएत्तए, छविच्छेदं वा करेत्तए।

धार्मिक प्रतिसारणा करो, धार्मिक प्रत्युपचार विचार-विवाद करो और अर्थ हेतु प्रश्न—व्याकरण और कारणों के द्वारा पूछे गये प्रश्नों का उत्तर न बन सके इस प्रकार उसे निरुत्तर करो।"

तत्पश्चात् उन श्रमण निर्ग्रन्थों ने श्रमण भगवान महावीर की इस आज्ञा—अनुमति को सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था, वहाँ आये, वहाँ आकर गोशाल मंखलिपुत्र के साथ धार्मिक प्रतिचोदना करने लगे तथा अर्थ, हेतु कारण द्वारा प्रश्नों का विवेचन करने के अयोग्य—निरुत्तर कर दिया।

तब वह गोशाल मंखलिपुत्र श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा धार्मिक प्रतिवेदना से प्रतिबोधित, धार्मिक प्रतिसारणा से प्रतिसारित धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युपचारित, अर्थ, हेतु, प्रश्न व्याकरण कारण द्वारा निरुत्तरित किये जाने पर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् रौद्र हो दाँतों को मिसमिसाते हुए भी श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर में कुछ भी पीड़ा, उपद्रव-बाधा, उत्पन्न करने अथवा अंग भंग करने में समर्थ नहीं हुआ।

गोसालसंघस्स भेदो—

८७. तए णं ते आजीविया थेरा गोसालं मंखलिपुत्तं समणेहिं निग्गंथेहिं धम्मियाए पडिचोयणाए पडिचोएज्जमाणं, धम्मियाए पडिसारणाए पडिसारिज्जमाणं, धम्मिएणं पडोयारेण य पडोयारेज्जमाणं, अट्ठेहि य हेऊहि य पसिणेहि य वागरणेहि य कारणेहि य निप्पट्ठपसिणवागरणं कीरमाणं, आसुरुत्तं रुट्ठं कुवियं चंडिक्कियं मिसिमिसेमाणं समणाणं निग्गंथाणं सरीरगस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा छविच्छेदं वा करेमाणं पासंति, पासित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंतियाओ आयाए अवक्कमंति, अवक्कमित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेंति, करेत्ता वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता समणं भगवं महावीरं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

अत्थेगतिया आजीविया थेरा गोसालं चेव मंखलिपुत्तं उवसंपज्जित्ताणं विहरंति।

गोशाल संघ का भेद—

८७. तत्पश्चात् कुछ आजीविक स्थविरों ने श्रमण निर्ग्रन्थों द्वारा धार्मिक प्रतिवोदना से प्रतिबोधित, धार्मिक प्रतिसारणा से प्रतिसारित, धार्मिक प्रत्युपचार से प्रत्युपचारित एवं अर्थ, हेतु, प्रश्न, व्याकरण और कारण द्वारा मंखलिपुत्र गोशाल को निरुत्तर किया जाता हुआ तथा तथा क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् प्रचण्ड एवं दाँतों को मिसमिसाते हुए श्रमण निर्ग्रन्थों के शरीर में कुछ भी पीड़ा, बाधा और छविच्छेद न करता हुआ देखा, देखकर वे गोशाल मंखलिपुत्र के आश्रय से निकले, निकलकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वन्दन-नमस्कार करके श्रमण भगवान महावीर का आश्रय लेकर विचरने लगे।

कुछ एक आजीवक स्थविर मंखलिपुत्र गोशाल का आश्रय लेकर ही विचरने लगे।

अंतोसमुब्भूयदाहस्स गोसालस्स मज्जपाणाइयाओ चेट्ठाओ—

८८. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते जस्सट्ठाए हव्वमागए तमट्ठं असाहेमाणे, रुंदाइं पलोएमाणे, दीहुण्हाइं नीससमाणे, दाढियाए लोमाइं लुंचमाणे अवडुं कंडूयमाणे, पुयलिं पप्फोडेमाणे, हत्थे विणिद्धुणमाणे, दोहि वि पाएहिं भूमिं कोट्टेमाणे हा हा अहो! हओहमंसि त्ति कट्टु समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ

समुद्भूतदाह वाले गोशाल की मद्यपान आदि चेष्टायें—

८८. तत्पश्चात् गोशाल मंखलिपुत्र जिस कार्य को सिद्ध करने के लिये आया था, उस अर्थ को सिद्ध न करता हुआ, चारों ओर दिशाओं में लम्बी दृष्टि डालता हुआ, लम्बी लम्बी दीर्घ और गरम-गरम निःश्वास छोड़ता हुआ दाढ़ी के बालों को नोचता हुआ, गर्दन के पीछे के भाग को बार बार खुजाता हुआ, पुत-प्रदेश (कमर के निचले भाग कूल्हे) को प्रस्फोटित (ठोकता) करता हुआ, हाथों को हिलाता हुआ, और दोनों पैरों को भूमि पर पटकता हुआ 'हा-हा! अरे! मैं मर गया', इस प्रकार कह

कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सावत्थी नगरी, जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए, मज्जपाणगं पियमाणे, अभिक्खणं गायमाणे, अभिक्खणं नच्चमाणे, अभिक्खणं हालाहलाए कुम्भकारीए अंजलिकम्मं करेमाणे, सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचिण-उदएणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ।

कर श्रमण भगवान महावीर के पास से कोष्ठक चैत्य से निकला, निकलकर जहाँ श्रावस्ती नगरी थी, जहाँ हालाहला कुम्भारिन का कुम्भकारापण था, वहाँ आया, आकर हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में आम की गुठली हाथ में लेकर मद्यपान करता हुआ, बार-बार गाता हुआ, बार बार नाचता हुआ, बार बार हालाहला कुम्भारिन को अंजलि करता हुआ, मिट्टी मिश्रित शीतल पानी का शरीर पर सिंचन करता हुआ विचरने लगा।

भगवंतपरूवियं गोसालतेयलेस्सासामत्थपुव्वं गोसाल सिद्धंतसरूवं

भगवान द्वारा गोशाल तेजोलेश्या की सामर्थ्य पूर्वक गोशाल-सिद्धान्त की स्वरूप प्ररूपणा—

८६. अज्जोत्ति ! ति समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेत्ता एवं वयासी – "जावतिए णं अज्जो ! गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं ममं वहाए सरीरगंसि तेये निसट्ठे से णं अलाहि पज्जत्ते सोलसण्हं जणवयाणं, तं जहा—१. अंगाणं २. वंगाणं ३. मगहाणं ४. मलयाणं ५. मालवगाणं ६. अच्छाणं ७. वच्छाणं ८. कोट्ठाणं ९. पाढाणं १०. लाढाणं ११. वज्जीणं १२. मोलीणं १३. कासीणं १४. कोसलाणं १५. अबाहाणं १६. सुंभुत्तराणं घाताए वहाए उच्छादणयाए भासीकरणाए।"

८६. आर्यो ! श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित—सम्बोधित कर इस प्रकार कहा—'हे आर्यो ! गोशाल मंखलिपुत्र ने मेरा वध करने के लिये अपने शरीर से जो तेज निकाला था वह निम्नलिखित सोलह जनपदों—देशों को नष्ट करने—उन का घात, वध उच्छेदन और भस्म करने में समर्थ था, यथा (१) अंग (२) बंग (३) मगध (४) मलय (५) मालव (६) अच्छ (७) वत्स (८) कौत्स (९) पाट (१०) लाट (११) बज्ज (१२) मौली (१३) काशी (१४) कौशल (१५) अबाध और (१६) संभुक्तर।

"जं पि य अज्जो ! गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए, मज्जपाणं पियमाणे, अभिक्खणं गायमाणे, अभिक्खणं नच्चमाणे, अभिक्खणं हालाहलाए कुम्भकारीए अंजलिकम्मं करेमाणे विहरइ, तस्स वि य णं वज्जस्स पच्छादणट्ठयाए इमाइं अट्ठ चरिमाइं पण्णवेइ, तं जहा—

हे आर्यो ! यद्यपि गोशाल मंखलिपुत्र हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में आम्रफल (आम की गुठली) हाथ में लेकर मद्य पीता हुआ, बार बार गाता हुआ, बार बार नाचता हुआ और बारंबार हालाहला कुम्भारिन को अंजलिकर्म करता हुआ विचरण करता है तथापि अपने दोषों को ढकने के लिये वह इन आठ चरम वस्तुओं की प्ररूपणा करता है, यथा—

१. चरिमे पाणे २. चरिमे गेये ३. चरिमे नट्टे ४. चरिमे अंजलिकम्मे ५. चरिमे पोक्खलसंवट्टए महामेहे ६. चरिमे सेयणए गंधहत्थी ७. चरिमे महासिलाकंटए संगामे ८. अहं च णं इमीसे ओसप्पिणिसमाए चउवीसाए तित्थगराणं चरिमे तित्थगरे सिज्झिस्सं -जाव-अंतं करेस्सं।"

(१) चरमपान (२) चरमगान (३) चरम नाट्य (४) चरम अंजलिकर्म (५) चरम पुष्कल संवर्तक महामेघ (६) चरम सेचनक गंधहस्ती (७) चरम महाशिला कंटक संग्राम और (८) मैं इस अवसर्पिणी काल में चौबीस तीर्थंकरों में से चरम तीर्थंकर रूप में सिद्ध होऊँगा—यावत् समस्त दुःखों का अन्त करूँगा।'

"जं पि य अज्जो ! गोसाले मंखलिपुत्ते सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचणि उदएणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ, तस्स वि णं वज्जस्स पच्छादणट्ठयाए इमाइं चत्तारि पाणगाइं चत्तारि अपाणगाइं पण्णवेति।"

'हे आर्यो ! यद्यपि मंखलिपुत्र गोशाल मिट्टी के पात्र में रहे हुए मिट्टी मिश्रित शीतल पानी द्वारा अपने शरीर का सिंचन करता हुआ विचरता है, किन्तु इस पाप को छिपाने के लिये चार प्रकार के पानक (पीने योग्य) और चार प्रकार के अपानक (पीने के अयोग्य) की प्ररूपणा करता है।'

"से किं तं पाणए ?"

"पाणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१. गोपुट्ठए २. हत्थमद्दियए ३. आतवतत्तए ४. सिलापब्भट्ठए। सेत्तं पाणए।"

प्रश्न—'वह पानी कितने प्रकार का कहा गया है ?'

उत्तर—'पानी चार प्रकार का कहा है—यथा—(१) गाय की पीठ से गिरा हुआ (२) हाथ से मसला हुआ (३) सूर्य के ताप से तपा हुआ और (४) शिला से गिरा हुआ। यह चार प्रकार का पानी है।

"से किं तं अपाणए ?"

प्रश्न—अपानक कितने प्रकार का है ?

"अपाणए चउव्विहे पण्णत्ते, तं जहा—१. थालपाणए २. तयापाणए ३. सिंबलिपाणए ४. सुद्धपाणए।"

"से किं तं थालपाणए ?"

"थालपाणए—जे णं दाथालगं वा दावारगं वा दाकुम्भगं वा दाकलसं वा सीतलगं उल्लगं हत्थेहिं परामुसइ, न य पाणियं पियइ। सेत्तं थालपाणए।"

"से किं तं तयापाणए ?"

"तयापाणए—जे णं अंबं वा अंबाडगं वा जहा पओगपदे-जाव-बोरं वा तेंदुरुयं वा तरुणगं आमगं आसगंसि आवीलेति वा पवीलेति वा, न य पाणियं पियइ। सेत्तं तयापाणए।"

"से किं तं सिंबलिपाणए ?"

"सिंबलिपाणए—जे णं कलसंगलियं वा मुग्गसंगलियं वा माससंगलियं वा सिंबलिसंगलियं वा तरुणियं आमियं आसगंसि आवीलेति वा पवीलेति वा, न य पाणियं पियति। सेत्तं सिंबलिपाणए।"

"से किं तं सुद्धपाणए ?"

"सुद्धपाणए जे णं छम्मासे सुद्धखाइमं खाइ—दो मासे पुढविसंथारोवगए, दो मासे कट्ठसंथारोवगए, दो मासे दब्भसंथारोवगए; तस्स णं बहुपडिपुण्णाण छण्हं मासाणं अंतिमराईए इमे दो देवा महिड्ढिया-जाव-महेसक्खा अंतियं पाउब्भवंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य। तए णं ते देवा सीयलएहिं उल्लएहिं हत्थेहिं गायाइं परामुसंति, जे णं ते देवे साइज्जति, से णं आसीविसत्ताए कम्मं पकरेति, जे णं ते देवे नो साइज्जति तस्स णं तंसि सरीरगंसि अगणिकाए संभवति, से णं सएण तेएणं सरीरगं झामेति, झामेत्ता तओ पच्छा सिज्झति-जाव-अंतं करेति। सेत्तं सुद्धपाणए।"

उत्तर—अपानक चार प्रकार का कहा गया है, यथा—(१) स्थाल का पानी, (२) त्वचा (वृक्ष आदि की छाल) का पानी (३) सिम्बली (मटर आदि की फली) का पानी, और (४) शुद्ध पानी।'

प्रश्न—'स्थालपानी कितने प्रकार का कहा है ?'

उत्तर—पानी से भीगा हुआ स्थाल, पानी से भीगा वारक (मिट्टी का छोटा बर्तन) पानी से भीगा कुम्भ (बड़ा घड़ा) पानी से भीगा कलश का शीतल पानी, जिसका हाथ से स्पर्श करे परन्तु पानी पिये नहीं। यह स्थाल पानी कहा गया है।

प्रश्न—'त्वचा पानी किस प्रकार का होता है ?'

उत्तर—आम्र, अम्बाडग इत्यादि प्रज्ञापना के सोलहवें प्रयोग पद के अनुसार यावत्—बोर, तिन्दुरुक, तरुण (अपक्व) और कच्चे हों, उन्हें मुख में रखकर थोड़ा चूसें या विशेष रूप से चूसे परन्तु पानी पिये नहीं। वह त्वचा पानी कहा गया है।

प्रश्न—'सिम्बली पानी किस प्रकार का होता है ?'

उत्तर—'कलाय, मूंग, उड़द, सिम्बली की फली आदि अपक्व और कच्ची हों, उनको मुख में थोड़ा चबावे, विशेष चबावे, परन्तु उनका पानी नहीं पीये। यह सिम्बली पानी कहलाता है।'

प्रश्न—'शुद्ध पानी किस प्रकार का होता है ?'

उत्तर—जो छह महीने तक शुद्ध खादिम आहार खाता है, छह महीनों में से दो महिने तक पृथ्वी संस्तारक पर सोता है, दो मास लकड़ी के संस्तारक पर सोता है, और दो मास तक दर्भ के संस्तारक पर सोता है, इस प्रकार छह मास पूर्ण होने पर अन्तिम रात्रि में उसके पास महाऋद्धि सम्पन्न—यावत्—महा सुख वाले दो देव प्रगट होते हैं, यथा—पूर्णभद्र और मणिभद्र। वे देव शीतल और गीले हाथों से उसके शरीर के अवयवों का स्पर्श करते हैं, जो उन देवों की अनुमोदना करता है, वह आशीविष कर्म करता है और जो उन देवों की अनुमोदना नहीं करता है, उसके स्वयं के शरीर में अग्निकाय उत्पन्न हो जाती है, वह अग्निकाय अपने तेज द्वारा उसके शरीर को जलाती है, जलाकर उसके पश्चात् वह सिद्ध हो जाता है यावत् समस्त दुःखों का अन्त करता है। वह शुद्ध पानी कहलाता है।

आजीवियथेरेहिं अयंपुलस्स आजीवियउवासगत्ते थिरीकरणं अयंपुले-आजीविओवासए—

आजीविक स्थविरों द्वारा अयंपुल का आजीविक-उपासकत्व में स्थिरीकरण अयंपुल आजीविकोपासक

६०. तत्थ णं सावत्थीए नयरीए अयंपुले नामं आजीविओवासए परिवसइ—अड्ढे, जहा हालाहला-जाव-आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

६०. उस श्रावस्ती नगरी में अयंपुल नामक आजीविकोपासक रहता था। वह धनाढ्य था, हालाहला कुम्भारिन की तरह यावत्—आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करता हुआ विचरता था।

तए णं तस्स अयंपुलस्स आजीविओवासगस्स अण्णया कयाथि

तत्पश्चात् किसी एक दिन रात्रि के पिछले प्रहर में कुटुम्ब

पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था— "किंसंठिया णं हल्ला पण्णत्ता ?"

तए णं तस्स अयंपुलस्स आजीविओवासगस्स दोच्चं पि अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु ममं धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते उप्पन्ननाणदंसणधरे जिणे अरहा केवली सव्वण्णू सव्वदरिसी इहेव सावत्थीए नगरीए हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि आजीवियसंघसंपरिवुडे आजीवियसमएणं अप्पाणं भावेमाणे विहरइ, तं सेयं खलु मे कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते गोसालं मंखलिपुत्तं वंदित्ता-जाव-पज्जुवासित्ता इमं एयारूवं वागरणं वागरित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेति, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते ण्हाए कयबलिकम्मे-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरे साओ गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता पायविहारचारेणं सावत्थिं नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि अंबकूणगहत्थगयं मज्जपाणगं पीयमाणं अभिक्खणं गायमाणं, अभिक्खणं नच्चमाणं, अभिक्खणं हालाहलाए कुम्भकारीए अंजलिकम्मं करेमाणं सीयलएणं मट्टियापाणएणं आयंचणि-उदएणं गायाइं परिसिंचमाणं पासइ, पासित्ता लज्जिए विलिए विड्डे सणियं-सणियं पच्चोसक्कइ ।"

जागरणा करते हुए उस अयंपुल आजीविकोपासक के यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'हल्ला' नामक कीट विशेष का आकार कैसा होता है ?'

तत्पश्चात् उस अयंपुल आजीविकोपासक को दुबारा यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक गोशाल मंखलिपुत्र जो उत्पन्न ज्ञान, दर्शन के धारक हैं, जिन अर्हन्त केवली सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हैं और इसी श्रावस्ती नगरी में हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में आजीविक संघ से संपरिवृत होकर आजीविक सिद्धान्त से अपनी आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं, अतएव कल रात्रि को प्रभात रूप में रूपान्तरित होने—यावत्—सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर गोशाल मंखलिपुत्र को वंदन करके यावत्—पर्युपासना करके यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछना मेरे लिये श्रेयस्कर है ऐसा विचार किया', विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर को तेज सहित प्रकाशित होने पर स्नान और बलिकर्म करके—यावत्—मूल्यवान अल्प आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके वह अपने घर से निकला, निकलकर पैदल श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ हालाहला कुम्भारिन का कुम्भकारापण था, वहाँ आया, वहाँ आकर गोशाल मंखलिपुत्र को हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में आम की गुठली हाथ में लिये हुए मद्यपान करते हुए, बार बार गाते हुए, बार बार नाचते हुए, बार बार हालाहला कुम्भारिन को अंजलिकर्म करते हुए शीतल मिट्टी से मिश्रित पानी से शरीर को सींचते हुए देखा, देखकर लज्जित, उदास और व्रीडित (अधिक लज्जित) होता हुआ धीरे-धीरे पीछे हटने लगा ।'

९१. तए णं ते आजीविया थेरा अयंपुलं आजीवियोवासगं लज्जियं-जाव-पच्चोसक्कमाणं पासंति, पासित्ता एवं वयासी—"एहि ताव अयंपुला ! इतो ।"

तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए आजीवियथेरेहिं एवं वुत्ते समाणे जेणेव आजीविया थेरा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता आजीविए थेरे वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता नच्चासन्ने-जाव-पज्जुवासइ ।

अयंपुला ! त्ति आजीविया थेरा अयंपुलं आजीवियोवासगं एवं वयासी—"से नूणं ते अयंपुला ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"किंसंठिया णं हल्ला पण्णत्ता ?"

९१. तब उन आजीविक स्थविरों ने अयंपुल आजीविकोपासक को लज्जित—यावत्—पीछे हटते हुए देखकर इस प्रकार कहा—'हे अयंपुल ! यहाँ आओ ।'

वह अयंपुल आजीविकोपासक उन आजीविक स्थविरों के इस सम्बोधन को सुनकर जहाँ आजीविक स्थविर थे, वहाँ पहुँचा और पहुँचकर आजीविक स्थविरों को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके न अति निकट और न अति दूर स्थित होकर यावत्—पर्युपासना करने लगा ।

'हे अयंपुल ! इस प्रकार से सम्बोधित कर आजीविक स्थविरों ने अयंपुल आजीविकोपासक से यह कहा—'हे अयंपुल ! निश्चय ही आज पिछली रात्रि के समय कुटुम्ब चिंता में जागरण करते हुए तुम्हें यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि 'हल्ला' का संस्थान—आकार कैसा बताया है ?'

"तए णं तव अयंपुला ! दोच्चं पि अयमेयारूवे [illegible] सव्वं भाणियव्वं-जाव-सावत्थि-नगरिं मज्झंमज्झेणं जेणेव हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणे, जेणेव इहं तेणेव हव्वमागए। से नूणं ते अयंपुला ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि।"

"जं पि य अयंपुला ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणंसि अंबकूणगहत्थगए-जाव-अंजलिं करेमाणे विहरइ, तत्थ वि णं भगवं इमाइं अट्ठ चरिमाइं पण्णवेति, तं जहा — चरिमे पाणे-जाव-अंतं करेस्सति।"

"जं पि अयंपुला ! तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते सीयलएणं मट्टिया पाणएणं आयंचणि-उदएणं गायाइं परिसिंचमाणे विहरइ, तत्थ वि णं भगवं इमाइं चत्तारि पाणगाइं, चत्तारि अपाणगाइं पण्णवेति।"

"से किं तं पाणए ? पाणए-जाव-(सु. ८९) तओ पच्छा सिज्झति-जाव-अंतं करेति।"

"तं गच्छ णं तुमं अयंपुला ! एस चेव तव धम्मायरिए धम्मोवदेसए गोसाले मंखलिपुत्ते इमं एयारूवं वागरणं वागरेहिति।"

तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए आजीविएहिं थेरेहिं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स अंबकूणगएडावणट्ठयाए एगंतमंते संगारं कुव्वंति।

तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते आजीवियाणं थेराणं संगारं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता अंबकूणगं एगंतमंते एडेइ।

९२. तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए जेणेव गोसाले मंखलिपुत्ते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता गोसालं मंखलिपुत्तं तिक्खुत्तो -जाव-पज्जुवासति।

अयंपुला ! त्ति गोसाले मंखलिपुत्ते अयंपुलं आजीवियोवासगं एवं वयासी— "से नूणं अयंपुला ! पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि -जाव-जेणेव ममं अंतियं तेणेव हव्वमागए। से नूणं अयंपुला ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि।"

"तं नो खलु एस अंबकूणए, अंबचोयए णं एसे। किंसंठिया हल्ला पण्णत्ता ? वंसीमूलसंठिया हल्ला पण्णत्ता। वीणं वाएहि रे वीरगा ! वीणं वाएहि रे वीरगा !"

इसके बाद हे अयंपुल ! पुनः दूसरी बार तुम्हें यह और इस प्रकार का इत्यादि सब पूर्ववत् कहना—यावत्—श्रावस्ती नगरी के बीचोंबीच से होकर जहाँ हालाहला कुम्भारिन का कुम्भकारापण था वहाँ आये। तो अयंपुल ! यह बात सत्य है ?'

'हाँ, सत्य है।'

हे अयंपुल ! यद्यपि तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक गोशाल मंखलिपुत्र हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण में आम्रफल को हाथ में लेकर—यावत्—अंजलि करते हुए विचरण कर रहे हैं तथापि भगवान ने इन आठ चरमों की प्ररूपणा की है यथा—चरम पान—यावत्—अन्त करूँगा।'

यद्यपि हे अयंपुल ! तुम्हारे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक गोशाल मंखलिपुत्र शीतल मिट्टी मिश्रित पानी से अपने शरीर को सिंचित कर रहे है, किन्तु वहाँ भी भगवान ये चार पानक और चार अपानक प्ररूपित किये हैं।'

'वे पानी कितने हैं ? पानी चार प्रकार के हैं यावत् (सूत्र ८९) उसके पश्चात् सिद्ध होता है—यावत्—अन्त करता है।'

अतएव हे अयंपुल ! तुम जाओ और अपने धर्माचार्य धर्मोपदेशक मंखलिपुत्र गोशाल से यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछो।

तत्पश्चात् वह अयंपुल—आजीविकोपासक आजीविक स्थविरों की इस बात को सुनकर हर्षित—सन्तुष्ट हो अपने स्थान से उठा, उठकर जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था, उस ओर चलने के लिये उद्यत हुआ।

तब उन आजीविक स्थविरों ने गोशाल मंखलिपुत्र को आम्रफल को एकान्त स्थान में फेंकने—डालने का संकेत किया।

तब गोशाल मंखलिपुत्र ने आजीविक स्थविरों के संकेत को जानकर आम्रफल को एकान्त में फेंक दिया।

९२. इसके बाद अयंपुल आजीविकोपासक जहाँ गोशाल मंखलिपुत्र था, वहाँ आया, आकर गोशाल मंखलिपुत्र की तीन बार—यावत्—पर्युपासना करने लगा।

अयंपुल ! इस प्रकार सम्बोधित कर गोशाल मंखलिपुत्र ने अयंपुल आजीविकोपासक से इस प्रकार कहा—'अयंपुल ! तुम्हें आज पिछली रात के समय में—यावत्—जहाँ मैं था, वहाँ मेरे पास आये। तो हे अयंपुल ! क्या यह बात सत्य है ?

'हाँ, भगवन् ! यह बात सत्य है।'

'हे अयंपुल ! मेरे हाथ में आम की गुठली नहीं थी, किन्तु आम की छाल थी। तुझे यह जानने की इच्छा हुई कि हल्ला का संस्थान कैसा कहा है ? तो इसका उत्तर यह है कि हल्ला का संस्थान बांस के मूल के आकार जैसा कहा है। (इसके बाद उन्मादवश गोशालक प्रलाप करता है) हे वीरा ! वीणा बजाओ, हे वीरा! वीणा बजाओ।

६३. तए णं से अयंपुले आजीवियोवासए गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं इमं एयारूवं वागरणं वागरिए समाणे हट्ठतुट्ठ व चित्तमाणंदिए पीइमणे परमसोमणस्सिए हरिसवसविसप्पमाणहियए गोसालं मंखलिपुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता पसिणाइं पुच्छइ, पुच्छित्ता अट्ठाइं परियादियइ, परियादिइत्ता उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता गोसालं मंखलिपुत्तं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसं पाउब्भूए तामेव दिसं पडिगए।"

६३. तत्पश्चात् अयंपुल आजीविकोपासक ने गोशाल मंखलिपुत्र से यह और इस प्रकार का अपने प्रश्न का उत्तर सुनकर हृष्ट-तुष्ट, आनन्द चित्त, प्रसन्न, प्रीतिमना, परम सौमनस्क और हर्षातिरेक से विकसित हृदय हो गोशाल मंखलिपुत्र को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके प्रश्न पूछे, पूछकर अर्थ को ग्रहण किया, अर्थ को ग्रहण करके अपने आसन से उठा, उठकर गोशाल मंखलिपुत्र को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके जिस दिशा से आया था, वापस उसी ओर लौट गया।'

गोसालस्स अप्पणो मरणाणंतरं नीहरणनिद्देसो—

६४. तए णं से गोसाले मंखलिपुत्ते अप्पणो मरणं आभोएइ, आभोएत्ता आजीविए थेरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ममं कालगयं जाणित्ता सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेह, ण्हाणेत्ता पम्हलसुकुमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेह, लूहेत्ता सरसेणं गोसीसचंदणेणं गायाइं अणुलिंपह, अणुलिंपित्ता महरिहं हंसलक्खणं पडसाडगं नियंसेह, नियंसेत्ता सव्वालंकारविभूसियं करेह, करेत्ता पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेह, दुरुहेत्ता सावत्थीए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वदह—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरित्ता इमीसे ओसप्पिणीए चउवीसाए तित्थगराणं चरिमे तित्थगरे, सिद्धे-जाव-सव्वदुक्खप्पहीणे—इड्ढि-सक्कारसमुदएणं मम सरीरगस्स नीहरणं करेह।"

गोशाल का अपने मरणानन्तर नीहरण निर्देश—

६४. तदनन्तर गोशाल मंखलिपुत्र ने अपना मरण (काल) निकट जाना, जानकर आजीविक स्थविरों को अपने पास बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो ! मुझे कालगत जानकर सुगन्धित गन्धोदक से स्नान कराना, पद्म के समान सुकुमाल गन्ध—काषायिक वस्त्र से मेरे शरीर को पोंछना, पोंछकर सरस गोशीर्ष चन्दन से मेरे शरीर का विलेपन करना, विलेपन करके महामूल्यवान हंस के जैसा श्वेत धवल पटशाटक पहनाना, पहनाकर फिर समस्त अलंकारों से विभूषित करना, विभूषित करके हजार पुरुषों द्वारा वहन की जाने वाली शिविका में बिठाना, बिठाकर श्रावस्ती नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों में जोर-जोर से उच्चस्वर से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहना— 'हे देवानुप्रियो ! गोशाल मंखलिपुत्र जिन, जिनप्रलापी, अर्हन्त, अर्हतप्रलापी, केवली, केवलीप्रलापी, सर्वज्ञ, सर्वज्ञप्रलापी, जिन, जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरण कर इस अवसर्पिणी काल के चौबीस तीर्थंकरों में से अन्तिम तीर्थंकर होकर सिद्ध हुआ—यावत्—समस्त दुःखों से रहित हुआ, इस प्रकार ऋद्धि, सत्कार और समुदय के साथ मेरे शरीर का नीहरण करना।'

तए णं ते आजीविया थेरा गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

तब उन आजीविक स्थविरों ने मंखलिपुत्र गोशाल की इस बात को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

गोसालस्स सम्मत्तपरिणामपुव्वं कालधम्मे—

६५. तए णं तस्स गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सत्त रत्तंसि परिणममाणंसि पडिलद्ध-सम्मत्तस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"नो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी, जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरिते अहं णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए समणमारए समणपडिणीए आयरिय-उवज्झायाणं अयसकारए अवण्णकारए अकित्तिकारए बहूहिं असब्भावुब्भावणाहिं मिच्छ-

गोशाल का सम्यक्त्व परिणाम पूर्वक कालधर्म—

६५. इसके बाद जब सातवीं रात्रि व्यतीत हो रही थी तब उस गोशाल मंखलिपुत्र को सम्यक्त्व प्राप्ति होने पर यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक विचार—यावत्—संकल्प समुत्पन्न हुआ— 'यथार्थतः मैं जिन नहीं हूँ, तथापि मैं जिनप्रलापी, अर्हत नहीं, अर्हतप्रलापी, केवली नहीं केवलीप्रलापी, सर्वज्ञ नहीं सर्वज्ञ प्रलापी, जिन और जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरा हूँ; मैं गोशाल मंखलिपुत्र ही हूँ, और श्रमणों का घातक, श्रमणों को मारने वाला, श्रमणों का प्रत्यनीक (विरोधी) आचार्य उपाध्याय का अपयश करने वाला, अवर्णवाद करने वाला और अपकीर्ति करने वाला हूँ, मैं अत्यधिक असद्भावनापूर्ण मिथ्याभिनिवेश से

लाभिनिवेसेहिं य अप्पाणं वा परं वा तदुभयं वा वुग्गाहेमाणे वुप्पाएमाणे विहरित्ता सएणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो सत्तरत्तस्स पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी, अरहा अरहप्पलावी, केवली केवलिप्पलावी, सव्वण्णू सव्वण्णुप्पलावी जिणे जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ।

अपने आपको, दूसरों को तथा स्व-पर उभय को व्युद्ग (भ्रान्त) करता हुआ, व्युत्पादित (मिथ्यात्वयुक्त) करता विचरा हूँ, अपनी ही तेजोलेश्या से पराभूत होकर पित्तज्व व्याप्त और दाह से जलता हुआ—छद्मस्थ अवस्था में ही रात्रि के अन्त में काल करूँगा। वास्तव में श्रमण भग महावीर जिन हैं और जिनप्रलापी हैं, अर्हंत और अर्हंत प्र हैं, केवली और केवलीप्रलापी हैं, सर्वज्ञ और सर्वज्ञप्रलापी जिन और जिन शब्द का प्रकाश करते हुए विचरते हैं।'

एवं संपेहेति, संपेहेत्ता आजीविए थेरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता उच्चावय-सवह-साविए पकरेति, पकरेत्ता एवं वयासी "नो खलु अहं जिणे जिणप्पलावी-जाव-पगासेमाणे विहरिए। अहं णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए-जाव-दाहवक्कंतीए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी-जाव-जिणसद्दं पगासेमाणे विहरइ, तं तुब्भं णं देवाणुप्पिया! ममं कालगयं जाणित्ता वामे पाए सुम्बेणं बंधेह, बंधेत्ता तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुभेह, उट्ठुभेत्ता सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसे आकड्ढ-विकड्ढि करेमाणा महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वदह—'नो खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-विहरिए। एस णं गोसाले चेव मंखलिपुत्ते समणघायए-जाव-छउमत्थे चेव कालगए। समणे भगवं महावीरे जिणे जिणप्पलावी-जाव-विहरइ।' महया अणिड्ढी-असक्कारसमुदएणं ममं सरीरगस्स नीहरणं करेज्जाह"—एवं वदित्ता कालगए।

इस प्रकार का विचार किया और विचार करके आजी स्थविरों को बुलाया, बुलाकर अनेक प्रकार की शपथ दिल कहा—मैं वास्तव में जिन और जिनप्रलापी नहीं हूँ- यावत् जिन शब्द का प्रकाश करता हुआ विचरा हूँ। मैं तो मंखलि गोशाल हूँ। मैं श्रमणों का घात करने वाला, श्रमणों को म वाला, श्रमणों का प्रत्यनीक हूँ—यावत् दाह से जलता हु छद्मस्थ अवस्था में ही काल करूँगा। श्रमण भगवान महा जिन और जिनप्रलापी हैं—यावत् जिन शब्द को प्रकाशि करते हुए विचरते हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो! तुम मुझे काल जानकर मेरे बायें पैर को मूंज की रस्सी से बाँधना, बाँध तीन बार मेरे मुंह पर थूकना, थूककर श्रावस्ती नगरी शृङ्गाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, महापथों अ पथों में घसीटते हुए जोर-जोर से उच्च स्वर में उद्घोषणा क हुए इस प्रकार कहना—हे देवानुप्रियो! गोशाल मंखलिपुत्र जि नहीं है, किन्तु जिनप्रलापी है—यावत्—विचरा है। यह श्रम की घात करने वाला मंखलिपुत्र गोशाल यावत्—छद्मस् अवस्था में ही कालधर्म को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवा महावीर ही जिन और जिनप्रलापी हैं—यावत् विचरते हैं इस प्रकार बिना ऋद्धि और असम्मानपूर्वक ही मेरे शरीर नीहरण करना—ऐसा कहकर कालधर्म को प्राप्त हो गया।

गोसालसरीरस्स नीहरणं—

९६. तए णं आजीविया थेरा गोसालं मंखलिपुत्तं कालगयं जाणित्ता हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स दुवाराइं पिहेंति, पिहेत्ता हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स बहुमज्झदेसभाए सावत्थिं नगरिं आलिहंति, आलिहित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं वामे पदे सुम्बेणं बंधंति, बंधित्ता तिक्खुत्तो मुहे उट्ठुभंति, उट्ठुभित्ता सावत्थीए नगरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु आकड्ढविकड्ढि करेमाणा णीयं-णीयं सद्देणं उग्घोसेमाणा उग्घोसेमाणा एवं वयासी—"नो खलु देवाणुप्पिया! गोसाले मंखलिपुत्ते जिणे जिणप्पलावी-जाव-विहरइ।" सवह-पडिमोक्खणगं

गोशाल के शरीर का नीहरण—

९६. इसके पश्चात् आजीविक स्थविरों ने गोशाल मंखलिपुत्र क कालगत जानकर हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण के द्वा बन्द किये, बन्द करके हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण अतिमध्य भाग में श्रावस्ती नगरी का चित्र बनाया, चित्राक करके गोशाल मंखलिपुत्र के बायें पैर को मूंज की रस्सी से बांधा बाँधकर तीन बार मुंह पर थूका, थूककर श्रावस्ती नगरी शृङ्गाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ और पथ घसीटते हुए मन्द-मन्द स्वर में उद्घोषणा करते हुए इस प्रका कहा—हे देवानुप्रियो! गोशाल मंखलिपुत्र जिन नहीं किन् जिन का प्रलापी होकर—यावत्—छद्मस्थ अवस्था में ही काल धर्म को प्राप्त हुआ है। श्रमण भगवान महावीर वास्तव में जिन

करेंति, करेत्ता दोच्चं पि पूया-सक्कार-थिरीकरणट्ठयाए गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स वामाओ पादाओ सुम्बं मुयंति, मुइत्ता हालाहलाए कुम्भकारीए कुम्भकारावणस्स दुवार-वयणाइं अवंगुणंति, अवंगुणित्ता गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगं सुरभिणा गंधोदएणं ण्हाणेंति, तं चेव-जाव-महया इड्ढिसक्कारसमुदएणं गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स सरीरगस्स नीहरणं करेंति ।

है और जिनप्रलापी होकर— यावत्— विचरते हैं इस प्रकार कहकर वे स्थविर गोशालक की शपथ से मुक्त हुए, मुक्त होकर पुनः दूसरी बार गोशालक की पूजा-सत्कार स्थिर रखने के लिये, उन्होंने गोशाल मंखलिपुत्र के बायें पैर से मूंज की रस्सी खोली, खोलकर हालाहला कुम्भारिन के कुम्भकारापण के द्वार उघाड़े— खोले, उघाड़कर गोशाल मंखलिपुत्र के शरीर को सुगन्धित गन्धोदक से स्नान कराया इत्यादि पूर्वोक्त कथनानुसार—यावत्— महान ऋद्धि— सत्कारपूर्वक गोशाल मंखलिपुत्र के शरीर का नीहरण किया ।

भगवओ देहे रोगायंक-पाउब्भवो—

भगवान के शरीर में रोगातंक-प्रादुर्भाव—

६७. तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णया कदायि सावत्थीओ नगरीओ कोट्ठयाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति पडिनिक्खमित्ता बहिया जणवयविहारं विहरइ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं मेंढियगामे नामं नगरे होत्था— वण्णओ ।

तस्स णं मेंढियगामस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं साणकोट्ठए नामं चेइए होत्था — वण्णओ-जाव-पुढविसिलापट्टओ ।

तस्स णं साणकोट्ठगस्स चेइयस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महेगे मालुयाकच्छए यावि होत्था— किण्हे किण्होभासे जाव-महामेहनिकुरंबभूए पत्तिए पुप्फिए फलिए हरियगरेरिज्जमाणे सिरीए अतीव-अतीव उवसोभेमाणे चिट्ठति ।

तत्थ णं मेंढियगामे नगरे रेवती नामं गाहावइणी परिवसति —अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया ।

तए णं समणे भगवं महावीरे अण्णदा कदायि पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे जेणेव मेंढियगामे नगरे जेणेव साणकोट्ठए चेइए तेणेव उवागच्छइ-जाव-परिसा पडिगया ।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विपुले रोगायंके पाउब्भूए— उज्जले विउले पगाढे कक्कसे कडुए चंडे दुक्खे दुग्गे तिव्वे, दुरहियासे, पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिए यावि विहरति, अवि याइं लोहिय-वच्चाइं पि पकरेइ, चाउवण्णं च णं वागरेति—

"एवं खलु समणे भगवं महावीरे गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिए छउमत्थे चेव कालं करेस्सति ।"

६७. तदनन्तर किसी एक दिन श्रमण भगवान महावीर श्रावस्ती नगरी के कोष्ठक चैत्य से निकले, निकलकर बाहरी जनपदों में विचरने लगे ।

उस काल और उस समय मेंढिक ग्राम नामक नगर था— वर्णन करो ।

उस मेंढिक ग्राम नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग में शाल कोष्ठक नामक चैत्य था —चैत्य का वर्णन करो—यावत्—पृथ्वी शिलापट्टक था ।

उस शाल कोष्ठक चैत्य के समीप एक विशाल मालुकाकच्छ था, जो श्याम और श्यामल कांतिवाला- यावत्— महामेघ के समूह के समान प्रभायुक्त था, वह पत्र, पुष्प, फल और हरित वर्ण से देदीप्यमान और बहुत ही सुशोभित था ।

उस मेंढिक ग्राम नामक नगर में रेवती नाम की गाथापत्नी रहती थी, जो धनाढ्य—यावत्— बहुजन अपरिभूत थी ।

इसके बाद अन्यदा श्रमण भगवान महावीर अनुक्रम से विहार करते हुए ग्रामानुग्राम का स्पर्श करते हुए और सुखपूर्वक विचरण करते हुए जहाँ मेंढिक ग्राम नामक नगर था जहाँ शाल कोष्ठक चैत्य था, वहाँ पधारे— यावत्— परिषदा वापस गई ।

तब श्रमण भगवान महावीर के शरीर में महापीड़ाकारी, विकट प्रगाढ़, कर्कश, कटुक, प्रचण्ड, दुःखद, कष्टकर, तीव्र, असहनीय पित्त ज्वर के द्वारा शरीर को व्याप्त करने वाला एवं जिससे अत्यन्त दाह होता है, ऐसा रोगातंक उत्पन्न हुआ, उस रोग के कारण रक्त युक्त दस्त लगने लगे, भगवान के शरीर की ऐसी स्थिति जानकर चारों वर्ण के लोग इस प्रकार कहने लगे —

'श्रमण भगवान महावीर गोशाल मंखलिपुत्र के तप-स्तेज से पराभूत होकर पित्त ज्वर और दाह से पीड़ित हो छह मास के अन्त में छद्मस्थ अवस्था में ही काल को प्राप्त करेंगे ।'

सीहमुणिस्स माणसियं दुक्खं—

६८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतेवासी सीहे नामं अणगारे—पगइभद्दए-जाव-विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरति।

तए णं तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स समणस्स भगवओ महावीरस्स सरीरगंसि विउले रोगायंके पाउब्भूए—उज्जले-जाव-छउमत्थे चेव कालं करेस्सन्ति, वदिस्संति य णं अण्णतित्थिया—छउमत्थे चेव कालगए।" इमेणं एयारूवेणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छगं अंतो-अंतो अणुपविसइ, अणुपविसित्ता महया-महया सद्देणं कुहुकुहुस्स परुण्णे।

भगवया सीहस्स आसासणं—

६९. अज्जो! ति समणे भगवं महावीरे समणे निग्गंथे आमंतेति, आमंतेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु अज्जो! ममं अंतेवासी सीहे नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए मालुयाकच्छगस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरति। तए णं तस्स सीहस्स अणगारस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु ममं धम्मायरियस्स धम्मोवदेसगस्स मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छगं अंतो-अंतो-जाव-कुहुकुहुस्स परुण्णे। तं गच्छह णं अज्जो! तुब्भे सीहं अणगारं सद्दह।"

तए णं ते समणा निग्गंथा समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ता समाणा समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साणकोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव मालुयाकच्छए, जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सीहं अणगारं एवं वयासी—"सीहा! धम्मायरिया सद्दावेंति।"

तए णं से सीहे अणगारे समणेहिं निग्गंथेहिं सद्धिं मालुयाकच्छगाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव साणकोट्ठए चेइए, जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता

सिंह मुनि को मानसिक दुःख—

६८. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के अंतेवासी सिंह नाम के अनगार जो प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत थे, मालुका कच्छ के निकट ही निरन्तर बेले-बेले के तप से दोनों हाथों को ऊपर किये हुए सूर्याभिमुख होकर आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरते थे।

इसके बाद उस सिंह अनगार को ध्यानांतरिका में रहते यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"मेरे धर्माचार्य और धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर के शरीर में अत्यन्त विकट और पीड़ाकारी रोगातंक उत्पन्न हुआ—यावत्—छद्मस्थ अवस्था में काल करेंगे तब अन्यतीर्थिक कहेंगे कि वे छद्मस्थ अवस्था में काल-धर्म को प्राप्त हो गये।" इस प्रकार के इस महामानसिक दुःख से आक्रांत, पीड़ित होते हुए वे आतापना भूमि से नीचे उतरे, उतरकर जहाँ मालुका कच्छ था, वहाँ आये और आकर मालुका कच्छ के अन्दर प्रविष्ट हुए। प्रवेश करके जोर-जोर से आवेग पूर्वक शब्द करते हुए सिसकते से रुदन करने लगे।

भगवान द्वारा सिंह को आश्वासन—

६९. हे आर्यो! इस प्रकार के सम्बोधन से श्रमण भगवान महावीर ने श्रमण निर्ग्रन्थों को आमन्त्रित किया और आमन्त्रित कर उनसे कहा 'हे आर्यो! मेरा अन्तेवासी सिंह नामक अनगार जो प्रकृति से भद्र यावत्—विनीत है, मालुका कच्छ के निकट निरन्तर बेले-बेले के तप से ऊपर को बाहें करके सूर्य की ओर मुख करके आतापना लेता हुआ विचरता है। उस सिंह अनगार को ध्यानांतरिका में वर्तते हुए यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ है 'मेरे धर्माचार्य धर्मोपदेशक मालुकाकच्छ में आये हैं, इत्यादि वर्णन पूर्ववत् करना चाहिए—आकर मालुका कच्छ के अन्दर प्रवेश करके—यावत्—सिसकते हुए रुदन कर रहा है। अतएव हे आर्यो! तुम जाओ और सिंह अनगार को यहाँ बुला लाओ।'

तत्पश्चात् उन श्रमण निर्ग्रन्थों ने भगवान महावीर की इस आज्ञा को सुनकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके वे श्रमण भगवान महावीर के पास से और शाल कोष्ठक चैत्य से निकले, निकलकर जहाँ मालुका कच्छ था, जहाँ सिंह अनगार था, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर सिंह अनगार से इस प्रकार कहा—'हे सिंह! तुम्हें धर्माचार्य बुलाते हैं।'

तदनन्तर श्रमण निर्ग्रन्थों के साथ सिंह अनगार मालुका कच्छ से निकला, निकलकर जहाँ शाल कोष्ठक चैत्य था, उसमें जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, वहाँ

समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं-जाव-पज्जु-वासति ।

१००. सीहा ! इ समणे भगवं महावीरे सीहं अणगारं एवं वयासी —"से नूणं ते सीहा ! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स अयमेया-रूवे अज्झत्थिए-जाव-कुहुकुहुस्स परुण्णे । से नूणं ते सीहा ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि ।"

"तं नो खलु अहं सीहा ! गोसालस्स मंखलिपुत्तस्स तवेणं तेएणं अण्णाइट्ठे समाणे अंतो छण्हं मासाणं पित्तज्जरपरिगयसरीरे दाहवक्कंतिए छउमत्थे चेव कालं करेस्सं अहं णं अद्ध सोलस वासाइं जिणे सुहत्थी विहरिस्सामि, तं गच्छ णं तुमं सीहा ! मेंढियगामं नगरं, रेवतीए गाहावतिणीए गिहं, तत्थ णं रेवतीए गाहावतिणीए ममं अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया, ते हिं नो अट्ठो; अत्थि से अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए, तमाहराहि एएणं अट्ठो ।"

आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की—यावत्—पर्युपासन करने लगा ।

१००. हे सिंह ! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने सिंह अनगार से कहा—'हे सिंह ! ध्यानान्तरिका में वर्तते हुए तुम्हें इस प्रकार का विचार उत्पन्न हुआ—यावत्—अत्यन्त रुदन करने लगे । हे सिंह ! क्या यह बात सत्य है ?'

हाँ, भगवन् ! यह सत्य है ।' सिंह अनगार ने उत्तर दिया ।

'हे सिंह ! गोशाल मंखलिपुत्र के तप तेज से पराभूत होकर मैं छह मास के अन्त में पित्त-ज्वर से पराक्रान्त शरीर वाला होकर दाह वेदना से छद्मस्थ अवस्था में ही काल नहीं करूँगा, मैं अन्य साढ़े पन्द्रह वर्ष गंधहस्ती के समान जिनपने में विचरूँगा, इसलिये हे सिंह ! तुम मेंढिक ग्राम नगर में रेवती गाथापत्नी के घर जाओ—वहाँ रेवती गाथापत्नी ने मेरे निमित्त दो कोहला के फलों को संस्कारित करके तैयार किया है, उनसे मुझे प्रयोजन नहीं है, किन्तु उसके यहाँ मार्जार नामक वायु को शांत करने वाला बिजोरापाक जो कल तैयार किया है, उसे लाओ, वह मेरे लिये उपयुक्त है ।'

सीहमुणिणा रेवइयाओ भेसज्जाणयणं —

१०१. तए णं से सीहे अणगारे समणेणं भगवया महावीरेणं एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता अतुरियमचवलमसंभंतं मुहपोत्तियं पडिलेहेति, पडिलेहेत्ता भायणवत्थाइं पडिलेहेति, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महा-वीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ साणकोट्ठगाओ चेइयाओ पडिनिक्खमति पडिनिक्खमित्ता अतुरिय-मचवलमसंभंतं जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव मेंढियगामे नगरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मेंढियगामं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव गाहावइणीए गिहे तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता रेवतीए गाहावतिणीए गिहं अणुप्पविट्ठे ।

सिंह मुनि द्वारा रेवती से भैषज आनयन—

१०१. तत्पश्चात् सिंह अनगार ने श्रमण भगवान महावीर के इस कथन को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रसन्न हृदय होकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके अत्वरित, अचपल और असंभ्रान्त होकर मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके पात्र-वस्त्रादि की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके पात्रों आदि का प्रमार्जन किया, प्रमार्जन करके पात्रों को हाथ में लिया, लेकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके श्रमण भगवान महा-वीर के पास से और शाल कोष्ठक चैत्य से निकले, निकलकर अत्वरित, अचपल और असंभ्रान्त हो चार हाथ आगे देखने वाली दृष्टि से सामने देखते हुए जहां मेंढिक ग्राम नगर था, वहाँ आये, आकर मेंढिक ग्राम नगर के बीचोंबीच में से होते हुए जहाँ रेवती गाथापत्नी का घर था, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर रेवती गाथा पत्नी के घर में प्रवेश किया ।

१०२. तए णं सा रेवती गाहावतिणी सीहं अणगारं एज्जमाणं पासति, पासित्ता हट्ठतुट्ठा खिप्पामेव आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सीहं अणगारं सत्तट्ठ पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेति, करेत्ता वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पयोयणं ?"

तए णं से सीहे अणगारे रेवतिं गाहावइणिं एवं वयासी —

१०२. तब उस रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार को आते हुए देखा, देखकर हर्षित एवं संतुष्ट हो शीघ्र ही आसन से उठी, उठकर सिंह अनगार के सामने सात-आठ पैर गई, जाकर तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! कहिये, आपके पधारने का क्या प्रयोजन है ?'

तब सिंह अनगार ने रेवती गाथापत्नी से इस प्रकार

"एवं खलु तुमे देवाणुप्पिए ! समणस्स भगवओ महावीरस्स अट्ठाए दुवे कवोय-सरीरा उवक्खडिया, तेहिं नो अट्ठो, अत्थि ते अण्णे पारियासिए मज्जारकडए कुक्कुडमंसए एयमाहराहि, तेणं अट्ठो।"

कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुमने श्रमण भगवान महावीर के निमित्त जो कोहले के दो फल संस्कारित करके तैयार किये हैं, उनसे मेरा प्रयोजन नहीं है, किन्तु मार्जार नामक वायु को शांत करने वाला कल का बनाया हुआ जो बिजोरा पाक है, वह मुझे दो, उसी से मेरा प्रयोजन है।'

तए णं सा रेवती गाहावइणी सीहं अणगारं एवं वयासी—"केस णं सीहा ! से नाणी वा तवस्सी वा, जेणं तव एस अट्ठे मम ताव रहस्सकडे हव्वमक्खाए, जओ णं तुमं जाणासि ?"

इस पर रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार से इस प्रकार कहा—'हे सिंह ! ऐसे वे कौन से ज्ञानी और तपस्वी हैं, जिन्होंने मेरी यह गुप्त बात जानी और तुमसे कहा, जिससे कि तुम जान सके हो ?

तए णं से सीहे अणगारे रेवइं गाहावइणिं एवं वयासी—"एवं खलु रेवई ! मम धम्मायरिए धम्मोवदेसए समणे भगवं महावीरे उप्पण्णनाण-दंसणधरे अरहा जिणे केवली तीयपच्चुप्पन्नमणागय-वियाणए सव्वण्णू सव्वदरिसी जेणं मम एस अट्ठे तव ताव रहस्स-कडे हव्वमक्खाए, जओ णं अहं जाणामि।

तब सिंह अनगार ने रेवती गाथापत्नी से इस प्रकार कहा—'हे रेवती ! मेरे धर्माचार्य, धर्मोपदेशक, उत्पन्न ज्ञान-दर्शन के धारक, अर्हन्, जिन, केवली, अतीत, वर्तमान और अनागत के विज्ञाता, सर्वज्ञ, सर्वदर्शी श्रमण भगवान महावीर ने तुम्हारी यह गुप्त बात मुझसे कही, जिससे मैं जानता हूँ।'

तए णं सा रेवती गाहावतिणी सीहस्स अणगारस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पत्तगं मोएति, मोएत्ता जेणेव सीहे अणगारे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहस्स अणगारस्स पडिग्गहगंसि तं सव्वं सम्मं निसिरति।

तत्पश्चात् रेवती गाथापत्नी ने सिंह अनगार से इस बात को सुनकर और हृदय में मनन कर हृष्ट-तुष्ट हो जहाँ भोजन गृह था, वहाँ आई, आकर पात्र को खोला, खोलकर जहाँ सिंह अनगार थे, वहाँ आई, आकर सिंह अनगार के निकट आकर वह सारा पाक उनके पात्र में डाल दिया।

१०३. तए णं तीए रेवईए गाहावतिणीए तेणं दव्वसुद्धेणं पडिगा-हगसुद्धेणं तिविहेणं तिकरणसुद्धेणं दाणेणं सीहे अणगारे पडिलाभिए समाणे देवाउए निबद्धे, संसारे परित्तीकए, गिहंसि य से इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा दसद्धवण्णे कुसुमे निवातिए, चेलुक्खेवे कए, आहयाओ देवदुन्दुभीओ, अंतरा वि य णं आगासे अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे।

१०३. तब उस रेवती गाथापत्नी ने उस द्रव्य की शुद्धि, दायक-शुद्धि और प्रतिग्राहक शुद्धि रूप त्रिविध और त्रिकरण शुद्ध दान से प्रतिलाभित करते हुए देवायुष्य का बंध किया, संसार परिमित किया और घर में ये पाँच दिव्य प्रादुर्भूत हुए, यथा—१. वसु-धन की वृष्टि, २. पंचरंगे पुष्पों की वर्षा, ३. वस्त्रों का उड़ना, (ध्वजाओं का फहराना), ४. आकाश में देव दुन्दुभि का बजाना, और ५. अहोदान का घोष होना।

तए णं रायगिहे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु बहुजणो अण्णमण्णस्स एवमाइक्खइ एवं भासइ एवं पण्णवेइ एवं परूवेइ—"धन्ना णं देवाणुप्पिया ! रेवई गाहावइणी, कयत्था णं देवाणुप्पिया ! रेवइ गाहावइणी, कयपुण्णा णं देवाणु-प्पिया ! रेवइ गाहावइणी, कयलक्खणा णं देवाणुप्पिया ! रेवइ गाहावइणी, कया णं लोया देवाणुप्पिया ! रेवतीए गाहावतिणीए सुलद्धे णं देवाणुप्पिया ! माणुस्सए जम्मजीवियफले रेवतीए गाहा-वतिणीए, जस्स णं गिहंसि तहारूवे साधू साधुरूवे पडिलाभिए समाणे इमाइं पंच दिव्वाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—वसुधारा वुट्ठा -जाव-अहो दाणे, अहो दाणे त्ति घुट्ठे, तं धन्ना कयत्था कयपुण्णा कयलक्खणा, कया णं लोया, सुलद्धे माणुस्सए जम्मजीवियफले रेवतीए गाहावतिणीए, रेवतीए गाहावतिणीए।"

तब राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों में बहुत से व्यक्ति आपस में एक दूसरे से इस प्रकार कहने लगे, बोलने लगे, प्रज्ञापना एवं प्ररूपणा करने लगे—'हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथापत्नी धन्य है, हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथापत्नी कृतार्थ है, हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथापत्नी कृतपुण्या है, हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथा पत्नी कृतलक्षणा है, हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथापत्नी ने अपने लोक को सफल कर लिया है, हे देवानुप्रियो ! रेवती गाथापत्नी ने अपने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त कर लिया है, जिसके घर में तथारूप साधु को भली प्रकार से प्रतिलाभित होने पर ये पाँच दिव्य प्रादुर्भूत हुए हैं, यथा—वसुधारा की वृष्टि—यावत्—अहोदान-अहोदान का घोष। इसलिये रेवती गाथा पत्नी धन्य, कृतार्थ, कृतपुण्य, कृतलक्षणा है, उसने अपने लोक को सफल बना लिया है, मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त कर लिया है।'

१०४. तए णं से सीहे अणगारे रेवतीए गाहावतिणीए गिहाओ पडिनिक्खमति, पडिनिक्खमित्ता मेंढियगामं नगरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जहा गोयमसामी-जाव-भत्तपाणं पडिदंसेति, पडिदंसेत्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स पाणिंसि तं सव्वं सम्मं सम्मं निसिरति ।

१०४. तत्पश्चात् सिंह अनगार रेवती गाथापत्नी के घर से निकले, निकलकर मेंढिक ग्राम नगर के बीचोंबीच से निकले, निकलकर गौतम स्वामी के समान—यावत्—भगवान को आहार पानी दिखाया, दिखाकर वह सब श्रमण भगवान महावीर के हाथ में सम्यक् प्रकार से रख दिया ।

भगवओ अरोग्गं—

भगवान का आरोग्य—

१०५. तए णं समणे भगवं महावीरे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववन्ने बिलमिव पन्नगभूएणं अप्पाणेणं तमाहारं सरीरकोट्ठगंसि पक्खिवति ।

तए णं समणस्स भगवओ महावीरस्स तमाहारं आहारियस्स समाणस्स से विपुले रोगायंके खिप्पामेव उवसंते, हट्ठे जाए अरोगे, बलियसरीरे । तुट्ठा समणा, तुट्ठाओ समणीओ, तुट्ठा सावया, तुट्ठाओ सावियाओ, तुट्ठा देवा, तुट्ठाओ देवीओ, सदेवमणुयासुरे लोए तुट्ठे—हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे, हट्ठे जाए समणे भगवं महावीरे ।

१०५. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने उस आहार को मूर्च्छा रहित होकर बिना गृद्धि, बिना आसक्ति, बिना लालसा के बिल में सर्प प्रवेश के समान अपने शरीर रूपी कोठे में डाल दिया ।

तब उस आहार को खाने पर श्रमण भगवान महावीर का वह महापीड़ाकारी रोगातंक शीघ्र ही उपशांत हो गया, वे हृष्ट, निरोग और बलवान शरीर वाले हो गये । इससे सभी श्रमण तुष्ट (प्रसन्न) हुए, श्रमणियाँ तुष्ट हुईं, श्रावक तुष्ट हुए, श्राविकायें तुष्ट हुईं, देव तुष्ट हुए, देवियाँ तुष्ट हुईं, इस प्रकार देव, मनुष्य, असुरों सहित समग्र लोक हर्षित-संतुष्ट हुए—कि श्रमण भगवान महावीर हृष्ट-पुष्ट हो गये, श्रमण भगवान महावीर हृष्ट-पुष्ट हो गये ।

सव्वाणुभूति-सुनक्खत्तमुणीणं देवलोगुप्पत्ती तयणंतरं सिद्धिगमणनिरूवणं च—

सर्वानुभूति—सुनक्षत्र मुनियों की देवलोक में उत्पत्ति, तदनन्तर सिद्धिगमन निरूपण—

१०६. भंते ! ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदति नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए, से णं भंते ! तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं भासरासीकए समाणे कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?"

"एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी पाईणजाणवए सव्वाणुभूती नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए, से णं तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं भासरासीकए समाणे उड्ढं चंदिम-सूरिय-जाव-बंभ-लंतक-महासुक्के कप्पे वीइवइत्ता सहस्सारे कप्पे देवत्ताए उववन्ने । तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं अट्ठारस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । तत्थ णं सव्वाणुभूतिस्स वि देवस्स अट्ठारस सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।"

"से णं भंते ! सव्वाणुभूती देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिति ।"

१०६. हे भदन्त ! इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके पूछा—हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय का अन्तेवासी—पूर्व देश का निवासी प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत सर्वानुभूति अनगार उस समय गोशाल मंखलिपुत्र द्वारा अपने तप-तेज से जलाकर भस्म कर दिया गया था, वह कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ ?

हे गौतम ! पूर्व देश में उत्पन्न प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत मेरा अंतेवासी सर्वानुभूति अनगार जो उस समय गोशाल मंखलिपुत्र के द्वारा अपने तप-तेज से जलाकर भस्म किया गया था, वह ऊपरी चन्द्र और सूर्य को—यावत्—ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र को उल्लंघन कर सहस्रारकल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ । वहाँ पर कितने ही देवों की अठारह सागरोपम की स्थिति कही गई है । उस सर्वानुभूति देव की भी अठारह सागरोपम की स्थिति है ।'

प्रश्न—'हे भदन्त ! वह सर्वानुभूति देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देव से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?

उत्तर—गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा—यावत् समस्त दुःखों का अन्त करेगा ।'

१०७. 'एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कोसलजाणवए सुनक्खत्ते

१०७. प्रश्न- इसी प्रकार आप देवानुप्रिय का अंतेवासी कोशल

नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए। से णं भंते ! तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परिताविए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?"

देशवासी, प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत सुनक्षत्र नाम का जो अनगार था, वह भी भदन्त ! उस समय गोशाल मंखलिपुत्र द्वारा अपने तप-स्तेज से परितापित किया जाकर काल के समय मरण को प्राप्त हो कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ ?

"एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी सुनक्खत्ते नामं अणगारे पगइभद्दए-जाव-विणीए, से णं तदा गोसालेणं मंखलिपुत्तेणं तवेणं तेएणं परिताविए समाणे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वंदति, नमंसति वंदित्ता नमंसित्ता सयमेव पंच महव्वयाइं आरुभेति, आरुभेत्ता समणा य समणीओ य खामेति, खामेत्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय-जाव-आणय-पाणयारणे कप्पे वीइवइत्ता अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं सुनक्खत्तस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।"

उत्तर—हे गौतम ! प्रकृति से भद्र—यावत्—विनीत मेरा जो सुनक्षत्र नाम का अन्तेवासी था, वह उस समय गोशाल मंखलिपुत्र द्वारा तप-स्तेज से परितापित होकर जहाँ मैं था, वहाँ आया, आकर उसने मुझे वंदन-नमस्कार किया था, वंदन, नमस्कार करके स्वयमेव पंच महाव्रतों का उच्चारण किया था, उच्चारण करके श्रमण-श्रमणियों को खमाया था, खमाकर आलोचना-प्रतिक्रमण करके समाधि को प्राप्त कर काल के समय काल करके ऊँचे चन्द्र और सूर्य को—यावत्—आणत प्राणत और आरण कल्प का उल्लंघन कर अच्युतकल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ है। वहाँ पर किन्हीं-किन्हीं देवों की बाईस सागरोपम की स्थिति होती है। वहाँ सुनक्षत्र देव की भी बाईस सागरोपम की स्थिति हुई है।

"से णं भंते ! सुनक्खत्ते देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति।"

प्रश्न—'हे भगवन् ! वह सुनक्षत्र देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

उत्तर—'गौतम ! महाविदेह में उत्पन्न होकर—यावत्—सिद्ध होगा सर्व दुःखों का अन्त करेगा।'

गोसालजीवस्स देवलोगुप्पत्ती—

१०८. "एवं खलु देवाणुप्पियाणं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले नामं मंखलिपुत्ते से णं भंते ! गोसाले मंखलिपुत्ते कालमासे कालं किच्चा कहिं गए ? कहिं उववन्ने ?"

"एवं खलु गोयमा ! ममं अंतेवासी कुसिस्से गोसाले नामं मंखलिपुत्ते समणघायए-जाव-छउमत्थे चेव कालमासे कालं किच्चा उड्ढं चंदिम-सूरिय-जाव-अच्चुए कप्पे देवत्ताए उववन्ने। तत्थ णं अत्थेगतियाणं देवाणं बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता। तत्थ णं गोसालस्स वि देवस्स बावीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता।"

गोशाल जीव की देव लोकोत्पत्ति—

१०८. प्रश्न—'हे भगवन् ! आप देवानुप्रिय का अंतेवासी कुशिष्य जो मंखलिपुत्र था, वह गोशाल मंखलिपुत्र काल के समय में काल करके कहाँ गया ? कहाँ उत्पन्न हुआ ?'

उत्तर—हे गौतम ! मेरा अंतेवासी कुशिष्य गोशाल मंखलिपुत्र जो श्रमण घातक था—यावत्—छद्मावस्था में ही काल के समय में काल करके ऊँचे चन्द्र—सूर्य—यावत्—अच्युत कल्प में देवपने से उत्पन्न हुआ है। वहाँ कई देवों की स्थिति बाईस सागरोपम की कही गई है। उनमें गोशाल देव की भी बाईस सागरोपम की है।

गोसालस्स महापउमभवे-जम्मो रज्जाभिसेओ य —

१०९. "से णं भंते ! गोसाले देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले पुंडेसु जणवएसु सयदुवारे नगरे संमुतिस्स रण्णो भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिति। से णं तत्थ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं-जाव-सुरूवे दारए पयाहिति।"

गोशाल का महापद्म भव में जन्म और राज्याभिषेक—

१०९. प्रश्न—'हे भगवन् ! वह गोशाल देव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्युत होकर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

उत्तर—'हे गौतम ! इसी जम्बूद्वीप के भरत क्षेत्र में विन्ध्य-गिरि-पर्वत की तलहटी में पुंड्रदेश के शतद्वार नगर में संभूति नाम के राजा की भद्राभार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वह नौ मास और साढ़े सात रात्रि-दिवस व्यतीत होने पर—यावत्—एक सुन्दर बालक को जन्म देगी।

जं रयणिं च णं से दारए जाइहिति, तं रयणिं च णं सयदुवारे नगरे सब्भिंतरबाहिरिए भारग्गसो य कुम्भग्गसो य पउमवासे य रयणवासे य वासे वासिहिति।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे वीइक्कंते निव्वत्ते असुइजायकम्मकरणे संपत्ते बारसमे दिवसे अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं काहिंति—जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि जायंसि समाणंसि सयदुवारे नगरे सब्भिंतरबाहिरिए भारग्गसो य कुम्भग्गसो य पउमवासे य रयणवासे वुट्ठे, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं महापउमे-महापउमे। तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेहिंति महापउमे त्ति।

तए णं तं महापउमं दारगं अम्मापियरो सातिरेगट्ठवासजायगं जाणित्ता सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि महया-महया रायाभिसेगेणं अभिसिंचेहिंति। से णं तत्थ राया भविस्सति-महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे वण्णओ-जाव-विहरिस्सइ।

महापउमस्स देवसेण-विमलवाहणाभिधाणं नामदुगं—

११०. तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो अण्णदा कदायि दो देवा महिड्ढिया-जाव-महेसक्खा सेणाकम्मं काहिंति, तं जहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य।

तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितिओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, सद्दावेत्ता एवं वदेहिंति

"जम्हा णं देवाणुप्पिया! महापउमस्स रण्णो दो देवा महिड्ढिया-जाव-महेसक्खा सेणाकम्मं करेंति, तंजहा—पुण्णभद्दे य माणिभद्दे य, तं होउ णं देवाणुप्पिया! अम्हं महापउमस्स रण्णो दोच्चे नामधेज्जे वि देवसेणे-देवसेणे। तए णं तस्स महापउमस्स रण्णो दोच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति देवसेणे त्ति।

१११. तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो अण्णया कयाइ सेते संखतल-विमल-सन्निगासे चउद्दन्ते हत्थिरयणे समुप्पज्जिस्सइ। तए णं से देवसेणे राया तं सेयं संखतल-विमल-सन्निगासं चउद्दंतं हत्थिरयणं दूढे समाणे सयदुवारं नगरं मज्झंमज्झेणं अभिक्खणं-अभिक्खणं अतिजाहिति य निज्जाहिति य। तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ, सत्थवाहप्पभितओ अण्णमण्णं सद्दावेहिंति, सद्दावेत्ता वदेहिंति जम्हा णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो सेते संखतल-विमल-सन्निगासे चउद्दंते हत्थिरयणे समुप्पन्ने, तं होउ णं देवाणुप्पिया! अम्हं देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे विमलवाहणे विमलवाहणे। तए णं तस्स देवसेणस्स रण्णो तच्चे वि नामधेज्जे भविस्सति विमलवाहणे त्ति।

जिस रात्रि में उस बालक का जन्म होगा, उस रात्रि में शतद्वार नगर के भीतर और बाहर अनेक भार प्रमाण और अनेक कुम्भ प्रमाण पद्मों एवं रत्नों की वृष्टि होगी।

तब उस बालक के माता-पिता ग्यारह दिन बीत जाने पर जातकर्म सम्बन्धी अशुचि का निवारण करने के पश्चात् बारहवें दिन यह इस प्रकार का गुणनिष्पन्न नामकरण करेंगे—क्योंकि हमारे इस बालक के उत्पन्न होने पर शतद्वार नगर के बाहर और भीतर भार प्रमाण तथा कुम्भप्रमाण पद्मों और रत्नों की वृष्टि हुई है, इसलिये हमारे इस बालक का नाम महापद्म हो—इस प्रकार का विचार करके उस बालक के माता पिता महापद्म यह नामकरण करेंगे।

तत्पश्चात् माता-पिता उस महापद्म बालक को कुछ अधिक आठ वर्ष का हुआ जानकर शुभ तिथि, करण, दिवस, नक्षत्र और मुहूर्त में महान् समारोह पूर्वक उसका राज्याभिषेक करेंगे। जिससे वह महाहिमवन्त, मलय, मंदर आदि पर्वतों के समान प्रसिद्ध महान् राजा हो जायेगा इत्यादि वर्णन करो—यावत्—विचरण करेगा।

महापद्म के देवसेन-विमल वाहन नामद्विक—

११०. तत्पश्चात् किसी एक समय उस महापद्म राजा के महर्द्धिक—यावत्—महासुख वाले दो देव सेनाकर्म करेंगे। उन देवों के नाम इस प्रकार हैं—पूर्णभद्र और मणिभद्र।

तब शतद्वार नगर में बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि परस्पर एक दूसरे को बुलायेंगे और बुलाकर इस प्रकार कहेंगे—

हे देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा के महर्द्धिक—यावत्—महासुख वाले पूर्णभद्र और मणिभद्र नामक दो देव सेनाकर्म करते हैं, इसलिये हे देवानुप्रियो! हमारे महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन हो। तब उस महापद्म राजा का दूसरा नाम देवसेन होगा।

१११. इसके बाद किसी एक दिन उस देवसेन राजा के यहाँ शंखतल के समान निर्मल और श्वेत ऐसे चार दांतों वाला एक हस्ती रत्न उपस्थित होगा। तब वह देवसेन राजा उस शंखतल के समान निर्मल प्रभा वाले चार दांतों के हस्ती रत्न पर आरूढ़ होकर शतद्वार नगर के बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि एक दूसरे को बुलायेंगे, बुलाकर इस प्रकार कहेंगे—हे देवानुप्रियो! क्योंकि हमारे देवसेन राजा के शंखतल के समान निर्मल चार दांतों वाला हस्ती रत्न उत्पन्न हुआ है, इसलिये हे देवानुप्रियो। हमारे देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन हो। तब उस देवसेन राजा का तीसरा नाम विमलवाहन होगा।

विमलवाहणस्स निग्गंथ-पडिकूलाचरणं—

११२. तए णं से विमलवाहणे राया अण्णया कयावि समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवज्जिहिति—अप्पेगतिए आओसेहिति, अप्पेगतिए अवहसिहिति, अप्पेगतिए निच्छोडेहिति, अप्पेगतिए निब्भच्छेहिति, अप्पेगतिए बंधेहिति, अप्पेगतिए निरुंभेहिति, अप्पेगतियाणं छविच्छेदं करेहिति, अप्पेगतिए पमारेहिति, अप्पेगतिए उद्दवेहिति, अप्पेगतियाणं वत्थं पडिग्गहं कंबलं पायपुंछणं आच्छिंदिहिति विच्छिंदिहिति भिंदिहिति अवहरिहिति, अप्पेगतियाणं भत्तपाणं वोच्छिंदिहिति, अप्पेगतिए निन्नगरे करेहिति, अप्पेगतिए निव्विसए करेहिति।

तए णं सयदुवारे नगरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभितओ अण्णमण्णं सद्दावेहिति, सद्दावेत्ता एवं वदिहिति—"एवं खलु देवाणुप्पिया! विमलवाहणे राया समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने—अप्पेगतिए आओसति -जाव-निव्विसए करेति, तं नो खलु देवाणुप्पिया! एयं अम्हं सेयं, नो खलु एयं विमलवाहणस्स रण्णो सेयं, नो खलु एयं रज्जस्स वा रट्ठस्स वा बलस्स वा वाहणस्स वा पुरस्स वा अंतेउरस्स वा जणवयस्स वा सेयं, जण्णं विमलवाहणे राया समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ने, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं विमलवाहणं रायं एयमट्ठं विण्णवेत्तए" त्तिकट्टु अण्णमण्णस्स अंतियं एयमट्ठं पडिसुणेहिति, पडिसुणेत्ता जेणेव विमलवाहणे राया तेणेव उवागच्छिहिति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु विमलवाहणं रायं जएणं विजएणं वद्धावेहिति, वद्धावेत्ता एवं वदिहिति—एवं खलु देवाणुप्पिया! समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ना अप्पेगतिए आओसंति-जाव-अप्पेगतिए निव्विसए करेंति, तं नो खलु एयं देवाणुप्पियाणं सेयं, नो खलु एयं अम्हं सेयं, नो खलु एयं रज्जस्स वा-जाव-जणवयस्स वा सेयं, जण्णं देवाणुप्पिया! समणेहिं निग्गंथेहिं मिच्छं विप्पडिवन्ना, तं विरमंतु णं देवाणुप्पिया! एयस्स अट्ठस्स अकरणयाए।"

तए णं से विमलवाहणे राया तेहिं बहूहिं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुंबिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईहिं एयमट्ठं विण्णत्ते समाणे नो धम्मो त्ति तवो त्ति, मिच्छा-विणएणं एयमट्ठं पडिसुणेहिति।

विमलवाहणकओ सुमंगलअणगारउवसग्गो—

११३. तस्स णं सयदुवारस्स नगरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसी-

विमलवाहन का निर्ग्रन्थों के प्रतिकूलाचरण—

११२. तत्पश्चात् वह विमलवाहन राजा किसी समय श्रमण-निर्ग्रन्थों के साथ मिथ्या—अनार्यपन का आचरण करेगा, किसी पर आक्रोश करेगा, किन्हीं की हँसी करेगा, किन्हीं को एक दूसरे से पृथक् करेगा, कइयों की भर्त्सना करेगा, किसी को बांधेगा, किसी को उपद्रावित करेगा, किन्हीं के वस्त्र, पात्र, कंबल और पादप्रोञ्छन को तोड़ेगा—फोड़ेगा और नष्ट करेगा, अपहरण करेगा, बहुतों के आहार पानी का विच्छेद करेगा और बहुत से श्रमणों को नगर तथा देश से बाहर निकाल देगा।

उस समय शतद्वार नगर के बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि परस्पर एक दूसरे को बुलायेंगे और बुलाकर इस प्रकार कहेंगे—हे देवानुप्रियो! विमलवाहन राजा ने श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति मिथ्या आचरण—अनार्यपन स्वीकार किया है—यावत्—कितने ही श्रमणों पर आक्रोश करता है, कितने ही श्रमणों को देश से निकालता है, अतः हे देवानुप्रियो! यह अपने लिये श्रेयस्कर नहीं है और न विमलवाहन राजा के लिये भी श्रेयस्कर है तथा इस राज्य, राष्ट्रबल, वाहन, पुर, अन्तःपुर तथा देश के लिये भी यह श्रेयस्कर नहीं है जो कि विमलवाहन राजा श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति अनार्यपन का व्यवहार करे। इसलिये हे देवानुप्रियो! इस विषय में विमलवाहन राजा को निवेदन करना अपने लिये उचित है, इस प्रकार विचार कर परस्पर एक दूसरे इस निश्चय को स्वीकार करेंगे, स्वीकार करके जहाँ विमलवाहन राजा होगा, वहाँ पहुँचेंगे, पहुँचकर दोनों हाथ जोड़ मुकुलित दस नखों से आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दघोष से विमलवाहन राजा को बधायेंगे, बधाकर इस प्रकार कहेंगे—'हे देवानुप्रिय! श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति आप जो अनार्यपन का आचरण करते हैं, उनमें से किसी पर आक्रोश करते हैं—यावत्—किसी को देश से बाहर निकालते हैं, तो हे देवानुप्रिय! यह कार्य आपके लिये श्रेयस्कर नहीं है और न हमारे लिये श्रेयस्कर है, न यह राज्य—यावत्—देश के लिये श्रेयस्कर है जो आप श्रमण निर्ग्रन्थों के प्रति अनार्यपन का आचरण करें, इसलिये हे देवानुप्रिय! आप इस दुराचरण को बन्द कीजिये, इस दुष्प्रवृत्ति से विराम लीजिये।'

तब वह विमलवाहन राजा उन अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के इस निवेदन को सुनकर धर्म नहीं, तप नहीं ऐसी बुद्धि होते हुए भी मिथ्या विनय बताकर उनका निवेदन स्वीकार कर लेगा।

सुमंगल अनगार के प्रति विमलवाहन कृत उपसर्ग—

११३. उस शतद्वार नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा में सुभूमि

भागे, एत्थ णं सुभूमिभागे नामं उज्जाणे भविस्सइ- -सव्वोउय-पुप्फफलसमिद्धे, वण्णओ ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं विमलस्स अरहओ पओप्पए सुमंगले नामं अणगारे जाइसंपन्ने, जहा धम्मघोसस्स वण्णओ-जाव-संखित्त-विउलतेयलेस्से तिण्णाणोवगए सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूरसामंते छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावेमाणे विहरिस्सति ।

तए णं से विमलवाहणे राया अण्णदा कयाथि रहचरियं काउं निज्जाहिति ।

तए णं से विमलवाहणे राया सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स अदूर-सामंते रहचरियं करेमाणे सुमंगलं अणगारं छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खि-त्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहं आयावणभूमीए आयावेमाणं पासिहिति, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सुमंगलं अणगारं रहसिरेणं नोल्लावेहिति ।

तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे सणियं-सणियं उट्ठेहिति, उट्ठेत्ता दोच्चं पि उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहे आयावणभूमीए आयावे-माणे विहरिस्सति ।

तए णं से विमलवाहणे राया सुमंगलं अणगारं दोच्चं पि रह-सिरेणं नोल्लावेहिति ।

तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा दोच्चं पि रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे सणियं-सणियं उट्ठेहिति, उट्ठेत्ता ओहिं पउंजेहिति, पउंजित्ता विमलवाहणस्स रण्णो तीतद्धं आभोए-हिति, आभोएत्ता विमलवाहणं रायं एवं वइहिति—"नो खलु तुमं विमलवाहणे राया, नो खलु तुमं देवसेणे राया, नो खलु तुमं महा-पउमे राया, तुमं णं इओ तच्चे भवग्गहणे गोसाले नामं मंखलि-पुत्ते होत्था—समणघायए-जाव-छउमत्थे चेव कालगए, तं जइ ते तदा सव्वाणुभूतिणा अणगारेणं पभुणा वि होऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहियासियं, जइ ते तदा समणेणं भगवया महावीरेणं पभुणा वि होऊणं सम्मं सहियं खमियं तितिक्खियं अहि-

भाग नाम का उद्यान होगा, जो सर्वऋतुओं के फल-फूलों से समृद्ध होगा, इत्यादि वर्णन करना चाहिये ।

उस काल और उस समय में विमल अरिहन्त के प्रपौत्र सुमंगल नाम के जातिसम्पन्न अनगार होंगे, उनका धर्मघोष के समान वर्णन करना—यावत्—संक्षिप्त विपुल तेजोलेश्या एवं तीन ज्ञान के धारक होंगे, वे सुमंगल अनगार सुभूमिभाग उद्यान से न अति दूर और न अति निकट निरन्तर षष्ठ-षष्ठ तप के साथ ऊपर की ओर हाथों को किये हुए सूर्याभिमुख होकर आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरण करेंगे ।

तब वह विमलवाहन राजा किसी एक दिन रथचर्या करने—रथ में बैठकर घूमने के लिये निकलेगा ।

तत्पश्चात् वह विमलवाहन राजा सुभूमिभाग उद्यान से थोड़ी दूर रथचर्या करता हुआ सुमंगल अनगार को निरन्तर षष्ठ षष्ठ तपोकर्म के साथ ऊपर को बाहें किये हुए सूर्याभिमुख होकर आतापना भूमि में आतापना लेते हुए देखेगा, देखकर क्रोधाभिभूत होकर रुष्ट, कुपित, चंडिकावत्, रौद्र होता हुआ दाँतों को मिस-मिसाते हुए रथ के अग्रभाग से सुमंगल अनगार को टक्कर मार कर नीचे गिरा देगा ।

तब वे सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा के द्वारा रथके अग्रभाग से टक्कर दिये जाने पर शनैः शनैः उठेंगे, उठकर दूसरी बार भी ऊपर की ओर हाथों को करके सूर्य की ओर मुख करके आतापना भूमि में आतापना लेते हुए विचरण करेंगे ।

इसके बाद पुनः दूसरी बार भी वह विमलवाहन राजा सुमंगल अनगार को रथ के अग्रभाग से टक्कर देकर नीचे गिरा देगा ।

तब वे सुमंगल अनगार दूसरी बार भी विमलवाहन राजा द्वारा रथ के अग्रभाग से टक्कर देकर नीचे गिराये जाने पर शनैः शनैः उठेंगे, उठकर अवधिज्ञान में उपयोग लगायेंगे, उप-योग लगाकर विमलवाहन राजा के अतीत काल को देखेंगे, देखकर विमलवाहन राजा से इस प्रकार कहेंगे—'तू वास्तव में विमलवाहन राजा नहीं है, तू देवसेन राजा नहीं है, तू महापद्म राजा नहीं है, किन्तु इससे पूर्व तीसरे भव में श्रमणों का घात करने वाला—यावत्—छद्मस्थ अवस्था में काल को प्राप्त हुआ तु गोशाल मंखलिपुत्र था, उस समय सर्वानुभूति अनगार ने समर्थ होते हुए भी समभाव से तेरे अपराध को सहन किया था क्षमा किया था तितिक्षा की थी और उसको अध्यासित (सहन) किया था, इसी प्रकार उस समय सुनक्षत्र अनगार ने भी समर्थ होते हुए भी तेरे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन किया था, क्षमा किया था, तितिक्षा की थी और अध्यासित किया था, उस समय श्रमण भगवान महावीर ने समर्थ होते हुए भी तेरे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन किया था, क्षमा किया था, तितिक्षा की

यासियं, तं नो खलु ते अहं तहा सम्मं सहिस्सं खमिस्सं तितिक्खिस्सं, अहियासिस्सं अहं ते नवरं—सहयं सरहं ससारहियं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेज्जामि ।

थी और उसको अध्यासित किया था, परन्तु मैं उस प्रकार से तेरे अपराध को सम्यक् प्रकार से सहन नहीं करूंगा, क्षमा नहीं करूंगा, तितिक्षा नहीं करूंगा और न अध्यासित करूंगा, मैं तो तुझे अपने तप-तेज से अश्व, रथ और सारथी सहित एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह राख का ढेर कर दूंगा।

तए णं से विमलवाहणे राया सुमंगलेणं अणगारेणं एवं वुत्ते समाणे आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे सुमंगलं अणगारं तच्चं पि रहसिरेणं नोल्लावेहिति ।

तब वह विमलवाहन राजा सुमंगल अनगार के इस कथन को सुनकर क्रोधित, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् रौद्र हो दाँतों को मिसमिसाते हुए सुमंगल अनगार को रथ के अग्रभाग से टक्कर मारकर तीसरी बार भी नीचे गिरा देगा।

सुमंगलमुणितेएण विमलवाहणस्स मरणं—

११४. तए णं से सुमंगले अणगारे विमलवाहणेणं रण्णा तच्चं पि रहसिरेणं नोल्लाविए समाणे आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे आयावणभूमीओ पच्चोरुभेइ, पच्चोरुभित्ता तेयासमुग्घाएणं समोहण्णिहिति, समोहण्णित्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चोसक्किहिति, पच्चोसक्कित्ता विमलवाहणं रायं सहयं सरहं ससारहियं तवेणं तेएणं एगाहच्चं कूडाहच्चं भासरासिं करेहिति ।

सुमंगल मुनि के तेज द्वारा विमलवाहन का मरण—

११४. तब वे सुमंगल अनगार विमलवाहन राजा द्वारा तीसरी बार रथ के अग्रभाग की टक्कर से नीचे गिराये जाने पर क्रोधाभिभूत यावत्—दाँतों को मिसमिसाते हुए आतापना भूमि से नीचे उतरेंगे, नीचे उतरकर तैजस् समुद्घात करेंगे, तैजस् समुद्घात करके सात-आठ पैर पीछे हटेंगे, पीछे हटकर अश्व, रथ और सारथी सहित विमल वाहन राजा को एक ही प्रहार में कूटाघात की तरह राख का ढेर कर देंगे।

सुमंगलमुणिस्स देवलोग-सिद्धिगमणनिरूवणं—

११५. "सुमंगले णं भंते ! अणगारे विमलवाहणं रायं सहयं-जाव-भासरासिं करेत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

"गोयमा ! सुमंगले अणगारे विमलवाहणं रायं सहयं-जाव-भासरासिं करेत्ता बहूहिं छट्ठट्ठम-दसम-दुवालसेहिं मासद्धमासखमणेहिं विचित्तेहिं तवोकम्मेहिं अप्पाणं भावेमाणे बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणेहिति, पाउणित्ता मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसित्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता आलोइयपडिक्कंते समाहिपत्ते उड्ढं चंदिम-जाव-गेविज्जविमाणा वोइवइत्ता सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति । तत्थ णं देवाणं अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता । तत्थ णं सुमंगलस्स वि देवस्स अजहण्णमणुक्कोसेणं तेत्तीसं सागरोवमाइं ठिती पण्णत्ता ।"

सुमंगल मुनि का देवलोक—सिद्धिगमन निरूपण—

११५. प्रश्न—'हे भदन्त ! सुमंगल अनगार अश्व सहित—यावत्—विमलवाहन राजा को राख का ढेर बनाकर कहाँ जायेंगे, कहाँ उत्पन्न होंगे ?

उत्तर—'हे गौतम ! विमलवाहन राजा को अश्व सहित—यावत्—भस्म राशि करके सुमंगल अनगार बहुत से बेला, तेला, चौला, पचौला, बारह मास खमण, अर्धमास खमण आदि विचित्र प्रकार के तपोकर्म से आत्मा को भावित करते हुए अनेक वर्षों तक श्रमण पर्याय का पालन करेंगे, पालन करके एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को विशुद्ध करके, अनशन द्वारा साठ भोजन का छेदन कर आलोचना—प्रतिक्रमण पूर्वक समाधि को प्राप्त हो ऊँचे चन्द्र—यावत्—ग्रैवेयक विमानों का उल्लंघन कर सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवपने से उत्पन्न होंगे। वहाँ पर देवों की अजघन्य, अनुत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति कही गई है। वहाँ सुमंगल देव की भी अजघन्योत्कृष्ट तेतीस सागरोपम की स्थिति होगी।'

"से णं भंते ! सुमंगले देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

गोयमा ! महाविदेहे वासे सिज्झिहिति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं काहिति ।

प्रश्न—'हे भगवन् ! वह सुमंगलदेव आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के अनन्तर उस देवलोक से च्यवित होकर कहाँ जायेंगे ? कहाँ उत्पन्न होंगे ?

उत्तर—'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होंगे—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

गोसालजीवस्स विमलवाहणस्स अणेगा दुक्खपउरा भवा तयणंतरं देवभवा य—

११६. "विमलवाहणे णं भंते ! राया सुमंगलेणं अणगारेणं सहये -जाव-भासरासीकए समाणे कहिं गच्छिहिति ? कहिं उववज्जिहिति ?"

गोयमा ! विमलवाहणे णं राया सुमंगलेणं अणगारेणं सहये -जाव-भासरासीकए समाणे अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता मच्छेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि अहेसत्तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरयंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि मच्छेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता इत्थियासु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि छट्ठाए तमाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि इत्थियासु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता उरएसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि पंचमाए धूमप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि उरएसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सीहेसु उववज्जिहिति । तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति ।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि सीहेसु उववज्जि-

गोशाल जीव विमलवाहन के अनेक दुःख प्रचुर भव, तदनन्तर देवभव—

११६. प्रश्न—'हे भदन्त ! सुमंगल अनगार के द्वारा अश्व सहित —यावत्—भस्म किया गया विमलवाहन राजा कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?'

उत्तर—हे गौतम ! सुमंगल अनगार के द्वारा अश्व सहित —यावत्—भस्म किये जाने पर वह विमलवाहन राजा अधःसप्तम पृथ्वी में उत्कृष्ट काल की स्थिति वाले नरकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा ।

तदनन्तर वह वहाँ से निकलकर मत्स्यों में उत्पन्न होगा। वहाँ शस्त्र के द्वारा घात होने पर दाहज्वर की पीड़ा से पीड़ित हो काल करके दूसरी बार उसी अधःसप्तम पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा ।

तत्पश्चात् वह वहाँ से उद्वर्तन कर दूसरी बार भी मत्स्यों में उत्पन्न होगा । वह वहाँ भी शस्त्र के द्वारा घात होने पर दाह से पीड़ित हो काल के समय काल करके छठी तमःप्रभापृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक होगा ।

तदनन्तर वह वहाँ से उद्वर्तन कर (निकलकर) स्त्री रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्राघात से घातित हो दाह ज्वर से पीड़ित हो काल मास में काल करके दूसरी बार भी छठी तमःप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा ।

इसके बाद वहाँ से निकलकर वह दूसरी बार भी स्त्रियों में उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाह ज्वर से पीड़ित हो काल के समय काल करके पाँचवीं धूमप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वह वहाँ से निकलकर उरःपरिसर्पों में उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाह से पीड़ित हो कालमास में काल करके दूसरी बार भी पाँचवीं धूम प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप में उत्पन्न होगा ।

इसके बाद वहाँ से निकलकर दूसरी बार भी उरःपरिसर्पों में उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र के द्वारा वध होने पर दाह से पीड़ित हो काल मास में काल करके चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर सिंहों में उत्पन्न होगा । वहाँ भी शस्त्र द्वारा वध होने पर दाह की पीड़ा से पीड़ित हो मरण समय मरकर दूसरी बार भी चौथी पंकप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा ।

तदनन्तर वह वहाँ से निकलकर दुबारा भी सिंहों में उत्पन्न

हिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता पक्खीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतिए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि तच्चाए वालुयप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से ण तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि पक्खीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सिरीसवेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि दोच्चाए सक्करप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओणंतरं उव्वट्टित्ता दोच्चं पि सिरीसवेसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसकालट्ठिइयंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा असण्णीसु उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं पि इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए पलिओवमस्स असंखेज्जइभागट्ठियंसि नरगंसि नेरइयत्ताए उववज्जिहिति।

होगा। वहाँ भी शस्त्र द्वारा वध किये जाने पर दाह ज्वर से पीड़ित हो कालमास में काल करके तीसरी बालुका प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

इसके बाद वहाँ से निकलकर पक्षियों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र के द्वारा मारा जाकर दाह से पीड़ित हो काल मास में काल करके दूसरी बार तीसरी बालुका प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

तदनन्तर वह वहाँ से निकलकर दूसरी बार भी पक्षियों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र वध और दाह से आक्रान्त होकर काल के समय में काल करके दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से उदवर्तन करके सरीसृपों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र वध्य एवं दाह से पीड़ित होकर कालमास में काल करके दूसरी बार भी दूसरी शर्करा प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट स्थिति वाले नरकावासों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

इसके अनन्तर वहाँ से निकलकर वह दुबारा भी सरीसृपों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्रघात से घातित और दाह से पीड़ित होकर काल के समय काल करके इस रत्न प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट काल स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर वह संज्ञी जीवों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र वध्य और दाह से आक्रान्त हो काल के समय में काल करके असंज्ञी जीवों में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्र से मारा जाकर और दाह से पीड़ित हो काल के समय काल करके दूसरी बार भी इसी रत्न प्रभा पृथ्वी में पल्योपम के असंख्यातवें भाग स्थिति वाले नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता जाइं इमाइं खहयरविहाणाइं भवंति, तं जहा—चम्मपक्खीणं, लोमपक्खीणं, समुग्गपक्खीणं, विययपक्खीणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

इसके अनन्तर वहाँ से निकलकर खेचर जीवों के जो भेद हैं यथा—चर्मपक्षी, लोमपक्षी, समुद्गकपक्षी और विततपक्षी उनमें अनेक लाखों बार मर-मरकर बार-बार वहीं उत्पन्न होता रहेगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं भुयपरिसप्पविहाणाइं भवंति, तं जहा—गोहाणं, नउलाणं, जहा पण्णवणापए-जाव-जाहगाणं चउप्पाइयाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

वहाँ सर्वत्र शस्त्र से मारा जाने और दाह से पीड़ित हो काल के समय काल करके जो भुजपरिसर्पों के भेद हैं, यथा—गोह, नकुल इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र में बताये हैं, उन सभी में यावत्—जाहक चतुष्पद जीवों में अनेक लाखों बार मर-मरकर वहीं बार-बार उत्पन्न होगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं उरपरिसप्पविहाणाइं भवंति, तं जहा—अहीणं, अयगराणं, आसालियाणं, महोरगाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति।

वहाँ भी सर्वत्र शस्त्र वध्य और दाह से आक्रान्त हो मरण के समय मरण करके जो उरःपरिसर्पों के भेद हैं, यथा—सर्प, अजगर, आशालिका और महोरग, उनमें अनेक लाखों बार मर-मर कर बार बार उन्हीं में उत्पन्न होगा।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा

वहाँ सर्वत्र शस्त्रवध्य एवं दाह से आक्रान्त होकर मरण के

जाइं इमाइं चउप्पयविहाणाइं भवंति, तं जहा—एगखुराणं, दुखुराणं, गंडीपयाणं, सणहप्पयाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं जलयरविहाणाइं भवंति, तं जहा—मच्छाणं, कच्छभाणं-जाव-सुंसुमाराणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं चउरिंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा—अंधियाणं, पोत्तियाणं, जहा पण्णवणापदे जाव-गोमयकीडाणं, तेसु अणेगसय सहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं तेइंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा—उवचियाणं-जाव-हत्थिसोंडाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं बेइंदियविहाणाइं भवंति, तं जहा—पुलाकिमियाणं-जाव-समुद्दलिक्खाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे-दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं वणस्सइविहाणाइं भवंति, तं जहा—रुक्खाणं, गुच्छाणं-जाव-कुहणाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ—उस्सन्नं च णं कडुयरुक्खेसु, कडुयवल्लीसु ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं वाउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—पाईणवायाणं-जाव-सुद्धवायाणं तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं तेउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—इंगलाणं-जाव-सूरकंतमणिनिस्सियाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं आउक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—ओसाणं जाव-खातोदगाणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ—उस्सन्नं च णं खारोदएसु खत्तोदएसु ।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा जाइं इमाइं पुढविक्काइयविहाणाइं भवंति, तं जहा—पुढवीणं,

समय मरकर जो चतुष्पदों के भेद हैं यथा—एक खुर वाले, दो खुर वाले, गण्डीपद, सनखपद, उनमें अनेक लाखों बार मरण करके वहीं बार-बार उत्पन्न होगा ।

उनमें भी सर्वत्र शस्त्र वध्य और दाह से पीड़ित होकर काल के समय मरण करके जो जलचर जीवों के भेद हैं, यथा—मत्स्य, कच्छप—यावत्—सुंसुमार उनमें अनेक लाखों बार मरण करके वहीं पुनः पुनः उत्पन्न होगा ।

वहाँ भी सर्वत्र शस्त्र से मारा जाकर और दाह से पीड़ित हो काल मास में काल करके जो चतुरिन्द्रिय जीवों के भेद हैं, यथा—अन्धिक, पौत्तिक इत्यादि प्रज्ञापना सूत्र के प्रथम पद के अनुसार—यावत्—गोमय कीटों में अनेक लाखों बार मर मर कर वहीं बार-बार उत्पन्न होगा ।

वहाँ भी सर्वत्र शस्त्र वध्य एवं दाह से आक्रान्त हो मरण में मरण करके जो त्रीन्द्रिय जीवों के भेद हैं, यथा—उपचित—यावत्—हस्ती शोण्ड, उनमें अनेक लाखों बार मर-मर कर उन्हीं में बारबार उत्पन्न होगा ।

वहाँ भी सर्वत्र शस्त्र वध्य और दाह पीड़ित हो काल मास में काल करके जो द्वीन्द्रिय जीवों के प्रकार हैं, यथा—पुलाकृमि—यावत्—समुद्रलिक्षा, उनमें अनेक लाखों बार मर कर वहीं बार-बार उत्पन्न होगा ।

वहाँ भी शस्त्र वध्य और दाह से पीड़ित हो काल के समय काल करके जो वनस्पतिकायिक के भेद हैं, यथा—वृक्ष, गुच्छ—यावत्—कुहुना उनमें अनेक लाखों बार मर-मर कर वहीं बारम्बार उत्पन्न होगा—विशेषकर कटुरस वाले वृक्षों और बेलों में उत्पन्न होगा ।

वहाँ सर्वत्र शस्त्र से घातित होकर और दाह से पीड़ित हो मरण समय में मरण करके जो वायुकायिक जीवों के भेद हैं, यथा—पूर्व वायु—यावत्—शुद्ध वायु, उनमें अनेक लाखों बार मर मरकर बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होगा ।

वहाँ भी शस्त्रवध्य और दाह से आक्रान्त हो काल के समय काल करके जो तेजस्कायिक जीवों के भेद हैं, यथा—अंगार—यावत्—सूर्यकान्त मणि से निःश्रित अग्नि, उनमें अनेक लाखों बार मर-मर कर पुनः पुनः उनमें उत्पन्न होगा ।

वहाँ सर्वत्र शस्त्रवध्य और दाहाक्रान्त हो काल मास में काल करके जो अप्काय के जीवों के भेद हैं, यथा—ओस यावत्—खाई का पानी, उनमें लाखों बार मर-मर कर वहीं बार-बार उत्पन्न होगा, विशेष कर खारे पानी और खाई के पानी में उत्पन्न होगा ।

वहाँ सर्वत्र शस्त्रवध्य और दाहाक्रान्त हो मरण समय में मरण करके जो पृथ्वीकायिक जीवों के भेद हैं, यथा—पृथ्वी,

सक्कराणं-जाव-सूरकंताणं, तेसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव-तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाहिति— उस्सन्नं च णं खरबायर-पुढविकाइएसु।

सव्वत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा रायगिहे नगरे बाहिं खरियत्ताए उववज्जिहिति। तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा दोच्चं वि रायगिहे नगरे अंतो खरियत्ताए उववज्जिहिति।

तत्थ वि णं सत्थवज्झे दाहवक्कंतीए कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले सण्णिवेसे माहणकुलंसि दारियत्ताए पच्चायाहिति।

तए णं तं दारियं अम्मापियरो उम्मुक्कबालभावं जोव्वणगमणुप्पत्तं पडिरूवएणं सुंकेणं, पडिरूवएणं विणएणं, पडिरूवयस्स भत्तारस्स भारियत्ताए दलइस्संति। सा णं तस्स भारिया भविस्सति —इट्ठा कंता-जाव-अणुमया, भंडकरंडगसमाणा तेल्लकेला इव सुसंगोविया, चेलपेडा इव सुसंपरिग्गहिया, रयणकरंडओ विव सुसारक्खिया, सुसंगोविया, मा णं सीयं, मा णं उण्हं-जाव-परिसहोवसग्गा फुसंतु। तए णं सा दारिया अण्णदा कयावि गुव्विणी ससुरकुलाओ कुलघरं निज्जमाणी अंतरा दवग्गिजालाभिहया कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु अग्गिकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु असुरकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुसं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा दाहिणिल्लेसु नागकुमारेसु देवेसु देवत्ताए उववज्जिहिति।

से णं तओहिंतो अणंतरं एवं एएणं अभिलावेणं दाहिणिल्लेसु सुवण्णकुमारेसु, एवं विज्जुकुमारेसु, एवं अग्गिकुमारवज्जं-जाव-दाहिणिल्लेसे थणियकुमारेसु।

शर्करा—यावत्—सूर्य कान्तमणि, उनमें अनेक लाखों बार मर मर करके वहीं बार बार उत्पन्न होगा, विशेषकर खर बादर पृथ्वीकायिक जीवों में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी सर्वत्र शस्त्रवध्य और दाहाक्रान्त हो काल के समय में काल करके राजगृह नगर के बाहर नौकरानी के रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ भी शस्त्रवध्य और दाहाक्रान्त हो काल मास में काल करके दूसरी बार भी राजगृह नगर के अन्दर नौकरानी के रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ भी शस्त्रवध्य एवं दाह से आक्रान्त हो मरण समय में मरण करके इसी जम्बूद्वीप के भरतक्षेत्र में विन्ध्य पर्वत की तलहटी में स्थित बेभेल सन्निवेश में ब्राह्मण कुल में बालिका रूप से उत्पन्न होगा।

इसके पश्चात् जब वह बालिका बाल्यावस्था का त्याग कर यौवनावस्था को प्राप्त होगी तब उसके माता पिता उचित द्रव्य और उचित विनय द्वारा उचित पति को भार्या रूप में प्रदान करेंगे। वह उसकी इष्ट, कान्त—यावत्—अनुमत, आभूषणों की करंडिका तुल्य, तेल की कुप्पी के समान, अत्यन्त सुरक्षित वस्त्र की पेटी के समान, सुसंगृहीत, रत्नकरंडिका के समान सुरक्षित शीत, उष्ण—यावत्—परीषह—उपसर्ग उसे स्पर्श न करें इस प्रकार अत्यन्त संगोपित भार्या होगी। इसके बाद वह बालिका किसी समय गर्भवती होगी और अपने ससुराल से पीहर जाती हुई मार्ग में दावाग्नि की ज्वाला से जलकर काल के समय काल करके दक्षिण दिशावर्ती अग्निकुमार देवों में देवरूप से उत्पन्न होगी।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर मनुष्य के शरीर को प्राप्त करेगी, प्राप्त करके केवल बोधि (सम्यक्त्व) को धारण करेगा, धारण करके मुण्डित हो गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा। वहाँ भी विराधित श्रामण्य वाला (विराधक) होकर मरण समय में मरण करके दक्षिण दिशा के असुरकुमार देवों में देवरूप से उत्पन्न होगा।

इसके बाद वहाँ से निकलकर मनुष्य शरीर धारण करेगा, धारण करके केवलबोधि को प्राप्त करेगा, बोधि प्राप्त करके मुण्डित हो गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा। वहाँ भी विराधित श्रामण्य वाला होकर कालमास में काल करके दक्षिण दिशावर्ती नागकुमार देवों में देवरूप से उत्पन्न होगा।

तत्पश्चात् वह वहाँ से निकलकर इसी प्रकार के अभिलाप से दक्षिण दिशावर्ती सुवर्ण कुमार देवों में उत्पन्न होगा, इसी प्रकार विद्युत कुमार देवों में; इसी प्रकार अग्निकुमार देवों को छोड़कर यावत्—दक्षिण दिशावर्ती स्तनित कुमार देवों में उत्पन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं उव्वट्टित्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं विराहियसामण्णे जोइसिएसु देवेसु उववज्जिहिति।

तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर मनुष्य विग्रह (शरीर) प्राप्त करेगा, प्राप्त करके केवलबोधि ग्रहण करेगा, ग्रहण करके और मुण्डित हो कर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा। वहाँ भी विराधित श्रामण्य वाला होकर ज्योतिषिक देवों में देव रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं अविराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति।

इसके बाद वहाँ से च्यवित होकर मनुष्य का शरीर प्राप्त करेगा, प्राप्त करके केवलबोधि (सम्यक्त्व) ग्रहण करेगा, ग्रहण करके मुण्डित हो गृह त्याग कर अनगार दीक्षा स्वीकार करेगा। वहाँ श्रामण्य पर्याय की विराधना न करके मरण समय में मरण कर सौधर्मकल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति। तत्थ वि णं अविराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सणंकुमारे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिति।

तत्पश्चात् वहाँ से च्यवित होकर मनुष्य शरीर धारण करेगा वहाँ श्रमण पर्याय की विराधना न करके काल के समय में काल करके सनत्कुमार कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओहिंतो एवं जहा सणंकुमारे तहा बंभलोए, महासुक्के, आणए, आरणे।

इसके बाद वहाँ से च्यवित होकर मनुष्य होगा। जिस प्रकार सनत्कुमार देवलोक के विषय में कहा है, उसी प्रकार ब्रह्मलोक, महाशुक्र, आनत और आरण देवलोकों के विषय में कहना चाहिये।

से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता माणुस्सं विग्गहं लभिहिति, लभित्ता केवलं बोहिं बुज्झिहिति, बुज्झित्ता मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइहिति। तत्थ वि य णं अविराहियसामण्णे कालमासे कालं किच्चा सव्वट्ठसिद्धे महाविमाणे देवत्ताए उववज्जिहिति।

तदनन्तर वहाँ से च्यवित होकर मनुष्य का शरीर प्राप्त करेगा, प्राप्त करके केवलबोधि को ग्रहण करेगा, ग्रहण करके मुण्डित हो गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगा। वहाँ श्रमण पर्याय की विराधना न करके मरण के समय मरण करके सर्वार्थसिद्ध महाविमान में देवरूप से उत्पन्न होगा।

गोसालजीवस्स दढपइण्णभवे सिद्धिगमणनिरूवणं

११७. से णं तओहिंतो अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे जाइं इमाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं-जाव-अपरिभूयाइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चायाहिति, एवं जहा ओववाइए दढप्पइण्ण-वत्तव्वया सच्चेव वत्तव्वया निरवसेसा भाणियव्वा-जाव-केवलवरनाण-दंसणे समुप्पज्जिहिति।

गोशाल जीव का दृढ़ प्रतिज्ञ भव में सिद्धि गमन निरूपण—

११७. तदनन्तर वह वहाँ से च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में जो धनाढ्य—यावत्—अपराभूत कुल है, उस प्रकार के कुलों में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा, जिस प्रकार औपपातिक सूत्र में दृढ़ प्रतिज्ञ की वक्तव्यता कही है, वही सब वक्तव्यता निरवशेष रूप से यहाँ कहना चाहिये—यावत्—उत्तम केवलज्ञान और केवल-दर्शन उत्पन्न होगा।

तए णं से दढप्पइण्णे केवली अप्पणो तीतद्धं आभोएहिइ, आभोएत्ता समणे निग्गंथे सद्दावेहिति, सद्दावेत्ता एवं वदिहिइ—एवं खलु अहं अज्जो! इओ चिरातीयाए अद्धाए गोसाले नामं मंखलिपुत्ते होत्था समणघायए-जाव-छउमत्थे चेव कालगए, तम्मूलगं च णं अहं अज्जो अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंत-संसारकंतारं अणुपरियट्टिए, तं मा णं अज्जो! तुब्भं केयि भवतु आयरिय पडिणीए उवज्झायपडिणीए आयरिय-उवज्झायाणं अयस-कारए अवण्णकारए अकित्तिकारए, मा णं से वि एवं चेव अणादीयं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतसंसारकंतारं अणुपरियट्टिहिति, जहा णं अहं।

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली अपने अतीत काल का अवलोकन करेंगे, अवलोकन करके श्रमण निर्ग्रन्थों को सम्बोधित करेंगे, सम्बोधित कर इस प्रकार कहेंगे—'हे आर्यो! आज से बहुत साल पहले मैं गोशाल नामक मंखलिपुत्र था, जो श्रमणों का घातक—यावत्—छद्मस्थावस्था में काल धर्म को प्राप्त हुआ था, उसके कारण हे आर्यो! मैं अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाली चतुर्गति रूप संसार—अटवी में भटका। इसलिये हे आर्यो! तुम में से कोई भी आचार्य प्रत्यनीक (आचार्य से द्वेष करने वाले) मत होना, उपाध्याय, प्रत्यनीक मत होना, आचार्य उपाध्याय के अपयश करने वाले, अवर्णवाद करने वाले और अप-कीर्ति करने वाले मत होना, और मेरे समान अनादि, अनन्त और दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कांतार में भ्रमण मत करना।

तए णं ते समणा निग्गंथा दढप्पइण्णस्स केवलिस्स अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था तसिया संसारभउव्विग्गा दढप्पइण्णं केवलिं वंदिहिंति नमंसिहिंति, वंदित्ता नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोएहिंति पडिक्कमिहिंति निंदिहिंति-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जिहिंति।

तए णं से दढप्पइण्णे केवली बहूइं वासाइं केवलिपरियागं पाउणिहिति, पाउणित्ता अप्पणो आउसेसं जाणेत्ता भत्तं पच्चक्खाहिति, एवं जहा ओववाइए-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं काहिति।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति-जाव-विहरइ।

—भग० श० १५

तब वे श्रमण निर्ग्रन्थ दृढ़ प्रतिज्ञ केवली के इस कथन को सुनकर और हृदय में मनन कर भयभीत होंगे, त्रस्त होंगे, त्रसित होंगे और संसार के भय से उद्विग्न होकर दृढ़ प्रतिज्ञ केवली को वंदन-नमस्कार करेंगे, वंदन-नमस्कार करके उस पाप रूप स्थान की आलोचना करेंगे, प्रतिक्रमण करेंगे और निन्दा करेंगे—यावत्—यथा योग्य प्रायश्चित्त एवं तपःकर्म स्वीकार करेंगे।

तत्पश्चात् वे दृढ़प्रतिज्ञ केवली बहुत वर्षों तक केवली पर्याय का पालन करेंगे, पालन करके अपना शेष आयुष्य अल्प रहा जानकर भक्त प्रत्याख्यान करेंगे। इस प्रकार जैसा औपपातिक सूत्र में वर्णन किया गया है, तदनुसार वर्णन जानना चाहिये—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करेंगे।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, ऐसा कहकर गौतम स्वामी—यावत्—विचरते हैं।

मार्गदर्शक :- आचार्य श्री सुविधिसागर जी महाराज

छट्ठो खंधो

पइण्णयकहाणगाणि

अज्झयणा

1. महावीरतित्थे—सेणिय-चेल्लणा-आलोयणेण साहु-साहुणीणं नियाणपसंगो
2. महावीरतित्थे—रहमुसलसंगामो
3. महावीरतित्थे—रहमुसलसंगामे कालाईणं मरणकहा
4. महावीरतित्थे—महासिलाकंटयसंगामकहाणयं
5. महावीरतित्थे—विजयतक्करणायं
6. महावीरतित्थे—मयूरीअंडणायं
7. महावीरतित्थे—कुम्मणायं
8. महावीरतित्थे—रोहिणीणायं
9. महावीरतित्थे—आसणायं
10. महावीरतित्थे—मियापुत्तकहाणयं
11. महावीरतित्थे—उज्झिययकहाणयं
12. महावीरतित्थे—अभग्गसेणकहाणयं
13. महावीरतित्थे—सगडकहाणयं
14. महावीरतित्थे—बहस्सइदत्तकहाणयं
15. महावीरतित्थे—नंदिवद्धणकुमारकहाणयं
16. महावीरतित्थे—उंबरदत्तकहाणयं
17. महावीरतित्थे—सोरियदत्तकहाणयं
18. महावीरतित्थे—देवदत्ताकहाणयं
19. महावीरतित्थे—अंजूकहाणयं
20. महावीरतित्थे—पूरणबालतवस्सिकहाणयं
21. महावीरतित्थे—महासुक्कदेवाणं भगवओ महावीरस्स समीवे आगमणपसंगो

षष्ठ स्कन्ध

प्रकीर्णक कथानक

अध्ययन

1. महावीर तीर्थ में—श्रेणिक-चेलना के अवलोकन से साधु-साध्वियों द्वारा कृत निदान प्रसंग
2. महावीर तीर्थ में—रथ-मूसन्न संग्राम
3. महावीर तीर्थ में—रथ-मूसल संग्राम में काल आदि की मरण-कथा
4. महावीर तीर्थ में—महाशिला कंटक संग्राम कथा
5. महावीर तीर्थ में—विजयतस्कर ज्ञात
6. महावीर तीर्थ में—मयूरी अंड ज्ञात
7. महावीर तीर्थ में—कूर्म ज्ञात
8. महावीर तीर्थ में—रोहिणी ज्ञात
9. महावीर तीर्थ में—अश्व ज्ञात
10. महावीर तीर्थ में—मृगापुत्र कथानक
11. महावीर तीर्थ में—उज्झितक कथानक
12. महावीर तीर्थ में—अभग्नसेन कथानक
13. महावीर तीर्थ में—शकट कथानक
14. महावीर तीर्थ में—बृहस्पतिदत्त कथानक
15. महावीर तीर्थ में—नन्दीवर्धनकुमार कथानक
16. महावीर तीर्थ में—उम्बरदत्त कथानक
17. महावीर तीर्थ में—शौरिकदत्त कथालक
18. महावीर तीर्थ में—देवदत्ता कथानक
19. महावीर तीर्थ में—अंजू कथानक
20. महावीर तीर्थ में—पूरण बाल तपस्वी कथानक
21. महावीर तीर्थ में—महाशुक्र देवों का भगवान महावीर के समीप आगमन प्रसंग

१. सेणिय-चेल्लणावलोयणेण साहु-साहुणीकय-निदाणकरणपसंगो—

रायगिहे सेणियराया —

१. तेणं कालेणं, तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था। वण्णओ। गुणसिलए चेइए। वण्णओ। रायगिहे नयरे सेणिए राया होत्था। रायवण्णओ जहा उववाइए-जाव-चेलणाए सद्धिं० [भोगे भुंजमाणे] विहरइ।

भगवंतमहावीरागमणवुत्तंतजाणणट्ठा सेणियस्स कोडुम्बिय-पुरिसे पइ आएसो—

२. तए णं से सेणिए राया अण्णया कयाइ ण्हाए, कय-बलिकम्मे, कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते, सिरसा ण्हाए, कंठे मालकडे, आविद्ध-मणिसुवण्णे, कप्पिय-हारद्धहार-तिसरय-पालंब-पलंबमाण-कडिसुत्तय-सुकयसोभे, पिणद्ध-गेवेज्ज-अंगुलिज्जगे-जाव-कप्परुक्खए चेव सुअलंकियविभूसिए णरिंदे। सकोरंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं-जाव-ससि व्व पियदंसणे नरवई जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सिंहासणे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिंहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ, निसीइत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—

"गच्छह णं तुम्हे देवाणुप्पिया! जाइं इमाइं रायगिहस्स णयरस्स बहिया आरामाणि य, उज्जाणाणि य आएसणाणि य, आयतणाणि य देवकुलाणि य, सभाओ य पवाओ य पणियगिहाणि य, पणियसालाओ य छुहा-कम्मंताणि य, वणियकम्मंताणि य कट्ठ-कम्मंताणि य, इंगालकम्मंताणि य वणकम्मंताणि य, दब्भकम्मंताणि य जे तत्थेव महत्तरगा आणत्ता चिट्ठंति ते एवं वदह - एवं खलु देवाणुप्पिया! सेणिए राया भंभसारे आणवेइ—जदा णं समणे

१. श्रेणिक चेलना के अवलोकन से साधु साध्वियों द्वारा कृत निदान प्रसंग—

राजगृह में श्रेणिक राजा—

१. उस काल और उस समय में राजगृह नाम का नगर था। नगर का वर्णन करो। गुण शिलक चैत्य था। चैत्य का वर्णन करो। उस राजगृह नगर में श्रेणिक राजा था। चेलना के साथ (भोगों को भोगता हुआ) विचरता था (राजा का सभी वर्णन औपपातिक सूत्र के अनुसार करो।

भगवान महावीरागमन वृत्तान्त जानने के लिये श्रेणिक राजा का कौटुम्बिक पुरुषों को आदेश—

२. तत्पश्चात् किसी एक समय श्रेणिक राजा ने स्नान किया, बलि-कर्म किया, कौतुक मंगल-प्रायश्चित्त किया, सिर से स्नान किया, कंठ में पुष्प मालायें धारण की, मणि जटित स्वर्ण के आभूषण पहने, हार, अर्धहार, त्रिसर (तिलड़ी) पहना, कमर में लम्बा लटकता कटिसूत्र (कंदोरा, करधनी) धारण किया, जिससे वह अत्यन्त सुशोभित हुआ, गले में ग्रैवेयक (गलपटिया—गले में पहनने का आभूषण विशेष) धारण किया, अंगुलियों में अंगूठियाँ पहनी—यावत्—कल्पवृक्ष की तरह वह नरेन्द्र अलंकृत एवं विभूषित हुआ। कौरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण कर यावत्-चन्द्रमा के समान जिसका दर्शन प्रिय है ऐसा वह नरपति जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, उसमें जहाँ सिंहासन रखा था, वहाँ आया, आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके बैठा, बैठकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा —

'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और राजगृह नगर के बाहर जो कोई भी आराम, उद्यान, शिल्पशालायें, आयतन, देवकुल, सभायें, प्रपायें (प्याउयें) पण्यगृह (दुकानें) पण्यशालायें (हाट, दुकानें, बाजार सुधाकर्मान्त (चूने के भट्टे) वणिज शालायें, (लकड़ी के कारखाने, ईंधन कोयले के कारखाने) वनकर्मान्त (वनस्पति के कारखाने) दर्भकर्मान्त (घास के स्थान, तृण घास आदि से टोकनी चटाई आदि बनाने के स्थान) हैं और वहाँ जो मुखिया या नौकर हैं, उनसे यह कहना—'देवानुप्रियो! श्रेणिक

भगवं महावीरे, आइगरे, तित्थयरे-जाव-संपाविउकामे पुव्वाणुपुव्विं चरेमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे, सुहं सुहेण विहरमाणे, संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे इहमागच्छेज्जा, तया णं तुम्हे भगवओ महावीरस्स अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणह, अहापडिरूवं उग्गहं अणुजाणेत्ता सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स एयमट्ठं पियं णिवेदह।"

राजा भंभसार ने इस प्रकार आज्ञा दी है कि जब भी धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर—यावत्—सिद्धगति को प्राप्त करने के लिये अग्रसर श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए, सुखपूर्वक विहार करते हुए और संयम तप से आत्मा को भावित करते हुए जब यहाँ आयें तब तुम भगवान् महावीर को यथाप्रतिरूप अवग्रह (आवास स्थान) की आज्ञा देना, यथाप्रतिरूप अवग्रह की आज्ञा-अनुमति देकर श्रेणिक राजा भम्भसार को इस प्रिय अर्थ समाचार को निवेदन करो अर्थात् भगवान् के पधारने की सूचना दो।"

३. तए णं ते कोडुम्बिय-पुरिसे सेणिएणं रन्ना भंभसारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-जाव-हियया-जाव-"एवं सामी ! तह" त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणित्ता सेणियस्स रन्नो अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जाइं इमाइं रायगिहस्स बहिया आरामाणि वा-जाव-जे तत्थ महत्तरगा आणत्ता चिट्ठंति, ते एवं वयंति-जाव-सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं पियं निवेदेज्जा, पियं भे भवतु दोच्चंपि तच्चंपि एवं वदंति, वइत्ता-जाव-जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

३. तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने श्रेणिक (राजा) भम्भसार द्वारा दिये गये आदेश को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय से—यावत्—कहा—'हे स्वामिन् !' इसी प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया, स्वीकार करके श्रेणिक राजा के पास से निकले, निकलकर राजगृह नगर के बीचोंबीच में से निकले, निकलकर राजगृह नगर के बाहर जो कोई भी आराम अथवा यावत्—वहाँ जो मुखिया और नौकर थे, उनसे इस प्रकार कहा—यावत्—श्रेणिक राजा को इस प्रिय संवाद का निवेदन करो, आपको वह प्रिय होगा, दूसरी और तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा और कहकर—यावत्—जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये।

भगवओ महावीरस्स समोसरणं—

४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे-जाव-गामाणुगामं दूइज्जमाणे-जाव-अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिय-चउक्क-चच्चर-एवं-जाव-परिसा निग्गया-जाव-पज्जुवासइ।

भगवान् महावीर का समवसरण—

४. इस काल और उस समय धर्म की आदि करने वाले तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर—यावत्—ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए विराजमान हुए।

तत्पश्चात् राजगृह नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों में इस प्रकार—यावत्—परिषदा निकली—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

महत्तरएहिं सेणियसमक्खं भगवंतआगमणनिवेयणं—

५. तए णं महत्तरगा जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदंति नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता नाम-गोयं पुच्छंति, नाम-गोयं पुच्छित्ता नाम-गोयं पधारेंति, पधारित्ता एगओ मिलंति, एगओ मिलित्ता एगंतमवक्कमंति, एगंतमवक्कमित्ता एवं वयासी—

"जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया भंभसारे दंसणं कंखति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पीहेति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं पत्थेति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया दंसणं अभिलसति, जस्स णं देवाणुप्पिया ! सेणिए राया नामगोत्तस्स वि सवणयाए हट्ठतुट्ठ-जाव-भवति, से णं समणे

महत्तरकों द्वारा श्रेणिक के समक्ष भगवन्तागमन निवेदन—

५. इसके पश्चात् वे महत्तरक (मुखिया) जहाँ श्रमण भगवान् महावीर थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वंदन-नमस्कार करते हैं, वंदन-नमस्कार करके नाम-गोत्र पूछते हैं, नाम गोत्र को पूछकर नाम-गोत्र का विचार-निश्चय करते हैं, विचार-निश्चय करके एक साथ मिलते हैं—एक स्थान पर एकत्रित होते हैं, एकत्रित होकर एकान्त स्थान में जाते हैं और एक स्थान में जाकर इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा भम्भसार जिनके दर्शन की आकांक्षा करते हैं, हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा जिनके दर्शन की स्पृहा-इच्छा करते हैं, हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा जिनके दर्शन की प्रार्थना करते हैं, हे देवानुप्रियो ! श्रेणिक राजा जिनके नाम और गोत्र को भी सुनकर हर्षित, सन्तुष्ट हो जाते हैं, वे

भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे-जाव-सव्वण्णू सव्वदंसी, पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे, गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे इह आगए, इह समोसढे, इह संपत्ते-जाव-अप्पाणं भावेमाणे सम्मं विहरति । तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! सेणियस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेमो - पियं भे भवतु" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता जेणेव रायगिहे णयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता रायगिह-नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सेणियस्स रण्णो गिहे, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छंति । उवागच्छित्ता सेणियं रायं करयलपरिग्गहियं-जाव-जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावित्ता एवं वयासी—

धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर—यावत्—सर्वज्ञ-सर्वदर्शी श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम में गमन करते हुए सुखे-सुखे विहार करते हुए यहाँ आये हैं यहाँ समवसृत हुए हैं—पधारे हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं—यावत्—आत्मा को भावित करते हुए सम्यक् प्रकार से अथवा समभावपूर्वक विचर रहे हैं । अतएव देवानुप्रियो ! हम चलें और श्रेणिक राजा को यह अर्थ-संवाद निवेदन करें—हमारे लिये यह प्रियकारी होगा ।" इस प्रकार कहकर उन्होंने परस्पर एक-दूसरे के वचन-कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ राजगृह नगर था, वहाँ आये, आकर राजगृह नगर के मध्य भाग में से होते हुए जहाँ श्रेणिक राजा का आवासगृह था, उसमें जहाँ श्रेणिक राजा थे वहाँ पहुँचे । वहाँ पहुँचकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—जय-विजय शब्दों से श्रेणिक राजा को बधाया और बधाकर इस प्रकार बोले—

"जस्स णं सामी ! दंसणं कंखति-जाव-से णं समणे भगवं महावीरे गुणसिले चेइए-जाव-विहरति । तस्स णं देवाणुप्पिया ! पियं निवेदेमो । पियं भे भवतु ।"

"स्वामिन् ! जिनके दर्शन की आप आकांक्षा करते हैं—यावत् वे श्रमण भगवान् महावीर गुणशिलक चैत्य में—यावत् विचरण कर रहे हैं । देवानुप्रिय ! हम उस प्रिय संवाद को निवेदन करते हैं । यह आपको प्रिय हो ।"

सेणियस्स रायगिहनगरसोभाकरणाऽऽएसो, जाणाइआणयणाएसो य

श्रेणिक का राजगृह नगर शोभाकरण आदेश और यानादि आनयन आदेश—

६. तए णं से सेणिए राया तेसिं पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए सीहासणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठित्ता वंदति नमंसति; वंदित्ता नमंसित्ता ते पुरिसे सक्कारेइ, सम्माणेइ, सक्कारित्ता सम्माणित्ता विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलइ, दलइत्ता पडिविसज्जेति । पडिविसज्जित्ता नगरगुत्तियं सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! रायगिहं नगरं सब्भितर-बाहिरियं आसिय-संमज्जिओवलित्तं"-जाव-करित्ता पच्चप्पिणंति—

६. तत्पश्चात् उन पुरुषों से इस संवाद को सुनकर और हृदय में धारण कर श्रेणिक राजा हृष्ट-तुष्ट—यावत्—विकसित हृदय से सिंहासन से उठे, उठकर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उन पुरुषों का सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके आजीविका योग्य पुष्कल प्रीतिदान दिया, प्रीति दान देकर उन्हें विदा किया । विदा करके नगर गौप्तिकों—नगररक्षकों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शीघ्र ही राजगृह नगर के अन्दर-बाहर चारों ओर जल का छिड़काव करो, उसको झाड़-बुहार कर साफ करो और गोबर-चूने आदि से लीपो-पोतो"—यावत्—उन्होंने ऐसा करके आज्ञा को वापस लौटाया अर्थात् आज्ञानुसार छिड़काव आदि करने की सूचना दी ।

तए णं से सेणिए राया बलवाउयं सद्दावेइ-सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! हय-गय-रह-जोह कलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह ।"

-जाव-से वि पच्चप्पिणइ ।

तए णं से सेणिए राया जाण-सालियं सद्दावेइ-जाव-जाणसालियं सद्दावित्ता एवं वयासी—

"भो देवाणुप्पिया ! खिप्पामेव धम्मियं जाण-पवरं जुत्तामेव

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने बलव्यापृत (सेनापति) को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"हे देवानुप्रिय ! शीघ्र ही अश्व-गज-रथ-योधाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को तैयार करो ।"

यावत्—उसने सेना को तैयार करके आज्ञा वापस लौटाई ।

इसके बाद श्रेणिक राजा ने वाहनशाला के प्रधान को बुलाया बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"देवानुप्रिय ! शीघ्र ही धार्मिक यान प्रवर (धार्मिक कार्यों

उवट्ठवित्ता मम एयमाणत्तियं पच्चप्पिणाहि ।"

तए णं से जाणसालिए सेणियरण्णा एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठ-जाव-हियए जेणेव जाणसाला तेणेव उवागच्छइ; उवागच्छित्ता जाण-सालं अणुप्पविसइ; अणुप्पविसित्ता जाणगं पच्चुवेक्खइ; पच्चुवेक्खित्ता जाणं पच्चोरुभति, पच्चोरुभित्ता जाणगं संपमज्जति, संपमज्जित्ता जाणगं णीणेइ, णीणेत्ता जाणगं संवट्टेति, संवट्टेत्ता दूसं पवीणेति, पवीणेत्ता जाणगं समलंकरेइ, जाणगं समलंकरित्ता जाणगं वरमंडियं करेइ, करित्ता जेणेव वाहणसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाहण-सालं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता वाहणाइं पच्चुवेक्खइ, पच्चुवेक्खित्ता वाहणाइं संपमज्जइ, संपमज्जित्ता वाहणाइं अप्फालेइ, अप्फालेत्ता वाहणाइं णीणेइ, णीणेइत्ता दूसे पवीणेइ, पवीणेत्ता वाहणाइं समलंकरेइ, समलंकरित्ता वराभरणमंडियाइं करेइ, करेत्ता वाहणाइं जाणगं जोएइ, जोएत्ता वट्टमग्गं गाहेइ, गाहित्ता पओद-लट्ठिं पओय-धरे अ सम्मं आरोहेइ, आरोहइत्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ। उवागच्छित्ता तए णं करयलं जाव एवं वयासी —

"जुत्ते ते सामी ! धम्मिए जाण-पवरे आदिट्ठे, भद्दं तव, आरुहाहि ।"

चेल्लणासहियस्स सेणियस्स समवसरणे गमणं भगवंत-पज्जुवासणा य

७. तए णं सेणिए राया भंभसारे जाणसालियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठे-जाव-मज्जणघरं अणुपविसइ, अणुपविसित्ता जाव-कप्परुक्खे चेव अलंकिए विभूसिए णरिंदे-जाव-मज्जण-घराओ पडिनिक्खमइ पडिनिक्खमित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणादेविं एवं वयासी —

"एवं खलु देवाणुप्पिए ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थयरे-जाव पुव्वाणुपुव्विं चरेमाणे-जाव-संजमेण तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तं महप्फलं देवाणुप्पिए ! तहारूवाणं अरहंताणं-जाव-तं गच्छामो देवाणुप्पिए ! समणं भगवं महावीरं वंदामो, नमंसामो, सक्कारेमो, सम्माणेमो, कल्लाणं, मंगलं, देवयं, चेइयं

के लिये उपयोग किये जाने वाले श्रेष्ठ रथ) को जोतकर उपस्थित करो और उपस्थित करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ, रथ लाने की मुझे सूचना दो ।"

तब वह यानशाला प्रधान श्रेणिक राजा की इस आज्ञा को सुनकर हृष्ट-तुष्ट—यावत् विकसित हृदय हो जहाँ यानशाला थी वहाँ आया, आकर यानशाला में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके यान-रथ का उसने निरीक्षण किया, निरीक्षण करके यान-रथ को नीचे उतारा, नीचे उतारकर यान को प्रमार्जित किया, साफ किया, प्रमार्जित करके रथ शाला से बाहर लाया, लाकर संवर्तित किया—(सुधार कर ठीक किया) संवर्तित करके ढाँकने के कपड़े को अलग किया, अलग करके यान को अलंकृत किया—सजाया, यान को समलंकृत करके यान को अच्छी तरह से मंडित किया, मंडित करके जहाँ वाहनशाला थी, वह वहाँ आया, वहाँ आकर उसने वाहन शाला में प्रवेश किया, प्रवेश करके रथ के योग्य वाहनों अश्वों-घोड़ों को देखा—उनका निरीक्षण किया, निरीक्षण करके अश्वों को पोंछा, पोंछकर घोड़ों को थपथपाया, थपथपाकर घोड़ों को बाहर निकाला, निकालकर उन पर ओढ़ाये हुए कपड़े को अलग किया, अलग करके घोड़ों को अलंकृत किया, अलंकृत करके उत्तम आभरणों से मंडित किया, मंडित करके घोड़ों को रथ में जोता, जोत कर रास्ते पर लिया, रास्ते पर लेकर चाबुक और सारथी को बैठाया, बैठाकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़े—यावत्—इस प्रकार कहा—

'हे स्वामिन् ! जैसा आपने आदेश दिया था, वैसा वह धार्मिक यानप्रवर जोतकर ले आया हूँ, आपके लिये मंगल-कल्याण रूप है, उस पर आप आरूढ़ हो बैठें ।"

चेलनासहित श्रेणिक का समवसरण में गमन और भगवद् पर्युपासना—

७. तदनन्तर श्रेणिक राजा भंभसार यानशाला के प्रधान से इस अर्थ-समाचार को सुनकर और अवधारित कर हर्षित-तुष्ट हो—यावत्—मज्जनगृह—स्नानघर में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर—यावत्—कल्पवृक्ष के समान अलंकृत और विभूषित होकर वह नरेन्द्र—यावत्—स्नानगृह से बाहर निकला, निकलकर जहाँ चेलना देवी थी वहाँ आया और आकर चेलना देवी से इस प्रकार बोला—

"देवानुप्रिये ! आदिकर, तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर—पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए—यावत्—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं विराज रहे हैं। हे देवानुप्रिये ! तथारूप अरिहंतों के वंदन-नमस्कार करने का महाफल है—यावत्—देवानुप्रिये ! हम चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करें सत्कार-सम्मान करें और कल्याण

पज्जुवासामो । एतं णं इहभवे य परभवे य हियाए, सुहाए, खमाए निस्सेयसाए-जाव-अणुगामियत्ताए भविस्सति ।"

मंगल-देव-चैत्य रूप उनकी पर्युपासना करें। यह हमारे लिये इस भव और परभव में हित, सुख, क्षेम और निःश्रेयस रूप कल्याणप्रद होगा—यावत्—अनुगामी रूप से पीछे-पीछे साथ जाने वाला होगा।"

८. तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रण्णो अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म हट्ठतुट्ठा-जाव-पडिसुणेइ, पडिसुणित्ता जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ण्हाया, कयबलिकम्मा, कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता, किं ते ? वर-पाय-पत्त-नेउरा, मणिमेखला-हार-रइय-उवचिय-कडग-खड्डुग-एगावलि—कंठसुत्त-मरगय-तिसरय-वर-वलय-हेमसुत्तय-कुण्डल-उज्जोइयाणणा, रयण विभूसियंगी, चीणंसुय-वत्थ-पवरपरिहिया, दुगुल्ल-सुकुमाल-कंत-रमणिज्ज-उत्तरिज्जा, सव्वोउय—सुरभि—कुसुम—सुन्दर—रचित-पलंब—सोहण-कंत-विकसंत-चित्तमाला, वर-चंदण-चच्चिया, वराभरण-विभूसियंगी, कालागुरु-धूव-धूविया, सिरि-समाण-वेसा, बहूहिं खुज्जाहिं चिलातियाहिं-जाव-महत्तर-गविंदपरिक्खित्ता, जेणेव बाहिरिया उवट्ठाण-साला, जेणेव सेणियराया, तेणेव उवागच्छइ ।

८. तब उस चेलना देवी ने श्रेणिक राजा के इस विचार को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हो—यावत्—स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ स्नान घर था, वहाँ पहुँची और पहुँचकर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल और प्रायश्चित किया और इसके बाद क्या किया ? सो कहते हैं—पैरों में उत्तम नूपुर (बिछुये) पहने कमर में मणि जटित करधनी, वक्षस्थल पर हार, हाथों में कड़े, अंगुलियों में अंगूठियाँ, गले में एकावलि, मंगलसूत्र पन्ने की तिलड़ी धारण की, भुजाओं में बाजूबंध बाँधे और मुख को उद्योतित करने वाले सोने से बनाये हुए कुण्डल पहने। रत्न के आभूषणों से अंग-अंग को विभूषित किया, उत्तम चीनांशुक वस्त्रों को पहना, सुकुमाल कांत-सुन्दर, रमणीय, रुई से बने उत्तरीय को ओढ़ा, सर्व ऋतुओं के सुगन्धित, सुन्दर कुसुमों से रचित लम्बी शोभनीक, कान्त विकसित, विविध प्रकार की मालायें धारण की, श्रेष्ठ चंदन का शरीर पर लेप किया, श्रेष्ठ अलंकारों से शरीर को अलंकृत किया, कृष्ण अगर आदि की धूप से धूपित हुई, इस प्रकार लक्ष्मी के समान वेश-भूषा से विभूषित हो बहुत सी कुब्जा और चिलात देश की दासियों यावत्—महत्तरक वृन्द से घिरी हुई होकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी और उसमें जहाँ श्रेणिक राजा था वहाँ आई।

९. तए णं से सेणिए राया चेल्लणादेवीए सद्धिं धम्मियं जाणपवरं दुरूहइ, दुरूहित्ता सकोरेंट-मल्ल-दामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं उववाइगमेणं णेयव्वं-जाव-पज्जुवासइ । एवं चेल्लणादेवी-जाव-महत्तरग-परिक्खित्ता, जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदति-नमंसति, वंदित्ता नमंसित्ता सेणियं रायं पुरओ काउं ठितिया चेव-जाव-पज्जुवासति ।

९. इसके बाद चेलनादेवी के साथ श्रेणिक राजा धार्मिक यान प्रवर पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर सिर पर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण करके औपपातिक सूत्र के अनुसार गमन आदि का वर्णन जानना चाहिए—यावत्—भगवान् के समीप पहुँचकर पर्युपासना करने लगा। इसी प्रकार चेलना देवी भी—यावत्—महत्तर वृन्द से परिवेष्टित हो जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराजमान थे, वहाँ आई, आकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके श्रेणिक राजा को आगे करके—यावत्—पर्युपासना करने लगी।

भगवओ धम्मदेसणा सेणियाइपरिसापडिगमणं च—

भगवान् की धर्म देशना और श्रेणिक आदि परिषदा का प्रतिगमन—

१०. तए णं समणे भगवं महावीरे सेणियस्स रण्णो भंभसारस्स, चेल्लणादेवीए, तीसे महइ-महालयाए परिसाए, इसि-परिसाए, जइ-परिसाए, मुणि-परिसाए, मणुस्स-परिसाए, देवपरिसाए, अणेगसयाए-जाव-धम्मो कहिओ । परिसा पडिगया, सेणियराया पडिगओ ।

१०. तदनन्तर श्रमण भगवान् महावीर ने श्रेणिक राजा भम्भसार, चेलना देवी और उस अनेक सैकड़ों संख्या वाली अति विशाल परिषदा, यति-परिषदा, मुनि-परिषदा, मनुष्य-परिषदा, देव-परिषदा को—यावत्—धर्म देशना दी। परिषदा वापस लौट गई। श्रेणिक राजा चला गया।

साहु-साहुणीणं नियाणकरणं—

साधु-साध्वियों का निदानकरण—

११. तत्थेगइयाणं निग्गंथाणं निग्गंथीण य सेणियं रायं चेल्लणं च

११. उनमें से किन्हीं-किन्हीं निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थनियों को

देविं पासित्ता णं इमे एयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए -जाव-महासुक्खे जे णं ण्हाए, कयबलिकम्मे, कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते, सव्वालंकारविभूसिए, चेल्लणा देवीए सद्धिं उरालाइं माणुसगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरति। न मे दिट्ठा देवा देवलोगंसि, सक्खं खलु अयं देवे। जइ इमस्स सुचरियस्स तव-नियम-बंभचेर-गुत्तिवासस्स कल्लाणे फलवित्ति-विसेसे अत्थि, तया वयमवि आगमेस्साइं इमाइं ताइं उरालाइं एयारूवाइं माणुसगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणा विहरामो।" से तं साहू।

श्रेणिक राजा एवं चेलना देवी को देखकर यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"अहो! श्रेणिक राजा महान् ऋद्धिशाली—यावत्—महासुखी है, जो स्नान कर बलिकर्म कर, कौतुक-मंगल और प्रायश्चित कर, समस्त आभरण अलंकारों से विभूषित हो चेलनादेवी के साथ उत्तम मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करता है—समय व्यतीत करता है। हमने देव और देवलोक नहीं देखे हैं, लेकिन ये तो साक्षात् देव है। यदि इस सु-आचरित तप, नियम, ब्रह्मचर्य, गुप्तिवास का यह कल्याण रूप फलवृत्ति विशेष है तो हम भी आगामी भव में इसी प्रकार के ऐसे ही, उदार मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करें। तभी हमारा साधुत्व (सफल) है।"

"अहो णं चेल्लणादेवी महिड्ढिया-जाव-महासुक्खा जा णं ण्हाया, कय-बलिकम्मा-जाव-कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता-जाव-सव्वालंकार विभूसिया, सेणिएणं रण्णा सद्धिं उरालाइं-जाव-माणुसगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ। न मे दिट्ठाओ देवीओ देवलोगंसि, सक्खा खलु इमा देवी। जइ इमस्स तव-नियम-बंभचेर-वासस्स कल्लाणे फलवित्ति-विसेसे अत्थि, वयमवि आगमिस्साइं इमाइं एयारूवाइं उरालाइं-जाव-विहरामो।" से तं साहुणी।

"अहो चेलना देवी महान् ऋद्धिशाली—यावत्—महासुखी है जो नहाकर, बलिकर्म कर—यावत्—कौतुक, मंगल और प्रायश्चित कर—यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित हो श्रेणिक राजा के साथ—यावत्—सर्वोत्तम मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरती है। हमने देवियों और देवलोकों को नहीं देखा है किन्तु यह तो साक्षात् देवी ही है। यदि इस सुचरित तप, नियम ब्रह्मचर्यवास का यह कल्याण रूप फलवृत्ति विशेष है तो हम भी आगामी भव में ऐसे और इस प्रकार के उदार मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण करें। तभी हमारा साध्वीपना सफल है।

भगवओ निदाणकरणनिसेहरूवं उवएसं साहु-साहुणीण पायच्छित्ताइकरणं—

भगवान् द्वारा निदान करण निषेध रूप उपदेश को सुनकर साधु-साध्वियों का प्रायश्चित करण—

१२. 'अज्जो' त्ति समणे भगवं महावीरे ते बहवे निग्गंथा निग्गंथीओ य आमंतेत्ता एवं वयासी—

१२. 'आर्यो!' इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर ने उन अनेक निर्ग्रन्थों और निर्ग्रन्थनियों को आमंत्रित-सम्बोधित कर इस प्रकार कहा—

"सेणियं रायं चेल्लणादेविं पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—अहो णं सेणिए राया महिड्ढिए-जाव-से तं साहू; अहो णं चेल्लणा देवी महिड्ढिया सुन्दरा-जाव-साहुणी। से णूणं अज्जो! अत्थे समट्ठे?"

"श्रेणिक राजा और चेलनादेवी को देखकर तुम लोगों को इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ है—'अहो श्रेणिक राजा महर्द्धिक—यावत्—तो हमारा साधुत्व सफल है, अहो चेलना देवी महान् ऋद्धिशाली सुन्दर है—यावत्—हमारा साध्वीपना सफल है। तो हे आर्यो! क्या यह अर्थ समर्थ है अर्थात् मेरा यह कथन सत्य है क्या?

"हंता, अत्थि।"

साधु-साध्वियों ने उत्तर दिया—'भदन्त! हाँ, आपका यह कथन सत्य है।'

"एवं खलु समणाउसो! मए धम्मे पन्नत्ते, तं जहा—[1]-जाव-एवं खलु समणाउसो! तस्स अणिदाणस्स इमेयारूवे कल्लाणफल-

इस पर भगवान् महावीर ने उन्हें समझाते हुए कहा—'आयुष्मन् श्रमणो! मेरे धर्म में बताया है अथवा मैंने धर्म देशना

१ 'जाव' इच्चेएण निद्दिट्ठं नियाणभेयाइनिरूवगं भगवंतवयणं दसासुयक्खंधाओ अवगंतव्वं, एत्थ आगमअणुओगगतचरणाणुओगे वि निदाणभेयाइ जाणियव्वं।

विगमे जं तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झति-जाव-सव्वदुक्खाणं अंतं करेइ।"

में कहा है—यथा—यावत्—इस प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणों! उस अनिदान का इस तरह का यह कल्याणप्रद फल विपाक होता है कि जो उसी भव ग्रहण से सिद्ध हो जाता है—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करता है।'

१३. तए णं ते बहवे निग्गंथा य निग्गंथीओ य समणस्स भगवओ अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म समणं भगवं महावीरं वंदंति नमंसंति, वंदित्ता, नमंसित्ता तस्स ठाणस्स आलोएंति पडिक्कमंति-जाव-अहारिहं पायच्छित्तं तवोकम्मं पडिवज्जंति।

—दसासुय० १०

१३. तब वे बहुत से निर्ग्रन्थ और निर्ग्रन्थियों ने श्रमण भगवान् महावीर से इस अर्थ को सुनकर और हृदय में अवधारित कर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उस स्थान (अयोग्य कार्य) की आलोचना प्रतिक्रमण की—यावत् यथोचित प्रायश्चित एवं तपोकर्म को स्वीकार किया।

२. रहमुसल-संगामो

२. रथमूसल-संग्राम

रहमुसले वज्जीणं 'जओ' त्ति निरूवणं—

१४. नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया—रहमुसले संगामे। रहमुसले णं भंते! संगामे वट्टमाणे के जइत्था? के पराजइत्था?

गोयमा! वज्जी, विदेहपुत्ते, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया जइत्था; नव मल्लई, नव लेच्छई पराजइत्था।

रथमूसल में वज्जी (राजाओं) का 'जय' यह निरूपण—

१४. "हे भगवन्! अरिहंत भगवान् से यह जाना है, अरिहंत भगवान् से यह सुना है, अरिहंत भगवान् से यह विशेष रूप से जाना है कि रथमूसल संग्राम है। हे भगवन्! जब रथ मूसल संग्राम हो रहा था तब कौन जीता था और कौन पराजित हुआ था? गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा।

भगवान ने उत्तर दिया—'हे गौतम! वज्जी, विदेहपुत्र और असुरेन्द्र, असुरकुमारराज चमर जीते थे और नव मल्लि और नव लच्छिवी राजा पराजित हुए थे।

कूणियस्स जुद्धपत्थाणं—

१५. तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! भूयाणंदं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-पवर-जोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।"

कोणिक का युद्ध स्थान—

१५. तत्पश्चात् रथ-मूसल संग्राम को उपस्थित जानकर कोणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियों! शीघ्र ही भूतानन्द नामक हस्ती श्रेष्ठ को सुसज्जित करो, अश्व, गज, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चातुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, सन्नद्ध करके मेरी इस आज्ञा को शीघ्र ही मुझे वापस लौटाओ—हाथी आदि को सुसज्जित करने की मुझे सूचना दो।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा कोणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामी! तह' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव

तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने कोणिक राजा के इस आदेश को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, चित्त में आनन्दित हो—यावत्—मस्तक पर अंजलि करके स्वामिन्! इसी प्रकार से कहकर विनय

छेयायरियोवएस-मति-कप्पणा-विकप्पेहिं सुनिउणेहिं उज्जलणेवत्थ-हव्वपरिवच्छियं सुसज्जं जाव-भीमं संगामियं अओज्झं भूयाणंदं हत्थिरायं पडिकप्पेंति, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेंति, सण्णाहेत्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कूणियस्स रण्णो तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

पूर्वक आज्ञा वचन को स्वीकार किया, स्वीकार करके शीघ्र ही कलाचार्य के उपदेश से प्राप्त बौद्धिक कल्पना से विचार करके, अपनी चतुराई से युद्ध में काम आने के लिए तैयार किये गये— यावत् भयंकर, संग्राम में ही जिसका उपयोग किया जाता है और अयोध्य (युद्ध में जिसका सामना न किया जा सके) भूतानन्द नामक हस्ती श्रेष्ठ को उज्ज्वल वस्त्राभूषणों आदि से सध्यरूप में आच्छादित करके सजाया, अश्व, गज, रथ और श्रेष्ठ योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को युद्ध के लिये सन्नद्ध किया, सन्नद्ध करके जहाँ कोणिक राजा था, वहाँ आये और आकर दोनों हाथ जोड़ एकत्रित दस नखों से सिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कोणिक राजा को उसकी आज्ञा वापस लौटाई।

तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए सण्णद्ध-बद्ध-वम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्ज-विमलवर-बद्धचिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं चउचामरवालवीजियंगे, मंगलजयसद्दकयालोए-जाव-जेणेव भूयाणंदे हत्थिराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भूयाणंदं हत्थिरायं दुरूढे।

तत्पश्चात् कोणिक राजा जहाँ स्नान घर था, वहाँ आया, आकर स्नान गृह में प्रवेश किया, प्रवेश करके स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित करके सर्व अलंकारों से विभूषित हो युद्ध के लिये उद्यत हो, शरीर पर कवच बाँधकर हाथों में शरासन पट्टिकाओं को धारण कर, वक्ष स्थल की रक्षा के लिये गले में ग्रैवेयक को पहन कर विमल वर संकेत पट्टक को बाँधकर आयुध और प्रहरणों को लेकर कोरंट पुष्पों की मालाओं से युक्त छत्र को धारण करके चार चामरों से विंजाया जाता हुआ लोगों द्वारा मंगल रूप जय-जयकार किया जाता हुआ—यावत्— जहाँ भूतानन्द नामक हस्ती श्रेष्ठ था वहाँ आया आकर उस भूतानन्द हस्तीराज पर आरूढ़ हुआ बैठा।

कूणियस्स इंदसाहेज्जं—

१६. तए णं से कूणिए राया हारोत्थय-सुकय-रइयवच्छे-जाव-सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवर-जोहकलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरविंदपरिक्खित्ते जेणेव रहमुसले संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता रहमुसलं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ताणं चिट्ठइ। मग्गओ य से चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया एगं महं आयसं किढिणपडिरूवगं विउव्वित्ताणं चिट्ठइ। एवं खलु तओ इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा— देविंदे य, मणुइंदे य, असुरिंदे य। एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए।

कोणिक को इन्द्र सहाय्य—

१६. इसके बाद वह कोणिक राजा जिसका हार आदि से आच्छादित वक्ष स्थल सुशोभित हो रहा है—यावत्—श्वेत श्रेष्ठ चामरों से विंजाता हुआ अश्व, हस्ती, रथ और प्रवर योद्धाओं से कलित चतुरंगिणी सेना से परिवेष्टित और महान् सुभटों के समूह से परिरक्षित होता हुआ जहाँ रथ मूसल संग्राम हो रहा था, वहाँ आया, आकर रथ मूसल संग्राम में उतरा। उसके आगे देवेन्द्र देवराज शक्र वज्र प्रतिरूपक (वज्र के समान) एक विशाल अभेद्य कवच की विकुर्वणा करके स्थित था। पीछे असुरेन्द्र असुर कुमार राज चमर लोहे से बने किठिन (बांस का बना हुआ एक तापस पात्र) के समान एक विशाल कवच की रचना करके स्थित था। इस प्रकार तीन इन्द्र संग्राम में संकलित थे, यथा—देवेन्द्र मनुष्येन्द्र और असुरेन्द्र। एक हाथी के द्वारा भी कोणिक राजा शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ था।

कूणियजयो—

१७. तए णं से कूणिए राया रहमुसलं संगामेमाणे नव मल्लई, नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हय-महिय-

कोणिक राजा की जय—

१७. इसके बाद कोणिक राजा ने रथ-मूसल संग्राम करते हुए नौ मल्लि और नौ लच्छिवी—काशी—कोशल के अठारह गण राजाओं को आहत, मर्दित, श्रेष्ठ वीरों का घात करने, संकेत

पवरवीर-घाइय-विवडियचिंधद्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था।

सूचक पताकाओं को गिराकर कंठगत प्राण जैसा बनाकर दिशा विदिशाओं में चारों ओर भगा दिया।

रहमुसलसंगामसरूवं—

१८. से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—रहमुसले संगामे, रहमुसले संगामे ?

गोयमा ! रहमुसले णं संगामे वट्टमाणे एगे रहे अणासए, असारहिए, समुसले महया जणक्खयं, जणवहं, जणप्पमद्दं, जण-संवट्टकप्पं रुहिरकद्दमं करेमाणे सव्वओ समंता परिधाविस्था। से तेणट्ठेणं गोयमा ! एवं वुच्चइ--रहमुसले संगामे०।

रथ-मूसल-संग्राम का स्वरूप—

१८. "हे भदन्त ! किस कारण इस प्रकार कहते हैं कि रथमूसल संग्राम रथ मूसल संग्राम है ?" गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा ?

भगवान् ने उत्तर देते हुए बताया—"हे गौतम ! जिस समय रथ-मूसल-संग्राम हो रहा था उस समय अश्व रहित, सारथी रहित, योद्धा रहित किन्तु मूसल सहित एक रथ विपुल प्रचुर संख्या में जनसंहार, जनवध, जनमर्दन, जन प्रलय और रक्त का कीचड़ करता हुआ सभी दिशाओं में चारों ओर दौड़ रहा था। इसीलिये हे गौतम ! ऐसा कहते हैं कि रथ-मूसल संग्राम रथ-मूसल संग्राम है।'

संगामे मणुयाणं मरणसंखा गई य--

१९. रहमुसले णं भंते ! संगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ ?

गोयमा ! छण्णउतिं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ।

ते णं भंते ! मणुया निस्सीला निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाण-पोसहोववासा रुट्ठा परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गया ? कहिं उववन्ना ?

गोयमा ! तत्थ णं दससाहस्सीओ एगाए मच्छियाए कुच्छिंसि उववन्नाओ। एगे देवलोगेसु उववन्ने। एगे सुकुले पच्चायाए। अवसेसा उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववन्ना।

संग्राम में मनुष्यों की मरण संख्या और गति—

१९. हे भदन्त ! रथमूसल संग्राम के प्रवर्तमान होने पर कितने लाख मनुष्य मारे गये ? गौतम ने भगवान् से पूछा।

'हे गौतम ! छियानवें लाख मनुष्य मारे गये। भगवान् ने उत्तर दिया।

हे भगवन् ! वे निःशील, निर्गुण, निर्लज्ज, प्रत्याख्यान पौषधोपवास से रहित, रुष्ट, परिकुपित, अशांत समर में मारे गये मनुष्य काल समय में काल करके कहां गये ? कहाँ उत्पन्न हुए ?

हे गौतम ! उनमें से दस हजार मनुष्य तो कोई एक (अकेले) मछली के उदर में उत्पन्न हुए। कोई एक देवलोकों में उत्पन्न हुए। एक सुकुल में उत्पन्न हुआ अथवा कोई एक सुकुल में उत्पन्न हुए और शेष प्रायः नरक, तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुए। भगवान् ने उत्तर दिया।

कूणियस्स इंदसाहेज्जे हेऊ—

२०. कम्हा णं भंते ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था ?

गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया पुव्वसंगतिए, चमरे असुरिंदे असुरकुमारराया परियायसंगतिए। एवं खलु गोयमा ! सक्के देविंदे देवराया, चमरे य असुरिंदे असुरकुमारराया कूणियस्स रण्णो साहेज्जं दलइत्था।

—भगवई श० ७ उ० ९

कोणिक को इन्द्र साहाय्य में हेतु—

२०. हे भदन्त ! देवेन्द्र देवराज शक्र ने और असुरेन्द्र असुरकुमार राज चमर ने किस कारण कोणिक राजा को सहायता दी ? गौतम ने भगवान् से पूछा।

भगवान् ने कारण बताते हुए उत्तर दिया--"हे गौतम ! देवेन्द्रराज शक्र तो कोणिक राजा का पूर्व संगतिक (पूर्वभव-सम्बन्धी) मित्र था और असुरेन्द्र असुरकुमारराज चमर कोणिक राजा का पर्याय संगतिक (साधु पर्याय सम्बन्धी) मित्र था। इसी कारण हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र ने तथा असुरेन्द्र असुर कुमारराज चमर ने कोणिक राजा को सहायता दी थी।

३. रहमुसलसंगामे कालाइमरणकहा—

कालाईणं दसण्हं नामुद्देसो—

२१. काले सुकाले महाकाले कण्हे सुकण्हे तहा महाकण्हे वीरकण्हे य बोद्धव्वे । रामकण्हे तहेव य पिउसेणकण्हे नवमे, दसमे महासेणकण्हे उ ।''

चंपाए सेणियपुत्ते काले—

२२. तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जम्बुद्दीवे दीवे भारहे वासे चम्पा नामं नयरी होत्था, रिद्ध० । पुण्णभद्दे चेइए ।

तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रण्णो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणिए नामं राया होत्था, महया० ।

तस्स णं कूणियस्स रण्णो पउमावई नामं देवी होत्था, सोमाल-जाव-विहरइ ।

तत्थ णं चम्पाए नयरीए सेणियस्स रण्णो भज्जा कूणियस्स रण्णो चुल्लमाउया काली नामं देवी होत्था, सोमाल-जाव-सुरूवा । तीसे णं कालीए देवीए पुत्ते काले नामं कुमारे होत्था, सोमाल-जाव-सुरूवे ।

कूणियसहियस्स कालस्स रहमुसलसंगामगमणं—

२३. तए णं से काले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दंतिसहस्सेहिं, तिहिं रहसहस्सेहिं, तिहिं आससहस्सेहिं, तिहिं मणुयकोडीहिं, गरुलवूहे एक्कारसमेणं खंडेणं कूणिएणं रण्णा सद्धिं रहमुसलं संगामं ओयाए ।

महावीरसमोसरणे कालीए पुच्छा—

२४. तए णं तीसे कालीए देवीए अन्नया कयाइ कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए जाव-समुप्पज्जित्था—''एवं खलु ममं पुत्ते कालकुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं-जाव-ओयाए । से, मन्ने, किं जइस्सइ ? नो जइस्सइ ? जीविस्सइ ? नो जीविस्सइ ? पराजिणिस्सइ ? नो पराजिणिस्सइ ? काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा ?'' ओहयमण-जाव-झियाइ ।

२५. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए । परिसा निग्गया ।

तए णं तीसे कालीए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए,-जाव-समुप्पज्जित्था-''एवं खलु, समणे भगवं० पुव्वाणुपुव्वि-जाव-विहरइ । तं महाफलं खलु तहारूवाणं

३. रथमूसल-संग्राम में कालादि की मरण कथा—

कालादिक दस का नाम निर्देश—

२१. (१) काल (२) सुकाल (३) महाकाल (४) कृष्ण (५) सुकृष्ण (६) महाकृष्ण (७) वीरकृष्ण (८) रामकृष्ण (९) प्रियसेन कृष्ण और (१०) महासेनकृष्ण ये दस नाम जानना चाहिए ।

चम्पा में श्रेणिक पुत्र काल—

२२. उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में वैभव आदि से सम्पन्न चम्पा नामकी नगरी थी । वहाँ पूर्णभद्र चैत्य था ।

उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र चेलना देवी का अंगजात कोणिक नाम का राजा था, जो महाहिमवन् आदि पर्वतों के समान मनुष्यों में प्रसिद्ध था ।

उस कोणिक राजा की पद्मावती नाम की रानी थी, जो सुकुमाल—यावत्—भोग भोगते हुए विचरण करती थी ।

उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की भार्या, कोणिक राजा की छोटी माता, काली नाम की रानी थी, वह सुकुमार हाथ पैर आदि वाली—यावत्—सुन्दर थी । उस काली रानी का काल नाम का कुमार पुत्र था, जो अतीव सुकोमल—यावत्—रूप सम्पन्न था ।

कोणिक के साथ काल का रथ मूसल संग्राम में गमन—

२३. तदनन्तर किसी एक दिन वह काल कुमार तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों, तीन हजार अश्वों और तीन करोड़ मनुष्यों द्वारा बने हुए गरुड़ व्यूह के ग्यारहवें खंड में कोणिक राजा के साथ रथमूसल संग्राम में प्रवृत्त हुआ ।

महावीर समवसरण में काली ने पूछा—

२४. इसके बाद उस काली देवी को किसी एक समय कौटुम्बिक विचारों में जागरण करते हुए यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—मेरा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों से युक्त—यावत्—संग्राम में उतरा है । तो क्या वह जीतेगा अथवा नहीं जीतेगा ? जीवित रहेगा अथवा जीवित नहीं रहेगा ? वह शत्रु को पराजित करेगा अथवा पराजित नहीं करेगा ? मैं काल कुमार को जीवित देख सकूँगी ? इस प्रकार से निरुत्साह उदासीन होकर—यावत्—चिन्ता में डूब गई ।

२५. उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर पधारे । दर्शनार्थ परिषदा निकली ।

तदनन्तर उस काली देवी को यह समाचार सुनकर यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—''श्रमण भगवान् महावीर पूर्वानुपूर्वी के क्रम से गमन करते हुए

-जाव-विउलस्स अट्ठस्स गहणयाए। तं गच्छामि णं समणं-जाव-पज्जुवासामि, इमं च णं एयारूवं वागरणं पुच्छिस्सामि" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी -"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया, धम्मियं, जाणप्पवरं जुत्तामेव उवट्ठवेह।" उवट्ठवित्ता-जाव-पच्चप्पिणंति।

—यावत्—विचरण कर रहे हैं। तथारूप श्रमण भगवन्तों के नाम और गोत्र के सुनने का जब महाफल है—यावत्—विपुल अर्थ ग्रहण करने के फल के लिये तो फिर कहना ही क्या है। अतएव श्रमण भगवान् महावीर के पास जाऊँ—यावत्—उनकी पर्युपासना करूँ, यह और इस प्रकार के प्रश्न पूछूँ"— इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही धार्मिक कार्यों में उपयोग किये जाने वाले उत्तम रथ को जोतकर लाओ। वे कौटुम्बिक पुरुष रथ को लाकर—यावत्—आज्ञा वापस लौटाते हैं।

तए णं सा काली देवी ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा बहूहिं खुज्जाहिं-जाव-महत्तरगविंदपरिक्खित्ता अंतेउराओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव धम्मिए जाणप्पवरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता, नियगपरियालसंपरिवुडा चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुण्णभद्दे चेइए, तेणेव उवागच्छइ। छत्ताईए-जाव-धम्मियं जाणप्पवरं ठवेइ, ठवेत्ता धम्मियाओ जाणप्पवराओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता बहूहिं खुज्जाहिं-जाव-विंदपरिक्खित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो वंदइ। ठिया चेव सपरिवारा सुस्सूसमाणा नमंसमाणा अभिमुहा विणएणं पंजलिउडा पज्जुवासइ।

इसके बाद उस काली देवी ने स्नान किया—बलिकर्म किया—यावत्—अल्प किन्तु मूल्यवान् आभूषणों से शरीर को अलंकृत करके अनेक कुब्जा दासियों—यावत्—महत्तरक वृन्द से घिरी हुई अन्तःपुर से निकली, निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थान शाला थी, जहाँ धार्मिक यानप्रवर था, वहाँ आई, आकर धार्मिक यान प्रवर पर आरूढ़ हुई—बैठी, बैठकर अपने परिवार से परिवेष्टित हो चम्पा नगरी के बीचोंबीच से निकली, निकलकर जहाँ पूर्णभद्र चैत्य था, वहाँ आई। छत्रादि को देखकर—यावत्—धार्मिक उत्तम रथ को खड़ा किया, खड़ा करके उस धार्मिक श्रेष्ठ रथ से उतरी, उतरकर बहुत सी कुब्जा दासियों—यावत्—महत्तरक वृन्द से घिरी हुई जहाँ श्रमण भगवान् महावीर विराज रहे थे, वहाँ आई, आकर श्रमण भगवान महावीर की तीन बार वंदना की। खड़े-खड़े ही सपरिवार शुश्रूषा और नमस्कार करती हुई विनय-पूर्वक सम्मुख अंजलि करके पर्युपासना करने लगी।

२६. तए णं समणे भगवं-जाव-कालीए देवीए तीसे य महइमहालियाए०, धम्मकहा भाणियव्वा,-जाव-समणोवासए वा समणोवासिया वा विहरमाणा आणाए आराहए भवइ।

२६. इसके बाद श्रमण भगवान महावीर ने—यावत्—काली रानी और उस विशाल परिषदा को धर्मकथा कही आदि से लेकर श्रमणोपासक और श्रमणोपासिका होकर आज्ञा के आराधक हुए पर्यन्त का सब कथन पूर्ववत् यहां कहना चाहिये।

कालिपुच्छाए भगवया निरूवियं कालीपुत्त-कालकुमारस्स मरणं, कालीए सट्ठाणगमणं च—

काली के पूछने पर भगवान् द्वारा निरूपण काली पुत्र-काल कुमार का मरण और काली का स्वस्थानगमन—

२७. तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं धम्मं सोच्चा निसम्म-जाव हियया समणं भगवं० तिक्खुत्तो-जाव-एवं वयासी -"एवं खलु, भंते, मम पुत्ते काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं-जाव-रहमुसलं संगामं ओयाए, से णं, भंते, किं जइस्सइ? नो जइस्सइ-जाव-काले णं कुमारे अहं जीवमाणं पासिज्जा?"

२७. तत्पश्चात् उस कालीदेवी ने श्रमण भगवान् महावीर से धर्मश्रवण कर, अवधारित कर—यावत्—हृदय से श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार वंदना की—यावत्—इस प्रकार पूछा—'हे भगवन्! मेरा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों के साथ—यावत्—रथमूसल संग्राम में उतरा है, तो हे भदन्त! क्या वह जीतेगा अथवा नहीं जीतेगा—यावत्—मैं काल कुमार को जीवित देख सकूँगी?'

"काली" इ समणे भगवं कालिं देविं एवं वयासी—"एवं खलु काली! तव पुत्ते काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं-जाव-कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहियपवर-

'हे काली! इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान् महावीर ने काली रानी से इस प्रकार कहा—हे काली! बात यह है कि जब तुम्हारा पुत्र काल कुमार तीन हजार हाथियों से

वीरघाइयविवडियचिंधज्झयपडागे निरालोयाओ दिसाओ करेमाणे चेडगस्स रण्णो सपक्खं सपडिदिसिं रहेणं पडिरहं हव्वमागए। तए णं से चेडए राया कालं कुमारं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते -जाव-मिसिमिसेमाणे धणुं परामुसइ, परामुसित्ता उसुं परामुसइ, परामुसित्ता वइसाहं ठाणं ठाइ, ठाइत्ता, आययकण्णाययं उसुं करेइ, करित्ता कालं कुमारं एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोवेइ। तं कालगए णं काली, काले कुमारे, नो चेव णं तुमं कालं कुमारं जीवमाणं पासिहिसि।"

—यावत्—कोणिक राजा के साथ रथ-मूसल संग्राम में संग्राम करता हुआ श्रेष्ठ वीर योद्धाओं का नाश, मर्दन और घात करता हुआ, ध्वजा पताकाओं को गिराता हुआ, दिशाओं को प्रकाश रहित करता हुआ चेटक राजा के रथ समक्ष रथ को लेकर ठीक सामने आया। तब चेटक राजा ने काल कुमार को आते हुए देखा, देखकर क्रुद्ध होकर—यावत् दाँतों को मिसमिसाते हुए धनुष को उठाया, उठाकर बाण को लिया, लेकर आसन विशेष से बैठा, बैठकर कान तक बाण को खींचा, खींचकर काल कुमार को एक ही प्रहार से नष्ट कर, कुचल कर जीवन से रहित कर दिया। अतः हे काली ! वह काल कुमार काल को प्राप्त हुआ, तुम उस काल कुमार को जीवित नहीं देख सकोगी।"

२८. तए णं सा काली देवी समणस्स भगवओ अंतियं एयमट्ठं सोच्चा निसम्म महया पुत्तसोएणं अप्फुण्णा समाणी परसुनियत्ता विव चम्पगलया घस त्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिया।

२८. तत्पश्चात् काली देवी श्रमण भगवान् महावीर से इस वृतान्त को सुनकर और हृदय में धारण कर महान् पुत्र शोक में डूबकर कुल्हाड़ी से काटी गयी चम्पकलता के समान धम करती हुई पृथ्वी पर पछाड़ खाकर सर्वांग से गिर पड़ी।

तए णं सा काली देवी मुहुत्तंतरेण आसत्था समाणी उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता समणं भगवं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवमेयं भंते, तहमेयं भंते, अवितहमेयं भंते, असंदिद्धमेयं भंते, सच्चे णं भंते, एसमट्ठे, जहेयं तुब्भे वयह" त्ति कट्टु समणं भगवं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता तमेव धम्मियं जाणप्पवरं दुरुहइ, दुरुहित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

इसके अनन्तर कुछ क्षण के बाद वह काली देवी कुछ आस्वस्त सी होती हुई अपने आसन से उठी, उठकर श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार बोली—"हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भदन्त ! यह तथ्य रूप है, हे भगवन् ! यह शंका रहित है, हे भगवन् ! यह असंदिग्ध है, हे भगवन् ! यह कथन सत्य है जैसा आप कहते हैं" ऐसा कहकर श्रमण भगवान को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उसी प्रकार धार्मिक यान प्रवर पर आरूढ़ हुई, आरूढ़ होकर जिस ओर से आई थी, वापस उसी दिशा में लौट गई।

कालस्स नरयगई—

२९. "भंते" ! त्ति भगवं गोयमे-जाव-वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"काले णं, भंते, कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं -जाव-रहमुसलं संगामं संगामेमाणे चेडएणं रन्ना एगाहच्चं कूडाहच्चं जीवियाओ ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा कहिं गए, कहिं उववन्ने।

काल की नरक गति—

२९. "हे भदन्त !" इस प्रकार कहकर भगवान गौतम ने—यावत्—वंदन नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार पूछा—"हे भदन्त ! काल कुमार तीन हजार हाथियों से—यावत्—रथ-मूसल-संग्राम में संग्राम करते हुए चेटक राजा के एक ही प्रहार से जीवन रहित होकर मरण समय में मरण करके कहाँ गया है ? कहाँ उत्पन्न हुआ है ?

"गोयमा !" इ समणे भगवं महावीरे गोयमं एवं वयासी—"एवं खलु गोयमा, काले कुमारे तिहिं दन्तिसहस्सेहिं जीवियाए ववरोविए समाणे कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरगे दससागरोवमठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

"गौतम !" इस प्रकार से सम्बोधित कर श्रमण भगवान महावीर ने गौतम स्वामी से इस प्रकार कहा—"गौतम ! तीन हजार हाथियों के साथ काल कुमार जीवन रहित होकर मरण काल में काल करके चौथी पंकप्रभा नामक पृथ्वी के हेमाभ नामक नरक में दस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ है।

"काले णं, भंते, कुमारे केरिसएहिं भोगेहिं केरिसएहिं आरम्भेहिं केरिसएहिं समारम्भेहिं केरिसएहिं आरम्भसमारम्भेहिं

गौतम स्वामी ने पुनः पूछा "हे भदन्त ! काल कुमार किस तरह के भोगों किस तरह के आरम्भों किस तरह के समारम्भों

संभोगेहिं केरिसएहिं भोगसंभोगेहिं केरिसेण वा असुभकडकम्मपब्भारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए-जाव-नेरइयत्ताए उववन्ने ?"

"एवं खलु गोयमा !०"

कालकुमारनरयगइगमणहेउनिरूवगं कूणियचरियंतग्गयं भगवओ परूवणं—

३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था, रिद्धत्थिमियसमिद्धे० ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे सेणिए नामं राया होत्था, महया० ।

तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदा नामं देवी होत्था, सोमाल०-जाव-विहरइ ।

तस्स णं सेणियस्स रन्नो नंदाए देवीए अत्तए अभए नामं कुमारे होत्था, सोमाले-जाव-सुरूवे, साम-दाम-भेय-दण्ड०-जहा-चित्तो-जाव-रज्जधुराए चिंतए यावि होत्था ।

तस्स णं सेणियस्स रन्नो चेल्लणा नामं देवी होत्था, सोमाला-जाव-विहरइ ।

चेल्लणाए सेणियमंसभक्खणदोहले सेणियस्स चिंता—

३१. तए णं सा चेल्लणा देवी अन्नया कयाइ तंसि तारिसयंसि वासघरंसि-जाव-सीहं सुमिणे पासित्ताणं पडिबुद्धा, जहा पभावई, -जाव-सुमिणपाढगा पडिविसज्जिया-जाव-चेल्लणा से वयणं पडिच्छित्ता जेणेव सए भवणे, तेणेव अणुपविट्ठा ।

तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-जम्मजीवियफले जाओ णं सेणियस्स रन्नो उयरवलीमंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च-जाव-पसन्नं च आसाएमाणीओ-जाव-परिभाएमाणीओ दोहलं पविणेंति ।"

तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा नित्तेया दीणविमणवयणा पंडुइयमुही ओमंथियनयणवयणकमला जहोचियं पुप्फवत्थ-

किस तरह के आरम्भ समारम्भों, किस तरह के संभोगों किस तरह के भोग सम्भोगों और किस तरह के किये हुए अशुभ कर्म-भार से मरण-समय में मरण करके चौथी पंकप्रभा नामक नरक पृथ्वी—यावत्—नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है ?"

हे गौतम !० (आगे कथ्यमान)

कालकुमार नरकगति-गमन हेतु निरूपक कोणिक चरित्रान्तर्गत भगवान का प्ररूपण—

३०. उस काल और उस समय में वैभवादि से सम्पन्न शत्रुभय से मुक्त और समृद्धिशाली राजगृह नामक नगर था ।

उस राजगृह नगर में महाप्रभावशाली श्रेणिक नाम का राजा था ।

उस श्रेणिक राजा की नन्दा नाम की रानी थी, जो अति सुकुमार—यावत्—भोग भोगती हुई विचरण करती थी ।

उस श्रेणिक राजा की नन्दा नामक रानी का अंगजात अभय नाम का कुमार था, वह कुमार सुकोमल—यावत्—रूप शोभा सम्पन्न था, चित्त सारथी के समान साम-दाम-भेद-दंडनीति में कुशल—यावत्—राज्य शासन का विचार करने वाला था ।

उस श्रेणिक राजा की चेलना नामक रानी थी, वह रानी अतीत कोमल—यावत्—भोग भोगती हुई विचरण करती थी ।

चेलना को श्रेणिक के मांसभक्षण करने का दोहद, श्रेणिक की चिन्ता—

३१. तत्पश्चात् वह चेलना रानी किसी एक समय अपने शयन कक्ष में उस शरीर प्रमाण और तकिया वाली सुखद शैया पर सोते हुए—यावत्—स्वप्न में सिंह को देखकर जाग गई । प्रभावती देवी के समान—यावत्—[राजा के पास पहुँची, स्वप्नपाठकों को बुलाया उन्होंने कहा—'तुम भाग्यशाली पुत्ररत्न प्राप्त करोगी जो राज्य का स्वामी होगा ।' ऐसा सुनकर] स्वप्नपाठकों को विदा किया—यावत—चेलना उस वचन को अंगीकार करके जहाँ अपना भवन था, वहाँ प्रविष्ट हुई ।

इसके बाद उस चेलना को प्रायः तीन मास पूर्ण होने पर किसी एक समय यह और इस प्रकार का दोहद प्रादुर्भूत हुआ—वे मातायें धन्य हैं—यावत्—जिन्होंने मनुष्य सम्बन्धी जन्म और जीवन का फल प्राप्त किया है जो श्रेणिक राजा की उदरावली के शूल पर सेके गये, तले और आग पर भूने गये मांस एवं सुरा—यावत् प्रसन्न मदिरा का आस्वादन करती हुई—यावत्—परस्पर में देती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती हैं ।"

तदनन्तर वह चेलना देवी उस दोहद के पूर्ण न होने से सूख-सी गई, भूख से व्याप्त हो गई, मांस रहित शरीर वाली हो गई, जीर्ण एवं जीर्ण शरीर वाली, निस्तेज, दीन, और उदासीन मुख वाली हो गई, उसका मुख पीला पड़ गया, उसके कमल रूपी नेत्र और मुख कुम्हला गये, यथोचित पुष्प-वस्त्र-गंध-माला-अलंकार

गन्धमल्लालंकारं अपरिभुंजमाणी करतलमलिय व्व कमलमाला ओहयमणसंकप्पा-जाव-झियाइ।

का उपभोग न करती हुई, हथेलियों से मसली हुई कमल माला के समान निस्तेज हुई, हतोत्साहित जैसी होती हुई—यावत्—आर्तध्यान में डूब गई।

तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अंगपडियारियाओ चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं-जाव-झियायमाणिं पासंति, पासित्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु सेणियं रायं एवं वयासी—"एवं खलु, सामी, चेल्लणा देवी, न याणामो, केणइ कारणेणं सुक्का भुक्खा-जाव-झियाइ।"

तत्पश्चात् उस चेलना देवी की अंगपरिचारिकाओं (शरीर की सेवा शुश्रुषा करने वाली दासियों) ने चेलनादेवी को शुष्क, भूखी—यावत्—आर्तध्यान करती हुई देखा, देखकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आई आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—"हे स्वामिन्! न मालूम किस कारण से चेलना देवी सूखी सी, भूखी सी होकर—यावत्—चिन्ता में डूब रही है।"

तए णं से सेणिए राया तासिं अंगपडियारियाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तहेव संभंते समाणे जेणेव चेल्लणा देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं सुक्कं भुक्खं-जाव-झियायमाणिं पासित्ता एवं वयासी—"किं णं तुमं देवाणुप्पिए, सुक्का भुक्खा-जाव-झियासि?"

तदनन्तर उन अंगपरिचारिकाओं से इस बात को सुनकर और समझकर श्रेणिक राजा उसी प्रकार व्याकुल होकर जहाँ चेलना देवी थी वहाँ आया, आकर चेलना देवी को सूखा-सा, भूखा-सा—यावत्—आर्तध्यान में डूबा हुआ देखकर इस प्रकार बोला- "देवानुप्रिये! तुम क्यों सूखी-सी और भूखी-सी होकर चिन्ताग्रस्त हो रही हो?"

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीया संचिट्ठइ।

लेकिन उस चेलना देवी ने श्रेणिक राजा की इस बात का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया किन्तु मौन होकर बैठी रही।

तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देविं दोच्चं पि तच्चं पि एवं वयासी—"किं णं अहं, देवाणुप्पिए, एयमट्ठस्स नो अरिहे सवणयाए, जं णं तुमं एयमट्ठं रहस्सी करेसि?"

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने चेलना देवी से दूसरी बार भी और फिर तीसरी बार भी इसी प्रकार कहा—"देवानुप्रिये, क्या मैं इस बात को सुनने के योग्य नहीं हूँ, जिससे तुम इस बात को छिपा रही हो?"

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना दोच्चं पि तच्चं पि एवं वुत्ता समाणी सेणियं रायं एवं वयासी "नत्थि णं, सामी! से केइ अट्ठे, जस्स णं तुब्भे अणरिहा सवणयाए, नो चेव णं इमस्स अट्ठस्स सवणयाए। एवं खलु, सामी! ममं तस्स ओरालस्स-जाव-महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाओ णं तुब्भं उयरवलिमंसेहिं सोल्लएहिं य-जाव-दोहलं विणेंति। तए णं अहं सामी; तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा-जाव-झियामि।"

इसके बाद उस चेलना देवी ने श्रेणिक राजा की दूसरी बार और तीसरी बार भी कही गई बात को सुनकर श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—"हे स्वामिन्! ऐसी कोई बात नहीं है जिसे सुनने के लिये तुम अयोग्य हो और न इस बात को भी सुनने के लिये। हे स्वामिन्! बात यह है कि उस उदार—यावत्—महास्वप्न के करीब तीन मास पूर्ण होने पर मुझे यह और इस प्रकार का दोहद प्रादुर्भूत—उत्पन्न हुआ है कि वे मातायें धन्य है जो तुम्हारे उदरावलि के शूल पर सेके हुए मांस से—यावत्—मदिरा का आस्वादन लेती हुई दोहदपूर्ण करती है। मेरे को भी ऐसा ही दोहद उत्पन्न हुआ है। लेकिन स्वामी उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण मैं शुष्क, बुभुक्षित सी होकर—यावत्—चिन्तित हो रही हूँ।"

तए णं से सेणिए राया चेल्लणं देविं एवं वयासी—"मा णं तुमं, देवाणुप्पिए, ओहय०-जाव-झियाहि। अहं णं तहा जत्तिहामि जहा णं तव दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ" त्ति कट्टु चेल्लणं देविं ताहिं इट्ठाहिं कन्ताहिं पियाहिं मणुन्नाहिं मणामाहिं ओरालाहिं कल्लाणाहिं सिवाहिं धन्नाहिं मंगल्लाहिं मियमहुरसस्सिरीयाहिं

तदनन्तर श्रेणिक राजा ने चेलना देवी से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिये! तुम आहत मन संकल्प वाली—यावत्—चिन्तित मत होओ! मैं वैसा प्रयत्न करूँगा, जिससे तुम्हारे दोहद की पूर्ति हो जायेगी।" ऐसा कहकर चेलना देवी को इष्ट, कान्त (इच्छित) प्रिय, मनोज्ञ मणाम, श्रेष्ठ, कल्याण शिव, धन्य-

वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता चेल्लणाए देवीए अंतियाओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सीहासणे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सीहासणवरंसि पुरत्थाभिमुहे निसीयइ. तस्स दोहलस्स संपत्तिनिमित्तं बहूहिं आएहिं उवाएहि य, उप्पत्तियाए य वेणइयाए य कम्मियाए य पारिणामियाए य परिणामेमाणे परिणामेमाणे तस्स दोहलस्स आयं वा उवायं वा ठिइं वा अविंदमाणे ओहयमणसंकप्पे-जाव-झियाइ ।

अभयकुमारजुत्तीए चेल्लणादोहलपूरणं—

३२. इमं च णं अभए कुमारे ण्हाए-जाव-सरीरे सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला, जेणेव सेणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं ओहय-जाव-झियायमाणं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—'अण्णया णं, ताओ ! तुब्भे ममं पासित्ता हट्ठ-जाव-हियया भवह, किं णं, ताओ, अज्ज तुब्भे ओहय-जाव-झियाह ? तं जइ णं अहं ताओ ! एयमट्ठस्स अरिहे सवणयाए, तो णं तुब्भे मम एयमट्ठं जहाभूयमवितहं असंदिद्धं परिकहेह, जा णं अहं तस्स अट्ठस्स अंतगमणं करेमि ।'

तए णं से सेणिए राया अभयं कुमारं एवं वयासी—'नत्थि णं, पुत्ता, से केइ अट्ठे, जस्स णं तुमं अणरिहे सवणयाए । एवं खलु पुत्ता ! तव चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स ओरालस्स-जाव-महासुमिणस्स तिण्हं मासाणं बहु-पडिपुण्णाणं-जाव-जाओ णं मम उयरवलीमंसेहिं सोल्लेहिं य-जाव-दोहलं विणेंति । तए णं सा चेल्लणा देवी तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का-जाव-झियाइ । तए णं अहं पुत्ता ! तस्स दोहलस्स संपत्तिनिमित्तं बहूहिं आएहिं य-जाव-ठिइं वा अविंदमाणे ओहय०-जाव-झियामि ।'

तए णं से अभए कुमारे सेणियं रायं एवं वयासी—'मा णं, ताओ ! तुब्भे ओहय०-जाव-झियाए, अहं णं, तहा जत्तिहामि, जहा णं मम चुल्लमाउयाए चेल्लणाए देवीए तस्स दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ' त्ति कट्टु सेणियं रायं ताहिं इट्ठाहिं-जाव-वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता जेणेव सए गिहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अब्भितरए रहस्सियए ठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—'गच्छह णं तुब्भे, देवाणुप्पिया, सूणाओ अल्लं मंसं रुहिरं बत्थिपुडगं च गिण्हह ।'

मंगल-रूप, मृदु, मधुर सश्रीक-शोभनीय वाणी से आश्वासन दिया, आश्वस्त करके चेलना देवी के पास से निकला, निकलकर जहाँ बाहर की उपस्थानशाला थी, उसमें जहाँ सिंहासन था, वहाँ आया और आकर उस श्रेष्ठ सिंहासन पर पूर्व की ओर मुख करके आसीन हो गया, उस दोहद की पूर्ति करने के लिये बहुतेरी तजवीजों से, उपायों से, औत्पातिकी बुद्धि से, वैनयिक बुद्धि से, कार्मिक बुद्धि से, पारिणामिक बुद्धि से बार-बार सोचने पर भी उस दोहद के लाभ को, उपाय को, स्थिति को नहीं समझ पाने के कारण आहत मन संकल्प—यावत्—चिन्तापरत हो गया ।

अभयकुमार की युक्ति से चेलना के दोहदपूर्ति—

३२. इधर अभयकुमार स्नान कर—यावत्—शरीर को अलंकृत कर अपने घर से निकला, निकलकर जहाँ बाहरी उपस्थानशाला थी, जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया, आकर श्रेणिक राजा को भग्न मनोरथ वाला—यावत्—चिन्ता करते हुए देखा, देखकर उसने इस प्रकार कहा—"हे तात ! आप अन्य समय मुझे देखकर हृष्ट-तुष्ट—यावत्—प्रसन्न हृदय होते थे, किन्तु तात ! आज क्या बात है जो आप उत्साहहीन—यावत्—चिन्तित हो रहे हैं ? अतएव हे तात ! यदि मैं इस बात को सुनने के योग्य हूँ तो आप मुझे इस बात को जैसा का तैसा, अवितथ और असंदिग्ध रूप से कह सुनाईये, जिससे मैं उस बात का पार पाने का उपाय करूँ ।"

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा ने अभयकुमार से इस प्रकार कहा—'हे पुत्र ! वह ऐसी कोई बात नहीं है जिसको सुनने के लिये तुम अयोग्य होओ—अधिकारी नहीं हो । बात यह है कि हे पुत्र ! तुम्हारी छोटी माता चेलना देवी को उस उदार-प्रधान—यावत्—महास्वप्न के करीब तीन मास पूर्ण होने पर—यावत्—जो मेरे उदरावलि के शूल पर सेके हुए मांस से—यावत्—दोहदपूर्ण करती हैं । लेकिन वह चेलना देवी उस दोहद की पूर्ति न होने से शुष्क—यावत्—चिन्ता में डूबी हुई है । जिससे हे पुत्र ! मैं उस दोहद की पूर्ति के निमित्त बहुत सी तजवीजों—यावत्—स्थिति को नहीं समझ पाने के कारण भग्न मनोरथ—यावत्—चिन्तित हो रहा हूँ ।"

तदनन्तर अभयकुमार ने श्रेणिक राजा से इस प्रकार कहा—'हे तात ! आप भग्न मनोरथ—यावत्—चिन्तित न हों, मैं वैसा प्रयत्न करूँगा जिससे मेरी छोटी माता चेलना देवी के इस दोहद की पूर्ति हो सकेगी ।" इस प्रकार कहकर श्रेणिक राजा को इष्ट, कांत—यावत्—मधुरवाणी से सांत्वना दी, सांत्वना देकर जहाँ स्वयं का आवास गृह था वहाँ आया, आकर अभ्यन्तर रहस्य स्थानीय (निजी गुप्त बात को जानने वाले) पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और वधशाला से आर्द्र (गीला) रक्त और मांस से युक्त बस्तिपुटक (पेट का भीतरी भागप्रदेश) लाओ ।"

तए णं ते ठाणिज्जा पुरिसा अभएणं कुमारेणं एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठ-जाव-पडिसुणेत्ता अभयस्स कुमारस्स अंतियाओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव सूणा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च गिण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव अभए कुमारे, तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयल० तं अल्लं मंसं रुहिरं वत्थिपुडगं च उवणेंति।

तब वे स्थानीय पुरुष अभयकुमार की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित-सन्तुष्ट हो—यावत्—आज्ञा स्वीकार करके अभयकुमार के पास से निकले, निकलकर जहाँ वधशाला थी, वहाँ आये, आकर आर्द्र रक्त-मांस युक्त वस्तिपुटक को लिया, लेकर जहाँ अभयकुमार था, वहाँ आये, आकर दोनों हाथ जोड़ उस आर्द्र रक्त-मांस युक्त वस्तिपुटक को उपस्थित किया।

तए णं से अभए कुमारे तं अल्लं मंसं रुहिरं अप्पकप्पियं करेइ, करेत्ता जेणेव सेणिए राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सेणियं रायं रहस्सिगयं सयणिज्जंसि उत्ताणयं निवज्जावेइ, निवज्जावइत्ता सेणियस्स उयरवलीसु तं अल्लं मंसं रुहिरं विरवेइ, विरवित्ता वत्थिपुडएणं वेढेइ, वेढेत्ता सवंतीकरणेणं करेइ, करेत्ता चेल्लणं देविं उप्पिं पासाए अवलोयणवरगयं ठवावेइ, ठवावित्ता चेल्लणाए देवीए अहे सपक्खं सपडिदिसिं सेणियं रायं सयणिज्जंसि उत्ताणगं निवज्जावेइ, सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइं कप्पणि-कप्पियाइं करेइ, करेत्ता से य भायणंसि पक्खिवइ।

तत्पश्चात् अभयकुमार ने उसमें से थोड़े से आर्द्र रक्त-मांस को काटा, काटकर जहाँ श्रेणिक राजा था, वहाँ आया, वहाँ आकर श्रेणिक राजा को एकान्त शैया पर चित्त (ऊपर की ओर मुख करके) सुलाया-लेटाया, लेटाकर श्रेणिक उदरावलि पर वह आर्द्र रक्त मांस को रखा, रखकर वस्तिपुटक को वेष्टित किया (लपेटा) वेष्टित करके उसमें से रक्त की धार बहाई, बहाकर चेलना देवी को ऊपरी तल्ले में देखने योग्य स्थान पर बैठाया, चेलना देवी के समक्ष ठीक सामने नीचे श्रेणिक राजा को ऊर्ध्व मुख करके सीधा शैया पर लेटाया, श्रेणिक राजा के उदरावलि के मांस को कतरनी से काटा, काटकर उसे बर्तन में रखा।

तए णं से सेणिए राया अलियमुच्छियं करेइ, करेत्ता मुहुत्तंतरेण अन्नमन्नेण सद्धिं संलवमाणे चिट्ठइ।

तब श्रेणिक राजा ने झूठमूठ मूच्छित होने का दिखावा किया, फिर कुछ क्षण के बाद परस्पर एक-दूसरे के साथ बातचीत करने लगे।

तए णं से अभयकुमारे सेणियस्स रन्नो उयरवलिमंसाइं गिण्हेइ, गेण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणाए देवीए उवणेइ।

इसके बाद अभयकुमार ने श्रेणिक राजा के उदरावलि के मांस को लिया, लेकर जहाँ चेलना देवी थी, वहाँ आया, आकर चेलना देवी को दिया।

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणियस्स रन्नो तेहिं उयरवलिमंसेहिं सोल्लेहिं-जाव-दोहलं विणेइ। तए णं सा चेल्लणा देवी संपुण्णदोहला एवं संमाणियदोहला विच्छिन्नदोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तब उस चेलना देवी ने उस श्रेणिक राजा के उदरावलि के शूल पर सेके गये—यावत्—मांस के दोहद को पूर्ण किया। इसके बाद वह चेलना देवी सम्पूर्ण दोहद वाली, सम्मानित दोहद वाली विच्छिन्न दोहद वाली होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी।

चेल्लणाए गब्भपाडणपयत्ते निप्फलाऽऽयासो—

३३. तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए अन्नया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अयमेयारूवे-जाव-समुप्पज्जित्था—"जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उयरवलिमंसाणि खाइयाणि, तं सेयं खलु मए एयं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता तं गब्भं बहूहिं गब्भसाडणेहि य गब्भपाडणेहि य गब्भगालणेहि य गब्भविद्धंसणेहि य इच्छइ तं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा विद्धंसित्तए वा, नो चेव णं से गब्भे सडइ वा पडइ वा गलइ वा विद्धंसइ वा।

चेलना द्वारा गर्भपात का निष्फल प्रयास—

३३. तत्पश्चात् उस चेलना देवी को किसी समय मध्य रात्रि में जागते हुए इस प्रकार का यह —यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"गर्भ में रहते ही इस बालक ने पिता के उदरावलि का मांस खाया है तो मुझे इस गर्भ को सड़ाना, गिराना, गलाना नष्ट कर देना उचित है।" ऐसा विचार किया, विचार करके उस गर्भ को अनेक गर्भ सड़ाने वाली, गिराने वाली, गलाने वाली और नष्ट करने वाली औषधि—युक्तियों से सड़ाना, गिराना, गलाना और नष्ट करना चाहा किन्तु वह गर्भ सड़ा, गिरा, गला और नष्ट नहीं हुआ।

तए णं सा चेल्लणा देवी तं गब्भं जाहे नो संचाएइ बहूहिं गब्भसाडणेहि य-जाव-गब्भविद्धंसणेहि य साडित्तए वा-जाव-विद्धं-

तब वह चेलना देवी उस गर्भ को अनेक गर्भ सड़ाने वाली—यावत्—गर्भ नष्ट करने वाली औषधि-युक्तियों से सड़ाने—यावत्—नष्ट करने में सफल नहीं हुई तब श्रान्त, खिन्न, परि-

सित्तए वा, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणी अकामिया अवसवसा अट्टवसट्टदुहट्टा तं गब्भं परिवहइ ।

चेल्लणाए उक्कुरुडियाए दारय-उज्झणं—

३४. तए णं सा चेल्लणा देवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-सोमालं सुरूवं दारगं पयाया ।

तए णं तीसे चेल्लणाए देवीए इमे एयारूवे-जाव-समुप्पज्जित्था—"जइ ताव इमेणं दारएणं गब्भगएणं चेव पिउणो उयरवलिमंसाइं खाइयाइं, तं न नज्जइ णं एस दारए संवड्ढमाणे अम्हं कुलस्स अंतकरे भविस्सइ । तं सेयं खलु अम्हं एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झावित्तए" एवं संपेहेइ संपेहित्ता दासचेडिं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं, देवाणुप्पिए, एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि ।"

तए णं सा दासचेडी चेल्लणाए देवीए एवं वुत्ता समाणी करयल०-जाव-कट्टु चेल्लणाए देवीए एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झइ ।

तए णं तेणं दारगेणं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिएणं समाणेणं सा असोगवणिया उज्जोविया यावि होत्था ।

सेणियउवालंभियाए चेल्लणाए नियपुत्तसारक्खण —

३५. तए णं से सेणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे, जेणेव असोगवणिया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झियं पासेइ, पासित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव चेल्लणा देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेल्लणं देविं उच्चावयाहिं आओसणाहिं आओसइ, आओसेत्ता उच्चावयाहिं निब्भच्छणाहिं निब्भच्छेइ, एवं उद्धंसणाहिं उद्धंसेइ, उद्धंसेत्ता एवं वयासी—"किस्स णं तुमं मम पुत्तं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झावेसि ?" त्ति कट्टु चेल्लणं देविं उच्चावयसवहसावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—"तुमं णं, देवाणुप्पिए ! एयं दारगं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेहि ।"

तए णं सा चेल्लणा देवी सेणिएणं रन्ना एवं वुत्ता समाणी लज्जिया विलिया विड्डा करयलपरिग्गहियं सेणियस्स रन्नो विणएणं

क्लान्त और निर्विण्ण, उदास, हताश होकर अनिच्छा और परवशतापूर्वक दुर्विकार आर्तध्यान से पीड़ित होती हुई उस गर्भ को वहन धारण करने लगी ।

चेलना का उकुरड़े पर दारक-उज्झन—

३४. तत्पश्चात् परिपूर्ण नौ मास पूर्ण होने पर उस चेलना देवी ने सुकुमार सुन्दर दारक का प्रसव किया ।

तब उस चेलना देवी को यह और इस प्रकार का—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"यदि गर्भ में रहते ही इस बालक ने पिता के उदरावलि का मांस खाया है तो सम्भव है यह बालक बड़े होने पर हमारे कुल का अन्त करने वाला भी हो सकेगा । इसलिये मुझे इस बालक को एकान्त उकुरड़े (कूड़े-कचरे के ढेर) पर फिकवा देना उचित है ।" ऐसा विचार किया, विचार करके दास चेटी को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिये, तुम जाओ और इस बालक को किसी एकान्त कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंक आओ ।"

इसके बाद उस दास चेटी ने चेलना देवी की इस बात को सुनकर दोनों हाथ जोड़—यावत् चेलना देवी के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके उस बालक को हथेलियों में उठाया उठाकर जहाँ अशोकवाटिका थी, वहाँ आई आकर उस दारक को निर्जन कूड़े-कचरे के ढेर पर फेंक दिया ।

उस बालक को निर्जन एकान्त कूड़े कचरे के ढेर पर फेंकने पर वह अशोक वाटिका प्रकाश से व्याप्त हो गई ।

श्रेणिक के उपालम्भ देने पर चेलना का अपने पुत्र का संरक्षण पालन—

३५. तत्पश्चात् श्रेणिक राजा इस वृत्तान्त को जानकर जहाँ अशोक वाटिका थी, वहाँ आया, आकर उस बालक को एकान्त कूड़े कचरे के ढेर पर पड़ा हुआ देखा, देखकर क्रुद्ध हो—यावत्—दांतों को मिसमिसाते हुए उस बालक को हथेलियों पर लिया, लेकर जहाँ चेलना देवी थी वहाँ आया, आकर विविध प्रकार की आक्रोश भरी अनुकूल प्रतिकूल बातों से चेलना देवी की भर्त्सना की, भर्त्सना करके अनेक प्रकार के परुष (कठोर) वचनों से उसकी अवहेलना की एवं अपशब्दों से तिरस्कार किया, तिरस्कार करके इस प्रकार कहा—"किस दुःख से तुमने मेरे बच्चे को एकान्त कूड़े-कचरे के ढेर पर फिकवाया ?" ऐसा कहकर अनेक प्रकार की शपथ-सौगंध दिलाई; सौगंध दिलाकर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिये ! पूर्व की तरह तुम इस बालक की संरक्षा और ध्यानपूर्वक सुरक्षा करते हुए संवर्धित करो—पालन पोषण करके बड़ा करो ।"

तत्पश्चात् श्रेणिक राजा द्वारा इस प्रकार से आज्ञापित होती हुई उस चेलना देवी ने लज्जित, शरमिन्दा और व्रीड़ित होकर

एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेइ।

दोनों हाथ जोड़ विनयपूर्वक श्रेणिक राजा के इस कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके पहले की तरह उस बालक का संरक्षण संगोपन करती हुई पालन-पोषण करने लगी।

सेणिएण दारयस्स वेयणानिवारणं—

३६. तए णं तस्स दारगस्स एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अग्गंगुलिया कुक्कुडपिच्छएणं दूमिया यावि होत्था, अभिक्खणं अभिक्खणं पूयं च सोणियं च अभिनिस्सावेइ।

तए णं से दारए वेयणाभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ। तए णं सेणिए राया तस्स दारगस्स आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव से दारए, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, गिण्हित्ता अग्गंगुलियं आसयंसि पक्खिवइ, पक्खिवित्ता पूयं च सोणियं च आसएणं आमुसेइ।

तए णं से दारए निव्वुए निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

जाहे वि य णं से दारए वेयणाए अभिभूए समाणे महया महया सद्देणं आरसइ, ताहे वि य णं सेणिए राया, जेणेव से दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं दारगं करयलपुडेणं गिण्हइ, तं चेव-जाव-निव्वेयणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

श्रेणिक द्वारा दारक की वेदना निवारण—

३६. एकान्त निर्जन कूड़े कचरे के ढेर पर फेंक दिये जाने से उस बालक की अग्र अंगुली (छिगुरी) मुर्गे के पंख से जख्मी हो गई, उससे प्रति समय पीव और खून निकलने लगा—बहने लगा।

तब वह बालक वेदना से पीड़ित होकर जोर-जोर से रोता। श्रेणिक राजा उस बालक के रोने को सुनकर और ध्यान देकर जहाँ वह बालक था, वहाँ आया, आकर उस बालक को हथेलियों में लिया, लेकर छिगुरी की पट्टी को छोड़ा, छोड़कर पीव और शोणित को निकाला।

तब वह बालक स्वस्थ हो और वेदना के नहीं रहने से शांत हो गया।

जब भी वह बालक वेदना से पीड़ित होकर जोर-जोर से रोता तभी श्रेणिक राजा जहाँ वह बालक होता वहाँ आता, आकर उस बालक को हथेलियों पर लेकर उसी प्रकार—यावत्—वेदना के नहीं रहने से शांत हो जाता।

दारयस्स 'कूणिय' नामकरणं, कूणियस्स तारुण्णाइ य—

३७. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो तइए दिवसे चन्दसूरदरिसणियं करेंति-जाव संपत्ते बारसाहे दिवसे अयमेयारूवं गुणनिप्फन्नं नामधेज्जं करेंति "जम्हा णं अम्हं इमस्स दारगस्स एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिज्जमाणस्स अंगुलिया कुक्कुडपिच्छएणं दूमिया, तं होउ णं अम्हं इमस्स दारगस्स नामधेज्जं कूणिए कूणिए।"

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति 'कूणिय' त्ति।

तए णं तस्स कूणियस्स आणुपुव्वेणं ठिइवडियं च, जहा मेहस्स-जाव-उप्पिं पासायवरगए विहरइ। अट्ठओ दाओ।

दारक का 'कोणिक' नामकरण और कोणिक का तारुण्य आदि—

३७. तत्पश्चात् उस बालक के माता-पिता तीसरे दिन चन्द्र सूर्य दर्शन कराते हैं—यावत्—बारहवें दिन यह और इस प्रकार का नामकरण करते हैं—'क्योंकि हमारे इस बालक को एकान्त उकुरड़े पर फेंके जाने से छिगुरी मुर्गे के पंख से जख्मी हो गई, इसलिये हमारे इस बालक का नाम कोणिक हो।"

तब माता-पिता उस बालक का 'कोणिक' यह नामकरण करते हैं।

तत्पश्चात् अनुक्रम से उस बालक की स्थितिपतिका—जन्मोत्सव, विवाहोत्सव करते हैं, शेष वर्णन मेघकुमार के समान जानना—यावत्—श्रेष्ठ प्रासाद के उपरी भाग में भोग भोगता हुआ विचरण करता है। श्वसुर की ओर से आठ दहेज प्राप्त हुए।

सेणियं गुत्तिबंधणं करेत्ता कूणियस्स रज्जसिरीसंपत्ती—

३८. तए णं तस्स कूणियस्स कुमारस्स अन्नया पुव्वरत्ता०-जाव-समुप्पज्जित्था "एवं खलु अहं सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमि सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरित्तए, तं सेयं खलु मम सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता अप्पाणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता

श्रेणिक को गुप्तिबंधन करके कोणिक का राज्य-श्री संप्राप्ति करना—

३८. इसके बाद उस कोणिक कुमार को किसी एक समय मध्य-रात्रि में—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—"इस प्रकार मैं श्रेणिक राजा के व्याघात से स्वयमेव राज्य शासन करते हुए, प्रजा का पालन करते हुए विचरण नहीं कर पाता हूँ, इसलिए श्रेणिक राजा को बेड़ी में डालकर महान् राज्याभिषेक से अपना अभिषेक करना मुझे श्रेयस्कर-उचित रहेगा।" इस प्रकार का विचार

सेणियस्स रन्नो अंतराणि य छिड्डाणि य विरहाणि य पडिजागरमाणे विहरइ।

किया, विचार करके श्रेणिक राजा के अंतरों—गुप्त बातों, छिद्रों-दोषों और विवरों-स्खलनाओं की प्रतीक्षा करते हुए विचरने लगा -समय व्यतीत करने लगा।

तए णं से कूणिए कुमारे सेणियस्स रन्नो अंतरं वा-जाव-मम्मं वा अलभमाणं अन्नया कयाइ कालाईए दस कुमारे नियघरे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु, देवाणुप्पिया! अम्हे सेणियस्स रन्नो वाघाएणं नो संचाएमो सयमेव रज्जसिरिं करेमाणा पालेमाणा विहरित्तए, तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! अम्हं सेणियं रायं नियलबंधणं करेत्ता रज्जं च रट्ठं च बलं च वाहणं च कोसं च कोट्ठागारं च जणवयं च एक्कारसभाए विरचित्ता सयमेव रज्जसिरिं करेमाणाणं पालेमाणाणं-जाव-विहरित्तए।"

तत्पश्चात् उस कोणिक कुमार ने श्रेणिक राजा के अंतरों—यावत् मर्मों को प्राप्त नहीं करने से किसी एक समय कालादि दस कुमारों को अपने आवास गृह में बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो! बात यह है कि श्रेणिक राजा के व्याघात से हम स्वयं राज्य शासन और प्रजा का पालन करते हुए समय व्यतीत करने में समर्थ नहीं हैं, अतएव हे देवानुप्रियो! श्रेणिक राजा को बेड़ी में डालकर राज्य, राष्ट्र, बल, वाहन, कोश, कोठार और जनपद को ग्यारह भागों में बाँटकर स्वयमेव राज्य शासन और प्रजा का पालन करते हुए—यावत्—विचरण करना हमें उचित है।"

तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स कुमारस्स एयमट्ठं विणएणं पडिसुणंति।

तब उन काल आदि दस कुमारों ने कोणिक कुमार के इस आशय को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

तए णं से कूणिए कुमारे अन्नया कयाइ सेणियस्स रन्नो अन्तरं जाणइ, जाणित्ता सेणियं रायं नियलबंधणं करेइ, करेत्ता अप्पाणं महया महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेइ। तए णं से कूणिए कुमारे राया जाए महया महया०।

तदनन्तर कोणिक कुमार ने किसी एक समय श्रेणिक राजा के अन्तर को जाना, जानकर श्रेणिक राजा को बेड़ी में डाल दिया, डालकर अपना महान् उत्सव पूर्वक राज्याभिषेक से अभिषेक कराया। इसके बाद पर्वतों में हिमवन्त् आदि महान् पर्वतों के समान मनुष्यों में वह कोणिक कुमार महान् राजा हो गया।

कूणियस्स चेल्लणासयासाओ अप्पाणं पइ सेणियस्स सिणेहावगमो -

कोणिक का चेलना से अपने प्रति श्रेणिक के स्नेह का ज्ञान—

३९. तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइ ण्हाए-जाव-सव्वालंकारविभूसिए चेल्लणाए देवीए पायवंदए हव्वमागच्छइ तए णं से कूणिए राया चेल्लणं देविं ओहय-जाव-झियायमाणिं पासइ, पासित्ता चेल्लणाए देवीए पायग्गहणं करेइ, करेत्ता चेल्लणं देविं एवं वयासी—"किं णं, अम्मो! तुम्हं न तुट्ठी वा न ऊसए वा न आणंदे वा, जं णं अहं सयमेव रज्जसिरिं-जाव-विहरामि?"

३९. इसके पश्चात् वह कोणिक राजा किसी एक दिन स्नान करके—यावत्—सर्व अलंकारों से शरीर को विभूषित कर चेलना देवी को पाद वंदन के लिये आया, तब कोणिक राजा को चेलना देवी को उदासीन—यावत्—चिन्ताग्रस्त देखा, देखकर चेलना देवी के पैरों को पकड़ लिया और पकड़ कर चेलना देवी से इस प्रकार कहा—"हे अम्मा! क्या तुमको खुशी-उल्लास, हर्ष और आनन्द नहीं है कि मैं स्वयमेव राज्य शासन करके—यावत्—विचरण कर रहा हूँ?"

तए णं सा चेल्लणा देवी कूणियं रायं एवं वयासी—"कहं णं, पुत्ता! ममं तुट्ठी वा ऊसए वा हरिसे वा आणंदे वा भविस्सइ, जं णं तुमं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करित्ता अप्पाणं महया रायाभिसेएणं अभिसिंचावेसि?"

तब उस चेलना देवी ने कोणिक राजा से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र! मुझे कैसे खुशी, उल्लास, हर्ष और आनन्द हो सकता है, जब तुमने प्रिय, देवरूप, गुरुजनों जैसे पूज्य अत्यन्त स्नेह और अनुराग से युक्त श्रेणिक राजा को बेड़ी में डालकर स्वयं को महान् राज्याभिषेक से अभिषेक कराया?"

तए णं से कूणिए राया चेल्लणं देविं वयासी—"घाएउकामे णं, अम्मो? ममं सेणिए राया, एवं मारेउ० बंधिउ० निच्छुभिउकामे णं अम्मो! ममं सेणिए राया। तं कहं णं अम्मो! ममं सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते?"

तदनन्तर कोणिक राजा ने चेलना देवी से इस प्रकार कहा—"हे अम्मा! श्रेणिक राजा मेरी हत्या करना चाहता था, हे अम्मा! इस प्रकार मुझे मारना चाहता था, बाँधना चाहता था निष्कासित करना चाहता था। तो हे अम्मा, श्रेणिक राजा मेरे प्रति अत्यन्त स्नेह और अनुराग से युक्त कैसे था?"

तए णं सा चेल्लणा देवी कूणियं कुमारं एवं वयासी—"एवं खलु, पुत्ता ! तुमंसि ममं गब्भे आभूए समाणे तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं ममं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए "धन्नाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-अंकपडिचारियाओ, निरवसेसं भाणियव्वं-जाव-जाहे वि य णं तुमं वेयणाए अभिभूए महया-जाव-तुसिणीए संचिट्ठसि । एवं खलु, पुत्ता ! सेणिए राया अच्चंतनेहाणुरागरत्ते ।"

कूणियस्स सेणियबंधणछेयणत्थं गमणं—

४०. तए णं से कूणिए राया चेल्लणाए देवीए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म चेल्लणं देविं एवं वयासी—"दुट्ठु णं, अम्मो ! मए कयं सेणियं रायं पियं देवयं गुरुजणगं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करतेणं । तं गच्छामि णं सेणियस्स रन्नो सयमेव नियलाणि छिन्दामि" त्ति कट्टु परसुहत्थगए जेणेव चारगसाला तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

सेणियस्स तालपुडविसभक्खणं मरणं च—

४१. तए णं सेणिए राया कूणियं कुमारं परसुहत्थगयं एज्जमाणं पासइ, एवं वयासी—"एस णं कूणिए कुमारे अपत्थियपत्थिए-जाव-सिरिहिरिपरिवज्जिए परसुहत्थगए इह हव्वमागच्छइ । तं न नज्जइ णं ममं केणइ कुमारेणं मारिस्सइ" त्ति कट्टु भीए-जाव-संजायभए तालपुडगं विसं आसगंसि पक्खिवइ । तए णं से सेणिए राया तालपुडगविसंसि आसगंसि पक्खित्ते समाणे मुहुत्तंतरेण परिणममाणंसि निप्पाणे निच्चेट्ठे जीवविप्पजढे ओइण्णे ।

कूणियस्स सोगो सोगावगमो नियभाउएसु रज्जविभयणं च—

४२. तए णं से कूणिए कुमारे जेणेव चारगसाला तेणेव उवागए, उवागच्छित्ता सेणियं रायं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं ओइण्णं पासइ, पासित्ता महया पिइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चंपगवरपायवे धस त्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिए ।

तए णं से कूणिए कुमारे मुहुत्तंतरेण आसत्थे समाणे रोयमाणे कंदमाणे सोयमाणे विलवमाणे एवं वयासी—"अहो णं मए अधन्नेणं अपुण्णेणं अकयपुण्णेणं दुट्ठुकयं सेणियं रायं पियं देवयं अच्चंतनेहाणुरागरत्तं नियलबंधणं करतेणं । ममंमूलागं चेव णं सेणिए राया कालगए" त्ति कट्टु ईसरतलवर-जाव-संधिवालसद्धिं

तब चेलना देवी ने कोणिक कुमार से इस प्रकार कहा—"हे पुत्र ! बात यह है कि जब तुम मेरे गर्भ में आये तब करीब तीन मास पूर्ण होने पर मुझे यह और इस प्रकार का दोहद प्रादुर्भूत हुआ, वे मातायें धन्य हैं आदि से लेकर अंगपरिचारिका द्वारा फिकवाया आदि एवं जब तुम वेदना से पीड़ित हो जोर-जोर से रोते आदि शांत हो जाते थे पर्यन्त का समस्त वर्णन पूर्ववत् यहाँ कहना चाहिये । इस प्रकार हे पुत्र ! श्रेणिक राजा अत्यन्त स्नेह और अनुराग से युक्त था ।"

कोणिक का श्रेणिक के बंधन छेदनार्थ गमन—

४०. तत्पश्चात् कोणिक राजा ने चेलना देवी से इस वृत्तान्त को सुनकर और सोच-समझकर चेलना देवी से इस प्रकार कहा—"हे अम्मा ! मैंने बुरा किया जो प्रिय, देवरूप गुरुजन जैसे पूज्य अत्यन्त स्नेह और अनुराग से युक्त श्रेणिक राजा को बेड़ी से बाँधा । अतएव मैं जाऊँ और स्वयमेव श्रेणिक राजा की बेड़ियों को काटूं ।" ऐसा कहकर हाथ में तलवार लेकर जहाँ कारावास था उसी ओर चलने के लिये उद्यत हुआ ।

श्रेणिक का तालपुट विषभक्षण और मरण—

४१. इसके बाद श्रेणिक राजा ने हाथ में तलवार लेकर आते हुए कोणिक कुमार को देखा और इस प्रकार कहा—"यह अप्रार्थित—यावत्—श्री-ह्री से रहित कोणिक कुमार हाथ में तलवार लेकर तेजी से इधर आ रहा है, तो न मालूम मुझे यह किस कुमौत से मारेगा ।" ऐसा सोचकर भयभीत—यावत्—भयग्रस्त होकर तालपुट विष को मुख में रख लिया । तब वह श्रेणिक राजा तालपुट विष को मुख में रखते ही एक क्षण के बाद विष के परिणमित होने पर निष्प्राण निश्चेष्ट, जीवन रहित होकर भूमि पर गिर गया ।

कोणिक का शोक; शोकापगम और निज भ्राताओं में राज्य का विभाजन—

४२. तत्पश्चात् वह कोणिक कुमार जहाँ कारागृह था, वहाँ आया, आकर अपने श्रेणिक राजा को निष्प्राण, निश्चेष्ट, जीवन रहित और भूमि पर गिरा हुआ देखा, देखकर महान् पितृ शोक में डूबकर कुल्हाड़ी से काटे गये श्रेष्ठ चम्पक वृक्ष के समान सर्वांग से पछाड़ खाकर धरती पर गिर पड़ा ।

तदनन्तर कुछ क्षण के बाद आश्वस्त होने पर उस कोणिक कुमार ने रुदन, आक्रन्दन, शोक और विलाप करते हुए इस प्रकार कहा—"अहो ! मुझ अधन्य, अभागे, अकृत पुण्य ने प्रिय देवरूप, अत्यन्त स्नेह और अनुराग से युक्त श्रेणिक राजा को बेड़ी से बाँधकर बुरा किया है । मेरे कारण ही श्रेणिक राजा कालगत हुए हैं इस प्रकार का विचार कर ईश्वर तलवर—यावत्—संधिपालों के साथ रुदन, आक्रंदन और विलाप करते

संपरिवुडे रोयमाणे ३ महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं सेणियस्स रन्नो नीहरणं करेइ।

तए णं से कूणिए कुमारे एएणं महया मणोमाणसिएणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे अन्नया कयाइ अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए रायगिहाओ पडिनिक्खमइ, जेणेव चम्पानयरी, तेणेव उवागच्छइ, तत्थ वि णं विउलभोगसमिइसमन्नाए गए कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था।

तए णं से कूणिए राया अन्नया कयाइ कालाईए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता रज्जं च-जाव-जणवयं च एक्कारसभाए विरिचइ, विरिचित्ता सयमेव रज्जसिरिं करेमाणे पालेमाणे विहरइ।

कूणियसहोयरस्स वेहल्लस्स सेयणयगंधहत्थिकीलाए वण्णवाओ—

४३. तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए कूणियस्स रन्नो सहोयरे कणीयसे भाया वेहल्ले नामं कुमारे होत्था, सोमाले-जाव-सुरूवे।

तए णं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स सेणिएणं रन्ना जीवंतएणं चेव सेयणए गन्धहत्थी अट्ठारसवंके हार पुव्वदिन्ने।

तए णं से वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा अंतेउरपरियालसंपरिवुडे चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता अभिक्खणं अभिक्खणं गंगं महाणइं मज्जणयं ओयरइ।

तए णं सेयणए गंधहत्थी देवीओ सोंडाए गिण्हइ, गेण्हित्ता अप्पेगइयाओ पुट्ठे ठवेइ, अप्पेगइयाओ खंधे ठवेइ, एवं कुम्भे ठवेइ, सीसे ठवेइ, दंतमुसले ठवेइ, अप्पेगइयाओ सोंडागयाओ अंदोलावेइ, अप्पेगइयाओ दंतंतरेसु नीणेइ, अप्पेगइयाओ सीभरेणं ण्हाणेइ, अप्पेगइयाओ अणेगेहिं कीलावणेहिं कीलावेइ।

तए णं चंपाए नयरीए सिंघाडगतिगचउक्कचच्चरमहापहपहेसु बहुजणो अन्नमन्नस्स एवमाइक्खइ-जाव-परूवेइ —"एवं खलु, देवाणुप्पिया! वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा अन्तेउर० तं चेव -जाव-अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ। तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्जसिरिफलं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया।"

नियभज्जापउमावइअणुरोहेण कूणियस्स वेहल्लसमक्खं पुणो पुणो हत्थीमग्गणं हारमग्गणं च

४४. तए णं तीसे पउमावईए देवीए इमीसे कहाए लद्धट्ठाए समाणीए अयमेयारूवे-जाव-समुप्पज्जित्था—"एवं खलु वेहल्ले कुमारे सेयणएणं गंधहत्थिणा-जाव-अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ।

हुए महान् ऋद्धि सत्कार और अभ्युदय के साथ श्रेणिक राजा की नीहरण (दाह-संस्कार) क्रिया की।

तत्पश्चात् वह कोणिक कुमार इस महान मनोगत मानसिक दुःख से पीड़ित होकर किसी एक दिन अन्तःपुर परिवार से परिवेष्टित होता हुआ धन, धान्यादि उपकरणों को लेकर राजगृह से निकला और जहाँ चम्पा नगरी थी, वहाँ आया, वहाँ भी सम्यक् विपुल भोगों से समन्वित हो समय के बीतने पर शोकरहित हो गया।

तदनन्तर उस कोणिक राजा ने किसी एक दिन काल आदि दस कुमारों को बुलाया, बुलाकर राज्य—यावत्—जनपद को ग्यारह भागों में विभाजित किया, विभाजित करके स्वयं राज्य शासन और प्रजा का पालन करते हुए समय बिताने लगा।

कोणिक के सहोदर वेहल्ल की सेचनकगंध हस्तिक्रीड़ा का वर्णन—

४३. उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा का पुत्र चेलना देवी का अंगजात कोणिक राजा का सहोदर और छोटा भाई वेहल्ल नामक कुमार था जो अत्यन्त सुकुमाल—यावत् सौन्दर्यशाली था।

श्रेणिक राजा ने पहले ही अपने जीवित रहते उस वेहल्ल कुमार को सेचनक गंध हस्ती और अठारह लड़ का हार दिया था।

वह वेहल्लकुमार सेचनक गंध हस्ती और अन्तःपुर परिवार को साथ लेकर चम्पा नगरी के बीचों-बीच से निकलता, निकलकर स्नान करने के लिये बार-बार गंगा नदी में उतरता-घुसता।

तब वह सेचनक गंधहस्ती सूंड से रानियों को पकड़ता और पकड़कर किसी को पीठ पर बैठाता, किसी को स्कन्ध पर बैठाता ऐसी प्रकार किसी को गंडस्थल पर तो किसी को सिर पर किसी को गजदंतों पर बैठाता, किसी को सूंड से पकड़कर झुलाता, किसी को दाँतों के बीच लेता, किसी को पानी की फुहारें छोड़कर नहलाता और किसी को अनेक प्रकार की— भाँति-भाँति की क्रीड़ाओं से रमाता-खिलखिलाता।

तदनन्तर चम्पा नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, राजमार्गों और सामान्य मार्गों में अनेक व्यक्ति—'हे देवानुप्रियो! वेहल्ल कुमार सेचनक गंधहस्ती और अन्तःपुर आदि के साथ से लेकर अनेक प्रकार क्रीड़ायें रमाता पर्यन्त पूर्ववत् पर परस्पर एक-दूसरे से कहते - यावत्—प्ररूपण करते। यह वेहल्ल कुमार ही राज्य श्री के फल का अनुभव करते हुए विचरता है, कोणिक राजा नहीं।"

निजभार्या पद्मावती के अनुरोध से कोणिक का पुनः पुनः वेहल्ल से हाथी और हार का मांगना—

४४. तत्पश्चात् उस पद्मावती देवी को यह बात सुनकर यह और इस प्रकार का—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'वेहल्ल कुमार सेचनक गंध हस्ती से—यावत्—अनेक प्रकार की क्रीड़ायें

तं एस णं वेहल्ले कुमारे रज्जसिरिफलं पच्चणुभवमाणे विहरइ, नो कूणिए राया। तं किं णं अम्हं रज्जेण वा-जाव-जणवएण वा, जइ णं अम्हं सेयणगे गंधहत्थी नत्थि, तं सेयं खलु ममं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवित्तए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहेत्ता जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-जाव-अणेगेहिं कीलावणएहिं कीलावेइ। तं किं णं अम्हं रज्जेण वा-जाव-जणवएण वा, जइ णं अम्हं सेयणए गंधहत्थी नत्थि ?'

कराता है। यह वेहल्ल कुमार ही सचमुच में राज्य श्री के फल का अनुभव करते हुए विचरता है किन्तु कोणिक राजा नहीं। तो हमारे राज्य—यावत्—जनपद से क्या लाभ ? यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती नहीं है, अतएव कोणिक राजा से इस अर्थ का निवेदन करना मुझे श्रेयस्कर है।" इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कोणिक राजा था, वहाँ आई, आकर हस्तयुगल को जोड़—यावत्—इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! वेहल्लकुमार गंधहस्ती के साथ—यावत्—अनेक प्रकार की क्रीड़ायें रमाता है। तो फिर हमारे राज्य—यावत्—जनपद से क्या, यदि हमारे पास सेचनक गंधहस्ती नहीं है ?"

तए णं से कूणिए राया पउमावईए एयमट्ठं नो आढाइ, नो परियाणाइ, तुसिणीए संचिट्ठइ।

तब उस कोणिक राजा ने पद्मावती के इस कथन का आदर नहीं किया और न उस पर ध्यान दिया, किन्तु मौन होकर बैठा रहा।

तए णं सा पउमावई देवी अभिक्खणं अभिक्खणं कूणियं रायं एयमट्ठं विन्नवेइ।

तत्पश्चात् वह पद्मावती देवी बार-बार कोणिक राजा से इस बात के लिये निवेदन करती।

तए णं से कूणिए राया पउमावईए देवीए अभिक्खणं अभिक्खणं एयमट्ठं विन्नविज्जमाणे अन्नया कयाइ वेहल्लं कुमारं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ।

तदनन्तर पद्मावती देवी द्वारा बार-बार इस बात के लिये निवेदन किये जाने पर कोणिक राजा ने किसी एक दिन वेहल्ल कुमार को बुलाया और बुलाकर सेचनक गंधहस्ती एवं अठारह लड़ का हार माँगा।

तए णं से वेहल्ले कुमारे कूणियं रायं एवं वयासी—"एवं खलु सामी ! सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव सेयणए गंधहत्थी अट्ठारसवंके य हारे दिन्ने। तं जइ णं सामी ! तुब्भे ममं रज्जस्स य -जाव-जणवयस्स य अद्धं दलयह, तो णं अहं तुब्भं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं दलयामि।"

तब उस वेहल्लकुमार ने कोणिक राजा से इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन् ! बात यह है कि श्रेणिक राजा ने जीवित रहते ही मुझे सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ का हार दिया था। अतएव हे स्वामिन् ! यदि आप मुझे राज्य—यावत्—जनपद का आधा भाग दें तो मैं आपको सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ का हार दूंगा।"

तए णं से कूणिए राया वेहल्लस्स कुमारस्स एयमट्ठं नो आढाइ, नो परिजाणइ, अभिक्खणं अभिक्खणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं जायइ।

तब उस कोणिक राजा ने वेहल्लकुमार के इस कथन का आदर नहीं किया, उस पर ध्यान नहीं दिया किन्तु बार-बार सेचनक और गंध हस्ती और अठारह लड़ के हार की माँग की।

कूणियभीयस्स वेहल्लस्स चेडगनिस्साए वेसालीए अवत्थाणं—

कोणिक से भीत वेहल्ल का वैशाली में चेटक के आश्रय में अवस्थान -

४५. तए णं तस्स वेहल्लस्स कुमारस्स कूणिएणं रन्ना अभिक्खणं अभिक्खणं सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं०। एवं अक्खिविउकामे णं, गिण्हिउकामे णं, उद्दालेउकामे णं ममं कूणिए राया सेयणयं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं। तं-जाव-न उद्दालेइ ममं कूणिए राया, ताव सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउरपरियालसंपरिवुडस्स सभंडमत्तोवगरणमायाए चम्पाओ नयरीओ पडिनिक्खमित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरित्तए—

४५. कोणिक राजा द्वारा बार-बार सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ का हार माँगे जाने पर उस वेहल्लकुमार को विचार आया कि "कोणिक राजा मेरे सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ के हार को अपने अधिकार में लेना चाहता है, ग्रहण करना चाहता है, छीनना चाहता है। इसलिये जब तक कोणिक राजा मुझसे छीन नहीं पाता तब तक सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी हार को लेकर अन्तःपुर परिवार के साथ आभूषण के उपकरणों सहित चम्पा नगरी से निकल कर वैशाली नगरी में आर्यक-मातामह चेटक राजा के पास जाकर रहना चाहिए।"

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कूणियस्स रन्नो अंतराणि-जाव-पडिजागरमाणे पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से वेहल्ले कुमारे अन्नया कयाइ कूणियस्स रन्नो अंतरं जाणइ, सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउरपरियालसंपरिवुडे सभंडमत्तोवगरणमायाए चम्पाओ नयरीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव वेसाली नयरी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेसालीए नयरीए अज्जगं चेडयं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ।

कूणिएणं चेडगसमीवे सेयणयगंधहत्थिआइपेसणत्थं दूयपेसणं—

४६. तए णं से कूणिए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे "एवं खलु वेहल्ले कुमारे ममं असंविदिएणं सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं गहाय अंतेउरपरियालसंपरिवुडे-जाव-अज्जगं चेडयं रायं उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तं सेयं खलु सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं आणेउं दूयं पेसित्तए" एवं संपेहेइ, संपेहित्ता दूयं सद्दावेइ, सद्दावित्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं, देवाणुप्पिया, वेसालिं नयरिं। तत्थ णं तुमं ममं अज्जं चेडगं रायं करयल० वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु, सामी! कूणिए राया विन्नवेइ—एस णं वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय हव्वमागए। तए णं तुब्भे सामी! कूणियं रायं अणुगिण्हमाणा सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं कुमारं च पेसह।"

४७. तए णं से दूए कूणिएणं० करयल-जाव-पडिसुणित्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता जहा चित्तो-जाव-वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु, सामी! कूणिए राया विन्नवेइ—"एस णं वेहल्ले कुमारे, तहेव भाणियव्वं-जाव-वेहल्लं कुमारं पेसह।"

चेडएणं वेहल्लट्ठं अद्धरज्जमग्गणं—

४८. तए णं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—"जह चेव णं, देवाणुप्पिया! कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं नत्तुए, तहेव णं वेहल्ले वि कुमारे सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं नत्तुए। सेणिएणं रन्ना जीवंतेणं चेव वेहल्लस्स कुमारस्स सेयणगे गंधहत्थी अट्ठारसवंके य हारे पुव्वविइण्णे।

ऐसा विचार किया विचार करके कोणिक राजा के अंतरों—यावत्—अनुपस्थिति की प्रतीक्षा करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

तत्पश्चात् उस वेहल्लकुमार ने किसी एक समय कोणिक राजा के अन्तर (अनुपस्थिति) को जाना, तब सेचनक गंधहस्ती, अठारह लड़ी हार को लेकर अन्तःपुर परिवार के साथ आभूषण उपकरण आदि सहित चम्पा नगरी से निकला, निकल कर जहाँ वैशाली नगरी थी, वहाँ आया और वहाँ जाकर वैशाली नगरी में आर्यक चेटक के पास रहकर विचरने लगा।

कोणिक द्वारा चेटक के समीप सेचनक गंधहस्ती आदि प्रेषणार्थ दूत प्रेषण—

४६. तत्पश्चात् कोणिक राजा इस समाचार को जानकर कि वेहल्लकुमार मुझे बिना समाचार दिये—जानकारी दिये सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी हार को लेकर अन्तःपुर परिवार के चला गया—यावत्—चेटक राजा के पास विचरता है। अतएव साथ मुझे सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी हार लाने के लिये दूत भेजना उचित है, ऐसा विचार किया, विचार करके दूत को बुलाया, बुलाकर उस दूत से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय! तुम वैशाली नगरी जाओ। वहाँ तुम मेरे मातामह राजा चेटक को दोनों हाथ जोड़—यावत्—बधाकर इस प्रकार कहना—"हे स्वामिन्! कोणिक राजा निवेदन करता है कि यह वेहल्लकुमार कोणिक राजा को बिना बताये ही सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी हार को लेकर यहाँ आ गया है। इसलिये हे स्वामिन्! आप कोणिक राजा पर अनुग्रह-कृपा करके सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी हार वापस कोणिक राजा को लौटा दो और वेहल्लकुमार को भेजो।

४७. तत्पश्चात् वह दूत कोणिक राजा को दोनों हाथ जोड़—स्वीकार करके जहाँ अपना घर था, वहाँ आया, आकर चित्त सारथी के समान चेटक राजा के पास पहुँचा—यावत् उन्हें बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—'हे स्वामिन् कोणिक राजा निवेदन करते हैं—'यह वेहल्लकुमार आदि से लेकर वेहल्लकुमार को भेजो' पर्यन्त की सर्ववक्तव्यता पूर्ववत् कहना चाहिए।

चेटक द्वारा वेहल्लार्थ अर्ध राज्यमार्गण—माँगना—

४८. तत्पश्चात् चेटक राजा ने उस दूत को इस प्रकार उत्तर दिया—'देवानुप्रिय! जैसे कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र चेलनादेवी का अंगजात और मेरा दोहिता है, वैसे ही वेहल्ल कुमार भी श्रेणिक राजा का पुत्र चेलनादेवी का अंगजात और मेरा दोहिता है। श्रेणिक राजा ने अपने जीवित रहते ही वेहल्लकुमार को सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी का हार पूर्व में दिया था।

तं जइ णं कूणिए राया वेहल्लस्स रज्जस्स य जणवयस्स य अद्धं दलयइ, तो णं अहं सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं च कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामि, वेहल्लं च कुमारं पेसेमि।" तं दूयं सक्कारेइ, सम्माणेइ पडिविसज्जेइ।

इसलिये यदि कोणिक राजा वेहल्लकुमार को राज्य और जनपद का आधा भाग दे तो मैं सेचनक हाथी, अठारह लड़ी का हार कोणिक राजा को वापस लौटा दूंगा तथा वेहल्लकुमार को भी भेज दूंगा। इस प्रकार कहकर उस दूत को सत्कार सम्मान करके विदा किया।

तए णं से दूए चेडएणं रन्ना पडिविसज्जिए समाणे जेणेव चाउग्घंटे आसरहे, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चाउग्घंटं आसरहं दुरुहइ, दुरुहित्ता वेसालिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता सुभेहिं वसहीहिं पायरासेहिं-जाव-वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु, सामी! चेडए राया आणवेइ—'जह चेव णं कूणिए राया। सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए ममं नत्तुए, तं चेव भाणियव्वं-जाव-वेहल्लं च कुमारं पेसेमि।' तं न देइ णं सामी! चेडए राया सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं च, वेहल्लं च नो पेसेइ।"

तत्पश्चात् चेटक राजा के द्वारा विदा किया गया वह दूत जहाँ चार घंटों वाला अश्व रथ था, वहाँ आया, आकर चातुर्घंटिक अश्व रथ पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर वैशाली नगरी के मध्य भाग से निकला, निकलकर सुखकारी वसतिकाओं में विश्राम करता हुआ प्रातराश (कलेवा) आदि करता हुआ चम्पानगरी पहुँचा वहाँ कोणिक को—यावत्—बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—'हे स्वामिन्! चेटक राजा ने आदेश कहलाया है कि—"जैसे कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलनादेवी का अंगजात और मेरा दौहित्र है आदि लेकर वेहल्लकुमार को भेजूंगा पर्यन्त की वक्तव्यता यहाँ कहना चाहिए। इसलिये हे स्वामिन्! चेटक राजा ने सेचनक हाथी और अठारह लड़ी का हार नहीं दिया और न वेहल्लकुमार को भेजा।'

कूणिएण पुणो दूयपेसणं—

४९. तए णं से कूणिए राया दोच्चं पि दूयं सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! वेसालिं नयरिं। तत्थ णं तुमं मम अज्जगं चेडगं रायं-जाव-एवं वयासी—"एवं खलु सामी! कूणिए राया विन्नवेइ—"जाणि काणि रयणाणि समुप्पज्जन्ति, सव्वाणि ताणि रायकुलगामीणि। सेणियस्स रन्नो रज्जसिरिं करेमाणस्स पालेमाणस्स दुवे रयणा समुप्पन्ना, तं जहा—सेयणए गंधहत्थी, अट्ठारसवंके य हारे। तं णं तुब्भे, सामी! रायकुलपरंपरागयं ठिइयं अलोवेमाणा सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं च हारं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणह, वेहल्लं च कुमारं पेसेह।"

कोणिक द्वारा पुनः दूत प्रेषण—

४९. तत्पश्चात् कोणिक राजा ने दूसरी बार भी दूत को बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम वैशाली नगरी जाओ। वहाँ तुम मेरे आर्यक (मातामह-नाना) चेटक राजा को यावत्—इस प्रकार कहो—"हे स्वामिन्! कोणिक राजा ने निवेदन किया है—'जो कोई भी रत्न उत्पन्न होते हैं वे सब राज कुलगामी-राजकुल के अधिकार में होते हैं। राज्यशासन करते हुए और प्रजा का पालन करते हुए श्रेणिक राजा को दो रत्न प्राप्त हुए यथा—सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़वाला हार। अतएव हे स्वामिन्! आप राजकुल की परम्परागत स्थिति-मर्यादा को नष्ट नहीं कर, नहीं तोड़कर सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ वाला हार, कोणिक राजा को वापस लौटा दो और वेहल्लकुमार को भेजो।"

चेडगेण पुणो वि अद्धरज्जमग्गणं—

५०. तए णं से दूए कूणियस्स रन्नो, तहेव-जाव-वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु सामी! कूणिए राया विन्नवेइ—'जाणि काणि-जाव-वेहल्लं कुमारं पेसेह।" तए णं से चेडए राया तं दूयं एवं वयासी—"जह चेव णं, देवाणुप्पिया, कूणिए राया सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए, जहा पढमं-जाव-वेहल्लं च कुमारं पेसेमि।" तं दूयं सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ।

चेटक द्वारा पुनः अर्धराज्य मांगना—

५०. तदनन्तर कोणिक राजा के उस दूत ने उसी प्रकार—यावत्—बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—"स्वामिन्! कोणिक राजा प्रार्थना करता है—जो कोई भी—यावत्—वेहल्लकुमार को भेजो।' तब चेटक राजा ने उस दूत से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! जैसे कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र चेलना देवी का अंगजात है आदि जैसा पहले कहा गया है—यावत्—वेहल्लकुमार को भेज दूंगा।' उस दूत को सत्कार-सम्मान करके विदा किया।

तए णं से दूए-जाव-कूणियस्स रन्नो वद्धावेत्ता एवं वयासी—चेडए राया आणवेइ—'जह चेव णं देवाणुप्पिया! कूणिए राया

तत्पश्चात् उस दूत ने—यावत्—कोणिक राजा को बधाकर इस प्रकार निवेदन किया—"चेटक राजा ने आदेश दिया है—

सेणियस्स रन्नो पुत्ते चेल्लणाए देवीए अत्तए-जाव-वेहल्लं कुमारं पेसेमि।' तं न देइ णं, सामी! चेडए राया सेयणगं गंधहत्थि अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं कुमारं नो पेसेइ।"

'देवानुप्रिय! जैसे कोणिक राजा श्रेणिक राजा का पुत्र, चेलना देवी का अंगजात है—यावत्—वेहल्लकुमार को भेज दूंगा। अतएव हे स्वामिन्! चेटकराजा ने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लडों का हार नहीं दिया और वेहल्लकुमार को नहीं भेजा।

संगामत्थं कूणिएण पुणो दूयपेसणं—

५१. तए णं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तच्चं दूयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! वेसालीए नयरीए चेडगस्स रन्नो वामेण पाएणं पायवीढं अक्कमाहि, अक्कमेत्ता कुन्तग्गेणं लेहं पणावेहि, पणावित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चेडगं रायं एवं वयासो—'हंभो! चेडगराया! अपत्थियपत्थिया, दुरन्त०-जाव-परिवज्जिया एस णं कूणिए राया आणवेइ-पच्चप्पिणाहि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं, वेहल्लं च कुमारं पेसेहि, अहव जुद्धसज्जो चिट्ठाहि। एस णं कूणिए राया सबले सवाहणे सखंधावारे णं जुद्धसज्जे इहव्वमागच्छइ।"

संग्रामार्थ कोणिक द्वारा पुनः दूत प्रेषण—

५१. तदनन्तर कोणिक राजा ने दूत से इस वृत्तान्त को सुनकर और अवधारित कर क्रोधाभिभूत—यावत्—दाँतों को मिसमिसाते हुए तीसरी बार दूत को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय! तुम वैशाली नगरी जाओ और बायें पैर से चेटक राजा के पाद पीठ को आक्रमित करो—दबाओ और आक्रमित करके भाले की नोंक से पत्र को प्रस्तुत करो, प्रस्तुत करके क्रुद्ध—यावत्—दाँतों को मिसमिसाते हुए ललाट में तीन सल डाल कर भृकुटि तान कर चेटक राजा को इस प्रकार कहो—"अरे! चेटक राजा! अप्रार्थित प्रार्थक—अकाल मृत्यु का आकांक्षी भाग्यहीन—यावत्—परिवर्जित यह कोणिक राजा का सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ वाला हार लौटाओ तथा वेहल्लकुमार को भेजो अथवा युद्ध के लिये तैयार हो जाओ। कोणिक राजा बल-सेना, वाहन, अश्व, रथ आदि स्कन्धावार-सैन्य शिविर के साथ युद्ध के लिये तैयार होकर शीघ्र ही यहाँ आते हैं।"

तए णं से दूए करयल० तहेव-जाव-जेणेव चेडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल०-जाव-वद्धावेत्ता एवं वयासी—"एस णं, सामी! ममं विणयपडिवत्ती। 'इयाणिं कूणियस्स रन्नो आण' त्ति चेडगस्स रन्नो वामेणं पाएणं पायवीढं अक्कमइ, अक्कमित्ता आसुरुत्ते कुन्तग्गेण लेहं पणावेइ, तं चेव सबलखंधावारे णं इह हव्वमागच्छइ।"

तत्पश्चात् दूत ने दोनों हाथ जोड़ उसी प्रकार—यावत्—जहाँ चेटक राजा था, वहाँ आया और आकर दोनों हाथ जोड़—यावत्—बधाकर इस प्रकार कहा—'स्वामिन!' यह मेरी विनय प्रतिपत्ति है। अब जो कोणिक राजा की आज्ञा है वह कहता हूँ—'चेटक राजा के पाद पीठ को बायें पैर से आक्रान्त करो, आक्रांत करके क्रोधाभिभूत हो भाले की नोक से पत्र प्रस्तुत करो तथा कहना कि कोणिक सेना और स्कन्धावार सहित यहाँ शीघ्र आ रहे हैं।

चेडयस्स जुज्झसज्जत्तं—

५२. तए णं से चेडए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-साहट्टु एवं वयासी—"न अप्पिणामि णं कूणियस्स रन्नो सेयणगं अट्ठारसवंकं हारं, वेहल्लं च कुमारं नो पेसेमि, एस णं जुद्धसज्जे चिट्ठामि" तं दूयं असक्कारियं असंमाणियं अवद्दारेणं निच्छुहावेइ।

चेटक द्वारा युद्ध सज्जा—

५२. तत्पश्चात् चेटक राजा ने उस दूत से इस समाचार को सुनकर और अवधारित कर क्रोधाभिभूत हो—यावत्—ललाट सिकोड़कर इस प्रकार कहा—'न तो कोणिक राजा को सेचनक हाथी और अठारह लड़ी वाला हार देता हूँ और न वेहल्ल कुमार को भेजता हूँ किन्तु युद्ध के लिये तैयार हूँ।" इस प्रकार कहकर उस दूत को अनादृत एवं अपमानित कर अपद्वार—पिछले द्वार खिड़की से बाहर निकाल दिया।

कूणियाइट्ठाणं कालाइकुमाराणं संगामत्थं सम्मीलणं—

५३. तए णं से कूणिए राया तस्स दूयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा

कोणिक के अनुचित संग्रामार्थ काल आदि कुमारों का सम्मिलन—

५३. तत्पश्चात् कोणिक राजा ने उस दूत से इस संदेश को सुनकर

निसम्म आसुरुत्ते कालाईए दस कुमारे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! वेहल्ले कुमारे ममं असंविदिदूण सेयणगं गंधहत्थिं अट्ठारसवंकं हारं अंतेउरं सभण्डं च गहाय चंपाओ निक्खमइ, निक्खमित्ता वेसालिं अज्जगं-जाव-उवसंपज्जित्ताणं विहरइ। तए णं मए सेयणगस्स गन्धहत्थिस्स अट्ठारसवंकस्स अट्ठाए दूया पेसिया। ते य चेडएण रन्ना इमेणं कारणेणं पडिसेहित्ता अदुत्तरं च णं ममं तच्चे दूए असक्कारिए असंमाणिए अवद्दारेणं निच्छुहावेइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं चेडगस्स रन्नो जुत्तं गिण्हित्तए।"

और विचार कर क्रोधाभिभूत हो काल आदि दस कुमारों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! बात यह है कि मुझे सूचित किये बिना ही वेहल्लकुमार, सेचनक गंध हस्ती और अठारह लड़ वाले हार, अन्तःपुर और आभूषण आदि को लेकर चम्पा नगरी से निकला, निकलकर वैशाली में आर्यक चेटक—यावत्—पास रहते हुए विचर रहा है। इसके बाद मैंने सेचनक गंधहस्ती और अठारह लड़ी के हार को लाने के लिये दूत भेजा। चेटक राजा ने उसकी उपेक्षा की और यथोचित उत्तर न देकर मेरे तीसरी बार भेजे दूत को अनादृत एवं अपमानित कर अपद्वार से निष्कासित कर दिया। अतएव देवानुप्रियो ! हमें चेटक राजा को युक्ति से पकड़ना उचित है।"

तए णं कालईया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेंति।

तब काल आदि दस कुमारों ने कौणिक राजा के इस अर्थ को विनयपूर्वक स्वीकार किया।

५४. तए णं से कूणिए राया कालाईए दस कुमारे एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सएसु सएसु रज्जेसु; पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया-जाव-पायच्छित्ता हत्थिखंधवरगया पत्तेयं पत्तेयं तिहिं दंतिसहस्सेहिं एवं तिहिं रहसहस्सेहिं तिहिं आससहस्सेहिं तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढिए-जाव-रवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्खमह, पडिनिक्खमित्ता ममं अंतियं पाउब्भवह।"

५४. तदनन्तर कौणिक राजा ने काल आदि दस कुमारों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग अपने अपने राज्यों में जाओ और स्नान कर—यावत्—प्रायश्चित्त करके श्रेष्ठ हाथी पर आसीन होकर प्रत्येक तीन हजार हाथियों, तीन हजार रथों तीन हजार घोड़ों और तीन मनुष्य कोटियों से परिवेष्टित हो सर्व ऋद्धि वैभव—यावत्—वाद्यध्वनियों पूर्वक अपने-अपने नगरों से निकलो—प्रस्थान करो और प्रस्थान कर मेरे पास प्रादुर्भूत होओ; आओ।"

तए णं ते कालाईया दस कुमारा कूणियस्स रन्नो एयमट्ठं सोच्चा सएसु सएसु रज्जेसु पत्तेयं पत्तेयं ण्हाया-जाव-तिहिं मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडा सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं सएहिंतो सएहिंतो नयरेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव अंगा जणवए, जेणेव चंपा नयरी, जेणेव कूणिए राया, तेणेव उवागया करयल-जाव-वद्धावेंति।

तत्पश्चात् वे काल आदि दसों कुमार कौणिक राजा के इस कथन को सुनकर अपने-अपने राज्य में आये प्रत्येक स्नान कर—यावत् तीन मनुष्य कोटियों से घिरे हुए होकर समस्त ऋद्धि-वैभव—यावत्—वाद्य ध्वनियों के साथ अपने-अपने नगरों से निकले, निकलकर जहाँ अंग जनपद था उसमें जहाँ चम्पानगरी थी, कौणिक राजा था, वहाँ आये और दोनों हाथ जोड़कर—यावत्—बधाया।

कालाइकुमारसहियस्स कूणियस्स जुज्झट्ठं वेसालिं पइ पत्याणं—

काल आदि कुमार सहित कौणिक का युद्धार्थ वैशाली के प्रति प्रस्थान—

५५. तए णं से कूणिए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया ! आभिसेक्कं हत्थिरयणं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-जोह-चाउरंगिणिं सेणं संनाहेह, संनाहेत्ता ममं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह"-जाव-पच्चप्पिणंति।

५५. तदनन्तर कौणिक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! शीघ्र ही आभिषेक्य हस्तिरत्न को सजाओ, अश्व-गज-रथ-योद्धा युक्त चतुरंगिणी सेना को युद्ध हेतु सज्ज करो, सज्जित करके मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ।"—यावत्—वापस लौटाते हैं।

तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छइ,-जाव-पडिनिग्गच्छित्ता जेणेव बाहिरिया उवट्ठाणसाला-जाव-नरवई दुरुढे।

तत्पश्चात् कौणिक राजा जहाँ मज्जनगृह—स्नानगृह था वहाँ आया—यावत्—वहाँ से निकल करके जहाँ बाह्य उपस्थान शाला थी, वहाँ आया—यावत्—नरपति अभिषेक्य हाथी पर आरूढ़ हुआ।

तए णं से कूणिए राया तिहिं दंतिसहस्सेहिं-जाव-रवेणं चंपं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव कालाईया दस

तदनन्तर कौणिक राजा तीन हजार हाथियों—यावत्—वाद्य-ध्वनियों पूर्वक चम्पा नगरी के अतिमध्य भाग में निकला,

कुमारा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कालाईएहिं दसहिं कुमारेहिं सद्धिं एगओ मेलायंति।

तए णं से कूणिए राया तेत्तीसाए दंतिसहस्सेहिं, तेत्तीसाए आससहस्सेहिं, तेत्तीसाए रहसहस्सेहिं, तेत्तीसाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं सुभेहिं वसहीहिं सुभेहिं पायरासेहिं नाइविगिट्ठेहिं अंतरावासेहिं वसमाणे वसमाणे अंग-जणवयस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव विदेहे जणवए,जेणेव वेसाली नयरी तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

निकलकर जहाँ काल आदि दस कुमार थे वहाँ आया, आकर काल आदि दस कुमारों के साथ मिल गया।

इसके बाद कोणिक राजा ने तेतीस हजार हाथियों, तेतीस हजार अश्वों, तेतीस हजार रथों और तेतीस मनुष्य कोटियों से घिर कर सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्य ध्वनियों के साथ सुखपूर्वक रात्रि विश्राम कर अच्छी तरह प्रातः कलेवा आदि कर और अति दूर-दूर अन्तरवासों को न करके, अंग जनपद के मध्य में से होते हुए जहाँ विदेह जनपद था, उसमें जहाँ वैशाली नगरी थी उस ओर चलने का निश्चय किया।

मल्लइ-लेच्छइआइसहियस्स चेडयस्स जुज्झट्ठं नीयदेस-सीमाए अवत्थाणं—

मल्लकी लेच्छकि आदि सहित चेटक का युद्धार्थ निजदेश सीमा पर अवस्थान—

५६. तए णं से चेडए राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे नव मल्लई नव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो सद्दावेइ, एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! वेहल्ले कुमारे कूणियस्स रन्नो असंविदिएणं सेयणगं अट्ठारसवंकं च हारं गहाय इह हव्वमागए। तए णं कूणिएणं सेयणगस्स अट्ठारसवंकस्स य अट्ठाए तओ दूया पेसिया। ते य मए इमेणं कारणेणं पडिसेहिया। तए णं से कूणिए ममं एयमट्ठं अपडिसुणमाणे चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ। तं किं णं देवाणुप्पिया! सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणामो? वेहल्लं कुमारं पेसेमो? उदाहु जुज्झित्था?"

५६. तदनन्तर चेटक राजा ने इस समाचार को जानकर नव-मल्लकि, नव लेच्छकि—काशी कोशल देश के अठारहों गण राजाओं को बुलाया और उनसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो! वेहल्ल कुमार कोणिक राजा को बिना जताये सेचनक हाथी और अठारह लड़ वाला हार लेकर यहाँ आ गया। तब कोणिक ने सेचनक हाथी और अठारह लड़ वाले हार के देने के लिये दूत भेजे। उनको मैंने इस कारण वापस लौटा दिया। तब वह कोणिक मेरे इस कथन को अनसुना कर, चतुरंगिणी सेना को साथ लेकर युद्ध के लिये तैयार होकर यहाँ शीघ्र आया है। तो हे देवानुप्रियो! क्या सेचनक हाथी और अठारह लड़ी का हार कोणिक राजा को वापस लौटा दूं? वेहल्ल कुमार को भेज दूं? अथवा युद्ध करें?"

५७. तए णं नव मल्लई नव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो चेडगं रायं एवं वयासी—"न एवं, सामी! जुत्तं वा पत्तं वा रायसरिसं वा, जं णं सेयणगं अट्ठारसवंकं कूणियस्स रन्नो पच्चप्पिणिज्जइ, वेहल्ले य कुमारे सरणागए पेसिज्जइ। तं जइ कूणिए राया चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे जुद्धसज्जे इहं हव्वमागच्छइ, तए णं अम्हे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झामो।"

५७. तब नव मल्लकि, नव लेच्छकि-काशी-कोशल के अठारहों गणराजाओं ने चेटक राजा से इस प्रकार कहा—"स्वामिन्! यह न तो उचित है और न योग्य, नहीं राजा के अनुरूप है, जो सेचनक हाथी एवं अठारह लड़ी का हार कोणिक राजा को वापस लौटा दिया जाये तथा शरणागत वेहल्लकुमार को भेज दिया जाये। इसलिये यदि कोणिक राजा चतुरंगिणी सेना से परिवेष्टित हो युद्ध के लिये तत्पर होकर यहाँ आता है तो हम कोणिक राजा के साथ युद्ध करेंगे।"

तए णं से चेडए राया ते नव मल्लई नव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो एवं वयासी—"जइ णं देवाणुप्पिया! तुब्भे कूणिएणं रन्ना सद्धिं जुज्झह, तं गच्छह णं देवाणुप्पिया! सएसु सएसु रज्जेसु ण्हाया, जहा कालाईया-जाव-जएणं विजएणं वद्धावेंति।

तब चेटक राजा ने उन नव मल्लकि नव लेच्छकि काशी-कोशल के अठारहों गण राजाओं से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! यदि आप कोणिक राजा के साथ युद्ध के लिये तैयार हैं तो देवानुप्रियो! अपने-अपने राज्य में जाओ और स्नान कर सेना लेकर आओ।" आदि काल आदि की तरह आते हैं—यावत्—चेटक को जय-विजय शब्द घोष से बधाया।

तए णं से चेडए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—आभिसेक्कं, जहा कूणिए-जाव-दुरूढे।

तत्पश्चात् चेटक राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—'आभिषेक्य हस्ती रत्न को तैयार करो।' आदि कोणिक राजा के समान शेष समस्त वर्णन यहाँ करना चाहिये—यावत्—आरूढ़ हुआ।

५८. तए णं से चेडए राया तिहिं दंतिसहस्सेहिं, जहा कूणिए-जाव-वेसालिं नयरिं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव ते नव मल्लई नव लेच्छई कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो, तेणेव उवागच्छइ।

तए णं से चेडए राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए आससहस्सेहिं, सत्तावन्नाए रहसहस्सेहिं, सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं सुभेहिं वसहीहिं पायरासेहिं नाइविगिट्ठेहिं अंतरेहिं वसमाणे वसमाणे विदेहं मज्झंमज्झेणं जेणेव देसपंते, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता खंधावार-निवेसणं करेइ, करेत्ता कूणियं रायं पडिवालेमाणे जुद्धसज्जे चिट्ठइ।

५८. इसके बाद चेटक राजा कोणिक राजा की तरह तीन हजार हाथियों—यावत्—वैशाली नगरी के बीचों-बीच से निकला, निकल कर जहाँ नव मल्लिकि, नव लेच्छकि रूप काशी कोशल के अठारहों गण राजा थे, वहाँ आया।

तत्पश्चात् चेटक राजा सत्तावन हजार हाथियों, सत्तावन हजार घोड़ों, सत्तावन हजार रथों और सत्तावन मनुष्य कोटियों के साथ घिर कर सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्य घोष पूर्वक सुखद वसतिकाओं में रात्रि विश्राम प्रातःकलेवा और निकट-निकट के अन्तरालों में विश्राम करते हुए विदेह जनपद के मध्य भाग में से निकलकर जहाँ देश का सीमान्त प्रदेश था वहाँ आया वहाँ आकर सैन्य शिविर स्थापित किया, स्थापित करके कोणिक राजा की प्रतीक्षा करते हुए युद्ध के लिये तत्पर हो ठहर गया।

कूणिय-चेडगाणं संगामो—

५९. तए णं से कूणिए राया सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं जेणेव देसपंते तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चेडयस्स रन्नो जोयणंतरियं खंधावारनिवेसं करेइ।

६०. तए णं ते दोन्नि वि रायाणो रणभूमिं सज्जावेन्ति, सज्जावित्ता रणभूमिं जयंति।

तए णं से कूणिए राया तेत्तीसाए दंतिसहस्सेहिं-जाव-मणुस्सकोडीहिं गरुलवूहं रएइ, रइत्ता गरुलवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए।

तए णं से चेडगे राया सत्तावन्नाए दंतिसहस्सेहिं-जाव-सत्तावन्नाए मणुस्सकोडीहिं सगडवूहं रएइ, रइत्ता सगडवूहेणं रहमुसलं संगामं उवायाए।

तए णं से दोण्ह वि राईणं अणीया संनद्ध-जाव-गहियाउहपहरणा मंगतिएहिं फलएहिं निक्कट्ठाहिं असीहिं अंसागएहिं तोणेहिं सजीवेहिं धणूहिं समुक्खित्तेहिं सरेहिं समुल्लालियाहिं डावाहिं ओसारियाहिं ऊरुघंटाहिं छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं महया उक्किट्ठ-सीहनायबोलकलकलरवेणं समुद्दरवभूयं पिव करेमाणा सव्विड्ढीए-जाव-रवेणं हयगया हयगएहिं, गयगया गयगएहिं, रहगया रहगएहिं, पायत्तिया पायत्तिएहिं, अन्नमन्नेहिं सद्धिं संपलग्गा यावि होत्था।

कोणिक-चेटक का संग्राम—

५९. तत्पश्चात् कोणिक राजा सर्व ऋद्धि—यावत्—वाद्यघोषों पूर्वक जहाँ सीमान्त प्रदेश था वहाँ आया आकर चेटक राजा के पड़ाव से एक योजन के अन्तर से दूर स्कन्धावार बनाया।

६०. तदनन्तर उन दोनों राजाओं ने रणभूमि को सजाया, सजाकर रणभूमि की पूजा की।

इसके बाद कोणिक राजा ने तेतीस हजार हाथियों—यावत्—मनुष्य-कोटियों से गरुड़ व्यूह की रचना की, रचना करके गरुड़ व्यूह द्वारा रथमूसल संग्राम को प्रादुर्भूत किया—प्रारम्भ किया।

चेटक राजा ने सत्तावन हजार हाथियों—यावत्—सत्तावन मनुष्य कोटियों से शकट व्यूह की रचा, रचकर शकटव्यूह से रथ-मूसल संग्राम किया।

तत्पश्चात् उन दोनों राजाओं के सैनिक सन्नद्ध होकर—यावत् आयुध और प्रहरणों को लेकर हाथों में ली हुई ढालों से, म्यान से निकाली हुई तलवारों से, कंधों पर लटकते तूणीरों से प्रत्यंचायुक्त धनुषों से समुत्क्षिप्त (धनुष पर चढ़ाकर छोड़े गये) बाणों से उछाले गये बायें हाथों की भुजाओं में लटकाये घंटों—घुँघरूओं से, बजती हुई रण भेरियों के घोषों से जोर-जोर से किये जा रहे सिंह नादों-हुंकारों और महान् जन कोलाहलों से भूमंडल समुद्र गर्जना से व्याप्त जैसा करते हुए समस्त ऋद्धि—यावत्—वाद्य ध्वनियों पूर्वक आपस में अश्वारूढ़ अश्वारूढ़ों के साथ, गज-स्थित गज स्थितों के साथ, रथ पर बैठे रथ वालों के साथ और प्यादे प्यादों के साथ भिड़ गये।

तए णं ते दोण्ह वि रायाणं अणीया नियगसामीसासणाणुरत्ता महया जणक्खयं जणवहं जणप्पमद्दं जणसंवट्टकप्पं नच्चंतकबंधवार-भीमं रुहिरकद्दमं करेमाणा अन्नमन्नेणं सद्धिं जुज्झंति।

तब अपने-अपने स्वामी के शासन में अनुरक्त उन दोनों राजाओं की सेनायें परस्पर महान् जन हानि, जन वध, जन मर्दन, जन संहार, घोड़ों के समूहों को बचाती हुई सी भीषण और रक्त कीच करती हुई एक-दूसरे से युद्ध करने लगीं।

संगामे कालमरणं—

६१. तए णं से काले कुमारे तिहिं दंतिसहस्सेहिं-जाव-मणूसकोडीहिं गरुलवूहेणं एक्कारसमेणं खंधेणं कूणिएणं रन्ना सद्धिं रहमुसलं संगामं संगामेमाणे हयमहिय०, जहा भगवया कालीए देवीए परिकहियं-जाव-जीवियाओ ववरोवेइ ।

संग्राम में काल का मरण—

६१. उस समय कालकुमार तीन हजार हाथियों—यावत्—मनुष्य कोटियों के द्वारा गरुड़ व्यूह के ग्यारहवें खण्ड में कोणिक राजा के साथ रथ-मूसल-संग्राम को करते हुए प्रवर वीरों को आहत मथित आदि जैसा भगवान् ने काली देवी से कहा—यावत्—जीवन से व्यपरोपित कर दिया गया—मार डाला गया ।

नरयभवाणंतरं कालस्स सिद्धिगमणनिरूवणं—

६२. तं एवं खलु गोयमा ! काले कुमारे एरिसएहिं आरम्भेहिं-जाव-एरिसएणं असुभकडकम्मपब्भारेणं कालमासे कालं किच्चा चउत्थीए पंकप्पभाए पुढवीए हेमाभे नरए नेरइयत्ताए उववन्ने ।"

"काले णं भंते ! कुमारे चउत्थीए पुढवीए....अणंतरं उव्वट्टित्ता कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ।"

"गोयमा, महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवन्ति अड्ढाइं, जहा दढपइण्णो-जाव-सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ-जाव-अन्तं काहिइ ।

नरकभवानन्तर काल का सिद्धि गमन निरूपण—

६२. इस प्रकार 'हे गौतम !' इस तरह के आरम्भों से—यावत्—ऐसे किये हुए अशुभ कर्म भार से कालकुमार मरण समय में मरण करके चौथी पंकप्रभा नरक पृथ्वी के हेमाभ नरक में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ है ।"

गौतम स्वामी ने पूछा—'हे भदन्त ! वह कालकुमार बिना किसी अन्तर के सीधा चौथी पृथ्वी से निकल कर कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

'हे गौतम ! महाविदेह क्षेत्र में जो धन धान्य आदि से सम्पन्न कुल हैं, उनमें उत्पन्न होगा और दढ़प्रतिज्ञ की तरह—यावत्—सिद्ध होगा, बोधिको प्राप्त करेगा—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करेगा ।

कालाणुसारेणं सुकालाईणं णवण्हं वत्तव्वयानिद्देसो—

६३. तेणं कालेणं तेणं समएणं चम्पा नामं नयरी होत्था । पुण्णभद्दे चेइए । कूणिए राया । पउमावई देवी ।

तत्थ णं चंपाए नयरीए सेणियस्स रन्नो भज्जा कूणियस्स रन्नो चुल्लमाउया सुकाली नामं देवी होत्था, सुकुमाला० ।

तीसे णं सुकालीए देवीए पुत्ते सुकाले नामं कुमारे होत्था सुकुमाले० ।

तए णं से सुकाले कुमारे अन्नया कयाइ तिहिं दंतिसहस्सेहिं० जहा कालो कुमारो, निरवसेसं तं चेव भाणियव्वं-जाव-महाविदेहे वासे....अंतं काहिइ ।

६४. एवं सेसा वि अट्ठ अज्झयणा नेयव्वा पढमसरिसा, णवरं मायाओ सरिसनामाओ ।

—निर० अ० २-१०

काल के अनुरूप सुकाल आदि नौ कुमारों की वक्तव्यता का निर्देश—

६३. उस काल और उस समय में चम्पा नाम की नगरी थी । पूर्ण भद्र चैत्य था । कोणिक राजा था और पद्मावती नाम की रानी थी ।

उस चम्पा नगरी में श्रेणिक राजा की भार्या कोणिक राजा की छोटी माता—सौतेली माँ सुकाली नाम की देवी थी, जो अत्यन्त सुकुमाल थी ।

उस सुकालीदेवी का पुत्र सुकाल नामक कुमार था, वह कुमार सुकोमल आदि था ।

तत्पश्चात् वह सुकाल कुमार किसी एक समय तीन हजार हाथियों आदि से लेकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सर्व दुःखों का अन्त करेगा तक का शेष समस्त वर्णन काल कुमार की तरह करना चाहिये ।

६४. इसी प्रकार शेष आठ अध्ययन भी प्रथम अध्ययन के समान जानना चाहिये, किन्तु इतना विशेष है कि उनकी माताओं के नाम कुमारों के नाम के समान हैं :

४. महासिलाकंटयसंगामकहाणयं—

भगवया परूविओ कूणियस्स जओ—

६५. नायमेयं अरहया, सुयमेयं अरहया, विण्णायमेयं अरहया— महासिलाकंटए संगामे। महासिलाकंटए णं भंते! संगामे वट्टमाणे के जइत्था? के पराजइत्था?

गोयमा! वज्जी विदेहपुत्ते जइत्था, नव मल्लई, नव लेच्छई— कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो पराजइत्था।

सक्कसहियस्स कूणियस्स संगामे आगमणं—

६६. तए णं से कोणिए राया महासिलाकंटगं संगामं उवट्ठियं जाणित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी— खिप्पामेव भो देवाणुप्पिया! उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेह, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेह, सण्णाहेत्ता मम एयमाणत्तियं खिप्पामेव पच्चप्पिणह।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा कोणिएणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-मत्थए अंजलिं कट्टु एवं सामी!' तहत्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणंति, पडिसुणित्ता खिप्पामेव छेयायरियोवएस-मति-कप्पणा-विकप्पेहिं सुनिउणेहिं उज्जलणेवत्थ-हव्वपरिवच्छियं सुसज्जं-जाव-भीमं संगामियं अओज्झं उदाइं हत्थिरायं पडिकप्पेंति, हय-गय-रह-पवरजोहकलियं चाउरंगिणिं सेणं सण्णाहेंति, सण्णाहेत्ता जेणेव कूणिए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु कूणियस्स रण्णो तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तए णं से कूणिए राया जेणेव मज्जणघरे तेणेव उवागच्छति, उवागच्छित्ता मज्जणघरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगलपायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए सण्णद्ध-बद्ध-वम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टिए पिणद्धगेवेज्ज-विमलवरबद्ध-चिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे सकोरेंटमल्लदामेणं छत्तेणं धरिज्जमाणेणं

४. महाशिला कंटक संग्राम कथानक—

भगवान द्वारा कोणिक की जय प्ररूपणा—

६५. अरिहंतों से यह जाना है अरिहंतों से यह सुना है और अरिहंतों से यह विशेष रूप से जाना है कि महाशिला कंटक नामक संग्राम है। हे भदन्त! जब महाशिला कंटक चलता था, तब उसमें कौन विजयी हुआ और कौन पराजित हुआ? गौतम स्वामी ने भगवान् महावीर से प्रश्न पूछा।

भगवान् ने उत्तर दिया—हे गौतम! वज्जी और विदेहपुत्र विजयी हुए और नव मल्लकि, नव लेच्छकि-काशी-कौशल देश के अठारहों गणराजा पराजित हुए।

शक्र सहित कोणिक का संग्राम में आगमन—

६६. तदनन्तर कोणिक राजा ने महाशिला कंटक संग्राम उपस्थित (प्रारम्भ) हुआ जानकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! शीघ्र ही उदायी हस्तिराज पट्ट हस्ती को तैयार करो और अश्व-गज-रथ प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना को सन्नद्ध करो, सन्नद्ध करके मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् आज्ञानुसार कार्य होने की मुझे सूचना दो।"

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने हृष्ट-तुष्ट आनन्दित चित्त—यावत्—मस्तक पर अंजलि करके 'हे स्वामिन्! जैसी आपकी आज्ञा" कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके शीघ्र ही कुशल आचार्यों द्वारा शिक्षित और अपनी मति कल्पना के विकल्पों एवं अपनी चतुराई से युद्ध में उपयोग किये जाने के लिये शिक्षित किये गये—यावत्—भयंकर संग्राम में ही जिसका प्रयोग किया जाता है और अयोध्य ऐसे उदायी नामक पट्ट हस्ती को उज्ज्वल वस्त्राभूषणों आदि से भव्य रूप में आच्छादित करके सजाया और अश्व-गज-रथ-प्रवर योद्धाओं से युक्त सेना को सन्नद्ध किया, सन्नद्ध करके जहाँ कोणिक राजा था, वहाँ आये, आकर दोनों हाथ जोड़ मुकुलित दस नखों से आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके कोणिक राजा को वह आज्ञा वापस लौटाई अर्थात् हाथी आदि को सजाने की सूचना दी।

तदनन्तर कोणिक राजा जहाँ स्नानगृह था, वहाँ आया; वहाँ आकर स्नान गृह में प्रविष्ट हुआ, प्रविष्ट होकर स्नान किया बलिकर्म किया, कौतुक-मंगल-प्रायश्चित करके सर्व अलंकारों से विभूषित हुआ, सन्नद्ध होकर लोह कवच को धारण किया, भुजाओं में शरासन पट्टिकाओं को पहना, गले में ग्रैवेयक धारण किया, उत्तम चिह्न पट को बांधा एवं आयुध तथा प्रहरणों को लेकर कोरंट पुष्प की मालाओं से युक्त छत्र को सिर पर धारण कर,

चउचामरवालवीजियंगे मंगलजयसद्दकयालोए-जाव-जेणेव उदाई हत्थिराया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उदाइं हत्थिरायं दुरूढे।

चार चामरों से विजाता हुआ, लोगों द्वारा मांगलिक जय-जयकार किया जाता हुआ—यावत्—जहाँ उदायी पट्टहस्ती था वहाँ आया और वहाँ आकर उदायी हस्तीराज पर आरूढ़ हुआ।

६७. तए णं से कूणिए राया हारोत्थय-सुकय-रइयवच्छे-जाव-सेयवरचामराहिं उद्धुव्वमाणीहिं-उद्धुव्वमाणीहिं हय-गय-रह-पवरजोह-कलियाए चाउरंगिणीए सेणाए सद्धिं संपरिवुडे महयाभडचडगरविंद-परिक्खित्ते जेणेव महासिलाकंटए संगामे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महासिलाकंटगं संगामं ओयाए। पुरओ य से सक्के देविंदे देवराया एगं महं अभेज्जकवयं वइरपडिरूवगं विउव्वित्ताणं चिट्ठइ। एवं खलु दो इंदा संगामं संगामेंति, तं जहा—देविंदे य, मणुइंदे य। एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया जइत्तए, एगहत्थिणा वि णं पभू कूणिए राया पराजिणित्तए।

६७. तत्पश्चात् हार आदि से जिसका वक्षस्थल सुशोभित हो रहा है—यावत्—श्वेत श्रेष्ठ चामरों से विजाता हुआ, अश्व हस्ती रथ, प्रवर योद्धाओं से युक्त चतुरंगिणी सेना से परिवृत्त और महान् सुभटों के विस्तीर्ण समूह से परिरक्षित होता हुआ वह आकर महाशिलाकंटक संग्राम में उतरा। उसके आगे वज्र के समान अभेद्य एक महान् कवच की विकुर्वणा करके देवेन्द्र देवराज शक्र खड़ा हुआ। इस प्रकार दो इन्द्र संग्राम करने लगे, यथा—देवेन्द्र और मनुजेन्द्र। अब एक हाथी के द्वारा ही कोणिक राजा शत्रुसेना पर जय प्राप्त करने में समर्थ है, एक हाथी से ही कोणिक राजा शत्रु को पराजित करने में समर्थ है।

मल्लई-लेच्छईणं पराजयो—

मल्लकि लेच्छकि की पराजय—

६८. तए णं से कूणिए राया महासिलाकंटगं संगामं संगामेमाणे नव मल्लई नव लेच्छई—कासी-कोसलगा अट्ठारस वि गणरायाणो हय-महिय-पवरवीर-घाइए-विवडियचिंध-द्धयपडागे किच्छपाणगए दिसोदिसिं पडिसेहित्था।

६८. इसके बाद उस कोणिक राजा ने नवमल्लकि-नवलेच्छकि काशी-कोशल के अठारहों गणराजाओं को आहत, मथित और प्रवर वीरों का घात करके एवं संकेत सूचक ध्वजा पताकाओं को गिराकर कंठगत प्राण जैसा करके दिशा विदिशाओं में भगा दिया।

महासिलाकंटयसंगामस्स सद्दत्थो, संगामनिहयमणुस्साणं गई य—

महाशिला कंटक संग्राम का शब्दार्थ एवं संग्राम-निहत मनुष्यों की गति—

६९. से केणट्ठेणं भंते! एवं वुच्चइ—महासिलाकंटए संगामे, महासिलाकंटए संगामे? गोयमा!

६९. हे भदन्त! किस कारण यह कहा जाता है कि- महाशिला कंटकसंग्राम, महाशिला-कंटक-संग्राम है? गौतम स्वामी ने भगवान महावीर से पूछा।

महासिलाकंटए णं संगामे वट्टमाणे जे तत्थ आसे वा हत्थी वा जोहे वा सारही वा तणेण वा कट्ठेण वा पत्तेण वा सक्कराए वा अभिहम्मति, सव्वे से जाणेइ महासिलाए अहं अभिहए। से तेणट्ठेणं गोयमा! एवं वुच्चइ—महासिलाकंटए संगामे।

भगवान ने उत्तर दिया—हे गौतम! जब महाशिला कंटक संग्राम प्रवर्तमान हो रहा था तब वहाँ जो भी अश्व, हाथी, योद्धा और सारथी थे वे सब तृण से, काठ से अथवा कंकर आदि के द्वारा आहत होने पर यह अनुभव करते थे—जानते थे कि मैं महाशिला से मारा गया हूँ। इस कारण हे गौतम! इसे महाशिला कंटक संग्राम कहते हैं।

७०. महासिलाकंटए णं भंते! संगामे वट्टमाणे कति जणसयसाहस्सीओ वहियाओ?

७०. हे भगवन्! महाशिला कंटक संग्राम होने पर कितने लाख मनुष्य मारे गये?

गोयमा! चउरासीइं जणसयसाहस्सीओ वहियाओ।

हे गौतम! चौरासी लाख मनुष्य मारे गये।

ते णं भंते! मणुया निस्सीला निग्गुणा निम्मेरा निप्पच्चक्खाणपोसहोववासा रुट्ठा परिकुविया समरवहिया अणुवसंता कालमासे कालं किच्चा कहिं गया? कहिं उववण्णा?

हे भगवन्! निःशील, निर्गुण, निर्लज्ज, प्रत्याख्यान पौषधोपवास रहित रोष से भरे हुए, कुपित युद्ध में मारे गये और अनुपशान्त वे मनुष्य काल के समय काल करके कहाँ गये और कहाँ उत्पन्न हुए? गौतम स्वामी ने पूछा।

गोयमा! उस्सण्णं नरग-तिरिक्खजोणिएसु उववण्णा।

हे गौतम! वे प्रायः नरक-तिर्यंच योनि में उत्पन्न हुए। श्रमण भगवान् महावीर ने उत्तर दिया।

—भगवती श० ७ उ० ९

५. विजयतक्करणायं -

रायगिहे धणसत्थवाहे भद्दा य भारिया—

७१. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था—वण्णओ। रायगिहे नगरे सेणिए राया होत्था—वण्णओ।

तस्स णं रायगिहस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गुणसिलए नामं चेइए होत्था—वण्णओ।

तस्स णं गुणसिलयस्स चेइयस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगं जिण्णुज्जाणे यावि होत्था—विणट्ठदेवउल-परिसडियतोरणघरे विहगुच्छ-गुम्म-लया-वल्लि-वच्छच्छाइए अणेग-वालसय-संकणिज्जे यावि होत्था।

तस्स णं जिण्णुज्जाणस्स बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे भग्गकूवे यावि होत्था।

तस्स णं भग्गकूवस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए यावि होत्था—किण्हे किण्होभासे-जाव-रम्मे महामेह-निउरुंबभूए बहूहिं रुक्खेहि य गुच्छेहि य गुम्मेहि य लयाहि य वल्लीहि य तणेहि य कुसेहि य खाणुएहि य संछण्णे पलिच्छण्णे अंतो झुसिरे बाहिं गंभीरे अणेग-वालसय-संकणिज्जे यावि होत्था।

७२. तत्थ णं रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे—अड्ढे दित्ते वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणाइण्णे बहुदासी-दास-गो-महिस-गवेलगप्पभूए बहुधण-बहुजायरूवरयए आओग-पओग-संपउत्ते विच्छड्डिय-विउल-भत्तपाणे।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था—सुकुमालपाणिपाया अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुंदरंगी ससि-सोमागार-कंत-पियदंसणा सुरूवा-करयल-परिमिय-तिवलिय-वलिय-मज्झा कुंडलुल्लिहियगंडलेहा कोमुइ-रयणियर-पडिपुण्ण-सोमवयणा-

५. विजय तस्कर ज्ञात-आख्यान—

राजगृह में धन्य सार्थवाह और भद्राभार्या—

७१. उस काल और उस समय राजगृह नाम का नगर था, इस नगर का वर्णन करना चाहिये। उस राजगृह नगर में श्रेणिक नामक राजा थे। राजा का वर्णन करो।

उस राजगृह नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिशा भाग-ईशान-कोण में गुणशिलक नामक चैत्य था इसका वर्णन करो।

उस गुणशिलक चैत्य से न अधिक दूर और न अधिक निकट एक विशाल जीर्ण उद्यान था—जिसका देव कुल नष्ट हो चुका था उसके तोरण तथा और दूसरे गृह भग्न हो गये थे तथा नाना प्रकार के गुच्छों, गुल्मों (झाड़ियों) लताओं, बेलों, वृक्षों से वह व्याप्त हो गया था, सैकड़ों जंगली पशुओं का वास होने से वह भय उत्पन्न करता था।

उस जीर्ण उद्यान के ठीक मध्य भाग में एक विशाल टूटा-फूटा कूप था।

उस टूटे-फूटे कूप से न अधिक दूर और न अधिक समीप एक विशाल मालुकाकच्छ था, जो कृष्ण वर्ण वाला, कृष्ण प्रभावाला—यावत्—रमणीय, महामेघों के समूह जैसा था और विविध प्रकार के वृक्षों, गुच्छों, गुल्मों, लताओं, बेलों, तृणों, कुशों और स्थाणुओं-ठूंठों से व्याप्त था एवं चारों ओर से आच्छादित था, अन्दर से पोला-विस्तृत और बाहर से गम्भीर था; अनेक सैकड़ों हिंसक पशुओं अथवा व्याल—सर्पों का वास स्थान जैसा हो जाने से शंकास्पद था।

७२. उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह था, वह समृद्धिशाली, तेजस्वी था, विस्तृत एवं विपुल भवन, शैया, आसन यान, वाहन आदि का स्वामी था, उसके घर में बहुत से दास-दासी, गायें, भैंसे और बकरियाँ थीं, बहुत साधन, सोना और चांदी थी, लेन-देन का व्यवसायी था, रसोई घर में बहुत सा भोजन पानी तैयार होता था।

उस धन्य सार्थवाह की पत्नी का नाम भद्रा था, उसके हाथ पैर सुकुमाल थे हीनता से रहित और परिपूर्ण पांचों इन्द्रियों और शरीर वाली थी, वह स्वस्तिक आदि लक्षणों और तिलमसा आदि व्यंजनों के गुणों से युक्त थी, मान, उन्मान और प्रमाण से परिपूर्ण थी, सुजात-अच्छी तरह से उत्पन्न हुए सुन्दर अवयवों के कारण सुन्दरांगी थी, चन्द्र के समान उसका सौम्य आकार था, कंत-मनोहर थी, देखने वालों को प्रिय थी, सुरूपवती थी, मुट्ठी में समा जाने वाला उसका कटि प्रदेश त्रिवलि से शोभित था, कुण्डलों से उसके गंडस्थलों की रेखा घिसती रहती थी, शरद ऋतु

सिंगारागार-चारुवेसा संगयगय-हसिय-भणिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-निउण-जुत्तोवयार-कुसला पासादीया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा वंझा अवियाउरी जाणुकोप्परमाया यावि होत्था ।

की पूर्णिमा के चन्द्र के समान सौम्य उसका मुख था, शृङ्गार का आगार थी, सुन्दर वेष था, उसकी चाल, उसका हँसना, बोलना-चालना संगत-मर्यादानुसार था, उसका विलास-आलाप संलाप उपचार आदि सभी कुछ संस्कारिता के अनुरूप था, मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, मनोहर और अतीव रमणीय होने पर भी बंध्या थी, प्रसव करने के स्वभाव से रहित थी और जानु (घुटने) और कूर्पर (कोहनी) की माता थी, अर्थात् जानु और कूर्पर ही उसके स्तनों का स्पर्श करते थे, सन्तान नहीं। अथवा उसकी गोद में जानु और कूर्पर ही बैठते थे—पुत्र नहीं।

तस्स णं धण्णस्स सत्थवाहस्स पंथए नामं दासचेडे होत्था—सव्वंगसुन्दरंगे मंसोवचिए बालकीलावणकुसले यावि होत्था ।

उस धन्य सार्थवाह का पंथक नाम का एक दास-चेटक था, जो सर्वांग सुन्दर मांस से परिपुष्ट शरीर वाला और बालकों को खेलाने में कुशल चतुर था।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रायगिहे नयरे बहूणं नगर-निगम-सेट्ठि-सत्थवाहाणं अट्ठारसण्ह य सेणिप्पसेणीणं बहुसु कज्जेसु य कुडुम्बेसु य मंतेसु य-जाव-चक्खुभूए यावि होत्था । नियगस्स वि य णं कुडुम्बस्स बहुसु कज्जेसु य-जाव-चक्खुभूए यावि होत्था ।

वह धन्य सार्थवाह राजगृह नगर में बहुत से नगर के व्यापारियों, श्रेष्ठियों और सार्थवाहों और अठारह श्रेणियों और प्रश्रेणियों के बहुत से कार्यों में, कुटुम्बों में और मंत्रणाओं में—यावत्—चक्षुवत् था अर्थात् सत्परामर्श देने वाला मार्ग दर्शक था।

रायगिहे विजयतक्करे—

७३. तत्थ णं रायगिहे नयरे विजए नामं तक्करे होत्था—पाव-चंडाल-रूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसिय-दित्त-रत्तनयणे खरफरुस-महल्ल-विगय-बीभच्छदाढिए असंपुडियउट्ठे उद्धुय-पइण्ण-लंबंतमुद्धए भमर-राहुवण्णे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए निरणुकंपे,

राजगृह में विजय तस्कर—

७३. उस राजगृह नगर में विजय नामक एक तस्कर-चोर था, वह चांडाल के समान पाप कर्म करने वाला, अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने वाला, क्रुद्ध पुरुष के समान देदीप्यमान लाल-लाल नेत्र वाला था, उसकी दाढ़ी अत्यन्त कठोर मोटी, विकृत और वीभत्स (भयजनक) थी, उसके होठ आपस में मिलते नहीं थे, उसके मस्तक के केश हवा से उड़ते रहते, बिखरे रहते और लम्बे-लम्बे थे, उसके शरीर का रंग भ्रमर और राहु के समान काला था, वह निर्दय और पश्चात्ताप से रहित था, दारुण (रौद्र) होने से भय उत्पन्न करता था, वह नृशंस था, अनुकंपारहित था;

अहीव एगंतदिट्ठीए, खुरेव एगंतधाराए, गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे, अग्गिमिव सव्वभक्खी, जलमिव सव्वग्गाही, उक्कंचण-वंचण-माया-नियडि-कूड-कवड-साइ-संपओग-बहुले चिरनगरविणट्ठ-दुट्ठसीलायार-चरित्ते जूयप्पसंगी मज्जप्पसंगी भोज्जप्पसंगी मंसप्पसंगी दारुणे

(वह) सांप के समान एकान्तदृष्टि वाला था, छुरे की तरह एक धार वाला था अर्थात् जो निश्चय कर लेता था, उसको पूरा करने के लिये संलग्न हो जाता था, गृद्ध पक्षी की तरह मांस लोलुप था, अग्नि की तरह सर्वभक्षी था, अर्थात् जिसकी चोरी करता, उसका सर्वस्व हरण कर लेता था, जल की तरह सर्वग्राही था अर्थात् मन में विचार आया उन सभी वस्तुओं का अपहरण कर लेता था, उत्कंचन (हीन गुणवाली वस्तु का अधिक मूल्य लेने के लिये उत्कृष्ट गुणवाली बताने) में, वंचन (ठगने) में, माया (दूसरे को धोखा देने) में, निकृति (बगुला के समान ढोंग करने) में, कूट में (माप-तौल को कम-ज्यादा करने में और कपट करने में) साति-संप्रयोग में (उत्कृष्ट वस्तु में मिलावट करने में निपुण था), चिरकाल से नगर में उपद्रव करता आ रहा था, उसका शील, आचार और चरित्र अत्यन्त दूषित था, वह द्यूत (जुआ) में आसक्त था, मदिरा पान का प्रेमी सुस्वादु भोजन और मांस

हियदारए साहसिए संधिच्छेयए उवहिए विस्संभघाई आलीवग-तित्थभेय-लहुहत्थसंपउत्ते, परस्स दव्वहरणम्मि निच्चं अणुबद्धे, तिव्ववेरे।

का लोलुपी था, दारुण दुःख-पीड़ा देने वाला, लोगों के हृदय को विदारण करने वाला, साहसी, सेंध लगाने वाला, गुप्त कार्य करने वाला, विश्वासघातक, आग लगाने वाला; तीर्थों-देवस्थानों आदि का भेदन करने वाला, उनका द्रव्य हरण करने वाला हाथ की सफाई में चतुर, पराया द्रव्य हरण करने के लिये सदैव तैयार तीव्र वैर वाला था।

रायगिहस्स नगरस्स बहूणि अइगमणाणि य निग्गमणाणि य दाराणि य अवदाराणि य छिंडीओ य खंडीओ य नगरनिद्धमणाणि य संवट्टणाणि य निव्वट्टणाणि य जूयखलयाणि य पाणागाराणि य वेसागाराणि य तक्करट्ठाणाणि य तक्करघराणि य सिंघाडगाणि य तियाणि य चउक्काणि य चच्चराणि य नागघराणि य भूय-घराणि य जक्खदेउलाणि य सभाणि य पवाणि य पणिय-सालाणि य सुन्नघराणि य आभोएमाणे मग्गमाणे गवेसमाणे, बहुजणस्स, छिद्देसु य विसमेसु य विहुरेसु य वसणेसु य अब्भुदएसु य उस्सवेसु य पसवेसु य तिहीसु य छणेसु य जण्णेसु य पव्वणीसु मत्तपमत्तस्स य वक्खित्तस्स य वाउलस्स य सुहियस्स य दुहियस्स य विदेसत्थस्स य विप्पवसियस्स य मग्गं च छिद्दं च विरहं च अंतरं च मग्गमाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ।

वह राजगृह नगर के बहुत से प्रवेश करने के मार्गों, निकलने के मार्गों, द्वारों, खिड़कियों, छेड़ियों— छोटी खिड़कियों, मोरियों रास्ते मिलने की जगहों, रास्ते अलग-अलग होने के स्थानों, जुए के अड्डों, मदिरालयों, वेश्याओं के घरों, चोरों के ठिकानों, चोरों के घरों, शृंगाटकों, त्रिकों, चौकों, चत्वरों, नागगृहों, भूतगृहों, यक्षायतनों, सभास्थानों, प्याउओं, दुकानों और सूने पड़े घरों को देखता, मार्गणा करता—जानकारी करता और गवेषणा करता हुआ, घूमता रहता था। उनकी कमजोरियों, कठिनाइयों, प्रियजनों के वियोग, संकटों, अभ्युदयों उत्सवों, प्रसव-पुत्रादि के जन्म, तीज-त्योहारों, क्षणों-सामूहिक भोज आदि प्रसंगों, दशा नाग आदि की पूजा, पर्वणीयों महिलाओं के उत्सवों के कारण लोग मत्त प्रमत्त, व्यस्त आकुल-व्याकुल, सुखी अथवा दुःखी हो रहे हों, परदेश गये हों, परदेस जाने की तैयारी में हों तो ऐसे अवसरों पर उनके छिद्रों का, विरह का (एकान्त का) और अन्तर (अवसर) का विचार और गवेषणा करता रहता था।

बहिया वि य णं रायगिहस्स नगरस्स आरामेसु य उज्जाणेसु य वावि-पोक्खरिणि-दीहिय-गुंजालिय-सर-सरपंतिय-सरसरपंतियासु य जिण्णुज्जाणेसु य भग्गकूवेसु य मालुयाकच्छएसु य सुसाणेसु य गिरिकंदरेसु य लेणेसु य उवट्ठाणेसु य बहुजणस्स छिद्देसु य-जाव-अंतरं च मग्गमाणे गवेसमाणे एवं च णं विहरइ।

राजगृह नगर से बाहर आरामों—बगीचों में, उद्यानों में, बावड़ियों में, पुष्करिणियों में दीर्घिकाओं (लंबी बावड़ियों) में, गुंजालिकाओं (बांकी बावड़ियों) में, सरोवरों में, सरोवरों की पंक्तियों में, सर-सरपंक्तियों में, जीर्ण उद्यानों में, भग्न-कूपों में, मालुकाकच्छों की झाड़ियों में, श्मशानों में, पर्वत की गुफाओं में, लयनों (पर्वत पर बने गृहों) में, उपस्थानों (पर्वत पर बने मंडपों) में बहुत से लोगों की कमजोरियों, कमियों को—यावत्—अन्तरों (अवसरों) को देखता-भालता रहता था।

भद्दाए संताणसंपत्तिमणोरहो —

भद्रा का संतान प्राप्ति सम्बन्धी मनोरथ—

७४. तए णं तीसे भद्दाए भारियाए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था —

७४. तत्पश्चात् धन्य-सार्थवाह की भद्राभार्या को किसी एक समय मध्य रात्रि में कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता करते-करते इस प्रकार का वह आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—

"अहं धण्णेणं सत्थवाहेणं सद्धिं बहूणि वासाणि-सद्द-फरिस-रस-गंध-रूवाणि माणुस्सगाइं कामभोगाइं पच्चणुभवमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि। तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं

"बहुत वर्षों से मैं धन्य सार्थवाह के साथ शब्द, स्पर्श, रस गंध, रूप सम्बन्धी मानवीय काम-भोगों को भोगती हुई समय बिता रही हूँ किन्तु मैंने अभी तक एक भी पुत्र या पुत्री को जन्म नहीं दिया है। वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी हैं, वे मातायें कृतार्थ हैं, उन माताओं ने पुण्य उपार्जन किया है, उन माताओं के लक्षण सार्थक हैं, और वे मातायें वैभवशालिनी हैं,

माणुस्सए जम्मजीवियफले तासिं अम्मयाणं, जासिं मण्णे नियग-कुच्छिसंभूयाइं थणदुद्ध-लुद्धयाइं महुरसमुल्लावगाइं मम्मणपयंपियाइं थणमूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणाइं मुद्धयाइं थणयं पियंति, कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊणं उच्छंग-निवेसियाणि देंति समुल्लावए पिए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए। तं णं अहं अधण्णा अपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता। तं सेयं मम कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते धण्णं सत्थवाहं आपुच्छित्ता धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी सुबहुं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजण-महिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा जाइं इमाइं रायगिहस्स नयरस्स बहिया नागाणि य भूयाणि य जक्खाणि य इंदाणि य खंदाणि य रुद्दाणि य सिवाणि य वेसमणाणि य, तत्थ णं बहूणं नागपडिमाण य-जाव-वेसमणपडिमाण य महरिहं पुप्फच्चणियं करेत्ता जण्णुपायपडियाए एवं वइत्तए— जइ णं हं देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारिगं वा पयामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि त्ति कट्टु उवाइयं उवाइत्तए।

उन माताओं को मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त हुआ है जो अपनी कूख से उत्पन्न हुए, स्तनों का दूध पीने में लुब्ध, मीठे-मीठे बोल बोलने वाले मम्मन-मम्मन करते हुए बोलने वाले और स्तन के मूल से कांख की ओर सरकने वाले मुग्ध बालकों को स्तन-पान कराती हैं और फिर कमल के समान कोमल हाथों से उन्हें उठाकर अपनी गोद में बिठलाती है तथा बार-बार मधुर-मधुर प्रिय वचनों वाले मंजुल उल्लाप देती है, ऐसा मैं मानती हूँ। लेकिन मैं अधन्य हूँ, पुण्यहीन हूँ, अकृतलक्षणा हूँ कि इनमें से एक भी न पा सकी। अतएव मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने —यावत्— सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर धन्य सार्थवाह से पूछकर धन्य सार्थवाह की आज्ञा-अनुमति लेकर मैं बहुत सा अशन-पान, खादिम और स्वादिम भोजन तैयार करवाकर और बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, पुष्प माला और अलंकार ग्रहण करके बहुत से मित्रों जातिजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों और परिचितजनों की महिलाओं को साथ लेकर राजगृह नगर के बाहर जो नाग, भूत, यक्ष, इन्द्र, स्कन्ध, रुद्र, शिव और वैश्रमण आदि देवों के आयतन हैं और उनमें जो नाग प्रतिमायें—यावत्— वैश्रमण प्रतिमायें हैं, उनकी बहुमूल्य पुष्प आदि से अर्चना करके घुटने और पैर झुकाकर इस प्रकार कहूँ कि 'हे देवानुप्रिय ! यदि मैं एक भी बालक या बालिका को जन्म दूंगी तो मैं तुम्हारी जात पूजा करूँगी, दान दूंगी और भाग-लाभ का हिस्सा दूँगी तथा तुम्हारी अक्षय निधि की वृद्धि करूँगी, इस प्रकार से अपने अभीष्ट मनोरथ की याचना करूँ।"

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणामेव धण्णे सत्थवाहे तेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता एवं वयासी—

ऐसा विचार किया और विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने —यावत्— सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर वह धन्य सार्थवाह के पास आई और आकर इस प्रकार बोली—

एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं-जाव-देंति समुल्लावए सुमहुरे पिए पुणो-पुणो मंजुलप्पभिए। तं णं अहं अहण्णा अपुण्णा अकयलक्खणा एत्तो एगमवि न पत्ता। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी विपुलं असणं-जाव-अणुवड्ढेमि उवाइयं करित्तए।

"देवानुप्रिय ! बात यह है कि मैंने आपके साथ बहुत वर्षों तक काम भोग भोगे हैं —यावत्— अन्य स्त्रियाँ बार-बार अति मधुर वचनों से मीठी-मीठी लोरियाँ गाती हैं, किन्तु मैं अधन्य हूँ पुण्यहीन हूँ और लक्षणहीन हूँ कि इनमें से एक भी विशेषता को प्राप्त नहीं कर सकी। अतएव हे देवानुप्रिय; आपकी आज्ञा अनुमति लेकर विपुल अशन— यावत्— देव पूजा कर, उनकी अक्षय निधि की वृद्धि करूँ ऐसी मनौती मानना चाहती हूँ।"

तए णं धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी—ममं पि य णं देवाणुप्पिए ! एस चेव मणोरहे— "कहं णं तुमं दारगं वा दारियं वा पयाएज्जासि ?"—भद्दाए सत्थवाहीए एयमट्ठं अणुजाणइ।

तब धन्य सार्थवाह ने भद्राभार्या से इस प्रकार कहा— 'हे देवानुप्रिये ! मेरा भी यही मनोरथ है कि किसी न किसी प्रकार से तुम एक पुत्र या पुत्री का प्रसव करो।" इस प्रकार कहकर उसने भद्रासार्थवाही को उस कार्य के लिये—नागादि की अर्चना करने के लिये अनुमति दे दी।

भद्दाकया नागाईणं पूया—

७५. तए णं सा भद्दा सत्थवाही धण्णेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाण-हियया विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंधमल्लालंकारं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहुं पुप्फ-वत्थ गंध-मल्लालंकारं ठवेइ, ठवेत्ता पुक्खरिणिं ओगाहेइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता जल-कीडं करेइ, करेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा उल्लपडसाडिगा जाइं तत्थ उप्पलाइं पउमाइं कुमुयाइं णलिणाइं सुभगाइं सोगंधियाइं पोंडरीयाइं महापोंडरीयाइं सयवत्ताइं सहस्सपत्ताइं ताइं गिण्हइ, गिण्हित्ता पुक्खरिणीओ पच्चोरुहइ, पच्चोरुहित्ता तं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणामेव नागघरए य-जाव-वेसमणघरए य जेणामेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ णं नागपडिमाण य-जाव-वेसमणपडिमाण य आलोए पणामं करेइ, ईसिं पच्चुण्णमइ, पच्चुण्णमित्ता लोमहत्थगं परामुसइ, परामुसित्ता नागपडिमाओ य-जाव-वेसमणपडिमाओ य लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता उदगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खेत्ता पम्हल-सूमालाए गंधकासाईए गायाइं लूहेइ, लूहेत्ता महरिहं वत्थारुहणं च मल्लारुहणं च गंधारुहणं च वण्णारुहणं च करेइ, करेत्ता धूवं डहइ, डहित्ता जन्नुपायवडिया पंजलिउडा एवं वयासी—"जइ णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि तो णं अहं जायं च दायं च भायं च अक्खयणिहिं च अणुवड्ढेमि" त्ति कट्टु उवाइयं करेइ, करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं विपुलं असण-पाण खाइम-साइमं आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी एवं च णं विहरइ। जिमिय भुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा आयंता चोक्खा परम-सुइभूया जेणेव सए गिहे तेणेव उवागया।

भद्राकृत नागादिकों की पूजा—

७५. तत्पश्चात् उस भद्रासार्थवाही ने धन्य सार्थवाह से अनुमति प्राप्त करके हृष्ट, तुष्ट, मन में आनन्दित—यावत्—हर्ष वश प्रफुल्लित हृदय होती हुई विपुल परिमाण में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य भोजन तैयार कराया। तैयार करवाकर बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार लिये, लेकर अपने घर से निकली, निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच से गुजरी और फिर गुजर कर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ पहुँची, वहाँ पहुँचकर पुष्करिणी के तट पर उन बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों को रखा, रखकर पुष्करिणी में उतरी, उतर कर जलमज्जन किया, जल-क्रीड़ा की और नहाई, बलिकर्म किया, फिर गीली साड़ी पहने हुए वहाँ जो उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक पुण्डरीक, महापुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र कमल थे उन सबको लिया, लेकर पुष्करिणी से ऊपर बाहर आई। बाहर आकर उन पुष्प, वस्त्र, गंध माला आदि को लेकर नागगृह—यावत्—वैश्रमण गृह में पहुँची, पहुँचकर उनमें स्थित नाग प्रतिमाओं—यावत्—वैश्रमण प्रतिमाओं पर दृष्टि पड़ते ही प्रणाम किया, कुछ नीचे नमी; नमन करके मोर पीछी को लेकर नाग प्रतिमा—यावत्—वैश्रमण प्रतिमा को उस मोर पीछी से प्रमार्जित किया, प्रमार्जित करके जल से अभिषेक किया अभिषेक करके रुयेंदार, कोमल सुगंधित कषाय रंग के वस्त्र से प्रतिमाओं के अंग पोंछे-पोंछकर बहुमूल्य वस्त्र पहनाये, पुष्प माला पहनाई, गंध का लेपन किया, चूर्ण चढ़ाया वर्ण का स्थापन किया और फिर धूप जलाई, धूप जलाकर घुटने और पैर टेककर दोनों हाथ जोड़कर इस प्रकार कहा—"यदि मैं पुत्र या पुत्री को जन्म दूँगी तो मैं तुम्हारी पूजा करूँगी, दान दूँगी, भाग दूँगी और अक्षयनिधि की वृद्धि करूँगी।" ऐसा कहकर उसने मनौती की और फिर पुष्करिणी पर आई, पुष्करिणी पर आकर विपुल अशन, पान, खादिम एवं स्वादिम भोजन का आस्वादन करती हुई स्वाद लेती हुई, एक-दूसरे को देती हुई, खाती हुई विचरने लगी। भोजन करने के पश्चात् आचमन-कुल्ला करके स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर अपने घर लौट आई।

अदुत्तरं च णं भद्दा सत्थवाही चाउद्दसट्ठमुद्दिट्ठपुण्णमासिणीसु विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेइ, उवक्खडेत्ता बहवे नागा य-जाव-वेसमणा य उवायमाणी नमंसमाणी-जाव-एवं च णं विहरइ।

इसके पश्चात् इसी प्रकार से भद्रा सार्थवाही प्रत्येक चतुर्दशी अष्टमी, अमावस्या और पूर्णमासी को विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन को तैयार करती, तैयार करके बहुत से नाग—यावत् वैश्रमण देवों की मनौती मानती और नमस्कार करती हुई—यावत् विचरने लगी।

भद्दाए दोहलपूरणं—

७६. तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ केणइ कालंतरेणं आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था।

भद्रा की दोहद पूर्ति—

७६. तत्पश्चात् कुछ समय व्यतीत हो जाने पर किसी एक दिन वह गर्भवती हो गई।

तए णं तीसे भद्दाए सत्थवाहीए दोसु मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—

इसके बाद उस भद्रा सार्थवाही को गर्भवती हुए दो मास बीत गये और तीसरा मास चल रहा था तब इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ।

धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, जाओ णं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुबहुय पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-महिलियाहिं सद्धिं संपरिवुडाओ रायगिहं नयरं मज्झं-मज्झेणं निग्गच्छंति, निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छित्ता पोक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहित्ता ण्हायाओ कयबलि-कम्माओ सव्वालंकार-विभूसियाओ विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणीओ विसाएमाणीओ परिभाएमाणीओ परिभुंजे-माणीओ दोहलं विणेंति।"

"वे माताएँ धन्य हैं—यावत्—वे माताएँ कृतलक्षण वाली हैं जो विपुल, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन और बहुत से पुष्प, गंध, माला और अलंकारों को लेकर मित्र, ज्ञाति, निजी, स्वजन-सम्बन्धी और परिजनों की महिलाओं के साथ परिवृत्त होकर राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर निकलती है। निकल-कर जहाँ पुष्करिणी हैं, वहाँ आती हैं, आकर पुष्करिणी में प्रविष्ट होती है, प्रविष्ट होकर स्नान तथा बलिकर्म करती हैं, सब अलंकारों से विभूषित होती हैं, और फिर विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन का आस्वादन करती हुई विशेष आस्वादन करती हुई, बांटती हुई और परिभोग करती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती हैं।"

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठि-यम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव धणे सत्थ-वाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम तस्स गब्भस्स मासेसु वीइक्कंतेसु तइए मासे वट्टमाणे इमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-दोहलं विणेंति। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया समाणी विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुबहुयं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय-जाव-दोहलं विणित्तए।"

ऐसा विचार किया, विचार करके कल-आगामी दिन प्रातः काल सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर की जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर धन्य सार्थवाह के पास आई और आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मुझे उस गर्भ के दो मास व्यतीत हो चुकने और तीसरा मास लगने पर इस प्रकार का दोहद उत्पन्न हुआ है—वे माताएँ धन्य हैं—यावत्—जो दोहद को पूर्ण करती हैं। अतएव हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा अनुमति लेकर विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन तथा बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला और अलंकार लेकर—यावत्—दोहद की पूर्ति करना चाहती हूँ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिए ! मा पडिबंधं करेहि।"

धन्य सार्थवाह ने उत्तर दिया—"जिस प्रकार सुख उपजे वैसा करो, किन्तु प्रतिबन्ध-प्रमाद या देरी मत करो।'

७७. तए णं सा भद्दा धणेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता-जाव-धूवं करेइ, करेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ।

७७. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह से आज्ञा-अनुमति पाई हुई उस भद्रा सार्थवाही ने हर्षित सन्तुष्ट, चित्त में आनन्दित और हर्ष वश विकसित हृदय हो विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन तैयार किया, तैयार करके—यावत्—धूपबत्ती की, करके पुष्करिणी पर आई।

तए णं ताओ मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-नगर-महिलाओ भद्दं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं करेंति।

इसके बाद उन साथ आई हुई मित्र, जाति, निजी, स्वजन सम्बन्धी परिजन और नगर की महिलाओं ने भद्रा सार्थवाही को सर्व अलंकारों से विभूषित किया।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही ताहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-नगरमहिलियाहिं सद्धिं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसाएमाणी विसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी दोहलं विणेइ, विणेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तदनन्तर वह भद्रा सार्थवाही उन मित्र, ज्ञाति, निजी स्वजन, सम्बन्धी परिजन और नगर की महिलाओं के साथ उस विपुल, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन का आस्वादन करती हुई विशेष रूप में स्वाद लेती हुई, विभाग करती हुई और खाती हुई अपने दोहद की पूर्ति करती है, पूर्ति करके जिस दिशा से आई थी, वापस उसी दिशा में लौट गई।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही संपुण्णदोहला-जाव-तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

पुत्तजम्मणं देवदिन्ने त्ति नामकरणं य—

७८. तए णं सा भद्दा सत्थवाही नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अद्धट्ठमाण य राइंदियाणं वीइक्कंताणं सुकुमालपाणिपायं-जाव-दारगं पयाया।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो पढमे दिवसे जायकम्मं करेंति, तहेव-जाव-विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, तहेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं भोयावेत्ता अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए बहूणं नागपडिमाण य-जाव-वेसमणपडिमाण य उवाइयलद्धे, तं होउ णं अम्हं इमे दारए देवदिन्ने नामेणं।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो नामधेज्जं करेंति देवदिन्ने त्ति।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो जायं च दायं च भायं च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढेंति।

देवदिन्नस्स कीडा—

७९. तए णं से पंथए दासचेडए देवदिन्नस्स दारगस्स बालग्गाही जाए, देवदिन्नं दारगं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहि य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे अभिरमइ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ देवदिन्नं दारयं ण्हायं कयबलिकम्मं कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्तं सव्वालंकारविभूसियं करेइ, करेत्ता पंथयस्स दासचेडगस्स हत्थयंसि दलयइ।

तए णं से पंथए दासचेडए भद्दाए सत्थवाहीए हत्थाओ देवदिन्नं दारगं कडीए गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, बहूहिं डिंभएहि य-जाव-कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेइ, ठावेत्ता बहूहिं डिंभएहि य-जाव-कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरइ।

देवदिन्नस्स अपहारो विजयतक्करेण—

८०. इमं च णं विजए तक्करे रायगिहस्स नगरस्स बहूणि [अइगमणाणि य निग्गमणाणि य ?] दाराणि य अवदाराणि य तहेव-जाव-सुन्नघराणि य आभोएमाणे मग्गेमाणे गवेसमाणे जेणेव देव-

तत्पश्चात् वह भद्रा सार्थवाही दोहद पूर्ण करके—यावत्—पथ्य भोजन करती हुई उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी।

पुत्रजन्म और 'देवदत्त' यह नामकरण—

७८. तत्पश्चात् उस भद्रा सार्थवाही ने नौ मास पूर्ण होने और साढ़े सात दिन रात बीतने पर सुकुमाल हाथ पैरों वाले—यावत्—बालक का प्रसव किया।

इसके बाद उस बालक के माता-पिता ने पहले दिन जात कर्म संस्कार किया, उस प्रकार—यावत्—विपुल परिमाण में अशन-पान-खाद्य-स्वाद्य भोजन बनवाया और उसी प्रकार से मित्रों, ज्ञाति-बन्धुओं, निजी स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों को भोजन कराकर यह इस प्रकार का गुण निष्पन्न नामकरण किया, क्योंकि हमारा यह पुत्र बहुत सी नाग प्रतिमाओं—यावत्—वैश्रमण प्रतिमाओं की मनौती करने से उत्पन्न हुआ है, अतएव हमारा यह पुत्र 'देवदत्त' इस नाम वाला हो अर्थात् इसका नाम देवदत्त रखा जाये।

तत्पश्चात् माता-पिता उस बालक का देवदत्त यह नामकरण करते हैं।

इसके बाद उस बालक के माता-पिता ने उन देवताओं को जात दी, दान दिया, प्राप्त धन का विभाग किया और अक्षय निधि की वृद्धि की।

देवदत्त की क्रीड़ा—

७९. तत्पश्चात् वह पंथक दास चेटक देवदत्त बालक का बालग्राही (बालकों को खेलाने वाला) नियुक्त हुआ, वह देवदत्त बालक को कमर पर ले लेता और लेकर बहुत से बच्चों और बच्चियों, बालकों और बालिकाओं, कुमारों और कुमारियों के साथ परिवृत होकर उसे रमाता रहता—खेलाता रहता था।

इसके बाद उस भद्रा सार्थवाही ने किसी एक दिन देवदत्त दारक को नहलाया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल-प्रायश्चित किया और सर्व अलंकारों से विभूषित किया, विभूषित करके दास-चेटक पंथक को सौंप दिया।

उस पंथक दास चेटक ने भद्रा सार्थवाही से लेकर देवदत्त दारक को अपनी कमर पर रखा, रखकर घर से निकला और बहुत से बच्चों—यावत्—कुमारियों से परिवृत होकर जहाँ राजमार्ग था, वहाँ आया, आकर देवदत्त बालक को एकान्त में एक ओर बैठा दिया, बैठाकर बहुत से बच्चों—यावत्—कुमारियों को साथ लेकर खेलने में मग्न हो गया।

देवदत्त का विजय तस्कर द्वारा अपहरण—

८०. इस समय विजय चोर राजगृह नगर के बहुत से (आने और जाने के मार्गों) द्वारों एवं अपद्वारों—यावत्—सूने घरों को पूर्वोक्त की तरह देखता हुआ, मार्गणा-जानकारी-करता हुआ,

दिन्ने दारए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं सव्वालंकारविभूसियं पासइ, पासित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणालंकारेसु मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे पंथयं दासचेडयं पमत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोयं करेइ, करेत्ता देवदिन्नं दारगं गेण्हइ, गेण्हित्ता कक्खंसि अल्लियावेइ, अल्लियावेत्ता उत्तरिज्जेणं पिहेइ, पिहेत्ता सिग्घं तुरियं चवलं वेइयं रायगिहस्स नगरस्स अवद्दारेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारयं जीवियाओ ववरोवेइ, ववरोवेत्ता आभरणालंकारं गेण्हइ, गेण्हित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं भग्गकूवए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छयं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता निच्चले निप्फंदे तुसिणीए दिवसं खवेमाणे चिट्ठइ ।

गवेषणा करता हुआ जहाँ देवदत्त बालक था, वहाँ आया आकर देवदत्त बालक को सर्व अलंकार आभूषणों से विभूषित देखा, देखकर देवदत्त बालक के आभरण अलंकारों में मूर्च्छित, आसक्त, ग्रथित, लालची, गृद्ध-अभिलाषा युक्त और अध्युपपन्न तन्मय हो गया एवं पंथक दास चेटक को असावधान देखा और चारों ओर दिशाओं में दृष्टि डाली, इधर-उधर देखा और फिर देवदत्त दारक को उठाया, उठाकर, कांख में दबाया, दबाकर दुपट्टे से उसे ढक लिया, ढककर शीघ्र, त्वरित, चपल और उतावली गति से राजगृह नगर के अपद्वार से बाहर निकल गया। निकलकर जहाँ जीर्ण उद्यान था, जहाँ भग्न कूप था, वहाँ पहुँचा और वहाँ पहुँचकर देवदत्त बालक को जीवन रहित कर दिया—मार डाला, मार करके सब आभरण अलंकार ले लिये और देवदत्त बालक के निष्प्राण, चेष्टाहीन और निर्जीव शरीर को उस टूटे-फूटे कुए में फैंक दिया, उसके बाद वह मालुका कच्छ में आया, आकर मालुका कच्छ में घुसकर निश्चल—गमनागमन रहित निस्पन्द हाथ-पैरों को जरा-सा भी न हिलाते-डुलाते और मौन-चुपचाप रहकर दिन डूबने की प्रतीक्षा करने लगा।

देवदिन्नस्स गवेसणा—

८१. तए णं से पंथए दासचेडए तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ। देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे जेणेव धणे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धणं सत्थवाहं एवं वयासी—"एवं खलु सामी ! भद्दा सत्थवाही देवदिण्णं दारयं ण्हायं-जाव-सव्वालंकारविभूसियं ममं हत्थंसि दलयइ।

तए णं अहं देवदिन्नं दारयं कडीए गिण्हामि, गिण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमामि, बहूहिं डिंभएहि य डिंभियाहि य दारएहि य दारियाहि य कुमारएहिं य कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे जेणेव रायमग्गे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं एगंते ठावेमि, ठावेत्ता बहूहिं डिंभएहि य-जाव-कुमारियाहि य सद्धिं संपरिवुडे पमत्ते यावि विहरामि।

तए णं अहं तओ मुहुत्तंतरस्स जेणेव देवदिन्ने दारए ठविए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता देवदिन्नं दारगं तंसि ठाणंसि अपासमाणे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेमि। तं न नज्जइ णं सामी ! देवदिन्ने दारए केणइ नीते वा अवहिते वा अक्खित्ते वा"—पायवडिए धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं निवेदेइ।

देवदत्त की गवेषणा—

८१. तत्पश्चात् वह पंथक दास चेटक कुछ समय के बाद देवदत्त बालक को बैठाले के स्थान पर आया आकर देवदत्त बालक को उस स्थान पर बैठा हुआ न देखकर रोता, चिल्लाता और विलाप करता हुआ सब जगह उसकी खोज करने लगा। किन्तु देवदत्त बालक की उसे कहीं भी खबर नहीं लगी, न छींक आदि का शब्द सुनाई दिया, न पता चला तो जहाँ अपना घर था और जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ आया, आकर धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—"स्वामिन् ! भद्रा सार्थवाही ने देवदत्त बालक को स्नान कराकर—यावत्—सभी अलंकारों से विभूषित कर मुझे दिया था।

तत्पश्चात् मैंने देवदत्त बालक को कमर में ले लिया, लेकर मैं घर से बाहर निकला और निकलकर बहुत से बच्चों और बच्चियों और बालकों और बालिकाओं, कुमार और कुमारियों को साथ लेकर राजमार्ग पर पहुँचा, पहुँचकर देवदत्त दारक को एक स्थान पर बैठाया, बैठाकर उन बहुत से बच्चों—यावत्—कुमारियों के साथ खेलने में मगन हो गया।

इसके बाद जहाँ मैंने देवदत्त बालक को बैठाया था, वहाँ कुछ क्षणों के बाद आया, आकर उस स्थान पर देवदत्त दारक को न देखकर रोते-चिल्लाते और विलाप करते-करते सब जगह खोज-खबर और गवेषणा की, परन्तु मालूम नहीं कि स्वामिन् ! देवदत्त दारक को कोई ले गया है अथवा किसी ने उसका अपहरण कर लिया है अथवा किसी ने ललचा लिया है।" इस प्रकार से धन्य सार्थवाह के पैरों में पड़कर उसने सब वृत्तान्त निवेदन किया।

तए णं से धणे सत्थवाहे पंथयस्स दासचेडगस्स एयमट्ठं सोच्चा निसम्म तेण य महया पुत्तसोएणाभिभूए समाणे परसु-नियत्ते व चंपगपायवे धस त्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं सण्णिवइए।

तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह पंथक दास चेटक की इस बात को सुनकर और हृदय में धारण कर महान् पुत्र शोक से व्याकुल होकर कुल्हाड़े से काटे गये चंपक वृक्ष की तरह पछाड़ खाकर सब अंगों से जमीन पर गिर पड़ा—मूर्छित हो गया।

८२. तए णं से धणे सत्थवाहे तओ मुहुत्तंतरस्स आसत्थे पच्चागयपाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं करेइ देवदिन्नस्स दारगस्स कत्थइ सुइं वा खुइं वा पउत्तिं वा अलभमाणे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता महत्थं पाहुडं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव नगरगुत्तिया तेणेव, उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं महत्थं पाहुडं उवणेइ, उवणेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए देवदिन्ने नामं दारए इट्ठे-जाव-उंबरपुप्फं पिव दुल्लहे सवणयाए, किमंग पुण पासणयाए ? तए णं सा भद्दा देवदिन्नं ण्हायं सव्वालंकारविभूसियं पंथगस्स हत्थे दलाइ-जाव-पायवडिए तं मम निवेदेइ। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! देवदिन्नस्स दारगस्स सव्वओ समंता मग्गण-गवेसणं कयं।"

८२. इसके बाद कुछ क्षणों के अनन्तर धन्य सार्थवाह आश्वस्त हुआ—होश में आया, उसके प्राण मानो वापस लौटे तब उसने देवदत्त बालक की सब तरफ खोज-खबर की, परन्तु कहीं पर भी देवदत्त दारक का पता लगा, छींक आदि का शब्द सुनाई नहीं दिया और न समाचार मिला तो वापस अपने घर पर आया, आकर बहुमूल्य भेंट ली और भेंट लेकर जहाँ नगररक्षक था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर वह बहुमूल्य भेंट उसके सामने रखी और इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! मेरा पुत्र और भद्राभार्या का आत्मज देवदत्त नामक बालक हमें इष्ट है—यावत्—गूलर के फूल के समान जिसका नाम सुनना ही दुर्लभ है तो फिर दर्शन का तो कहना ही क्या है ! इसके आगे धन्य सार्थवाह ने कहा—भद्रा ने देवदत्त को स्नान कराकर और सभी अलंकारों से विभूषित कर पंथक के हाथ में सौंप दिया था—यावत्—उसने (पंथक ने) पैरों में पड़कर मुझसे गुम जाने का निवेदन किया। अतएव हे देवानुप्रिय ! मैं चाहता हूँ कि आप सब जगह देवदत्त बालक की मार्गणा-गवेषणा करें।'

८३. तए णं ते नगरगोत्तिया धणेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणा सण्णद्ध-बद्ध-वम्मिय-कवया उप्पीलिय-सरासण-पट्टिया पिणद्ध-गेविज्जा आविद्ध-विमल-वरचिंध-पट्टा गहियाउह-पहरणा धणेणं सत्थवाहेणं सद्धिं रायगिहस्स नगरस्स बहुसु अइगमणेसु य-जाव-पवासु य मग्गण-गवेसणं करेमाणा रायगिहाओ नगराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव जिण्णुज्जाणे जेणेव भग्गकूवए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरगं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवविप्पजढं पासंति, पासित्ता हा हा अहो ! अकज्जमिति। कट्टु देवदिन्नं दारगं भग्गकूवाओ उत्तारेंति, धणस्स सत्थवाहस्स हत्थे दलयंति।

८३. तत्पश्चात् वे नगररक्षक धन्य सार्थवाह के इस वृत्तान्त को सुनकर कवच को पहन और बाँधकर, धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ाकर गले की रक्षा के लिये ग्रैवेयक-गल-पटिया बाँधकर अपने-अपने श्रेष्ठ संकेत पट्टकों को लगाकर आयुध (शस्त्र) और प्रहरण (दूर से चलाये जाने वाले बाण आदि) ग्रहण कर धन्य सार्थवाह के साथ राजगृह नगर के बहुत से निकलने के मार्गों—यावत्—प्याउओं आदि में मार्गण-गवेषण (तलाश) करते-करते राजगृह नगर के बाहर निकले, निकलकर जहाँ जीर्ण उद्यान था, जहाँ टूटा-फूटा कुआ था, वहाँ आये, आकर उसमें देवदत्त बालक के निष्प्राण, निश्चेष्ट और निर्जीव शरीर को देखा, देखकर 'हाय, हाय ! यह बुरा किया।' इस प्रकार कहकर देवदत्त दारक को उस भग्न कूप से बाहर निकाला और धन्य सार्थवाह को सौंप दिया।

विजयतक्करस्स निग्गहो—

८४. तए णं ते नगरगुत्तिया विजयस्स तक्करस्स पयमग्गमणुगच्छमाणा जेणेव मालुयाकच्छए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता मालुयाकच्छगं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता विजयं तक्करं ससक्खं सहोढं सगेवेज्जं जीवग्गाहं गेण्हंति, गेण्हित्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणुकोप्पर-पहार-संभग्ग-महिय-गत्तं करेंति, करेत्ता अवउडा बंधणं करेंति, करेत्ता देवदिन्नस्स दारगस्स आभरणं गेण्हंति, गेण्हित्ता विजयस्स

विजय तस्कर का निग्रह—

८४. तत्पश्चात् वे नगररक्षक विजय चोर के पैरों के निशान का अनुसरण करते हुए मालुका कच्छ में पहुँचे, पहुँचकर मालुका कच्छ में प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट होकर साक्षी पूर्वक चोरी के माल के साथ उसे गर्दन से बाँधा और जीवित पकड़ लिया; पकड़ कर अस्थि, मुष्टि, घुटनों और कोहनियों पर मार-मार कर उसके शरीर को भग्न और मथित कर दिया, फिर उसकी गर्दन और

तक्करस्स गीवाए बंधंति, बंधित्ता मालुयाकच्छगाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव रायगिहे नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता रायगिहं नयरं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु कसप्पहारे य छिवापहारे य लयापहारे य निवाएमाणा-निवाएमाणा छारं च धूलिं च कयवरं च उवरिं पकिरमाणा-पकिरमाणा महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयंति —"एस णं देवाणुप्पिया ! विजए नामं तक्करे पावचंडालरूवे भीमतररुद्दकम्मे आरुसिय-दित्तरत्तनयणे खरफरुस-महल्ल-विगय-बीभच्छदाढिए असंपुडियउट्ठे उद्धुय-पइण्ण-लंबंतमुद्धए भमर-राहुवण्णे निरणुक्कोसे निरणुतावे दारुणे पइभए निसंसइए निरणुकंपे अहीव एगंतदिट्ठीए खुरेव एगंत-धाराए गिद्धेव आमिसतल्लिच्छे अग्गिमिव सव्वभक्खी बालघायए बाल-मारए।

तं नो खलु देवाणुप्पिया ! एयस्स केइ राया वा रायमच्चे वा अवरज्झइ, नन्नत्थ अप्पणो सयाइं कम्माइं अवरज्झंति" त्ति कट्टु जेणामेव चारगसाला तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हडिबंधणं करेंति, करेत्ता भत्तपाणनिरोहं करेंति, करेत्ता तिसंझं कसप्पहारे य छिवापहारे य लयापहारे य निवाएमाणा विहरंति।

पीठ की ओर पीछे दोनों हाथ बाँध दिये, देवदत्त बालक के आभूषण कब्जे में किये, फिर विजय चोर को गर्दन से बाँधा और मालुका कच्छ से बाहर निकले, निकलकर राजगृह नगर में आये, प्रविष्ट हुए और नगर के शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख राजमार्ग आदि में कोड़ों के प्रहार, छिव प्रहार और लता प्रहार से मार-मार कर और उसके ऊपर राख, धूल और कचरा डालते हुए तेज आवाज से घोषणा करते हुए इस प्रकार कहने लगे—'हे देवानुप्रियो ! यह विजय नाम का चोर है, जो पाप कर्म करने वाला, चांडाल के समान रूप वाला अत्यन्त भयानक और क्रूर कर्म करने वाला, क्रोधी पुरुष के समान लाल-लाल नेत्र वाला अत्यन्त कठोर, मोटी और विकृत दाढ़ें वाला, सदैव खुले हुए होंठों वाला, हवा में उड़ते-बिखरे और लम्बे-लम्बे मस्तक के केश वाला, भ्रमर और राहु के समान काले वर्ण वाला, निर्दय और कभी भी अनुकम्पा न करने वाला, दारुण, भय उत्पन्न करने वाला, नृशंस, अनुकंपारहित, साँप के समान एकान्त दृष्टि वाला, छुरे के समान एक धार वाला, गिद्ध पक्षी के समान मांस-लोलुपी अग्नि की तरह सर्वभक्षी, बाल घातक और बाल हत्यारा है।

'हे देवानुप्रियो ! इसके लिये कोई राजा अथवा राजा का अमात्य अपराधी नहीं है किन्तु इसके अपने किये कुकर्म ही अपराधी हैं।" इस प्रकार कहकर जहाँ चारक शाला (कारावास) थी, वहाँ आये और वहाँ आकर उसे बेड़ियों से जकड़ दिया, उसका भोजन-पानी बन्द कर दिया और तीनों संध्या कालों में प्रातः मध्याह्न और शाम के समय चाबुकों, छड़ियों और लता प्रहारों से उसकी पिटाई करने लगे।

देवदिन्नस्स नीहरणं—

८५. तए णं से धण्णे सत्थवाहे मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे देवदिन्नस्स दारगस्स सरीरस्स महया इड्ढीसक्कार-समुदएणं नीहरणं करेति, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयगकिच्चाइं करेति, करेत्ता केणइ कालंतरेणं अवगयसोए जाए यावि होत्था।

देवदत्त का नीहरण (अंतिम संस्कार)—

८५. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिवार के साथ रोते-रोते आक्रंदन करते-करते, विलाप करते हुए देवदत्त दारक के शरीर का महान् ऋद्धि-सत्कार और प्रदर्शन के साथ नीहरण—अग्निसंस्कार किया और फिर अनेक लौकिक मृतक कृत्य मरणोत्तरकालीन लोकाचार किये, तत्पश्चात् कुछ समय बीतने पर वह उस शोक से रहित हो गया।

धणस्स निग्गहो—

८६. तए णं से धण्णे सत्थवाहे अण्णया कयाइं लहुसयंसि रायावराहंसि संपलित्ते जाए यावि होत्था।

तए णं ते नगरगुत्तिया धण्णं सत्थवाहं गेण्हंति, गेण्हित्ता जेणेव चारए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता चारगं अणुप्पवेसंति, अणुप्पवेसित्ता विजएणं तक्करेणं सद्धिं एगयओ हडिबंधणं करेंति।

धन्य का निग्रह—

८६. तत्पश्चात् किसी एक समय धन्य सार्थवाह को चुगलखोरों द्वारा झूठे-मूठे राजकीय अपराध में फँसा दिया गया।

तब नगररक्षकों ने धन्य सार्थवाह को गिरफ्तार कर लिया और गिरफ्तार करके कारागार में ले आये, लाकर विजय चोर के साथ एक ही बेड़ी में बाँध दिया।

धणस्स घराओ आहाराणयणं—

८७. तए णं सा भद्दा भारिया कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-

धन्य के घर से भोजन का आना—

८७. तत्पश्चात् अगले दिन प्रभात होने—यावत्—सूर्योदय और

उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेइ, भोयणपिडयं करेइ, करेत्ता, भोयणाइं पक्खिवइ, लंछिय-मुद्दियं करेइ, करेत्ता एगं च सुरभि [वर]-वारिपडिपुण्णं दगवारयं करेइ, करेत्ता पंथयं दासचेडयं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी— "गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! इमं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं गहाय चारगसालाए धणस्स सत्थवाहस्स उवणेहि ।"

जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर भद्राभार्या ने विपुल अशन-पान, खादिम-स्वादिम भोजन तैयार किया, भोजन को रखने के पिटक (कटोरदान) में रखा, फिर उस पिटक को लांछित और मुद्रित किया अर्थात् उस पर चिह्न लगाकर मोहर लगाई तथा सुगन्धित जल से भरा हुआ, घड़ा तैयार किया, फिर पंथक दास चेटक को बुलाया, बुलाकर उससे कहा—"हे देवानुप्रिय ! तुम जाओ और कारागार में जाकर यह विपुल अशन, पान, खादिम-स्वादिम भोजन धन्य सार्थवाह को दो ।"

तए णं से पंथए भद्दाए सत्थवाहीए एवं वुत्ते समाणे हट्ठतुट्ठे तं भोयणपिडयं तं च सुरभिवरवारिपडिपुण्णं दगवारयं गेण्हइ, गेण्हित्ता सयाओ गिहाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव चारगसाला जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भोयणपिडयं ठवेइ, ठवेत्ता उल्लंछेइ, उल्लंछेत्ता भोयणं गेण्हइ, गेण्हित्ता भायणाइं ठावेइ, ठावित्ता हत्थसोयं दलयइ, दलइत्ता धण्णं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं परिवेसेइ ।

तत्पश्चात् उस पंथक दास चेटक ने भद्रा सार्थवाही की आज्ञा को सुन हृष्ट-तुष्ट हो उस भोजनपिटक और उत्तम सुगन्धित जल से भरे हुए घड़े को लिया, लेकर घर से निकला, निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच से होता हुआ जहाँ कारागार था और उसमें भी जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर भोजन पिटक को रख दिया, रखकर उस पर बना चिह्न और मोहर हटाई फिर भोजन को निकाला, निकालकर, थाली आदि पात्र में रखा, फिर हाथ धोने को पानी दिया, उसके बाद धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन परोसा।

विजयतक्करेण संविभागमग्गणं—

८८. तए णं से विजए तक्करे धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! ममं एयाओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेहि ।"

विजय तस्कर द्वारा संविभाग की माँग—

८८. तत्पश्चात् विजय तस्कर ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! तुम मुझे इस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन में से संविभाग करो—हिस्सा दो ।"

धणस्स तन्निसेधो—

८९. तए णं से धण्णे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी— "अवि याइं अहं विजया ! एयं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं कायाण वा सुणगाण वा दलएज्जा, उक्कुरुडियाए वा णं छड्डेज्जा, नो चेव णं तव पुत्तघायस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स एत्तो विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेज्जामि ।"

धन्य का निषेध—

८९. इसके बाद धन्य सार्थवाह ने विजय तस्कर से इस प्रकार कहा—"ओ रे विजय ! भले ही मैं इस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन को कौओं और कुत्तों को दे दूँगा अथवा उकरड़े-कूड़े के ढेर पर फेंक दूँगा, परन्तु तुझ पुत्र-घातक, पुत्र-मारक, शत्रु, वैरी, प्रतिकूल आचरण करने वाले और विरोधी के लिये इस विपुल अशन-पान-खादिम-स्वादिम भोजन में से संविभाग नहीं करूँगा ।"

तए णं से धण्णे सत्थवाहे तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारेइ, तं पंथयं पडिविसज्जेइ ।

इसके पश्चात् धन्य सार्थवाह ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन का आहार किया, आहार करके पंथक को वापस लौटा दिया; रवाना कर दिया ।

तए णं से पंथए दासचेडए तं भोयणपिडगं गिण्हइ, गिण्हित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

पंथक दास चेटक ने उस भोजन पिटक को लिया और लेकर जिस ओर से आया था, उसी ओर लौट गया ।

आबाधितस्स धणस्स विजयतक्करावेक्खा—

९०. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारियस्स समाणस्स उच्चार-पासवणे णं उव्वाहित्था ।

आबाधित धन्य की विजय तस्कर से अपेक्षा—

९०. तत्पश्चात् उस धन्य सार्थवाह को विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन का आहार करने के कारण मल-मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई ।

तए णं से धणे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी—"एहि ताव विजया ! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चार-पासवणं परिट्ठवेमि।"

तब धन्य सार्थवाह ने विजय तस्कर से कहा—"विजय ! चलो, एकान्त में चलें, जिससे मैं मल-मूत्र का त्याग कर सकूं।"

विजयतक्करेण तन्निसेधो—

९१. तए णं से विजए तक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी—"तुज्झं देवाणुप्पिया ! विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारियस्स अत्थि उच्चारे वा पासवणे वा, ममं णं देवाणुप्पिया ! इमेहिं बहूहिं कसप्पहारेहि य छिवापहारेहि य लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परज्झमाणस्स नत्थि केइ उच्चारे वा पासवणे वा। तं छंदेणं तुमं देवाणुप्पिया ! एगंते अवक्कमित्ता उच्चार-पासवणं परिट्ठवेहि।"

विजय चोर द्वारा उसका निषेध—

९१. तत्पश्चात् उस विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—"देवानुप्रिय ! तुमने तो विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन का आहार किया है जिससे तुम्हें मल-मूत्र की बाधा उत्पन्न हुई है, परन्तु देवानुप्रिय ! मुझे तो इन बहुत से चाबुकों के प्रहार से, छिवों के प्रहार से, और लताओं के प्रहार से तथा प्यास और भूख से पीड़ित होने के कारण मल-मूत्र की बाधा नहीं है। इसलिये देवानुप्रिय ! जाने की इच्छा हो तो तुम्हीं एकान्त में जाकर मल-मूत्र की बाधा को मिटाओ, मल-मूत्र का त्याग करो।"

तए णं से धणे सत्थवाहे विजएणं तक्करेणं एवं वुत्ते समाणे तुसिणीए संचिट्ठइ।

इसके बाद विजय चोर की इस बात को सुनकर धन्य सार्थवाह मौन रह गया।

धणेण पुणो कथिते संविभागमग्गणं—

९२. तए णं से धणे सत्थवाहे मुहुत्तंतरस्स बलियतरागं उच्चार-पासवणेणं उव्वाहिज्जमाणे विजयं तक्करं एवं वयासी—"एहि ताव विजया ! एगंतमवक्कमामो जेणं अहं उच्चार-पासवणं परिट्ठवेमि।"

तए णं से विजए तक्करे धणं सत्थवाहं एवं वयासी—"जइ णं तुमं देवाणुप्पिया ! ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेहि, तओ हं तुमेहिं सद्धिं एगंतं अवक्कमामि।"

तए णं से धणे सत्थवाहे विजयं तक्करं एवं वयासी—"अहं णं तुब्भं ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करिस्सामि।"

तए णं से विजए तक्करे धणस्स सत्थवाहस्स एयमट्ठं पडिसुणेइ।

तए णं से धणे सत्थवाहे विजएणं तक्करेण सद्धिं एगंते अवक्कमइ, उच्चारपासवणं परिट्ठवेइ, आयंते चोक्खे परमसुइभूए तमेव ठाणं उवसंकमित्ताणं विहरइ।

धन्य के पुनः कहने पर विजय द्वारा संविभाग की माँग—

९२. इसके बाद पुनः उच्चार-प्रस्रवण की तीव्र बाधा से पीड़ित होकर धन्य सार्थवाह ने विजय चोर से इस प्रकार कहा—"विजय, चलो एकान्त में चलो, जिससे मैं मल-मूत्र की बाधा को मिटा लूँ, मल-मूत्र का त्याग कर दूँ।"

तब विजय चोर ने धन्य सार्थवाह से कहा—"देवानुप्रिय ! यदि तुम उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन में से संविभाग करो तो मैं तुम्हारे साथ एकान्त में चल सकता हूँ।"

इसके बाद धन्य सार्थवाह ने विजय चोर से इस प्रकार कहा—"मैं तुम्हें उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन में से संविभाग करूँगा— हिस्सा दूँगा।"

तत्पश्चात् विजय चोर ने धन्य सार्थवाह के इस कथन को स्वीकार किया।

इसके बाद वह धन्य सार्थवाह विजय चोर के साथ एकान्त में गया और मल-मूत्र का त्याग किया तथा उसके बाद अच्छी तरह से स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर वापस अपने स्थान पर आ गया।

धणेण विजयस्स संविभागदाणं—

९३. तए णं सा भद्दा कल्लं पाउप्पभाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडेइ,-जाव-धणं सत्थवाहं तेणं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं परिवेसेइ।

तए णं से धणे सत्थवाहे विजयस्स तक्करस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।

धन्य द्वारा विजय को संविभाग दान—

९३. तदनन्तर भद्रा ने अगले दिन प्रभात होने—यावत्—सूर्य का उदय एवं सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजन तैयार किया—यावत्—धन्य सार्थवाह को वह विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन परोसा।

तब धन्य सार्थवाह ने विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन में से हिस्सा दिया।

पंथगेण भद्दाए तन्निवेयणं—

६४. तए णं से धण्णे सत्थवाहे पंथगं दासचेडयं विसज्जेइ।

तए णं से पंथए भोयणपिडयं गहाय चारगाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता रायगिहं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव भद्दा सत्थवाही तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भद्दं [सत्थवाहिं ?] एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिए ! धण्णे सत्थवाहे तव पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेइ।

पंथक का भद्रा से कहना—निवेदन करना—

६४. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने पंथक दास चेटक को लौटा दिया।

पंथक भोजनपिटक को लेकर कारागार से बाहर निकला, निकलकर राजगृह नगर के बीचों-बीच होकर जहाँ अपना घर था, जहाँ भद्रा सार्थवाही थी, वहाँ आया, आकर भद्रा (सार्थवाही) से इस प्रकार कहा—हे देवानुप्रिय ! धन्य सार्थवाह ने तुम्हारे पुत्र के घातक, पुत्रहन्ता, शत्रु, वैरी, प्रतिकूल आचरण करने वाले, दुश्मन को उस विपुल अशन, पान, स्वादिम, खादिम भोजन में से हिस्सा दिया।

भद्दाए कोवो—

६५. तए णं सा भद्दा सत्थवाही पंथगस्स दासचेडगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा आसुरुत्ता रुट्ठा कुविया चंडिक्किया मिसिमिसेमाणी धणस्स सत्थवाहस्स पओसमावज्जइ।

भद्रा का कोप—

६५. तत्पश्चात् भद्रा सार्थवाही पंथक दास चेटक से इस अर्थ को सुनकर क्रोध से लाल-लाल हो गई, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् रौद्र होकर दाँतों को मिसमिसाती हुई धन्य सार्थवाह को कोसने लगी—धन्य सार्थवाह पर प्रद्वेष करने लगी।

धणस्स चारमुत्ती—

६६. तए णं से धण्णे सत्थवाहे अण्णया कयाइ मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सएण य अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पाणं मोयावेइ, मोयावेत्ता चारगसालाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता जेणेव अलंकारियसभा तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अलंकारियकम्मं कारवेइ, कारवेत्ता जेणेव पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता अहधोयमट्टियं गेण्हइ, गेण्हित्ता पोक्खरिणीं ओगाहइ, ओगाहित्ता जलमज्जणं करेइ, करेत्ता ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए रायगिहं नयरं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता रायगिहस्स नगरस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

धन्य की कारागार से मुक्ति—

६६. तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह किसी समय मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी और परिवार के लोगों के द्वारा अपने सारभूत अर्थ से जुर्माना चुका दिये जाने पर राजदंड से मुक्त हुआ, मुक्त होकर कारागार से बाहर निकला, निकलकर जहाँ आलंकारिक सभा (नाई की दुकान) थी, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर आलंकारिक कर्म (हजामत) करवाया फिर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आया, आकर नीचे से धोने की मिट्टी ली और पुष्करिणी में घुसा, जल से मज्जन किया, स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित किया और अलंकारों से विभूषित होकर राजगृह नगर में प्रवेश किया, प्रवेश करके राजगृह नगर के मध्य में से गुजर कर जहाँ अपना घर था, वहाँ जाने के लिये उद्यत हुआ—रवाना हुआ।

धणस्स सम्माणं—

६७. तए णं तं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासित्ता रायगिहे नयरे बहवे नगर-निगम-सेट्ठि-सत्थवाह-पभिइओ आढंति परिजाणंति सक्कारेंति सम्माणेंति अब्भुट्ठेंति सरीरकुसलं पुच्छंति।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ।

जा वि य से तत्थ बाहिरिया परिसा भवइ, तंजहा—दासा इ वा पेस्सा इ वा भयगा इ वा भाइल्लगा इ वा, सा वि य णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पायवडिया खेमकुसलं पुच्छइ।

जा वि य से तत्थ अब्भंतरिया परिसा भवइ, तंजहा—माया

धन्य का सम्मान—

६७. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को आता देखकर राजगृह नगर के बहुत से नागरिकों, व्यापारियों, श्रेष्ठी-जनों और सार्थवाह आदि ने उसका आदर किया, उससे कुशल-क्षेम पूछी, उसका सत्कार सम्मान किया, खड़े होकर मान किया और शरीर की कुशल पूछी।

तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह अपने घर पहुँचा।

वहाँ जो बाहर की सभा थी, जैसे—दास, प्रेष्य (कार्य के लिये बाहर भेजे जाने वाले नौकर) भृतक, व्यापार के हिस्सेदार, भागीदार, उन्होंने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा और पैरों में गिरकर, नमन कर, क्षेम, कुशल सुखसाता पूछी।

वहाँ जो आभ्यन्तर सभा थी, जैसे कि माता-पिता, भाई,

इ वा पिया इ वा माया इ वा भइणी इ वा, सा वि य णं धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, आसणाओ अब्भुट्ठेइ, कंठाकंठियं अवयासिय बाह-प्पमोक्खणं करेइ।

भद्दाए कोवोवसमपुव्वं सम्माणं—

९८. तए णं से धण्णे सत्थवाहे जेणेव भद्दा भारिया तेणेव उवागच्छइ।

तए णं सा भद्दा धण्णं सत्थवाहं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता नो आढाइ नो परिजाणइ, अणाढायमाणी अपरिजाणमाणी तुसिणीया परम्मुही संचिट्ठइ।

९९. तए णं से धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी—"किण्णं तुब्भं देवाणुप्पिए! न तुट्ठी वा न हरिसो वा नाणंदो वा, जं मए सएणं अत्थसारेणं रायकज्जाओ अप्पा विमोइए।"

तए णं सा भद्दा धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—"कहं णं देवाणुप्पिया! मम तुट्ठी वा हरिसो वा आणंदो वा भविस्सइ? जं णं तुमं मम पुत्तघायगस्स पुत्तमारगस्स अरिस्स वेरियस्स पडणीयस्स पच्चामित्तस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागं करेसि।"

तए णं से धण्णे सत्थवाहे भद्दं भारियं एवं वयासी—"नो खलु देवाणुप्पिए! धम्मो त्ति वा तवो त्ति वा कय-पडिकया इ वा लोगजत्ता इ वा नायए इ वा घाडियए इ वा सहाए इ वा सुहि त्ति वा [विजयस्स तक्करस्स ?] ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागे कए, नण्णत्थ सरीरचिंताए।

तए णं सा भद्दा धण्णेणं सत्थवाहेणं एवं वुत्ता समाणी हट्ठतुट्ठ-चित्तमाणंदिया-जाव-हरिसवस-विसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता कंठाकंठिं अवयासेइ खेमकुसलं पुच्छइ, पुच्छित्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता विपुलाइं भोग-भोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

विजय-णायस्स निगमणं—

१००. तए णं से विजए तक्करे चारगसालाए तेहिं बंधेहि य वहेहि य कसप्पहारेहि य छिवापहारेहि य लयापहारेहि य तण्हाए य छुहाए य परज्झमाणे कालमासे कालं किच्चा नरएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

से णं तत्थ नेरइए जाए काले कालोभासे गंभीरलोमहरिसे भीमे उत्तासणए परमकण्हे वण्णेणं।

बहिन आदि, उन्होंने भी धन्य सार्थवाह को आता देखा, देखकर वे अपने-अपने आसन से उठे, उठकर गले से गले मिलकर बाहों में भर लिया और हर्ष के आंसू बहाये।

भद्रा के कोप का उपशमन, सम्मान—

९८. तत्पश्चात् वह धन्य सार्थवाह भद्राभार्या के पास पहुँचा।

तब भद्रा ने धन्य सार्थवाह को अपनी ओर आता देखा, देखकर उसने आदर नहीं किया, न ध्यान दिया, किन्तु उपेक्षा और उदासीन भाव से मौन रहकर और पीठ फेर कर बैठी रही।

९९. तब धन्य सार्थवाह ने भद्राभार्या से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! किस कारण तुम्हें मेरे आने पर संतोष नहीं हुआ? हर्ष नहीं हुआ? आनन्द नहीं हुआ? जबकि मैंने अपने सारभूत अर्थ से राजकार्य-राजदंड से अपने आपको छुड़ाया है।

तब भद्रा ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय! मुझे कैसे संतोष, हर्ष और आनन्द होगा? जब तुमने मेरे पुत्र-घातक, पुत्रहंता, शत्रु, वैरी, विरुद्ध कार्य करने वाले विरोधी को उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन में से संविभाग किया, हिस्सा दिया।"

इस बात को सुनकर धन्य सार्थवाह ने भद्राभार्या से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिये! मैंने धर्म समझकर, तप समझ कर, उपकार का बदला समझकर, लोकयात्रा-दिखावा समझकर, न्याय समझकर या उसे अपना नायक समझकर, सहचर समझकर, सहायक समझकर अथवा सुहृद समझकर, (विजय चोर को) इस विपुल, अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन में से संविभाग नहीं किया, सिवाय शरीर चिन्ता के। अर्थात् मल-मूत्र की बाधा को दूर करने के प्रयोजन से भोजन का संविभाग किया, अन्य कोई प्रयोजन नहीं था।

धन्य सार्थवाह के इस स्पष्टीकरण को सुनकर भद्रा हृष्ट-तुष्ट चित्त में आनन्दित हुई—यावत्—हर्ष वश विकसित हृदय होती हुई वह अपने आसन से उठी, उठकर उसने गले से लगाकर कुशल क्षेम पूछी, इसके बाद स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक मंगल प्रायश्चित किया और विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई समय व्यतीत करने लगी।

विजय ज्ञात का निगमन—

१००. तत्पश्चात् वह विजय चोर कारागार में वध-बंध चाबुकों के प्रहार, कशा प्रहार, छिव प्रहार, लता प्रहार और भूख-प्यास से पीड़ित होता हुआ मृत्यु के अवसर पर काल करके नरक में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

नरक में उत्पन्न हुआ वह काला और अत्यन्त काला दीखता था, गम्भीर, लोमहर्षक, भयजनक, त्रासजनक एवं वर्ण से अत्यधिक काला था।

से णं तत्थ निच्चं भीए निच्चं तत्थे निच्चं तसिए निच्चं परमऽसुहसंबद्धं नरगगतिवेयणं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

से णं ताओ उव्वट्टित्ता अणादीयं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं अणुपरियट्टिस्सइ।

धणनायस्स निगमणं--

१०१. एवामेव जंबू ! जो णं अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुंडे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे विपुलमणिमोत्तिय-धण-कणग-रयणसारेणं लुब्भइ, सो वि एवं चेव।

रायगिहे थेरागमणं--

१०२. तेणं कालेणं तेणं समएणं थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा-जाव-पुव्वाणुपुव्विं चरमाणा गामाणुगामं दूइज्जमाणा सुहंसुहेणं विहरमाणा, जेणेव रायगिहे नयरे जेणेव गुणसिलए चेइए तेणामेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणा विहरंति।

परिसा निग्गया धम्मो कहिओ।

धणस्स पव्वज्जा--

१०३. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स बहुजणस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था --"एवं खलु थेरा भगवंतो जाइसंपण्णा इहमागया इहसंपत्ता। तं गच्छामि ? णं थेरे भगवंते वंदामि नमंसामि" [एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ?] ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिए पायविहारचारेणं जेणेव गुणसिलए चेइए जेणेव थेरा भगवंतो तेणेव उवागच्छित्ता वंदइ नमंसइ।

तए णं थेरा भगवंतो धणस्स विचित्तं धम्ममाइक्खंति। तए णं से धणे सत्थवाहे धम्मं सोच्चा एवं वयासी--

"सद्दहामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। पत्तियामि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। रोएमि णं भंते ! निग्गंथं पावयणं। अब्भुट्ठेमि णं

वह नरक में सदैव भयभीत, त्रस्त और सदैव घबराते सदैव अत्यन्त अशुभ नरक गति सम्बन्धी वेदना का अनुभव कर हुआ समय बिता रहा है।

वह उस नरक से निकलकर अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वा चतुर्गति रूप संसार कांतार में भटकता रहेगा।

धन्य ज्ञात का निगमन--

१०१. अब तक के कथानक का उपसंहार करने के लिये सुधर्मा स्वामी ने जम्बू स्वामी से कहा--"आयुष्मन् जम्बू ! इसी प्रकार हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थी आचार्य या उपाध्याय के पास मुण्डित होकर, गृह त्याग कर आनगारिक प्रव्रज्या को अंगीकार कर विपुल मणि, मौक्तिक, धन, कनक और सारभूत रत्नों में लुब्ध होता है, वह भी ऐसा ही होता है अर्थात् उसकी विजय चोर जैसी दशा होती है।"

राजगृह में स्थविरागमन--

१०२. उस काल और उस समय में जातिसम्पन्न--यावत्--चार ज्ञान के धनी अनुक्रम से चलते हुए, ग्रामानुग्राम विचरते हुए और सुखपूर्वक विहार करते हुए धर्मघोष नामक स्थविर भगवन्त जहाँ राजगृह नगर था, जहाँ गुणशीलक चैत्य था, वहाँ आये, आकर साध्वोचित अवग्रह लेकर, यथायोग्य उपाश्रय की याचना कर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे।

उनकी वन्दना करने परिषदा निकली, स्थविर भगवन्तों ने परिषदा को धर्म देशना दी।

धन्य की प्रव्रज्या--

१०३. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह को बहुत से लोगों से इस वृत्तान्त को सुनकर और समझकर ऐसा अध्यवसाय, अभिलाष, प्रार्थित एवं मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ-- "यहाँ जातिसम्पन्न स्थविर भगवन्त पधारे हैं, यहाँ प्राप्त हुए हैं। तो मैं जाऊँ और उन स्थविर भगवन्तों को वन्दन नमस्कार करूँ।" इस प्रकार का विचार किया और विचार करके स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल प्रायश्चित्त किया और शुद्ध और समयोचित उत्तम मांगलिक वस्त्रों को धारण कर पैदल जहाँ गुणशीलक चैत्य था जहाँ स्थविर भगवन्त विराज रहे थे, वहाँ पहुँचकर वंदन-नमस्कार किया।

तत्पश्चात् स्थविर भगवन्तों ने धन्य को विचित्र धर्म का उपदेश दिया। तब उस सार्थवाह ने धर्म श्रवण कर इस प्रकार कहा--

"हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर श्रद्धा करता हूँ। हे भदन्त ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन पर प्रतीति करता हूँ। हे भगवन् !

भंते ! निग्गंथं पावयणं। एवमेयं भंते ! तहमेयं भंते ! अवितहमेयं भंते ! इच्छियमेयं भंते ! पडिच्छियमेयं भंते ! इच्छिय-पडिच्छियमेयं भंते ! से जहेयं तुब्भे वयह'' त्ति कट्टु थेरे भगवंते वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता-जाव-पव्वइए-जाव-बहूणि वासाणि सामण्णपरियागं पाउणित्ता भत्तं पच्चक्खाइत्ता, मासियाए संलेहणाए [अप्पाणं झोसेत्ता ?], सट्ठि भत्ताइं अणसणाए छेदित्ता कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववण्णे।

निर्ग्रन्थ प्रवचन मुझे रुचिकर है। हे भगवन् ! मैं निर्ग्रन्थ प्रवचन का अनुसरण करने के लिये उद्यत होता हूँ। हे भगवन् ! निर्ग्रन्थ प्रवचन ऐसा ही है। हे भदन्त ! यह सत्य है। हे भगवन् ! यह अतथ्य नहीं है। हे भगवन् ! यह मुझे इच्छित है। इष्ट है, हे भगवन् ! प्रतीच्छित है बार-बार इष्ट है। हे भदन्त ! मुझे इष्ट और पुनः पुनः इष्ट है। हे भदन्त ! यह वैसा ही है, जैसा आप निरूपण करते हैं।''—ऐसा कहकर उसने स्थविर भगवन्तों को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके—यावत्—वह प्रव्रजित हो गया—यावत्—बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन कर, आहार-पानी का प्रत्याख्यान कर, एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को मांजकर, साठ भोजनों को अनशन द्वारा छोड़कर काल मास में काल करके सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न हुआ।

तत्थ णं अत्थेगइयाणं देवाणं चत्तारि पलिओवमाइं ठिई पण्णत्ता। तस्स णं धणस्स देवस्स चत्तारि पलिओवमाइं ठिई।

वहाँ किन्हीं-किन्हीं देवों की चार पल्योपम की स्थिति कही है। वहाँ धन्य नामक देव की भी चार पल्योपम की स्थिति (भव-आयुष्य) कही है।

धणस्स महाविदेहे सिद्धी—

१०४. से णं धणे देवे ताओ देवलोगाओ आउक्खएणं ठिइक्खएणं भवक्खएणं अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-सव्वदुक्खाणमंतं करेहिइ।

धन्य की महाविदेह में सिद्धि—

१०४. वह धन्य देव उस देवलोक से आयुक्षय, स्थितिक्षय और और भवक्षय के अनन्तर च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगा—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करेगा।

धणणायस्स पुणोनिगमणं—

१०५. जहा णं जंबू ! धणेणं सत्थवाहेणं नो धम्मो त्ति वा तवो त्ति वा कयपडिकया इ वा लोगजत्ता इ वा नायए इ वा घाडियए इ वा सहाए इ वा सुहि त्ति वा विजयस्स तक्करस्स ताओ विपुलाओ असण-पाण-खाइम-साइमाओ संविभागे कए, नण्णत्थ सरीरसारक्खणट्ठाए। एवामेव जंबू ! जे णं अम्हं निग्गंथे वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे ववगय-ण्हाणुमद्दण-पुप्फ-गंध-मल्लालंकार-विभूसे इमस्स ओरालिय-सरीरस्स नो वण्णहेउं वा नो रूवहेउं वा नो बलहेउं वा नो विसयहेउं वा तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं आहारमाहारेइ, नण्णत्थ नाणदंसणचरित्ताणं वहणट्ठयाए, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ।

धन्य ज्ञात का पुनः निगमन—

१०५. भगवान् सुधर्मा ने जम्बू स्वामी से कहा—'हे जम्बू ! जैसे धन्य सार्थवाह ने 'धर्म है' ऐसा समझकर अथवा तप, प्रत्युपकार, लोक यात्रा, नायक, सहचर, सहायक अथवा सुहृत्-मित्र समझकर विजय चोर को उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन में से संविभाग नहीं किया था, सिवाय शरीर की रक्षा के लिये—शरीर को टिकाये रखने के लिये। इसी प्रकार हे जम्बू ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी आचार्य, उपाध्याय के पास मुण्डित होकर, गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित होकर स्नान, उपमर्दन, पुष्प, गंध, माला, अलंकार और शरीर विभूषा का त्याग करके जो अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार करता है, यह इस औदारिक शरीर के वर्ण, रूप, बल या विषय सुख के लिये नहीं करता है किन्तु ज्ञान, दर्शन और चारित्र की साधना करने के सिवाय उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं होता है। वह साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा इस लोक में अर्चनीय, वंदनीय, नमस्करणीय पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय होता है तथा उसे कल्याणरूप, मंगलरूप, देवस्वरूप और चैत्यस्वरूप मानकर पर्युपासना-सेवा करने योग्य माना जाता है।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य

परलोक में भी वह हस्तछेदन, कर्णछेदन, नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार हृदय के उत्पाटन, वृषणों (अंडकोष) के उत्पाटन

उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व से धण्णे सत्थवाहे।[1]

—णायाधम्मकहाओ सु० १ अ० २

(उखाड़ना) और उद्बंधन (फाँसी) आदि कष्टों को प्राप्त नहीं करता है तथा अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाली संसार अटवी को पार करेगा। जैसे धन्य सार्थवाह ने किया।

६. मयूरीअण्डणायं

चंपाए मयूरीए अण्डसेवणं—

१०६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चंपा नामं नयरी होत्था—वण्णओ।

तीसे णं चंपाए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए सुभूमिभागे नामं उज्जाणे -सव्वोउय-पुप्फ-फल-समिद्धे सुरम्मे नंदणवणे इव सुह-सुरभिसीयलच्छायाए समणुबद्धे।

तस्स णं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उत्तरओ एगदेसम्मि मालुया-कच्छए होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं एगा वणमयूरी दो पुट्ठे परियागए पिट्ठुण्डी-पंडुरे निव्वणे निरुवहए—भिण्णमुट्ठिप्पमाणे मयूरी-अंडए पसवइ, पसवित्ता सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संविट्ठेमाणी विहरइ।

चंपाए जिणदत्तसागरदत्ता सत्थवाहदारगा—

१०७. तत्थ णं चंपाए नयरीए दुवे सत्थवाहदारगा परिवसंति, तं जहा—जिणदत्तपुत्ते य सागरदत्तपुत्ते य—सहजायया सहवड्ढियया सहपंसुकीलियया सहदारदरिसी अण्णमण्णमणुरत्तया अण्णमण्णमणुव्वयया अण्णमण्णच्छंदाणुवत्तया अण्णमण्णहियइच्छियकारया अण्णमण्णेसु गिहेसु किच्चाइं करणिज्जाइं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

६. मयूरी-अण्ड ज्ञात

चंपा में मयूरी का अंड-सेवन—

१०६. उस काल और उस समय में चंपा नामक नगरी थी, उसका वर्णन करना चाहिये।

उस चंपा नगरी के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग-ईशान कोण में सुभुमिभाग नामक उद्यान था, वह सभी ऋतुओं के फूलों-फलों से समृद्ध रमणीय और नंदन वन के समान सुखद, सुरभिगंध एवं शीतल छाया से व्याप्त था।

उस सुभुमिभाग उद्यान के उत्तर दिशावर्ती एक देश-प्रदेश में एक मालुका कच्छ था, उसका वर्णन करना चाहिये।

उस मालुका कच्छ में एक वन-मयूरी ने पुष्ट, पर्यायगत—प्रसवकाल को प्राप्त—चावलों के पिंड के समान श्वेत वर्ण वाले, निर्व्रण—अक्षत, वायु आदि के उपद्रव से रहित, पोली मुट्ठी के बराबर दो अंडों का प्रसव किया, प्रसव करके अपने पंखों की वायु से रक्षा करती, संगोपन—सार-संभाल करती और संवेष्टन—पोषण करती हुई समय यापन करती थी।

चंपा में जिनदत्त सागरदत्त नामक सार्थवाह के पुत्र—

१०७. उस चंपा नगरी में दो सार्थवाह-पुत्र निवास करते थे। वे इस प्रकार थे—जिनदत्त का पुत्र और सागरदत्त का पुत्र। वे दोनों साथ ही जन्मे थे, साथ ही बड़े हुए थे, साथ ही धूल में खेले थे, साथ ही दारदर्शी—विवाहित हुए थे, परस्पर दोनों का अनुराग था, एक-दूसरे का अनुसरण करते थे, परस्पर एक-दूसर की इच्छा

---

१ वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा

सिवसाहणेसु आहार-विरहिओ जं न वट्टए देहो। तम्हा धणो व्व विजयं, साहू तं तेण पोसेज्जा ॥१॥

—णायाधम्मकहाओ सु० १, अ० २

का मान करते थे, दोनों एक-दूसरे के हृदय का इच्छित कार्य करते थे और एक-दूसरे के घर में नित्य कृत्य और करणीय-नैमित्तिक कार्य करते हुए विचरते थे।

तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं समुवागयाणं सण्णिसण्णाणं सण्णिविट्ठाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'अण्णं देवाणुप्पिया ! अम्हं सुहं वा दुक्खं वा पव्वज्जा वा विदेसगमणं वा समुप्पज्जइ, तण्णं अम्हेहिं एगयओ समेच्चा णित्थरियव्वं' ति कट्टु अण्णमण्णमेयारूवं संगारं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् वे सार्थवाह-पुत्र किसी समय इकट्ठे हुए, मिले और एक साथ बैठे और सुखपूर्वक बैठे तो उस समय उनमें इस प्रकार का वार्तालाप हुआ—"हे देवानुप्रिय ! जो भी हमें सुख दुःख, प्रव्रज्या अथवा विदेशगमन का अवसर प्राप्त हो, उसका हमें एक साथ ही निर्वाह करना चाहिये।" इस प्रकार कहकर दोनों ने आपस में इस प्रकार की यह प्रतिज्ञा अंगीकार की, प्रतिज्ञा करके अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त हो गये।

चंपाए देवदत्ता गणिया—

१०८. तत्थ णं चंपाए नयरीए देवदत्ता नामं गणिया परिवसइ—अड्ढा दित्ता वित्ता वित्थिण्ण-विउल-भवण-सयणासण-जाण-वाहणा बहुधण जायरूव-रयया आओग-पओग-संपउत्ता विच्छड्डिय-पउर-भत्तपाणा चउसट्ठिकलापंडिया चउसट्ठि-गणियागुणोववेया अउणत्तीसं विसेसे रममाणी एक्कवीस-रइगुणप्पहाणा बत्तीस-पुरिसोवयारकुसला नवंगसुत्तपडिबोहिया अट्ठारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा संगय-गय-हसिय-भणिय-चेट्ठिय-विलास-संलावुल्लाव-निउण-जुत्तोवयारकुसला ऊसियज्झया सहस्सलंभा विदिण्णछत्त-चामर-बालवीयणिया कण्णीरहप्पयाया वि होत्था।

चंपा में देवदत्ता गणिका—

१०८. उस चंपा नगरी में देवदत्ता नामक एक गणिका निवास करती थी। वह धनसम्पन्न, तेजस्विनी और प्रख्यात थी। विस्तीर्ण एवं विपुल भवन, शैया, आसन, यान, वाहन, पुष्कल स्वर्ण एवं चाँदी आदि धन की स्वामिनी थी। अर्थोपार्जन के उपायों की जानकार थी अथवा लेन-देन का व्यापार करती थी। उसके यहाँ इतना अधिक भोजन-पान बनता था कि खाने के बाद भी बहुत सा बचा रहता था। स्त्रियों की चौंसठ कलाओं की पंडिता थी, गणिका के चौसठ गुणों से युक्त थी, उनतीस प्रकार की विशेष क्रीड़ायें करने वाली थी, रति के इक्कीस गुणों में निपुण थी, बत्तीस प्रकार के पुरुषोपचार करने में कुशल थी, उसके सुप्त नौ अंग जागृत थे—अर्थात् युवावस्था को प्राप्त थी, अठारह देशी भाषाओं में विशारद थी, अपनी सुन्दर वेशभूषा से शृङ्गार रस के आगार जैसी प्रतीत होती थी, सुन्दर गति, हास-परिहास, वचन-संलाप, चेष्टा, विलास, वार्तालाप करने में प्रवीण थी, योग्य उपचार, व्यवहार करने में कुशल थी, उसके घर पर ध्वजा फहराती थी, सहस्र धन, मुद्रा देने पर प्राप्त होने योग्य थी, राजा की ओर से छत्र, चामर और बीजना—पंखा प्रदान किया गया था, कर्णीरथ नामक वाहन पर बैठकर आती थी।

बहूणं गणियासहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी महयाऽहय-नट्ट-गीय-वाइय-तंती-तल-ताल-तुडिय-घण-मुइंग-पडुप्पवाइयरवेणं विउलाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

एक हजार गणिकाओं का आधिपत्य, नेतृत्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व—अग्रेसरत्व, आज्ञा-ईश्वर, सेनापतित्व करती हुई, उनका पालन-पोषण करती हुई, नृत्य, गीत-वाद्य, तंत्री, तल, ताल, त्रुटित, घन, मृदंग, पटह आदि बाजों की ध्वनि निनाद पूर्वक विपुल भोगोपभोगों को भोगती हुई अपना समय व्यतीत करती थी।

सत्थवाहदारगाणं गणियाए सह उज्जाणकीडा—

१०९. तए णं तेसिं सत्थवाहदारगाणं अण्णया कयाइ पुव्वावरण्हकालसमयंसि जिमियभुत्तुत्तरागयाणं समाणाणं आयंताणं चोक्खाणं परमसुइभूयाणं सुहासणवरगयाणं इमेयारूवे मिहोकहासमुल्लावे समुप्पज्जित्था—'सेयं खलु अम्हं देवाणुप्पिया ! कल्लं पाउप्पभायाए

सार्थवाह-पुत्रों की गणिका के साथ उद्यान क्रीड़ा—

१०९. तत्पश्चात् उन सार्थवाह-पुत्रों की किसी समय दोपहर में भोजन करने के अनन्तर आचमन-कुल्ला करके स्वच्छ, परम, शुचिभूत होकर सुखपूर्वक आसनों पर बैठे-बैठे आपस में इस प्रकार की चर्चा-वार्ता हुई कि—"हे देवानुप्रिय ! हमारे लिये यह

रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं धूव-पुप्फ-गंध-मल्लालंकारं गहाय देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणाणं विहरित्तए' त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

अच्छा होगा कि आगामी दिन रात को प्रभात रूप में परिवर्तित होने के अनन्तर सूर्योदय तथा सहस्ररश्मि दिनकर को जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाकर और उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन, धूप, पुष्प, गंध, वस्त्र, माला, अलंकारों को लेकर देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान में उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विचरण करें।" इस प्रकार कहकर एक-दूसरे ने इस अर्थ को स्वीकार किया, स्वीकार करके आगामी दिन रात्रि के बाद प्रभात होने—यावत्—सूर्य का उदय और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाकर इस प्रकार कहा —

'गच्छह णं देवाणुप्पिया ! विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडेह, उवक्खडेत्ता तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ-गंध-वत्थ-मल्लालंकारं गहाय जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव नंदा पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छह, उवागच्छित्ता नंदाए पोक्खरिणीए अदूरसामंते थूणामंडवं आहणह—आसियसम्मज्जिओवलित्तं पंचवण्ण-सरससुरभि-मुक्क-पुप्फपुंजोवयारकलियं कालागरु-पवर-कुन्दुरुक्क-तुरुक्क-धूव-डज्झंत-सुरभि-मघमघेंत-गंधुद्धयाभिरामं सुगंध-वर-गंधगंधियं गंधवट्टिभूयं करेह, करेत्ता अम्हे पडिवालेमाणा-पडिवालेमाणा चिट्ठह''-जाव-चिट्ठन्ति।

"देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन तैयार करो, तैयार करके उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन, धूप, पुष्प, गंध, वस्त्र, माला, अलंकारों को लेकर जहाँ सुभूमिभाग उद्यान है, जहाँ नन्दा पुष्करिणी है, वहाँ जाओ, जाकर नन्दा पुष्करिणी के समीप स्थूणा मंडप (वस्त्र से आच्छादित मंडप) बनाओ, जल का छिड़काव कर, झाड़-बुहार कर, लीपकर पंचरंगे सरस, सुगंधित एवं बिखरे हुए पुष्प पुञ्जों से व्याप्त कर, काले अगर, श्रेष्ठ कुन्दुरुष्क, तुरुष्क (लोभान) एवं धूप को जलाकर महकती हुई सुरभि गंध से व्याप्त करो तथा मनोहर श्रेष्ठ सुगंध से सुगंधित कर सुगंध की बड़ी जैसी बनाओ और फिर हमारी प्रतीक्षा करते हुए वहीं ठहरना।"—यावत्—कौटुम्बिक पुरुष आदेशानुसार कार्य करके उनकी राह देखने लगे।

११०. तए णं ते सत्थवाहदारगा दोच्चं पि कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी खिप्पामेव [भो देवाणुप्पिया ! ?] लहुकरण-जुत्त-जोइयं समखुर-वालिहाण-समलिहिय-तिक्खग्गसिंगएहिं रययामय-घंट-सुत्तरज्जु—पवरकंचण—खचिय—नत्थपग्गहोग्गहियएहिं नीलुप्पलकयामेलएहिं पवर-गोण-जुवाणएहिं नाना-मणि-रयण-कंचण-घंटिया-जालपरिक्खित्तं पवरलक्खणोववेयं जुत्तामेव पवहणं गवणेह। ते वि तहेव उवणेंति।

११०. तत्पश्चात् उन सार्थवाह-पुत्रों ने पुनः कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम शीघ्र ही चलने में हलका समान खुर और पूंछ वाले एक से चित्रित तीखे सींगों के अग्र भाग वाले, चाँदी की घंटियों से युक्त स्वर्ण जटित सूत की डोरी की नाथ से बँधे हुए, नीलकमल की कलंगी से युक्त श्रेष्ठ जवान बैलों से जुता हुआ, विविध प्रकार की मणियों, रत्नों और स्वर्ण से बनी घंटियों से युक्त ऐसा श्रेष्ठ लक्षणों वाला रथ लाओ। वे कौटुम्बिक पुरुष आज्ञानुरूप रथ उपस्थित करते हैं।

तए णं ते सत्थवाहदारगा ण्हाया कयबलिकम्मा कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ता अप्पमहग्घाभरणालंकियसरीरा पवहणं दुरुहंति, दुरुहित्ता जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता देवदत्ताए गणियाए गिहं अणुप्पविसंति।

तत्पश्चात् उन सार्थवाह-पुत्रों ने स्नान किया, बलिकर्म किया कौतुक मंगल प्रायश्चित्त किया और फिर वे अल्प किन्तु बहुमूल्य अलंकारों से शरीर को अलंकृत करके रथ पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर जहाँ देवदत्ता गणिका का घर था, वहाँ आये, आकर रथ से नीचे उतरे और देवदत्ता गणिका के घर में प्रविष्ट हुए।

१११. तए णं सा देवदत्ता गणिया ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठा आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ-पयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता ते सत्थवाहदारए एवं वयासी—

१११. तब उस देवदत्ता गणिका ने उन सार्थवाह-पुत्रों को आते देखा, देखकर वह हृष्ट-तुष्ट होती हुई आसन से उठी, उठकर सात-आठ डग सामने गई, सामने आकर उन सार्थवाह-पुत्रों से

"संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमिहागमणप्पओयणं ?"

तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्तं गणियं एवं वयासी—"इच्छामो णं देवाणुप्पिए ! तुमे सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरित्तए।"

तए णं सा देवदत्ता तेसिं सत्थवाहदारगाणं एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा-जाव-सिरी-समाणवेसा जेणेव सत्थवाहदारगा तेणेव उवागया।

११२. तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं जाणं दुरुहंति, दुरुहित्ता चंपाए नयरीए मज्झंमज्झेणं जेणेव सुभूमिभागे उज्जाणे जेणेव नंदा पोक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पवहणाओ पच्चोरुहंति, पच्चोरुहित्ता नंदं पोक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता जलमज्जणं करेंति, करेत्ता जलकिड्डं करेंति, करेत्ता ण्हाया देवदत्ताए सद्धिं (नंदाओ पोक्खरिणीओ ?) पच्चुत्तरंति, जेणेव थूणामंडवे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता (थूणामंडवं ?) अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता सव्वालंकारभूसिया आसत्था वीसत्था सुहासणवरगया देवदत्ताए सद्धिं तं विपुलं असण-पाण-खाइम-साइमं धूव-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं आसाएमाणा विसाएमाणा परिभाएमाणा परिभुंजेमाणा एवं च णं विहरंति। जिमियभुत्तुत्तरागया वि य णं समाणा देवदत्ताए सद्धिं विपुलाइं कामभोगाइं भुंजमाणा विहरंति।

तए णं ते सत्थवाहदारगा पुव्वावरण्हकालसमयंसि देवदत्ताए गणियाए सद्धिं थूणामंडवाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता हत्थसंगेल्लीए सुभूमिभागे उज्जाणे बहूसु आलिघरएसु य कयलिघरएसु य लयाघरएसु य अच्छणघरएसु य पेच्छणघरएसु य पसाहणघरएसु य मोहणघरएसु य सालघरएसु य जालघरएसु य कुसुमघरएसु य उज्जाणसिरिं पच्चणुभवमाणा विहरंति।

सत्थवाहदारगेहिं मयूरीअण्डगगहणं

११३. तए णं ते सत्थवाहदारगा जेणेव से मालुयाकच्छए तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं सा वणमयूरी ते सत्थवाहदारए एज्जमाणे पासइ, पासित्ता भीया तत्था महया-महया सद्देणं केकारवं विणिम्मुयमाणी-विणिम्मुयमाणी मालुयाकच्छाओ पडिणिक्खमइ, पडिणिक्खमित्ता एगंसि रुक्खडालयंसि ठिच्चा ते सत्थवाहदारए मालुयाकच्छगं च अणिमिसाए दिट्ठीए पेच्छमाणी चिट्ठइ।

तए णं ते सत्थवाहदारगा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता

इस प्रकार पूछा—"देवानुप्रियो ! कहिये—आज्ञा दीजिये आपका यहाँ आने का क्या प्रयोजन है ?"

तब उन सार्थवाह पुत्रों ने देवदत्ता गणिका से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिये ! हम तुम्हारे साथ सुभूमिभाग उद्यान में पहुँचकर उद्यानश्री का अनुभव करते हुए विचरना चाहते हैं।"

देवदत्ता गणिका ने उन सार्थवाह-पुत्रों के इस विचार को स्वीकार किया, स्वीकार करके स्नान किया, बलिकर्म किया—यावत् लक्ष्मी के समान सुन्दर वेष धारण करके जहाँ सार्थवाह-पुत्र थे, वहाँ आ गई।

११२. तदनन्तर वे सार्थवाह-पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ यान—रथ पर आरूढ़ हुए, आरूढ़ होकर चंपा नगरी के बीचोंबीच से होकर जहाँ सुभूमिभाग उद्यान था और उसमें भी जहाँ नन्दा पुष्करिणी थी वहाँ पहुँचे, पहुँचकर यान से नीचे उतरे, उतरकर नंदा पुष्करिणी में अवगाहन किया, अवगाहन करके जल मज्जन किया, जल क्रीड़ा की, फिर स्नान किया और देवदत्ता के साथ (नन्दा पुष्करिणी से) बाहर निकले, जहाँ स्थूणा मंडप था, वहाँ आये, आकर (स्थूणा-मंडप में) प्रविष्ट हुए, प्रविष्ट होकर सब अलंकारों से विभूषित आश्वस्त-स्वस्थ और विश्वस्त होकर श्रेष्ठ आसन पर बैठे फिर देवदत्ता के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, धूप, पुष्प, गंध, वस्त्र, माला और अलंकारों का उपभोग करते हुए विशेष रूप में आस्वादन करते हुए, विभाग करते हुए एवं भोगते हुए विचरण करने लगे। भोजन करने के उपरान्त देवदत्ता के साथ विपुल काम-भोगों को भोगते हुए विचरने लगे।

इसके बाद वे सार्थवाह-पुत्र दिन के पिछले प्रहर में देवदत्ता गणिका के साथ स्थूणा मंडप से बाहर निकलकर हाथ में हाथ मिलाकर सुभूमिभाग उद्यान में बने हुए बहुत से आलिगृहों में कदलिगृहों में, लतागृहों में, विश्रामगृहों में, प्रेक्षणगृहों में, प्रसाधनगृहों में, मोहनगृहों में, सालगृहों में, जाल गृहों में और पुष्पगृहों में घूमते हुए उद्यान की श्री-शोभा का अनुभव करते हुए विचरने लगे।

सार्थवाह-पुत्रों द्वारा मयूरी-अंडकों का लेना—

११३. तत्पश्चात् वे सार्थवाह-पुत्र घूमते हुए जहाँ मालुकाकच्छ था, वहाँ जाने के लिये प्रवृत्त हुए।

तब उस वन-मयूरी ने सार्थवाह-पुत्रों को आते देखा, देखकर भयभीत त्रस्त होती हुई जोर-जोर से आवाज करके केकारव करती हुई मालुकाकच्छ से बाहर भागी, भागकर एक वृक्ष की डाली पर स्थित होकर उन सार्थवाह-पुत्रों और मालुकाकच्छ को अपलक दृष्टि से देखने लगी।

तब उन सार्थवाह-पुत्रों ने एक-दूसरे को बुलाया, बुलाकर

एवं वयासी—"जहा णं देवाणुप्पिया ! एसा वणमयूरी अम्हे एज्जमाणे पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा पलाया महया-महया सद्देणं केकारवं-जाव-रुक्खडालयंसि ठिच्चा अम्हे मालुया-कच्छयं च (अणिमिसाए दिट्ठीए ?) पेच्छमाणी चिट्ठइ, तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं" त्ति कट्टु मालुयाकच्छयं अंतो अणुप्पविसंति। तत्थ णं दो पुट्ठे परियागए-जाव-मयूरी-अंडए पासित्ता अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं इमे वणमयूरी-अंडए साणं जातिमंताणं कुक्कुडियाणं अंडएसु पक्खिवावित्तए। तए णं ताओ जातिमंताओ कुक्कुडियाओ एए अंडए सए य अंडए सएणं पक्खवाएणं सारक्खमाणीओ संगोवेमाणीओ विहरिस्संति। तए णं अम्हं एत्थं दो कीलावणगा मयूरी-पोयगा भविस्संति" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सए सए दासचेडए सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! इमे अंडए गहाय सगाणं जातिमंताणं कुक्कुडीणं अंडएसु पक्खिवह"-जाव-ते वि पक्खिवेंति।

इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! यह वनमयूरी हमें आता देखकर भयभीत, त्रस्त, स्तब्ध, उद्विग्न होती हुई भागी और तेज आवाज में केकारव करती—यावत्—वृक्ष की डाल पर बैठकर हमें और मालुकाकच्छ को (अपलक दृष्टि से) देख रही है, इसका कोई कारण होना चाहिये।" ऐसा कहकर वे मालुकाकच्छ में घुसे। वहाँ दो पुष्ट और अनुक्रम से वृद्धि को प्राप्त हो रहे—यावत्—मयूरी के अंडों को देखा, देखकर एक-दूसरे को आवाज दी और आवाज देकर इस प्रकार कहा—"देवानुप्रिय ! वन-मयूरी के इन अंडों को अपनी उत्तम जाति की मुर्गियों के अंडों के साथ डाल देना अपने लिये अच्छा होगा। तब वे अपनी जातिवन्त मुर्गियाँ इन अंडों का अपने अंडों के साथ अपने पंखों की हवा से रक्षण और संगोपन-पोषण करती रहेंगी। जिससे हमारे पास क्रीड़ा करने के लिये मयूरी के दो बच्चे हो जायेंगे।" ऐसा कहकर उन्होंने एक-दूसरे की बात स्वीकार की, स्वीकार करके अपने-अपने दास चेटकों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम जाओ और इन अंडों को लेकर अपनी जातिवन्त मुर्गियों के अंडों के साथ रख दो।"—यावत्—उन दास-पुत्रों ने उन दोनों अंडों को मुर्गियों के अंडों के साथ रख दिया।

११४. तए णं ते सत्थवाहदारगा देवदत्ताए गणियाए सद्धिं सुभूमिभागस्स उज्जाणस्स उज्जाणसिरिं पच्चणुब्भवमाणा विहरित्ता तमेव जाणं दुरूढा समाणा जेणेव चंपा नयरी जेणेव देवदत्ताए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदत्ताए गिहं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता देवदत्ताए गणियाए विउलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयंति, दलइत्ता सक्कारेंति, सम्माणेंति, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता देवदत्ताए गिहाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव साइं साइं गिहाइं तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सकम्मसंपउत्ता जाया यावि होत्था।

११४. तत्पश्चात् वे सार्थवाह-पुत्र देवदत्ता गणिका के साथ सुभूमिभाग उद्यान की उद्यानश्री का अनुभव करने के अनन्तर उसी रथ पर आरूढ़ होकर जहाँ चंपा नगरी थी, जहाँ देवदत्ता गणिका का घर था, वहाँ आये, आकर देवदत्ता के घर में प्रवेश किया, प्रवेश करके देवदत्ता गणिका को जीविका के योग्य विपुल प्रीति-दान दिया, प्रीतिदान देकर सत्कार-सम्मान किया और फिर देवदत्ता के घर से निकले, निकलकर जहाँ अपने-अपने घर थे, वहाँ आये और आकर अपने-अपने कार्यों में संलग्न हो गये।

सागरदत्तपुत्तेण संदेहवसेण अण्डयविणासो उवणओ य—

११५. तत्थ णं जे से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए से णं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव से वणमयूरी-अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मयूरी-अंडयंसि संकिए कंखिए वितिगिच्छसमावण्णे भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे किण्णं ममं एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए भविस्सइ उदाहु नो भविस्सइ ? त्ति कट्टु तं मयूरी-अंडयं अभिक्खणं-अभिक्खणं उव्वत्तेइ परियत्तेइ आसारेइ संसारेइ

संदेहग्रस्त सागरदत्त-पुत्र द्वारा अंडक विनाश और उपनय—

११५. तत्पश्चात् उनमें जो सागरदत्त-पुत्र सार्थवाह दारक था वह कल रात्रि के अनन्तर प्रभात होने—यावत्—सूर्य का उदय होने के साथ-साथ सहस्त्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर जहाँ वन-मयूरी का अंडा था, वहाँ आया, वहाँ आकर उस मयूरी-अंडे में शंकित, कांक्षित, विचिकित्सित, संकल्प-विकल्प से युक्त हुआ, भेद को प्राप्त हुआ, बौद्धिक मलिनता को प्राप्त हुआ कि—"मेरे इस अंडे में से क्रीड़ा करने वाला मयूरी बालक उत्पन्न होगा या नहीं होगा ?" इस प्रकार का विचार करके वह उस मयूरी-अंडे को बार-बार उलटने-पलटने लगा—घुमाने लगा, आसारण करने लगा, एक जगह से दूसरी जगह रखने लगा, संसारण करने लगा, बार-बार

चालेइ फंदेइ घट्टेइ खोभेइ अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेइ ।

तए णं से मयूरी-अंडए अभिक्खणं-अभिक्खणं उव्वत्तिज्जमाणे परियत्तिज्जमाणे आसारिज्जमाणे संसारिज्जमाणे चालिज्जमाणे फंदिज्जमाणे घट्टिज्जमाणे खोभिज्जमाणे अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि टिट्टियावेज्जमाणे पोच्चडे जाए यावि होत्था ।

११६. तए णं से सागरदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए अण्णया कयाइ जेणेव से मयूरी-अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तं मयूरी-अंडयं पोच्चडमेव पासइ, 'अहो णं ममं एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए न जाए' त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियाइ ।

११७. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचमहव्वएसु छज्जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे संकिए कंखिए वितिगिच्छसमावण्णे भेयसमावण्णे कलुससमावण्णे, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविगाण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ बहूणि दंडणाणि य बहूणि मुण्डणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तालणाणि य बहूणि अंदुबंधणाणि य बहूणि घोलणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणी-मरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य धूयमरणाणि य बहूणि सुण्हामरणाणि य, बहूणं दारिद्दाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पियविप्पओगाणं बहूणं दुक्ख-दोमणस्साणं आभागी भविस्सति, अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ ।

सद्धाजुत्तस्स जिणदत्तपुत्तस्स मयूरसंपत्ती उवणओ य—

११८. तए णं से जिणदत्तपुत्ते जेणेव से मयूरी-अंडए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तंसि मयूरी-अंडयंसि निस्संकिए (निक्कंखिए निव्वितिगिच्छे ?) सुव्वत्तए णं मम एत्थ कीलावणए मयूरी-पोयए भविस्सइ त्ति कट्टु तं मयूरी-अंडयं अभिक्खणं-अभिक्खणं नो उव्वत्तेइ नो परियत्तेइ नो आसारेइ नो संसारेइ नो चालेइ नो फंदेइ नो घट्टेइ नो खोभेइ अभिक्खणं-अभिक्खणं कण्णमूलंसि नो टिट्टियावेइ ।

उसका स्थान बदलने लगा, चलाने लगा, हिलाने लगा, घट्टन—हस्त स्पर्श करने लगा, क्षोभण करने लगा और बार-बार कान के पास लाकर उसे बजाने लगा ।

तत्पश्चात् वह मयूरी-अंडा बार-बार उद्वर्तन, परिवर्तन, आसारण, संसारण करने से, चलाने, हिलाने, स्पर्श करने, क्षोभण करने और कान के पास लाकर बार-बार बजाने से पोचा, निर्जीव हो गया ।

११६. तत्पश्चात् किसी एक समय वह सागरदत्त-पुत्र सार्थवाह दारक जहाँ मयूरी का अंडा था, वहाँ आया, आकर उस मयूरी अंडे को उसने पोचा देखा तो देखकर "अहो ! मेरी क्रीड़ा करने योग्य यह मयूरी का बच्चा नहीं हुआ ।" ऐसा विचार कर खेद-खिन्न होता हुआ, हथेली पर मुख को टिकाकर आर्तध्यान में डूब गया, चिन्ता करने लगा । उसके मनोरथ विफल गये ।

११७. इसी प्रकार—'हे आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु या साध्वी आचार्य अथवा उपाध्याय के पास मुण्डित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या ग्रहण करके पांच महाव्रतों के विषय में, छह जीवनिकाय के विषय में अथवा निर्ग्रन्थ प्रवचन के विषय में शंका करता है, लौकिक फल की कांक्षा-अभिलाषा करता है, विचिकित्सा से ग्रस्त होता है—क्रिया के फल में सन्देह करता है, भेद से आक्रान्त होता अथवा कलुषता को प्राप्त होता है । वह इसी भव में बहुत से साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं के द्वारा हीलना, बहिष्कार, उपेक्षा, गर्हा, निन्दा, परिभव, अनादर करने के योग्य होता है तथा परभव में भी बहुत दंड पाता है, मूंडा जाता है, बार-बार तर्जना और ताड़ना का पात्र होता है, बारंबार बेड़ियों में जकड़ा जाता है, बार-बार घोलना पाता है, बार-बार उसे माता के मरण, पिता के मरण, भ्रातृ मरण, भगिनी मरण, पत्नी मरण, पुत्र मरण, पुत्री मरण और पुत्रवधू मरण का दुःख भोगना पड़ता है तथा परभव में दारिद्र, दुर्भाग्य, अनिष्ट संयोग, इष्ट वियोग अत्यन्त, दुःख और दुर्मनस्कता का भाजन बनेगा, अनादि-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कान्तार में बार-बार परिभ्रमण करेगा ।

श्रद्धायुक्त जिनदत्त-पुत्र को मयूर संप्राप्ति और उपनय—

११८. सागरदत्तपुत्र की तरह जिनदत्तपुत्र भी जहाँ मयूरी का अंडा था, वहाँ आया, आकर उस मयूरी के अंडे के विषय में निःशंकित (निःकांक्षित और विचिकित्सा से रहित) रहा, "मेरे इस अंडे से क्रीड़ा करने योग्य सुन्दर गोलाकार मयूरी बालक होगा ।" इस प्रकार से निश्चिन्त होकर उसने मयूरी के अंडे को बार-बार उलटा-पलटा नहीं, आसारण नहीं किया, संसारण नहीं किया, चलाया नहीं, स्पर्श नहीं किया, क्षुभित नहीं किया और बार-बार कान के पास लाकर उसे बजाया नहीं ।

तए णं से मयूरी-अंडए अणुव्वत्तिज्जमाणे-जाव-अटिट्टिज्जमा-णिज्जमाणे कालेणं समएणं उब्भिन्ने मयूरी-पोयए एत्थ जाए।

तत्पश्चात् उस मयूरी के अंडे को उलट-पुलट न करने से—यावत्—बजाने नहीं जाने से उस काल और उस समय में अर्थात् उचित समय प्राप्त होने पर वह अंडा फूटा और मयूरी के बालक का जन्म हुआ।

तए णं से जिणदत्तपुत्ते तं मयूरी-पोययं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे-मयूर-पोसए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया! इमं मयूर-पोयगं बहूहिं मयूर-पोसण-पाओग्गेहिं दव्वेहिं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेह, नट्टुल्लगं च सिक्खावेह।"

तब उस जिनदत्त-पुत्र ने मयूरी के बालक को देखा, देखकर हृष्ट-तुष्ट हो मयूर-पोषकों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा · "हे देवानुप्रियो! तुम इस मयूरी-पोत को मयूर को पोषण देने योग्य पदार्थों से पुष्ट करो और अनुक्रम से संरक्षण करते हुए, संगोपन करते हुए बड़ा करो और नृत्यकला सिखाओ।"

तए णं ते मयूर-पोसगा जिणदत्तपुत्तस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, तं मयूर-पोयगं गेण्हंति, जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छंति, तं मयूर-पोयगं बहूहिं मयूर-पोसण-पाओग्गेहिं दव्वेहिं अणुपुव्वेणं सारक्खमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेंति नट्टुल्लगं च सिक्खावेंति।

तत्पश्चात् उन मयूर-पोषकों ने जिनदत्त-पुत्र की इस बात को स्वीकार किया और उस मयूर बालक को ग्रहण किया, ग्रहण करके अपने घर आये और उस मयूर बालक को बहुत से मयूर पोषक द्रव्यों, पदार्थों से पुष्ट करके तथा संरक्षण, संगोपन संवर्धन करते हुए नृत्यकला सिखाने लगे।

तए णं से मयूर-पोयए उम्मुक्कबालभावे विण्णाय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुपत्ते लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माण-प्पमाणपडि-पुण्णपक्खपेहुणकलावे विचित्तपिच्छसतचंदए नीलकंठए नच्चणसीलए एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए अणेगाइं नट्टुल्लगसयाइं केकाइयसयाणि य करेमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् वह मयूरी का बच्चा बाल्यावस्था को पार कर सज्ञान और युवावस्था सम्पन्न हो गया, लक्षणों और व्यंजनों, तिल आदि गुणों से युक्त हुआ, मान-उन्मान-प्रमाण, लम्बाई-चौड़ाई, मोटाई से अपने पंखों और पिच्छों के समूह से परिपूर्ण हुआ। रंग-बिरंगे पंख वाला हो गया। उन पंखों में सैकड़ों चंद्रक थे। उसकी ग्रीवा नीलवर्ण की हो गई और वह नृत्य करने के स्वभाव वाला हो गया, चुटकी बजाते ही अनेक प्रकार के नृत्य और सैकड़ों केकारव करते हुए विचरण करने लगा।

तए णं ते मयूर-पोसगा तं मयूर-पोयगं उम्मुक्कबालभावं-जाव-केकाइयसयाणि य करेमाणं पासित्ताणं तं मयूर-पोयगं गेण्हंति, गेण्हित्ता जिणदत्तपुत्तस्स उवणेंति।

तत्पश्चात् उन मयूर पोषकों ने उस मयूर के बच्चे को बचपन से मुक्त—यावत्—सैकड़ों केकारव आदि करते हुए देखकर उस मयूर पोत को लिया और लेकर जिनदत्त पुत्र के सामने उपस्थित किया।

११९. तए णं से जिणदत्तपुत्ते सत्थवाहदारए मयूर-पोयगं उम्मुक्क-बालभावं-जाव-केकाइयसयाणि य करेमाणं पासित्ता हट्ठतुट्ठे तेसिं विपुलं जीवियारिहं पीइदाणं दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

११९. तब उस जिनदत्त पुत्र सार्थवाह दारक ने मयूर बालक को बचपन मुक्त—यावत्—केकारव करते हुए देखकर हर्षित और-सन्तुष्ट होकर उन मयूरपालकों को जीविका के योग्य प्रीतिदान-पारितोषिक दिया और प्रीतिदान देकर उन्हें विदा किया।

तए णं से मयूर-पोयगे जिणदत्तपुत्तेणं एगाए चप्पुडियाए कयाए समाणीए नंगोला-भंग-सिरोधरे सेयावंगे ओयारिय-पइण्णपक्खे उक्खित्तचंदकाइय-कलावे केक्काइयसयाणि मुंचमाणे नच्चइ।

तत्पश्चात् वह मयूर बालक जिनदत्त-पुत्र द्वारा चुटकी बजाये जाने पर लांगुलभंग समान—जैसे सिंह आदि अपनी पूंछ को टेढ़ी करते हैं, उसी प्रकार अपनी गरदन टेढ़ी कर लेता था उसके नेत्र के कोने श्वेत वर्ण के हो जाते थे वह अपने पिच्छों वाले दोनों पंखों को फैला लेता, चन्द्रक युक्त पिच्छ समूह को ऊँचा कर लेता और सैकड़ों केकारव करता हुआ नृत्य करने लगता था।

१२०. तए णं से जिणदत्तपुत्ते तेणं मयूर-पोयएणं चंपाए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु सइएहि य साहस्सिएहि य सयसाहस्सिएहि य पणिएहि जयं करेमाणे विहरइ।

१२०. तत्पश्चात् वह जिनदत्त-पुत्र उस मयूर बालक के द्वारा चम्पा नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों राजमार्गों में सैकड़ों, हजारों और लाखों के दांव-होड़ में विजय प्राप्त करता था।

१२१. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंचमहव्वएसु छज्जीवनिकाएसु निग्गंथे पावयणे निस्संकिए निक्कंखिए निव्वितिगिंछे, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविआण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ,

१२१. इसी प्रकार के आयुष्मन् श्रमणो ! जो साधु या साध्वी आचार्य उपाध्याय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगारिक दीक्षा अंगीकार करके पाँच महाव्रतों में, षट् जीवनिकायों में और निर्ग्रन्थ प्रवचन में शंका, कांक्षा और विचिकित्सा से रहित होता है, वह इसी भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय और सम्माननीय होता हुआ कल्याणरूप, मंगलरूप और चैत्यरूप होकर विनयपूर्वक पर्युपासना का पात्र बनता है।

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं —हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ।[1]

—णायाधम्मकहाओ सु० १ अ० ३।

तथा परलोक में भी वह हस्त छेदन (हाथों का काटा जाना) कर्णछेदन, नासिकाछेदन को तथा इसी प्रकार से हृदय के उत्पाटन, वृषणों (अंडकोषों) के उत्पाटन (उखाड़ना) और उद्-बंधन (फांसी) आदि कष्टों को प्राप्त नहीं करेगा तथा अनादि अनन्त दीर्घमार्ग वाली संसार-अटवी को पार करेगा।

७. कुम्मणायं—

७. कूर्मज्ञात—

वाराणसीए मयंगतीरद्दहसमीवे मालुयाकच्छतीरे पावसियालगा—

वाराणसी के मृत गंगा तीर द्रह के समीप मालुकाकच्छ के किनारे के पाप श्रृगाल—

१२२. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणारसी नामं नयरी होत्था—वण्णओ।

१२२. उस काल और उस समय में वाराणसी नामक नगरी थी, उसका वर्णन करो।

तीसे णं वाणारसीए नयरीए उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए गंगाए महानईए मयंग-तीरद्दहे नामं दहे होत्था अणुपुव्वसुजायवप्प-गंभीर-सीयलजले अच्छ-विमल-सलिल-पलिच्छण्णे संछण्ण-पत्त-

उस वाराणसी नगरी के उत्तरपूर्व दिक्कोण— ईशान कोण— में गंगा महानदी और मृत गंगातीर द्रह नामक द्रह था - उसके अनुक्रम से सुन्दर, सुशोभित तट थे, इसका जल गहरा और

१ वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जिणवरभासियभावेसु, भावसच्चेसु भावओ मइमं। नो कुज्जा संदेहं, संदेहोऽणत्थहेउ त्ति ॥१॥
निस्संदेहत्तं पुण, गुणहेउं जं तओ तयं कज्जं। एत्थं दो सेट्ठिसुया, अंडयगाही उदाहरणं ॥२॥
कत्थइ मइदुब्बल्लेण, तव्विहायरियविरहओ वा वि। नेयगहणत्तणेणं, नाणावरणोदयेणं च ॥३॥
हेऊदाहरणासंभवे य सइ सुट्ठु जं न बुज्झेज्जा। सव्वण्णुमयमवितहं, तहावि इइ चिंतए मइमं ॥४॥
अणुवकय-पराणुग्गह-परायणा जं जिणा जगप्पवरा। जिय-राग-दोस-मोहा, य नन्नहावाइणो तेण ॥५॥

पुप्फ-पलासे बहुउप्पल-पउम-कुमुय-नलिण-सुभग-सोगंधिय-पुण्डरीय-महापुण्डरीय-सयपत्त-सहस्सपत्त-केसरपुप्फोवचिए पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

शीतल था, द्रह स्वच्छ और विमल जल से परिपूर्ण भरा हुआ था, कमल पत्रों, पुष्पों और पंखुड़ियों से आच्छादित था, बहुत से उत्पल, पद्म, कुमुद, नलिन, सुभग, सौगंधिक, पुण्डरीक, महा-पुण्डरीक, शतपत्र, सहस्रपत्र, आदि कमलों और केसर-पराग प्रधान पुष्पों से समृद्ध था, इसी कारण मन को आनन्दित करने वाला, दर्शनीय अभिरूप और प्रतिरूप था ।

तत्थ णं बहूणं मच्छाण य कच्छभाण य गाहाण य मगराण य सुंसुमाराण य सयाणि य सहस्साणि य सयसहस्साणि य जूहाइं निब्भयाइं निरुव्विग्गाइं सुहंसुहेणं अभिरममाणाइं-अभिरममाणाइं विहरंति ।

उस द्रह में अनेक सैकड़ों, हजारों और लाखों मच्छ, कच्छ, ग्राह, मगर और सुंसुमार आदि जलचर जीव निर्भय, निरुद्वेग सुख-पूर्वक रमण करते हुए विचरते थे ।

१२३. तस्स णं मयंगतीरद्दहस्स अदूरसामंते, एत्थ णं महं एगे मालुयाकच्छए होत्था — वण्णओ ।

१२३. उस मृत गंगा तीर द्रह के समीप एक विस्तृत, बड़ा मालुका कच्छ था, मालुका कच्छ का वर्णन करो ।

तत्थ णं दुवे पावसियालगा परिवसंति — पावा चंडा रुद्दा तल्लिच्छा साहसिया लोहियपाणी आमिसत्थी आमिसाहारा आमिसप्पिया आमिसलोला आमिसं गवेसमाणा रत्तिवियालचारिणो दिया पच्छन्नं चावि चिट्ठंति ।

उस मालुका कच्छ में दो पापी शृगाल रहते थे, जो पाप का आचरण करने वाले, चंड (क्रोधी) रौद्र (भयंकर) मनचाही वस्तु को प्राप्त करने में दत्तचित्त और साहसी थे, उनके हाथ रक्त से रंजित रहते थे, व मांस के अर्थी, मांसाहारी, मांसप्रिय और मांस-लोलुप थे, तथा मांस की गवेषणा करते हुए रात्रि एवं विकाल संध्या के समय घूमते थे और दिन में छिपे रहते थे ।

मयंगतीरे कुम्म —

मृत गंगातीर के कूर्म —

१२४. तए णं ताओ मयंगतीरद्दहाओ अण्णया कयाइं — सूरियंसि चिरत्थमियंसि लुलियाए संझाए पविरलमाणुसंसि णिसंत-पडिणिसंतंसि समाणंसि दुवे कुम्मगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा सणियं-सणियं उत्तरंति, तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं सव्वओ समंता परिघोलमाणा-परिघोलमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ।

१२४. तत्पश्चात् किसी एक दिन सूर्य के बहुत समय पूर्व अस्त हो जाने पर, संध्या काल व्यतीत हो जाने पर इक्के-दुक्के मनुष्यों का आना-जाना चालू था, सभी ओर शांत-प्रशांत वातावरण हो चुका था तब आहार की गवेषणा करते हुए भूखे आहार के अभिलाषी दो कछुए धीमे-धीमे मृतगंगातीर द्रह से बाहर निकले और उसी द्रह के आस-पास चारों ओर फिरते हुए अपनी आजीविका के लिये अर्थात् आहार की खोज के लिये घूमने लगे ।

पावसियालगाणं आहारगवेसणं —

पाप शृगालों का आहार गवेषणा-

१२५. तयाणंतरं च णं ते पावसियालगा आहारत्थी आहारं गवेसमाणा मालुयाकच्छयाओ पडिणिक्खमंति, पडिणिक्खमित्ता जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्सेव मयंगतीरद्दहस्स परिपेरंतेणं परिघोलमाणा-परिघोलमाणा वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ।

१२५. तत्पश्चात् आहार के अभिलाषी वे पापी शृगाल आहार की गवेषणा करते हुए मालुका कच्छ से बाहर निकले, निकलकर जहाँ मृत गंगा तीर द्रह था, वहाँ आये, आकर उसी मृत गंगा तीर द्रह के पास इधर-उधर चारों ओर घूमते-फिरते वृत्ति-आजीविका करते हुए— आहार की तलाश करते हुए विचरण करने लगे ।

तए णं ते पावसियालगा ते कुम्मए पासंति, पासित्ता जेणेव ते कुम्मए तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने उन कछुओं को देखा, देखकर जहाँ वे दोनों कछुए थे, वहाँ आने के लिये प्रवृत्त हुए ।

सियालगं दट्ठूणं कुम्माणं कायसंहरणं —

शृगालों को देखकर कछुओं का काय संहरण —

१२६. तए णं ते कुम्मगा ते पावसियालए एज्जमाणे पासंति, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया हत्थे य पाए य

१२६. तत्पश्चात् उन कछुओं ने पापी शृगालों को अपनी ओर आते देखा, देखकर, भयभीत, त्रस्त, त्रसित, उद्विग्न और भया-क्रांत हो उन्होंने अपने हाथ-पैर और ग्रीवा को अपने-अपने शरीर

गीवाओ य सएहिं-सएहिं काएहिं साहरंति, साहरित्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठन्ति ।

तए णं ते पावसियालगा जेणेव ते कुम्मगा तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता ते कुम्मए सव्वओ समंता उव्वत्तेंति परियत्तेंति आसारेंति संसारेंति चालेंति घट्टेंति फंदेंति खोभेंति नहेहिं आलुंपंति दंतेहि य अक्खोडेंति, नो चेव णं संचाएंति तेसिं कुम्मगाणं सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए ।

तए णं ते पावसियालगा ते कुम्मए दोच्चं पि तच्चं पि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति-जाव-करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा सणियं-सणियं पच्चोसक्कंति, एगंतमवक्कमंति, निच्चला निप्फंदा तुसिणीया संचिट्ठंति ।

सियालगेहिं अगुत्त-कुम्मस्स मारणं—

१२७. तए णं एगे कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं एगं पायं निच्छुभइ ।

तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं सणियं-सणियं एगं पायं नीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेगियं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं पायं नखेहिं आलुंपंति दंतेहिं अक्खोडेंति, तओ पच्छा मंसं च सोणियं च आहारेंति, आहारेत्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति-जाव-नो चेव णं संचाएंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए ।

तए णं ते पावसियालगा तं कुम्मयं दोच्चं पि तच्चं पि सव्वओ समंता उव्वत्तेंति-जाव-छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा सणियं-सणियं पच्चोसक्कंति, दोच्चं पि एगंतमवक्कमंति ।

एवं चत्तारि वि पाया ।

१२८. तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं गीवं नीणेइ ।

में संहरित कर लिया, गोपित कर लिया, छिपा लिया, संहरित करके निश्चल निस्पंद (हलन-चलन से रहित) और मौन—शांत हो गये ।

तत्पश्चात् वे पापी सियार जहाँ वे कछुए थे, वहाँ आये, आकर उन कछुओं को सब तरफ से उलटने-पलटने लगे, घुमाने-फिराने लगे, स्थानान्तरित करने लगे, संसारित करने लगे, सरकाने लगे, चलाने लगे, स्पर्श करने लगे, हिलाने लगे, क्षुभित करने लगे, नखों से फाड़ने लगे और दाँतों से चींथने लगे, किन्तु उन कछुओं के शरीर को थोड़ी-सी बाधा, विशेष बाधा उत्पन्न करने में अथवा उनको क्षत, विक्षत करने में समर्थ नहीं हो सके ।

तत्पश्चात् उन पापी शृगालों ने इन कछुओं को दूसरी और तीसरी बार भी सब ओर से उलटा-पुलटा—यावत्—क्षत-विक्षत करने में समर्थ नहीं हुए, तब वे श्रांत हो गये—शरीर से थक गये, तान्त हो गये, मानसिक ग्लानियुक्त हो गये, परितान्त हो गये, शरीर और मन से थक गये और खेदखिन्न होकर धीमे-धीमे पीछे हट गये, एकान्त में चले गये और निश्चल, निस्पन्द तथा मौन होकर ठहर गये ।

शृगालों द्वारा अगुप्त कूर्म का मारण—

१२७. तत्पश्चात् उन दोनों कछुओं में से एक कछुए ने उन पाप शृगालों को बहुत समय पहले और दूर गया जानकर धीमे-धीमे अपना एक पैर बाहर निकाला ।

तब उन पापी सियारों ने उस कछुए को धीरे-धीरे एक पैर बाहर निकालते देखा, देखकर शीघ्र, त्वरित, चपल, चण्ड, जय-युक्त और वेगयुक्त गति से जहाँ वह कछुआ था, वहाँ आये, आकर उस कछुए के पैर को नाखूनों से नोंच डाला, दाँतों से चींथ डाला और उसके बाद उसके मांस और रक्त का आहार किया, आहार करके फिर कछुए को उलट-पुलट किया किन्तु—यावत्—उस कछुए के शरीर को थोड़ी बाधा, अधिक बाधा उत्पन्न करने में अथवा शरीर का छेदन-भेदन करने में समर्थ नहीं हो सके ।

तत्पश्चात् उन पापी सियारों ने दूसरी और तीसरी बार भी उस कछुए को सब ओर से घुमाया, फिराया, किन्तु—यावत्—छविछेदन करने में समर्थ नहीं हुए तब वे श्रान्त, क्लान्त और खेदखिन्न होकर धीरे-धीरे पीछे सरक गये और एकान्त में चले गये ।

इसी प्रकार से पापी शृगालों ने उस कछुए के चारों पैरों को खा लिया ।

१२८. तत्पश्चात् उस कछुए ने उन पापी सियारों को बहुत समय पहले और दूर गया जानकर धीरे-धीरे अपनी ग्रीवा को बाहर निकाला ।

तए णं ते पावसियालगा तेणं कुम्मएणं [सणियं सणियं] गीवं नीणियं पासंति, पासित्ता सिग्घं तुरियं चवलं चंडं जइणं वेगियं जेणेव से कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तस्स णं कुम्मगस्स तं गीवं नहेहिं [आलुंपंति], दंतेहिं कवालं विहाडेंति, विहाडेत्ता तं कुम्मगं जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवेत्ता मंसं च सोणियं च आहारेंति।

अगुत्तकुम्मं पडुच्च उवणओ—

१२९. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे, पंच य से इंदियाइं अगुत्ता भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविआण य हीलणिज्जे निंदणिज्जे खिंसणिज्जे गरहणिज्जे परिभवणिज्जे, परलोए वि य णं आगच्छइ—बहूणि दंडणाणि य बहूणि मुंडणाणि य बहूणि तज्जणाणि य बहूणि तालणाणि य बहूणि अंदुबंधणाणि य बहूणि घोलणाणि य बहूणि माइमरणाणि य बहूणि पिइमरणाणि य बहूणि भाइमरणाणि य बहूणि भगिणीमरणाणि य बहूणि भज्जामरणाणि य बहूणि पुत्तमरणाणि य बहूणि धूयमरणाणि य बहूणि सुण्हामरणाणि य, बहूणं दारिद्दाणं बहूणं दोहग्गाणं बहूणं अप्पियसंवासाणं बहूणं पियविप्पओगाणं बहूणं दुक्ख-दोमणस्साणं आभागी भविस्सति, अणादियं च णं अणवयग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ—जहा व से कुम्मए अगुत्तिंदिए।

गुत्तकुम्मस्स सोक्खं—

१३०. तए णं ते पावसियालगा जेणेव से दोच्चे कुम्मए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं कुम्मगं सव्वओ समंता उव्वत्तेंति -जाव-छविच्छेयं वा करेत्तए।

तए णं ते पावसियालगा तं कुम्मगं दोच्चं पि तच्चं पि उव्वत्तेंति-जाव-नो चेव णं संचाएंति तस्स कुम्मगस्स सरीरस्स किंचि आबाहं वा वाबाहं वा उप्पाइत्तए छविच्छेयं वा करेत्तए, ताहे संता तंता परितंता निव्विण्णा समाणा जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं से कुम्मए ते पावसियालए चिरगए दूरंगए जाणित्ता सणियं-सणियं गीवं नीणेइ, नीणेत्ता दिसावलोयं करेइ, करेत्ता जमगसमगं चत्तारि वि पाए नीणेइ, नीणेत्ता ताए उक्किट्ठाए तुरियाए चवलाए चंडाए सिग्घाए उद्धुयाए जइणाए छेयाए कुम्मगईए वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव मयंगतीरद्दहे तेणेव उवागच्छइ,

तब उन पापी सियारों ने उस कछुए को धीरे-धीरे गरदन निकालते देखा, देखकर वे दोनों शीघ्र, त्वरित, चपल, चंड, जय युक्त और वेगयुक्त गति से जहाँ वह कछुआ था, वहाँ आये, उस कछुए की ग्रीवा को नाखूनों से नोचा, दाँतों से कपाल का विदारण किया और फिर उस कछुए को जीवन-रहित कर दिया, जीवन रहित करके उसके मांस और रक्त का आहार किया।

अगुप्त कूर्म विषयक उपनय—

१२९. इसी प्रकार के आयुष्मन् श्रमणो ! हमारे जो श्रमण या श्रमणी आचार्य, उपाध्याय के निकट मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करके पाँचों इन्द्रियों का गोपन नहीं करता है वह इस लोक में बहुत से साधुओं, साध्वियों, श्रावकों और श्राविकाओं के द्वारा हीलना, निन्दा, खिंसा, गर्हा और परिभव अनादर के योग्य होता है तथा परभव में भी वह बहुत दंड पाता है, बार-बार मूंडा जाता है, बार-बार तर्जना और ताड़ना का पात्र बनता है और बार-बार बेड़ियों में जकड़ा जाता है, बार-बार घोलना पाता है—अर्थात् मथा जाता है, बार-बार मातृमरण, पितृमरण, भ्रातृमरण, भगिनीमरण, भार्यामरण, पुत्रमरण, पुत्रीमरण और पुत्रवधूमरण का दुःख भोगता है। वह परभव में बहुत दरिद्रता, अत्यन्त दुर्भाग्य, अतीव इष्ट वियोग और अनिष्ट संयोग, अत्यन्त दुःख एवं दुर्मनस्कता का भाजन बनेगा, अनादि अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कान्तार में बार-बार परिभ्रमण करेगा—जैसे अपनी इन्द्रियों—अंगों का गोपन नहीं करने वाला वह कछुआ मृत्यु को प्राप्त हुआ।

गुप्त कूर्म को सौख्य—

१३०. तत्पश्चात् वे पापी शृगाल जहाँ दूसरा कछुआ था, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर उस कछुए को चारों तरफ से उलट-पलट कर देखा, ऊँचा-नीचा किया किन्तु—यावत्—उसके शरीर का भेदन करने में समर्थ नहीं हो सके।

इसके पश्चात् उन पाप शृगालों ने पुनः दूसरी और तीसरी बार भी उस कछुए को उलट-पलट कर चारों ओर से देखा किन्तु—यावत् वे उस कछुए को कुछ भी बाधा, विबाधा, पीड़ा उत्पन्न करने में और अंग-भंग करने में समर्थ नहीं हो सके, तब वे श्रान्त, क्लान्त, परितान्त और खिन्न होकर जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये।

तत्पश्चात् उस कछुए ने उन पापी सियारों को चिरकाल से गया और दूर गया जानकर धीरे-धीरे अपनी गरदन बाहर निकाली, गरदन निकालकर चारों ओर सब दिशाओं में अवलोकन किया, देखा, फिर एक साथ चारों पैर बाहर निकाले और निकालकर उस उत्कृष्ट, त्वरित, चपल, प्रचंड, शीघ्र, तेज, सचेत और सावधान कूर्मगति से अर्थात् कछुए के योग्य अधिक से अधिक

उवागच्छित्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं अभि-समण्णागए यावि होत्था ।

गुत्तकुम्मं पडुच्च उवणओ—

१३१. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं समणो वा समणी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता आगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे पंच य से इंदियाइं गुत्ताइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविआण य अच्चणिज्जे वंदणिज्जे नमंसणिज्जे पूयणिज्जे सक्कारणिज्जे सम्माणणिज्जे कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासणिज्जे भवइ,

परलोए वि य णं नो बहूणि हत्थच्छेयणाणि य कण्णच्छेयणाणि य नासाछेयणाणि य एवं हिययउप्पायणाणि य वसणुप्पायणाणि य उल्लंबणाणि य पाविहिइ, पुणो अणाइयं च णं अणवदग्गं दीहमद्धं चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ— जहा व से कुम्मए गुत्तिदिए ।[1]

—णायाधम्मकहाओ सु० १ अ० ४

तेज चाल से वह चलते-दौड़ते जहाँ मृत गंगा तीर द्रह था, वहाँ जा पहुँचा, वहाँ पहुँच कर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजनों से मिल गया ।

गुप्त कूर्म सम्बन्धी उपनय—

१३१. इसी प्रकार हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो श्रमण या श्रमणी आचार्य—उपाध्याय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करके पाँचों इन्द्रियों का गोपन करता है वह इस भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा अर्चनीय, वन्दनीय, नमस्करणीय, पूजनीय, सत्कारणीय, सम्माननीय होता है तथा कल्याण-मंगल-देव चैत्य स्वरूप होता हुआ, उपासनीय बनता है ।

परलोक में भी उसे हस्तछेदन, कर्णछेदन, नासिका छेदन तथा हृदय उत्पाटन, अंडकोष उत्पाटन, फाँसी आदि के दुःख और कष्ट नहीं झेलने पड़ते है, वह अनादि-अनन्त दीर्घ मार्ग वाले चतुर्गति रूप संसार कांतार को पार कर जाता है —जैसे वह गुप्त इन्द्रिय—अंग वाला कछुआ सुखपूर्वक अपने स्थान पर पहुँच गया ।

८. रोहिणिणायं—

८. रोहिणी ज्ञात—

रायगिहे धणसत्थवाहो—

१३२. तेणं कालेणं तेणं समएणं रायगिहे नामं नयरे होत्था । सुभूमिभागे उज्जाणे ।

तत्थ णं रायगिहे नयरे धणे नामं सत्थवाहे परिवसइ—अड्ढे -जाव-अपरिभूए । भद्दा भारिया—अहीणपंचिंदियसरीरा-जाव-सुरूवा ।

राजगृह में धन्य सार्थवाह —

१३२. उस काल और उस समय में राजगृह नामक नगर था । सुभूमिभाग नामक उद्यान था ।

उस राजगृह नगर में धन्य नामक सार्थवाह निवास करता था जो धन वैभव सम्पन्न था—यावत्—किसी से पराभूत होने वाला नहीं था । धन्य सार्थवाह की भार्या का नाम भद्रा था, जो सम्पूर्ण और परिपूर्ण पाँच इन्द्रिय एवं शरीर वाली थी—यावत्—सुन्दर रूप वाली थी ।

---

१ वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

विसएसु इंदियाइं, रुंभंता राग-दोस-निम्मुक्का । पावेंति निव्वुइसुहं, कुम्मोव्व मयंगदहसोक्खं ॥१॥

इहरे उ अणत्थ-परंपराओ पावेंति पावकम्मवसा । संसार-सागरगया, गोमाउग्गसियकुम्मोव्व ॥२॥

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स पुत्ता भद्दाए भारियाए अत्तया चत्तारि सत्थवाहदारगा होत्था, तं जहा—धणपाले धणदेवे धणगोवे धणरक्खिए।

उस धन्य सार्थवाह के पुत्र, भद्राभार्या के आत्मज चार सार्थवाह पुत्र थे। उनके नाम इस प्रकार थे—धनपाल, धनदेव, धनगोप और धनरक्षित।

तस्स णं धणस्स सत्थवाहस्स चउण्हं पुत्ताणं भारियाओ चत्तारि सुण्हाओ होत्था, तं जहा—उज्झिया भोगवइया रक्खिया रोहिणिया।

उन धन्य सार्थवाह के चार पुत्रों की चार भार्याएं—(सार्थवाह की चार पुत्रवधुएं) थीं, जिनके नाम इस प्रकार हैं—उज्झिता, भोगवती, रक्षिता, रोहिणी।

धणसत्थवाहकया चउण्हं सुण्हाण परिक्खा—

१३३. तए णं तस्स धणस्स सत्थवाहस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु अहं रायगिहे नयरे बहूणं ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहपभितीणं सयस्स य कुडुम्बस्स बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य कोडुम्बेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य निच्छएसु य ववहारेसु य आपुच्छणिज्जे पडिपुच्छणिज्जे, मेढीपमाणं आहारे आलंबणं चक्खू, मेढीभूते पमाणभूते आहारभूते आलंबणभूते चक्खुभूए सव्वकज्जवड्ढावए, तं न नज्जइ णं मए गयंसि वा चुयंसि वा मयंसि वा भग्गंसि वा लुग्गंसि वा सडियंसि वा पडियंसि वा विदेसत्थंसि वा विप्पवसियंसि वा इमस्स कुडुम्बस्स के मन्ने आहारे वा आलंबे वा पडिबंधे वा भविस्सइ ?,

धन्य सार्थवाहकृत चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा—

१३३. तत्पश्चात् उस धन्य सार्थवाह को किसी एक समय मध्य रात्रि में इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प—विचार उत्पन्न हुआ—"इस प्रकार निश्चय ही मैं राजगृह नगर में बहुत से ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि के तथा स्वयं अपने कुटुम्ब के भी बहुत से कार्यों में, करणीयों में—कुटुम्ब सम्बन्धी कार्यों में, मंत्रणाओं में, गुप्त बातों में, रहस्यमय बातों में, निश्चय में और लौकिक व्यवहारों अथवा व्यापार-व्यवसायों में, पूछने योग्य, बार-बार पूछने योग्य, मेढी के समान, प्रमाणभूत, आधार, अवलंबन, चक्षु के समान पथ दर्शक, मेढीभूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, अवलंबनभूत, चक्षुभूत तथा सब कार्यों का निर्देशक हूँ, परन्तु कदाचित् मेरे कहीं दूसरी जगह चले जाने पर कारण वशात अपने पद से च्युत हो जाने पर, मर जाने पर भग्न हो जाने पर, लूले-लंगड़े हो जाने पर, जीर्ण-शीर्ण हो जाने पर, चोट या बीमारी के कारण खाट में पड़ जाने पर, विदेश जाने पर, विदेश में बसने पर मेरे इस कुटुम्ब का कौन आधार अवलंबन अथवा प्रतिबन्ध करने वाला होगा ?

तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं, चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेत्ता तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं विपुलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं धूव-पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स, चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ चउण्हं सुण्हाणं परिक्खणट्ठयाए पंच-पंच सालिअक्खए दलइत्ता जाणामि ताव का किहं वा सारक्खेइ वा ? संगोवेइ वा ? संवड्ढेइ वा ?

अतएव मेरे लिये यह उचित होगा कि कल (आगामी दिन) रात्रि के अनन्तर प्रभात होने पर—यावत्—सूर्योदय तथा जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर विपुल परिमाण में, अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजी, स्वजन सम्बन्धी परिजनों तथा चारों पुत्रवधुओं के पीहर के समुदाय को आमन्त्रित कर और उन मित्र ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिजनों तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह-वर्ग का उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन, धूप, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि से सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी परिजन तथा चारों पुत्रवधुओं के कुल गृह वर्ग के समक्ष चारों पुत्रवधुओं की परीक्षा करने के लिये पांच-पांच अक्षत-शालि (धान) के दाने दूं और देखूं जानूं कि कौन पुत्रवधू किस प्रकार से उनकी रक्षा करती है, सार संभाल करती है अथवा बढ़ाती है ?

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं, चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं आमंतेइ,

धन्य सार्थवाह ने इस प्रकार का विचार करके आगामी प्रभात होने—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेजपूर्वक सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति जन, निजी, स्वजन सम्बन्धी, परिजन तथा चारों पुत्रवधुओं के पीहर के समुदाय को आमंत्रित किया।

तओ पच्छा ण्हाए भोयणमंडवंसि सुहासणवरगए तेणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गेणं सद्धिं तं विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं आसादेमाणे-जाव-सक्कारेइ, सक्कारेत्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेट्ठं सुण्हं उज्झियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि" त्ति कट्टु सुण्हाए हत्थे दलयइ, दलइत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् स्नान किया और भोजन-मंडप में सुखपूर्वक आसन पर बैठकर उन मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिजन तथा चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह वर्ग के साथ उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन का आस्वादन करते हुए—यावत्—सत्कार किया, सत्कार करके उन्हीं मित्रों, ज्ञाति बंधुओं, निजी, स्वजन-सम्बन्धियों परिचितों और चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह वर्ग के समक्ष पाँच धान के दाने लिये, लेकर ज्येष्ठ पुत्रवधू उज्झिता को बुलाया, बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—"हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से यह पांच अक्षत शालिधान के दाने लो, लेकर अनुक्रम से इनका सरक्षण और संगोपन करते रहना। हे पुत्री ! जब मैं तुमसे यह पाँच शालि अक्षत के दाने मांगूं, तब तुम यही पाँच अक्षत शालि के दाने मुझे वापस लौटा देना।" इस प्रकार कहकर पुत्रवधू के हाथ में वह दाने दे दिये और देकर उसे विदा किया।

उज्झियाए सालीणं उज्झणं—

१३४. तए णं सा उज्झिया धणस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता धणस्स सत्थवाहस्स हत्थाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठन्ति, तं जया णं मम ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएसइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अण्णे पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए एगंते एडेइ, सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।

उज्झिता द्वारा शालि का उज्झण (फेंकना)—

१३४. तत्पश्चात् उस उज्झिता ने धन्य सार्थवाह के इस अर्थ को विचार को 'तहत्ति—बहुत अच्छा' कहकर स्वीकार किया, स्वीकार करके धन्य सार्थवाह के हाथ से वे पाँच शालि अक्षत ग्रहण किये, ग्रहण करके एकान्त में गई, एकान्त में जाने पर उसे इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"निश्चय ही पिता (श्वसुर) के कोठार में शालि से भरे हुए बहुत से पल्य रखे हैं, अतः जब पिताजी मुझसे यह पाँच शालि अक्षत माँगेंगे, तब मैं दूसरे किसी पल्य से अन्य पाँच शालि अक्षत लेकर दे दूँगी।" इस प्रकार का उसने विचार किया, विचार करके उन पाँच शालि अक्षतों को एकान्त में डाल दिया और अपने काम में लग गई।

भोगवइयाए सालीणं भोगो—

१३५. एवं भोगवइयाए वि, नवरं—सा छोल्लेइ, छोल्लेत्ता अणुगिलइ, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता जाया यावि होत्था।

भोगवती द्वारा शालि का भोग—

१३५. इसी प्रकार दूसरी पुत्रवधू को भी पाँच शालि अक्षत दिये, किन्तु इतना विशेष है कि उसने वह दाने छीले, छीलकर उन्हें निगल गई और निगलकर अपने काम में लग गई।

रक्खियाए सालीरक्खणं—

१३६. एवं रक्खियाए वि, नवरं—गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए

रक्षिता द्वारा शालि रक्षण—

१३६. इसी प्रकार रक्षिता के विषय में भी जानना चाहिये, किन्तु इतना विशेष है कि उसने वह दाने लिये, लेकर एकान्त में

मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु मम ताओ इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि । जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ । तं भवियव्वमेत्थ कारणेणं" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधइ, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवइ, पक्खिवित्ता ऊसीसामूले ठावेइ, ठावेत्ता तिसंझं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ ।

रोहिणीए सालीरोहणं वड्ढणं च—

१३७. तए णं से धण्णे सत्थवाहे तहेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता, चउत्थं रोहिणीयं सुण्हं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि,-जाव-गेण्हइ, गेण्हित्ता एगंतमवक्कमइ, एगंतमवक्कमियाए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"एवं खलु मम ताओ इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ सद्दावेत्ता एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि । जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयइ । तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं । तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कुलघर-पुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! एए पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेह, करेत्ता इमे पंच सालिअक्खए वावेह, वावेत्ता दोच्चं पि तच्चं पि उक्खय-निहए करेह, करेत्ता वाडिपक्खेवं करेह, करेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा अणुपुव्वेणं संवड्ढेह ।

गई, एकान्त में जाने पर उसे इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"निश्चय ही मेरे पिता-श्वसुर ने इन मित्रों, ज्ञाति जनों, निजी, स्वजन सम्बन्धियों, परिजनों और चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह वर्ग के समक्ष मुझे बुलाकर इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से ये पाँच शालि अक्षत लो और अनुक्रम से इनका संरक्षण और संगोपन करती रहना, हे पुत्री ! जब मैं तुमसे इन पाँच दानों को माँगूं तब तुम मुझे यह पाँच दाने वापस लौटा देना।' ऐसा कहकर मेरे हाथ में पाँच दाने दिये तो इसका कोई कारण होना चाहिए।" उसने इस प्रकार विचार किया, विचार करके उन पाँच शालि अक्षतों को शुद्ध वस्त्र बाँधा और बाँधकर रत्न करंडिका, डिबिया में रख दिये, रखकर सिरहाने के नीचे स्थापित किये और फिर तीनों संध्या-प्रातः, मध्याह्न, सायकाल के समय उनकी सार सम्भाल करती हुई विचरने लगी।

रोहिणी द्वारा शालिरोहण और वर्द्धन—

१३७. तत्पश्चात् उस धन्य सार्थवाह ने उसी प्रकार से मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी, परिजन तथा चारों पुत्रवधुओं के कुल गृह वर्ग के समक्ष पाँच शालि अक्षत लिये, लेकर चौथी पुत्र वधू रोहिणी को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—"हे पुत्री ! तुम मेरे हाथ से ये पाँच शालि अक्षत लो · यावत् — उसने वे पाँच दाने ग्रहण किये, ग्रहण करके एकान्त में गई; एकान्त में जाकर उसे इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"मेरे पिता (श्वसुर) ने इन मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन तथा चारों पुत्र वधुओं के कुल गृह वर्ग के समक्ष बुलाकर मुझसे जो इस प्रकार कहा है कि—'पुत्री ! तुम मेरे हाथ से ये शालि के पाँच दाने लो, लेकर अनुक्रम से इनका संरक्षण और संगोपन करती रहना और जब मैं तुमसे ये पाँच शालि अक्षत माँगूं तब तुम यही पाँच शालि अक्षत मुझे वापस लौटाना।' इस प्रकार कहकर मेरे हाथ में पाँच धान के दाने दिये हैं। तो इसका कोई कारण होना चाहिये। अतएव मेरे लिये उचित है कि इन पाँच चावल के दानों का संरक्षण, संगोपन और उनकी वृद्धि करूँ।' ऐसा उसने विचार किया, विचार करके उसने अपने कुलगृह—पीहर के पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम इन पाँच शालि-अक्षतों को ग्रहण करो, ग्रहण करके पहली वर्षा ऋतु में अर्थात् वर्षा के प्रारम्भ में जब खूब वर्षा हो तब एक छोटी सी क्यारी को अच्छी तरह साफ करना, साफ करके यह पाँच शालि अक्षत बो देना, बोकर दो-तीन बार उत्क्षेप, निक्षेप करना अर्थात् एक स्थान से उखाड़कर दूसरी जगह रोपना, रोपकर चारों ओर बाड़ लगाना, बाड़ लगाकर अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन करते हुए इनकी वृद्धि करना।"

१३८. तए णं ते कोडुम्बिया रोहिणीए एयमट्ठं पडिसुणेंति, ते पंच सालिअक्खए गेण्हंति, अणुपुव्वेणं सारक्खंति, संगोविंति।

१३८. तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने रोहिणी की इस आज्ञा को स्वीकार किया और स्वीकार करके उन पाँच शालि अक्षतों को ग्रहण किया और अनुक्रम से उनका संरक्षण और संगोपन करने लगे।

तए णं कोडुम्बिया पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि समाणंसि खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, ते पंच सालिअक्खए ववंति, दोच्चं पि तच्चं पि उक्खय-निहए करेंति, वाडिपरिक्खेवं करेंति, अणुपुव्वेणं सारक्खेमाणा संगोवेमाणा संवड्ढेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने वर्षाऋतु के प्रारम्भ में महावृष्टि होने पर छोटी सी क्यारी साफ की, पाँच शालि के दाने बोए, दो-तीन बार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया, बाड़ का परिक्षेप किया और अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करते हुए विचरने लगे।

१३९. तए णं ते साली अणुपुव्वेणं सारक्खिज्जमाणा संगोविज्जमाणा संवड्ढिज्जमाणा साली जाया—किण्हा किण्होभासा नीला नीलोभासा हरिया हरिओभासा सीया सीओभासा णिद्धा णिद्धोभासा तिव्वा तिव्वोभासा किण्हा किण्हच्छाया नीला नीलच्छाया हरिया हरियच्छाया सीया सीयच्छाया णिद्धा णिद्धच्छाया तिव्वा तिव्वच्छाया घण-कडियकडिच्छाया रम्मा महामेहनिउरंबभूया पासाईया दरिसणिज्जा अभिरूवा पडिरूवा।

१३९. तत्पश्चात् वे शालि संरक्षित संगोपित और संवर्धित किये जाते हुए श्याम वर्ण, श्यामल कांति वाले, नील वर्ण, नील आभा वाले, हरित वर्ण, हरित कांति वाले, शीतल और शीतल आभा वाले, स्निग्ध और स्निग्ध प्रभा वाले, तीव्र और तीव्र कांति वाले कृष्ण वर्ण और कृष्ण छाया वाले, नीले और नीली छाया वाले हरित वर्ण और हरित छाया वाले, शीतल स्पर्श और शीतल छाया वाले, स्निग्ध स्पर्श और स्निग्ध छाया वाले, तीव्र और तीव्र छाया वाले, अत्यन्त सघन छाया वाले, रमणीय महामेघों के निरंकुरभूत, समूह, रूप, मन को प्रसन्न करने वाले दर्शनीय अभिरूप, एवं प्रतिरूप—अतीव मनोहर शालि के पौधे हो गये।

तए णं ते साली पत्तिया वत्तिया गब्भिया पसूइया आगयगंधा खीराइया बद्धफला पक्का परियागया सल्लइय-पत्तइया हरियपेरंडा जाया यावि होत्था।

तत्पश्चात् उन शालि के पौधों में पत्ते आ गये, वे वर्तुलाकार—गोल आकार वाले हो गये, गर्भित हो गये, उनमें बाली लग गई अर्थात् उनमें दाने आ गये, प्रसूत हो गये दाने बाहर आ गये, उनकी सुगंध फैलने लगी, उन दानों में रस पड़ गया, वे बद्ध-फल-बँधे हुए फल वाले हो गये, पक गये, तैयार हो गये, शल्यकित हो गये—पत्ते सूख जाने के कारण सलाई जैसे हो गये, पत्रकित हो गये, कुछ एक पत्तों वाले हो गये और हरे-हरे डंठल वाले हो गये।

तए णं ते कोडुम्बिया ते साली पत्तिए वत्तिए गब्भिए पसूइए आगयगंधे खीराइए बद्धफले पक्के परियागए सल्लइय-पत्तइए जाणित्ता तिक्खेहिं नवपज्जणएहिं असिएहिं लुणंति, लुणित्ता करयल-मलिए करेंति, करेत्ता पुणंति। तत्थ णं चोक्खाणं सूइयाणं अखंडाणं अफुडियाणं छड्डछडापूयाणं सालीणं मागहए पत्थए जाए।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन शालि के पौधों को पत्रित वर्तुलाकार, गर्भित, प्रसूत, सुगन्ध वाले, रस वाले, बद्ध-फल, पके हुए पर्यायगत, तैयार, शल्यकित, पत्रकित, जानकर तीखे और नये पजाये हुए (जिन पर नई धार चढ़ाई हो ऐसे) हंसियों (दांतों से काटा, काटकर उन्हें हाथ से मींडा—उनका मर्दन किया, मर्दन करके साफ किया, जिससे वे स्वच्छ-निर्मल, शुचि-शुद्ध, अखंड, अस्फुटित, बिना टूटे-फूटे और सूप से फटक-झटक कर साफ किये हुए मागधिक प्रस्थक प्रमाण—मगध देश के मापने के पात्र प्रमाण शालि-धान हो गये।

तए णं ते कोडुम्बिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति पक्खिवित्ता ओलिंपंति, ओलिंपित्ता लंछिय-मुद्दिए करेंति, करेत्ता कोट्ठागारस्स एगदेसंसि ठावेंति, ठावेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन प्रस्थ प्रमाण शालि अक्षतों को नवीन घड़े में भरा, भरकर उसके मुख को मिट्टी का लेप करके बन्द किया, बन्द करके उसे लांछित मुद्रित किया, उस पर सील मुहर लगाई, फिर उसे कोठार के एक कोने में रख दिया, रखकर उसका संरक्षण और संगोपन करने लगे।

१४०. तए णं ते कोडुम्बिया दोच्चंसि वासारत्तंसि पढमपाउसंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि [समाणंसि ?] खुड्डागं केयारं सुपरिकम्मियं करेंति, ते साली ववंति, दोच्चं पि उक्खाय-णिहए करेंति -जाव-असिएहिं लुणंति लुणित्ता चलणतलमलिए करेंति करेत्ता पुणंति । तत्थ णं सालीणं बहवे कुडवा जाया ।

तए णं ते कोडुम्बिया ते साली नवएसु घडएसु पक्खिवंति, पक्खिवित्ता ओलिंपंति ओलिंपित्ता लंछिए-मुद्दिए करेंति, करेत्ता कोट्ठागारस्स एगदेसंसि ठावेंति, ठावेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति ।

१४१. तए णं ते कोडुम्बिया तच्चंसि वासारत्तंसि महावुट्ठिकायंसि निवइयंसि [समाणंसि ?] केयारे सुपरिकम्मिए करेंति-जाव-असिएहिं लुणंति, लुणित्ता संवहंति, संवहित्ता खलयं करेंति, मलेंति, पुणंति । तत्थ णं सालीणं बहवे कुम्भा जाया ।

तए णं ते कोडुम्बिया ते साली कोट्ठागारंसि पल्लंसि पक्खिवंति, पक्खिवित्ता ओलिंपंति, ओलिंपित्ता लंछिय-मुद्दिए करेंति, करेत्ता सारक्खमाणा संगोवेमाणा विहरंति ।

चउत्थे वासारत्ते बहवे कुम्भसया जाया ।

पंचसंवच्छराणंतरं धणेण सालीमग्गणं—

१४२. तए णं तस्स धणस्स पंचमयंसि संवच्छरंसि परिणममाणंसि पुव्वरत्तावरत्तकाल-समयंसि इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—'एवं खलु मए इओ अतीते पंचमे संवच्छरे चउण्हं सुण्हाण परिक्खणट्ठयाए ते पंच-पंच सालिअक्खया हत्थे दिन्ना । तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते पंच सालि अक्खए परिजाइत्तए-जाव-जाणामि ताव काए किह सारक्खिया वा संगोविया वा संवड्ढिया व" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते विपुलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गं-जाव-सम्माणित्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-

१४०. तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दूसरी वर्षा ऋतु में, वर्षा काल के प्रारम्भ में महावृष्टि पड़ने पर एक छोटी क्यारी को साफ किया, उन शालि के दानों को बोया, फिर दूसरी बार उनका उत्क्षेप-निक्षेप किया—यावत्—हंसिये से उनकी लुनाई की, उन्हें काटा, लुनाई करके पैरों के तलुओं से उनका मर्दन किया, फिर उन्हें साफ किया । अब वे शालि बहुत से कुडव (पात्र विशेष प्रमाण) हो गये ।

तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन शालि अक्षतों को नये घड़ों में भरा, भरकर घड़ों के मुख पर मिट्टी का लेप किया, लेप करके उन घड़ों को लांछित, मुद्रित किया, फिर कोठार के एक भाग में रख दिया, रखकर उनका संरक्षण-संगोपन करने लगे ।

१४१. तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने तीसरी वर्षा ऋतु में महावृष्टि होने पर क्यारियों को अच्छी तरह से साफ किया—यावत्—हंसियों से लुनाई की, लुनाई करके और भारा बांधकर वहन किया, वहन करके खलिहान में रखा, उनका मर्दन किया, सूप से साफ किया । तब वे बहुत से कुम्भ प्रमाण शालि हो गये ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन शालि अक्षतों को कोठार में पल्लों में रखा, रखकर उन पल्लों के मुखों पर मिट्टी का लेप किया, लेप करके उन पल्लों को लांछित, मुद्रित किया और फिर उनका संरक्षण, संगोपन करने लगे ।

चौथी वर्षा ऋतु में भी ऐसी प्रकार वे शालि अक्षत बहुत से सैकड़ों कुम्भ प्रमाण हो गये ।

पंच संवत्सर के अनन्तर धन्य द्वारा शालि का मांगना—

१४२. तत्पश्चात् जब पांचवां वर्ष चल रहा था, तब धन्य सार्थवाह को मध्यरात्रि के समय इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित प्रार्थित, मानसिक संकल्प विचार उत्पन्न हुआ—'मैंने आज से पांच वर्ष पूर्व चारों पुत्र वधुओं की परीक्षा करने के लिये पांच-पांच शालि अक्षत उन, उनके हाथ में दिये थे । तो कल रात्रि को प्रभात रूप में परिवर्तित होने, सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिन कर के प्रकाशित होने पर पांच शालि के दाने मांगना मेरे लिये उचित होगा—यावत्—जिससे जान सकूं कि किसने किस प्रकार से उनका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन किया है ?" इस प्रकार का उसने विचार किया, विचार करके कल दूसरे दिन प्रभात होने—यावत्—सूर्य का उदय और सहस्ररश्मि दिनकर को जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन तैयार करवाकर मित्र, ज्ञाति, निजक, स्वजन सम्बन्धी, परिजनों तथा चारों पुत्रवधुओं के कुल गृह वर्ग को एकत्रित कर—यावत्—सम्मान करके उन्हीं मित्रों ज्ञाति जनों,

सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ जेट्ठं उज्झियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

"एवं खलु अहं पुत्ता ! इओ अतीते पंचमम्मि संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तव हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयामि—जया णं अहं पुत्ता ! एए पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएसि । से नूणं पुत्ता ! अट्ठे समट्ठे ?"

"हंता अत्थि ।"

"तं णं तुमं पुत्ता ! मम ते सालिअक्खए पडिनिज्जाएसि ।"

उज्झियाए बाहिरपेसणकज्जकरणाएसो—

१४३. तए णं सा उज्झिया एयमट्ठं धणस्स सत्थवाहस्स पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव कोट्ठागारं तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पल्लाओ पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—"एए णं ताओ ! पंच सालिअक्खए" त्ति कट्टु धणस्स हत्थंसि ते पंच सालिअक्खए दलयइ ।

तए णं धण्णे सत्थवाहे उज्झियं सवह-सावियं करेइ, करेत्ता एवं वयासी—"किण्णं पुत्ता ! ते चेव पंच सालिअक्खए उदाहु अण्णे ?"

तए णं उज्झिया धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—"एवं खलु तुब्भे ताओ ! इओ अतीए पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परिजणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं सद्दावेह, सद्दावेत्ता एवं वयासी—तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि । तए णं अहं तुब्भं एयमट्ठं पडिसुणेमि, ते पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि । तए णं अहं तुब्भं एयमट्ठं पडिसुणेमि, ते पंच सालिअक्खए गेण्हामि, एगंतमवक्कमामि ।

तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु तायाणं कोट्ठागारंसि बहवे पल्ला सालीणं पडिपुण्णा चिट्ठंति तं जया णं मम ताओ इमे पंच सालिअक्खए जाएसइ, तया णं अहं पल्लंतराओ अण्णे पंच सालिअक्खए गहाय दाहामि त्ति कट्टु एवं संपेहेमि, संपेहेत्ता ते पंच सालिअक्खए एगंते एडेमि, सकम्मसंजुत्ता यावि भवामि । तं नो खलु ताओ ! ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अण्णे ।"

निजी, स्वजनों, सम्बन्धियों, परिजनों और चारों पुत्र वधुओं के कुलगृह, वर्ग के समक्ष ज्येष्ठ पुत्र वधू उज्झिता को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—

"हे पुत्री ! आज से अतीत के पाँच वर्ष पूर्व मैंने इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों, परिजनों और चारों पुत्र वधुओं के कुलगृह वर्ग के समक्ष तुम्हारे हाथ में पाँच शालि अक्षत दिये थे और कहा था कि पुत्री ! जब मैं ये पाँच शालि अक्षत माँगूं, तब तुम मेरे ये पाँच शालि अक्षत वापस मुझे सौंपना; तो हे पुत्री ! यह अर्थ समर्थ है—यह बात सत्य है ?"

उज्झिता ने कहा—'हाँ सत्य है ।'

धन्य सार्थवाह ने तब कहा—'तो हे पुत्री ! मेरे वह शालि अक्षत वापस मुझे दो ।"

उज्झिता को बाह्य प्रेषण कार्य करने का आदेश—

१४३. तत्पश्चात् उज्झिता ने धन्य सार्थवाह की यह बात सुनी और सुनकर जहाँ कोठार था, वहाँ आई, आकर पल्य में से पाँच शालि अक्षत उठाये, उठाकर धन्य सार्थवाह के पास आई और आकर धन्य सार्थवाह से कहा—"पिताजी ! ये हैं वे पाँच शालि अक्षत !" इस प्रकार कहकर धन्य सार्थवाह के हाथ में शालि के पाँच दाने दे दिये ।

तब धन्य सार्थवाह ने उज्झिता को सौगन्ध दिलाई और कहा—'हे पुत्री ! क्या ये वही पाँच शालि के दाने हैं अथवा दूसरे हैं ?"

इस पर उज्झिता ने धन्य सार्थवाह से इस प्रकार कहा—"हे तात ! आपने आज से पांच वर्ष पहले इन मित्रों, ज्ञाति जनों, निजी, स्वजन सम्बन्धियों, परिचित जनों और चारों पुत्र वधुओं के कुल गृह वर्ग के सामने पाँच शालि अक्षत लिये थे, लेकर मुझे बुलाया था और बुलाकर इस प्रकार कहा था—'हे पुत्री ! मेरे हाथ से ये पाँच शालि अक्षत ग्रहण करो और अनुक्रम से इनका संरक्षण, संगोपन करते हुए विचरना ।' तब उस समय मैंने आपकी इस बात को स्वीकार किया था और पाँच शालि अक्षतों को लिया था, लेकर एकान्त में चली गई ।

उस समय मुझे इस प्रकार का आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'निश्चय ही पिताजी (श्वसुरजी) के कोठार में बहुत से पल्य प्रमाण शालि भरे हुए हैं, इसलिये जब तात मुझसे पाँच शालि अक्षत माँगेंगे तब मैं पल्य में से अन्य पाँच शालि अक्षतों को लेकर दे दूँगी ।' ऐसा मैंने विचार किया, विचार करके उन पाँच शालि अक्षतों को एकान्त में फैंक दिया और अपने काम में लग गई । अतएव हे तात ! ये वही शालि के पाँच दाने नहीं है, ये दूसरे हैं ।"

१४४. तए णं से धण्णे सत्थवाहे उज्झियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्मा आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे उज्झियं तस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स छारुज्झियं च छाणुज्झियं च कयवरुज्झियं च संपुच्छियं च सम्मज्जियं च पाओवदाइयं च ण्हाणोवदाइयं च बाहिर-पेसणकारियं च ठवेइ ।

१४४. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने उज्झिता के इस अर्थ को सुनकर और हृदय में धारण कर क्रोधित हो—यावत्—मिस-मिसाते हुए उन मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी परिचित और चारों पुत्रवधुओं के कुलगृह वर्ग के समक्ष उज्झिता को कुलगृह की राख फेंकने वाली, छाणें थापने वाली, कचरा झाड़ने वाली, पौंछा-पौंछी करने वाली, बर्तन मांजने वाली, पैर धोने का पानी देने वाली, स्नान के लिये पानी देने वाली और बाहर आने-जाने का कार्य करने वाली दासी के रूप में नियुक्त किया ।

उज्झियं पडुच्च उवणओ—

१४५. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं उज्झियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे-जाव-चाउरंत-संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरि-यट्टिस्सइ —जहा सा उज्झिया ।

उज्झिता प्रत्ययिक उपनय—

१४५. इसी प्रकार "हे आयुष्मन् श्रमणों ! जो हमारा निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुंडित होकर, गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार कर पांच महाव्रतों का उज्झयण करने वाला, परित्याग करने वाला होता है वह उज्झिता की तरह इस भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं के द्वारा अवहेलना का पात्र बनता है—यावत्—चातुर्गति रूप संसारकान्तार में बारंबार परिभ्रमण करेगा ।"

भोगवइए अब्भिंतरपेसणकज्जकरणाएसो—

१४६. एवं भोगवइया वि, नवरं—छोल्लेमि, छोल्लित्ता अणुगि-लेमि, अणुगिलित्ता सकम्मसंजुत्ता यावि भवामि । तं नो खलु ताओ ! ते चेव पंच सालिअक्खए, एए णं अण्णे ।

तए णं से धण्णे सत्थवाहे भोगवइयाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे भोगवइं तस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्हं सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स य पुरओ तस्स कुलघरस्स कंडितियं च कोट्टंतियं च पीसंतियं च एवं - रुंधंतियं रंधितियं परिवेसंतियं परिभायंतियं अब्भितरियं पेसणकारिं महाणसिणि ठवेइ ।

भोगवती को अभ्यन्तर प्रेषण कार्य करण-आदेश—

१४६. इसी प्रकार भोगवती के विषय में भी जानना चाहिये, विशेषता यह है कि उनको छीला, छीलकर निगल गई और फिर अपने काम में लग गई । अतएव हे तात ! ये वही पांच शालि अक्षत नहीं हैं; किन्तु दूसरे ही हैं ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने भोगवती के इस कथन को सुन-कर और हृदय से धारण कर क्रोधित हो—यावत्—दांतों को मिसमिसाते हुए उन मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी, स्वजन, सम्बन्धियों, परिचितों और चारों पुत्रवधुओं के कुल गृह वर्ग के समक्ष उस भोगवती को कुलगृह खांडने वाली, कूटने वाली, पीसने वाली, दलने वाली, रांधने वाली, परोसने वाली घर-घर, जाकर चीज को बाँटने वाली, घर के भीतर दासी का कार्य करने वाली के रूप में नियुक्त किया ।

भोगवइं पडुच्च उवणओ—

१४७. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं फालियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे-जाव-चाउरंत-संसार-कंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टि-स्सइ—जहा व सा भोगवइया ।

भोगवती प्रत्ययिक उपनय—

१४७. इसी प्रकार 'हे आयुष्मन् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थी आचार्य-उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करता है और फिर उन पंच महा-व्रतों को खंडित करने वाला होता है तो वह इसी भव में बहुत से श्रमणों, बहुत सी श्रमणियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं की अवहेलना का पात्र बनता है—यावत्—चार गति वाले संसार कांतार में बार-बार परिभ्रमण करेगा—जैसे वह भोगवती ।'

रक्खियाए भंडागाररक्खणाएसो—

१४८. एवं रक्खियावि, नवरं—जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मंजूसं विहाडेइ, विहाडेत्ता रयणकरंडगाओ ते पंच सालिअक्खए गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव वासघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पंच सालिअक्खए धणस्स हत्थे दलयइ।

तए णं से धणे सत्थवाहे रक्खियं एवं वयासी—"किं णं पुत्ता ! ते चेव एए पंच सालिअक्खए उदाहु अण्णे ?"

तए णं रक्खिया धणं सत्थवाहं एवं वयासी—"ते चेव ताओ ! एए पंच सालिअक्खए, नो अण्णे।"

"कहण्णं ? पुत्ता !"

एवं खलु ताओ ! तुब्भे इओ अतीते पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुल-घरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं सद्दावेह, सद्दावित्ता ममं एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता ! मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गिण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि। जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा, तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयह। तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं ति कट्टु ते पंच सालिअक्खए सुद्धे वत्थे बंधेमि, बंधित्ता रयणकरंडियाए पक्खिवेमि, पक्खिवित्ता उसीसामूले ठावेमि, ठावेत्ता तिसंझं पडिजागरमाणी यावि विहरामि। तओ एएणं कारणेणं ताओ ! ते चेव पंच सालिअक्खए, नो अण्णे।"

१४९. तए णं से धणे सत्थवाहे रक्खियाए अंतियं एयमट्ठं सोच्चा हट्ठतुट्ठे तस्स कुल-घरस्स हिरण्णस्स य कंस-दूस-विपुल-धण-कणग-रयण-मणि-मोत्तिय-संख-सिल-प्पवाल-रत्तरयण-संत-सार-सावएज्ज-स्स य भंडागारिणी ठवेइ।

रक्खियं पडुच्च उवणओ—

१५०. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच य से महव्वयाइं रक्खियाइं भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं साविगाण य अच्चणिज्जे-जाव-चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व सा रक्खिया।

रोहिणीए सव्वाहिगारकरणाएसो—

१५१. रोहिणीया वि एवं चेव, नवरं—तुब्भे ताओ ! मम सुबहुयं

रक्षिता को भांडागार-रक्षण आदेश—

१४८. इसी प्रकार रक्षिता के विषय में भी जानना चाहिये, विशेष यह है कि जहाँ उसका वासगृह था, वहाँ गई, वहाँ जाकर मंजूषा खोली, खोलकर रत्नकरंडक में से वे पाँच शालि अक्षत ग्रहण किये ग्रहण करके जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ आई और वहाँ आकर धन्य सार्थवाह के हाथ में वे पाँच शालि के दाने दे दिये।

तब धन्य सार्थवाह ने रक्षिता से इस प्रकार कहा—'हे पुत्री ! क्या ये वही पाँच शालि अक्षत हैं या दूसरे हैं ?"

रक्षिता ने तब धन्य सार्थवाह को उत्तर दिया—'तात ! ये वही पाँच शालि अक्षत हैं अन्य नहीं हैं।'

इस पर धन्य ने पूछा—'पुत्री ! कैसे ?'

उत्तर में रक्षिता बोली—"तात ! आपने आज से पाँच वर्ष पूर्व इन मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन और चारों पुत्र वधुओं के कुल गृह वर्ग के समक्ष पाँच शालि अक्षत लिये थे लेकर मुझे बुलाया था, बुलाकर मुझसे इस प्रकार कहा था कि 'हे पुत्री ! मेरे हाथ से ये पाँच शालि अक्षत, ग्रहण करो और अनुक्रम से संरक्षण और संगोपन करती रहो और पुत्री ! जब मैं तुमसे ये पाँच शालि अक्षत माँगूँ, तब तुम मुझे ये पाँच शालि अक्षत वापस लौटा देना।' ऐसा कहकर मेरे हाथ में पाँच शालि अक्षत दिये थे। तब मैंने विचार किया था कि इस प्रकार देने का कोई न कोई कारण होना चाहिए, ऐसा सोचकर मैंने वे पाँच शालि अक्षत, शुद्ध वस्त्र में बाँधे बाँधकर रत्नकरंडक में रखे और फिर सिरहाने स्थापित किये, स्थापित करके तीनों सन्ध्याओं में उनकी सार सम्भाल करती रही। अतएव हे तात ! ये वही पाँच शालि अक्षत है, दूसरे नहीं हैं।"

१४९. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह रक्षिता के इस कथन को सुनकर हर्षित और सन्तुष्ट हुआ। उसे अपने घर के हिरण्य की (आभूषणों की) और कांसा, दूष्य-वस्त्र, विपुल धन-कनक, रत्न, मणि, मुक्ता, शंख-शिला प्रवाल, लाल रत्न आदि बहुमूल्य सम्पति की भांडागारिणी नियुक्त किया।

रक्षिता प्रत्ययिक उपनय—

१५०. इसी प्रकार हे आयुष्मन श्रमणों ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी आचार्य-उपाध्याय के निकट मुंडित होकर, गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करता है और पंच महाव्रतों की रक्षा करता है, वह इसी भव में बहुत से साधुओं, बहुत सी साध्वियों, बहुत से श्रावकों और बहुत सी श्राविकाओं का अर्चनीय, पूज्यनीय होता है—यावत्—चतुर्गति रूप संसार कांतार को पार कर जाता है—जैसे वह रक्षिता।"

रोहिणी को सर्वाधिकारकरण-आदेश—

१५१. रोहिणी के विषय में भी इस प्रकार कहना चाहिए, किन्तु

सगडि-सागडं दलाह, जा णं अहं तुब्भं ते पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएमि ।

विशेष यह है कि—'तात ! आप मुझे बहुत से गाड़ी-गाड़े दो, जिससे मैं आपको वे पाँच शालि अक्षत लौटा सकूं ।'

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणिं एवं वयासी—"कहं णं तुमं पुत्ता ! ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाइस्ससि ?"

तब धन्य सार्थवाह ने रोहिणी से इस प्रकार कहा—"हे पुत्री ! तू मुझे वे पाँच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ी में भरकर कैसे देगी ?"

तए णं सा रोहिणी धण्णं सत्थवाहं एवं वयासी—"एवं खलु ताओ ! तुब्भे इओ अतीते पंचमे संवच्छरे इमस्स मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ पंच सालिअक्खए गेण्हह, गेण्हित्ता ममं दलयह, दलइत्ता ममं एवं वयासी—'तुमं णं पुत्ता मम हत्थाओ इमे पंच सालिअक्खए गेण्हाहि, अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी विहराहि । जया णं अहं पुत्ता ! तुमं इमे पंच सालिअक्खए जाएज्जा तया णं तुमं मम इमे पंच सालिअक्खए पडिनिज्जाएज्जासि' त्ति कट्टु मम हत्थंसि पंच सालिअक्खए दलयह । तं भवियव्वं एत्थ कारणेणं । तं सेयं खलु मम एए पंच सालिअक्खए सारक्खमाणीए संगोवेमाणीए संवड्ढेमाणीए-जाव-बहवे कुम्भसया जाया तेणेव कमेण । एवं खलु ताओ ! तुब्भे ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाएमि ।

तब रोहिणी ने धन्य सार्थवाह को उत्तर दिया—"हे तात ! आपने विगत पाँच वर्ष पूर्व इन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजक, स्वजन सम्बन्धियों, परिचितों और चारों पुत्रवधुओं के पीहर के जनों के समक्ष पाँच शालि के दाने लिये, लेकर मुझे बुलाया, बुलाकर मुझसे इस प्रकार कहा था कि—'पुत्री ! मेरे हाथ से ये पाँच शालि के दाने लो और अनुक्रम से संरक्षण, संगोपन करते हुए विचरना । हे पुत्री ! जब मैं तुमसे ये पाँच शालि के दाने माँगूं तब तुम मुझे ये पाँच शालि अक्षत वापस लौटाना ।' ऐसा कहकर मेरे हाथ में पाँच शालि के दाने दिये थे, तब मैंने एकान्त में जाकर विचार किया कि इसमें कोई कारण होना चाहिये । अतएव मेरे लिये उचित है कि इन पाँच शालि अक्षतों का संरक्षण करूँ, संगोपन करूँ और इनकी वृद्धि करूँ यावत्—उसी क्रम से वे अब सैकड़ों कुम्भ प्रमाण हो गये हैं । इसी कारण हे तात ! मैं आपको वे पाँच शालि के दाने गाड़ा-गाड़ियों में भरकर देती हूँ ।"

तए णं से धण्णे सत्थवाहे रोहिणीयाए सुबहुयं सगडि-सागडं दलाति ।

तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने रोहिणी को बहुत से गाड़ा-गाड़ी दिये ।

तए णं सा रोहिणी सुबहुं सगडि-सागडं गहाय जेणेव सए कुलघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कोट्ठागारे विहाडेइ, विहाडित्ता पल्ले उब्भिदइ, उब्भिदित्ता सगडि-सागडं भरेइ, भरेत्ता रायगिहं नगरं मज्झंमज्झेणं जेणेव सए गिहे जेणेव धण्णे सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ ।

तब रोहिणी उन बहुत से गाड़ों को लेकर जहाँ अपना पीहर था, वहाँ आई, आकर कोठार खोला, कोठार खोल कर पल्य उघाड़े, उघाड़कर छकड़ा, गाड़े, भरे, गाड़े भर कर राजगृह नगर के मध्य भाग में से गुजर कर जहाँ अपना घर था, और जहाँ धन्य सार्थवाह था, वहाँ आ पहुँची ।

तए णं रायगिहे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु बहुजणो अण्णमण्णं एवमाइक्खइ धण्णे णं देवाणुप्पिया ! धण्णे सत्थवाहे, जस्स णं रोहिणीया सुण्हा पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाएइ ।

तब राजगृह नगर में शृंगाटक, त्रिक, चतुष्क, चत्वर, चतुर्मुख, महापथ आदि मार्गों में बहुत लोग आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार से कहकर प्रशंसा करने लगे—'देवानुप्रियो ! धन्य सार्थवाह धन्य है, जिसकी रोहिणी नामक पुत्र वधू ने पाँच शालि के दाने छकड़ा-गाड़ियों में भरकर लौटाये ।'

१५२. तए णं से धण्णे सत्थवाहे ते पंच सालिअक्खए सगडि-सागडेणं निज्जाइए पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे पडिच्छइ, पडिच्छित्ता तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स चउण्ह य सुण्हाणं कुलघरवग्गस्स पुरओ रोहिणीयं सुण्हं तस्स कुलघरस्स बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य कुडुम्बेसु य मंतेसु य गुज्झेसु य रहस्सेसु य आपुच्छणिज्जं पडिपुच्छणिज्जं मेढिं पमाणं आहारं आलंबणं चक्खु, मेढी-

१५२. तत्पश्चात् धन्य सार्थवाह ने उन पाँच शालि अक्षतों को छकड़ा गाड़ियों के द्वारा लौटाते हुए देखा, देखकर हर्षित और सन्तुष्ट होते हुए उन्हें स्वीकार किया, स्वीकार करके उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी, स्वजन-सम्बन्धियों, परिचितों और चारों पुत्र-वधुओं के कुलगृह वर्ग के समक्ष पुत्र-वधू रोहिणी को उस कुल गृह (परिवार) के अनेक कार्यों में, कारण में, कौटुम्बिक कार्यों में, मंत्रणाओं में, गुप्त बातों में, रहस्यमय बातों में पूछने योग्य, बारंबार पूछने योग्य, मेढ़ीप्रमाण, आधार, अवलंबन-चक्षु के

भूयं पमाणभूयं आहारभूयं आलंबणभूयं चक्खुभूयं सव्वकज्ज वड्ढावियं पमाणभूयं ठवेइ ।

समान मेढी-भूत, प्रमाणभूत, आधारभूत, अवलंबनभूत चक्षुभूत और सब गृह कार्यों की देखरेख करने वाली और प्रमाणभूत, सर्वेसर्वा नियुक्त किया ।

रोहिणि पडुच्च उवणओ—

१५३. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए, पंच से महव्वया संवड्ढिया भवंति, से णं इहभवे चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे-जाव-चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ—जहा व सा रोहिणीया ।[1]

—णायाधम्मकहाओ सु० १ अ० ७

रोहिणी प्रत्ययिक उपनय—

१५३. इसी प्रकार 'हे आयुष्मन श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ या निर्ग्रन्थिनी आचार्य-उपाध्याय के पास मुण्डित होकर गृह त्याग कर अनगार दीक्षा अंगीकार करता है और पाँच महाव्रतों में वृद्धि करता है, वह इस भव में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं का पूजनीय होकर—यावत्—चातुरंतिक संसार कांतार को उलांघ जाता है, पार कर लेता है, जैसे वह रोहिणी ।"

---

१ वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह सेट्ठी तह गुरुणो, जह णाइ-जणो तहा समणसंघो । जह बहुया तह भव्वा, जह सालिकणा तह वयाइं ॥१॥

उज्झिया

जह सा उज्झियनामा, उज्झियसाली जहत्थमभिहाणा । पेसणगारित्तेणं, असंखदुक्खक्खणी जाया ॥२॥
तह भव्वो जो कोई, संघसमक्खं [च] गुरु-विदिण्णाइं । पडिवज्जिउं समुज्झइ, महव्वयाइं महामोहा ॥३॥
सो इह चेव भवम्मि, जणाण धिक्कार-भायणं होइ । परलोए उ दुहत्तो, नाणा-जोणीसु संचरइ ॥४॥

भोगवती—

जह वा भोगवती, जहत्थनामोवभुत्तसालिकणा । पेसणविसेसकारित्तणेण पत्ता दुहं चेव ॥५॥
तह जो महव्वयाइं, उवभुंजइ जीविय त्ति पालितो । आहाराइसु सत्तो, चत्तो सिवसाहणिच्छाए ॥६॥
सो एत्थ जहिच्छाए, पावइ आहारमाइ लिंगित्ता । विउसाण नाइपुज्जो, परलोयंमी दुही चेव ॥७॥

रक्खिया—

जह वा रक्खियवहुया, रक्खियसालीकणा जहत्थक्खा । परिजणमण्णा जाया, भोगसुहाइं च संपत्ता ॥८॥
तह जो जीवो सम्मं, पडिवज्जित्ता महव्वए पंच । पालेइ निरइयारे, पमाय-लेसं पि वज्जेंतो ॥९॥
सो अप्पहिएक्करई, इहलोयम्मि वि विऊहिं पणयपओ । एगंतसुही जायइ, परम्मि मोक्खं पि पावेइ ॥१०॥

रोहिणी—

जह रोहिणी उ सुण्हा, रोवियसाली जहत्थमभिहाणा । वड्ढित्ता सालिकणे, पत्ता सव्वस्स सामित्तं ॥११॥
तह जो भव्वो पाविय, वयाइ पालेइ अप्पणा सम्मं । अण्णेसि वि भव्वाणं, देइ अणेगेसि हियहेउं ॥१२॥
सो इह संघपहाणो, जुगप्पहाणो त्ति लहइ संसद्दं । अप्पपरेसिं कल्लाण-कारओ गोयमपहु व्व ॥१३॥
तित्थस्स वुड्ढिकारी, अक्खेवणओ कुतित्थियाईणं । विउस-नरसेविय-कमो, कमेण सिद्धि पि पावेइ ॥१४॥

—णायाधम्मकहाओ सु० १, अ० ७

९. आसणायं—

हत्थिसीसनगरे संजत्ता-नावावणिया—

१५४. तेणं कालेणं तेणं समएणं हत्थिसीसे नामं नयरे होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं कणगकेऊ नामं राया होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं हत्थिसीसे नयरे बहवे संजत्ता-नावावाणियगा परिवसंति—अड्ढा-जाव-बहुजणस्स अपरिभूया यावि होत्था।

संजत्ता-नावावणियाणं समुद्दमज्झे उवद्दवो—

१५५. तए णं तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं अण्णया कयाइ एगयओ सहियाणं इमेयारूवे मिहोकहा-समुल्लावे समुप्पज्जित्था—"सेयं खलु अम्हं गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च भंडगं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेणं ओगाहेत्तए" त्ति कट्टु जहा अरहण्णए-जाव-लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढा यावि होत्था।

तए णं तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं लवणसमुद्दं अणेगाइं जोयणसयाइं ओगाढाणं समाणाणं बहूणि उप्पाइयसयाइं पाउब्भूयाइं, तं जहा—अकाले गज्जिए अकाले विज्जुए अकाले थणियसद्दे कालियवाए य समुट्ठिए।

तए णं सा नावा तेणं कालियवाएणं आहुणिज्जमाणी-आहुणिज्जमाणी संचालिज्जमाणी-संचालिज्जमाणी संखोहिज्जमाणी-संखोहिज्जमाणी तत्थेव परिभमइ।

नावानिज्जामयस्स मूढत्तं लद्धसन्नत्तं च—

१५६. तए णं से निज्जामए नट्ठमईए नट्ठसुईए नट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था—न जाणइ कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायइ।

६. अश्व ज्ञात—

हस्तिशीर्ष नगर में सांयात्रिक नौका वणिक—

१५४. उस काल और उस समय में हस्तिशीर्ष नामक नगर था—यहाँ नगर का वर्णन करना चाहिए।

उस नगर में कनककेतु नामक राजा था। राजा का भी वर्णन करना चाहिए।

उस हस्तिशीर्ष नगर में बहुत से सांयात्रिक नौकावणिक निवास करते थे, वे सभी धन-वैभव सम्पन्न—यावत्—बहुत जनों से भी पराभव को न पाने वाले थे।

सांयात्रिक नौका वणिकों को समुद्र के मध्य उपद्रव—

१५५. तत्पश्चात् वे सांयात्रिक नौका वणिक किसी एक समय आपस में मिले तो उनमें इस प्रकार का विचार हुआ कि—"हमें गणिम (गिन-गिन कर बेचने योग्य वस्तु) धरिम (तोलकर बेचने योग्य) मेय (माप कर बेचने योग्य) और परिच्छेद्य (काट कर बेचने योग्य कपड़ा आदि) इन चार प्रकार के भांडों (सौदों) को लेकर जहाज द्वारा लवणसमुद्र में प्रवेश करना चाहिए।" इस प्रकार का विचार करके अर्हन्नक की भांति समुद्रयात्रा पर जाने का निश्चय किया यावत्—वे लवणसमुद्र में सैकड़ों योजन तक अवगाहन भी कर गये।

तब उन सांयात्रिक नौका वणिकों को अनेक सैकड़ों योजन लवणसमुद्र में अवगाहन कर जाने पर सैकड़ों उत्पात-उपद्रव उत्पन्न हो गये, वे उपद्रव इस प्रकार थे—"अकाल में मेघ गर्जना, अकाल में बिजली चमकना, अकाल में स्तनित शब्द (मेघों की गड़गड़ाहट) प्रतिकूल वात प्रकोप (आंधी चलना)।

तत्पश्चात् वह नौका प्रतिकूल वायु—तूफान से बार-बार काँपने लगी, बार-बार एक जगह से दूसरी जगह चलायमान होने लगी, बार-बार संक्षुब्ध होती हुई, इधर-उधर थपेड़े खाते हुई घूमने-भटने लगी।

नौका निर्यामक का मूढ़त्व और लब्धसंज्ञत्व—

१५६. उस समय नौका के निर्यामक (नाविक-खेवटिया) की मति नष्ट हो गई, श्रुति (समुद्र यात्रा सम्बन्धी शास्त्र का ज्ञान) नष्ट हो गई, संज्ञा (मानसिक विवेक सन्तुलन) नष्ट हो गई और वह दिग्विमूढ़ हो गया, जिससे उसे यह भी भान नहीं रहा कि पोत वहन कौन से प्रदेश में है और कौन सी दिशा-विदिशा में चल रहा है? इस कारण भग्न मनोरथ हो—खेदखिन्न हो हथेली पर मुँह को टिकाकर चिन्ता में डूब गया।

तए णं ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावा-वाणियगा य जेणेव से निज्जामए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एवं वयासी—"किण्णं तुमं देवाणुप्पिया ! ओहयमण-संकप्पे करतलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए झियायसि ?"

तब बहुत से कुक्षिधार, कर्णधार, गब्भेल्लक और सांयात्रिक नौका वणिक निर्यामक के पास आये और आकर उससे बोले—'हे देवानुप्रिय ! किस कारण आहतमन संकल्प वाले होकर हथेली पर मुँह को टिकाये हुए, चिन्ताग्रस्त हो रहे हो ?"

तए णं से निज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य एवं वयासी—"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! नट्ठमईए नट्ठसुईए नट्ठसण्णे मूढदिसाभाए जाए यावि होत्था—न जाणामि कयरं देसं वा दिसं वा विदिसं वा पोयवहणे अवहिए त्ति कट्टु तओ ओहयमणसंकप्पे करतलपल्हत्थ-मुहे अट्टज्झाणोवगए झियामि ।"

तब उस निर्यामक ने उन बहुत से कुक्षिधार, कर्णधार, गब्भेल्लक और सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! मेरी मति मारी गई है, श्रुति नष्ट हो गई है संज्ञा भी गायब हो गई है और दिग्विमूढ़ हो गया हूँ, जिससे मुझे यह ज्ञान नहीं हो रहा है कि यह पोतवहन किस स्थान अथवा दिशा-विदिशा में स्थित है—चल रहा है ? इसी कारण मैं भग्न मनोरथ होकर हथेली पर मुँह को लगाये चिन्तित हो रहा हूँ ।"

तए णं से कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य तस्स निज्जामयस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा ण्हाया कयबलिकम्मा करयल-परिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु बहूणं इंदाण य खंदाण य रुद्दाण य सिवाण य वेसमणाण य नागाण य भूयाण य जक्खाण य अज्ज-कोट्टकिरियाण य बहूणि उवाइय-सयाणि उवाइयमाणा-उवाइयमाणा चिट्ठंति ।

तत्पश्चात् वे कुक्षिधारक, कर्णधार, गब्भेल्लक और सांयात्रिक नौका वणिक उस निर्यामक की इस बात को सुनकर और समझकर भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए, घबरा गये और उद्विग्नमना होकर उन्होंने स्नान किया, बलिकर्म किया और दोनों हाथ जोड़, मुकलित दस नखोंपूर्वक शिर पर आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करते हुए वे बहुत से इन्द्रों, स्कन्दों (कार्तिकेय) रुद्रों, शिवों, वैश्रमणों, नागों, भूतों, यक्षों तथा आर्या कोट्टकिया (महिषासुर वाहिनी दुर्गा) देवी की बहुत-बहुत सैकड़ों मनौतियाँ मनाने लगे ।

तए णं से निज्जामए तओ मुहुत्तंतरस्स लद्धमईए लद्धसुईए लद्धसण्णे अमूढदिसाभाए जाए यावि होत्था ।

तदनन्तर वह निर्यामक थोड़ी देर बाद लब्धमति, लब्धश्रुति लब्धसंज्ञ और दिग्मूढ़तारहित हो गया ।

१५७. तए णं से निज्जामए ते बहवे कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्तानावावाणियगा य एवं वयासी—"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! लद्धमईए लद्धसुईए लद्धसण्णे अमूढदिसाभाए जाए । अम्हे णं देवाणुप्पिया ! कालियदीवंतेणं संवूढा । एस णं कालियदीवे आलोक्कइ ।"

१५७. तब उस निर्यामक ने उन बहुत से कुक्षिधारकों, कर्णधारों, गब्भेल्लकों और सांयात्रिकों, नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो ! मुझे बुद्धि प्राप्त हो गई है, मेरा शास्त्र-ज्ञान जाग गया है, मुझे होश आ गया है और मेरी दिग्मूढ़ता भी नष्ट हो गई है । हे देवानुप्रियो ! इस समय हम लोग कालिक द्वीप के समीप आ पहुँचे हैं । देखो वह कालिक द्वीप दिखाई दे रहा है ।"

संजत्तानावावणियाणं कालियदीवे आस-पेच्छणं—

सांयात्रिक नौकावणिकों का कालिक द्वीप में अश्वप्रेक्षण—

१५८. तए णं ते कुच्छिधारा य कण्णधारा य गब्भेल्लगा य संजत्ता-नावावाणियगा य तस्स निज्जामगस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा हट्ठ-तुट्ठा पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवा-गच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता एगट्ठियाहिं कालिय-दीवं उत्तरंति । तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणा-गरे य वइरागरे य, बहवे तत्थ आसे पासंति, किं ते ?—

१५८. तब वे कुक्षिधार, कर्णधार, गब्भेल्लक और सांयात्रिक नौकावणिक उस निर्यामक की इस बात को सुनकर हृष्ट-तुष्ट हुए और दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु की सहायता से वहाँ जा पहुँचे जहाँ कालिक द्वीप था, वहाँ पहुँचकर पोतवहन का लंगर डाला, लंगर डालकर छोटी नौकाओं-डोंगियों द्वारा कालिक द्वीप में उतरे । उस कालिक द्वीप में उन्होंने बहुत सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें, हीरे की खानें और बहुत से अश्व देखे, वे कैसे थे ?

हरिरेणु-सोणिसुत्तग-सकविल-मज्जार-पायकुक्कुड-वोंडसमुग्गय-

उन अश्वों में से कोई तो नीले वर्ण की रेणु के समान, कोई श्रोणिसूत्रक—कमर में बाँधने के काले डोरे के समान, मार्जार, पादकुक्कुट और कच्चे कपास के फल के समान श्याम वर्ण के,

सामवण्णा। गोहूमगोरंग-गोरपाडल-गोरा, पवालवण्णा य धूमवण्णा य केइ।

कोई गेहूँ और गौरपाटल पुष्प के समान गौरवर्ण के, कोई प्रवाल, मूंगा अथवा नवीन कोंपल के समान रक्त वर्ण के, कोई धूम्र वर्ण धुयें के रंग जैसे रंग के थे।

तलपत्त-रिट्ठवण्णा य, सालिवण्णा य भासवण्णा य केइ। जंपिय-तिल-कीडगा य, सोलोय-रिट्ठगा य पुण्ड-पइया य कणगपिट्ठा य केइ।

कोई लालपत्र सरीखे, कोई रिष्ठ रत्न सरीखे वर्ण वाले थे, कोई शालि—चावल जैसे रंग वाले, कोई भस्म-राख जैसे वर्ण वाले कोई पुराने तिलों की कीडों जैसे कोई चमकीले रिष्टकरत्न जैसे वर्ण वाले थे, कोई धवल श्वेत पैरों वाले, कोई कनक पृष्ठ सुनहरी पीठ वाले थे।

चक्कागपिट्ठवण्णा, सारसवण्णा य हंसवण्णा य केइ। केइत्थ अब्भवण्णा, पक्कतल-मेघवण्णा य बहुवण्णा केइ।

कोई चक्रवाक पक्षी की पीठ, सारस पक्षी और हंस के समान श्वेत वर्ण वाले थे, कोई अभ्र जैसे वर्ण वाले, कोई पक्वताल फल और सघन मेघ घटाओं के जैसे वर्ण वाले और कोई बहु वर्ण अर्थात् विविध रंगों वाले थे।

संझाणुरागसरिसा, सुयमुह-गुंजद्धराग-सरिसत्थ केइ। एलापाडल-गोरा, सामलया गवलसामला पुणो केइ।

कोई संध्याराग-संध्याकाल की लालिमा, तोते की चोंच, गुंजा (चिरमी) के अर्धभाग के सदृश लाल वर्ण के थे, कोई एलापाटल जैसे गौर वर्ण के थे, कोई श्यामलता और महिष-भैंसे के सदृश श्याम वर्ण के थे।

बहवे अण्णे अणिद्देसा, सामा कासीसरत्तपीया, अच्चंतविसुद्धा वि य णं आइण्णग-जाइ-कुल-विणीय-गयमच्छरा।

बहुत से अश्व ऐसे भी थे जिनके वर्ण का निश्चित निर्देश नहीं किया जा सकता है, कोई श्यामाक (धान्य विशेष), काशीष (लाल रंग का द्रव्य) और रक्त-पीत अर्थात् चितकबरे वर्ण के थे। ये सभी अश्व अत्यन्त विशुद्ध-निर्दोष थे, आकीर्ण-गुण सम्पन्न, जाति एवं कुल के थे। विनीत-प्रशिक्षित थे, मात्सर्य भाव से विहीन थे अर्थात् सहनशील थे।

हयवरा जहोवएस-कम्मवाहिणो वि य णं। सिक्खा विणीय-विणया, लंघण-वग्गण-धावण-धोरण-तिवई जईण-सिक्खिय-गई॥१॥

वे अश्व श्रेष्ठ थे, संकेतानुसार कार्य करने वाले थे, सधे हुए थे, सीधे-सादे विनीत थे, लांघने, कूदने, दौड़ने, धोरण-गतिचातुर्य त्रिपदी-रंगभूमि में मल्ल की सी गति, करने में कुशल थे।

किं ते ? मणसा वि उव्विहंताइं अणेगाइं आससयाइं पासंति।

वे शरीर से ही नहीं वरन् मन से भी उछल रहे थे। ऐसे अनेक सैंकड़ों अश्व उन नौकावणिकों आदि ने वहाँ देखे।

१५९. तए णं ते आसा वाणियए पासंति, तेसिं गंधं आघायंति, आघाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। ते णं तत्थ पउर-गोयरा पउर-तणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति।

१५९. उन अश्वों ने वणिकों को देखा, उनकी गंध सूँघी; सूंघकर वे अश्व भयभीत हुए, त्रस्त हुए, उद्विग्न हुए और उद्वेलित मन वाले होकर अनेक योजन दूर भाग गये। वहाँ उनको प्रचुर गोचर (चारागाह) प्राप्त हुए, खूब घास और पानी सुलभ हो जाने से वे निर्भय और निरुद्वेग होकर सुखपूर्वक विचरने लगे।

संजत्तियाणं वणियाणं पुणरागमणं—

सांयात्रिक वणिकों का पुनरागमन—

१६०. तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा अण्णमण्णं एवं वयासी—"किण्हं अम्हं देवाणुप्पिया ! आसेहिं ? इमे णं बहवे हिरण्णागरा य सुवण्णागरा य रयणागरा य वइरागरा य। तं सेयं खलु अम्हं हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य पोयवहणं भरि-

१६०. तत्पश्चात् उन सांयात्रिक नौका वणिकों ने आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! हमें अश्वों से क्या लेना-देना है ? यहाँ तो यह बहुत सी चाँदी की खानें, सोने की खानें, रत्नों की खानें और हीरों की खानें हैं। अतः हमें तो चाँदी सोने, रत्नों और हीरों से जहाज भर लेना ही श्रेयस्कर है।"

तए" त्ति कट्टु अण्णमण्णस्स एयमट्ठं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता हिरण्णस्स य सुवण्णस्स य रयणस्स य वइरस्स य तणस्स य कट्ठस्स य अन्नस्स य पाणियस्स य पोयवहणं भरेंति, भरेत्ता पयक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति,

इस प्रकार कहकर उन्होंने एक-दूसरे की बात स्वीकार करके हिरण्य से, स्वर्ण से, रत्नों से, हीरों से, घास से, काष्ठों से, अन्न से और पीने के पानी से पोत भर लिया, भरकर दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु से जहाज को रवाना कर जहाँ गम्भीर पोत वहन-पट्टन बन्दरगाह था, वहाँ आ पहुँचे।

उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तं हिरण्णं च सुवण्णं च रयणं च वइरं च एगट्ठियाहिं पोयवहणाओ संचारेंति संचारेत्ता सगडी-सागडं संजोएंति, जेणेव हत्थिसीसए नयरे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता हत्थिसीसयस्स नयरस्स बहिया अग्गुज्जाणे सत्थनिवेसं करेंति, करेत्ता सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं गेण्हंति, गेण्हित्ता हत्थिसीसयं नयरं अणुप्पविसंति, अणुप्पविसित्ता जेणेव से कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं उवणेंति।

वहाँ आकर जहाज का लँगर डाला, लंगर डालकर गाड़ी-गाड़े तैयार करके आये हुए उस हिरण्य, स्वर्ण, रत्न और हीरों को छोटी-छोटी नौकाओं द्वारा जहाज से उतारा, उतारकर गाड़ा-गाड़ी में भरा और फिर जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर हस्तिशीर्ष नगर के बाहर अग्र उद्यान में सार्थनिवेश किया अर्थात् डेरा डाला, गाड़ी-गाड़े खोले, फिर बहुमूल्य महर्घ्य महान पुरुषों के योग्य विपुल एवं राजा के योग्य उपहार लेकर हस्तिशीर्ष नगर में प्रवेश किया, प्रवेश करके जहाँ कनककेतु राजा था, वहाँ आये और वह बहुमूल्य, महर्घ्य, महान् पुरुषों के योग्य, विपुल और नृपतियोग्य उपहार राजा के सामने उपस्थित किया।

कणगकेउआएसेण आसाण आणयणं—

१६१. तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं तं महत्थं महग्घं महरिहं विउलं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, पडिच्छित्ता ते संजत्ता-नावा-वाणियगे एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! गामागर-नगर-खेड-कब्बड-दोणमुह-मडंब-पट्टण-आसम-निगम-संबाह-सण्णिवेसाइं आहिंडह, लवणसमुद्दं च अभिक्खणं-अभिक्खणं पोयवहणेणं ओगाहेह। तं अत्थि याइं भे केइ भे कहिंचि अच्छेरए दिट्ठपुव्वे ?"

कनककेतु के आदेश से अश्वों का आनयन—

१६१. तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन सांयात्रिक नौका वणिकों द्वारा उपस्थित उस बहुमूल्य महर्घ्य, महान् पुरुषों के योग्य, विपुल; राजोचित उपहार को स्वीकार किया। स्वीकार करके उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग बहुत से ग्रामों, आकरों, नगरों, खेटों, कर्बटों, द्रोणमुखों, मडम्बों, पत्तनों, आश्रमों, निगमों, संवाहों और सन्निवेशों में घूमते हो एवं पोतवहन द्वारा बारंबार लवणसमुद्र में भी अवगाहन करते हो तो तुमने कहीं कोई आश्चर्यजनक अनोखी वस्तु देखी है ?"

तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा कणगकेउं एवं वयासी—"एवं खलु अम्हे देवाणुप्पिया ! इहेव हत्थिसीसे नयरे परिवसामो तं चेव-जाव-कालियदीवंतेणं संवूढा। तत्थ णं बहवे हिरण्णागरे य सुवण्णागरे य रयणागरे य वइरागरे य, बहवे तत्थ आसे पासामो। किं ते ? हरिरेणु-जाव-अम्हं गंधं आघायंति, आघाइत्ता भीया तत्था उव्विग्गा उव्विग्गमणा तओ अणेगाइं जोयणाइं उब्भमंति। तए णं सामी ! अम्हेहिं कालियदीवे ते आसा अच्छेरए दिट्ठपुव्वे।"

तब उन सांयात्रिक नौका वणिकों ने राजा कनककेतु को बताया—"हे देवानुप्रिय ! हम लोग इसी हस्तिशीर्ष नगर के निवासी हैं इत्यादि पूर्ववत् कहना चाहिये—यावत्—कालिक द्वीप में पहुँचे। वहाँ बहुत सी चाँदी की, स्वर्ण की, रत्नों की और हीरों की खानें हैं एवं उस द्वीप में हमने बहुत से अश्व देखे। वे अश्व कैसे हैं ? नील वर्ण की रेणु के समान—यावत्—हमारी गंध को सूँघा, सूँघकर वे अश्व भयभीत हुए, त्रास को प्राप्त हुए, उद्विग्न हुए, उनके मन में घबराहट हुई, जिससे वे वहाँ से कई योजन दूर भाग गये। अतएव हे स्वामिन् ! कालिकद्वीप में हमने उन अश्वों को आश्चर्य के रूप में (विस्मय की वस्तु के रूप में) देखा।"

१६२. तए णं से कणगकेऊ तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म ते संजत्ता-नावावाणियए एवं वयासी—

१६२. तत्पश्चात् उन सांयात्रिक नौकावणिकों से इस अर्थ को सुनकर राजा कनककेतु ने सांयात्रिक नौकावणिकों से कहा—

"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! मम कोडुम्बियपुरिसेहिं सद्धिं सम कोडुम्बियपुरिसेहिं सद्धिं कालियदीवाओ ते आसे आणेह ।"

देवानुप्रियो ! हमारे कौटुम्बिक पुरुषों के साथ तुम जाओ और कालिक द्वीप से उन अश्वों को यहाँ लाओ ।"

तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति ।

तब सांयात्रिक नौकावणिकों ने—'स्वामिन् !' अच्छा, ऐसा ही कहकर राजा के आज्ञा वचनों को विनयपूर्वक स्वीकार किया ।

तए णं से कणगकेऊ कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी —"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! संजत्ता-नावावाणिय-एहिं कालियदीवाओ मम आसे आणेह । ते वि पडिसुणेंति ।

इसके बाद राजा कनककेतु ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया बुलाकर उनसे कहा —"हे देवानुप्रियो ! तुम सांयात्रिक नौका वणिकों के साथ जाओ और कालिकद्वीप से मेरे लिये अश्व लाओ ।" उन्होंने भी राजा की आज्ञा स्वीकार की ।

१६३. तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा सगडी-सागडं सज्जेंति, सज्जेत्ता तत्थ णं बहूणं वीणाण य वल्लकीण य भामरीण य कच्छभीण य भंभाण य छब्भामरीण य चित्तवीणाण य अण्णेसिं च बहूणं सोइंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति ।

१६३. तत्पश्चात् कौटुम्बिक पुरुषों ने गाड़ी-गाड़े सजाये, तैयार किये, सजाकर उनमें बहुत सी वीणाएँ, वल्लकी, भ्रामरी, वीणा, भंभा, षट्भ्रामरी वीणा, विचित्र वीणा तथा और दूसरी भी बहुत सी श्रोत्रेन्द्रिय का विषयभूत योग्य वस्तुओं से गाड़ी-गाड़े भरे ।

बहूणं किण्हाण य नीलाण य लोहियाण य हालिद्दाण य सुक्कि-लाण य कट्ठकम्माण य चित्तकम्माण य पोत्थकम्माण य लेप्प-कम्माण य गंथिमाण य वेढिमाण य पूरिमाण य संघाइमाण य अण्णेसिं च बहूणं चक्खिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति ।

इसके पश्चात् बहुत से कृष्ण, नील, रक्त, पीत एवं शुक्ल वर्ण के काष्ठकर्म—लकड़ी से बनी पुतलियाँ आदि चित्रकर्म, पुस्तकर्म—पुठ्ठे पर बने चित्र, लेप्य-कर्म—मिट्टी से बने चित्र-विचित्र रूप खिलौना आदि, ग्रंथिम, वेढिम, पूरिम संघातिम तथा अन्य चक्षु इन्द्रिय के विषयभूत पदार्थ गाड़ी-गाड़ों में भरे ।

बहूणं कोट्ठपुडाण य पत्तपुडाण य चोयपुडाण य तगरपुडाण य एलापुडाण य हिरिवेरपुडाण य उसीरपुडाण य चंपगपुडाण य मरुयगपुडाण य दमणगपुडाण य जातिपुडाण य जूहियापुडाण य मल्लियापुडाण य वासंतियापुडाण य केयइपुडाण य कप्पूरपुडाण य पाडलपुडाण य अण्णेसिं च बहूणं घाणिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति ।

इसी तरह फिर घ्राणेन्द्रिय को प्रिय लगनेवाले बहुत से कोष्ठपुट पत्रपुट, चोयपुट, चंपकपुट, नगरपुट, एलापुट हिरिवेर-पुट, उशीर (खसखस) पुट, चंपकपुट, मरुआपुट, दमनकपुट, जातीपुट, यूथिकापुट, मल्लिकापुट, वासंतीपुट, केतकीपुट, कपूर-पुट, पाटलपुट तथा अन्य बहुत से सुगंधित द्रव्यों से गाड़ी-गाड़े भरे ।

बहुस्स खंडस्स य गुलस्स य सक्कराए य मच्छंडियाए य पुप्फुत्तरपउमुत्तराए अण्णेसिं च जिब्भिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति ।

तदनन्तर बहुत से खांड, गुड़, शक्कर, मत्स्यंडिका (मिश्री) पुष्पोत्तर, पद्मोत्तर जाति की शर्करा तथा अन्य अनेक जिह्वा-इन्द्रिय के प्रिय द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे ।

बहूणं कोयवाण य कंबलाण य पावाराण य नवतयाण य मलयाण य मसूराण य सिलावट्टाण य-जाव-हंसगब्भाण य अण्णेसि च फासिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं सगडी-सागडं भरेंति,

उसके बाद बहुत से कोयव्राण—रूई से बने वस्त्र, कंबल, प्रावरण नवतय, मलय, मसूरक शिलापट्टक—यावत्—हंसगर्भ (हंस के समान श्वेत वस्त्र) तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय के योग्य द्रव्य गाड़ी-गाड़ों में भरे ।

भरेत्ता सगडी-सागडं जोयंति, जोइत्ता जेणेव गंभीरए पोयट्ठाणे तेणेव उवागच्छंति, सगडी-सागडं मोएंति, मोएत्ता पोयवहणं सज्जेंति, सज्जेत्ता तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द-फरिस-रस-रूव गंधाणं कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोर-सस्स य-जाव-अण्णेसिं च बहूणं पोयवहणपाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति, भरेत्ता दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव कालियदीवे तेणेव उवा-

इन सब द्रव्यों को भरकर गाड़ी-गाड़ों को जोता, जोतकर जहाँ गम्भीर पोतपत्तन था, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर गाड़ी-गाड़ों को खोला, खोलकर पोतवहन को तैयार किया, तैयार करके उन उत्कृष्ट शब्द-स्पर्श, रस, रूप और गंध के द्रव्यों को तथा काष्ठ तृण-घास, जल, चावल, आटा, गोरस-घी तथा अन्य बहुत से पोतवहन के योग्य पदार्थों से पोतवहन को भरा, फिर दक्षिण दिशा के अनुकूल पवन से जहाँ कालिकद्वीप था, वहाँ पहुँचे,

गच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता ताइं उक्किट्ठाइं सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधाइं, एगट्ठियाहिं कालियदीवं उत्तरेंति।

जहिं-जहिं च णं ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठन्ति वा तुयट्टन्ति वा तहिं-तहिं च णं ते कोडुम्बियपुरिसा ताओ वीणाओ य-जाव-चित्तवीणाओ य अण्णाणि य बहूणि सोइंदिय-पाउग्गाणि य दव्वाणि समुदीरेमाणा-समुदीरेमाणा ठवेंति, तेसिं च परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठन्ति वा तुयट्टन्ति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुम्बियपुरिसा बहूणि किण्हाणि य नीलाणि य लोहियाणि य हालिद्दाणि य सुक्किलाणि य कट्ठकम्माणि य-जाव-संघाइमाणि य अण्णाणि य बहूणि चक्खिंदिय-पाउग्गाणि य दव्वाणि ठवेंति, तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठन्ति वा तुयट्टन्ति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुम्बियपुरिसा तेसिं बहूणं कोट्ठपुडाण य-जाव-पाडलपुडाण य अण्णेसिं च बहूणं घाणिंदिय-पाउग्गाणं दव्वाणं पुन्जे य नियरे य करेंति, करेत्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति।

जत्थ-जत्थ ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठन्ति वा तुयट्टन्ति वा तत्थ-तत्थ णं ते कोडुम्बियपुरिसा गुलस्स-जाव-पुप्फुत्तर-पउमुत्तराए अण्णेसिं च बहूणं जिब्भिंदियपाउग्गाणं दव्वाणं पुन्जे य नियरे य करेंति, करेत्ता वियरए खणंति, खणित्ता गुलपाणगस्स खंडपाणगस्स पोरपाणगस्स अण्णेसिं च बहूणं पाणगाणं वियरए भरेंति, भरेत्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति -

जहिं-जहिं च णं ते आसा आसयंति वा सयंति वा चिट्ठन्ति वा तुयट्टन्ति वा तहिं-तहिं च णं ते कोडुम्बियपुरिसा बहवे कोयवया-जाव-सिलावट्टया अण्णाणि य फासिंदिय-पाउग्गाइं अत्थय-पच्चत्थुयाइं ठवेंति, ठवेत्ता तेसिं परिपेरंतेणं पासए ठवेंति, ठवेत्ता निच्चला निप्फंदा तुसिणीया चिट्ठन्ति।

तए णं ते आसा जेणेव ते उक्किट्ठा सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधा तेणेव उवागच्छंति।

अमुच्छिय-आसाणं सायत्त-विहारो—

१६४. तत्थ णं अत्थेगइया आसा अपुव्वा णं इमे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंध त्ति कट्टु तेसु उक्किट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु अमुच्छिया अगढिया अगिद्धा अणज्झोववण्णा तेसिं उक्किट्ठाणं सद्द-

पहुँचकर पोतवहन का लंगर डाला, लंगर डालकर उन शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध के उत्कृष्ट पदार्थों को डोंगियों द्वारा कालिक-द्वीप में उतारा।

इसके पश्चात् जहाँ-जहाँ वे घोड़े बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे, वहाँ-वहाँ वे कौटुम्बिक पुरुष उन वीणाओं—यावत्—विचित्र वीणाओं को तथा अन्य दूसरे श्रोत्रेन्द्रिय प्रायोग्य वाद्यों आदि को बजाते हुए रहने लगे तथा उनके आस-पास जाल बिछा दिये, जाल बिछाकर वे निश्चल निस्पन्द और मौन होकर स्थित हो गये।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, ठहरते थे, लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिकपुरुषों ने बहुत से कृष्ण वर्ण, नील, रक्त, पीत और शुक्ल वर्ण के काष्ठ कर्म—यावत्—संघातिम तथा अन्य भी बहुत से चक्षुरिन्द्रिय के प्रिय पदार्थों को स्थापित कर दिया और उनके चारों ओर जाल फैला दिये, जाल फैलाकर निश्चल, निस्पन्द और मौन होकर छिप गये।

इसके पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहाँ-वहाँ बहुत से कोष्ठपुट—यावत्—पाटलपुट तथा अन्य दूसरे भी बहुत से घ्राणेन्द्रिय के प्रिय द्रव्यों को पुंज के रूप में रख दिया एवं बिखेर दिया, बिखेर कर उनके चारों ओर जाल बिछा दिये, जाल बिछा कर निश्चल, निस्पन्द और मौन होकर छिप गये।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते थे, सोते थे, खड़े होते थे अथवा लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने गुड़ के—यावत्—पुष्पोत्तर-पद्मोत्तर नामक शर्करा विशेषों के तथा अन्य बहुत से जिह्वेन्द्रिय प्रायोग्य द्रव्यों के पुंज और निकर कर दिये, करके जगह-जगह गड्ढे खोदे, खोदकर गुड़ का पानी, खांड का पानी, ईख का पानी तथा और दूसरे-दूसरे पानी उन गड्ढों में भरे, भरकर उनके आस-पास में जाल बिछाये और जाल बिछाकर निश्चल, निस्पन्द मौन होकर छिप गये।

जहाँ-जहाँ वे अश्व बैठते, सोते, ठहरते अथवा लोटते थे, वहाँ-वहाँ उन कौटुम्बिक पुरुषों ने कोयवक—यावत्—शिलापट्टक तथा अन्य स्पर्शनेन्द्रिय का योग्य आस्तरण-प्रत्यास्तरण रख दिये, रखकर उनके आसपास चारों ओर पाश—जाल फैलाये और फिर निश्चल, निस्पन्द और मौन होकर छिप गये।

तत्पश्चात् वे अश्व जहाँ वे उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध वाले पदार्थ रखे थे, वहाँ आये।

अमूच्छित अश्वों का स्वायत्त-विहार—

१६४. उनमें से कितने ही अश्व ये शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध अपूर्व हैं, अर्थात् पहले अनुभव नहीं किया है। ऐसा विचार कर उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूच्छित गृद्ध

फरिस-रस-रूव-गंधाणं दूरंदूरेणं अवक्कमंति । ते णं तत्थ पउर-तणपाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं विहरंति ।

अभिलाषी और आसक्त न होकर उन उत्कृष्ट, शब्द-स्पर्श, रस, रूप और गंध वाले पदार्थों से दूर-दूर भाग गये । वे अश्व वहाँ पहुँचकर बहुत गोचर (चारागाह) और प्रचुर घास-पानी प्राप्त करके निर्भय निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक विचरने लगे ।

अमुच्छियआसे पडुच्च उवणओ—

१६५. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरियउवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु नो सज्जइ नो रज्जइ नो गिज्झइ नो मुज्झइ नो अज्झोववज्जइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावयाणं बहूणं सावियाण य अच्चणिज्जे-जाव-चाउरंतं संसारकंतारं वीईवइस्सइ ।

अमूर्च्छित अश्व प्रत्ययिक उपनय—

१६५. इसी प्रकार—'हे आयुष्मान् श्रमणो ! हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनी आचार्य-उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्यागकर अनगार प्रव्रज्या से, प्रव्रजित होकर शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में आसक्त, नहीं होता है, रंजित नहीं होता है, लिप्त नहीं होता है, मूर्च्छित नहीं होता है, अभिलिप्सा वाला नहीं होता है, वह इस लोक में बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं का अर्चनीय होता है—यावत्—चातुर्गतिक संसार कांतार को पार कर जाता है ।'

मुच्छिय-आसाणं परायत्त विहारो—

१६६. तत्थ णं अत्थेगइया आसा जेणेव उक्किट्ठा सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधा तेणेव उवागच्छंति । तेसु उक्किट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधेसु मुच्छिया गढिया गिद्धा अज्झोववण्णा आसेविउं पयत्ता यावि होत्था ।

तए णं ते आसा ते उक्किट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे आसेवमाणा तेहिं बहूहिं कूडेहि य पासेहि य गलएसु य पाएसु य बज्झंति ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा ते आसे गिण्हंति, गिण्हित्ता एगट्ठियाहिं पोयवहणे संचारेंति, कट्ठस्स य तणस्स य पाणियस्स य तंदुलाण य समियस्स य गोरसस्स य-जाव-अण्णेसिं च बहूणं पोयवहण-पाउग्गाणं पोयवहणं भरेंति ।

मूर्च्छित अश्वों का परायत्त विहार—

१६६. उनमें से कितने ही अश्व वहाँ आये जहाँ वे उत्कृष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप और गंध वाले पदार्थ थे और उन उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध में मूर्च्छित, लिप्त गृद्ध और आसक्त होकर उनका सेवन करने में प्रवृत्त हो गये ।

तत्पश्चात् उस उत्कृष्ट शब्द, स्पर्श, रस, रूप और गंध का सेवन करने वाले वे अश्व उन बहुत से फैलाये गये कूट पाशों से गलों में और पैरों में बांध लिये गये ।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने उन अश्वों को पकड़ लिया, पकड़ कर नौकाओं द्वारा पोतवहन में लाये, फिर काष्ठ, तृण, घास, पानी चावल, आटा, गोरस, चावल, अन्य आवश्यक पदार्थों को पोतवहन में भर लिया ।

१६७. तए णं ते संजत्ता-नावावाणियगा दक्खिणाणुकूलेणं वाएणं जेणेव गंभीरए पोयपट्टणे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पोयवहणं लंबेंति, लंबेत्ता ते आसे उत्तारेंति, उत्तारेत्ता जेणेव हत्थिसीसे नयरे जेणेव कणगकेऊ राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं दसणहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति ते आसे उवणेंति ।

१६७. तत्पश्चात् वे सांयात्रिक नौकावणिक दक्षिण दिशा की अनुकूल वायु द्वारा जहाँ, गंभीरपोत पट्टन था, वहाँ आये, आकर पोतवहन का लंगर डाला, लंगर डालकर उन अश्वों को उतारा, उतार कर वहाँ आये जहाँ हस्तिशीर्ष नगर था और उसमें जहाँ कनककेतु राजा था, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से राजा को बधाया और बधाई देकर वे अश्व उपस्थित किये ।

१६८. तए णं से कणगकेऊ राया तेसिं संजत्ता-नावावाणियगाणं उस्सुंकं वियरइ, सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तए णं से कणगकेऊ राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

१६८. तत्पश्चात् राजा कनककेतु ने उन सांयात्रिक नौका वणिकों को राज-कर से मुक्त कर दिया, उनका सत्कार-सम्मान किया और उन्हें ससम्मान विदा किया ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनका सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उनको विदा किया ।

१६९. तए णं से कणगकेऊ राया आसमद्दए सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"तुब्भे णं देवाणुप्पिया ! मम आसे विणएह ।

१६९. तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने अश्वमर्दकों को बुलाया और बुलाकर उनसे कहा—'देवानुप्रियो ! तुम मेरे अश्वों को विनीत प्रशिक्षित करो ।"

तए णं ते आसमद्दगा 'तह' त्ति पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ते आसे बहूहिं मुहबंधेहि य कण्णबंधेहि य णासाबंधेहि य वालबंधेहि य खुरबंधेहि य कडगबंधेहि य खलिणबंधेहि य ओवीलणाहि य पडयाणेहि य अंकणाहि य वेत्तप्पहारेहि य लयप्पहारेहि य कसप्पहारेहि य छिवप्पहारेहि य विणयंति, विणइत्ता कणगकेउस्स रण्णो उवणेंति।

तब उन अश्वमर्दकों ने 'बहुत अच्छा !' कहकर राजा की आज्ञा को स्वीकार किया, स्वीकार करके उन अश्वों को मुंह बांधकर, कान बांधकर, नाक बांधकर, पूंछ के बाल बांधकर, खुर बांधकर, कनक बांधकर, खला-चौकड़ी, चढ़ाकर, तोबरा चढ़ाकर, पलान लगाकर, खस्सी कर, बेंतों का प्रहार कर, लताओं का प्रहार कर, चाबुकों का प्रहार कर, कोड़ों का प्रहार कर, विनीत किया, प्रशिक्षित किया, विनीत कर कनककेतु राजा के समक्ष खड़ा किया, उपस्थित किया।

तए णं से कणगकेऊ राया ते आसमद्दए सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् कनककेतु राजा ने उन अश्वमर्दकों को सत्कारित सम्मानित किया और सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदाई दी।

१७०. तए णं ते आसा बहूहिं मुहबंधेहि य-जाव-छिवप्पहारेहि य बहूणि सारीर-माणसाइं दुक्खाइं पावेंति।

१७०. तत्पश्चात् वे अश्व बार-बार के मुख बंधन से यावत् चाबुकों के प्रहार से अनेक प्रकार के शारीरिक और मानसिक दुःखों को प्राप्त करने लगे।

मुच्छियआसे पडुच्च उवणओ —

१७१. एवामेव समणाउसो ! जो अम्हं निग्गंथो वा निग्गंथी वा आयरिय-उवज्झायाणं अंतिए मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइए समाणे इट्ठेसु सद्द-फरिस-रस-रूव गंधेसु सज्जइ रज्जइ गिज्झइ मुज्झइ अज्झोववज्जइ, से णं इहलोए चेव बहूणं समणाणं बहूणं समणीणं बहूणं सावगाणं बहूणं सावियाण य हीलणिज्जे-जाव-चाउरंतं संसारकंतारं भुज्जो-भुज्जो अणुपरियट्टिस्सइ।

मूर्च्छित अश्वप्रत्ययिक उपनय —

१७१. इसी प्रकार—"हे आयुष्मन श्रमणों ! हमारा जो निर्ग्रन्थ अथवा निर्ग्रन्थिनी आचार्य उपाध्याय के पास मुंडित होकर गृह त्याग कर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार इष्ट शब्द स्पर्श, रस, रूप, और गंध वाले पदार्थों में लिप्त रंजित, अनुरक्त, गृद्ध होता है, मुग्ध होता है और आसक्त होता है, वह इस लोक में ही बहुत से श्रमणों, श्रमणियों, श्रावकों और श्राविकाओं द्वारा अवहेलना का पात्र बनता है—यावत्—चातुर्गतिक संसार कांतार में पुनः-पुनः भ्रमण करता है, चक्कर काटता रहता है।"

सम्मग्गदिट्ठंतस्स उवणयगाहाओ —

१७२. कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु रज्जमाणा, रमंति सोइंदिय-वसट्टा ॥१॥

सम्यग्दृष्टान्त की उपनय गाथायें —

१७२. कल-श्रुतिसुखद रिभित और मधुर वीणा, तल-ताल और बांसुरी के प्रिय और मनोहर शब्दों में अनुरक्त और श्रोत्रेन्द्रिय के वशवर्ती बने हुए प्राणी-आनन्द मानते हैं ॥१॥

सोइंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
दीविग-रुयमसहंतो, वहबंधं तित्तिरो पत्तो ॥२॥

किन्तु श्रोत्रेन्द्रिय की दुर्दान्तता का इतना दोष होता है कि पिंजरे में रहे हुए तीतर के शब्द को सहन न करता हुआ (स्वाधीन) तीतर वध और बंधन को प्राप्त होता है ॥२॥

थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-गव्विय-विलासियगईसु।
रूवेसु रज्जमाणा, रमंति चक्खिंदिय-वसट्टा ॥३॥

चक्षु इन्द्रिय के वशीभूत और रूपों में अनुरक्त पुरुष नारी के स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर, नेत्रों तथा गर्विक स्त्रियों की विलास युक्त गति में रमण करते हैं, आनन्दित होते हैं ॥३॥

चक्खिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं जलणंमि जलंते, पडइ पयंगो अबुद्धीओ ॥४॥

किन्तु चक्षुइन्द्रिय की दुर्दान्तता में इतना दोष होता है कि जैसे बुद्धि शून्य पतंगा जलती हुई आग में जा पड़ता है। उसी प्रकार का रूपलोभी मनुष्य भी वध-बंधनादि के दुःख भोगता है ॥४॥

अगरुवर-पवरधूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु रज्जमाणा, रमंति, घाणिंदिय-वसट्टा ॥५॥

सुगन्ध में अनुरक्त और घ्राणेन्द्रिय के वशवर्ती प्राणी श्रेष्ठ अगर, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं के पुष्प और चन्दनादि की लेप विधि में रमण करते हैं। अर्थात् इन पदार्थों के सेवन में सुख मानते हैं ॥५॥

घाणिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं ओसहिगंधेणं, बिलाओ निद्धावई उरगो ॥६॥

किन्तु घ्राणेन्द्रिय की दुर्दान्तता में इतना दोष होता है कि औषधि-सुगंधित वस्तु की गंध से सर्प अपने बिल से बाहर निकल आता है। (जिससे वह सपेरे के द्वारा पकड़ा जाकर अनेक कष्ट भोगता है।) ॥६॥

तित्त-कडुयं कसायं, महुरं बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि उ गिद्धा, रमंति जिब्भिंदिय-वसट्टा ॥७॥

स्वाद के लोभी और जिह्वा इन्द्रिय के वशवर्ती हुए प्राणी कड़वे, तीखे, कसैले, खट्टे और मीठे रस वाले बहुत से खाद्य, पेय और लेह्य (चाटने योग्य) पदार्थों में आनन्द मानते हैं ॥७॥

जिब्भिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं गललग्गुक्खित्तो, फुरइ थलविरेल्लिओ मच्छो ॥८॥

किन्तु जिह्वा इन्द्रिय का दमन न करने से इतना दोष उत्पन्न होता है कि कांटा गले में फँस जाने पर जल से बाहर खींचा हुआ मत्स्य स्थल पर फेंका जाकर तड़फता है ॥८॥

उउ-भयमाणसुहेसु य, सविभव-हियय-मण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु रज्जमाणा, रमंति फासिंदिय-वसट्टा ॥९॥

स्पर्श में आसक्त और स्पर्शनेन्द्रिय के वशवर्ती हुए प्राणी सभी ऋतुओं में सेवन करने से सुख उत्पन्न करने वाले तथा वैभव वाले हित कारक और मन को तृप्ति देने वाले मानकर माला-स्त्री आदि पदार्थों में रमण करते हैं ॥९॥

फासिंदिय-दुद्दंतत्तणस्स अह एत्तिओ हवइ दोसो।
जं खणइ मत्थयं कुंजरस्स लोहंकुसो तिक्खो ॥१०॥

किन्तु स्पर्शनेन्द्रिय का दमन न करने में इतना दोष है कि लोहे का तीखा अंकुश हाथी के मस्तक को पीड़ा पहुँचाता है ॥१०॥

कल-रिभिय-महुर-तंती-तल-ताल-वंस-कउहाभिरामेसु।
सद्देसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥११॥

कल, रिभित और मधुर वीणा, तल-ताल और बाँसुरी आदि वाद्यों के श्रेष्ठ एवं मनमोहक शब्दों में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्त मरण नहीं मरते ॥११॥

थण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-गव्विय-विलासियगईसु।
रूवेसु जे न रत्ता, वसट्टमरणं न ते मरए ॥१२॥

स्त्रियों के स्तन, जघन, वदन, हाथ, पैर, नयन तथा गर्व युक्त विलास वाली गति आदि समस्त रूपों में जो आसक्त नहीं होते, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते हैं ॥१२॥

अगरुवर-पवर-धूवण-उउयमल्लाणुलेवणविहीसु।
गंधेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥१३॥

उत्तम अगर, श्रेष्ठ धूप, विविध ऋतुओं के पुष्पों की मालाओं और विलेपनों आदि की गंध में आसक्त नहीं होते, उन्हें वशार्त मरण नहीं मरना पड़ता है ॥१३॥

तित्त-कडुयं कसायं महुरं बहुखज्ज-पेज्ज-लेज्झेसु।
आसायंमि न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥१४॥

तिक्त, कटुक, कसैले, मीठे, खाद्य, पेय और लेह्य पदार्थों के आस्वादन में जो गृद्ध नहीं होते हैं, वे वशार्त्तमरण नहीं मरते हैं ॥१४॥

उउ-भयमाणसुहेसु य, सविभव-हियय-मण-निव्वुइकरेसु।
फासेसु जे न गिद्धा, वसट्टमरणं न ते मरए ॥१५॥

विभिन्न ऋतुओं में सेवन करने से सुख देने वाले, वैभव सहित हितकर और मन को आनन्द देने वाले स्पर्शों में जो गृद्ध नहीं होते वे वशार्त्त मरण नहीं मरते हैं ॥१५॥

सद्देसु य भद्दय-पावएसु सोयविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं ॥१६॥

श्रमण को श्रोत्र के विषयभूत भद्र (प्रिय) शब्द प्राप्त होने पर तुष्ट नहीं होना चाहिये और पापक (अप्रिय-अमनोज्ञ) शब्द सुनने पर रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥१६॥

रूवेसु य भद्दय-पावएसु चक्खुविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं ॥१७॥

शुभ अथवा अशुभ रूप चक्षु के विषय होने पर, दृष्टि गोचर होने पर साधु को न कभी तुष्ट होना चाहिए और न रुष्ट होना चाहिये ॥१७॥

गंधेसु य भद्दय-पावएसु घाणविसयमुवगएसु।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं ॥१८॥

घ्राणेन्द्रिय को विषय रूप से प्राप्त शुभ अथवा अशुभ गंध में साधु को कभी भी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥१८॥

रसेसु य भद्दय-पावएसु जिब्भविसयमुवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण मया न होयव्वं ॥१९॥
फासेसु य भद्दय-पावएसु कायविसयमुवगएसु ।
तुट्ठेण व रुट्ठेण व, समणेण सया न होयव्वं ॥२०॥[1]
—णायाधम्मकहाओ सु० १ अ० १७

जिह्वा इन्द्रिय को विषय रूप में प्राप्त शुभ अथवा अशुभ रसों में साधु को कभी तुष्ट अथवा रुष्ट नहीं चाहिए ॥१९॥

स्पर्शनेन्द्रिय के विषय बने हुए प्रिय अथवा अप्रिय स्पर्शों में साधु को कभी तुष्ट या रुष्ट नहीं होना चाहिये ॥२०॥

१०. मियापुत्तकहाणयं—

१०. मृगापुत्र कथानक—

मियग्गामे विजयरायपुत्ते मियापुत्ते—

१७३. तेणं कालेणं तेणं समएणं मियग्गामे नामं नयरे होत्था—वण्णओ ।

तस्स णं मियग्गामस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए चंदणपायवे नामं उज्जाणे होत्था—सव्वोउय-पुप्फ-फलसमिद्धे—वण्णओ ।

तत्थ णं सुहम्मस्स जक्खाययणे होत्था—चिराइए जहा पुण्णभद्दे ।

तत्थ णं मियग्गामे नयरे विजए नामं खत्तिए राया परिवसइ—वण्णओ ।

तस्स णं विजयस्स खत्तियस्स मिया नामं देवी होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा—वण्णओ ।

मृगाग्राम में विजयराज पुत्र मृगापुत्र—

१७३. उस काल और उस समय में मृगाग्राम नामक एक नगर था । नगर का वर्णन समझना चाहिए ।

उस मृगा ग्राम नगर के उत्तर पूर्व दिग्भाग में चन्दनपादप नामक उद्यान था, जो सर्व ऋतुओं के पुष्पों-फलों से समृद्ध था इत्यादि वर्णन करना ।

उस उद्यान में सुधर्मा नामक यक्ष का यक्षायतन था, जो पूर्ण भद्र चैत्य के समान अति पुरातन प्राचीन था ।

उस मृगाग्राम नगर में विजय नामक एक क्षत्रिय राजा निवास करता था—उस राजा का वर्णन करना ।

उस विजय क्षत्रिय की मृगा नाम की रानी थी, जो शुभ लक्षणों एवं परिपूर्ण पंच इन्द्रियों और शरीर से युक्त थी आदि का वर्णन करना ।

मियापुत्तस्स जातिअंधआइत्तं—

१७४. तस्स णं विजयस्स खत्तियस्स पुत्ते मियाए देवीए अत्तए मियापुत्ते नामं दारए होत्था—जातिअंधे जातिमूए जातिबहिरे

मृगापुत्र का जन्मान्धत्व आदि—

१७४. उस विजय क्षत्रिय का पुत्र और मृगादेवी का आत्मज मृगा पुत्र नाम का एक बालक था । वह बालक जन्म काल से ही अंधा,

---

१. वृत्तिकृता समुद्धृता निगमनगाथा—

जह सो कालियदीवो, अणुवमसोक्खो तहेव जइ-धम्मो । जह आसा तह साहू, वणिय व्वऽणुकूलकारिजणा ॥१॥
जह सद्दाइ-अगिद्धा, पत्ता नो पासबंधणं आसा । तह विसएसु अगिद्धा, बज्झंति न कम्मणा साहू ॥२॥
जह सच्छंदविहारो, आसाणं तह इहं वरमुणीणं । जर-मरणाइ-विवज्जिय सायत्ताणंदनिव्वाणं ॥३॥
जह सद्दाइसु गिद्धा, बद्धा आसा तहेव विसयरया । पावेंति कम्मबंधं, परमासुह-कारणं घोरं ॥४॥
जह ते कालियदीवा, णीया अण्णत्थ दुहगणं पत्ता । तह धम्म-परिब्भट्ठा, अधम्मपत्ता इहं जीवा ॥५॥
पावेंति कम्म-नरवइ-वसया संसारवाहियालीए । आसप्पमद्दएहिं व, नेरइयाईहिं दुक्खाइं ॥६॥

जातिपंगुले हुंडे य वायव्वे । नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा नासा वा । केवलं से तेसिं अंगोवंगाणं आगिती आगितिमेत्ते ।

गूंगा, बहरा, पंगु, हुंड (बेडोल शरीर वाला) और वात रोगी था। उस बालक के हाथ, पैर, कान, नेत्र और नासिका भी नहीं थी। केवल उन अंगोपांगों का आकार मात्र ही था और वह भी उचित रूप में नहीं था।

तए णं सा मियादेवी तं मियापुत्तं दारगं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ ।

वह मृगादेवी उस मृगापुत्र दारक का गुप्तभूमि गृह में गुप्त रूप से आहारादि के द्वारा पालन-पोषण करती हुई अपना समय व्यतीत करती थी ।

महावीरसमोसरणे गोयमस्स जाइअन्धपुरिसविसए पुच्छा—

महावीर-समवसरण में गौतम की जन्मान्ध पुरुष विषयक पृच्छा—

१७५. तत्थ णं मियग्गामे नयरे एगे जाइअंधे पुरिसे परिवसइ । से णं एगेणं सचक्खुएणं पुरिसेणं पुरओ दंडएणं पकड्ढिज्जमाणे-पकड्ढिज्जमाणे फुट्ट-हडाहड सीसे मच्छिया-चडगर-पहकरेणं अण्णिज्जमाणमग्गे मियग्गामे नयरे गेहे-गेहे कोलुण-वडियाए वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ ।

१७५. उस मृगा ग्राम नगर में एक जन्मान्धपुरुष रहता था। आँखों वाले एक व्यक्ति के सहारे लकड़ी के द्वारा आगे-आगे ले जाया जाता हुआ, जटाजूट जैसे अत्यन्त अस्तव्यस्त बिखरे बालों से युक्त सिर वाला और अतीव मैला कुचैला होने के कारण सदैव जिसके आस-पास मक्खियां भिनभिनाती रहती हैं, ऐसा वह मृगाग्राम नगर के घर-घर में दैन्यवृत्ति से भीख मांगकर अपनी आजीविका चलाते हुए समय बिताता था।

१७६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्जमाणे सुहंसुहेणं विहरमाणे मियग्गामे नयरे चंदणपायवे उज्जाणे समोसरिए । परिसा निग्गया ।

१७६. उस काल और उस समय में पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए एक ग्राम से दूसरे ग्राम में गमन करते हुए और सुखे-सुखे विहार करते हुए श्रमण भगवान महावीर मृगाग्राम नगर के चन्दनपादप उद्यान में पधारे। वंदना करने परिषदा नगर से निकली।

तए णं से विजए खत्तिए इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जहा कूणिए तहा निग्गए-जाव-पज्जुवासइ ।

तब वह विजय क्षत्रिय इस वृतान्त को जानकर जिस प्रकार से कोणिक राजा भगवान के दर्शनार्थ चम्पा नगरी से निकला था उसी प्रकार दर्शनार्थ चला—यावत् पर्युपासना करने लगा।

१७७. तए णं से जाइअंधे पुरिसे तं महयाजणसद्दं च जणवूहं च जणबोलं च जणकलकलं च सुणेत्ता तं पुरिसं एवं वयासी—"किण्णं देवाणुप्पिया ! अज्ज मियग्गामे नयरे इंदमहे इ वा खंदमहे इ वा उज्जाण-गिरिजत्ता इ वा, जओ णं बहवे उग्गा भोगा एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति ?"

१७७. तदनन्तर वह जन्मान्धपुरुष लोगों की आवाजों को, भीड़ को, बातचीत को और कोलाहल को जानकर अपने साथ के पुरुष से इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिय ! क्या आज मृगा ग्राम में इन्द्रमहोत्सव है, या स्कन्दमहोत्सव है अथवा कोई उद्यान-गिरियात्रा है जिससे ये बहुत से उग्रवंशीय, भोगवंशीय आदि एक ही दिशा में एक ही ओर मुख करके निकल रहे हैं—जा रहे हैं ?"

तए णं से पुरिसे तं जाइअंधं पुरिसं एवं वयासी—नो खलु देवाणुप्पिया ! अज्ज मियग्गामे नयरे इंदमहे इ वा जाव-गिरिजत्ता इ वा, जओ णं बहवे उग्गा भोगा एगदिसिं एगाभिमुहा निग्गच्छंति । एवं खलु देवाणुप्पिया ! समणे भगवं महावीरे आइगरे तित्थगरे इहमागए इह संपत्ते इह समोसढे इह चेव मियग्गामे नयरे चंदणपायवे उज्जाणे अहापडिरूवं ओग्गहं ओगिण्हित्ता संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ । तए णं एए-जाव-निग्गच्छंति ।

तब उस पुरुष ने उस जन्मान्धपुरुष से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आज मृगाग्राम नगर में न तो इन्द्रमह है और न—यावत्—गिरियात्रा है, जिससे ये बहुत से उग्र और भोग वंशीय आदि एकाभिमुख होकर एक ही ओर जा रहे हैं। किन्तु हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि धर्म की आदि करने वाले, तीर्थंकर श्रमण भगवान् महावीर यहां आये हैं, यहां प्राप्त हुए हैं और यहां पधारे हैं एवं इसी मृगा ग्राम नगर के चंदन पादप उद्यान में यथाप्रतिरूप अभिग्रह लेकर संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे हैं। इसीकारण ये सभी लोग—यावत्—नगर से निकल रहे हैं।"

१७८. तए णं से अंधे पुरिसे तं पुरिसं एवं वयासी—गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! अम्हे वि समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो सक्कारेमो सम्माणेमो कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं पज्जुवासामो।

तए णं से जाइअंधे पुरिसे तेणं पुरओ दंडएणं पुरिसेणं पकड्ढिज्जमाणे-पकड्ढिज्जमाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, वंदइ नमंसइ-जाव-पज्जुवासइ।

१७८. तत्पश्चात् उस अंधपुरुष ने उस पुरुष से यह कहा—"हे देवानुप्रिय ! हम चलें और श्रमण भगवान महावीर को वन्दन नमस्कार करें, उनका सत्कार-सम्मान करें एवं कल्याण रूप मंगल रूप, देवरूप और चैत्यरूप उनकी पर्युपासना करें।"

तत्पश्चात् वह जन्मान्ध पुरुष उस पुरुष के द्वारा लकड़ी के सहारे आगे-आगे ले जाया जाता हुआ जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आया, आकर उसने तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, वन्दना नमस्कार किया—यावत्—वह पर्युपासना करने लगा।

१७९. तए णं समणे भगवं महावीरे विजयस्स रण्णो तीसे य महइमहालियाए परिसाए मज्झगए विचित्तं धम्ममाइक्खइ। परिसा पडिगया विजए वि गए।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ।

तए णं से भगवं गोयमे तं जाइअंधं पुरिसं पासइ, पासित्ता जायसड्ढे जायसंसए जायकोउहल्ले, उप्पण्णसड्ढे उप्पण्णसंसए उप्पण्णकोउहल्ले, संजायसड्ढे संजायसंसए संजायकोउहल्ले, समुप्पण्णसड्ढे, समुप्पण्णसंसए समुप्पण्णकोउहल्ले उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ णमंसइ, वंदित्ता णमंसित्ता णच्चासण्णे णाइदूरे सुस्सूसमाणे णमंसमाणे अभिमुहे विणएणं पंजलिउडे पज्जुवासमाणे एवं वयासी—

१७९. तत्पश्चात् श्रमण भगवान् महावीर विजय राजा को उस अति विशाल परिषदा के मध्य में बैठकर विचित्र धर्मोपदेश किया। परिषदा वापस चली गई विजय भी चला गया।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान् महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी इन्द्रभूति नामक अनगार—यावत्—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए वहाँ विचरण कर रहे थे।

तत्पश्चात् उन भगवान् गौतम ने उस जन्मान्धपुरुष को देखा, देखकर उन्हें जिज्ञासा हुई, संशय हुआ, कुतूहल हुआ, जिज्ञासा उत्पन्न हुई, संशय उत्पन्न हुआ, कुतूहल उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से जिज्ञासा हुई, विशेष रूप से संशय हुआ, विशेष रूप से कुतूहल हुआ, विशेष रूप से जिज्ञासा उत्पन्न हुई, विशेष रूप से संशय उत्पन्न हुआ, विशेष रूप से कुतूहल उत्पन्न हुआ और वे उत्थान करके अपने स्थान से उठ खड़े हुए, उठकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहाँ आये, वहाँ आकर उन्होंने श्रमण भगवान् महावीर को तीन बार दक्षिण दिशा से प्रारम्भ करके प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन नमस्कार किया, वंदन नमस्कार करके न अति दूर और न अति निकट किन्तु उचित स्थान पर स्थित होकर सुनने की इच्छा करते हुए नमस्कार पूर्वक सन्मुख दोनों हाथ जोड़कर सविनय पर्युपासना करते हुए इस प्रकार निवेदन किया—

"अत्थि णं भंते ! केइ पुरिसे जाइअंधे जायअंधारूवे ?"

"हंता अत्थि।"

'हे भदन्त ! क्या कोई ऐसा पुरुष भी है जो जन्मान्ध हो और जन्मान्धरूप से उत्पन्न हुआ हो ?"

"हाँ, ऐसा पुरुष है !" भगवान ने उत्तर दिया।

भगवया मियापुत्तसरूवनिरूवणं—

१८०. "कहं णं भंते ! से पुरिसे जाइअंधे जायअंधारूवे ?"

"एवं खलु गोयमा ! इहेव मियग्गामे नयरे विजयस्स खत्तियस्स पुत्ते मियादेवीए अत्तए मियापुत्ते नामं दारए जाइअंधे जायअंधारूवे। नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा नासा वा केवलं से तेसिं अंगोवंगाणं आगिती आगितिमेत्ते।

भगवान द्वारा मृगापुत्र का स्वरूप निरूपण—

१८०. हे भदन्त ! कहाँ है वह पुरुष जो जन्मान्ध हो और अंध रूप से उत्पन्न हुआ हो ?"

भगवान ने उत्तर दिया—"हे गौतम ! इसी मृगा ग्राम नगर में जन्मान्ध और अन्ध रूप से उत्पन्न हुआ विजय क्षत्रिय का पुत्र एवं मृगादेवी का आत्मज मृगापुत्र नामक दारक है। उस बालक के न हाथ हैं, न पैर हैं, न कान है, न आँखें हैं और न नासिका है, केवल उन अंगोपांगों की आकृति-चिह्न रूप है।

तए णं सा मियादेवी तं मियापुत्तं दारगं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।

वह मृगादेवी उस मृगापुत्र दारक को गुप्त भूमि गृह में गुप्त रूप से पालन-पोषण करती हुई विचरण करती है।"

गोयमस्स मियापुत्तदंसणं—

गौतम का मृगापुत्र दर्शन—

१८१. तए णं से भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते ! अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मियापुत्तं दारगं पासित्तए।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया !"

१८१. तत्पश्चात् भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! मैं आपसे आज्ञा, अनुमति प्राप्त कर उस मृगापुत्र दारक को देखना चाहता हूँ।"

भगवान ने उत्तर दिया—'हे देवानुप्रिय ! जैसे तुम्हें सुख हो वैसा करो !'

१८२. तए णं से भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे हट्ठतुट्ठे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियं असंभंतं अचवलं जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव मियग्गामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मियग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव मियादेवीए गिहे तेणेव उवागच्छइ।

१८२. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा अनुमति प्राप्त होने पर हर्षित एवं सन्तुष्ट भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर के पास से निकले और निकलकर बिना किसी उतावली, व्याकुलता और घबराहट के युगान्तर (चार हाथ) प्रमाणभूमि को देखने की दृष्टि से आगे-आगे की भूमि को देखकर विवेकपूर्वक गमन करते हुए जहाँ मृगा ग्राम नगर था, वहाँ आये, आकर मृगा ग्राम नगर के मध्य भाग में से चलते हुए जहाँ मृगादेवी का घर था, वहाँ आये।

१८३. तए णं सा मियादेवी भगवं गोयमं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवस-विसप्पमाणहियया आसणाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठपयाइं अणुगच्छइ, अणुगच्छित्ता तिक्खुत्तो आयाहिणपयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किमागमणप्पओयणं ?"

१८३. तब मृगादेवी ने भगवान गौतम को आते हुए देखा, देखकर वह हृष्ट-तुष्ट, आनन्दित चित्त, प्रीतिमना, परम प्रसन्न और हर्ष वश विकसित हृदय होती हुई अपने आसन से उठी उठकर सात-आठ कदम सामने गई और जाकर तीन बार आदक्षिण प्रादक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वन्दन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! बतलाइये कि आपके पधारने का क्या प्रयोजन है अर्थात् आप किस प्रयोजन से पधारे हैं ?"

तए णं से भगवं गोयमे मियं देविं एवं वयासी—"अहं णं देवाणुप्पिए ! तव पुत्तं पासिउं हव्वमागए।"

तए णं सा मियादेवी मियापुत्तस्स दारगस्स अणुमग्गजायए चत्तारि पुत्ते सव्वालंकारविभूसिए करेइ, करेत्ता भगवओ गोयमस्स पाएसु पाडेइ, पाडेत्ता एवं वयासी—"एए णं भंते ! मम पुत्ते पासह।"

तब भगवान् गौतम ने मृगादेवी से यह कहा—'हे देवानुप्रिये ! मैं आपके पुत्र को देखने के लिये यहाँ आया हूँ।"

तत्पश्चात् मृगादेवी ने मृगापुत्र दारक के बाद अनुक्रम से उत्पन्न हुए चार पुत्रों को समस्त अलंकारों से अलंकृत किया अलंकृत करके भगवान गौतम के चरणों में पाद वंदन कराया, पाद वंदन कराने के पश्चात् इस प्रकार कहा—'हे भदन्त ! मेरे इन पुत्रों को देखिये।"

१८४. तए णं से भगवं गोयमे मियं देविं एवं वयासी—"नो खलु देवाणुप्पिए ! अहं एए तव पुत्ते पासिउं हव्वमागए। तत्थ णं जे से तव जेट्ठे पुत्ते मियापुत्ते दारए जाइअंधे जायअंधारूवे, जं णं तुमं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरसि, तं णं अहं पासिउं हव्वमागए।"

१८४. तदनन्तर भगवान गौतम ने मृगादेवी से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! मैं तुम्हारे इन पुत्रों को देखने के लिये यहाँ नहीं आया हूँ। लेकिन तुम्हारा ज्येष्ठपुत्र मृगापुत्र दारक जो जन्मान्ध और जन्मान्ध रूप है तथा जिसको तुम एकान्त गुप्त भूमिगृह में रखकर गुप्तरूप से खान-पान के द्वारा सावधानी के साथ पालन-पोषण करती रहती हो, उसको देखने के लिये मैं यहाँ आया हूँ।"

तए णं सा मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी— "से के णं गोयमा ! से तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा, जेणं एसमट्ठे मम ताव रहस्सीकए तुब्भं हव्वमक्खाए, जओ णं तुब्भे जाणह ?"

उस मृगादेवी ने भगवान गौतम से (आश्चर्यचकित हो) इस प्रकार कहा—"हे गौतम ! वह ऐसा कौन ज्ञानी और तपस्वी है, जिसने यह बात, जिसे मैंने गुप्त रखी है, आपको शीघ्र बतला दी, जिससे कि तुमने उसे जान लिया ?"

१८५. तए णं भगवं गोयमे मियं देविं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिए ! मम धम्मायरिए समणे भगवं महावीरे तहारूवे नाणी वा तवस्सी वा, जेणं एसमट्ठे तव ताव रहस्सीकए मम हव्वमक्खाते, जओ णं अहं जाणामि।"

जावं च णं मियादेवी भगवया गोयमेणं सद्धिं एयमट्ठं संलवइ, तावं च णं मियापुत्तस्स दारगस्स भत्तवेला जाया यावि होत्था।

१८५. तदनन्तर भगवान गौतम ने मृगादेवी से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिये ! मेरे धर्माचार्य श्रमण भगवान महावीर तथारूप ज्ञानी और तपस्वी है, जिन्होंने यह बात, जिसे तुमने गुप्त रखा है, मुझे शीघ्र बतला दी, जिससे कि मैंने जान लिया।"

जिस समय मृगा देवी भगवान गौतम के साथ इस विषय में बातचीत कर रही थी कि उसी समय मृगापुत्र बालक के भोजन का समय भी हो गया था।

१८६. तए णं सा मियादेवी भगवं गोयमं एवं वयासी—"तुब्भे णं भंते ! 'इहं चेव' चिट्ठह, जा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि" त्ति कट्टु जेणेव भत्तघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वत्थपरियट्टयं करेइ, करेत्ता कट्ठसगडियं गिण्हइ, गिण्हित्ता विउलस्स असण-पाण-खाइम-साइमस्स भरेइ, भरेत्ता तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढमाणी-अणुकड्ढमाणी जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भगवं गोयमं एवं वयासी—"एह णं भंते ! तुब्भे मए सद्धिं अणुगच्छह, जा णं अहं तुब्भं मियापुत्तं दारगं उवदंसेमि -" तए णं से भगवं गोयमे मियं देविं पिट्ठओ समणुगच्छइ।

१८६. तब मृगादेवी ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—"हे भदन्त ! आप यहीं पर ठहरें, रुकें, जब तक मैं आपको मृगापुत्र दारक को दिखलाती हूँ।" ऐसा कहकर जहाँ भोजनालय था, वहाँ पहुँची, वहाँ पहुँचकर वस्त्र परिवर्तन किये, वस्त्र-परिवर्तन करके लकड़ी की गाड़ी ली, लेकर उसमें अधिक मात्रा में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन रखा, रखकर उस लकड़ी की गाड़ी (ठेला) को खींचती हुई जहाँ भगवान गौतम थे, उनके पास आई, आकर भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—"हे भदन्त ! आप मेरे साथ पीछे-पीछे चलें, मैं आपको मृगापुत्र बालक दिखाती हूँ ! तब भगवान् गौतम मृगादेवी के पीछे-पीछे चलने लगे।

१८७. तए णं सा मियादेवी तं कट्ठसगडियं अणुकड्ढमाणी-अणुकड्ढमाणी जेणेव भूमिघरए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता चउप्पुडेणं वत्थेणं मुहं बंधमाणी भगवं गोयमं एवं वयासी—"तुब्भे वि णं भंते ! मुहपोत्तियाए मुहं बंधह।"

तए णं से भगवं गोयमे मियादेवीए एवं वुत्ते समाणे मुहपोत्तियाए मुहं बंधेइ।

तए णं सा मियादेवी परंमुही भूमिघरस्स दुवारं विहाडेइ। तए णं गंधे निग्गच्छइ। जहानामए—अहिमडे इ वा गोमडे इ वा सुणहमडे इ वा मज्जारमडे इ वा मणुस्समडे इ वा महिसमडे इ वा मूसगमडे इ वा आसमडे इ वा हत्थिमडे इ वा सीहमडे इ वा वग्घमडे इ वा विगमडे इ वा दीविगमडे इ वा मय-कुहिय-विणट्ठ-दुरभिवावण्ण-दुब्भिगंधे किमिजालाउलसंसत्ते। असुइ-विलीण-विगय-बीभत्सदरिसणिज्जे भवेयारूवे सिया ?

नो इणट्ठे समट्ठे। एत्तो अणिट्ठतराए चेव अकंततराए चेव अप्पियतराए चेव अमणुण्णतराए चेव अमणामतराए चेव गंधे पण्णत्ते।

१८७. इसके बाद मृगादेवी उस ठेले को खींचती-खींचती जहाँ भूमिगृह था, वहाँ आई, आकर चार परत के वस्त्र से मुँह को बाँधती हुई भगवान गौतम से इस प्रकार बोली—"हे भदन्त ! आप भी मुखवस्त्रिका से मुख को बाँध लें।"

तब मृगादेवी की इस बात को सुनकर भगवान गौतम ने मुखवस्त्रिका से अपना मुख बाँध लिया।

तदनन्तर मृगादेवी ने दूसरी ओर मुँह फेर कर भूमिगृह के द्वार को उघाड़ा। तब उसमें से दुर्गंध निकली। जैसे कि वह मृत सर्प के कलेवर अथवा मृतगाय के कलेवर अथवा इसी प्रकार से क्रमशः मृत कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य महिष-भैंसे, मूषक-चूहा, अश्व, हाथी, सिंह, व्याघ्र, वृक, भेड़िया, चीता के कलेवर की हो अथवा मरे हुए, सड़े हुए, गले हुए, जानवरों के द्वारा खाये जाने से, क्षत-विक्षत विकारों से युक्त, दुरभि गंध और कृमियों-कीड़ों से व्याप्त, अशुचि, विकृत, बीभत्स, डरावने किसी मृत कलेवर की हो। क्या वह वस्तुतः ऐसे स्वरूप वाली थी ?

नहीं, यह अर्थ समर्थ नहीं है, वह दुर्गन्ध तो इससे भी अधिक अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम गंध वाली थी। अर्थात् इन सबकी दुर्गन्ध से भी वह अधिक असह्य-दुस्सह दुर्गन्ध थी।

१८८. तए णं से मियापुत्ते दारए तस्स विउलस्स असण-पाण-खाइम-साइमस्स गंधेणं अभिभूए समाणे तंसि विउलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमस्स गंधेणं अभिभूए समाणे तंसि विउलंसि असण-पाण-खाइम-साइमंसि मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे तं विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं आसएणं आहारेइ, आहारेत्ता खिप्पामेव विद्धंसेइ, विद्धंसेत्ता तओ पच्छा पूयत्ताए य सोणियत्ताए य परिणामेइ, तं पि य णं पूयं च सोणियं च आहारेइ।

१८८. तत्पश्चात् उस मृगापुत्र दारक ने उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन की गन्ध से आकृष्ट होकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन में मूर्च्छित, आसक्त, गृद्ध और तल्लीन होकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य रूप भोजन को मुख से खाया, खाकर शीघ्र ही विनष्ट कर दिया अर्थात् जठराग्नि द्वारा पचा दिया, पचाकर उसके बाद पीप और खून रूप में परिणत कर दिया और फिर उस पीप और खून को भी चाटने लगा।

गोयमेण मियापुत्तस्स पुव्वभवपुच्छा—

गौतम द्वारा मृगापुत्र की पूर्वभव पृच्छा—

१८९. तए णं भगवओ गोयमस्स तं मियापुत्तं दारगं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा। पच्चक्खं खलु अयं पुरिसे निरयपडिरूवियं वेयणं वेदेति' त्ति कट्टु मियं देविं आपुच्छइ, आपुच्छित्ता मियाए देवीए गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता मियग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—

१८९. इसके पश्चात् उस मृगापुत्र दारक को देखकर भगवान गौतम को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"अहो! यह बालक पूर्व के प्राचीन दुश्चीर्ण, दुष्टता से उपार्जन किये हुए, दुष्प्रतिक्रांत—जिनका प्रतिकार करना दुष्कर है, ऐसे अशुभ, पापमय किये हुए कर्मों के पाप रूप फल विशेष का अनुभव करते हुए अपना काल यापन कर रहा है। मैंने यद्यपि नरक और नैरयिक नहीं देखे हैं, किन्तु यह पुरुष साक्षात् नरक के प्रतिरूप वेदना का वेदन-अनुभव कर रहा है।" ऐसा विचार कर मृगादेवी से जाने को पूछा, पूछकर मृगादेवी के घर से निकले, निकलकर मृगाग्राम नगर के मध्य भाग में से निकले, निकलकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर को तीन बार आदक्षिण, प्रदक्षिणा की प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया और वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार कहा—

"एवं खलु अहं तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे मियग्गामं नयरं मज्झंमज्झेणं अणुप्पविसामि, जेणेव मियाए देवीए गिहे तेणेव उवागए। तए णं सा मियादेवी ममं एज्जमाणं पासइ, पासित्ता हट्ठा, तं चेव सव्वं-जाव-पूयं च सोणियं च आहारेइ। तए णं मम इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—अहो णं इमे दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

"हे भदन्त! मैं आपसे आज्ञा-अनुमति लेकर मृगाग्राम नगर के मध्य भाग में प्रविष्ट हुआ और फिर जहाँ मृगादेवी का घर था वहाँ गया। तब मृगादेवी ने मुझको अपनी ओर आते हुए देखा, देखकर हर्षित हुई इत्यादि पीप और खून चाटने लगा; पर्यन्त का समस्त वर्णन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये। तब मुझे यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत, संकल्प उत्पन्न हुआ—'अहो! यह बालक पूर्व के प्राचीन दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त ऐसे अशुभ पापमय कर्मों के पापरूप फल विशेष का अनुभव करते हुए अपना काल यापन कर रहा है।'

से णं भंते! पुरिसे पुव्वभवे के आसि? किं नामए वा किं गोत्ते वा? कयरंसि गामंसि वा नयरंसि वा? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता, केसिं वा पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

हे भदन्त! वह पुरुष पूर्वभव में क्या-कौन था? उसका क्या नाम और क्या गोत्र था? किस ग्राम अथवा किस नगर में रहता था? उसने क्या दिया, क्या भोग किया, क्या आचरण किया और किन-किन पूर्व के प्राचीन, दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों के पाप रूप फल विशेष का अनुभव करते हुए जीवन व्यतीत कर रहा है।"

मियापुत्तस्स एक्काइनामरट्ठकूडकहा—

१६०. गोयमा ! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—"एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सयदुवारे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे वण्णओ।

मृगापुत्र की एकादि नामक राष्ट्रकूट कथा—

१६०. 'हे गौतम !' इस प्रकार से आमंत्रित कर श्रमण भगवान् महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—"हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में शतद्वार नामक नगर था, जो भवनादि वैभव ऋद्धि से सम्पन्न, स्व-पर चक्र के भय से रहित एवं धन-धान्यादि समृद्धि से समृद्धिशाली था इत्यादि वर्णन करना चाहिये।

तत्थ णं सयदुवारे नयरे धणवई नामं राया होत्था—वण्णओ।

उस शतद्वार नगर में धनपति नाम का राजा था, राजा का वर्णन करना।

तस्स णं सयदुवारस्स नयरस्स अदूरसामंते दाहिणपुरत्थिमे दिसीभाए विजयवद्धमाणे नामं खेडे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे।

उस शतद्वार नगर से थोड़ी दूर दक्षिण पूर्व दिग्भाग में विजय वर्धमान नामका खेट (नदी और पर्वतों से घिरा नगर) था, जो ऋद्धि सम्पन्न, स्व पर चक्र के भय से रहित और समृद्धिशाली था।

तस्स णं विजयवद्धमाणस्स खेडस्स पंच गामसयाइं आभोए यावि होत्था।

उस विजय वर्धमान खेट का पाँच सौ ग्रामों का विस्तार था, अर्थात् पाँच सौ ग्राम खेट के अधीन थे।

तत्थ णं विजयवद्धमाणे खेडे एक्काई नामं रट्ठकूडे होत्था—अधम्मिए अधम्माणुए अधम्मिट्ठे अधम्मक्खाई अधम्मपलोई अधम्मपलज्जणे अधम्मसमुदाचारे अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणे दुस्सीले दुव्वए दुप्पडियाणंदे।

उस विजय वर्धमान खेट में एकादि नामक राष्ट्रकूट राजा द्वारा नियुक्त प्रतिनिधि था, जो कि अधार्मिक-धर्मविरोधी, अधर्म का अनुसरण करने वाला, अधर्मप्रेमी, अधर्म का कथन और प्रचार करने वाला, सर्वत्र अधर्म का अवलोकन करने वाला, अधर्म में अत्यधिक अनुराग रखने वाला, अधर्म का ही आचरण करने वाला, अधर्म से ही आजीविका चलाने वाला, दुष्ट स्वभावी व्रतादि से शून्य और दुष्कार्यों में आनन्द मानने वाला था।

से णं एक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स पंचण्हं गामसयाणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ।

वह एकादि राष्ट्रकूट विजय वर्धमान खेट के पाँच सौ ग्रामों का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व, स्वामित्व, पालकत्व आज्ञैश्वरत्व और सेनापतित्व करते हुए रक्षण करते हुए विचरण करता था।

इक्काइनामस्स रट्ठकूडस्स पयापीडणं—

१६१. तए णं से एक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स पंच गामसयाइं बहूहिं करेहि य भरेहि य विद्धीहि य उक्कोडाहि य पराभवेहि य देज्जेहि य भेज्जेहि य कुन्तेहि य लंछपोसेहि य आलीवणेहि य पंथकोट्टेहि य ओवीलेमाणे-ओवीलेमाणे विहम्मेमाणे-विहम्मेमाणे तज्जेमाणे-तज्जेमाणे तालेमाणे-तालेमाणे निद्धणे करेमाणे-करेमाणे विहरइ।

एकादिनामक राष्ट्रकूट द्वारा प्रजा पीड़न—

१६१. तत्पश्चात् वह एकादि राष्ट्रकूट विजय वर्धमान खेट के पाँच सौ गाँवों को अनेक प्रकार के करों, महसूलों से भरों—कर समूहों से, किसानों से दुगुना धान्य लेने से, रिश्वतों से, दमन करने से, अधिक ब्याज लेने से, झूठे अपराध लगा देने से, अस्त्र शस्त्रों को बेचने से, चोरों आदि के पोषण से, ग्रामादि में आग लगा देने से, पथिकों का घात करने से प्रजा को पीड़ित करता हुआ, धर्म से विमुख करता हुआ, तिरस्कृत करता हुआ, ताड़ित करता हुआ और धन रहित करता हुआ अपना समय बिताता था।

तए णं से एक्काई रट्ठकूडे विजयवद्धमाणस्स खेडस्स बहूणं राईसर-तलवर-माडम्बिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाणं, अण्णेसिं च बहूणं गामेल्लगपुरिसाणं बहुसु कज्जेसु य कारणेसु य मंतेसु य गुज्झएसु य निच्छएसु य ववहारेसु य सुणमाणे भणइ 'न सुणेमि', असुणमाणे भणइ 'सुणेमि', पस्समाणे भणइ, 'न पासेमि',

तदनन्तर वह एकादि राष्ट्रकूट विजय वर्धमान खेट के बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडविक कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति, सार्थवाह आदि तथा अन्य अनेक ग्रामीण पुरुषों के बहुत से कार्यों में, कार्य साधक हेतुओं में, गुप्त विचारों में, निश्चयों में और व्यवहारों में सुनता हुआ भी कहता था कि—'मैंने नहीं सुना है', न सुनता हुआ भी कहता था कि 'मैं सुनता हूँ' देखते

अपस्समाणे भणइ 'पासेमि', भासमाणे भणइ 'न भासेमि।' अभासमाणे भणइ 'भासेमि', गिण्हमाणे, भणइ 'न गिण्हेमि', अगिण्हमाणे भणइ 'गिण्हेमि', जाणमाणे भणइ 'न जाणेमि', अजाणमाणे भणइ 'जाणेमि।'

हुए भी कहता था कि 'मैंने नहीं देखा है' नहीं देखते हुए भी कहता कि 'मैं देखता हूँ', बोलते हुए भी कहता कि 'मैं बोलता हूँ' और नहीं बोलते हुए भी कहता कि 'मैं बोलता हूँ', ग्रहण करता हुआ भी कहता है कि 'मैं ग्रहण नहीं करता हूँ', नहीं ग्रहण करते हुए भी कहता कि 'मैं ग्रहण करता हूँ', जानता हुआ भी कहता कि 'मैं नहीं जानता हूँ' और नहीं जानता हुआ भी कहता कि 'मैं जानता हूँ' अर्थात् प्रत्येक बात के लिये विपरीत ही कहता था।

तए णं से एक्काई रट्ठकूडे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणमाणे विहरइ।

इस प्रकार वह एकादि राष्ट्रकूट इस प्रकार के कर्म करने से, इस प्रकार के कार्यों में तत्पर रहने से, इसी प्रकार की विद्या, विज्ञान वाला होने से और इसी प्रकार के आचार वाला होने से अत्यधिक दुःख के कारणभूत मलिन पाप कर्मों का उपार्जन करता हुआ विचरता था।

एक्काइस्स असज्झरोगायंका—

एकादि को असाध्य रोगातंक—

१६२. तए णं तस्स एक्काइस्स रट्ठकूडस्स अण्णया कयाइ सरीरगंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तं जहा—

सासे कासे जरे दाहे, कुच्छिसूले भगंदरे।
अरिसा अजीरए दिट्ठी-मुद्धसूले अकारए।
अच्छिवेयणा कण्णवेयणा कंडू उदरे कोढे॥१॥

१६२. तत्पश्चात् उस एकादि राष्ट्रकूट के शरीर में किसी एक समय एक साथ ही सोलह असाध्य रोगातंक उत्पन्न हो गये, जैसे कि—

(१) श्वास (२) कास-खाँसी (३) ज्वर (४) दाह (५) कुक्षिशूल (६) भगंदर (७) अर्श-बवासीर (८) अजीर्ण (९) नेत्र-शूल (१०) मस्तक शूल (११) अरुचि-भोजन की इच्छा न होना (१२) नेत्रवेदना (१३) कर्णवेदना (१४) कंडू—खाज (१५) जलोदर और (१६) कोढ़॥१॥

तए णं से एक्काई रट्ठकूडे सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! विजयवद्धमाणे खेडे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापहपहेसु महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—इहं खलु देवाणुप्पिया! एक्काइस्स रट्ठकूडस्स सरीरगंसि सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तं जहा—सासे-जाव-कोढे, तं जो णं इच्छइ देवाणुप्पिया! वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुयपुत्तो वा तेगिच्छिओ वा तेगिच्छियपुत्तो वा एक्काइस्स रट्ठकूडस्स तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, तस्स णं एक्काई रट्ठकूडे विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ। दोच्चं पि तच्चं पि उग्घोसेह, उग्घोसेत्ता एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

तत्पश्चात् इन असाध्य रोगातंकों से ग्रस्त होकर एकादि राष्ट्रकूट ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और विजय वर्धमान खेट के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों राजमार्गों और मार्गों में बड़े ऊँचे स्वरों में घोषणा उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—"हे देवानुप्रियो! एकादि राष्ट्रकूट के शरीर में असाध्य सोलह रोगातंक उत्पन्न हो गये हैं जैसे कि श्वास—यावत्—कोढ़। इसलिए हे देवानुप्रियो! जो वैद्य या वैद्यपुत्र, जानकार या जानकारपुत्र, चिकित्सक या चिकित्सक पुत्र एकादि राष्ट्रकूट के उन सोलह रोगातंकों में से एक भी रोगातंक को उपशान्त कर देगा, उसको एकादि राष्ट्रकूट विपुल धन सम्पत्ति प्रदान करेगा।" इसी प्रकार से दूसरी और तीसरी बार भी उद्घोषणा करो और उद्घोषणा करके मेरी इस आज्ञा को वापस मुझे लौटाओ अर्थात् घोषणा करने की मुझे सूचना दो।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति।

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने—यावत्—उस आज्ञा को वापस लौटाया, घोषणा करके आज्ञा पालन करने की सूचना दी।

१९३. तए णं विजयवद्धमाणे खेडे इमं एयारूवं उग्घोसणं सोच्चा निसम्म बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य सत्थकोसहत्थगया य सएहिं-सएहिं गिहेहिंतो पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता विजयवद्धमाणस्स खेडस्स मज्झंमज्झेणं जेणेव एक्काई-रट्ठकूडस्स गिहे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता एक्काइ-रट्ठकूडस्स सरीरगं परामुसंति, परामुसित्ता तेसिं रोगायंकाणं निदाणं पुच्छंति, पुच्छित्ता एक्काई-रट्ठकूडस्स अब्भंगेहि य उव्वट्टणाहि य सिणेहपाणेहि य वमणेहि य विरेयणेहि य सेयणेहि य अवद्दहणाहि य अवण्हाणेहि य अणुवासणाहि य वत्थिकम्मेहि य निरूहेहि य सिरावेहेहि य तच्छणेहि य पच्छणेहि य सिरवत्थीहि य तप्पणाहि य पुडपागेहि य छल्लीहि य वल्लीहि य मूलेहि य कंदेहि य पत्तेहि य पुप्फेहि य फलेहि य बीएहि य सिलियाहि य गुलियाहि य ओसहेहि य भेसज्जेहि य इच्छंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, नो चेव णं संचाएंति उवसामित्तए।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य जाहे नो संचाएंति तेसिं सोलसण्हं रोगायंकाणं एगमवि रोगायंकं उवसामित्तए, ताहे संता तंता परितंता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

इक्काइस्स निरयगमणं—

१९४. तए णं एक्काई रट्ठकूडे वेज्ज-पडियाइक्खिए परियारगपरिचत्ते निव्विण्णोसहभेसज्जे सोलसरोगायंकेहिं अभिभूए समाणे रज्जे य रट्ठे य कोसे य कोट्ठागारे य बले य वाहणे य, पुरे य अंतेउरे य मुच्छिए गढिए गिद्धे अज्झोववण्णे रज्जं च रट्ठं च कोसं च कोट्ठागारं च बलं च वाहणं च पुरं च अंतेउरं च आसाएमाणे पत्थेमाणे पीहेमाणे अभिलसमाणे अट्टदुहट्टवसट्टे अड्ढाइज्जाइं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोसेणं सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

मियापुत्तस्स वत्तमाणभव-वण्णणे मियाएदेवीए वेयणा गब्भसाडणवियारणा य—

१९५. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव मियग्गामे नयरे विजयस्स खत्तियस्स मियाए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे।

तए णं तीसे मियाए देवीए सरीरे वेयणा पाउब्भूया उज्जला विउला कक्कसा पगाढा चंडा दुक्खा तिव्वा दुरहियासा। जप्पभिइं च णं मियापुत्ते दारए मियाए देवीए कुच्छिंसि गब्भत्ताए उववण्णे,

१९३. इसके बाद विजयवर्धमान खेट में यह और इस प्रकार की उद्घोषणा सुनकर और हृदय में धारण करके बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र कुशल और कुशलपुत्र, चिकित्सक और चिकित्सक पुत्र हाथ में शस्त्र कोश (औषधि आदि की पेटी) लेकर अपने-अपने घरों से निकले, निकलकर विजयवर्धमान खेट के बीचों-बीच, से होकर जहाँ एकादि राष्ट्रकूट का घर था वहाँ आये, आकर एकादि राष्ट्रकूट के शरीर की परीक्षा की, परीक्षा करके उससे रोगातंकों के उत्पन्न होने का कारण पूछा, पूछकर उन्होंने अनेक प्रकार के अभ्यंगों, मालिश, उबटनों, स्नेह, पानों, वमन, विरेचनों, स्वेदन, अवदहन, अपस्नान, अनुवासना, वस्तिकर्म निरुह, शिरोवेध, तक्षण, प्रतक्षण, शिरोवस्ती, तर्पण, पुटपाक, छालों, मूलों-जड़ों, कन्दों, पत्तों, पुष्पों, फलों, बीजों, शिलिका, गोलियों औषधियों भैषज्यों के उपचार से एकादि राष्ट्रकूट के उन सोलह रोगातंकों में से एक-एक रोगातंक को उपशान्त करना चाहा किन्तु वे एक भी रोगातंक को शांत करने में समर्थ नहीं हुए।

तब वे बहुत से वैद्य और वैद्यपुत्र ज्ञायक और ज्ञायकपुत्र चिकित्सक और चिकित्सकपुत्र जब उन सोलह असाध्य रोगातंकों में से एक भी रोगातंक को उपशांत करने में समर्थ नहीं हुए तब श्रान्त दुःखित और खेदखिन्न होकर जिस दिशा से आये थे, वापस उधर ही लौट गये।

एकादि का नरक गमन—

१९४. तत्पश्चात् वैद्यों द्वारा प्रत्याख्यात (रोगों का प्रतिकार किया जाना शक्य नहीं, इस प्रकार कहे जाने पर) सेवकों से परित्यक्त, औषध भैषज से विरक्त और सोलह रोगातंकों से ग्रस्त हुआ तथा राज्य, राष्ट्र, कोश, कोठार, बल, वाहन पुर, और अन्तःपुर में मूर्च्छित आसक्त, गृद्ध और लिप्त, एवं राज्य, राष्ट्र, कोश, कोठार, बल, वाहन पुर और अन्तःपुर की चाहना, प्रार्थना, स्पृहा और अभिलाषा करता हुआ, व्यथित पीड़ित और पराधीन होकर वह दो सौ पचास वर्ष—अढ़ाई सौ वर्ष की पूर्ण आयु को भोग कर मरणकाल में मरण करके इस रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ।

मृगापुत्र का वर्तमान भव वर्णन : मृगादेवी को वेदना और गर्भ-शातन विचारणा—

१९५. इसके बाद वह बिना किसी अन्तर के वहाँ से निकल कर अर्थात् नरक से निकलते ही इसी मृगाग्राम नगर में विजय क्षत्रिय की मृगा नाम की देवी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

तब उन मृगादेवी के शरीर में उत्कट, कर्कश, प्रगाढ़, प्रचंड दुःखद तीव्र और असह्य वेदना उत्पन्न हुई। जब से मृगापुत्र दारक मृगादेवी की कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ, तब से

तप्पभिइं च णं मियादेवी विजयस्स खत्तियस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया यावि होत्था।

मृगादेवी विजय क्षत्रिय को अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम हो गई।

१९६. तए णं तीसे मियाए देवीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्त-कालसमयंसि कुडुम्बजागरियाए जागरमाणीए इमे एयारूवे अज्झ-त्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—"एवं खलु अहं विजयस्स खत्तियस्स पुव्विं इट्ठा कंता पिया मणुण्णा मणामा धेज्जा वेसासिया अणुमया आसि। जप्पभिइं च णं मम इमे गब्भे कुच्छिंसि गब्भत्ताए उववण्णे तप्पभिइं च णं अहं विजयस्स खत्तियस्स अणिट्ठा अकंता अप्पिया अमणुण्णा अमणामा जाया यावि होत्था। नेच्छइ णं विजए खत्तिए मम नामं वा गोत्तं वा गिण्हित्तए, किमंग पुण दंसणं वा परिभोगं वा? तं सेयं खलु मम एयं गब्भं बहूहिं गब्भसाडणाहि य पाडणाहि य गालणाहि य मारणाहि य साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा मारित्तए वा"—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता बहूणि खाराणि य कडुयाणि य तूवराणि य गब्भ-साडणाणि य पाडणाणि य गालणाणि य मारणाणि य खायमाणी य पियमाणी य इच्छइ तं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालि-त्तए वा मारित्तए वा, नो चेव णं से गब्भे सडइ वा पडइ वा गलइ वा मरइ वा।

१९६. इसके बाद किसी एक समय मध्यरात्रि में कुटुम्ब की चिन्ता के कारण जागती हुई उस मृगादेवी को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, कल्पित, मनोगत, संकल्प उत्पन्न हुआ कि—'मैं पहले विजय क्षत्रिय को इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ, मणाम, चिन्तनीय, विश्वासपात्र और अनुमत थी। लेकिन जब से यह गर्भ मेरी कुक्षि में गर्भ रूप से उत्पन्न हुआ है तब से मैं विजय क्षत्रिय को अनिष्ट, अकान्त, अप्रिय, अमनोज्ञ और अमणाम हो गई हूँ। विजयक्षत्रिय मेरा नाम और गोत्र भी ग्रहण-स्मरण करना नहीं चाहता है, तब दर्शन और परिभोग-भोगविलास की तो बात ही कहाँ रही? इसलिये मेरे लिये यही उपयुक्त है कि इस गर्भ को अनेक गर्भ शातनाओं, गर्भ को खंड-खंड करके गिराने की विधियों से, पातनाओं, अखंड रूप से गिराने की विधियों से, गालनाओं—गलाकर गिराने की विधियों से, और मारणाओं—मारने रूप क्रियाओं से सड़ा दूँ, गिरा दूँ, गला दूँ या मार दूँ।" ऐसा विचार किया और विचार करके उसने गर्भ का शातन, पातन, गालन और मारण करने वाली अनेक प्रकार की खारी, कड़वी और कषैली औषधियाँ को खाती-पीती हुई उस गर्भ को सड़ाने, गिराने, गलाने और मारने की इच्छा की, किन्तु वह गर्भ न तो सड़ा, न गिरा, न गला और न मरा।

तए णं सा मियादेवी जाहे नो संचाएइ तं गब्भं साडित्तए वा पाडित्तए वा गालित्तए वा मारित्तए वा ताहे संता तंता परितंता अकामिया असयंवसा तं गब्भं दुहंदुहेणं परिवहइ।

जब वह मृगादेवी उस गर्भ को सड़ाने, गिराने, गलाने और मारने में समर्थ नहीं हुई तब शरीर से श्रांत, मन से दुःखित, खेद खिन्न होती हुई इच्छा न रहते विवशता के कारण अत्यन्त दुःख के साथ उस गर्भ को धारण करने लगी।

गब्भगयस्स मियापुत्तस्स रोगायंका—

गर्भगत मृगापुत्र के रोगातंक—

१९७. तस्स णं दारगस्स गब्भगयस्स चेव अट्ठ नालीओ अब्भिंतरप्प-वहाओ, अट्ठ नालीओ बाहिरप्पवहाओ, अट्ठ पूयप्पवहाओ, अट्ठ सोणियप्पवहाओ, दुवे दुवे कण्णंतरेसु, दुवे दुवे अच्छिअंतरेसु, दुवे दुवे नक्कंतरेसु, दुवे दुवे धमणिअंतरेसु अभिक्खणं-अभिक्खणं पूयं च सोणियं च परिसवमाणीओ-परिसवमाणीओ चेव चिट्ठन्ति।

१९७. गर्भ गत बालक के जो आठ नाड़ियाँ अन्दर की ओर बहती हैं और आठ नाड़ियाँ बाहर की ओर बहती हैं, उनमें से उसकी आठ नाड़ियों में पीव बहती रहती थी और आठ में रुधिर बहता रहता था तथा इन सोलह नाड़ियों में से दो-दोनों कर्ण विवरों में, दो दोनों नेत्रों में, दो दोनों नासिका रन्ध्रों में दो दोनों धमनियों में निरन्तर पीव और रुधिर का परिस्राव करती रहती थीं।

तस्स णं दारगस्स गब्भगयस्स चेव अग्गिए नामं वाही पाउ-ब्भूए। जे णं से दारए आहारेइ, से णं खिप्पामेव विद्धंसमागच्छइ, पूयत्ताए य सोणियत्ताए य परिणमइ, तं पि य से पूयं च सोणियं च आहारेइ।

उस बालक के गर्भावस्था में ही अग्निक-भस्मक नामक व्याधि हो गई थी। जिससे वह दारक जो कुछ भी आहार करता था वह शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाता था और पीव एवं रुधिर में परिणत हो जाता था और वह उस पीव एवं रुधिर का भी आहार कर लेता था।

मियापुत्तस्स जातिअंधाइरूवं पासित्ता मियावईए उक्कुरुडियाए उज्झण-संकप्पो—

१९८. तए णं सा मियादेवी अण्णया कयाइ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया—जातिअंधे जातिमूए जातिबहिरे जातिपंगुले हुंडे य वायव्वे। नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा नासा वा। केवलं से तेसिं अंगोवंगाणं आगिती आगितिमेत्ते।

तए णं सा मियादेवी तं दारगं हुंडं अंधारूवं पासइ, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया अम्मधाइं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं देवाणुप्पिया! तुमं एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि।

१९९. तए णं सा अम्मधाई मियादेवीए 'तह' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता जेणेव विजए खत्तिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु सामी! मियादेवी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया—जातिअंधे जातिमूए जातिबहिरे जातिपंगुले हुंडे य वायव्वे। नत्थि णं तस्स दारगस्स हत्था वा पाया वा कण्णा वा अच्छी वा नासा वा। केवलं से तेसिं अंगोवंगाणं आगिती आगितिमेत्ते।

तए णं सा मियादेवी तं दारगं हुंडं अंधारूवं पासइ, पासित्ता भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया ममं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! एयं दारगं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झाहि। तं संदिसह णं सामी! तं दारगं अहं एगंते उज्झामि, उदाहु मा?"

मृगापुत्र का जात्यन्धादि रूप देखकर मृगावती का उकरड़े पर फैंकने का संकल्प—

१९८. तत्पश्चात् अन्य किसी समय नौ मास पूर्ण होने पर उस मृगादेवी ने जन्म से अन्धे, मूक, बहरे, पंगु, हुंड और वात रोगी बालक को जन्म दिया। उस बालक के न हाथ थे न पैर थे, न पैर थे, न कान थे, न नेत्र थे और न नासिका थी। केवल उन अंगोपांगों की आकृति आकृति-चिह्न रूप थी।

इसके बाद उस मृगादेवी ने उस हुंड-बेडौल अंग वाले और जन्मांध बालक को देखा, देखकर भयभीत, त्रस्त-व्याकुल उद्विग्न और भयग्रस्त हो, धायमाता को बुलाया, बुलाकर उससे कहा—'हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और इस बालक को एकान्त में किसी उकरड़े—कूड़े-कचरे के ढेर पर फैंक आओ।'

१९९. तब उस धाय माता ने 'बहुत अच्छा' कहकर मृगादेवी के उस कथन को स्वीकार किया, स्वीकार करके जहाँ विजय क्षत्रिय था, वहाँ आई आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! नौ मास पूर्ण होने पर मृगादेवी ने जन्म से अंधे-गूँगे, बहरे, पंगु, बेडौल और वात रोगी बालक को जन्म दिया है। इस बालक के हाथ, पैर, कान, नेत्र और नाक नहीं हैं। केवल उन अंगोपांगों की आकृति आकृति रूप है।

इसके बाद मृगावती देवी ने उस हुंड अंध रूप बालक को देखा, देखकर भयभीत, त्रस्त, व्याकुल, उद्विग्न और भयग्रस्त हो मुझे बुलाया और मुझे बुलाकर यह कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम जाओ और इस दारक को किसी एकान्त स्थान में कूड़े-कचरे के ढेर पर फैंक आओ। अतएव हे स्वामिन्! आप आज्ञा दें कि मैं उस दारक को एकान्त में फैंक आऊँ या नहीं?"

मियापुत्तस्स भूमिघरे ठावणं—

२००. तए णं से विजए खत्तिए तीसे अम्मधाईए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा तहेव संभंते उट्ठाए उट्ठेइ, उट्ठेत्ता जेणेव मियादेवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता मियं देविं एवं वयासी—"देवाणुप्पिए! तुब्भं पढमे गब्भे। तं जइ णं तुमं एयं एगंते उक्कुरुडियाए उज्झसि, तो णं तुब्भं पया नो थिरा भविस्सइ, तो णं तुमं एयं दारगं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहराहि, तो णं तुब्भं पया थिरा भविस्सइ।

तए णं सा मियादेवी विजयस्स खत्तियस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं विणएणं पडिसुणेइ, पडिसुणेत्ता तं दारगं रहस्सियंसि भूमिघरंसि रहस्सिएणं भत्तपाणेणं पडिजागरमाणी-पडिजागरमाणी विहरइ।

मृगापुत्र का भूमिगृह में स्थापन—

२००. तत्पश्चात् वह विजय क्षत्रिय उस धायमाता से इस बात को सुनकर तत्काल व्याकुल होता हुआ अपने स्थान से उठा, उठकर जहाँ मृगादेवी थी वहाँ आया, आकर, मृगादेवी से उसने इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! यह तुम्हारा पहला गर्भ है। यदि तुम इसको एकान्त कूड़े-कचरे के ढेर पर फैंक दोगी तो तुम्हारी प्रजा-सन्तान स्थिर नहीं रहेगी, इसलिये तुम इस बालक को गुप्त भूमिगृह में रखकर गुप्तरूप से आहारादि के द्वारा पालन-पोषण करती हुई विचरण करो, समय व्यतीत करो तो तुम्हारी प्रजा स्थिर रहेगी।।"

तब उस मृगादेवी ने विजय क्षत्रिय के इस कथन को ऐसा हो (बहुत अच्छा) कहकर स्वीकार किया और स्वीकार करके उस बालक को गुप्त भूमि गृह में गुप्त रूप से भक्त पान द्वारा पालन करती हुई अपना समय बिताने लगी।

२०१. एवं खलु गोयमा ! मियापुत्ते दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

२०१. इस प्रकार 'हे गौतम ! मृगापुत्र दारक अपने पूर्वकृत दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों का पाप रूप फल भोगता हुआ समय बिता रहा है।"

मियापुत्तस्स आगामिभव-वण्णणं--

मृगापुत्र का आगामी भव-वर्णन—

२०२. "मियापुत्ते णं भंते ! दारए इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?"

"गोयमा ! मियापुत्ते दारए छव्वीसं वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरि-पायमूले सीहकुलंसि सीहत्ताए पच्चायाहिइ।

२०२. "हे भदन्त ! मृगापुत्र दारक यहाँ से मरणावसर पर मरण करके कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

"हे गौतम ! मृगापुत्र बालक छब्बीस वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर मृत्यु का समय आने पर मरण करके इसी जम्बूद्वीप के भारत वर्ष में वैताढ्य पर्वत की तलहटी में सिंहकुल में सिंह रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तत्थ सीहे भविस्सइ—अहम्मिए बहुनगरनिग्गयजसे सूरे दढप्पहारी साहसिए सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणइ, समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

वहाँ पर वह सिंह अधर्मी, बहुत से नगरों में जिसकी ख्याति फैली हुई है, ऐसा शूर, दृढ़, प्रहारी और साहसी होगा तथा अत्यधिक मलिन पापकर्मों का उपार्जन—संचय करेगा और उपार्जन करके काल मास में काल करके इसी रत्न प्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट सागरोपम प्रमाण वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सिरीसवेसु उववज्जिहिइ। तत्थ णं कालं किच्चा दोच्चाए पुढवीए उक्कोसेणं तिण्णि सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

तदनन्तर वह सिंह का जीव वहाँ से निकलकर सरीसृपों में उत्पन्न होगा। वहाँ पर काल करके दूसरी नरक पृथ्वी में उत्कृष्ट तीन सागरोपम वाले नारकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता पक्खीसु उववज्जिहिइ। तत्थ वि कालं किच्चा तच्चाए पुढवीए सत्त सागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

इसके अनन्तर वह वहाँ से निकलकर पक्षियों में उत्पन्न होगा। वहाँ पर भी काल करके तीसरी नरक पृथ्वी में सात सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओ सीहेसु तयाणंतरं चोत्थीए, उरगो, पंचमीए, इत्थीओ, छट्ठीए, मणुओ, अहेसत्तमाए।

वहाँ से वह सिंह योनि में उत्पन्न होगा और उसके अनन्तर चौथी नरक पृथ्वी में उत्पन्न होगा, वहाँ से निकल कर सर्प होगा, फिर मरकर पाँचवीं पृथ्वी में नारक होगा, वहाँ से निकलकर स्त्री रूप में जन्म लेगा, फिर काल करके छठी नरक पृथ्वी में उत्पन्न होगा, वहाँ से निकलकर मनुष्य होगा और मरकर सबसे अधोवर्ती सातवीं पृथ्वी में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता से जाइं इमाइं जलयरपंचिंदियतिरिक्खजोणियाणं मच्छ-कच्छभ-गाह-मगर-सुंसुमाराईणं अद्धतेरस जाइकुलकोडिजोणिपमुहसयसहस्साइं, तत्थ णं एगमेगंसि जोणि-विहाणंसि अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर जो जलचर पंचेन्द्रिय तिर्यंचों में मच्छ, कच्छप, ग्राह, मगर, सुंसुमार आदि योनियाँ हैं और उन योनियों से उत्पन्न होने वाली कुल कोटियाँ (जीव समूह के भेद) की संख्या साढ़े बारह लाख है, उनके एक-एक योनि भेद में लाखों बार जन्म-मरण करता हुआ उन्हीं में बार-बार उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता चउप्पएसु उरपरिसप्पेसु भुयपरिसप्पेसु खहयरेसु चउरिंदिएसु तेइंदिएसु बेइंदिएसु वणप्फइ-कडुयरुक्खेसु कडुयदुद्धिएसु वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ।

तत्पश्चात् वहाँ से निकलकर चतुष्पदों में, उरपरिसर्पों में भुजपरिसर्पों में, खेचरों में, चतुरिन्द्रियों में, त्रीन्द्रियों में, द्वीन्द्रियों में, वनस्पतिक कटु वृक्षों में, कटुक दूध वाले वृक्षों में, वायुकाय तेजस्काय अप्काय और पृथ्वीकाय के जीवों में लाखों बार जन्म-मरण करता हुआ बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सुपइट्ठपुरे नयरे गोणत्ताए पच्चायाहिइ ।

तदनन्तर वहाँ से निकल कर वह सुप्रतिष्ठ पुर नगर में बैल के रूप में उत्पन्न होगा ।

से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे अण्णया कयाइ पढमपाउसंसि गंगाए महानईए खलीणमट्टियं खणमाणे तडीए पेल्लिए समाणे कालगए तत्थेव सुपइट्ठपुरे नयरे सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाइस्सइ ।

वहाँ पर वह जब बाल्यकाल को पार कर युवावस्था को प्राप्त होगा तब किसी एक समय वर्षा ऋतु के प्रारम्भ में गंगा-महानदी के किनारे की मिट्टी को खोदता हुआ नदी के किनारे के टूट जाने पर मृत्यु को प्राप्त हो उसी सुप्रतिष्ठपुर नगर में किसी श्रेष्ठी कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा ।

से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वण-गमणुप्पत्ते तहारूवाणं थेराणं अंतिए धम्मं सोच्चा निसम्म मुण्डे भवित्ता अगाराओ अणगारियं पव्वइस्सइ ।

वहाँ वह बाल भाव को त्यागकर बौद्धिक विकास एवं युवावस्था से संपन्न होने पर तथारूप स्थविरों के पास धर्म श्रवण कर एवं हृदय में धारण कर मुण्डित हो गृह त्याग करके अनगार प्रव्रज्या से प्रव्रजित होगा ।

से णं तत्थ अणगारे भविस्सइ—इरियासमिए भासासमिए एसणासमिए आयाण-भंड-मत्त-निक्खेवणासमिए उच्चार-पासवण-खेल-सिंघाण-जल्ल-पारिट्ठावणियासमिए मणगुत्ते वयगुत्ते कायगुत्ते गुत्ते गुत्तिंदिए गुत्तबंभयारी ।

वहाँ पर वह ईर्यासमिति भाषासमिति, एषणासमिति आदान भांड मात्र निक्षेपण समिति, उच्चार-प्रस्रवण, खेलसिंघाण जल्ल-परिष्ठापनिका समिति से युक्त; मनोगुप्त, वचोगुप्त, कायगुप्त गुप्त, गुप्तेन्द्रिय, गुप्त ब्रह्मचारी अनगार होगा ।

से णं तत्थ बहूइं वासाइं सामण्णपरियागं पाउणित्ता आलोइय-पडिक्कंते समाहिपत्ते कालमासे कालं किच्चा सोहम्मे कप्पे देवत्ताए उववज्जिहिइ ।

वहाँ वह बहुत वर्षों तक श्रामण्य पर्याय का पालन करके आलोचना तथा प्रतिक्रमण कर समाधि को प्राप्त होता हुआ काल मास में काल करके सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा ।

से णं तओ अणंतरं चयं चइत्ता महाविदेहे वासे जाइं कुलाइं भवंति—अड्ढाइं अपरिभूयाइं, तहप्पगारेसु कुलेसु पुत्तत्ताए पच्चाया-हिति । जहा दढपइण्णे-जाव-सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ ।

—विवाग० अ० १

इसके पश्चात् वह वहाँ से च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में जो धन सम्पन्न और दूसरों से पराभूत नहीं होने वाले कुल हैं, उस प्रकार के कुलों में पुत्ररूप से उत्पन्न होगा, वहाँ दृढ़प्रतिज्ञ के समान कलाओं आदि का अभ्यास करेगा—यावत्—सिद्धि प्राप्त करेगा, केवलज्ञान रूप बोधि को प्राप्त करेगा, कर्मों से मुक्त होगा, परिनिर्वाण अवस्था को प्राप्त करेगा और सर्व प्रकार के दुःखों का अंत करेगा ।

११. उज्झियगकहाणयं—

११. उज्झितक कथानक—

वाणियगामे सत्थवाहपुत्तो उज्झियओ—

२०३. तेणं कालेणं तेणं समएणं वाणियगामे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे ।

वाणिजग्राम में सार्थवाह पुत्र उज्झितक—

२०३. उस काल और उस समय में वाणिजग्राम नामक नगर था जो ऋद्धि सम्पन्न, स्वपर चक्र के भय से विमुक्त एवं समृद्धि-पूर्ण था ।

तस्स णं वाणियगामस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए दूइपलासे नामं उज्जाणे होत्था।

उस वाणिजग्राम के उत्तर पूर्व दिक्कोण में दूतिपलाश नामक उद्यान था।

तत्थ णं दूइपलासे सुहम्मस्स जक्खस्स जक्खाययणे होत्था।

उस दूतिपलाश उद्यान में सुधर्म यक्ष का यक्षायतन था।

तत्थ णं वाणियगामे नयरे मित्ते नामं राया होत्था—वण्णओ।

उस वाणिजग्राम नगर में मित्र नाम का राजा था। राजा का वर्णन करना चाहिये।

तस्स णं मित्तस्स रण्णो सिरी नामं देवी होत्था—वण्णओ।

उस मित्र राजा की श्री नामकी देवी थी, रानी का वर्णन करो।

२०४. तत्थ णं वाणियगामे कामज्झया नामं गणिया होत्था—अहीण-पडिपुण्णपंचिंदियसरीरा लक्खण-वंजण-गुणोववेया माणुम्माण-प्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंगसुन्दरंगी ससिसोमाकार-कंत-पिय-दंसणा सुरूवा बावत्तरिकलापंडिया चउसट्ठिगणियागुणोववेया एगूणतीसविसेसे रममाणी एक्कवीसरइगुणप्पहाणा बत्तीसपुरिसोवयारकुसला नवंगसुत्तपडिबोहिया अट्ठारसदेसीभासाविसारया सिंगारागारचारुवेसा गीयरइगंधव्वणट्टकुसला संगय-गय-भणिय-हसिय-विहिय-विलास-सललिय-संलाव-निउणजुत्तोवयारकुसला सुन्दरथण-जहण-वयण-कर-चरण-नयण-लावण्ण-विलासकलिया ऊसियज्झया सहस्सलंभा विदिण्णछत्त-चामर-वालवीयणीया कण्णीरहप्पयाया यावि होत्था। बहूणं गणियासहस्साणं आहेवच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणी पालेमाणी विहरइ।

२०४. उस वाणिजग्राम में कामध्वजा नाम की गणिका थी, जो शुभ लक्षणों और सम्पूर्ण पंचेन्द्रियों से युक्त शरीर वाली, शारीरिक लक्षणों, तिलव्यंजनों आदि के गुणों के युक्त मान, उन्मान, प्रमाण से बराबर लावण्ययुक्त सर्वांग सुन्दरी चन्द्रमा के समान सौम्य आकृति वाली, कमनीय प्रिय दर्शना, रूपवती, बहत्तर कलाओं की पंडित, चौंसठ गणिका गुणों से युक्त, उनतीस विशेषों में रमण करने वाली, इक्कीसप्रकार के रतिगुणों में प्रधान, बत्तीस प्रकार के पुरुष उपचारों में कुशल; प्रतिबुद्ध हो चुके हैं सुप्त नव अंगों वाली; अठारह देशी भाषाओं में प्रवीण, अपने सुन्दर वेश से शृंगारगृह जैसी, गीत, रति, गांधर्व (नृत्ययुक्त गीत) और नाट्य में कुशल, सुन्दरगति, भाषण, हास्य, शारीरिक चेष्टाओं, हाव-भाव विलासों से युक्त मन को लुभाने वाले, संभाषण में निपुण और व्यवहार कुशल थी। उनके स्तन, जघन, मुख, हाथ, पैर और नेत्र आदि अंग-प्रत्यंग लावण्य और विलास अति मनोहर थे, उसके भवन पर ध्वजा फहरायी रहती थी, गीत नृत्य आदि कलाओं से सहस्र (हजार) का लाभ लेने वाली अर्थात् नृत्यादि के प्रदर्शन के लिये एक रात्रिक हजार मुद्रायें लेने वाली थी, राजा की ओर से छत्र चमर और बाल व्यजनिका, पंखा पारितोषिक के रूप में मिले हुए थे, कर्णीरथ नामक रथ विशेष से गमनागमन करने वाली थी और हजारों गणिकाओं का आधिपत्य, पुरोवर्तित्व स्वामित्व भर्तृत्व-पालकत्व महत्तरकत्व आज्ञेश्वरत्व और सेनापतित्व करती हुई, उनका पालन करती हुई निवास करती थी।

२०५. तत्थ णं वाणियगामे विजयमित्ते नामं सत्थवाहे परिवसइ—अड्ढे०।

२०५. उस वाणिजग्राम में विजय मित्र नामक सार्थवाह रहता था जो धनाढ्य—यावत्—अपरिभूत था।

तस्स णं विजयमित्तस्स सुभद्दा नामं भारिया होत्था।

उस विजयमित्र की सुभद्रा नाम की भार्या थी।

तस्स णं विजयमित्तस्स पुत्ते सुभद्दाए भारियाए अत्तए उज्झियए नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे लक्खण-वंजण-गुणोववेए माणुम्माणप्पमाण-पडिपुण्ण-सुजाय-सव्वंग-सुन्दरंगे ससिसोमाकारे कंते पियदंसणे सुरूवे।

उस विजयमित्र का पुत्र और सुभद्राभार्या का आत्मज उज्झितक नामक दारक था, जो परिपूर्ण पांच इन्द्रियों और शरीर से सम्पन्न शारीरिक लक्षणों, व्यंजनों और गुणों से युक्त मान-उन्मान और प्रमाण में बराबर सुरचित सुन्दर सर्व अंगों वाला चन्द्र के समान सौम्य आकृति वाला, रमणीय प्रिय दर्शन और रूपवान् था।

भगवओ महावीरस्स समोसरणं—

भगवान महावीर का समवसरण—

२०६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे

२०६. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर

परिसा निग्गया । राया निग्गओ, जहा कूणिओ निग्गओ । धम्मो कहिओ । परिसा पडिगया राया य गओ ।

पधारे, दर्शनार्थ परिषदा निकली । कोणिक राजा की तरह राजा भी निकला । धर्म कथा सुनाई । परिषदा वापस लौटी और राजा भी लौट गया ।

गोयमेण उज्झिययस्स पुव्वभवपुच्छा—

२०७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई नामं अणगारे गोयमगोत्तेणं-जाव-संखित्त-विउलतेयलेसे छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तए णं भगवं गोयमे छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ, बीयाए पोरिसीए झाणं झियाइ, तइयाए पोरिसीए अतुरियमचवलमसंभंते मुहपोत्तियं पडिलेहेइ, पडिलेहेत्ता भायणाइं पमज्जइ, पमज्जित्ता भायणाइं उग्गाहेइ, उग्गाहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"इच्छामि णं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे छट्ठक्खमणपारणगंसि वाणियगामे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्तए ।"

"अहासुहं देवाणुप्पिया ! मा पडिबंधं ०।"

गौतम द्वारा उज्झितक के पूर्वभव की पृच्छा—

२०७. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी, गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार—यावत्—विपुल तेजोलेश्या को संक्षिप्त करके अपने अन्दर धारण किये हुए निरन्तर बेले-बेले की तपस्या और संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए विचर रहे थे ।

तत्पश्चात् भगवान गौतम ने बेले की तपस्या के पारणे के दिन प्रथम पोरसी में स्वाध्याय किया, दूसरी पोरसी में ध्यान किया, तीसरी पोरसी में बिना किसी उतावली, व्याकुलता और घबराहट के मुखवस्त्रिका की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके पात्रों और वस्त्रों की प्रतिलेखना की, प्रतिलेखना करके पात्रों को पोंछा, पोंछकर पात्रों को हाथ में लिया, उठाया, उठाकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज रहे थे, वहाँ आये, आकर श्रमण भगवान महावीर वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके यह निवेदन किया—"हे भदन्त ! मैं आपकी आज्ञा-अनुमति लेकर बेले की तपस्या के पारणे के लिये वाणिजग्राम नगर के उच्च, सामान्य और मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये घूमना चाहता हूँ ।"

"हे देवानुप्रिय ! जैसे सुख हो, वैसा करो, किन्तु विलम्ब मत करो ।" भगवान ने उत्तर दिया ।

२०८. तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाया समाणे समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियाओ दूइपलासाओ उज्जाणाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव वाणियगामे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वाणियगामे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडमाणे जेणेव रायमग्गे तेणेव ओगाढे ।

तत्थ णं बहवे हत्थी पासइ—सण्णद्ध-बद्धवम्मिय-गुडिए उप्पीलियकच्छे उद्दामियघंटे नाणामणिरयण-विविह-गेवेज्जउत्तरकंचुइज्जे पडिकप्पिए झयपडागवर-पंचामेल-आरूढहत्थारोहे गहियाउहप्पहरणे ।

२०८. तत्पश्चात् भगवान गौतम श्रमण भगवान महावीर से आज्ञा प्राप्त होने पर श्रमण भगवान महावीर के पास से दूतिपलाश उद्यान से निकले, निकलकर अत्वरित अनाकुल और अनुद्विग्न भाव से युग प्रमाण देखने की दृष्टि से आगे-आगे के गमन मार्ग को देखते हुए जहाँ वाणिज्यग्राम नगर था, वहाँ आये आकर वाणिजग्राम नगर के उच्च-नीच और मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षा चर्या से फिरते हुए जहाँ राजमार्ग था, वहाँ पधारे ।

वहाँ राजमार्ग में उन्होंने अनेक हाथियों को देखा, जो युद्ध के लिये उद्यत थे, जिन्हें कवच पहनाये हुए थे और जिन पर झूल लटक रही थी, जिनके पेट-पीठ उरोबंधन से कसे हुए थे, झूल की आजू-बाजू में बड़े-बड़े घंटे लटक रहे थे और विविध प्रकार की मणियों और रत्नों से जड़े हुए ग्रैवेयक (कंठाभूषण) पहने हुए थे, सुरक्षा के लिए जिनके शरीर उत्तर कंचुक नामक कवच विशेष से आच्छादित थे जो युद्ध के उपकरणों से सुसज्जित थे, जो ध्वजा, पताका रूप पाँच शिरोभूषणों से विभूषित थे एवं जिन पर आयुध और प्रहरण लिये हुए सैनिक और महावत सवार थे ।

अण्णे य तत्थ बहवे आसे पासइ—सण्णद्ध-बद्धवम्मिय-गुडिए आविद्धगुडे ओसारियपक्खरे उत्तरकंचुइयओ-चूलामुहचंडाधर-चामर-थासग-परिमंडिय-कडीए आरूढअस्सारोहे गहियाउहप्पहरणे।

इसी प्रकार वहाँ पर और दूसरे अनेक अश्वों को देखा, जो युद्ध के लिये उद्यत थे और जिन्हें कवच पहनाये गये थे, शारीरिक सुरक्षा के लिये जिनके अंग प्रत्यंग झूलों और कवच विशेषों से ढके हुए थे, जिनके मुख में लगाम लगी थी और जो क्रोध से ओठों को बार-बार चबा रहे थे, जिनका कटिभाग चमर और स्थासक—आभरण विशेष से विभूषित था और आयुध एवं प्रहरणादि लेकर जिन पर घुड़सवार सैनिक बैठे थे।

अण्णे य तत्थ बहवे पुरिसे पासइ-सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टीए पिणद्धगेवेज्जे विमलवरबद्ध-चिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे।

इसी प्रकार वहाँ पर बहुत से पुरुषों को भी देखा जो कमवार बाँधे गये लोहमय कवच पहने हुए थे, जिनकी भुजाओं में शरासन पट्टिका—धनुष खींचते समय हाथ की सुरक्षा के लिये बाँधी जाने वाली चमड़े की पट्टी बँधी हुई थी, जो गले में ग्रैवेयक पहने हुए थे, अपने-अपने पद की सूचक श्रेष्ठ संकेत पट्टिका बाँधे थे तथा आयुध और प्रहरणादि लिये हुए थे।

तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं एगं पुरिसं पासइ अवओडय-बंधणं उक्खित्तकण्णनासं नेहतुप्पियगत्तं बज्झ-करकडि-जुयनियच्छं कंठे-गुणरत्त-मल्लदामं चुण्णगुंडियगत्तं चुण्णयं बज्झपाणपीयं तिलं-तिलं चेव छिज्जमाणं कागणिमंसाइं खावियंतं पावं खक्खर-सएहिं हम्ममाणं अणेग-नर-नारी-संपरिवुडं चच्चरे-चच्चरे खंड-पडहएणं उग्घोसिज्जमाणं इमं च णं एयारूवं उग्घोसणं सुणेइ—नो खलु देवाणुप्पिया! उज्झियगस्स दारगस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अवरज्झइ, अप्पणो से सयाइं कम्माइं अवरज्झंति।

उन पुरुषों के बीच में जिसके हाथ पीछे पीठ पर बँधे थे, नाक और कान कटे हुए थे, शरीर घी से लिप्त था, वध्यपुरुष योग्य वस्त्र युगल पहने था अथवा हाथों में हथकड़ियाँ पड़ी थीं, गले में लाल फूलों की माला लटक रही थी, शरीर गेरू से पुता था, जो भय से काँप रहा था, प्राण-रक्षा का इच्छुक था, शरीर से तिल-तिल बराबर मांस के टुकड़े काटे जा रहे थे और वे स्वयं उसे एवं कौओं कुत्तों को खिलाये जा रहे थे; ऐसा वह पापी पत्थरों और कोड़ों की मार से लोहू-लुहान हो रहा था, सैकड़ों स्त्री-पुरुषों से घिरा हुआ तथा जिसके बारे में चौराहे-चौराहे पर फूटा ढोल बजा-बजा कर उद्घोषणा की जा रही थी ऐसे एक पुरुष को देखा तथा यह और इस प्रकार की उद्घोषणा सुनी कि "हे देवानुप्रियो! इस उज्झितक बालक का किसी राजा या राज-पुत्र ने अपराध नहीं किया है, किन्तु यह इसके अपने ही कर्मों का अपराध है।"

२०६. तए णं भगवओ गोयमस्स तं पुरिसं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा। पच्चक्खं खलु अयं पुरिसे निरयपडिरूवियं वेयणं वेएइ" त्ति कट्टु वाणियगामे नयरे उच्च-नीय-मज्झिम-कुलाइं अडमाणे अहापज्जत्तं समुदाणं गिण्हइ, गिण्हित्ता वाणियगामे नयरे मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ, अतुरियमचवलमसंभंते जुगंतरपलोयणाए दिट्ठीए पुरओ रियं सोहेमाणे-सोहेमाणे जेणेव दूइपलासए उज्जाणे जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता समणस्स भगवओ महावीरस्स अदूरसामंते गमणागमणाए पडिक्कमइ, पडिक्कमित्ता

२०६. तत्पश्चात् उस पुरुष को देखकर भगवान गौतम को यह और इस प्रकार का आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि "अहो! यह पुरुष पूर्व जन्मों के दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त, अशुभ पापकर्मों के पाप रूप फलविशेष का अनुभव कर रहा है। यद्यपि मैंने नरक और नारक नहीं देखे हैं किन्तु यह पुरुष साक्षात् नरक के प्रति रूप वेदना का वेदन कर रहा है।" ऐसा विचार कर वाणिजग्राम नगर के उच्च, नीच, मध्यम कुलों में घूमते हुए यथा पर्याप्त समुदान भिक्षा ग्रहण की और ग्रहण कर के वाणिजग्राम नगर के बीच में से निकले और अत्वरित, अनुकूल और अनुद्विग्न हो युग प्रमाण भूमि को देखने की दृष्टि से आगे-आगे के गमन मार्ग का अवलोकन करते हुए जहाँ दूतिपलाश उद्यान था, जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराज-मान थे, वहाँ आये, आकर उन्होंने श्रमण भगवान महावीर के

एसणमणेसणं आलोएइ, आलोएत्ता भत्तपाणं पडिदंसेइ, पडिदंसेत्ता समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी— "एवं खलु अहं भंते ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे वाणियगामे नयरे-जाव-तहेव सव्वं निवेएइ ।

निकट गमनागमन सम्बन्धी दोषों का प्रतिक्रमण किया, प्रतिक्रमण करके एषणीय अनेषणीय आहार विषयक आलोचना की, आलोचना करके आहार, पानी दिखाया, दिखाकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—"हे भदन्त ! मैं आपकी आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके वाणिजग्राम नगर में गया इत्यादि वहाँ देखा, नारकीय वेदना का प्रसंग निवेदन किया ।

से णं भंते ! पुरिसे पुव्वभवे के आसि ? किं नामए वा किं गोत्ते वा ? कयरंसि गामंसि वा नयरंसि वा ? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता, केसिं वा पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ ?"

हे भदन्त ! वह पुरुष पूर्वभव में कौन था ? उसका क्या नाम था और किस गोत्र वाला था ? किस नगर अथवा ग्राम में रहता था ? क्या देकर, क्या भोगकर और किन-किन कर्मों का आचरण कर और किन-किन पूर्व भवों में उपार्जित, दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पापकर्मों का पाप रूप फलविशेष का वेदन करते हुए समय यापन कर रहा है ?"

उज्झियगस्स गोत्तासभवकहाणगं—

२१०. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे हत्थिणाउरे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे । तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे सुनंदे नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे ।

उज्झितक का गोत्रासभव कथानक—

२१०. "हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारत वर्ष में भवनादि वैभव सम्पन्न स्वपर चक्र के भय से मुक्त और धन-धान्यादि से समृद्ध हस्तिनापुर नाम का नगर था । उस हस्तिनापुर नगर में सुनन्द नाम का राजा था, जो महाहिमवान मलय, मन्दर पर्वतों एवं इन्द्र के समान मनुष्यों में महान् एवं प्रधान था ।

तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे बहुमज्झदेसभाए, एत्थ णं महं एगे गोमंडवे होत्था—अणेगखंभसयसंनिविट्ठे पासाईए दरिसणिज्जे अभिरूवे पडिरूवे ।

उस हस्तिनापुर नगर के मध्य भाग में सैकड़ों खंभों से निर्मित, मन में प्रसन्नता उत्पन्न करने वाला, देखने योग्य मनोहर और असाधारण सुन्दर एक विशाल गोमंडप बना हुआ था ।

तत्थ णं बहवे नगरगोरूवा सणाहा य अणाहा य नगरगावीओ य नगरबलीवद्दा य नगरपड्डियाओ य नगरवसभा य पउरतण-पाणिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसंति ।

उसमें बहुत से सनाथ और अनाथ नगर के गाय, बैल आदि पशु, नगर की गायें, नगर के बैल, नगर की पाड़ियाँ (बछड़ा-बछड़ी, भैंस के बच्चे) नगर के सांड, घास, पानी की प्रचुरता होने से बिना किसी भय और बिना किसी उपसर्ग के सुखपूर्वक रहते थे ।

हत्थिणाउरे भीमे कूडग्गाहे—

२११. तत्थ णं हत्थिणाउरे नयरे भीमे नामं कूडग्गाहे होत्था—अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे ।

हस्तिनापुर में भीम कूटग्राह—

२११. उस हस्तिनापुर नगर में भीम नाम का एक कूटग्राह (धोखे से जीवों को फँसाने वाला) रहता था, जो अधर्मी—यावत् बड़ी कठिनता से प्रसन्न होने वाला था ।

२१२. तस्स णं भीमस्स कूडग्गाहस्स उप्पला नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा ।

तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी अण्णदा कयाइ आवण्णसत्ता जाया यावि होत्था ।

२१२. उस भीम कूटग्राह की उत्पला नाम की भार्या थी जो पाँचों इन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाली थी ।

वह उत्पला कूटग्राहिणी किसी समय गर्भवती हो गई ।

भीमस्स भारियाए उप्पलाए मंसभक्खणदोहलो—

२१३. तए णं तीसे उप्पलाए कूडग्गाहिणीए तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्म-

भीम की भार्या उत्पला को मांसभक्षण-दोहद—

२१३. इसके बाद उस उत्पला कूटग्राहिणी को तीन मास पूरे होने पर इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ—"वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी हैं, वे मातायें कृतार्थ हैं, वे

याओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासिं माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं बहूणं नगरगोरूवाणं सणाहाण य अणाहाण य नगरगाविआण य नगरबलीवद्दाण य नगरपड्डियाण य नगरवसभाण य ऊहेहि य थणेहि य वसणेहि य छेप्पाहि य ककुहेहि य वहेहि य कण्णेहि य अच्छीहि य नासाहि य जिब्भाहि य ओट्ठेहि य कंबलेहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य परिसुक्केहि य लावणेहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणीओ वीसाएमाणीओ परिभाएमाणीओ परिभुंजेमाणीओ दोहलं विणेंति।

मातायें पूर्वोपार्जित पुण्यशाली हैं, ये मातायें कृतलक्षण हैं, ये मातायें सफल वैभवशाली हैं, उन्होंने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है, जो नगर के सनाथ, अनाथ गाय-बैल आदि पशुओं के, नगर की गायों के, नगर के बैलों के, नगर के बछड़ा-बछड़ियों के और नगर के सांडों के ऊधस्, (थन के ऊपरी भाग) स्तन, वृषण (अंडकोष) पूंछ, ककुद्, स्कन्ध, कान, आँख, नाक, जीभ, होंठ और गल कंबल के शूल पर पकाये हुए, तले हुए भुने हुए, सूखे हुए और लवण से संस्कृत मांस के साथ सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्नाजाति की मदिराओं का स्वाद लेती हुई, विशेष रूप में बार-बार स्वाद लेती हुई, लेती-देती हुई और खाती-पीती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।

तं जइ णं अहमवि बहूणं नगरगोरूवाणं-जाव-च पसण्णं च आसाएमाणी वीसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी दोहलं विणिज्जामि" त्ति कट्टु तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा नित्तेया दीणविमणवयणा पंडुल्लइयमुही ओमंथिय-नयणवयणकमला जहोइयं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकाराहारं अपरिभुंजमाणी करयलमलिय व्व कमलमाला ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगय-दिट्ठीया झियाइ।

तो मैं भी बहुत से नगर के गौ आदि पशुओं के—यावत्—प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन करती हुई, बार-बार आस्वादन करती हुई एक-दूसरे को देती-लेती हुई और खाती-पीती हुई अपने दोहद को पूर्ण करूँ।" ऐसा विचार कर उस दोहद के पूर्ण न होने के कारण वह शुष्क हो गई, भूख से व्याप्त हो गई, मांस रहित सी हो गई, रोगिणी-सी और रुग्ण शरीर जैसी हो गई, निस्तेज हो गई, दीन और उदासीन मुख वाली हो गई, उसका मुख पीला-सा हो गया, उसके नेत्र और मुख कमल मुरझा गये, यथोचित पुष्प, वस्त्र, गंध, पुष्पमाला, आभूषण और हार आदि का उपभोग न करने वाली हो गई, करतल से मसली हुई कमल माला जैसी हो गई, निरुत्साह हो हथेली पर मुँह को टिका कर आर्तध्यान में डूबी हुई भूमि पर दृष्टि गड़ाकर चिन्ताग्रस्त हो गई।

२१४. इमं च णं भीमे कूडग्गाहे जेणेव उप्पला कूडग्गाहिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता [उप्पलं कूडग्गाहिणिं ?] ओहयमण-संकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं भूमिगयदिट्ठीयं झियाय-माणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—"किं णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगय-दिट्ठीया झियासि !"

२१४. इधर भीम कूटग्राह जहाँ उत्पला कूटग्राहिणी थी वहाँ आया, आकर (उत्पला कूटग्राहिणी को) उत्साह रहित हथेली पर मुँह को रखे आर्तध्यान में डूबी हुई, आँखों को नीचे जमीन में झुकाये चिन्ताग्रस्त देखा, देखकर इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिये ! क्यों तुम उत्साहरहित हो हथेली पर मुँह को रखे आर्तध्यान में डूबी हुई और सिर झुकाकर भूमि को देखती हुई चिन्ताग्रस्त हो रही हो ?"

तए णं सा उप्पला भारिया भीमं कूडग्गाहं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! ममं तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दोहले पाउब्भूए—धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-परिसुक्केहि य लावणेहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणीओ वीसाएमाणीओ परिभाएमाणीओ परिभुंजेमाणीओ दोहलं विणेंति।

तब उस उत्पला भार्या ने भीम कूटग्राह से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि गर्भ के तीन माह बीत जाने पर मुझे दोहद उत्पन्न हुआ है कि 'वे मातायें धन्य हैं—यावत्—सूखे हुए और लवण से संस्कृत मांस एवं सुरा, मधु-मेरक जाति सीधु और प्रसन्ना नामक मदिराओं का आस्वादन, बार-बार आस्वादन करती हुई, बांटती हुई और परिभोग करती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं।

तए णं अहं देवाणुप्पिया ! तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा निम्मंसा ओलुग्गा ओलुग्गसरीरा नित्तेया दीणविमण-वयणा पंडुल्लइयमुही ओमंथिय-नयणवयणकमला जहोइयं पुप्फ-

लेकिन हे देवानुप्रिय ! मैं उस दोहद के पूर्ण न होने से शुष्क बुभुक्षित, मांस रहित, रुग्ण और रुग्ण शरीर, निस्तेज, दीन, अन्यमनस्क, पीले मुख वाली, मुरझाये कमल जैसे नेत्र और मुख

वत्थ-गंध-मल्लालंकाराहारं अपरिभुंजमाणी करयलमलिय व्व कमलमाला ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियामि।"

भीमेण दोहलपूरणं—

२१५. तए णं से भीमे कूडग्गाहे उप्पलं भारियं एवं वयासी—"मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियाहि। अहं णं तहा करिस्सामि जहा णं तव दोहलस्स संपत्ती भविस्सइ।" ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ।

तए णं से भीमे कूडग्गाहे अद्धरत्तकालसमयंसि एगे अबीए सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए उप्पीलियसरासणपट्टीए पिणद्धगेवेज्जे विमलवरबद्ध-चिंधपट्टे गहियाउहप्पहरणे साओ गिहाओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता हत्थिणाउरं नयरं मज्झंमज्झेणं जेणेव गोमंडवे तेणेव उवागए बहूणं नगरगोरूवाणं सणाहाण य अणाहाण य नगरगावीण य नगरबलीवद्दाण य नगरपड्डियाण य नगरवसभाण य—अप्पेगइयाणं ऊहे छिंदइ, अप्पेगइयाणं थणे छिंदइ, अप्पेगइयाणं वसणे छिंदइ, अप्पेगइयाणं छेप्पा छिंदइ, अप्पेगइयाणं ककुहे छिंदइ, अप्पेगइयाणं वहे छिंदइ, अप्पेगइयाणं कण्णे छिंदइ, अप्पेगइयाणं नासा छिंदइ, अप्पेगइयाणं जिब्भा छिंदइ, अप्पेगइयाणं ओट्ठे छिंदइ, अप्पेगइयाणं कंबलए छिंदइ, अप्पेगइयाणं अण्णमण्णाइं अंगोवंगाइं वियंगेइ, वियंगेत्ता जेणेव सए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता उप्पलाए कूडग्गाहिणीए उवणेइ।

तए णं सा उप्पला भारिया तेहिं बहूहिं गोमंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य परिसुक्केहि य लावणेहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी वीसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी तं दोहलं विणेइ।

तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी संपुण्णदोहला संमाणियदोहला विणीयदोहला विच्छिण्णदोहला संपण्णदोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

दारयस्स जम्मो—

२१६. तए णं सा उप्पला कूडग्गाहिणी अण्णया कयाइ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया।

तए णं तेणं दारएणं जायमेत्तेणं चेव महया-महया [चिच्ची?] सद्दे णं विघुट्ठे विस्सरे आरसिए।

तए णं तस्स दारगस्स आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म हत्थिणाउरे नयरे बहवे नगरगोरूवा सणाहा य अणाहा य नगरगावीओ य

वाली, यथोचित पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार हार का परिभोग न करने वाली, कर-तल से मर्दित कमल माला जैसी होती हुई भग्न मनोरथ हो हथेली पर मुँह को टिकाये आर्तध्यान में डूबकर नीचा मुख कर भूमि पर दृष्टि गड़ाये चिन्ताग्रस्त हो रही हूँ।"

भीम द्वारा दोहद पूर्ति—

२१५. तदनन्तर भीम कूटग्राह ने उत्पला भार्या से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिये! तुम भग्न-मनोरथा हो हथेली पर मुख को टिकाये आर्तध्यान में डूबकर नीचे भूमि की ओर देखती हुई चिन्ताग्रस्त मत होओ। मैं वैसा करूँगा जिससे तुम्हारे दोहद की संपूर्ति होगी।" उसको इष्ट, कान्त (इच्छित), प्रिय, मनोहर और मणाम (मन को प्रिय) वाणी से आश्वासन दिया।

तत्पश्चात् वह भीम कूटग्राह अर्धरात्रि के समय अकेला ही सुदृढ़ बंधन से बद्ध कवच को धारण कर भुजाओं में शरासन पट्टिका को बाँधकर, गले में ग्रैवेयक पहनकर अपने संकेत पट्टक को बाँधकर और आयुध प्रहरणों को लेकर अपने घर से निकला, निकलकर हस्तिनापुर नगर के मध्य भाग में जहाँ गोमंडप था, वहाँ पहुँचकर बहुत से नगर के अनाथ-सनाथ गाय-बैल आदि पशुओं, गायों, बैलों, बछड़ा-बछड़ियों और सांडों में से किसी के उधस् को काटा, किसी के थन, किसी के वृषण, किसी की पूँछ, किसी के ककुद, किसी के स्कन्ध, किसी के कान, किसी की नाक किसी की जीभ, किसी के ओठ, किसी के गलकंबल को काटा और दूसरे किन्हीं-किन्हीं के अन्यान्य अंगोपांगों को काटा, काट कर जहाँ अपना घर था, वहाँ आया और आकर उत्पला कूटग्राहिनी को दिये।

तत्पश्चात् उस उत्पला भार्या ने शूल पर पकाये हुए, तले हुए, भूने हुए, सूखे हुए और नमक में पचाये हुए गोमांस के साथ सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का स्वाद लेते हुए, बार-बार स्वाद लेते हुए, बाँटते हुए और खाते-पीते हुए उस दोहद को पूर्ण किया।

इसके बाद वह उत्पला कूटग्राहिणी सम्पूर्ण दोहद, सम्मानित दोहद, विनीत दोहद, व्युच्छिन्न दोहद और सम्पन्न दोहद वाली होकर सुखपूर्वक उस गर्भ को वहन करने लगी।

दारक का जन्म—

२१६. तत्पश्चात् उस उत्पला कूटग्राहिणी ने किसी समय नौ मास पूरे हो जाने पर दारक को जन्म दिया।

इसके बाद जन्मते ही उस बालक ने जोर-जोर से (चीखते हुए) आवाज की, जो भयंकर चीत्कारपूर्ण और कर्णकटु थी।

तब उस बालक के रोने की भयंकर आवाज सुनकर और समझकर हस्तिनापुर नगर में बहुत से सनाथ और अनाथ पशु,

नगरबलीवद्दा य नगरपड्डियाओ य नगरवसभा य भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सव्वओ समंता विपलाइत्था।

दारयस्स गोत्तासनामकरणं—

२१७. तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो अयमेयारूवं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमेणं दारएणं जायमेत्तेणं चेव महया-महया चिच्चीसद्देणं विघुट्ठे विस्सरे आरसिए, तए णं एयस्स दारगस्स आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म हत्थिणाउरे नयरे बहवे नगरगोरूवा-जाव-नगरवसभा य भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया सव्वओ समंता विपलाइत्था, तम्हा णं होउ अम्हं दारए गोत्तासे नामेणं।

तए णं से गोत्तासे दारए उम्मुक्कबालभावे जाए यावि होत्था।

भीममरणाणंतरं गोत्तासस्स कूडग्गाहत्तं—

२१८. तए णं से भीमे कूडग्गाहे अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते।

तए णं से गोत्तासे दारए बहूणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे भीमस्स कूडग्गाहस्स नीहरणं करेइ, करेत्ता बहूइं लोइयमयकिच्चाइं करेइ।

तए णं से सुनंदे राया गोत्तासं दारयं अण्णया कयाइ सयमेव कूडग्गाहत्ताए ठवेइ।

तए णं से गोत्तासे दारए कूडग्गाहे जाए यावि होत्था—अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे।

गोत्तासस्स मंसासणं नरयाइभवा य—

२१९. तए णं से गोत्तासे कूडग्गाहे कल्लाकल्लिं अद्धरत्तकालसमयंसि एगे अबीए सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए-जाव-गहियाउहप्पहरणे साओ गिहाओ निज्जाइ, निज्जाइत्ता जेणेव गोमंडवे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहूणं नगरगोरूवाणं सणाहाण य अणाहाण य-जाव-वियंगेइ, वियंगेत्ता जेणेव सए गेहे तेणेव उवागए।

तए णं गोत्तासे कूडग्गाहे तेहिं बहूहिं गोमंसेहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य परिसुक्केहि य लावणेहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

तए णं से गोत्तासे कूडग्गाहे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता पंचवाससयाइं परमाउं

गाय, बैल बछड़े-बछड़ियाँ और सांड आदि भयभीत, त्रस्त व्याकुल, उद्विग्न और भयग्रस्त हो इधर-उधर चारों ओर भागने लगे।

दारक का गोत्रास नामकरण—

२१७. तत्पश्चात् उस दारक के माता-पिता ने उसका यह और इस प्रकार का नामकरण किया—"क्योंकि हमारे इस बालक ने जन्म लेते ही जोर-जोर से चीखती आवाज से भयंकर चीत्कार पूर्ण और कर्णकटु शब्द किया कि इस दारक के कर्णकटु शब्द को सुनकर और समझकर हस्तिनापुर नगर में बहुत से नगर के पशु—यावत्—नगर के सांड भयभीत, त्रस्त, व्याकुल, उद्विग्न और भयाक्रांत हो इधर-उधर चारों ओर भागने लगे, जिससे हमारे इस बालक का नाम 'गोत्रास' हो।"

तत्पश्चात् वह गोत्रास बालक बालभाव को त्यागकर युवावस्था वाला हो गया।

भीम के मरणानन्तर गोत्रास की कूटग्राहत्व—

२१८. तत्पश्चात् वह भीम कूटग्राह किसी समय कालधर्म को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् गोत्रास बालक ने अपने बहुत से मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन सम्बन्धी और परिजनों के साथ रुदन-क्रंदन विलाप करते हुए भीम कूटग्राह का नीहरण (दाहसंस्कार) किया और उसके बाद अनेक लौकिक मृतक सम्बन्धी क्रियायें कीं।

तत्पश्चात् किसी एक समय सुनन्द राजा ने स्वयमेव गोत्रास दारक को कूटग्राह रूप से स्थापित किया।

इसके पश्चात् वह गोत्रास दारक कूटग्राह हो गया अर्थात् कूटग्राह के नाम से प्रसिद्ध हो गया। वह बड़ा ही अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द—कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था।

गोत्रास का मांसभक्षण और नरकादिभव—

२१९. तत्पश्चात् वह गोत्रास कूटग्राह प्रतिदिन अर्धरात्रि के समय एकाकी हो सैनिक के समान कवच आदि से सन्नद्ध हो—यावत्—आयुध और प्रहरण लेकर अपने घर से निकलता, निकलकर जहाँ गोमंडप था वहाँ आता, आकर नगर के अनेक सनाथ और अनाथ पशुओं को—यावत्—विखंडित करता अर्थात् उन पशुओं के अंगों को काटता और अंगभंग करके जहाँ अपना घर था, वहाँ आ जाता।

तत्पश्चात् वह गोत्रास कूटग्राह शूल पर पकाये हुए, तले हुए, भूने हुए, सूखे और नमक में पकाये हुए गोमांस एवं सुरा, मधु मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्नामदिरा का आस्वादन करते हुए, बार-बार आस्वादन करते हुए, बाँटते हुए और खाते-पीते हुए अपना समय यापन करने लगा।

तत्पश्चात् इस प्रकार के कर्मों से इस प्रकार के कार्यों की प्रधानता से इस प्रकार की पाप विद्या से और इस प्रकार के आचरण से वह गोत्रास कूटग्राह नाना प्रकार के पाप कर्मों का

पालइत्ता अट्टदुहट्टोवगए कालमासे कालं किच्चा दोच्चाए पुढवीए उक्कोसं तिसागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

उपार्जन करके पाँच सौ वर्ष की पूर्ण आयु का उपभोग कर चिन्ताओं और दुःखों से पीड़ित होता हुआ काल समय में काल करके दूसरी नरकपृथ्वी में उत्कृष्ट तीन सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

उज्झिययस्स वत्तमाणभव-वण्णणं—

२२०. तए णं सा विजयमित्तस्स सत्थवाहस्स सुभद्दा नामं भारिया जायनिंदुया यावि होत्था जाया-जाया दारगा विणिहायमावज्जंति।

तए णं से गोत्तासे कूडग्गाहे दोच्चाए पुढवीए अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव वाणियगामे नयरे विजयमित्तस्स सत्थवाहस्स सुभद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे।

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया।

उज्झितक का वर्तमानभव वर्णन—

२२०. तत्पश्चात् विजयमित्र सार्थवाह की सुभद्रा नामक भार्या जातनिंदुका मृतवंध्या थी कि जन्म लेते ही बालक विनाश को प्राप्त हो जाते थे, मर जाते थे।

तदनन्तर वह गोत्रास कूटग्राह दूसरी पृथ्वी से निकलकर सीधा इसी वाणिजग्राम नगर में विजयमित्र सार्थवाह की भार्या सुभद्रा की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

इसके बाद किसी अन्य समय में नौ मास पूरे होने पर सुभद्रा सार्थवाही ने पुत्र का प्रसव किया।

दारयस्स उज्झियय नामकरणं—

२२१. तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही तं दारगं जायमेत्तयं चेव एगंते उक्कुरुडियाए उज्झावेइ, उज्झावेत्ता दोच्चं पि गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता अणुपुव्वेणं सारक्खमाणी संगोवेमाणी संवड्ढेइ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो ठिइवडियं च चंदसूरदंसणं च जागरियं च महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं करेंति।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो एक्कारसमे दिवसे निव्वत्ते संपत्ते बारसाहे अयमेयारूवं गोण्णं गुणनिप्फण्णं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए जायमेत्तए चेव एगंते उक्कुरुडियाए उज्झिए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए उज्झियए नामेणं।

तए णं से उज्झियए दारए पंचधाईपरिग्गहिए, तं जहा—खीरधाईए मज्जणधाईए मंडणधाईए कीलावणधाईए अंकधाईए, जहा दढपइण्णे-जाव-निव्वाय-निव्वाघाय-गिरिकंदरमल्लीणे व्व चंपगपायवे सुहंसुहेणं विहरइ।

बालक का उज्झितक नामकरण—

२२१. तत्पश्चात् उस सुभद्रा सार्थवाही ने उत्पन्न होते ही उस बालक को एकान्त में उकरड़े (कूड़ा गिराने के स्थान) पर डलवा दिया और फिर डालकर उसे वापस उठवा लिया, उठवाकर यथारीति से क्रमपूर्वक संरक्षण एवं संगोपन करती हुई उसका परिवर्धन करने लगी।

तदनन्तर उस बालक के माता-पिता ने महान् ऋद्धि सत्कार और समारोह के साथ स्थितिपतिता—पुत्र जन्मोत्सव सूर्य-चन्द्र दर्शन जागरण किया।

इसके बाद उस बालक के माता-पिता ने ग्यारह दिन व्यतीत हो जाने के बाद बारहवें दिन उसका यह और इस प्रकार का गौण—गुण से सम्बन्धित गुणनिष्पन्न नामकरण किया, क्योंकि उत्पन्न होते ही हमने इस बालक को एकान्त में उकरड़े पर डलवा दिया था, इसलिये हमारे इस बालक का नाम 'उज्झितक' हो।

तदनन्तर वह उज्झितक बालक क्षीरधात्री, मज्जनधात्री मंडनधात्री, क्रीड़ापनधात्री और अंकधात्री इन पाँच धायमाताओं के द्वारा ग्रहण किया जाकर अर्थात् उनकी देखरेख में दृढ़प्रतिज्ञ की तरह—यावत्—निर्वात, निर्व्याघात, गिरिकन्दर (पर्वतीय गुफा) में विद्यमान चम्पक वृक्ष की तरह सुखपूर्वक वृद्धिगत होने लगा।

विजयमित्तस्स लवणसमुद्दे मरणं—

२२२. तए णं से विजयमित्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च—चउव्विहं भंडं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेण उवागए।

विजयमित्र का लवणसमुद्र में मरण—

२२२. तदनन्तर किसी एक समय विजयमित्र सार्थवाह गणिम—गिनकर बेची जाने वाली वस्तुयें, धरिम—तोलकर बेचने योग्य वस्तुयें, मेय—मापकर बिकने वाली वस्तुयें और परिच्छेद्य—जिनका क्रय-विक्रय परीक्षा करने पर निर्भर हो, जैसे हीरा आदि रत्न, इन चार प्रकार की बेचने योग्य वस्तुओं को लेकर पोतवहन नौका द्वारा लवणसमुद्र में पहुँचा।

तए णं से विजयमित्ते तत्थ लवणसमुद्दे पोयविवत्तीए निब्बुड्डभंडसारे अत्ताणे असरणे कालधम्मुणा संजुत्ते ।

तए णं तं विजयमित्तं सत्थवाहं जे बहवे ईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सत्थवाहा लवणसमुद्दपोयविवत्तियं निब्बुड्डभंडसारं कालधम्मुणा संजुत्तं सुणेंति, ते तहा हत्थनिक्खेवं च बाहिरभंडसारं च गहाय एगंतं अवक्कमंति ।

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही विजयमित्तं सत्थवाहं लवणसमुद्दपोयविवत्तियं निब्बुड्डभंडसारं कालधम्मुणा संजुत्तं सुणेइ, सुणेत्ता महया पइसोएणं अप्फुण्णा समाणी परसुनियत्ता इव चंपगलया 'धस' त्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिया ।

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही मुहुत्तंतरेणं आसत्था समाणी बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेहिं सद्धिं परिवुडा रोयमाणी कंदमाणी विलवमाणी विजयमित्तस्स सत्थवाहस्स लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ ।

तए णं सा सुभद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ लवणसमुद्दोत्तरणं च सत्थविणासं च पोयविणासं च पइमरणं च अणुचिंतेमाणी-अणुचिंतेमाणी कालधम्मुणा संजुत्ता ।

सुभद्दासत्थवाही मरणे उज्झियगस्स गिहाओ निक्कासणं—

२२३. तए णं ते नगरगुत्तिया सुभद्दं सत्थवाहिं कालगयं जाणित्ता उज्झियगं दारगं साओ गिहाओ निच्छुभेंति, निच्छुभेत्ता तं गिहं अण्णस्स दलयंति ।

तए णं से उज्झियए दारए साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे वाणियगामे नगरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु जूयखलएसु वेसघरएसु पाणागारेसु य सुहंसुहेणं परिवड्ढइ ।

तए णं से उज्झियए दारए अणोहट्टए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारे मज्जप्पसंगी चोर-जूय-वेस-दारप्पसंगी जाए यावि होत्था ।

उज्झियस्स गणियासहवासो—

२२४. तए णं से उज्झियए अण्णया कयाइ कामज्झयाए गणियाए

तत्पश्चात् वह, लवणसमुद्र में जहाज पर आपत्ति आने से जिसकी सभी बहुमूल्य वस्तुयें जलमग्न हो गई हैं ऐसा वह विजयमित्र अरक्षित और अशरण, आश्रयरहित हो कालधर्म से संयुक्त हुआ, मरण को प्राप्त हुआ ।

इसके बाद जैसे ही अनेक ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सार्थवाह आदि ने 'लवण समुद्र में जहाज पर आपत्ति आने और मूल्यवान वस्तुओं के जलमग्न होने एवं विजयमित्र सार्थवाह के मरण का वृत्तान्त सुना' वे उसी समय हस्त-निक्षेप, धरोहरण एवं बाह्य भांडसार-धरोहर के सिवाय शेष मूल्यवान आभूषण आदि को लेकर एकान्त स्थान में चले गये, छिप गये ।

इसके बाद उस सुभद्रा सार्थवाही ने लवणसमुद्र में पोतवहन को संकटग्रस्त होने, मूल्यवान् विक्रय योग्य वस्तुओं के डूबने और विजयमित्र सार्थवाह को कालधर्म से संयुक्त होने, मरण को प्राप्त होने का वृत्तान्त सुना तो सुनते ही पतिवियोगजन्य महान् शोक से दुःखित होकर कुल्हाड़ी से काटी हुई चंपकलता की भाँति धड़ाम से जमीन पर गिर पड़ी ।

इसके बाद कुछ क्षणों के अनन्तर जब वह सुभद्रा सार्थवाही आश्वस्त—सावधान हुई तब अपने अनेक मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों से घिरी हुई उसने रुदन करते हुए, आक्रन्द और विलाप करते हुए विजयमित्र सार्थवाह की मृत्यु सम्बन्धी लौकिक क्रियाओं को किया ।

इसके बाद किसी एक समय लवणसमुद्र में गमन करने, सार्थविनाश, पोतविनाश और पति के मरण का अनुचिन्तन करती हुई वह सुभद्रा सार्थवाही कालधर्म से संयुक्त हुई, मर गई ।

सुभद्रा सार्थवाही के मरने पर उज्झितक का घर से निष्कासन—

२२३. तत्पश्चात् उन नगररक्षकों ने सुभद्रा सार्थवाही के कालगत होने, मरने को जानकर उज्झितक बालक को उसे अपने घर से निकाल दिया, निकाल कर वह घर किसी दूसरे को दे दिया ।

तब वह उज्झितक बालक स्वयं के घर से निकाल दिये जाने पर वाणिजग्राम नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, गलियों, द्यूतगृहों, वेश्यागृहों और मद्य-पानगृहों, शराब पीने के स्थानों में इच्छानुसार घूमने लगा ।

तदनन्तर वह अनपघट्टक (जिसको कोई रोकने वाला न हो) अनिवारक (जिसको कोई कहने वाला न हो) उज्झितक बालक स्वच्छन्दमति एवं स्वेच्छाचारी होता हुआ मद्यपान, चौर्यकर्म, द्यूतकर्म, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन में आसक्त—लिप्त हो गया ।

उज्झितक का गणिका सहवास—

२२४. तत्पश्चात् किसी एक समय वह उज्झितक कामध्वजा

सद्धिं संपलग्गे जाए यावि होत्था, कामज्झयाए गणियाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तए णं तस्स मित्तस्स रण्णो अण्णया कयाइ सिरीए देवीए जोणिसूले पाउब्भूए यावि होत्था, नो संचाएइ मित्ते राया सिरीए देवीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरित्तए।

गणियासत्तेणं मित्तनामेणं रण्णा कया उज्झियविडंबणा—

२२५. तए णं से मित्ते राया अण्णया कयाइ उज्झियए दारए कामज्झयाए गणियाए गिहाओ निच्छुभावेइ, निच्छुभावेत्ता कामज्झयं गणियं अब्भितरियं ठवेइ ठवेत्ता कामज्झयाए गणियाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तए णं से उज्झियए दारए कामज्झयाए गणियाए गिहाओ निच्छुभेमाणे कामज्झयाए गणियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अण्णत्थ कत्थइ सुइं च रइं च धिइं च अविंदमाणे तच्चित्ते तम्मणे तल्लेसे तदज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तयप्पियकरणे तब्भावणाभाविए कामज्झयाए गणियाए बहूणि अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से उज्झियए दारए अण्णया कयाइ कामज्झयाए गणियाए अंतरं लभेइ, लभेत्ता कामज्झयाए गणियाए गिहं रहसियं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता कामज्झयाए गणियाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

इमं च णं मित्ते राया ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते जेणेव कामज्झयाए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता तत्थ णं उज्झिययं दारगं कामज्झयाए गणियाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलिं भिउडिं निडाले साहट्टु उज्झिययं दारगं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्पर-पहार-संभग्ग-महियगत्तं करेइ, करेत्ता अवओडग-बंधणं करेइ, करेत्ता एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

उवसंहारो—

२२६. एवं खलु गोयमा! उज्झियए दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्-

गणिका के सम्पर्क में आया, तब कामध्वजा गणिका के साथ मनुष्य सम्बन्धी विशेष भोगोपभोगों को भोगते हुए समय व्यतीत करने लगा।

इसके बाद किसी समय उस मित्रराजा की रानी श्रीदेवी को योनिशूल रोग उत्पन्न हो गया, जिससे मित्र राजा श्रीदेवी के साथ मनुष्य-सम्बन्धी उदार भोगोपभोगों का उपभोग करने में असमर्थ, विवश हो गया।

गणिकासक्त मित्र राजा कृत उज्झितक विडंबना—

२२५. तत्पश्चात् मित्रराजा ने किसी एक समय उज्झितक बालक को कामध्वजा गणिका के घर से निकलवा दिया, निकलवाकर कामध्वजा गणिका को अन्तःपुर में रख लिया और रखकर कामध्वजा गणिका के साथ मनुष्य सम्बन्धी विशेष भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरने लगा।

तत्पश्चात् कामध्वजा गणिका के घर से निकाला गया वह उज्झितक बालक कामध्वजा गणिका में मूर्च्छित, गृद्ध ग्रथित स्नेह जाल में जकड़ा और अध्युपपन्न आसक्त होता हुआ और अन्यत्र कहीं पर भी स्मृति, स्मरण, रति-प्रीति व धृति-मानसिक शांति अनुभव न करते हुए उसी में चित्त और मन को लगाये हुए, उसी में लिप्त, उसी की प्राप्ति के लिये प्रयत्नशील, उसी के उपयोग में मग्न, उसी के प्रति समर्पित और उसी की प्राप्ति की भावना से भावित होता हुआ कामध्वजा गणिका के अनेक अंतरों, छिद्रों और विवरों की गवेषणा करता हुआ समय बिता रहा था।

इसके बाद किसी एक समय कामध्वजा गणिका के अन्तरों को देखकर वह उज्झितक कुमार गुप्त रूप से कामध्वजा गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ और प्रविष्ट हो कामध्वजा गणिका के साथ मनुष्य सम्बन्धी विशिष्ट भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरने लगा।

इधर किसी समय मित्रराजा स्नान करके, बलिकर्म, कौतुक मंगल और प्रायश्चित करके सर्व अलंकारों से विभूषित हो, जन समुदाय से घिरा हुआ जहाँ कामध्वजा गणिका का घर था, वहाँ आया, आकर वहाँ उज्झितक कुमार को कामध्वजा गणिका के साथ प्रधान मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों का भोग करते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित, चंडिकावत् रौद्र हो उसने दाँतों को मिसमिसाते हुए, भृकुटि को तानकर ललाट में त्रिवलिका (तीन रेखायें) डालकर अपने पुरुषों द्वारा उज्झितक कुमार को पकड़वाया, पकड़वाकर लाठी-मुष्टि-घूंसे, लातों और कोहनियों के प्रहार से शरीर के अंग-अंग को भांग दिया, मथ दिया और फिर अवकोटक बंधन (गला और पीठ पर हाथ बाँधना) से बाँधा, बाँधकर इसी प्रकार से वध करने की आज्ञा दे दी।

उपसंहार—

२२६. इस प्रकार से हे गौतम! वह उज्झितक कुमार पूर्वजन्म

चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

के और पुरातन दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पापकर्मों के पापमय फलविशेष का अनुभव करता हुआ विचर रहा है।" भगवान ने कहा।

उज्झियगस्स आगामिभव-वण्णणं—

२२७. उज्झियए णं भंते ! दारए इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

उज्झितक का आगामीभव वर्णन—

२२७. भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा—"हे भगवन् ! वह उज्झितक कुमार यहाँ से काल मास में काल करके कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

गोयमा ! उज्झियए दारए पणुवीसं वासाइं परमाउं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे सूलभिण्णे कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

भगवान ने उत्तर दिया—"हे गौतम ! वह उज्झितक कुमार पच्चीस वर्ष की परम आयु भोगकर आज ही दिन का तीसरा भाग शेष रहते शूली के द्वारा भेदन किया जाता हुआ कालमास में काल करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे वेयड्ढगिरिपायमूले वाणरकुलंसि वाणरत्ताए उववज्जिहिइ।

तदनन्तर वह वहाँ से निकलकर इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में वैताढ्य पर्वत की तलहटी में बन्दर के कुल में बन्दर रूप से उत्पन्न होगा।

२२८. से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे तिरियभोगेसु मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे जाए-जाए वाणरपेल्लए वहेइ। तं एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे कालमासे कालं किच्चा इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे इंदपुरे नयरे गणियाकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ।

२२८. वह वहाँ बाल्यकाल को बिताने के बाद तिर्यंच सम्बन्धी भोगों में मूर्च्छित, गृद्ध, आबद्ध और आसक्त होता हुआ वानरों के बच्चों को जन्मते ही मार दिया करेगा। तब इसी कार्य से, इसी कार्य की प्रधानता से, इसी विज्ञान से और इसी आचरण से मरण काल में मरण करके इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारत वर्ष में इन्द्रपुर नगर में गणिका कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा।

तए णं तं दारयं अम्मापियरो जायमेत्तकं वद्धेहिंति, नपुंसगकम्मं सिक्खावेहिंति।

तब माता-पिता उस बालक को पैदा होते ही बधिया (नपुंसक) करके नपुंसक कर्म सिखायेंगे।

तए णं तस्स दारयस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं नामधेज्जं करेहिंति—होउ णं अम्हं इमे दारए पियसेणे नाम नपुंसए।

इसके बाद बारह दिन व्यतीत हो जाने पर माता-पिता उस बालक का यह और इस प्रकार का नामकरण करेंगे, हमारे इस बालक का 'प्रियसेन नपुंसक' यह नाम हो।

तए णं से पियसेणे नपुंसए उम्मुक्कबालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठे उक्किट्ठसरीरे भविस्सइ।

तत्पश्चात् वह प्रियसेन नपुंसक बाल्यावस्था को व्यतीत कर, ज्ञान-विज्ञान में परिपक्वता प्राप्त कर और युवावस्था को प्राप्त हुआ रूप, यौवन, लावण्य और उत्कृष्ट सुन्दर शरीर वाला होगा।

तए णं से पियसेणे नपुंसए इंदपुरे नयरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभियओ बहूहि य विज्जापओगेहि य मंतपओगेहि य चुण्णपओगेहि य हियउड्डावणेहि य निण्हवणेहि य पण्हवणेहि य वसीकरणेहि य आभिओगिएहि आभिओगित्ता उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरिस्सइ।

तदनन्तर वह प्रियसेन नपुंसक इन्द्रपुर नगर के अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठी, सेनापति और सार्थवाह आदि को अनेक विद्या प्रयोगों से, मंत्र प्रयोगों से, चूर्ण प्रयोगों से, हृदय को शून्य करने वाले प्रयोगों से, अदृश्य करने वाले प्रयोगों से, प्रसन्न करने वाले प्रयोगों से, वशीकरण करने वाले प्रयोगों से और परवश बनाने वाले प्रयोगों से, वश में करके अद्भुत विशेष प्रकार के मनुष्य सम्बन्धी भोगोपभोगों का भोग करते हुए समय व्यतीत करेगा।

२२९. तए णं से पियसेणे नपुंसए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता एक्कवीसं वाससयं

२२९. तत्पश्चात् वह प्रियसेन नपुंसक ऐसे कार्यों से, ऐसे कार्यों की प्रधानता से, ऐसी विद्या से और ऐसे आचरण से अत्यन्त पापकर्मों को अर्जित करके एक सौ इक्कीस वर्ष की पूर्ण आयु का

परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । ततो सिरीसिवेसु, संसारो तहेव जहा पढमे-जाव-वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसय-सहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चाया-इस्सइ ।

उपभोग करके मरण समय में मरण करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा । वहाँ सरिसृपों आदि में जन्म लेता हुआ संसार में परिभ्रमण करेगा, जिस प्रकार से प्रथम अध्ययन में वर्णन किया है—यावत्—वायुकाय, तेजस्काय, अपकाय और पृथ्वीकायिक जीवों में लाखों बार उत्पन्न होता हुआ, बार-बार उन्हीं में उत्पन्न होगा ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे चंपाए नयरीए महिसत्ताए पच्चायाहिइ ।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में चंपानगरी में महिषरूप—भैंसे के भव में उत्पन्न होगा ।

से णं तत्थ अण्णया कयाइ गोट्ठिल्लएहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे तत्थेव चंपाए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ ।

वह वहाँ किसी समय गौष्ठिकों—गुण्डों द्वारा जीवन रहित किये जाने, मारे जाने पर उसी चंपानगरी के श्रेष्ठी कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा ।

से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे तहारूवाणं थेराणं अंतिए केवलं बोहिं बुज्झिहिइ, अणगारे भविस्सइ, सोहम्मे कप्पे, जहा पढमे-जाव-अंतं काहिइ ।

—विवागसुयं सु० १ अ० २

तब वह वहाँ बाल्यावस्था को पार करके तथारूप स्थविरों के पास केवल बोधि, सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, अनगार दीक्षा अंगीकार करेगा, सौधर्म कल्प में उत्पन्न होगा आदि जैसा प्रथम अध्ययन में अंत करेगा पर्यन्त वर्णन किया गया है, तदनुरूप यहाँ समझ लेना चाहिए ।

१२. अभग्गसेणकहाणयं—

१२. अभग्नसेन कथानक—

पुरिमताले चोरसेणावई-विजयपुत्ते अभग्गसेणे—

२३०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पुरिमताले नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे ।

पुरिमताल में चोर सेनापति विजयपुत्र अभग्नसेन—

२३०. उस काल और उस समय में ऋद्धि सम्पन्न स्व-पर चक्र के भय से मुक्त और धन-धान्यादि समृद्धि से पूर्ण पुरिमताल नामक नगर था ।

तस्स णं पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं अमोहदंसी उज्जाणे ।

उस पुरिमताल नगर के उत्तर-पूर्व दिग्भाग में अमोघदर्शी नाम का उद्यान था ।

तत्थ णं अमोहदंसिस्स जक्खस्स आययणे होत्था ।

वहाँ अमोघदर्शी यक्ष का आयतन था ।

तत्थ णं पुरिमताले नयरे महब्बले नामं राया होत्था ।

उस पुरिमताल नगर में महाबल नाम का राजा था ।

तस्स णं पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए देसप्पंते अडवि-संसिया, एत्थ णं सालाडवी नामं चोरपल्ली होत्था—विसमगिरिकंदर-कोलंब-संनिविट्ठा वंसीकलंक-पागार-

उस पुरिमताल नगर के उत्तर-पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में सीमान्त प्रदेश अटवी से घिरा हुआ था, वहाँ पर शालाटवी नामक चोरपल्ली (चोरों के निवास का गुप्त स्थान) थी जो पर्वत की विषम भयानक गुफा के प्रान्त भाग, किनारे पर संस्थापित थी, बाँस की बाड़ रूप प्राकार कोट से घिरी हुई थी, टूटे-फूटे,

परिक्खित्ता छिण्णसेल-विसमप्पवाय-फरिहोवगूढा अब्भिंतरपाणीया सुदुल्लभजलपेरंता अणेगखंडी विदियजणदिन्न-निग्गमप्पवेसा सुबहुस्स वि कुवियजणस्स दुप्पहंसा यावि होत्था ।

कटे पर्वत के ऊँचे-नीचे विषम प्रपातों रूप खाई से युक्त थी जिसके अन्दर अनेक गुप्त पानी के कुण्ड थे और उसके बाहर जल का मिलना अत्यन्त दुर्लभ था, भागने के लिये जिसमें अनेक गुप्त द्वार थे, परिचित मनुष्य ही उसमें से निकल और प्रवेश कर सकते थे, चोरों द्वारा चुराई हुई वस्तु को वापस लाने के लिये उद्यत अनेक सैकड़ों मनुष्यों द्वारा भी जिसका नाश किया जाना सम्भव नहीं था ।

२३१. तत्थ णं सालाडवीए चोरपल्लीए विजए नामं चोरसेणावई परिवसइ—अहम्मिए अहम्मिट्ठे अहम्मक्खाई अधम्माणुए अधम्म-पलोइ अधम्मपलज्जणे अधम्मसील-समुदायारे अधम्मेण चेव वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ—हण-छिंद-भिंद-वियत्तए, लोहियपाणी बहुणयर-निग्गयजसे सूरे दढप्पहारे साहसिए सद्दवेही असि-लट्ठि-पढममल्ले ।

२३१. उस शालाटवी चोरपल्ली में अधर्मी, अधर्म ही जिसको प्रिय है, अधर्म का ही उपदेश देने वाला, अधार्मिक कार्यों का समर्थन और अनुगमन करने वाला, अधर्म को उपादेय मानने वाला, अधार्मिक धर्मविरुद्ध कार्यों में प्रसन्न रहने वाला, अधर्म करना ही जिसका स्वभाव और आचार-व्यवहार था ऐसा विजय नाम का चोर सेनापति रहता था, जो अधर्म से ही अपनी वृत्ति-आजीविका अर्जन करने वाला था, तथा मारने, काटने, छेदने और भेदने का ही आदेश देने वाला और स्वयं भी वैसे ही मार-काट वाले कार्य करने वाला था, उसके हाथ खून से रंगे रहते थे, अनेक नगरों तक जिसके नाम की प्रसिद्धि फैली हुई थी, जो शूर था, दृढ़प्रहार करने वाला था अर्थात् जिसका प्रहार खाली नहीं जाता था, साहसी था और शब्दवेधी अर्थात् शब्द से ही पदार्थ की स्थिति का ज्ञान करके उसे बींधने वाला था एवं तलवार और लाठी चलाने का प्रधान योद्धा था ।

से णं तत्थ सालाडवीए चोरपल्लीए पंचण्हं चोरसयाणं आहे-वच्चं पोरेवच्चं सामित्तं भट्टित्तं महत्तरगत्तं आणा-ईसर-सेणावच्चं कारेमाणे पालेमाणे विहरइ ।

वह उस चोरपल्ली में पांच सौ चोरों का आधिपत्य, पुरो-वर्तित्व, स्वामित्व, भर्तृत्व, महत्तरकत्व, आज्ञेश्वरत्व, सेना-पतित्व करते हुए, पालन करते हुए समय व्यतीत करता था ।

तए णं से विजए चोरसेणावई बहूणं चोराण य पारदारियाण य गंठिभेयगाण य संधिच्छेयगाण य खंडपट्टाण य, अण्णेसिं च बहूणं छिण्ण-भिण्ण-बाहिराहियाणं कुडंगे यावि होत्था ।

तदनन्तर वह विजय चोर सेनापति अनेक चोरों, परस्त्री-लंपटों, गांठ कतरने वालों, सेंध लगाने वालों, जिनके पास पहनने लायक वस्त्र नहीं ऐसे जुआरियों, बदमाशों तथा अन्य दूसरे भी बहुत से छिन्न—जिनके हाथ-पैर काट दिये गये ऐसे धूर्तों, भिन्न—नाक आदि काट दी गई ऐसे लम्पटों और नगर आदि बहिष्कृत दुष्ट पुरुषों के लिये कुटंक—बांस के गहन वन के समान छिपाने वाला था ।

तए णं से विजए चोरसेणावई पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तर-पुरत्थिमिल्लं जणवयं बहूहिं गामघाएहि य नगरघाएहि य गोग-हणेहि य बंदिग्गहणेहि य पंथकोट्टेहि य खत्तखणणेहि य ओवीले-माणे-ओवीलेमाणे विहम्मेमाणे-विहम्मेमाणे तज्जेमाणे-तज्जेमाणे तालेमाणे-तालेमाणे नित्थाणे निद्धणे निक्कणे करेमाणे विहरइ, महब्बलस्स रण्णो अभिक्खणं-अभिक्खणं कप्पायं गेण्हइ ।

इसके बाद वह विजय चोर सेनापति पुरिमताल नगर के उत्तरपूर्व दिशा (ईशान कोण) में बसे देश के अनेक ग्रामों को नष्ट करके, नगरों का नाश करके, गाय आदि पशुओं का अपहरण करके, बंदीजनों, कैदियों का अपहरण करके, पथिकों को लूट करके, डाका डाल करके, पीड़ित करता हुआ, भ्रष्ट करता हुआ, धमकी देता हुआ, मारपीट करता हुआ, स्थानरहित, निर्धन करता हुआ विचरता था तथा महाबल राजा के राजकर को बार-बार लूट लेता था ।

२३२. तस्स णं विजयस्स चोरसेणावइस्स खंदसिरी नामं भारिया होत्था—अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा।

तस्स णं विजयस्स चोरसेणावइस्स पुत्ते खंदसिरीए भारियाए अत्तए अभग्गसेणे नामं दारए होत्था—अहीणपडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे।

२३२. उस विजय चोर सेनापति की स्कन्दश्री नाम की भार्या थी, जो सभी पंचेन्द्रियों से युक्त शरीर वाली थी।

उस विजय चोर सेनापति का पुत्र और स्कन्द श्री भार्या का आत्मज अभग्नसेन नाम का बालक था जो लक्षण से सम्पन्न पंचेन्द्रियों युक्त शरीर वाला, परिपक्व बुद्धि से युक्त, यौवनावस्था को प्राप्त किये हुए था।

२३३. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे पुरिमताले नयरे समोसढे। परिसा निग्गया। राया निग्गओ। धम्मो कहिओ। परिसा राया य गओ।

२३३. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर पुरिमताल नगर में पधारे। वंदना करने परिषदा नगर से निकली। राजा भी दर्शनार्थ निकला। धर्मकथा कही। परिषदा और राजा वापस लौट आया।

महावीरसमोसरणे गोयमेण अभग्गसेणस्स पुव्वभवपुच्छा—

महावीर समवसरण में गौतम द्वारा अभग्नसेन के पूर्वभव की पृच्छा—

२३४. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी गोयमे-जाव-रायमग्गंसि ओगाढे, तत्थ णं बहवे हत्थी पासइ, अण्णे य तत्थ बहवे आसे पासइ, अण्णे य तत्थ बहवे पुरिसे पासइ-सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवए। तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं एगं पुरिसं पासइ—अवओडय बंधणं उक्खित्त-कण्ण-नासं नेहतुप्पियगत्तं वज्झकरकडि-जुयनियच्छं कंठेगुणरत्त-मल्लदामं चुण्णगुंडियगातं चुण्णयं वज्झपाणपीयं तिलं-तिलं चेव छिज्जमाणं कागणिमंसाइं खावियंतं पावं खक्खरसएहिं हम्ममाणं अणेगनर-नारी-संपरिवुडं चच्चरे-चच्चरे खंडपडहएणं उग्घोसिज्जमाणं [इमं च णं एयारूवं उग्घोसणं सुणेइ—नो खलु देवाणुप्पिया! अभग्ग-सेणस्स चोरसेणावइस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अवरज्झइ, अप्पणो से सयाइं कम्माइं अवरज्झंति?]।

२३४. उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम—यावत्—राजमार्ग पर पहुँचे, वहाँ अनेक हाथियों को देखा, अनेक अश्वों को देखा और वहाँ युद्ध के लिये तैयार कवच आदि को बाँधे अन्य दूसरे बहुत से पुरुषों को देखा। उन पुरुषों के मध्य में एक पुरुष को देखा, जिसकी गर्दन और हाथ पीठ पर बाँधे हुए थे जिसके नाक कान कटे हुए थे, जिसका सारा शरीर घी के लेप से चिकना हो रहा था जिसके दोनों हाथ हथकड़ियों से जकड़े हुए थे, गले में लाल माला लटक रही थी, जिसका शरीर गेरू से पुता हुआ था, जो भयग्रस्त था और मरणोन्मुख होने पर भी प्राण रक्षा का इच्छुक था, जिसके शरीर से तिल जैसे टुकड़ों में मांस काटा जा रहा था और वे टुकड़े उसे और कौओं को खिलाये जा रहे थे, चाबुकों और पत्थरों से जिसको मारा जा रहा था, अनेक स्त्री-पुरुषों के समूह से जो घिरा हुआ था तथा प्रत्येक चौक में फटा ढोल बजा-बजाकर जिसके लिये घोषणा की जा रही थी। (इसके साथ ही यह और इस प्रकार की घोषणा सुनी "हे देवानुप्रियो! अभग्नसेन चोर सेनापति का कोई राजा या राजपुत्र अपराधी नहीं है, किन्तु इसके स्वयं अपने कर्मों का अपराध दोष है?"

तए णं तं पुरिसं रायपुरिसा पढमंसि चच्चरंसि निसियावेंति, निसियावेत्ता अट्ठ चुल्लपिउए अग्गओ घाएंति, घाएत्ता कसप्पहा-रेहिं तालेमाणा-तालेमाणा कलुणं काकणिमंसाइं खावेंति, रुहिर-पाणं च पाएंति।

तत्पश्चात् राजपुरुष उस पुरुष को पहले चौक अथवा चौराहे पर बैठाते और बैठाकर पिता के आठ छोटे भाइयों—चाचाओं को पहले मारते, मारकर कशादि (चाबुक) के प्रहारों से पीटते-पीटते हुए उस करुणा के योग्य दीन पुरुष को मांस के छोटे-छोटे टुकड़ों को खिलाते हैं और रक्तपान कराते हैं।

तयाणंतरं च णं दोच्चंसि चच्चरंसि अट्ठ चुल्लमाउयाओ अग्गओ घाएंति, घाएत्ता कसप्पहारेहिं तालेमाणा तालेमाणा-कलुणं काकणिमंसाइं खावेंति, रुहिरपाणं च पाएंति।

तदनन्तर दूसरे चत्वर में पहले आठ छोटी माताओं—चाचियों को घायल करते, घायल करके कशा प्रहार से पीटते हुए उस करुण पुरुष को निकाले हुए मांस खंडों को खिलाते हैं और रुधिर पान कराते हैं।

एवं तच्चे चच्चरे अट्ठ महापिउए, चउत्थे अट्ठ महामाउयाओ,

इसी प्रकार तीसरे चत्वर में आठ महापिताओं—पिता के बड़े भाइयों, ताउओं, बाबाओं, चौथे में आठ बड़ी माताओं—

पंचमे पुत्ते, छट्ठे सुण्हाओ, सत्तमे जामाउया, अट्ठमे धूयाओ, नवमे नत्तुया, दसमे नत्तुईओ, एक्कारसमे नत्तुयावई, बारसमे नत्तुइणीओ, तेरसमे पिउस्सियपइया, चोद्दसमे पिउस्सियाओ, पण्णरसमे माउस्सियापइया, सोलसमे माउस्सियाओ, सत्तरसमे मामियाओ, अट्ठारसमे अवसेसं मित्त-नाइ-नियग-सयणसंबंधि-परियणं अग्गओ घाएंति, घाएत्ता कसप्पहारेहिं तालेमाणा-तालेमाणा कलुणं काकणिमंसाइं खावेंति, रुहिरपाणं च पाएंति।

ताइयों को, पाँचवें में पुत्रों को, छठे में पुत्रवधुओं को, सातवें में जामाताओं—लड़कियों के पतियों—दामादों को, आठवें में पुत्रियों को, नौवें में नातियों—पौत्रों और दौहित्रों (पोता दोहता) को, दसवें में नातनियों (पोती, दोहती) को, ग्यारहवें में नप्तृकापतियों (पोतियों और दोहतियों के पतियों) को, बारहवें में नातियों की पत्नियों को, तेरहवें में पिता की बहिनों के पतियों—फूफाओं को, चौदहवें में पिता की बहिनों—भुआओं को, पन्द्रहवें में माता की बहिनों के पतियों—मौसाओं को, सोलहवें में माताओं की बहिनों—मौसियों को, सत्रहवें में मामियों को और अठारहवें में अवशेष बाकी बचे मित्र-ज्ञाति जन-निजक-स्वजन-सम्बन्धी परिजन दासी-दास आदि को पहले मारा मारकर कशादि प्रहारों से ताड़ित करते हुए दया के योग्य दीन कारुणिक उस पुरुष को मांस के टुकड़ों को खिलाया और रक्तपान कराया।

२३५. तए णं भगवओ गोयमस्स तं पुरिसं पासित्ता अयमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—"अहो णं इमे पुरिसे पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा। पच्चक्खं खलु अयं पुरिसे निरयपडिरूवियं वेयणं वेएइ" त्ति कट्टु पुरिमताले नयरे उच्च-नीय-मज्झिम-कुलाइं अडमाणे अहापज्जत्तं समुदाणं गिण्हइ, गिण्हित्ता पुरिमतालं नयरं मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमइ -जाव-समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी— एवं खलु अहं भंते! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाए समाणे पुरिमताले नयरे -जाव-तहेव सव्वं निवेएइ।

२३५. तब उस पुरुष को देखकर भगवान गौतम को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ कि- 'अहो! यह पुरुष अपने पूर्वजन्मों में कृत पुरातन दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त, अशुभ पापकर्मों का यह पापमय फलविशेष वेदन करते हुए समय व्यतीत कर रहा है। मैंने नरक और नैरयिक नहीं देखे हैं किन्तु यह पुरुष साक्षात् नरक प्रतिरूप जैसी वेदना वेदन कर रहा है, ऐसा विचार कर पुरिमताल नगर के उच्च-नीच, मध्यम आर्थिक स्थिति वाले कुलों में घूमकर यथा पर्याप्त समुदान भिक्षा ली, भिक्षा लेकर पुरिमताल नगर के मध्य में से निकले—यावत् श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके यह निवेदन किया—'हे भगवन्! मैं आपसे आज्ञा-अनुमति लेकर पुरिमताल नगर में गया आदि सब पूर्ववत् निवेदन किया।

अभग्गसेणस्स निन्नयभवकहा—

२३६. से णं भंते! पुरिसे पुव्वभवे के आसी? किं नामए वा किं गोत्ते वा? कयरंसि गामंसि वा नयरंसि वा? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता, केसिं वा पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ?"

२३७. एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे पुरिमताले नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे०।

तत्थ णं पुरिमताले नयरे उदिओदिए नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे०।

अभग्नसेन की निर्णयभव कथा—

२३६. "हे भगवान! वह पुरुष पूर्वभव में कौन था? उसका क्या नाम और गोत्र था, किस ग्राम या नगर में रहता था? उसने क्या देकर, क्या भोग कर और कैसा आचरण कर और कैसे पूर्वजन्म कृत पुरातन दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पापकर्मों का पापमय फल-विशेष का अनुभव करते हुए समय बिता रहा है?"

२३७. भगवान महावीर ने गौतम भगवान के समाधानार्थ कहा—"हे गौतम! बात यह है कि उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में पुरिमताल नामक नगर था, जो भवनादि ऋद्धि से सम्पन्न, स्वपर राष्ट्र भय से रहित और धन-धान्यादि समृद्धि से समृद्ध था।

इस पुरिमताल नगर में उदितोदित नाम का राजा था, जो महाहिमवान मलय मन्दर आदि पर्वतों एवं इन्द्र के समान मनुष्यों में प्रधान था।

तत्थ णं पुरिमताले निन्नए नामं अंडय-वाणियए होत्था—अड्ढे-जाव-अपरिभूए, अहम्मिए अधम्माणुए अधम्मिट्ठे अधम्मक्खाई अधम्मपलोई अधम्मपलज्जणे अधम्मसमुदाचारे अधम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणे दुस्सीले दुव्वए दुप्पडियाणंदे।

उस पुरिमताल नगर में धनाढ्य—यावत्—किसी के द्वारा अपमानित नहीं किया जा सकने वाला, अधार्मिक, अधर्म का अनुयायी, अधर्मप्रेमी, अधर्म का कथन वर्णन, प्रचार करने वाला, अधर्म का अवलोकन करने वाला, अधार्मिक कार्यों से मनोरंजन करने वाला, अधार्मिक आचार करने वाला और अधर्म से ही आजीविका करने, कमाने वाला, दुष्ट स्वभावी, दुर्व्रत, व्रतादि से शून्य, दुष्प्रत्यानन्द किसी भी तरह प्रसन्न नहीं होने वाला अथवा दुष्कार्यों में आनन्द अनुभव करने वाला निर्णय नामक अंडवणिक—अंडों का व्यापार, व्यवसाय करने वाला था।

निन्नयस्स अंडवाणिज्जं अण्डाइअसणं निरयोववाओ य—

२३८. तस्स णं निन्नयस्स अंडय-वाणियस्स बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्त-वेयणा कल्लाकल्लिं कुद्दालियाओ य पत्थियपिडए य गिण्हंति, गिण्हित्ता पुरिमतालस्स नयरस्स परिपेरंतेसु बहवे काइअंडए य घूइअंडए य पारेवइअंडए य टिट्टिभिअंडए य बगिअंडए य मयूरि-अंडए य कुक्कुडिअंडए य, अण्णेसिं च बहूणं जलयर-थलयर-खहय-रमाईणं अंडाइं गेण्हंति, गेण्हित्ता पत्थियपिडगाइं भरेंति, भरेत्ता जेणेव निन्नए अंडवाणियए तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता निन्न-यस्स अंडवाणियस्स उवणेंति।

निर्णय का अंडवाणिज्य अंडादिभक्षण और नरकोपपाद—

२३८. उस अंडवणिक निर्णय के दैनिक मजदूरी, भोजन और वेतन पर रखे गये अनेक पुरुष प्रतिदिन कुदाली और बांस की पिटारी लेते और लेकर पुरिमताल नगर के चारों ओर अनेकों कौए के अंडों, उल्लू के अंडों, कबूतर के अंडों, टिटहरी (पक्षी विशेष) के अंडों, बगुले के अंडों, मोर के अंडों, मुर्गे के अंडों तथा दूसरे बहुत से जलचर, थलचर और खेचर जीवों आदि के अंडों को इकट्ठा करते, इकट्ठा करके पिटारियों को भरते, भरकर वहाँ आते जहाँ निर्णय अंडवणिक रहता और आकर निर्णय अंड-वणिक को देते।

तए णं तस्स निन्नयस्स अंडवाणियगस्स बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्त-वेयणा बहवे काइअंडए य-जाव-कुक्कुडिअंडए य, अण्णेसिं च बहूणं जलयर-थलयर-खहयरमाईणं अंडए तवएसु य कवल्लीसु य कंडुसु य भज्जणएसु य इंगालेसु य तलेंति भज्जेंति सोल्लेंति, तलेत्ता भज्जेत्ता सोल्लेत्ता य रायमग्गे अंतरावणंसि अंडयपणिएणं वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति।

इसके बाद उस अंडवणिक निर्णय के मजदूरी, भोजन और वेतन देकर रखे गये अनेक पुरुष कौए के अंडों—यावत्—मुर्गे के के अंडों तथा दूसरे भी बहुत से जलचर, थलचर और नभचर जीवों के अंडों को तवों पर, कपालों पर, हांडों में, भाड़ों में और अंगारों पर तलते, भूनते, शूल से पकाते एवं तलकर, भूनकर, शूल पर पकाकर राजमार्गों पर बाजारों में अथवा दुकानों पर अंडों को बेचने से अपनी आजीविका करते हुए समय व्यतीत करते थे।

अप्पणा वि णं से निन्नए अंडवाणियए तेहिं बहूहिं काइअंड-एहिं य-जाव-कुक्कुडिअंडएहिं य सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

स्वयं भी वह निर्णय अंडवणिक उन शूल पर पकाये, तले और भुने हुए कौओं के अंडों—यावत्—मुर्गों के अंडों और सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन करते हुए, विशेष रूप से आस्वादन करते हुए, बाँटते हुए और खाते-पीते हुए समय बिताता था।

तए णं से निन्नए अंडवाणियए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता एगं वाससहस्सं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा तच्चाए पुढवीए उक्कोसेणं सत्त-सागरोवमट्ठिइएसु नरएसु नेरइयत्ताए उववन्ने।

तब वह निर्णय अंडवणिक ऐसे कार्यों से, ऐसे कार्यों की प्रधानता से, ऐसे विज्ञान से और ऐसे आचरण से प्रभूत पाप कर्मों को उपार्जित करके और पूरे एक हजार वर्ष की आयु को भोग कर मरण समय में मरण करके तीसरी नरकपृथ्वी में उत्कृष्ट सात सागरोपम की आयु वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

अभग्गसेणस्स वत्तमाणभव-वण्णणं—

२३६. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव सालाडवीए चोरपल्लीए

अभग्नसेन का वर्तमानभव वर्णन—

२३६. तत्पश्चात् वह वहाँ से बिना किसी अन्तर के सीधा निकल

विजयस्स चोरसेणावइस्स खंदसिरीए भारियाए कुच्छिसि पुत्तत्ताए उववण्णे ।

खंदसिरीए दोहलो—

२४०. तए णं तीसे खंदसिरीए भारियाए अण्णया कयाइ तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं इमे एयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ जाओ णं बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणमहिलाहिं, अण्णाहि य चोरमहिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता सव्वालंकारविभूसिया विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी वीसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी विहरंति । जिमियभुत्तुत्तरागया पुरिसनेवत्था सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवइया उप्पीलियसरासणपट्टीया पिणद्धगेवेज्जा विमलवरबद्ध-चिंधपट्टा गहियाउहप्पहरणावरणा भरिएहिं, फलएहिं, निक्कट्ठाहिं असीहिं, अंसागएहिं तोणेहिं, सज्जीवेहिं अंसागएहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालियाहिं दामाहिं, ओसारियाहिं ऊरुघंटाहिं, छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं महया उक्किट्ठिसीहणाय-बोल-कलकल-रवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणीओ सालाडवीए चोरपल्लीए सव्वओ समंता ओलोएमाणीओ-ओलोएमाणीओ आहिंडमाणीओ-आहिंडमाणीओ दोहलं विणेंति । तं जइ अहं पि-जाव-दोहलं विणिएज्जामि" त्ति कट्टु तंसि दोहलंसि अविणिज्जमाणंसि सुक्का भुक्खा-जाव-अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियाइ ।

विजएण दोहलपूरणं—

२४१. तए णं से विजए चोरसेणावई खंदसिरिभारियं ओहयमण-संकप्पं-जाव-झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—किं णं तुमं देवाणुप्पिए ! ओहयमणसंकप्पा-जाव-भूमिगयदिट्ठीया झियासि ?

तए णं सा खंदसिरी विजयं चोरसेणावइं एवं वयासी—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम तिण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दोहले पाउब्भूए-जाव-भूमिगयदिट्ठीया झियामि ।

तए णं से विजए चोरसेणावई खंदसिरीए भारियाए अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म खंदसिरिभारियं एवं वयासी—'अहासुहं देवाणुप्पिए !' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

कर यहीं शालाटवी चोरपल्ली में विजय चोर सेनापति की स्कन्दश्री भार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ ।

स्कन्दश्री का दोहद—

२४०. तत्पश्चात् तीन मास बीतने पर किसी समय उस स्कन्दश्री भार्या को इस प्रकार का यह दोहद उत्पन्न हुआ—"धन्य हैं वे मातायें जो अनेक मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिचित महिलाओं तथा दूसरी भी चोर महिलाओं के साथ स्नान, बलिकर्म, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित्त करके तथा समस्त अलंकारों से शरीर को विभूषित करके विपुल अशन, पान, खाद्य और स्वाद्य भोजनों, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का स्वाद लेती हुई, बार-बार स्वाद लेती हुई, बाँटती हुई और खाती-पीती हुई विचरण करती हैं तथा भोजन करने के पश्चात् पुरुष वेष धारण कर योद्धा की तरह सजकर और शरीर पर कवच बाँधकर शरासन पट्टिका को भुजाओं पर बाँधकर गले में ग्रैवेयक पहन कर अपने अपने श्रेष्ठ संकेत पट्टों को बाँधकर आयुध और प्रहरणों के साथ हाथ में ढाल और म्यान से बाहर निकली हुई तलवार लेकर, कंधे पर लटकते तूणीर और प्रत्यंचा युक्त धनुष पर आरोपित—रखे बाणों, ऊँचे किये दामों—जाल विशेषों को लेकर जांघों में लटकते हुए घुंघरुओं से, जोर-जोर से बजाये जा रहे बाजों से, हर्षातिरेक से होने वाली महाध्वनियों से सिंह के समान की जाने वाली गर्जनाओं, बोलों और कोलाहलों से क्षुभित समुद्र ध्वनि के समान गगन मंडल को शब्दायमान करती हुई, गुंजाती हुई, शालाटवी चोरपल्ली को सभी चारों ओर से देखती हुई और उसके चारों तरफ घूमती हुई अपना दोहद पूर्ण करती हैं । क्या ही अच्छा हो यदि मैं भी इसी भाँति अपने दोहद को पूर्ण करूँ ।" ऐसा विचार कर उस दोहद के पूर्ण न होने से सूख गई, भूखी सी हो गई—यावत्—आर्तध्यान में डूबकर आँखों को नीचे जमीन पर गड़ाये हुए चिन्ता करने लगी ।

विजय द्वारा दोहदपूर्ति—

२४१. इसके बाद विजय चोर सेनापति ने स्कन्दश्री भार्या को निराश—यावत्—चिन्ताग्रस्त देखा, देखकर इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये ! तुम क्यों निराश हो—यावत्—नीचे भूमि पर आँखें किये हुए आर्तध्यान कर रही हो ।"

तब स्कन्दश्री ने विजय चोर सेनापति से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि तीन मास पूर्ण होने पर पूर्वोक्त दोहद प्रादुर्भूत हुआ है—यावत्—नीचे भूमि पर आँखें गड़ाये चिन्तित हो रही हूँ ।"

तत्पश्चात् वह विजय चोर सेनापति स्कन्दश्री भार्या की इस बात को सुनकर और उस पर मनन कर स्कन्दश्री भार्या से इस प्रकार बोला—"हे देवानुप्रिये ! जैसे तुम्हें सुख हो, वैसा करो" और ऐसा कहकर उस बात को स्वीकार किया ।

तए णं सा खंदसिरिभारिया विजएणं चोरसेणावइणा अब्भणुण्णाया समाणी हट्ठतुट्ठा बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-महिलाहिं, अण्णाहि य बहूहिं चोरमहिलाहिं सद्धिं संपरिवुडा ण्हाया-जाव-विभूसिया विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणी वीसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागया पुरिसनेवत्था सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवइया-जाव-आहिंडमाणी दोहलं विणेइ।

तत्पश्चात् विजय चोर सेनापति से आज्ञा-अनुमति प्राप्त कर वह स्कन्दश्री भार्या हर्षित सन्तुष्ट हुई और अनेक मित्र, ज्ञातीय, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजन महिलाओं एवं दूसरी बहुत-सी चोर महिलाओं से परिवेष्टित हो उसने स्नान किया—यावत्—विभूषित किया और फिर वह विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन करती, बार-बार आस्वादन करती, बांटती, खाती-पीती हुई विचरने लगी। भोजन करने के पश्चात् उसने पुरुष वेश धारण कर युद्ध के लिये तैयार योद्धा की तरह सजकर कवच को बांधकर—यावत्—घूमकर अपने दोहद को पूर्ण किया।

तए णं सा खंदसिरिभारिया संपुण्णदोहला संमाणियदोहला विणीयदोहला विच्छिण्णदोहला संपण्णदोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

तत्पश्चात् वह स्कन्दश्री भार्या सम्पूर्ण दोहद, सम्मानित दोहद, विनीत दोहद, विच्छिन्न दोहद और सम्पन्न दोहद वाली होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक वहन करने लगी।

२४२. तए णं खंदसिरी चोरसेणावइणी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया।

२४२. तत्पश्चात् स्कन्दश्री चोर सेनापत्नी ने नौ मास पूर्ण होने बालक का प्रसव किया।

तए णं से विजए चोरसेणावई तस्स दारगस्स महया इड्ढी-सक्कारसमुदएणं दसरत्तं ठिइवडियं करेइ।

तत्पश्चात् विजय चोर सेनापति ने महान् ऋद्धि सत्कार और समारोहपूर्वक उस बालक की दस रात्रि वाली स्थितिपतिता को किया। अर्थात् दस दिन तक पुत्र जन्म सम्बन्धी उत्सव किया।

दारयस्स अभग्गसेण-नामकरणं जोव्वणं च—

२४३. तए णं से विजए चोरसेणावई तस्स दारगस्स एक्कारसमे दिवसे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणं आमंतेइ, आमंतेत्ता-जाव-तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ एवं वयासी—जम्हा णं अम्हं इमंसि दारगंसि गब्भगयंसि समाणंसि इमे एयारूवे दोहले पाउब्भूए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए अभग्गसेणे नामेणं।

दारक का अभग्नसेन नामकरण और यौवन—

२४३. तत्पश्चात् उस विजय चोर सेनापति ने उस बालक के जन्म के ग्यारहवें दिन विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप भोजन तैयार करवाया, तैयार करवा कर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी स्वजन-सम्बन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया, आमंत्रित करके—यावत्—उन्हीं मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी, स्वजन सम्बन्धियों और परिजनों के सामने इस प्रकार कहा—"जिस समय हमारा यह बालक गर्भ में आया था तो यह और इस प्रकार का दोहद प्रादुर्भूत हुआ था इसलिये हमारा यह बालक अभग्नसेन इस नाम वाला होवे।"

तए णं से अभग्गसेणे कुमारे पंचधाईपरिग्गहिए-जाव-परिवड्ढइ।

इसके बाद वह अभग्नसेन कुमार पाँच धायमाताओं द्वारा पोषित होता हुआ—यावत्—वृद्धि को प्राप्त होने लगा।

तए णं से अभग्गसेणे कुमारे उम्मुक्कबालभावे यावि होत्था। अट्ठ दारियाओ-जाव-अट्ठओ दाओ। उप्पिं० भुंजइ।

इसके बाद वह अभग्नसेन कुमार बालभाव को पार कर युवावस्था को प्राप्त हो गया। उसका आठ कन्याओं के साथ विवाह हुआ अतः उसकी आठ दारा—पत्नी थीं—यावत्—आठ दहेज प्राप्त हुए। महलों के ऊपर भोगों का भोग करने लगा।

विजयमरणे अभग्गसेणस्स चोरसेणावइत्तं—

२४४. तए णं से विजए चोरसेणावई अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते।

तए णं से अभग्गसेणे कुमारे पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे विजयस्स चोरसेणावइस्स महया

विजय का मरण, अभग्नसेन को चोर सेनापतित्व—

२४६. तत्पश्चात् किसी समय विजय सेनापति कालधर्म संयुक्त हुआ अर्थात् मर गया।

तब अभग्नसेन कुमार ने पाँच सौ चोरों के साथ रुदन, आक्रंदन और विलाप करते हुए महान् ऋद्धि सत्कार और समारोहपूर्वक विजय चोर सेनापति का नीहरण—अन्त्येष्टि कर्म

इड्ढीसक्कारसमुदएणं नीहरणं करेइ, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, करेत्ता केणइ कालेणं अप्पसोए जाए यावि होत्था।

किया, करके और दूसरी भी बहुत सी लौकिक मृतक सम्बन्धी क्रियायें कीं, क्रियायें करके कुछ काल के पश्चात् शोकरहित हो गया।

तए णं ताइं पंच चोरसयाइं अण्णया कयाइ अभग्गसेणं कुमारं सालाडवीए चोरपल्लीए महया-महया चोरसेणावइत्ताए अभिसिंचंति।

इसके बाद उन पाँच सौ चोरों ने किसी एक दिन शालाटवी चोरपल्ली के चोर सेनापतित्व के रूप में अभग्नसेन कुमार को महान् समारोहपूर्वक अभिषिक्त किया।

तए णं से अभग्गसेणे कुमारे चोरसेणावई जाए अहम्मिए-जाव-महब्बलस्स रण्णो अभिक्खणं-अभिक्खणं कप्पायं गिण्हइ।

तत्पश्चात् अभग्नसेन कुमार अधार्मिक—यावत्—बार-बार महाबल राजा के राजकर को लूटने वाला चोर सेनापति हो गया।

तए णं ते जाणवया पुरिसा अभग्गसेणेणं चोरसेणावइणा बहुगामघायणाहिं ताविया समाणा अण्णमण्णं सद्दावेंति, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया! अभग्गसेणे चोरसेणावई पुरिमतालस्स नयरस्स उत्तरिल्लं जणवयं बहूहिं गामघाएहिं-जाव-निद्धणं करेमाणे विहरइ। तं सेयं खलु देवाणुप्पिया! पुरिमताले नयरे महब्बलस्स रण्णो एयमट्ठं विण्णवित्तए।"

इसके बाद अभग्नसेन चोर सेनापति के द्वारा बहुत से ग्रामों के घात—विनाश से संतप्त—दुखी होकर उस देश में रहने वाले व्यक्तियों ने एक-दूसरे को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो! अभग्नसेन चोर सेनापति पुरिमताल नगर के उत्तर दिशावर्ती जनपद के बहुत से ग्रामों का विनाश—यावत्—निर्धन करता हुआ विचरण कर रहा है। इसलिये हे देवानुप्रियो! हमें यह उचित है कि पुरिमताल नगर में महाबल राजा से यह बात निवेदन करें।"

महब्बलरण्णो अभग्गसेणजीवग्गाहग्गहणे आणा—

महाबल राजा की अभग्नसेन को जीवित पकड़ने की आज्ञा—

२४५. तए णं ते जाणवया पुरिसा एयमट्ठं अण्णमण्णेणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं गिण्हंति, गिण्हित्ता जेणेव पुरिमताले नयरे तेणेव उवागया महब्बलस्स रण्णो तं महत्थं-जाव-पाहुडं उवणेंति, उवणेत्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं रायं एवं वयासी—"एवं खलु सामी! सालाडवीए चोरपल्लीए अभग्गसेणे चोरसेणावई अम्हे बहूहिं गामघाएहि य-जाव-निद्धणे करेमाणे विहरइ। तं इच्छामो णं सामी! तुज्झं बाहुच्छायापरिग्गहिया निब्भया निरुव्विग्गा सुहंसुहेणं परिवसित्तए" त्ति कट्टु पायवडिया पंजलिउडा महब्बलं रायं एयमट्ठं विण्णवेंति।

२४५. तत्पश्चात् जनपदवासी—देश में रहने वाले व्यक्तियों ने परस्पर इस बात को स्वीकार किया, स्वीकार करके महान् अर्थ सूचक मूल्यवान महान् पुरुषों के योग्य, राजा के योग्य उपहार—भेंट को लिया, लेकर वे जहाँ पुरिमताल नगर था, वहाँ आये और उन्होंने महाबल राजा को वह महान् अर्थ वाली मूल्यवान—यावत्—भेंट दी, भेंट देकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके महाबल राजा से इस प्रकार निवेदन किया—"हे स्वामिन्! शालाटवी चोरपल्ली का अभग्नसेन चोर सेनापति हमारे अनेक गाँवों का विनाश कर—यावत्—निर्धन करता हुआ विचरण कर रहा है। अतः हे स्वामिन्! हम चाहते हैं कि आपकी भुजाओं की छाया से परिगृहीत हुए—छाया को ग्रहण करके हम निर्भय, निरुद्विग्न होकर सुखपूर्वक निवास करें।" इस प्रकार कहकर चरणों में गिरते हुए उन्होंने दोनों हाथ जोड़ अंजलि करके महाबल राजा से अपनी यह बात कही।

तए णं से महब्बले राया तेसिं जाणवयाणं पुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु दंडं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया! सालाडविं चोर-

तत्पश्चात् महाबल राजा ने जनपदीय व्यक्तियों से इस बात को सुनकर और समझकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित, चण्डिकावत् रौद्र हो, दाँतों को मिसमिसाते हुए भृकुटि तान ललाट में सल डालकर दंडनायक—कोतवाल को बुलाया; बुलाकर इस प्रकार आज्ञा दी—"हे देवानुप्रिय! तुम जाओ और शालाटवी चोर-

पल्लिं विलुम्पाहि, विलुम्पित्ता अभग्गसेणं चोरसेणावइं जीवग्गाहं गेण्हाहि, गेण्हित्ता ममं उवणेहि ।"

पल्ली को तहस-नहस (नष्ट-भ्रष्ट) कर दो और तहस-नहस करके अभग्नसेन चोर सेनापति को जीवित ही पकड़ लो, पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो ।"

तए णं से दंडे 'तह' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेइ ।

तब उस दंडनायक ने 'तथास्तु—ऐसा ही होगा ।' कहकर इस आज्ञा को स्वीकार किया ।

२४६. तए णं से दंडे बहूहिं पुरिसेहिं सण्णद्ध-बद्धवम्मियकवएहिं -जाव-गहियाउह-पहरणेहिं सद्धिं संपरिवुडे मग्गइएहिं फलएहिं, निक्कट्ठाहिं असीहिं, अंसागएहिं तोणेहिं, सज्जीवेहिं अंसागएहिं धणूहिं, समुक्खित्तेहिं सरेहिं, समुल्लालियाहिं दामाहिं, ओसारियाहिं ऊरुघंटाहिं, छिप्पतूरेणं वज्जमाणेणं महया उक्किट्ठ-सीहणाय-बोल-कलकल-रवेणं पक्खुभियमहासमुद्दरवभूयं पिव करेमाणे पुरिमतालं नयरं मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

२४६. इसके बाद वह दंडनायक युद्ध के लिये तत्पर हुए बन्धन से बँधे हुए कवच को धारण कर—यावत्—आयुध और प्रहरणों को लिये हुए अनेक पुरुषों से परिवेष्टित हो, हाथ में ली हुई ढालों और नंगी तलवारों, कंधों पर लटकते तूणीरों और धनुषों, आक्रमण के लिये धनुषों पर रखे बाणों, उछालते हुए पाशों अथवा शस्त्र विशेषों, जंघाओं पर बँधे घुंघरुओं, जोर-जोर से बज रहे वाद्यों के साथ आनन्दपूर्वक किलकारियाँ मारते हुए, सिंह गर्जना के समान बोलों और कोलाहलों द्वारा गगनमंडल को प्रक्षुब्ध महासमुद्र की जैसी ध्वनि से गुंजाते हुए पुरिमताल नगर के बीचों-बीच से निकला, निकलकर जहाँ शालाटवी चोरपल्ली थी उसी ओर चलने के लिये उद्यत हुआ ।

२४७. तए णं तस्स अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स चारपुरिसा इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणा जेणेव सालाडवी चोरपल्ली, जेणेव अभग्गसेणे चोरसेणावई तेणेव उवागया करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु अभग्गसेणं चोरसेणावइं एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महब्बलेणं रण्णा महयाभड-चडगरेणं दंडे आणत्ते—गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! सालाडविं चोरपल्लिं विलुम्पाहि, अभग्गसेणं चोरसेणावइं जीवग्गाहं गेण्हाहि, गेण्हित्ता ममं उवणेहि तए णं से दंडे महयाभडचडगरेणं जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।"

२४७. तब उस अभग्नसेन चोर सेनापति के गुप्तचर पुरुष इस बात को जानकर जहाँ शालाटवी चोरपल्ली थी, उसमें जहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति था, वहाँ पहुँचे और दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके अभग्नसेन चोर सेनापति को यह खबर सुनाई—"हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगर में महाबल राजा ने बड़े-बड़े सुभटों के समुदाय के साथ दंडनायक को यह आज्ञा दी है—'हे देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और शालाटवी चोरपल्ली का विध्वंस कर दो, अभग्नसेन चोर सेनापति को जीवित पकड़ो और पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो ।' तब वह दंडनायक बड़े-बड़े सुभटों के समूह को लेकर जहाँ शालाटवी चोरपल्ली है उस ओर चल पड़ा है ।"

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई तेसिं चारपुरिसाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म पंच चोरसयाइं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महब्बलेणं रण्णा महयाभडचडगरेणं दंडे आणत्ते-जाव-तेणेव पहारेत्थ गमणाए ।

इसके बाद उस अभग्नसेन चोर सेनापति ने उन गुप्तचर पुरुषों से इस वृत्तान्त को सुनकर और उस पर विचार कर पाँच सौ चोरों को बुलाया और बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! पुरिमताल नगर में महाबल राजा ने सुभटों के समुदाय के साथ दंडनायक को यह आदेश दिया है—यावत्—वह शालाटवी चोरपल्ली की ओर चल पड़ा है ।

तं सेयं खलु देवाणुप्पिया ! अम्हं तं दंडं सालाडविं चोरपल्लिं असंपत्तं अंतरा चेव पडिसेहित्तए ।"

इसलिये हे देवानुप्रियो ! हमें यह उचित है कि उस दंडनायक के शालाटवी चोरपल्ली तक आने के पहले ही मध्य में रास्ते में रोक दें ।"

तए णं ताइं पंच चोरसयाइं अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स 'तह' त्ति एयमट्ठं पडिसुणेंति ।

तब उन पाँच सौ चोरों ने अभग्नसेन चोर सेनापति की इस बात को 'बहुत ठीक है' ऐसा कहकर स्वीकार किया ।

२४८. तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ते भोयणमंडवंसि तं विउलं

२४८. तत्पश्चात् अभग्नसेन चोर सेनापति ने विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन तैयार कराया, पकवाया तैयार करवाकर वह पाँच सौ चोरों के साथ स्नान, बलिकर्म

असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ ।

कौतुक मंगल और प्रायश्चित्तकरके भोजन मंडप में बैठकर उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, भोजन और सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन करते हुए, बार-आस्वादन करते हुए, एक-दूसरे को परोसते हुए और खाते-पीते हुए विचरण करने लगा।

जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं समाणे आयंते चोक्खे परमसुइभूए पंचहिं चोरसएहिं सद्धिं अल्लं चम्मं दुरुहइ, दुरुहित्ता सण्णद्ध-बद्ध-वम्मियकवएहिं उप्पीलियसरासणपट्टीएहिं पिणद्धगेवेज्जेहिं विमल-वरबद्ध-चिंधपट्टेहिं गहियाउहपहरणेहिं मगइएहिं-जाव-उक्किट्ठ-सीहनाय-बोल-कलकलरवेणं पच्चावरण्हकालसमयंसि सालाडवीओ चोरपल्लीओ निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता विसमदुग्गगहणं ठिए गहिय-भत्तपाणिए तं दंडं पडिवालेमाणे-पडिवालेमाणे चिट्ठइ ।

भोजन करने के अनन्तर आचमन, कुल्ला आदि करके स्वच्छ परम शुद्ध हो पाँच सौ चोरों के साथ गीले चमड़े के आसन पर आरूढ़ हुआ, आरूढ़ होकर सुदृढ़ बंधन से बंधे कवच को धारण कर, भुजाओं में शरासन पट्टिका को बांधकर, गले में ग्रैवेयक पहनकर अपने-अपने श्रेष्ठ संकेत पट्टक को बांधकर, आयुधों और प्रहरणों को लेकर और हाथ में ढाल बांधकर—यावत्—उत्कृष्ट सिंहनादों, बोलों और कोलाहलों के द्वारा प्रक्षुब्ध समुद्र की गर्जनाओं जैसे शब्दों से गगन मंडल को गुंजाता हुआ मध्याह्न में शालाटवी चोरपल्ली से निकला, निकलकर जिसमें प्रवेश करना कठिन है ऐसे गहन वन में स्थित होकर उस दंडनायक की प्रतीक्षा करते हुए ठहर गया।

अभग्गसेणेण रायसेणानिवारणं—

२४६. तए णं से दंडे जेणेव अभग्गसेणे चोरसेणावई तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता अभग्गसेणेणं चोरसेणावइणा सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था ।

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई तं दंडं खिप्पामेव हय-महिय-पवरवीर-घाइय-विवडियचिंधद्धयपडागं दिसोदिसिं पडि-सेहेति ।

अभग्नसेन द्वारा राजसेना का निवारण—

२४६. तत्पश्चात् वह दंडनायक जहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति था, वहाँ पहुँचा और पहुँचकर अभग्नसेन चोर सेनापति के साथ युद्ध में प्रवृत्त हो गया।

इसके बाद उस अभग्नसेन चोर सेनापति ने उस दंडनायक को शीघ्र ही आहत, परास्त कर और श्रेष्ठ वीरों को घायल कर एवं चिह्नांकित ध्वजा पताकाओं को विनष्ट—गिराकर युद्ध क्षेत्र से भगा दिया।

तए णं से दंडे अभग्गसेणेणं चोरसेणावइणा हय-महिय-पवर-वीर-घाइय-विवडियचिंधद्धयपडागे दिसोदिसिं पडिसेहिए समाणे अथामे अबले अवीरिए अपुरिसक्कारपरक्कमे अधारणिज्जमिति कट्टु जेणेव पुरिमताले नयरे, जेणेव महब्बले राया, तेणेव उवा-गच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं रायं एवं वयासी—'एवं खलु सामी! अभग्गसेणे चोरसेणावई विसमदुग्गगहणं ठिए गहियभत्तपाणिए, नो खलु से सक्का केण वि सुबहुएण वि आसबलेण वा हत्थिबलेण वा जोह-बलेण वा रहबलेण वा चाउरंगेणं पि [सेण्णबलेणं ?] उरं उरेणं गिण्हित्तए।' ताहे सामेण य भेएण य उवप्पयाणेण य विस्संभमा-णेउं पयत्ते यावि होत्था । जे वि य से अब्भिंतरगा सीसगभमा, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं च विउलेण धण-कणग-रयण-

इसके बाद वह दंडनायक अभग्नसेन चोर सेनापति द्वारा आहत, परास्त, श्रेष्ठ वीरों को घायल, चिह्नांकित ध्वजा पताकाओं को विनष्ट कर युद्ध क्षेत्र से भगाये जाने पर तेजोहीन, बलहीन, वीर्यहीन एवं पुरुषार्थ पराक्रम से हीन होकर उस चोर सेनापति को पकड़ना अशक्य समझकर जहाँ पुरिमताल नगर था, जहाँ महाबल राजा था, वहाँ आया, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके उसने महाबल राजा से इस प्रकार निवेदन किया—"हे स्वामिन्! अभग्नसेन चोर सेनापति भोजन-पानी लेकर दुष्प्रवेश्य दुर्ग-वृक्ष वन में अव-स्थित है, इसलिये बहुत बड़े अश्वबल अथवा हस्तिबल अथवा सैन्यबल अथवा रथबल, रथसेना अथवा चतुरंगिणी सेना द्वारा भी वह जीवित नहीं पकड़ा जा सकता है।" तब महाबल राजा साम, भेद, उप-प्रदान और दान नीति से उसे विश्वास में लाने का प्रयत्न करने लगा। इसके लिये वह सदैव उसके साथ रहने वाले ऐसे मंत्री आदि और शिर के समान माने जाने वाले प्रमुख रक्षकों तथा मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी, स्वजन, सम्बन्धियों, परिजनों

संतसार-सावएज्जेणं भिंदइ, अभग्गसेणस्स य चोरसेणावइस्स अभिक्खणं-अभिक्खणं महत्थाइं महग्घाइं महरिहाइं रायारिहाइं पाहुडाइं पेसेइ, अभग्गसेणं चोरसेणावइं वीसंभमाणेइ ।"

को प्रचुर धन, सोना रत्न आदि सारभूत द्रव्यों को देकर भेदन करने का प्रयत्न करने लगा तथा अभग्नसेन चोर सेनापति को बारबार महार्थक महामूल्यवान महापुरुषों के योग्य राजा के अनुरूप उपहार भेजने लगा और भेजकर अभग्नसेन चोर सेनापति को अपने विश्वास में ले आया ।

तए णं से महब्बले राया अण्णया कयाइ पुरिमताले नयरे एगं महं महइमहालियं कूडागारसालं कारेइ—अणेगखंभसयसन्निविट्ठं पासाईयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं ।

तत्पश्चात् महाबल राजा ने किसी एक समय पुरिमताल नगर में एक बहुत विशाल कूटाकारशाला बनवाई जो अनेक सैकड़ों स्तम्भों से युक्त थी, मन को प्रसन्न करने वाली देखने योग्य मनोहर एवं असाधारण सुन्दर थी ।

रण्णा दसरत्तपमोयघोसणं—

२५०. तए णं से महब्बले राया अण्णया कयाइ पुरिमताले नयरे उस्सुक्कं उक्करं अभडप्पवेसं अदंडिमकुदंडिमं अधरिमं अधारणिज्जं अणुद्धयमुइंगं अमिलायमल्लदामं गणियावरनाडइज्जकलियं अणेगतालाचराणुचरियं पमुइयपक्कीलियाभिरामं जहारिहं दसरत्तं पमोयं उग्घोसावेइ, उग्घोसावेत्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सालाडवीए चोरपल्लीए । तत्थ णं तुब्भे अभग्गसेणं चोरसेणावइं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महब्बलस्स रण्णो उस्सुक्के-जाव-दसरत्ते पमोए उग्घोसिए । तं किं णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारे य इहं हव्वमाणिज्जउ उदाहु सयमेव गच्छित्था ?"

राजा द्वारा दसरात्रिक प्रमोद घोषणा—

२५०. तत्पश्चात् महाबल राजा ने किसी समय पुरिमताल नगर में 'जिसमें जिन दिनों में राज्य शुल्क-महसूल-चुंगी लेना बन्द किया जाये, राज्य कर माफ कर दिया जाये, तलाशी आदि के लिये घरों में राजपुरुषों का प्रवेश करना रोक दिया जाये, शारीरिक और आर्थिक दंड न दिया जावे, ऋण मुक्त कर दिया जाये, देनदार को पकड़ा न जाये तथा सदैव सर्वत्र मृदंग आदि वाद्य बजते रहें, चारों ओर अम्लान विकसित ताजे फूलों की मालायें लटकती रहें, श्रेष्ठ गणिकाओं के द्वारा नृत्य-नाटक किये जायें, ताल बजाकर नृत्य करने वाले अपना कौशल दिखायें और प्रमुदित जनों द्वारा क्रीड़ायें की जायें ऐसे दस दिन के प्रमोद-उत्सव की उद्घोषणा करवाई, उद्घोषणा करवाकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम लोग शालाटवी चोरपल्ली जाओ । वहाँ अभग्नसेन चोर सेनापति को दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहो—'हे देवानुप्रिय ! बात यह है कि पुरिमताल नगर में राजा महाबल ने उत्शुल्क—यावत्—दस दिन के प्रमोद-उत्सव की घोषणा की है । इसलिये हे देवानुप्रिय ! विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि को यहीं लाकर उपस्थित किये जायें, अथवा आप स्वयं वहाँ पधारेंगे ।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा महब्बलस्स रण्णो करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता पुरिमतालाओ नयराओ पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता नाइविकिट्ठेहिं अद्धाणेहिं सुहेहिं वसहिपायरासेहिं जेणेव सालाडवी चोरपल्ली तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता अभग्गसेणं चोरसेणावइं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! पुरिमताले नयरे महब्बलस्स रण्णो उस्सुक्के-जाव-दसरत्ते पमोए

इसके बाद उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके "हे स्वामिन् ! इसी प्रकार" कहकर महाबल राजा की आज्ञा को स्वीकार किया, स्वीकार करके पुरिमताल नगर से निकले, निकलकर अधिक दूर-लम्बी नहीं किन्तु छोटी-छोटी यात्रायें करते हुए यथायोग्य विश्राम स्थानों में विश्राम करते हुए, प्रातःकालीन भोजन—नाश्ता करते हुए जहाँ शालाटवी चोरपल्ली थी, वहाँ पहुँचे, पहुँचकर दोनों हाथ जोड़, सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके अभग्नसेन चोर सेनापति से इस प्रकार निवेदन किया—'हे देवानुप्रिय ! पुरिमताल नगर में महाबल राजा ने उत्शुल्क—यावत्—दस दिन

उग्घोसिए। तं किं णं देवाणुप्पिया ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारे य इहं हव्वमाणिज्जउ उदाहु सयमेव गच्छित्था ?"

के प्रमोद उत्सव की उद्घोषणा की है। इसलिये हे देवानुप्रिय ! विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि को यहाँ पर उपस्थित किया जाये अथवा आप स्वयं वहाँ पधारेंगे।"

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई ते कोडुम्बियपुरिसे एवं वयासी—"अहं णं देवाणुप्पिया ! पुरिमतालं नयरं सयमेव गच्छामि।" ते कोडुम्बियपुरिसे सक्कारेइ सम्माणेइ पडिविसज्जेइ।

तत्पश्चात् अभग्नसेन चोर सेनापति ने उन कौटुम्बिक पुरुषों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! हम स्वयं ही पुरिमताल नगर में आयेंगे।" और उन कौटुम्बिक पुरुषों का सत्कार-सम्मान करके विदा किया।

अभग्गसेणस्स पुरिमताले रायअतिहिरूवेण गमणं—

अभग्नसेन का पुरिमताल नगर में राज-अतिथि रूप में गमन—

२५१. तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेहिं सद्धिं परिवुडे ण्हाए कयबलिकम्मे कय-कोउय-मंगल-पायच्छित्ते सव्वालंकारविभूसिए सालाडवीओ चोर-पल्लीओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुरिमताले नयरे, जेणेव महब्बले राया, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयल-परिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महब्बलं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं उवणेइ।

२५१. इसके बाद अभग्नसेन चोर सेनापति ने बहुत से मित्र, ज्ञातिजन, निजी, स्वजन, सम्बन्धी और परिजन समूह से परिवेष्टित हो स्नान किया, बलिकर्म, कौतुक-मंगल प्रायश्चित्त किया, शरीर को सर्व अलंकारों से विभूषित किया और फिर शालाटवी चोरपल्ली से निकलकर जहाँ पुरिमताल नगर था, जहाँ महाबल राजा था, वहाँ आया, आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके महाबल राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाकर महार्थ महामूल्यवान् महान् पुरुषों के योग्य राजाओं के अनुरूप भेंट उपस्थित की।

तए णं से महब्बले राया अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स तं महत्थं महग्घं महरिहं रायारिहं पाहुडं पडिच्छइ, अभग्गसेणं चोर-सेणावइं सक्कारेइ सम्माणेइ विसज्जेइ, कूडागारसालं च से आव-सहिं दलयइ।

तत्पश्चात् उस महाबल राजा ने अभग्नसेन चोर सेनापति की उस महार्थक महर्घ, महापुरुषों के योग्य और राजोचित प्राभृत-उपहार को स्वीकार किया और अभग्नसेन चोर सेनापति का सत्कार-सम्मान करके विदा किया तथा विश्राम के लिये कूटाकार-शाला में आवास दिया।

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई महब्बलेणं रण्णा विसज्जिए समाणे जेणेव कूडागारसाला तेणेव उवागच्छइ।

उसके बाद अभग्नसेन चोर सेनापति महाबल राजा से विदाई लेकर जहाँ कूटाकारशाला थी, वहाँ आया।

तए णं से महब्बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेह, उवक्खडावेत्ता तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं च अभग्गसेणस्स चोरसेणावइस्स कूडागारसालाए उवणेह।"

तदनन्तर महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! तुम जाओ और विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन पकाओ, पकाकर उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा एवं बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि को कूटाकारशाला में ले जाकर अभग्नसेन चोर सेनापति को पहुँचा दो।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु-जाव-उवणेंति।

इसके बाद वे कौटुम्बिक पुरुष दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके—यावत्—पहुँचाते हैं।

तए णं से अभग्गसेणे चोरसेणावई बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणेहिं सद्धिं संपरिवुडे ण्हाए-जाव-सव्वालंकार-विभूसिए तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाए-

तदनन्तर अभग्नसेन चोर सेनापति अनेक मित्रों, ज्ञातिजनों, निजी, स्वजन, सम्बन्धियों और परिजनों से परिवेष्टित हो स्नान करके यावत्—सर्व अलंकारों से विभूषित होकर अपने बहुत से मित्रों आदि के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन

माणे परिभुंजेमाणे पमत्ते विहरइ।

रण्णा जीवग्गाहं अभग्गसेणगहणं—

२५२. तए णं से महब्बले राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! पुरिमतालस्स नयरस्स दुवाराइं पिहेह, पिहेत्ता अभग्गसेणं चोरसेणावइं जीवग्गाहं गिण्हह, गिण्हित्ता ममं उवणेह।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि!' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता पुरिमतालस्स नयरस्स दुवाराइं पिहेंति, अभग्गसेणं चोरसेणावइं जीवग्गाहं गिण्हंति, गिण्हित्ता महब्बलस्स रण्णो उवणेंति।

२५३. तए णं से महब्बले राया अभग्गसेणं चोरसेणावइं एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

उवसंहारो—

२५४. एवं खलु गोयमा! अभग्गसेणे चोरसेणावई पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

अभग्गसेणस्स आगामिभवकहा—

२५५. अभग्गसेणे णं भंते! चोरसेणावई कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

गोयमा! अभग्गसेणे चोरसेणावई सत्ततीसं वासाइं परमाउं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे सूलभिण्णे कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता, एवं संसारो जहा पढमे-जाव-वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ।

तओ उव्वट्टित्ता वाणारसीए नयरीए सूयरत्ताए पच्चायाहिइ। से णं तत्थ सोयरिएहिं जीवियाओ ववरोविए समाणे तत्थेव वाणारसीए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावो, एवं जहा पढमे-जाव-अंतं काहिइ।

—विवागसुयं अ० ३

करता हुआ, बार-बार आस्वादन करता हुआ, बाँटता और खाता-पीता हुआ प्रमत्त होकर विचरने लगा।

राजा का जीवित ही अभग्नसेन को पकड़ना—

२५२. इसके बाद महाबल राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनको यह आज्ञा दी—"हे देवानुप्रियो! तुम जाओ और पुरिमताल नगर के द्वारों को बन्द कर दो, द्वारों को बन्द करके अभग्नसेन चोर सेनापति को जीवित दशा में पकड़ लो पकड़कर मेरे सामने उपस्थित करो।"

तत्पश्चात् उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'हे स्वामिन्! ऐसी प्रकार' कहकर विनयपूर्वक आज्ञा को स्वीकार किया, स्वीकार करके पुरिमताल नगर के द्वारों को बन्द कर दिया, बन्द करके अभग्नसेन चोर सेनापति को जीवित ही पकड़ लिया, पकड़कर महाबल राजा के सामने उपस्थित किया।

२५३. तत्पश्चात् महाबल राजा ने अभग्नसेन चोर सेनापति को इस रीति से (पूर्वोक्त विधान से) मार दिये जाने की आज्ञा दी।

उपसंहार

२५४. इस प्रकार से हे गौतम! अभग्नसेन चोर सेनापति पूर्व-जन्म कृत पुरातन दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पापकार्यों के अशुभ पापमय विपाकोदय विशेष का अनुभव करता हुआ समय बिता रहा है।

अभग्नसेन की आगामी भव कथा—

२५५. "हे भदन्त! काल मास में काल करके अभग्नसेन चोर सेनापति कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?" भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा।

भगवान ने उत्तर देते हुए कहा—"हे गौतम! अभग्नसेन चोर सेनापति सैंतीस वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर आज ही दिन का तीसरा भाग शेष रहने पर शूली से छिन्न-भिन्न होता हुआ मरण काल में मरण करके इसी रत्नप्रभा नरक पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

इसके बाद वहाँ से निकलकर सीधा, इस प्रकार से संसार में परिभ्रमण करता हुआ आदि जैसा प्रथम अध्ययन में बताया है, उसी प्रकार से—यावत्—वायु, तेज, जल, पृथ्वी काय के जीवों में लाखों बार उत्पन्न होता हुआ बारंबार उन्हीं में उत्पन्न होगा।

इसके पश्चात् वहाँ से निकलकर वाणारसी नगरी में सूअर के रूप में उत्पन्न होगा। वहाँ वह सूअर पालने वालों अथवा सूअर का शिकार करने वालों के द्वारा मारा जाकर उसी वाणारसी नगरी के श्रेष्ठी कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वह वहाँ बालभाव से मुक्त हो आदि प्रथम अध्ययन में जैसा वर्णन किया है वैसा ही अंत करेगा तक का प्रतिपादन यहाँ कर लेना चाहिये।

१३. सगडकहाणयं—

साहंजणीए सत्थवाहपुत्तो सगडो—

२५६. तेणं कालेणं तेणं समएणं साहंजणी नामं नयरी होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धा० ।

तीसे णं साहंजणीए नयरीए बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए देवरमणे नामं उज्जाणे होत्था ।

तत्थ णं अमोहस्स जक्खस्स जक्खायमणे होत्था—पोराणे० ।

तत्थ णं साहंजणीए नयरीए महचंदे नामं राया होत्था—महया हिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे ।

तस्स णं महचंदस्स रण्णो सुसेणे नामं अमच्चे होत्था—साम-भेय-दंड-उवप्पयाणनीति-सुप्पउत्त-नयविहिण्णू ।

तत्थ णं साहंजणीए नयरीए सुदरिसणा नामं गणिया होत्था—वण्णओ ।

तत्थ णं साहंजणीए नयरीए सुभद्दे नामं सत्थवाहे होत्था—अड्ढे० ।

तस्स णं सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दा नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा० ।

तस्स णं सुभद्दस्स सत्थवाहस्स पुत्ते भद्दाए भारियाए अत्तए सगडे नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे० ।

महावीरसमोसरणे सगडस्स पुव्वभवकहा—

२५७. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसरिए। परिसा राया य निग्गए । धम्मो कहिओ । परिसा गया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी-जाव-रायमग्गं ओगाढे । तत्थ णं हत्थी, आसे, अण्णे य बहवे पुरिसे पासइ । तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं पासइ एगं सइत्थियं पुरिसं अवओडयबंधणं उक्खित्त-कण्णनासं-जाव संडपडहेणं उग्घोसिज्जमाणं इमं च णं एयारूवं उग्घोसणं सुणेइ—नो खलु देवाणुप्पिया ! सगडस्स दारगस्स केइ राया वा रायपुत्तो वा अवरज्झइ, अप्पणो से सयाइं कम्माइं अवरज्झंति ।

१३. शकट कथानक—

साहंजनी में सार्थवाह पुत्र शकट—

२५६. उस काल और उस समय में वैभवसम्पन्न, स्व पर चक्र के भय से मुक्त और धन-धान्य से समृद्ध साहंजनी नामक एक नगरी थी ।

उस साहंजनी नगरी के बाहर उत्तरपूर्व दिशा में देवरमण नामक उद्यान था ।

वहाँ अमोघ नामक यक्ष का एक पुरातन यक्षायतन था ।

उस साहंजनी नगरी में महाचन्द्र नामक राजा था, जो महा-हिमवान्, मलय, मंदर आदि पर्वतों के समान एवं अन्य राजाओं की अपेक्षा महान् प्रतापी था ।

उस महाचन्द्र राजा का सुषेण नामक एक अमात्य—मंत्री था, जो साम-भेद-दंड-दान नीति के प्रयोग और विधियों को जानने वाला न्यायविज्ञ और निग्रह-शासन करने में निपुण था ।

उस साहंजनी नगरी में सुदर्शना नाम की एक गणिका रहती थी । उसका वर्णन द्वितीय अध्ययन में वर्णित कामध्वजा गणिका के समान करना चाहिये ।

उस साहंजनी नगरी में सुभद्र नामक एक सार्थवाह रहता था, जो धनाढ्य था आदि वर्णन पूर्ववत् यहां करना चाहिये ।

उस सुभद्र सार्थवाह की निर्दोष एवं पंचेन्द्रियों से परिपूर्ण शरीर वाली भद्रा नाम की भार्या थी ।

उस सुभद्र सार्थवाह का पुत्र, भद्राभार्या का आत्मज शकट नामक एक दारक था जो निर्दोष एवं परिपूर्ण पंचेन्द्रियों से युक्त शरीर वाला था ।

महावीर समवसरण में शकट की पूर्वभव कथा—

२५७. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर साहंजनी नगरी में पधारे । दर्शनार्थ जन परिषदा और राजा निकला । भगवान ने धर्म का कथन किया । परिषदा वापस लौट गई ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम स्वामी—यावत्—राजमार्ग में पहुँचे । वहाँ उन्होंने हाथियों, अश्वों और अन्य दूसरे बहुत से पुरुषों को देखा । उन पुरुषों के बीच स्त्री सहित एक पुरुष को घिरा हुआ देखा, जिसके हाथ और कंठ पीछे की ओर से बँधे हुए थे, कान और नाक कटे हुए थे—यावत्—फूटा ढोल बजा-बजाकर की जा रही यह और इस प्रकार की उद्घोषणा को सुना—"हे देवानुप्रियो ! इस शकट दारक के दंड के लिये कोई राजा या राजपुत्र अपराधी नहीं है, किन्तु स्वयं उसके कर्मों का अपराध—दोष है ।"

सगडस्स छण्णियछागलियभववण्णणं—

२५८. तए णं भगवओ गोयमस्स चिंता तहेव-जाव-भगवं वागरेइ—एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे छगलपुरे नामं नयरे होत्था ।

तत्थ णं सीहगिरी नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे० ।

२५९. तत्थ णं छगलपुरे नयरे छण्णिए नामं छागलिए परिवसइ—अड्ढे-जाव-अपरिभूए, अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे ।

तस्स णं छण्णियस्स छागलियस्स बहवे अयाण य एलयाण य रोज्झाण य वसभाण य ससयाण य सूयराण य पसयाण य सिंहाण य हरिणाण य मयूराण य महिसाण य सयबद्धाणि सहस्सबद्धाणि य जूहाणि वाडगंसि संनिरुद्धाइं चिट्ठन्ति ।

अण्णे य तत्थ बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्त-वेयणा बहवे अए य-जाव-महिसे य सारक्खमाणा संगोवेमाणा चिट्ठन्ति ।

छण्णियस्स मंसासणं मंसवाणिज्जं य—

२६०. अण्णे य से बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्त-वेयणा बहवे अए य-जाव-महिसे य जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवेत्ता मंसाइं कप्पणी-कप्पियाइं करेंति, करेत्ता छण्णियस्स छागलियस्स उवणेंति ।

अण्णे य से बहवे पुरिसा ताइं बहुयाइं अयमंसाइं-जाव-महिस-मंसाइं य तवएसु य कवल्लीसु य कंदुसु य भज्जणेसु य इंगालेसु य तलेंति य भज्जेंति य सोल्लेंति य, तलेत्ता य भज्जेत्ता य सोल्लेत्ता य तओ रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति ।

अप्पणा वि य णं से छण्णिए छागलिए तेहिं बहूहिं अयमंसेहिं य-जाव-महिस-मंसेहिं य सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ ।

छण्णियस्स मरणं निरयोववाओ य—

२६१. तए णं से छण्णिए छागलिए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता सत्त वास-सयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा चोत्थीए पुढवीए

शकट का छण्णिक छागलिक भव वर्णन—

२५८. तब भगवान गौतम ने विचार किया इत्यादि पूर्ववत् जानना चाहिये—यावत्—भगवान ने उत्तर दिया—हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप के भारतवर्ष में छगलपुर नाम का एक नगर था ।

उसमें सिंहगिरि नाम का राजा था, जो महाहिमवन्, मलय मंदर पर्वतों के समान महान् और राजाओं में प्रधान था ।

२५९. उस छगलपुर नगर में छण्णिक नामक एक छागलिक—बकरों के मांस को बेचने वाला रहता था, जो धनाढ्य—यावत्—दूसरों से पराभव को प्राप्त नहीं करने वाला, अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द (जिसको प्रसन्न करना अतिशय कठिन है) था ।

जिसमें सैंकड़ों और हजारों पशुओं को बांधा जा सके ऐसे उस छण्णिक छागलिक के विशाल बाड़े में अनेक अजों, बकरों, भेड़ों, रोझों, गवयों, वृषभों, शशकों—खरगोशों, सूअरों, मृग-शिशुओं, सिंहों, हरिणों, मोरों और भैंसों के यूथ—समूह बन्द रहते थे ।

जिनको वेतन के रूप में रुपया और भोजन दिया जाता है ऐसे अन्य दूसरे पुरुष उस बाड़े में उन बकरों—यावत्—भैंसों का संरक्षण तथा संगोपन करते हुए देखरेख करते थे ।

छण्णिक का मांसभक्षण एवं मांसवाणिज्य—

२६०. रुपया और भोजन के रूप में वेतन प्राप्त करने वाले वे अन्य दूसरे पुरुष बहुत से बकरों—यावत्—भैंसों को जीवन रहित करते, मारते, मारकर कतरनी से उनके मांस को कतरते और कतरकर छण्णिक छागलिक के पास रखते ।

उसके अन्य दूसरे बहुत से पुरुष उन बकरों के मांस को—यावत्—भैंसों के मांस को तवों पर, कवल्लियों पर, हांडों, भाजनों और अंगारों पर तलते, भूंजते और शूल द्वारा पकाते, तलकर, भूंजकर और शूल द्वारा पकाकर उन मांसों को राज-मार्ग पर बेचते हुए अपनी आजीविका कमाते थे ।

स्वयं भी वह छण्णिक छागलिक उन शूल पर पकाये, तले और भूंजे हुए उन बकरों के मांस खंडों—यावत्—भैंसों के मास खंडों और सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन करते हुए, बार-बार आस्वादन करते हुए, बांटते हुए और खाते-पीते हुए विचरण करता था ।

छण्णिक का मरण और नैरयिक उपपाद—

२६१. तत्पश्चात् वह छण्णिक छागलिक ऐसे कर्मों से, ऐसे कर्मों की प्रधानता से, ऐसे ज्ञान-विज्ञान से और ऐसे आचरण से अत्यन्त कलुष बहुत से पाप कर्मों का उपार्जन करके सात सौ वर्ष की पूरी आयु भोग कर मरण काल में मरण करके चौथी नरकपृथ्वी

उक्कोसेणं दससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

में उत्कृष्ट दस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

सगडस्स वत्तमाणभवकहा—

शकट की वर्तमानभव कथा—

२६२. तए णं सा सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दा भारिया जायनिंदुया यावि होत्था—जाया-जाया दारगा विणिहायमावज्जंति।

२६२. इसके बाद सुभद्र सार्थवाह की वह भद्राभार्या जातनिंदुका—मृत वंध्या थी, जिससे उत्पन्न होते-होते ही बालक विनाश को प्राप्त हो जाते थे, अर्थात् मर जाते थे।

तए णं से छण्णिए छगलिए चोत्थीए पुढवीए अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव साहंजणीए नयरीए सुभद्दस्स सत्थवाहस्स भद्दाए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे।

तत्पश्चात् वह छण्णिक छागलिक चौथी पृथ्वी से निकलकर सीधा इसी साहंजनी नगरी में सुभद्र सार्थवाह की भद्रा भार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

तए णं सा भद्दा सत्थवाही अण्णया कयाइ नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया।

तदनन्तर उस भद्रा सार्थवाही ने किसी समय में नौ मास पूर्ण होने पर बालक को जन्म दिया।

दारयस्स सगडनामकरणं गिहाओ निद्धाडणं वेसाइ वसणित्तं च—

बालक का शकट नामकरण, गृह से निष्कासन और वेश्यादि व्यसनित्व—

२६३. तए णं तं दारगं अम्मापियरो जायमेत्तं चेव सगडस्स हेट्ठओ ठवेंति, दोच्चं पि गिण्हावेंति, अणुपुव्वेणं सारक्खंति संगोवेंति संवड्ढेंति, जहा उज्झियए-जाव-जम्हा णं अम्हं इमे दारए जायमेत्तए चेव सगडस्स हेट्ठओ ठविए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए सगडे नामेणं। सेसं जहा उज्झियए।

२६३. इसके बाद माता-पिता ने उस बालक को पैदा होते ही शकट—गाड़ी के नीचे रखा, रखकर पुनः उठा लिया और फिर अनुक्रम से उसका संरक्षण, संगोपन और संवर्धन करने लगे अर्थात् पालन-पोषण करने लगे। शेष वर्णन उज्झितक के समान जानना चाहिये—यावत्—क्योंकि इस बालक को उत्पन्न होते ही हमने शकट के नीचे रखा था, इसलिये हमारे इस बालक का नाम 'शकट' हो। शेष वर्णन उज्झितक के समान है।

सुभद्दे लवणसमुद्दे कालगए, माया वि कालगया। से वि साओ गिहाओ निच्छूढे।

इधर वह सुभद्र सार्थवाह लवण समुद्र में काल को प्राप्त हुआ, माता भी कालगत हो गई तो शकट को भी अपने घर से निकाल दिया गया।

२६४. तए णं से सगडे दारए साओ गिहाओ निच्छूढे समाणे साहंजणीए नयरीए सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु जूयखलएसु वेसघरएसु पाणागारेसु य सुहंसुहेणं परिवड्ढइ।

२६४. इसके बाद अपने घर से निष्कासित कर दिये जाने पर वह शकट बालक साहंजनी नगरी के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों, मार्गों, द्यूतगृहों, वेश्यागृहों, मदिरालयों में रहकर सुखपूर्वक बढ़ने लगा।

तए णं से सगडे दारए अणोहट्टए अणिवारिए सच्छंदमई सइरप्पयारे मज्जप्पसंगी चोर-जूय-वेस-दारप्पसंगी जाए यावि होत्था।

तदनन्तर वह शकट दारक अनपघट्टक—निरंकुश, अनिवारक, स्वच्छन्दमति और स्वेच्छाचारी होता हुआ मद्यपान, चौर्यकर्म, द्यूतकर्म, वेश्यागमन, परस्त्रीगमन में आसक्त हो गया।

तए णं से सगडे अण्णया कयाइ सुदरिसणाए गणियाए सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था।

इसके पश्चात् किसी समय उस शकट दारक का सुदर्शना गणिका के साथ सम्बन्ध स्थापित हो गया।

तए णं से सुसेणे अमच्चे तं सगडं दारगं अण्णया कयाइ सुदरिसणाए गणियाए गिहाओ निच्छुभावेइ, निच्छुभावेत्ता सुदरिसणं गणियं अब्भिंतरियं ठवेइ, ठवेत्ता सुदरिसणाए गणियाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

तत्पश्चात् सुषेण अमात्य ने किसी समय शकट दारक को सुदर्शना गणिका के घर से निकलवा दिया, निकलवाकर सुदर्शना गणिका को अपने अन्तःपुर में रख लिया, रखकर सुदर्शना गणिका के साथ मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोगोपभोगों को भोगता हुआ विचरने लगा।

गणियागिहाओ निद्धाडियस्स सगडस्स अमच्चकया विडंबणा—

गणिका के गृह से निष्कासित शकट की अमात्यकृत विडंबना—

२६५. तए णं से सगडे दारए सुदरिसणाए गणियाए गिहाओ

२६५. तत्पश्चात् सुदर्शना गणिका के घर से निकाल दिये जाने

निच्छुभेमाणे सुदरिसणाए गणियाए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अण्णत्थ कत्थइ सुइं च रइं च धिइं च अलभमाणे तच्चित्ते तम्मणे तल्लेस्से तदज्झवसाणे तदट्ठोवउत्ते तयप्पियकरणे तब्भावणाभाविए सुदरिसणाए गणियाए बहूणि अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणे-पडिजागरमाणे विहरइ।

पर वह शकट कुमार सुदर्शना गणिका में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित एवं आसक्त होकर अन्य किसी भी स्थान पर स्मृति, प्रीति और मानसिक शांति को प्राप्त न करता हुआ, उसी में चित्त और मन को केन्द्रित किये हुए, उसी में लिप्त, तत्संबन्धी कामभोगों के लिये प्रयत्नशील, उसी की प्राप्ति के लिये तत्पर, उसी के प्रति अर्पित और उसी की भावना भाते हुए सुदर्शना गणिका से मिलने के अवसर छिद्र और विवरों की गवेषणा करता हुआ समय बिताने लगा।

तए णं से सगडे दारए अण्णया कयाइ सुदरिसणाए गणियाए अंतरं लभेइ, लभेत्ता सुदरिसणाए गणियाए गिहं रहसियं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता सुदरिसणाए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

इसके बाद उस शकट कुमार ने किसी समय सुदर्शना गणिका से मिलने का अवसर प्राप्त कर लिया। प्राप्त करके गुप्त रूप से सुदर्शना गणिका के घर में प्रविष्ट हुआ, प्रवेश करके सुदर्शना के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरने लगा।

२६६. इमं च णं सुसेणे अमच्चे ण्हाए-जाव-विभूसिए मणुस्सवग्गुरापरिक्खित्ते जेणेव सुदरिसणाए गणियाए गिहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सगडं दारयं सुदरिसणाए गणियाए सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते-जाव-मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु सगडं दारयं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्पर-पहारसंभग्गं महियगत्तं करेइ, करेत्ता अवओडयबंधणं करेइ, करेत्ता जेणेव महचंदे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु महचंदं रायं एवं वयासी—"एवं खलु सामी! सगडे दारए ममं अंतेउरंसि अवरद्धे।"

२६६. इधर सुषेण अमात्य स्नान करके—यावत्—अलंकारों से विभूषित हो जन समूह से आवृत हो जहाँ सुदर्शना गणिका का घर था, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर शकट कुमार को सुदर्शना गणिका के साथ मनुष्य सम्बन्धी प्रधान भोगोपभोगों को भोगते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो—यावत्—दाँतों को मिसमिसाकर, ललाट में त्रिवलीपूर्वक भृकुटी तानकर शकट कुमार को अपने नौकरों से पकड़वाया, पकड़वाकर लाठी, मुक्का, लात, कोहनी की मार से अंग-अंग को तोड़कर शरीर को शिथिल कर दिया, शिथिल करके अवकोटक बंधन से बांधा, बांधकर जहाँ महाचन्द राजा था, वहाँ आया और आकर दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके महाचन्द राजा से इस प्रकार निवेदन किया—"हे स्वामिन्! शकट बालक ने मेरे अन्तःपुर में प्रवेश करने का अपराध किया है।"

२६७. तए णं से महचंदे राया सुसेणं अमच्चं एवं वयासी—तुमं चेव णं देवाणुप्पिया! सगडस्स दारगस्स दंडं वत्तेहि।

२६७. तब महाचन्द राजा ने सुषेण अमात्य से कहा—हे देवानुप्रिय! तुम्हीं शकट बालक के लिये दंड का निर्णय करो—दंड दे दो।"

तए णं से सुसेणे अमच्चे महचंदेणं रण्णा अब्भणुण्णाए समाणे सगडं दारयं सुदरिसणं च गणियं एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

इसके बाद महाचन्द राजा से आज्ञा—अनुमति प्राप्त कर सुषेण अमात्य ने शकट बालक और सुदर्शना गणिका को इस प्रकार से मार दिये जाने की आज्ञा दी।

उवसंहारो—

२६८. तं एवं खलु गोयमा! सगडे दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

उपसंहार—

२६८. इस प्रकार हे गौतम! शकट बालक पूर्वोपार्जित पुरातन दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों के फलविशेष को प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए समय बिता रहा है।"

सगडस्स आगामिभवकहा—

२६९. सगडे णं भंते! दारए कालगए कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

शकट की आगामी भव कथा—

२६९. "हे भगवन्! शकट बालक काल करके कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?" भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा।

गोयमा ! सगडे णं दारए सत्तावण्णं वासाइं परमाउं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे एगं महं अयोमयं तत्तं समजोइभूयं इत्थिपडिमं अवतासाविए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता रायगिहे नगरे मातंगकुलंसि जमलत्ताए पच्चायाहिइ।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं नामधेज्जं करिस्संति—तं होउ णं दारए सगडे नामेणं, होउ णं दारिया सुदरिसणा नामेणं।

तए णं से सगडे दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते भविस्सइ।

तए णं सा सुदरिसणा वि दारिया उम्मुक्कबालभावा विण्णय-परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुप्पत्ता रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा भविस्सइ।

तए णं से सगडे दारए सुदरिसणाए रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे सुदरिसणाए भइणीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरिस्सइ।

तए णं से सगडे दारए अण्णया कयाइ सयमेव कूडग्गाहत्तं उवसंपज्जित्ताणं विहरिस्सइ।

तए णं से सगडे दारए कूडग्गाहे भविस्सइ- अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे, एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ, संसारो तहेव -जाव-वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसयसहस्स-खुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता वाणारसीए नयरीए मच्छत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तत्थ मच्छबंधिएहिं वहिए तत्थेव वाणारसीए नयरीए सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। बोहिं, पव्वज्जा, सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

—विवागसुयं सु० १ अ० ४

प्रत्युत्तर में भगवान ने बताया—'हे गौतम ! वह शकट बालक सत्तावन वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर आज ही दिन के तीसरे भाग में एक विशाल तप्त और अग्नि के समान देदीप्यमान लोहे से बनी स्त्री-प्रतिमा से आलिंगन कराया जाता हुआ मरण काल में मरण करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा।

इसके बाद वहाँ से निकलकर वह राजगृह नगर में चांडाल कुल में युगल (बालक बालिका) रूप से उत्पन्न होगा।

तदनन्तर उस बालक के माता-पिता जन्म से बारहवें दिन इस प्रकार का यह नामकरण करेंगे—'यह बालक शकट नाम वाला हो और बालिका सुदर्शना नाम वाली हो।'

तत्पश्चात् वह शकट बालक बाल्यकाल से मुक्त हो विशिष्ट ज्ञान को प्राप्त होता हुआ युवावस्था को प्राप्त करेगा।

तदनन्तर वह सुदर्शना दारिका भी बाल्यावस्था का त्याग कर बौद्धिक परिपक्वता को उपलब्ध हो युवावस्था को प्राप्त कर रूप, यौवन, लावण्य से समृद्ध होती हुई उत्कृष्ट शरीर वाली होगी।

तब वह शकट बालक सुदर्शना के रूप यौवन और लावण्य में मूर्च्छित, गृद्ध, ग्रथित और आसक्त हो सुदर्शना, भगिनी के साथ मनुष्य सम्बन्धी विपुल भोगोपभोगों का भोग करते हुए समय व्यतीत करेगा।

तदनन्तर वह शकट बालक किसी समय स्वयं ही कूटग्राहत्व (कपट से जीवों को वश में करने वाला) प्राप्त करके विचरण करेगा।

इसके बाद वह शकट दारक कूटग्राह हो जायेगा, जो अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द कठिनता से प्रसन्न होने वाला होगा। जिससे वह इस प्रकार के कर्मों से, इस प्रकार के कार्यों की अधिकता से, इस प्रकार की बुद्धि से और इस प्रकार के आचरण से अत्यधिक पापकर्मों को उपार्जित कर मरणकाल में मरण करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा, उसी प्रकार से संसार में परिभ्रमण करेगा—यावत्—वायु, तेजस्, जल, पृथ्वी काय के जीवों में अनेक लाखों बार मरण करता हुआ बारंबार उनमें उत्पन्न होगा।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर वाणारसी नगरी में मत्स्य के रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ पर मछली मारने वालों के द्वारा हनन-वध किये जाने पर उसी वाणारसी नगरी के श्रेष्ठी कुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा। वहाँ सम्यक् बोधि प्राप्त करके अनगार दीक्षा अंगीकार करेगा, मरकर सौधर्मकल्प में देव रूप से उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यवित हो महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

१४. बहस्सइदत्तकहाणयं—

कोसंबीए पुरोहियपुत्ते बहस्सइदत्ते—

२७०. तेणं कालेणं तेणं समएणं कोसंबी नामं नयरी होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धा० । बाहिं चंदोतरणे उज्जाणे । सेयभद्दे जक्खे ।

तत्थ णं कोसंबीए नयरीए सयाणिए नामं राया होत्था—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे० ।

मियावई देवी ।

तस्स णं सयाणियस्स पुत्ते मियादेवीए अत्तए उदयणे नामं कुमारे होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे जुवराया ।

तस्स णं उदयणस्स कुमारस्स पउमावई नामं देवी होत्था ।

तस्स णं सयाणियस्स सोमदत्ते नामं पुरोहिए होत्था—रिउव्वेय-यज्जुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेयकुसले ।

तस्स णं सोमदत्तस्स पुरोहियस्स वसुदत्ता नामं भारिया होत्था।

तस्स णं सोमदत्तस्स पुत्ते वसुदत्ताए अत्तए बहस्सइदत्ते नामं दारए होत्था अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे० ।

महावीरसमोसरणे गोयमेण बहस्सइदत्तस्स पुव्वभवपुच्छा—

२७१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणे भगवं महावीरे समोसढे ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं गोयमे तहेव-जाव-रायमग्गमोगाढे तहेव पासइ हत्थी, आसे, पुरिसमज्झे पुरिसं । चिंता । तहेव पुच्छइ पुव्वभवं । भगवं वागरेइ—

बहस्सइदत्तस्स महेसरदत्तभवकहा—

२७२. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहेवासे सव्वओभद्दे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमिय-समिद्धे० ।

तत्थ णं सव्वओभद्दे नयरे जियसत्तू नामं राया होत्था ।

तस्स णं जियसत्तुस्स रण्णो महेसरदत्ते नामं पुरोहिए होत्था—रिउव्वेय-यज्जुव्वेय-सामवेय-अथव्वणवेयकुसले यावि होत्था ।

१४. बृहस्पतिदत्त कथानक—

कोशांबी में पुरोहित-पुत्र बृहस्पतिदत्त—

२७०. उस काल और उस समय में भवनादि के वैभव से सम्पन्न, स्वपर शत्रुभय से रहित, धन-धान्यादि से समृद्ध कोशांबी नाम की नगरी थी । उस नगरी के बाहर चन्द्रावतरण नामक उद्यान था । उस उद्यान में श्वेतभद्र नामक यक्ष का यक्षायतन था ।

उस कोशांबी नगरी में शतानीक नामक राजा था, जो कि महान् हिमवत् मलय सुमेरू पर्वतों के समान महान् एवं मनुष्यों में इन्द्र के समान प्रधान था ।

उसकी मृगावती नाम की रानी थी ।

उस शतानीक का पुत्र मृगावती देवी का आत्मज उदयन नामक कुमार था, जो शुभ लक्षणों और निर्दोष परिपूर्ण पंचेन्द्रियों से युक्त शरीर वाला तथा युवराज था ।

उस उदयन कुमार की पद्मावती नाम की रानी थी ।

उस शतानीक राजा का सोमदत्त नामक पुरोहित था जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञाता था ।

उस सोमदत्त पुरोहित की वसुदत्ता नाम की भार्या थी ।

उस सोमदत्त का पुत्र वसुदत्ता का आत्मज बृहस्पतिदत्त नाम का बालक था, जिसका शरीर शुभ लक्षणों और पाँचों इन्द्रियों से सम्पन्न था ।

महावीर समवसरण में गौतम द्वारा बृहस्पतिदत्त के पूर्व-भव की पृच्छा—

२७१. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर कौशांबी नगरी में पधारे ।

उस काल और उस समय में भगवान गौतम पूर्ववत् भिक्षार्थ नगरी में गये—यावत्—राजमार्ग में पधारे, पूर्ववत् वहाँ हाथियों, घोड़ों, बहुत से पुरुषों और उन पुरुषों के मध्य एक वध्य पुरुष को देखा । देखकर विचार किया । पूर्ववत् उस पुरुष के पूर्वभव को पूछा । भगवान् ने वर्णन किया—

बृहस्पतिदत्त की महेश्वरदत्तभव कथा—

२७२. हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में सर्वतोभद्र नाम का नगर था—वह नगर वैभवशाली शत्रुभय से मुक्त और धन-धान्यादि से सम्पन्न था ।

उस सर्वतोभद्र नगर में जितशत्रु नाम का राजा था ।

उस जितशत्रु राजा का महेश्वरदत्त नामक पुरोहित था जो ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद और अथर्ववेद का ज्ञाता था ।

महेसरदत्तकया संतिहोमे माहणादिदारयाणं हिंसा—

२७३. तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए जियसत्तुस्स रण्णो रज्जबल-विवड्ढणट्ठयाए कल्लाकल्लिं एगमेगं माहणदारयं, एगमेगं खत्तिय-दारयं, एगमेगं वइस्सदारयं, एगमेगं सुद्ददारयं गिण्हावेइ, गिण्हा-वेत्ता तेसिं जीवंतगाणं चेव हियउंडए गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता जियसत्तुस्स रण्णो संतिहोमं करेइ।

तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए अट्ठमीचाउद्दसीसु दुवे-दुवे माहण-खत्तिय-वइस्स-सुद्दे, चउण्हं मासाणं चत्तारि-चत्तारि, छण्हं मासाणं अट्ठ-अट्ठ, संवच्छरस्स सोलस-सोलस।

जाहे-जाहे वि य णं जियसत्तू राया परबलेणं अभिजुज्जइ, ताहे-ताहे वि य णं से महेसरदत्ते पुरोहिए अट्ठसयं माहणदारगाणं, अट्ठसयं खत्तियदारगाणं, अट्ठसयं वइस्सदारगाणं, अट्ठसयं सुद्दार-गाणं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता तेसिं जीवंतगाणं चेव हियय-उंडियाओ गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता जियसत्तुस्स रण्णो संतिहोमं करेइ। तए णं से परबले खिप्पामेव विद्धंसेइ वा पडिसेहिज्जइ वा।

महेश्वरदत्तकृत शांतिहोम में ब्राह्मणादि के बालकों की हिंसा—

२७३. इसके बाद वह महेश्वरदत्त पुरोहित जितशत्रु राजा के राज्य और बल की वृद्धि के लिये प्रतिदिन एक-एक ब्राह्मण बालक, एक-एक क्षत्रिय बालक, एक-एक वैश्य बालक और एक-एक शूद्र बालक को पकड़वा लेता और पकड़वाकर जीवित रहते ही उनके हृदय के मांसपिंडों—कलेजा को निकलवाता, निकलवा-कर जितशत्रु राजा के निमित्त उनसे शांति होम किया करता था।

इसके पश्चात् वह महेश्वरदत्त पुरोहित अष्टमी और चतुर्दशी को दो-दो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र बालकों को, चार मास में चार-चार बालकों को, छह मास में आठ-आठ बालकों को और संवत्सर में सोलह-सोलह बालकों को पकड़वाकर उनका कलेजा निकलवाता और फिर शांति होम करता था।

जब-जब भी जितशत्रु राजा शत्रुसेना के साथ युद्ध करता था, तब-तब वह महेश्वरदत्त पुरोहित एक सौ आठ ब्राह्मण बालकों, एक सौ आठ क्षत्रिय बालकों, एक सौ आठ वैश्य बालकों और एक सौ आठ शूद्र बालकों को अपने नौकरों द्वारा पकड़वाता, पकड़वाकर जीवित दशा में उनके हृदयगत मांसपिंडों को निकल-वाता, निकलवाकर जितशत्रु राजा के निमित्त शांति होम किया करता था। उससे वह शत्रुसेना का शीघ्र ही विनाश कर देता था और उसे वापस भगा देता था।

महेसरदत्तस्स निरयउववाओ—

२७४. तए णं से महेसरदत्ते पुरोहिए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता तीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा पंचमाए पुढवीए उक्कोसेणं सत्तर-सागरोवमट्ठिइए नरगे उववण्णे।

महेश्वरदत्त का नरक उपपात—

२७४. तदनन्तर वह महेश्वरदत्त पुरोहित इस प्रकार के कर्म से, इस प्रकार के कार्य को प्रधान मानने से, इस प्रकार की विद्या—मति से और इसी प्रकार की आचार-प्रवृत्ति होने से अत्यधिक पाप कर्मों को उपार्जित करके तीन हजार वर्ष की परमायु भोगकर मरणकाल के प्राप्त होने पर मरकर सत्रह सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाली पांचवीं नरकपृथ्वी में उत्पन्न हुआ।

बहस्सइदत्तस्स वत्तमाणभववण्णणं—

२७५. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव कोसंबीए नयरीए सोम-दत्तस्स पुरोहियस्स वसुदत्ताए भारियाए पुत्तत्ताए उववण्णे।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहस्स इमं एयारूवं नामधेज्जं करेंति—जम्हा णं अम्हं इमे दारए सोमदत्तस्स पुरोहियस्स पुत्ते वसुदत्ताए अत्तए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए बहस्सइदत्ते नामेणं।

तए णं से बहस्सइदत्ते दारए पंचधाईपरिग्गहिए-जाव-परि-वड्ढइ।

बृहस्पतिदत्त का वर्तमान भव वर्णन—

२७५. तदनन्तर वह महेश्वरदत्त उस पांचवीं नरकपृथ्वी से निकलकर सीधा इसी कौशाम्बी नगरी में सोमदत्त पुरोहित की वसुदत्ता भार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

तत्पश्चात् उस दारक के माता-पिता ने जन्म से बारह दिन बीतने के बाद उसका यह और इस प्रकार का नामकरण किया—'जिस कारण हमारा यह बालक सोमदत्त पुरोहित का पुत्र और वसुदत्ता का आत्मज है उस कारण हमारा यह बालक 'बृहस्पतिदत्त' नाम वाला हो अर्थात् इसका नाम बृहस्पतिदत्त हो।

तत्पश्चात् वह बृहस्पतिदत्त बालक पांच धायमाताओं द्वारा परिगृहीत होता हुआ—यावत्—परिवर्धित होने लगा—बढ़ने लगा।

तए णं से बहस्सइदत्ते दारए उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणय-मेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते होत्था। से णं उदयणस्स कुमारस्स पिय-बालवयंसए यावि होत्था सहजायए सहवड्ढियए सहपंसुकीलियए।

तए णं से सयाणिए राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते।

तए णं से उदयणे कुमारे बहूहिं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिईहिं सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे सयाणियस्स रण्णो महया इड्ढी-सक्कारसमुदएणं नीहरणं करेइ, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ।

तए णं ते बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभिइओ उदयणं कुमारं महया-महया राया-भिसेएणं अभिसिंचंति।

तए णं से उदयणे कुमारे राया जाए—महयाहिमवंत-महंत-मलय-मंदर-महिंदसारे०।

बहस्सइदत्तस्स उदयणरण्णो रायमहिसीए भोगभुंजणं—

२७६. तए णं से बहस्सइदत्ते दारए उदयणस्स रण्णो पुरोहियकम्मं करेमाणे सव्वट्ठाणेसु सव्वभूमियासु अंतेउरे य दिण्णवियारे जाए यावि होत्था।

तए णं से बहस्सइदत्ते पुरोहिए उदयणस्स रण्णो अंतेउरं वेलासु य अवेलासु य कालेसु य अकालेसु य राओ य वियाले य पविसमाणे अण्णया कयाइ पउमावईए देवीए सद्धिं संपलग्गे यावि होत्था। पउमावईए देवीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

रायकया बहस्सइदत्तविडंबणा—

२७७. इमं च णं उदयणे राया ण्हाए-जाव-विभूसिए जेणेव पउमा-वई देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता बहस्सइदत्तं पुरोहियं पउमावईए देवीए सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंज-माणं पासइ, पासित्ता आसुरुत्ते तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु बहस्सइदत्तं पुरोहियं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता अट्ठि-मुट्ठि-जाणु-कोप्परपहार-संभग्ग-महियगत्तं करेइ, करेत्ता अवओडगबंधणं

इसके बाद वह बृहस्पतिदत्त बालक बालभाव से मुक्त हो, ज्ञान-विज्ञान में परिपक्व हो युवावस्था को प्राप्त हुआ। वह उदयन कुमार का प्रिय बालमित्र था, उन दोनों का जन्म एक साथ हुआ था, दोनों एक साथ ही बड़े हुए थे और एक साथ ही खेले-कूदे थे।

तत्पश्चात् किसी एक समय शतानीक राजा कालधर्म को प्राप्त हुआ।

तब उदयन कुमार ने बहुत से राजा ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह आदि के साथ मिलकर रोते हुए, आक्रन्दन करते हुए और विलाप करते हुए महान् ऋद्धि सत्कार और समारोहपूर्वक शतानीक राजा की मरणोत्तर-कालीन शवदाह आदि क्रियायें कीं, क्रियायें करने के पश्चात् अन्य अनेक लौकिक मृतक सम्बन्धी कृत्यों को किया।

इसके बाद उन अनेकों राजा, ईश्वर, तलवर, माडंबिक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि, सेनापति, सार्थवाह प्रभृति ने मिलकर महान् राज्याभिषेक से उदयन कुमार को अभिषिक्त किया।

तब वह उदयन कुमार पर्वतों में महाहिमवन्त, मलय और मन्दर पर्वत एवं देवों में इन्द्र के समान महान प्रतापी राजा हो गया।

बृहस्पतिदत्त का उदयन राजा की राजमहिषी के साथ भोग भोगना—

२७६. तत्पश्चात् वह बृहस्पतिदत्त दारक उदयन राजा का पौरो-हित्य कर्म करता हुआ सर्व स्थानों में सर्व भूमिकाओं और अन्तः-पुर में बिना किसी प्रतिबन्ध के, बेरोक-टोक गमनागमन करने वाला हो गया।

इसके बाद उस बृहस्पतिदत्त पुरोहित का उदयन राजा के अन्तःपुर में अवसर-अनवसर, काल-अकाल, रात्रि और संध्या समय में स्वेच्छापूर्वक आने-जाने से किसी समय पद्मावती रानी के साथ सम्पर्क हो गया और पद्मावती देवी के साथ वह उदार—यथेष्ट मनुष्य सम्बन्धी काम-भोगों का सेवन करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

राजा द्वारा बृहस्पतिदत्त की विडम्बना—

२७७. इधर किसी समय उदयन राजा ने स्नान किया—यावत्—अलंकारों से विभूषित होकर जहाँ पद्मावती देवी थी, वहाँ पहुँचा, पहुँचकर बृहस्पतिदत्त पुरोहित को पद्मावती देवी के साथ मनुष्य सम्बन्धी यथेष्ट काम-भोगों का सेवन करते हुए देखा, देखकर क्रोधाभिभूत हो, ललाट में तीन बल डाल भृकुटि चढ़ाकर, नौकरों से बृहस्पतिदत्त पुरोहित को पकड़वाया, पकड़वा-कर लकड़ी, मुक्का, लात और कोहनियों की मार से अंग-अंग को तोड़ शरीर को दही जैसा मथ दिया, मथकर अवकोटक बंधन

करेइ, करेत्ता एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ ।

उवसंहारो—

२७८. एवं खलु गोयमा ! बहस्सइदत्ते पुरोहिए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ ।

बहस्सइदत्तस्स आगामिभवकहा—

२७९. बहस्सइदत्ते णं भंते ! पुरोहिए इओ कालगए समाणे कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! बहस्सइदत्ते णं पुरोहिए चोसट्ठिं वासाइं परमाउं पालइत्ता अज्जेव तिभागावसेसे दिवसे सूलभिण्णे कए समाणे कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ ।

से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता, एवं संसारो जहा पढमे-जाव-वाउ-तेउ-आउ-पुढवीसु अणेगसयसहस्सखुत्तो उद्दाइत्ता-उद्दाइत्ता तत्थेव भुज्जो-भुज्जो पच्चायाइस्सइ ।

तओ हत्थिणाउरे नयरे मियत्ताए पच्चायाइस्सइ । से णं तत्थ वाउरिएहिं वहिए समाणे तत्थेव हत्थिणाउरे नयरे सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ । बोहिं, सोहम्मे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

—विवागसुयं सु० १ अ० ५

से बाँधा और बाँधकर (जैसा तुमने राजमार्ग में देखा) इस प्रकार से वध करने की आज्ञा दी ।

उपसंहार—

२७८. इस प्रकार हे गौतम ! वह बृहस्पतिदत्त पुरोहित अपने पूर्वजन्म के पुरातन दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों का पापमय फलविशेष का वेदन कर रहा है ।

बृहस्पतिदत्त की आगामी भव कथा—

२७९. भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर से पूछा—"हे भदन्त ! यहाँ से कालगत होकर बृहस्पतिदत्त पुरोहित कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

भगवान ने उत्तर दिया—"हे गौतम ! बृहस्पतिदत्त पुरोहित चौंसठ वर्ष की पूर्ण आयु भोगकर दिन का तीसरा भाग शेष रहने पर आज ही शूली के द्वारा भेदन किये जाने पर काल मास में काल प्राप्त करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी में उत्कृष्ट एक सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा ।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर प्रथम अध्ययन में किये गये वर्णन के समान संसार में परिभ्रमण करेगा—यावत्—वायु, तेज, जल, पृथ्वीकाय के जीवों में अनेक लाखों बार मर-मर कर पुनः-पुनः उन्हीं में उत्पन्न होगा ।

इसके बाद हस्तिनापुर नगर में मृग रूप से उत्पन्न होगा । वहाँ वह वागुरियों—जाल डालकर पशुओं को फँसाने का काम करने वालों, व्याधों के द्वारा वध किये जाने पर उसी हस्तिनापुर नगर में श्रेष्ठिकुल में पुत्र रूप से उत्पन्न होगा । वहाँ सम्यक् बोधि—सम्यक्त्व प्राप्त करेगा, तत्पश्चात् सौधर्म कल्प में देवरूप से उत्पन्न होगा, वहाँ से च्यवकर महाविदेहवर्ष में उत्पन्न हो सिद्धि प्राप्त करेगा ।

१५. नंदिवद्धणकुमारकहाणयं—

महुराए नंदिवद्धणे कुमारे—

२८०. तेणं कालेणं तेणं समएणं महुरा नामं नयरी । भंडीरे उज्जाणे ।

१५. नन्दीवर्धन कुमार कथानक—

मथुरा में नन्दीवर्धन कुमार—

२८०. उस काल और उस समय में मथुरा नाम की नगरी थी ।

सुदरिसणे जक्खे । सिरिदामे राया । बंधुसिरी भारिया । पुत्ते नंदिवद्धणे कुमारे—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे जुवराया ।

भंडीर नामक उद्यान था । उस उद्यान में सुदर्शन नामक यक्ष का आयतन-स्थान था । श्रीदाम नामक राजा था । उसकी बंधुश्री नाम की भार्या थी । पुत्र का नाम नन्दीवर्धन कुमार था जो शुभ लक्षणों और परिपूर्ण पंचेन्द्रियों से युक्त शरीर वाला था तथा युवराज भी था ।

तस्स सिरिदामस्स सुबंधू नामं अमच्चे होत्था—साम-दंड-भेय-उवप्पयाणनीति-सुप्पउत्त-नयविहिण्णू ।

उस श्रीदाम राजा का सुबन्धु नामक अमात्य था, जो साम-दंड, भेद और दान नीति का प्रयोग करने में कुशल और राजनय न्याय का विद्वान था ।

तस्स णं सुबंधुस्स अमच्चस्स बहुमित्तपुत्ते नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण पंचिंदियसरीरे ।

उस सुबन्धु अमात्य का अन्यून निर्दोष पंचेन्द्रियों युक्त शरीर वाला बहुमित्रपुत्र नामक दारक था ।

तस्स णं सिरिदामस्स रण्णो चित्ते नामं अलंकारिए होत्था—सिरिदामस्स रण्णो चित्तं बहुविहं अलंकारियकम्मं करेमाणे सव्वट्ठाणेसु य सव्वभूमियासु य अंतेउरे य दिण्णवियारे यावि होत्था ।

उस श्रीदाम राजा का चित्त नामक अलंकारिक—नाई था, जो श्रीदाम राजा का अनेकविध आश्चर्यजनक अलंकारिक कर्म—क्षौर कर्म करता हुआ सर्व स्थानों और सर्व भूमिकाओं एवं अन्तःपुर तक में अप्रतिहत बिना किसी प्रकार की रोक-टोक के आता-जाता था ।

भगवओ महावीरस्स समवसरणे गोयमेण नंदिवद्धणस्स पुव्वभवपुच्छा—

भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा नन्दीवर्धन का पूर्वभव पृच्छा—

२८१. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे । परिसा निग्गया, राया निग्गओ जाव परिसा पडिगया ।

२८१. उस काल और उस समय में स्वामी—श्रमण भगवान महावीर पधारे । वंदना करने परिषदा नगर से निकली, राजा भी निकला - यावत्—परिषदा वापस लौट गई ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी-जाव-रायमग्गमोगाढे । तहेव हत्थी, आसे, पुरिसे पासइ । तेसिं च णं पुरिसाणं मज्झगयं एगं पुरिसं पासइ-जाव-नर-नारी-संपरिवुडं ।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के प्रथम शिष्य—यावत्—राजमार्ग पर पधारे । वहां पूर्ववत् हाथियों, घोड़ों और बहुत व्यक्तियों को देखा । उन व्यक्तियों के मध्य में एक वध्य पुरुष को देखा—यावत्—जो नर-नारियों के समूह से घिरा हुआ था ।

तए णं तं पुरिसं रायपुरिसा चच्चरंसि तत्तंसि अयोमयंसि समजोइभूयंसि सीहासणंसि निवेसावेंति ।

तत्पश्चात् राजपुरुषों ने उस पुरुष को चत्वर-चौराहे पर अग्नि के समान देदीप्यमान, तपे हुए लोहे के सिंहासन पर बैठाया ।

तयाणंतरं च णं पुरिसाणं मज्झगयं बहूहिं अयकलसेहिं तत्तेहिं समजोइभूएहिं, अप्पेगइया तंबभरिएहिं, अप्पेगइया तउयभरिएहिं, अप्पेगइया सीसगभरिएहिं, अप्पेगइया कलकलभरिएहिं, अप्पेगइया खारतेल्लभरिएहिं महया-महया रायाभिसेएणं अभिसिंचंति ।

तदनन्तर पुरुषों के मध्य में स्थित उस पुरुष को कोई तपे हुए अग्नि के समान देदीप्यमान अनेक लोह कलशों से, कोई तांबे से भरे हुए कलशों से, कोई सीसे से भरे कलशों से, कोई रांगे से भरे कलशों से, कोई कलई-चूना भरे कलशों से और कोई क्षार तेल से परिपूर्ण कलशों से महान् राज्याभिषेक द्वारा अभिषिक्त करते हैं ।

तयाणंतरं च तत्तं अयोमयं समजोइभूयं अयोमयं संडासगं गहाय हारं पिणद्धंति । तयाणंतरं च णं अद्धहारं पिणद्धंति, तिसरियं पिणद्धंति, पालंबं पिणद्धंति, कडिसुत्तयं पिणद्धंति, पट्टं पिणद्धंति, मउडं पिणद्धंति । चिन्ता तहेव-जाव-वागरेइ—

इसके बाद संडासी लेकर अग्नि के समान देदीप्यमान, तपे हुए लोहे से बना हार पहनाते हैं । तदनन्तर अर्धहार पहनाते हैं, तिलड़ी पहनाते हैं, झूमके पहनाते हैं, कटिसूत्र—करधनी पहनाते हैं, पट्ट—शिर का आभूषण पहनाते हैं, मुकुट पहनाते हैं । भगवान गौतम ने उसी प्रकार चिन्ता—विचार किया तथा भगवान से पूर्वभव—यावत्—श्रमण भगवान महावीर ने प्रतिपादन किया—

नंदिवद्धणस्स दुज्जोहणभवकहा—

२८२. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सीहपुरे नामं नयरे होत्था— रिद्धत्थिमियसमिद्धे०।

तत्थ णं सीहपुरे नयरे सीहरहे नामं राया होत्था।

तस्स णं सीहरहस्स रण्णो दुज्जोहणे नामं चारगपाले होत्था— अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे।

चारगपालो दुज्जोहणो—

२८३. तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स इमेयारूवे चारगभंडे होत्था।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे अयकुंडीओ— अप्पेगइयाओ तंबभरियाओ, अप्पेगइयाओ तउयभरियाओ, अप्पेगइयाओ सीसगभरियाओ, अप्पेगइयाओ कलकलभरियाओ, अप्पेगइयाओ सीसगभरियाओ, अप्पेगइयाओ कलकलभरियाओ, अप्पेगइयाओ खारतेल्लभरियाओ—अगणिकायंसि अद्दहियाओ चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे उट्टियाओ—अप्पेगइयाओ आसमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ हत्थिमुत्तभरियाओ-अप्पेगइयाओ उट्टमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ गोमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ महिसमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ अयमुत्तभरियाओ, अप्पेगइयाओ एलमुत्तभरियाओ—बहुपडिपुण्णाओ चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे हत्थंडुयाण य पायंडुयाण य हडीण य नियलाण य संकलाण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे वेणुलयाण य वेत्तलयाण य चिंचालयाण य छियाण य कसाण य वायरासीण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे सिलाण य लउडाण य मोग्गराण य कणंगराण य पुन्जा निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे तंतीण य वरत्ताण य वागरज्जूण य वालयसुत्तरज्जूण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे असिपत्ताण य करपत्ताण य खुरपत्ताण य कलंबचीरपत्ताण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे लोहखीलाण य कडसक्कराण य चम्मपट्टाण य अलीपट्टाण य पुन्जा य निगरा य

नन्दीवर्धन की दुर्योधन भव कथा—

२८२. "हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारत वर्ष में सिंहपुर नामक नगर था जो वैभव से सम्पन्न, शत्रुभय से मुक्त और धन-धान्यादि से समृद्ध था।"

उस सिंहपुर में सिंहरथ नाम का राजा था।

उस सिंहरथ राजा का दुर्योधन नामक चारकपाल (कारावास का रक्षक, जेलर) था, जो अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द था।

चारकपाल दुर्योधन—

२८३. उस चारकपाल दुर्योधन के यह और इस प्रकार के चारक भांड-कारागार सम्बन्धी उपकरण थे—

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक लोहे की कुंडियाँ थीं, उनमें से कितनी ही तांबे से भरी हुई थीं, कितनी ही रांगे से भरी हुई थीं, कितनी ही सीसे से भरी हुई थीं, कितनी ही कलई चूने से भरी हुई थीं और कितनी क्षार युक्त तेल से भरी हुई थीं जो अग्नि पर रखी रहती थी अर्थात् अग्नि पर रखे रहने से उबलती-खौलती रहती थीं।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास बहुत सी ऊँट के चमड़े से बने बड़े-बड़े मटके थे, उन मटकों में से किसी में घोड़े का मूत्र, किसी में हाथी का मूत्र, किसी में ऊँट का मूत्र, किसी में गाय का मूत्र, किसी में भैंस का मूत्र, किसी में बकरी का मूत्र, और किसी में भेड़ का मूत्र भरा रहता था।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक हस्तान्दुक (हाथ बाँधने के लकड़ी से बने बंधन विशेष) पादान्दुक, हडि—काठ की बेड़ी, निगड-लोहे की बेड़ी-सांकल के पुंज और ढेर रखे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक वेणु लतायें, बांस की चाबुकों, बेंत लताओं, चिंचा-इमली की चाबुकों, चीकनी चर्म से चाबुकों, रस्सी की चाबुकों, वृक्षों की छाल की चाबुकों के पुंज और निकर—ढेर रखे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक शिलाओं, लकड़ियों, मुद्गरों, कनंगरों-पत्थर के दुमुंट (जमीन कूटने का उपकरण) अथवा पत्थर के मुद्गरों के पुंज और ढेर रखे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक विध तांत-चमड़े की रस्सियों, वृक्ष की छाल से बनी रस्सियों, बालों से बनी रस्सियों के पुंज और निकर रखे हुए थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास असिपत्र (तलवार) करपत्र (आरा) खरपत्र (उस्तरा) और कलंब चीरपत्र (शस्त्र विशेष) के पुंज और निकर रखे रहते थे।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक प्रकार की लोहे की कीलियों, बाँस की सूटियों, चर्म पट्टों और अलीपट्टों (जिसके

संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति ।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे सूईण य डंभणाण य कोट्टिल्लाण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति ।

तस्स णं दुज्जोहणस्स चारगपालस्स बहवे सत्थाण य पिप्पलाण य कुहाडाण य नहच्छेयणाण य दब्भाण य पुन्जा य निगरा य संनिक्खित्ता चिट्ठन्ति ।

दुज्जोहणस्स चरिया—

२८४. तए णं दुज्जोहणे चारगपाले सीहरहस्स रण्णो बहवे चोरे य पारदारिए य गंठिभेए य रायावकारी य अणहारए य बालघायए य विस्संभघायए य जूइगरे य खंडपट्टे य पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता उत्ताणए पाडेइ, लोहदंडेणं मुहं विहाडेइ, विहाडेत्ता अप्पेगइए तत्ततंबं पज्जेइ, अप्पेगइए तउयं पज्जेइ, अप्पेगइए सीसगं पज्जेइ, अप्पेगइए कलकलं पज्जेइ, अप्पेगइए खारतेल्लं पज्जेइ, अप्पेगइयाणं तेणं चेव अभिसेगं करेइ ।

अप्पेगइए उत्ताणए पाडेइ, पाडेत्ता आसमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए हत्थिमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए उट्टमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए गोमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए महिसमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए अयमुत्तं पज्जेइ, अप्पेगइए एलमुत्तं पज्जेइ ।

अप्पेगइए हेट्ठामुहए पाडेइ छडछडस्स वम्मावेइ, वम्मावेत्ता अप्पेगइए तेणं चेव ओवीलं दलयइ ।

अप्पेगइए हत्थंडुयाइं बंधावेइ, अप्पेगइए पायंडुए बंधावेइ, अप्पेगइए हडिबंधणं करेइ, अप्पेगइए नियलबंधणं करेइ, अप्पेगइए संकोडियमोडियए करेइ, अप्पेगइए संकलबंधणं करेइ ।

अप्पेगइए हत्थच्छिण्णए करेइ, अप्पेगइए पायच्छिण्णए करेइ, अप्पेगइए नक्कछिण्णए करेइ, अप्पेगइए उट्ठच्छिण्णए करेइ, अप्पेगइए जिब्भछिण्णए करेइ, अप्पेगइए सीसछिण्णए करेइ, अप्पेगइए सत्थोवाडियए करेइ ।

अप्पेगइए वेणुलयाहि य, अप्पेगइए वेत्तलयाहि य, अप्पेगइए चिंचालयाहि य, अप्पेगइए छियाहि य, अप्पेगइए कसाहि य, अप्पेगइए वायरासीहि य हणावेइ ।

अप्पेगइए उत्ताणए कारवेइ, कारवेत्ता उरे सिलं दलावेइ, दलावेत्ता तओ लउडं छुहावेइ, छुहावेत्ता पुरिसेहिं उक्कंपावेइ० ।

आगे काँटे अथवा बिच्छू के डंक के समान अंकुश लगा हो ऐसा जहरीला शस्त्र विशेष) के पुंज और निकर रखे रहते थे ।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक सूईयों, डाभों और मोगरियों (छोटे मुद्गरों) के पुंज और निकर रखे रहते थे ।

उस दुर्योधन चारकपाल के पास अनेक प्रकार के शस्त्रों, पिप्पलों (कटारी) कुल्हाड़ियों, नखच्छेदकों और दर्भ के पुंज और निकर रखे हुए थे ।

दुर्योधन की चर्या—

२८४. तत्पश्चात् वह दुर्योधन चारकपाल सिंहरथ राजा के अनेक चोरों, पारदारिकों पर-स्त्री लंपटों, ग्रंथि भेदकों, जेब कतरों, राजा के अपकारियों, ऋणधारकों, बाल घातकों, विश्वासघातकों, जुआरियों और धूर्तपुरुषों को राजपुरुषों द्वारा पकड़वाता, पकड़वाकर ऊर्ध्वमुख चित पटकता, लोहे के सरिये से मुख को खोलता, खोलकर किसी को तपा हुआ गरम ताँबा पिलाता, किसी को रांगा पिलाता, किसी को सीसा पिलाता, किसी को कलई चूना पिलाता किसी को क्षार युक्त तेल पिलाता और किसी का उनसे अभिषेक करता ।

किसी को चित्त सीधा पटक कर अश्वमूत्र पिलाता, किसी को हस्ती-मूत्र पिलाता, किसी को ऊँट का मूत्र पिलाता, किसी को गाय का मूत्र पिलाता, किसी को भैंस का मूत्र पिलाता, किसी को बकरी का मूत्र पिलाता और किसी को भेड़ का मूत्र पिलाता ।

किसी को उल्टे मुँह-पट्ट गिराता फिर जबरन वमन कराता और फिर वमन कराकर किसी को उसे पिलाकर पीड़ा पहुँचाता अथवा किसी को मारता पीटता ।

किसी को हस्तान्दुकों से, किसी को पादान्दुकों से बाँधता, किसी को बेड़ी में डालता, किसी को सांकल से बाँधता, किसी के शरीर को सिकोड़ता-मरोड़ता, किसी को सांकलों से बाँधता ।

किसी के हाथ काटता, किसी के पैर काटता, किसी के नाक-कान काटता, किसी के ओठ काटता, किसी की जीभ काटता, किसी का सिर काटता और किसी को शस्त्र से उत्पाटित करता-फाड़ता ।

किसी को बाँस की चाबुकों से, किसी को बेंत की चाबुकों से किसी को इमली की चाबुकों से, किसी को चिकनी चाबुकों से, किसी को रस्सी की चाबुकों से और किसी को पेड़ की छाल की चाबुकों से पिटवाता ।

किसी को ऊर्ध्वमुख चित्त पटकाता, पटककर छाती पर शिला रखवाता, रखवाकर लक्कड़ रखवाता रखवाकर पुरुषों से उत्कम्पन करवाता ।

अप्पेगइए तंतीहि य, अप्पेगइए वरत्ताहि य, अप्पेगए वाग-रज्जूहि य, अप्पेगइए वालयसुत्तरज्जूहि य हत्थेसु य पाएसु य बंधावेइ, अगडंसि ओचूलं बोलगं पज्जेइ।

किसी को ताँत से, किसी को रस्सी से, किसी को वृक्ष की छाल की रस्सी से, किसी को बालों की रस्सी से हाथ-पैर बँधवाता और बँधवाकर कुएँ में उलटा लटकवाता।

अप्पेगए असिपत्तेहि य, अप्पेगइए करपत्तेहि य, अप्पेगइए खुर-पत्तेहि य अप्पेगइए कलंबचीरपत्तेहि य पच्छावेइ, पच्छावेत्ता खारतेल्लेणं अब्भंगावेइ।

किसी को असिपत्रों से, किसी को करपत्रों से, किसी को क्षुर पत्रों से, किसी को कलम्ब चीर पत्रों से छिलवाता और छिलवाकर क्षार युक्त तेल की मालिश करवाता।

अप्पेगइयाणं निलाडेसु य अवदूसु य कोप्परेसु य जाणूसु य खलुएसु य लोहकीलए य कडसक्कराओ य दवावेइ अलिए भजावेइ।

कितनों के मस्तकों में, पीठों में अथवा गरदनों में, कोहनियों में, जाँघों में, गुल्फों में लोह की कीलें, बाँस की खूँटियाँ ठुकवाता बिच्छू से डंक मरवाता।

अप्पेगइए सूईओ य डंभणाणि य हत्थंगुलियासु य पायंगुलि-यासु य कोट्टिल्लएहि आउडावेइ, आउडावेत्ता भूमिं कंडुयावेइ।

किसी की हाथ की अंगुलियों और पैर की अंगुलियों में मुद्गरों से सूईयों और डाभों को ठुकवाता और ठुकवाकर भूमि पर घिसटवाता।

अप्पेगइए सत्थेहि य, अप्पेगइए पिप्पलेहि य, अप्पेगइए कुहा-डेहि य, अप्पेगइए नहच्छेयणेहि य अंगं पच्छावेइ, दब्भेहि य कुसेहि य उल्लवद्धेहि य वेढावेइ, आयवंसि दलयइ, दलइत्ता सुक्के समाणे चडचडस्स उप्पाडेइ।

किसी के शस्त्र से, किसी के बरछी से, किसी के कुल्हाड़ी से, किसी के नहनी से, अंग छिलवाता और फिर दर्भ से, कुशा से, गीली घास से बँधवाता और धूप में सूखने के लिये गिरवा देता, इसके बाद सूखने पर चड़चड़ाहट के साथ उखड़वाता।

तए णं से दुज्जोहणे चारगपाले एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावकम्मं समज्जिणित्ता एगतीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्को-सेणं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

इसके पश्चात् वह दुर्योधन चारकपाल इस प्रकार के कार्यों से इस प्रकार के कार्यों की प्रधानता से, इस प्रकार की बुद्धि से और इस प्रकार की आचार प्रवृत्ति से अत्यधिक पाप कर्मों का उपार्जन करके इकतीस सौ वर्ष की पूर्ण आयु का भोग करके मरण-काल प्राप्त होने पर मरण करके छठी नरक पृथ्वी में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न हुआ।

नंदिवद्धणस्स वत्तमाणभवकहा—

नन्दीवर्धन की वर्तमान भव कथा—

२८५. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव महुराए नयरीए सिरि-दामस्स रण्णो बंधुसिरीए देवीए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे।

२८५. तदनन्तर वह दुर्योधन चारकपाल नरक से निकल कर इसी मथुरा नगरी में श्रीदाम राजा की बंधुश्री रानी की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

तए णं बंधुसिरी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं-जाव-दारगं पयाया।

तत्पश्चात् बंधुश्री रानी ने लगभग नौ मास पूर्ण होने पर —यावत्—बालक को जन्म दिया।

तए णं तस्स दारगस्स अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहे इमं एयारूवं नामधेज्जं करेंति—होउ णं अम्हं दारगे नंदिवद्धणे नामेणं।

इसके बाद उस दारक के माता-पिता ने बारह दिन बीतने पर इस प्रकार का यह नामकरण किया—हमारे इस बालक का नाम 'नंदिवर्धन' हो।

तए णं से नंदिवद्धणे कुमारे पंचधाईपरिवुडे-जाव-परिवड्ढइ।

इसके पश्चात् वह नंदिवर्धन कुमार पाँच धाय माताओं से परिवेष्टित होता हुआ—यावत्—पालन-पोषण द्वारा वृद्धिगत होने लगा।

तए णं से नंदिवद्धणे कुमारे उम्मुक्कबालभावे विण्णय-परिणय-मेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते विहरइ-जाव-जुवराया जाए यावि होत्था।

तदनन्तर वह नंदिवर्धन कुमार बाल्यावस्था को पार कर परिपक्व, परिष्कृत बुद्धि सम्पन्न होकर युवावस्था को प्राप्त होता हुआ विचरने लगा—यावत्—युवराज हो गया।

नंदिवद्धणस्स पिउमारणे संकप्पो—

नन्दिवर्धन का पितृ मारण संकल्प—

२८६. तए णं से नंदिवद्धणे कुमारे रज्जे य-जाव-अंतेउरे य मुच्छिए

२८६. इसके बाद नंदिवर्धन कुमार राज्य में—यावत्—अन्तःपुर

गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे इच्छइ सिरिदामं रायं जीवियाओ ववरोवेत्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे पालेमाणे विहरित्तए।

तए णं से नंदिवद्धणे कुमारे सिरिदामस्स रण्णो बहूणि अंतराणि य छिद्दाणि य विरहाणि य पडिजागरमाणे विहरइ।

तए णं से नंदिवद्धणे कुमारे सिरिदामस्स रण्णो अंतरं अलभमाणे अण्णया कयाइ चित्तं अलंकारियं सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी "तुमं णं देवाणुप्पिया! सिरिदामस्स रण्णो सव्वट्ठाणेसु य सव्वभूमियासु य अंतेउरे य दिण्णवियारे सिरिदामस्स रण्णो अभिक्खणं अभिक्खणं अलंकारियं कम्मं करेमाणे विहरसि, तं णं तुमं देवाणुप्पिया! सिरिदामस्स रण्णो अलंकारियं कम्मं करेमाणे गीवाए खुरं निवेसेहि। तो णं अहं तुमं अद्धरज्जियं करिस्सामि। तुमं अम्हेहिं सद्धिं उरालाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरिस्ससि।"

तए णं से चित्ते अलंकारिए नंदिवद्धणस्स कुमारस्स वयणं एयमट्ठं पडिसुणेइ।

तए णं तस्स चित्तस्स अलंकारियस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"जइ णं मम सिरिदामे राया एयमट्ठं आगमेइ, तए णं मम न नज्जइ केणइ असुभेणं कुमारेणं मारिस्सइ" त्ति कट्टु भीए तत्थे तसिए उव्विग्गे संजायभए जेणेव सिरिदामे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरिदामं रायं रहस्सियगं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—"एवं खलु सामी! नंदिवद्धणे कुमारे रज्जे य -जाव- अंतेउरे मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे इच्छइ, तुब्भे जीवियाओ ववरोवित्ता सयमेव रज्जसिरिं कारेमाणे पालेमाणे विहरित्तए।"

रण्णा णंदिवद्धणस्स दंडो—

२८७. तए णं से सिरिदामे राया चित्तस्स अलंकारियस्स अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलिं भिउडिं निडाले साहट्टु नंदिवद्धणं कुमारं पुरिसेहिं गिण्हावेइ, गिण्हावेत्ता एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

उवसंहारो—

२८८. तं एवं खलु गोयमा! नंदिवद्धणे कुमारे पुरा पोराणाणं

में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और अनुरक्त हो श्रीदाम राजा को जीवन से रहित कर—मारकर राज्यश्री का संवर्धन करने एवं प्रजा का पालन करते हुए विचरण करने की इच्छा करने लगा।

तदनन्तर वह नंदिवर्धन कुमार श्रीदाम राजा के अनेक अंतरों (गुप्त अवसरों-प्रसंगों) छिद्रों (स्खलनाओं) और विवरों (दोषों) की प्रतीक्षा, अन्वेषणा करता हुआ विचरने लगा।

इसके बाद उस नंदिवर्धन कुमार ने श्रीदाम राजा के अंतरों को प्राप्त न करके किसी एक दिन चित्र अलंकारिक—नाई को बुलाया और बुलाकर उससे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिय! तुम श्रीदाम राजा के सभी स्थानों में, सभी भूमिकाओं में और अन्तःपुर में स्वेच्छापूर्वक बिना किसी रोक-टोक के आ-जा सकते हो और श्रीदाम राजा का बारंबार आलंकारिक कर्म (हजामत) करते रहते हो, अतएव हे देवानुप्रिय! तुम आलंकारिक कर्म करते हुए श्रीदाम राजा की ग्रीवा—गरदन में छुरा घोंप दो। तो मैं तुम्हें आधे राज्य का शासक बना दूंगा—अथवा मैं तुम्हें आधा राज्य दे दूंगा। जिससे तुम हमारे साथ उत्तमोत्तम कामभोगों को भोगते हुए अपना समय व्यतीत करोगे।"

तदनन्तर उस चित्र आलंकारिक ने कुमार नंदिवर्धन के उक्त विचार वाले वचनों को सुना।

इसके पश्चात् उस चित्र अलंकारिक को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प समुत्पन्न हुआ—'श्रीदाम राजा यदि मेरे इस विचार को जान लें तो न मालूम किस अशुभ कुमौत से मारेगा।' ऐसा विचार पैदा होने पर वह त्रस्त, व्याकुल, उद्विग्न और भयाक्रान्त हो जहाँ श्रीदाम राजा था, वहाँ आया, वहाँ आकर उसने एकान्त में श्रीदाम राजा को दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके इस प्रकार कहा—'हे स्वामिन्! राज्य—यावत्—अन्तःपुर में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और अनुरक्त होकर नंदिवर्धन कुमार आपको जीवन से व्यपरोपित कर अर्थात् मारकर स्वयं ही राज्यश्री का संवर्धन करता और प्रजा का पालन करते हुए विचरण करने की इच्छा रखता है।"

राजा द्वारा नन्दिवर्धन को दण्ड—

२८७. इसके बाद उस श्रीदाम राजा ने चित्र अलंकारिक से इस अर्थ को सुनकर और समझकर क्रोधाभिभूत, रुष्ट, कुपित चंडिकावत् रौद्र हो और दाँतों को मिसमिसाते हुए ललाट में त्रिवलि को चढ़ाकर भृकुटि को तानकर नंदिवर्धन कुमार को राजपुरुषों द्वारा पकड़वाया और पकड़वाकर इस विधान—पूर्वोक्त प्रकार से मारे जाने की आज्ञा दी।

उपसंहार—

२८८. इस प्रकार हे गौतम! नंदिवर्धन कुमार पूर्व में दुश्चीर्ण

दुच्चिण्णाणं दुप्पडिकंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

दुष्टता से उपार्जित, दुष्प्रतिक्रान्त—जिनका प्रतिकार किया जाना शक्य नहीं ऐसे अशुभ पापमय किये हुए कर्मों का पाप रूप फल विशेष अनुभव करते हुए समय व्यतीत कर रहा है।"

नंदिवद्धणस्स आगामिभवपरूवणं—

२८९. नंदिवद्धणे कुमारे इओ चुए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! नंदिवद्धणे कुमारे सट्ठि वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए उक्कोससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ। संसारो तहेव। तओ हत्थिणाउरे नयरे मच्छत्ताए उववज्जिहिइ।

से णं तत्थ मच्छिएहिं वहिए समाणे तत्थेव सेट्ठिकुले पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ। बोही। सोहम्मे कप्पे, महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिनिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणं अंतं करेहिइ।

—विवाग० अ० ६

नन्दिवर्धन का आगामी भव निरूपण—

२८९. "हे भगवन् ! वहाँ से च्युत होकर —मर कर मरण-समय में मरण करके नंदिवर्धन कुमार कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

हे गौतम ! नंदिवर्धन कुमार साठ वर्ष की पूर्ण आयु भोग कर काल समय में काल करके इसी रत्न प्रभा पृथ्वी में एक सागरोपम की उत्कृष्ट आयु वाले नैरयिकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा। उसी तरह (पहले के अध्ययनों के समान) संसार में परिभ्रमण करेगा। इसके बाद हस्तिनापुर नगर में मच्छ के रूप में उत्पन्न होगा।

वहाँ वह मछली मारकों के द्वारा वध किया जाता हुआ उसी हस्तिनापुर नगर में श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न होगा। वहाँ सम्यक् बोधि को प्राप्त करेगा फिर सौधर्म स्वर्ग में उत्पन्न होगा, तत्पश्चात् महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा, केवल ज्ञानी होकर सर्व पदार्थों को जानेगा, मुक्त होगा, परम निर्वाण पद को प्राप्त करेगा और सर्व दुःखों का अंत करेगा।

१६. उम्बरदत्तकहाणयं—

पाडलिसंडे उम्बरदत्तो—

२९०. तेणं कालेणं तेणं समएणं पाडलिसंडे नयरे। वणसंडे उज्जाणे। 'उंबरदत्ते जक्खे।'

तत्थ णं पाडलिसंडे नयरे सिद्धत्थे राया।

तत्थ णं पाडलिसंडे नयरे सागरदत्ते सत्थवाहे होत्था—अड्ढे०। गंगदत्ता भारिया।

तस्स णं सागरदत्तस्स पुत्ते गंगदत्ताए भारियाए अत्तए उंबरदत्ते नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे।

१६. उम्बरदत्त कथानक—

पाटलिखण्ड में उम्बरदत्त—

२९०. उस काल और उस समय में पाटलिखंड नाम का नगर था। वन खंड नाम का उद्यान था। उम्बरदत्त नामक यक्ष था।

उस पाटलिखंड नगर में सिद्धार्थ नाम का राजा था।

उस पाटलिखंड नगर में सागरदत्त नामक सार्थवाह था, जो धनाढ्य और अपरिभूत था। उसकी भार्या का नाम गंगदत्ता था।

उस सागरदत्त का पुत्र और गंगदत्ता भार्या का अंगजात उम्बरदत्त नामक दारक था, जो शुभ लक्षणों से युक्त परिपूर्ण पांच इन्द्रियों एवं शरीर वाला था।

भगवओ महावीरस्स समोसरणे गोयमेण उम्बरदत्तस्स पुव्वभवपुच्छा—

भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा उम्बरदत्त के पूर्वभव विषयक पृच्छा—

२६१. तेणं कालेणं तेणं समएणं समोसरणं-जाव-परिसा पडिगया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं भगवं गोयमे तहेव जेणेव पाडलिसंडे नयरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पाडलिसंडं नयरं पुरत्थिमिल्लेणं दुवारेणं अणुप्पविसइ, अणुप्पविसित्ता तत्थ णं पासइ एगं पुरिसं—कच्छुल्लं कोढियं दाओयरियं भगंदलियं अरिसिल्लं कासिल्लं सासिल्लं सोगिलं सूयमुहं सूयहत्थं सूयपायं सडियहत्थंगुलियं सडियपायंगुलियं सडियकण्णनासियं रसियाए य पूएण य थिविथिवितं वणमुहकिमिउत्तुयंत-पगलंतपूयरुहिरं लालापगलंतकण्णनासं अभिक्खणं-अभिक्खणं पूयकवले य रुहिरकवले य किमियकवले य वममाणं कट्ठाइं कलुणाइं वीसराइं मच्छियाचडगरपहकरेणं अण्णिज्जमाणमग्गं फुट्टहडाहडसीसं दंडिखंडवसणं खंडमल्ल-खंडघडहत्थगयं गेहे-गेहे देहंबलियाए वित्तिं कप्पेमाणं पासइ ।

२६१. उस काल और उस समय में भगवान का पदार्पण हुआ—यावत्—परिषदा वापस लौट गई ।

उस काल और उस समय में भगवान् गौतम तथैव पूर्व की भाँति जहाँ पाटलिखंड नगर था वहाँ आये आकर पूर्वी द्वार से पाटलिखंड नगर में प्रविष्ट हुए, प्रवेश करके वहाँ एक पुरुष को देखा, जो कंडू (खुजली) रोगी, कुष्ठ रोगी था, जलोदर, भगंदर अर्श, बवासीर, कास, श्वास, शोथ (सूजन) रोग से पीड़ित था उसका मुख, हाथ, पैर, फूले हुए थे, उसकी हाथ की अंगुलियाँ, पैर की अंगुलियाँ सड़ी हुई थीं, कान, नाक सड़ रहे थे, रसी और पीव से लथपथ हो रहा था, घावों पर कीड़े बिलबिला रहे थे, घावों से खून और पीव बह रहा था, पीव के बहने से कान और नाक की नसें गल गई थीं, बार-बार पीव की, खून की और कृमियों की उलटियाँ कर रहा था, कष्टोत्पादक, करुणा जनक और दीनता भरे शब्दों से कराह रहा था, जिसके आसपास चारों ओर मक्खियाँ भिनभिना रही थीं, सिर के बाल बिखरे हुए थे जो शरीर पर चीथरे लपेटे था, हाथ में फूटा सिकोरा और फूटे घड़े के टुकड़े को लेकर घर-घर से भीख माँगकर अपना जीवन यापन कर रहा था ।

तया भगवं गोयमे ! उच्च-नीय-मज्झिम-कुलाइं अडमाणे अहापज्जत्तं समुदाणं गिण्हइ पाडलिसंडाओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भत्तपाणं आलोएइ, भत्तपाणं पडिदंसेइ, समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणुण्णाए समाणे अमुच्छिए अगिद्धे अगढिए अणज्झोववण्णे बिलमिव पण्णगभूते अप्पाणेणं आहारमाहारेइ, संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

तब भगवान गौतम उच्च-नीच—मध्यमकुलों में भिक्षार्थ भ्रमण करते हुए यथेष्ट भिक्षा लेकर पाटलिखंड नगर से बाहर निकले, बाहर निकलकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ आये, वहाँ आकर भक्तपान सम्बन्धी आलोचना की, लाया हुआ आहार, पानी दिखाया और श्रमण भगवान महावीर से अनुमति-आज्ञा प्राप्त करके बिना किसी मूर्च्छा, गृद्धि, आसक्ति और लालसा के, बिल में सर्प के प्रवेश के सदृश आहार किया और संयम एवं तप से आत्मा को भावित करते हुए समय व्यतीत करने लगे ।

२६२. तए णं से भगवं गोयमे दोच्चं पि छट्ठक्खमणपारणगंसि पढमाए पोरिसीए सज्झायं करेइ-जाव-पाडलिसंडं नयरं दाहिणिल्लेणं दुवारेणं अणुप्पविसइ, तं चेव पुरिसं पासइ—कच्छुल्लं तहेव-जाव-संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे विहरइ ।

२६२. तत्पश्चात् उन भगवान् गौतम ने दूसरी बार षष्ठ क्षमण-बेले के पारणे के निमित्त प्रथम पोरसी में स्वाध्याय किया—यावत्—पाटलिखंड नगर में दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश किया, वहाँ पर भी खुजली आदि से ग्रस्त उसी पुरुष को देखा और उसी भाँति—यावत्—संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए विचरने लगे ।

२६३. तए णं से भगवं गोयमे तच्चं पि छट्ठक्खमणपारणगंसि तहेव-जाव-पाडलिसंडं नयरं पच्चत्थिमिल्लेणं दुवारेणं अणुपविसमाणे तं चेव पुरिसं पासइ—कच्छुल्लं० ।

२६३. तदनन्तर भगवान गौतम ने तीसरी बार षष्ठ क्षमण के पारणे के निमित्त पूर्व की तरह—यावत्—पाटलि खंड नगर में पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश किया और प्रवेश करके खाज आदि रोगों से पीड़ित उस पुरुष को देखा ।

२६४. तए णं से गोयमे चउत्थं पि छट्ठक्खमणपारणगंसि तहेव-जाव-पाडलिसंडं नयरं उत्तरेणं दुवारेणं अणुपविसमाणे तं चेव पुरिसं पासइ—कच्छुल्लं० ।

२६४. इसके बाद भगवान गौतम ने चतुर्थ षष्ठ क्षमण के पारणे के निमित्त पूर्व की तरह—यावत्—उत्तर दिशा के द्वार से पाटलिखंड नगर में प्रवेश किया और वहाँ पर भी उसी कंडू आदि रोगों से ग्रस्त पुरुष को देखा।

२६५. तए णं भगवओ गोयमस्स तं पुरिसं पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जे—अहो णं इमे पुरिसे पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ। न मे दिट्ठा नरगा वा नेरइया वा। पच्चक्खं खलु अयं पुरिसे निरयपडिरूवियं वेयणं वेएइ त्ति कट्टु-जाव-समणं भगवं महावीरं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—"एवं खलु अहं भंते! छट्ठक्खमणपारणगंसि-जाव-रियंते जेणेव पाडलिसंडे नयरे तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता पाडलिसंडं नयरं पुरत्थिमिल्लेणं दुवारेणं अणुपविट्ठे। तत्थ णं एगं पुरिसं पासामि कच्छुल्लं-जाव-देहं-बलियाए वित्तिं कप्पेमाणं।

२६५. तदनन्तर उस पुरुष को देखकर भगवान गौतम को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"अहो! यह पुरुष पूर्वकृत दुश्चीर्ण दुष्प्रतिकान्त अशुभ पाप कर्मों के पापमय फल विशेष को भोगते हुए अपना समय यापन कर रहा है। मैंने नरक और नैरयिक नहीं देखे हैं। परन्तु यह पुरुष साक्षात् नरकों जैसी वेदना का अनुभव कर रहा है ऐसा विचार कर—यावत्—श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार निवेदन किया—"हे भगवन्! षष्ठ क्षमण के पारणे के निमित्त—यावत्—भ्रमण करते हुए जहाँ पाटलिखंड नगर था वहाँ पहुँचा, वहाँ पहुँचकर पूर्व दिशा के द्वार से पाटलिखंड नगर में प्रवेश किया। वहाँ एक खुजली आदि रोगों से ग्रस्त—यावत्—भिक्षा से आजीविका करते हुए पुरुष देखा।

तए णं अहं दोच्चछट्ठक्खमणपारणगंसि दाहिणिल्लेणं दुवारेणं तहेव।

इसके बाद मैंने दूसरी बार षष्ठ क्षमण के पारणे के निमित्त पाटलिखंड नगर में दक्षिण दिशा के द्वार से प्रवेश किया तो पूर्ववत् उस पुरुष को वहाँ भी देखा।

तच्चछट्ठक्खमणपारणगंसि पच्चत्थिमिल्लेणं दुवारेणं तहेव।

तीसरी बार के षष्ठ क्षमण के पारणे के समय भी पश्चिम दिशा के द्वार से प्रवेश करने पर पहले की तरह उस पुरुष को वहाँ भी देखा।

तए णं अहं चोत्थछट्ठक्खमणपारणगंसि उत्तरदुवारेणं अणुप्पविसामि, तं चेव पुरिसं पासामि कच्छुल्लं-जाव-देहंबलियाए वित्तिं कप्पेमाणं चिंता ममं।

इसके बाद मैं चौथी बार के षष्ठ क्षमण के पारणे के निमित्त उत्तर दिशा के द्वार से पाटलिखंड नगर में प्रविष्ट हुआ तो वहाँ भी उसी खुजली आदि रोगों से ग्रस्त—यावत्—भिक्षावृत्ति से आजीविका करते हुए उसी पुरुष को देखा। उसे देखकर मुझे विचार उत्पन्न हुआ।

से णं भंते! पुरिसे पुव्वभवे के आसि? किं नामए वा किं गोत्ते वा? कयरंसि गामंसि वा नयरंसि वा? किं वा दच्चा किं वा भोच्चा किं वा समायरित्ता, केसिं वा पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ?"

'हे भदन्त! पूर्वभव में यह पुरुष कौन था? उसका क्या नाम और गोत्र था। किस ग्राम अथवा नगर में रहता था। उसने क्या दिया, क्या भोग किया और क्या उपार्जन किया? पूर्व में कैसे दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों को किया कि उनके पाप रूप फल वृत्ति विशेष का अनुभव करते हुए समय बिता रहा है।

उम्बरदत्तस्स धण्णंतरिवेज्जभवकहा—

उम्बरदत्त की धन्वन्तरि वैद्य भव कथा—

२६६. गोयमा! इ समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विजयपुरे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे०।

तत्थ णं विजयपुरे नयरे कणगरहे नामं राया होत्था।

तस्स णं कणगरहस्स रण्णो धण्णंतरी नामं वेज्जे होत्था—

२६६. 'गौतम!' इस प्रकार से श्रमण भगवान् महावीर ने सम्बोधित कर भगवान् गौतम से इस प्रकार कहा—"हे गौतम! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में विजयपुर नामक एक ऋद्धि स्तिमित एवं समृद्ध नगर था।

उस विजयपुर नगर में कनकरथ नामक राजा था।

उस कनकरथ राजा का आयुर्वेद के आठों अंगों का ज्ञाता

अट्ठंगाउव्वेयपाढए, तं जहा—१. कुमारभिच्चं २. सालागे ३. सल्लहत्ते ४. कायतिगिच्छा ५. जंगोले ६. भूयविज्जे ७. रसायणे ८. वाजीकरणे,

सिवहत्थे सुहहत्थे लहुहत्थे।

धण्णंतरिवेज्जेण मंसासणतेगिच्छं—

२६७. तए णं से धण्णंतरी वेज्जे विजयपुरे नयरे कणगरहस्स रण्णो अंतउरे य, अण्णेसिं च बहूणं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहाणं अण्णेसिं च बहूणं दुब्बलाण य गिलाणाण य वाहियाण य रोगियाण य सणाहाण य अणाहाण य समणाण य माहणाण य भिक्खगाण य करोडियाण य कप्पडियाण य आउराण य—अप्पेगइयाणं मच्छमंसाइं उवदिसइ, अप्पेगइयाणं कच्छभमंसाइं, अप्पेगइयाणं गाहमंसाइं, अप्पेगइयाणं मगरमंसाइं, अप्पेगइयाणं सुंसुमारमंसाइं, अप्पेगइयाणं अयमंसाइं, एवं—एलय-रोज्झ-सूयर-मिग-ससय-गो-महिसमंसाइं उवदिसइ, अप्पेगइयाणं तित्तिरमंसाइं उवदिसइ, अप्पेगइयाणं वट्टक-लावक-कवोय-कुक्कुड-मयूरमंसाइं उवदिसइ, अण्णेसिं च बहूणं जलयर-थलयर-खहयर-माईणं मंसाइं उवदिसइ।

अप्पणा वि णं से धण्णंतरी वेज्जे तेहिं बहूहिं मच्छमंसेहि य -जाव-मयूरमंसेहि य, अण्णेहि य बहूहिं जलयर-थलयर-खहयर-मंसेहि य, मच्छरसएहि य-जाव-मयूररसएहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

निरयोववाओ—

२६८. तए णं से धण्णंतरी वेज्जे एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावं कम्मं समज्जिणित्ता बत्तीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे।

उम्बरदत्तस्स वत्तमाणभवकहा—

२६९. तए णं सा गंगदत्ता भारिया जायनिंदुया यावि होत्था—जाया-जाया दारगा विणिघायमावज्जंति।

धन्वन्तरि नाम का वैद्य था, आयुर्वेद सम्बन्धी आठों अंगों के नाम इस प्रकार हैं—(१) कौमारभृत्य, (२) शालाक्य (३) शल्यहस्त (४) कायचिकित्सा, (५) जांगुल, (६) भूतविद्या (७) रसायन और (८) वाजीकरण।

वह अपनी चिकित्सा पद्धति के कारण प्रजा में शिवहस्त (कल्याणकारी हाथ वाला) शुभहस्त (प्रशस्त और सुखकारी हाथ वाला) और लघुहस्त (फोड़े को चीरने आदि में कष्ट का अनुभव नहीं होने देता था) माना जाता था।

धन्वन्तरि वैद्य द्वारा मांसाशन चिकित्सा—

२६७. वह धन्वन्तरि वैद्य विजयपुर नगर में कनकरथ राजा के अन्तःपुर में निवास करने वाली रानियों आदि तथा अन्य दूसरे बहुत से राजा, ईश्वर, तलवर, मांडबिक, कौटुम्बिक, इभ्य सेठ सेनापति सार्थवाहों आदि एवं और दूसरे भी बहुत से दुर्बलों ग्लानों, व्याधिपीड़ितों, रोगियों, सनाथों, अनाथों, श्रमणों, माहणों भिक्षुओं, करोटिकों कार्पटिकों तथा आतुरों में से किसी को मछली का मांस, किसी को कछुए का मांस, किसी को घड़ियाल का मांस, किसी को मगर का मांस, किसी को सुंसमार का मांस, किसी को बकरे का मांस खाने का उपदेश देता और इसी प्रकार भेड़ों, रोझों, सुअरों, मृगों, खरगोशों, गायों, भैंसों का मांस भक्षण करने का उपदेश देता, किसी को तीतर का मांस खाने का उपदेश देता, किसी को बटेर, लावक, कबूतर, मुर्गा, मोर, पक्षियों का मांस खाने का उपदेश देता तथा और दूसरे भी बहुत से जलचर, थलचर, खेचर जीवों के मांस को खाने का उपदेश देता।

स्वयं भी वह धन्वन्तरि वैद्य उन अनेकविध मत्स्य मांसों—यावत्—मयूर मांसों तथा दूसरे बहुत से जलचर, थलचर, नभचर जीवों के मांसों तथा मत्स्य रसों—यावत्—मयूर रसों से पकाये हुए, तले हुए, भूने हुए मांसों के साथ सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन वितरण और भोग करता हुआ जीवन व्यतीत करता था।

नरकोपपात—

२६८. इसके बाद वह धन्वन्तरि वैद्य इस प्रकार के पापमय कर्मों से इन्हीं की मुख्यता से इसी प्रकार की विद्या से और इसी प्रकार की प्रवृत्ति से अत्यन्त सघन पाप कर्मों का उपार्जन करके बत्तीस सौ वर्ष की उत्कृष्ट आयु का भोगकर काल मास में काल करके छठी पृथ्वी में उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ।

उम्बरदत्त की वर्तमान भव कथा—

२६९. इसके बाद वह गंगदत्ता भार्या जातनिंदुका थी कि उसके बालक उत्पन्न होते ही विनाश को प्राप्त हो जाते थे—मर जाते थे।

तए णं तीसे गंगदत्ताए सत्थवाहीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरमाणीए अयं अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पन्ने—"एवं खलु अहं सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं सद्धिं बहूइं वासाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरामि, नो चेव णं अहं दारगं वा दारियं वा पयामि।

तं धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयलक्खणाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासिं अम्मयाणं माणुस्सए जम्मजीवियफले, जासिं मण्णे नियगकुच्छिसंभूयगाइं थणदुद्धलुद्धयाइं महुरसमुल्लावगाइं मम्मणपजंपियाइं थणमूला कक्खदेसभागं अभिसरमाणयाइं मुद्धयाइं पुणो य कोमलकमलोवमेहिं हत्थेहिं गिण्हिऊण उच्छंगं निवेसियाइं देंति समुल्लावए सुमहुरे पुणो-पुणो मंजुलप्पभणिए।

अहं णं अधण्णा अपुण्णा अकयपुण्णा एत्तो एगतरमवि न पत्ता। तं सेयं खलु मम कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सागरदत्त सत्थवाहं आपुच्छित्ता सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणमहिलाहिं सद्धिं पाडलिसंडाओ नयराओ पडिनिक्खमित्ता बहिया जेणेव उम्बरदत्तस्स जक्खस्स जक्खायणे तेणेव उवागच्छित्ता, तत्थ णं उम्बरदत्तस्स जक्खस्स महरिहं पुप्फच्चणं करेत्ता जाणुपायवडियाए ओयाइत्तए—जइ णं अहं देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारियं वा पयामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयनिहिं च अणुवड्ढिस्सामि त्ति कट्टु ओवाइयं ओवाइणित्तए"—एवं संपेहेइ,

संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—"एवं खलु अहं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं सद्धिं बहूइं वासाइं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी-जाव-एत्तो एगमवि न पत्ता। तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया-जाव-ओवाइणित्तए।

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे गंगदत्तं भारियं एवं वयासी—

इसके अनन्तर उस गंगदत्ता सार्थवाही को किसी एक समय मध्य रात्रि में कुटुम्ब सम्बन्धी चिन्ता से जागते हुए इस प्रकार का आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—'मैं सुदीर्घ काल से सागरदत्त सार्थवाह के साथ मनुष्य सम्बन्धी प्रधान काम भोगों को भोगती हुई विचरण कर रही हूँ, किन्तु मैंने एक भी बालक अथवा बालिका को जन्म नहीं दिया है।

वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी हैं वे मातायें कृतार्थ हैं, कृतपुण्य हैं, कृतलक्षणा हैं, वैभवशालिनी हैं, उन माताओं ने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त कर लिया है, ऐसा मैं मानती हूँ कि जिनकी स्तनपान में लुब्ध, मधुर भाषण से युक्त, मम-मम-रूप अव्यक्त ध्वनि करने वाली, स्तनमूल से लेकर कक्ष (कांख) भाग तक अभिसरण करने वाली सरल, कमल के समान सुकोमल, हाथों से उठाकर गोदी में उठाये जाने और पुनः-पुनः सुमधुर तोतली भाषा में माता से संभाषण करने वाली अपनी कुक्षि से उत्पन्न हुई संतानें हैं।

मैं तो अधन्य, पुण्यहीन, अकृतपुण्या हूँ कि इन पूर्वोक्त बालोचित चेष्टाओं में से एक को भी प्राप्त नहीं कर सकी। अतएव मेरे लिये यही श्रेयस्कर है कि कल रात्रि को प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर सागरदत्त सार्थवाह से पूछकर बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों को लेकर बहुत-सी मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों की महिलाओं के साथ पाटलिखंड नगर से निकल कर जहां बाहर उम्बरदत्तयक्ष का यक्षायतन है, वहां पहुँचकर उम्बरदत्त यक्ष की महा मूल्यवान् पुष्पार्चना करके और उसके चरणों में नतमस्तक हो इस प्रकार मनौती करूँ—'हे देवानुप्रिय ! यदि अब मैं जीवित बालक या बालिका को जन्म दूँ तो मैं तुम्हारे याग-देय पूजा, दान, भाग और अक्षयनिधि-भंडार में वृद्धि करूँगी।'' इस प्रकार से ईप्सित वस्तु को प्राप्त करने के लिये प्रार्थना करने का निश्चय किया,

निश्चय करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्योदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर के जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशित होने पर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था, वहां पर आई, आकर सागरदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! आपके साथ बहुत से वर्षों तक मनुष्य सम्बन्धी उत्तम कामभोगों को भोगते हुए भी—यावत्—आज तक एक भी जीवित संतान को प्राप्त नहीं किया है। इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा-अनुमति प्राप्त करके—यावत्—मनौती करना चाहती हूँ।''

तब उस सागरदत्त सार्थवाह ने उस गंगदत्ता भार्या से इस

मम णं देवाणुप्पिए ! एस चेव मणोरहे कहं णं तुमं दारगं वा दारियं वा पयाएज्जासि ? गंगदत्ताए भारियाए एयमट्ठं अणुजाणइ।

प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिय ! मेरा भी यही मनोरथ है कि किसी न किसी प्रकार तुम एक जीवित बालक या बालिका का प्रसव करो।" और ऐसा कहकर उसने गंगदत्ता भार्या को इस अर्थ प्रयोजन के लिये आज्ञा दी अर्थात् उक्त विचार को स्वीकार किया।

गंगदत्ताए उम्बरदत्तजक्खपूया—

३००. तए णं सा गंगदत्ता भारिया सागरदत्तसत्थवाहेणं एयमट्ठं अब्भणुण्णाया समाणी सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणमहिलाहिं सद्धिं सयाओ गिहाओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता पाडलिसंडं नयरं मज्झं-मज्झेणं, निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता पुक्खरिणीए तीरे सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं ठवेइ, ठवेत्ता पुक्खरिणिं ओगाहेइ, ओगाहेत्ता जल-मज्जणं करेइ, करेत्ता जलकिड्डं करेइ, करेत्ता ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता उल्लपडसाडिया पुक्खरिणीओ पच्चु-त्तरइ, पच्चुत्तरित्ता तं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गेण्हइ, गेण्हित्ता जेणेव उम्बरदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ, उवा-गच्छित्ता उम्बरदत्तस्स जक्खस्स आलोए पणामं करेइ, करेत्ता लोमहत्थयं परामुसइ, परामुसित्ता उम्बरदत्तं जक्खं लोमहत्थएणं पमज्जइ, पमज्जित्ता दगधाराए अब्भुक्खेइ, अब्भुक्खेत्ता पम्हल-सुकुमाल-गंधकासाइयाए गायलट्ठी ओलूहेइ, ओलूहित्ता सेयाइं वत्थाइं परिहेइ, परिहेत्ता महरिहं पुप्फारुहणं मल्लारुहणं गंधारुहणं चुण्णारुहणं करेइ, करेत्ता धूवं डहइ, डहित्ता जण्णुपायवडिया एवं वयइ—

गंगदत्ता द्वारा उम्बरदत्त यक्ष पूजा—

३००. सागरदत्त सार्थवाह द्वारा अभ्यनुज्ञात हुई वह गंगदत्ता भार्या विविध प्रकार के बहुत से पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि सामग्री को लेकर बहुत-सी मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों की स्त्रियों के साथ अपने घर से निकली, निकलकर पाटलिखंड नगर के बीचों-बीच से निकली निकलकर जहाँ पुष्करिणी थी, वहाँ आई, आकर पुष्करिणी के तट पर अनेक प्रकार के पुष्पों, वस्त्रों, गंधों, मालाओं और अलंकारों को रखा, रखकर पुष्करिणी में प्रवेश किया, प्रवेश करके जलमज्जन और जल क्रीड़ा की, फिर स्नान किया, बलिकर्म किया, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित किया, इसके बाद आर्द्र साड़ी पहने हुए पुष्करिणी से बाहर आई; बाहर आकर उन पुष्पों, वस्त्रों, गंधों, माला अलंकारों को लिया लेकर जहाँ उम्बरदत्त यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ पहुँची, वहाँ पहुँचकर उम्बरदत्त यक्ष को देखते ही प्रणाम किया, प्रणाम करके लोमहस्तक—मयूर पिच्छ को उठाया, उठाकर उम्बरदत्त यक्ष को उस मयूर पिच्छ से प्रमार्जित किया, प्रमार्जन करके जलाभिषेक से अभिसिंचित किया, अभिसिंचित करके सरोम सुकोमल कषाय गंधयुक्त से उसके अंगों को पोंछा, पोंछकर श्वेत वस्त्र पहनाया, पहनाकर महार्ह-महा-पुरुषों के योग्य पुष्पारोहण, माल्यारोहण, गंधारोहण, चूर्णारोहण किया अर्थात् पुष्पों आदि से अर्चना की, फिर धूप जलाई, धूप जलाकर यक्ष के सामने घुटने टेक कर पाँव में पड़कर इस प्रकार बोली—

"जइ णं अहं देवाणुप्पिया ! दारगं वा दारियं वा पयामि, तो णं अहं तुब्भं जायं च दायं च भायं च अक्खयनिहिं च अणु-वड्ढिस्सामि" त्ति कट्टु ओवाइयं ओवाइणइ, ओवाइणित्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

"हे देवानुप्रिय ! यदि मैं जीवित बालक या बालिका का प्रसव करूँगी तो मैं तुम्हारे याग, दान, भाग और अक्षय निधि में वृद्धि करूँगी।" ऐसा कहकर मनौती मनाती है, मनौती मानकर जिस दिशा से आई थी वापस उसी ओर लौट गई।

तए णं से धण्णंतरी वेज्जे ताओ नरयाओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव जंबुद्दीवे दीवे पाडलिसंडे नयरे गंगदत्ताए भारियाए कुच्छिंसि पुत्तत्ताए उववण्णे।

इसके पश्चात् वह धन्वन्तरि वैद्य का जीव उस नरक से निकल कर इसी जम्बूद्वीप के पाटलीखंड नगर में गंगदत्ता भार्या की कुक्षि में पुत्र रूप से उत्पन्न हुआ।

गंगदत्ताए दोहलो—

३०१. तए णं तीसे गंगदत्ताए भारियाए तिण्हं मासाणं बहुपडि-पुण्णाणं अयमेयारूवे दोहले पाउब्भूए—"धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, संपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयत्थाओ णं ताओ अम्मयाओ, कयपुण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ कयलक्खणाओ णं

गंगदत्ता का दोहद—

३०१. उसके बाद उस गंगदत्ता भार्या के तीन मास पूरे होने पर इस प्रकार का यह दोहद—गर्भवती स्त्री का मनोरथ उत्पन्न हुआ—'वे मातायें धन्य हैं, वे मातायें पुण्यशालिनी हैं वे मातायें कृतार्थ हैं, वे मातायें कृतपुण्या हैं, वे मातायें कृतलक्षणा हैं, वे

ताओ अम्मयाओ, कयविहवाओ णं ताओ अम्मयाओ, सुलद्धे णं तासिं अम्मयाणं माणुस्सए जम्मजीवियफले, जाओ णं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणमहिलाहिं सद्धिं परिवुडाओ तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं गहाय पाडलिसंडं नयरं मज्झंमज्झेणं पडिनिक्खमंति, पडिनिक्खमित्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पुक्खरिणिं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता ण्हायाओ कयबलिकम्माओ कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ताओ तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-महिलाहिं सद्धिं आसाएंति वीसाएंति परिभाएंति परिभुंजेंति, दोहलं विणेंति''—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते जेणेव सागरदत्ते सत्थवाहे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सागरदत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—'धण्णाओ णं ताओ अम्मयाओ-जाव-दोहलं विणेंति, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! तुब्भेहिं अब्भणुण्णाया-जाव-दोहलं विणित्तए ।''

माताएँ वैभवशालिनी हैं उन माताओं ने मनुष्य जन्म और जीवन का सुफल प्राप्त किया है । जो विपुल परिमाण में अशन, पान, खादिम; स्वादिम, सुरा, मधु, मेरक, जाति सीधु, प्रसन्ना और पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि को तैयार करवाती, बनवाती हैं, तैयार करवा के अनेक मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों की स्त्रियों से परिवृत्त हो उन विपुल, अशन, पान, खादिम, स्वादिम, सुरा, मधु, मेरक, जाति, प्रसन्ना, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों को लेकर पाटलिखंड नगर के बीचों-बीच से निकलती हैं, निकलकर जहाँ पुष्करिणी है, वहाँ पहुँचती है, पहुँच कर पुष्करिणी में प्रवेश करती है, प्रवेश करके स्नान बलिकर्म कौतुक मंगल प्रायश्चित्त करके उस विपुल, अशन, पान, खादिम, स्वादिम भोजन को बहुत-सी मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों की स्त्रियों के साथ आस्वादन, विस्वादन, वितरण और खाती हुई अपने दोहद को पूर्ण करती हैं ।'' ऐसा विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्य का उदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्त्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर जहाँ सागरदत्त सार्थवाह था, वहाँ आई, वहाँ आकर सागरदत्त सार्थवाह से इस प्रकार कहा—'वे माताएँ धन्य हैं—यावत्—दोहदपूर्ण करती है, इसलिये हे देवानुप्रिय ! आपकी आज्ञा, अनुमति प्राप्त करके—यावत्—दोहद पूर्ण करना चाहती हूँ ।''

तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे गंगदत्ताए भारियाए एयमट्ठं अणुजाणइ ।

तब सागरदत्त सार्थवाह ने गंगदत्ता भार्या की इस बात को स्वीकार किया अर्थात् दोहद पूर्ति के लिये गंगदत्ता भार्या को आज्ञा दी ।

३०२. तए णं सा गंगदत्ता सागरदत्तेणं सत्थवाहेणं अब्भणुण्णाया समाणी विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं परिगेण्हावेइ, परिगेण्हावेत्ता बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणमहिलाहिं सद्धिं ण्हाया कयबलिकम्मा कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ता जेणेव उम्बरदत्तस्स जक्खस्स जक्खाययणे तेणेव उवागच्छइ-जाव-धूवं डहेइ, डहेत्ता जेणेव पुक्खरिणी तेणेव उवागच्छइ।

३०२. तदनन्तर उस गंगदत्ता ने सागरदत्त सार्थवाह से आज्ञा प्राप्त होने पर विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन बनवाया, भोजन बनवाकर उन विपुल परिमाण में बनवाये गये अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य, भोजन सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु, प्रसन्ना, मदिराओं और पुष्पों, वस्त्रों, गंधों, माला, अलंकारों को लिया, लेकर बहुत-सी मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन सम्बन्धी, परिजन महिलाओं के साथ स्नान, बलिकर्म, कौतुक, मंगल प्रायश्चित करके जहाँ उम्बरदत्त यक्ष का यक्षायतन था, वहाँ आई—यावत्—धूप जलाई, धूप जलाकर जहाँ पुष्करिणी थी वहाँ आई ।

तए णं ताओ मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणमहिलाओ गंगदत्तं सत्थवाहिं सव्वालंकारविभूसियं करेंति ।

तत्पश्चात् उन मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन-सम्बन्धी परिजन महिलाओं ने गंगदत्ता सार्थवाही को सर्व अलंकारों से विभूषित किया ।

तए णं सा गंगदत्ता भारिया ताहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियण-महिलाहिं, अण्णाहि य बहूहिं नगरमहिलाहिं सद्धिं तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं

इसके बाद उस गंगदत्ता भार्या ने उन मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन महिलाओं तथा और दूसरी भी बहुत-सी नगर महिलाओं के साथ उस विपुल अशन, पान,

च सीधुं च पसन्नं च आसाएमाणी वीसाएमाणी परिभाएमाणी परिभुंजेमाणी दोहलं विणेइ, विणेत्ता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं सा गंगदत्ता सत्थवाही संपुण्णदोहला तं गब्भं सुहंसुहेणं परिवहइ।

दारयस्स उम्बरदत्त-नामकरणं जोव्वणं च—

३०३. तए णं सा गंगदत्ता भारिया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारगं पयाया। ठिइवडिया-जाव-जम्हा णं अम्हं इमे दारए उम्बरदत्तस्स जक्खस्स ओवाइयलद्धए तं होउ णं दारए उम्बरदत्ते नामेणं।

तए णं से उम्बरदत्ते पंचधाईपरिग्गहिए परिवड्ढिए।

पिइ-माइमरणाणंतरं उम्बरदत्तस्स गिहाओ निद्धाडणं—

३०४. तए णं से सागरदत्ते सत्थवाहे अण्णया कयाइ गणिमं च धरिमं च मेज्जं च पारिच्छेज्जं च—चउव्विहं भंडं गहाय लवणसमुद्दं पोयवहणेण उवागए।

तए णं से सागरदत्ते तत्थ लवणसमुद्दे पोयविवत्तीए निब्बुड्डभंडसारे अत्ताणे असरणे कालधम्मुणा संजुत्ते।

तए णं सा गंगदत्ता सत्थवाही अण्णया कयाइ लवणसमुद्दोत्तरणं च सत्थविणासं च पोयविणासं च पइमरणं च अणुचिंतेमाणी-अणुचिंतेमाणी कालधम्मुणा संजुत्ता।

तए णं ते नगरगुत्तिया गंगदत्तं सत्थवाहिं कालगयं जाणित्ता उम्बरदत्तं दारगं साओ गिहाओ निच्छुभंति, निच्छुभेत्ता तं गिहं अण्णस्स दलयंति।

तए णं तस्स उम्बरदत्तस्स दारगस्स अण्णया कयाइ सरीरगंसि जमगसमगमेव सोलस रोगायंका पाउब्भूया, तं जहा—सासे कासे -जाव-कोढे।

तए णं से उम्बरदत्ते दारए सोलसहिं रोगायंकेहिं अभिभूए समाणे कच्छुल्ले-जाव-देहंबलियाए वित्तिं कप्पेमाणे विहरइ।

उवसंहारो—

३०५. एवं खलु गोयमा! उम्बरदत्ते दारए पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुब्भवमाणे विहरइ।

उम्बरदत्तस्स आगामिभवपरूवणं—

३०६. उम्बरदत्ते णं भंते! दारए कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ? कहिं उववज्जिहिइ?

खाद्य, स्वाद्य, भोजन, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन, विस्वादन, वितरण और परिभोग करते हुए दोहद को पूर्ण किया, दोहद की पूर्ति करके जिस ओर से आई थी वापस उसी दिशा में लौट गई।

तत्पश्चात् वह गंगदत्ता सार्थवाही सम्पूर्णदोहदा होकर उस गर्भ को सुखपूर्वक धारण करते हुए समय बिताने लगी।

दारक का उम्बरदत्त नामकरण और यौवन—

३०५. तदनन्तर उस गंगदत्ता भार्या ने नौ मास पूर्ण होने पर एक बालक का प्रसव किया। माता-पिता ने स्थितिपतिता नामक उत्सव विशेष मनाया—यावत्—क्योंकि यह बालक उम्बरदत्त यक्ष की मनौती मनाने से प्राप्त हुआ है, अतः यह बालक 'उम्बरदत्त' नाम वाला हो—अर्थात् इसका नाम उम्बरदत्त हो।

तदनन्तर वह उम्बरदत्त बालक पाँच धाय माताओं द्वारा सुरक्षित होकर वृद्धि को प्राप्त करने लगा।

पितृ-मातृ मरणानन्तर उम्बरदत्त का गृह से निष्कासन—

३०४. तत्पश्चात् सागरदत्त सार्थवाह किसी एक समय गणिम, धरिम, मेज्ज और परिच्छेद्य इन चार प्रकार के भांडों को लेकर नौका द्वारा लवणसमुद्र में प्रविष्ट हुआ।

इसके बाद वह सागरदत्त लवण समुद्र में पोत के विनष्ट हो जाने से, भांडसार के जलमग्न होने के साथ अपने को अशरण समझता हुआ कालधर्म-मृत्यु को प्राप्त हो गया।

तत्पश्चात् वह गंगदत्ता सार्थवाही किसी समय लवणसमुद्र में गमन, धन के विनाश, जहाज के डूबने और पति के मरण का चिन्तन करती हुई कालधर्म को प्राप्त हो गई—मर गई।

इसके बाद उन नगर रक्षकों ने गंगदत्ता सार्थवाही को कालगत जानकर उम्बरदत्त दारक को उसके घर से निकाल दिया और निकालकर वह घर दूसरे को दे दिया।

तदनन्तर किसी एक समय उस उम्बरदत्त दारक के शरीर में एक साथ सोलह रोगातंक उत्पन्न हो गए, यथा—श्वास, कास—यावत्—कुष्ठ।

वह उम्बरदत्त दारक खुजली आदि सोलह रोगातंकों से अभिभूत, ग्रस्त होता हुआ—यावत्—भीख माँगकर आजीविका करता हुआ समय बिता रहा है।

उपसंहार—

३०५. हे गौतम! इस प्रकार से उम्बरदत्त बालक पूर्व में किये हुए दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त प्राचीन अशुभ पाप कर्मों के पाप रूप फल विशेष को भोगता हुआ अपना समय व्यतीत कर रहा है।

उम्बरदत्त का आगामीभव निरूपण—

३०६. हे भदन्त! उम्बरदत्त दारक कालमास में काल करके कहाँ जायेगा? कहाँ उत्पन्न होगा?"

गोयमा ! उम्बरदत्ते दारए बावत्तरिं वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । संसारो तहेव ।

तओ हत्थिणाउरे नयरे कुक्कुडत्ताए पच्चायाहिइ । से णं गोट्ठिल्लएहिं वहिए तत्थेव हत्थिणाउरे नयरे सेट्ठिकुलंसि उववज्जिहिइ । बोही । सोहम्मे कप्पे । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

—विवागसुयं सु० १ अ० ७

'हे गौतम ! वह उम्बरदत्त बालक बहत्तर वर्ष की परम आयु का भोग करके मरणसमय में मरण करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों में नारक रूप से उत्पन्न होगा । पूर्व की भांति संसार में भ्रमण करेगा ।'

इसके बाद हस्तिनापुर नगर में कुक्कुट (मुर्गा) के रूप में उत्पन्न होगा । वहाँ गोष्ठिकों के द्वारा वध किया जाता हुआ वहीं हस्तिनापुर नगर में किसी एक श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न होगा वहाँ सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा । फिर सौधर्मकल्प में उत्पन्न होगा । सौधर्म स्वर्ग से च्युत होकर महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध गति को प्राप्त करेगा ।

१७. सोरियदत्तकहाणयं—

१७. शौरिकदत्त कथानक—

सोरियपुरे सोरियदत्ते—

३०७. तेणं कालेणं तेणं समएणं सोरियपुरं नयरं । सोरियवडेंसगं उज्जाणं । सोरिओ जक्खो । सोरियदत्ते राया ।

तस्स णं सोरियपुरस्स नयरस्स बहिया उत्तरपुरत्थिमे दिसीभाए, एत्थ णं एगे मच्छंधपाडए होत्था ।

तत्थ णं समुद्ददत्ते नामं मच्छंधे परिवसइ अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे ।

तस्स णं समुद्ददत्तस्स समुद्ददत्ता नामं भारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्णपंचिंदियसरीरा० ।

तस्स णं समुद्ददत्तस्स मच्छंधस्स पुत्ते समुद्ददत्ताए भारियाए अत्तए सोरियदत्ते नामं दारए होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदिय-सरीरे० ।

शौरिकपुर में शौरिकदत्त—

३०७. उस काल और उस समय में शौरिकपुर नाम का नगर था । शौरिकावतंसक नाम का उद्यान था । वहाँ शौरिक नाम का यक्ष था । राजा का नाम शौरिकदत्त था ।

उस शौरिकपुर नगर के बाहर उत्तर पूर्व दिग्भाग में एक मत्स्य बंध पाटक—मछेरों का मोहल्ला था ।

वहाँ समुद्रदत्त नामक मच्छीमार रहता था जो अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था ।

उस समुद्रदत्त की समुद्रदत्ता नामक भार्या थी जो शुभ लक्षणों से युक्त परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों और शरीर वाली थी ।

उस समुद्रदत्त मछेरे का पुत्र समुद्रदत्ता भार्या का अंगजात शौरिकदत्त नामक दारक था, वह परिपूर्ण पांच इन्द्रियों एवं शुभ लक्षणों से युक्त शरीर वाला था ।

भगवओ महावीरस्स समोसरणे गोयमेण सोरियदत्तस्स पुव्वभवपुच्छा—

३०८. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे-जाव-परिसा पडिगया ।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे सीसे-जाव-सोरियपुरे नयरे उच्च-नीय-मज्झिमाइं कुलाइं

भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा शौरिकदत्त की पूर्व भव पृच्छा—

३०८. उस काल और उस समय में स्वामी भगवान महावीर पधारे—यावत्—परिषद्‌ वापस लौटी ।

उस काल और उस समय श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ शिष्य—यावत् शौरिकपुर नगर के उच्च, नीच और मध्यम

[अडमाणे ?] अहापज्जत्तं समुदाणं गहाय सोरियपुराओ नयराओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता तस्स मच्छंधपाडगस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे महइमहालियाए मणुस्सपरिसाए मज्झगयं पासइ एगं पुरिसं—सुक्कं भुक्खं निम्मंसं अट्ठिचम्मावणद्धं किडिकिडियाभूयं नीलसाडगनियत्थं मच्छकंटएणं गलए अणुलग्गेणं कट्ठाइं कलुणाइं वीसराइं उक्कूवमाणं अभिक्खणं-अभिक्खणं पूयकवले य रुहिरकवले य किमियकवले य वममाणं पासइ।

कुलों में भ्रमण करके यथेष्ठ गृह समुदाय से प्राप्त भिक्षा को लेकर शौरिकपुर नगर से निकले, निकलकर उस मच्छीमारों के मोहल्ले के पास से गमन करते हुए मनुष्यों के एक बहुत बड़े समुदाय के बीच एक शुष्क, बुभुक्षित, निर्मांस, अस्थिचर्मावनद्ध जिसकी चमड़ी शरीर की हड्डियों से चिपकी हुई है, जिसकी हड्डियाँ उठते-बैठते किड़किड़ाहट करती हैं जो नीली धोती पहने हुए है और गले में मत्स्य कंटक लग जाने के कारण कष्टात्मक, करुणाजनक एवं दीनता भरे वचन बोलते हुए एक पुरुष को देखा और जो बारंबार पुनः-पुनः पूय कवलों, रुधिर-कवलों और कृमि कवलों का वमन कर रहा है।

पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—"अहो णं इमे पुरिसे पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ'—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे तेणेव उवागच्छइ। पुव्वभवपुच्छा -जाव-वागरणं।

उस पुरुष की इस प्रकार की यह स्थिति देख कर उन्हें इस तरह का आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, कल्पित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—"अहो यह पुरुष अपने पूर्वकृत दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिकान्त पुराने अशुभ पाप कर्मों का पापमय फल वृत्तिविशेष का अनुभव करता हुआ अपना समय व्यतीत कर रहा है।" इस प्रकार का विचार किया, विचार करके जहाँ श्रमण भगवान महावीर थे, वहां आये। आकर पूर्वभव की पृच्छा की—यावत्—भगवान उसका प्रतिपादन करने लगे।

सोरियदत्तस्स सिरीयभवकहा—

३०९. एवं खलु गोयमा! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे नंदिपुरे नामं नयरे होत्था। मित्ते राया।

तस्स णं मित्तस्स रण्णो सिरीए नामं महाणसिए होत्था—अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे।

शौरिकदत्त की श्रीयक भव कथा—

३०९. "हे गौतम! बात यह है कि उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में नंदिपुर नाम का नगर था। वहाँ मित्र नाम का राजा था।

उस मित्र राजा का श्रीयक नाम का रसोइया था जो अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द—बड़ी कठिनाई से प्रसन्न होने वाला था।

३१०. तस्स णं सिरीयस्स महाणसियस्स बहवे मच्छिया य वागुरिया य साउणिया य दिण्णभइ-भत्त-वेयणा कल्लाकल्लिं बहवे सण्हमच्छा य-जाव-पडागाइपडागे य, अए य-जाव-महिसे य, तित्तिरे य-जाव-मयूरे य जीवियाओ ववरोवेंति, ववरोवेत्ता सिरीयस्स महाणसियस्स उवणेंति, अण्णे य से बहवे तित्तिरा य-जाव-मयूरा य पंजरंसि संनिरुद्धा चिट्ठन्ति, अण्णे य बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्त-वेयणा ते बहवे तित्तिरे य-जाव-मयूरे य जीवंतए चेव निप्पक्खेंति, निप्पक्खेत्ता सिरीयस्स महाणसियस्स उवणेंति।

३१०. उस श्रीयक नामक रसोइये के रुपया-पैसा और धान्यादि के रूप में वेतन ग्रहण करने वाले अनेक मछली मार व्याध और शाकुनिक—पक्षीघातक पुरुष नौकर थे, जो कि प्रतिदिन श्लक्ष्ण मत्स्यों—यावत्—पताकातिपताका मत्स्यों, अजों, बकरों—यावत्—महिषों, भैंसों, तीतरों—यावत्—मयूरों आदि जीवों को मारकर श्रीयक रसोइये को लाकर देते, इसके सिवाय और दूसरे भी बहुत से तीतर—यावत्—मयूर आदि पक्षी पिंजरों में बन्द किये हुए रहते थे तथा और दूसरे भी अनेक रुपया-पैसा और धान्यादि के रूप में वेतन लेकर काम करने वाले पुरुष जीवित तीतर—यावत्—मयूर आदि पक्षियों को पंख रहित करके श्रीयक रसोइये को लाकर देते थे।

३११. तए णं से सिरीए महाणसिए बहूणं जलयर-थलयर-खहयराणं मंसाइं कप्पणी-कप्पियाइं करेइ, तं जहा—सण्हखंडियाणि य वट्टखंडियाणि य दीहखंडियाणि य रहस्सखंडियाणि य, हिमपक्काणि य जम्मपक्काणि य धम्मपक्काणि य मारुयपक्काणि य कालाणि य

३११. तत्पश्चात् वह श्रीयक महानसिक अनेक जलचर, थलचर और नभचर आदि प्राणियों के मांसों को छुरी से काटता, जैसे कि सूक्ष्मखंड, वृत्तखंड, दीर्घखंड, ह्रस्वखंड, फिर उन खंडों में से किसी को बर्फ से पकाता, किसी को स्वतः पकने के लिये रखता,

हेरंगाणि य महिट्ठाणि य आमलरसियाणि य मुद्दियारसियाणि य कविट्ठरसियाणि य दालिमरसियाणि य मच्छरसियाणि य तलियाणि य भज्जियाणि य सोल्लियाणि य उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता अण्णे य बहवे मच्छरसए य एणेज्जरसए य तित्तिररसए य-जाव-मयूररसए य, अण्णं च विउलं हरियसागं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता मित्तस्स रण्णो भोयणमंडवंसि भोयणवेलाए उवणेंति।

किसी को धूप से और किसी को हवा से पकाता, किसी को कृष्ण वर्ण से और किसी को हिंगुल के वर्ण से रंगता, किसी को तक्र-छाछ से संस्कारित करता, किसी को आमलक—आंवले के रस से संस्कारित करता, किसी को दाख के रस से, किसी को कवीठ के रस से, अनार के रस से तथा मत्स्यरस से संस्कारित भावित करता और उसके बाद उनको तेल से तलता, तवे पर भूंजता, शूलों पर पकाता था, पकाकर और दूसरे भी बहुत-से मत्स्यरसों, मृगरसों, तीतररसों—यावत्—मयूररसों को तथा और दूसरे बहुत-से हरे शाकों को तैयार करता, तैयार करके भोजन के समय में भोजन मंडप में ले जाकर महाराजा मित्र के सामने रखता।

अप्पणा वि णं से सिरीए महाणसिए तेसिं च बहूहिं जलयर-थलयर-खहयरमंसेहिं च रसिएहिं हरियसागेहिं य सोल्लेहिं य तलिएहिं य भज्जिएहिं य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ।

वह श्रीयक रसोइया स्वयं भी उन बहुत-से जलचर, थलचर और खेचर जीवों के मांसों, रसों, हरे शाकों का जो शूलपक्व हैं, तले हुए हैं, भूने हुए हैं तथा सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन, विस्वादन, विभरण और परिभोग करता हुआ समय व्यतीत करता था।

३१२. तए णं से सिरीए महाणसिए एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता तेत्तीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उववण्णे।

३१२. तब इस प्रकार के कार्य, इस प्रकार के कार्य की प्रधानता, इस प्रकार की विद्या और इस प्रकार की आचार प्रवृत्ति से अतीव मलीन पाप कर्मों का उपार्जन करके वह श्रीयक रसोइया तेतीस सौ वर्ष की परम आयु का पालन कर मरण समय में मरण को प्राप्त हो छठी पृथ्वी में उत्पन्न हुआ।

सोरियदत्तस्स वट्टमाणभवकहा—

शौरिकदत्त की वर्तमान भव कथा—

३१३. तए णं सा समुद्ददत्ता भारिया णिंदू यावि होत्था— जाया-जाया दारगा विणिघायमावज्जंति। जहा गंगदत्ताए चिंता, आपुच्छणा, ओवाइयं, दोहलो-जाव-दारगं पयाया-जाव-जम्हा णं अम्हं इमे दारए सोरियस्स जक्खस्स ओवाइयलद्धए, तम्हा णं होउ अम्हं दारए सोरियदत्ते नामेणं।

३१३. तत्पश्चात् वह समुद्रदत्ता भार्या मृत वंध्या थी; जिसके पैदा होते ही बालक विनिघात-विनाश को प्राप्त हो जाते थे—मर जाते थे। गंगदत्ता के समान चिन्ता उत्पन्न हुई, पति से पूछा, मनौती की, दोहद पूर्ण किया—यावत्—बालक का प्रसव किया—यावत्—शौरिक यक्ष की मनौती करने से हमें यह बालक प्राप्त हुआ है, अतएव हमारे इस बालक का नाम 'शौरिकदत्त' हो।

तए णं से सोरियदत्ते दारए पंचधाईपरिग्गहिए-जाव-उम्मुक्क-बालभावे विण्णयपरिणयमेत्ते जोव्वणगमणुप्पत्ते यावि होत्था।

इसके बाद वह शौरिकदत्त बालक पाँच धाय माताओं के संरक्षण में वृद्धिगत होने लगा—यावत्—बाल भाव का त्याग कर विज्ञान परिणत होकर युवावस्था को प्राप्त हुआ।

तए णं से समुद्ददत्ते अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते।

तदनन्तर किसी एक समय वह समुद्रदत्त काल धर्म से संयुक्त हो गया—मर गया।

तए णं से सोरियदत्ते दारए बहूहिं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेहिं सद्धिं संपरिवुडे रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे समुद्ददत्तस्स नीहरणं करेइ, करेत्ता बहूइं लोइयाइं मयकिच्चाइं करेइ, अण्णया कयाइ सयमेव मच्छंधमहत्तरगत्तं उवसंपिज्जत्ताणं विहरइ।

तत्पश्चात् उस शौरिकदत्त बालक ने बहुत-से मित्रों, जाति बन्धुओं, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों के साथ रुदन क्रंदन और विलाप करते हुए समुद्रदत्त का अंतिम संस्कार नीहरण किया, करके बहुत से लौकिक मृत्यु कृत्यों को किया, इसके बाद किसी समय स्वयं ही मच्छीमारों का महत्तरकत्व प्राप्त कर चौधरी (मुखिया) बनकर विचरण करने लगा।

तए णं से सोरियदत्ते दारए मच्छंधे जाए अहम्मिए-जाव-दुप्पडियाणंदे ।

सोरियदत्तस्स दुच्चरिया—

३१४. तए णं तस्स सोरियदत्तस्स मच्छंधस्स बहवे पुरिसा दिण्ण-भइ-भत्तवेयणा कल्लाकल्लिं एगट्ठियाहिं जउणं महाणइं ओगाहेंति, ओगाहेत्ता बहूहिं दहगलणेहि य दहमलणेहि य दहमद्दणेहि य दह-महणेहि य दहवहणेहि य दहपवहणेहि य मच्छंधुलेहि य पवंचुलेहि य पंचपुलेहि य जंभाहि य तिसराहि य भिसराहि य घिसराहि य विसराहि य हिल्लिरीहि य भिल्लिरीहि य गिल्लिरीहि य झिल्लि-रीहि य जालेहि य गलेहि य कूडपासेहि य वक्कबंधेहि य सुत्त-बंधेहि य वालबंधेहि य बहवे सण्हमच्छे-जाव-पडागाइपडागे य गेण्हंति एगट्ठियाओ भरेंति, भरेत्ता कूलं गाहेंति, गाहेत्ता मच्छखलए करेंति, करेत्ता आयवंसि दलयंति ।

अण्णे य से बहवे पुरिसा दिण्णभइ-भत्तवेयणा आयव-तत्तएहिं सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य रायमग्गंसि वित्तिं कप्पेमाणा विहरंति । अप्पणा वि णं से सोरियदत्ते बहूहिं सण्हमच्छेहि य-जाव-पडागाइपडागेहि य सोल्लेहि य तलिएहि य भज्जिएहि य सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे विहरइ ।

३१५. तए णं तस्स सोरियदत्तस्स मच्छंधस्स अण्णया कयाइ ते मच्छे सोल्ले य तलिए य भज्जिए य आहारेमाणस्स मच्छकंटए गलए लग्गे यावि होत्था ।

तए णं से सोरियदत्ते मच्छंधे महयाए वेयणाए अभिभूए समाणे कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! सोरियपुरे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु य महया-महया सद्देणं उग्घोसेमाणा एवं वयह—"एवं खलु देवाणुप्पिया ! सोरियदत्तस्स मच्छकंटए गले लग्गे । तं जो णं इच्छइ वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुयपुत्तो वा तेगिच्छिओ वा तेगिच्छियपुत्तो वा सोरियदत्तस्स मच्छियस्स मच्छकंटयं गलाओ नीहरित्तए, तस्स णं सोरियदत्ते विउलं अत्थसंपयाणं दलयइ ।

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-उग्घोसंति ।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य इमं एयारूवं उग्घोसणं निसामेंति, निसामेत्ता जेणेव सोरियदत्तस्स गेहे जेणेव सोरियदत्ते मच्छंधे तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता बहूहिं उप्पत्तियाहि य वेणइयाहि

तब वह शौरिकदत्त दारक मच्छीमार हो गया जो अधार्मिक—यावत्—दुष्प्रत्यानन्द था ।

शौरिकदत्त की दुश्चर्या—

३१४. तदनन्तर उस शौरिकदत्त मच्छीमार के रुपया पैसा और भोजनादि रूप वेतन लेकर काम करने वाले अनेक पुरुष प्रतिदिन छोटी नौकाओं, डोंगियों को लेकर यमुना नदी में प्रवेश करते, प्रवेश करके ह्रदगलन, ह्रदमलन, ह्रदमर्दन, ह्रदमथन, ह्रदवहन ह्रदप्रवहन, प्रपंचुल, प्रपंपुल, मत्स्यपुच्छ, जृम्भा, त्रिसरा, भिसरा, घिसरा, विसरा, हिल्लिरि, भिल्लिरि, गिल्लिरि, झिल्लिरि, जाल, गल, कूटपास, वल्कबंध, सूत्रबंध, बालबंध आदि प्राणिवध के साधनों द्वारा अनेक प्रकार की कोमल, मछलियों—यावत्—पताकातिपताका (बड़ी-बड़ी) मछलियों को पकड़ते, डोंगियों को भरते, भरकर किनारे पर लाते, लाकर मछलियों का ढेर लगाते, ढेर लगाकर उनको धूप में सुखाते ।

रुपया और धान्यादि के रूप में वेतन देकर रखे गये और दूसरे भी बहुत-से पुरुष धूप में सूखे हुए उन मत्स्यों के मांस को शूलों पर पकाते, तेल में तलते, आग में भूनते और राजमार्ग पर बिक्री करके अपनी आजीविका करते थे । वह शौरिकदत्त स्वयं भी शूलों पर तपाये, तले हुए, भूने हुए श्लक्ष्णमत्स्यों—यावत्—पताकातिपताका मत्स्यों के मांसों, सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु, प्रसन्ना मदिरा का आस्वादन, विस्वादन, वितरण और परिभोग करते हुए समय व्यतीत करता था ।

३१५. तत्पश्चात् उस शौरिकदत्त मच्छीमार के किसी एक समय शूल पर पकाये, तले और भूने हुए मत्स्य मांसों का भक्षण करते हुए गले में मत्स्य कंटक—मछली का कांटा लग गया ।

तब उस शौरिकदत्त मछेरे ने उस महान् वेदना से अभिभूत होकर, घबराकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—'देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और शौरिकपुर नगर के शृंगाटकों, त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों राजमार्गों और मार्गों में उच्च शब्दों से उद्घोषणा करते हुए इस प्रकार कहो—'देवानुप्रियो ! शौरिकदत्त के गले में मत्स्य कंटक लग गया है । इसलिये जो वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञाता, ज्ञातापुत्र, चिकित्सक, चिकित्सकपुत्र शौरिकदत्त मछेरे के गले में से मछली का कांटा निकालने की इच्छा रखता है, उसको शौरिकदत्त विपुल अर्थ संपत्ति पारितोषिक में देगा ।"

तत्पश्चात् वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—उद्घोषणा करते हैं ।

तब उन बहुत से वैद्यों, वैद्यपुत्रों, ज्ञाता, ज्ञातापुत्रों, चिकित्सकों और चिकित्सकपुत्रों ने इस प्रकार की यह उद्घोषणा सुनी, सुनकर वे जहाँ शौरिकदत्त का घर था, उसमें भी जहाँ शौरिकदत्त मच्छीमार था, वहाँ आये, आकर बहुत-सी औत्पातिकी, वैनयिकी

य कम्मियाहि य पारिणामियाहि य बुद्धीहि परिणामेमाणा-परिणामेमाणा वमणेहि य छड्डणेहि य ओवीलणेहि य कवलग्गाहेहि य सल्लुद्धरणेहि य विसल्लकरणेहि य इच्छंति सोरियदत्तस्स मच्छंधस्स मच्छकंटयं गलाओ नीहरित्तए, नो संचाएंति नीहरित्तए वा विसोहित्तए वा।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य जाहे नो संचाएंति सोरियदत्तस्स मच्छकंटयं गलाओ नीहरित्तए, ताहे संता तंता परितंता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं से सोरियदत्ते मच्छंधे वेज्जपडियाइक्खिए परियारगपरिचत्ते निव्विण्णोसहभेसज्जे तेणं दुक्खेणं अभिभूए समाणे सुक्के भुक्खे-जाव-किमियकवले य वममाणे विहरइ।

उवसंहारो—

३१६. एवं खलु गोयमा ! सोरियदत्ते पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणे विहरइ।

सोरियदत्तस्स आगामिभवपरूवणं—

३१७. सोरियदत्ते णं भंते ! मच्छंधे इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! सत्तरिं वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ। संसारो तहेव। हत्थिणाउरे नयरे मच्छत्ताए उववज्जिहिइ। से णं तओ मच्छिएहिं जीवियाओ ववरोविए तत्थेव सेट्ठिकुलंसि उववज्जिहिइ। बोही। सोहम्मे। महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ।

—विवागसुयं सु० १ अ० ५

कर्मजा और पारिणामिकी बुद्धियों से सम्यक्तया निदान आदि को करते हुए वमनों से, छर्दनों से, अवपीड़न दबाने से, कवल ग्राहों से, शल्योद्धरणों से और विशल्यकरणों से शौरिकदत्त मच्छीमार के गले में फँसे मत्स्यकंटक को निकालने का प्रयत्न किया, किन्तु वे उस काँटे को निकालने में पीव, खून आदि को रोकने में समर्थ नहीं हुए।

इसके बाद जब वे वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञाता, ज्ञातापुत्र, चिकित्सक और चिकित्सकपुत्र शौरिकदत्त मच्छीमार के गले में फँसे हुए मछली के काँटे को निकालने में समर्थ नहीं हुए तब श्रांत, क्लांत और हतोत्साह होकर जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये।

तदनन्तर वह शौरिकदत्त मच्छीमार वैद्यों के लौट जाने पर पारिवारिक जनों से घिरा हुआ, उपचार-औषधि से निराश हुआ उस महान् दुःख से अभिभूत होकर शुष्क बुभुक्षित—यावत्—कृमि कवलों का वमन करता हुआ समय व्यतीत कर रहा है।

उपसंहार—

३१६. हे गौतम ! इस प्रकार वह शौरिकदत्त पूर्वकृत, दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों के पापरूप फल विशेष का अनुभव करते हुए अपना समय यापन कर रहा है।"

शौरिकदत्त का आगामी भव प्ररूपण—

३१७. "हे भदन्त ! वह शौरिकदत्त मच्छीमार यहाँ से मरण समय में मरण करके कहाँ जायेगा ? कहाँ उत्पन्न होगा ?"

हे गौतम ! सत्तर वर्ष की परम आयु का भोग करके, काल मास में काल करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगा। उसी प्रकार संसार में परिभ्रमण करेगा। हस्तिनापुर नगर में मत्स्य रूप में उत्पन्न होगा। तब वह मच्छीमारों के द्वारा जीवन से व्यपरोपित किये जाने—मारे जाने पर वहीं किसी श्रेष्ठि कुल में जन्म लेगा। सम्यक्त्व प्राप्त करेगा। फिर सौधर्मकल्प में देव रूप में उत्पन्न होगा। महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्धि प्राप्त करेगा।

१८. देवदत्ताकहाणयं

रोहीडए देवदत्ता—

३१८. तेणं कालेणं तेणं समएणं रोहीडए नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे०। पुढवीवडेंसए उज्जाणे। धरणो जक्खो। वेसमणदत्ते राया। सिरी देवी। पूसनंदी कुमारे जुवराया।

तत्थ णं रोहीडए नयरे दत्ते नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे।

कण्हसिरी भारिया।

तस्स णं दत्तस्स धूया कण्हसिरीए अत्तया देवदत्ता नामं दारिया होत्था—अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरा०।

भगवओ महावीरस्स समोसरणे गोयमेण देवदत्ताए पुव्व-भवपुच्छा—

३१९. तेणं कालेणं तेणं समएणं सामी समोसढे-जाव-परिसा पडिगया।

तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी छट्ठक्खमणपारणगंसि तहेव जाव-रायमग्गमोगाढे हत्थी आसे पुरिसे पासइ। तेसिं पुरिसाणं मज्झगयं पासइ एगं इत्थियं—अवओडयबंधणं उक्खित्त-कण्णनासं नेहतुप्पियगत्तं वज्झ-करकडि-जुयनियच्छं कंठेगुणरत्त-मल्लदामं चुण्णगुंडियगायं चुण्णयं वज्झ-पाणपीयं सूले भिज्जमाणं पासइ, पासित्ता भगवओ गोयमस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था, तहेव निग्गए-जाव-एवं वयासी—"एस णं भंते! इत्थिया पुव्वभवे का आसि० ?"

देवदत्ताए सीहसेणभवकहा—

३२०. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सुपइट्ठे नामं नयरे होत्था—रिद्धत्थिमियसमिद्धे०। महासेणे राया।

तस्स णं महासेणस्स रण्णो धारिणीपामोक्खं देवीसहस्सं ओरोहे यावि होत्था।

१८. देवदत्ता कथानक—

रोहीतक में देवदत्ता—

३१८. उस काल और उस समय में रोहीतक नामक नगर था जो भवनादि वैभव से संपन्न स्व-पर चक्र के भय से मुक्त एवं धन-धान्यादि से समृद्ध था। वहाँ पृथिव्यवतंसक नाम का उद्यान था। उसमें धरण नामक यक्ष का आयतन था। वैश्रमणदत्त नाम का राजा था। रानी का नाम श्रीदेवी था और पुष्पनन्दी नामक युवराज था।

इस रोहीतक नगर में दत्त नामक धनाढ्य गाथापति निवास करता था।

उसकी भार्या का नाम कृष्णश्री था।

उस दत्त गाथापति की पुत्री कृष्णश्री की अंगजात देवदत्ता नाम की बालिका थी, वह बालिका शुभ लक्षणों से युक्त एवं परिपूर्ण पंचेन्द्रियों और शरीर वाली थी।

भगवान महावीर के समवसरण में गौतम द्वारा देवदत्ता के पूर्वभव की पृच्छा—

३१९. उस काल और उस समय में स्वामी (श्रमण भगवान महावीर पधारे—यावत्—परिषद् वापस लौट गई।

उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अंतेवासी गौतम स्वामी ने षष्ठ क्षमण के पारणे के दिन उसी प्रकार—यावत्—राजमार्ग के मध्य हाथी-घोड़े और पुरुषों को देखा। उन पुरुषों के बीच अवकोटक बंधन में बंधी हुई कटे हुए कान और नाक वाली, स्नेह-तैल से लिप्त शरीर वाली वध्योचित वस्त्र युगल से युक्त, हाथों में हथकड़ियाँ पहने हुए कंठ-सूत्र के समान रक्त पुष्पों की माला पहने हुए, गेरू के चूर्ण से पुते हुए शरीर वाली भयभीत, जीवित रहने की इच्छुक शूली पर भेदी जा रही एक स्त्री को देखा, देखकर भगवान गौतम को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ (कि यह नरकतुल्य वेदना भोग रही है) उसी प्रकार वापस निकले—यावत्—इस प्रकार निवेदन किया—'हे भदन्त ! पूर्वभव में यह स्त्री कौन थी ?'

देवदत्ता की सिंहसेन भव कथा—

३२०. हे गौतम ! उस काल और उस समय इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारतवर्ष में सुप्रतिष्ठ नाम का नगर था, वह नगर वैभव सम्पन्न स्व पर चक्र के भय से मुक्त और समृद्धिशाली था। वहाँ महासेन राजा राज करता था।

उस महासेन राजा के अन्तःपुर में धारिणी आदि एक हजार रानियाँ थीं।

तस्स णं महासेणस्स रण्णो पुत्ते धारिणीए देवीए अत्तए सीहसेणे नामं कुमारे होत्था —अहीण-पडिपुण्ण-पंचिंदियसरीरे जुवराया।

उस महासेन राजा का पुत्र धारिणी रानी का आत्मज सिंहसेन नामक कुमार था, वह कुमार शुभ लक्षणों एवं परिपूर्ण पाँच इन्द्रियों से युक्त शरीर वाला था एवं युवराज पद से अलंकृत था।

तए णं तस्स सीहसेणस्स कुमारस्स अम्मापियरो अण्णया कयाइ पंच पासायवडेंसयसयाइं करेंति—अब्भुग्गयमूसियाइं०।

इसके बाद उस सिंहसेन कुमार के माता-पिता ने किसी एक समय अत्यन्त विशाल ऊँचाई में आकाश को स्पर्श करने वाले पाँच सौ प्रासादावतंसक बनवाये।

तए णं तस्स सीहसेणस्स कुमारस्स अम्मापियरो अण्णया कयाइ सामापामोक्खाणं पंचण्हं रायवरकन्नगसयाणं एगदिवसे पाणिं गिण्हावेंसु। पंचसओ दाओ।

तत्पश्चात् उस सिंहसेन कुमार के माता-पिता ने किसी एक समय श्यामादेवी प्रमुख थी ऐसी पाँच सौ श्रेष्ठ राज कन्याओं के साथ एक ही दिन सिंहसेनकुमार का पाणिग्रहण करवाया। पाँच सौ वस्तुओं का प्रीतिदान—दहेज दिया।

तए णं से सीहसेणे कुमारे सामापामोक्खेहिं पंचहिं देवीसएहिं सद्धिं उप्पिं पासायवरगए-जाव-विहरइ।

तदनन्तर वह सिंहसेन कुमार श्यामा आदि पाँच सौ रानियों के साथ प्रासाद के ऊपरी भाग में रहते हुए समय व्यतीत करने लगा।

तए णं से महासेणे राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। नीहरणं। राया जाए।

इसके बाद किसी एक समय महासेन राजा कालधर्म को प्राप्त हो गया। सिंहसेन ने नीहरण कृत्य किये। फिर वह राजा हो गया।

सीहसेणरायस्स सामाए मुच्छा—

३२१. तए णं से सीहसेणे राया सामाए देवीए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अवसेसाओ देवीओ नो आढाइ नो परिजाणइ, अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे विहरइ।

सिंहसेन राजा की श्यामा में मूर्च्छा (आसक्ति)—

३२१. तदनन्तर वह सिंहसेन राजा श्यामा देवी में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और अनुरक्त होकर शेष देवियों का सम्मान नहीं करता उनकी ओर ध्यान नहीं देता, किन्तु उनका अनादर और विस्मरण करता हुआ विचरता था।

तए णं तासिं एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पंचमाइसयाइं इमीसे कहाए लद्धट्ठाइं समाणाइं—"एवं खलु सीहसेणे राया सामाए देवीए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अम्हं धूयाओ नो आढाइ नो परिजाणइ, अणाढायमाणे अपरिजाणमाणे विहरइ। तं सेयं खलु अम्हं सामं देविं अग्गिपओगेण वा विसप्पओगेण वा सत्थप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवित्तए" —एवं संपेहेंति, संपेहेत्ता सामाए देवीए अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणीओ-पडिजागरमाणीओ विहरंति।

इसके बाद जब उन एक कम पाँच सौ रानियों की एक कम पाँच सौ माताओं ने इस वृत्तान्त को जाना-सुना 'कि सिंहसेन राजा श्यामा रानी में मूर्च्छित, गृद्ध, आसक्त और अनुरक्त होकर हमारी बेटियों का आदर नहीं करता है, उनकी ओर ध्यान नहीं देता है, किन्तु उनका अनादर और विस्मरण करता हुआ विचरता है। अतएव हम लोगों के लिये यह उचित है कि हम श्यामा देवी को अग्निप्रयोग, विषप्रयोग अथवा शस्त्रप्रयोग से जीवन रहित कर दें—मार डालें।" ऐसा विचार किया, विचार करके श्यामादेवी के अन्तर, छिद्र और विवरों की प्रतीक्षा करती हुई समय व्यतीत करने लगीं।

सामाए कोवघर-पवेसो—

३२२. तए णं सा सामा देवी इमीसे कहाए लद्धट्ठा समाणाए—"एवं खलु ममं [एगूणगाणं ?] पंचण्हं सवत्तीसयाणं [एगूणाइं ?] पंचमाइसयाइं इमीसे कहाए लद्धट्ठाइं समाणाइं अन्नमन्नं एवं वयासी—एवं खलु सीहसेणे राया सामाए देवीए मुच्छिए-जाव-पडिजागरमाणीओ विहरंति" तं न नज्जइ णं ममं केणइ कु-मारेणं मारिस्संती त्ति कट्टु भीया तत्था तसिया उव्विग्गा संजायभया जेणेव कोवघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ओहयमणसंकप्पा

श्यामा का कोप गृह-प्रवेश—

३२२ तदनन्तर श्यामादेवी इस वृत्तान्त को जानकर कि 'मेरी एक कम पाँच सौ सौतों की एक कम पाँच सौ माताओं ने इस बात को जानकर आपस में एक-दूसरे से इस प्रकार कहा है— 'सिंहसेन राजा श्यामादेवी में मूर्च्छित—यावत्—प्रतीक्षा करती हुई समय बिता रही हैं इसलिये न मालूम वे मुझे किस कुमौत से मारेंगी।" ऐसा विचार कर भयभीत, त्रस्त, व्याकुल, उद्विग्न और भयग्रस्त होकर वह जहाँ कोपगृह था, वहाँ आई और

करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियाइ।

आकर निरुत्साहित होकर हथेली पर मुंह को टिकाकर आर्तध्यानोपगत हो भूमि पर दृष्टि को गड़ाकर चिन्ता में डूब गई।

तए णं से सीहसेणे राया इमीसे कहाए लद्धट्ठे समाणे जेणेव कोवघरए, जेणेव सामा देवी, तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सामं देविं ओहयमणसंकप्पं करतलपल्हत्थमुहिं अट्टज्झाणोवगयं भूमिगयदिट्ठीयं झियायमाणिं पासइ, पासित्ता एवं वयासी—किं णं तुमं देवाणुप्पिए! ओहयमणसंकप्पा करतलपल्हत्थमुही अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियासि?

इसके पश्चात् वह सिंहसेन राजा इस वृत्तान्त को जानकर जहाँ कोपगृह था, उसमें जहाँ श्यामादेवी थी, वहाँ आया, आकर श्यामादेवी को निरुत्साहित होकर हथेली पर मुँह को टिकाये, आर्तध्यान में ग्रस्त होकर भूमि पर दृष्टि लगाये चिन्ता में डूबे हुए देखा, देखकर श्यामादेवी से इस प्रकार कहा—'देवानुप्रिये! तुम क्यों निरुत्साहित हो हथेली पर मुँह को टिकाये हुए आर्तध्यानों में रत हो, आँखें नीचे जमीन में गड़ाये हुए चिन्ता में डूबी हुई हो?''

तए णं सा सामा देवी सीहसेणेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा उप्फेणउप्फेणियं सीहसेणं रायं एवं वयासी—एवं खलु सामी! ममं एगूणगाणं पंच सवत्तीसयाणं एगूणाइं पंच माइसयाइं इमीसे कहाए लद्धट्ठाइं समाणाइं अण्णमण्णं सद्दावेत्ता एवं वयासी—''एवं खलु सीहसेणे राया सामाए देवीए मुच्छिए गिद्धे गढिए अज्झोववण्णे अम्हं धूयाओ नो आढाइ नो परिजाणइ-जाव-अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणीओ-पडिजागरमाणीओ विहरंति। तं न नज्जइ णं सामी! ममं केणइ कु-मारेण मारिस्संति कट्टु भीया-जाव-झियामि।''

तब वह श्यामादेवी सिंहसेन राजा की इस बात को सुनकर क्रोध से उफनती हुई-सी होकर सिंहसेन राजा से इस प्रकार बोली—'स्वामिन्! बात यह है कि मेरी एक कम पाँच सौ सौतों की एक कम पाँच सौ माताओं ने इस वृत्तान्त को जानकर एक-दूसरे को बुलाकर इस प्रकार कहा है कि सिंहसेन राजा श्यामारानी में मूच्छित, गृद्ध, आसक्त और अनुरक्त होकर हमारी पुत्रियों का आदर नहीं करता है, उनकी ओर ध्यान नहीं देता है—यावत्—अंतरों, छिद्रों और विवरों की प्रतीक्षा करती हुई विचरण कर रही हैं। हे स्वामिन्! न मालूम वे मुझे किस कुमौत से मारेंगी।' ऐसा सोचकर भयभीत हो—यावत्—चिन्ताग्रस्त हो रही हूँ।''

सीहसेणेण सामासवत्तीसयमाईणं अग्गिणा वहो—

सिंहसेन द्वारा श्यामा की सपत्नियों की माताओं का अग्नि द्वारा वध—

३२३. तए णं से सीहसेणे राया सामं देविं एवं वयासी—''मा णं तुमं देवाणुप्पिया! ओहयमणसंकप्पा-जाव-झियाहि। अहं णं तह घत्तिहामि जहा णं तव नत्थि कत्तो वि सरीरस्स आबाहे वा पबाहे वा भविस्सइ'' त्ति कट्टु ताहिं इट्ठाहिं कंताहिं पियाहिं मणुण्णाहिं मणामाहिं वग्गूहिं समासासेइ, समासासेत्ता तओ पडिनिक्खमइ, पडिनिक्खमित्ता कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया! सुपइट्ठस्स नयरस्स बहिया एगं महं कूडागारसालं—अणेगक्खंभसयसंनिविट्ठं पासादीयं दरिसणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं करेह ममं एयमाणत्तियं पच्चप्पिणह।

३२३. तत्पश्चात् सिंहसेन राजा ने श्यामादेवी से इस प्रकार कहा—'हे देवानुप्रिये! तुम निरुत्साहित हो—यावत्—चिन्ता में मत डूबो। मैं उनका इस प्रकार से घात करूँगा कि जिससे तुम्हारे शरीर को कहीं से भी आबाधा-प्रबाधा (ईषत् पीड़ा, विशेष पीड़ा) नहीं होगी।'' ऐसा कहकर उसे इष्ट, कांत, प्रिय, मनोज्ञ और मणाम वचनों द्वारा आश्वासन दिया, आश्वासन देकर वहाँ से निकला, निकलकर कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—''देवानुप्रियो! तुम लोग जाओ और सुप्रतिष्ठ नगर के बाहर एक विशाल, अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर सन्निविष्ट, मन को प्रसन्न करने वाली, दर्शनीय, मनोरम, अतीव मनोहर कूटाकारशाला का निर्माण करो और फिर मेरी इस आज्ञा को वापस लौटाओ अर्थात् कूटाकारशाला के निर्माण हो जाने की मुझे सूचना दो।''

तए णं से कोडुम्बियपुरिसा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि!' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता सुपइट्ठनयरस्स बहिया पच्चत्थिमे दिसीभाए एगं महं कूडागारसालं—अणेगक्खंभसयसंनिविट्ठं पासादीयं दरि-

तदनन्तर उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'स्वामिन्!' इसी प्रकार कहकर आज्ञा को विनयपूर्वक स्वीकार किया, स्वीकार करके सुप्रतिष्ठ नगर के बाहर पश्चिम दिशा में अनेक सैकड़ों स्तम्भों पर

सणिज्जं अभिरूवं पडिरूवं करेंति, जेणेव सीहसेणे राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता तमाणत्तियं पच्चप्पिणंति ।

सन्निविष्ट, प्रासादिक दर्शनीय, अभिरूप और प्रतिरूप एक विशाल कूटाकारशाला बनाई और फिर जहाँ सिंहसेन राजा था, वहाँ आये आकर उसकी आज्ञा वापस उसे लौटाई, कूटाकार शाला के बनने की उसे सूचना दी ।

तए णं से सीहसेणे राया अण्णया कयाइ एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पंच माइसयाइं आमंतेइ ।

इसके बाद किसी एकदिन सिंहसेन राजा ने एक कम पाँच सौ देवियों-रानियों की एक कम पाँच सौ माताओं को आमंत्रित किया ।

तए णं तासिं एगूणगाणं पंच देवीसयाणं एगूणाइं पंच माइसयाइं सीहसेणेणं रण्णा आमंतियाइं समाणाइं सव्वालंकारविभूसियाइं जहाविभवेणं जेणेव सुपइट्ठे नयरे, जेणेव सीहसेणे राया तेणेव उवेंति ।

तत्पश्चात् सिंहसेन राजा द्वारा आमंत्रित की गई वे एक कम पाँच सौ रानियों की एक कम पाँच सौ मातायें सर्व अलंकारों से विभूषित हो यथायोग्य वैभव के साथ जहाँ सुप्रतिष्ठ नगर था, उसमें जहाँ सिंहसेन राजा था, वहाँ आई ।

तए णं से सीहसेणे राया एगूणपंचण्हं देवीसयाणं एगूणगाणं पंचण्हं माइसयाणं कूडागारसालं आवासं दलयइ ।

तब उस सिंहसेन राजा ने उन एक कम पाँच सौ रानियों की एक कम पाँच सौ माताओं को कूटाकारशाला में ठहरने के लिये आवास स्थान दिया ।

तए णं से सीहसेणे राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी— गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवणेह, सुबहुं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारं च कूडागारसालं साहरह ।

इसके बाद सिंहसेन राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इसप्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और पुष्कल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार का भोजन लेकर आओ एवं अनेक प्रकार के पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों को कूटाकार शाला में लाओ ।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा तहेव-जाव-साहरंति ।

तब वे कौटुम्बिक पुरुष उसी प्रकार—यावत् लेकर आते हैं ।

तए णं तासिं एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणाइं पंच माइसयाइं सव्वालंकारविभूसियाइं तं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं सुरं च महुं च मेरगं च जाइं च सीधुं च पसण्णं च आसाएमाणाइं वीसाएमाणाइं परिभाएमाणाइं परिभुंजेमाणाइं गंधव्वेहि य नाडएहि य उवगीयमाणाइं-उवगीयमाणाइं विहरंति ।

तत्पश्चात् वे एक कम पाँच सौ रानियों की एक कम पाँच सौ मातायें सर्व अलंकारों से विभूषित हो उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन एवं सुरा, मधु, मेरक, जाति, सीधु और प्रसन्ना मदिराओं का आस्वादन, विस्वादन, वितरण और परिभोग करती हुई संगीतज्ञों, नृत्यकारों द्वारा हो रहे संगीत और नृत्यों का अनुभव करते हुए विचरने लगी ।

तए णं से सीहसेणे राया अद्धरत्तकालसमयंसि बहूहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे जेणेव कूडागारसाला तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता कूडागारसालाए दुवाराइं पिहेइ, पिहेत्ता कूडागारसालाए सव्वओ समंता अगणिकायं दलयइ ।

तत्पश्चात् अर्ध रात्रि के समय अनेक पुरुषों के साथ परिवेष्टित होता हुआ वह सिंहसेन राजा जहाँ कूटाकारशाला थी, वहाँ आया, आकर कूटाकारशाला के द्वार बन्द करवाये द्वार बन्द करवाकर कूटाकारशाला के चारों ओर आग लगवा दी ।

तए णं तासिं एगूणगाणं पंचण्हं देवीसयाणं एगूणगाइं पंच माइसयाइं सीहसेणेणं रण्णा आलीवियाइं समाणाइं रोयमाणाइं कंदमाणाइं विलवमाणाइं अत्ताणाइं असरणाइं कालधम्मुणा संजुत्ताइं ।

इसके बाद सिंहसेन राजा द्वारा आदीपित—जलाई गई उन एक कम पाँच सौ रानियों की वे एक कम पाँच सौ मातायें रुदन, आक्रन्दन और विलाप करती हुई अपने को अत्राण और अशरण भूत मानकर कालधर्म को प्राप्त हो गई ।

सीहसेणस्स निरयोववाओ—

३२४. तए णं से सीहसेणे राया एयकम्मे एयप्पहाणे एयविज्जे एयसमायारे सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता चोत्तीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढ-

सिंहसेन का नरकोपपात

३२४. तत्पश्चात् वह सिंहसेन राजा इस कर्म से, इस कर्म की मुख्यता से, ऐसी बुद्धि और इस प्रकार के आचरण से अत्यन्त मलीमस-मलिन पापकर्मों का उपार्जन करके चौंतीस सौ वर्ष की

कीए उक्कोसेणं बावीससागरोवमट्ठिइएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णे ।

देवदत्तारूवेण वत्तमाण भवो—

३२५. से णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव रोहीडए नयरे दत्तस्स सत्थवाहस्स कण्हसिरीए भारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए उववण्णे ।

तए णं सा कण्हसिरी नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारियं पयाया— सूमालं सुरूवं ।

तए णं तीसे दारियाए अम्मापियरो निव्वत्तबारसाहियाए विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेंति, उवक्खडावेत्ता -जाव-मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ नामधेज्जं करेंति—होउ णं दारिया देवदत्ता नामेणं ।

तए णं सा देवदत्ता दारिया पंचधाईपरिग्गहिया-जाव-परिवड्ढइ ।

तए णं सा देवदत्ता दारिया उम्मुक्कबालभावा विण्णय-परिणयमेत्ता जोव्वणगमणुप्पत्ता रूवेण जोव्वणेण लावण्णेण य अईव-अईव उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा जाया यावि होत्था ।

तए णं सा देवदत्ता दारिया अण्णया कयाइ ण्हाया-जाव-विभूसिया बहूहिं खुज्जाहिं-जाव-परिक्खित्ता उप्पिं आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणी विहरइ ।

वेसमणदत्तरण्णा जुवराजत्थं देवदत्तामग्गणं—

३२६. इमं च णं वेसमणदत्ते राया ण्हाए-जाव-विभूसिए आसं दुरुहति, दुरुहित्ता बहूहिं पुरिसेहिं सद्धिं संपरिवुडे आसवाहणियाए निज्जायमाणे दत्तस्स गाहावइस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयइ ।

तए णं से वेसमणे राया दत्तस्स गाहावइस्स गिहस्स अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे देवदत्तं दारियं उप्पिं आगासतलगंसि कणगतिंदूसएणं कीलमाणिं पासइ, पासित्ता देवदत्ताए दारियाए रूवे य जोव्वणे य लावण्णे य जायविम्हए कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—कस्स णं देवाणुप्पिया ! एसा दारिया ? किं च नामधेज्जेणं ?

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा वेसमणरायं करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु एवं वयासी—एस णं सामी ! दत्तस्स सत्थवाहस्स धूया कण्हसिरीए भारियाए अत्तया देवदत्ता नामं दारिया रूवेण य जोव्वणेण य लावण्णेण य उक्किट्ठा उक्किट्ठसरीरा ।

परमायु को भोगकर मरण समय में मरण करके उत्कृष्ट बाईस सागरोपम की स्थिति वाले छट्ठी नरक पृथ्वी के नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुआ ।

देवदत्ता के रूप में वर्तमान भव—

३२५. इसके अनन्तर वह वहाँ से निकलकर इसी रोहीतक नगर में दत्त सार्थवाह की कृष्णश्री भार्या की कुक्षि में बालिकारूप से उत्पन्न हुआ ।

तदनन्तर परिपूर्ण नौ मास बीतने पर उस कृष्णश्री ने सुकुमाल सुन्दर बालिका का प्रसव किया ।

इसके बाद बारह दिन व्यतीत होने पर उस बालिका के माता-पिता ने विपुल परिमाण में अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार की भोज्य सामग्री बनवाई, बनवाकर—यावत्—मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों के सामने नामकरण किया—हमारी यह बालिका 'देवदत्ता' नाम वाली हो ।

तत्पश्चात् वह देवदत्ता बालिका पाँच धाय माताओं द्वारा ग्रहण की जाकर—यावत्—वृद्धिगत होने लगी ।

तदनन्तर वह देवदत्ता बालिका बालभाव को छोड़कर, विज्ञान अवस्था को प्राप्त हो युवावस्था में प्रवेश कर रूप, यौवन और लावण्य में अतीव अतीव उत्कृष्ट और उत्कृष्ट शरीर वाली भी हो गई ।

इसके बाद किसी एकदिन वह देवदत्ता बालिका स्नान कर—यावत् आभूषणों से विभूषित हो बहुत-सी कुब्जी आदि दासियों से घिरी हुई अपने भवन की आगासी में सोने की गेंद से खेलती हुई विचरण कर रही थी ।

वैश्रमणदत्त राजा द्वारा युवराजार्थ देवदत्ता की मंगनी—

३२६. इधर इतने में वैश्रमणदत्त राजा स्नान करके—यावत्—विभूषित हो घोड़े पर सवार हुआ, सवार होकर बहुत से पुरुषों के साथ परिवेष्टित हो अश्व-क्रीड़ा के लिये जाते हुए दत्त गाथापति के मकान के पास से गुजरा ।

तब उस वैश्रमणदत्त राजा ने दत्त गाथापति के घर के पास से निकलते समय देवदत्ता दारिका को ऊपर आगासी-झरोखे में सोने की गेंद से खेलते हुए देखा, देखकर देवदत्ता बालिका के रूप, यौवन और लावण्य से विस्मित हो उसने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया, बुलाकर उनसे इस प्रकार पूछा—'देवानुप्रियो ! यह बालिका किसकी है और इसका क्या नाम है ?"

तब उन कौटुम्बिक पुरुषों ने दोनों हाथ जोड़ आवर्तपूर्वक मस्तक पर अंजलि करके वैश्रमण राजा से इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन् ! रूप, यौवन और लावण्य से श्रेष्ठ और श्रेष्ठ शरीर-संपदा से संपन्न यह दत्तसार्थवाह की पुत्री कृष्णश्री भार्या की अंगजा देवदत्ता नाम की बालिका है ।"

३२७. तए णं से वेसमणे राया आसवाहणियाओ पडिनियत्ते समाणे अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे सद्दावेइ सद्दावेत्ता एवं वयासी—गच्छह णं तुब्भे देवाणुप्पिया ! दत्तस्स धूयं कण्हसिरीए भारियाए अत्तयं देवदत्तं दारियं पूसनंदिस्स जुवरण्णो भारियत्ताए वरेह, जइ वि य सा सयरज्जसुक्का ।

३२७. तदनन्तर उस वैश्रमण राजा ने अश्वक्रीड़ा से वापस लौट कर अपने आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और दत्त सार्थवाह की पुत्री कृष्णश्री भार्या की अंगजा देवदत्ता बालिका को युवराज पुष्पनन्दी के लिये भार्यारूप में मंगनी करो, यदि वह स्वराज्यलभ्या हो अर्थात् अपना राज्य देकर भी प्राप्त की जा सके तो भी लेने योग्य है।"

तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा वेसमणेणं रण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठा करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु 'एवं सामि !' त्ति आणाए विणएणं वयणं पडिसुणेंति, पडिसुणेत्ता ण्हाया-जाव-सुद्धप्पावेसाइं मंगल्लाइं वत्थाइं पवर परिहिया संपरिवुडा जेणेव दत्तस्स गिहे तेणेव उवागया ।

इसके बाद उन आभ्यन्तर स्थानीय पुरुषों ने वैश्रमण राजा की इस आज्ञा को सुनकर हर्षित एवं सन्तुष्ट हो दोनों हाथ जोड़ आवर्त पूर्वक मस्तक पर अंजलि करके 'स्वामिन् !' इसी प्रकार कहकर विनयपूर्वक आज्ञा वचनों को स्वीकार किया, स्वीकार करके स्नान—यावत्—शुद्ध यथोचित उत्तम वस्त्रों को पहनकर कौटुम्बिक पुरुषों के द्वारा परिवेष्टित हो जहाँ दत्त सार्थवाह का गृह था, वहाँ आये ।

तए णं से दत्ते सत्थवाहे ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे एज्जमाणे पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे आसणाओ अब्भुट्ठेइ अब्भुट्ठेत्ता सत्तट्ठ पयाइं पच्चुग्गए आसणेणं उवनिमंतेइ, उवनिमंतेत्ता ते पुरिसे आसत्थे वीसत्थे सुहासणवरगए एवं वयासी—संदिसंतु णं देवाणुप्पिया ! किं आगमणप्पओयणं ?

तब उस दत्त सार्थवाह ने उन आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों को अपनी ओर आते हुए देखा, देखकर वह हृष्ट-तुष्ट हो अपने आसन से उठा, उठकर सात-आठ डग सामने गया और उन्हें आसन पर बैठने के लिये आमंत्रित किया, आमंत्रित करने के पश्चात् जब वे पुरुष आश्वस्थ विश्वस्थ होकर सुखपूर्वक आसन पर बैठ गये तब इस प्रकार पूछा—'देवानुप्रियो ! बताइये, आप किसलिये पधारे हैं ?'

तए णं ते रायपुरिसा दत्तं सत्थवाहं एवं वयासी—"अम्हे णं देवाणुप्पिया ! तव धूयं कण्हसिरीए अत्तयं देवदत्तं दारियं पूसनंदिस्स जुवरण्णो भारियत्ताए वरेमो । तं जइ णं जाणसि देवाणुप्पिया ! जुत्तं वा पत्तं वा सलाहणिज्जं वा, सरिसो वा संजोगो, दिज्जउ णं देवदत्ता दारिया पूसनंदिस्स जुवरण्णो । भण देवाणुप्पिया ! किं दलयामो सुक्कं ?"

इस पर उन राजपुरुषों ने दत्त सार्थवाह से यह कहा—'देवानुप्रिय ! हम तुम्हारी बेटी कृष्णश्री की अंगजा देवदत्ता दारिका को पुष्पनन्दी युवराज के लिये भार्या रूप में माँगते हैं । इसलिये आप देवानुप्रिय ! यदि इस प्रार्थना को उचित, अवसर-प्राप्त, श्लाघनीय, वर-वधू का यह संयोग अनुरूप समझते हों तो पुष्पनन्दी युवराज के लिये देवदत्ता दारिका दे दीजिये । देवानुप्रिय ! बताइये कि इसके लिये क्या शुल्क—उपहार दिया जाये ?"

तए णं से दत्ते ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे एवं वयासी—एवं चेव णं देवाणुप्पिया ! ममं सुक्कं जं णं वेसमणे राया मम दारिया-निमित्तेणं अणुगिण्हइ । ते अब्भिंतरठाणिज्जे पुरिसे विउलेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ ।

तत्पश्चात् दत्त सार्थवाह ने उन आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों से इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! मेरे लिये यही शुल्क है, जो वैश्रमण इस बालिका के निमित्त मुझे अनुगृहीत कर रहे हैं।" इस प्रकार कहने के पश्चात् उन आभ्यन्तरस्थानीय पुरुषों का विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदा किया ।

तए णं ते अब्भिंतरठाणिज्जा पुरिसा जेणेव वेसमणे राया तेणेव उवागच्छंति, वेसमणस्स रण्णो एयमट्ठं निवेदेंति ।

इसके बाद वे अभ्यान्तरस्थानीय पुरुष जहाँ वैश्रमण राजा था वहाँ आये और वैश्रमण राजा से इस वृत्तान्त को विस्तार से निवेदन किया ।

३२८. तए णं से दत्ते गाहावई अण्णया कयाइ सोभणंसि तिहि-करण-दिवस-नक्खत्त-मुहुत्तंसि विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं

३२८. तत्पश्चात् दत्त गाथापति ने किसी एक शुभ तिथि, करण दिवस, मुहूर्त को देखकर विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम

उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ, ण्हाए कयबलिकम्मे कयकोउयमंगल-पायच्छित्ते सुहासण-वरगएणं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे तं विउलं असणं पाणं खाइम-साइमं आसाएमाणे वीसाएमाणे परिभाएमाणे परिभुंजेमाणे एवं च णं विहरइ। जिमियभुत्तुत्तरागए वि य णं आयंते चोक्खे परमसुइब्भूए तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणं विउलेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेणं सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता देवदत्तं दारियं ण्हायं-जाव-सव्वालंकारविभूसियसरीरं पुरिससहस्सवाहिणिं सीयं दुरुहेइ, दुरुहेत्ता सुबहुमित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणेणं सद्धिं संपरिवुडे सव्विड्ढीए-जाव-दुंदुहिनिग्घोस-नाइयरवेणं रोहीडयं नयरं मज्झं-मज्झेणं जेणेव वेसमणरण्णो गिहे, जेणेव वेसमणे राया तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता करयलपरिग्गहियं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु वेसमणं रायं जएणं विजएणं वद्धावेइ, वद्धावेत्ता वेसमणस्स रण्णो देवदत्तं दारियं उवणेइ।

भोज्य सामग्री बनवाई, बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिचितों को आमंत्रित किया, फिर स्नान बलिकर्म, कौतुक, मंगल प्रायश्चित करके सुखपूर्वक श्रेष्ठ आसन पर बैठकर उन मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजन, सम्बन्धियों और परिजनों के साथ उस विपुल अशन, पान, खादिम, स्वादिम रूप चतुर्विध भोज्य सामग्री का आस्वादन, विस्वादन, वितरण और परिभोग करते हुए विचरने लगा। भोजन करने के पश्चात् कुल्ला आदि करके अत्यन्त स्वच्छ और परम शुचिभूत होकर उन मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिचितों का विपुल पुष्प, वस्त्र, गंध माला, अलंकारों से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके स्नान कराके—यावत्—शरीर को सर्व अलंकारों से विभूषित कर देवदत्ता बालिका को पुरुषसहस्रवाहिनी शिविका-पालखी में बैठाया, बैठाकर उन बहुत से मित्रों, ज्ञाति, बंधुओं, निजकों, स्वजन-सम्बन्धियों और परिचितों के साथ परिवृत हो सर्व ऋद्धि, वैभव—यावत्—दुन्दुभि आदि वाद्यों के घोषपूर्वक रोहीतक नगर के बीचोंबीच से होता हुआ जहाँ वैश्रमण राजा का भवन था, उसमें जहाँ वैश्रमण राजा था, वहाँ आया, वहाँ आकर दोनों हाथ जोड़ सिर पर आवर्तपूर्वक अंजलि करके वैश्रमण राजा को जय-विजय शब्दों से बधाया, बधाई देकर वैश्रमण राजा को देवदत्ता दारिका अर्पित की—सौंप दी।

देवदत्ता-पूसनंदिजुवरायाणं पाणिग्गहणं—

३२९. तए णं से वेसमणे राया देवदत्तं दारियं उवणीयं पासइ, पासित्ता हट्ठतुट्ठे विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं उवक्खडावेइ, उवक्खडावेत्ता मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेइ -जाव-सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पूसनंदिं कुमारं देवदत्तं च दारियं पट्टयं दुरुहेइ, दुरुहेत्ता सेयापीएहिं कलसेहिं मज्जावेइ, मज्जावेत्ता वरनेवत्थाइं करेइ, करेत्ता अग्गिहोमं करेइ, करेत्ता पूसनंदिं कुमारं देवदत्ताए दारियाए पाणिं गिण्हावेइ।

देवदत्ता पुष्यनन्दी युवराज का पाणिग्रहण—

३२९. तत्पश्चात् उस वैश्रमण राजा ने लाई हुई देवदत्ता दारिका को देखा, देखकर हर्षित और संतुष्ट हो विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्यरूप चार प्रकार का भोजन पकवाया—बनवाया, बनवाकर मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों को आमंत्रित किया—यावत्—सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके पुष्यनन्दी कुमार और देवदत्ता दारिका को पाट पर बैठाया, बैठाकर सफेद और पीले (चाँदी और सोने के) कलशों से स्नान कराया, स्नान कराके उनको विवाहोचित सुन्दर वस्त्रों से अलंकृत किया, अलंकृत करके अग्नि होम कराया, होम कराके पुष्यनन्दी कुमार को देवदत्ता बालिका का पाणिग्रहण कराया।

तए णं से वेसमणदत्ते राया पूसनंदिकुमारस्स देवदत्तं दारियं सव्विड्ढीए-जाव-दुंदुहिनिग्घोस-नाइयरवेणं महया इड्ढीसक्कारसमुदएणं पाणिग्गहणं कारेइ, कारेत्ता देवदत्ताए दारियाए अम्मापियरो मित्त-नाइ-नियग सयण-संबंधि-परियणं च विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं पुप्फ-वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेइ सम्माणेइ, सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता पडिविसज्जेइ।

इसके बाद वैश्रमणदत्त राजा ने पुष्यनन्दी कुमार और देवदत्ता बालिका का समग्र वैभव—यावत्—दुन्दुभि आदि वाद्यों के निनादपूर्वक महान् ऋद्धि, सम्मान एवं अभ्युदय पूर्वक पाणिग्रहण, विवाह संस्कार कराया, विवाह संस्कार करवा के देवदत्ता बालिका के माता-पिता, मित्रों, ज्ञातिजनों, निजकों, स्वजनों, सम्बन्धियों और परिजनों का विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप चार प्रकार के भोजन, पुष्प, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि से सत्कार-सम्मान किया, सत्कार-सम्मान करके उन्हें विदा किया।

तए णं से पूसनंदी कुमारे देवदत्ताए भारियाए सद्धिं उप्पिं पासायवरगए फुट्टमाणेहिं मुइंगमत्थएहिं बत्तीसइबद्धनाडएहिं उवगिज्जमाणे उवगिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे उवलालिज्जमाणे इट्ठे सद्द-फरिस-रस-रूव-गंधे विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

पिउणो मरणं पूसनंदिणो य रज्जं—

३३०. तए णं से वेसमणे राया अण्णया कयाइ कालधम्मुणा संजुत्ते। नीहरणं-जाव-राया जाए पूसनंदी।

तए णं से पूसनंदी राया सिरीए देवीए माइभत्ते यावि होत्था। कल्लाकल्लिं जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरीए देवीए पायवडणं करेइ, करेत्ता सयपाग-सहस्सपागेहिं तेल्लेहिं अब्भंगावेइ, अट्ठिसुहाए मंससुहाए तयासुहाए रोमसुहाए—चउव्विहाए संवाहणाए संवाहावेइ, संवाहावेत्ता सुरभिणा गंधट्टएणं उव्वट्टावेइ, उव्वट्टावेत्ता तिहिं उदएहिं मज्जावेइ, तं जहा—उसिणोदएणं सीओदएणं गंधोदएणं विउलं असणं पाणं खाइमं साइमं भोयावेइ, भोयावेत्ता सिरीए देवीए ण्हायाए कयबलिकम्माए कयकोउय-मंगल-पायच्छित्ताए जिमियभुत्तुत्तरागयाए तओ पच्छा ण्हाइ वा भुंजइ वा, उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ।

देवदत्ताए पूसनंदिमाउणो मारणं

३३१. तए णं तीसे देवदत्ताए देवीए अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुम्बजागरियं जागरमाणीए इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए कप्पिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पण्णे—'एवं खलु पूसनंदी राया सिरीए देवीए माइभत्ते-जाव-विहरइ। तं एएणं वक्खेवेणं नो संचाएमि अहं पूसनंदिणा रण्णा सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरित्तए। तं सेयं खलु ममं सिरिं देविं अग्गिपओगेण वा सत्थप्पओगेण वा विसप्पओगेण वा जीवियाओ ववरोवेत्ता पूसनंदिणा रण्णा सद्धिं उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणीए विहरित्तए"— एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सिरीए देवीए अंतराणि य छिद्दाणि य विवराणि य पडिजागरमाणी विहरइ।

तए णं सा सिरी देवी अण्णया कयाइ मज्जाइया विरहियसयणिज्जंसि सुहपसुत्ता जाया यावि होत्था।

इसके पश्चात् पुष्यनन्दी कुमार देवदत्ता भार्या के साथ उत्तम प्रासाद के ऊपर जिनमें मृदंग बज रहे हैं, ऐसे बत्तीस प्रकार के नाटकों द्वारा उपगीयमान-प्रशंसित होता हुआ, उपलालित होता हुआ—क्रीड़ा करता हुआ इष्ट शब्द-स्पर्श, रस, रूप और गंध मूलक मनुष्य सम्बन्धी विपुल कामभोगों का अनुभव करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

पिता का मरण और पुष्यनन्दी का राज्य—

३३०. इसके बाद किसी एक समय वैश्रमण राजा कालधर्म से संयुक्त हो गया—मर गया। पुष्यनन्दी कुमार ने नीहरण कर्म किया, मृतक सम्बन्धी लौकिक कृत्य किये—यावत्—पुष्यनन्दी राजा हो गया।

वह पुष्यनन्दी राजा अपनी माता श्रीदेवी का भक्त था। प्रतिदिन जहाँ श्रीदेवी होती थी, वहाँ आता, आकर श्रीदेवी का पाद-वंदन करता, पाद-वंदन करके शतपाक-सहस्रपाक तेलों से मालिश करता, अस्थि, मांस, त्वचा और रोमराजि को सुखप्रद ऐसी चार प्रकार की संवाहनविधि, अंगमर्दनविधि से संवाहना करता, सुख-शांति पहुँचाता, संवाहनाविधि करने के पश्चात् सुगंधित उबटन से शरीर का उबटन करता, उबटन करके उष्ण, शीत और सुगंधित इन तीन प्रकार के जल से स्नान कराता, इसके बाद विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य आहार का भोजन कराता, भोजन कराने के बाद जब श्रीदेवी स्नान, बलिकर्म, कौतुक, मंगल, प्रायश्चित करके भोजन कर लेती तब स्वयं स्नान करता, भोजन करता और मनुष्य सम्बन्धी श्रेष्ठ कामभोगों का उपभोग करते हुए समय व्यतीत करता था।

देवदत्ता द्वारा पुष्यनन्दी माता का मारना

३३१. इसके बाद उस देवदत्ता देवी को किसी एक समय मध्यरात्रि में कौटुम्बिक चिन्ता के कारण जागते हुए इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, कल्पित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—"पुष्यनन्दी राजा माता श्रीदेवी का भक्त होकर—यावत्—विचरता है। अतएव इस विक्षेप—विघ्न के कारण मैं पुष्यनन्दी राजा के साथ मनुष्य सम्बन्धी श्रेष्ठ प्रधान कामभोगों का सेवन करती हुई विचरण नहीं कर पाती हूँ। इसलिये मुझे यह करना उचित रहेगा कि श्रीदेवी को अग्नि-प्रयोग, शस्त्र-प्रयोग अथवा विष-प्रयोग द्वारा जीवन से व्यपरोपित कर, मार कर पुष्यनन्दी राजा के साथ मनुष्य सम्बन्धी उदार-श्रेष्ठ कामभोगों का भोग करती हुई विचरण करूँ।" ऐसा विचार किया, विचार करके श्रीदेवी के अन्तरों, छिद्रों और विवरों की प्रतीक्षा करती हुई समय बिताने लगी।

तदनन्तर किसी एक दिन श्रीदेवी स्नान आदि करने के बाद एकान्त में अपनी शैया पर सुखपूर्वक सोई हुई थी।

इमं च णं देवदत्ता देवी जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरिं देविं मज्जाइयं विरहियसयणिज्जंसि सुहपसुत्तं पासइ, पासित्ता दिसालोयं करेइ, करेत्ता जेणेव भत्तघरे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता लोहदंडं परामुसइ, परामुसित्ता लोहदंडं तावेइ, तत्तं समजोइभूयं फुल्लकिंसुयसमाणं संडासएणं गहाय जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता सिरीए देवीए अवाणंसि पक्खिवइ।

तए णं सा सिरी देवी महया-महया सद्देणं आरसित्ता कालधम्मुणा संजुत्ता।

तए णं तीसे सिरीए देवीए दासचेडीओ आरसियसद्दं सोच्चा निसम्म जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता देवदत्तं देविं तओ अवक्कममाणिं पासंति, पासित्ता जेणेव सिरी देवी तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता सिरिं देविं निप्पाणं निच्चेट्ठं जीवियविप्पजढं पासंति, पासित्ता, हा हा! अहो! अकज्जमिति कट्टु रोयमाणीओ कंदमाणीओ विलवमाणीओ जेणेव पूसनंदी राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता पूसनंदिं रायं एवं वयासी— एवं खलु सामी! सिरी देवी देवदत्ताए देवीए अकाले चेव जीवियाओ ववरोविया।

तए णं से पूसनंदी राया तासिं दासचेडीणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म महया माइसोएणं अप्फुण्णे समाणे परसुनियत्ते विव चंपगवरपायवे धस त्ति धरणीयलंसि सव्वंगेहिं संनिवडिए।

पूसनंदिकओ देवदत्तादंडो—

३३२. तए णं से पूसनंदी राया मुहुत्तंतरेण आसत्थे समाणे बहूहिं राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहेहिं मित्त-णाइ-नियग-सयण-संबंधि परियणेण य सद्धिं रोयमाणे कंदमाणे विलवमाणे सिरीए देवीए महया इड्ढीए नीहरणं करेइ, करेत्ता आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे देवदत्तं देविं पुरिसेहिं गिण्हावेइ एएणं विहाणेणं वज्झं आणवेइ।

उवसंहारो—

३३३. तं एवं खलु गोयमा! देवदत्ता देवी पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणी विहरइ।

इतने में देवदत्ता रानी जहाँ श्रीदेवी थी, वहाँ आई आकर स्नान करने के बाद एकान्त में सुखपूर्वक श्रीदेवी को शैया पर सोते हुए देखा, देखकर आसपास चारों ओर अवलोकन किया, अवलोकन करने के बाद जहाँ भोजनशाला थी, आई, आकर एक लोहे का सरिया उठाया, उठाकर उस लोहे के सरिये को तपाया, तपाकर अग्नि के समान देदीप्यमान पलाश पुष्पों के समान लाल हुए उस तप्त लोहे के सरिये को संडासी से पकड़ कर जहाँ श्रीदेवी थी वहाँ आई, आकर श्रीदेवी के अपानभाग—गुदा स्थान में प्रविष्ट कर दिया।

तब वह श्रीदेवी जोर-जोर से आक्रन्दन, चीत्कार करती हुई काल धर्म को प्राप्त हो गई।

तदनन्तर उस श्रीदेवी की दास चेटिकाएँ उस चीत्कार भरे शब्द को सुनकर और समझकर जहाँ श्रीदेवी थी, वहाँ आईं, आकर देवदत्ता रानी को वहाँ से निकलते हुए, लौटते हुए देखा, देखकर श्रीदेवी के पास आईं, आकर निष्प्राण, निश्चेष्ट और जीवनरहित श्रीदेवी को देखा, देखकर 'हाय-हाय! अहो! यह बड़ा अनर्थ हुआ' इस प्रकार कहकर रुदन, आक्रन्दन और विलाप करती हुई जहाँ पुष्यनन्दी राजा था, वहाँ आईं, आकर पुष्यनन्दी राजा से इस प्रकार निवेदन किया—'स्वामिन्! देवदत्ता देवी ने श्रीदेवी को अकाल में ही जीवन से व्यपरोपित कर दिया है अर्थात् अकाल मौत से मार डाला है।"

तब वह पुष्यनन्दी राजा उन दास चेटिकाओं से इस बात को सुन और उस पर विचार कर महान् मातृ शोक से आक्रान्त होता हुआ कुल्हाड़े से काटे हुए श्रेष्ठ चम्पकवृक्ष के समान धम् करते हुए सर्व अंगों से पृथ्वी पर गिर पड़ा।

पुष्यनन्दी कृत देवदत्ता को दंड—

३३२. इसके पश्चात् उस पुष्यनन्दी राजा ने कुछ क्षणों के अनन्तर आश्वस्त होने पर अनेक राजा, ईश्वर, तलवर, माडम्बिक, कौटुम्बिक, इभ्य, सेठ, सेनापति, सार्थवाह, मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी, परिजन आदि के साथ रुदन, आक्रन्दन विलाप करते हुए श्रीदेवी का महान् ऋद्धिपूर्वक नीहरण कृत्य किया, नीहरण कृत्य करके क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित और चांडिक्यवत् रौद्र रूप धारण कर दांतों को मिसमिसाते हुए देवदत्ता देवी को राजपुरुषों से पकड़वाया और 'यह वध्या है, इस प्रकार के विधान से उसका वध करने की आज्ञा दी।

उपसंहार—

३३३. इस प्रकार हे गौतम! वह देवदत्ता रानी अपने पूर्वकृत दुश्चीर्ण दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों के फल वृत्ति विशेष का अनुभव करती हुई समय व्यतीत कर रही है।'

देवदत्ताए आगामिभव परूवणं—

३३४. देवदत्ता णं भंते ! देवी इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गमिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ।

गोयमा ! असीइं वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ । संसारो [तहेव-जाव-?] वणस्सई ।

तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता गंगपुरे नयरे हंसत्ताए पच्चायाहिइ ।

से णं तत्थ साउणिएहिं वहिए समाणे तत्थेव गंगपुरे नयरे सेट्ठिकुलंसि उववज्जिहिइ । बोही । सोहम्मे । महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ ।

—विवागसुयं सु० १ अ० ६

देवदत्ता का आगामी भव निरूपण —

३३४. हे भदन्त ! वह देवदत्ता देवी मरण समय में मरण करके कहाँ जायेगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?"

हे गौतम ! अस्सी वर्ष की परमायु का भोग कर काल मास में काल करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नैरयिकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगी । इसीप्रकार से —यावत् —वनस्पतिकायिक आदि जीवों में पुनः-पुनः उत्पन्न होकर संसार भ्रमण करेगी ।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर गंगपुर नगर में हंस रूप से उत्पन्न होगी ।

वहाँ पर वह शाकुनिकों-शिकारियों के द्वारा वध किये जाने पर उसी गंगपुर नगर के किसी एक श्रेष्ठि कुल में उत्पन्न होगी । वहाँ सम्यक्बोधि को प्राप्त करेगी । फिर सौधर्मकल्प में उत्पन्न होगी और सौधर्मकल्प से च्यवित होकर महाविदेह क्षेत्र में सिद्धि प्राप्त करेगी ।

१९. अन्जूकहाणयं—

वड्ढमाणपुरे अंजू—

३३५. तेणं कालेणं तेणं समएणं वड्ढमाणपुरे नामं नयरे होत्था । विजयवद्धमाणे उज्जाणे । माणिभद्दे जक्खे । विजयमित्ते राया ।

तत्थ णं धणदेवे नामं सत्थवाहे होत्था— अड्ढे० । पियंगू नामं भारिया । अंजू दारिया-जाव-उक्किट्ठसरीरा । समोसरणं परिसा -जाव-गया ।

अंजूए पुव्वभवपुच्छा—

३३६. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी-जाव-अडमाणे विजयमित्तस्स रण्णो गिहस्स असोगवणियाए अदूरसामंतेणं वीईवयमाणे पासइ एगं इत्थियं—सुक्कं भुक्खं निम्मंसं किडिकिडियाभूयं अट्ठिचम्मावणद्धं नीलसाडगनियत्थं

१९. अन्जू कथानक—

वर्धमानपुर में अंजू—

३३५. उस काल और उस समय में वर्धमानपुर नामक नगर था । विजय वर्धमान नामक उद्यान था । उस उद्यान में मणिभद्र यक्ष का यक्षायतन था । विजयमित्र नाम का राजा वहाँ राज्य करता था ।

उस नगर में धनदेव नाम का सार्थवाह था जो धनाढ्य —यावत्—किसी से भी पराभव को प्राप्त करने वाला नहीं था । उसकी भार्या का नाम प्रियंगू था । अंजू नाम की बालिका थी— यावत्— उत्कृष्ट शरीर वाली थी । स्वामी भगवान महावीर पधारे दर्शनार्थ परिषद् निकली —यावत्—वापस लौट गई ।

अंजू के पूर्वभव की पृच्छा—

३३६. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी (गौतम)—यावत्—भ्रमण करते हुए विजयमित्र राजा के भवन की अशोकवनिका (वाटिका) के समीप से गमन करते हुए एक शुष्क, बुभुक्षित, निर्मांस, किटिकिटिकाभूत, चर्म-

कट्ठाइं कलुणाइं वीसराइं कूवमाणिं पासइ, पासित्ता चिंता तहेव -जाव-एवं वयासी—सा णं भंते ! इत्थिया पुव्वभवे का आसि ? वागरणं।

अंजूए पुढविसिरीभवकहा—

३३७. एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे। इंदपुरे नामं नयरे होत्था।

तत्थ णं इंददत्ते राया। पुढविसिरी नाम गणिया होत्था—वण्णओ।

तए णं सा पुढविसिरी गणिया इंदपुरे नयरे बहवे राईसर-तलवर-माडंबिय-कोडुम्बिय-इब्भ-सेट्ठि-सेणावइ-सत्थवाहप्पभियओ बहूहि य विज्जापओगेहि य मंतपओगेहि य चुण्णप्पओगेहि य हियउड्डावणेहि य निण्हवणेहि य पण्हवणेहि य वसीकरणेहि य आभिओगिएहि आभिओगित्ता उरालाइं माणुस्सगाइं भोगभोगाइं भुंजमाणी विहरइ।

तए णं सा पुढविसिरी गणिया एयकम्मा एयप्पहाणा एयविज्जा एयसमायारा सुबहुं पावं कम्मं कलिकलुसं समज्जिणित्ता पणतीसं वाससयाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा छट्ठीए पुढवीए उक्कोसेणं बावीसं सागरोवमट्ठिएसु नेरइएसु नेरइयत्ताए उववण्णा।

अंजूए वत्तमाणभवकहा—

३३८. सा णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता इहेव वद्धमाणपुरे नयरे धणदेवस्स सत्थवाहस्स पियंगुभारियाए कुच्छिंसि दारियत्ताए उववण्णा।

तए णं सा पियंगुभारिया नवण्हं मासाणं बहुपडिपुण्णाणं दारियं पयाया। नामं अंजू। सेसं जहा देवदत्ताए।

तए णं से विजए राया आसवाहणियाए निज्जायमाणे जहा वेसमणदत्ते तहा अंजुं पासइ, नवरं—अप्पणो अट्ठाए वरेइ जहा तेयली-जाव-अंजूए भारियाए सद्धिं उप्पिं पासायवरगए-जाव-विउले माणुस्सए कामभोगे पच्चणुभवमाणे विहरइ।

३३९. तए णं तीसे अंजूए देवीए अण्णया कयाइ जोणिसूले पाउब्भूए यावि होत्था।

तए णं से विजए राया कोडुम्बियपुरिसे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—"गच्छह णं तुमं देवाणुप्पिया ! वद्धमाणपुरे नयरे सिंघाडग-तिग-चउक्क-चच्चर-चउम्मुह-महापह-पहेसु महया-महया

वृत्त अस्थियों वाली मैली माड़ी पहनी हुई कष्टप्रद, करुणोत्पादक और दीनतापूर्ण वचनों से कराहती हुई एक स्त्री को देखा, देख कर उसीप्रकार विचार किया—यावत्—इस प्रकार निवेदन किया—"भदन्त ! वह स्त्री पूर्वभव में कौन थी ?" भगवान् ने प्रतिपादन किया।

अंजु की पृथ्वीश्री-भव कथा—

३३७. 'हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भारत वर्ष में इन्द्रपुर नाम का नगर था।

वहाँ इन्द्रदत्त नाम का राजा था। पृथ्वीश्री नाम की गणिका थी, वर्णन करो।

वह पृथ्वीश्री गणिका इन्द्रपुर नगर के बहुत के राजा ईश्वर, तलवर, मांडविक, कौटुम्बिक, इभ्य, श्रेष्ठि, सेनापति, सार्थवाह आदि को अनेक प्रकार के विद्याप्रयोगों, मंत्रप्रयोगों, चूर्णप्रयोगों, हृदयाकर्षण, निह्नवण, प्रस्नवन, वशीकरण और परवशता से वश में करके, अधीन करके मनुष्य सम्बन्धी उदार भोगोपभोगों को भोगती हुई विचरती थी।

तब वह पृथ्वीश्री गणिका इस प्रकार के कर्म से ऐसे कार्यों की प्रधानता से, ऐसी विद्या बुद्धि से और इस प्रकार की आचार प्रवृत्ति से अत्यन्त कलुष पाप कर्मों का उपार्जन करके पैंतीस सौ वर्ष की परम आयु को भोगकर कालमास में काल करके छठी नरक पृथ्वी के बाईस सागरोपम की उत्कृष्ट स्थिति वाले नारकों में नारक रूप से उत्पन्न हुई।

अंजू की वर्तमान भव कथा—

३३८. तदनन्तर वहाँ से निकलकर वह यहीं वर्धमानपुर नगर में धनदेव सार्थवाह की प्रियंगु भार्या की कुक्षि में बालिका रूप से उत्पन्न हुई।

इसके बाद उस प्रियंगु भार्या ने परिपूर्ण नौ मास बीतने पर दारिका का प्रसव किया। जिसका अंजू नाम रखा। उसका शेष वर्णन देवदत्ता के समान जानना चाहिये।

तदनन्तर उस विजय राजा ने अश्वक्रीड़ा के निमित्त जाते हुए वैश्रमणदत्त की भाँति अंजू को देखा, लेकिन इतनी विशेषता है कि तेतलि की तरह अपने लिये वरण किया—यावत्—अंजू भार्या के साथ उत्तम प्रासाद के ऊपर—यावत्—मनुष्य सम्बन्धी कामभोगों का अनुभव करते हुए समय व्यतीत करने लगा।

३३९. तत्पश्चात् किसी एक समय उस अंजूदेवी को योनि शूल नामक रोग प्रादुर्भूत हो गया।

तब उस विजय राजा ने कौटुम्बिक पुरुषों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—"देवानुप्रियो ! तुम लोग जाओ और वर्धमानपुर नगर के शृङ्गाटकों त्रिकों, चतुष्कों, चत्वरों, चतुर्मुखों, राजमार्गों और मार्गों मे जोर-जोर से उद्घोषणा करते

सद्दे णं उग्घोसेमाणा-उग्घोसेमाणा एवं वयह—एवं खलु देवाणुप्पिया ! विजयस्स रण्णो अंजूए देवीए जोणिसूले पाउब्भूए। तं जो णं इच्छइ वेज्जो वा वेज्जपुत्तो वा जाणुओ वा जाणुयपुत्तो वा तेगिच्छिओ वा तेगिच्छियपुत्तो वा अंजूए देवीए जोणीसूले उवसामित्तए तस्स णं विजए राया विउलं अत्यसंपयाणं दलयइ।"

तए णं ते कोडुम्बियपुरिसा-जाव-उग्घोसेंति।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य इमं एयारूवं उग्घोसणं सोच्चा निसम्म जेणेव विजए राया तेणेव उवागच्छंति, उवागच्छित्ता उप्पत्तिएहिं वेणइयाहिं कम्मियाहिं पारिणामियाहिं बुद्धीहिं परिणामेमाणा इच्छंति अंजूए देवीए जोणिसूलं उवसामित्तए, नो संचाएंति उवसामित्तए।

तए णं ते बहवे वेज्जा य वेज्जपुत्ता य जाणुया य जाणुयपुत्ता य तेगिच्छिया य तेगिच्छियपुत्ता य जाहे नो संचाएंति अंजूए देवीए जोणिसूलं उवसामित्तए, ताहे संता तंता परितंता जामेव दिसं पाउब्भूया तामेव दिसं पडिगया।

तए णं सा अंजू देवी ताए वेयणाए अभिभूया समाणी सुक्का भुक्खा निम्मंसा कट्ठाइं कलुणाइं वीसराइं विलवइ।

उवसंहारो—

३४०. एवं खलु गोयमा ! अंजू देवी पुरा पोराणाणं दुच्चिण्णाणं दुप्पडिक्कंताणं असुभाणं पावाणं कडाणं कम्माणं पावगं फलवित्तिविसेसं पच्चणुभवमाणी विहरइ।

अंजूए आगामिभवपरूवणं—

३४१. अंजू णं भंते ! देवी इओ कालमासे कालं किच्चा कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! अंजू णं देवी नउइं वासाइं परमाउं पालइत्ता कालमासे कालं किच्चा इमीसे रयणप्पभाए पुढवीए नेरइएसु नेरइयत्ताए उववज्जिहिइ। एवं संसारो जहा पढमे तहा नेयव्वं-जाव-वणस्सई।

सा णं तओ अणंतरं उव्वट्टित्ता सव्वओभद्दे नयरे मयूरत्ताए पच्चायाहिइ।

से णं तत्थ साउणिएहिं वहिए समाणे तत्थेव सव्वओभद्दे नयरे सेट्ठिकुलंसि पुत्तत्ताए पच्चायाहिइ।

से णं तत्थ उम्मुक्कबालभावे तहारूवाणं थेराणं अंतिए

हुए, इस प्रकार कहो—'देवानुप्रियो ! विजयराजा की अंजूदेवी को योनिशूल रोग उत्पन्न हो गया है। अतः जो वैद्य, वैद्यपुत्र, ज्ञायक, ज्ञायकपुत्र, चिकित्सक अथवा चिकित्सकपुत्र अंजूदेवी के योनिशूल रोग को उपशांत कर देगा, उसे विजय राजा विपुल—पर्याप्त अर्थ—संपत्ति प्रदान करेगा।"

तदनन्तर वे कौटुम्बिक पुरुष—यावत्—उद्घोषणा करते हैं।

तब वे अनेक वैद्य और वैद्यपुत्र, ज्ञायक और ज्ञायकपुत्र, चिकित्सक और चिकित्सक पुत्र यह और इस प्रकार की उद्घोषणा सुनकर और विचार कर जहाँ विजय राजा था, वहाँ आये और आकर औत्पातिकी, वैनयिकी, कार्मिकी और पारिणामिकी बुद्धियों के द्वारा निदान और निर्णय करके अंजूदेवी के योनि शूल को उपशमित करने का प्रयत्न करते हैं, किन्तु उपशमित करने में सफल नहीं हो सके।

तदनन्तर जब वे अनेक वैद्य और वैद्यपुत्र, ज्ञाता और ज्ञातापुत्र, चिकित्सक और चिकित्सकपुत्र अंजूदेवी के योनि शूल को उपशांत करने में समर्थ नहीं हुए, तब श्रांत, खिन्न और हतोत्साह होकर जिस दिशा से आये थे, वापस उसी ओर लौट गये।

इसके बाद वह अंजूदेवी उस वेदना से व्याकुल-पीड़ित होती हुई शुष्क, बुभुक्षित, निर्मांस हो कष्टहेतुक, करुणाजनक और दीनतापूर्ण शब्दों में विलाप करती हुई जीवनयापन कर रही है।

उपसंहार

३४०. हे गौतम ! इस प्रकार वह अंजू रानी पूर्वकृत प्राचीन दुश्चीर्ण, दुष्प्रतिक्रान्त अशुभ पाप कर्मों का पापरूप फल वृत्ति विशेष का अनुभव करती हुई विचर रही है।"

अंजू के आगामी भव की कथा—

३४१. 'हे भगवन् ! वह अंजूदेवी यहाँ से मरण समय में मरण को प्राप्त कर कहाँ जायेगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?" गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान महावीर से प्रश्न पूछा।

भगवान ने उत्तर में बताया—'हे गौतम ! अंजूदेवी नब्बे वर्ष की परमायु का पालन कर मरण समय में मरण करके इसी रत्नप्रभा पृथ्वी के नारकों में नैरयिक रूप से उत्पन्न होगी। जैसा प्रथम अध्ययन में वर्णन किया गया है उसी प्रकार संसार भ्रमण जानना चाहिये—यावत्—वनस्पति कायिक जीवों में बारबार उत्पन्न होगी।

तदनन्तर वहाँ से निकलकर सर्वतोभद्र नगर में मोर के रूप में उत्पन्न होगी।

वहाँ शाकुनिकों, शिकारियों के द्वारा मारी जाकर उसी सर्वतोभद्र नगर के किसी श्रेष्ठिकुल में पुत्र रूप से जन्म लेगी।

वहाँ वह बालभाव से मुक्त होकर तथारूप स्थविरों के पास

पव्वइस्सइ। केवलं बोहिं बुज्झिहिइ। पव्वज्जा। सोहम्मे।

से णं तओ देवलोगाओ आउक्खएणं भवक्खएणं ठिइक्खएणं कहिं गच्छिहिइ ? कहिं उववज्जिहिइ ?

गोयमा ! महाविदेहे वासे जहा पढमे-जाव-सिज्झिहिइ बुज्झिहिइ मुच्चिहिइ परिणिव्वाहिइ सव्वदुक्खाणमंतं काहिइ।

—विवाग० अ० १०

प्रव्रजित होगी। सम्यक् बोधि प्राप्त करेगी। फिर अनगार प्रव्रज्या अंगीकार करेगी। मरकर सौधर्म कल्प में देव होगी।"

'आयुक्षय, भवक्षय और स्थितिक्षय होने के पश्चात् उस देवलोक से वह कहाँ जायेगी ? कहाँ उत्पन्न होगी ?' गौतम स्वामी ने पुनः पूछा।

हे गौतम ! जैसा प्रथम अध्ययन में वर्णन किया है उसी प्रकार महाविदेह वर्ष में जन्म लेकर सिद्ध होगी, बुद्ध होगी, मुक्त होगी, परिनिर्वाण को प्राप्त करेगी और सर्व दुःखों का अंत करेगी।

२०. पूरणबालतवस्सिकहाणयं—

बेभेलसण्णिवेसे पूरणे गाहावई

३४२. चमरेणं भंते ! असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे किण्णा लद्धे ? पत्ते ? अभिसमण्णागए ?

एवं खलु गोयमा ! तेणं कालेणं तेणं समएणं इहेव जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे विंझगिरिपायमूले बेभेले नामं सण्णिवेसे होत्था—वण्णओ।

तत्थ णं बेभेले सण्णिवेसे पूरणे नामं गाहावई परिवसइ—अड्ढे दित्ते-जाव-बहुजणस्स अपरिभूए यावि होत्था।

पूरणस्स दाणामा पव्वज्जा—

३४३. तए णं तस्स पूरणस्स गाहावइस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि कुडुंबजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था अत्थि ता मे पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं सुपरक्कंताणं सुभाणं कल्लाणाणं कडाणं कम्माणं कल्लाणे फलवित्तिविसेसे, जेणाहं हिरण्णेणं वड्ढामि, पुत्तेहिं वड्ढामि पसूहिं वड्ढामि, विपुलधण-कणग-रयण-मणि-

२०. पूरण बाल-तपस्वी कथानक—

बेभेल सन्निवेश में पूरण गाथापति—

३४२. हे भगवन् ! असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव, दैविक प्रभाव कैसे मिला, प्राप्त हुआ और अभिसमन्वित हुआ ?' गौतम स्वामी ने श्रमण भगवान् महावीर से प्रश्न किया।

प्रत्युत्तर में भगवान ने बताया—'हे गौतम ! उस काल और उस समय में इसी जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र में विन्ध्यगिरि की तलहटी में बेभेल नामक संनिवेश था, संनिवेश का वर्णन करो।

उस बेभेल संनिवेश में पूरण नाम का गाथापति (गृहपति-गृहस्थ) रहता था, वह धनाढ्य प्रभावशाली—यावत्—अनेक लोगों के द्वारा भी अपराभूत था।

पूरण की दानामा प्रव्रज्या—

३४३. तदनन्तर किसी एक समय उस पूरण गाथापति को मध्यरात्रि में कौटुम्बिक विचार चिन्ता में जागरण करते हुए इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक संकल्प उत्पन्न हुआ—'मेरे पूर्वकृत प्राचीन सुचीर्ण सुपरक्रान्त, शुभ, कल्याण रूप कर्मों का कल्याण रूप फल वृत्ति विशेष है जिसके कारण मैं हिरण्य (चांदी) से बढ़ रहा हूँ, स्वर्ण से वृद्धिगत हो रहा हूँ, धन, धान्य से वृद्धिगत हो रहा हूँ, पुत्रों से वृद्धिगत हो

मोत्तिय-संख-सिलप्पवाल-रत्तरयण-संतसारसावएज्जेणं अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, तं किं णं अहं पुरा पोराणाणं सुचिण्णाणं -जाव-कडाणं कम्माणं एगंतसोक्खयं उवेहमाणे विहरामि ?

तं जाव ताव अहं हिरण्णेणं वड्ढामि-जाव-अतीव-अतीव अभिवड्ढामि, जावं च णं मे मित्त-नाति-नियग-सयण-संबंधि-परियणो आढाति परियाणाइ सक्कारेइ सम्माणेइ कल्लाणं मंगलं देवयं चेइयं विणएणं पज्जुवासइ, तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहगं करेत्ता, विउलं असण-पाण-खाइम-साइमं उवक्खडावेत्ता, मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं आमंतेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं विउलेणं असण-पाण-खाइम-साइमेणं, वत्थ-गंध-मल्लालंकारेण य सक्कारेत्ता सम्माणेत्ता, तस्सेव मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणस्स पुरओ जेट्ठपुत्तं कुडुम्बे ठावेत्ता, तं मित्त-नाइ-नियग-सयण-संबंधि-परियणं जेट्ठपुत्तं च आपुच्छित्ता०, सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहगं गहाय मुण्डे भवित्ता दाणामाए पव्वज्जाए पव्वइत्तए।

पव्वइए वि य णं समाणे इमं एयारूवं अभिग्गहं अभिगिण्हिस्सामि—कप्पइ मे जावज्जीवाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं उड्ढं बाहाओ पगिज्झिय-पगिज्झिय सूराभिमुहस्स आयावणभूमीए आयावेमाणस्स विहरित्तए, छट्ठस्स वि य णं पारणंसि आयावणभूमीओ पच्चोरुभित्ता सयमेव चउप्पुडयं दारुमयं पडिग्गहगं गहाय बेभेले सण्णिवेसे उच्चनीय-मज्झिमाइं कुलाइं घरसमुदाणस्स भिक्खायरियाए अडित्ता जं मे पढमे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं पंथे पहियाणं दलइत्तए। जं मे दोच्चे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं काग-सुणयाणं दलइत्तए। जं मे तच्चे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं मच्छ-कच्छभाणं दलइत्तए। जं मे चउत्थे पुडए पडइ, कप्पइ मे तं अप्पणा आहारं आहारेत्तए—त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए तं चेव निरवसेसं-जाव-जं से चउत्थे पुडए पडइ, तं अप्पणा आहारं आहारेइ।

रहा हूँ, पशुओं से वृद्धिगत हो रहा हूँ, विपुल धन, कनक, रत्न, मणि, मोती, शंख, शिलाप्रवाल रूप सारभूत अर्थ सम्पत्ति से अतीव, अतीव वृद्धिगत हो रहा हूँ तो क्या मैं पुरातन सुचीर्ण यावत्—कृतकर्मों की एकान्त सुख में निमग्न रहकर उपेक्षा करता रहूँ ?

अतएव जब तक मैं हिरण्य से वृद्धिगत हो रहा हूँ—यावत्—अतीव अभिवृद्धिगत हो रहा हूँ और जब तक मित्र, ज्ञातिजन, निजक, स्वजन, सम्बन्धी और परिजन मेरा आदर करते हैं मुझे जानते हैं सत्कार-सम्मान करते हैं और कल्याण, मंगल, देव और चैत्यरूप मानकर विनयपूर्वक पर्युपासना—सेवा करते हैं, तब तक मुझे यह श्रेयस्कर उचित है कि कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्य का उदय होने एवं जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्र रश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर स्वयं चार पुट (चार खाने वाला) काष्ठपात्र बनवाकर विपुल, यथेष्ट अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य रूप भोजन सामग्री बनवाकर, मित्र-ज्ञातिजन, निजी स्वजन, सम्बन्धी, परिजन आदि को आमंत्रित कर उन मित्र, जाति, बंधु, निजी, स्वजन, सम्बन्धी और परिजन आदि का उस विपुल अशन, पान, खाद्य, स्वाद्य भोजन, वस्त्र, गंध, माला, अलंकार आदि से सत्कार-सम्मान करके उन्हीं मित्र, जातिबंधु, निजी, स्वजन-सम्बन्धी, परिजन आदि के सामने ज्येष्ठ पुत्र को कुटुम्ब में स्थापित कर अर्थात् कुटुम्ब का स्वामी बनाकर उन्हीं मित्र, ज्ञातिजन, निजी, स्वजन सम्बन्धी परिजन और ज्येष्ठ पुत्र से पूछकर आज्ञा, अनुमति लेकर स्वयं चार पुट वाला काष्ठ-पात्र लेकर मुंडित होकर दानामा प्रव्रज्या से प्रव्रजित होऊं।

प्रव्रजित होने पर भी यह और इस प्रकार का अभिग्रह अंगीकार करूँ—'जीवनपर्यन्त के लिये निरंतर बेले बेले की तपस्या द्वारा भुजाओं को ऊपर करके आतापना-भूमि में सूर्याभिमुख होकर आतापना लेते हुए समय व्यतीत करना मुझे कल्पता है तथा षष्ठ भक्त के पारणे में भी आतापना भूमि से उतरकर चार पुट वाला काष्ठपात्र लेकर बेभेल सन्निवेश के उच्च नीच और मध्यम कुलों में गृह सामुदानिक भिक्षाचर्या के लिये परिभ्रमण करते हुए जो मेरे प्रथम पुट में प्राप्त होगा, वह मुझे पथिक पथिकों को देना कल्पता है। जो मुझे दूसरे पुट में प्राप्त होगा, वह कौओं, कुत्तों आदि पक्षियों को देना कल्पता है। जो मुझे तीसरे पुट में प्राप्त होगा, वह मुझे मछली, कछुआ आदि जलचरजीवों को देना कल्पता है और जो चौथे पुट में प्राप्त होगा उसका स्वयं आहार करना कल्पता है।'' इस प्रकार का विचार किया, विचार करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने आदि समस्त—यावत्—जो मुझे चौथे पुट में प्राप्त होगा उसका स्वयं आहार करूँगा पर्यन्त का कथन पूर्ववत् यहाँ करना चाहिये।

तए णं से पूरणे बालतवस्सी तेणं ओरालेणं विउलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं बालतवोकम्मेणं सुक्के लुक्खे निम्मंसे अट्ठि-चम्मावणद्धे किडिकिडियाभूए किसे धमणिसंतए जाए यावि होत्था ।

तदनन्तर वह पूरण बालतपस्वी उस उदार, विपुल, प्रदत्त और प्रगृहीत बालतपःकर्म से शुष्क, रूक्ष, निर्मांस, चर्मावृत अस्थिवाला किटिकिटिकाभूत, कृश, उभरी हुई नाड़ियों वाला हो गया ।

पूरणस्स संलेहणा—

३४४. तए णं तस्स पूरणस्स बालतवस्सिस्स अण्णया कयाइ पुव्वरत्तावरत्तकालसमयंसि अणिच्चजागरियं जागरमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—एवं खलु अहं इमेणं ओरालेणं विपुलेणं पयत्तेणं पग्गहिएणं कल्लाणेणं सिवेणं धन्नेणं मंगल्लेणं सस्सिरीएणं उदग्गेणं उदत्तेणं उत्तमेणं महाणुभागेणं तवोकम्मेणं सुक्के भुक्खे जाव-धमणिसंतए जाए, तं अत्थि जा मे उट्ठाणे कम्मे बले वीरिए पुरिसक्कार-परक्कमे तावता मे सेयं कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते बेभेलस्स सण्णिवेसस्स दिट्ठाभट्ठे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छित्ता बेभेलस्स सण्णिवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छित्ता, पाउग-कुण्डिय मादीयं उवगरणं चउप्पुडयं च दारुमयं पडिग्गहगं एगंते एडित्ता, बेभेलस्स सण्णिवेसस्स दाहिणपुरत्थिमे दिसीभागे अद्ध-नियत्तणियं-मंडलं आलिहित्ता संलेहणा-झूसणा-झूसियस्स भत्तपाण-पडियाइक्खियस्स पाओवगयस्स कालं अणवकंखमाणस्स विहरित्तए त्ति कट्टु ।

पूरण की संलेखना—

३४४. इसके बाद उस पूरण बालतपस्वी को किसी एक समय मध्यरात्रि में अनित्यभावना का चिन्तवन करते हुए इस प्रकार का यह आत्मिक, चिन्तित, प्रार्थित, मानसिक विचार उत्पन्न हुआ—निश्चय ही इस प्रकार के उदार, विपुल, प्रदत्त, गृहीत, कल्याण, शिव, धन्य, मंगल, सश्रीक, उदग्र, उदात्त, उत्तम, प्रभावक तपोकर्म से शुष्क, बुभुक्षित—यावत्—उभरी हुई नाड़ियों वाला हो गया हूँ, तथापि जब तक मुझमें उत्थान, धर्मोत्साह, कर्म-प्रवृत्ति, बल, वीर्य, आत्मिक शक्ति, पौरुष और पराक्रम, सामर्थ्य है, तब तक मुझे यह श्रेयरूप होगा कि कल रात्रि के प्रभात रूप होने—यावत्—सूर्य का उदय होने और सहस्ररश्मि दिनकर को जाज्वल्यमान तेज सहित प्रकाशमान होने पर बेभेल सन्निवेश के दृष्टिभ्रष्ट (मिथ्यात्वी) पार्श्वस्थ, गृहस्थ पूर्व परिचित और पर्यायपरिचित आदि से पूछकर बेभेल सन्निवेश के बीचोंबीच से निकलकर पादुका-कुण्डिका आदि उपकरणों और चार पुट वाले काष्ठपात्र को एकान्त में डालकर बेभेल सन्निवेश के दक्षिण पूर्व दिग्भाग (आग्नेय कोण) में अर्धनिवर्तनिक मंडल का आलेखन, प्रमार्जन कर संलेखना झूषणा से आत्मा को युक्त करके आहार-पानी का परित्याग कर पादोपगमन संथारे पूर्वक मरण की आकांक्षा न रखते हुए विचरण करूँ ।'

एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता कल्लं पाउप्पभायाए रयणीए-जाव-उट्ठियम्मि सूरे सहस्सरस्सिम्मि दिणयरे तेयसा जलंते बेभेले सण्णिवेसे दिट्ठाभट्ठे य पासंडत्थे य गिहत्थे य पुव्वसंगतिए य परियायसंगतिए य आपुच्छइ, आपुच्छित्ता बेभेलस्स सण्णिवेसस्स मज्झंमज्झेणं निग्गच्छइ, निग्गच्छित्ता पाउग-कुण्डियमादीयं उवगरणं दारुमयं च पडिग्गहगं एगंते एडेइ, एडेत्ता बेभेलस्स सण्णिवेसस्स दाहिणपुरत्थिमे दिसीभागे अद्धनियत्तणियमंडलं आलिहित्ता संलेहणा-झूसणाझूसिए भत्तपाणपडियाइक्खिए पाओवगमणं निवण्णे ।

उक्त प्रकार का संकल्प किया, संकल्प करके कल रात्रि के प्रभात रूप में परिवर्तित होने—यावत्—सूर्योदय होने और जाज्वल्यमान तेज सहित सहस्ररश्मि दिनकर के प्रकाशित होने पर बेभेल सन्निवेश के दृष्टि भ्रष्ट, पाखंडी, गृहस्थ, पूर्व परिचित और पर्यायपरिचित आदि से पूछा, पूछकर बेभेल सन्निवेश के मध्यभाग में से निकला, निकलकर पादुका, कुण्डिका आदि उपकरणों और काष्ठपात्र को एकान्त स्थान में रखा, रखकर बेभेल सन्निवेश के दक्षिण पूर्व दिग्भाग में अर्धनिवर्तनिक मंडल की आलेखना-प्रतिलेखना करके संलेखना, झूषणा से आत्मा को युक्त कर भक्तपान का परित्याग कर पादोपगमन संथारा स्वीकार कर लिया ।

महावीरस्स छउमत्थकाले सुंसुमारपुरे विहारो—

३४५. तेणं कालेणं तेणं समएणं अहं गोयमा ! छउमत्थकालियाए एक्कारसवासपरियाए छट्ठंछट्ठेणं अणिक्खित्तेणं तवोकम्मेणं संजमेणं तवसा अप्पाणं भावेमाणे पुव्वाणुपुव्विं चरमाणे गामाणुगामं दूइज्ज-

महावीर का छद्मस्थ काल में सुंसमारपुर में विहार—

३४५. उस काल और उस समय में हे गौतम ! मैं छद्मस्थ काल के ग्यारहवें वर्ष की पर्याय में निरन्तर बेले-बेले के तपोकर्म संयम और तप से आत्मा को भावित करते हुए पूर्वानुपूर्वी के क्रम से चलते हुए, एक ग्राम से दूसरे ग्राम में गमन करते हुए जहाँ

माणे जेणेव सुंसुमारपुरे नगरे जेणेव असोयवणसंडे उज्जाणे जेणेव असोयवरपायवे जेणेव पुढवीसिलावट्टए तेणेव उवागच्छामि, उवागच्छित्ता असोगवरपायवस्स हेट्ठा पुढवीसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हामि, दो वि पाए साहट्टु वग्घारियपाणी एगपोग्गलनिविट्ठदिट्ठी अणिमिसणयणे ईसिपब्भारगएणं काएणं, अहापणिहिएहिं गत्तेहिं, सव्विंदिएहिं गुत्तेहिं एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जेत्ताणं विहरामि ।

सुंसमारपुर नगर था, जहाँ अशोक वनखंड नाम का उद्यान था, उसमें जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, जहाँ पृथ्वीशिला पट्टक था, वहाँ आया, वहाँ आकर अशोक वट वृक्ष के नीचे पृथ्वी शिला पट्टक के ऊपर अष्टमभक्त-तेले की तपस्या स्वीकार कर दोनों पैरों को संकुचित कर हाथों को नीचे की ओर लटका कर, एक पुद्गल पर दृष्टि को स्थिर कर अनिमेष नेत्रों पूर्वक शरीर के अग्रभाग को कुछ झुकाकर यथास्थित शरीर से सर्व इन्द्रियों को गुप्त करके एक रात्रिक महाप्रतिमा को अंगीकार करके ध्यानस्थ हुआ ।

पूरणस्स चमरचंचाए असुरिंदत्ताए उववाओ—

३४६. तेणं कालेणं तेणं समएणं चमरचंचा रायहाणी अणिंदा अपुरोहिया यावि होत्था ।

तए णं से पूरणे बालतवस्सी बहुपडिपुण्णाइं दुवालसवासाइं परियागं पाउणित्ता, मासियाए संलेहणाए अत्ताणं झूसेत्ता, सट्ठिं भत्ताइं अणसणाए छेदेत्ता, कालमासे कालं किच्चा चमरचंचाए रायहाणीए उववायसभाए-जाव-इंदत्ताए उववण्णे ।

तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया अहुणोववण्णे पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गच्छइ, तं जहा—आहारपज्जत्तीए-जाव-भास-मणपज्जत्तीए ।

पूरण का चमरचंचा में असुरेन्द्र के रूप में उपपाद—

३४६. उस काल और उस समय चमरचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित थी ।

तत्पश्चात् वह पूरण बाल तपस्वी परिपूर्ण बारह वर्ष की तापस पर्याय का पालन कर एक मास की संलेखना द्वारा आत्मा को शोषित कर साठ भोजनों को अनशन द्वारा त्यागकर, मरण काल में मरण करके चमरचंचा राजधानी की उपपात सभा में —यावत्—इन्द्र रूप से उत्पन्न हुआ ।

तदनन्तर वह अधुनोत्पन्न असुरेन्द्र असुरराज चमर पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तिभाव को प्राप्त हुआ, वे पाँच पर्याप्तियाँ इस प्रकार हैं—आहारपर्याप्ति—यावत्—भाषा-मनःपर्याप्ति ।

चमरिंदस्स सक्किंदभोगदंसणेण अमरिसो—

३४७. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया पंचविहाए पज्जत्तीए पज्जत्तिभावं गए समाणे उड्ढं वीससाए ओहिणा आभोएइ-जाव-सोहम्मो कप्पो, पासइ य तत्थ सक्कं देविंदं देवरायं, मघवं पागसासणं । सयक्कतुं सहस्सक्खं, वज्जपाणिं पुरंदरं-जाव-दस दिसाओ उज्जोवेमाणं पभासेमाणं सोहम्मे कप्पे सोहम्मवडेंसए विमाणे सभाए सुहम्माए सक्कंसि सीहासणंसि-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणं पासइ, पासित्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—केस णं एस अपत्थियपत्थए दुरंतपंतलक्खणे हिरि-सिरिपरिवज्जिए हीणपुण्णचाउद्दसे जं णं मम इमाए एयारूवाए दिव्वाए देविड्ढीए दिव्वाए देवज्जुत्तीए दिव्वे देवाणुभावे लद्धे पत्ते अभिसमण्णागए उप्पिं अप्पुस्सुए दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ—एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सामाणियपरिसोववण्णए देवे सद्दावेइ, सद्दावेत्ता एवं वयासी—

चमरेन्द्र को शक्रेन्द्र भोग-दर्शन से अमर्ष-क्रोध—

३४७. पाँच प्रकार की पर्याप्तियों से पर्याप्तिभाव को प्राप्त होने के अनन्तर जब उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने स्वाभाविक अवधिज्ञान से ऊपर सौधर्मकल्प तक देखा, तब वहाँ सौधर्म कल्प के सौधर्मावतंसक विमान की सुधर्मा सभा में स्थित शक्र नामक सिंहासन पर बैठकर देवेन्द्र, देवराज, मघवा, पाकशासन शतक्रतु, सहस्राक्ष, वज्रपाणि, पुरन्दर शक्र को—यावत्—दशों, दिशाओं को उद्योतित एवं प्रभासित करते हुए—यावत्—दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए देखा, देखकर उसे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'अरे ! यह कौन अप्रार्थित—प्रार्थक (मरण का इच्छुक) कुलक्षणों वाला ह्रीश्री से परिवर्जित, अपूर्ण चतुर्दशी को जन्म लेने वाला है जो मुझे इस प्रकार की इस दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देवानुभाव लब्ध, प्राप्त और अधिगत होने पर भी मेरे ऊपर उत्सुकता से रहित—लापरवाह होकर दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण कर रहा है ।' ऐसा विचार किया, विचार करके सामानिक परिषदोपगत देवों को बुलाया और बुलाकर उनसे इस प्रकार कहा—

"केस णं एस देवाणुप्पिया ! अपत्थियपत्थए-जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ?"

तए णं ते सामाणियपरिसोववण्णगा देवा चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा एवं वुत्ता समाणा हट्ठतुट्ठचित्तमाणंदिया णंदिया पीइमणा परमसोमणस्सिया हरिसवसविसप्पमाणहियया करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—एस णं देवाणुप्पिया ! सक्के देविंदे देवराया -जाव-दिव्वाइं भोगभोगाइं भुंजमाणे विहरइ ।

तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तेसिं सामाणियपरिसोववण्णगाणं देवाणं अंतिए एयमट्ठं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे ते सामाणियपरिसोववण्णगे देवे एवं वयासी—

अण्णे खलु भो ! से सक्के देविंदे देवराया, अण्णे खलु भो ! से चमरे असुरिंदे असुरराया, महिड्ढीए खलु भो ! से सक्के देविंदे देवराया, अप्पिड्ढीए खलु भो ! से चमरे असुरिंदे असुरराया, तं इच्छामि णं देवाणुप्पिया ! सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु उसिणे उसिणब्भूए जाए यावि होत्था ।

चमरिंदस्स महावीरनिस्साए सक्किन्दअच्चासायणाकरणं—

३४८. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया ओहिं पउंजइ, पउंजित्ता ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था—एवं खलु समणे भगवं महावीरे जंबुद्दीवे दीवे भारहे वासे सुंसुमारपुरे नयरे असोगवणसंडे उज्जाणे असोगवरपायवस्स अहे पुढविसिलावट्टयंसि अट्ठमभत्तं पगिण्हित्ता एगराइयं महापडिमं उवसंपज्जित्ता णं विहरति, तं सेयं खलु मे समणं भगवं महावीरं णीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु एवं संपेहेइ, संपेहेत्ता सयणिज्जाओ अब्भुट्ठेइ, अब्भुट्ठेत्ता देवदूसं परिहेइ, परिहेत्ता जेणेव सभा सुहम्मा जेणेव चोप्पाले पहरणकोसे तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता फलिहरयणं परामुसइ, परामुसित्ता एगे अबीए फलिहरयणमायाए महया अमरिसं वहमाणे चमरचंचाए रायहाणीए मज्झंमज्झेणं णिग्गच्छइ, णिग्गच्छित्ता जेणेव तिगिंछिकूडे उप्पायपव्वए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ, समोहणित्ता-जाव-उत्तरवेउव्वियं रूवं विकुव्वइ, विकुव्वित्ता ताए उक्किट्ठाए-जाव-जेणेव पुढविसिलावट्टए जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं

'हे देवानुप्रियो ! यह कौन अप्रार्थित-प्रार्थक—यावत्—दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरण कर रहा है ?'

तब उन सामानिक परिषदोपगत देवों ने असुरेन्द्र असुरराज चमर के प्रश्न को सुनकर हृष्ट-तुष्ट, चित्त में आनन्दित, प्रसन्न अनुरागी, परम सौम्यभाव को प्राप्त हर्षातिरेक से विकसित हृदय हो दोनों हाथों को जोड़ मुकुलित दस नखों से शिर पर आवर्त करके, मस्तक पर अंजलि करके जय-विजय शब्दों से बधाया और बधाकर यह उत्तर दिया—देवानुप्रिय ! यह देवेन्द्र देवराज शक्र—यावत्—दिव्य भोगोपभोगों को भोगते हुए विचरता है ।

उन सामानिक परिषदोपगत देवों से इस वृत्तान्त को सुनकर और अवधारित कर उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चंड—भयंकर होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए उन सामानिक परिषदोपगत देवों से इस प्रकार कहा—

'अरे ! देवेन्द्र देवराज शक्र कोई दूसरा है और असुरेन्द्र असुरराज चमर कोई दूसरा है, अरे वह देवेन्द्र देवराज शक्र महान् ऋद्धि वाला है और असुरेन्द्र असुरराज चमर अल्प ऋद्धि वाला है अतएव हे देवानुप्रियो ! अच्छा अब मैं स्वयं ही उस देवेन्द्र देवराज शक्र का अपमान, तिरस्कार करूँगा ।' ऐसा कहकर क्रोध के मारे अत्यन्त कुपित हो गया ।

चमरेन्द्र द्वारा महावीर की निश्रा में शक्रेन्द्र का अपमान—

३४८. तदनन्तर उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया, प्रयोग करके अवधिज्ञान से मुझे देखा, देखकर उसे इस प्रकार का यह आत्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'श्रमण भगवान महावीर जम्बूद्वीप नामक द्वीप के भरत क्षेत्र स्थित सुंसमारपुर नगर में अशोक वनखंड नामक उद्यान में उत्तम अशोक वृक्ष के नीचे स्थित पृथ्वी शिलापट्टक पर अष्टम भक्त अनशन ग्रहण करके एक रात्रिक महाप्रतिमा को स्वीकार करके विचरण कर रहे हैं, अतएव मुझे यह श्रेयस्कर होगा कि मैं श्रमण भगवान् महावीर का आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र को अपमानित करूँ ।" इस प्रकार का विचार किया, विचार करके उपपात शैया से उठा, उठकर देवदूष्य पहिना, पहनकर जहाँ सभा सुधर्मा थी, उसमें जहाँ चोपाल नामक प्रहरण कोश-शस्त्रागार था, वहाँ आया, आकर, परिघरत्न नामक शस्त्र विशेष (गदा मुद्गर) उठाया और परिघरत्न को लेकर किसी को साथ साथ लिये बिना अकेला ही अत्यन्त कुपित होता हुआ, चमर चंचा राजधानी के बीचोंबीच से निकला, निकलकर जहाँ तिगिच्छकूट नामक उपपात पर्वत था, वहाँ आया आकर वैक्रिय समुद्घात किया समुद्घात करके—यावत्—उत्तर वैक्रिय रूप की विकुर्वणा-रचना की, विकुर्वणा करके उस उत्कृष्ट—यावत—तीव्र गति से गमन करते हुए जहाँ पृथ्वी शिलापट्टक था, जहाँ मैं

तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता-जाव-नमंसित्ता एवं वयासी—

इच्छामि णं भंते ! तुब्भं नीसाए सक्कं देविंदं देवरायं सयमेव अच्चासाइत्तए त्ति कट्टु उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमेइ, अवक्कमित्ता वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णति, समोहणित्ता-जाव-दोच्चं पि वेउव्वियसमुग्घाएणं समोहण्णइ एगं महं घोरं घोरागारं भीमं भीमागारं भासुरं भयाणीयं गंभीरं उत्तासणयं कालड्ढरत्त-मास-रासिसंकासं जोयणसय-साहस्सीयं महाबोंदि विउव्वइ, विउ-व्वित्ता अप्फोडेइ वग्गइ गज्जइ, हयहेसियं करेइ, हत्थिगुलगुलाइयं करेइ, रहघणघणाइयं करेइ, पायदद्दरगं करेइ, भूमिचवेडयं दलयइ, सीहणादं नदइ, उच्छोलेइ पच्छोलेइ, तिवलिं छिंदइ वामं भुयं ऊसवेइ, दाहिणहत्थपदेसिणीए अंगुट्ठणहेण य वितिरिच्छं मुहं विडं-बेइ, महया-महया सद्देण कलकलरवं करेइ।

था, वहाँ आया, आकर मेरी तीन बार आदक्षिण-प्रदक्षिणा की फिर—यावत्—नमस्कार करके इस प्रकार कहा।

'हे भदन्त ! आपका आश्रय लेकर मैं स्वयं देवेन्द्र देवराज शक्र को अपमानित कर उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ।' ऐसा कहकर ईशानकोण में गया वहाँ जाकर वैक्रियसमुद्घात किया, उसके बाद पुनः दूसरी बार वैक्रियसमुद्घात किया और एक विशाल घोर (भयंकर) और घोर आकार वाला भयानक और भयानक आकार वाला भास्वर, भयोत्पादक, गम्भीर त्रास-जनक, कृष्णपक्ष की अर्धरात्रि तथा उड़द के ढेर के समान काले रंग का एक लाख योजन का ऊँचा मोटा शरीर बनाया; शरीर बनाकर हाथों को पछाड़ने लगा, ताल ठोकने लगा, उछलने-कूदने लगा, गर्जना करने लगा, घोड़ों जैसी हिनहिनाहट करने लगा, हाथी की तरह चिंघाड़ने लगा, रथ की तरह घनघनाहट करने लगा, भूमि पर पैर पटकने लगा, भूमि पर ठोकर मारने लगा, सिंहनाद करने लगा, बाँयी भुजा को ऊँचा करने लगा, दाहिने हाथ की तर्जिनी अंगुली और अंगूठे के नख से अपने मुख को विडंबित (टेढ़ामेढ़ा) करने लगा और महान् शब्दों द्वारा कल-कलाहट करने लगा।

एगे अबीए फलिहरयणमायाए उड्ढं वेहासं उप्पइए—खोभंते चेव अहेलोयं कंपेमाणे व मेइणीतलं साकड्ढंते व तिरियलोयं, फोडेमाणे व अंबरतलं, कत्थइ गज्जंते, कत्थइ विज्जुयायंते, कत्थइ वासं वासमाणे, कत्थइ रयुग्घायं पकरेमाणे, कत्थइ तमुक्कायं पकरेमाणे, वाणमंतरे देवे वित्तासेमाणे-वित्तासेमाणे, जोइसिए देवे दुहा विभयमाणे-विभयमाणे, आयरक्खे देवे विपलायमाणे-विपलाय-माणे, फलिहरयणं अंबरतलंसि वियट्टमाणे-वियट्टमाणे विउब्भाए-माणे-विउब्भाएमाणे ताए उक्किट्ठाए-जाव-दिव्वाए देवगईए तिरिय-मसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव सोहम्मे कप्पे, जेणेव सोहम्मवडेंसए विमाणे, जेणेव सभा सुहम्मा तेणेव उवागच्छइ, एगं पायं पउमवरवेइयाए करेइ, एगं पायं सभाए सुहम्माए करेइ, फलिहरयणेणं महया-महया सद्देणं तिक्खुत्तो इंदकीलं आउडेइ, आउडेत्ता एवं वयासी—

स्वयं अकेला ही ऊपर आकाश में बारंबार उस परिघरत्न (मुद्गर-गदा) को ऊँचा करके मानो अधोलोक को क्षुभित करता हुआ पृथ्वी को कँपाते हुए, तिर्यग् (तिरछे) लोक को खींचता हुआ, गगनमंडल को फोड़ता हुआ कभी गर्जना करता हुआ, कभी बिजली की तरह चमकता हुआ, कभी वर्षा की तरह बरसता हुआ, कभी धूलि की बरसा करता हुआ, कभी अन्धकार करता हुआ, वाणव्यंतर देवों को भासित करता हुआ, ज्योतिषी देवों को दो भागों में विभाजित करता हुआ, आत्मरक्षक देवों को भगाता हुआ, बारंबार आकाश तल में परिघरत्न को फिराता हुआ चमकाता हुआ, उस उत्कृष्ट—यावत्—दिव्य देवगति से तिरछे असंख्यात द्वीप—समुद्रों को बीचोंबीच से पार करता हुआ, जहाँ सौधर्मकल्प था, जहाँ सौधर्मावतंसक विमान था, जहाँ सभा सुधर्मा थी, वहाँ आया और एक पैर पद्मवरवेदिका के ऊपर और दूसरा पैर सुधर्मा-सभा में रखा, फिर परिघरत्न द्वारा जोर-जोर की आवाज के साथ तीन बार इन्द्रकील को ठोका और चिल्ला-कर कहा—

"कहि णं भो ! सक्के देविंदे देवराया ?
कहि णं ताओ चउरासीइसामाणियसाहस्सीओ ?
कहि णं ते तायत्तीसतावत्तीसगा ?
कहि णं ते चत्तारि लोगपाला ?
कहि णं ताओ अट्ठ अग्गमहिसीओ सपरिवाराओ ?
कहि णं ताओ तिण्णि परिसाओ ?

"कहाँ है वह देवेन्द्र देवराज शक्र ?"
कहाँ हैं उसके वे चौरासी हजार सामानिक देव ?
कहाँ हैं वे तैंतीस त्रायस्त्रिंश देव ?
कहाँ हैं वे चार लोकपाल ?
कहाँ हैं उसकी सपरिवार आठ अग्रमहिषियाँ ?
कहाँ हैं उसकी तीन परिषदायें ?

कहिं णं ते सत्त अणिया ?

कहिं णं ते सत्त अणियाहिवई ?

कहिं णं ताओ चत्तारि चउरासीईओ आयरक्खदेवसाहस्सीओ ?

कहिं णं ताओ अणेगाओ अच्छराकोडीओ ?

अज्ज हणामि, अज्ज महेमि, अज्ज वहेमि, अज्ज ममं अवसाओ अच्छराओ वसमुवणमंतु'' त्ति कट्टु तं अणिट्ठं अकंतं अप्पियं असुभं अमणुण्णं अमणामं फरुसं गिरं निसिरइ।

सक्केण वज्ज-णिसिरणं

३४९. तए णं से सक्के देविंदे देवराया तं अणिट्ठं-जाव-अमणामं अस्सुयपुव्वं फरुसं गिरं सोच्चा निसम्म आसुरुत्ते रुट्ठे कुविए चंडिक्किए मिसिमिसेमाणे तिवलियं भिउडिं निडाले साहट्टु चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वदासि—''हं भो ! चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! अपत्थियपत्थया ! दुरंतपंतलक्खणा ! हिरिसिरिपरिवज्जिया ! हीणपुण्णचाउद्दसा ! अज्ज न भवसि, नाहि ते सुहमत्थी'' त्ति कट्टु तत्थेव सीहासणवरगए वज्जं परामुसइ, परामुसित्ता तं जलंतं फुडंतं तडतडंतं उक्कासहस्साइं विणिम्मुयमाणं-विणिम्मुयमाणं, जालासहस्साइं पमुंचमाणं-पमुंचमाणं, इंगालसहस्साइं पविक्खिरमाणं-पविक्खिरमाणं, फुलिंगजालामालासहस्सेहिं चक्खुविक्खेवदिट्ठिपडिघातं पि पकरेमाणं हुयवहअइरेगतेयदिप्पंतं जइणवेगं फुल्लकिंसुयसमाणं महब्भयं भयंकरं चमरस्स असुरिंदस्स असुरण्णो वहाए वज्जं निसिरइ।

चमरिंदस्स भगवंतमहावीरत्ताणपडण

३५०. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया तं जलंतं-जाव-भयंकरं वज्जमभिमुहं आवयमाणं पासइ, पासित्ता झियाइ पिहाइ, पिहाइ झियाइ, झियायित्ता पिहाइत्ता तहेव संभग्गमउडविडवे सालंबहत्थाभरणे उड्ढंपाए, अहोसिरे कक्खागयसेयं पिव विणिम्मुयमाणे-विणिम्मुयमाणे ताए उक्किट्ठाए-जाव-तिरियमसंखेज्जाणं दीवसमुद्दाणं मज्झंमज्झेणं वीईवयमाणे-वीईवयमाणे जेणेव जंबुद्दीवे दीवे-जाव-जेणेव असोगवरपायवे जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता भीए भयगग्गरसरे 'भगवं सरणं' इति बुयमाणे ममं दोण्ह वि पायाणं अंतरंसि झत्ति वेगेणं समोवडिए।

सक्किदस्स वि भगवंतमहावीरसमीवे आगमणं वज्जपडिसाहरणं य—

३५१. तए णं तस्स सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो इमेयारूवे

कहाँ हैं उसकी सात अनीक सेनायें ?

कहाँ हैं वे सात अनीकाधिपति ?

कहाँ हैं उसके वे तीन लाख छत्तीस हजार आत्म-रक्षक देव ?

कहाँ हैं वे करोड़ों अप्सरायें ?

आज मैं उनका हनन करूँगा, आज मैं उनका मर्दन करूँगा। आज मैं उनका वध करूँगा, अब तक जो अप्सरायें मेरे वश में नहीं, उनको आज वश में करूँगा। इस प्रकार कहकर उसने अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ और अमणाम कटु वचन बोले।

शक्र द्वारा वज्र निस्सारण—

३४९. तदनन्तर देवेन्द्र देवराज शक्र ने उस अनिष्ट—यावत्—अमणाम अश्रुतपूर्व कटुक वाणी को सुनकर और उस पर विचार कर क्रुद्ध, रुष्ट, कुपित, चंड होकर दाँतों को मिसमिसाते हुए ललाट में तीन सल डाल, भृकुटि को तानकर असुरेन्द्र असुरराज चमर से इस प्रकार कहा —''अरे असुरेन्द्र ! असुरराजा चमर ! अप्रार्थित-प्रार्थक ! कुलक्षणी ! ह्री श्री से परिवर्जित ! हीनपुण्य चातुर्दशिक ! आज तू नहीं, तेरा कल्याण नहीं।'' ऐसा कहकर वहीं सिंहासन पर बैठे-बैठे अपना वज्र उठाया और उठाकर उस जाज्वल्यमान विस्फोटक, तड़तड़ाहट करने वाला, हजारों उल्काओं को छोड़ने वाला हजारों ज्वालाओं को फेंकने वाला, हजारों अंगारों को बिखेरने वाला, हजारों स्फुलिंगों (शोलों) से आँखों को चुंधिया देने वाला अग्नि से भी अधिक दीप्तिवाला, अत्यन्त वेगवान, पलाश पुष्पों के समान अत्यन्त लाल, भयावह भयंकर वज्र को असुरेन्द्र असुरराज चमर का वध करने के लिये छोड़ा।

चमरेन्द्र का भगवान महावीर के पैरों में गिरना—

३५०. तब उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने उस जाज्वल्यमान—यावत्—भयंकर वज्र को अपनी ओर आते देखा, देखकर विचार में पड़ गया और अपने प्राणों की स्पृहा करने लगा, विचार और स्पृहा करके जिसकी कलंगी भग्न हो गई है ऐसे मुकुट और आभूषणों को हाथों से संभालते हुए, ऊपर और नीचे सिर करके अर्थात् सिर पर पैर करके और कांख में आये पसीने के समान सारे शरीर से पसीना टपकाते हुए अर्थात् पसीने से लथपथ होते हुए उस उत्कृष्ट—यावत्—तिरछे असंख्यात द्वीप समुद्रों के बीचों-बीच से गुजरते हुए जहाँ जम्बूद्वीप नामक द्वीप था—यावत्—जहाँ अशोक वटवृक्ष था, जहाँ मैं था, वहाँ आया, आकर भयभीत और भय से कातर हो 'भगवन् ! आपकी ही शरण है', कहकर मेरे दोनों पैरों के अन्तराल में शीघ्र ही वेगपूर्वक गिर पड़ा—छिप गया।

शक्रेन्द्र का भी भगवान महावीर के समीप आगमन और वज्र प्रतिसंहरण—

३५१. तत्पश्चात् उस देवेन्द्र देवराज शक्र को इस प्रकार का

अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जित्था—"नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पइत्ता-जाव-सोहम्मो कप्पो, नण्णत्थ अरहंते वा, अरहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भावियप्पणो नीसाए उड्ढं उप्पयइ-जाव-सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं अणगाराण य अच्चासायणाए" त्ति कट्टु ओहिं पउंजइ, ममं ओहिणा आभोएइ, आभोएत्ता 'हा ! हा ! अहो ! हतो अहमंसि' त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए-जाव-दिव्वाए देवगईए वज्जस्स वीहिं अणुगच्छमाणे-अणुगच्छमाणे तिरियमसंखेज्जाणं दीव-समुद्दाणं मज्झंमज्झेणं-जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरइ, अवि याइं मे गोयमा ! मुट्ठिवाएणं केसग्गे वीइत्था।

आत्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ 'असुरेन्द्र असुरराज चमर इतना शक्तिशाली नहीं है, असुरेन्द्र असुरराज चमर की इतनी सामर्थ्य नहीं है और न असुरेन्द्र असुरराज चमर का यह विषय है कि वह अरिहंत भगवान अरिहंत चैत्य अथवा भावितात्मा अनगार का आश्रय लिये बिना स्वयं अपने आप सौधर्म कल्प तक ऊंचा आ सके, इसलिये यदि वह उनका आश्रय लेकर यहाँ आया है तो मेरे द्वारा छोड़े गये वज्र से उन तथारूप अरिहंत भगवन्तों अथवा अनगारों की आशातना होने पर मुझे महान् दुःख होगा।" ऐसा सोचकर शक्रेन्द्र ने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और अपने अवधिज्ञान से मुझे देखा, मुझे देखकर— 'हा ! हा ! मैं मारा गया।' ऐसा कहकर उस उत्कृष्ट—यावत्—दिव्य देवगति से वज्र के पीछे-पीछे चलता हुआ तिर्यक् असंख्य द्वीप समुद्रों के बीचोंबीच से गुजरता हुआ—यावत्—जहाँ उत्तम अशोक वृक्ष था, जहाँ मैं था, वहाँ आया और आकर मेरे से चार अंगुल दूर रहे वज्र को पकड़ लिया हे गौतम ! जिस समय शक्र ने वज्र को पकड़ा उस समय मुट्ठी की वायु से मेरे केशाग्र हिलने लगे।"

सक्किदेण खमाजायणं असुरिंदनिब्भयकरणं य—

३५२. तए णं से सक्के देविंदे देवराया वज्जं पडिसाहरित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेइ, करेत्ता वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते ! अहं तुब्भं नीसाए चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा सयमेव अच्चासाइए। तए णं मए परिकुविएणं समाणेणं चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो वहाए वज्जे निसट्ठे। तए णं ममं इमेयारूवे अज्झत्थिए चिंतिए पत्थिए मणोगए संकप्पे समुप्पज्जित्था—

शक्रेन्द्र द्वारा क्षमायाचना और असुरेन्द्र निर्भयकरण—

३५२. तत्पश्चात् उस देवेन्द्र देवराज ने वज्र का प्रतिसंहरण करके मेरी तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा की, प्रदक्षिणा करके वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके यह निवेदन किया— 'हे भगवन् ! आपका आश्रय लेकर असुरेन्द्र असुरराज चमर मेरी आशातना करने आया था, तब मैंने कुपित होकर असुरेन्द्र असुरराज चमर को मारने के लिये वज्र फेंका। इसके बाद मुझे इस प्रकार का यह आध्यात्मिक, चिन्तित, प्रार्थित मनोगत संकल्प उत्पन्न हुआ—

नो खलु पभू चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु समत्थे चमरे असुरिंदे असुरराया, नो खलु विसए चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अप्पणो निस्साए उड्ढं उप्पइत्ता-जाव-सोहम्मो कप्पो, नण्णत्थ अरहंते वा, अरहंतचेइयाणि वा, अणगारे वा भावि अप्पाणो नीसाए उड्ढं उप्पइत्ता-जाव-सोहम्मो कप्पो, तं महादुक्खं खलु तहारूवाणं अरहंताणं भगवंताणं अणगाराण य अच्चासायणाए त्ति कट्टु ओहिं पउंजामि, देवाणुप्पिए ओहिणा आभोएमि, आभोएत्ता 'हा ! हा ! अहो ! हतो अहमंसि' त्ति कट्टु ताए उक्किट्ठाए-जाव-जेणेव देवाणुप्पिए तेणेव उवागच्छामि, देवाणुप्पियाणं चउरंगुलमसंपत्तं वज्जं पडिसाहरामि, वज्जपडिसाहरणट्ठयाए णं इहमागए इह

'असुरेन्द्र असुरराज चमर इतना शक्ति सम्पन्न नहीं है—असुरेन्द्र असुरराज चमर की इतनी सामर्थ्य नहीं है और असुरेन्द्र असुरराज चमर का यह विषय भी नहीं है कि वह अरिहंत भगवान, अरिहंत चैत्य अथवा भावितात्मा अनगार का आश्रय लिये बिना स्वयं अपने आप सौधर्मकल्प तक ऊपर आ सके, इसलिये यदि वह उनका आश्रय लेकर यहाँ आया है तो मेरे द्वारा छोड़े गये वज्र से उन तथारूप अरिहंत भगवन्तों अथवा अनगारों की आशातना होने पर मुझे महान् दुःख होगा, ऐसा सोचकर मैंने अवधिज्ञान का प्रयोग किया और उस अवधिज्ञान से आप देवानुप्रिय को देखा आपको देखकर मेरे मुख से निकल पड़ा 'हा ! हा ! मैं मारा गया' ऐसा कहकर उस उत्कृष्ट—यावत्—तीव्र गति से जहाँ आप देवानुप्रिय विराजमान हैं, वहाँ आया और आप देवानुप्रिय से चार अंगुल का फासला रहते वज्र को पकड़ लिया, वज्र का प्रतिसंहरण करने, पकड़ने के लिये मैं यहाँ

समोसढे इह संपत्ते इहेव अज्ज उवसंपज्जित्ताणं विहरामि । तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणुप्पिया ! णाइभुज्जो एवं करणयाए त्ति कट्टु ममं वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, वामेणं पादेणं तिक्खुत्तो भूमिं विदलेइ, विदलेत्ता चमरं असुरिंदं असुररायं एवं वयासि—

आया हूँ, यहाँ उपस्थित हुआ हूँ, यहाँ सम्प्राप्त हुआ हूँ और अब यहीं आपके समीप ही विचरण कर रहा हूँ। हे देवानुप्रिय ! मैं अपने अपराध के लिये क्षमा मांगता हूँ, हे देवानुप्रिय ! आप मुझे क्षमा करें, हे देवानुप्रिय ! आप क्षमाप्रदान करने योग्य हैं, ऐसा अपराध मैं पुनः नहीं करूँगा।" ऐसा कहकर मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके उत्तर पूर्व दिग्भाग में गया, वहाँ उसने अपने बाँये पैर से तीन बार भूमि को ठोका, ठोककर असुरेन्द्र असुरराज चमर से इस प्रकार कहा—

मुक्को सि णं भो चमरा ! असुरिंदा ! असुरराया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स पभावेणं—नाहि ते दाणिं ममातो भयमत्थि त्ति कट्टु जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

"हे असुरेन्द्र असुरराज चमर ! आज तू श्रमण भगवान महावीर के प्रभाव से बच गया है अब तुझे मेरे से किंचित्‌मात्र भी भय नहीं है।" ऐसा कहकर जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था वापस उसी दिशा में चला गया।

सक्काइगइविसयाणं गोयमपण्हाणं भगवया समाहाणं—

शक्रादि विषयक गौतम के प्रश्नों का भगवान द्वारा समाधान—

३५३. भंते ! त्ति भगवं गोयमे समणं भगवं महावीरं वंदइ, नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता एवं वयासी—देवे णं भंते ! महिड्ढीए-जाव-महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खिवित्ता पभू तमेवं अणुपरियट्टित्ताणं गेण्हित्तए ?

३५३. हे भदन्त ! इस प्रकार से सम्बोधित कर भगवान् गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके इस प्रकार प्रश्न पूछा—"हे भगवन् ! देव महान् ऋद्धि वाला है—यावत्—महा प्रभाव वाला है तो क्या वह किसी पुद्गल को पहले फेंककर फिर उसके पीछे जाकर उसको पुनः पकड़ने में समर्थ है ?"

हंता पभू ।

उत्तर—"हाँ गौतम ! पकड़ने में समर्थ है।"

से केणट्ठेणं भंते ! एवं वुच्चइ—देवे णं महिड्ढीए-जाव-महाणुभागे पुव्वामेव पोग्गलं खवित्ता पभू तमेव अणुपरियट्टित्ता णं गेण्हित्तए ?

प्रश्न—"हे भदन्त ! किस कारण आप ऐसा कहते हैं—महान् ऋद्धि वाला—यावत्—महाप्रभाव वाला देव पहले पुद्गल को फेंककर उसी के पीछे जाकर पुनः उसको ग्रहण करने में समर्थ है ?"

गोयमा ! पोग्गले णं खित्ते समाणे पुव्वामेव सिग्घगई भवित्ता ततो पच्छा मंदगती भवति, देवे णं महिड्ढीए-जाव-महाणुभागे पुव्विं पि पच्छा वि सीहे सीहगती चेव तुरिए तुरियगती चेव । से तेणट्ठेणं-जाव-पभू गेण्हित्तए ।

उत्तर—हे गौतम ! पुद्गल के फेंके जाने पर पहले उसकी गति तीव्र होती है, उसके बाद गति मंद हो जाती है किन्तु महान् ऋद्धि—यावत्—महाप्रभाव वाला देव पूर्व में भी और पीछे भी शीघ्र और शीघ्र गति वाला होता है, त्वरित और त्वरित गति वाला होता है। इसलिये वह देव—यावत्—उसे पकड़ने में समर्थ है।

जइ णं भंते ! देवे महिड्ढीए-जाव-पभू तमेव अणुपरियट्टित्ताणं गेण्हित्तए, कम्हा णं भंते ! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाइए साहत्थिं गेण्हित्तए ?

प्रश्न—हे भदन्त ! यदि महान् ऋद्धि वाला देव—यावत्—वापस उसी पुद्गल को पीछे से जाकर पकड़ने में समर्थ है तो हे भगवन् ! देवेन्द्र देवराज शक्र असुरेन्द्र असुरराज चमर को अपने हाथ से क्यों नहीं पकड़ सका ?

गोयमा ! असुरकुमाराणं देवाणं अहे गइविसए सीहे-सीहे चेव तुरिए-तुरिए चेव, उड्ढं, गइविसए अप्पे-अप्पे चेव मंदे-मंदे चेव । वेमाणियाणं देवाणं उड्ढं गइविसए सीहे-सीहे चेव तुरिए-तुरिए चेव, अहे गइविसए अप्पे-अप्पे चेव मंदे-मंदे चेव ।

उत्तर—हे गौतम ! असुरकुमार देवों का नीचे जाने का विषय शीघ्र-शीघ्र एवं त्वरित-त्वरित होता है, ऊँचे जाने का विषय अल्प-अल्प एवं मंद-मंद होता है। वैमानिक देवों का ऊँचे जाने का विषय शीघ्र-शीघ्र तथा त्वरित-त्वरित होता है और नीचे जाने का विषय अल्प-अल्प और मंद-मंद होता है।

जावतियं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया उड्ढं उप्पयइ एक्केणं समएणं, तं वज्जे दोहिं, जं वज्जे दोहिं, तं चमरे तिहिं। सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो उड्ढलोयकंडए, अहेलोयकंडए संखेज्जगुणे।

एक समय में देवेन्द्र देवराज शक्र ऊँचाई में जितने क्षेत्र में जा सकता है। उतने क्षेत्र ऊँचे जाने में वज्र को दो समय लगते हैं और जितने क्षेत्र ऊपर जाने में वज्र को दो समय लगते हैं, उतने ही क्षेत्र ऊपर जाने में चमर को तीन समय लगते हैं। देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊर्ध्व लोककंडक (ऊपर जाने का काल मान) सबसे थोड़ा है और अधोलोककंडक (नीचे जाने का समय प्रमाण) उसकी अपेक्षा संख्यात गुणा है।

जावतियं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया अहे ओवयइ एक्केणं समएणं, तं सक्के दोहिं, जं सक्के दोहिं, तं वज्जे तिहिं। सव्वत्थोवे चमरस्स असुरिंदस्स असुररण्णो अहेलोयकंडए, उड्ढलोयकंडए संखेज्जगुणे।

असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समय में नीचे जितना क्षेत्र जा सकता है। उतने क्षेत्र नीचे जाने में शक्र को दो समय लगते हैं, और शक्र को नीचे जाने में जो दो समय लगते है, उतने क्षेत्र नीचे जाने में वज्र को तीन समय लगते हैं। असुरेन्द्र असुरराज चमर का अधोलोककंडक (नीचे जाने का काल मान) सबसे अल्प है और ऊर्ध्वलोककंडक उससे संख्यात गुणा है।

एवं खलु गोयमा! सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा चमरे असुरिंदे असुरराया नो संचाइए साहत्थि गेण्हित्तए।

इसलिए हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र असुरेन्द्र असुरराज चमर को अपने हाथ से पकड़ने में समर्थ नहीं हो सका।

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा?

प्रश्न—हे भगवन्! देवेन्द्र देवराज शक्र के ऊर्ध्वगति, अधोगति और तिर्यग्गति सम्बन्धी विषय में से कौन किसके अल्प है? बहुत है? तुल्य है? विशेषाधिक है?

गोयमा! सव्वत्थोवं खेत्तं सक्के देविंदे देवराया अहे ओवयइ एक्केणं समएणं तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ, उड्ढं संखेज्जे भागे गच्छइ।

उत्तर- हे गौतम! देवेन्द्र देवराज शक्र का एक समय में नीचे जाने का क्षेत्र सबसे कम है अर्थात् एक समय में देवेन्द्र देवराज शक्र सबसे कम क्षेत्र नीचे जाता है, तिरछे संख्येय भाग में जाता है और उससे भी संख्येय भाग में ऊपर के क्षेत्र में जाता है।

चमरस्स णं भंते! असुरिंदस्स असुररण्णो उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा?

प्रश्न—हे भगवन्! असुरेन्द्र असुरराज चमर के ऊर्ध्वगति सम्बन्धी अधोगति सम्बन्धी और तिर्यग्गति सम्बन्धी विषय में से कौनसा विषय किससे अल्प है? बहुत है? तुल्य है? और विशेषाधिक है?

गोयमा! सव्वत्थोवं खेत्तं चमरे असुरिंदे असुरराया उड्ढं उप्पइ एक्केणं समएणं, तिरियं संखेज्जे भागे गच्छइ, अहे संखेज्जे भागे गच्छइ।

उत्तर—हे गौतम! असुरेन्द्र असुरराज चमर एक समय में ऊपर जितने क्षेत्र में जाता है, उससे तिरछा संख्येय भाग में जाता है और उससे भी संख्येय भाग में नीचे जाता है।

वज्जस्स णं भंते! उड्ढं अहे तिरियं च गइविसयस्स कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा?

प्रश्न—हे भगवन्! वज्र के ऊर्ध्व, अधो और तिर्यग्गति सम्बन्धी विषय में से कौन किससे अल्प है? बहुत है? तुल्य है? विशेषाधिक है?

गोयमा! सव्वत्थोवं खेत्तं वज्जे अहे ओवयइ एक्केणं समएणं, तिरियं विसेसाहिए भागे गच्छइ, उड्ढं विसेसाहिए भागे गच्छइ।

उत्तर—हे गौतम! एक समय में वज्र का नीचे जाने का क्षेत्र सबसे कम है, उससे विशेषाधिक भाग में तिरछे जाता है और उससे भी विशेषाधिक भाग में ऊपर जाता है।

सक्कस्स णं भंते! देविंदस्स देवरण्णो ओवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा? बहुए वा? तुल्ले वा? विसेसाहिए वा?

प्रश्न—हे भदन्त! देवेन्द्र देवराज शक्र का नीचे जाने और ऊपर जाने के काल में से कौनसा काल किस काल से अल्प है? बहुत है? तुल्य है? विशेषाधिक है?

गोयमा ! सव्वत्थोवे सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो उप्पयणकाले, ओवयणकाले संखेज्जगुणे ।

चमरस्स वि जहा सक्कस्स, नवरं—सव्वत्थोवे ओवयणकाले, उप्पयणकाले संखेज्जगुणे ।

वज्जस्स पुच्छा ।

गोयमा ! सव्वत्थोवे उप्पयणकाले, ओवयणकाले विसेसाहिए ।

एयस्स णं भंते ! वज्जस्स, वज्जाहिवइस्स, चमरस्स य असुरिंदस्स असुररण्णो ओवयणकालस्स य, उप्पयणकालस्स य कयरे कयरेहिंतो अप्पे वा ? बहुए वा ? तुल्ले वा ? विसेसाहिए वा ?

गोयमा ! सक्कस्स य उप्पयणकाले, चमरस्स य ओवयणकाले—एए णं दोण्णि वि तुल्ला सव्वत्थोवा । सक्कस्स य ओवयणकाले, वज्जस्स य उप्पयणकाले—एस णं दोण्ह वि तुल्ले संखेज्जगुणे । चमरस्स य उप्पयणकाले, वज्जस्स य ओवयणकाले—एस णं दोण्ह वि तुल्ले विसेसाहिए ।

चमरिंदस्स भगवंतमहावीरसमीवे पुणरागमणं—

३५४. तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया वज्जभयविप्पमुक्के, सक्केणं देविंदेणं, देवरण्णा महया अवमाणेणं अवमाणिए समाणे चमरचंचाए रायहाणीए सभाए सुहम्माए चमरंसि सीहासणंसि ओहयमणसंकप्पे चिंतासोयसागरसंपविट्ठे करयलपल्हत्थमुहे अट्टज्झाणोवगए भूमिगयदिट्ठीए झियाति ।

तए णं चमरं असुरिंदं असुररायं सामाणियपरिसोववण्णया देवा ओहयमणसंकप्पं-जाव-झियायमाणं पासंति, पासित्ता करयलपरिग्गहियं दसनहं सिरसावत्तं मत्थए अंजलिं कट्टु जएणं विजएणं वद्धावेंति, वद्धावेत्ता एवं वयासी—किं णं देवाणुप्पिया ! ओहयमणसंकप्पा चिंतासोयसागरसंपविट्ठा करयलपल्हत्थमुहा अट्टज्झाणोवगया भूमिगयदिट्ठीया झियायह ।

तए णं से चमरे असुरिंदे असुरराया ते सामाणियपरिसोववण्णए देवे एवं वयासी— "एवं खलु देवाणुप्पिया ! मए समणं भगवं महावीरं नीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए । तए णं तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे

उत्तर—हे गौतम ! देवेन्द्र देवराज शक्र का ऊपर जाने का काल सबसे स्तोक—थोड़ा है और उससे नीचे जाने का काल संख्यातगुणा है ।

चमर का कथन भी शक्र के समान जानना चाहिये, किन्तु इतनी विशेषता है कि चमर का नीचे जाने का काल सबसे थोड़ा है और ऊपर जाने का काल संख्यातगुणा है ।

इसी प्रकार वज्र की गति के विषय में पूछा ।

उत्तर—हे गौतम ! वज्र का ऊपर जाने का काल सर्वस्तोक है और नीचे जाने का काल उससे विशेषाधिक है ।

प्रश्न—हे भदन्त ! वज्र वज्राधिपति (शक्रेन्द्र) और असुरेन्द्र असुरराज चमर इनके नीचे जाने और ऊपर जाने के कालों में से कौनसा काल किससे अल्प है ? बहुत है ? तुल्य है ? विशेषाधिक है ?

उत्तर—हे गौतम ! शक्र का ऊपर जाने का काल और चमर का नीचे जाने का काल ये दोनों तुल्य हैं और सबसे स्तोक हैं । शक्र का नीचे जाने का काल और वज्र का ऊपर जाने का काल ये दोनों काल तुल्य हैं और संख्येय गुण हैं । चमर का ऊपर जाने का काल और वज्र का नीचे जाने का काल, ये दोनों काल परस्पर तुल्य हैं और विशेषाधिक हैं ।

चमरेन्द्र का भगवान महावीर के समीप पुनरागमन—

३५४. तत्पश्चात् वज्र के भय से मुक्त हुआ देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा महान् अपमान से अपमानित हुआ, वह असुरेन्द्र असुरराज चमर चमरचंचा राजधानी में सुधर्मा सभा में चमर सिंहासन पर बैठ कर नष्ट मानसिक संकल्प वाला, चिन्ता और शोक समुद्र में प्रविष्ट होते हुए, हथेली पर मुख को रखे हुए आर्तध्यान करते हुए दृष्टि को नीचे भूमि पर नमाये हुए विचार करता है ।

इसके बाद सामानिक परिषदोपगत देवों ने उस असुरेन्द्र असुरराज चमर को नष्ट मानसिक संकल्प वाला—यावत्—विचारों में डूबा हुआ देखा, देखकर दोनों हाथ जोड़ मुकुलित दस नखों से सिर पर आवर्त करके मस्तक पर अंजलि करते हुए जय-विजय शब्दों से उसे बधाया और बधाकर इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रिय ! आज आप इस तरह से नष्ट मानसिक संकल्प वाले होकर, चिन्ता और शोक सागर में प्रविष्ट हुए, हथेली पर मुख को टिकाये हुए आर्तध्यानोपगत होकर दृष्टि को नीचे भूमि पर झुकाये हुए क्या विचार कर रहे हैं ?"

तब उस असुरेन्द्र असुरराज चमर ने उन सामानिक परिषदोत्पन्न देवों से इस प्रकार कहा—"हे देवानुप्रियो ! बात यह है कि मैंने श्रमण भगवान् महावीर का आश्रय लेकर देवेन्द्र देवराज शक्र की स्वयं अकेले ही आशातना करने का विचार किया था । तब उसने अत्यन्त कुपित होकर मुझे मारने के लिये

निसट्टे । तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पिया ! समणस्स भगवओ महावीरस्स जस्सम्हि पभावेणं अकिट्ठे अव्वहिए अपरिताविए इह-मागए इह समोसढे इह संपत्ते इहेव अज्ज उवसंपिज्जत्ताणं विह-रामि । तं गच्छामो णं देवाणुप्पिया ! समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो-जाव-पज्जुवासामो ।"

त्ति कट्टु चउसट्ठीए सामाणियसाहस्सीहिं-जाव-सव्विड्ढीए -जाव-जेणेव असोगवरपायवे, जेणेव ममं अंतिए तेणेव उवागच्छइ, उवागच्छित्ता ममं तिक्खुत्तो आयाहिण-पयाहिणं करेत्ता वंदेत्ता नमंसित्ता एवं वयासि—"एवं खलु भंते ! मए तुब्भं नीसाए सक्के देविंदे देवराया सयमेव अच्चासाइए । तए णं तेणं परिकुविएणं समाणेणं ममं वहाए वज्जे निसट्ठे । तं भद्दण्णं भवतु देवाणुप्पियाणं जस्सम्हि पभावेणं अकिट्ठे अव्वहिए अपरिताविए इहमागए इह समोसढे इह संपत्ते इह अज्ज उवसंपज्जित्ताणं विहरामि । तं खामेमि णं देवाणुप्पिया ! खमंतु णं देवाणुप्पिया ! खंतुमरिहंति णं देवाणु-प्पिया ! नाइभुज्जो एवं करणयाए" त्ति कट्टु मम वंदइ नमंसइ, वंदित्ता नमंसित्ता उत्तरपुरत्थिमं दिसीभागं अवक्कमइ, अवक्क-मित्ता-जाव-बत्तीसइबद्धं नट्टविहिं उवदंसेइ, उवदंसेत्ता जामेव दिसिं पाउब्भूए तामेव दिसिं पडिगए ।

३५५. एवं खलु गोयमा ! चमरेणं असुरिंदेणं असुररण्णा सा दिव्वा देविड्ढी दिव्वा देवज्जुती दिव्वे देवाणुभागे लद्धे पत्ते अभि-समण्णागए ।

ठिई सागरोवमं महाविदेहे वासे सिज्झिहिइ-जाव-अंतं काहिइ ।

३५६. किंपत्तियं णं भंते ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति-जाव-सोहम्मो कप्पो ?

गोयमा ! तेसि णं देवाणं अहुणोववण्णाण वा चरिमभवत्थाण वा इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-संकप्पे समुप्पज्जइ---अहो ! णं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी-जाव-अभिसमण्णागए, जारिसियाणं अम्हेहिं दिव्वा देविड्ढी-जाव-अभिसमण्णागए, तारिसिया णं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा दिव्वा देविड्ढि-जाव-अभिसमण्णागए, जारिसियाणं सक्केणं देविंदेणं देवरण्णा-जाव-अभिसमण्णागए तारिसिया णं अम्हेहिं वि-जाव-अभिसमण्णागए ।

वज्र फेंका । परन्तु हे देवानुप्रियो ! श्रमण भगवान महावीर का भला हो कि जिनके प्रभाव से अक्लिष्ट, अव्यथित और अपरि-तापित होता हुआ यहाँ आया, यहाँ समवसृत हुआ, संप्राप्त हुआ और अब यहीं उपसम्पन्न होकर विचरण कर रहा हूँ । अतएव हे देवानुप्रियो ! हम सब चलें और श्रमण भगवान् महावीर को वंदन-नमस्कार करें—यावत्—पर्युपासना करें ।

इस प्रकार कहकर चौसठ हजार सामानिक देवों—यावत्—सर्व ऋद्धि-वैभव पूर्वक—यावत्— जहाँ श्रेष्ठ अशोक वृक्ष था, जहाँ मैं था वहाँ आया, आकर मेरी तीन बार आदक्षिण प्रदक्षिणा करके, वंदना-नमस्कार करके उसने इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! बात यह है कि आपका आश्रय लेकर मैं स्वयं अकेला ही देवेन्द्र देवराज शक्र की अवमानना करने के लिये तत्पर हुआ । तब उसने अत्यन्त कुपित होकर मेरा वध करने के लिये वज्र फेंका । परन्तु आप देवानुप्रिय का भला हो कि आपके प्रभाव से अक्लिष्ट, अव्यथित, और अपरितापित होते हुए यहाँ आया हूँ, यहाँ समवसृत हुआ हूँ, यहाँ संप्राप्त हुआ हूँ और अब यहीं उपस्थित होकर विचरण कर रहा हूँ । हे देवानुप्रिय ! आप मेरे इस अपराध को क्षमा करें, इसके लिये मैं आपसे क्षमा माँगता हूँ । हे देवानुप्रिय ! आप क्षमा करने योग्य हैं, पुनः ऐसा कार्य नहीं करूँगा ।" ऐसा कहकर मुझे वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार कर उत्तर पूर्व दिग्भाग (ईशानकोण) में गया, जाकर —यावत्—बत्तीस प्रकार की नाटकविधि दिखलाई, दिखला कर जिस दिशा से प्रादुर्भूत हुआ था, वापस उसी दिशा में चला गया ।

३५५. हे गौतम ! इस प्रकार असुरेन्द्र असुरराज चमर को वह दिव्य देव ऋद्धि, दिव्य देवद्युति और दिव्य देव प्रभाव मिला है प्राप्त हुआ है, सन्मुख आया है ।

चमरेन्द्र की स्थिति एक सागरोपम की है महाविदेह क्षेत्र में जन्म लेकर सिद्ध होगा—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करेगा ।"

३५६. हे भदन्त ! उसकी क्या प्रतीति है कि असुरकुमार देव ऊपर सौधर्म कल्प तक जाते हैं ?" गौतम स्वामी ने भगवान से पूछा ।

भगवान ने प्रत्युत्तर में बताया—'हे गौतम ! तत्काल उत्पन्न हुए तथा चरिमभवस्थ उन देवों को इस प्रकार का यह आध्यात्मिक—यावत् संकल्प उत्पन्न होता है कि—'अहो ! हमें यह दिव्य देव ऋद्धि—यावत्—अभिसमन्वित हुई है, जैसी दिव्य देव ऋद्धि—यावत्—हमें अधिगत हुई है वैसी ही दिव्य देव ऋद्धि—यावत्—देवेन्द्र देवराज शक्र को भी अभिसमन्वित हुई है । जैसी देवेन्द्र देवराज शक्र को —यावत्—अभिसमन्वित हुई है । वैसी ही हमें भी—यावत्—अधिगत हुई है ।

तं गच्छामो णं सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो अंतियं पाउब्भवामो पासामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं-जाव-अभिसमण्णागयं, पासउ ताव अम्ह वि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं-जाव-अभिसमण्णागयं। तं जाणामो ताव सक्कस्स देविंदस्स देवरण्णो दिव्वं देविड्ढिं-जाव-अभिसमण्णागयं, जाणउ ताव अम्ह वि सक्के देविंदे देवराया दिव्वं देविड्ढिं-जाव-अभिसमण्णागयं।

एवं खलु गोयमा ! असुरकुमारा देवा उड्ढं उप्पयंति-जाव-सोहम्मो कप्पो।

सेवं भंते ! सेवं भंते ! त्ति।

—भगवई स० ३ उ० २

अतएव हम जायें और देवेन्द्र देवराज शक्र के सन्मुख प्रगट होवें और देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा अभिसमन्वित हुई उस दिव्य देव ऋद्धि आदि को हम देखें तथा देवेन्द्र देवराज शक्र भी हमारे द्वारा अभिसमन्वित हुई उस दिव्य देव ऋद्धि आदि को देखें। देवेन्द्र देवराज शक्र द्वारा अधिगत की गई उस देव ऋद्धि आदि को हम जानें तथा हमारे द्वारा अधिगत की गई दिव्य देव ऋद्धि आदि को देवेन्द्र देवराज शक्र भी जानें।

इस कारण हे गौतम ! असुरकुमार देव—यावत्—सौधर्म कल्प तक ऊपर जाते हैं।

हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है, हे भगवन् ! यह इसी प्रकार है।

२१. महासुक्कदेवाणं भगवओ महावीरस्स समीवे आगमणपसंगो—

देवाणं मणसा पण्हो महावीरेण य मणसा उत्तरं—

३५७. तेणं कालेणं तेणं समएणं महासुक्काओ कप्पाओ महासामाणा विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया-जाव-महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया,

तए णं ते देवा समणं भगवं महावीरं मणसा चेव वंदंति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं पुच्छंति—कइ णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासिसयाइं सिज्झिहिंति-जाव-अंतं करेहिंति ?

तए णं समणे भगवं महावीरे तेहिं देवेहिं मणसा पुट्ठे तेसिं देवाणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ—एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अंतेवासिसयाइं सिज्झिहिंति-जाव-अंतं करेहिंति,

तए णं ते देवा समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा पुट्ठेणं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा हट्ठतुट्ठा-जाव-

२१. महाशुक्र देवों का भगवान महावीर के समीप आगमन प्रसंग—

देवों का मन द्वारा प्रश्न पूछना और महावीर द्वारा मन से उत्तर देना—

३५७. उस काल और उस समय में महाशुक्रकल्प के महासमान विमान के महान् ऋद्धि वाले—यावत्—महाप्रभावशाली (भाग्यशाली) दो देव श्रमण भगवान महावीर के समीप प्रादुर्भूत हुए—आये।

तत्पश्चात् उन देवों ने श्रमण भगवान महावीर को मन से ही वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मन से ही यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछा—"हे भदन्त ! आप देवानुप्रिय के कितने सौ अन्तेवासी (शिष्य) सिद्ध होंगे—यावत्—समस्त दुःखों का अन्त करेंगे ?"

तब श्रमण भगवान महावीर ने उन देवों द्वारा मन से पूछे गये प्रश्न का उन देवों को मन से ही यह और इस प्रकार का उत्तर दिया—'देवानुप्रियो ! मेरे सात सौ अंतेवासी सिद्ध होंगे—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करेंगे।'

तत्पश्चात् मन से पूछे गये प्रश्न का श्रमण भगवान महावीर द्वारा मन से दिये गये यह और इस प्रकार के उत्तर को सुनकर

हयहियया समणं भगवं महावीरं वंदंति णमंसंति वंदित्ता णमंसित्ता मणसा चेव सुस्सूसमाणा णमंसमाणा अभिमुहा-जाव-पज्जुवासंति।

३५८. तेणं कालेणं तेणं समएणं समणस्स भगवओ महावीरस्स जेट्ठे अंतेवासी इंदभूई णामं अणगारे-जाव-अदूरसामंते उड्ढं जाणू-जाव-विहरइ।

तए णं तस्स भगवओ गोयमस्स झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-समुप्पज्जित्था "एवं खलु दो देवा महिड्ढिया-जाव-महाणुभागा समणस्स भगवओ महावीरस्स अंतियं पाउब्भूया तं नो खलु अहं ते देवे जाणामि कयराओ कप्पाओ वा सग्गाओ वा विमाणाओ वा कस्स वा अत्थस्स अट्ठाए इहं हव्व-मागया?

तं गच्छामि णं भगवं महावीरं वंदामि णमंसामि-जाव-पज्जु-वासामि इमाइं च णं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छिस्सामि" त्ति कट्टु एवं संपेहेइ संपेहित्ता उट्ठाए उट्ठेइ उट्ठित्ता जेणेव समणे भगवं महावीरे-जाव-पज्जुवासइ।

महावीरेण गोयम-मणोगयकहणं—

समणे भगवं महावीरे भगवं गोयमं एवं वयासी—से णूणं तव गोयमा! झाणंतरियाए वट्टमाणस्स इमेयारूवे अज्झत्थिए-जाव-जेणेव मम अंतिए तेणेव हव्वमागए से णूणं गोयमा! अत्थे समत्थे?

हंता! अत्थि,

तं गच्छाहि णं गोयमा! एए चेव देवा इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं वागरेहिंति।

गोयमस्स देवसमीवे गमणं—

३५९. तए णं भगवं गोयमे समणेणं भगवया महावीरेणं अब्भणु-ण्णाए समाणे समणं भगवं महावीरं वंदइ णमंसइ वंदित्ता नमंसित्ता जेणेव ते देवा तेणेव पहारेत्थ गमणाए।

तए णं ते देवा भगवं गोयमं एज्जमाणं पासंति पासित्ता हट्ठा -जाव-हयहियया खिप्पामेव अब्भुट्ठेंति अब्भुट्ठित्ता खिप्पामेव पच्चु-वागच्छंति पच्चुवागच्छित्ता जेणेव भगवं गोयमे तेणेव उवागच्छंति उवागच्छित्ता-जाव-णमंसित्ता एवं वयासी—एवं खलु भंते! अम्हे

उन देवों ने हर्षित, संतुष्ट—यावत्—प्रसन्नहृदय वाले होकर श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मन से ही उनकी शुश्रूषा और नमन करते हुए सन्मुख बैठकर—यावत्—पर्युपासना करने लगे।

३५८. उस काल और उस समय में श्रमण भगवान महावीर के ज्येष्ठ अन्तेवासी गौतम गोत्रीय इन्द्रभूति नामक अनगार—यावत्—समीप ही उत्कुटुक आसन से बैठे हुए—यावत्—विचरण कर रहे थे।

तब उन भगवान गौतम को ध्यानान्तरिका में वर्तते हुए इस प्रकार का यह आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ—'महान् ऋद्धि संपन्न—यावत्—महाप्रभावशाली दो देव श्रमण भगवान महावीर के समीप प्रादुर्भूत हुए हैं, आये हैं, मैं उन देवों को नहीं जानता हूँ कि वे कौन से कल्प से, कौन से स्वर्ग से और कौन से विमान से यहाँ आये हैं और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं?

इसलिये मैं जाऊँ और श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार करूँ—यावत्—पर्युपासना करूँ और इसके बाद यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछूँ।" इस प्रकार का विचार किया, विचार करके अपने आसन से उठे, उठकर जहाँ श्रमण भगवान महावीर विराजमान थे, वहाँ पहुँचे—यावत्—पर्युपासना करने लगे।

महावीर द्वारा गौतम मनोगत कथन—

श्रमण भगवान महावीर ने भगवान गौतम से इस प्रकार कहा—'हे गौतम! ध्यानान्तरिका में वर्तते हुए तुम्हें इस प्रकार का यह आध्यात्मिक—यावत्—संकल्प उत्पन्न हुआ "जिसके कारण तुम यहाँ मेरे पास शीघ्र आये हो तो हे गौतम! यह बात ठीक है?"

गौतम स्वामी ने कहा—'हाँ भगवन्! यह बिल्कुल ठीक है!'

इसके पश्चात् श्रमण भगवान महावीर ने गौतम स्वामी से कहा—'हे गौतम! इसके लिये तुम उन्हीं देवों के पास जाओ, वे देव ही इस और इस प्रकार के वार्तालाप के विषय में तुम्हें बतायेंगे।"

गौतम का देवों के समीप गमन—

३५९. तत्पश्चात् श्रमण भगवान महावीर द्वारा इस प्रकार की आज्ञा मिलने पर भगवान गौतम ने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके जहाँ वे देव थे, उसी ओर चलने के लिये उद्यत हुए।

तब उन देवों ने भगवान गौतम को अपनी ओर आते हुए देखा, देखकर वे हर्षित—यावत्—प्रसन्नहृदय हो शीघ्र ही अपने स्थान से उठकर खड़े हुए, खड़े होकर शीघ्र ही उनके सामने गये, सामने जाकर जहाँ भगवान गौतम थे, वहाँ आये,

महासुक्काओ कप्पाओ महासमाणाओ विमाणाओ दो देवा महिड्ढिया-जाव-पाउब्भूआ तए णं अम्हे समणं भगवं महावीरं वंदामो णमंसामो वंदित्ता नमंसित्ता मणसा चेव इमाइं एयारूवाइं वागरणाइं पुच्छामो—

आकर—यावत्—नमस्कार करके इस प्रकार कहा—'हे भगवन् ! महाशुक्र कल्प के महासामान नामक विमान के महान ऋद्धि वाले हम दो देव—यावत्—यहाँ प्रादुर्भूत हुए हैं—आये हैं।' तत्पश्चात् हमने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके मन से ही यह और इस प्रकार का प्रश्न पूछा—

कइ णं भंते ! देवाणुप्पियाणं अंतेवासिसयाइं सिज्झिहिंति-जाव-अंतं करेहिंति ? तए णं समणे भगवं महावीरे अम्हेहिं मणसा पुट्ठे अम्हं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरेइ-एवं खलु देवाणुप्पिया ! मम सत्त अंतेवासिसयाइं-जाव-अंतं करेहिंति

'हे भगवन ! आप देवानुप्रिय के कितने सौ अन्तेवासी सिद्ध होंगे—यावत्—सर्व दुःखों का अंत करेंगे ?' तब श्रमण भगवान महावीर ने हमारे द्वारा मन से पूछे गये प्रश्न का हमें मन से ही यह और इस प्रकार का उत्तर दिया—'हे देवानुप्रियो ! मेरे सात सौ अन्तेवासी—यावत्—सर्व दुःखों का अन्त करेंगे।

तए णं अम्हे समणेणं भगवया महावीरेणं मणसा चेव पुट्ठे णं मणसा चेव इमं एयारूवं वागरणं वागरिया समाणा समणं भगवं महावीरं वंदामो नमंसामो वंदित्ता नमंसित्ता-जाव-पज्जुवासामो त्ति कट्टु भगवं गोयमं वंदति नमंसंति वंदित्ता नमंसित्ता जामेव दिसिं पाउब्भूया तामेव दिसिं पडिगया।

— भगवई श० ५ उ० ४

इसके बाद इस प्रकार मन द्वारा पूछे हुए प्रश्न का उत्तर श्रमण भगवान महावीर की तरफ से मन द्वारा प्राप्त कर हमने श्रमण भगवान महावीर को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके यावत्—पर्युपासना कर रहे हैं।' इस प्रकार कहकर उन देवों ने भगवान गौतम को वंदन-नमस्कार किया, वंदन-नमस्कार करके वे देव जिस दिशा से आये थे, वापस उसी दिशा में लौट गये।

॥धर्मकथानुयोग सम्पूर्ण॥

परिशिष्ट

धम्मकहाणुओगो

धर्मकथानुयोग

- प्रथम एवं द्वितीय भाग (सम्पूर्ण छह स्कन्ध)
  को सन्दर्भ स्थल सहित चरित सूची

- प्रथम एवं द्वितीय भाग (सम्पूर्ण छह स्कन्ध)
  को अकरादिक्रम से शब्द-सूची (वर्गीकृत)

चरित सन्दर्भ स्थल सूची

[धर्मकथानुयोग : प्रथम भाग]

क्रमांक कथानक	संदर्भ स्थल	पृष्ठांक
प्रथम स्कन्ध—उत्तम पुरुष कथानक		१–२५७
मंगल सूत्र	भगवती, स० १, उ० १, सु० १	४
	आवश्यकनिर्युक्ति गा० १८	
	आव० अ० ४, सु० १२,१३,१४	
१. कुलकर	ठाणं	४–६
	समवायांग	
	जंबुद्दीवपण्णत्ति	
२. ऋषभचरित्र	कप्पसुत्तं	६–४४
	जंबुद्दीवपण्णत्ति	
	पण्हावागरणं, संवरद्वार	
	ठाणं	
३. मल्लीजिन चरित्र	नायाधम्मकहाओ, सु० १, अ० ८	४४–८७
४. अरिष्टनेमि चरित्र	कप्पसुत्तं	८७–९०
५. पार्श्व चरित्र	कप्पसुत्तं	९०–९४
६. महावीर चरित्र	समवायांग	९५–१५०
	कप्पसुत्तं	
	आयारांग	
	भगवती	
	आव०	
	ओव०	
	ठाणं	
७ महापद्म चरित्र	ठाणं	१५१–१५६
८. तीर्थंकर सामान्य	ठाणं	१५७–१८८
	समवायांग	
	जंबुद्दीवपण्णत्ति	
	भगवई	
	नायाधम्मकहाओ	
	कप्पसुत्तं	
	ओव०	

क्रमांक कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
९. भरत चक्रवर्ती चरित्र	जंबुद्दीवपण्णत्ति ठाणं	१८९–२४७
१०. चक्रवर्ती सामान्य	समवायांग ठाणं जंबुद्दीवपण्णत्ति	२४७–२५२
११. बलदेव-वासुदेव सामान्य	समवायांग ठाणं	२५२–२५७
द्वितीय स्कन्ध—श्रमण कथानक		**१–३७९**
१. विमलतीर्थ में महाबल	भगवई, स० ११, उ० ११	५–२२
२. मुनिसुव्रततीर्थ में कार्तिक श्रेष्ठि आदि	भगवई, स० ११, उ० १८	२२–२६
३. मुनिसुव्रततीर्थ में गंगदत्त श्रमण	भगवई स० १५, उ० ५	२६–२९
४. अरिष्टनेमितीर्थ में चित्त-संभूतीय कथानक	उत्तरा०, अ० १३	२९–३२
५. अरिष्टनेमितीर्थ में निषढादि श्रमण	वण्हि० अ० १	३२–३९
६. अरिष्टनेमितीर्थ में गौतमादि अनगार	अंतगड, व० १, अ० १	३९–४२
समुद्रादि अनगार	अंतगड व० १, अ० २-१०	४१
अक्षोभकुमार आदि अनगार	अंतगड, व० २, अ० १–८	४१
७. अरिष्टनेमितीर्थ में अणीयसकुमार और अन्य	अंतगड, व० ३ अ० १	४२–४३
अनन्तसेन कुमारादि अनगार	अंतगड व० ३, अ० २–६	४३
सारणकुमार श्रमण	अंतगड व० ३, अ० ७	४३
८. अरिष्टनेमितीर्थ में गजसुकुमालादि श्रमण	अंतगड, व० ३, अ० ८	४३–६४
९. अरिष्टनेमितीर्थ में सुमुखादि कुमार		६५
दुर्मुख, कूपदारक, अनाधृष्टि कुमार	अंतगड, व० ३, अ० ९-१३	६५
१०. जालि आदि श्रमण	अंतगड, व० ४, अ० १–१०	६५–६६
११. अरिष्टनेमितीर्थ में थावच्चापुत्र और अन्य	णाया० सु० १, अ० ५	६६–९१
शुक परिव्राजक		७५
शैलक		८४
पंथक		८८
१२. रथनेमि श्रमण का राजीमती द्वारा समुद्धार	उत्तरा० अ० २२	९१–९५
१३. पार्श्वतीर्थ में अंगति, सुप्रतिष्ठ और पूर्णभद्रादि	पुप्फि० उवं० ३, अ० २, ५–१०	९५–९९
अंगति		९६
सुप्रतिष्ठित अनगार	पुप्फि० उवं० ३, अ० २	९७
पूर्णभद्र अनगार	पुप्फि० उवं० ३, अ० ५	९८
मणिभद्र श्रमण	पुप्फि० उवं० ३, अ० ६	९९
दत्त आदि अन्य अनगार	पुप्फि० उवं० ३, अ० ७–१	९९

क्रमांक कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
१४. जितशत्रु-सुबुद्धि कथानक	णाया० सु० १, अ० १२	१००–१०८
१५. नमि राजर्षि	उत्तरा० अ० ९	१०८–११३
१६. महावीरतीर्थ में ऋषभदत्त देवानन्दा चरित्र	भगवई स० ९, उ० ३३	११३–११८
१७. बालतपस्वी मौर्यपुत्र तामली अनगार	भगवई स० ३, उ० १	११८–१२७
१८. आर्द्रक का अन्यतीर्थिकों के साथ वाद	सूय० सु० २, अ० ६	१२८–१३४
१९. महावीरतीर्थ में अतिमुक्तक कुमार	अंत०, व० ६, अ० १५	
श्रमण	भग० स० ५, उ० ४	१३४–१३८
२०. महावीरतीर्थ में अलक्ष्य राजा	अंत० व० ६, अ० १६	१३९
२१. महावीरतीर्थ में मेघकुमार श्रमण	णाया० अ० १	१३९–१९५
२२. महावीरतीर्थ में मंकाई आदि श्रमण	अंत० व० ६, अ० १–२	१९६
किंकिम आदि १५ श्रमण	,, ,,	१९६
२३. महावीरतीर्थ में अर्जुन मालाकार	अंत० व० ६, अ० ३	१९७–२०४
२४. महावीरतीर्थ में काश्यपादि श्रमण	अंत० वर्ग ६, अ० ४–१४	२०५
क्षेमक, धृतिधर, कैलाश, हरिचंदन, वारत्त सुदर्शन, सुप्रतिष्ठ, पूर्णभद्र, सुमनभद्र, मेघ गाथापति—श्रमण	अंत० वर्ग ६, अ० ४–१४	२०५
२५. महावीरतीर्थ में श्रेणिकपुत्र जालि आदि श्रमण	अणुत्त० व० १, अ० १	२०६–२०८
जालि, मयालि, उपजालि, पुरुषसेन, वारिसेन,	अणुत्त० व० १, अ० २–१०	२०६
दीर्घदन्त, लष्ठदंत, वेहल्ल, वेहायस, अभय दीर्घसेन आदि १३ श्रमण	अणुत्त० व० २, अ० १–१३	२०७
२६. महावीरतीर्थ में सार्थवाहपुत्र धन्य अनगार	अणुत्त० व० ३, अ० १	२०८–२१९
२७. महावीरतीर्थ में सुनक्षत्रादि श्रमण	अणुत्त० व० ३, अ० २	२१९–२२०
ऋषिदास, पेल्लक, रामपुत्र, चन्द्रिम पृष्ठिम, पेढालपुत्र, पोट्टिल, वेहल्ल अनगार	अणुत्त० व० ३, अ० ३–१०	
२८. महावीरतीर्थ में सुबाहुकुमार श्रमण	विवागसुयं सु० २, अ० १	२२१–२२६
२९. महावीर तीर्थ में भद्रनन्दी आदि श्रमण	विवागसुयं सु० २, अ० २–१०	२२७–२२९
भद्रनन्दी	,, ,, अ० २	२२७
सुजात	,, ,, अ० ३	२२७
सुवासव	,, ,, अ० ४	२२७
जिनदास	,, ,, अ० ५	२२८
धनपति	,, ,, अ० ६	२२८
महाबल	,, ,, अ० ७	२२८
भद्रनन्दी	,, ,, अ० ८	२२८
महच्चन्द्र	,, ,, अ० ९	२२८
वरदत्त	,, ,, अ० १०	२२९

क्रमांक कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
३०. महावीरतीर्थ में श्रेणिकनप्तृ (पौत्र)		
पद्म आदि श्रमण और अन्य	कप्पव० अ० ३–१०	२२९–२३१
	,, ,,	२२९
महापद्म आदि श्रमण		२३०
३१. महावीरतीर्थ में हरिकेशबल श्रमण	उत्तरा० अ० १२	२३१–२३६
३२. महावीरतीर्थ में जयघोष विजयघोष मुनि	उत्तरा० अ० १५	२३६–२४०
३३. महावीरतीर्थ में अनाथी महानिर्ग्रन्थ	उत्तरा० अ० २०	२४०–२४६
३४. महावीरतीर्थ में समुद्रपालीय कथानक	उत्तरा० अ० २१	२४६–२४८
३५. महावीरतीर्थ में मृगापुत्र-बलश्री श्रमण	उत्तरा० अ० १९	२४८–२५६
३६. महावीरतीर्थ में गर्दभाली और		
संजय राजा	उत्तरा० अ० १८	२५६–२६१
३७. महावीरतीर्थ में इषुकार राजादि		
छह श्रमण	उत्तरा० अ० १४	२६१–२६६
३८. महावीरतीर्थ में स्कन्धक परिव्राजक	भगवई स० २, उ० १	२६६–२८२
३९. महावीरतीर्थ में मुद्गल परिव्राजक	भगवई स० ११, उ० १२	२८२–२८६
४०. महावीरतीर्थ में शिव राजर्षि	भगवई स० ११, उ० ९	२८६–२९६
४१. महावीरतीर्थ में उदायन राजा कथानक	भगवई स० १३, उ० ६	२९६–३०३
४२. महावीरतीर्थ में जिनपालित		
जिनरक्षित ज्ञात	णाया० सु० १, अ० ९	३०३–३१९
४३. महावीरतीर्थ में कालास्यवेषियपुत्र	भगवई स० १, उ० ९	३१९–३२१
४४. महावीरतीर्थ में उदकपेढालपुत्र	सूय० सु० २, अ० ७	३२२–३३९
४५. महावीरतीर्थ में नन्दीफल ज्ञात	णाया० सु० १, अ० १५	३४०–३४४
४६. महावीरतीर्थ में धन्य सार्थवाह कथानक	णाया० सु० १, अ० १८	३४५–३५६
	समवायांग, सम० ७७	
४७. महावीरतीर्थ में कालोदायी कथानक	भगवई स० ७, उ० १०	३५६–३६१
४८. पुण्डरीक-कण्डरीक कथानक	णाया० सु० १, अ० १९	३६२–३६९
४९. महावीरतीर्थ में स्थविरावली	कप्पसुत्त	३६९–३७९
	नन्दीसुत्त	

धर्मकथानुयोग : द्वितीय भाग

तृतीय स्कन्ध—श्रमणी कथानक		**१–१२४**
१. अरिष्टनेमितीर्थ में द्रौपदी कथानक	णाया० सु० १, अ० १६	४–६४
२. अरिष्टनेमितीर्थ में पद्मावती आदि		
श्रमणियों के कथानक	अंत० व० ५, अ० १–१०	६५–७१
गौरी, गांधारी, लक्ष्मणा, सुसीमा,		
जाम्बवती,		
सत्यभामा, रुक्मिणी		७०
मूलश्री, मूलदत्ता		७१
३. पोट्टिला कथानक	णाया० सु० १, अ० १४	७१–७८

क्रमांक	कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
४.	पार्श्व तीर्थ में श्रमणी काली कथानक	णाया० सु० २, व० १, अ० १	८७–९५
५.	पार्श्वतीर्थ में राजी आदि के कथानक	णाया० सु० २	९५–१०१
	राजी कथानक	णाया० सु० २, व १, अ० २	९५
	रजनी कथानक	,, ,, ,, अ० ३	९६
	विद्युता कथानक	,, ,, ,, अ० ४	९६
	मेघा कथानक	,, ,, ,, अ० ५	९७
	शुम्भा कथानक	णाया० सु० २, व० २, अ० १	९७
	निशुम्भा, रम्भा, निरम्भा, मदना के कथानक	,, ,, ,, अ० २–५	९७
	इला कथानक	णाया० सु० २, व० ३, अ० १	९७
	सेतरा, सौदामिनी, इन्द्रा, घनविद्युता के कथानक	,, ,, ,, अ० २–६	९८
	शेषदाक्षिणात्य इन्द्र की अग्रमहिषी-कथानक सूचना	,, ,, ,, अ० ७–५४	९८
	रूपा आदि उत्तरार्ध इन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ४, अ० १	९८
	सुरूपा, रूपांशा आदि अग्रमहिषियों के कथानक	,, ,, ,, अ० २–५४	९८
	दाक्षिणात्य पिशाचकुमारेन्द्र की कमला आदि अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ५, अ० १–३२	९८–९९
	महाकाली आदि उत्तरार्ध पिशाचेन्द्रों की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ६, अ० १–३२	९९
	सूर्य की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ७, अ० १–४	९९
	सूर्यप्रभादेवी का कथानक	,, ,, ,, अ० १	९९
	आतपा, अर्चिमाली, प्रभंकरा देवियों के कथानक	,, ,, ,, अ० २–४	९९
	चन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ८, अ० १–४	९९
	चन्द्रप्रभा देवी का कथानक	,, ,, ,, अ० १	१००
	दोषिनाभा, अर्चिमाली, प्रभंकरा देवियों के कथानक	,, ,, ,, अ० २–४	१००
	पद्मावती आदि शक्र की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० ९, अ० १–८	१००
	कृष्णा आदि ईशानेन्द्र की अग्रमहिषियों के कथानक	णाया० सु० २, व० १० अ० १८	१००
६.	पार्श्वतीर्थ में भूता आदि श्रमणियों के कथानक	पुप्फचूलिया अ० १–१०	१०१–१०५
	(भूता) श्रीदेवी कथानक	,, अ० १	१०१
	ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी, इला, सुरा, रस, गन्ध देवियों के कथानक	,, अ० २–१०	१०४

क्रमांक	कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
७.	पार्श्वस्था श्रमणी सुभद्रा का कथानक	पुप्फिया अ० ४	१०५–११६
८.	महावीरतीर्थ में नन्दादिक के कथानक (नन्दा, नन्दवती, नन्दोत्तरा, नन्दश्रेणिका, मरुता, सुमरुता, महामरुता, मरुदेवा, भद्रा, सुभद्रा, सुजाता, सुमनायिका, भूतदत्ता)	अंत० व० ७, अ० १–१३	११६
९.	महावीरतीर्थ में काली आदि श्रमणियों के कथानक (काली, सुकाली, महाकाली, कृष्णा, सुकृष्णा, महाकृष्णा, वीरकृष्णा, रामकृष्णा, पितृसेनकृष्णा, महासेनकृष्णा)	अंत० व० ८, अ० १–१०	११७–१२०
१०.	महावीरतीर्थ में जयन्ती का कथानक	भगवई स० १२, उ० २	१२१–१२३

चतुर्थ स्कन्ध—श्रमणोपासक कथानक **१–३२०**

क्रमांक	कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
१.	पार्श्वतीर्थ में सोमिल माहण कथानक	पुप्फिया अ० ३	३–११
२.	पार्श्वतीर्थ में प्रदेशी कथानक	रायपसेणी १	११–१२५
३.	महावीरतीर्थ में तुंगिया नगरी निवासी श्रमणोपासक	भगवई स० २, उ० ५	१२५–१२८
४.	महावीरतीर्थ में नन्दमणियार कथानक	णाया० सु० १, अ० १३	१२८–१३८
५.	महावीरतीर्थ में आनंद गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० १	१३८–१५८
६.	कामदेव गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० २	१५८–१७७
७.	चुलनीपिता गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ३	१७७–१८७
८.	सुरादेव गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ४	१८८–१९९
९.	चुल्लशतक गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ५	१९९–२१०
१०.	कुण्डकौलिक गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ६	२१०–२१८
११.	सद्दालपुत्र कुम्भकार कथानक	उवासगदसा अ० ७	२१९–२३९
१२.	महाशतक गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ८	२४०–२५०
१३.	नंदिनीपिता गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० ९	२५०–२५५
१४.	लेतिकापिता गाथापति कथानक	उवासगदसा अ० १०	२५५–२६०
१५.	ऋषिभद्रपुत्रादि श्रमणोपासक	भगवई स० ११, उ० १२	२६१–२६४
१६.	शंख और पुष्कली श्रमणोपासक	भगवई स० १२ उ० १	२६४–२७१
१७.	नागपौत्र वरुण श्रमणोपासक	भगवई स० ७, उ० ९	२७१–२७५
१८.	सोमिल ब्राह्मण श्रमणोपासक	भगवई स० १८, उ० १०	२७६–२८०
१९.	भगवान महावीर के श्रमणोपासकों की देवलोक स्थिति का प्ररूपण	ठाणं अ० ४, उ० ३	२८०
२०.	कोणिक का महावीर समवसरण-गमन, धर्मश्रवण प्रसंग	ओव० सु० २७–३७	२८०–३०५
२१.	अम्बड परिव्राजक कथानक	ओव० सु० ३९–४०	३०५–३१४
२२.	हस्तीराज उदाई और भूतानन्द	भगवई स० १७, उ० १२	३१४–३१५
२३.	मद्दुक श्रमणोपासक कथा	भगवती स० १८, उ० ७	३१५–३१८

क्रमांक कथानक	सन्दर्भ स्थल	पृष्ठांक
पंचम स्कन्ध—निन्हव कथाएँ		**१–८०**
१. सात निन्हवों के नाम, धर्माचार्य, नगर-निर्देश	ठाणं० अ० ७	३
२. जमालि निन्हव कथानक	भगवई स० ६, उ० ३३	३–२७
३. आजीवक तीर्थंकर गोशाल कथानक	भगवई स० १५	२७–७६
षष्ठ स्कन्ध—प्रकीर्णक कथानक		**१–१७२**
१. श्रेणिक-चेलना के अवलोकन से साधु-साध्वियों द्वारा कृत निदान प्रसंग	दसासुय० १०	४–१०
२. रथमूसल संग्राम	भगवई स० ७, उ० ६	१०–१२
३. रथमूसल संग्राम में कालादि की मरणकथा	निर० अ० १–१०	१३–३२
(काल, सुकाल, महाकाल, कृष्ण, सुकृष्ण, महाकृष्ण, वीरकृष्ण, रामकृष्ण, प्रियसेन-कृष्ण, महासेनकृष्ण)	निर० अ० १–१०	१३
४. महाशिला-कंटक संग्राम कथानक	भगवई स० ७, उ० ६	३३–३४
५. विजय तस्कर ज्ञात—आख्यान	णाया० सु० १, अ० २	३५–५१
६. मयूरी अंड ज्ञात	णाया० सु० १, अ० ३	५१–५८
७. कूर्मज्ञात	णाया० सु० १, अ० ४	५८–६२
८. रोहिणी ज्ञात	णाया० सु० १, अ० ७	६२–७२
९. अश्वज्ञात	णाया० सु० १, अ० १७	७३–८२
१०. मृगापुत्र कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० १	८२–९४
११. उज्झितक कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० २	९४–१०६
१२. अभग्नसेन कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ३	१०६–११८
१३. शकट कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ४	११९–१२३
१४. बृहस्पतिदत्त कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ५	१२४–१२७
१५. नंदीवर्धन कुमार कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ६	१२८–१३३
१६. उम्बरदत्त कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ७	१३३–१४१
१७. शौरिकदत्त कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ८	१४१–१४५
१८. देवदत्ता कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० ९	१४६–१५५
१९. अंजू कथानक	विवागसुयं सु० १, अ० १०	१५५–१५८
२०. पूरण बालतपस्वी कथानक	भगवई स० ३, उ० २	१५८–१७०
२१. महाशुक्र देवों का भगवान महावीर के समीप आगमन प्रसंग	भगवई स० ५, उ० ४	१७०–१७२

□ □

परिशिष्ट २

धर्मकथानुयोग : प्रथम एवं द्वितीय भाग की संयुक्त विशिष्ट शब्द सूची

व्यक्ति नाम-सूची

[प्रथम अंक स्कन्ध का तथा द्वितीय अंक उसी के पृष्ठ का सूचक है]

अइबल १।२४७

अइमुत्तकुमार समण २।४७

अइ(ति)मुत्तकुमार समण (महावीर शिष्य) २।१३४, ५३५, १३६, १३७, १३८

अमल २।३६

अक्खोभ २।३६, ४१

अगडदद्दुर १।७२

अग्गिमाणव ३।६८

अग्गिमित्ता (सद्दालपुत्त की भार्या) ४।२१६, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २३५, २३६, २३७, २३८

अग्गिवेसायण ५।२८, ४२

अग्गिसिह ३।६८

अचल २।४१

अच्चुय (अच्युतेन्द्र) १।२३, २६, २७, २६, ३०, ४१, ८३

अच्छिद्द ५।२८, ४२

अजियसेण २।४२

अज्जदिण्ण (पार्श्व जिन का प्रमुख श्रमण) १।६३

अज्जुण (अर्जुन) ३।३१

अज्जुण गोमायुपुत्त ५।२८, ४२

अज्जुण (सुघोष नगर का राजा) २।२२८

अज्जुण मालाग(गा)रार २।१६७, १६८, १६६, २००, २०२, २०३, २०४

अणाढिय २।६६

अणाहिट्ठी २।४२, ६५

अणाही (महानियंठ) २।२४०-२४६

अ(णि)निरुद्ध २।६५, ६६, ३।६६

अणिहयरिऊ २।४२

अणीयसकुमार २।४२

अणंतसेण २।४२, ४३

अतिमुत्त २।१६६

अदीणसत्तू (जितशत्रु राजा का युवराज) २।१००, १०८

अदीणसत्तू (अदीनशत्रु) (कुरुराज) १।४८, ५०, ६६, ६६, ८०

अदीणसत्तू राया (हस्तिशीर्ष नगर का राजा) २।२२१, २२२, २२४

अद्दग (आर्द्रक) २।१२८, १२६, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४

अभवालए २।३५७

अपराइया ३।६८

अपडिहय राया (सौगन्धिका नगरी का राजा) २।२२८

अभग्गसेण चोर सेणावई ६।१०६, १०८, ११०, ११२, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८

अभयकुमार (श्रेणिक-पुत्र) २।१५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५७, २०६, २०७, ६।१६, १८, १६

अभिचन्द(द्र) (महाबल राजा का मित्र) १।४५

अभिचन्द २।४१

अभीयीकुमार २।२६७, २६८, २६६, ३०२

अमम अरहा ३।६७

अमियगति ३।६८

अमितवाहण ३।६८

अम्मड परिव्वायग ४।३०६, ३०७, ३०८, ३०६, ३१०

अय(च)ल (महाबल राजा का मित्र) १।४५

अयंपुल (आजीविकोपासक) ५।५६, ६०, ५१, ६२

अर (तित्थयर) २।२६०

अरहण्णग वाणियग (अर्हन्नक वणिक) १।५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५६, ६०, ६१, ६२

अरहदत्ता (महचंदकुमार की भार्या) २।२२८

अरिट्ठनेमि अरहा १।८७, ८८, ८६, ६०, २।२६,३२, ३४, ३५,

३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४६, ४७, ४८, ४९, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६९, ७२, ७३, ७४, ७८, ९२, ९३, ३।६२-७१
अलक्क २।१९६
अलक्कराया (अलक्ष राजा) २।१३९
अवईसा ३।९८
अस्सिणी (नंदिनीपिता श्रमणोपासक की भार्या) ४।२५१, २५३,
अंगइ (अंगति) २।९६
अंजू ६।१५५, १५६, १५७
अंधगवण्ही (अंधकवृष्णि) २।४०, ४१, ४२, ९४
आइच्चजस (आदित्ययश) १।२४७
आणंद (श्रेणिक-पौत्र) २।२२९
आणंद (थेरे) ५।४४, ४७, ४८, ४९
आण(न)न्द गाहावई (समणोवासग) ४।१३८, १३९, १४०, १४३, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८
आनन्द गाहावई ५।३४, ३५
आसत्थाम ३।२१
आसमित्त (निन्हव) १।१५०
आसमित्त ,, ५।३
आसाढ (निन्हव) १।१५०, ५।३
इल गाहावई ३।९७
इलसिरी (इल गाथापति की भार्या) ३।९७
इला ३।९७, १०१
इसिदास २।२०८, २२०
इसिभद्दपुत्त (समणोवासग) ४।२६१, २६२, २६३
इंददत्त राया (इन्द्रपुर नरेश) ६।१५६
इंदपुत्त अणगार २।२२८
इंदा (देवी, समर्गा) ३।९८
ईसाण इंद १।२३, ३०, ४१, ४३, ८४
ईसाणग्गमहिसी ३।१००, १०१
उग्गसेण २।३३, ४०
उग्गसेण ३।२८, ३६
उज्झियग (सत्थवाहपुत्त) ६।९४, ९५, ९६, ९७, १०२, १०३, १०४, १०५
उज्झिया ६।६३, ६४, ६८, ६९
उत्तमा ३।९८
उत्तरिल्लपिसाय-इंदग्गमहिसी ३।९९
उदय २।३५७
उदयण राया ३।१२१, १२२
उदयणकुमार (कोशांबीनरेश शतानीक का पुत्र) ६।१२४, १२६
उदयपेढालपुत्त २।३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३३८, ३३९
उदायण २।२६०
उदायी कुण्डियायणीय गोत्तीय ५।५०, ५२
उदायी हत्थिराया ४।३१४
दियोदिय (पुरिमताल नगर का राजा) ६।१०९
उद्दायण राया २।२९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०१, ३०२
उप्पला ३।९८
उप्पला (भीम कूडग्गाह की भार्या) ६।९८, ९९, १००
उप्पला (संख समणोवासग की भार्या) ४।२६४, २६५, २६६
उम्बरदत्त दारक ६।१३३, १४०, १४१
उसभालि २।५५, ६६
उसभालि २।२०६
उसभालि ३।६६
उसुयार राया २।२६१, २६५, २६६
उसभदत्त गाहावई २।२२७
उसभदत्त (माहण) १।९६, ९९, २।११३-११८
उसभसेण (ऋषभसेन गणधर) १।२८
उसह (ऋषभ) (तित्थयर) १।६, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४४, ४९, ८७
कच्छुल्ल नारय ३।३९, ४०, ४१, ४२, ४७
कणगज्झय (कनकध्वज—कनकरथ राजा का पुत्र) ३।७६, ८१, ८२, ८३, ८४, ८६, ८७
कणगकेऊ (अहिच्छत्रा नगरी का राजा) २।३४०, ३४४
कणगकेऊ राया (हत्थिसीसं नगर का राजा) ६।७३, ७६, ७७, ७९, ८०
कणगप्पभा ३।९८
कणगरह (तेयलिपुर का राजा) ३।७१, ७४, ७५, ७६, ८०, ८१
कणगरह (विजयपुर नरेश) ६।१३५, १३६
कणगा ३।९८

कण्डरीय २।३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७

कण्ण अंगराय ३।३१

कण्ह (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३

कण्ह वासुदेव २।२१-३४, ३९, ४०, ४६, ४९-५४, ५८-७३, ९१-९३, ३।२८-३६, ४४-६०, ६५-७१

कण्हसिरी (दत्त गाथापति की भार्या) ६।१४६ १५०, १५१

कण्हा (श्रेणिक की रानी) ३।११९

कण्हादेवी (विजयपुर के राजा वासवदत्त की रानी) २।२२७

कत्तिय सेट्ठी (कार्तिक श्रेष्ठी) २।२३, २४, २५, २६

कमल गाहावई ३।९९

कमलप्पभा ३।९८

कमलसिरि १।४४, ४५

कमलसिरी (कमल गाथापति की भार्या) ३।९९

कमला ३।९८, ९९

कमलावई (इषुकार राजा की रानी) २।२६१, २६५, २६६

कयपालदेव १।२०८, २०९, २२९

करकंडू २।६०

कलाद मूसियादारय ३।७१, ७२, ७३

कविल वासुदेव (धातकीखंड द्वीप के भरतार्द्ध का) ३।५५, ५६, ५७

कंपिल्ल (अणगार) २।३९

कामदेव गाहावई ४।१५८, १५९, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७

कालकुमार २।२२९, २३०

काल (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३, १४, १५, २२, २४, २८, २९, ३०, ३२

काल गाहावई ३।८९, ९२

कालासवेसियपुत्त अणगार २।३१९, ३२०, ३२१

कालसिरि (काल गाथापति की भार्या) ३।८९

काली देवी (कूणिक की विमाता) २।२२९

काली (श्रेणिक की रानी) समणी ३।११७, ११८, ६।१३, १४, १५, ३२

काली (समणी, देवी) ३।८७, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५

कालोदाई २।३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ४।३१५

कासव (श्रमण) २।१९६

कासव गाहावई २।२०५

कित्तीदेवी ३।१०१

किंकिम २।१९६

कीयग (कीचक) ३।३२

कीव (क्लीब—कर्ण) ३।३२

कुलगर (कुलकर) १।४, ५, १५१

कुलगरा (उत्सर्पिणीकाल भरतक्षेत्र) १।५

अभिचन्द १।५

चक्खुमं १।५

जगमं १।७

णाभि १।५

पसेणइ १।५

मरुदेव १।५

विमलवाहण १।५

कुलगरा (वर्तमान अवसर्पिणी काल भरतक्षेत्र के) १।६

अभिचन्द १।६

ऋषभ १।६

खेमंकर १।६

खेमंधर १।६

चक्खुमं १।६

नन्दाभ १।६

जगमं १।६

नाभि १।६

पडिस्सुई (प्रतिश्रुति) १।६

पसेणई (प्रसेनजित) १।६

मरुदेव १।६

विमलवाहण १।६

सीमंकर १।६

सीमंधर १।६

सुमइ १।६

कुलगरा (एरवएवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए) १।५

खेमंकर १।५

खेमंधर १।५

दढधणू १।५

दसधणू १।५

पडिसुई १।५
विमलवाहण १।५
सयधणू १।५
सीमंकर १।५
सीमंधर १।५
संमुइ (सुमति) १।५, १५१
कुलगरा (भारहेवासे आगमेस्साए उस्सप्पिणीए) दस १।५
मित्तवाहण १।५
सयंपभ (स्वयंप्रभ) १।५
सुप्पभ (सुप्रभ) १।५
सुबंधु १।५
सुभूम १।५
सुहुम (सूक्ष्म) १।५
कुलगरा (भारहेवासे आगमिस्साए उस्सप्पिणीए) १।५
खेमंकर १।५
खेमंधर १।५
दढधणू १।५
दसधणू १।५
पडिसुत १।५
विमलवाहण १।५
सतधणु १।५
सीमंकर १।५
सीमंधर १।५
संमुती १।५
कुलगरा (भरतक्षेत्र के अतीत उत्सर्पिणी काल के दस कुलकर)
अणंतसेण १।४
अमितसेण १।४
तक्कसेण १।४
दढरह १।४
दसरह १।४
भीमसेण १।४
महाभीमसेण १।४
सयरह १।४
सयाऊ १।४
सयंजल १।४
कुलगरा (भरतवर्ष के अतीत उत्सर्पिणी काल के सात कुलकर)
महाघोस १।४
मित्तदाम १।४
विमलघोस १।४
सयंपभ १।४
सुघोस १।४
सुदाम १।४
सुपास १।४
कुलगर भारिया १।५
चक्खुकंता (चक्षुष्कांता) १।५
चंदकंता १।५
चंदजसा १।५
पडिरूवा १।५
मरुदेवी १।५
सिरिकंता (श्रीकांता) १।५
सुरूवा (सुरूपा) १।५
कुण्डकोलिय (श्रमणोपासक) ४।२१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८
कुन्थु (तित्थयर) २।२५६
कुम्भ (राजा) १।४८, ४९, ५३, ५४, ६१, ६२, ६४, ६५, ६६, ६९, ७३, ७४, ७५, ७६, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५
कू(को)णियराया २।२२६, २३०, ३०२, ३।११७-११९, ४।२८५-३०५, ३।१०-१४, १६, २१-३४
कूवअ (कूपक) २।४२
कूवदारय २।६५
केउमई ३।९८
केलास २।१९६
केलास गाहावई २।२०५
केसीकुमार (उदायण राजा का भानजा) २।२९७, २९९, ३००, ३०१, ३०२
केसी कुमारसमण ४।७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८८, ९०, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०६, १०७, १०८, १०९, १११, ११३, ११४, ११५, ११६, ११८
केसिसामि २।११
कोंती (कुन्ती) ३।३९, ४०, ४५, ४६, ५९, ६०

खलियमुणि २।२५८, २५९
खेमय २।१९६
खेमय गाहावई २।२०५
खंदय परिव्वायग २।२६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७४, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८२
खंदओ (स्कन्धक) अनगार १।४७
खंदसिरी (विजय चोर सेनापति की भार्या) ६।१०८, ११०, १११, ११२
गद्दभाली मुनि २।२५६, २५७, २५८
गय २।४२
गयसुकुमाल २।५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४
गुढदन्त २।२०७
गोट्ठामाहिल १।१५०, ५।३
गोतास (उज्झियग का पूर्वभव) ६।९७, १०१
गोयम (अणगार) २।३९, ४०, ४१
गोयम (इंदभूइ) १।१४७, १४८, २।२३, २७, २८, २९, ९६, ९७, ९८, ९९, ११६, ११९, १२७, १३५, १३६, १९२, १९४, १९५, २०६, २०७, २१७, २१८, २२०, २२२, २२४, २३०, २६९, २७०, २८१, २८४, २८६, २९२, २९३, २९४, ३०३, ३२२, ३२३, ३२४, ३२५, ३२६, ३२७, ३२८, ३२९, ३३०, ३३१, ३३२, ३३३, ३३४-३३८, ३३९, ३५७, ३५८, ३६९, ३।८९, ९५, ९६, ९७, १०५, १०६, १११, ११२, ११६, ४।३, १०, ३२, ३५, ३६, ४५, ४६, ४९, ५०, ७१, ७२, ११९, १२८, १२९, १३८, १४८, १५२, १५३, १५४, १५५, १५७, १७७, २१०, २१८, २४७, २४८, २४९, २५०, २५५, २६०, २६३, २६४, २७०, २७१, २७५, २८०, ३०८, ३१०, ३१४, ३१८, ५।२४, २५, २६, २७, २९, ३०, ३२, ३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४९, ६८, ६९, ७३, ७४, ६।१०, १२, १५, १६, ३२, ३३, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ९१, ९६, ९७, १०४, १०८, १०९, ११८, ११९, १२०, १२२, १२३, १२४, १२७, १२८, १३२, १३४, १३५, १४०, १४१, १४२, १४६, १५४, १५५, १५७, १५८, १६०, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२
गोरी ३।६५, ७०
गोवालिया अज्जा ३।२२, २४, २६
गोसालग (निन्हव) (मंखलीपुत्त—आजीविय तित्थयर) २।१२८, १२९, १३०, १३१, ४।२१३, २१४, २१५, २१६, २१९, २२०, २२१, २२२, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, ५।२७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५, ३७, ३८, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६६, ६८, ६९, ७२, ७८
गंग १।१५०, ५।३
गंगदत्त २।२५, २६, २७, २८, २९
गंगदत्ता (पाडलिसंड नगर के सागरदत्त सार्थवाह की भार्या) ६।१३३, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०
गंगादेवी १।२२९
गंगेय (गंगापुत्र) ३।३१
[illegible] ३।१०३
गंधारी ३।६५, ७०
गंभीर २।३९
घणविज्जुया ३।९८
घोस ३।९८
चमरिंद १।६४, ४३, ८३, ८४, ६।१६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६९
चित्त (मुनि) २।२९, ३०, ३१, ३२
चित्त अलंकारिय ६।१२८, १३२
चित्त सारहि ४।७१, ७३, ७४, ७५, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८९, ९०, ९२, ११३
चिलाय दासचेड (चोर सेणावई) २।३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४
चुलणीपिया(ता) गाहावई ४।१७७, १७८, १७९, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७
चुलणी (रानी) ३।२७, २८, ३१, ३४, ४२, ४३
चुल्लसयय गाहावई ४।१९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २०९
चुल्लहिमवन्तगिरिकुमार देव १।२२६, २२७, २२८
चेडय राया ३।१२१, ६।१५, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१

चेल्लणा २।१९७, २०७, ६।४, ७, ८, ९, १२, १६, १७, १८, १९, २०, २२, २३, २८
चंदग्गमहिसी ३।९९
चंदच्छाया (अंगराज) १।४८, ५०, ६२
चंदणा अज्जा १।१४८, २।११८, ३।११७, ११८, ११९, १२०
चंदप्पभ गाहावई ३।१००
चंदप्पभा (देवी, समणी) ३।९९
चंदराया (मगिवइया नगरी का राजा) २।९८
चंदसिरि (चंदप्पभ गाथापति की भार्या) ३।१००
चंदिम २।२०८
छलु (षडुलुक-रोहगुप्त) १।१५०, ५।३
छणिय छागलिय (सगड दारक का पूर्वभव का नाम) ६।१२०, १२१
जक्खसिरी ३।४
जक्खिणि (यक्षिणी—अरिष्टनेमि की प्रमुख साध्वी) १।८९, ३।७०
जमाली (निन्हव) १।८४, १५०, २।२१९-२१, ५।३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७
जय (चक्कवट्टी) २।२६०
जयघोस मुणि २।२३६, २३७, २३८, २३९, २४०
जयद्दह ३।३१
जयन्ती समणोवासिया २।१२१, १२२, १२३
जराकुमार ३।६७
जरासंध ३।३२
जलकंत ३।९८
जलप्पभ ३।९८
जसवती—सेसवती (भ० महावीर की दौहित्री) १।११२
जसा (पुरोहितपत्नी) २।२६१, २६४, २६५
जसोया (यशोदा—भ० महावीर की पत्नी) १।११२
जालि २।६५, ६६
जालि (श्रेणिकपुत्र श्रमण) २।२०६, २०७
जालि (श्रीकृष्ण-पुत्र) ३।६६
जिणदास २।२२१, २२८
जिणपालिय २।३०३, ३१५, ३१७, ३१८, ३१९
जिणदत्त सत्थवाह २।१३, १४, १५, १७, १८
जिणरक्खिय २।३०३, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८
जिनदत्त (सत्थवाहदारग) ६।५१, ५६, ५७
जियसत्तू राया (भद्दिलपुर नरेश) २।४२
जियसत्तू राया (चंपापति सुबुद्धि मंत्री) २।१००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०५, १०६, १०७, १०८
जियसत्तू (आमलकप्पा नगरी का राजा) ३।८९, ९६
जियसत्तू (आलभिका नरेश) ४।१९९, २००
जियसत्तू (काकंदी नगरी का राजा) २।२०८, २०९, २१०, २१९
जियसत्तू राया (कांपिल्यपुर नरेश) ४।२१०, २११
जियसत्तू राया (चंपानरेश नन्दीफल ज्ञात) २।३४०
जियसत्तू राया (कामदेव श्रावक) ४।१५८, ५९
जियसत्तू (तिगिच्छी नगरी नरेश) २।२२८
जियसत्तू (पोलासपुर नरेश) ४।२१९, २२१
जियसत्तू (पंचालाधिपति) १।४८, ५०, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८५
जियसत्तू (राजगृह नरेश) ३।१०१
जियसत्तू (वाणियगाम का राजा) ४।१३८, १३९
जियसत्तू (वाराणसी नरेश) ४।१७७, १७८, १८८
जियसत्तू (सर्वतोभद्र नगर का राजा) ६।१२४, १२५
जियसत्तू राया (श्रावस्ती नरेश) ३।६७, ४।७३-७५, ८०, ८१, ४।२५०-५१, २५५-५६
जुत्ती २।३२
जुहिट्ठिल्ल (युधिष्ठिर) ३।३१, ४३, ४४, ४५, ४९, ६२, ६३, ६४, ६७
जंबवई २।६६, ३।६५, ७०
णट्टमालगदेव १।२२९, २३०
णमि (विद्याधर राजा) १।२२८, २२९
णंदिवद्धण (भ० महावीर के ज्येष्ठ भ्राता) १।११२
तत्तवई (सुघोष नगर नरेश अर्जुन की रानी) २।२२८
तामली (मोरियपुत्र) बालतवस्सी २।११८, १२०, १२१, १२२, १२३, १२४, १२५, १२६
तिसला (त्रिशला—भ० महावीर की माता) १।९८, ९९, १००, १०७, ११२
तीसगुत्त (तिष्यगुप्त) १।१५०, ५।३
तेयलिपुत्त ३।७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७

थावच्चा गाहावई २।६७, ६६, ७०, ७२, ७३
थावच्चापुत्त २।६७, ६६, ७०, ७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७६, ८०, ८१, ८२, ८३
दढनेमी (अरिष्टनेमितीर्थ) २।६५, ६६, ३।६६
दढपइण्ण २।१५, १६, ४।३१०, ३११, ३१२, ३१३
दढपइण्ण (गोशाल का अंतिम भव) ४।१५५, ७६
दढपइण्ण (सूर्याभदेव का आगामी भव का नाम) ४।१२०, १२१, १२२, १२३, १२४
दढरह २।२२
दत्त अणगार २।६६
दत्त गाहावई ६।१४६, १५०, १५१
दत्त राया (चम्पा नगरी का राजा) २।२२८
दद्दुर ४।१३५, १३६, १३७
दद्दुर देव ४।१२८, १२६, १३७, १३८
दमदन्त राया ३।२१
दसण्णरज्ज २।२६०
दसधणू २।३२
दसरह २।३२
दारुअ २।४२
दारुय ३।४६, ५०, ५१
दाहिणिल्ल पिसायकुमारिंदअग्गमहिसी ३।६८
दिक्खियराया १।१५०
दीवायण (तवस्सी) ३।६५, ६७, ६८
दीहदंत २।२०६
दीहसेण २।२०७
दुज्जोहण ३।३१
दुज्जोहण चारगपाल ६।१२६, १३०, १३१
दुम २।२०७
दुमसेण २।२०७
दुम्मुह (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।४२, ६५
दुम्मुह (प्रत्येकबुद्ध) २।२६०
दुवयराया ३।२७, २८, २६, ३१, ३२, ३३, ३४, ३५. ३७, ४२, ४३
देवई (देवकी) २।४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४६, ५०, ५१, ५३, ५४, ६१
देवदत्ता ६।१४६, १५०, १५१, १५२, १५३, १५४, १५५
देवदिन्न (धण सत्थवाह का पुत्र) ६।४१, ४२, ४३, ४४
देवसेण (महापद्म तीर्थंकर का दूसरा नाम) १।१५२
देवसेण (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।४२
देवाणंदा माहणी १।६५, ६६, ६६, २।११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८
दोण ३।३१
दोवई ३।४, २७, २८, २६, ३१, ३३, ३४, ३५, ३६ ३७, ३८, ३६, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ४६, ५०, ५१, ५४, ५५, ५६, ५८, ६०, ६१, ६२, ६४
धट्ठज्जुण कुमार ३।२७, २८, २६, ३१, ३४, ३५, ३६
धण २।३४५
धणगोव २।३४५
धणगोव [धण सत्थवाह (रोहिणीणाय) का पुत्र] ६।६३
धण (णाय) ६।४६, ५०
धणदेव २।३४५
धणदेव [धण सत्थवाह (रोहिणीणाय) का पुत्र] ६।६३
धणपाल २।३४५
धणपाल [धण सत्थवाह (रोहिणीणाय) का पुत्र] ६।६३
धणपाल राया २।२२७
धणरक्खिय २।३४५
धणरक्खिय [धण सत्थवाह (रोहिणीणाय) का पुत्र] ६।६३
धणवई (सुखविपाक का छठा अध्ययन गत श्रमण) २।२२१
धणवई (वेसमण युवराज का पुत्र) २।२२८
धणवई (सयदुवार नगर का राजा) ६।८८
धण सत्थवाह (राजगृह नगरी का) २।३४५, ३४६, ३५०, ३५१, ३५२, ३५३, ३५४, ३५५
धण सत्थवाह (रोहिणी णाय) ६।६२, ६३, ६४, ६५, ६७, ६८, ६६, ७०, ७१
धण सत्थवाह (विजयतस्कर ज्ञात) ६।३५, ३६, ३८, ४०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८ ४६, ५०
धणावह राया (ऋषभपुर का राजा) २।२२६
धण्णंतरिवेज्ज (उंबरदत्त के पूर्वभव का नाम) ६।१३५, १३६, १३८
धण्णसत्थवाह (चम्पानगरी का—नन्दीफल ज्ञात) २।३४०, ३४१, ३४२, ३४३, ३४४
धण्ण (सार्थवाहपुत्र) २।२०८, २०६, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१८, २१६, २२०

धनदेव सत्थवाह ६।१५५, १५६,
धन्ना (सुरादेव श्रमणोपासक की भार्या) ४।१८८, १९०, १९५, १९६, १९७
धम्मघोस (स्थविर) २।२२३
धम्मघोस आयरिया ३।५, ६, ७, ८, ९, १०
धम्मघोस गाहावई २।२२८
धम्मघोस अणगार २।१९, २०, २१
धम्मरुई अणगार २।२२९
धम्मरुई ३।६, ७, ८, ९, १०
धम्मवीरिय अणगार २।२२८
धम्मसीह अणगार २।२२८
धर राया ३।३२
धरण (असुरेन्द्र) १।२५
धरण (महाबल राजा का मित्र) १।४५
धरण (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।४१
धारिणी (महाबल—मल्लिजिन की पूर्वभव की माता) १।४४
धारिणी (अदीनशत्रु हस्तिशीर्ष नगर के राजा की रानी) २।२२१, २२४
धारिणी (अंधकवृष्णि की रानी) २।४०, ४१, ४२
धारिणी (कूणिय राजा की रानी) ४।२८६
धारिणी (पांचालपति जितशत्रु की रानी) १।७०
धारिणी (चंपापति जितशत्रु राजा की रानी) २।१००
धारिणी (बलदेव की रानी) २।६५
धारिणी (सुप्रतिष्ठपुर नरेश महासेन की रानी) ६।१४६, १४७
धारिणी (रुक्मि राजा की रानी) १।६२
धारिणी (वसुदेव राजा की रानी) २।४३, ५९
धारिणी (हस्तिनापुरपति शिव राजर्षि की रानी) २।२८६
धारिणी देवी (श्रेणिक की रानी) २।१४०, १४१, १४२, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६, १५७, १५८, १६६, १६७, १७९, १८८, २०६, २०७, २०८
धारिणी (आमलकप्पानगरनरेश सेय राजा की रानी) ४।११
धिइदेवी ३।१०१
धिइहर २।१९६
धिइहर गाहावई २।२०५
नउल ३।३१
नग्गई (प्रत्येकबुद्ध) २।२६०
नमि रायरिसी २।१०८-११३, २६०
नवमिया (दाक्षिणात्य पिशाचकुमारेन्द्र की अग्रमहिषी) ३।९८
नाग गाहावई २।४२, ४६, ४७
नागदत्त गाहावई २।२२८
नागसिरी ३।४, ५, ६, ९, १०, ११, १२
नामोदय २।३५७
नाभि कुलकर १।७
निन्नय अंडवाणिय (अभग्गसेन का पूर्वभव का नाम) ६।१०९, ११०
निरम्भा (देवी, समणी) ३।९७
निसढ (निषध श्रमण) २।३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ३७, ३८
निसुम्भा (देवी, समणी) ३।९७
नंद (अरिष्टनेमि का प्रमुख श्रावक) १।८९
नंद मणियार ४।१२९, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४ १३५
नंदण २।२२९
नन्दा देवी (श्रेणिक की रानी) २।१३९, २०७, ६।१६
नंदाइ (श्रेणिक राजा की तेरह रानियां) समणी ३।११६
नन्दिणीपिया गाहावई ४।२५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५५
नंदिवद्धणकुमार (श्रीदाम राजा का पुत्र) ६।१२७, १२८, १२९, १३१, १३२, १३३
नंदीफल (णाय) २।३४०
पउमनाम (अवरकंका नरेश) ३।४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४७, ४९, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८
पउमभद्द २।२२९
पउम अणगार (सेणिय नत्तू) २।२२९, २३०
पउमसेण २।२२९
पउमा ३।९८
पउमावई (शतानीकपुत्र उदयन की रानी) ६।१२४, १२६
पउमावई (शैलक राजा की रानी) २।७४, ८६
पउमावई (रोहीतक नगर के राजा महाबल की रानी) २।३५
पउमावई (शक्र की अग्रमहिषी) ३।१००
पउमावई (प्रतिबुद्ध राजा की रानी) १।५१, ५२, ५३
पउमावई (कूणिय राजा की रानी) २।२३०, ६।१३, २४, २५, ३२
पउमावई (कालकुमार की भार्या) २।२२९, २३०

पउमावई (पुण्डरीकिणी नगरी के राजा महापद्म की रानी) २।३६२
पउमावई (उद्दायण राजा की रानी) २।२९६, २९८, ३०१
पउमावई (श्रीकृष्ण की रानी, श्रमणी) ३।६५, ६८, ६९, ७०, ७१
पउमावई (तेयलिपुरनरेश कनकरथ की रानी) ३।७१, ७४, ७५, ७६, ८१
पएसि राया (सूरियाभ देव का पूर्वभव) ४।७१, ७२, ७३, ७४, ८१, ८२, ८३, ८४, ८६, ८८, ८९, ९०, ९१, ९२, ९३, ९४, ९५, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०३, १०४, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८
पगया २।३२
पज्जु(ण्ण)ण (प्रद्युम्न) २।३३, ४०, ६५, ६६, ३।२८, ३९, ६६
पडिबुद्धी इक्खागराया १।४८, ५०, ५१, ५२, ५३, ५४
पभावती (उद्दायण राजा की रानी) २।२९६, २९७
पभावई (प्रभावती कुम्भ राजा की रानी) १।४८, ४९, ५३, ५४, ६४, ६६, ६९, ७३, ८०, ८४
पभावई (बल राजा की रानी) २।९, १०, ११, १२, १३, १४, १५
पभंजण २।९८
पसेणइ २।३९
पालय (आभियोगिक देव) १।१८,१९
पालिय (वाणिक श्रावक) २।२४६
पास अरहा १।९०-९४, २।९६, ९७, ३।८९-९६, १००, १०२-१०४, ४।३,४,६
पिउसेणकण्ह (श्रेणिक-पुत्र) ६।११
पिउसेणकण्हा (श्रेणिक की रानी) समणी ३।१२०
पिट्ठिम २।२०८
पियचन्द (कणगपुर का राजा) २।२२८
पियसेण नपुंसय (उज्झितक का आगामी भव का नाम) ६।१०५
पिया (सुदंसण गाहावई की भार्या) ३।१०१
पियंगू (धनदेव सार्थवाह की भार्या) ६।१५५, १५६
पिंगल नियंठ २।२६७, २६८, २७०, २७१
पुढविसिरी गणिया ६।१५६
पुण्डरीय २।३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६६, ३६७, ३६८, ३६९
पुण्ण ३।९८
पुण्णभद्द २।१९६
पुण्णभद्द गाहावई २।२०५
पुण्णभद्द अणगार २।९८, ९९
पुण्णसेण २।२०७
पुण्णा ३।९८
पुप्फचूला (पार्श्वजिन की प्रमुख श्रमणी) १।९३
पुप्फचूला अज्जा ३।९३, ९४, ९६, १००, १०३, १०४
पुप्फचूला (सुबाहुकुमार की रानी) २।२२१
पुप्फदन्त अणगार २।२२७
पुप्फवती ३।९८
पुरिससेण (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।६५, ६६, ३।६६
पुरिससेण (श्रेणिकपुत्र—श्रमण) २।२०६
पूरण (महाबल राजा का मित्र) १।४५
पूरण (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।५१
पूरण बालतवस्सी ६।१५८, १६०, १६१
पूसनन्दी जुवरण्णा ६।१४६, १५१, १५२, १५३, १५४
पूसा (कुण्डकोलिय समणोवासग की भार्या) ४।२१०, २१२
पेढालपुत्त २।२०८
पेल्लय २।२०८
पोक्खली समणोवासय ४।२६४, २६६, २६७
पोट्टिल (भ० महावीर का तीर्थंकर पूर्व छठा भव) १।९५
पोट्टिल (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२०८
पोट्टिला ३।७१, ७२, ७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७८, ७९, ८०, ८२, ८५
पंडव ३।३६, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४७, ४८, ४९, ५१, ५२, ५४, ५५, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६७
पंडुराया ३।३१, ३७, ३८, ३९, ४०, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ५६, ५९, ६०, ६७
पंडुसेण ३।६१, ६२
पंथग (मंत्री—शैलक राजा का) (अनगार) ३।८४, ८५, ८७, ८८, ८९, ९०
पंथय(ग) दासचेडग ६।३६, ४१, ४२, ४३, ४५, ४७
फग्गुणी (लेतियापिता समणोवासग की भार्या) ४।२५६
बल अणगार २।९९
बल (राजा) १।४४, २।९, १०, ११, १२, १३, १४, १५
बल (महापुर नगर का राजा) २।२२९
बलदेव (राम) २।९१, ९३, ३।६७

बलदेव राया २।३३, ३६, ४०, ६५, ३।२८, ३६, ५५
बलभद्द (सुग्रीव नगर का राजा) २।२४६
बलभद्द(द्र) कुमार १।४५, ४६
बलसिरी (सुजातकुमार की रानी) २।२२७
बहस्सइदत्त ६।१२४, १२५, १२६, १२७
बहुपुत्तिया ३।६८, १०५, १११, ११२
बहुमित्तपुत्त (सुबन्धु अमात्य का पुत्र) ६।१२८
बहुरूवा ३।६८
बहुल माहण ५।३६, ३७
बहुला (चुल्लशतक गाथापति की भार्या) ४।२००, २०२, २०६, २०८
बुद्धि देवी ३।१०१
बंधुमई (बंधुमती—मल्लिजिन की प्रमुख श्रमणी) १।८६
बंधुमई (अर्जुन मालाकार की पत्नी) २।१६७, १६८
बंधुसिरी (श्रीदाम राजा की रानी) ६।१२८, १३१
बंभदत्त २।२६, ३०, ३१, ३२
बंभी (ब्राह्मी—भगवान ऋषभदेव की पुत्री) १।३८
भद्द २।२२६
भद्द सत्थवाह ३।१०६, १०७, १०८, १०६
भद्दनन्दी २।२२१, २२७, २२८
भद्दा (राजा कौशलिक की पुत्री) २।२३३, २३४
भद्दा (संमति कुलकर की भार्या) १।५१
भद्दा (संभूति राजा की रानी) ५।६६
भद्दा (सागरदत्त सार्थवाह की भार्या) ३।१२, १४, १६, २०
भद्दा (जिनदत्त सार्थवाह की भार्या) ३।१३
भद्दा (कलाद मूसिकार की भार्या) ३।७१, ७२, ७३
भद्दा (कामदेव गाथापति की भार्या) ४।१५६, १६१
भद्दा (गोशालक की माता) ५।३१
भद्दा [धण सत्थवाह (रोहिणी णाय) की भार्या] ६।६२, ६३
भद्दा (धण सत्थवाह की भार्या) ६।३५, ३७, ३८, ३६, ४०, ४१, ४२, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८
भद्दा (साहंजणी नगरी के सुभद्र गाथापति की भार्या) ६।११६, १२१
भद्दा (सुवासवकुमार की रानी) २।२२७
भद्दा (मायंदी सत्थवाह की भार्या) २।३०३
भद्दा (धण सत्थवाह की भार्या) २।३४५, ३५०
भद्दा सत्थवाही २।२०८, २०६, २१०, २१६
भद्दा सत्थवाही (श्रमणोपासक चुलणीपिता की माता) ४।१८३, १८४, १८६
भरह चक्कवट्टि १।१८६-२४७, २।२५६
भारिया ३।६८
भीम कूडग्गाह ६।६८, ६६, १००
भीमसेण ३।३१
भुयगवई ३।६८
भुयगा ३।६८
भूयसिरी ३।४
भूया (सिरिदेवी के पूर्वभव का नाम) समणी ३।१०१, १०२, १०३, १०४
भोयराय (भोज राजा) २।६४
भोगवई ६।६३, ६४, ६६
मकाइ २।१६६
मघवा (चक्कवट्टी) २।२५३
मणिभद्द समण २।६६
मद्दुय समणोवासग ४।३१५, ३१६, ३१७, ३१८
मयणा ३।६७
मयालि २।६५, ६६
मयालि (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२०६, २०७
मयालि (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।६६
मरुदेवी १।७
मल्लदिन्नकुमार १।६६, ६७, ६८, ६६
मल्ली (जिण) १।४४, ४८, ४६, ५०, ५३, ५४, ६१, ६२, ६३, ६४, ६६, ६७, ६८, ६६, ७०, ७१, ७३, ७४, ७६, ७७, ७८, ७६, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७
महच्चन्द २।२२१
महचन्द (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२२८
महचंद (साहंजनी नगरी का राजा) ६।११६, १२२
महब्बल अणगार (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२२१, २२८
महब्बल (महाबल) १।४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०, ७८, ७६
महब्बल रायरिसी २।२६०
महब्बल (पुरिमतालनगर नरेश) ६।१०६, १०७, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८
महाकण्हा ३।६८
महाकण्ह (श्रेणिकपुत्र) ३।१३
महाकण्हा (श्रेणिक की रानी) ३।११६

महाकाल (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३
महाकाली (श्रेणिक की रानी) समणी ३।११९
महाघोस २।९८
महाजस १।२४७
महादुमसेण २।२०७
महाधणू २।३२
महापउम (गोशालक का आगामी भव का नाम) ५।६९, ७०, ७१, ७२, ७३ ७४
महापउम (भविष्यकालीन प्रथम तीर्थंकर) १।१५१, १५२, १५३, १५४, १५५, १५६
महापउम (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२२९, २३०, २३१
महापउम राया (पुण्डरीकिणी नगरी का राजा) २।३६२
महापउम (चक्कवट्टी) २।२६०
महापउमा (सुकालकुमार की भार्या) २।२३१
महाबल (रोहीतक नगर का राजा) २।३५
महाबल (भरत चक्रवर्ती के पश्चात् युगप्रधान पुरुष) १।२४७
महाबल (विमलतीर्थ में) २।८, १३, १५, १६, १९, २०, २१
महावीर (भगवओ) १।९५, ९७, ९८, ९९, १००, १०७, १११, ११२, ११३, ११५, ११७, ११८, ११९, १२०, १२१, १२२, १२४, १२५, १२६, १२७, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३३, १३४, १३६, १३७, १३८, १३९, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५३, १५४, २।५, ६, ८, २१, २२ २३, ९५, ९६, ९८, ९९, ११३, ११४, ११५, ११६, ११७, ११८, ११९, १२८, १२९, १३०, १३१, १३२, १३५, १३६, १३८, १३९, १६४, १६५, १६६, १६८, १६९, १७०, १७१, १७७, १७८, १७९, १८०, १८६, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९९, २००, २०१, २०२, २०३, २०४, २०५, २०६, २०९, २१०, २११, २१२, २१७, २१८, २१९, २२०, २२२, २२४, २२५, २२६, २२७, २३०, २६६, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७२, २७३, २७५, २७६, २७७, २७८, २७९, २८०, २८१, २८३, २८४, २८५, २८६, २९२, २९३, २९४, २९५, २९६, २९७, २९८, २९९, ३०१, ३०२, ३१८, ३१९, ३२२, ३३९, ३५५, ३५६, ३५७, ३५८, ३५९, ३६०, ३६१, ३६९, ३७०, ३।८७, ८८, ८९, ९५, ९६, ९७, ९९, १००, १०१, १०५, ११६, १२१, १२२, १२३, ४।३, १०, ११, १२, १३, १४, १५, १६, १७, २५, २७, २८, २९, ३०, ३१, ३२, ३३, ३५, ३६, ४५, ४६, ४९, ५०, ७१, ७२, १२८, १२९, १३५, १३६, १३९, १४०, १४३, १४६, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५२, १५३, १५५, १५७, १५९, १६०, १६१, १६२, १६९, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७८, १७९, १८०, १८७, १८८, १८९, १९०, १९१, १९८, २००, २०१, २०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२९, २३०, २३१, २३२, २३९, २४०, २४१, २४२, २४४, २४६, २४७, २५०, २५१, २५२, २५३, २५४, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६७, २६८, २६९, २७०, २७१, २७३, २७४, २७६, २७९, २८०, २८७, २८८, २८९, २९०, २९१, २९२, २९३, ३०२, ३०३, ३०४, ३०५, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८, ५।३, ४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १९, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २९, ३०-४२, ४३, ४४, ४७, ४८, ४९, ५०, ५३, ५४, ५५, ५६, ५७, ५८, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७२, ७४, ६।४, ५, ६, ७, ८, ९, १०, १२, १३, १४, १५, ३३, ३४, ८३, ८४, ८५, ८७, ९५, ९६, ९७, १०८, १०९, ११९, १२०, १२४, १२८, १३४, १३५, १४१, १४२, १४६, १५५, १६०, १६२, १६८, १६९, १७०, १७१, १७२
महासतय गाहावई समणोवासग ४।२४०, २४१, २४२, २४३, २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४९
महासीहसेण २।२०७
महासुव्वया (महासुव्रता—अरिष्टनेमि की प्रमुख श्राविका) १।८९
महासेण २।२०७
महासेण ३।२८, ३०
महासेणकण्ह (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३
महासेणकण्हा (श्रेणिक की रानी) समणी ३।१२०
महासेण राया (सुप्रतिष्ठ नगर का राजा) ६।१४६, १४७
महेसरदत्त (जियसत्तू राजा का पुरोहित) ६।१२४, १२५
मंखली मंख (गोशालक का पिता) ५।३१, ४३
माअणि २।३२

मायंदीदारय २।३०३, ३०४, ३०६, ३०७, ३१०, ३११. ३१२ ३१३, ३१४, ३१५
मामंदी सत्थवाह २।३०३
मित्तनन्दी (साकेत नरेश) २।२२६
मित्तराया (नंदीपुर नगर का राजा) ६।१४२, १४३
मित्तराया (वाणियगाम का शासक) ६।६५, १०४
मिया (सुग्रीवनगरनरेश बलभद्र की अग्रमहिषी) २।२४६
मियादेवी (विजय खत्तिय की रानी) ६।८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ६०, ६१, ६२
मियापुत्त ६।८२, ८३, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ६१, ६२, ६३
मियापुत्त बलसिरी समण २।२४६-२५६
मिया(गा)वई (कोशांबीनरेश शतानीक की रानी) ६।१२४, ३।१२१, १२२
मुणिसुव्वय अरहा २।२३, २४, २५, २६, २७, २८
मुणिसुव्वय अरहा (धातकीखण्ड द्वीप भरतक्षेत्र के) ३।५५, ५६
मूलसिरि ३।६५, ७१
मूलदत्ता ३।६५, ७१
मेहप्पभ (मेघकुमार का हाथी का पूर्वभव) २।१८३, १८६
मेह गाहावई ३।६७
मेहकुमार २।१३६, १५८, १५६, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६, १६७, १६८, १६६, १७०, १७१, १७२, १७३, १७४, १७५, १७६, १७७, १७८, १७६, १८०, १८१, १८२, १८३, १८४, १८५, १८६, १८७, १८८, १८६, १६०, १६१, १६२, १६३, १६४, १६५, १६६
मेह गाहावई २।२०५
मेहमुह देवकुमार १।२२०, २२१, २२४, २२५
मेहरह (माध्यमिका नगरी का राजा) २।२२८
मेहसिरी (मेह गाथापति की भार्या) ३।६७
मेहा (देवी, समणी) ३।६७
मोग्गरपाणिजक्ख २।१६६-२००
मोग्गल परिव्वायग २।२८२, २८३, २८४, २८५
मंडुक्कुमार २।७४, ८४, ८५, ८६, ८७, ८८, ८६, ६०
रइप्पिया ३।६८
रक्खिया ६।६२, ६४, ७०
रट्ठकूड एक्काई (मियापुत्त का पूर्वजन्म का नाम) ६।८८, ८६, ६०
रत्तवई (महाबलकुमार की भार्या) २।२६८
रत्तवती देवी (चंपानरेश दत्त की रानी) २।२२८
रत्तसुय २।६
रयण गाहावई ३।६६
रयणदीव देवया २।३०६, ३०७, ३०८, ३१०, ३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८
रयणसिरी (रयण गाथापति की भार्या) ३।६६
रयणी (देवी, समणी) ३।६६
रसदेवी ३।१०१
रहनेमि समण २।६१, ६४, ६५
राइसिरी (राई गाथापति की भार्या) ३।६६
राई गाहावई ३।६६
राई (राजी) (समणी देवी) ३।६५, ६६
राजीमई समणी २।६१, ६२, ६३, ६४
रामकण्ह (श्रेणिक-पुत्र) ६।१६
रामकण्हा (श्रेणिक की रानी) समणी ३।१२०
रामपुत्त २।२०८
रुप्पि भेसगसुय ३।३२
रुप्पिणी (रुक्मिणी) २।२३, ४०, ६६; ३।६५, ७०
रुप्पी (रुक्मि—कुणालाधिपति) १।४८, ५०, ६२, ६३, ६४
रूयकंता ३।६८
रूयग गाहावई ३।६८
रूयगसिरी (रूयग गाथापति की भार्या) ३।६८
रूयगावई ३।६८
रूयप्पभा ३।६८
रूया (देवी) ३।६८
रूयंसा ३।६८
रूयवई ३।६८
रूविणि (समुद्दपालि की भार्या) २।२४७
रेवईदेवी (बलदेव राजा की रानी) २।३३, ३६
रेवती (महाशतक श्रमणोपासक की भार्या) ४।२४०, २४२, २४३ २४४, २४५, २४६, २४७, २४८, २४६
रेवती(ई) गहावई (भ. महावीर की श्राविका) १।१४६, ५।६४, ६६, ६७, ६८
रोहिणिया ६।६३, ६५, ७०, ७१
रोहिणी (वसुदेव-पत्नी) २।६१
रोहिणी (गाय) ६।६२
रोहिणी (देवी) ३।६८

रंभा (देवी, समणी) ३।९७
लक्खणा ३।६५, ७०
लच्छी देवी ३।१०१
लट्ठदंत २।२०६, २०७
लेतियापिया गाहावई समणोपासग ४।२५५, २५६, २५७, २५८, २५९, २६०
लेव गाहावई २।२२२
वइरसेणा ३।९८
वद्धमाण १।११०, १११, ११२
वरदत्त (अरिष्टनेमि के गणधर) १।८९, २।३५, ३६, ३७, २२१, २२९
वरसेना (वरदत्तकुमार की भार्या) २।२२९
वरुण नागनत्तुग ४।२७१, २७२, २७३, २७४, २७५
वसुदत्ता (सोमदत्त पुरोहित की भार्या) ६।१२४, १२५
वसुदेव राया २।४३, ४५, ६५, ९१
वसुमती ३।९८
वसू (वसु) (महाबल राजा का मित्र) १।४५
वह् (अरिष्टनेमितीर्थ में श्रमण) २।३२
वारत्त (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।१९६
वारत्त गाहावई २।२०५
वारिसेण २।६५, ६६, २०६, ३।६६
वासवदत्त (विजयपुर का राजा) २।२२७
वासुदेव २।५५, ६६
विजय खत्तिय (मियग्गाम का राजा) ६।८२, ८३, ८४, ९०, ९१, ९२
विजय गाहावई ५।३३, ३४
विजयघोस (मुणि) २।२३६, २३७, २३९, २४०
विजय चोरसेणावई २।३४७, ३४८, ३४९, ६।१०६, १०७, १०८, १११, ११२
विजय (णाय) ६।४८
विजय तक्कर ६।३५, ३६, ४१, ४३, ४४, ४५, ४६, ४७, ४८, ५०
विजय (देव) १।२७, २९
विजय राजा २।२६०
विजयमित्त राया (वर्द्धमानपुर नरेश) ६।१५५, १५६, १५७
विजयमित्त सत्थवाह ६।९५, १०२, १०३
विज्जू (विद्युता) (समणी, देवी) ३।९६
विज्जू गाहावई ३।९६
विज्जूसिरी (विज्जू गाथापति की भार्या) ३।९६
विणमि (विद्याधर राजा) १।२२८, २२९
विण्हू (विष्णु) अणगार २।३९
विदुर ३।३१
विमल अरहा २।१९, २०
विमलवाहण (महापद्म तीर्थंकर का तीसरा नाम) १।१५२, १५३
विमलवाहण (शतद्वारनगरनरेश) २।२२९
विमला ३।९८
विसिट्ठ ३।९८
वीरकण्ह (श्रेणिक-पुत्र) २।१३
वीरकण्हमित्त राया (वीरपुर का राजा) २।२२७
वीरकण्हा (श्रेणिक की रानी समणी) ३।११९
वीरसेण २।३३, ४०, ३।२८
वीरंगयकुमार (निषध का पूर्वभव) २।३५, ३६
वेणुदालि ३।९८
वेणुदेव ३।९८
वेदब्भी २।६६
वेयड्ढगिरिकुमार १।२०८
वेलंब ३।९८
वेसमणकुमार (प्रियचन्द्र राजा का पुत्र) २।२२८
वेसमण (वैश्रमण—महाबल राजा का मित्र) १।४५
वेसमणदत्त राया (रोहीतक नगर का राजा) ६।१४६, १५०, १५१, १५२, १५३
वेसमण (वैश्रमण देव) १।३२, ८०, ८१, ११५
वेसमणभद्द अणगार २।२२७
वेसियायण बालतवस्सी ५।३९, ४०
वेह् २।३२
वेहल्ल २।२०६, २०७, २०८, २२०, ६।२४-३०
वेहायस २।२०६, २०७
सउणि ३।३१
सक्क (शक्र देवेन्द्र) १।१४, १५, १६, १७, २०, २१, २२, २३, ३०-३३, ४०-४३, ६०, ८०-८५, ११३, ११५, ६।१६१-१७०
सगड दारक ६।११९, १२१, १२२, १२३
सगर (चक्कवट्टी) २।२५९
सच्चणेमि २।६६

सच्चनेमी २।६५, ६६
सच्चभामा ३।६५, ७०
सणंकुमार (चक्कवट्टी) २।५५८
सत्तधणू २।३२
सत्तुसेण २।४२, ४३
सद्दालपुत्त (समणोवासग) ४।२१६, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४, २२५, २२६, २२७, २२८, २२६, २३०, २३१, २३२, २३३, २३४, २३५, २३६, २३७, २३८, २३६
समुद्द (अणगार) २।३६, ४१, ४२
समुद्ददत्त मच्छंध ६।१४१, १४३
समुद्ददत्ता (समुद्ददत्त मच्छंध की भार्या) ६।१४१, १४३
समुद्दपालि २।२४६, २४७, २४८
समुद्दविजय (अरिष्टनेमि के पिता) १।८७, २।३३, ३४, ४० ६६-६८, ६१-६४, ३।२८-३०, ४८
सयधणू २।३२
सयाणीय राया (कौशांबी का राजा) ६।१२४, १२६
सरस्सई (ऋषभपुर के राजा धनावह की रानी) २।२२७
सरस्सई ३।६८
सल्ल नन्दिराय ३।२१
सव्वाणुभूति मुणि (अणगार) ५।५४, ६८, ७२
सहदेव ३।३१
सहदेव (जरासंधसुय) ३।३२
सहस्साणीय राणा ३।१२१
सागर २।३६, ४१
सागरदत्त सत्थवाह (पाडलिसंड नगर का) ६।१३३, १३७, १३६, १४०
सागरदत्त (सत्थवाहदारग) ६।५१, ५५
सागरदत्त सत्थवाह ३।१२, १३, १४, १५, १७, १८, १६, २१, २२, २४
सागर दारक ३।१३, १४, १५, १६, १७, १८, २२, २३, २४
सामा (चुलणीपिता गाथापति की भार्या) ४।१७७, १७६
सामा (सिंहसेनकुमार की रानी) ६।१४७, १४८
सामाग (श्यामाक) गाहावइ १।१३०
सारण २।४२, ४३
सिद्धत्थ (सिद्धार्थ—भ० महावीर के पिता) १।६८, १०८, १०६, ११२
सिद्धत्थ (पाडलिसंड का राजा) ६।१३३
सिद्धत्थायरिय २।३६
सिन्धुदेवी १।२०६, २०७, २०८, २२६
सिरिकंता देवी (साकेतनरेश मित्रनन्दी की रानी) २।२२६
सिरिकंता (महचन्द की भार्या) २।२२८
सिरिदाम (मथुरा नगरी का राजा) ६।१२८, १३१, १३२
सिरिदेवी ३।१०१
सिरिदेवी (वैश्रमणदत्त राजा की रानी) ६।१४६, १५३, १५४
सिरिदेवी (वाणियगामनरेश मित्र राजा की रानी) ६।६५, १०४
सिरिदेवी (भद्रनन्दी कुमार की भार्या) २।२२८
सिरिदेवी (वेसमणकुमार की भार्या) २।२२८
सिरिदेवी (वीरपुर के राजा वीरकृष्णमित्र की रानी) २।२२७
सिरिदेवी (विजय राजा की रानी) २।१३४, १३५
सिरीय (सोरियदत्त का पूर्वभव का नाम) ६।१४२
सिव अणगार २।६६
सिवणंदा (आनंद गाथापति की भार्या) ४।१३६, १४१, १४६, १४७, १४८, १४६
सिवभद्दकुमार २।२८६, २८८, २८६
सिवरायरिसी २।२८६, २८७, २८८, २८६, २६०, २६१, २६२, २६३, २६४, २६५, २६६
सिवा देवी (अरिष्टनेमि की माता) १।८७, २।६६, ६२
सिसुपाल ३।३१
सीह २।२०७
सीहगिरि (छगलपुर का राजा) ६।१२०
सीह मुणि ५।६५, ६६, ६७, ६८
सीहरह (सिंहपुर नरेश) ६।१२६, १३०
सीहसेण २।२०७
सीहसेण कुमार ६।१४७, १४८, १४६
सुकण्णा (सौगन्धिका नगरी के राजा अप्रतिहत की रानी) २।२२८
सुकण्ह (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३
सुकण्हा (श्रेणिक की रानी) समणी ३।११६
सुकाल (श्रेणिक-पुत्र) ६।१३, ३२
सुकाली २।२३१, ३।११७-११६
सुकुमालिया (सूमालिया) ३।१२, १३, १४, १५, १६, १७, १८, १६, २०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७
सुघोसा ३।६८
सुजाय(त)कुमार श्रमण २।२२१, २२७
सुणक्खत्त २।२०८, २१६, २२०

सुण(न)क्खत्त मुणि (अणगार) ५।५४, ५५, ६८, ६९, ७२
सुदत्त अणगार २।२२३
सुदरिसिणा गणिया ६।११९, १२१, १२२, १२३
सुदंसण सेट्ठी समणोवासग (अर्जुनमाली का प्रतिबोध देने वाला) २।१९६, १९९, २००, २०१, २०२
सुदंसण (सुदर्शन श्रेष्ठी) २।५, ६, ७, ८, २१, २२
सुदंसण गाहावई (महावीरतीर्थ में श्रमण) २।२०५
सुदंसण (सौगन्धिका नगरी का नगरश्रेष्ठी) २।७५, ७६, ७७, ७८, ८३
सुदंसण गाहावई ३।१०१, १०३
सुदंसणा (भ० महावीर की बहिन) १।११२
सुदंसणा (दा. विशाखकुनारेन्द्र की अग्रमहिषी) ३।९८
सुद्धदंत २।२०७
सुधम्म अणगार २।२२८
सुनन्द (हस्तिनापुर नरेश) ६।९८, १०१
सुनन्द (पार्श्वजिन का प्रमुख श्रावक) १।९३
सुनन्द गाहावई ५।३५, ३६
सुनन्दा (पार्श्व जिन की प्रमुख श्राविका) १।९३
सुनाभ (पउमनाभ का पुत्र) ३।४१
सुन्दरी (भगवान ऋषभदेव की पुत्री) १।३८
सुपइट्ठ गाहावई २।२०५
सुपइट्ठ अणगार २।९७
सुपइट्ठ २।१९६
सुपास (भ० महावीर का चाचा) १।११२
सुबन्धु (श्रीदाम राजा का अमात्य) ६।१२८
सुबाहुकुमार श्रमण २।२२१, २२२, २२४, २२५, २२६
सुबाहू (रुक्मि राजा की पुत्री) १।६३,६४
सुबुद्धि (प्रतिबुद्धि राजा का मन्त्री) १।५३
सुबुद्धि (जितशत्रु राजा मन्त्री) २।१००, १०१, १०२, १०३ १०४, १०५, १०६, १०७, १०८
सुभगा ३।९८
सुभद्द २।२२९
सुभद्द गाहावई (साहंजणी नगरी का) ६।११९, १२१
सुभद्दा सत्थवाही (बहुपुत्रिका देवी का पूर्वभव का नाम) ३।१०५, १०६, १०७, १०८, १०९, ११०, १११
सुभद्दा (विजयमित्र सार्थवाह की भार्या) ६।९५, १०२, १०३
सुभद्दा (कनकपुर नरेश प्रियचन्द की रानी) २।२२८
सुभद्दा (सुभद्रा—भरत चक्रवर्ती का स्त्री रत्न) १।२२९, २४४
सुभद्दा (सुभद्रा—तीर्थंकर ऋषभ की प्रमुख श्राविका) १।३८
सुभद्दा (बलराजा की रानी) २।२२८
सुभद्दा (कूणिक की रानी) ४।२९४, २९५, ३०३, ३०४, ३०५
सुमणभद्द २।१९६
सुमणभद्द गाहावई २।२०५
सुमुहकुमार २।६५
सुमुह गाहावई २।२२३, २२४
सुमेरुप्पभ (हाथी—मेघकुमार का पूर्व जन्म) २।१८१, १८२
सुमंगल अणगार ५।७१, ७२, ७३
सुम्भ गाहावई ३।९७
सुम्भसिरी (सुम्भ गाथापति की भार्या) ३।९७
सुम्भा (देवी; समणी) ३।९७
सुयपरिवायग २।७५, ७६, ७८, ७९, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ८६
सुरादेव गाहावई समणोवासग ४।१८८, १८९, १९०, १९१, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, १९७, १९८
सुरा देवी ३।१०१
सुरूवा ३।९८
सुलसा (नाग गाथापति की पत्नी) २।४२, ४६, ४७, ४८
सुलसा (भ० महावीर की प्रमुख श्राविका) १।१४९
सुवासव २।२२१, २२७
सुव्वया अज्जा (अरिष्टनेमि तीर्थ में) ३।६२
सुव्वया अज्जा (पोट्टिला कथानक) २।७७, ७९, ८०
सुव्वया अज्जा (पार्श्वतीर्थ में) ३।१०६, १०७, १०८, १०९, ११०, ११३, ११४, ११५
सुसीमा ३।६५, ७०
सुसेण (साहंजनी नगरी के राजा महाचन्द का अमात्य) ६।११९, १२१
सुसेण (भरत चक्रवर्ती का सेनापति रत्न) १।२०९, २१०, २११, २१२, २१३, २१६, २२०, २२६, २३०, २३३
सुस्सरा ३।९८
सुहत्थी गाहावई २।३५७
सूरग्गमहिसी ३।९९
सूरप्पभ गाहावई ३।९९
सूरप्पभा (समणी, देवी) ३।९९
सूरसिरी (सूरप्पभ गाथापति की भार्या) ३।९९

सूरियकंत कुमार (पएसी राजा का पुत्र) ४।७१, ७३, ११७
सूरियकंता देवी (पएसी राजा की रानी) ४।७१, ७२, ६४, ११५
११७, ११८
सूरियाभ देव १।२०, २१, २६, ४।११-३६, ५७-७१, ११६
सेज्जंस (श्रेयांस—तीर्थंकर ऋषभ का प्रमुख श्रावक) १।३८
सेज्जंस (प्रथम भिक्षादाता) १।१६८
सेणिय राया (श्रेणिक राजा) १।१५१, २।६५, ६७, ६८, ६६,
२।१३६, १४०, १४१, १४२, १४३, १४४, १४५, १४७,
१४८, १४६, १५०, १५१, १५२, १५५, १५६, १५७,
१५८, १५६, १७१, १७२, १७३, १७४, १७६, १७६
१८८, १६६, १६७, १६६, २०५, २०६, २०७, २०८,
२१७, २१८, २२०, २४०, २४१, २४५, २४६, २४८,
३।१०१, १०५, ११६, ११६, ४।३, १२६, १३०, १३७,
२४०, ६।४, ५, ६, ७, ८, ६, १३, १६, १७, १८, १६,
२०, २१, २२, २३, २४, २५, २६, २७, २८, ३२, ३५
सेतरा (देवी, समणी) ३।६८
सेय राया (आमलकप्पा नगरी का राजा) ४।११
सेलगजक्ख २।३१२, ३१३, ३१४, ३१५, ३१६, ३१७, ३१८
सेलयराया समणोवासग २।७४, ७५, ८४-६१
सेलवालय २।३५७
सेलोदाई १।३५७, ४।३१५
सेवालोदाई २।३५७
सोम ३।४
सोमदत्त ३।४
सोमभूई ३।४
सोमदत्त पुरोहित (उदयन राजा का पुरोहित) ६।१२४, १२५
सोमसिरी (सोमिल ब्राह्मण की पत्नी) २।५२, ६०
सोमा (सोमिल ब्राह्मण की पुत्री) २।५२, ६०
सोमा (बहुपुत्रिका देवी का आगामी भव) ३।११२, ११३, ११४,
११५
सोमिल माहण (गजसकुमाल का श्वसुर) २।५१, ५२, ६०, ६१
६४
सोमिल माहण समणोवासग (महावीरतीर्थ में) ४।२७६, २७७,
२७८, २७६, २८०
सोमिल माहण (शुक्रदेव का पूर्वभव) ४।३, ४, ६-१०
सोयामणी (देवी, समणी) ३।६८
सोरियदत्त मच्छंध ६।१४१, १४३, १४४, १४५
सोरियदत्त राया (सोरियपुर का नरेश) ६।१४१
संख कासिराया (काशीराज) १।४८, ५०, ६४, ६५, ६६
संख परिव्वायग २।१३३
संखवालय २।३५७
संख समणोवासय ४।२६४, २६५, २६६, २६७, २६८, २६६,
२७०, २७१
संख-सयग (शंख-शतक—म. महावीर के प्रमुख श्रावक) १।१४८
संजय राया (मुनि) २।२५६, २५७, २५८
संती (चक्कवट्टी-तित्थयर) २।२५६
संब २।३३, ४०, ६५, ६६, ३।२८, ३६, ६६, ७१
संभूति(इ) २।२६, ३०
संभूति रणा ५।६६
संभूतिविजय अणगार २।२२८
सुंसुमा (धन्य सार्थवाह की पुत्री) २।३४५, ३५०, ३५१, ३५२,
३५३, ३५४, ३५५
हत्थिराया भूयाणन्द ४।३१४, ३१५
हत्थिवाल (हस्तिपाल राजा) १।१४५, १४६, १४७
हरि ३।६८
हरिचन्दण २।१६६
हरिचन्दण गाहावई २।२०५
हरिके(ए)सबल समण २।२३१-२३६
हरिणगमेसी १।१७, २४, २।४८, ५०, ५१
हरिसेण (चक्कवट्टी) २।२६०
हरिस्सह ३।६८
हल्ल २।२०७
हालाहला (कुम्भकारी) ५।२७, २८, ४३, ४४, ४७, ४८, ४६,
५३, ५८, ५६, ६०, ६१, ६३, ६४
हिमवंत २।४१
हिरिदेवी ३।१०१, १०४
हिरी ३।६८

स्थल निर्देश सूची

अच्चुय कप्प १।१११
अट्ठावय (अष्टापद पर्वत) १।४०, २४५, २४६
अट्ठियगाम (अस्थिक ग्राम) १।२४६, ५।३२
अति(इ)रंजिका(या) नगरी ५।३
अपराजिय महाविमाण १।८७
अभिसेय सिला १।२३
अरक्खुरी नगरी ३।६६
अरुणकीलविमाण ४।२६०
अरुणकंत विमाण ४।१६६
अरुणगव विमाण ४।२५५
अरुणच्चय विमाण ४।२५०
अरुणज्झय विमाण ४।२१८
अरुणप्पभ विमाण ४।१८७
अरुणसिद्ध विमाण ४।२०६
अरुणाभ विमाण ४।१४८, १५८, १७७, २३६, २६४, २७५, २८०, ३१८
अलसंड (देश) १।२११
अलंकारिय सभा ४।१३२
अवरकंका (धायइसंड द्वीप के दक्षिण भरतार्द्ध की नगरी) ३।४०, ४३, ४७, ४८, ४६, ५०, ५१, ५३, ५४, ५६, ५७, ५८, ५६
असोगवरपायव ४।२८४, २६०
अहिच्छत्ता नयरी ३।३४०, ३४१, ३४४
अंग (जनपद) १।५४, ३।३४१
अंग लोय (देश) १।२१०
अंजणग (अंजनक) पर्वत १।४३
अंबसाल वण ४।३, ४
आणयकप्प (आनत देवलोक) १।२४
आमलकप्पा नयरी ३।८६, ६०, ६१, ६६, ६७, ४।११, १२, १३, १४, १६, १७, २७
आरब (देश) १।२११
आलभिया (नगरी) २।२८२, २८३, २८४, २८५, ४।१६६, २००, २०१, २०२, २६१, २६२, २६४, ५।५२
इंदकील ६।१६३
इंदकुम्भ उज्जाण १।४४, ४५
इंदपुर ६।१५६
उजुबालुया (नदी) १।१३०
उज्जितसेल (सिहर) १।८६, ६०, ३।६३
उत्तरकुरु १।२७
उत्तरखत्तिय कुण्डपुर १।६८
उदण्डपुर ५।५२
उम्मगजला (नदी) १।२३०
उम्मागणिम्मग्गजला महाणई १।२१५, २१६
उल्लुगातीर (नगरी) ५।३
उसभपुर (नगर) २।२२७, ५।३
उसहकूडपव्वय १।२२७
उसुयार (नगर) २।२२७, २६१
एगसेलग वक्खारपव्वय २।३६२
एरवय (ऐरवत क्षेत्र) १।५, २६
कडक पभूह १।२३१
कणगपुर (नगर) २।२२८
कमला रायहाणी ३।६६
कम्मारगाम १।११८
कयंगला नगरी २।२६६, २६७, २६८, २६६
कलिंग २।२६०
काकं(गं)(यं)दी (नगरी) २।६६, २०५, २०८, २०६, २११, २१२, ३१२
कालमुह (देश) १।२११
कालियदीव ६।७४, ७६, ७७, ७८
कालिंजर (पर्वत) २।२६

कासी (काशी) जनपद १।६४, ६५, १४७
कुण्डपुर (उत्तरखत्तिय) १।१०८, ११३, ११४
कुणाल (जनपद) १।६२, ४।७३, ७५, ८३
कुम्मागाम ५।३८, ३९, ४१
कुरु (जनपद) १।६६, ३।४५
कुलपव्वय (कुल पर्वत) १।२७
केइयद्धजणवय ४।७२
कोसल १।१४७
कोसंबवण काणण २।...
कोसंबी (नगरी) २।२२७, ३।१००, १२१, ६।१२४
कोल्लाय(ग) संनिवेश ४।१३९, १५०, १५१, १५३, १५४,
१५५, ५।३६, ३७
कोंडिण्ण नगर ३।३२
कंपिलपुर नगर १।७०, ७१, २।२९, २५६, २५७, ३।२७-३७,
१००, ४।२१०-२१७, ३०६, ३०८
खीरोदग (क्षीरोदक समुद्र) १।२६, ४१, ४३, ८४
खंडपवायगुहा १।२२९, २३०, २३१,
खत्तियकुण्डग्गाम ५।३, ४, ५, ७, १८, १९
गंगपुर ६।१५५
गंगा महाणई १।२६, १९७, २३०, २३१, २३३
गंगासागर १।२३०, २३३
गंधार (देश) २।२६०
गंभीरयपोयपट्टण (गंभीरक पोतपट्टन) १।५४
चक्कवट्टी विजय (चक्रवर्ती विजय) १।२७, २४७
चमरचंचा (असुरेन्द्र चमर की राजधानी) १।२४, २।८७, ९४,
९५, ९६, ६।१६१, १६२, १६८
चारु (पर्वत) १।४५, ४७
चित्तसभा ४।१३१
चुल्लहिमवंत वासधरपव्वय १।१३, २६, २४४, ४।१५२, १५६
चंदणा (नगरी) २।९९
चंदप्पभा (शिविका) १।११४, ११५
चंपा नगरी १।५४, ६०, ६१, ६२, १४५, २।१००, २२८, २२९,
२३०, २३१, २४६, २९६, २९८, ३०२, ३०३; ३०७,
३१४, ३१७, ३१८, ३४०, ३४१, ३४४, ३।४, ५, ६, १०,
१२, १३, १४, २२, २४, २५, ३१, ९८, ११७, ११८,
४।१५८, १५९, १६०, १६१, १६९, १७०, १७२, २८०,
२८१, २८८, २९०, २९५, ३००, ३०१, ३०२,
५।२१, २२, २३, ५२, ६।१३, २४, २५, २६, २९, ३२,
५२, १०६
चंपा (धातकीखण्ड द्वीप की नगरी) ३।५५
छगलपुर ६।१२०
जणवय सोलस ५।५८
जवणदीव १।२११
जयंत विमाण १।४७, ४८, ७८
जंभियगाम १।१३०
णायसंड (ज्ञातखंड) उज्जाण १।११५
णिमग्गजला १।२३०
णं(न)दण वण (नन्दनवन) १।२७, ४१
णं(नं)दीसर दीव १।२२, ३३, ४३, ४९, ८४, ८७, ४।२६
तामलित्ती (नगरी) २।१२०, १२१, १२२, १२३
तिमिसगुहा १।२१२, २१३, २१४, २१५, २१६, २१७, २३०
तिगिच्छसाला ४।१३२
तिगिछकूड उप्पायपव्वय ६।१६२
तिगिच्छी (नगरी) २।२२८
तुंगियानगरी ४।१२५, १२६, १२७
तेवलिपुर ३।७१, ७३, ७९, ८३, ८६
दद्दर (पर्वत) १।१९८
दद्दुरवडिंसय विमाण ४।१२८, १३७
दसण्ण (दशार्ण देश) २।२९
दसपुर ५।३
दहिमुग (दधिमुख) पर्वत १।४३
दाहिणमाहणकुण्ड १।९६, ९८, ९९
दुतिपलास चेइय (द्युतिपलाश चैत्य) २।५
देवच्छन्दय १।११३
धरणी रायहाणी ३।९७
नागपुर नयर ३।९९
नालंदा २।३२२
नालंदा तंतुवायसाला ५।३२, ३४, ३५, ३६, ३७
नालंदा बाहिरिया ५।३२, ३४, ३६, ३७
निषढ (निषध वर्षधर पर्वत) १।४४
नीलवंत वासहरपव्वय २।३६२
नंदा पोक्खरिणी ४।१३०, १३१, १३२, १३३, १३५, १३६
नंदिपुर ६।१४२
पउमद्दह (पद्म द्रह) १।२६

पउमगुम्म (विमाण) २।२९, २२६
पउमवरवेइया ६।१६३
पउमसर १।११६
पणीयभूमि (वज्रभूमि) १।१४५
पभास तित्थ १।२०६
पंडग (पंडक) वन १।२३, २४१
पंडमहुर (पांडुमथुरा नगरी) ३।६०, ६२, ६७
पंचाल (जनपद) १।७०, ७१, २।३०, ३२, २६०, ३।२७, २९, ३०
पाडलिसंड (नगर) ६।१३३, १३४, १३५, १३८
पाणयकप्प (प्राणत देवलोक) १।२४
पिक्खुर (देश) १।२११
पिट्ठचंपा (नगरी) १।१४५
पिहुण्ड (नगर) २।२४६
पुक्खरोदओ १।२६
पुक्खलावई विजय २।३६२
पुढवीसिलापट्टय ६।१६१, १६२
पुप्फजलवन्न १।१५१, २।६७, ३।६६
पु(पो)ण्डरीगिणी नगरी (महाविदेह क्षेत्र) २।३६२, ३६३, ३६४, ३६५, ३६७, ३।८६
पुण्डरीय पव्वय २।८६, ९०
पुण्णभद्द चेइय ४।२८१-२८२, २८८, २९०, २९२, ३००, ३०२
पुरिमताल नगर १।३७ २।२९, ४।२०६, ६।१०६-११०, ११३-११७
पोक्खलावई विजय (महाविदेह क्षेत्र) ३।८६
पोलासपुर २।४७, १३४, १३५, ४।२१९, २२१, २२२, २३१, २३२
बलायालोय (देश) १।२१०
बब्बर (देश) १।२१०
बलिचंचारायहाणि २।१२३, १२४, १२५, १२६, १२७, ३।९७
बहुपुत्तिय चेइय (बहुपुत्रिक चैत्य) २।२२
बालुयप्पभा पुढवी ३।६७
बेभेल संनिवेश ३।११२, ११३, ६।१५८, १५९, १६०
बंभलोय (ब्रह्मलोक देवलोक) १।२४, २।४१, ४।३०८, ३१०
भद्दसालवण (भद्रशाल वन) १।२७
भद्दिया १।१४५
भद्दिलपुर २।४२, ४३, ४६, ४७
मज्झमिया (नगरी) २।२२८
मज्झिम पावा १।१४५, १४६, १४७
मणिपुर २।२२८
मणिवइया (नगरी) २।९८, ९९, २२८
मयंगतीरद्दह ६।५८, ५९, ६१
मलयगिरि १।१९८
महाघोस (नगर) २।२२८
महानससाला ४।१३२
महापुर (नगर) २।२२८
महाविदेहवास १।४४, १११
महासमाणाविमाण ६।१७०, १७२
महासुक्क (महाशुक्र देवलोक) १।२४, १७०, १७२, २।२८
महुरा (नगरी) ३।३२, १००, ६।१२७, १३१
मागहतित्थ १।२६, १९५, १९७, १९९, २००, २०१
माणुसुत्तर (पर्वत) १।११९, १२०
मालुयाकच्छ ५।६४, ६५, ६।३५, ४२, ४३, ४४, ५१, ५४, ५५, ५८, ५९
माहणकुण्डग्गाम २।११३, ११५, ५।३, ४, ५, १८, १९
मियग्गाम ६।८२, ८३, ८७, ९०
मिहिला (मिथिला) १।४८, ४९, ५३, ५४, ६१, ६२, ६५, ६६, ६९, ७०, ७१, ७३-७७, ८०-८४, १४५, २।९९, १०८, १०९, ५।३
मेंढियग्गाम ५।६४, ६६, ६८
मोया (नगरी) २।११९
मंदर (मेरु पर्वत) १।२३, ४४, ११९, १२०
रज्जुयसहा (रज्जुक सभा) १।१४५, १४६, १४७
रतिकरपव्वय ४।२६
रयणदीव २।३०६, ३०७, ३१२, ३१८
रयणप्पभा पुढवी १।१५१
रायगिह १।१४५, २।९५, ९७, ९८, ९९, ११९, १३९, १४३, १४४, १४५, १५६, १५७, १५८, १६४, १६५, १६६, १७७, १८८, १९०, १९२, १९६, १९७, १९८, १९९, २००, २०१, २०४, २०५, २०६, २०७, २०८, २१७, २२०, २६३, २७८, ३२२, ३४५, ३४६, ३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५२, ३५४, ३४५, ३५६, ३५७, ३५९, २६९, ३।३२, ८७, ८८, ९६, ९७, ९८, ९९, १००, १०१, १०२, १०५, ११६, ४।३, १२८, १२९, १३०,

१३३, १३४, १३५, १३६, २४०, २४१, २४२, २४४, २४७, २६९, ३१४, ३१५, ४।३२, ३३, ३४, ३५, ३६, ५२, ६७, ६।४, ५, ६, १६, २४, २५, २६, २७, २८, २९, ४१, ४२, ४३, ४७, ४९, ६२, ७१, १२३

रिट्ठविमाण (अरिष्ट विमान) १।८२

रुक्खा सत्तविधा १।५

अभियग १।५

कप्परुक्ख १।५

चित्तरस १।५

चित्तंग १।५

भिंग १।५

मणियंग १।५

मत्तंगय (मत्तांगक) १।५

रुयग (रुचक) (पर्वत) १।११, १२, १३

रुयाणंसा रायहाणी ३।९८

रेवय (रैवतक) पर्वत २।३२, ३३, ३९, ४०, ६६, ६८, ६९, ९३, ३।६९, ७०, ७१

रोहीडअ (रोहीतक नगर) २।३५, ३६, ६।१४६, १५०, १५२

लोलुयच्चुय(त) नरय ४।१५२, १५४, १५६, २४६, २४७, २४८

वक्खारपव्वय (वक्षस्कार पर्वत) १।२७

वज्जभूमि १।१२७

वट्टवेयड्ढ (वृत्तवैताढ्य) १।२६

वद्धमाणपुर ६।१५५, १५६

वणसंड ४।१३१, १३५, २८२, २८४, २९०

वरदामतित्थ १।२०१, २०२, २०६

वाणियगाम १।१४५, २।५, २१, २०५, २२०, ४।१३८, १३९, १४०, १४७, १४८, १४९, १५०, १५१, १५३, १५५, २७६, ६।९४, ९५, ९६, ९७, १०२, १०३

वारवई (द्वारका नगरी) १।८८, २।३२, ३३, ३६, ३७, ३९, ४०, ४१, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४९, ५२, ५३, ५७, ५८, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३, ६४, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७१, ७२, ९३, ३।२८, २९, ३०, ४५, ४६, ४८, ४९, ६०, ६५, ६६, ६७, ६८, ६९, ७०, ७१

वाराणसी १।६४, ६५, ९१, २।१३९, २२६, ३।९७, ९८, १००, १०६, १०७, ४।३, ४, १७७, १७८, १७९, १८०, १८८, १८९, १९०, १९१, ५।५२, ६।५८, ६।१२३

विजयपुर २।२२७, ६।१३५, १३६

विजय महाविमाण २।१९५, २०६

विजयवद्धमाणखेड ६।८८, ९०

विणीया (विनीता नगरी) १।१८९, १९२, १९५, २३३, २३५, २३६, २३७, २४०, २४१, २४२, २४४, २४६

विदेहवास (महाविदेह) १।७८

विपुल (पर्वत) २।१३८, १३९, १९२, १९३, १९४, १९५, १९६, २०५, २०६, २१८, २३०, २८०

विराटनगर ३।३२

विसाहा (विशाखा नगरी) ३।२२

विझगिरि २।१८३, १८५

वीयसोगा (वीतशोका) नगरी १।४४

वीरपुर (नगर) २।२२७

वीतीभय (नगरी) २।२९६, २९७, २९८, २९९, ३००, ३०२

वेभारगिरि २।१५४, १५५, ४।१३०

वेयड्ढगिरि १।१५१, २११, २।३३, १८१

वेसालि १।१४५, ४।२७१, ५।५२, ६।२५, २६, २७, २८, २९, ३०, ३१

सगडमुह (शकटमुख) उद्यान १।३७

सणंकुमारकप्प १।२४, २।२२६

सत(य)दुवार नयर १।१५१, १५२, २।२२९, ३।६७, ५।६९, ७०, ७१, ६।८८

सम्मेयपव्वय १।८६, ९४

सरवण सण्णिवेस (सन्निवेश) ५।२१

सलिलावई(ती) विजय १।४४, ७८

सव्वओभद्द (नगर) ६।१२४, १५७

सव्वत्थसिद्ध २।८

सहस्सारकप्प सव्वट्ठ विमाण १।९५

सहस्संबवण उज्जाण २।९, १९, २०, २३, २६, २७, २८, ४५, ५२, ६०

साकेय नगर — साएं(के)य नगर १।५१, ५२, ५३, २।२०५, २२०, ३।९९, १००

सावत्थी (श्रावस्ती) नगरी १।६२, १४५, २।९६, ९७, २०५, २२९, २६७, २६९, २७०, २७१, ३।९७, १००, ४।७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ८१, ८३, २५०, २५१, २५२, २५५, २५६, २५७, २५८, २६४, २६५, २६६, २६७, २६८, ५।३, २१, २३, २७, २८, २९, ३०, ४२, ४३, ४७, ४८, ४९, ५०, ५२, ५६, ५८, ६०, ६१, ६३, ६४

साहंजणी (नगरी) ६।११६, १२१
सिद्धत्थगाम ५।३८
सिद्धत्थवण १।३४
सिन्धु महाणई १।२१०, २२१, २२६, २३०
सिधु (देश) १।२११
सिन्धु-सोवीर जणवय २।२६६, २६७, २६८
सिंहल (देश) १।२१०
सीओदा (सीतोदा) महानदी १।४४
सीया महाणई (महाविदेह क्षेत्र) २।३६२
सीयामुह वणसंड २।३६२
सीहगुहा चोरपल्ली २।३४७, ३४८, ३४९, ३५०, ३५१, ३५३
सीहपुर (नगर) ६।१२९
सुग्गीव (नगर) २।२४९
सुघोस (नगर) २।२२८
सुदंसणा सीया १।३३
सुपइट्ठपुर ६।१९४, १४६, १४८, १४९
सुवण्णभूमि १।१२७
सुरट्ठा जणवय ३।२९, ३०, ४५, ६२
सुहम्मासभा (सुधर्मा सभा) १।१५
सुहावह (सुखावह) वक्षस्कार पर्वत १।४४
सुंसमारपुर ६।१६०, १६१, १६२
सूरियाभविमाण ४।३७-५६, ११९
सेत्तुंजे (शत्रुंजय पर्वत) २।४१, ४२, ४३, ६५, ६६, ८३, ३।६४
सेय(त)विया(ता) नयरी ४।७२, ७४, ७५, ८०, ८१, ८२, ८३, ८४, ८५, ९३, ९४, ९६, ११४, ११६, ५।३
सेलगपुर २।७४, ८४, ८५, ८६, ८७
सेसदविया उदगसाला २।३२२
सोगन्धिया (नगरी) २।७५, ७६, ७८, २२८
सोत्तिमई नगरी ३।३१
सोमणस-पंडगवण (सौमनस पंडगवन) १।२७
सोरियपुर १।८७, २।९१, ६।१४१, १४२, १४४
सोहम्मे कप्पे १।१७, १८, २१, २४, ४०, ६०, ४।१५२
सोवीर (देश) २।२६०
हत्थिजाम वणसंड २।३२२
हत्थिसीस (हस्तिशीर्ष नगर) २।२२१ २२४, २२५, ३।३१ ६।७३, ७६, ७९
हत्थिणाउर (हस्तिनापुर) १।६६, ६९, २।८, १२, १५, १९, २०, २३, २५, २६, २७, २८, २९, ३०, ९९, २२०, २२३, २२४, २८६, २८७, २९१, २९२, २९३, २९४, २९५, ३।३१, ३७, ३८, ३९, ४२, ४३, ४४, ४५, ४६, ४८, ४९, ५६, ५९, ६०, १००, ६।९८, १००, १०१, १२७, १३३, १४१, १४५
हत्थीकप्प (नगर) ३।६३

□□

विशिष्ट शब्द सूची

अइवातिय १।२३४
अकिरिय २।२५८
अकिंचण १।१३६
अक्षीण महाणसिया १।१४०
अग्गिकुमार देव १।४२
अग्गियवाही ६।८१
अगारविणय २।७६
अगुत्तकुम्म ६।६०
अगुत्तकुम्म उवणय ६।६१
अचेल १।११७, १२२
अचेलगधम्म १।१५५
अचित्तपोग्गलावभासण उज्जोवण २।३६१
अच्छरगण संघाय १।१३४
अच्छेज्ज १।१५५
अजीवत्थिकाय २।३५७, ३५८
अज्झोयर १।१५५
अट्ठंग महानिमित्त ५।२८, ४२
अट्ठ मंगलग १।२६, १६४, २१३, २३४, २४०, ४।१६, २८५, २६८
अट्ठंगाउवेयपाढय ६।१३६
अट्ठारस सेणीपसेणी १।२३४, २३८
अट्ठाहिय महामहिमा १।३३, ८७
अणगारविणय २।७६
अणट्ठदंड ४।१४३, ३०६
अणट्ठदंडवेरमणस्स अइयारा ४।१४५
अणासवे १।१३६
अणाहुया २।२४२, २४३, २४४
अणिच्च जागरियं ६।१६०
अणिसिट्ठ १।१५५
अणुकंत १।१२५, १२६, १३०
अणुत्तर १।१४७
अणुवासणा ४।१३४
अणेसणिज्जा ४।२७८
अणोहट्टय ६।१२१
अणाभोग ४।३१३
अतिभार ४।१४३
अत्थमाला २।८१, ४।२७८
अत्थिकाय २।३५६, ३५७, ४।३१५
अत्थिभाव २।३५८
अदक्खु १।१२३, १२४
अदत्तअगहणवय ४।३०६
अदिण्णादाणवेरमणस्स अइयारा ४।१४४
अद्धकुलव ४।११०
अद्धपत्थय ४।११०
अद्धाकाल २।६,८
अद्धाढय ४।११०
अधम्मत्थिकाय २।३५७, ३५८ ४।१०६
अनीहारिम (पाओवगमण) २।२७४
अनीहारिम (भत्तपच्चक्खाण) २।२७४
अन्नाणं २।२५८
अन्नो जीवो अन्नं सरीरं ४।६३, ६५, ६६, ६८, ६६, १००, १०१, १०२, १०६, १११
अपच्छिम मारणंतिय संलेहणा ४।१५२, १५४, १५६, १७६, १८७, १६८, २०६, २१८, २३६, २४६, २४७, २४८, २४६, २६०
अपच्छिममारणांतिमसंलेहणाझूसणाराहणाए अतियारा ४।१४६
अपाणग ५।५८, ५६
अपुट्ठवागरणा १।१४७
अपुव्वकरण १।८५, २४५

अप्पकम्मतरा ४।११०
अप्पडिहयगई ४।९८, ९९, १००
अप्पमत्ते १।१२५
अबद्धिता ५।३
अबहुवाई १।१२८
अबुद्धजागरिया ४।२६९
अब्भुज्जय विहार २।८९
अभिग्गह १।११८, ४।१४६, १४७
अभिगम २।५, ११५, ४।१२७, ३०२, ३०३
अभिणिव्वुड १।१३०
अभितावे १।१२८
अभिसेयमंडव १।२३९
अभिहड १।१५५
अममे १।१३९
अमयाइवासाइं १।१७७
अमाइल्ले १।१३०
अमाघाय ४।२४३
अमुच्छिय आस ६।७८
अवज्झाणायरिय ४।३०९
अयागर ४।१११
अयहारय ४।१११, ११३
अरमणिज्ज ४।११५, ११६
अरहंत ६।१६५
अरहंतचेइय ६।१६५
अरिट्ठं १।१३१
अरूविकाय २।३५७, ३५९
अलसय ४।२४७
अलिजर ४।२१९, २२३
अलीपट्ट ६।१२९
अवतित्ता ५।३
अवज्झाणाचरित ४।१४३
अवदहण ४।१३४
अववहारी ४।१०८
अवाय ४।९१
अव्वाबाह २।७९, ४।२७६, २७७
अव्वोच्छित्ती २।२३८
असत्थपरिणया ४।२७८
असहेज्ज ४।१२५
असुरकुमार देव १।१३१, १९९
अहाकडं १।१२४
अहाउनिव्वत्ति काल २।६, ७
अहासंविभागस्स अइयारा ४।१४६
अहिगरण ४।७९
अहिण्णायदंसणे १।१२३
अहेऊ २।२६०, २६१
अहोलोयकंडय ६।१६७
अहोलोगीय दिसाकुमारी (अधोलोकवासी दिशाकुमारी)
१।८, ९, १०
आउ (कर्म) १।८७, ९०, ९४, १४७, २४६
आउकाय १।१२३
आउकाल गणणा (महावीरस्स) १।१४६
आउहघर साला १।१९०, १९३, १९४, १९५
आगासत्थिकाय २।३५७, ३५८, ४।१०९
आघवणा २।५५, ५८, ६९, १६९, ४।२३१, ५।११, १२
आजीविय थेर ५।५७, ५९, ६०, ६१, ६२, ६३
आजीवियसमय ४।२१९, २२७, ५।२८
आजीविओवासग ४।२१९, २२०, २२१, २२२, २२३, २२४,
२२५, २२७
आढय ४।११०
अबाहे-पबाहे ६।१४८
आभिणिबोहिय नाण ४।९१
आमोसहि १।१४०
आयतजोगमायसोही १।१३०
आयंबिल वद्धमाण तवोकम्म १।१४०, ३।१२०
आयंसघर १।२४५, २४६
आयाणभत्तमत्तनिक्खेवणा समिइ १।११७
आयावणा ४।५
आयावाया १।१४१
आरंभठाण १।१५४
आरामागारे १।१२५
आवलिका २।८
आवाडचिलाय १।२१६, २१७, २२०, २२१, २२२, २२५,
२२६
आवसह २।७५, ७८, २७८,

आस (णाय) ६।७३
आसव (आश्रय) ४।७६
आसातणा १।१५५
आहाकम्मिय १।१५५ २।५६, ५७, १७०
आहोहिय (अवधिज्ञान) १।६२, ४।६०, ६१
इच्छापरिमाण ४।१४१
इच्छापरिमाणस्स अइयारा ४।१४४
इड्डरग ४।११०
इत्थिकुलत्था २।८१, ४।२७६
इत्थीनामगोय कम्म १।४६, ७८
इयच्छेव ४।२३०
इरियासमिइ १।३५, ११७, १५४,
इसिपरिसा ४।१०६, १०७, ३०४
इहलोगासंसप्पओग ४।१४६
ईहा ४।६१
इंगालसोल्लियं ४।५
इंदियजवणिज्ज २।७६, ४।२७७
उक्कुडुए १।१२८
उक्कंचण ४।७२
उग्गह ४।६१, ६२
उच्चारपासवण-खेल-सिंघाण-जल्लपरिट्ठावणिया समिइ १।११७
उजुमई १।१४०, ४।६२
उज्झियधम्मिय २।२११
उज्झिय पडुप्पन्न उवणय ६।६६
उट्ठिया ४।२१६, २२३
उड्डकल्लाणिया १।२३४, २३८, २४०, २४४
उड्ढमहे तिरियं १।१२६
उड्ढलोगीय दिसाकुमारी १।१०
उड्ढलोयकंडय ६।१६७
उत्तरकुरा ४।५
उत्तरासाढा (नक्षत्र) १।६, ७
उद्दण्डा ४।५
उद्देसिय १।१५५, २।५६, ५७, १७०, २४५
उप्पत्तिया १।६५, ७६, २।१५०, ३।११५
उप्पन्न नाग-दंसणधरे ४।१०६
उम्बरपुप्फ २।५४, १७७, ५।१६
उम्मंज्जगा ४।५
उवभोग परिभोग अइयारा ४।१४४
उवभोग-परिभोगविहि ४।१४१
उवसग्ग १।३४, ३५, ६२, १२६, १५२
उवासगपडिमा ४।१५१
उवासगपडिमा पडिवत्ती ४।१७५-१७६, १८६, १६८, २०८, २१७, २३८, २४५, २५४, २५६
एगअक्खराइ पद २।८२
एगावलि (तप) १।१४०
एगिन्दिय रयण १।२३४
एसणा समिइ १।११७
एसणिज्जा ४।२७८
ओमोदरियं १।१२८
ओवण १।१२८
ओसन्न २।८८, ८६, ६०
ओसन्नविहारी २।८८, ८६, ६०
ओ(उ)सप्पिणी १।४, ५, ३८, ६०, ६४, ६५, १४६, १४७, १५१, २२७, २।८
ओहिना(णा)ण ४।६१, ६२, १५२, १५४, १५७
ओहिनाणुप्पत्ती ४।२४६
अंगपविट्ठ ४।६२
अंतकर(गड) भूमि १।३६, ८६, ६०, ६४, १५०
अंतेवासी अणगारा भगवंत १।१४२-१४४
अंतेवासी थेरा भगवंत १।१४१
अंतोसल्लमरण २।२७४
अंग बाहिर ४।६२
अंबाराम ४।४
अंबुभक्खिणो ४।५
कड कज्जमाण ५।२२
कणगावली तव १।१४०, ३।११८, ११६
कणियार ५।२८, ४२
कणगर ६।१२६
कण्णवेहणं ४।१२०
कप्पडिय (कार्पटिक) १।८१, ८२
कप्परुक्ख १।११४
कम्मपहाणया २।२३६
कम्मिया १।६५, ७६, २।१५०
कम्मादाण ४।१४५

कम्मारपुत्तिया २।३२३
करोडिय १।८१, ८२
कल्लाण कम्म २।३६०
कल्लाणगं १।८७, ६०, ६५, १००
कल्लाणफलविवाग १।१४७
कलायरिया ४।११४
कलंद ४।१६३, ५।२८, ४२
कलंबचीरपत्त ६।१२६
करपत्त ६।१२६, १३१
कसाय १।१५४
कसायफल ४।२६६-२७०
कंखा ४।१४३
कंतारभत्त १।१५५, २।५६, ५७, १७०
कंदभोयण १।१५५, २।५६, ५६, १७०
कंदाहारा ४।५
कंदुसोल्लियं ४।५
कामभोग ४।३१३
कामभोगासंसप्पओग ४।१४६
कायगुत्ते १।११७
कायवलिया १।१४०
कायसमिय १।३५, ३।११७
कालमासा २।८१, ४।२७८
कासवगोत्त १।६८
किलवीरिए १।२४७
किमियकवल ६।१४२
किरिया ४।७६
किरियं २।२५८
किलिज ४।११०
किब्बिसिय देव ५।२५, २६, २७
किवागफलोवम १।१२६
कीय १।१५५
कीयगड २।५६, ५७, १७०, २४५
कुचरा १।१२६
कुडय ६।६७
कुडंग ६।१०७
कुत्तियावण २।५६, १७२, ५।१३
कुत्तियावणभूया १।१४१
कुम्भ ३।६७
कुम्म (णाय) ६।५८
कुम्मास १।१२८
कुलत्था २।८१, ४।२७८, २७६
कुलधमा (कुलध्मा) ४।५
कुलधुया ४।२७६
कुलव ४।११०
कुलमाउया ४।२७६
कुलवधुया ४।२७६
कुसील २।८८, ८६, ६०
कुसील विहारी २।८८, ८६, ६०
कुण्डल जुयल १।६०, ६१, ६२, ६४, ६५, ६६
कुंथू अणुद्धरी १।१४८
कूडलेहकरण ४।१४४
कोट्टकिरिया ६।७४
कोट्ठबुद्धी १।१४०
कोडाल गोत्त १।६६, ६६
कोत्तिया ४।५
कासवाण ६।७७
कोसलिय १।६,७ ३३, ३४, ३८, ३६,४०
खत्तिय परिसा ४।१०६, १०७
खरपत्त ६।१२६, १३१
खाओवसमियं (ओहिनाण) ४।६२
खीरासवा १।१४०
खुड्डागसव्वओभद्द पडिमा ३।११६
खुड्डाग सीहनिक्कीलिय तवोकम्म १।४७, १४०, ३।११६
खुड्डियं ४।१११
खेत्तवत्थुविहि परिमाण ४।१४१
खेलोसहि १।१४०
गण १।१५६
गणराय १।१४७
गणहर १।१५६
गणाभिओग ४।१४६, २७२
गणिम १।५४, ६१, ६२, २।३०४, ३४०, ६।७३
गन्ध ४।१०६
गब्भसाहरण १।६८
गामधम्म १।१२८

गामपिंडोलग १।१२६
गामरक्खा १।१२६
गाहावइ-चोरग्गहणविमोक्खण २।३२३, ३२५
गाहावइपरिसा ४।१०६, १०७
गिद्धपट्ठ (मरण) २।२७४
गिरिपडण (मरण) २।२७४
गिलाणभत्त १।१५५, २।५६, ५७, १७०
गुण (गुणव्रत) १।५८, ५६
गुत्तकुम्म ६।६१
गुत्तकुम्म उवणम ६।६२
गुत्तबंभयारी १।११७
गुत्ते १।११७
गुत्तेन्दिए १।११७
गुरुनिग्गह ४।१४६
गोकिलंज ४।१६२
गोय(त्त) (कर्म) १।८७, ६०, ६४, १४७, २४६
गोदोहिय (आसन) १।१३०
गंडमाणिया ४।११०
घाणसहगया पोग्गला ४।३१६
घोरासम २।१११
चउ अट्ठाहि लोग १।३४
चउतीसबुद्धवयणाइसेस १।१३६
चउप्पयविहि परिमाण ४।१४१
चउप्पुडमय दारुमय ६।१५६
चउव्विह जीव २।२७२
चउव्विह लोय २।२७१
चउव्विह सिद्ध २।२७३
चउव्विह सिद्धि २।२७२
चक्कवट्टिनामलिहिणं १।२२७
चक्कवट्टिसामण्णं १।२४७-२५७
चक्कवट्टी ३।५५
चरम अट्ठ ५।५८, ६१
चरिया १।१२२-१२५
चलमाण चलिय ५।२२
चाउज्जामिय धम्म २।७६, ३२१, ३२६, ३६७, ३६८, ३।६५, ४।७८, १२८
चाउब्भाइया ४।११०
चारअ (दण्डनीति) १।६
चारित्तबलिया १।१४०
चित्तसभा (चित्रसभा) १।६६, ६७, ६८, ६६
चूलोवणयं ४।१२०
छविच्छेद (दण्डनीति) १।६
छविच्छेद ४।१४३
छउमत्थ ४।१०६
छउमत्थे १।१३०
छज्जीवनिकाया १।१५५
छाउमत्थ णाण ४।६२
छिन्नसोए १।१३६
छुछुकारंति १।१२७
जइ परिसा ४।३०४
जग्गावली १।१२५
जणवयकल्लाणिया १।२३४, २३८, २४०, २४४
जण्णसरूव २।२३५
जत्ता २।७६, ४।२७६, २७७
जन्नई ४।५
जन्नाणमुह २।२३७, ३८
जम्माभिसेय १।१०७
जयमाणे १।१२४
जलप्पवेस (मरण) २।२७४
जलणप्पवेस (मरण) २।२७४
जलवासिणो ४।५
जलवीरिए १।२४७
जलाभिसेयकढिणगायभूया ४।५
जल्लोसहि १।१४०
जवणिज्ज २।७६, ४।२७६, २७७
जाइसरण (जातिस्मरण ज्ञान) १।७८, ७६
जालघर १।७७
जालंधरगोत्त १।६६, ६६
जायनिन्दु(या)वा ६।१०२, १२१, १३६
जीव असरीरबद्ध ४।१०६
जीवत्थिकाय २।३५७, ३५८, ३५६
जीवपएसिया ५।३
जीव-सरीराण अन्नत्तं ४।६२
जीवियासंसप्पओग ४।१४६

देवकयोज्जोय १।१०७
देवठिइ ४।२६१, २६२, २६३
देवकुरिआ ४।३०४
देवयाभिओग ४।१४६
देवेहिं उज्जोयकरणं १।१४६
देसावगासियस्स अइयारा ४।१४५
दोकिरिता(या) ५।३
दंड १।१५४
दंडवीरिए १।२४७
दंतुक्खालिया ४।५
दंस-मसग १।१२७
दंसणवलिया १।१४०
धण्ण कुलत्था २।८१, ४।२७६
धण्णमासा २।८१, ४।२७८
धण्ण सरसविया २।८०
धनुष १।५
धन्न-सरिसव ४।२७७, २७८
धम्मजागरिया ४।१४६, १५१, १६१, १७६, १८०, १९०, २०२,
२१६, २१७, २३१, २४३, २४४, २४५, २५३,२५४, २५८
धम्मझाणोवगय १।१३०
धम्मतित्थ १।८२
धम्मत्थिकाय २।३५७, ३५८, ४।१०९
धम्मपण्णत्ति ४।१४९, १५०, १५१
धम्मविहज्जिया ४।२३५, २३७
धम्मसहाइया ४।२३५, २३७
धम्मस्स लाभ-अलाभविसयाइं चत्तारि ठाणाइं ४।८६-८८
धम्माणमुह २।२३७, २३८
धम्माणुरागरत्ता ४।२३५, २३७
धम्मायरिय ४।११४
धरिम १।५४, ६१, ६२, २।३०४, ३४०, ६।७३
धारणा ४।९१, ९२
धिक्कार (दण्डनीति) १।६
नक्खत्ताणमुह २।२३७, २३८
नत्थिभाव २।३५८
नरसिंहरूप ३।५३
नाग (देव) १।१९९
नाम (कर्म) १।८७, ९०, ९४, १४७, २४६
नाय (ज्ञातृ वंश) १।११०
नाह २।२४३
निज्जर ४।७९
निम्मज्जगा ४।५
नियकणीयसपुत्तमारणरूवउवसग्ग ४।१८२, १९३, २०४, २३४
नियजेट्ठपुत्तमारणरूवउवसग्ग ४।१८०, १९०, २०२, २४१
नियतिवाद ४।२१३, २१४
नियमज्जामारणरूव उवसग्ग ४।२३५
नियमज्झमपुत्तमारणरूव उवसग्ग ४।१८१, १९२, २०३, २३३
नियमायाभद्दामारण उवसग्ग ४।१८३
नियाग २।२४५
नियाण ३।२५, ६६, ३।८, ९
निरुवलेवे १।१३९
निव्वाण १।१४६
नीहारिम पाओवगमण (पंडियमरण) २।२७४
नीहारिम (भत्तपच्चक्खाण पंडियमरण) २।२७४
नोइंदिय जवणिज्ज २।७९, ४।२७७
नन्दीफल २।३४१, ३४२, ३४३
पउट्ट परिहार ५।४२, ५०, ५२, ५३
पक्खेव २।३४१
पच्चक्खाण १।५८,५९
पचंकमणग ४।१२०
पज्जत्ती २।२८
पज्जुवासणा १।१४५
पज्जुवासणया तिविहा ४।३०२, ३०३
पजेमणग ४।१२०
पज्जंपणग ४।१२०
पडबुद्धी १।४०
पडिबन्ध १।३६, ६०, ११७, १४२, १५३
पणगाई १।१२३
पणतीस सच्चवयणाइसेसपत्ते १।१३९
पणियसाला १।१२५
पण्णवणा (वाणी) २।५६, ५८, ६९, १६९. ४।२३१, ५।११, १२
पत्ताहारा ४।५
पत्थय ४।११०
पत्थियपिडय ४।११०
पधाणं नामं अज्झयणं १।१४७

पमत्त २।८८, ८९, ९०
पमत्तविहारी २।८८, ८९, ९०
पमाणकाल २।६, ७
पमाय १।१३०
पमायायरिय ४।१४३, ३०९
पमुइयपक्कीलियाभिराम १।१९३
पयाणुसारी १।१४०
परपासंडपसंसा ४।१४३
परपासंडसंथवा ४।१४३
परमाणुपोग्गल ४।१०९
परलोगासंसप्पओग ४।१४६
परवाया १।१४१
परिभास १।६
परिसडियकन्दमूलतयपत्तपुष्फफलाहार ४।५
परिसा ४।१०६, १०७
परीसह उवसग्गा १।१२७-१२८
पलिओवम (काल) २।८, २१
पलियट्ठाण १।१२५
पवयणनिण्हव १।१५०
पवित्तिवाउय ४।२८७, २८८, २८९, २९३
पाओवगम(ण) १।८६, २४६, २।२७४
पाणग ५।५८, ६१
पाणभोग ४।३१३
पाणयकप्प १।६१
पाणाइवाय १।७१
पाणामा पव्वज्जा २।१२०, १२१, १२२, १२५
पाणिपडिग्गह १।११७
पामिच्च १।१५५
पारिच्छेज्ज(च) १।५४, ६१, ६२, २।३०४, ३४०, ६।७३
पारिणामिया (पारिणामिका बुद्धि) १।६५, ७६, २५०
पावकम्मविवाग १।३५९, ३६०
पावकम्मोवएस ४।१४३, ३०९
पावफलविवाग १।१४७
पावसियालगा ६।५६, ६०, ६१
पावादुय २।१२९
पासत्थ २।८८, ८९, ९०
पासत्था ३।२७
पासत्थविहारी २।८८, ८९ ९०
पासावच्चिज्ज २।३१९, ३२३
पासावच्चिज्ज थेरा ४।१२६, १२७
पासंडत्थ १।८१
पाहुणभत्त १।१५५
पुलाग १।१२३
पुप्फाहारा ४।५
पुराणकुम्मास १।१२९
पुस्समाणव १।५५
पुंसकोइलग १।११८, ११९
पूइए १।१५५
पूयकवल ६।१४२
पोग्गल ६।१६६
पोग्गलत्थिकाय २।३५७, ३५८, ३५९
पोतवणिक १।५४, ५५, ५६, ६१
पोत्तिया ४।५
पोरिसी २।६, ७
पोसह (प्रौषध) १।५८, ५९
पोसहसाल १।१९७, १९८, २०३
पोसहोववास १।१४७
पोसहोववासस्स अतियारा ४।१४५
पंचग्गितावेहिं ४।५
पंचत्थिकाय २।३५७, ३५८
पंचधाति(इ) १।११९
पंडियमरण २।२७३, २७४
फलभोयण १।१५५, २।५६, ५७, १७०
फलाहारा ४।५
फलिहरयण (स्फटिक रत्न) ६।१६२, १६३
फरिहोदग २।१००, १०२
फासुयविहार २।७९, ४।२७७
बहुलियामत्त १।१५५, २।५६, १७०
बलाभिओग ४।१४६, २७२
बहिद्धादाण २।७६, ७७
बहुरत ५।३
बालमरण २।२७३, २७४
बाला १।१२४
बावत्तरि कलाओ २।१६१, ४।१२१, १२२, १२३, ३११-३१२

बिलवासी ४।५
बीयबुद्धी १।१४०
बीयभोयण १।१५५, २।५६, ५७, १७०
बीय हरियाइं १।१२३
बीयाहार ४।५
बुद्धजागरिया ४।२६६
बुद्धभिक्खू २।१३१
बंध ४।८०, १४३
बंभण १।१५४
बंभचेरगुत्ती १।१५५
बंभलोयकप्प १।८२
भग्गनियम ४।१६७, २०८, २३८
भग्गपोसह ४।१६७, २०८, २३८
भग्गवय ४।१६७, २०८, २३८
भत्तपच्चक्खाण १।५८
भत्तपच्चक्खाण (पंडियमरण) २।२७४
भत्तपाणवोच्छेद ४।१४३
भद्दपडिमं १।१४०
भद्दोत्तरपडिमा ३।१२०
भयट्ठाण १।१५५
भवणवई इंद १।४१
भवणवई (भवनवासी देव) १।२५, ३०, ३१, ३२, ३३, ४२, ४३, ४४, ४६, ८५, १०७, १०८, ११३, १२०, १३१, १३२
भवपच्चइयं (ओहिनाण) ४।६२
भावसोय २।७६
भाविअप्पा अणगार ६।१६५
भासरासीग्गह १।१४८
भासासमिइ १।११७, १५४
भिक्खु पडिमा (भिक्षु प्रतिमा) १।४७, १४१
भिक्खू १।१२६
भिलुंगा ४।८२
मक्कार (माकार दंडनीति) १।६
मणगुत्ति १।३५
मणगुत्ते १।११७
मणपज्जवणाण १।८५, ११७, ४।६१, ६२
मणबलिया १।१४०
मणसमिय १।३५, ११७
मणुसपरिसा ४।३०४
मयट्ठाण १।१५५
मयूरी अण्ड(णाय) ६।५१
मरणकाल २।६, ७
मरणसंसप्पओग ४।१४६
मल्लई १।१४७, ४।२२६, ६।१०, १९, २०, ३३, ३४
महाकम्मलरा ४।११०
महागोप ४।२२८, २२६
महाधम्मकही ४।२२८
महानिज्जामक ४।२२६, २३०
महाभद्दपडिमं १।१४०
महामाणस ५।५१
महामाहण ४।२२०, २२२, २२८
महालयसव्वओभद्दपडिमा ३।११६
महालयं सीहनिक्कीलयं तवोकम्मं १।४७, १४०, ३।११६
महालियं ४।१११
महासत्थवाह ४।२२६
महासिलाकंटक ६।३३, ३४
महुयासवा १।१४०
मागहतित्थाहिवइ १।१६६, २०१, २०२
मागहय पत्थय ६।६६
मारणांतियउवसग्ग ४।१६२
मासा २।८१, ४।२७८
माहण १।८१, २।२३८, ३६
माहणपरिसा ४।१०६, १०७
मिच्छादंसणसल्ल १।७१
मित्तसरिसविया २।८०, ४।२७७
मियलुद्धया ४।५
मीसज्जय १।१५५
मुच्छिम आस ६।७६, ८०
मुणिपरिसा ४।३०४
मुत्तावलि तव ३।१२०
मूलभोयण १।१५५, २।५६, ५७, २।१७०
मूलाहारा ४।५

मूसाकालग ४।१६७
मेच्छजाइ १।२११
मेज्ज (मेय) १।५४, ६१, ६२, २।३०४, ३४० ६।७३
मेढीभूय १।७६
मेह(घ)कुमारदेव १।४३
मोक्ख ४।८०
मोसोवएस ४।१४४
मोहणघर १।५०
मंख १।१०८
मंथु १।१२८
मंडलबंध १।६
रइय २।५६, ५७, १७०
रमणिज्ज ४।११५, ११६,
रमणिज्जवेसा १।१३४-१३५
रयणमहाणिहीणं उप्पत्तिठाण १।२४४
रयणागर ४।११२
रयणावली तव ३।११७
रहमुसल-संगाम ४।२७२, २७३, २७४, ६।१०, ११, १२, १३, ३१
रहसब्भक्खाण ४।१४४
राइप्पमाण काल २।६
रायकउहाइ ४।३०२
रायाभिओग ४।१४६, २७२
रायाभिसेयसंकप्पो १।२३८-२३९
रायावकारी ६।१३०
रिट्ठ (रिष्ट प्रतर में रहने वाले देव) १।८२
रुक्खमूलिया ४।५
रुप्पागर ४।११२
रुहिरकद्दल ६।१४२
रूयगवासि दिसाकुमारी १।११
रूविकाय २।३५७, ३५९
रोगायंका (सोलस) ३।११, ४।१३३, १३४, १३५, १९४, १९५, १९७, ६।८६, १४०
लट्ठि १।१२७
ललिया गोट्ठी २।१९७, १९८
लट्ठहत्थ ६।१३६
लाढमचारी १।१२७
ले(लि)च्छई १।१४७, ४।२२६, ६।१०, ११, ३१, ३३, ३४
लेणभोग ४।३१३
लेसा (लेश्या) १।७८
लोगपाल (लोकपाल) १।४३
लोगंतिय देवा १।८२, ८३, ८८, ९२
वइरागर ४।११२
वइरसमिइ १।११७
वक्कवासिणो ४।५
वज्ज ६।१६४, १६५, १६७, १६८
वज्जरिसहनारायसंघयण १।३९, ८६, १२६
वज्जी ६।१०, ३३
वत्थभोग ४।३१३
वयगुत्ते १।११७
वयबलिया १।१४०
वयसमिय १।३५
वरिसधर (वर्षधर—अन्तःपुर का रक्षक) १।६३, ६४
वलयमरण २।२७४
ववगयपेमरागदोसमोहे १।१३९
ववहारगा ४।१०७
ववहारी ४।१०८
वसट्टमरण २।२७४
वह ४।१४३
वाउकाय १।१२३
वाणपत्थ ४।५
वाणमंतर इंद १।४१
वाणमन्तर (वाणव्यन्तर देव) १।२५, ३०, ३१, ३२, ३३, ४४, ४९, ८५, १०७, १०८, ११३, १२०, १३१ १३३
वाय ४।१०९
वायुकुमार देव १।४२
वायुभक्खिणो ४।५
वालग्गपोइया २।११०
वासावास गणणा १।१४५
वासिट्ठगोत्त १।९८
वाहणविहिपरिमाण ४।१४१
विउलमई १।१४०, ४।९२
विणयं २।२५८

विणयपडिवत्ती ४।११४
विणयमुलयधम्म २।७६, ७७, ७८
विण्णवणा (वाणी) २।५६, ५८, ६६, १६६, ४।२३१, ५।११, १२
वितिगिच्छा ४।१४३
वित्तिकंतार ४।१४६
विप्पोसहि १।१४०
विसभक्खण (मरण) २।२७४
विस्संममाण ६।११५
वेणइया १।६५, ७६, २।१५०
वेमाणिय (वैमानिक देव) १।३१, ३२, ३३, ४०, ४२, ४३, ४६, ८५, १०७, १०८, ११३, १२०, १३१, १३३, १४७, १६६
वेय(द)णिज्ज (वेदनीय कर्म) १।८७, ६०, ६४, २४६
वेयमुह २।२३७, ३८
वेयवाय २।१३३
वेरमण (त्याग) १।५८, ५६,
वेसमण १।१९६, २०३
वेहाणस (मरण) २।२७४
वोसट्ठकाए १।१२८
व्वय (व्रत) १।५८, ५९
सउगरुय (वाला) ४।१२१-१२३
सगडविहि परिमाण ४।१४१
सचित्त ४।१११
सद्दई ४।५
सण्णवणा (वाणी) २।५६, ५८, ६६, १६६, ४।२३१, ५।११, १२
सण्णिगब्भ ३।५० ५१, ५२
सत्थनायग १।१३६
सत्थपरिणय ४।२७८
सत्थोवाडण (मरण) २।२७४
सदारमंतभेय ४।१४४
सदार संतोसीय ४।१४०
सदारसंतोसीए अतियारा ४।१४४
सद्द ४।१०६
सप्परूप उवसग्ग ४।१६७-१६८
सप्पियासव १।१४०
समचउरंस संठाण १।३६, ८६, १३६
समण २।२२६
समणधम्म १।१५५
समणोवासग ४।१२५, १२६, १२७, १२८
समय (काल) २।७
समसुहदुक्खसहाइया ४।२३५, २३७
समिए १।१२७
सम्मताईणं अइयारा ४।१४३
सयणभोग ४।३१३
सरण्णमाण ५।५१
सरिसव(या) २।८०, ४।२७७, २७८
सरीरपाओसिया ३।१०४
सरीरवाउसिया ३।६३, ६६
सव्वओभद्द पडिमं १।१४०
सव्वण्णू १।१३१
सव्वभावदरिसी १।१३१
सव्वोसहि १।१४०
सहजायया४।२७७
सहपंसु कीलिया ४।२७७
सहवड्ढिया ४।२७७
सहसाभक्खाण ४।१४४
सागरोवम २।८, २१
साण ५।२८, ४२
सामाइयचरित्त १।८४, ८५, ११५
सामाइयस्स अतियारा ४।१४५
सामुच्छेइत्ता ५।३
सावगधम्म १।१५५
सावगधम्मविवरण ४।१४०
सिद्धिगंडिया २।२८६
सिप्पायरिया ४।११४
सिप्पोवगय ४।२३०
सिरावत्थी ४।१३४
सिवहत्थ ६।१३६
सीतोदं १।१२३
सीयपिंड १।१२९
सीयफासे १।१२७
सील (शील व्रत) १।५८, ५९

सीलसमायार १।१५६
सुक्कज्झाणंतरियाए १।१३०
सुदक्खुजागरिया ४।२६६
सुपच्चक्खाण २।३२६-३३८
सुयनाण ४।६१, ६२
सुव(ण)ण्ण (कुमार देव) १।१६६
सुवण्णागार ४।११२
सुविणफलं १।१२०-१२२
सुविणलक्खण पाढगा (स्वप्नलक्षण पाठक) २।१२, १३
सुविणसत्थ (स्वप्नशास्त्र) २।१२
सुविणाण १।११८
सुसम १।६५
सुसम-दुसम १।६५
सुसम-सुसम १।६५
सुहहत्थ ६।१३६
सेयं सोवग्गं १।११६
सेवालभक्खि ४।५
सेज्जा १।१२५-१२६
सोयधम्म (शौच धर्म) १।७०, ७१, ७२, २।७५, ७६, ७८
सोयमूलय परिव्वायधम्म २।७५
सोयमूलयधम्म २।७६, ७७, ७८
सोवाग १।१२६
संका ४।१४३
संखधमा ४।५
संगाममरणदेवत्त निसय ४।२७१-२७५
संघपट्ट ६।१३०
संजत्ता नावावणिया ६।७३, ७४, ७५, ७६, ७७, ७९
संजूह ५।५०, ५२
संडासक १।६८
संदमाणिया ४।७७
संपक्खलगा ४।५
संभिन्नसोया १।१४०
संमज्जगा ४।५
संवच्छर पडिलेहणगं ४।१२०
संवर ४।७६
संसट्ठ २।२११
संसत्त २।८८, ८९, ९०
संसत्तविहारी २।८८, ८९, ९०
हक्कार (हाकार दंडनीति) १।६
हत्थितावस २।१३४, ४।५
हत्थीरूव उवसग्ग ४।१६५, १६६
हत्थंडुयाण ६।१२९, १३०
हरियभोयण १।१५५, २।५६, ५७, १७०
हल्ला (एक विशेष प्रकार का कीड़ा) ५।६०, ६१
हिरण्णकोडिवप्पकीरण रूव उवसग्ग ४।२०५
हिरण्ण सुवण्णविहि परिमाण ४।१४१
हिंसप्पयाण ४।३०६
हुम्बउट्ठा ४।५
होत्तिया ४।५

॥ धर्म कथानुयोग : शब्द सूची समाप्त ॥

□□